

मरुधर	केसरी
श्री श्री मिश्रसमर्थ	महाराज
अभिनन्दन	ग्रन्थ



मरुधरकेसरी अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशन-समिति
 जयपुर, प्यार

प्रकाशक

मरुधरकेसरी-अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशन समिति,
जोधपुर

वी० सं० २४६५ सन् १९६८
प्रथम संस्करण १००० प्रति

मूल्य चालीस रुपये

मुद्रक

उद्योगशाला प्रेस
(हज्जिन मेवक मघ)
किम्बवे, दिल्ली-६

प्रयोग मध्याह्न
नारायण भास्कर

मन्त्रादयः परिवार

१ डा मोहनमित्र कोशरी	७ मधुकर मुनि
२ हरिमाऊ उपपाध्याय	८ कमल मुनि
३ भगवन्त मास्तर	९ राजा मुनि
४ विष्णुमित्र लोढ़ा	१ डा सत्यमीलन तिलक
५ डा मोहनमित्र मास्तर	११ प्र० मोहनमित्र मास्तर
६ डा० कमलचन्द मास्तर	१२ सातचन्द्र मास्तर

दयवहायव
विष्णुमित्र लोढ़ा

मरुधरकेसरी-अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशन समिति
जोधपुर व्यावर

सम्पादकीय

जगत् के प्रथम जन जन्मे गहरे हाने है जि मनुष्य का नाम ने नाम ही और या नाम में विभाग ही और उन्मुख होना अत्यन्त कठिन जाना है। फिर यदि विधि सम्पन्न हो, तब-प्रकार ही नामही महान् पुनः । हा वर ना और कठिन । इनके पर भा जब जीवन में नवनान्य हो प्रसन्न स्थिति हो हा तब विधि में भा ही ज्ञानमान्य आचार्य पुन्य ही निवेष्टन के पर भा अवदम्बन लेन ही साधना है । सम्पत्तिपरी मृति श्रीनिधीमर्तनी मयागत मेर ही अनामान्य लोकोत्तर पुन्यो में है । उन्हें दया नहीं प्राप्त भा । मगर ही भी प्रजा न उक्त उक्त पर पर चरन ने नहीं रोक सका जिसने विषय में कहा गया है—‘प्राया धीरा महाधीरि अर्थात् नीर पुन्य उक्त मयागत में चले है । मुनि-श्री के विषय में शताधिक मज्जनों के उद्धार ग्रथ में अस्ति है । इनके अस्ति महा पुन्य नहीं चला है ।

मुनिश्री के ब्रह्माक्षु भक्तों की मर्त्या विधुत है। जब उन्होंने छावनी दीक्षान्तकालीन के दुर्गीत प्रसंग पर अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने का सङ्कल्प किया तो उसके सम्मान में मात्र उद्देश्यात् मने प्राप्ति पर आ पड़ा। इस बृहत्तर एवं गुह्यतम कार्य को सम्पन्न करने के लिए तमय स्वयं या जीव मेत प्रशस्तन मर्निन ने एक वर्ष का समय बहा देने का अनुग्रह किया किन्तु वह स्वीकार नहीं किया गया। तब से तबत तन्मूर्ति सामर्थ्य - मात्र स्वयं जुटा और उनका जो फल आया वह पाठकों के समक्ष है।

शीघ्रता के कारण श्रव के एक मास अनेक बड़ प्रतिफल में मुद्रित ज्ञान पड़े और चतुर श्रव के मुद्रण में हमारे प्रेम का भी महायत्ना जैसी पड़ी। ऐसी स्थिति में सम्पादन और मुद्रण मन्दगी जो घटित हो गई है। उनमें दिए में क्षमाप्रार्थना का अप्रिवानी अवश्य है। प्रारम्भ में तपना नहीं थी कि पर का योग्य करना प्रह जाणना, किन्तु क्षमाप्राप्त पुष्प के अनितन्दनश्रव को क्षमाप्राप्त ही होता था। नियति ने उन विधान का डारने मात्रा में क्यों होता था ?

प्रथम में दर्शित अधिष्ठाता सामग्री उत्पन्न जाति की है। यौगिक एवं गन्धर्व है। चतुर्थी पद सन्निहित माने गए हैं। जातिवचनकर्त्ता मुनिवर्ग के अनिमन्दनार्थ प्रस्तुत प्रथम ही पद्यों में विनम्र हो, यत् रिवाज समीचीन जान पड़ा। तन्नुसार इसे छठे उच्छेद में विभक्त किया गया है। प्रथम छन्द में मुनिवर्ग या पवित्र जीवनवृत्त, सम्मरण आदि है। दूसरे छन्द में जैनदर्शन और धर्म संबंधी महत्त्वपूर्ण नियम हैं। उनमें निम्ने ही निम्न अष्ट-अष्ट विषय की सम्मिलित और विविध विवेचना में सम्मिलित हैं। प्रथम छन्द में चतुर्थी पद सन्निहित, यत् एव उचिततम सम्मिलित सामग्री प्रस्तुत की गई है। चतुर्थी पद में नाट्य या पवित्र और सम्मिलित गद्य है। पंचम छन्द सर्वसाधारण के लिए उपयोगी है। वह विवेकत नाट्ययानी जनसंघीय संस्कृति या विशिष्टता बताता है। छठे छन्द की सामग्री के महत्त्व और सम्पादन का भार प्रसिद्ध विद्वान् डा० ब्रह्मप्रसाद पाण्डे ने बहन दिया है। छठे छन्द में आरम्भसाधारण के लिए समस्त सामग्री सन्निहित की गई है।

वे सभी महानुभाव साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने गाम्भीर्य, अर्थ तथा अन्य प्रकार से तपोग प्रदान किया है। साथ ही उन महोगी लवका के प्रति मैं क्षमाप्रार्थी हूँ जिनके विरुद्ध ग्रन्थ में ग्यान नहीं पा मने। नकाच से ताम न दिया गया होता तो ग्रन्थ को अपना कलेवर समालना नठिन हो जाता। कुछ दम्पुओं के सम्मरण और श्रद्धा-निवेदन भी विरुद्ध में प्राप्त होने के कारण ग्यान न पा मने।

अर्थमन्त्रायको के चित्र वर्णानुक्रम मे देने का विचार था। मन्त्रिनि के अग्रज उनके लिए पुनः पुनः आग्रह भी करते थे, किन्तु ब्रह्म-ने चित्र ब्रह्म विलम्ब मे आग और अग्निम समय पर अपने ही रहे। उनके कारण चित्रा का मुद्रण रात होने का समय नहीं था। अतएव उस विचार को त्याग देना पड़ा। वेपका के चित्र मुद्रण दिग्गम है।

उद्योगशाला प्रेम के व्यवस्थापक श्री शान्तिदान व० गेठ का हार्दिक सहयोग तो रहा ही, साथ ही सहज श्री कुण्ड मर्मानन्द श्री गजाननसह जी तथा श्री गृहदेवी की लगन और तत्परता भी अविस्मरणीय है। प्रभुद्वारा को उन्होंने अपना ही कार्य न समझा होता तो समय पर उसका तैयार होना कठिन था।

बाणा है प्रभुन प्रथ हिन्दी के गाँव सी बॉन नाय ही जैन साहित्य के भण्डार में एक महान् रचना की
बुद्धि करेगा ।



मरुधरकेसरी पं० रत्न मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज

प्रासंगिक

मन्दारकेमरी मुनिश्री मिश्रीगवजी महाराज सोजन मिटी पधारे तो मेरे मन में दर्शन करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई और मैं सोजन पहुँचा। व्याख्यानश्रवण आदि के पञ्चात् मध्याह्न में महाराजश्री की सेवा में बैठा था। स्थानीय व्यावक्त्रमुदाय भी उपस्थित था। उस समय अग्रान्य चर्चाओं के बीच सोजन वालों की ओर से यह चर्चा आई कि गुरुदेव की दीक्षा के पञ्चान वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। इस शुभ अवसर एक अभिनन्दनग्रन्थ अर्पित किया जाय तो हम लोग अच्छे ढंग से उच्च स्तर पर समागोष्ठ का आयोजन करें। आविर यह तय हुआ कि इस विचार का क्रियान्वित करने के सम्बन्ध में जोधपुर में मुख्य-मुख्य व्यावक्त्रों की एक बैठक आयोजित की जाय।

विचार की यह उद्देश्य शान्त नहीं हुई। साजन-मध की भावना गहरी और स्थायी थी। जोधपुर में मीटिंग का आयोजन किया गया। उसमें अभिनन्दनग्रन्थ अर्पित करने का निश्चय कर लिया गया और तदर्थ अभिनन्दनग्रन्थ-प्रकाशन समिति का भी निर्माण हो गया। जा सञ्जन उसमें सम्मिलित हुए थे उन्होंने अपना आत्मीय समझ कर मेरी अनुपस्थिति में ही मुझे उसका अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। मैं इसमें नहीं कर सकता।

जोधपुर में मीटिंग करने का मुझसे मिलने ही दिया था और वह इस कारण कि वहाँ व्यावक्त्र की अपेक्षा प्रस्तुत कार्य की सम्पन्न करने के लिए विनोद योग्य व्यक्ति मिलना संभव था। वहाँ श्री उन्दरचन्द्रजी मन्नेका जीने सुयोग्य एवं गुरुदेव के परम भक्त सञ्जन हैं। सम्पन्न और प्रतिभाशाली हैं। उनकी देख-रेख में कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो सकेगा।

लौकिक हुआ यह कि अध्यापक पद पर मुझे आनीन कर देने के कारण तथा व्यावक्त्र निवासि प० श्री गोमाचन्द्रजी भारिल्ल की प्रधान सम्पादक के रूप में नियुक्ति होने के कारण समिति का प्रधान कार्यक्षेत्र व्यावक्त्र हो गया। उसने मेरे ऊपर जो उत्तरदायित्व आ पड़ा उसे मैंने अपनी योग्यता और अनुराग से अनुसार निम्नानुसार प्रत्यक्ष किया है। इसमें व्यावक्त्र निवासि उत्साही और कष्ट कार्यकर्त्ता श्री चिम्मनसिंहजी लोडा का मुझे पूर्ण सहयोग मिला है। उनके बहुमूल्य सहयोग के बिना इस गुरुतर कार्य को सम्भालना मेरे लिए अत्यन्त कठिन होता।

इतने विशाल ग्रन्थ का इतने अल्प समय में तैयार हो जाना पण्डित भारिल्लजी के ही पुनर्पार्थ का फल है। इसके लिए उन्होंने जो प्रयत्न किया है, वास्तव में वह अविस्मरणीय है।

समिति की ओर से मैं उन सब सहयोगियों को शतशः धन्यवाद अर्पित करता हूँ जिन्होंने ग्रन्थ के लिए द्रव्य, सामग्री तथा अन्य प्रकार का सहयोग प्रदान किया है।

अन्त में सोजन मध का आभार मानना मेरा परम कर्त्तव्य है जिसकी भावनास्वरूप यह श्रवणतन्त्र अस्मित्व में आया और जिसने उसका समर्पण समागोष्ठ विशाल पैमाने पर माना तय किया है। मुनिश्री के दीक्षास्थान पर ही दीक्षा स्वर्णजयन्ती का आयोजन सर्वथा उपयुक्त है।

व्यावक्त्र

वैशाखी पूर्णिमा

वि० न० २०२५

—पुखराज सिनौदिया

अध्यक्ष

मन्दारकेमरी अभिनन्दनग्रन्थप्रकाशन समिति

समपण



गुरुदेव ।

समपण और केवल समपण ही जिनके जीवन का व्रत है
उासे ग्रहण करने का अनुरोध करना जति साहस ही है। किंतु
इस समपण का अर्थ है श्रद्धा का पकापन भक्ति का अभियोजन
और प्रमोदभावना का व्यक्तीकरण। अतएव यह कृति आपका
पावन कर कमजोरी से समर्पित है।



सरुधरकेसरी-अभिनदन ग्रंथ प्रकाशन समिति

Presents by me the Abhimanyu
Grath to Marudhar - Kesari
Thunshin, Munnalga on
30/4/68 at Shogal City

V. V. Gm
Vice President of Andhra



कतिपय शुभ सन्देश

राष्ट्रपति सचिवालय

राष्ट्रपति भवन

नई दिल्ली-५

पत्रावली सं १८ (२)-मच/६८

करारी ७ १९६८

माघ १८ १८८६ (गर्ग)

प्रिय महोदय

राष्ट्रपति जी के नाम आपका पत्र मध्याह्न १० बजे/६८ मिला। १२ जनवरी १९६८ से यह पत्रावली प्रगल्भता के बिना सुनिश्चित मिश्रीमन्त्रों महाराजों का समितित्व प्रत्यक्ष समिति प्रदान की जायेगी बिना जा रहा है।

सुनिश्चित कि आपका पत्र राष्ट्रपति जी अपना अभिप्रायों भजत है।

भवनीय

प्रेमराज गुप्त

राष्ट्रपति के अवर निजी सचिव



उप राष्ट्रपति भारत

नई दिल्ली-१

निबिड-संजोद जनवरी १७ १९६८

प्रिय महोदय

आपका पत्र मिला १२ जनवरी १९६८ का प्राप्त हुआ था यथा।

मुझे यह जानकारी प्रदान की है कि आप का मन्त्रालय जी का एक अधिकतम-प्रत्यक्ष आगामी माग अग्रिम में भेज करे जा रहा है।

मैं अभिप्रेत प्रत्यक्ष सचिवालय के लिए अपना हार्दिक अभिवादन भजता हूँ।

आपका

(बो० वि० गिरि)

क्रमांक ६२७६,

२६ नवम्बर १९६७

राज्यपाल महोदय की उस प्रशंसा के लिए शुभ कामनाएं प्रेषित की जाती हैं।
राज्यपाल महोदय यादगार हैं कि मुनिश्री मिश्रीमलजी जैसे तपस्वी सन्त के मानिन्द्य
में जनमाधारण में नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था और भी दृढ़ होगी।

भारदा

सचिव, राज्यपाल राजस्थान

यह अतीव प्रशंसनीय बात है कि स्थानस्थानी समाज मन्दिर के एक महान् उन्नति-
पुञ्ज कविमन्त्राद् व्याख्यानवाचस्पति एवं समाजसुधारक मन्त्ररकेमरी प० रत्न
१००८ मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज नाट्य की ५० वीं दीक्षास्वर्णजयन्ती पर
अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहा है।

श्री मन्त्ररकेमरीजी की समाजमण्डल के प्रति की गई सेवाएँ अत्यन्त ही मूल्यवान् हैं।
आपकी स्पष्टवादिता के कारण जन-मानस में ही आपके प्रति आकर्षण एवं श्रद्धा-
वान् रहा है। ऐसे महान् मन्त्र का अभिनन्दन करते हुए हमें ज़रूर हर्ष व उन्माद
होना स्वाभाविक है।

यह अभिनन्दनग्रन्थ श्री मन्त्ररकेमरीजी की समाजसेवाओं के प्रति एक श्रद्धा का सुमन
तथा समाजोपयोगी नामणीयुक्त प्रकाशन हो, यही शुभकामना है। ग्रन्थ में नरकजिन
सामग्री में आध्यात्मिकता का प्रकाशन हो जिसमें आज भौतिकवादी युग का मानस
लाभान्वित हो सके। यही एक महान् सन्त के प्रति हमारी गहरी और रचनात्मक
श्रद्धाजलि होगी।

चांदमल लोढा

न्यायाधीश, राजस्थान उच्चन्यायालय,
जोधपुर (राजस्थान)

जोधपुर

दिनांक २४-३-६८

डा० गोपीनाथ शर्मा, एम० ए०, पीएच० डी०, राजस्थान वि० प्रि०, जयपुर

आप अभिनन्दन ग्रन्थ निकालने जा रहे हैं। यह पुनीत वाय हमारे राजस्थान के शोचकायं
को आगे बढाने में बड़ा सहायक होगा ऐसी मेरी मान्यता है।

प्रो० भागचन्द जैन, एम० ए०, शास्त्री, काव्यतीर्थ, इटारसी

हमारी शुभ कामनाएँ आपके साथ है। हम आपके इन मंगलमय पवित्र कार्य की
सफलता चाहते हैं।

श्री गोवर्धन शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, अहमदाबाद,

महाराजश्री मिश्रीमलजी के सम्मान में आप एक अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशित करने जा
रहे हैं इसकी सूचना मिली। बड़ा ही नेक काम है। आपकी योजना अति उत्तम है।

डा. ज्योतिप्रसादजी जन एम० ए० एल एल० बी० पी एच० डी० सक्षम

महोदयजी मुनिजी मिथीमन्त्री म० के अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। यह ग्रन्थ नानवर अत्यन्त प्रगतिशील है। विविध सत्ता और शक्ति का इस प्रकार अभिनन्दन करके हम उनका प्रति कुछ कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। साथ ही इस ग्रन्थ से हमें स्वयं लाभित होत हैं—एक मुन्दर साहित्यिक महत्त्व प्रकाश में आ जाता है।

श्री रामचन्द्रजी सोमजी गणपुर ।

मुनिजी महोदयजी महोदयजी का ग्रन्थ बहुत ही गुणवत्तापूर्ण है। ग्रन्थ में हमें नाना प्रकार के विचार मिलते हैं। यह ग्रन्थ प्रगतिशील है। सामग्री भी इसमें बड़ी ही अच्छी है। ग्रन्थ है यह अभिनन्दन ग्रन्थ भी ऐसा ही बन रहा है।

डा. रामरामजी जन एम० ए० पी एच० डी० ज्ञान (विहार)

ग्रन्थ प्रकाश योजना शुभे सुखितर होगी। हमारी मान्यता के लिये धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

मुनिजी महोदयजी महोदयजी महोदय

महोदयजी का अभिनन्दन ग्रन्थ बहुत ही गुणवत्तापूर्ण है। ग्रन्थ में हमें नाना प्रकार के विचार मिलते हैं। यह ग्रन्थ प्रगतिशील है। सामग्री भी इसमें बड़ी ही अच्छी है। ग्रन्थ है यह अभिनन्दन ग्रन्थ भी ऐसा ही बन रहा है।

श्रीमती लालजी विजय एम० ए

महोदयजी मुनिजी मिथीमन्त्री महोदयजी का ग्रन्थ अभिनन्दन ग्रन्थों में एक है। यह ग्रन्थ नानवर अत्यन्त प्रगतिशील है। विविध सत्ता और शक्ति का इस प्रकार अभिनन्दन करके हम उनका प्रति कुछ कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। साथ ही इस ग्रन्थ से हमें स्वयं लाभित होत हैं—एक मुन्दर साहित्यिक महत्त्व प्रकाश में आ जाता है।

महोदय महोदयजी महोदय

पी० ए०, एल एल० बी०

पी० एम० (राज)

एच० एम० आर० आई०

महोदयजी महोदयजी महोदय

ता० २१०६३

महोदय महोदयजी महोदय

मुनिजी महोदयजी महोदयजी महोदयजी का ग्रन्थ अभिनन्दन ग्रन्थों में एक है। यह ग्रन्थ नानवर अत्यन्त प्रगतिशील है। विविध सत्ता और शक्ति का इस प्रकार अभिनन्दन करके हम उनका प्रति कुछ कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। साथ ही इस ग्रन्थ से हमें स्वयं लाभित होत हैं—एक मुन्दर साहित्यिक महत्त्व प्रकाश में आ जाता है।

विषयानुक्रम

प्रथम खण्ड पृ० १—१६८

जीवन-परिचय, जन्मगण, श्रद्धानिवेदन, परम्परा

क्रमांक	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१	मन्धरकैमरी-जीवनपरिचय	श्रीभाचन्द्र भार्गव	१
२	मन्धरकैमरी और उनकी मन्त्रेवा	चिम्मनमिह नोटा	२६
३	मन्धरकैमरी की मन्त्रमणि	मुनि श्रीरूपचन्द्र 'रज्ज'	३२
४	मन्धरकैमरी की साधना	डा० रत्नेन्द्र नानाज	३४
५	मन्धरकैमरी के चानुमान्मयों की मूर्त्तियाँ	मुनि श्रीरूपचन्द्र 'रज्ज'	४३
६	मन्धरकैमरी के आज्ञानुवर्त्ती मन्त्र-मनिया	— —	५८
७	जन्मगण, श्रद्धानिवेदन, धर्मनन्दन	— — —	५५
८	श्री धर्मदानजी महाराज	मुनिश्री रूपचन्द्र 'रज्ज'	१४०
९	धन्नाजी महाराज	श्री मुकुन्द मुनि	१६६
१०	श्रीभूधरजी महाराज	श्री रज्ज मुनि	१६६
११	वीरजानन की वरिष्ठ विभूति-आचार्य रघुनाथजी	"	१७१
१२	श्री बुधमठजी महाराज	ज्ञान भार्गव	१७६
१३	लोकशास्त्र-व्यक्तित्व और विचार	ड० लालचन्द्र नाहटा 'तर्क'	१७६

द्वितीय खण्ड . पृ० १—३५५

धर्म, दर्शन, अध्यात्म

१	धर्मतत्त्व का विज्ञापन	प० चैतन्यदास जैन	१
२	लोककान्त	म्य० मुनिश्री श्रीमन्मजी	१४
३	जैनदर्शन का व्यावहारिक पक्ष-अनेकान्तवाद	प्रो० नागचन्द्र 'भारोडु'	२१
४	जैनदर्शन की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि	प्रो० निहालचन्द्र जैन	३०
५	जैनदर्शन और विज्ञान	गृहविर्गमिह मुष्टिया	३६
६	जैनदर्शन का मूल्याधार	डा० कृन्दनलाल जैन	४०
७	जैनदर्शन की द्रव्यव्यवस्था	प० जुगलकिशोर मुत्तार	४३
८	सम्प्रदाय या धर्म ?	श्रीनाथमल जैन	४५
९	अन्तर्यामि में जट-चेतनविज्ञान	लक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज'	६६
१०	योगस्वरूप-समीक्षा	रिसवराज कर्णाड	५४
११	जैनदर्शन में मानस-विचार	राजकुमार जैन	७०

१२	जो वमासदा त वो मू मत्र ह्मासदा	गिरवारदा	७३
१३	जो नन म र्मा	धीमान मुनि	७४
१४	जनागमा म अत्र प्रवचनमाना	मुनिधी कर्तृमासा	७७
१५	ननिक उरमान गव पदमासन	श्री० अत्रत मुनिमा	१ ७
१६	भावाभावा— एव भावभावा	मुनि श्री मुलावचन निमोही	११
१७	पदातिपाग	मुनि श्री नयमल (निवापसचिप)	१ ०
१८	तावा और गत्र	मुनिधी निधीमल मधुर	१३६
१९	गन गामा म वनमनिधिया	कर्तृमासा सोडा	१४२
२०	जनु यमात्रिमान	प० मिलापचत्र कटारिमा	१७८
२१	जनागमा म ग ह्माचार	प जयकमार	१८६
२२	जाना व आचार	प जयप्रसाद	१९४
२३	जानाररहम्य	होरावात गारो	१९८
२४	राग त नाम दहा	हरिभाज उपाध्याय	२ ३
२५	जानगिदा त म कारण वायव्ययस्या	अजितरमार गारो	२०५
२६	जनागम म प्रमुखा नि चय और व्यवहार	प वशीपटन	२१७
२७	जानमहृति का प्राणनरय मयमया	श्री गुरेग मुनि	२४६
२८	गव का सत्र रनय	साधवी उमराव बंदर अचना	२५४
२९	ताग तागमपरमारा गीर महातरयो मठावीर	मनि गुणोत्तरमार	२५९
	ममागिगण	गुरेग मनि	२६४
३०	नैनान म नीतिगाम्य	धतिगीत गमा	२७२
३१	जनागमा म ताग प्रक प्रगम	मनि धीपदममल	२७६
३२	तागमो म वलतिगम	धी देवेन्द्रमनि	२८
३३	ममल १३ का जनागम का न	वरवारीवाल कोटिया	२९
३४	मनिमा और मागिया त अमुन अनुभव	धी तोनाग मुनि कमुद	३ ४
३५	जा मनागमावया	श्री० जय तोप्रसाद जन	३ ८
३६	ममपरमारा और गजनन	श्री० योगप्रसाद पधोली	३१७
३७	गीनावन हमाद	राज नारायणसिंह ममुदा	३२८
३८	छद्मगम्य	मुनिमल भिन्न	३३२
३९	निर्गमा म गावाहार	मनेन्द्र राजा पद	३ ८
४०	निर्गम और व्यवहारम	प० कृष्णनारायण	३४३
४१	धारमय का विमनिमा	डा कर्तागचत्र जन	३४९

तृतीय खण्ड पृ० १—१७९

संस्कृति, मला, इतिहास

१	प्रमगात्रनि मया जनागम	डा देवेन्द्रमार	१
२	जो म इति मगात्र वो पांच पमुदिया	पारागमन प्रमुन	६

३	श्रमण मन्दति श्रीर लोचनत्र	गानावतार शर्मा	१५
४	प्राग् ऐतिहासिक भारतीय मन्दति श्रीर वैदिक मन्दति का समन्वय	रिषभदास राणा	२८
५	श्रमणमन्दति का केन्द्र यावन्ती	डा० हरीन्द्रभूषण जैन	३८
६	भारतीय मन्दति की वैज्ञानिक विचारपद्धति	डा० मंगलदेव शास्त्री	४०
७	पाणि वाट्मय में निगूठ और निगूठ नानपुत	मुनि श्रीनगराज	४८
८	द्वितीय अस्त्रियुग के तीन ज्ञानिकारी मन्त्र	डा० ज्योतिप्रसाद जैन	६६
९	द्विजान में जैन साहित्य का स्थान	रत्न० जयमंगल जैन	७७
१०	मुगलसम्राट् और जैनधर्म	द्विजप्रसाद दास जैन	८३
११	मालवभूमि के दो आचार्य कालीदास और वाल्मीकि	डा० सूर्यनारायण व्यास	८८
१२	आचार्य मोनदव	प० कर्नाप्रचन्द्र शास्त्री	१०४
१३	जैन धर्म प्रचार्य में मुनिजान राजस्थानी भाषा में पद्धति, पञ्चानि, पत्र	अगरचंद नाहटा	११८
१४	गोवाचर की मध्यकालीन साहित्यिकता कायना	डा० राजाराम जैन	१२७
१५	कुवलयमाला में वर्णित ७२ कथा	प्रेमसुमन जैन	१३६
१६	चिन्ता में अस्मिन्मन्त्रवाद	प्रो० परमानन्द चौधरी	१४४
१७	धार्मिकता श्री गणेशायना में समन्वय	दयाचन्द्र जैन	१४६
१८	परिपक्वता की भूमिकाएँ	डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री	१५६
१९	अस्मिन्मन्त्रवाद	डा० मुनीलचन्द्र दिवाकर	१६७
२०	दानवीर रामानाथ-परिवार	रामवल्लभ सोमानी	१७३

चतुर्थ खण्ड पृ० १८१-४७०

साहित्य

१	मज्झिमनिकाय में उपलब्ध जैन शब्दावली एक उमका तुलनात्मक विवेचन	डा० परमेश्वरीदास जैन	१८१
२	प्राकृत कथामाहित्य और उमकी विशेषताएँ	डा० नेमोचन्द्र शास्त्री	१९१
३	जैन कथामाहित्य और उमका श्रेय	गणेशप्रसाद जैन	२०६
४	जैन कथामाहित्य — एक अनुवृष्टि	प्रो० श्रीचन्द्र जैन	२१०
५	जैन सत्रमाहित्य	अगरचंद नाहटा	२२३
६	जैनमाहित्य में नामकथा	प० गोदुनचन्द्र जैन	२३७
७	जन्म में जिनमस्तिमाहित्य	प्रो० गुप्ताय जोशी	२४४
८	मध्यकालीन जैन हिन्दी काव्य में ज्ञाना भक्ति	डा० प्रेमसागर जैन	२५४
९	आयुर्वेद की जैनाचार्या की देन	राजकुमार गोयल	२७५
१०	चम्पू काव्य	के० भुजवली शास्त्री	२७८
११	जन्म में साहित्य में जैन काव्य की लौकिक परम्परा	सु० रामचन्द्र	२८२
१२	भारतीय गौरवत्रय नरत्नवैभव और महान्वि रत्नाकर	वर्द्धमान पी० शास्त्री	२९२
१३	ज्ञान आयुर्वेदिक साहित्य	मुनि कान्तिमागर	३०१

१४ आचार्य माणिक्यनरि जीर उनका परी नाम	गोपीनाथ अमर	३१८
१५ राजस्थानी माणिक्य व विविध रूप और जन काव्य	डा. पुरुषोत्तमदास मनारिया	३३३
१६ राजस्थान का लोक गीत और उनका गायन	डा. हरीश	३४७
१७ कवि विनयकृत मध्यमपुरी चरित्र	ईश्वरानन्द शर्मा	३५२
१८ धर्ममाधुर्य का जन्म	पन्नालाल साहिवाचार्य	३६२
१९ राजस्थान का सम्बन्धमहाकवि एवं विरचण प्रतिभा	विनयसागर	३७२
२० धर्ममाधुर्यपरचयिता महाकवि हरिचन्द्र	डा० कृष्णा मनार्नी	३८६
२१ गोवाचरित का जन्म	परमानन्द शास्त्री	४०२
२२ रम्यता जनक और नाटिका	देव कोशरी	४११
२३ सन्तकवि राधकान्त और उनकी रचनाएँ	भुक्ति जी लक्ष्मीबहादुर	४२
२४ अन्तर्गत	अनु० अन्तराल नाटिका	४२८

पञ्चम खण्ड पृ० १—११८

जनपदीय संस्कृति

१ लोक और सामान्य	अमरदेव शर्मा	१
२ लोक कविता	प्रो. चेतनप्रकाश पाटनी	८
३ हमारी जन्मभूमि राजस्थान	डा. रामानन्द निबारी	१२
४ लोकसाहित्य	चम्पालाल गुप्त	१८
५ लोकगीत और धर्म का स्वभाव	डा. रामप्रसाद बाघीच	२१
६ काव्य में लोकतत्त्वों का प्रतिबिम्ब	डा० सत्येन्द्र	२५
७ लोकगीतों का साधुनिष्ठ कला पर प्रभाव	ओमप्रकाश ओगी	३१
८ सांस्कृतिक गम का प्रतीक उत्पन्न	कमला पद्मोत्तरी	३५
९ काव्य की प्रथम की जन परंपरा	डा. कल्याणलाल सहन	४०
१० धर्मस्थानों का जन साहित्य	महेन्द्र भागवत	४४
११ राजस्थानी चित्रकला में लोकतत्त्व	डा. जयसिंह गौरज	५१
१२ राजस्थान का विज्ञान गाथा है	डा० मनोहर शर्मा	५४
१३ राजस्थान की महान कला (मादक)	हमारी स्वदेशता	६
१४ राजस्थान का साहित्य	विद्या कान्त	६५
१५ राजस्थान का साहित्यिक गम	सागरदास जन	७०
१६ राजस्थान का जनसाहित्य	डा. रामप्रसाद शर्मा	७४
१७ राजस्थानी साहित्यिक गम का प्रतिबिम्ब	डा० साधुलाल पाण्डे	८०
१८ राजस्थानी साहित्य का जन कला उत्पन्न	डा० साधुलाल भट्ट	८६
१९ विज्ञान का जन जीवन और साहित्य	रामनाथदास उपाध्याय	१०३
२० जनसाहित्य का जन जीवन और साहित्य	मोहनलाल पुरोहित	१०८
२१ जनसाहित्य का जन जीवन और साहित्य	रामनाथ गुप्त	११३

षष्ठ खण्ड पृष्ठ १-१००

अंग्रेजी भाषा-निबन्ध

1	Antiquity of Jaina Culture	Dr. Mahadevi Varma	1
2	The Concept of Arāhanta (Arhat) in Jainism	Dr. K. C. S.	10
3	Jainism at a Glance	—Mr. T. S.	15
4	Sramanic Foundations of Ancient Egypt	—Sri R. C.	20
5	The Jain Conception of Ahimsa	—G. L.	21
6	Reality and Relativity of Space and Time in Jain Metaphysics and Modern Physics— <i>Muni Sri Mahantendra Kumar</i>	—Dr. P.	37
7	The Nature of Reality in Jainism and Buddhist Philosophy	—Dr. P.	46
8	Jaina Ethics—Its Ideal and Viewpoint	—S. C. J.	60
9	Man-made God	K. P. J.	65
10	Jain Satirists in Kannada Literature	—Dr. B. S. K.	67
11	Soul in Jainism	—K. C. J.	71
12	The Buddhist Concept of Vinnana	—Prof. P. C.	76
13	The Place of Yajña in Ancient Demonology	—R. S. M.	81
14	Banavasi and Jainism	—B. R. G.	90
15	The Hunas in Ancient Indian Literature	—K. L. A.	95



प्रधान संपादक
श्री गोपाल इ. भारति



प्रधान व्यवस्थापक
श्री चिन्मनसिंह साने

प्रकाशनसमिति के पदाधिकारी



अध्यक्ष

मेठ श्री पुष्पराजजी सीमोदिया

ब्यावर

अथ महायज्ञ-परिचय पृ० ४ पर देखिये ।

कोषाध्यक्ष

मेठ श्री इन्दरमलजी सकलेचा



उपाध्यक्ष
 सठ श्री बालचन्द्रजी चौधरी
 सोजत
 अथ सहायक परिचय पृ ३ पर देखिये ।



उपाध्यक्ष
 सठ श्री बालचन्द्रजी चौधरी
 सारणी
 अथ सहायक परिचय पृ ४ पर देखिये ।



મંત્રી
શ્રી સમ્પતરાજજી વરડિયા
જોધપુર



વિસ્તમત્રી
શ્રી મદનરાજજી વાઠિયા
મોજત



सहस्रप्री
श्री मदनराजजी नाट्टा
सोजत

प्रकाशन सहयोगी
श्री गार्तलात सेठ





परामर्शदाता

श्री प्रेमराजजी कामदार

चावण्डिया

अर्थ सहायक-परिचय पृ० ४ पर देखिये ।



परामर्शदाता

श्री पारसमलजी धोका सोजत

सोजत सीटी

अर्थ सहायक-परिचय पृ० ४ पर देखिये ।

अर्थसचय मे सहयोग देने वाले सज्जन



श्री मोहनलालजी राठोड



श्री गुणराजजी बोटारी



श्री जंबरीलालजी धारा

वायवर्त्ता



श्री नाट्टगमजी कामदार



प्रथम खण्ड



जीवन परिचय, सस्मरण
श्रद्धानिवेदन, परम्परा

मरुधरकेसरी-जीवनपरिचय

शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ



त जातो येन ज्ञातेन याति क्षणं समन्ततिम् ।
परिवर्तिनि सत्तारे मते को यान् जायते ॥

जो निरन्तर गतिगोत्र है—जिसमें क्षण भर के लिए भी स्थिरता नहीं जिसमें परिवर्तन की अजस्रगामिनी धारा प्रवाहित हो रही है वही महात्मा है ।

इस परिवर्तनशील समाज में समस्य प्रसार के अन्तर्गत जीवनधारी अष्टिगोचर होने हैं । वे इस घरातन पर प्राप्त अपना जीवनशैली पूरी करने और अन्य में समाज के लिए आर्थिक मूल्य देने हैं । अधुना ज्ञान इस क्षण विषय में ही प्रतिदिन का ज्ञान मानना के जीवन का जीवन है । फिर हृषीकेश द्वारा अज्ञान जगत तो बहुत विचाल है । इससे अनिश्चितता ज्ञान अज्ञान मनुष्येतर प्राणिज की गणना करना असम्भव है । ऐसी स्थिति में कौन जान कितने प्राणी प्रविष्टि जन्म देने और महात्मा के अन्तर्गत जाते हैं ? कौन उनका नाम देता है ? कौन उन्हें जानना पहचानता है ?

किन्तु मानवतर प्राणिजों की बात जान शक्ति । उनमें मनुष्य जहाँ जागृत चेतना नहीं होता—उन्हें विविध विवेकबुद्धि उत्पन्न नहीं है । वे नहीं जानते कि जीवन का क्या मूल्य है ? क्या उपयोगिता है ? किम महान् उद्देश्य की पूर्ति में जीवन की साधकता है ?

मनुष्य न केवल महान् प्रश्नों पर विचार दिया है । उस विचार के विषय में यद्यपि एकदृष्टि नहीं है और रवि एवं सूर्य की भिन्नता के कारण अज्ञान भी है । सत्यता तथापि अस्पष्ट-साधना में मानव जीवन की सफरता है, इस विचार में मनोरेखा को व्यक्त करता है ।

मगर अन्तर्गतासाधना क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर देने के लिए परस्पर विरोधी है । एक महत्वाकांक्षी समग्र ज्ञान पर अपनी विषय वस्तुता के द्वारा कर ही ज्ञान को सत्य समझता है । दूसरा अथवा विपुल धनार्थी सचित कर और धनकुहेरे के द्वारा कर अपने प्रश्नार्थ की तुष्टि में जीवन की कुत्रायता अनुभव करता है । तबतः किसी अथ प्रश्न की भौतिक समुद्धि प्राप्त करने में जीवन की साधकता मानता है ।

दुई दशक मनुष्य इस भिन्नता का मूल स्वर के प्रति विविध प्रकार की धारणाओं में निहित है । बहुत ज्ञान है जो ज्ञान स्वर की वर्तमान जीवन का परिधि में ही घिरा समझने हैं । वे मानते हैं कि इस जीवित तब ही हमारा अस्तित्व है न अन्य पूर्व या न आगे रक्षा । वे आत्मा के अन्तर्गत अथवा ज्ञान अस्तित्व पर विश्वास में करते । ऐम साग ऐतिहासिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले उत्सव का ही परम और परम माँगे यह समाधि है ।

कहा जायित ऐत गो हैं और उनकी सत्त्वा नगण्य नहीं है जो मित्राण रूप में आत्मनस्त्व को अजर प्रमर मानते हैं मगर भौतिक समुद्धि के अन्तर्गत सामना उनकी भावना का स्वाद दता है । जीवन-यवहार में वे उम विम्वून



कर देते हैं और ऐहिक सम्पत्ति को ही जन्मुदयमाधना समझ लेते हैं। इस प्रकार प्रथम और द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियों में व्यवहारतः कोई विरोध अन्तर नहीं रह जाता।

तीसरी श्रेणी में ऐसे व्यक्तियों का समावेश होता है जो आत्मा के जगत्त्व की आत्मा में प्रेरित और प्रवृत्त होते हैं। उनके लिए वर्तमान जीवन आत्मा की मुदीर्घ विजय-यात्रा का प्रथम मात्र है। वे जन्म और जन्मगत में वर्तमान को विच्छिन्न करके नहीं देखते। अतएव जिस जन्मुदय का सम्पूर्ण केवल वर्तमान में है, — ऐसी जन्म-सम्पत्ति, मत्ता तथा अन्य भौतिक विभूतियों का उनके मन में कोई महत्त्व नहीं होता। वे आत्मा में निहित विनाश-बैभव को ही अपना मानते और उसी के विकास की साधना में जीवन की सफलता समझते हैं।

जा जन्मुदय इसी जीवन तक सीमित है और इस जीवन में भी बीच में ही विनाश हो जाता है उसने आत्मा का स्यायी श्रेयम् मित्र नहीं हो सकता। वह प्रायः आत्मा के पतन का ही कारण बनता है। अन्तर्गत जन्मुदय है आत्मिक गुणों का विकास। आत्मा में पारमार्थिक गुणों की सत्ता है — ईश्वरत्वप्राप्ति की क्षमता है। उन्ने प्राप्त करने के लिए जावन को समयमय, नरोनिष्ठ और नियमपरायण बनाने की आवश्यकता है। अपने 'स्व' को इतना विनाश बनाना पटना है कि जगत् के समस्त चानर प्राणियों का उसमें समावेश हो सके। परोपकार को आत्मोपकार अनुभव करने की उदार दृष्टि का विकास करना होता है। शास्त्रकार इस स्थिति की ओर नरने करने हैं—

अत्तमम सन्नेज्ज छपि दाए ।

पट् निरागो में वर्गीकृत विज्व के समस्त प्राणियों को माधक जन्ममदृश माने ।

प्राणिमात्र के प्रति आत्मसाधना उत्पन्न होने पर मनुष्य के जीवन के समस्त मानदण्ड बदल जाते हैं। वह शरीर में समाहित होता हुआ भी अपने हृदय और मस्तिष्क में विश्वव्यापी बन जाता है। उसकी भावना और विचारणा समस्त सजीवों की भावना को पार करके असीम हो जाती है। इसी स्थिति में माधुना का ज्ञान होता है। वस्तुतः यही मानवजीवन की सर्वोत्कृष्ट मायकता है।

यहां इसी श्रेणी के एक महामानव की जीवनी के कतिपय चित्र अंकित किए जा रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन को सर्वभूतहिताय अर्पित किया है। उनकी मानसिक, वाचिक और साधक शक्ति जगत् के शाश्वत श्रेयम् की साधना में लग्न हैं। उनका नास्तिक 'अहम्' बिखर कर व्यापक बन गया है।

मुनिश्री मिश्रीमलनी महाराज का व्यक्तित्व वास्तव में अद्भुत है। उनके हृदय में नवनीत की जोमल्ला है तो मकल में वज्र की कठोरता।

वज्रादपि कठोराणि, मूढानि कुमुमादपि ।

लोकोत्तराणां चेतानि, को हि विजानुमर्हति ॥

—लोकोत्तर पुरुषों के चित्त की गहनता को कौन समझ सकता है? वह वज्र में अधिक कठोर तो फूटने भी अधिक मृदु होता है।

हमारे चरित्रनायक 'कडक मिश्री' के नाम में प्रसिद्ध है। जिसने सर्वप्रथम यह उपमजा प्रदान की उसकी सम्पूर्ण निम्नलेख्य सहायता के योग्य है।

मुनिश्री हमने के प्रति अतीव सदाय होने हुए भी अपने प्रति अपने आचार-विचार और शरीर के प्रति अग्रन्त उठते हैं। जिस महामार्ग का उन्होंने अवलम्बन किया है उसने तिल भर डिये की बात नहीं मोचते। अपने शरीर पर क्या किए बिना उन्होंने 'चरैवेति चरैवेति'—चलते रहो, चलते रहो, इस प्रेरणा को जीवन में जनाया है। इस अपेक्षा वे मन्त्रे 'परिब्राजक' हैं। वृद्धावस्था में और रूग्णावस्था में भी उनके मन विहा का क्रम भा नहीं होता। पञ्चविध जनों को प्रसाद करना, जन-मानस में नीति, धर्म और अध्यात्म के बीज बोना, धर्मसाधना को उद्दीपन

करना मयम और तप की प्रेरणा देना भारत की पुरातन आध्यात्मिक समृद्धि को संरक्षण प्रदायक अपने आधार और विचार से दत्तचित रहना एवं श्रद्धापूर्वक गति की परम्परा का अनुष्ठा करने के अन्तर्गत करना ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया है।

मुनिगण के जीवाम अनेकानि सत्व विद्यमान हैं जिन्हें अपाकर पाठन अपन जीवाम का सफा एवं सुफल बना सकते हैं। उमम मूत्र प्ररणाण ग्रण की जा सकती है। उनही जीवाम एव गसा माचा है जिमम अपन जीवन का हान करवाई भी क्षति है। मवता है।

उनके जीवन में पचहत्तर और मनीजीवन का पचास सत्रह पूरा होने जा रहे हैं। इस लीकचर में उन्होंने धर्म और मरणा काल को कुछ किया है उसका मृत्यान्त करना मरने वाली है फिर इस मरणा काल में तो मरणा होनी है। यहाँ मनीजी के जीवन की एक क्षण ही जीवन की जाणगी।

ज म और नशव

भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में राजस्थान प्रांत का जो मारवाण भाग है उसकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। स्वतन्त्रतामनानी राष्ट्रीय धोरणों के अन्तर्गत भव्यमणि मारा और तिहास प्रसिद्ध धोरण अथवा सिन्धु जल प्रणालियों की जलसंधि होने का गौरव इसी मरवाण क्षेत्र को प्राप्त हुआ है। इस प्रदेश के पूर्वी पश्चिमी तथा उत्तरी भाग रेगिस्तान से घाते हैं ता दक्षिणी भाग में मारवाण पवनपात के श्रीक्षण में छत्रपति नृणा तथा जवाह जमा सिरताए भी बनी बनी उत्तरी वरणा प्रान्त करती हैं। यही कारण है कि इस क्षेत्र में कुछ भाग में जो मारवाण और खरीफ की फसलें होती हैं। मारवाण भूमि में ध्वज बाजरा उबार मूंग मोर के कुछ जालि खरीफ का फसल प्रचल माना में उपाय होती है।

प्रकृति की विविध गतिशीलता के कारण एवं जलवायु के अनुपम तथा स्वादिष्ट फल-फाँसों के कारण बरसाती का क्षेत्र उत्कृष्ट और प्रसिद्ध है।

प्रारंभिक कार्य में हम इन का प्रशासन क्षमता जगति के राष्ट्रीय के अक्षिणार में खिरवाल तक रहा ।

श्री मन्मथ व लक्ष्मी साग में पाली नामक विहाल नगर है जो आज विविध पाषाणि व वन्य होने के कारण समस्त भारत में प्रसिद्ध है। यह नगर का भूतकाल आर्यक गौरवपूर्ण नहीं है। इस गौरव का प्रकाश करने के लिए एक ही मध्य उपोक्त है।

कहा जाता है यहाँ कभी कभी एब 'गल' पागेवान आहूणा न घर थे। वे प्रायः व यात्रिन 'यवसाय' करते थे और इस कारण खूब सम्पन्न थे। कोई सामान्य स्थिति का 'यतिन' पाली में आहार निवास करता तो उस प्रत्येक घर में एक 'ग' रामसा (हयबा) और ग विभाग करने के लिए एक गड्ड 'मैंट' के रूप में प्रशान की जाता था। इस प्रकार समागत यतिन सकाल स्याद्विपत्ति होकर नगर वा भोवर बगान 'उगता' था।

आ गांधीवा जीर समाजवा वा ढाल पीठ गाना है। कानना व वल पर समाजवा भी प्रतिष्ठा करन वा प्रयास किया जा र। है मगर निम्नलिखित जायव वषम्य को वडि हानि लिखि री है। मितु पाथी नगर वा व समाजवा तानन के वल पर नो घमरित बन व क आधार पर प्रतिष्ठित था। जनन और समाजवा का स्थापना प्रजा व जीवन म राष्ट्रधम भी कानना वा प्रतिष्ठा के बिना नही होनी।

घनवत् के साथ ही गाथा का वद्विबन्ध भी प्रसिद्ध हो चका था । मारवाडी वृद्धावत पात्री राजवायन आज भी प्रत्येक कोन-कोनी में प्रश्रयान है ।

इमा पाणी नगर म अखिअय सालका मन्ना श्रीगणेशजी निशाम करन थे । आफ्नी पत्नी ओमना बंसर बचर बाई अत्तन मसपरायणा पवित्रता एव गीउसोअय बी प्रतिमर्ति थो ।



चरितनायक के पिता श्रीधरवल्लभा नागान्न नगर के राजा के बड़ा प्रिय बहिणारी । राजा-बाबू ने उन्हें 'कामदार' कहते हैं । नागान्न ने राजा चावुग नग के पसुन गाना । उनके पुत्रों ने अपनी प्रवृत्तियों और रणकुशलता के कारण 'राजा' की पदवी प्राप्त की थी । राजा महाराज का सम्पूर्ण परिवार श्री धर्मराजी साहब के कब्रों पर था । आप जानें अमाताग्न कायकोशल और प्रामाणिकता के कारण राजा और पत्नी के पुत्र विजयनाथन थे । राजकाय आपके लिए विजयवा ।

पाँच वष की वय मे आपनो मानसिबोग नहन करया पाए । प्रकृति ने गैर-ममता का एा एा एा एा काट कर फेर दिया ।

माता का पिछोह होने पर आपके पिता महाराजी आपकी भी आश्रय ले गए। उन परासत आपके जीवन में कुछ ऐसी स्पृहायुक्त उद्भूत हो चुकी थी कि जो भी आपको देखता, मुग्ध हो जाता था व्यक्तिगत भी आकर्षित कर लेने वाला आपका योग्य अंतर दृष्टियों में अवधारण था। राजा महाराजी माता देवीजी ने उन आपको देखा तो आपको अतीव प्रीति में अनायास ही आकांक्षित होकर लाज-पाना तो नार अपने ऊपर ले लिया। ममत्त्व राजपरिवार में माता महाराजी ने प्रगट था। वह चरितनायकता का अनायास अवसर में राजकुमार की तरह ही होने लगा। यही कम चरित्रावस्था तो आप एक उच्च पदप्राप्त कुल में जन्म पाए। किन्तु आपका जीवन तो किसी दूसरी ही दिशा में प्रसरण होने वाला था। अनपेक्षित प्रकृति ने पुनः आपका पार्श्व लिया। वि० सं० १९६७ में मेरठ साक्षर का महाराज के यानक ने मनभेद हो गया, यही तब कि पाश्चात्य सभ्यता ने भी कहता आ गई। स्वाभिमान और अपने विद्वान्तर पर प्रदल रहने वाले मेरठवासी ने महाराज स्वयं दिना और पाली आ गए। चरितनायकता की जीवन की दिशा में पुनः एक मोड़ आ गया।

भाद्राजून में पाली लोटने पर आपके विद्याधरया का नियमित पत्र प्राप्त हुआ। केवल ६-७ नाम जिनके स्वल्प काल में ही भाषाज्ञान के साथ उच्चकोटि के गणित का ज्ञान भी प्राप्त हो गया। तद्विषयक तद्वर्तमान के वाजसिद्धान्त आदि का पठन में समय में अध्ययन कर लेना आपकी जन्मजात प्रवृत्ति का परिचायक है। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि इसी अंतराल में आपने चाणक्यनीति के च - अष्टाध्याय, जहाँ भाषा के दो कायदे और अंगरेजी भाषा की दो रीटर भी पढ़ ली। इस प्रकार छह-सात महीनों में ही आपने संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंगरेजी भाषाओं का प्राथमिक और गणितीयशास्त्र का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

चरितनायक की विलक्षण कुशाग्र बुद्धि और मेधाशक्ति पर उत समय विस्मय व्यक्त किया गया। आज भी साधारण व्यक्ति को आश्चर्य, यहाँ तक कि अविश्वास भी हो सकता है, किन्तु जो आत्मा की अनन्त शक्ति पर भरोसा करते हैं, उनके लिए इसमें अविश्वास का कोई कारण नहीं। ज्ञान और दर्शन ऐसे आत्मिक गुण हैं जो गवान्तरगामी हो सकते हैं। पूर्वजन्म में अज्ञान ज्ञान वर्तमान जन्म में सम्कार के रूप में जाता है और साधारण निमित्त मिलने ही 'दैवेच्छा वलीयमी' वह व्यक्ति हो उठता है।

म। पुण्या की स्थिति में मरणावस्था स्वतः अनुभूत होता जाता है। अस्थि रूप में प्रकृति उनका जीवन निर्माण में योग देती रहती है। हमारे चरितनायक का मास भी सप्तम्वर्ष प्रसन्न होता रहा है। जब व सायंभारन समाप्त कर ही रहे थे लगभग १३ वर्ष की आयु में उन्हें एक साथ अनेक व्याधियां ने आघात किया। चर्च और निराशा उनमें प्रधान थी। स्थिति इतनी विषम हो गई कि चरितनायक का निराशा भाव गहरे निराशा अनुभव करने लगे। पत्नी का विधोय पहले ही हो चला था पुत्ररत्न के विधोय को सम्भावना उनका हृदय ही मर्महत करने लगी। पुत्रप्रम से वाकुल में तो साहस के ध्येय का बाध दृढ़ गया। नपुंसक अवस्था अशुभाग्य प्रशङ्कित होनी लगी। चिकित्सा पूरा मनोयोग लया कर चिकित्सा कर रहे थे परीक्षण ही रहे थे किन्तु चरितनायक की रक्षा सुखरही नहीं कि प्राई लगी थी। अन्ततः वे भी निराशा का गहन तिमिर में भटकने लगे।

अब जीवन का प्रयोग विनी भी क्षण बच सकता था किन्तु प्रकृति तो म। पुत्र व ज्ञान निर्माण में मग्न थी। उसका ज्ञान का पार विमल पाया है। निमग्न था यापार अत्यन्त निष्ठा और स्वयंसेवक होता है। अज्ञान एक घटना होता है और यह चरितनायक का जीवन का उम्र पथ की छार उल्टा करती है जिस पर उन्हें जागे बन कर प्रसरण होता था।

चरितनायक का मरिचक अवस्था में गहरा गहरा हा रहा वे उसी समय परममनस्यो सत्त्व शीमानमंजी महाराज तथा सतसत्त्व श्रीमधमंजी महाराज का अकस्मात् परिचय हुआ। वरना चरितनायक की निमित्त में महता साहस का पार पर भेज दिया। उस समय महता सा व के निधामस्थान पर भीतर और बाहर भीड़ लग रही थी। मनीषुल का नहा बाया देव लागे में प्रायना की—प यवर। अन्तर प्रवेश करने का अवसर नहा है। महता साहस का पुत्र प्रतिम स्थिति में है। उसके प्राण पक्षेक उत्तर ही वाते हैं।

गुरुदेव ने कहा—प्रेमैठा बलीयसी। अन्तर जाकर मगन्पाठ मुता नम बना हाहि है ?

गुरुदेव अन्तर पधार। अन्तर पडते ही मेरनाजी ने उनके चरणों में मस्तक रख दिया और बच की भांति बिलखते हुए कहा—गुरुदेव। मेरा सवस्व मुता जा रहा है। मेरे जीवन का एक मात्र आधार छिन रहा है। प्रसा। उस बचाए। मेरी रक्षा कीजिए।

अवभुत चमत्कार

गुरुदेव का अन्तःकरण वरना के परितुल हो गया। उन्होंने गहरी भाव में उत्तर दिया—रावन्जी। ध्येय पारण करा। जिसने ज में लिया है उनकी मरुत अनिवार्य है। अपर आयु का अन्त आ गया है तो देवराज इन्द्र भी किसी को बचा नहीं सकता। अन्त का गति के धनो तीर्थवर भी अपने आयुष्य में पल भर को वृद्धि नहीं कर सकते। उपाय अभी तक कारगर होते हैं। अब आयु के दिक अवधि है। किन्तु जाय सरवा निराशा हो चुके हैं। आपको अपने चिरजीव का जीवन की आशा नहीं रहती है। ऐसी स्थिति में कमबगारत यदि बालक स्वास्थ्यताम कर जाता क्या आप उसे वि बहिर क हेतु सगम बनाने के लिए हम सोचें देंगे ?

निरीह मन शोचकार और घमप्रचार के लिए ही जीवित रहते हैं मेरा तानो नम तद्य स मीभाति परिचित थे। अन्तर्गत गुरुदेव का नम सावदावली में उनका हृदय में आना का किंचित मंचार हुआ। उन्होंने तब जाकर निवर्तन किया—मगवन। आपने आगेपारलन में मुझे किंचित भी सजोच नहीं लाया।

गुरुदेव ने मगन्पाठ का उच्चारण करने के पश्चात् दयाभाव में चरितनायक के मस्तक पर कर मग्न किया। गुरुदेव पधार गण। पूरे दिन और रात तो ज्यों की तथा स्थिति बना रहती किन्तु दूसरे दिन का अरण्य वरना का साथ ही चेतना का वनरागमन होने के लक्षण प्रकट होने लगे।

तपस्वया का गति तब और अनुमान में अगोचर है। ज। समग्र भौतिक मायन निष्ठा हो जाते हैं वरना भी तब का स्थिति प्रभाव अपना चमत्कार लिखता है। यह घटना राजवि नमि का स्मरण किया जाता है।





चरितनामक दूसरे दिन ने उत्तमतर आगेगयास गन लगे। पुनरुत्तमतर नामक केन-बीन में आगे देने नह। निजमानाक महाराजकी का अन्यत्र विहार हो गया और चरितनामक पुनरुत्तमतर का नाम मारा करते गये।

ममता की मार

हुजुत के पश्चात् पुनरुत्तम और गनमन्त्री महाराज साहब पुनरुत्तम की मार में आगे आगे। चरितनामक ने विना ममता साहब वननामक पहने ना गुरुदेव न प्रणम किया—मेहनती कृष्ण साहब के विषय में क्या विचार है ?

मेहनती साहब प्रणम का आदेश पसन्द नग। पर मरुट टा काते के पश्चात् उठो हस्त में परिचरित हो गया था। उत्तम मन्त्र पुनरुत्तमता का परिचरित करने में अनपार हो गया था। उत्तम की ममता के नाउ हुजुत ने विचरित किया—गुरुदेव ! मेरा अन्य मोटी उत्तमविचारि नहीं है। हुजुत का मनुष्य हीन। आर की चरितनामक ने विचार नहीं होना चाहता किन्तु पुनरुत्तम का मोह नग, जो की क्षमता भी नहीं पाता।

गुरुदेव ने निम्नहभाव में कहा—पैसी लावनी उच्छा ! मन्त्र दान रचित मिश्रीमन्त्र (चरितनामक) लावने प्र में रहने बाग नहीं है। उत्तम विगट व्यक्तित्व परिचार की परिचित में मन्त्र नहीं मन्त्र। उठो दान मन्त्र और मन्त्र का वरन उपकार होने बाग है।

चरित गोरी ने मन्त्रिका का प्रह वननच गुना के विचार ह। उनमें में हो मन्त्रिका है के मन्त्र की दुर्गति की भविष्यवाणी की प्रचार्यना देउ मन्त्र अन्तम विम्वय अनुभव करने है।

गुरुदेव के प्रति आकर्षण

दिन पर दिन वननी होने ग। चरितनामक गुरुदेव के द्वारा मन्त्राम्मा में विग उत्तम में और जने विषय में जो गई भविष्यवाणी में भर्त्सना परिचित हो चुके थे। इस कारण गुरुदेव के प्रति मन्त्र हो अद्धा का भाव पनर गया था।

गुरुदेव का पुनरुत्तम में पदार्पण हुआ। मेहनती साहब उस मन्त्र तारिख बाहर गग ह। चरितनामक गुरुदेव के दर्शन और उपदेशप्रवा के लिए प्यारे। उपदेश श्रमा करने लावने मन्त्र में अर्पण आह्लाद उत्पन्न ह। जो अद्धा भीतर ही भीतर पनर रही थी वह विकसित हुई। जब तब गुरुदेव कहा विगाम्मा ने लाव प्रतिदिन उपदेशप्रवा के लिए जाने गे। आकर्षण नीत्र होना गया, अद्धा प्रगाट होनी गई। गुरुदेव के चरणों में जीवत अर्पण कर देने का मन्त्रवन्त्र मजीव हो उठा।

एक दिन आगे मेहनती साहब के अन्तम मित्र यशनावरमन्त्री, नयमन्त्री वृद्धिना और पुनरुत्तमकी खागीवाल के मन्त्र वननी मन्त्राभाव व्यक्त कर दिया—मैं गुरुदेव के चरणों में ह कर मन्त्र का पानन मन्त्रा चाहता ह।

नीलो मन्त्रना ने एक स्वर में कहा—बापू ! प्रह मन्त्र नहीं है। तुम मेहनती साहब के एतासी पुनरुत्तम हो। वे उत्तम स्वभाव के व्यक्ति हैं। वे तुम्हें मन्त्रग्रहण करने की कदापि अनुमति नहीं देंगे। मन्त्रकारी यन्त्र उच्छा, दितनी ही ही प्रमन्त्र वयो न हो, पुनरुत्तम नहीं हो मन्त्रगी।

तेजस्वी विना के तेजस्वी पुनरुत्तम ने वृट्ट स्वर में कहा—यदि मेने मन्त्र में किमी प्रकार की वृद्धिना नहीं है और भावना में पवित्रता है तो मेने निविट पय में कोई अवरोध वडा नहीं कर सकता। मेरी विचार्यना जिन दिना में प्रदाहित हो चगी है, उनमें किमी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता। मेरा निश्चय जडिग है। वचन में, रगावन्त्रा में, उम देह का अन्त जा जाना तब भी विनाकी जो प्रिय धारण करना पटना। फिर मेने स्वन्त्र होने पर गुरुदेव को मन्त्र कर देने का वे वचन भी दे चुके हैं। मेने जीवनदाना गुरुदेव हैं, मैं उरही की मन्त्र ग्रहण करना चाहता ह।

इस अनिदिरहा गिता व गायरी रचा करना पुनः का कल्प है । मोट्टवस्तु नेने के कारण गिताजी प्रतिमा स विचरित हो ता भी मे डारी प्रतिमा भग नगी होने दु गा ।

चारननादा का म दृष्टता म तीन सजन प्रभावित हुए और के ओकल्याण का भावना म उह पराक्ष म प्राप्ता मेने गये ।

प्रचंड रिक्तोप

अथवनीया पव अत्यन्त पुराने है । भगवान आग्निाय के समय म इस धमभूमिगुण व प्रारभ म हो इस पव का स्थापना हुई । तदा चान बोध बाध म प्रति हात वाया अनेक म लपूण चन्नाए इस पव को नूतन मोरव म मरिज करवा रे है । य । पवनि था जय मारे चरितनायक न मुष्टव क साथ विरागा अवस्था म प्रथम रिक्तोप दिया । मरिज आग चन् कर भागी प्रवस्था जमीनार कर मृनिजीवन म प्रवेश दिया । धय है अथा तनाया पव ।

मुष्टव न जयतोया क दिन पाती मे रिार दिया ता चरितनायक ने भी उतर पव का अनुगमन किया । अथ भजन रिक्तकार क माने कुछ ररत जाकर लीप म मर चरितनायक किमी मरे मात गए थे । य अथा पवा नीगरी तव माय माय म । सख्या का समय हा गया । मन्ना गात्र तव तव सी पाती नरी नीय मे । आपकी काया माया व म्म वा पार न रे । मभी जात तन्ना की गई कित की पता नरी लगा । वायोना म मन्ना साद्व त पाग भा गत मवक भेज दिया रि वजनी पधारे और बना साद्व का पना लगाए ।

मन्ना साद्व य मवा मुने हा पाली लीट । नय तव पना ग चर्वा था कि बना साहय (चरितनायक) मन्ना राजनी को मन्ना गाय थ मभवत उता क माय च ग म हैं ।

मुष्टव उत समय मूरपुरा पदु च व थे । मन्ना के १० वज होये रि ऊ प म सवार मन्नाजी मूरपुरा पधार ग । उधर सुय ता रे । था इतर मन्ना गात्र का तेजस्वी चेहरा समनमा रे था ।

पुन वयोग का भाग वचना न मेहता मा क विवेक का आडादिन कर दिया था । अतएव आन हा उान आ ग क माय मुष्टव का मर्शाने त सा म उपाक्रम देना आरभ कर दिया । मगर क्षमागात्र गरव का मुष्टमन्ना का रया निविहार रे । उ । गान एव मभीर स्वर म कट्टा— हम आपक सुपुन को माय नरी गाय मे । य अगी म्मा मे चना आया है । अ आपक साथ लोप्ता है ता हम क्या आपति है । हम राफने वात नरी है । हम मरा मन्ना क कर आप अने गीरव का क्या कम करत हैं ?

महता गात्र का काय चरितनायक पर वरम पडा । उ । म्माजी वन् और बटार म्मा स भमना ही नगी का वा चार चपत भा ज म्मा । ये भू म्मा कि पुन चपत है और मुष्टव तवा अय मन्ना न पुग म्मा मीजू है ।

चरितनायक फिर भा दद रह । वा—गिताजी ! आप घर पधारिए । मरा भाव घर चन्ना का अथ सवया नगी है ।

दा पाद म वा । ये आग म प वा काम किया । म ता सात्र का काय और अधि प्रव उडा । जिस ऊ पर मगर हाकर व आग य उग रिक्तते हुए वाव—मन्ना क कम नही चन्ना । सीधी तरह तपार न हुए तो ऊ म बांध कर ल चन्ना ।

मूरपुरा व थावक अब तव गरी तरह मीन । मेहता साद्व का माय मे बापर होये म मठ हीराव म्मा बा—आप क्या नत म्मा होये हैं ? धारक रोक्षण । जावा क वर माहय रव डा म जान है ता ल जा । इस प्रकार वच प्रयाग पव ता हम म्मा ल जाने नी देये ।





मेहता माह्व की उत्तेजना की सीमा न रही। मेठजी के शब्दों में स्पष्ट चुनौती थी। उसे धर्मात्मा करने हुए उन्होंने कहा—किमकी हिम्मत है जो वरपूर्वक मेरे गडुके को रोत मने। मैं एत-एत को नमन दूंगा। अभी मैं जाता हूँ। आप और आपके गुननी जिन प्रकार उमरी दीक्षा देने हैं, मैं देख लूँगा।

मेहताजी जैसे गए थे वैसे ही पाली लौट आए। जाना दूर, पानी तक पहुँच नहीं सिया। मगर डाग क्रोध झाल नहीं हुआ। जापन परिणाम का विचार किये बिना ही गुम्देव तथा उसकी तीन मजदूरी (उत्तावमजदूरी तमलजी बुवुकिता तथा पूषागमजी त्रागीवान) के विरुद्ध फौजदारी मुकदमा दाखल कर दिया।

इधर मेठ हीराचन्दजी जोधपुर गए और भठानी सूबचन्दजी माह्व की भारी घटना सुनाई। भठानी माह्व जोधपुर के प्रभावशाली व्यक्ति थे और ऊपर तब उनकी पहुँच थी। उन्होंने मेठ हीराचन्दजी द्वारा पूरे गुम्देव के पान मवाद भेज दिया—‘आप आनन्दपूर्वक विचरें। जिनो प्रकार उद्देश्य अनुसृत करने की आवश्यकता नहीं। बिल्कुल और भय तो हम गुम्देवों के लिए है। हम सब निवृत्त हैं, आप निर्भय रहें।’

मेठ हीराचन्दजी के लौटने ही भठानी माह्व ने राज्य के उच्चाधिकारियों को सूचित करवा दिया कि इन मामलों में वे यथार्थ निष्पक्ष हैं। मेहताजी के प्रभाव ने सँट गलत निर्णय न ले लिया जाए।

परिणाम यह हुआ कि अभियोग फाइलों में ही दबा रहा। विरगार तब को निष्पक्ष मामलों नहीं आता।

विलक्षण विचक्षणता

गुम्देव मूरपुग में बिहार कर मादनिया पवारे। दो दिन ठहर कर तीसरे दिन बिहार करत गये तो मूया नन्दरामजी, रावतमलजी, मूलचन्दजी तथा लोटा उम्मेदमलजी ने गुम्देव के चरणस्पर्श कर प्रार्थना की—गुम्देव! कुछ दिन और बिगजिए। आज तो हम हजिज न जाने देंगे।

गुम्देव के उत्तर देने में पूरा ही चिन्तनायक ने कहा—भाइयो! आप तभीय आस्ट के साथ महाराज ने बिगजने का अनुरोध कर रहे हैं किन्तु इन दो दिनों में मैंने देखा कि आप बड़े-बड़े सरदारों में से एक ने भी तभी नामाधिक नहीं की। वर्मध्यान न होना हो तो मर्नों को रोचना निरर्थक है।

वैरागीजी के इस मजिप्त कथन में अनेक तथ्य सन्निहित थे। एक ओर मादनिया के श्रावकों के प्रति उपात्म्य था तो दूसरी ओर यह तथ्य भी स्पष्ट झटकना था कि श्रावकों के साथ मर्नों का जो नाता है वह वर्मधन्यता का ही है।

मूया नन्दरामजी विवेकवान् श्रावक थे। वैरागीजी का कथन उन्हें अप्रिय नहीं लगा, बल्कि उन्होंने उत्तर कथन का समर्थन करते हुए चिनोद में कहा—गुम्देव, तीन पीढ़ी तक तो हमें बड़े ही वात्सल्य में रखा गया है, यह चौथी पीढ़ी (चरितनायक) तो बड़ी आजम्बी प्रतीत हो रही है। जान पड़ता है, अब टिलार्ड ने काम करने काश नहीं। हमें अभी से इनके अनुग्राम के अनुकूल अपने को बदलना पड़ेगा। अनुग्रह कर आज मैं ही नामाधिक का नियम दिखा दीजिए।

गुम्देव उस दिन मादलिया में ही विराजे। एक नूतन वातावरण निमित्त हो गया।

गुम्देव ने वि० नं० १९६९ का चीनामा जपनारंग में और १९७० का कहलवाज में दर्जित किया। इन अवधि में चरितनायक ने गुम्देव के चरणों में रहते हुए श्रावक और माधु का प्रतिजमय, दो सी चारुटे, दमदमालिन्-मूय, नन्दीमूय और उत्तराध्यवसमूय के १३ अक्षरपत्र कठम कर दिये थे। अनेक स्तवन तथा मन्त्राय भी कण्ठस्थ हो चुके थे। रात्रि के समय जब आप मुमधूर स्वर में स्तवनगान करने तो एक ममा दन्व जाता और सक्ति तथा वैराग्य की तहरे श्रोताओं के मांस-मर्ग में लहराने लगती थी। आप प्रायः निरन्तर स्वाध्याय में लीन रहते थे। आपकी दैनंदिन प्रवृत्तियों में लोगों को आप में एक प्रकार की अलौकिकता का आभास होने लगा था।



के कथानक के आधार पर लिखी गई थी। महाभारत की सम्पूर्ण कथावस्तु मक्षेप में किन्तु अत्यन्त सुन्दर ढंग से उसमें गुम्फित की गई थी। रचना की एक ही प्रति थी और वह प्रमन्नचन्द्रजी स्वामी के पास थी। चरितनायक के गुरुदेव ने उसकी एक प्रतिलिपि करानी चाही किन्तु स्वामीजी ने इसे स्वीकार नहीं किया। तब गुरुदेव ने सहज भाव से फर्माया— रात्रि में यथावसर उम रचना का श्रवण तो करा दीजिए।

अन्य श्रोतृसमूह के साथ स्वामीजी को वह रचना सुनाई गई। श्रोताओं में हमारे चरितनायक भी थे। आश्चर्य है, आपने एक बार सुनकर ही उम समग्र लावणी रचना को कठस्थ कर लिया। जब सन्त नमुदाय निद्रा में लीन हो गया तो शुभ्र ज्योत्स्ना में कण्ठस्थ की हुई रचना को लिपिवद्ध भी कर डाला।

प्रातः काल गुरुदेव ने स्वामीजी से कहा—स्वामीजी, ज्ञान का अधिक से अधिक विस्तार करना चाहिए। सकोचवृत्ति के कारण भारतीय विद्याओं का बहुत बड़ा महत्वपूर्ण भाग नष्ट हो गया है। इस विषय में उदारता बरतनी चाहिए।

स्वामीजी ने उत्तर दिया—आपका कथन यथार्थ है, पर इस रचना पर मेरी ऐसी कुछ ममता हो गई है कि उसे कम करना मेरे लिए संभव नहीं।

इस वार्तालाप में भाग लेते हुए चरितनायक ने कहा—आपको कोई आपत्ति न हो और गुरुदेव का आदेश हो तो मैं वह रचना गुरुदेव को सुना सकता हूँ।

गुरुदेव और स्वामीजी विस्मित हो गए। स्वामीजी ने कहा—वैरागीजी! क्या कह रहे हो?

वैरागीजी—सत्य निवेदन कर रहा हूँ। आत्रा हो तो अभी सुना दूँ।

सुनाने की आज्ञा होते ही हमारे चरितनायक ने तत्काल उक्त रचना की २६५ गाथाएँ कठस्थ सुना दीं।

दोनों सन्त तथा अन्य उपस्थित श्रोता चकित और विस्मित रह गए। इस काल में इतनी तीव्र स्मरण-शक्ति! इतनी विशाल मेधा!

स्वामी प्रसन्नचन्द्रजी ने कहा—वैरागी! तुम्हारा बुद्धिबल सराहनीय है। अत्यन्त प्रसन्नता है कि सम्प्रदाय में ऐसे भावी सन्त विद्यमान हैं। तुमने मुझे लूटने का सा काम किया है परन्तु लूटने का मुझे दुःख नहीं है। वस, इतना ध्यान रखना कि इस वैभव का अपव्यय न हो। तुम स्वयं इसका उपयोग करना।

वैरागी अवस्था में आपने जिस असाधारण स्मरण-शक्ति का परिचय दिया वह आधुनिक युग में सर्वथा आश्चर्यजनक है।

गुरुदेव का वियोग

वि० भ० १६७५ का चौमासा आलवा की देवली में सानन्द व्यतीत कर गुरुदेव ने विहार किया। हमारे चरितनायक छाया की माति सदा साथ ही रहा करते थे। थावको का समूह जय-जय के निनाद में आकाश को गुञ्जित कर रहा था। उनमें एक दलीचन्द्रजी सोलकी भी थे। सोलकीजी चरितनायक के गोत्रीय भाई और गुरुदेव के अनन्य श्रद्धालु भक्त थे। मागलिक श्रवण करने के पश्चात् लौटते समय सोलकीजी का हृदय गद्गद हो उठा। अश्रुवारा प्रवाहित होने लगी। तब गुरुदेव ने फर्माया—दलीचन्द्रजी! मेरे साथ ही दया पालो, शायद अब अपना मिलन नहीं होगा।

दलीचन्द्रजी के कलेजे में जैसे वज्र का आघात हुआ। गुरुदेव के वचनों पर उन्हें अविचल विश्वास था, अतएव उन्हें निश्चय हो गया कि अवश्य कोई अवाञ्छनीय परिस्थिति उत्पन्न होने वाली है।

गुरुदेव ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जोधपुर पधार गए। पीप बुबला १५ को अपराह्न में गुरुदेव को शीत का किञ्चित् अनुभव होने लगा। सम्पूर्ण रात्रि ज्वर की स्थिति में व्यतीत हुई। प्रातः गुरुदेव ने फर्माया—मेरा भाव गयारा करने का है। नन्तो और थावको को सूचना हो जानी चाहिए।

विद्युद्गम स यह दु मरान मग्न आधपुर में और दूर दूर तक अग्न भी चल गया। अनन माध तृणा ७ क तिन गुरुने ने समाधिपूर्वक स्वर्गारोहण किया। यह आकस्मिक दुष्प्रता का चरितनायक व हृदय पर गभीर प्रभाव पड़ा। आपकी विरक्ति शब्द चरम सीमा तक पहुँच गई। पूँव श्री मानमन्त्री म व स्थान पर अत्र स्वाम जी श्रीगुणमन्त्री म आपका गुरु अभिभावक एवं पंचप्रणवक थे।

दीक्षा में विघ्न

गुरुने व स्वर्गाोहण व पंचात चरितनायक श्रीगुणमन्त्री महाराज व साथ विचार करने का साधन पधार। साजन श्रीगण न गुरु महाराज स प्राप्ता की—गुरुने व चरागीजी व चराग्य की पूव परीक्षा हा चुका है। उ होने अपने आपका समय का उत्कृष्ट पात्र सिद्ध कर लिया है। अत्र उनका दीक्षा की स्वीकृति प्रदान कीजिए।

गुरुने ने कहा—चरागीजी की योग्यता का सबविनि है किन्तु उनसे पिताजी की आज्ञा प्राप्त नहीं हुई है।

श्री मध म निरस्त किया यह वष म्यनात हा गए है। श्रीमध उह जाया दगा। जन अधिक प्रताया करना उचित नहीं।

गुरुने मोन दह। मोन स्वीकृतिप्राप्त की उचित का अनुसरण करके सध न चरागीजी की आज्ञा व त्रि अमृतनीया का शुभ मुहूर्त निश्चित कर लिया। नगर भर म शैला सत्कार की धम मच गई। चरितनायक कादि श्रीन विचार अन्यायक उत्तर कि जान उम। मध म अशुभ उत्साह का गहरा उन्नाम का और अनुपम हए था। एक वही धानावरण ना तटि हो गई।

साज निबोल निविघ्न हो गए। चौथे दिन गया श्री आप जन्म व साथ स्थान म श्री त्रि पुलिप्त मुपरि टेंडेंट सकि स्वर और सब इश्वर दल दल व साथ धम धम। चरितनायक व पिताजी ने पुलिप्त म रिपाज कर श्री श्री आर उसी व आधार पर पुलिप्त म कारवा गुरु की था। मन्ता साध न अपना रिपाज म दीक्षा न हाज देन व दो वारण बतलाए थे—

- (१) दा तार्थी अल्पवयस्य अयान नावाकिक है और
- (२) माध उन मग कर न आए है।

पुलिप्त न आर श्रीसाय म विघ्न उपस्थित कर दिया। सध व प्रमत्त जना म प्रतिपाद (मन्त्रक) निम्नवा त्रिप कि दीक्षा न। दो जगगी।

मध म तिनता हए था उतना हा विपाज व्याप गया। गुरुने का मन्त्र म गध एकत्र हुआ। गुरुने उन समय भी संस्मृत मुष्टा म ध। वात—श्रीधना करन का परिणाम म्य लिया न आपन। किन्तु भयमा होर का का वारण न। धम व प्रता म सब दीक्षा हाया।

हता म हा स्थानीय मुशायित मुपरिटेंडेंट सामाजीका अध्याप और हाकिम साधर मोरगू माई गुरु महाराज व दानाय पधार। उ तिन। सारी परिस्थिति न अमयन किया ता सध। गया त्रि उतन माना जागम मिथ्या है। जन्म मधर हन अधिरारिका व प्रयत्न म और उपर श्रामुखमन्त्री भशरा व प्रयत्न म विघ्न व जन्म विग्न गए और राजाया प्राप्त हा गई कि दीक्षासम्भार सम्पन्न कर दिया जाए।

दीक्षा समारोह

राजाया प्राप्त हाते हा मध म निगुणिज उत्साह और उमय उत्त न हा गये। ममा मगन्नाय मग्न न हाज मने। आधिर माहा व समय आ पहुँचा। मोहन नगर व राजधान नर व बाहर म दृष्ट व नीच अगणित माध ममूह की उपस्थिति म मातामहत्तर का विविधिधान प्रारम्भ हो गया।



पाली के श्रीहस्तीमलजी रानटिया तथा रत्नचन्द्रजी अग्रावत चरितनायक के पिता मेहता साहब को भी मना कर ले आए। मेहता साहब पर दृष्टि पड़ने ही गुरुदेव ने फर्माया—महता साहब, क्या विनाश दे ? दीक्षा दी जाय ?

मेहता साहब ने नेत्रों में उज्ज्वल मोती बरमाने हुए दोनों हाथ जोड़ कर उत्तर दिया गुरुदेव। अपना क्षमा करें। पुत्र के मोह से मूढ़ होकर मैं आपका शिष्य बन गया हूँ। अब आप पूर्ण ने मेरी तरफ से दीक्षा दिलाइए।

सम्पूर्ण वातावरण में अचानक परिवर्तन हो गया। तब से मेहता साहब के प्रति जो कटुता थी वह मनु-रता के रूप में परिणत हो गई। चरितनायक ने वैरागी अवस्था में मुनि अवस्था में प्रवेश किया।

अनेकानेक कठिनाइयों और विघ्न-बाधाओं को अपने दृढ़ गुरुदेव ने एवं गुरुदेव के असीमित प्रभाव से पार करके मुनि बने हमारे चरितनायक जान मरुघरकेसरी, आमुकवि, पण्डितरत्न, मंत्री मुनि श्रीमिश्रीमलजी महा-राज के रूप में विराजमान हैं।

प्रब्रज्या-पर्याय अंगीकार किये पचास वर्ष-आधी शताब्दी का लम्बा काल बीत गया। उन मूर्खों का तब मुनिश्री न सयमसाधना के द्वारा आध्यात्मिक उत्थान के साथ नग, ग्राम और राष्ट्र के उत्थान में भी बहुमूल्य योग प्रदान किया है।

इस आधी शताब्दी के कार्यकाल का परिचय प्राप्त करने के लिए पाठकों को एक निम्नलिखित ग्रन्थ की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यही अतिमोक्ष में कतिपय विषयों का ही अंकन किया जाएगा।

ज्ञानार्जन

मुनिश्री की प्रतिभा, प्रज्ञा, मेधा और स्मरणशक्ति कितनी तीव्र है, इसका परिचय पाठक प्राप्त कर चुके हैं। ६-७ मास जितने स्वल्प काल में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत और अंग्रेजी, इन चार भाषाओं का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त कर लेना कोई माघारण बात नहीं है। पूर्वोक्त संस्कारों की म्हायता में ही इस प्रकार की सफलता प्राप्त की जा सकती है।

इस प्राथमिक शिक्षण के पश्चात् छह वर्षों तक विरविन दशा में गुरुदेव के निम्नलिखित में रहकर आपने आगमों का अभ्यास किया। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, एक ही चातुर्मास्यकाल में आपने दो सौ थोकटे, मात आगम तथा अन्य स्तवन सञ्ज्ञाय आदि कठम्य कर लिये थे। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि छह वर्षों में आपने जितना अध्ययन, चिन्तन और मनन किया।

मनीषी जन अध्ययन करते-करते कभी अघाते नहीं हैं। उनका ज्ञान ज्यों-ज्यों गहन होता जाता है त्यों त्यों उनकी जिज्ञासा प्रबल में प्रबलतर होती जाती है। मुनिदशा में प्रवेश करने के पश्चात् आपकी अध्ययनविषयक उत्कट अभिलाषा और भी बढ गई। आपका प्रथम चीमासा वि० सं० १९७६ में जनानरण में हुआ। इस चीमामे में आपने जोधपुर निजामी पण्डित देवीदत्तजी से लघुकोमुदी, पञ्चतन्त्र, तर्कसंग्रह तथा अमरकोष आदि का अध्ययन किया। इनके तात्पर्य को भलीभाँति हृदयगम कर लिया।

तत्पश्चात् हमारे चीमासे में, जोधपुर में, आपके अध्यापन के लिए भारतविद्यालय विद्वान् प० मगवती-लालजी की सेवाएँ प्राप्त की गईं। पण्डितजी की अध्यापनशैली अनूठी थी। दुर्बोध में दुर्बोध विषयों को भी सुबोध शैली में विद्यार्थी को हृदयगम करा देते थे। मुनिश्री जैसे कुशाग्रबुद्धि सुपात्र को पाकर उन्होंने अपना ज्ञानभण्डार मुक्त कर दिया और मुनिश्री ने भी उस भण्डार के बहुमूल्य रत्नों को आत्मसात् कर लिया। इन चीमासे में आपने अनेक विषयों का प्रौढ ज्ञान प्राप्त किया।

तोमरे साजत—चातुमास्य म पुन ५० देवी तत्रा तथा ५० स रत्नालङ्कारा का आमंत्रित किया गया और मुनिश्री न पाणिन्य व अनङ्ग भाषाणा का पार किया ।

वि० म० १६८३ म चातुमास्य म चरित्रनायक की रचि प्राकृतभाषा के अध्ययन की हुई । एता होना स्वाभाविक भी था क्योंकि समस्त प्राचीन एवं मातृका तत्र वाङ्मय प्राकृतभाषा म निबद्ध है और उस अभावि जाने बिना आगमा के वास्तविक और गंभीर अर्थ का समझना कठिन होता है । आपकी इस जिज्ञासा का पूर्ति प्राकृत भाषा के ध्रुवप्रार विद्वान् ५० रामधरणा आभाषा के सहयोग में हुई । साथ ही व भगवतीलालजी न आपकी याचरण साहित्य और यायमात्र का उच्चकाटि का अध्ययन कराया ।

वि० स० १६८४ म जयतरण चातुमास्य म आपका अध्ययन और भी अधिक विकसित हुआ । इस बार याचरण साहित्य याभाषाय पण्डितप्रवर वि वस्वरत्नतन्त्रा पाच नाम तत्र अध्ययन म भी रह । चरित्रनायक न सिद्धांतकीमुनी यायवताकी स्यान्नाम्यन्त्ररा तद्व्याख्यानप्रतिपादनकार स मतिवक तथा महाभाष्य जम उच्च कोटि व प्रथा का अध्ययन किया । आपने समय का सम्भाग अध्ययन म ही करना चाहा था । अब आप याचरण साहित्य याय और आगम व विविष्ट विज्ञाना हा गए । आपका पाणिन्य प्रवर होकर निखर उठा । तब समय तक आप संस्कृत गद्य पद्य म सत्तर रचनाएं करने में गये । अत्रमेर कालज व प्रियिपल व गवरत्नामज भी मनिश्री की परीक्षा के हनु प्राय प्रतिमास पधारते रहे ।

मुनिश्री ने विदीमात्रिय त्र विगय अध्ययन भी इस चौमास म किया । इस प्रकार आपका अध्ययन स्नातककाटि पर पहुँच गया और आप प्रथम पाणिनी विज्ञाना स सम्पन्न हुए ।

विशेष भाषाजी और विविध विषया का ज्ञानाजन कर देने व पदव्यात आगमा के अध्ययन का माग स्वतः प्रगस्त हा गया । आपका बुद्धिबल विवक्षण ता था की स्वाध्यायगोल उति के कारण सद्भावित ज्ञान भी गहन हो गया ।

कवित्व और साहित्यसज्जना

वि० स० १६८४ म आप का प्रथमपद्य कर रहे हैं । सयप्रथम आपकी रचनाए प्रकाश म आई समाज सुधार और जन शक्ति काव्यकार । तत्पश्चात आपका कवित्व गंभीर और व्यापक होता ही गया । आज तक आपका कवित्व की विमर्यादा अमूल्य गति स प्रवाहित हा रही है । आज पद्य का आपकी देखिनी स निर्माण हुआ है । जोधपुर म मधुसूदा व कविसमाज न आपकी असाधारण कवित्वशक्ति से विस्मित होकर आगुक्ति के विविष्ट विषयों में विमूर्धित किया । राजस्थानी भाषा अजभाषा और छंदी हिंदी म आप समान रूप स निरत हैं । महामारन आपकी राजस्थानी भाषा की एक विराट और उत्कृष्ट कृति है । स छा स्तवना और सजना की रचना कर चुके हैं । कठिन स कठिन समस्या की तत्काज पूर्ति कर दना आपके लिए चिल्ला है ।

हिंदी और राजस्थानी भाषा म आपका गद्य भी अतीव मनोरंजना है । सवसाधारण जनता के जीवन व अम्युन्य के दृष्टिकोण स हो आप प्राय लिखते जो आपके सतजीवन व अनुभवों में हैं । आपका साहित्य जीवन म धम क प्रति आस्था उत्पन्न करने वाला एक नतिकला का प्रतिष्ठा करवा वाला है । आधुनिकता व नाम पर वास्तवावा की भवजाने वाले सामाजिक मर्यादाओं का मग करन जाने और उच्छ्रान्तता उठान करने वान कथिन साहित्य का भाष हलाल विष समझने हैं । दुर्भाग्य से आज तब प्रकार का सा साहित्य प्रचुर मात्रा म लिखाई पाने लगा है मगरा क विषय परिपक्वता का विषय है ।

मनिश्री की साहित्यिक माधना व सम्बंध म एक पृथक् निरधम मोमामा की जा रही है अतएव यहा विस्तार म जाना जभाष्ट म्ता है ।





वस्तुत्व

तत्त्वज्ञान के अस्तु का आच्छाद पात करने वाले विद्वान्मन जब जानते उपगार या मध्य जीवा के उद्धार के लिए प्रवृत्त होते हैं तो दो प्रश्नों के उदाहरण ही उन्हें अवश्यमान ऐसा पड़ता है। या तो जेउन द्वारा अनेक भावों को व्यक्त करे अथवा अस्तुत्व द्वारा। जिनमें से जेउनकता की विवेचना दृष्टिोत्तर होती है तो कोई विद्वान् अपने ज्ञानव्यापक वस्तुत्व के द्वारा ज्ञान का परवर्धन करते हैं। कोई विद्वान् प्रतिमावान् होने से वेकें जाने हैं तो वेकें प्रचार की गतिधियों में सम्मिलित होते हैं। हमारे चिन्तनापर से अनेक प्रिचाराओं में अभिव्यक्ति देने की दोनो प्रताओं का समान रूप से विकास हुआ है।

वि० न० १८.३ के जोष्ठपुत्र चतुर्मास्य में ही अपने प्रवचन करना प्रारम्भ कर दिया था। ज्ञानगी तैमगिज प्रवचनप्रदिता को देखकर प्रमिद्वक्ता जैनदिवाकर श्री चौरमराजी मन्नागज ने हर्ष व्यक्त करने हुए प्रकीर्ण था—मुनिजी का वात हृदयगत कर देना—अथ व्याख्यान कर या स्तवन आदि पुनर्वा नव अनेक नाम से यही मोक्ष कि मैं स्वयं ही सब कुछ सुन रहा हूँ। हमने आपकी वस्तुत्ववर्णित विरचित हाँ चापूरी जो—उपगारमन् प्रवृत्ति होती रहेगी।

चिन्तनापर से विद्वान्मरी की सूचना को सर्वत्र उगत में रगड़ा और पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

अब मुनिजी मन्धरा के मन्तो में प्रथम श्रेणी के वक्ताओं में गिने जाते हैं। आपका व्याख्यान प्रार. राजस्थानी भाषा में होता है। अत्यन्त ओत्तरी प्रभावोन्मादक और श्रेणाओं में सम्मिलित हो कर्य करने वाला। मित्र-भाजता के समान आपकी गजता की सुतकर भाषा ही कोई उमध्य ऐसा हो जो प्रभावित न हो।

मन्मथाधार ज्ञान की मन्तोवि के ज्ञाना मन्तियों प्रायः किसी प्राचीन चरित्त की भाषा में बनाकर प्रवचन करने हैं। जिन चरित्त को आप नेते हैं, मर्जित बना देने हैं। प्रामाणिक उपदेशों द्वारा उसे विभूषित कर देने हैं। वास्तव में आपके उपदेशों में महत्वो पवित्रता का उद्धार हुआ है। वक्ता ने ज्ञानज्ञान का जोमोत्तर जामोत्तर प्राप्त किया है। न जाने जिनने धाराओं में जीवन की दिव्यता और भव्यता प्राप्त की है।

वादवर्धन

मन्धरकेमरीजी नामक, मध्य एव मन्धरापर ने मजग प्रहरी ह। ऐसी प्रहरी, जो मन्धरा मन्धर और मावप्रान रहते हैं और ज्ञान के लिए भी सभी गपपन में नहीं पड़ते। आपके जीवन की यह एक बहुत बड़ी विवेचना है। जब कभी नामक या मध्य पर जयवा म्यानकवासी मन्धरापर पर जिनमें और से आरम्भ हुआ आरम्भ दृष्टान्पूर्वक उनका मन्धर प्रतिरोध किया है। इन दृष्टा में तो प्रायः धार्मिक वादविवाद होते नहीं हैं, पण्डितवर्ग और ज्ञानाधारों की मनोद्विज में बहुत पण्डितवर्ग हो गया है, किन्तु अब में पञ्चीम-पञ्चान वर्ष पूर्व प्रायः वादविवाद और धार्मिकार्थ होने हैं, रहते थे।

अर्थममाज की ओर से जैनधर्म पर होने वाले आलोचों का प्रभावजालो उत्तर देने के लिए दिगम्बर जैन-समाज ने नाम्नायं मध्य नामक एक पृथक् मन्धरा की स्थापना की थी किन्तु उसका कार्यभार प्रायः पञ्चाव और उत्तर-प्रदेश था। म्यानकवासी समाज का ऐसा कोई संगठन नहीं था। ऐसी स्थिति में हमारे चरित्तनायक ने स्वयं ही एक माठन का रूप धारण किया और कहा कि ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ, आप स्वयं पढ़ें और जैनधर्म के मित्रान्तों की स्थापना करते विद्वान्-वैद्वान्नी कहेंगे।

प्रवृत्त्या प्रहरी करने के एक वर्ष पश्चात् ही एक प्रसंग उपस्थित हो गया। नोजन के निकटवर्ती धीरवादा ग्राम में वैराव मन्धरायों ने जैनधर्म का उपहास किया। कहा—‘जैनममाज और जैनधर्म हिंसा का पोषक है। उनके पमोरागमन का प्रथम चरण है—गर्वा दृष्टिनायक’ कर्वाणों जो यद्युधों का घात करने वाला है उसे तमस्कार हो। उसी प्रकार और भी कुछ अमंगल आगेत जिए।’



दिन आप जब बाहर पधारे तो यति ने उपहामपूर्वक कहा—क्या दलवन्दी मिटा कर स्नेहममेयन करा दिया ? ट टिया ही दलवन्दी भग करा देगे तो हम यहा बैठे क्या गीत गाएगे ?

गुरुदेव ने फर्माया—यतिजी, दलवन्दी रहे या न रहे, हमे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा नाम उपदेश देना है। हम ज्ञानि चाहते हैं। आप फूट के पक्षपाती हो तो आप जाने, मगर हमे आपकी मोभा नो नही है।

उसी दिन गुरुदेव और चरितनायक ने श्रावको के समक्ष ऐसा श्रांजस्वी भाषण किया कि तत्काल हमारा गहरा प्रभाव पडा और लम्बे काल मे चला जाने वाला विवाद एक ही दिन मे समाप्त हो गया। सब लोग मनमें तो को मूल कर परस्पर स्नेहमय मे धावद्व हुए और 'महावीर स्वामी की जय' के तुमुल नाद ने आकाश व्याप्त हो गया।

वि० स० २००४ मे चरितनायक का चौमाना नादरी (मागवाड) में था। उनी समय श्रीलोकनाथ गुरुकुल का वार्षिक उत्सव आयोजित किया गया। मेठकेवलवन्दी चौगडा अध्याय निर्वाचित हुए। उत्सव प्रोग्राम मे प्रारम्भ हुआ। किन्तु उन समय भी स्थानिकवासी समाज मे दो दल थे। चौपडार्ज ने अध्याय भाषण मे इस अनैय्य पर गहरा खेद प्रकटित किया, यहा नर कि अनशन की घोषणा कर दी। आपके पास ही स्थानीय तथा बाहर मे आए लगभग ७०० नवयुवको न भी अनशन प्रारम्भ कर दिया। ऐसी विषम परिस्थिति मे चरितनायक किन प्रकार आहार ग्रहण कर सकते थे ? आपने भी आहार का परिहार कर दिया। एक दिन बीत गया।

दूसरे दिन चरितनायक ने हृदय को हिला देने वाला मर्मस्पर्शी प्रवचन दिया। प्रवचनपीछूप की धारा प्रवाहित होते ही लोगो के मन की मशीनना धुल गई और जो हृदय कषाय के ताप मे तप्त थे वे स्नेह-मण्डित मे शीतल हो गए। सध मे एकना और प्रेम का प्रसार हुआ। चिरकाल मे चली आ रही तफारत दूर हो गई।

वि० स० २०१० का चानुमान्य विलाडा मे व्यतीत कर अनेक ग्रामों और नगरों मे विचरण करते हुए महारकेमरीजी वालोतरा पधारे। वडा करीब २५ वर्षों मे जैन समाज मे चार दठ चले जा रहे थे। उन अन्तर्गत मे एकता स्थापित करने के अनेक बार प्रयास किए गए थे पर वे सभी विफल रहे थे। किन्तु आपके प्रभाव एवं शील ने ऐसा चमत्कार प्रदर्शित किया कि दलवन्दी समाप्त हो गई और वालोतरा-समाज एकता के वस्त्र मे आवद्ध हो गया।

वि० स० २०११ मे निवाना (मारवाड) में आपने वर्षावाम व्यतीत किया। यहा भी चिरकाल से दलवन्दी चली आ रही थी। एकता स्थापित करने के लिए आपके अत्यधिक प्रयास करना पडा फिर भी आपके मत्प्रयत्न अन्त मे सफल हुए। मुरुदमेवाजी का अन्त हुआ। कषाय की जाग शान्त हुई। सध मे नीमनम्य स्थापित हो गया।

उसी प्रकार समदडी-सध मे व्याप्त कलहानि आपके प्रयासो मे शान्त हुई। धवे मे तेरह परो मे तीन दल थे। समाज तीन तेरह हो रहा था। उनी कारण अर्मध्यान के लिए कोई ठिकाना नहीं था। एकना स्थापित करने के आपके मत्प्रयत्न सफल हुए। धवे मे विहार कर लुलावा पधारे। वहा १० घरों मे ही फूट का साम्राज्य था। समझा-बुझाकर वहाँ भी शान्ति स्थापित की। व्यावर मे व्याप्त कलह की आग को बुझाने के लिए नो आपको अनशन करना पडा। आपकी सहानुभूति मे अनेक श्रावको और श्राविकाओं ने भी अनशन प्रारम्भ कर दिया। एकता के प्रयत्न सफल होते न देव राव नारायणमिहजी साहय ममूदा तथा स्थानीय उद्योगपति मेठ मुकुन्ददासजी राठी आदि ने अनशन समाप्त करने का आग्रहपूर्ण अनुरोध किया। किन्तु चरितनायक अपने सकल्प पर दृढ़ रहे। आपने उत्तर दिया—

सद्भिस्तु लीलया प्रोक्त शिलालिखितमक्षरम्।

मत्पुरुष मनोविनोद मे भी जो कह देते हैं, वह निदानेय की तरह धमिट हो जाता है।



एक दिन चरितनायक मौच-निवृत्त होकर बाह्य लौट रहे थे कि एक मौचरी २-३ मुस्लिम नवयुवकों के साथ सामने आ गया। उसने कहा—‘तू मछलियों मारना रक्खाना चाहता है। ते भज नार। औ मौचरी त आपके घरीर पर लाठिया बरसाना आरम्भ कर दिया। माचरी मुनिश्री राखन्दजी कुछ आदेश म जाग तो आते उन्हें शान्त रहने का आदेश देने हुए कहा—यही परीक्षा त ममय है। आत्मपरांगी जा प्रतिरोध करना सम्मानों के लिए पराजय का चिह्न है। फिर भी लाठिया बरसाना रही। कपीस बीस प्रहारा ते बाद जब लाठी के तीन टुकड़े हो गए तब मौचरी को प्रहार करना बन्द करना पड़ा। मुनिश्री ने शान्त औ गम्भीर भाव से यह बातना महन की।

रोहलुहान जरीर लिए मुनिश्री किसी प्रकार स्थानत में पहुँचे। नगर में पहुँचा मन गया। प्रहारा कर्ता का नाम पूछा गया किन्तु चरितनायक ने तब मुनिश्री स्वचन्द्रजी ने बाने में उच्चार कर दिया। मान प्रत्यक्ष-दर्शी एक कुम्भकार ने मार्ग भेद बोल दिया।

सवेरी मुनि श्रीकवीन्द्रनागजी चरितनायक की दशा देख दयाव्रित हो उठे। महमा उनके मुख ने निकला—‘अरे जैनियों! मर मिटो! यह अत्याचार भी क्या मरु है?’

नगर में हाहाकार मच गया। हडनाल हो गई। स्थानत में बाहर बिगड जनसमूह एग्य हो गया। देनते ही देखते दुष्टों से बदला ले, उन्हें समाप्त करने ही दम लगे जादि तारे लगते रहे। ५-६ हजार लोगों ने मुस्लिम मूहल्ले को घेर लिया। पुलिन भी घटनास्थल पर आ पहुँची। मगर जांग ने उफनती जनता पर नियंत्रण पाना पुत्रिण के लिए सम्भव न था।

स्थिति जो अत्यन्त विषमना देख आहत अवस्था में भी चरितनायक की हृस्वक्षेप करना पड़ा। आप अपनी पीडा को भूल गए औ मौलवी की सम्राट पीडा आपके हृदय को भरने लगी। अखिर मछलियों पर कर्णा की वर्षा करने वाला धर्मपुरुष मानव के प्रति कर्णाहीन कैसे हो सकता था?

आपने मौलवी की सुरक्षा के लिए सदेन प्रेरित किया। अग्रिकाशियों ने जौगल में मस्जिद के पिछले द्वार में मौलवी को निकाल कर नहमील में पहुँचा दिया और उसकी सुरक्षा की व्यवस्था कर दी। जनता का ज्यो ही उन छल का पता चला कि उसने नहमील को घेर लिया। दम्बाजे नोट डाले। गुरुदेव के अरमान त पूरा बदरा निने बिना लॉग शान्त नहीं होना चाहते थे। खाली फायर किए गए, कि भी जान की बाजी लगाकर जूने वाले लोग डच्च मर भी नहीं हटे।

स्थिति विषम ने विषमतर होती जा रही थी। जनता नियंत्रण में बाहर हो चुकी थी। समानत हत्याकाण्ड की सम्भावना हृदय को हिता रही थी। इस स्थिति में पुलिम अधिकारी और मजिस्ट्रेट भागे-भागे चरितनायक की सेवा में पहुँचे। बोने—गुरुदेव! अनर्थ होने जा रहा है। रक्त की नदिया बह जाएंगी। आप ही इस स्थिति को समाल मकने हैं।

दयाव्रित चरितनायक ने किसी प्रकार जनता पर नियंत्रण स्थापित किया। योग किचित् शान्त हुए।

अबमर पाकर सुमतमानों के अगुवा आपकी सेवा में उपस्थित हुए। कहने लगे—‘मावन! आप दगाळ हैं। हमारे बालबच्चों की जिन्दगी आपकी मुट्ठी में है। उन नात्यायक ने आपके ऊपर क्या, हम सब पर लाठी बरसाई है। हम गमिन्दा हैं। जमा चाहते हैं। हमारे ऊपर रहम कीजिए।’ गुरुदेव ने उन्हें क्षमा का आश्वासन दिया और तीन बातें उनके सामने रखी—

१ आज ने मछलियों का पकड़ना पूर्ण तरह बन्द किया जाय।

२ अभी २१ बकरे अबर कर दिए जाए।

३. मौलवी को नत्कान यहा से हटा दिया जाय, क्योंकि उसके हिन में भी उमका यहा रहना उचित नहीं।

मुस्लिम नेताओं ने तीनों बातें स्वीकार की। मरुत्व न जनता में कहा—आइयो ! अपना जायन्दा या उद्दय पूरा हो चुका है। अब मुसलमानों के प्रति विगी प्रहार का बरमान की खना चाहिए।

जासमूह युगमाना को साथ लेकर बन्द के चौरे में गहना और सभा के रूप में परिणत हो गया। वी जनता का आर में पुन हीन अनिश्चित गतों का भी मद—

१ अटमी और एकादशी का पशुपय सवधान निवास पाया।

२ हिन्दी का जिन दासबाना पर अभिचार कर तबिया का रूप दिया गया है उन्हें तत्काल पीटाया जाय।

३ भविष्य में ऐसा दुस्मान न बनने की गण्य हो जाय।

मुस्लिम नेताओं ने कहा—गुरुदेव की गतों हम स्वाकार हैं। आपकी दा गतों को मानने में गरा बड़ि नाई है।

नाना कहते ही गात हुई जवागए फिर भान उगी। सभा में मसलमानों के सामाजिक बहिष्कार का फसल किया। जिन को मजाना का तो कर मकिये बना गिय गए व उनमें से एक में रामदबरी और दूसरे में निबजा की स्थापना करवा गई। दस मिनट में हाय काय सम्पन्न हो गया। फिर भा हागा का जाग ठा नहीं हुआ। एक बड़ा दल जामामस्त्रि पर हमला करने के लिए बना। चरितनायक का जवय सवाद मित्रों को आपन सवेग भजा—मस्जिद पर हमला हुआ हा मैं अनगन कर दूंगा।

इस सवेग से लाग गात हुए। तत्पश्चात् आपने लोग का समता युवा कर प्रकृतिस्थ किया।

उल्लिखित दा घटनाएँ ही आपको मरणापरायणता का परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं। वास्तव में मुनिश्री जायन्दा के प्रगत समयक हैं। आपका अतस्तक कल्या बरुणालय है। जीवन्दा के लिए आप द्वारा विगत गए प्रयत्ना का उत्प्रेष करदा समब नहीं है। आपक जावन में अहिंसा की पूरा प्रतिष्ठा है।

महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र में लिखा है— अहिंसप्रतिष्ठाया तत्तन्मित्री बरण्या। अभिप्राय यह है कि श्रद्धा का साधक के इच्छित हिंसर जन्तु भी बर का त्याग करव अहिंसक बन जाते हैं। तीक्ष्ण के समदमरण में मिह और मग जमें जानिविरोधी जीव भी एक साथ प्रमथुवक बठते हैं। यह अहिंसा का ही लोकोत्तर प्रभाव है।

चरितनायक के जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा विश्व कोटि तक हुई है मरणा प्रमाण हम एक मिह के आचरण से मिलता है।

चरितनायक को एक बार जाभुडा चौका पर रात्रिबिनाम करना पना। रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत होने ही अचानक वहाँ एक मगराज (गोहत्या मिह) आ पडवा। किंतु मनिराज के भाव चार आखें होते ही मगराज के अन्तर का डेरदा जाग उठा और पाशू कुत्त के समान बड़ बही बठ गया। इमसे पूर्व कई दिना से वह प्रतिरात्रि वय और प्राम्य पनाया का वध करता रहा था। बरवा के कबरमाहव द्वारा बाधे गए मर्त्य का निवार करव भी व साक निज नगाया। मगर मुनिराज के सावित्र्य में मगराज रात्रि भर गात बना रहा।

मनिराज के साथ जो शठानुजन थे उन्होंने प्रात कात् गुरुदेव के शिष्य प्रभाव का बगान किया तो आपन परमाया—व्यक्ति क्या चीज है ? यह सब अहिंसाधर्म का ही अनौक्तिक प्रभाव है।

चरितनायक की अहिंसाधरणा का परवन् के लिए यह एक अज्ञात कमीगी है।

तप प्रभाव

वि० म २ ८ की एक विगिष्ट घटना भी उल्लेखनीय है। मन्त्रिणा ग्राम में आरना चानुमन्य था।





दीपावली के दूसरे दिन मध्याह्न ३५ ऊठों पर मवार ६५ दम्पुओं ने चारों ओर ने गावों में घेर लिया। दम्पु बड़े ही खूबवार और माहमी थे। उसी दिन प्रातः काल मुण्डाणा और मन्हाग गावों में करीब २० जाटों को मोन के घाट उतार दिया था। उनके धरीर के वस्त्र स्वतंत्रजिन दिखाई दे रहे थे।

मयकर डाकुओं द्वारा गाव घिरा देख लोग जातकिन हो उठे। जो लोग पाते-पाते ये उन्हें मोन नामने नजर आने लगी। उन के साथ प्राणों या खनरा था। ऐसी स्थिति में लोग भाग कर चरितनायक की चरण-परण में आए। सबकी जिह्वा पर एक ही प्रश्न था— क्या होगा ?

चरितनायक ने सबका वैसे बधाते हुए कहा—घबराओ मत। प्रवराष्ट किमी भी मर्ज की दवा नहीं है। धर्म के प्रताप से सब ठीक होगा। धर्मों 'धर्मो रक्षति रक्षत' जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

उधर दम्पुओं के नेता को चरितनायक के विराजमान होने का पता चला तो उसने नायियों को धावेग दिया—गुरुदेव (चरितनायक) मेरे पिताजी के गुरु हैं। जहाँ वे विराजमान हो वहाँ हमें कोई अत्याचार नहीं करना है। जल्दी प्रस्थान करो। ऐसा न हो कि गुरुदेव से कोई उपालम्भ मुनवा पड़े।

दम्पुराज कल्याणमिहजी की गुरुदेव के प्रति यह अद्भुत अट्टा देख जिसे विस्मय न होता। तब तब जैसे-तब जनता ने तप और अहिंसा के प्रभाव का प्रत्यक्ष देखा। मित्रपुरुष के प्रभाव में जब जन्मजान हिंसक जन्तु भी हिंसा का त्याग कर देते हैं तो डाकू तो मनुष्य थे।

राष्ट्रीय भावना

मन्त जन प्राणीमात्र पर समभाव धारण करते हैं। निज-पर की सर्वांग भावना उनके निकट नहीं फटकती। फिर भी वे जिन देश में जन्म लेते हैं, जो देश उनका कार्यक्षेत्र होता है, उसे विश्व का एक अंग मान कर वे उसके उत्थान में योग देते ही हैं। अन्य राष्ट्रों की अविरोधी उदार राष्ट्रीयता मन्तजनों में भी होती है। चरितनायक के जीवन के कार्यकलापों का मन्थन करने पर हमें उनका दर्शन हुए बिना नहीं रहता।

वि० स० १९८४ का समय स्वाधीनतासंग्राम का समय था। ममग्र देश अपनी दामनामुक्ति के लिए जूझ रहा था। मगर रियासतों से व्याप्त होने के कारण राजस्थान की चेतना मूर्छित-भी हो रही थी। राजाओं के प्रचण्ड आतंक ने जनता को दबा रखा था। ऐसे समय में रियासतों में जागृति का मन्त्र फूटना माहम का काम था। किन्तु हमारे चरितनायक महान् साहमियों में अग्रगण्य हैं। जिन्हें मत्त और न्यायमगत ममज्ञा, सारी दुनिया विरोध में खड़ी हो जाय तब भी आप परवाह नहीं करते।

सोजतरौड—वर्षावाम में आपने राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण प्रवचन किए। श्रोताओं में नूतन स्फूर्ति और प्राणों का मन्चार हुआ। दासता से मुक्त होने की तडफ पैदा हो गई। दूर-दूर तक आपके जोशीले व्याख्यानो की प्रसिद्धि हुई। देश के प्रथम मोटि के नेताओं के कानों तक वान पहुँच गई। उसमें आकृष्ट होकर महात्मा गांधी, मरदार पटेल, नूला भाई देसाई तथा मणिलाल कोठारी आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुए। आपका प्रवचन मुनकर सभी ने मन्तोप व्यक्त किया और गुजरात पधारने की प्रार्थना की।

इस प्रकार जहाँ कहीं आपका पदार्पण हुआ, आपने राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में सुन्दर योग प्रदान किया।

आपकी राष्ट्रीयभावना धर्ममोक्ष होनी है और वह आपके जीवन का एक अंग बन चुकी है।

जोधपुर में एक बार आप करीब ११ फुट ऊँचाई में जमीन पर गिर गए। नीचे जोधपुरी पत्थरों का फर्ग था। इस कारण गहरी चोट ही नहीं आई वरन् वाम पाद की नितम्बाम्बि भी भग्न हो गई। छटा होना अमम हो गया। मथानक वेदना का प्रमग था, फिर भी आपने अमाधारण वीर्य एवं महनशीलता का परिचय दिया।

मधुघरक गंग भाग्यमय वा उमी समय डाकटरा का प आण । डाकटरा उवाहर गंगन वा निरन्तर दिया गया । अरनाल में प्रविष्ट करने पर भी विचार नान लगा । मधुघर निरन्तरवा न स्थिर वा निर—गार गानन नहीं क्या न कभी गान का है । गंगका मय वि वा नग । रह ना भन रहे जाण तो भन जाण । गारर व जान पर भी मरा मुल गरी जाना । म रिगो विनिगा न । वराऊगा । डाकटरा न वतरा विवाग निगा नि रिगा निरिद दवा वा प्रभाव नी दिया जाग्या निनु चरितनाथक न मीन धारण कर दिया । विवा डाकटरा गंग का नग जाना गया । पर गंगो जरी वा क्लाज दातु दिया गया और उमी ग स्वा स्थानम हुआ ।

मय वा ते है मन्वी राष्ट्रीयता ।

उप विहार

चरितनाथ — जानन की अनन विगपनाआ म एक घटूत यही विगपना है—उप विहार की । पन है वि आज उप विहार वा अथ जनी जनी चनना समता गान लगा है । अगर काई मय एर ही दिम म १५ २० मईल माय पार नर लता है ता उप उपविहार वा जाना है । निनु यह अथ भागमममम मग है । माधु की वैवागमिति से यनतापूरक आगे नी चार हाव भूमि वा मनी भाति निराधन वा हूत चनना चाणि । इनमनि स चलने पर स्थानमिति का पानन न । इनन ।

ता उपविहार वा ममीचान आगय क्या है ? वन मधुघरकसरीकी जीवनी स जाना जा गयना है । आर निमी एक स्थान पर अधिर निगा सन नग ठरत । जनी एर माय सन टरत आ सनना है वन मा प्राय एर मन्वी स अधिर नी ठरते । घागा म अवार दोनाग दिम ट रन हैं । विनय वारण की बात अग है पर माधुरनयन वनन मे भा वन ठरना गारकी प्रवृति है । मनी वारण है कि चानुमन्थ व अतिरिक्त गन आठ मनीना म आपन विचार वा अंगन करीव आ सो मीन होना है । निमय १०० १५० घामा म पयनन हा जाना है । घामन म यही उपविार है ।

आपन चानुमन्थ स्थान की मुरी देखा म विनि हागा कि घाग नयन की अगता घामा म भीमाग बनना और विहार करना अपिर पम करन है । आप स्वय कमने हैं—

माया म आजकल प्राय सनन मन्वीमाया वा मयोव लावा वा वनी नी रीननाई स प्राय जाना है । वयोकि सनन भी प्राय आवयव माधन-मविघामो की सलमनाओं व वारण यडे-ये वारना म ही अधिर मयन रनी लन हैं । लोके बनिवा की ओर उनरा ध्यान आकषिण नहीं होना । गावा म वनन वन ही सन मुदय गहुवने है । मान मन्थ नन चार मान वा लम्बा निवात तो अलन ही दनमना है । फिर भी ना सन गज आनर पाता । घोर धन पिरलापनिवा ममि वा साधन चाहन हैं वन मो वल्ल गावों म ही मन्थ है । गंग म ना वर अयन ही दुप्राय है । मधुर प्रायन प्रन व वडा हो अन्धन है । एन घामा में भी आपने मन्वीको ना भोड गंग रनी है । जही घाग गहुवने है वही निगा यडे अगर वा मा दय यडा हा जाना है ।

आपन मन्थमिति जनी है । मुदमविन मे प्ररित होकर आप औरपनाययनी मधुघरकसरी आवयमन मुदमयनी घाणि ममारी प्रविण अयाजिन करने हैं । लीलागा जयना भी माया मना है । ऐम अवमरा पर मन्थ नन्वीनी घामा मे एनन हाते हैं और उनम आर घामिक्ता व मन्वीको वा आरापन करने हैं ।

अन विनयनाए

चरितनाथक वा निनुगंगरस दाविवा की है जेगा कि आपन गानकी गान मे प्रीन होना है । आपन निगाभी ना मन्वीक अधिारी रहे और वाचकाल म आपन पानन पारन रावमाया वा दमन्थ म मन्थ न स हा । इन मय पन्नामा वा प्रमाय चरितनाथक व अविनयन पर एनन कय मे वरिणित हागा है । नन आपन





मे जो अमाधारण तेजस्विता, निर्भीकता और स्पष्टवादिता है, वह सम्भवतः उन्नीता परिणाम है। इसी तेजस्विता के कारण अनेक राजकी आपके आदेशों का उभी प्रकार नतमस्तक होकर पालन करते हैं जैसे विनीत मित्र गुण के आदेश का पालन करता है।

श्रीमन्तो का प्रभाव मन्त्रों पर भी देखा जाना है मगर मरुधरकेसरीजी इसके आवाद हैं। जैसे सूर्य के तेज के समक्ष अन्य तेज फीके पड़ जाते हैं उसी प्रकार केसरीजी के सामने बड़े-बड़े तेजस्वी भी नेत्रोद्गीर्ण हो जाते हैं। आप किसी के दबाव में आना जानते नहीं। श्रीमन्तो की मण्डली हो, विद्वानों की समाजा अथवा मन्त्रों का समूह हो, सदैव मूर्खन्य होकर ही रहते हैं। आप दूसरों के चलाए चलते नहीं, दूसरों को चलाते हैं। वाग्व में मय द्वारा प्रदत्त 'मरुधरकेसरी' विरुद्ध आपके लिए सर्वथा उपयुक्त है।

'विद्वान्तेषु विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्' इन उक्ति के अनुसार आपका विद्वानों के प्रति नद्वैय महानुभूति-मय व्यवहार रहता है। जो विद्वान् आपकी सेवा में उपस्थित होते हैं वे यथोचित सम्कार पाए बिना नहीं छोड़ते। यह आपको विद्वत्ता एवं विद्याप्रेम का परिचायक है।

ज्ञान के प्रचार के लिए आप सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। अभी तक आपके उपदेश एवं प्रेरणा ने नि० लि० संस्थाएँ स्थापित की गई हैं—

- (१) श्रीलंकाशाह जैन गुरुकुल, सादडी-मारवाट
- (२) श्रीगोतम जैन गुरुकुल, सोजत शहर
- (३) श्रीजिनेन्द्र ज्ञानमन्दिर, निरियारी
- (४) श्रीपार्श्व जैन कन्याशाला, कुशालपुर
- (५) श्रीजैन स्थानरुक्मिणी कन्याशाला, नीमाज
- (६) श्रीपूज्य रघुनाथ जैन पुस्तकालय, सोजत शहर
- (७) श्रीजैन बुधवीर स्मारक मंडल, जोधपुर
- (८) श्रीजैन गोशाला, जयतारण
- (९) श्रीवर्धमान आयबिल छाता सादडी, व्यावर, सोजत, जोधपुर

इनके अतिरिक्त वाचनालय, पुस्तकालय आदि अनेक संस्थाएँ आपके सदुपदेश में स्थापित हुई हैं।

उपसंहार

मरुधरकेसरी मुनि श्रीमिश्रीमलजी म० के जीवन की यह सक्षिप्त रूपरेखा है। इसमें पाठक समझ सकेंगे कि आपका व्यक्तित्व अत्यन्त तेजस्वी, ओजस्वी और वर्चस्वी है जिसकी विराटता शब्दों के मागर में नहीं समाती, जिसकी स्मृणीयता सदा श्रद्धास्पद रही है, जिसने सुपुत्र जनमानस में जागृति का स्वर सुखरित किया है और अपने जीवन की दिव्यता के उच्चतर सोपान पर प्रतिष्ठित किया है।

मरुधरकेसरीजी अनूठी प्रतिभा के प्रकाशमय पूज हैं। जैनदर्शन, व्याकरण, साहित्य, गणित ज्योतिष आदि के ज्ञान के रूप में जिनमें सहस्र-महस्र किरणें विकीर्ण हो रही हैं। उन्होंने लाख पद्यों का निर्माण किया है, आमु-कवित्व उनके लिए क्रीडा है।

मरुधरकेसरीजी जीवन, जागृति और पावन प्रेरणा के चलते-फिरते 'मिशन' हैं। उन्होंने श्रमणसंघ के संघटन के लिए भगीरथ-प्रयास किया है, शिक्षासंस्थाओं की संस्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, ग्रामो और

मगरा म फल रश्मि वा उपगमन किया है गान्धि सोमनस्य और एकता की स्थापना की है और समाज का गला घाते वाला कुच्छिन्ना व विच्छिन्न मिटवान किया है ।

आर्य समाज का अनुसूच गान्धि म मन्त्रि राजस्थान व अनन्त मरुधरा की परिष्कृत विभूति है । व । र
मनन नाम और जाति म उन नूनन गौरव प्राप्त किया है और उनका विविविधत यम म नार चान लगाए है ।

महर्षिभारतीजी व मन्त्र जनसम आचार व द्वा प्यमा नभान हैं मणसम व प्रगामात मूय हैं आधार
रमसम हैं वा भा हैं मजग प्रहरा है ।

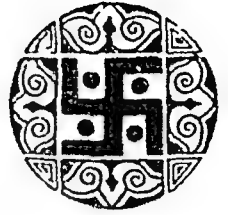
गान्धि वामना है कि महर्षिभारतीजी चिरजीवा हारर सप और सामन व अम्भु य वे ममान उत्तर
मपित्त व मकाना व साथ वृत्त वस्त रत् ।

•



मरुधरकेसरी और उनकी संघसेवा

चिम्मनसिंह लोढा



जैन समाज का एक इतिहास है और वह महत्वपूर्ण है। भगवान् आदिनाथ ने भगवान् पार्श्वनाथ तक का इतिहास यद्यपि कमबद्ध नहीं है, किन्तु पार्श्वनाथ ने महावीर तक का कमबद्ध मिलता है। चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने आज तक का इतिहास बहुत अंगों में स्पष्ट है तथा पट्टावलिओं में या अन्य आचार्यों में अंगों पीढ़ी का क्रम प्रायः बराबर मिल जाता है। जैन इतिहासकारों ने इन दिशा में प्रयत्न नहीं किया, यह कहने का तो मैं मान्य नहीं कर सकता, किन्तु जितना करना चाहिये, उतना नहीं किया। ऐतिहासिक गवेषणा के लिये विपुल धनशक्ति की जरूरत होती है तथा जीवन देने वाले व्यक्तियों की। यहां उमर इतिहास तथा उमर काल की मान्यताओं में मैं नहीं पड़ना चाहता। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायों का प्रचार था और दोनों आम्नायों के आचार्य आज तक हाते आये हैं। उदभट्ट विद्वान्, साहित्यकार तथा क्रियाकाण्डी सभी तरह के आचार्यों तथा सन्तों की जीवनीया मिलनी हैं। बड़े बड़े राजा महाराजा भी जैनधर्मावलम्बी थे तथा उन्होंने जैनधर्म की महत्वपूर्ण सेवा की है।

चीज जब पुरानी पड़ जाती है तो उसमें विकार पैदा होता ही है। विभिन्न युगों की विभिन्न परम्पराएँ। पार्श्वनाथ और महावीर की परम्पराओं में भी कितना अन्तर? पार्श्वनाथयुग की मान्यताओं तथा परम्पराओं में महावीर ने बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया, यह कह दूँ तो भी चल सकता है। हर चीज के अच्छाई और बुराई दो पहलू हो सकते हैं। समय के साथ परिवर्तन अवश्यभावी है। जब किसी बात की अति हो जाती है तो उसमें परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। तापस से सन्त हुए और सन्त से यति। धर्म के नाम पर जब यतियों का पापण्ड अत्यधिक बढ़ गया तो क्रान्ति का आना स्वाभाविक हो गया।

पन्द्रहवीं शताब्दी की बात है। धर्मप्राण लोकाशाह धर्मक्षेत्र में अवतरित हुए। लोकाशाह का जन्म कहा हुआ तथा किस सत्त्व में हुआ, इस सम्बन्ध में काफी मतभेद है। विभिन्न लेखकों ने विभिन्न जन्म स्थान तथा विभिन्न जन्म-सत्त्व बताये हैं। हमारी धारणा यही है कि उनका जन्मस्थान अरहटवाड़ा था तथा जन्म सत्त्व १४७२। धर्मप्राण लोकाशाह का कार्यक्षेत्र निस्सन्देह अहमदाबाद रहा है, क्योंकि उस काल में अहमदाबाद धर्म का केन्द्र-स्थान था तथा यहाँ यतियों का बोलवाला था। यतियों में भी चमत्कारी यतियों की कमी नहीं थी, किन्तु धर्म अलग है और चमत्कार अलग। हमारा सम्बन्ध धर्म का था। धार्मिक दृष्टि से शिथिलाचार वेद धर कर गया था। उसे धर्मप्राण लोकाशाह सह न सके। उन्हें वचन में शास्त्रवाचन का शौक था, किन्तु यतियों ने ऐसी स्थिति पैदा कर रखी थी कि गृहस्थ को शास्त्र मिल ही न सके। लोकाशाह लिखते बड़ा सुन्दर थे। यह बात जब यतियों को मालूम हुई तो जिन्हें जिस शास्त्र के लिखवाने का काम पड़ता, वे लोकाशाह को बुलवाते। लोकाशाह जो चाहते थे, वही होने लगा। वे लिख कर देते और उन्हें जानने को मिलता। अनेक ग्रन्थों के लेखन का काम उन्होंने किया, अतः ग्रन्थों में उपपादित धर्म के रूप का ज्ञान होना स्वाभाविक था। गम्भीर जानकारी, ज्ञान तथा मनन के पश्चात् शनैः शनैः उन्होंने जवान खोली तो धर्म के ठेकेदार आग बबूला हो गये। लोकाशाह चालू प्रवृत्ति को किसी भी हालत में सहन करने की स्थिति में नहीं थे, अतः वे प्रगट में आये और सत्य धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया। उनके प्रवचनों को यति तथा उनके भक्त सह न सके और हर कीमत पर उस प्रचार को रोकवाना चाहा। लोकाशाह तो चूँकि युग-पुरुष थे अतः पलोभन, भय या आतंक किसी का उन पर प्रभाव नहीं पड़ा। वे निर्भीकतापूर्वक आगमप्ररूपित धर्म के प्रचार में लग गये। उनके तर्कसंगत प्रवचनों का प्रभाव भीरुसा ही पड़ा और अनस्य नरनारी उनके भक्त हो गये। यतियों के पापण्ड और शिथिलाचार का भण्डा फूटा और

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100

한글서체 100% 한글로만 쓰여진 한글서체 100





स्वयं महरकैसरी सम्मेलन के पहले पात्री पहुँचे तथा श्रवणका मञ्जरी फूँटा । महरकैसरी-सम्मेलन का यह रूप हो सकता है, यह कल्पना ही नहीं हो सकती थी । इस भाग पहिले ने ही विनिश्चय चरित्र-वर्णन था । पुष्टि तबान् दृष्टि से सभी के मुँह पर माधु-सम्मेलन की चर्चा । सभी का सम्मेलन की चर्चा में था । कहीं नयातरी महरकैसरी ही नहीं है तो कहीं अतिथियों के लिये मकरानों की देखभाल । कहीं प्रवेश करने की नौकरी । तो कहीं सम्मेलन के बाँटें लगाने की । जोग फूँट कर वातावरण ही अममय-मा (सम्मेलनमय) बना दिया । सम्मेलन के पहले प्रमोद-वृत्त-मञ्जरी-माँ-तारा श्रीरजभाई पाली आये और वातावरण देखकर चरित्र हो गये । दुष्ट-मञ्जरी-माँ ने महरकैसरी से कहा—दुष्टे प्रमोदना है कि आपने मेरी चौधपुत्र यात्रा को नफरत का दिया । आप जैसा उम्माह तब नयप्रेम सभी मन्त्रों में दयालु हो जाय तो नमाज का वस्त्राण ही जाय । मुझे यहाँ की स्थिति ने सभी प्रमोदना है । इस सम्मेलन का प्रभाव प्रत्येक प्राणी पर बहुत अच्छा पड़ेगा तथा बहुत सम्मेलन की प्रकृति का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा ।

महरकैसरी ने वक्ता की व्यवस्था को ना सम्मेलन ही, आने वाले मन्त्रों के स्वागत की भी सुनना संजना बनाई । युवक मन्त्र उम्माह के साथ जाते और मन्त्रों का स्वागत करते । २०-२०, ३०-३० मील दूर आयात के लिये जाते और मन्त्रों की जय-जयकार करते । पत्रागने बान् मन्त्रों के दिन की हजे हो गये । प्रचार तथा प्रचारि दूर-दूर से स्वागत-समिति के पास दर्शनार्थियों के आगमन एवं आवास-व्यवस्था के लिए पत्र तथा नगर आने लगे । कलहना, बन्दरी, मद्रास, खानदेज-वराह आदि प्रदेशों में लोग पहुँचने लगे । महरकैसरी जने हुए थे ही, उन उम्माह में अभिवृद्धि होती रही । कई युवक तो आपे को भूँट गये । जब देखा, महरकैसरी-सम्मेलन का काम था उसी की चर्चा ।

ज्यों-ज्यों सम्मेलन का मनन नजदीक आता, र्यों-र्यों, रोंगों के उम्माह में वृद्धि होती ।

सन्तो का आगमन — सम्मेलन में पहले ही एक-एक करते सभी मन्त्र पात्री पहुँच गये । तब उनका स्वागत था । तीन-तीन चार-चार मील तक स्वागतार्थ र्यों-पुष्टि नामने जने, साथ से महरकैसरी लेने । जय-जयकार के साथ मन्त्रों का नगर में प्रवेश होता । आगमन के जैन र्यों मन्त्रों में जाकर सभी दाय गय तथा बाहर से भी काफी लोग आगये थे, अतः स्वागत में अवार मीट होती थी । सभी मन्त्रों का ऐसा ही स्वागत था । तब तक साम्प्रदायिकता का त्याग करने के लिये ही सम्मेलन ही रहा था अतः जाने में साम्प्रदायिक दृष्टि होने का मन्त्र ही नहीं था । जो उस समय नहीं पहुँचे, उन्हें पश्चात्ताप करते ही देखा या सुना । जोग पात्री नगर का अहीनाग मान रहे थे ।

आपन में वर्षों में न मिटने वाले मन्त्रों के दिल की उदात्त ! बिना किसी के प्रयत्न के न तो मार्ग प्रशस्त । मतभेद वाले मन्त्र भी ऐसे मिटने, मानों उनमें सभी मतभेद था ही नहीं । वातावरण का प्रभाव प्रकृति ही है । विधा लेने के लिये एक मुन्दर अवसर था ।

सम्मेलन का दिन आया । प्रथम तथा अन्तिम दिन की मन्त्रों का दृष्टि देखने जैसा था । मन्त्रों की बहिष्कारी है । महरकैसरी के पञ्चात् महरकैसरी का प्रारम्भिक प्रवचन हुआ, जिनमें उन्होंने सम्मेलन की पररेखा रखी । वही सही कमी की उन्होंने वहाँ पूर्ति कर दी । लोगों में ऐसा जोष मरा कि, सम्मेलन के विवाह कुछ नूने ही नहीं । बाय में एक-एक करके सभी प्रमुख मन्त्रों के प्रवचन हुए । एकरा के विषय में सभी एकमत थे ।

नयऐव तथा धम्मणस के सम्मन्ध में सभी के एक से एक बटार प्रवचन । बीच-बीच में तात्त्विकों के स्थान पर जय-जयकार । ऐसे तो नैतृत्व प्रवर्तक मन्त्र श्रीपन्ना-गलजी महाराज कर रहे थे, किन्तु उमता ऐसा ही था, मानों मन्त्रालय महरकैसरीजी कर रहे हो । वास्वविक्रता भी यही थी । महरकैसरी के दिन का ही जोहर था कि सम्मेलन का यह रूप बना । इसे कौन प्राचीन सम्मेलन कहता । मीटिंग में करीब पन्द्रह हजार स्त्री-पुरुष थे । छोटे से नगर में, जहाँ स्थानकवामी जैनो के मुदिकल में ६०० घर होंगे, इतना बड़ा समूह ! जैन-जैनेतर सभी अपने आपको गौर्वाण्वित अनुभव कर रहे थे । सभी आतिथ्य तथा सम्मेलन की नफरत के लिये तत्पर थे । महरकैसरी अपने गुत्तर उत्तर-दायित्व को अनुभव कर रहे थे । प्रथम दिन की मन्त्रों के बाद मन्त्रमण्डल सम्मेलन सम्मन्धी काम में लग गया । जो देखा जाय तो मन्त्रों के उदार प्रवचनों के पञ्चात् करना जेप रह ही क्या गया था ? प्रेम में सिने, बन्दना की, साथ बैठे तथा

के साथ हुए। अजमेर अधिवेशन की अध्यक्षता हेमचन्द्रभाई ने, सादडी-अधिवेशन की अध्यक्षता मेठ चपानाजी बाटिया ने तथा मीनामर-अधिवेशन की अध्यक्षता विनयचन्द्रभाई दुर्लभजी ने की।

मरुधरकेसरी के जीवन की अनेक विशेषताओं में एक विशेषता यह है कि वे जा गोंध देने हैं, उसे पूरा करके छोड़ते हैं। तीन महामम्मेलनों के मिवाय एक छोटा-सा मम्मेलन गोंधत में भी हुआ और वह मरुधरकेसरी की धुन के परिणामस्वरूप। इस धुन के धनी ने मोच लिया कि अपने दीक्षाक्षेत्र में प्रमुख नमी मन्नों को लाना, ले जाने। ऐसी अन्य धुन विरल ही होती है।

यमणसय का निर्माण हुआ। बाहर से साम्प्रदायिक भावनायें समाप्त हुई, किन्तु अन्दर तपित-तपी रह गई। वह साम्प्रदायिकता निरन्तर सनाती रही। कभी किसी वहाँने में गोटे में जाना तो अभी कोई दमग। आचार्य और उपाचार्य के पद भी रिक्त हो गये और कुछ ऐसी समस्यायें भी उपस्थित हो गईं, जिनका समाधान आवश्यक था। अतः चौथे मम्मेलन की योजना बनाई गई। चौथा मम्मेलन भी अजमेर में हुआ। आचार्य पद की चादर वही पर पूज्यश्री आनन्दरूपिजी म० का ओटाई गई।

सभी ऐसे आयोजनों में हमारे इन चरितनायक का सहयोग सक्रिय एवं महत्वपूर्ण रहा है। सधमेवा की भावना के बिना कभी सक्रिय सहयोग सम्भव नहीं होना।

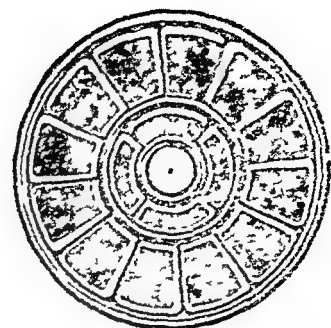
अपने क्षेत्रों को सम्भालने में आप जैना पुरुषार्थ कम मन्नों में मिलेगा। जबानी और प्रीटावस्या में तो लम्बे तथा लगातार विहार विम्वयजनक नहीं है, किन्तु आज इस ७५ वर्ष की अवस्था में भी चातुर्मास के बार दो चार दिन में अधिक अनिवार्य परिस्थिति के मिवाय आप कहीं नहीं ठहरते। आठ माह बराबर चिचरने हैं और प्रायः सभी क्षेत्रों को सम्भालते हैं। इतनी वृद्धावस्था, आपको में मोतिया तथा घुटनों में बाढ़ी का दर्द और फिर रम्बा-लम्बा विहार। आठ महीनों में इनने क्षेत्रों को गायब ही कोई मन्त्र सम्भालते हैं। मार्ग में बुबार जागजा, गिर गये, चोट लग गई, फिर भी विहार। बरीर जब तक चल सकता है, आप उसे अविराम चलाते हैं। खबर मिली मरुधरकेसरी गिर गये और चोट लग गई। डाक्टर गया पट्टे-पट्टी बंधे, दां रोज बाढ़ पुन सम्भालने गये तो गायब, जब कि डाक्टर एक सप्ताह तक पूर्ण आराम की हिदायत कर गए। भवन लोग कहते हैं—महाराज, आराम किया कीजिये, वे भाग बहूला हो जाते हैं। समाज का खाना है, उनमें अधिक सेवा कर देना चाहता है। इस तरह आठ महीनों में कम में कम मात-आठ नौ मील का विहार कर बहुमत्यक गांवों को सम्भाल लेते हैं।

धर्म की अवहेलना आपमें कहीं नहीं होती। कहीं में ऐसी खबर मिल जाय, स्वयं पहुँचने का प्रयत्न करेंगे या किसी को भेजेंगे तथा निराकरण की व्यवस्था करेंगे। आपके भक्तों की भक्ति भी कमाल की देखी। छोटे-छोटे दम बौम घरों के सब और मरुधरकेसरी का चातुर्मास। यह जानते हुए कि चार महीनों में एक दिन भी चैन नहीं मिलेगी तथा १००५० दर्शनार्थी स्थायी रूप से रहेगे, भक्तिवश वे चातुर्मास कराने का प्रयत्न करते हैं। जहाँ तक छोटे गांव की विनयी होती है, आप वही चातुर्मास करते हैं। जगल में मगल वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। छोटे में ग्राम में ठाठ। ब्रह्मा प्रभावशाली हैं ही फिर मीन का पुट। जैनों के मिवाय, दूसरे भी बड़ी सन्ध्या में व्याख्यान में सम्मिलित हो जाते हैं। मैंने अनेक चातुर्मासों में अजैन स्त्री-पुरुषों को अठाई तक करने देखा है।

बाहर के भक्त भी नाना प्रकार की सेवायें करते रहते हैं। किसी ने बाटने को पुष्पकें भेज दी तो किसी ने वैठके और पूजणी। किसी ने गरीबों के लिये कम्बलों, धूमों या चादरों की गाँठें, तो किसी ने कुरते नण्डे या घोटिया। मरुधरकेसरी के चातुर्मास में दो-चार व्यक्ति तो ऐसे मिलते ही हैं, जो स्थायी रूप से वहीं रहते हैं। वे उन आई हुई चीजों को आवश्यकतामदों को देने की सेवा प्रदान कर देते हैं। चीजें अविकाश में ऐसे लोगों को ही देते हैं, जो आज-विना के त्रिवे परित्यक्त हुए भी आवश्यकतामद होते हैं अथवा अगस्त, विधवा या वृद्ध। इनमें भी धर्म की प्रभाव-वना होती है।

मरुधरकेसरी की संयमनिष्ठा

मुनिश्री रुपचन्द्रजी 'रजत'



मन एवं इन्द्रियो को अपने वश में करने तथा प्राणियों को रक्षा करने का ही नाम मयम है। जो मनुष्य अपने मन और बुद्धि पर नियम प्राप्त कर लेता है, वही श्रेष्ठ माधक है। आत्मविज्ञान के तम में दो बाने महत्त्वपूर्ण होते हैं—एक तो अपने आपके दापो का निरीक्षण-परिचक्षण करना और उनके विनियोग द्वारा त्याग का मन्त्र ग्रहण करना, दूसरे आध्यात्मिक रहस्य का समझना, सम्प्रकाशित हो आत्मनिष्ठ ज्ञान का समान के समान वैभव का परिचय देना और निरर्थक होकर जिन-शिक्षा लेना। यह दृष्ट आत्मा रखना कि जगत् में अपने आत्मगुणों का विज्ञान ही श्रेयस्कर है और इसी में जीवन की मार्गदर्शिका है।

ममम समार इन्द्रियों का दास बना हुआ है। इस कारण प्रायः प्रत्येक चीज निर्जन, दीन-हीन और पराधीन बना हुआ है। आत्मा के परात्म और स्वाधीनता को इन्द्रियों की दासता छीन लेनी है।

आत्मा को आध्यात्मिक दृष्टि में सफर, उन्नत और सन्निधाली बनाने के लिए इन्द्रिय-निग्रह अर्थात् मयम-निष्ठा अनिवार्य है। दिनचर्या मनुष्य की मयमनिष्ठा की कमीठी है। नियमबद्ध दिनचर्या ही प्राणी के लिए उपयोगी और कल्याणकारी सिद्ध होती है। महान् पुरुषों की दिनचर्या में वह विमिश्रता होती है, जो साधारण प्राणियों में नहीं पाई जाती है। इस भेद (विमिश्रता) की चर्चा करने हुए श्रुतिस्मरण ने लिखा है—

मरुधर मेन रैन दिन मन्त्रु-विन्दु सम लेख ।

शठ-पडिन चाकर धनी, तिम यह अन्तर पेख ॥

यदि व्यक्ति दिनचर्या में मयम ने काम लेता है, परन्तु अपने जीवन में विषय-भोग, कलह और प्रलाप आदि को महत्व देने लग जाता है तो उसकी मयम-निष्ठा अर्थहीन हो जाती है।

मयमी जीवन बड़ा कठिन है। मयम के लिए सभी प्रकार के वधन आवश्यक हैं, जिनमें मिथिलता नहीं आने पाये। जीवन में जो कार्य हमें सन्तुष्टि के समीप पहुँचा नकें, वही मयमनिष्ठा के लक्षण हैं। दिनचर्या को नियमबद्ध करके व्यक्ति सभी आवश्यक कार्यों को उचित रूप में निबटा सकता है और अपनी माधना में अग्रसर हो सकता है। आत्म-साधन के लिए तो नियमित दिनचर्या अनिवार्य है।

नियमित दिनचर्या हर व्यक्ति को नई प्रेरणा, नया उत्साह और नई स्फूर्ति प्रदान करती है। यहाँ मैं एक महान् योग-युक्तात्मा मन मुनिश्री मिश्रीमल्लनी महाराज की दिनचर्या की छाकी प्रस्तुत कर रहा हूँ—

मरुधरकेसरीजी ऐन महान् व्यक्ति हैं जिन्होंने अपनी मयमनिष्ठा का आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किया है। आप के जीवन में नियमों का पालन और इन्द्रियनिग्रह उच्चस्वरीय है। आप प्रतीदिन रात्रि के पिछले प्रहर में टाई-नीन बने जाग जाते हैं। सर्वप्रथम आप पञ्चपरमेष्ठी महामन्त्र का १०८ बार स्मरण करते हैं फिर धाम्प-स्वाध्याय में मग्न हो वसुन्धरा समस्त का लाभ उठाते हैं। श्रद्धा के आश्रय प्राचीन आध्यात्मिक मगीतबद्ध पद्यों का पठन एवं

मनन आदि आवश्यक किया करते हैं। तत्पश्चात् प्रायना में पधार कर भक्तियों का भगलपात्र बनाते हैं। आपके वाचन की मधुरता से सभा मूर्च्छा हो उठती है। शीघ्रान्ति से निवृत्त होकर पुनः कविता एवं लेखनार्थ में प्रस्थित हो जाते हैं। तत्पश्चात् 'साम्प्रदायिक' आदि कार्यों में अपना समय लगाते हैं।

आप पहर दिन के बहुत विविध कारणों से बिना किसी खाद्य एवं पेय पदार्थ का उपयोग नहीं करते। इस युग में इस प्रकार की कठोर निष्ठा का पालन बहुत कठिन है।

आप प्रतिदिन सात या (बस्तुओं) का ही आहार में उपयोग करते हैं। दूध, दही और छाछ आदि गृहस्था के निम्नी धरो का ही काम में लते हैं। बाजार से खरीदी हुई किसी वस्तु का उपयोग नहीं करते हैं। व्यञ्जन भी आप मूत्रा और बज्ज कर्म (विशेषकर ५ तरह का) नियमानुसार ही काम में लेते हैं। बाजार के मिष्ठान भी आप काम में नहीं लते। बचक मिथी व दूध की वस्तु ही काम में लते हैं।

आप मादा भोजन भी पसन्द करते हैं। जिस जाति-मुक्त में माता का प्रयोग होता है उस के घर से आहार पानी ग्रहण नहीं करते। इसी व्यवस्था के कारण आप प्रायः राजस्थान में ही भ्रमण करते हैं। आप अपने सारा घर भी कुछ खाती के बने हुए वस्त्र ही पहनते हैं।

आप चातुर्मास के प्रारम्भ में मोन का तैला अवश्य करते हैं। त्रिवारि वर भी मोन का तैला करते हैं जिसमें १०-१२ हजार सूत्र पायाओं का स्वाध्याय किया करते हैं।

आप सध्या का प्रनिर्गमण के समय हमेशा मोन रखते हैं। रात्रि का 'गयन' का प्रायना के समय ही आपरा मोन खतता है। दिन में भी १२ प्रज एक घटा मोन रखते हैं। हर मास में गुप्तका एकादशी और वृष्णा प्रतिपदा को मोन किया करते हैं। आप विदेशी स्वाद का प्रयोग नहीं करते अत्यावश्यक ही पर देशी दवा का ही उपयोग करते हैं। बिना पारिवारिक कारणों के दिन में 'गयन' नहीं करते। हमेशा दो विषय से व्याप्त रह जाते हैं। आप प्रतिदिन दो बार के सिवाय आहार नहीं करते हैं। मधुकरकेसरीजी की यही निश्चयी है।

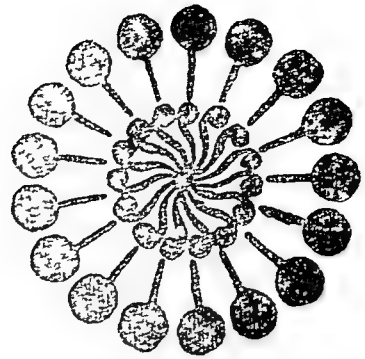
समय की सरला के लिए किस प्रकार आहार विहार को नियमित रखना चाहिए इस तत्त्व को आपकी भगिनी भानि समझा है और इसी कारण आप अपनी रसना इन्द्रिय पर पूरा नियन्त्रण रखते हैं। वस्तुतः आपकी समय निष्ठा प्रत्येक साधन के लिए अनुकरणीय है।



मरुधरकेसरी की काव्य-कला

डा० नरेन्द्र मानावत,

एम० ए०, पी०एच० डी०, साहित्यरत्न,
हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर



मरुधरकेसरी प० मुनिश्री मिथीमलजी म० उन कवियों में हैं जिनमें एक ओर सत कवि का प्रचलित रट पम्पराओं के प्रति विद्रोह और सत कवि का अपने आराध्य के प्रति स्नेह-समर्पण है तो दूसरी ओर चमत्कारप्रिय कवि का बौद्धिक विलास और इतिवृत्तकार का तथ्यनिरूपक उल्लाम है। इनकी समस्त काव्यचेतना लोक-जीवन में रम-ग्रहण करती है। यही कारण है कि क्या कथा, क्या चरित्र, क्या गिल्प, सभी में लोक-तत्त्व उभर कर सामने आया है। मरुधरकेसरी के व्यक्तित्व का ओज इनके प्रभावशाली पात्रों को मिला है तो 'मिथी' की मिठास काव्यगत गिल्प में विभिन्न राग-रागिनियों में घुलमिल गई है।

काव्य-रचना

मरुधरकेसरी की दृष्टि जीवन के व्यापक फलक पर टिकी है, पर वह सतही नहीं है। अनुभव की गहराई में डूबकर उन्होंने जीवन के सत्यों का मार्मिक उद्घाटन किया है। उनकी तलस्पर्शिनी अनुभूति और तथ्यभेदिनी दृष्टि ने इतिहास के अन्विषज में नवीन प्राण-चेतना फूँकी है, नवल रुधिर प्रवाहित किया है। उपदेश की दुनिया में प्रचलित लोकोद्घातों, लोक-कथाओं और लोक-उपमानों के माध्यम में रम-चर्चणा की है। 'महाभारत' के कथानक में उन्हें जीवन के विविध रूप दिखाई दिये, अच्छे और बुरे पात्र दिखाई दिये। जीवन को संपूर्ण सदर्भों में देखने-परखने की दृष्टि ने उन्होंने विद्यालकाय 'षाण्डव यशोरसायन' की रचना की। जीवन-संघर्ष और जीवन-विक्रम में दृष्टान्तों का बड़ा हाथ रहता है। शास्त्रीयता से दूर हटकर विशुद्ध लोकभूमि पर मुनिश्री ने जिस 'मधुर दृष्टान्त मज्जूपा' की रचना की वह वर्षों के अनुभवों का सचित कोष है। मुनिश्री की दृष्टि ज्योतिषविज्ञान की ओर भी गई। जैन ज्योतिष के सार-सत्त्वों को उन्होंने 'बुधविलास' के तरंग २ में निरूपित किया। इसे रचनात्मक साहित्य में न गिनकर भले ही सूचनात्मक साहित्य में ही क्यों न लिया जाय, पर इमने कवि की जीवन-दृष्टि को जानने का तो अवसर मिलता ही है। विभिन्न चरितकाव्यों के माध्यम में मुनिश्री ने कर्मवाद, जीवनाचार, जीवनादर्श की ओर संकेत किया है।

मुनिश्री ने भी मे भी अधिक ग्रंथों का प्रणयन किया है। उनकी सूची इस प्रकार है—

श्रीमरुधरकेसरीविरचित साहित्य (प्रकाशित)

१ पाठव यशोरसायन	(महाभारत)
२ मरुधर के महान् मत	(४ चरित्र)
३ मरुधरविजय	(३५ चरित्र)
४ मरुधर माना का नवून	(गर्जसिंह चरित्र)
५ नव निगान	(नव चरित्र)

- ६ मधुग पचामल (५ चरित)
- ७ पतंगसिन् चरित
- ८ वसन्त माघा मनुषाय चरित
- ९ भविष्यन्त चरित
- १ गीर्वाण चरित
- ११ गीर्वाण चरित
- १२ विनयवता चरित
- १३ उक्कल चरित
- १४ धमन्त-चरित
- १५ पुण्डरीक चरित
- १६ लपाना नाकुर चरित
- १७ पन्तरखा चरित
- १८ गीर्वाण चरित
- १९ वयन्तागा चरित
- २० मान मुनि चरित
- २१ अनिकारी बीर काकागा (हरिगीतिका)
- २२ धमवीर काकागा (राजस्थानी)
- २३ धमप्राण काकागा (गद्य)
- २४ निगम्बमतसमीक्षा (गद्य)
- २५ क्या मूर्तिपूजा शास्त्राचन है ? (गद्य)
- २६ मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त न है (गद्य)
- २७ सन्धा संपूत (गद्य)
- २८ लमला का लफ न (गद्य)
- २९ भावगारा भीडू (गद्य)
- ३० टणकाई रा सीर (गद्य)
- ३१ मानद बना (गद्य)
- ३२ अट्टिसा (गद्य)
- ३३ लान्तरो बाग्यन् (नाटक)
- ३४ बुध विज्ञान जन-यानिय (गद्य गद्य)
- ३५ बुध विज्ञान द्वितीय भाग (गुरुगिष्य सवाद) (गद्य-गद्य)
- ३६ बुध बावनी (गद्य)
- ३७ पद्यप्रबन्धपट्टावली (गद्य)
- ३८ श्रमणसुरत (गद्य)
- ३९ जगत्पि लुग बहार (भाग १०)
- ४० जन समाज सुधार (भजन)
- ४१ जन समाज सुधार (भजन)
- ४२ गधुर योगा (भजन)
- ४३ नररत्नना (भजन)
- ४४ मित्र न मोक्क (भजन)
- ४५ मित्र न बावना (भजन)





४६ मिश्री के रवे	(भजन)
४७ मधुर मलय सगीतमाला	(भजन)
४८ मीठी बशी	(भजन)
४९ मोहन-मोहन सवाद	(नाटक)
५० जैन मंगलमाला	(भजन)
५१ अछूतो के अपमान का फल	(गद्य)
५२ मधुर गायन	(भजन)
५३ मधुर स्तवनवाटिका	(भजन)
५४ गुरुभक्तिभजनमाला भाग १-२	(भजन)
५६ वीरदल गायन	(भजन)
५५ मधुर काव्य	(भजन)
५७ मधुर कविता कुज	(भजन)
५८ अमृत-गुटका	(भजन)
५९ मधुर रूपमाला	(भजन)
६०. मधुर स्तवन सगीत	(भजन)
६१ मिश्री के लड्डू भाग १, २, ३	(भजन)
६२ चम्पा भजनामृत	(भजन)
६३ मधुर काव्य (द्वि० भाग)	(भजन)
६४ सुन्दर-मुख चपेटिका	(भजन)
६५ मधुर शिक्षा खडकाव्य	(पद्य)
६६ मनोहर फूल	(भजन)
६७ जिनागम सगीत भाग १, २	(शास्त्रीय पद्य सगीत)
६८ तत्त्वज्ञानतरंगिणी	(तात्त्विक ग्रन्थ)
६९ पथिकप्रबोध	(भजन)
७० पार्श्वप्रभा	(भजन)
७१ पार्श्वपञ्चीसी	(पद्य)
७२ मधुर चतुर्विंशति	(भजन)
७३ पूज्य पञ्चीसी	(भजन)
७४ रेणु-रसविनोद	(भजन)
७५ भक्तिरम भजनावली	(भजन)
७६ भक्ति के पुष्प	(भजन)
७७ मधुर हरियाली	(भजन)
७८ चम्पक कली	(भजन)
७९ मधुर मनन	(भजन)
८० मधुर मंगलप्रार्थना	(भजन)
८१. मधुर भजनावली	(भजन)
८२ मधुर वत्तीसी	(भजन)
८३ भगवान महावीर जन्म कल्याणचरित्र	
८४ उपदेश वावनी	(विविध विषयक छन्द)
८५ आगे ओमा	(नाटक)

८६ जडपूजको ! पत्नी	(मय चर्चा)
८७ मधुर मगध	(गालें)
८८ मधुर कायमाना	(भजना)
८९ मधुर स्तवनसुमनमाला	(भजन)
९० नित्य स्मरण	(भजन)
९१ नि य संगीत	(भजन)
९२ जयती गायन	(भजन)
९३ श्रीमदशुभायचरित्र	
९४ मधुर साहित्यमाला १	(पद्य)
९५ जन धर्म पुष्पवृत्ता	(भजन)
९६ मधुर हृष्टान्तक	(काव्य पद्य)
९७ गजब न गालो	
९८ कारारी गाला	

अप्रकाशित साहित्य

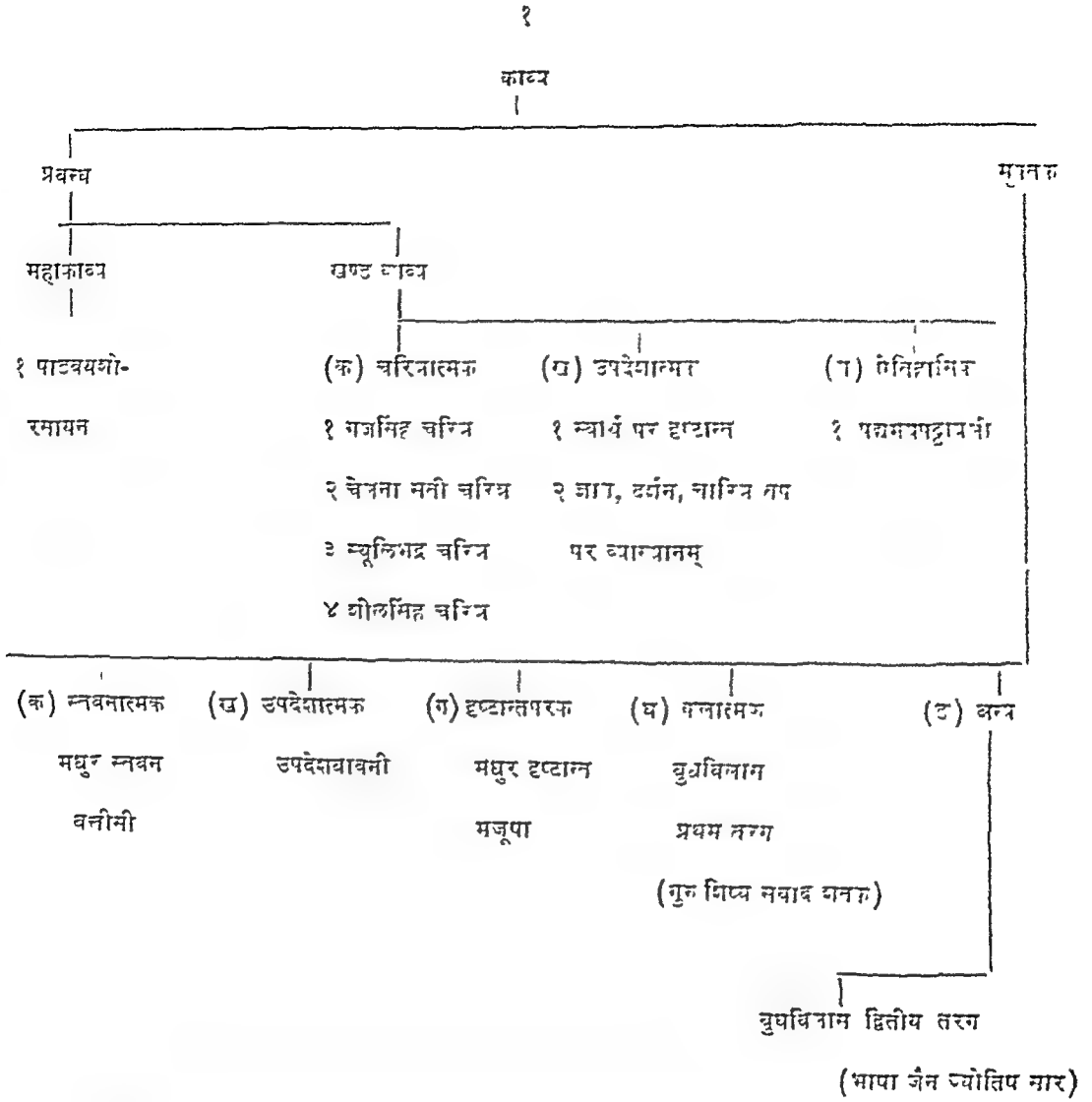
१ विप्रमत्तन चरित्र	
२ मिथी काव्यविद्या	(पद्य) अनन्त विषया पर
३ हृष्टिमिह चरित्र	
४ विमलहस्त चरित्र	
५ वराग्यादन्त चरित्र	
६ चौदावी चरित्र	
७ पञ्चदशचरित्र	
८ गता लम्बी चरित्र	
९ मट्टमिह	
१० दत्तमत्तमिह	

काव्य प्रयोगकरण

मधुघरकसरी का रचनाओं का माटे तीर से न भाषा में बाँटा जा सकता है—(१) प्रबन्धकाव्य छोट (२) मन्त्रकाव्य । प्रबन्ध काव्य का फिर दो उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं (३) महाकाव्य और (४) छन्दकाव्य । महाकाव्य न चरित्र नायक की सम्पूर्ण जीवनकथा विस्तार में गाई जाती है जब कि छन्दकाव्य में जीवन का किमा मामिर् अंग का वक्ष्य विषय प्रताप जाता है । मधुघरकसरी का दक्षिण भाग 'गायन' य 'भे' इनका स्पष्ट सूचक है । इनके चरित्राभ्यास छण्डकाव्य की कविता में न आयेगे यद्यपि उनमें नायक का जीवन का पूरी कथा है । वह पुनः पुनः गाया में कथानाव्य की सजा न जा सकता है । मुक्ता काव्य में कथा का कोई धारा नहीं चलती । वह पुनः पुनः गाया में आबद्ध नहीं होकर अलग अलग में स्वतन्त्र और पूर्ण अर्थ का बाधन होता है । मुनिरी - मुनिव काव्य मन्त्र में कई नए प्रयोग किये हैं ।

स्फूर्त रूप में मधुघरकसरी का काव्य-व्यभव को रेखा चित्र द्वारा यों दर्शाया जा सकता है—





१ यह वर्गीकरण प्राप्त प्रतिनिधि रचनाओं के आधार पर किया गया है।

काव्य विवेचन

प्रबंधकारण

पांडव मंगोरगायन मन्त्री काव्य रूप का है। यह जन हृदि में निभा गया मंगारत है। इसमें पवित्र ध्यान प्रतिष्ठित कर दिया है। उनका विचारकायम लिये कर मुद्रित न पाया। जो जोवा तबधा विविध दृष्टिगण प्रभा विरा है जो गुरातन आ गों व अनुरूप है।

कृष्ण की कविता का प्रिय पाठ्य रूप है। यहि एक रानिगुणा कविता का उमरे मोत्य-गक्ष का उ पा टन दिग् घोरकर किया है। आलाय कवि की हृत्त कृष्ण के मोदय ग। पर न विकार उत्तम गति पत्र पर अधिक केचित हुई है। यह प्रयत्न द्वापदीय है। जन हृदि म कृष्ण वागुत्त है। यह गति व धनी है। उनको यह गति कम जग अत्याचारो गणक के उ मूलन में तो लगती ही है। धूनना-धय कानिया म्मन म भा उनका गतिरूप उमरा है। यह गति क साथ साथ कल्या भाव भी सूया हुआ है। नागिन की विनति और लक्ष्मिप्रभाव म कृष्ण क सत्त्व कर जान म कल्या और आ पय साथ की मित्रो-जो अनुभूति है।

गति का यह रूप दीर्घ की प्रतिभा म भा प्रतिविदिन है। नारा की त्यागगायना और अयाया अत्याचारो मे प्रतिगाय जन की धर्यना कासा का एक ही छन्द म यजन सत्त्व जन बना है—

मुलही न हाऊं मुन्य वरान नवीन तन

ओइश को तू स लीने श्रुषणो पितग वे।

नागर न आरि आंशु सेवू मा तंबोल मुल

बंशुकी न दोरो बसू गोभा हित भगवे।

१ भूतना राक्षसि मुलवाई भेद की लेन मोहुल भाही
भेज की बस उठ भाई जसोदा दे मुत धवराऊ
मेरी गोरी मे हृत्तराऊ।

जसोदा गहीं देन पातिर बाजिन ता लेन भई आनुर
धनीधर छूट धन्योकाहिर करत धय-दान धीर डारो
कृष्ण फिर कीनी विलकारो।

—पांडव मंगोरगायन प १८०

२ गेद की परमा नहीं है नागिन। माया स धयो जुवे हार रे।
वासग गिर देसू माया मे आया छू इण च्छार रे ॥
नागिन भागी नाग धेतायो आयो धरी बलधार रे।
वासग ऊठयो कोये बड़ियो इत पट्ट-यो है मुरार रे।
इव कर मे शट गेद उठाई ब्रजा म कण लियो धार रे।
मुद्ध मथ्यो दोनों म जानो कुण किया भाग हजार रे ॥ —प १८३

३ सहस्र कर कर लक्षि प्रभाये, जोरयो माधव जिघवार रे।
पकड़ घोस ले धन्यो बह्यो नागिन करी है पुकार रे ॥
कालो बदन अरु अरु जहरीलो मत मारो निरधार रे।
पनि भिक्षा अय दे वो दयालु नाग करी चरवार रे ॥
कृष्ण कहे नहीं माध इतकी माय सेवू गो इवधार रे।
यदन सुकोमल धादावन म ऊपर दमाली चौपड़ मार रे ॥ —प १८३





नाल पं न बिंदी देऊ, वेणी ना गुयाऊ भैया,
होट रु नाखून नाही, रगू दुक रग पं ।
जोलो दु शासन भुज, उपाटे ना पति मम,
और ना जमावे गदा-भीम उनी जघ पं ॥^१

शक्ति के साथ-साथ प्रेम और मोन्दर्य व्यजना के लिए भी कवि ने उपयुक्त अत्रंग दृष्ट निरागत है । रसमणी ने स्नानोपरान्त शृ गार क्या किया है मानो इन्द्राणी का रूप धारण कर लिया है—

स्तान कियो ससरो तव मुन्दर और अनूपम रूप मवारघो ।
माग नरी गज मोतिन से, नय वेसर टोकि दे, अजन नारघो ॥
कुच कु भ कमे, गल हार विराजित, साडि निताम्बर को पट डारघो ।
कटि मेखल नूपुर नीके पने निज देह शचीपन सो तव धारघो ॥^२

हिन्दी में सामान्यतः कृष्ण और राधा के प्रेम-प्रसंग को लेकर विपुल पदमाहित्य का निर्माण हुआ पर मुनिश्री ने स्वकीय प्रेम-भाव को ध्यान में रखते हुए प्रेम की पवित्रता और एकरसता की अभिव्यक्ति के लिए रसमणी का विशिष्ट पद दिया है । रसमणी कृष्ण की परिणीता पत्नी है । दोनों में प्रगाढ़ प्रेम है । फूल में मुग्धत्व, शरीर में मान, सूर्य में किरण, चाद में चादनी, भर्ष में मणि, मुनि-मन में करणी, केवली के मुख में वाणी आदि की तरह कृष्ण और रसमणी परस्पर हिले-मिले हैं—

सुमन विषै जिम चास, सास पौंजर रवि किरणा ।
चन्द सुधारस जाण, अहि मणि, मुनि मन जिरणा ॥
लोनी धन की रास, भव्य चाहत ज्यो तिरणा ।
उदधि मे अरविन्द, केवली मुख ज्यो निरणा ॥
काष्ठ वह्नि, हिंगलू सही, ज्यों पासे हिल-मिल रहे ।
त्यो हरि रसमणि मन मिल्यो, कहो अंतर कैसे गहे ॥^३

नेमिनाथ और राजमती के प्रसंग में 'वारहमासा' का वर्णन मुन्दर वन पडा है । नेमिनाथ के तोरण में वापम लौटने पर राजमती उनकी अनन्त प्रतीक्षा में बेचैन है । चैन मास में वसन्त खिल गया है । वह पल-पल प्रिय का पथ निहारा करती है ।^४ विरह की पीडा में नेत्रों में अश्रुवारा प्रवाहित हो रही हैं और ऊपर से वैशाख तप रहा है, वह कैसे वैय धारण करे ?^५ जेठ की गर्मी में वह शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों में जल रही है ।^६ आपाड में

१ पाण्डव यशोरसायन, पृ० ३७३

२ „ पृ० २२६

३ पाण्डव यशोरसायन, पृ० २३३-३४

४ चंद्र चहूँदिश खिल रह्यो जी, रग भर राग वसत ।
पल-पल पेखू प्रेममू जी, कय तुम्हारो पंथ जी ॥

५ खलक्या वाला नीर का जी, नयन विरह की घोर ।
ऊपर मास वैशाखरो स्वामी, किण विघ घार घोर ॥

६ जोग लीजो मत जेठ में जी काई, बाजे लूओ बाय ।
दोनू तरफ सू जल रही जी, कमधज म्हारी काय ॥

वाग्वा का घटा दखनर उमका मन-मयूत्र प्रिय को स्मृति म कूब उठना है।^१ इस प्रकार गोप महीना म रो शबर राजकुल गिनन मात्र रन म^२ है। उमन समय गय पर बड़ कर नी अन्त अपना नस्याण किया।^३

कुन मित्रावर व जा सरता है विन्म विगावावा^४ म्हावाच्य म भुनिधी न गिगपन बई नय प्रयाग किय है। पूरा प्रय गय है और विभिन्न तजो न विद्या गया है।

मनश्या नारा विविन्न घण्टा व क माठ तीर ने छान भाग किय जा सकत है। चरित्रात्मक उपात्तात्मक योग महिमायक।

चरित्रात्मक घण्टा या म राजमिह चरित्र चन्ना गना चरित्र स्मृतिमद्र चरित्र और गोमिह चरित्र उपात्तनीय है। गजमि चरित्र नौक म्हा पर आश्रित वाच्य है जिसम गजमि व चरित्र को उभारा गया है। वाग्वा के स्थान-स्थान पर पुण्य पाग व प्रभाव को विवेचना कण्ट का प्रतिक्रम और कववा की भीमासा का गई है। चन्ना गनी चरित्र म सता चन्ना को प्रशानागित क रूप म चित्रित किया गया है आश्रित जनेराना का भा उद्वा घना हेन मलय की आर अमिषय करती है। गाग व अन्म गाग अताम धय और विरति विवक की गाया है यह चरित्र। स्मृतिमद्र चरित्र जावन व अनुराग और विराग दाग घना का कुपाना क पाय उपादित करन वाला मामिक प्रमास्थान है। रम वाग्वा का सन्म है—गाग म योग का आर मविमल नौना। स्मृतिमद्र कोपा व रूप रम म आकट बूझ है और जब विरतिन हई है ता रूप क मरावर म रह कर भा बठ कमल की मरु पाग और समय मग पर आरु है। उमम ईया राहा समय नी व ऊचाइ है जिय दू गपना सत्र चहा।^५ गाग्मिह चरित्र भी कथातक प्रकृष्टिवा पर आश्रित काग्वा है। इसम गाग्मि की घोरता गाग्मिक बाय और चरिति की विवेचना है।

उपात्तात्मक घण्टाया म स्वाय पर म्हातन और पात गाग चरित्रापरि व्याख्यान प्रमय है। स्वाय पर ह्मात काग्वा म नर भाषा म वाच नि का स्वाय की सुनीना का मन्मगा स्वीकार कता है। मन्मगा व स्थान पर उनक विनाय माया व पला^६ आदि वा^७ भा गिन्-मुम व आगे जाने को सवार नग शान। जावन का यह

- १ आघो मास आवाङ्ग रो जी घन धड़ियो घनपोर।
ओलु आव आपरी जो तो कूब रह्यो मन मोर ॥ प ६४७
- २ शर शर पोतर हो ग^८ जी राजुन बारा मास।
समता घर सजम सियो सनी छोड दियो घर वास ॥ प० ६४८
- ३ ६४४ पछा का यह घय ५ सखों जीर ६ हाजो म विभवन है जिसम २६४५ पायाल ४५६ बोहे १३६ सयवे १३१ कवित ८५ चन्नायना ७७ तोउ ६३ गदरी ३६ हरिगोतिश ५ गिलरिणी ३२ मोनोदाम ३२ पण्य १६ मोटव १६ विभयो ६ विवेयर ६ गावून ६ कुडसिया ५ द्यद और ४ प्रतविमविमय द्यद है।
- ४ होइ करे गत डाड बनी कय मोड डेग सतोड सने।
कचन पोतल मीटि बराबर वासत हस हिहार भये ॥
कया जघनू रवि जोइ गे नरराज भगारि जु भीन भये।
स्यों मतिरीन कह मिथ। सनसग समान मु गार जगे ॥
- ५ सेग बटे रोसाय रे मरती मेरी बन्नाय रे ॥ मर ॥
कुल-कुल मरिया पुत्र विद्याही देवेनी एक बन्नाय रे ॥
बई जिनांग ये मरिया हययो कोण नवाय रे।
मैं दुग पाऊ भवको मरणा पुत्र आओ महीं आय रे ॥
मा मा मुग न आघा जन्मी भल जन्मा दुनवाय रे।
तेवा नपनी कोय रनी ना दू इन घन व साय रे ॥

—संस्कृत-संस्कृत प० १६६

—संस्कृत-संस्कृत प० ८७





कठोर सत्य नन्दनशाह की आँखें खोल देता है और वह अनुभव करने लगता है कि यह मन्मथ मन्मथ का मेला है । सयमपथ पर चलने में ही जीवन की मार्यकता है । नन्दनशाह मयमी वन का अपना उद्धार करना है । ज्ञानदर्शन-चारित्र्योपरि व्याख्यानम् प्रतीकात्मक काव्य है । इसमें चार भिन्न-मन्त्री-पुत्र, गानी-पुत्र, द्विज-पुत्र और राजकुमार ममर्गमिह ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप के प्रतीक हैं । चारों जलानार हैं । एक अपने मित्र-पुत्र में वीर होम की गव घाँवें जान लेता है, दूसरा आकाश-मार्ग में गमन कर अभीष्ट स्वयं पर पहुँचने की क्षमता रखता है, तीसरा मरे हुए को पुनर्जीवित कर देता है और चौथा निर्भीक वीर की भाँति शत्रु को परास्त कर सर्वत्र विजय बनाता है । चारों परस्पर सहयोग और सद्भाव में मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को पार कर गिद्धि प्राप्त करने हैं ।

सूफ़ी प्रेमाह्वानक काव्यों में खुदा तक पहुँचने के लिए बन्धे को चार दशाएँ—गरीबन, तरीफन, हनीफन और मारिफन-पार करनी पड़ती हैं । आनन्द्य कृति में ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप की वही गिद्धि है । कुमार समरमिह आदयःप्रेमी हैं । वह प्रेमाश्रय की प्राप्ति के लिए मूक की पैंम-शाय्यों के नायक की भाँति योगी बनकर नष्टी निकलता । वह अपने बाहुबल एवं पुरुषार्थ में मार्ग में पड़ने वाली नक्षत्र बाधाओं को दूर रख विजय बनाता है और अन्त में सयम-मार्ग का पथिक बनकर आत्मोद्धार करता है । ममर्गमिह सर्वगुणमम्पन्न है । वह घोर नायक का मानक है । मेना में हावी, आकाश में मूर्य, देवताओं में इन्द्र, नक्षत्रों में चाँद, मनुष्यों में राजा, पशुओं में सिंह, दादलों में

६ जरदी बोली रे, करडका मोरी ।

कैसे कुपातर पड़यो पेट में, आवत मोत चहे मोरी ।

काई निहाल करो निर-भागी, खाली जनम दे भई योगी ।

मरली तो मरजाती मुझे क्या, मैं न मरू बनकर भोरी ।

किन किन का जग नाम रहता है, दुनिया कबल करती कोरी ।

आखी अदीठ होय जा जरदी, अगर अकल राखे थोरी ॥पृ० ८८

७ पर-मौत मरू गतिया विगरे, पति काल मरे भल आज मरे ।

पतिहीन तिया कितरी जग में, वन मूरख कोई जरे सग में ।

मुखको नहिं चाह रही सुख की, परवा न करूं पति के दुख की ॥पृ० ८९

१ देख लियो, देख लियो, देख लियो रे,

चिरताली प्रेम थारो पेल लियो रे ॥देर॥

कपट कटारी कारी नागण सी भारी,

ग्राज तो उघड गई पोल सब थारी,

जैसे ढोगी जन साधु भेल लियो रे ॥चि०॥१॥

धूड थारा माजना में मैं भी धोखो खायो,

मीठोडी बोली में हली रूप लख पायो,

तू तो स्वारय रो वाटियो सेकलियो रे ॥चि०॥२॥ पृ० ८९-९०

२ मन्त्रि सुतवल् ज्ञान जाणो, श्रद्धा सूत्रजधार है,

चारित्र्य द्विज सुत समझ लीजे तप जु राजकुमार है ।

ज्ञान दर्शन चरित तप चहु कर्म काटन की दवा,

जो अराधे शुद्ध भावे लहे शिव सुख की हवा ॥पृ० १०५-१०६

विजयी वारान म दूहता और चाप म पणोन् व समान बीरा म समरनिट्ट है ।

मतिगतिर छण्डका य व रूप म पद्यमय पट्टावली का उन्नम किया जा सकता है। वस्तुन गार्भीय अय म य सण्डकाय नला है पर मुनिधी न रूप ६ परिच्छेद म विभक्त कर महावीर स त्तर वतमान समय तक व निमित्त सम्प्रदायो व पट्टधर जाचायों का परिचय प्रस्तुत किया है। प्रथम परिच्छेद म भगवान महावार स २७ वें पट्टधर आचाय दवडि तमात्रमण तत्र का वणन है। त्रितीय परिच्छेद आठ विह्ववा म सम्बधिन है। इसी म २७ वडि क्षमाधमण व बाट हाने बाद ७५ वें आचाय जावराजजी तत्र का पट्ट परिचय दिया गया है। तृतीय परिच्छेद म लवजी ऋषि की परम्परा के साथ खमान सम्प्रदाय तथा पञ्चावी आ धमरसिद्धा का पातनक्रम वर्णन है। तृतीय परिच्छेद दरियापुरी सम्प्रदाय व मस्थापक आ धमसिद्धजी मगराज से सम्बधिन है। पञ्चम परिच्छेद म आ जीवराजजी म श्री हुक्मीचामी म श्री मानसपञ्चा म श्री स्वामागजी म श्री शीतवर्णम जी म श्री अमरमित्रा म और श्री मायूरामजी म का पातानुक्रम वर्णन है। षष्ठ परिच्छेद धर्मोद्धारक श्री धममगजी म स सम्बधिन है। षष्ठम धममातरी म श्री परम्परा व साथ आ रघुनाथजी म श्री जयमल्लजी म श्री कुणालजी म श्री बोधमन्त्री म श्रीत्री वनी सम्प्रदाय श्रीवडा छोटी गाथा आठ जोडि पाता पण मवाडी सम्प्रदाय आ मनोहरमगजी म उन्नम सिधाय श्री चानचन्नी म तथा तत्तम सिधाय के पातनपात्र का वर्णन है। विभिन्न छ म विरह धम पद्य पट्टावली कवि की भाषाधिकार क्षमता व गतिहामित्र चान का परिचायिका है।

मुक्ताक काव्य

मुक्ताक का य म बाई मानुष्य कया मना होनी। यत् रिता भाव विगय को तीव्र आवग व साग व्यवन करने व लिंग लिखा जाना है। उक्त विस्मर की ओता मर्याद अधिहानी है। मुनि श्री न अद्भुत जीवन सत्य को विभिन्न मुक्ताक मुक्ताका म प्राप्तासाधित किया है। उक्त समस्त मुक्ताक काव्य का अध्ययन की मुविधा व लिंग ५ वर्गों म वर्गीकृत जा सकता है—स्वनात्मक उपनात्मक दलनात्मक वनात्मक और ज्यातिय।

मनवनात्मक मुक्ताक मध्यम मगुर स्तवन वतामी म समीत हैं। इन मुक्ताकरी य सामान्यन तीव्रका विरामाता वन परमेष्ठि जाति का स्तवन किया गया है। तीव्रका म कवि २३ वें तीव्रकमगवान् पात्रनाथ म विगय प्रभावित हैं। प्रवय काव्य का समारम्भ करत दूध भी कवि न वई स्थला पर पात्रनाथ का मगनाचरण किया है। य पात्रनाथ व परवा स धमस्तन है। उक्त वाक्य को मति माय रूप म वर्णने मगारम्य पूरे करने की आगा का है—

धी धारत परक्षाधारी तोरे चरणन स इक्षतरौ ।
चित्तमणि चित्त चितित आये उधौ वासक महितारी ॥
त्यों कुहपायनी जिन धारत हाजर हाथ विधारी ।
पूरे आमा वनिहारी ॥

१ पीत म गयद मम बीध म दिनद भते
सुर म सुरेंद खद तारों बीध धमक ।
नरों म नरिन्द पण बीध म मनेत्र और
धमरेंद अमुरान विभु पन शमक ॥
कला म कविन्द आ जान म जु बीध द्याजे
रोप मे कविन्द हाता धनिद उधौ धमक ।
एतो गुणपूर सर तमर मु-बीर अहो !
मनन की काली सम मन भावो सबके ।





भक्त के रूप में कवि म० पार्श्वनाथ ने उसी प्रकार का नैकद्वय अनुभव बताया है जिना चरोंगे चोरों में,
शकर पार्वती में, कृष्ण राधा में और राम सीता में—

मोहनगारों मन बन्धो, चित्त चरणों में, हाँ चंद चरोंगे जैम ।

ज्यो शकर मन गोरजा, हरी राग में, राम निवा मग प्रेम ॥

वह उन्हें एक पत्र के लिए भी विस्मृत नहीं रहता चाहता । जिस प्रकार चतुर्मास प्यार अग्नि का, बादल विजली को, मछली जल को, कमल सूर्य को, मधुकर मालती का और हय मानवगोश्वर को नहीं त्यागता उसी प्रकार कवि अपने आराध्य में अलग नहीं होना चाहता—

चक्रमक अग्नि ना तर्ज, घन ज्यों विजरी, मच्छि निर्मल नीर ।

कमल रवि विसरे नहीं, भारे नोचे, तन्मय हवी तीर ॥

मधुकर को मन मालती, निग दिन घूम, मागगेवर हम ।

धारी पियू भूले नहीं, जशवर मग पं, ज्यों उनम रिज वग ॥

इण विधि प्रीति आपसे, अविलस म्हारी, चरती कना पिनान ।

तू सुख जीवनवाल हो, अन्तर्धामी, विसगामी शिववान ॥

अपनी लघुता और प्रभु को महत्ता के प्रतिपादन में भाव ही विशेष प्रामाण्य प्राप्त है । यह निरन्तर रूप में निश्चय हो अलगुणों को बड़ा-बड़ा कर आराध्य के सम्मुख प्रकट करता है । दुर्निर्घात का भक्त मन गोपमन्त्रार्थों के चरणों में निवेदन करता है कि वह साधारण फलों में फसा हुआ है, तपसा के लक्ष्मणों से दूरा हुआ है और समस्त रीति मरुपर्वत में भी उसकी 'विन मिला' भारी है—

गोपम गुहवर गुणवारी, है चरणन की वसितानी ।

काम त्याग रामा को रसियो, कमियो, फर फिरारी ॥

कसियो तम्हू तृष्णा कंसो, वसियो पियव मजारी ।

नमल गुण दीना शरी ॥

दाम धाम निज नाम वजारण, ते जीनी सुग त्वारी ।

है भमता मेर से म्होटी, वित मिल्ता मिन्तानी ॥

लगे अथ कहां तो नारी ।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'विनयपत्रिका' में अपने सम्मुख में ऐसे भाव व्यक्त किए हैं । यह भावना कवि की विनम्रता, शालीनता और निरस्मिताता की परिचायक है ।

उपदेशात्मक भुक्तक भुक्त 'उपदेशवाचनी' में मन्त्रहीन है । ये कृत्तिया रत्न में स्थित हैं । उनमें साधारणिक प्राणिजों को नाम-स्मरण,^१ दया-धर्म-पालन,^२ गुरु-भक्ति, वाणी-मन्त्र,^३ चर्यमान-पावन,^४ तपसा,^५ स्वाध्याय

१ कहे 'मिश्री' अणगार प्यार-धर पारस जप ले । पृ० ६

२ कहे 'मिश्री' अणगार, दयाप्रध धर्म अराधे ॥ पृ० ७

३ कहे 'मिश्री' अणगार बोलता जतना राखो ।

प्रथम हिया में तोल, बोल फिर बाहर भाखो ॥ पृ० ६

४ कहे 'मिश्री' अणगार भक्त मत वण रे भोलो ।

अन्तर आँख उघाड, द्वेष थोहर रो धोलो ॥

धोलो पुनरपि आक को, बडला रो पिण जाण ।

गाय भंस बकरी तणो, उनकी करे, पिछाण ॥ पृ० ११

५ कहे 'मिश्री' अणगार, कठिन कर्मों रो काँटो ।

चुमियो सकें न चल्ल, अचानक काँट आँटो ॥ पृ० २६

आदि की गिना दा गई है । तब नान का सरन और बाघगम्भ बनाने के लिए व्यापार^१ हवाई यात्रा^२ मैत्री^३ रत्नान^४ आदि प्रावृत्तिक लौकिक कार्यों की आध्यात्मिक रूप प्रदान किया गया है । समाज में याप्त नाग पापघ्न और कष्टाचार के प्रति आजीव प्रसन्न करते हुए नवनी परागिया का खूब खबर ली है ।^५ कवि की उद्वाधना है कि यदि आप भद्र मुछाने हैं तो लोभ मात्र का उन्मूलन कर सच्चे जात्म वीर बनें ।^६

दृष्टा नररक्त मुक्त काव्य में मध्य दृष्ट मज्जया उल्लेखनीय है । इसमें १४३ दृष्टा हैं जो कवित छंद में लिखे गए हैं । वही नहीं छोटा छंद में लिखा गया है । जन सत यूँ व गम्भीर तत्व मिद्वान्त को इस प्रकार प्रियेयित करते रहे हैं कि बड़े बड़े असे मन बुद्धि वाल अभित व हृदय में भी उतर सकें । मर्म लिए प्राचान

- १, टोटो है बिन समझ रो नर-तन दण्ड दुकान ।
माल भरयो जिन धम रो तेजो भाव पिद्वान ॥
तेजो भाव पिछान करो गुन करणी आने ।
यहै मित्री अणगार बिजज मै नको कमाते ॥ प० १८
- २ कह मिथी अणगार धम की एरोत्तेन है ।
झाईबर मुहराज पादर सा जन धम है ॥
वन चन लाईट है पुनि दतना दुर्गति ।
बड़ी सत्य के धीन से है नम धडाधीन ॥
धडाधीन चतय बुद्धों की मित्र देन है ।
कह मिथी अणगार धम की एरोत्तेन है ॥ प० १९
- ३ कह मिथी अणगार सैत पुयो को पारो ।
साधन मिलिया सब आयो आनंद को आको ॥ प० २
- ४ कह मित्री अणगार साच रो सागू लेलो ।
नील सरोवर जाय गिना करणीरो झलो ॥
झलो छोटे जाय रो जासी सारो मल ।
आतम होसी ऊजली मिल मुगत रो शल ॥
गल करेला स्वच्छ ज्ञान रो सुंदर गेलो ।
कहै मिथी अणगार साच रो सागू लेलो ॥ प० ४७
- ५ कहै मिथी अणगार भूमति खूब रमाई ।
जगजूट-सो मुकुट तिलक माला भल भाई ॥
भाई जुगनी जोग हृदय में बडो पुतारो ।
कहे जुम हृद सोड भितकरो मोटो पारो ॥
पारो प्रभु से निपट मात कह कहे सुगई ।
कह मित्री अणगार भूमति खूब रमाई ॥ प० ४१
- ६ कह मिथी अणगार अगर हूँ भरद मछालो ।
लग धार सोधम सपर बनकर के चालो ॥
चालो डालो लोभ प घोवा मर नर भूल ।
ओ जयाधी आचरो सख पाप को भूल ॥
मूल उखाडो मोह भूल सम्मुख मत मानो ।
कह मिथी अणगार अगर हूँ भरद मछालो ॥



गद्य में बालावबोध रूप में कई कथाएँ प्राप्त होती हैं। सामान्य-व्यवहार में भी हम पद-पद पर दृष्टान्त देकर किसी बात की पुष्टि करते हैं। मुनिश्री ने लोक-जीवन और व्यवहार में प्रचलित विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम में कई जीवनोपयोगी धर्म और व्यवहार की बातें स्पष्ट की हैं।

‘हीरा की हाड़ी’ दृष्टान्त में बताया गया है कि मूर्ख व्यक्ति मृत्युवान् वस्तु की कीमत नहीं आक मकता। कठिहार ने हीरे की हाड़ी और बावने चन्दन की मौली जलाकर नष्ट कर दिया—‘चन्दन जरात बूले धगे हाड़ी घाट भर।’ ‘मूर्ख लडका’ दृष्टान्त में उम मेठपुत्र का वर्णन है जो प्रातःकाल धान की दुकान पर धान खाने हुए गधे को इसलिए नहीं भगाता कि सेठ की शिक्षा है ‘प्रथम ग्रहाक ठाली जान मत दीजे रे।’ जब पेट भर धान खा चुकने के बाद गधा जाने लगता है तो वह उमकी पूँछ पकड़ कर उससे कीमत माँगने का आग्रह करता है।^१ ‘अधेरा घुम न जाय’ दृष्टान्त में बहू की मूर्खता का वर्णन है जो घर में अधेरे को न घुमने देने के लिए दरवाजे पर लाठी लेकर बैठती है और उसको पीटने के स्थान पर घर के सारे वर्तन फोड़ डालती है। माम जब दीप जलाती है तब कहीं अवकार भागता है। कहना न होगा कि मुनिश्री ने विवेकशून्यता का अच्छा खासा खीचा है।

इन दृष्टान्तों के माध्यम में कवि ने जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। जीवन में उम वरिष्ठ की प्रतिष्ठा है जो किसी बात पर मनन कर उसे पचाना है। जो एक कान में सुनकर दूसरे कान से या मुँह में कोई बात निकाल देता है उस व्यक्ति की कोई कीमत नहीं। ‘मनन करना ही मानवता है’ दृष्टान्त इसी मूल्य को प्रतिष्ठित करता है।^२ इसी प्रकार जीवन में ज्ञान और क्रिया का समान महत्व है। क्रिया के अभाव में केवल मात्र ज्ञान बूला या पगु हो जायेगा और ज्ञान के अभाव में केवल क्रिया अधी हो जायेगी। जीवन की सफलता व सार्थकता के लिए ज्ञान और क्रिया

१ मधुर दृष्टान्त मञ्जूषा, पृ० ५

२ धान की दुकान पर प्रातः सेठ पुत्र भेज्यो,

प्रथम ग्रहाक ठाली-जान मत दीजे रे।

एत्र जाय धान के जु ढिग कर बैठो तब,

खर लाय रह्यो धान मूरख पतीजे रे ॥

पेट भर भूख चाल्यो, पूँछडो झाल्यो हैं तेह,

जावे कठे माल-तणा दाम धरलीजे रे।

लोग कहे छोड, ना तो सिर फूट जासी,

‘मिश्री’ ऐसे मूढ, हट ताण के तणीजे रे ॥ पृ० ५०

३ कलाकार त्रय भूति हेम की बनाय नामी,

भूप की सभा में जाय, कीमत कराई है।

सचिव सुबुद्धि-खान, डार्यो कान बीच डोरो,

दूजे कान आयो, मूल्य फूटी कोडीनाई है ॥

दूजी के निकरयो मुख, तीसरी ठेठ पेट,

पौँच्यो डोरो जाई है।

सबा कोड सोनये कोमूल्य, ‘मिश्री’ मुनि कहे,

ऐसे जिनवाणी पर हेनु सोचो भाई रे ॥ पृ० ५७

का समान सन्तुष्ट आनन्दक है। उस जीवन सत्य का दो मित्रों के सम्पर्क व्यवहार द्वारा उत्पादित किया गया है।

सामान्यतः कहा जाता है कि उत्तर यूनिया के पास इसी का अभाव रहता है और मन्त्रीचम उनी होते हैं। प्रसन्न के गानों में सरस्वती की वषा लक्ष्मी की अभिप्रेता है। इसका अर्थ मित उत्तर में एक एक गुणिनी न मन्त्रीचम का हृदय चित्र उभारा है जो दूसरी ओर मन्त्रीचम पर इसी के प्रतीकान के कारणों की विवरणिका स्वयं इसी के मध्य से प्रस्तुत कराई है।

कुन मित्राकर कहा जा सकता है कि उन दृष्टान्तपरक मन्त्रीचम के मन्त्र में मुनिनी लोक जीवन का विविध पार्श्वों में लब्ध सचे हैं। अनुभव की आवश्यकता का प्रमाण तो यही है कि उनमें और माहुरार वषा मनी गङ्गा मूख उद्दिमान पाए जाते हैं तथा परिवार के अर्थ सम्बन्ध वषाच रूप में चित्रित हुए हैं।

कलात्मक मुक्ति का एक अवगत सुखविशेष प्रथम तरंग उत्पन्नताय वरिष्ठ है। इसका अर्थ नाम गुण विषयवाचक शब्द है। इसमें गुण द्वारा शैविक चक्र पर सम्बन्धी प्रश्न पूछे गये हैं। विषय उभरा वषा की कलात्मक उत्तर देता है। यह उत्तर सामान्य एक ही गान में दिया गया है। लेख के कारण जम्ब दो या दो से अधिक अर्थ होने के कारण यह कई प्रतीकों का समाधान एक साथ कर देता है। यहाँ कुछ उदाहरण दृष्ट्य है—

- १ कमावन होय मित्र जावे हैं विदेश गय
एक छोटे चढ़ चाल्यो बूझे सोस डोलियो ।
पय में निहार लोग ऐसी जो खयाल किया
चाल्यो सो ठाकुरधोप्रवारी भल्य सोलियो ॥
पनघट होल्यो डार मित्र एक सोय गयो
बूझो मोव सुतो पाय नीकर ही थोजियो ।
दोनों समनुय धनी चाकर की काम कहा
मिथी ज्ञान क्रिया ऐतै युगधन हो गियो ॥ प० २६
- २ सूमरो सुनयो मोहो, गोड से मधी है भात
मेतो है बदन धेलो लावे न खवावे है ।
भूत गो है भयाक निजेतन लूपां केरी
फटे हैं वसन सारे सेडो सरडावे है ॥
उर की सो चान गाल बडगे बरार सम,
मबवोवूस आणे-टाणे जावे न धुत्तावे है ।
अरे मतिहोन चण्डी रसिक उसी प होगी
मिसरी भगत तोकू दाप कते आवे है ॥ प० ८
- ३ निछमी कहत सूर जग में मरत फट
ज्ञानी गुनियों क हम दाप नहीं आवे हैं ।
छैन जे छोगाला आला दिस के बिसाले होत
रागबाला धने कहा अय की सुटाये हैं ॥
बुद्धिमान धान के बरमा सो तो राखी बह
चवल छिनाल मही ओपमा चढ़ावे हैं ।
इसीलिए सूम सेती जमी है हमारी सो जी
मिसरी भगत सदा बन्धी बजावे हैं ॥ प० ८



(१) आडो जवलो चालणु, तवे न रोटी पाय ।

थामो दोसे ठीगणो, कहो चेला किण न्याय ॥

उत्तर—'नीधो' नहीं ।

गुरु का प्रश्न है—क्या कारण है कि आदमी आटा-टेढा चलाता है ? तवे पर रोटी नहीं है ? थामा नीचा दीखता है ?

शिष्य उत्तर देता है—मार्ग नीधो (मरल) नहीं है, तवे पर रोटी बनाने के लिए सीधो (आटो, मामान विजोप) नहीं है और थामा भी मीधो (ऊँचो) नहीं है ।

(२) ढोल्यो ढले न चौक मे, साख सूखती जाय ।

महल टियो प्यातो नरे कहो चेला किण न्याय ॥

उत्तर—'पायो' नहीं ।

गुरु का प्रश्न है—क्या कारण है कि पलग चौक में नहीं ढलता, फल सूखती जा रही है, महल डिगता है और आदमी प्यामा है ?

शिष्य उत्तर देता है—पलग के पायो (पागा) नहीं है, फल को पायो (पानी पिलायो) नहीं है, महल के पायो (महारा) नहीं और प्यामे आदमी को पायो (पानी पिलाया) नहीं ।

(३) टोटो पडियो माल मे, करणी निरफल जाय ।

कविता फीको कवियणो, कहो चेला किण न्याय ॥

उत्तर—'भाव' नहीं ।

गुरु का प्रश्न है—क्या कारण है कि माल में घाटा पड रहा है, तपस्या निष्फल जा रही है और कवि की कविता अच्छी नहीं लगती ?

शिष्य उत्तर देता है—माल के लिए भाव (वाजार भाव) नहीं है, तपस्या में भाव (शुद्ध भावना) नहीं है और कविता में भाव (अच्छे विचार) नहीं है ।

(४) पटवासू पदमण लडै, हाली भूखो जाय ।

दर्जोडो धाकल करै, कहो चेला किण न्याय ॥

उत्तर—'पोयो' नहीं ।

गुरु का प्रश्न है—क्या कारण है कि स्त्री पटवा में लडती है, मजदूर भूखा रह जाता है और दर्जो अपने आदमी का फटकारता है ।

शिष्य उत्तर देता है—स्त्री के पटवा में लडने में पोयो (हार पियोया) नहीं है, मजदूर के भूखा जाने में पोयो (रोटी बनी) नहीं है और दर्जो के फटकारने में पोयो (भूई में डोरा पोया) नहीं है ।

(५) रगरेजा रुलता फिरै, घर नारी घुरकाय ।

मैदा ज्यो मैदी नई, कहो चेला किण न्याय ॥

उत्तर—'रग' नहीं ।

गुरु का प्रश्न है—क्या कारण है कि रगरेज के पास काम नहीं है, धर्मपत्नी प्रेम नहीं करती है, मेहदी मैदा जैसी नहीं है ।

शिष्य उत्तर देता है—रगरेज के काम नहीं करने में रग (रगने का रग) नहीं है, स्त्री के प्रेम नहीं करने



- ३ दुनिया में सभी को स्वार्थरत देखकर नायक का समय ग्रहण करना ।
- ४ कठोर माधनामय जीवन जीते हुए अन्ततः देवगति प्राप्त करना ।
ज्ञान, दर्शन, चरित्रापरि व्याख्यान की कथानकप्रसृतियाँ भी इस प्रकार गिनायी जा सकती हैं—
- १ मन्त्री-पुत्र, विप्र-पुत्र, खानी-पुत्र और राज-पुत्र की परम्पर मित्रता होना ।
- २ कारणवश चारों का परदेश-गमन करना ।
- ३ चारों का किसी न किसी विद्या में पागल होना । मन्त्री-पुत्र का अपने ज्ञान-बल से सब कुछ जानना, विप्र-पुत्र का मृत को जीवित करना, खानी-पुत्र का आकाश में मचरण करने वाला यत्र बनाना तथा राजकुमार का सबको परास्त कर सबैव विजयी होना ।
- ४ मार्ग में भयंकर राक्षस का मिलना ।
- ५ मित्रों का परम्पर भटक जाना ।
- ६ राक्षस का निज प्रति किसी न किसी मनुष्य का भक्षण करना ।
- ७ अपनी दारी आई जानकर किसी कन्या का चिन्तित होना ।
- ८ ऐसे अवसर पर किसी राजकुमार द्वारा राक्षस का वध होना ।
- ९ कन्या और राजकुमार का परम्पर विवाह होना ।
- १० कन्या का अत्यन्त सुन्दर राजकुमारी या अप्सरा होना ।
- ११ नाई द्वारा राजकुमारी के बालों को लेकर प्रतिनायक को देना व उसके सौन्दर्य का वर्णन कर विप-मिश्रित बाह्यर खिलाकर, नायक को मारकर, उसकी प्राप्ति का उपाय बताना ।
- १२ बालों को देखकर प्रतिनायक का भूचिन्त होकर गिर पड़ना ।
- १३ बाँधे में नायक को मारकर प्रतिनायक द्वारा नायिका को ले जाना ।
- १४ मित्रों की सहायता से नायक का पुनर्जीवित होना ।
- १५ प्रतिनायक को परास्त कर नायिका को छुड़ाना ।
- १६ प्रतिनायक की कन्याओं से मित्रों का विवाह करना ।
- १७ नाई जैसे दुष्ट पात्रों को उनके किये का दण्ड देना ।
- १८ समय ग्रहण कर चारों मित्रों का आत्मकल्याण करना ।

उपर्युक्त कथानक-प्रसृतियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि कवि की दृष्टि वस्तुचयन में लोकतत्त्व पर रही है । गिलाविधान में भी मुनिर्वा लोकात्म्य से अनुप्रेरित होते रहे हैं । अलंकारों का प्रयोग करते समय उनकी दृष्टि आन्वीय उपमानों को टूटने में नहीं लगी रही । उनके प्रभावशाली जिनने भी उपादान हैं वे लौकिक हैं ।
यथा—

- १— कहे मिश्री अणगार, मूढ रा मता हजारो ।
डरे न करता पाप, बन्धो ज्यू ऊँट-नगारो ॥—(उपदेश वावनी, पृ० २७)
- २— कहे 'मिश्री' अणगार, खुशामद सीठी गोली ।—(उपदेश वावनी, पृ २८)
- ३— कहे 'मिश्री' अणगार, मिली स्वारथ रो मेलो ।
अपणायतवश होय, कियो धन अघ कर भेलो ॥
मेलो हुयगो एम, शहद लिपटो जिम माली ।
पूर्व पुण्य सब ज्ञोय, रखी बदनामी बाकी ॥—(उप० वावनी, पृ० ३७)
- ४— रहे 'मिश्री' अणगार, धान में पडगी ईली ।
सा—कर कियो सराव, रह्या फोकलिया पीली —उप० वावनी, पृ० ४२

- ५— बहूँ मिथी धनपाय झूठ का बोझ टट्टू ।
किरतों जैसे न चार ओर का जल सङ्गुन ॥—(उप० पावनी प० ५४)
- ६— घाला ने घीस्य करो पुल नलानी नीय ।
तलो बरा बर ज्यों चौरामी दे माय ॥—(उप० पावनी प० ५७)
- ७— कसियों तम्बू तल्ला बसो - बसियो विषय मजारी—(मयुर स्त० वत्तीसी प० ३)
- ८— है ममता मेद स ग्हाटी वित्त सिन्हा विस्तारी—(स स्त० वत्तीसी प० ३)
- ९— गज गति गल रूपारेत सी बसीस नार—(मयुर दुष्टात मङ्गुया प० २)
- १०— पादमनो गोले चढ़ी देखे डार नन—(पादम यगोरतापन प० ६४२)
- ११— मुलङ्को घणो उदाम पङ्कत जस दस कणों रेटों रे (सक-पवित्रय प० ६३)
- १२— ननन की बीकी सप्त मन भायो सप्तक (सक-पवित्रय प० ६८)
- १३— लटमक सज न सान की सजन न कृप कपोत ।
हवार लोह पुनि गोह सर प्राणमारि जिय मोत ॥
ससे बेया दियल-मुल स्थलिन सव सीन (सक-पवित्रय प० १५३)

जागोविनया और मुझार) के प्रयोग म था। कवि की दृष्टि लोह-जावन पर लगी है। उमर मन्त्रवेदाङ्गाश्रयी
ग हानर सहा हैं और हृदय पर सीसा चोरा करत ॥ यथा—

- १ डरने का क्या काम मार दू धम के खंडो रे (सक-पवित्रय प० ६३)
- २ भला रोल मवाई रे भोवा भला रोल मवाई (स० स्तवन वत्तीसी प० २)
- ३ पापी पैठ डुवाई रे सारी पापी पैठ डुवाई (स० स्त वत्तीसी प० २१)
- ४ हण पर भी नहि हों करे हो क्या । अ घोडा मगन । (पादम यगोरतापन प० ८)
- ५ मात बहूँ लज्जा मत लाजू राह की मन्त्रा में बाजू (पादम यगोरतापन प० २५)

साँ चयन म भी कवि यथानु मन्त्र रण ॥ भाषावर्णानि अध्ययन की दृष्टि म कवि का कृतित्व अध्ययन
महेश्वर ॥ 'ताल पाणा पाया मन्त्रो दाणा, जग जनक' । का कवि ने नई लयपदा दी है।

पादमन्त्र

कवि का जीवनानु है यथा का पादमन्त्र ॥ जीवन मय कथका पुष्पाय पराजय स्वाय-स्वाय
मयम नि तपस्या समानांगी आर्ति चारित्रि गुणा यो जयनाम्ना नरदा पादमन्त्र है ॥ गुणा का स्वधारणा क लिंग
य काव्य मल्लि है। जीवन मन्त्री और समद ॥। उसम जयकुपा-भा मुष्टि धान्तिम मा मृद्धि पात्र कथनाभा
मुन-मीमाय गोवमन्त्राभी मा त ॥ भरत उदयवी श्री ऋद्ध और बाहुवर्गा या बस उदर यशो कवि का भाग्य ज्ञाता
म मय है। इन्हीं म पा वी प्रारिणा मे कवि कथ को साधना है।

यद्यपि कवि न कोई वादवाङ्मयीय दस ॥। लिखा है तथापि यथाक्रम काव्य-मन्त्रन क उद्देश्य उगरी
भाषा-मन्त्रा । य मन्त्रा का न पर विचार प्रकृति विरुद्ध है। कवि का उद्देश्य म भाषाभजन है न मय भजन। मर जीवन
म दशाण्य प्रमाणसिद्ध और विद्याया नोदूष पर मन्त्रा कथों म धाम्मा ॥। वनना पादमन्त्र ॥। जीवना म विदक प्रामद

१ मयुर मन्त्रमन्त्रा प० २५

२ कृति मन्त्र मुररन भरम शठन कथ क ॥

भाषावर्णानि ॥। प हिम मिथी ६ उपरेण ॥—उप० पावनी प० ६



कर चित्त की चतुरता का उत्तम बढाना चाहता है ।^१ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह कविता को आन्तरिक शक्ति देकर प्रभावकारी बनाना चाहता है और कला का पुट देकर आकर्षक भी । इसीलिए मगलाचरण करते समय कवि ने जो कामना प्रकट की है या शब्द-शक्ति का जो वरदान मागा है उसमें शब्दों की कोमलता और मुन्दरता के साथ-साथ उनकी प्रभावक शक्ति की भी याचना की है ।^२ कविता का प्रभाव ऐसा हो कि पाठक या श्रोता उसे पढ़कर या सुनकर उमंगित हो उठे, 'उसका रोम-रोम नाच उठे, वह सीधी हृदय में पैठ जाय ।' अन्तरंग और वहिरंग दोनों मुन्दर और शक्तिमन्मन्त हों, यही कवि को इष्ट है । इसीलिए उसने अपनी कविता को मोनियाँ की लड़ी कहा है जो प्यार के साथ हृदय पर धारण की जा सके और 'बान्दरमाल' की तरह सबको प्रमोद दे सके, रसमय बना सके ।

ॐ

१ गुरु-शिष्य-संवाद-श्रुम, विरच्यो मन री मौज ।

'मिश्री' मुनि कहै मनुज के, चतुरपणां री चोज ॥ —बुधविलास, १ पृ० ४३

२ (क) गौतम-पद-अरविन्द अलि यो मन मोद अतीय ।

वसत चहत वरदान रस, कोमल वच कमनीय ॥ —पाडव यशोरमायन, पृ० २०६

(ख) नाथ आपजो निपट ही, ललित वयण की लूवे । —पाडव यशोरमायन, पृ० ६६

३ सुमता सदन भर, कुमता निकार कर,

दीनन-द्वार मार, शब्दकोप सूप दो । —मधुर दृष्टान्त मञ्जूषा पृ० २

४ सुणनों परिपद ऊमगे, जम कवि पावे झूठ । —पाडव यशोरमायन, पृ० ६६

५ रची बावनी रगधर जची सुजन हिय जास ।

नची कली-कलि सुन निपट, पची सु मनसादास । —उपदेशवावनी, पृ० ५६

६ पट्टावली मुक्ता-लरी, पहनी हिय धरि प्यार । —पद्यमय पट्टावली, पृ० ७२

७ आ कविता री बान्दरमाल । 'मकल्पविजय' का समर्पण ।

मरुधरकेसरी के चातुर्मास स्थलो की सूची मुनिश्री रूपचंद जी 'रजत'



क्रम संख्या	संयत	स्थान	क्रम संख्या	संयत	स्थान
१	१६६६	(बराह भाव म) जनारन	२९	१६६७	बीलाडा
२	१६७०	मलवाज	३	१६६८	मुमा
३	१६७१	भावा	३१	१६६९	बुबी-मरारन
४	१६७२	बुराया	२	२०	मिरियाग
५	१६७३	जनारन	३	२००१	जनारन
६	१६७४	माजत गहर	३४	२	जोधपुर
७	१६७५	दवगो धाडवा	३५	२ ०३	साजत गहर
८	१६७६	जेतारन	३६	२ ०४	साजो (मारवाड)
९	१६७७	जोधपुर	७	२ ५	बगडो-म-जगपुर
१०	१६७८	साजत गहर	८	२ ०६	बुरहावा
११	१६७९	जनारन	९	२ ०७	जनारन
१२	१६८०	जोधपुर	४०	२००८	साजो
१३	१६८१	सहवाज	४१	२ ०९	साजो
१४	१६८२	जनारन	४२	२ १०	बीलाडा
१५	१६८३	जोधपुर	४३	२ ११	मीवागा
१६	१६८४	साजत रोड	४४	२ १२	मलवाज
१७	१६८५	जनारन	४५	२०१३	बुमानपुरा
१८	१६८६	सोजत गहर	४६	२ १४	साजत गहर
१९	१६८७	बुराया	४७	२ १५	स्यावर
२०	१६८८	साजो आणपुर	४८	२०१६	साजो (मारवाड)
२१	१६८९	सहवाज	४९	२०१७	सवासपुरा
२२	१६९०	बुराया आणपुर	५	२०१८	साजत गहर
२३	१६९१	जोधपुर	३१	२ १९	जोधपुर
२४	१६९२	सोजत गहर	५२	२ २	साजत गहर
२५	१६९३	टीटगी	५३	२ २१	साजो
२६	१६९४	जोधपुर	५४	२ २२	साजत गहर
२७	१६९५	साजत गहर	५५	२ २	निवाज
२८	१६९६	बुराया गहर	५६	२ ४	गठन



मरुधरकेसरीजी म० की आज्ञा में विचरण करने वाले सन्तों और सतियों की शुभ नामावली

(क) सन्त

- (१) प० मुनिश्री ऋषिदजी महाराज
- (२) श्री मुकन मुनिजी ”
- (३) श्री महेन्द्र मुनिजी ”

(ख) सतियाँ

- (१) श्री पानकुँवरजी
- (२) श्री हुलासाजी
- (३) श्री तखताजी
- (४) श्री गुणवन्तीजी
- (५) श्री भीलमाजी
- (६) श्री झणकार कुँवरजी
- (७) श्री पवनकुँवरजी ।

- (१) श्री लक्ष्मी कुँवरजी
- (२) श्री मज्जनकुँवरजी
- (३) श्री मगनकुँवरजी
- (४) श्री दाखाजी
- (५) श्री सायर कुँवरजी ।

- | | | |
|------------------------|------------------------|------------------------|
| (१) श्री तेजकुँवरजी | (२) श्री मनोहर कु वरजी | (३) श्री धन कु वरजी । |
| (१) श्री पवनकु वरजी | (२) श्री दादाम कु वरजी | (३) श्री कसु वाजी । |
| (१) श्री प्रेम कु वरजी | (२) श्री श्रीकु वरजी | (३) श्री मोहनकु वरजी । |
| (१) श्री रतनकुँवरजी | (२) श्री छोगाजी | (३) श्री जतन कु वरजी । |

श्री मणिकु वरजी म० ठाणा २ से पालनपुर में विराजमान हैं ।



सस्मरण, श्रद्धानिवेदन, अभिनन्दन

कायकुशल कर्मठ सन्त

जनपदविवाह आचार्यतन्त्राट

श्री आनन्दप्रियजी महाराज

मनःस्थिर मन्त्ररचयिता श्रीमद्भीष्मजी महाराज धर्ममय कर्मठ प्रतिष्ठित सन्त हैं। अमणमयाय मगठन व सधद्वन तथा परिबद्धन म आपन अनुकम्पीय प्रवृत्ति हैं। वरुन अजमर साधु सम्मन्त्रन म सता वी तान म आपका जो म याग रहा है उस तभी विस्मयनी किया जा सकता। स्वानकवामी समाज व विचरर मोनिया वी एत माला म विरोध के लिए साधनी सम्मन्त्रन म धर्मण पक्ष वी जो सेवाएँ अति वी तथा अन्य उपयुक्तता म मय वी वरुन करन म आपन सन्धी निष्ठा क साथ जो महवाय लिया है अमणमय व प्रतिष्ठा म रानी सस्मरणाय एव उल्लेखनीय रणा।

आपका जातपट्टा वी मने निकट म अध्ययन किया है उस आध्यात्म पर म वरुन सधना हूँ कि आप अमणमय व उमादी सगन्त्रप्रिय और एक वरुन सन्त हैं। शुभ आनन्द अमणमय म आप जो वीय दुःख ममाज मभी मनिग्न वी वध कर वडा सनाप हुता है।

मन्त्ररचयिताजी एत अक्षय शास्त्राणा होने व साथ साथ जागृति भा है। आपका अनन्य धर्मग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। जनता व उनको आनन्द से रता है। पक्ष क वगावा आपने मद्यपक्ष भा निवृत्त हैं। स्वानकवामी समाज के प्रतिष्ठान वी आपका अन्ती आनकारी है।

धर्मप्रचार क क्षेत्र म भी आपका सावधान प्रामनाय रणा है दोषा वी गार समाल वरना धर्मविमय जनता म रणा उमादीनता धर्मा वी वरुन महुवन्तर धर्म वी प्रचार करन म धार्मिक वातावरण तयार वरना ये सब आपकी एमी विपणना है जो सभी अमणमयाय साथ मुनिगता व लिए अनुकरणीय है।

अपने अनुभव व आधार पर मैं निम्नलिखित कह सकता हूँ कि आपकी धर्ममय वी मगठित रणा वी मन्त्र साधना रही है और उसमें सधद्वनाय भूततया मन्त्रयोग दन वी भाव निष्ठा रणा है।

अभिन्नान्तरधर्म समर्पित करन ममाज आपकी सेवाश्री व प्रति आनन्दप्रिय अभिनन्दन कर रहा है यन् मनोव वी बात है।

मेरी हार्दिक भावना है कि आप सम्पूर्ण जन और धार्मिक वी वाराधना करते हुए धर्ममयाय एव व सम्मन्त्रन म अधिकाधिक मन्त्राव दन रहेंगे जिससे धर्ममय जन जन सब मयवान् महाराज व गिदाणा वी प्रचार करन म मफन दन सधना। धर्मम।

•

श्रीमरुधरकेसरी मेरी दृष्टि में

उपाध्याय श्री अमर मनि

गारा म उपाध्यायन मन्त्राव कि तुल्य मकल और अभिनन्दन वीय तयना म वरुन जो मरुधरकेसरी वी अभिनन्दन वी वी मन्त्र और विपणन है।



श्रमण-मध के सगठन-प्रनगों पर जितने ही प्रसंग ऐसे आये जब मैं उनमें पर निर्भीक तत्त्व और स्पष्ट वक्तृत्व का जादोलिन होते देखा। उनकी विवक्षण सगठनशक्ति और स्फूर्तिमान माहम देखाकर कई बार मैं आश्चर्य में हूँ बर रह गया।

वे दिन स्मृतियों में ओझस नहीं हुए हैं जब मादडी जैसे छोटे ने क्षेत्र में जविक भारतीय श्रमणमय का पहला अविवेजन बुझाया गया। मैरुडो मापु-माध्वियों और हजारी श्रावक-व्रात्रिकाओं के स्वागत-मन्त्रों और आवाज आदि की मुचारे व्यवस्था में स्थानीय श्रावकमध ने जिम मनोबल और तायंदक्षता का परिचय दिया उनके पीछे प्रेरक और मार्गदर्शक व्यक्तित्व कौन था? मैंने जब उनकी पृष्ठभूमि में मरुधरकेसरी के समय व्यक्तित्व का छटा देखा तो सहज ही उनकी मुदक्ष कर्मठता एवं नेजन्त्रिता का एक चित्र मेरे मन पर अंकित हो गया।

यह मत्य है कि व्यक्तित्व सपनों में नहीं, निर्माण में निगमना है। उनकी तेजस्विता की नावकता विद्वत्ता में नहीं, पुनर्निर्माण में नापी जाती है। मरुधरकेसरी का व्यक्तित्व समाज में प्रियायक व्यक्तित्व रहा है। जैन समाज में शिक्षणप्रमाण के लिए उनके प्रयत्न बड़े नीच रहे हैं। मादडी का नाकाशाह जैन गुरुगुन तथा अन्य अनेक शिक्षण-मन्त्राण उनकी शिक्षा-मन्त्राणों अभिरचि एवं त्रियाशीलता का उज्ज्वल प्रमाण है। उन शिक्षण मन्त्राणों की फुलवारी में जब मैंने मैकडा फूले की ग्रामिक मस्काओं की मुगम्य त्रिए महरने देखा, ना हृदय पर अनिवारनीय उल्लास में पुल्क उठा था।

वे अपनी परम्परा एवं समाज के प्रति-निष्ठावान हैं। ओकाशाह तथा स्वातंत्र्यवासी समाज के प्रति उनकी निष्ठा बड़ी प्रखर है। जब जब समाज पर विरोधी-प्रहार और आक्षेप हुए ह, उन्होंने बड़ी हृदता के साथ उनका उत्तर दिया है।

उनका एक कार्यक्रम मुझे बहुत ही पसन्द आया। वर्ष में एक बार वे मरुधर प्रदेश के प्राय छोटे-छोटे गावों में भी पहुँच कर वहाँ की जनता में जागृति की नई लहर पैदा कर आते हैं। जन-श्रद्धा का पीथा यवामय मिचन पाकर हंग-भरा और मुस्कराना रहता है। हमागवर्तमान श्रमण-वर्ग, जो बड़ेनगरी की ओर आकृष्ट हो रहा है, मरुधरकेसरी के इन आश्रमों को अपनाये, तो उन्हें शहरों में अधिक श्रद्धा गावों में मिल सकेगी। नगरों का श्रावकवर्ग आज पहाड़ों की चढ़ तलहटी वन गया है जहाँ पानी वरमता बहुत है, पर सब ऊपर का ऊपर बह कर चल जाता है। गावों में अब भी उपदेशों के पानी को अपने भीतर ही जज्व करने वाली मनो-भूमि मिलनी है।

अभी-अभी सवत्सरी के विवाद पर कुछ विचित्र मन स्थितियाँ सामने आई हैं। मधर्ष के इन नाजूक क्षणों में 'मरुधरकेसरी' ने जिम मन्त्राहम का परिचय देकर सगठन की सुदृष्टता के लिए जो कदम उठाया है वह मराहनीय तथा ऐतिहासिक घटना है। उनके इस माहम का मूल्यांकन मैंने उनके पारिपादिक वानावरण के पदम में आका है-जब उन्होंने अपनी परम्परा के कुछ मुनिराज श्रावण में सवत्सरी का आग्रह ले बैठे हैं, तब भी उन्होंने आचार्यश्री के अनुनामन को लक्ष्य में रख कर भाद्रपद में सवत्सरी करने की स्पष्ट घोषणा कर दी।

युगों के मधर्ष और बलिदानों के बाद जिम सगठन का सूत्रपात हुआ वह अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना थी। हमारे मुनिराज अपनी मान्यताओं एवं प्रतिष्ठाओं के प्रश्न को अलग रखकर जब मरुधरकेसरी की विचार-धारा में सोचे तो उन्हें सगठन की सुदृष्टता का नया सूत्र मिलेगा और वे इस ऐतिहासिक घटना के महत्व एवं प्रभाव को क्षीण एवं विगणित होने में बचा सकेंगे।

मुझे लगता है कि अभी-अभी मरुधरकेसरी और मैं विचारों के दो भिन्न-भिन्न किनारों पर चलते रहते हैं। पूर्व-पश्चिम का सा एक जन्तर प्रतीत होता है, पर आश्चर्य नहीं हो कि पूर्व-पश्चिम कभी-कभी एक दूसरे में आमने-सामने आकर मिल भी जाते हैं। मन्त्रभेद एक अलग चीज है, मनोभेद जैसी चीज हमारे बीच नहीं है, उसका हमें गौरव है।

विचार क' को सम्यक् और विराध क' आधार बनाकर ज्ञान एक बौद्धिक क्षमता है। मन का छोटापन है। मध्यरवेगरी क' आरत की अधिक विरागता का विचार करता है ता लगता है कि क' न ज्ञाना साध ल' आव' समाप्त करने के ल' न ज्ञान मे प्रेरणा प्रण क'र और जनयष का श्री-मममि क' िन कृतिमि व' वनकर आम व' ।

मध्यरवेगरी क' अभिा प्रमय पर उनकी अरक ल' उनेशनाय सवासा तथा मृगुता का सांस् सम्मरण है। उन्हा अ' न दन उनकी गवाशा का अभिनय है। य' गणिपु प्रमा' की प्रमोभावना का प्रभाव है। मरण प' के समस्त तथा गवधने क' लिने इस अरार क' मयप्रवृत्ता का अत्यन्त उपयोगिता एक आविर्भावना है।

स्वामी श्रीमिश्रीमलजी म० ज्यू मू जाण पायो

प्रवक्त' श्री अम्बालालजी म०

क'ना रा जीवन की वास्था क'ना न क'नी व' आगाना गहा सहा विचार बनावना शुरू कीहा की घार व' बालवानु भा ज्ञाना टटन मानू। ज'नी अ वासत शुरू क'नीराइ जीवन व' क'ना मू मोक्ष ल'गे ता त'क व'चना शुरू। गाढ़ा आलक्षण ता क' ५००—भाई जा है हा बाणाउ छान नी है ज्ञाना व'द कू।

अहो ज्ञानरपणा भा मनना सुदाव क' मूडा ज्ञान तो प्रगतारा ज्ञानी बाही दीया हाक'नी न मन म' सममनो रणा न ये तो क'नारा रा धाना है। यो ममत्र व'ना सुद्वन मू क'नाराइ जीव म' मरो उतरवारी काणिम नी क'क' तो भा बाङ्गा अस्या छाणी रा ज्ञान ता ज्ञाना व'ना ज्ञाना य' ज्ञाना व' ज्ञाना री काणिम नी की। ता भी वे आता आत ज्ञाना व'ना। क'ना बाहा य'किन्ना म' ल'ग' ज्ञाना क'नामीनी ज्ञानि ज्ञाना व' रा भा है। ज्ञानादे गाय गृहारा सम्बध व'न पुराणा है। सध व'णो र प'न न प'द आह' न ताई व'नी बाह' भ'रा रया न धाना बाहा काणी पण म' अगागी बाहा न अगारा जावा री व'नीटी व' परजवा म' विचार क'न नी बाणे। पण मन अवरज यो व' क' जा य' क'ना रया धान व'स्याइ व'नीतर मू क'रता भी रया। आता आता मोक्ष भा अस्या बाखना गया क' अगारा प'राणा हानी री। शुरू ताइ छैनी मू न क'न न'ज'ना मू सज'हा दमना रया म' मय दाण धरा उतरता रया।

तालवा म' बायो क' सध व'गवाउ व'नी भा आता न'राई मय व'क'ना प'क'ना पण हाया ना सप्रमय रा सहा प'ना ग'क'यो।

सध व'णवा न' बा' ज'नी बाता व' वा बा' रा ममापाव क'ना म' न सध री बा'बाणी राधवा म' ज'नी अगा हाय व'णवा था मू कुण अणजाना है।

मू हरक' मनन म' बाही व'नी रया ल'ग' है बाहा आगना ज्ञान भा व'ना क'र ज्ञानारी मोन का ना प'द ताव' पण स्वामीजी रा स्वमात्र म' ल'ग' बात व'ना अमर क' तो नाण ल'णी न माहातो देहा भा छाड़ भा दणी। पण धारणा धाम' र' पाई ममात्र रा ज्ञाना ज'न नी क' ज्ञाना बा'ग' ग' ध्यान व'रावर र' ।

अणा री म'न'न या नी है क' व' ग'ना रया म'म'म'न न ज'म'ना रया ज'व'नाताम ज्यू अवमरवा' है पण प'नवर रा ज्ञाना क'र है। ज'म'र ग' ज्ञान भा व'ना तो मुग'ना है।

बाई बाई अणा क'न मि'न प'न व' बा बात छाणी रा बाणी रा स्वमात्र री है। अगानो क'नाय है रया क'ना बा'ग' रया। ल'ग' या विल'क'न मोव' है क'न क' रयामीनी प'री मुग' बात बना ल'ग'ल'ग' ताव' मुग'न' ज्ञान प'न समग' मे भागाट'क' है प'न अमल म' बात दूव'ग' है। क'ना द'वा' क'ना बा'बा' रा ज्ञान उर' धरा क'ना बिना वाम भा ता ना रहे।





मनरा माफ ने बोली रा बड़वा मनख खतरनाक नी व्या करे । गनगनाक नो ये व्हे है, जो जेर रा नो बडा है ने अमरत रा टाकणा है । मन मे तो माटा राखे ने उपर मू मारिया ज्यू भीठा बोलि । देग ने देखा ती आणा री बोली रा तेज मू ममाज मे फायदोइज व्यो ।

बोली रा कडक बेता यका भी स्वामीजी मने स्वभाव मू बडा नरम ने महिणु लाग्या । नव री ममस्याओ रे बिपे म्हाणें आपस मे नगी दाण वातचीत ने पूछनाच करवा रो मांको जायो, कणी कणी वान मे म्हाणे बिने जवदंस्त विचार भेद भो र्यो, अवे भी व्हे मके, पण म्हा जाणूह के वो मतभेद, मतभेद इज र्यो ने रेगा, मनभेद नी व्यो, नी वेगा ।

अणा री या महनशीलता री ने त्रमवागी आदत मने अणारा पूरा जीवन म व्यापक आगी, अणीज गुणमू वीलाडा के वारणे दुष्टा रा हाथ मू मार भी छमलीदी पण चू तक नी क्यो ।

बवाणू ग्या फागण री वान है । म्हा विचरनो थको जेतारण जायो । बटे मुणी, स्वामीजी कुयालपुरा मे एकाएक पड ग्या ने जोर की लागी । म्हारो थोडा दिन जेतारण मे रेवा रो मन हा पण स्वामीजी रे लागवारी मुणी तो वणी टेम व्यार कर दीदो । कुयालपुरे पोच ने अणा ने देखा लागी नो गेरी ही पण मने कई चिन्ता नी वो क्यू के, स्वामीजी को धीरज भी गेरो हो । मै मोच्यो धीरज देगता सट ही मव ठीक व्हे जावेला । व्यो भी मू उज, थोडा ही दना मे म्हाणो व्यार होग्यो । म्हा नोजत ताई माथ आया भेलो ही होरी चोमामा कीदो । बटो आनन्द र्यो । साप रेंता यका कदी भी भेद नी दिस्वो । म्हा उमर ने दिशा दीई तरे मू स्वामीजी मू कम हू पण स्वामीजी हमेया बराबरी रो ममभने हो उचित ने मम्मान पूर्ण वेवार राखे, या अणारा मन रा मोटापा री वात है । ई मे मने दीखावट नी लागी ।

मने मारवाड मे विचरता यका जाण वो के अम्या एकान्त ने छोटा-छोटा गाम जठ अवमर मत-मत्पारा दर्शन दुर्लभ व्हे, स्वामीजी पहोच-पहोच ने वाने मम्माले, जीमू वे घमंघ्यान री दृष्टि मू आज भी हर्षा-मर्षा है । अम्या घुडापा मे अतरो व्यार करणो, अपणास राखने कष्ट उठाता यका हर गाम मे पहोचणो, यो शामनमेवा री साची हूम वना नी व्या करे ।

म्हा तो मानु हू के मारवाड मे स्वामीजी एक जगमगाती जोत है, जो सब तरफ घूम-पूम ने मव ने उजालो देती रे । म्हारी तो तहे दिल मू या ही गावना है के ज्योतस्वल्प स्वामीजी आपणा प्रखर तेज स जुगजुग तरु नव ने धीर ममाज ने जगमगाता रहे ने मव, ममाज अणारा प्रकाश मे आगे मू आगे बटना रहे ।

सबरो मार-मोरठा मे—

मरुधर री या ज्योत, जगमगती रेवे सदा ।

सघ करे उद्योत, अजालो नित पाय ने ॥

०

मरुधरा के महान् सन्त । शतश अभिवन्दन

श्री मधुकर मुनि

परम श्रेष्ठ पूज्य मुनिराज मरुधरकेसरीजी श्रीमिश्रीमलजी महाराज मरुधरा के एक महान् सन्त, महा-पुरुष है ।

यद्यपि मरुधरा को मजला-मुफला व घम्य-श्यामला होने का गौरव न भी मिला हो, परन्तु सन्तजनो की आकर-अवनि होने का सीमाय तो उमे अवश्य मिला ही है ।

[illegible]

मत्तजन पाट मधरा व हा या अर्थ रिती भा घरा व हा वे तो यत्र-नत्र-मयत्र अथवा व प्रयत्नत आवाग
ही होते ।

संघर्षों में भी जनता सम परम्परागत प्रवृत्ति है। आमतौर पर संघर्षों में जनता सम परम्परागत सत्यता की विचार प्रणाली को मानती है।

विनिष्कृत वाणिज्य जगत्तः प्रथम परम्परा श्री महाशय का एव विनिष्कृत धर्म परम्परा है। यं जितना विनिष्कृत है उतनी ही उच्च उच्च शक्तिमान्ता जितना भी है।

इस परम्परा में सन्त जनों का स्वामन्त्रवादमय जीवन गन्त सत्संगीण मान्य रहा है। आज भी इस परम्परा में सन्त जनधर्म का प्रागल्भ्यमय धन हूँ, जिन्हें जगत आशीर्वाद का आश्रय पारदर्शक साधनजन अपनी साधना में साधन पर चलाया जा रहा है।

[illegible]

हूँ। तो मर्यादामयीजी मन्मथजी मर्यादा व एकात्मता मत है । सन जीवन को गुण गरिमा भाग्य म है यह एक तथ्य है ।

मूल मुद्रा और अतस्तत्र आपत्ता विधाना प्रवृत्त वरुण है। जाय म अनुकूलता वा साधन वा समर्थता है। मूल-मुद्रा जीव विनियमन सार जीवन की साधन सम्पत्ति माना गते है। जाय म भूत-मुद्रा है और विनियमन की भावना है। या विनियमन की भावना वा व्यष्टि वा समष्टि की भावना जाता है। यद्यपि वैयर्थी मन्त्राज्ञा स्वयं म तत्र व्यष्टि है परन्तु य समष्टि म सम्मिलित है। अनुकूल व विपन्न व गती विनियमन व प्रसाद है।

इसका मतलब है कि आपकी गलत जानकारी है। गांधी-सम्मेलन के प्रिय प्रसंगों पर सम्मिलित होने वाले सभी सम्मेलनों ने इन बातों का अनुमति अवश्य दिया है।

सर्व पावर आपन माथेग म बाई मा स्थिति बिमल्य ह। जाना ह। तेमा कम दखन म आया है। यह आपन स्थितिग्य का उभय है।

आप बीर हम (उपवन) भी बरलाएला म और मधुकर मणि। म नव है — वन सनित है । आज आप बीर हम प्रमन-मम म हैं म नत ही म नित्यता रही है म नित्यता ता पुत्र म ममयित है ।

[illegible]

आप न परम पूजनीय गुरुभ्यः आ वृषभभ्यः सा आराधनीयः मरे परमपूजनीयः एवम् आ योगवरमन्त्राः
महाशिवः नारायणः परमेश्वरः अनाद्यः सन्तः यः । एवम् आ विष्णुभ्यः आ शक्तिः शिवः शक्तिः शिवः ।

समाप्त वा सान है मेरे आशय मुझ मरणादि क इति वा मीमांस नो मित्य वा नु आन मर मृत्यु मृग क
क म न विन है । आन भा अत्र कभा यानो वा प्रसव आशय इति है तत्र सन आशय मित्या है कि अत्र भा आशय



स्वान्न मेरे गुरुदेव के प्रति श्रद्धावन्त हैं ।

ब्रान प्रथम अजमेर-सम्मेलन के समय की है । यद्यपि उन समय में वचन था कि 'मेरी स्मृति तुम्हें है कि उस अवसर पर जब वरु मरुप्रक्षेमरी जी सभी सम्प्रदायों के मुनियों को एक आचार्य की अग्रिमता में लाने की विज्ञापना कर रही थी तब होने वाले मागवाटी सम्मेलन के आचार्य पद के लिये आपकी ओर से ही स्वर्णीय स्वामीजी श्रीहजारीमन्त्री महाराज का नाम उदासित किया गया था ।

मे अधिक क्या सूचित करूँ ? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनमें हमारी उर सन्निहितता दिन दूरी और गहन चोटुनी बढ़ती रही है और आगे भी बढ़ती ही रहेगी ।

मेरे जीवन के अनेक क्षण आपकी सम्मति में बीते हैं । मुझे मन्ताप है आप के सन्त-उत्पन्न में । मैं आपसे प्रति श्रद्धावन्त हूँ । मेरी ओर से उन मरुप्रक्षेमरी महाराज के लिये श्रद्धा अभिनन्दन ।

०

श्रद्धेय श्री मरुधरकेसरीजी म०

पं० २० श्री ज्ञानमुनि

विश्वमन्वत् २०१० में, श्री वर्धमान स्यामस्वामी तैल शम्भार्य का वृहत् मायु सम्मेलन बीनागर (बीकानेर) में था । जैनधर्मविचार, आचार्यमन्त्राद् पाम श्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आम्नागमजी महाराज का आदेश पाकर श्रद्धेय तन्त्री श्री स्वामी लालचन्द्रजी महाराज के साथ मुझे उस सम्मेलन में जान का अवसर मिला । उनी समय समाजहितैषी समाजसुधारक, मरुप्रक्षेमरी श्रद्धेय श्रीमिश्रीमन्त्री महाराज के दर्शन करने गया उनके सम्पर्क में जाने का मुझे अवसर मिला था । सम्मेलन के कारण लगभग २० दिनों का वह सम्पर्क रहा । उन दिनों मुझे मरुधर-केसरी श्रीमिश्रीमन्त्री महाराज को निकट में देखने का भाग मिला । उनी के आचार्य पर कुछ विवेचन करने लगा हूँ ।

मरुप्रक्षेमरी श्रीमिश्रीमन्त्री महाराज एक काज्जल कमंडल, उदा-हृदय सन्निहित मुनिगज हैं, सम्मेलन के संचालन की इनमें विशेष समता है । जेते देखा है कि बीनागर-सम्मेलन में सम्मेलन की जिनकी भी बैठकें होती थी, उनका नेतृत्व प्रायः मरुप्रक्षेमरीजी म० ही किया करने थे । वैन श्रमणसभ के उपाचार्य, प्रज्ञानमयी, उदाध्याय तग मन्त्री मुनिवर भी योग्यतापूर्ण पट्टि के साथ अपना शक्ति निना रहे थे पन्तु मुख्य रूप से सम्मेलन का संचालन उन्हीं के हाथों में देखा जा रहा था । उनी सम्मेलन की कार्य-वाही को जाने चलाते थे । एक कार्यकर्ता ने कार्य-सम्पादन की जिनकी समता होती चाहिए ? कितनी मज दूज, कार्य-दर्शना, समयसूचना और जिनकी गंभीरता जानी चाहिए ? यदि सभी प्रश्नों के उत्तर मरुप्रक्षेमरीजी के जीवन में सम्प्राप्त हो जाते हैं । यदि उनके जीवन को उक्त प्रश्नों का मजबूत उत्तर ही कह दे तो मेरी दृष्टि में उपर्युक्त ही दिखाई देना है ।

श्रद्धेय मरुप्रक्षेमरीजी महाराज के पवित्र ज वन में एक खाम बात और देखने में आई । उर श्री-संज्ञान-वर्मा श्रावण तथा सम्मेलन की सर्वाटन मुख्यवस्थित तथा अनुशासित देवने की महान् लालसा । के स्यामस्वामी समाज में आचार्य-विचार सम्बन्धी ऐसी उत्कृष्टता लाना चाहते हैं जिसमें वह समाज सम्प्रदर्शन, ज्ञान और सम्पत्ति चान्द्रि की छाया तने अपनी जीवनयात्रा सम्पन्न करे । इनकी हादिक इच्छा रही है कि प्रत्येक श्रमण विद्वान हो, त्रिपात्र हा, त्याग-वैराग्य के महामय का पथिक हो । सामाजिक सविष्य को समुज्ज्वल बनाने में समर्थ हों । उनकी अन्तरवीणा के यही स्वर सुनाई पड़ते हैं कि—माधु, माधु श्री श्रावण जी श्रावण सभी आचार्य-विचार की दृष्टि में ऊपर उठें । सभी में धार्मिक सगठन हो, अनुशासन हो, निजी महत्वाकांक्षाओं को एक ओर रखकर संघर्ष को ही

प्रथम सेना चालि। एक मरतण और सवधन के लिए समव और गवय प्रवत्न होन चालिए। भानामर सम्मन्त्रन म
 २५५ स्वर को गुजाया गया था इस २५५ त्रिवारमक रुद्र दन के लिए इहान अपना सम्मन्त्र गवितया का जायाग किया
 और वनमान म करते चन् जा रह है। यही कारण है कि बाज धमनमय के सत्ताम इनका एक म त्वगुण स्थान है
 और समज इनका अधिन त्वगुण में करन अपनी हास्त्रि निष्ठा का अभिप्रायित करन का स्तव प्रथम कर
 रहा है।

नाम और गुण य २५ वस्तु है। वह २५ जिनमे किसी वस्तु वस्तु या समूह का बोझ हो उन नाम
 वस्तु है। निपुणता विपत्ता वसात अछो मित्रता का नाम गुण है। इनपना का त्वरविपत्ता योग न चार म
 प्रकार वना है। जमे वही नाम प्रगस्त है और उमक अनुमार गुण भी प्रगस्त है। बी नाम प्रगस्त है गुण प्रगस्त
 नही है। वही गण प्रगस्त है किन्तु गुण का आधार नाम प्रगस्त नही है। बी नाम और गण नाम प्रगस्त
 नही है—न अछा नाम है और न अछा गुण है। इन वस्तुमयों का उदाहरण स समझिए—एक ध्वनि का
 नाम नाति है जब उमक जीवन यवहार का दधत है तो उसम नाति का स्मरण होत है वह किना स स्मृता
 मगडना नही किसी का वस्तु अनुचित वह दन पर भी वाकुल नही गता ना नाति दधना है। पना नाम
 भी प्रगस्त है और गण भी प्रगस्त है। एक वक्त्र का नाम नाति है परन्तु जीवन म नाति नही जोय
 का भाग म जलता रहता है समझने पर भी नही समझता बिना कून् का मुन लडने मरने का सवार उठा है। एक
 पक्षि का नाम प्रगस्त है परन्तु गण प्रगस्त नही है। एक पक्षि का नाम अवागमात्रा है प्रवृत्ति मसि धगु है नाति
 प्रिय है जीवन के किसी क्षम म अवागमात्रा होना प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति होन पर भी नाति है वसा
 गरमी का निवृत्त नही आने दता। ऐसा व्यक्ति नाम स अग्रस्त है वित्त गण म प्रगस्त है। एक पक्षि है जिसका नाम
 मूखगिरामणि है। लोग का ताकि तोडता झूरी गवागिया म्ना और किसी की पक्षि उठी को धरा दृष्टि म दधना
 नी उम का नाम है। ऐसा पक्षि नाम स भी अग्रस्त है और वाय स भी।

उन चार मग म वनप्या के चार प्रकार वनने का प्रवत्न हुआ है। मस्त सत्ता २५ चार मग म
 विभजन हा जाना है। हमारे म प्राय सम्मा नीय यद्य वदनाय मध्वरम्मी बी म्ना राज प्रथम मग म आते हैं।
 इनका नाम भी प्रगस्त है और उनके गण भी प्रगस्त हैं। जनशय म ये मध्वरम्मी के नाम म प्रगस्त है।
 मध्वरम्मी वितता स २५ और प्रगस्त नाम है? जब मि निमय रूपा है मय को निरन्त्र न। आन वना
 और गल का वाग्या म्मा गता है वसे ही हमारे परम यद्य म्ना मध्वरम्मी म भी मि हुन निर्मोक मनिराज
 है। उर वया हुना है? य २५ वना वसा जाना नही। भानामर सम्मन्त्रन म मन्त्र म्ना है कि य सम्मन्त्र को वस्त्रा म
 ति को तरन गरजत म वेपडक होकर अपना बात व्हा करते थे। जिन म्ना को घाक या २५ क
 मार जिनके सामने लागा की जवान नही छाती भी समथ आन पर ये उन पर वरन पडत थे। इनके हृदय म म्ना
 गमाज एव सथ के नवनिर्माण की एक वस्त्रा तडप रहा है। धय है स्थानकगामा २५ मयममत्र जिन मध्वर
 वस्त्रा के रूप म एक निष्ठा म समाजगवी मयमप्रिय मनिराज उपलब्ध म्ना है।

यद्य मध्वरम्मी निष्ठन का वस्तु कुछ गिया जातरना है किन्तु मये म यदि अपना नाम निवन्त्र
 वस्त्रा यद म्ना वस्त्रा के गाय वस्त्रा हुनि पापको सामाजिक जीवमन निपायनाभा ना अरा का सामित
 रक्षाभा म वांवा नहा जा मत्ता तया जाने स्थानकामी जाजवन पर जो उपहार मिले उतरा वस्त्रा
 भा चुवाया न। २५ गता। मयमध्वरम्मी अभिप्रायन सथ प्रसाक पमिनि आरा आभन नम्रय ममगि
 कर आरके पुण्य वरणा म २५ यदा मुम ममगि कर रहा है वह वस्त्र म्ना दूरगिता तया वृत्ततापूर्ण प्रयाग
 है। म्ना म्ना म्ना अभिनन्दन वस्त्रा है।



कोटि-कोटि अभिनन्दन

मुनि कन्ह्यालाल 'कमल'

पूज्य मरुधरकेसरीजी महाराज मरुधरा के महात्मा मन्त्रन्त हैं। आपने भ्रमणजीवन की इस अवस्थातः मे चतुर्विध मय की जो सेवा की है वह अनन्तमय के अमर पृथ्वी पर स्थायी पवित्रता में सर्वदा अमिती रहती। यह नया हुए साधुसम्मेलनों में आपने जो कार्य किया है उसके सूचकांक में आज मरुधरा का नाम ही उड़ा है। सादरी और मोजत के सम्मेलन के तो आप प्रभुय सूर्यसार रहे हैं। वर्तमान भ्रमणमय के मगहन का गीतारोपण आप के अमीम प्रयासों का ही पुकल है। आप के द्वारा लोकहित के अनेक कार्य सम्पन्न हुए हैं। आप ही अवस्था पर मरुधरकेसरी अमोघ सिद्ध हुई हैं। आपकी ओजस्वी वाणी में मय का जो स्फूर्त चेतना प्राप्त हुई है उसे मरुधरकेसरी में आकर करना गागर में गागर समाने जैसा प्रयत्न सिद्ध होगा।

वात्सल्य से अब तक अनेक बार आपके अति निष्ठ भक्तों से रहने के प्रसंग मुझे प्राप्त हुए हैं। मैं दया है—आप उदारमनसा, स्पष्ट, निर्भीक धर्मता, समसी राजन्यानी गल-पल गतिना का प्रणेता, भक्त-प्रियता, नर-प्रिय लोकनेता हैं। आप के इस लोकसेवा वास्तव्य के प्रति मेरा अनन्त अभिवादन, कोटि-कोटि अभिनन्दन।

०

दिल की दिवाल पर टगे सस्मरण

होरामुनि 'हिमकर'

महापुरुषों का गुणानुकीर्तन करना जीवन को निर्मल और पवित्र बनाने का एक साधन है। क्योंकि महापुरुष का जीवन परोपकारी होता है। दूसरों के लिए वे स्वयं कीर्ति का देते हैं। मरुधरकेसरी मिश्रीमलजी म० भी एक ऐसे ही महापुरुष हैं। उनके जीवन के अनेक सस्मरण मेरे दिल की दीवार पर सुनहरे और रंगीन चित्रों की तरह टगे हुए हैं।

विक्रम सं० २००४ का प्रसंग है। परम श्रेष्ठ गुरुवर्य महास्वधिर श्री तारानन्दजी म० की आज्ञा में मैं अपने भूतपूर्व सम्प्रदाय के सुलेखक श्रीनारायणचन्द्रजी महाराज एवं नेवामूर्ति श्री प्रतापमलजी म० की सेवा में था। उस वर्ष श्री नारायणचन्द्रजी म० के साथ मरुधरकेसरी मिश्रीमलजी म० का नयुक्त वर्षावास सादरी राजस्थान में हुआ। उस समय मैंने बहुत ही नजदीक में मरुधरकेसरीजी म० को देखा। वे ऊपर से वस्तुतः मिश्री की तरह कटोरे थे। उनका अनुशासन गजब का था। उन्होंने मुझ पर जिम तरह उस समय कड़क अनुशासन किया वह प्रारम्भ में मन को कुछ अस्वस्थता रहा। मैंने सोचा—ये महाराज तो काफी तेज स्वभाव के हैं। पर ज्यों-ज्यों मैं उनके अत्यधिक मन्तिकट होना गया त्यों-त्यों मुझे यह भी अनुभव होने लगा कि यह तो मिश्री की तरह भीठे भी हैं। वे बाहर में जितने कड़क हैं उतने ही अन्दर से मुलायम भी हैं। कवि की भाषा में उनका वस्तुतः यही परिचय है

नालिकेरसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जना ।

मरुधरकेसरीजी का हृदय मक्खन से भी अधिक मुलायम है। जब कभी कोई दीनहीन जन उनके पास जाकर अपनी कष्ट कथा सुनाता है तो वे कण्ठा में विह्वल हो जाते हैं। विह्वल ही नहीं होते पर किसी भावुक भक्त की प्रेरणा कर उसके दुःख-दर्द को जब तक नहीं मिटाते तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ता। मैंने अनेकों में देखा है—सैकड़ों गरीब बन्धुओं को गुप्त रूप से सहायता के लिये उनका शकेत करते हुए। यदि कोई अनुदार नपन्न व्यक्ति ननु-नच करता है तो उस पर केसरी की तरह गरज भी पड़ते हैं। और उनकी गर्भीर गर्जना के बाद अनुदार भी उदार

की उणी में बसा जाता है। ऐसा भा अनुहार ध्वनित देख है जो मन न हस्त हुए भी कब मरुधरकेसरी का जाना को पावन करने का त्रिग मुक्त हाथ में लाने देने में मकाच नहीं करते।

आपकी मरी विषयना जो मरे जा आवर्षित करती है यह है कि आपका तब मन और वचन मस्थानकवामो जन समाज का प्रति गन्ती निष्ठा है। स्थानकवास समाज का सिद्धान्त के प्रति अपूर्व आस्था है। समाजो जन का लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना आपका स्वभाव है। जो की भी आपने चानुमान किया या आपका विराज कर्ता का भावुक भवना में भी यही भावना धरी है कि समाज के काम के लिए यदि तुम्हें प्राण अर्पित करना है तो धीर सनिक की तरफ अर्पित करा। जो की उपासना की विनु गुणा की उपासना करा। और आशावाह की तरह तुम्हें भी ज्ञान का गद्यना फूटना है तो उन मन्त्रियों की जयियाँ बने ही उमाह और उलास का साथ मनाओ।

आपका आपन बड़ा ही जागीला होता है। विषय का प्रावधान के साथ जब किसी भी विषय का उल्लेख या मन्त्रन करना होता है उस समय मारण तथा जयता है जैसे आवाज की बरा जमी हो। तब पर तब बरस पत हैं।

आपका साहित्य अधिकांश राजस्थानी भाषा में है। आपकी राजस्थानी भाषा मुहावरण और प्राज्ञ है। पाठ पढ़ते पढ़ते आनन्द विभोर हो जाता है।

मरुधरकेसरीजी का अभिनयन प्रत्य निराला जा रहा है यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है। उनका अभिनयन प्रत्य होना ही चाहिये। मैं आशा करता हूँ—मरुधरकेसरीजी में दीक्षा तब समयमाधना कर जनधर्म की प्रभावना करते रहें।

•

श्री मरुधरकेसरी का व्यक्तित्व

जनसिद्धात्तात्त्राय धीमान्श्रुविजी ०

मरुधरकेसरीजी श्रुति मूर्ति सत्त तपस्वी चित्तक और विचारना की भूमि रहा है। यहाँ की मिट्टी का कण कण में पवित्रता की सुगन्ध आती है। ऐसा मरुधर म मरुधरकेसरीजी का अवतार हुआ है।

आप जन सिद्धांतों के प्रखर विद्वान् एवं ज्ञाना हैं। संस्कृत प्राकृत हिन्दी गुजराती राजस्थानी आदि भाषाओं में पाण्डित्य प्राप्त किया है। राजस्थानी भाषा में आपकी अपनी ही है। आपके लक्ष प्राय राजस्थानी भाषा में ही रहते हैं। आपका दानाद्वय साहित्य एवं इतिहास में भी धारण हैं। आप लक्ष परिश्रम के साथ साहित्य का अवलोकन करने सत्ता की नामावली व्यमणन कथाका बनारस प्रकाशित कर जना की परम्परा का निर्माण कराया है।

आपके उद्देश्य की प्रणाली से अनेक विद्वान् तथा योगात्मा स्थापित हुए हैं। आकाश में मरुधर साहूजी (मारवाड़) जिन्हें ज्ञानमन्त्रि सिरीयारी गौतम जन मरुधर साज्जन आदि अनेक सत्प्राभा की स्थापना का एवं उनको प्रोत्साहन दिया गिचन किया।

आप मरुधर का मन्त्रा में प्रसिद्ध कथा है। आपका राजस्थानी भाषा का प्रति विशेष आग्रह है। राजस्थानी भाषा में ही अधिकांश प्रवचन करता है। मैं जसा मज्जा करता हूँ इतिहास आपका मरुधरकेसरी का विज्ञ प्राप्त है। राजस्थानी भाषा आपके गुणारवि स अच्छी लगता है। जनता मुख्य बन जाती है और स्थानमाय में उनको जो जी नहीं सत्ता है। जनता आप की भाषा की व्यापार रहना है।



10

दूसरे दिन में ही व्यावर बाबातावरगद्दीन होने लगा। तरह-तरह की चर्चाएं और गहन फहमिया फैलने लगी। मजिदबान् उस समय व्यावर मेमरी मुनि श्री जेपमऊजी म० तथा मत्री मुनि श्रीगुजर मुनिजी पधारे हुए थे। उनके समक्ष मार्गवान् खड़ी गई तो उपाचार्य श्रीगणेशीतानजी म० के आवाको की ओर में उठाई गई थी। नीनों तरफ के आवाको के समक्ष खर्ता हुई निम्ने उपाचार्य की के आवाक भी सम्मिलित थे, परन्तु उपाचार्यजी के आवाको को मत्री गुगल के समाधान में सलाह नहीं हुआ। उन्होंने उपाचार्यजी म० ने समाधान करना चाहा। उपाचार्यजी विचार में थे और समय

दुःखना स्वर रङ्ग गया था कि उनसे सम्पर्क साधकर समाधान करवाना सम्भव नहीं था। तब आचार्य ५ आत्मारामजी से समाधान मांगा गया और वह मिला गया। मरघरकेसरीजी पूर्व निश्चयानसार चौपाई के पथार गए। विराधी वातावरण बना ही रहा बल्कि त्तिनादिन बना गया।

इस प्रकार के विराधपूर्ण वातावरण में भी था मरघरकेसरीजी की गाति अभंग थी समाधि अवाध थी और ध्वज अडिग था। बड़ी वीरता के साथ उन्होंने स्थिति का सामना किया। उनकी इस विधिपद्धति का परिचय देना ही इस घटना का उल्लेख का प्रयोजन है।

इस घटना के साथ मैं उनका निराशा था। मैंने अनुभव किया कि उनका धर्म ध्याह है साहस अविचल है, चारित्र्य उत्कृष्ट है त्रिधा उत्कृष्ट है। साधना मना के अनुरूप है। इसका वर्णन ज्योतिषी में आपका निकट जाना गया था। तब मरी उल्लिखित घटना का प्रमाण है।

मरघरकेसरीजी अपने स्वच्छन्दता हैं कि अपने भवन से भवन आकर। को उचित बात कहने में नहीं हिचकते। आचार्य की भी आपक प्रति इतना प्रभाव पड़ा है कि वे आप के वचन का डाल नहीं करते। आप के तेज के समक्ष सभी का अभिनत हा जाना पड़ता है। किसी पक्षी प्रातः काल की चिन्ता का भास ही नहीं होता।

वास्तव में मरघरकेसरीजी हमारे समाज के एक मध्य स्तर हैं। उनके अगुआ और असाधारण व्यक्तित्व एक समयनिष्ठा का गत गत अभिमान है।

गुणों के सागर

श्री अनोपचद पुनर्मिया

पुण्यभूमि मरघरकेसरीजी श्रीमतीमन्त्रीजी ५० स मरी कराव २५ है। वे एक निरुद्ध का परिचय रहा है। पुण्यभूमि भारतपर इस तस्मात् मरी उद्गार दिया था। सगठन के अग्रव हिमावती सता के कारण है। सर्वोद्भूत होने का भाव करता है।

आपको मन बहुत ही समीप में दया है। आपका अंतरन पुन से भी उपाय कामल है। जब कभी किसी दीनदुःखी अस्वस्थ रोगग्रस्त प्राणा का दयन है तो उस से अपना बहुताने हनु सतत प्रयत्नशील रहते हैं। ऐतिन जब स्वयं पर भयकर से भयकर रोग आक्रमण करता है। या बाहर से कोई बला होता है तो आप उस हस्त से छुट्टा करने में तनितमान भी धरते रहते हैं। मरघरकेसरीजी उद्गार मन विनाहा में प्रत्यक्ष देना है। जब एक बसाई मछलियों को तालाब पर मार रहा था और उनका पकड़ रहा था तब आपने उसको प्रभावपूर्ण समझाया कि ऐसा करना तुम्हारे अच्छे में भी मना किया है। इस पर वह कदा ही उठा और आप पर आठिया में कोई एक प्रहार किया। आपने सब प्रकार की गातिपूर्वक सहन किया और मन में यही विचार करने रह कि यह तो बस गरीब का पीट रहा है। आत्मा को नहीं। आत्मा तो अजर अमर है। धर्म है भारत के इन पुनित सत का लामा और दया एक सम्पन्नोलता।

जब विनाहा स्थानक में पथार ता भू तब भी कहा कि उस स्थिति में मरघरकेसरीजी को स्थिति में भी है। जब य. स्थान विनाहा नगर में पथार ता उस स्थिति को छोड़ था गई। उसको सामने आया गया। उस समय मरघरकेसरीजी यही फरमाया कि मैं अब तब भी रहूँगा क्योंकि जब आराम होना चाहिए और इसकी मूर्ति तब स्थान पर पड़ा है। इसे कोई हानि न हो। मैं भावि आराम अग्रव क्षमाप्रार्थना की जो स्थानकवाला जन इति मरघरकेसरीजी अजर अमर रहेगा।

आप अनुमान में एक समय में अग्रव हिमावती हैं। अनुमानकर्ता न जीवन आपक वर है। मरी करता है।





इसी कारण कभी २ आरगो कुछ गडो गडो का भी प्रयोग करना पड़ता है। इनके कुछ मानव आगमें मर जाते हैं। चाहे कोई बड़े से बड़ा भी बगै न हो, आप नि पतोच होकर उसे अनुमानन हेतु आदेश देन में तबित भी पीछे नहीं हटते। इनके जिसे चाहे जितनी भी बाधाएँ आएँ आप गाँव में गाँव मरने लगने की अपेक्षा नहीं करते हैं।

मादरी में १६ वर्ष पूर्व जब अखिर भाग्यशर्षीय मातृ सम्मेलन का सम्मेलन का १० वां आयोजन हुआ था, तब इन दोनों को मफाजापूर्वक सम्मेलन करने का एक साथ सर्वोच्च और आरगो ही है। आपने पुनःपुनः से ही श्री वर्द्धमान व्यासजी की जैन अमरगम की और आवागमन की प्रथम संगतना हुई है। तबसे ही उस मातृसम्मेलन का मन्त्र होने में बड़ा भारी नदिर था परन्तु आप अत्यंत उन्माद, प्रेर, पन्थिम, वगैरे के साथ उन रातों को मरना बचाने में मरने ही गए। अन्त में उसको मरना बचाना ही मर जाया।

जिन भाति एक मित्र जगत् में निमग्न होकर स्वयं प्रवृत्ता है और उसके अनुमानन का सभी जगत् के प्राणी नतमस्तक होकर मानते हैं, क्योंकि उह में अपूर्व शक्ति रही है और वह जगत् का राजा समझा जाता है। उसी भाति पूज्य गुरुदेव का नयमी जीवन मित्र के समान है। आपने पास मन्धर-ज्ञान-दर्शन-वार्त्तिक-वगैरे की अपूर्व शक्ति रही हुई है। इनके आगे मित्यान्वी लोग नतमस्तक हो जाते हैं। कोई भी नास्तिक या विजर्मी आपसे दण्ड लग जाता है तब उसको युक्तियुक्त प्रत्युत्तर देकर ध्यान कर देने हैं और निरन्तर कर देने हैं। वह नतमस्तक होकर ही जाता है। इसी कारण मन्धर-वगैरे के आप 'मन्धरकेमरी' के नाम से पुकारे जाते हैं।

आपकी विद्वान्मूर्ति प्रायः मन्धर-वगैरे ही रही है। यही आपने जानी और ज्ञान-मन्धर-ज्ञान-दर्शन-वार्त्तिक-वगैरे के पुस्तक भाषा की गंगा प्रवाहित की है। आपने मन्धर-दर्शन में प्रभावित होकर उस मन्धर-दर्शन में ही मन्धर-वगैरे की जिनमें 'श्री लोकाशाह जैन गुरुद्वय मादरी मन्धर' भी एक प्रमुख मन्धर है वो गोदारा प्रायः में लोकाशाह के विद्वान्। हा प्रचार करने वाली एवं अहिंसा मन्धर अर्थात् गुरुदेव एवं अग्रिष्ठ की शिष्य देने वाली एक साथ मन्धर है। विशेष क्या लिखू ? पूज्य गुरुदेव वगैरे ही जिनमें जैनधर्म की अधिष्ठान में अधिष्ठान प्रभावना रही।

श्रद्धाकुसुम-समर्पण

श्री माधोमन्त्र लोहा

मृन्म में यह योग्यता नहीं कि जिसी मन्त्रीयन का मन्त्री-वगैरे विवेचना कर नहूँ। फिर भी यह आश्चर्य के माने मुनिजीवन में मेरा सम्पर्क अवश्य रहा है। श्रीपुन मन्धरकेमरी श्री मिश्रीयनजी महाराज मा० मन्धर के एक जाने पहिचाने सन्त रत्न हैं। उनकी पवित्र सेवा का अवसर भी मुझे प्रदा-पदा मिलता रहा है। मुख्यतया सन् २०१६ में जबकि मन्धरकेमरीजी मा० मा० का चातुर्मास जोधपुर में था, और जोधपुर श्रीमन्त्र ने मुझे मन्धरकेमरी का तावे मीप रखा था—उस अवसर पर केमरीजी महाराज माद्व की सेवा का सर्वोत्तम मौका मन्धरकेमरी में मिला। मैंने जिन रूप में मन्धरकेमरीजी की पाया वह आज भी स्मृति के रूप में मेरे विचारों में जमा हुआ है। मैंने अनुभव किया कि मन्धरकेमरी एक ऐसे मुनिवर हैं कि जिनके जगत् अनुमानन के नीचे जगत् का खोल भी बचना है। अमरगम के मन्त्र प्रहरी, एकता के हामी व माहम के पुत्र हैं। अमरगम का जगत् उनके जिम्मे धारण, उन्होंने बहुत ही दृढ़ता व महत्शीलता के साथ उसे सम्पूर्ण किया। मन्धरकेमरीजी मा० के व्यक्तित्व और उनकी वाणी में एक ओज है, एक आकर्षण है। मन्धर-वगैरे भाषा में स्मृति होनेवाले उनके प्रवचन बड़े रोचक एवं प्रभावशाली होते हैं। अधिक विस्तार में नहीं जाने हुए केवल उन आशा के साथ कि मन्धरकेमरीजी मा० अपनी विविध योग्यताओं के द्वारा सध शक्ति व एकता को बढ़ाने हुए आशा को लाभान्वित करेंगे, मैं अपने हार्दिक श्रद्धाकुसुम समर्पित करता हूँ।

श्रद्धा सुमन

श्री चम्पाला कर्णावट

स्थानकवामी समाज का प्रत्येक प्रीति भक्त मध्वरक्षत्री का गुणनाम से परिचित है। जिनवाणी का एक सत्र होने का नात में महाराजश्री का गुण नाम को तो बहुत पहिने से ही जानता था पर जब मैं जाधपुर आया व बीर गाराह का साप्ताहिक बनार उमका साधना—प्रारम्भ किया तब से निकट संपर्क में आया। उसका नाम तो निगार सदा का नाम भी होता आया है।

नवयुवका के हृदय सद्गुरु—मध्वरक्षत्रीजी—नवयुवकों का खूब पट्टधान है और सामाजिक मथाभा में नवयुवका की टोला बनवार बड़े से बड़े काम कराने में सदा सफल रहे हैं।

लाकाशाह के परम पुजारो

सारा स्थानकवामी समाज गाराह की सही भिद्वानप्रवृत्त का सुफल है अब हम सभी उस महापुरुष के बड़े हो कर्णो हैं। मध्वरक्षत्रीजी ने गाराह के नाम का अर्थ उल्गाह व जाग के साथ उठाया तथा जगह जगह का गुणनाम से सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं का समर्थ किया। लाकाशाह पत्र आदि तो काफी प्रसिद्धि पा चुके हैं व समाज की बहुत सवा सन संस्थाओं के द्वारा हा खुदी है। गाराहजयती जिनकी उमंग व उल्गाह में मनिषी के सत्यावधान में मनाई जाती है उतनी और कही नहीं।

महाराजश्री केवल अपने वल्लभ की ओर ही न्यून दूर सामाजिक वस्थाओं की धार भी पूरी तरह में लगने व मनन प्रवृत्त दत्त रहे हैं। सत्य वक्ता हान से कभी नहीं कभी न्यून दूर गदर गिरी भी कभी करत हैं पर वे हैं—वक्तापि कठाराणि अद्भुत कुगुमाणि। दीन ग्नी व जगत्वा के निय वस्था व आगार है।

कायवर्त्ताओं के फलदान

आप कायवर्त्ताओं को पट्टधान में बड़ विचलन हैं। सदी सामाजिक संस्थाओं की सत्ताता के निये सदा तत्पर रहते हैं—साहे व किसी सप्रणय व सवधित वधान न दो।

सादरी का ऐतिहासिक सम्मेलन

स्थानकवामी समाज व अजमेर साधुसम्मेलन में भी यन् विगान्धव में था और सभी सप्रणयों के आचार्यों ने अपनी अपनी सप्रणयों का मां छोट लाकाशाह के एक ही छोट वनीके—वधमान अमणाय व आवागमन के स्थापना की। इस सम्मेलन की महान सफलता का उल्लेख आप मध्वरक्षत्रीजी को है।

रास्थानी भाषा के हिमागती

आप राजस्थानी व स व पत्र में रहें और आज तब भी दूध भाषा की मथा में लगने हैं। आपन काफी गार्हव्य राजस्थानी भाषा में लिया है।

साहित्यकार के रूप में आपकी संस्था का उन्मग स्वतन्त्र रूप में किया जाय तो कुछ आभाम पात्रों को हो गारा है। आपकी सप्रणय वरिष्ठ तथा ऐतिहासिक मवेचना के सबधित काफी गार्हव्य लिया जा प्रसिद्ध हो चुका है।

ओजस्वी दयता

अन समाज के अनर कानिप्रान्त वक्ताओं में आपका विद्वान् स्थान है। आपका वाणी में आज व प्रवृत्त साधक में गणिता है।



औद्योगिक प्रतिष्ठान

श्री लोकाशाह जैन उद्योगमंदिर की स्थापना आपके समाज की उन्नति के लिये प्रेरणाप्रद विचारों ने ही हुई थी। यह लिखते हुए मुझे अवश्य खेद होता है कि यह महत्व की योजना सफल न हो सकी व नुयोग्य कार्यकर्त्ताओं के अभाव में बीच में ही छोड़ देनी पड़ी।

स्वतंत्रता के पुजारी

भारत के स्वातंत्र्यसंग्राम में अपनी मर्यादा में रहते हुए मुनिश्री ने सदा पूर्ण सहयोग दिया है। स्वर्गीय जेरे राजस्थान श्रीजयनारायणजी व्यास जैने नेताओं ने आपने प्रेरणा व समय समय पर उद्बोधन प्राप्त किया है। आपकी रचनाओं में स्वदेशप्रेम की मदाकिनी सदा प्रवाहित है और आज भी जनहित के कार्यों में उसी तरह उत्साहपूर्ण प्रेरणा देते हैं।

आपका 'मरुधरकेसरी' विरुद्ध यथार्थ ही है। केसरीजी की हूकार ने समाज में नवजीवन का संचार किया है।

आपके त्याग व वैराग्यमय जीवन पर जितना लिखा जाय थोड़ा ही है। मुनिश्री के चरणों में मैं अपने श्रद्धा-मुग्ध समर्पित करता हूँ।

•

क्या गुरुदेव ओसवाल थे और अब भी हैं ?

श्री धरमचन्द खारीवाल

श्री मिश्रीमलजी म० उन्हीं व्यक्तियों में एक हैं जो जन्म में ही अपनी जाति धर्म के प्रति विशेष प्रेमी व अनुरागी थे। कहते हैं, जब वे ११ वर्ष के थे, पाली के बाजार में एक पब्लिक मीटिंग में किमी वक्ता के इन शब्दों पर अड़पड़े — "जोसवाल जो बनिया कहलावे, वडा ही निर्दयी कत्तम होवे है। धीरन में पड़ीयोडी भावखी भी ले लेवे है।" आप बोल उठे "वक्ता महोदय, शब्द वापिस ले लीजिये, क्यों राई का पर्वत खड़ा करते हैं? यह अपमान मेरी जाति का है।" वक्ता महोदय को घुटने टेकने ही पड़े व प्रत्युत्तर में क्षमा याचना भी की। वन, अब बग था, मितारा चमक उठा, सीता बुल गया। प्रगति का पथ सुलभ हो गया। अध्ययन मनन की ओर रुचि बढ़ चली।

तदुपरान्त मनारी मिश्रीमलजी वैरागी बन गये लेकिन जातीयता के भावों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती ही रही। बिना हिचकिचाये आपणकला में प्रवीण हो द्वितीया के चन्द्रमा की तरह प्रगति करने लगे, निर्भीक होकर। तरण अवस्था में ही प्रकाश व्याख्याता की सज्ञा पाली।

वर्षों गुरुचरण की सेवा करते रहे फिर विहार भी किया तथा गुरु के रूप में जैन पताका लहरा रहे हैं। लेकिन वह जोय कमवत् चलता ही रहा है।

मनसा बाचा कर्मणा रात दिन इसी भावना में व्योतप्रोत रहने वाले गुरुदेव समाज व जाति के गौरव रहे हैं तथा मृत्यु पर्यन्त रहेंगे भी।

अभी अभी नोमाज के वर्षाकाल में मैंने देखा कि किनी मुसलमान ने गुरुदेव को मटक पर गीचादि हेतु निकलने देव कहा कि ते तो बाणियों के महाराज है।

बन्दूक की गोली की नाई झट उनके मुखारविंद में माधुर्यमय बाणी निकली कि भाई मुल्तानजी, है तो हम महाराज ओमवर्गीय जैन नन्न ही, पर तुम लोगों ने काई विरोध है क्या? यह सुनते ही मियाजी लज्जित हो क्षमा मागने लग गये।

मानव म सचाई नतिवता, सहिष्णुता, परोपकारिता निर्भीकता मधुरमापण एव स भावना का होना उतना ही जरूरी है जितना निज जानि धम का मान होना अनिवार्य है ।

•

कोमल और कठोर

मुया सादुराम बामनार हाजीवात

पूय गुरुदेव मरुधरकेसरी प रत्न मुनि श्री १००८ श्री मिश्रीमलजी म सा राजस्थान व त्त विमान याग्य एव आत्मा सन्त हैं । आपका स्वभाव जितना सरल है सिद्धान्त और साधना के आत्मा का पालन करते समय वही कठोरतम भा हो जाता है । आप भवता की शक्तियों का समाधान स्तन मधुर रूप म करते हैं कि जो आपम एव धार मिल लेता है उससे हृदय म बार-बार मिलने की कामना रहती है । आप भवता को सधारन के लिए वभी वभी बटु नलों का प्रयोग भी करते हैं परन्तु उसका प्रभाव अलग क समान होता है । सामायिक आत्मा निषम का आप कठोरता से पालन करवाते हैं । फकार का प्रभाव ऐसा होता है कि भवन जीवन में वभी भी उस प्रकार की भूत वाने का साहम नहीं करता है ।

मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि म० मा० की दृष्टि मन क मम का पहिचान ैनी है । व ज्ञान बाल भवन का इच्छा का समसवर यथाविधि व्यवहार करते हैं । ऐसे कर्णविकेसरी गयेगीलालजी म० छाीधारी भी थे जिनकी परस्ते की दृष्टि बड़ी पनी थी । पूय गुरुदेव मरुधरकेसरीजी की हमारे ऊपर पूण हुआ है । आपक पूवजा की हम पर परम्परा स हुआ रही है हम लोग की पीढ़ियां से सतों क प्रति जितनी धन्य रही है उसे शानों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है । हमारी भगवान एव पूय श्री म प्रायना है कि इन प्रकार की हवा सक्ष बनी रहे । पूय श्री के आत्मा हमारा पय प्रमान करते रहे जिनसे हमारे समाज का उदार हा सफ । पूय श्री स मरा निवेदन है कि वे इसी प्रकार हम समाज की ओर अपसर करते रहें ।

•

वक्ता, लेखक एव कवि के रूप में मरुधरकेसरी

सतितत्त्वमार जन

गण श्रावण गुन्वा १४ का नीमाज म मरुधर के महान् सत समाजोद्धारक एव सामाजिक जाति क प्रथना मरुधरकेसरी प रत्न मुनि श्रीमिथामलजी म बाज मदिवम मनाया गया था । पानी (मारवाह) म श्री मरुधरकेसरी म परिवार से केगरे की कोल से जम लेने वाली इस महान् विमूर्ति न अपन माय ही अपने माना पिता का नाम भी स्थानकवागी जन इतिहास में अमर कर दिया । मारवाह म बहावन है चांदनी खनदत रा जाया अमर राज करजो रे । वस्तुन विरन की पुण्यवान् प्राणिया का इग तिवि का ससार म पनाण होता है ।

गुरुदेवश्री ने अपनी अल्प वय में ही १९७५ की अमय तुनाया की स्वर्गीय बुधमन्त्री स्वामी ग मुनि दीगा ग्रहण कर अणय तुनाया के महान् महक के बार चान मगा न्ये । वचन स हो बिछा अध्ययन की धन क कारण योग्य गुरु के शाक्त से शास्त्रों का अध्ययन हिंदी प्राइत राजस्थाना उठू आनि भाषाओं का पूण पान अजित कर ममाशोद्धार के काय म सगन बाले महान् सन के समूचे मरुधर म जाति का धन्यान् पूर दिया ।

जब वचन म जिना की बातें याद छानी हैं तो स्मरण हा आता है कि स्वर्गीय मूर्तिपूजक गानमुन्दरा न स्थानकवागी गमाज की बुनोनी है रयी थी । नाना भाति क आलोपा स परिपूष धंधों की जवना जस पगावप्रा



हूँटियों की उत्पत्ति, क्या तीर्थक्षेत्रों ने डोरा डालकर मुँहपती बांधी, श्रीमद् लोकायाह आदि की चर्चा की जा रही थी। स्थानकवासी समाज के बड़े-बड़े दिग्गज मुनिराज यह सब कुछ देखकर भी केवल इमीनिए बात थे कि विरोध करने में संभवतः मूर्तिपूजक समाज नाराज हो जायगा। यह कैसी विटम्बना थी। माना कि हम किसी पर आक्षेप न करें किन्तु हमारी मान्यता पर किया गया प्रहार अगर हम सहन कर ले तो उसका तात्पर्य यह होगा कि हमारी उन विरोधी विचारधाराओं को भी स्वीकृति प्राप्त है।

समाज के इन नर-रत्न का धून खोल उठा। गुरुदेव श्री ने अग्रणी और आक्षेपपूर्ण ग्रन्थों के प्रकाशकों की ललकारा। मुँहपती उत्तर देने वाले ग्रन्थों की रचना की गयी। आग्रि सूर्य की विर्र्णों के नामने रात्रि का घोर अन्धकार टिक नहीं सता। मूर्तिपूजक समाज के आक्षेपपूर्ण ग्रन्थों का शास्त्रमममत विरोध कर उन्हें शास्त्रार्थ करने को आह्वान किया। फिर क्या था। जनता को गुमराह करने वाले ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन अविलम्ब बंद हो गया।

गुरुदेव श्री ने अनेकों ग्रन्थों की रचनाएँ की। जिनका प्रकाशन श्री वृद्धवीर जैन स्मारक मण्डल, जोधपुर के तत्वावधान में किया गया। इन ग्रन्थों में जीवनचरित्र, स्थानकवासी जैन मान्यताओं का शास्त्रमममत विवेचन, समाज पर किये आक्षेपों का उत्तर आदि अत्यन्त प्रभावशाली एवं रोचक प्रकाशन हैं। कुछ ग्रन्थ अभी भी प्रकाशनाधीन हैं, जो समयानुकूल परिस्थितियों में प्रकाशित होने जायेंगे।

वक्ता के रूप में गुरुदेव श्री की मिहगर्जना में मरुघर का चप्पा-चप्पा परिचित है। वाणी की ओजस्विता, सरसता और स्पष्टवादिता ने श्रोतागण दत्तने प्रभावित है कि वे स्वयं गुणानुवाद किये बिना नहीं रह सकते। आपमें विरोधता यह है कि वगभेद आपके पास नहीं है। चाहे कोई बड़ा में बड़ा पूँजीपति हो या सामान्य स्थिति का श्रावण, आपके सम्मुख सभी एक ही श्रेणी के हैं। एक बार का वृत्तान्त स्मरण हो आता है। गुरुदेव जोधपुर में बिराज रहे थे। तत्कालीन मध के एक प्रमुख श्रावकजी के पास एक मज्जन गये और उन्होंने कहा— आजकल बसजोगी बहून आ गयी है, कोई उपचार हो तो बतावे। उन्होंने अण्डे का प्रयोग करने का आग्रह किया। जब यह स्थिति गुरुदेव के सम्मुख रखी गयी तो बड़ा दुःख हुआ। दूसरे ही दिन व्याख्यान में उन प्रतिष्ठित एवं श्रीमन्त रहे जाने वाले श्रावकजी को गुरुदेव ने ललकारा और कहा, क्या हम अण्डे के प्रयोग का प्रचार कर अपनी मान्यता का पोषण कर रहे हैं? धर्म के मारे वे नमस्तक अवश्य हुए किन्तु गुरुदेव श्री की स्पष्टवादिता ने चिढ़कर उन्होंने व्याख्यान में आना बन्द कर दिया। मरुघरकेसरी की यही गजना रही कि मुझे किसी ने राग-द्वेष नहीं। मैं यह चाहता हूँ कि समाज का श्रावण-समुदाय अपनी मान्यताओं के विरुद्ध आचरण न करे। चाहे वह छोटा है या बड़ा मेरे लिये सब बराबर है।

स्पष्टवादी नीति के कारण ही आज थमणमध के बड़े-बड़े मुनिराजों में आपके प्रति अगाध श्रद्धा है। आपमें कयनी और करणी का अन्तर लेना मात्र भी नहीं है। वाणी की ओजस्विता के कारण हजारों के जनसमुदाय में आपके प्रवचन सहज ही सुनने में आ सकते हैं। “लोकायाह अर्थमहन्वादी” के अवसर पर मोजत में दस हजार में ज्यादा एकत्रित जनसमूह के समक्ष आपका प्रभावशाली भाषण ऐतिहासिक वस्तु बन चुका है।

सैकड़ों हजारों राजस्थानी, हिन्दी और उर्दू की कविताएँ, दोहे, सौरसे, चौपाइयाँ आपको याद हैं। जिन्हें सुनकर श्रोता सहज ही आश्चर्यचकित रह जाते हैं। ऐसा अनुभव होता है कि आप पर देवी सरस्वती की महान् कृपा है। व्याख्यान में प्रसंगानुसार कविता बनाकर कह देना तो आपके लिये कोई कठिन कार्य नहीं। अनेकों कविताओं की रचनाएँ आपकी ने की हैं। वीरम की कविताओं को पढ़कर मुर्दा दिलों में भी जीवन का संचार हो जाता है।

एक बार मादरी चातुर्मान में गुरुदेवश्री ने गोडवाड प्रान्त में स्थानकवासी मान्यताओं के प्रचार-प्रसार के लिए लोकायाह गुरुकुल स्थापित करने की योजना रखी। यह तो गुरुदेव श्री की वाणी का ही प्रताप था कि एक ही दिन में लगभग २॥ लाख रुपये की टीप कर दी गयी। आज यह गुरुकुल समूचे भारत में अपनी शान्ति का एक अद्वितीय गुरुकुल है।

आपकी कीर्ति यही प्रेरणा रही कि समाज में सगठन हो, सम्प्रदायवाद की दीवार टह जाय और एक ही

आचार्य के अधीन रह कर सारा प्रमाणव्य धर्म का प्रचार करे। मादडी का बन्त साधुसम्पन्न आप का प्रेम नीति का ही सुपुत्र था जिस स्थानकवासी जननिहास में स्वर्णक्षिरो से सिद्धा जायगा। अपनी प्रीति एकता की धन मरत गुरुत्व जनन परिपत्ता का महान् रत द्रुत प्रतिवर्ष सकचा ओर भाते गीता में बारमदग से आम जनता का लाभान्वित करते हैं जबकि अग्रिका प्रमाणव्य गहरा की आर विचरण की अग्रि पसन् करते हैं।

गासननेव स प्राधना है कि हम मरुतरा की मन्त्र निम्नूति त्यागी तपस्वी प्रमाणव्य सत का ज-मजयता मनाने का जीवनभर अवसर प्राप्त होता रहे। गुरुदेव की शतायु है जिसमें हम उनका सघारण द से जिनवाणा प्रदण का अवसर प्राप्त होता रहे।

आदरणीय मरुधरकेसरीजी को अभिनन्दन

श्री सुधीन्द्र गैमावत

परम श्रद्धा प्रान सत्समणीय मरुधरकेसरी श्री मिथीमन्त्री महाराज में भरा सादास्कार बतूना में एक राति की हुआ था और मैं जयवापस लौटा तो मुझे अपने प्रवास की सफ़लता की ख़ुशी थी। आप से गुरुचिन्तिता लगवाने हेतु आर्गिवाद प्राप्त हो चुका था और जनवरी मन् १९६६ के १४म मस्तान में मीम्बाज में जो गिविर लगा वह धर्म आप में अभूतपूर्व था। उसका उदघाटन भी आप के आर्गिवचन से हुआ जिस समाराह की अध्ययनता का एस सी मंहना सचानक प्रमाणनीय गुरुचिन्तिता इकाई राजस्थान में की।

वह उदा वष का सर्वोत्तम गिविर था और उसका वाग अब प्रतिवर्ष मीम्बाज में यह गिविर लगना है और महत्वा चिन्तियों की निगुलक गुरुचिन्तिता (ओपरान) का अभिनिर्दिष्ट है। एक जन साध साधारणतया इन कायों में हवि नहीं करता। उसका लयरा तो घमस वा मन्त्रि उरसवा तक ही सीमित होता है। प्रत्यक्ष रूप आम जनता और जनसेवा का मामला में अत्यन्त रुचि लेते हैं और जहाँ भी जनकल्याण की बात हो अपने पूण सहयोग और प्रभाव से उस काम का पूरा करा लेने की क्षमता रखते हैं।

इस एक सहयोग के वाग आपकी मस पर अमीय अनुब्रम्भा रही है। और आपके सान्निध्य में एक आत्मिक गानि का मन मन्त्र अनमद किया है। भरे जल महत्वा लावा नाग आपका दगनाथ दूर दूर से धाते हैं और आपके एक मन्त्र पर अपना सारव्य अपन करन का संधार रहते हैं। ऐसी अद्भुत श्रद्धा और भक्ति का एक मात्र कारण है आपका उच्च चारित्र्यजन जीवनपयनत्यागधर्मपस्या। आपका अमर-वचन सनकर मनुष्य मात्र से माग पर चलने की प्रेरित हो उठता है। आप के निय जाति रम धर्म का कोई भेदभाव नहीं है। अब सभी वर्गों ने योग अपना सप्र दु ग मनाने आपके पास धाते हैं। और आपके अनन्त प्रेम और दयाभाव में प्रिया एवं आनन्दित होकर लौटते हैं।

मैं परमगिता परमेश्वर से प्राधना करता हूँ कि आप सदा हमारे बीच अघकारमय सन्ध में दीप्यमान प्रकाश स्तम्भ की तरह समाज का मार्गान्वित करते रहें और मध्याह्न के प्रखर सूर्य की तरह अपने सपोवन और तेज स्वित्ता से मनप्यमात्र का मन में वलय घणा द्रव्य अभि मोह भावा के अघकार का नाश करते रहें।

जिस पैग अक्षय्य मस मित्र जाय उसका जीवन सफल हो जाना है।





आवली जमओ जहा आवलि यमओ यथा -

ह भोर विज्जल पजल पजलणिभरे णिभरे ओण
सा मा सा मे मा सा म म अमोतु कलिओ ॥१३२॥

हे भद्र ! विद्युत्प्रज्वलप्रज्वलनभरे निभरे कोण
सा अह ता मोवतु कलित ॥१३२॥

१३२ हे भद्र, अग्नि के भाग में निभर कोने में विजली जलाओ, वह मेरे लिए ऐसी ही है, मैं भी उसका लिए वैसा ही हूँ मैं उसे छाड़ने के लिए तैयार हूँ ।

सअल पथ जमअ जहा -

तुह कज्जे साहमिआ केण कआ वदणेण साहसिआ
भणिऊण साहसिआ सहिआहि फुट मा हमिआ ॥१३३॥

तथ कार्ये सा हनिता केन कृता वन्दनेन साहसिका ?
भणित्वा साहमिका नलिभि स्फुट मा हमिता ॥१३३॥

१३३—तुम्हारे कार्य (के कारण) में वह हम पड़ी थी, जिस वन्दन ने उसे साहसिक बना दिया । (यह) साहसिका यो बोल कर सखिया के साथ स्पष्ट (बिखरित) कर) हमी ।

नकल पद यमक यथा—

असे विऊण अणेपाण (?) होति समग आधिणो कव्वे
तेण वि अन्तो भावो पथेमो चैअ दट्ठव्वो ॥१३४॥

अश विजाय च दोषाणा भवन्ति समग्राधीना काध्वे
तेनाऽपि अन्यो भाव प्रवेशो चैव द्रष्टव्य ॥१३४॥

१३४—काव्य में दोष (अलंकारों) का एक अश जानने पर वे समग्ररूप में अधीन हो जाते हैं (यानी समग्र रूप में जाने जाते हैं) । उसमें भी अन्य भाव और प्रवेश देख लेना चाहिए, क्योंकि उसमें अन्य भाव निहित होते हैं । अन्य अलंकार का प्रवेश मालूम कर लेना चाहिए ।



पचम खण्ड



- जनपदीय सस्कृति

पलट्टि में दूर, ये ग्राम और वन ही, शेष नागर जनता के अन्नदाता होने हैं। वेदा में 'जन', 'विश', 'प्रजा' रहाने वाले अथवा रियाया का अधिकार ग्राम और वन में होता है। जो मामाजिक व्यवस्था और जो राजनीतिक राजा ग्राम और वन के बजाय नगर के रूप में अधिक रखा हुआ होगा, वह भला, जैसे प्रजापति, वा लोकपति, व गणपति कहान का अधिकारी हो सकता है, उसमें कैसे for the people, by the people तथा of the people का आदर्श चरितार्थ हो सकता है, यह गभीर विचार के योग्य बात है। अस्तु !

प्राचीन भारत का समाज 'वर्ण' और 'आश्रम' में दो पायों पर खड़ा रहता था। वर्णों में ब्राह्मण, और आश्रमों में गृहस्थ के अनाया शेष तीनों आश्रम, समाज वा समूह के बजाय, कहीं एकान्तप्रिय होते थे। ब्राह्मण के लिए 'अरतिर्जनममदि' का व्यवहार आदर्श माना गया था ताकि वह एकान्तवस्तुवत् अध्ययन, अध्यापन और शास्त्र-प्रणयन में, विद्याओं, कलाओं और गिल्हों के विकास में रत रह सके। जनसमूह में अरति, ब्राह्मण के अनामाजिक होने के बजाय, सामूहिक निधि को समृद्धतर करने में उसके रतिभाव की दृष्टि में, अपने पर बलान् जोटा हुआ, काट-प्रद, कृच्छ्रायुक्त, अभावों और तप के जीवन से उपेत, एक महान् उत्तमदायित्व की जिम्मेदारी और प्राज्ञ नपस्वी और मनस्वी ब्राह्मण-वर्ग को स्वीकार करना ही होता था और उसी में उसका गौरव भी था। ब्राह्मण ही 'आरण्य' होता था। उसका मन ग्राम वा समूह में न रहकर, नागर मस्कृति के लिए अग्रगण्य प्रतीत होने वाले अरण्य अर्थात् एकांत में अधिक रहता था। आन्तरिक विनोद भावने में उसी उदात्त अभिप्राय में एकत्र जाने को आरण्य जगती प्राणी बताया है। वैदिक दर्शन में भी पशुओं को आरण्य और ग्राम्य अर्थात् झुंड में रहने वाले, यथा हाथी, भेड़, मनुष्य। वेद के शब्दों में 'सूर्य एकाकी चरति'-अपने मार्ग पर स्वयं के तेज से बढ़े जाने वाले माहंगी 'आरण्य' प्रकृति के अग्रणीकोटि के, जन-नायक होते हैं। वे सूर्यवत् स्वयंप्रकाश होते हैं। नद्विपरीत 'नवो नवो भवति जायमान'-स्वभाव वाला, 'जायस्व प्रिय-स्व' के चक्र में प्रवहमान रहने वाला चन्द्रमा 'ग्राम्य' प्रकृति वा प्रतीक है। वह नक्षत्रपत्तियों के साथ समूह में रहता है। ग्राम्य मस्कृति परत प्रकाश है, वह आरण्य मस्कृति के पुजारी, विप्रों में निर्देशन और निरीक्षण में ही, शास्त्र के प्रमाण को सिर झुकाते हुए ही चलने वाली है। तो, जैसे ब्राह्मण वर्ण आरण्य वा प्राकृत सस्कृति का उपासक है, वैसे ही आश्रमों में वानप्रस्थ और मन्यास आश्रम भी एकान्तोपासक होते हैं। वानप्रस्थाश्रम एकांत में साधना का माध्यावस्था वाला आश्रम है, तो मन्यास अन्त में एकान्तमिद्व होकर भी लोक में अपने सर्वस्व का न्याय कर देने रूप प्रवृत्त्याभासरूप, 'धुरस्य धारा' रूप दुर्गम पथ है। सन्यासी अन्त में घोर एकांतशील रहकर लोक में माहंगील भावना है।

वन वा तपोवन की वह मस्कृति एक ओर थी, तो दूसरी ओर क्षत्रिय-वैश्य वृद्ध-वर्ग निमित्त गृही जनो की नागर वा पौर, वा जानपद, वा ग्राम्य सस्कृति थी जिसके लक्षण और स्वस्व चिह्न ही भिन्न थे। नगर के भौतिक, आराममय, धरीरपरायण वातावरण में जीवन की सरलता चित्रित हो जाती है। आत्मानुसारित बुद्धि के बजाय, देह-प्राण का अधीन मन नागर मस्कृति में जीवन का आराधक होता है। यही वह ग्राम्य मस्कृति है जिसके उच्चावच दो स्तर थे, पुर (नगर) और जनपद (ग्रामाचल)। 'पौरजानपद' म समस्त पद के प्रयोग प्राचीन भारतीय वाङ्मय में प्रायः उपलब्ध होते हैं। इन दोनों 'ग्राम्य' स्तरों में नगर स्तर का जनपद स्तर पर श्रेष्ठता का भाव होने से, समाज के अग्रणी राजा, अमात्य, वनिकों आदि का राजधानी में प्रायः जघपट रहने से, पौर मस्कृति अपने में अवर जानपद सस्कृति का ही 'ग्राम्य' सस्कृति पुकारने लगी। परिणामतः ग्राम, ग्रामणी, ग्राम्य शब्द मरुत्तर जानपदीन जीवन के सूचक बनते हुए हीनभाव के द्योतक बन बैठे। नगरों में ही राजमभा में साहित्यकारों, चित्पियों, कलाविदों, विद्वानों आदि को आदर और वैभव प्राप्त होता था। अतः मस्कृति के नवोन्मेषों के तथा मरुत्तयों के अभिनव फैशनों के प्रधान उन्मत्त नगर ही हो गए थे। नागर सस्कृति का एक प्राचीन चित्र यदि देखना हो तो वात्स्यायन के 'काम-सूत्र' में देखा जा सकता है। काव्यादि का विकास भी नगरों में ही हुआ। अतः नाटकों, गद्य-पद्य-चपू-काव्यों, कहानी-किस्सों में भी नागर सस्कृति के विभिन्न कालों के चित्र साहित्य में उपलब्ध हैं। जनजीवन के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष, नागर सस्कृति का लगभग पूर्ण और समृद्ध चित्र प्राचीन भारतीय वाङ्मय में विद्यमान है।

यह ग्राम्य, वा लोक-मस्कृति गृहस्थाश्रम का विषय है। गृहस्थ काम और भोग का आश्रम है। कह सकते

लोक और शास्त्र

अभयदेव शर्मा,
एम ए० (संस्कृत)



लोक सृष्टि का आधुनिक बान म एक बिद्या (branch of knowledge) का रूप अब समग्र प्राप्त हो चुका है तथा बाना जा सक्ता है। सम्भवन बानांतर म बानी नाक सृष्टि का समवेग निता के क्षेत्र म पाठ म विषय वेक म भी हो जाण ता अन्वय नही।

एसा ता नही है कि लोक-बान की ओर प्राचीन भारत का ध्यान बानी गया नी न हा। पर आधुनिक बान म नाना विद्वान और सूक्ष्म अध्ययन करने का तथा भारतानि प्राचीन परंपरायुक्त बाना का ध्यान नस और छीजन का नय पाश्चात्य विज्ञाना का है। मर अनुमान से बवानरितमागर के डानी-हुन सटिप्पण अनेजी अनुबान ने नी मवप्रथम नाक सृष्टि विषय की म दाना की ओर भारत की गनी निता जनना का ध्यान विशेष-तौर से आकर्षित किया था। और मवम ताजी घटना जितने लोक सृष्टि का एक प्रकार म शास्त्रीय विषय बना देने का गौरव प्राप्त किया है प्राचीन दवा के सांस्कृतिक न दवा तथा ग्रामाचन म विवर हण अत्यन्त उन नाना के जा कि या तो मान्य म प्रसिद्ध हण ही नहा और वानत जिनके अस्तित्व म न बवान नागर सृष्टि म पन नान लोग जनमिन हैं अवका जा कि मान्य म तथा नागर बानिय म गहन वम प्रयुक्ता हा पाये हैं भडार की ध्येन है। अपनी सीमित जानकारी म न दाना ही क्षेत्रा का उन्मात्तन करा का गरिमायुक्त तथा सुदूर तक प्रभाव विधीन करने बाना काय मवनबानम गानित प्रनिभा के घना नी बानाकारण अग्रवान ने ही सम्भवन मवप्रथम स्वय आरम्भ किया था और अपनी प्ररणा से अय अनेक नैमा म भी कराया था।

नाना हान पर भी नागर सृष्टि म पन नाभा के निग यह बोकापन शास्त्र अभी एक प्रकार की ऐसा बानात्रीय बना हुआ है जिसके प्रति युतुगों का कुतूहलमिहित हलही काकि का भाव हुआ करता है। यह दृष्टि बान ग्रामीण सृष्टि की असृष्टतता का पर्याय समझ लेने के कारण है। ग्राम ग्रामीण ग्राम्य नाना मुनते ही ग्राम आनी व मस्तित्व म फूड्ड बनिधिन भातेपन से युता नागमक मनुष्य कही बाने होने पर भी मनुष्य के बानम से रचित माने कीटे कपने पहाने बान अन्त यन्त बानावय बाने बानी जूत पहनने का नगे पर बान गव मजीव ने जीव का चित्र उभर जाता है। और लोकसृष्टि जा वस्तुत ओर मुख्यत नवक ही जीवन और चरित्र का अन्वय है मना वम मनीर अन्वय विषय हो सक्ता है मन् मोचन हण नागर सृष्टि का प्राणी बरतस मुक्ताए बिना रह नही पाता है।

ग्राम और पुर म प्राचीन नाना म नाना ता अरण्य और ग्राम का यन् सांस्कृतिक अंतर बान का नहा वरन् काप। पुरानी ह। हा यह बात जयग ह कि थारोपीय सृष्टि न प्रभाव ने नस अंतर का दुःख्य चौडी गार बना निता है। प्राचीन और मध्याहलीन भारत म ग्राम और नगर का येन धुसा बानी नहा कि बिनी गव ही बात को नितात ग्रामाण या नितात नागर नहा जा सक्ता हा। या भी कह सकने हैं कि नागर सृष्टि का भवन जिस दुर्मी का पाठिका पर मना हुआ था वह ग्रामीण वा नाक सन्तति ही थी। न दाना म उच्च स्तरभन ता था पर काकि भेन नहा था। नगरी का ग्राम म मनिष्ठ सवध बना रना था। दूधी जाण ग्राम भी नगर से संपक म आकर जपन को निनुन जननीवा अनुभव नी बवान थ और यही सृष्णीय सामाजिक जवरदा है जा हर दान का रक्ता हानी



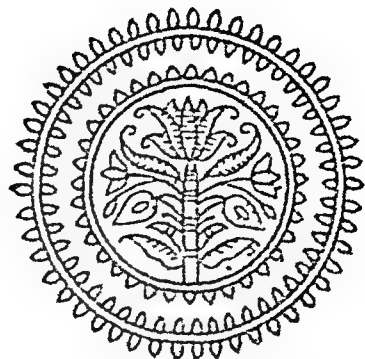
यहां प्रश्न उत्पन्न होना चाहिए कि चोख और शास्त्र, अथवा श्रुति और स्मृति में पारंगत क्या है, तथा कौन किससे अनुमानन में है। इस संध में एक आगम बचन या हठानुस्मरण को जाना है कि 'देवतायां द्विजा-नीनां पितृनाथ विशिष्यते'। दक्षपुत्रा-परम श्रौत यज्ञों में भी यथा कहना है 'उपो-शां', पित्रुजाति की मानी गई है। ऐसा क्यों? हमारे तो यही ध्वनि होता है कि स्मृति पढ़ें, श्रुति पीछे। बात ठीक भी है। ज्यों प्रश्न में 'पुराण' जगह पर भी ध्यान दे लेना चाहिए। 'पुराण' का अर्थ है पुरा-नव-पुराणा होने का नाम। जो वृद्ध और युवा, दोनों परमाय हो, अथवा, वेद की भाषा में जो 'वाम-पातिन' हो वह 'पुराण' है। हमारी चर, दक्षिण, पश्चिम, पूर्व श्रुति परम्परा है जो उपदेश या आदेशन होने की हुई 'शास्त्र'-शब्द में है। परन्तु श्रौत वाच्य अथवा स्मृति-साहित्य विभिन्न मणिमाओं के गुण स्मृतीय साहित्य है जो हिमाचल-राज्य-राज्य आचार में निरूपण मात्र भी नित नम्य और हठाना की हुई मणिमाओं के समान देश-काल में विविध रूप धारण करता है।

यह कहते हैं। शास्त्र चोख का नाम है—चिरस्मरणीय, और गमन पर रहने योग्य सम्प्रदाय है। चोख की धारा नवन प्रवहमान रहती है। उसमें अच्छा बुद्धि, रस, और देव मध्य और भीति सब कुछ है। तब देवता अपनी कनकरी में शक्ति और स्वास्त्र को उद्वेग पर कर देता है और जो कुछ 'मध्य' जिस गुण 'शास्त्र' का और देव की परिचरियों में समानि में दग्ध होने में वन रहता है, वही शास्त्र, श्रुति वेद, उग्र, के रूप में भीति वच रहता है। नम्रुति और नम्यता की शीघ्र वाधा के जो स्मृतिचित्र आता मानव को उपर्युक्त है ही 'शास्त्र' है। शास्त्र अपने शास्त्र मूल्य के कारण मन्त्र पर रहने योग्य बन जाता है, शीघ्र-परम उसे करने में शास्त्रवित्त होने में वचने रहती है। उग्र, लोक-नम्रुति की धारा भी अपनी स्वच्छद गमन चार में वचने रहती है। चोख-नम्रुति के छन्द में उग्र, शोणालय में नम्र शास्त्रम शीघ्र-नम्रुति की परवर्ती धारा को प्रभाति करता है। जीवन की ठोकरों का वही तो उपयोग हो सकता है कि आगे वैसी ठोकरों में वच जाये। वह वही शास्त्र का उपयोग है, और वही शास्त्र पर शास्त्र का, अथवा स्मृति-श्रुति का अकुप है। अब जहां साहित्य का वह वचन कि 'स्मृति श्रुत्यर्थ का अनुगमन कर्त्ता है' ठीक है, वहां यह आगमोक्ति भी ठीक है कि 'देवों में पित्रों का वैशिष्ट्य श्रुति पर स्मृति का ज्येष्ठत्व है। चोख की आयु शास्त्र में अधिक है। शोक कहते हैं—शास्त्र चोख का निचोड़ है। पर शास्त्र का आधार है चोख ही। लोक में परिवर्तन होने पर, शास्त्र में परिवर्तन की अपेक्षा हो सकती है और होती है। लोक पुराण होने पर भी नया है—अब वह 'पुराण' है। पुराणों को स्मृति के अनगुन माना गया है। एक उक्ति भी है कि 'आत्मा पुराण वेदानाम्'। वेद का शास्त्र का आत्मा-वा प्राण—, वा आधार पुराण परंपरा है। पुराण-परम्परा-गत ज्ञान ही 'वेद' है। एक और उक्ति है कि 'पुराण मन्त्रशास्त्राणां प्रथम श्रवणा स्मृतम्'। पहले पुराण बने, फिर वेदादि शास्त्र बने। यही वेदादि शास्त्रों की निन्दा करना पुराणकार को नीयन नहीं है, वरन् वह शास्त्र का मूल लोकपरम्परा को बतला रहा है।

भारतीय समाज में लोक-परम्परा पर शास्त्रानुमानन की प्रधानता रही है। शास्त्र का ठाठ जब सदा हो जाता है तो फिर शास्त्र लोक पर शासन करने लगता है। यह बात भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में मची है। इसी को यों भी कह सकते हैं कि आम भारतीय का स्वभाव शास्त्र द्वारा बना दी गई लोक वा पद्धति वा परम्परा को सहज ही ग्रहण कर लेने का है। ग्रामाचार्यों में आज भी महान् ऐसी प्रथाएँ, ऐसे मन्त्र प्रचलित हैं जिनसे उत्पन्न हजारों साल पुराने नाव्यादि में, तथा शास्त्रीय ग्रंथों में उपलब्ध है। प्रकारान्तर में हम आज भी कम-से-कम ग्रामाचल में तो, भामन, और कानिदाम-कालीन जीवन जी रहे हैं, और महाभारतकालीन भाषा बोल रहे हैं। छोटी-से-छोटी हमारी आदतों, अनिष्टाचार-भी लगने वाली कहावतों, मुहावरों की आयु बहुत-बहुत लम्बी है। पाश्चात्य विद्वानों की भाषा में कहें तो, यह ठीक ही है कि भारतीय स्वभाव में Conservative या परम्पराभक्त होना है। वह परम्पराभक्ति शास्त्र का अनुमानन स्वीकार करने की हमारी प्रवृत्ति ही तो है। स्मृति, जो स्वभाव में देशकालानुसार परिवर्तनशील होती है, अपने क्षेत्र में परम्परा को त्याग कर नहीं चलती। और श्रुति तो है ही मुष्ट परम्परा का अपर नाम। इस प्रकार शोक में शास्त्रानुमानन, और शास्त्र में शोक का प्रतिफलन, भारतीय जीवन और संस्कृति की अथवा थोड़े-बहुत रूप में मानव की सार्वभौमिक स्मृति की विवेचना रही है। परम्परा को सर्वथा मेटकर, मानव जी नहीं सकता। परन्तु लोक और शास्त्र, अथवा श्रुति और स्मृति का तारतम्य जब गड़बड़ा जाता है तभी लोक-जीवन में सदा उत्पन्न ही

लोक-देवता

प्रो० चेतनप्रकाश पाटनी



वर्तमान काल में 'लोक' शब्द अंग्रेजी भाषा के फॉल (Foll) या पर्यायवाची स्वीकृत विज्ञापन है। लोक के विषय में पणमाट्टतोपीट्टिया रिट्टेडिया में विज्ञापन है कि आदिम समाज में तो इसमें सम्मान प्रदत्त ही होता (लोक) होने है और विस्तृत अर्थ में तो इस शब्द में सम्य राष्ट्र के समस्त जनसमूह को भी अभिहित किया जा सकता है, किन्तु सामान्य अर्थ में यह शब्द केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरिक-सन्तुति और पवित्र मित्रता के प्रवाहों में मुख्यतः पड़े हैं, जो निरंतर भट्टाचार्य हैं अथवा जिन्हें सामूली-मा प्रसंग-ज्ञान है, सामाजिक ज्ञान गदाय ।"

डा० मत्स्येन्द्र के अनुसार 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य सम्पत्ति, साम्प्रदायिकता और पाण्डित्य की चेतना में अहङ्कार में नृत्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं वे लोकतन्त्र कहलाते हैं।'

भारत गांवों का देश है। गांवों में उपर्युक्त 'लोक' में आने वाला समाज बनता है। ग्रामों के समूह जनपद हैं। गांवों और जनपदों का ज्ञान हमारे चारों ओर फैला हुआ है। इस भूमि के अग्रिम जन गांवों और जनपदों में भी बसे हुए हैं। गांव-वर्तमान हमारी सन्तुति की धार है। उनकी सन्तुति देश की प्रधान-सन्तुति है।

इन सन्तुति का सबसे जटिलतम उन समस्त धार्मिक परम्परा है। डा० बामुदेवगर्ण अथवा के अनुसार 'उस परम्परा का इतिहास पांच महत्त्वपूर्ण पुराणा है। पृथ्वीसूक्त ऋषि के अनुसार यह हमारी मानवभूमि अनेक प्रकार के जन को प्रारण करती है। यह जन अनेक प्रकार की भाषाएँ बोलने वाला है और नाना धर्मों को मानने वाला है।'

जन विभ्रंती बहुधा विवाचन नाना धर्माणि पृथिवी ययोकसम् ।

--अथर्ववेद १२।१४४

भारत स्त्री उपवन मद्रा में कई भाषाओं और कई धर्मों स्त्री सुमना में महकता रहा है। इस विभिन्नता ने भिन्नता की अपेक्षा एकता को ही जन्म दिया है। एकता की स्थापना करने वाली यही विचारधारा भारतीय सन्तुति का मुख्य दृष्टिकोण है।

समन्वय का सबसे विशाल प्राण धर्म का है। इस प्राण में उनका अग्रिम विनिमय हुआ है कि किसी एक देव का मूल स्वरूप क्या था ? किस प्रकार वह और मूर्तों को समेटना हुआ विकास को प्राप्त हुआ ? और अंत में देव और काल दोनों की विस्तृत अवधि में फैल कर वह किस रूप में आज साम्य हो रहा है ? यह अनुसंधान का विषय है।

भारतीय लोकजीवन को कहीं पर भी गहराई में देखा जाये तो उसमें सर्वत्र प्राचीनता दृष्टिगत होती है। समाज किसी भी समस्या या पूजा-पद्धति के विषय में सशक नहीं होता, किसी का बलपूर्वक निराकरण नहीं करता। प्रत्येक धार्मिक समस्या अपने रस में जीवित रहती है और अपने रस में घटती-बढ़ती या रूप बदलती हुई दूसरी समस्याओं में धुनमिल जाती है।



मरुहरकेसरिमुणिमिसिरिमल्लस्साऽहिणन्दणं

मिगी पुप्फ भिषगू

मगलाचरण

पायपुत्त महावीर, सव्यन्तु मव्वदमिण ।

णममिता करिम्मामि, मिस्सिमल्लानिणन्दण ॥१॥

सवोहण - वमी ! णिण्णीयत्ताट्ठ ! जम्मभूसुहणिप्पिह् !
 राघवकुलतिगीडोडसि, मोलकीवत्तममय । २
 नवत्तमणनिच्चिण्ण ! वणात्तत्त ! विरत्त ! या
 कायामणपिहामुत्त ! भवत्तमारगतप्पण । ३
 देहनावनिगवेयत्त ! मानणसेवा पारग !
 सिद्धिमगममावेरत्त ! मुमेग इत्त निच्चत्त । ४
 जोईपहुव्वधमत्त ! निम्ममो पयणो वि या !
 निम्ममत्तममात्तत्त ! विस्समिज्जाविमारत्त । ५

दण्डओ—सत्तजमघुरावाग्गणघणेत्तर ।
 माणावमाणानुरदत्तणमहेत्तर ।
 गामकण्ठगपरीमहत्तात्तनिन्दत्त ।
 सियत्ताणचिन्तणत्तमत्तव अच्चुत्त ।
 रागाडरयणीयरकसायागरवियारग ।
 तवत्तित्विग्गालसरकामणयर दाहग ।
 निस्समत्तयाए णाणरज्जसात्तग ।
 काम-कोह-मोह-लोह-आइपावणागम । ६

चउप्पई—तण्हव्वोहिम ! तण्हाकालजलुगम हे !
 दुस्समणोमायगनिग्गहे अकुम भे !
 अइत्तगतवग्गिणमोहकट्ठभस्सोक्क ये !
 उट्टामघट्टामायगमत्तरत्तवात्तहणे । ७

गाहा—सरीराहारवीहारत्तसारभोगणिप्पिह् !
 विमुद्धवोहपीज्जत्तपाणपुण्णीकयात्तत्त । ८
 विरोही जगज्जन्तुकुण्णवत्तणालय ।
 अमेई कामधेणुव्व ! अनिणन्दन्ति त जणा ९

गज्ज—पगुरुआयरियमहमत्तासयगामत्तत्तसम्पया मम्मालिया । ते य अग्गुकम्पा वच्छल्लया वान वामित्ता
 अज्जत्तभावे थिरिकया । पइवरिमट्टमानेसु परिकट्टियसव्वगामेसु गामाणुगाम दूइज्जित्ता तेसु धम्ममुल्लामेण मिरिजीवराय
 भूहर-रघुणाहायगिय-सगुरुवुहमत्ताडयाण म्भिरण करावेसि तेसु भत्तिमत्तिवीररस च ओयप्पोय करेमि, ते मात्तणनेवा-
 वियारलहरिममालाए पुणो पुणोऽभिणदण । तुमाए मव्वेसु सन्तवीरव्वभुयरस च भरिय धम्मज्जोओ कओ । भत्तभावुगा य
 त कयावि न भुल्लिउ सत्तका । अहो केरिमो जण्णुण्णामयसम्बन्धो पयईए मज्जोडओ । मच्च तु इण ज तडकायव्वपरायणया
 नियगुरुहुमत्तेण अट्ठिमिजपेम्माणुरागरत्ता कया । अहो मोलकी-रघुवडआयरियकुलमिरोमणि ते इणमेव जुत्त । दिट्ठा
 परिकिन्धया स तव कायव्वया सचक्कूहि मादडीमम्मेलणे, निक्खियया ते ओयनेयप्पहावा । दिट्ठा सीणासरे तव पयावत्तावो

राज्ञाण जन बौद्ध इन प्रमुख धर्मों में यदि गांध की जाय तो पान होगा कि पचाप माम् है । यन्पूजा तीना धर्मों में किसी न किना रूप में रहा है । सम्पूर्ण भारत में और ब्रह्मा (मन्वावीर ब्रह्मदेव) आदि का किसी न किसी रूप में गांध भी पूजा जाता है ।

भारताय जन मन्वव म आस्थावान् रहा है । जानन व प्रत्येक क्षेत्र में धर्म अपने से अलग गतिन म आस्था रा कर चलाता है । एन एन एन वाय सिद्धि के लिये वह एवा देवता में की अनुमत्ता व निय प्रयत्नशील रहता है । ना व प्रत्येक जन का यस्मिन्मन रूप स वीर न काई देवता रूप रहा है । किसी का हनुमान का इष्ट है तो किसी का मन्व का तो किसी का किसी अन्य का । यस्मिन् व वाय म्पना (पनिगला) व गिय भी वृषक देवता हैं । गांधी व्याह व वाय या पुत्रप्राप्ति व जनतर टोक न व लिये दम्पती अपने एन व वाय पहँचते हैं । सम्पूर्ण परिवार की रक्षा व निर निर किसी न किसी मुन्वेदी का योजना है । प्रत्येक कुन की एक एक देवी होती है और कुन की उद्धि के निमित्त उत्तम पूजा की जाता है ।

कई परिवार मित्रकर ग्राम बसाते हैं । पुन गांध की रक्षा करने के निमित्त गांध स एक टन मोन दूध काई (घामनामा) व देवता का स्थापना की जाता है । यह मन्वण गांध का बीमारिया व आय आपत्तियों स दवाता है । किसी विषय क्षेत्र की रक्षा करने के लिये क्षेत्रपाल की स्थापना व पूजा की जाती है । दसा गिगात्रा म दम विवाता की वरपना करने उत्तम पूजा जाता है । उसी मुन्वेद मूर्तिया का निमाण दिया जाता है । देवताजी की यह वरपना सांख्य बना और धम तीन म अपना विस्तार रखती है ।

क्षत्र के वाय प्रात की स्थिति गती है । जिना विषय प्रात व विनिष्प दरता हाते हैं । राजस्थान प्रान्त व वाय महेश्वरपूजा देवता म मान दय हैं । राजानर का सारा वाय व एणवम्भार के गण ३ एकलिय जा व हनुमान व व मनुमान भी । पूर्वी भाग का वासाया देवी का वा बीर की विपुरमुन्वेदी का मन्वराष्ट्र का गण का तमिलना को मुन्वेदम्यम का जीर मासवा का महाकाय व क्षेत्र माना जाता है । प्रात के अनतर सम्पूर्ण राष्ट्र का एन गोव-देवता स्वीकार दिया गया है । भारत का नाक देवता इन् है । इसी व नाम पर भारत को इन्दीय कहा जाता था ।

एन सामाय गांध म घुगवर पाय सगान पर जिन सांख्यदेवता व सम्ब व म जानकारी प्रात दूई उस प्रस्तुत कर रहा है । इन् देवताजी का पन्थुरक्षक वृषिषडक आराग्यता उत्तम विषय म सहायक आदि धनिया म बगीट्ट करके अध्ययन किया जा सकता है ।

पन्थुरक्षक दस्ताजी म बारा जी बारा जी छपन जी पोपल्ला बराल मन्वेदी (केजाजी) साखाजी आदि आते हैं । ये सत्र बार पुन ही रन हैं । वना म पूजा पन्थुरक्षक देवता है । सम्भवत उमी क गुणा का इनपर आरोप दिया गया है और एन तरन बीर पूजा का प्रचार चल गया है । एन माय पुपान व कभी मकट व समय पन्था क समूह की रक्षा की । सभी म दस्ता के गुणा का आरोप करने देवहण म मानन का प्रवृत्ति चल पड़ी है ।

क्षत्र म बहुमाय देवता हैं—भरव या भन् जी । प्रयेन अवतर पर एन देवता की उपासना की जाती रही है । सामायत प्रत्येक कुजा बावनी या जन्स्थान इनका अधिष्ठात रहता है । वृषिपाय स पूव जाम्भान पर वृषय एनरी पूजा अवश्य करता है । ३ व म ५० अन् बीर ६८ बागनिषा प्रमिद्ध हैं । कुप प्राचीन वृनिया म बावन बारा की नामावता मिगनी है । जयमाग मूरिरचिन जिनदत्तमूरि चरिण म यह नामावता है । सम्भवत य बावन बार ही बाक म ५२ अन् नाम म जान पाते हैं । उनसे सामा म हा यन् पान म जाना है कि ये किस किस प्रकार व वाय करने म समय है ? मध्यकाय म पूजित मणिअ आदि यन् वनी य हा ता रहा है ?

- १ १ इन् २ आनदेव ३ यमदव ४ मन्थर ५ वधवदेव ६ वापुदेव ७ कुपेर ८ ईगान ९ धरणा १० सोमदेव ।
० बावनबीरा की ४ नामावतियाँ ३३ बापुदेवकरण अग्रवाल के संपने प्राचीन भारतीय सोचधम गांध प्रथ (पृ १५५ ६०) में दी हैं । इनमें कुछ नाम समान हैं और कुछ न भिन्नता है ।





इसी प्रकार चौसठ योगनियों के नाम भी प्राप्त हुए हैं। कहीं योगनियाँ यक्षिणिया ही तो नहीं हैं ?^१ भैरव को युद्ध का देवता और योगनियों को युद्ध में जाहत वीरों का मून पीने वाला माना जाता है। पृथ्वीराज राठौर कृत क्रिसनखम्पी गी बेली' में ६४ योगनियों का उल्लेख आता है।

कृपि की अन्य देवी 'म्यावड' नाम से जानी जाती है। किमान जब रेत में गवगं पढ़ने हन जोतना है तब इसका स्मरण करता है।

स्यादड माय गाडा घालो आव ।
भलो करणी माय, सिर दुये न पाव ।

वह देवी का आह्वान करता है ताकि उसके अंत में कई गाठियों में भग्ने लाथा अनाज पैदा हो सके। साथ ही 'सिर में दर्द न हो' यह कहकर वह अपने जागृत्य के लिए भी प्रार्थना करता है।

आरोग्य प्रदान करने हेतु जिन देवताओं को गाम में पूजा की जाती है, वे हैं भैरव जी, मन्मथानृत्य (धीनता, मसानी, काली, कीजामन लालबाई, फलका माता, गलफेटी माता) मानी महाराज, शीर हनुमान आदि।

चेचक से रक्षा के लिए जीतना माना, एक विज्ञेय प्रकार की चेचक के लिए मसानी माता, गलफेटी से मुक्ति के लिए गलफेटी माता, मोतीभूरे से बचने के लिए माती महाराज आदि की पूजा की जाती है। बाहरी शक्तियों से गाव की रक्षा करने के लिए भैरव, हनुमान, शीर हनुमान (वानाजी), क्षेत्रपाल कबर जी आदि की पूजा की जाती है। सम्भवत क्षेत्रपाल और वाला जी का चन्द्रप एक ही है।

जीवन के अन्य विभिन्न अवसरों पर सूर्य, गणेश, अग्नि, नवग्रह, शिव, जन (जन्म) गंगा गो, शृण, गोवर्धन, सत्यनारायण, गोगाजी (वीरपुष्प-मवंगर), मनी देवी, तडमी आदि की पूजा व स्तुति की जाती है ताकि प्रत्येक कार्य निश्चिन समाप्त हो सके।

जिस किसी भी कार्य को जन प्रारम्भ करना है उसकी निविधन समाप्त हो सके उसके लिए वह प्रारम्भ में देव वन्दना करता है। कार्य समाप्ति के उपरान्त उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए फिर देवपूजा की जाती है।

देवोपानना की गावों में दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। एक तो व्यक्तिगत रूप से पूजा की जाती है और दूसरे सामूहिक रूप से की जाती है। व्यक्तिगत रूप में ग्रामीण जन नित्य शिव पर जन चढ़ता है, मन्दिर में जाकर देव-विग्रह को ढोकता है, सूर्य को अर्घ्य प्रदान करता है, भोजन करते समय भगवान् को भोग लगाता है, भोजन का थोड़ा अंश वैसन्दर (वेज्वानर) में आहुति के रूप में डालता है, गोगाम गाय को देता है, पितरों के नाम पर नित्य या मावम-पूना अन्नदान करता है। राजा किरण (सूर्य) को प्रणाम करने में उसकी दिनचर्या प्रारम्भ होती है और तारों भरी रात में सबकी हित-कामना करते हुए अपने सारे दिन भर के कार्य के फल को उपदेव को समर्पण करके निद्रादेवी की गोदी में विश्राम लेने के साथ उसके जीवन के महाकाव्य के एक पृष्ठ का पटाक्षेप होता है। इस महाकाव्य का प्रत्येक पृष्ठ दिव्य-चेतना की गाय कहे जाता है। वह अपनी कर्मभूमि को 'देवरा' (देवमन्दिर) मान कर कर्मनिरत रहता है। पूर्णिमा को वह सत्सूचना कर सत्यनारायण को भोग लगाता है, व्रत करता है। अन्य उत्सवों को भी किसी न किसी देवता की कृपा की आकांक्षा करता हुआ मनाता है।

जब कोई सख्त आता है तो वह देवताओं की विशिष्ट उपासना करता है। देवताओं की कृपा में उसके रोग-आंक सब दूर भाग जाते हैं। उपानना की विधि बड़ी सरल है। देवताओं की छोट वुहारना, गिर पर पत्थर रखकर आत्म-तितिक्षा का परिचय देते हुए देव-मेवा करना, गीत गाना, दिशा ढोकना, देवता के नाम की ज्योति जलाना, गायों को चारा डालना, कवूतरो को चुगा या चींटियों को चीटीचुगा डालना, उनके नाम का गुडया मिठाई

१ चौसठ योगनियों की तीन नामावलि पर डा० अग्रवाल ने 'प्राचीन भारतीय लोकधर्म' ग्रन्थ (पृ० १४७-४८) में दी है।

हमारी अद्भुत लोक-संस्कृति

डॉ० रामानन्द तिवारी

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० फिल्०, शारत्री,

महाराणी श्री जया कालिज, भरतपुर



आधुनिक सांस्कृतिक धारणा में प्रायः ग्रामीण और अन्य लोगों की संस्कृति को लोकसंस्कृति माना जाता है। ज्यों-ज्यों नागरिक सभ्यता बढ़ती गई त्यों-त्यों यह लोक-संस्कृति पीछे छूटती गई है अथवा नागरिक लोग उससे दूर होते गये हैं। इस प्रकार यह लोक-संस्कृति एक अनागरिक संस्कृति है। नागरिक समाज के जीवन में इस लोक-संस्कृति का उतना स्थान और महत्त्व नहीं है जितना कि ग्रामीण लोगों और वन्य जातियों के जीवन में है जो उस संस्कृति को अपनी सत्ता का अभिन्न अंग मानते हैं।

पश्चिमी देशों में लोक-संस्कृति और नागरिक-सभ्यता का यह भेद अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। कदाचित् पश्चिम में ऐसी लोक-संस्कृति अधिक स्पष्ट नहीं थी जो समाज के जीवन में ओत-प्रोत हो तथा इस कारण जो नागरिक सभ्यता के विकास के बाद नागरिक जीवन में भी नुरक्षित और नमादृत बनी रहे। किन्तु भारतीय लोक-संस्कृति इतनी नम्र और मार्मिक रही है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ नागरिक जीवन में उसका विच्छेद नहीं हुआ। वह ग्रामीण और वन्य संस्कृति में नीमिन नहीं रह गई है। समाज के सामाजिक जीवन में उसका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है कि नागरिक जीवन में भी उसका महत्त्व अधुण वना हुआ है। यह भारतीय लोक-संस्कृति की एक अद्भुत विशेषता है जिसकी ओर संस्कृति के व्याख्याताओं ने समुचित ध्यान नहीं दिया है। इनका ही नहीं, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में आकर नगरों के निवासी अब अपनी इस लोक-संस्कृति की उपेक्षा कर रहे हैं, यद्यपि अब तक यह लोक-संस्कृति नागरिक जीवन की नीरमता में मधुरता और मर्मिकता का संचार करती रही है।

हमारी यह अद्भुत लोक-संस्कृति वास्तविक अर्थ में एक लोक-संस्कृति है। लोक का अभिप्राय एक देश के सम्पूर्ण समाज में है। सम्पूर्ण समाज की संस्कृति को ही वास्तविक अर्थ में लोक-संस्कृति कहा जा सकता है। जो संस्कृति सम्पूर्ण समाज में आदर नहीं पाती तथा केवल ग्रामीण और वन्य समाज में ही गेप रह जाती है, उसे लोक-संस्कृति न कह कर ग्रामीण संस्कृति अथवा वन्य संस्कृति कहना चाहिए। सामूहिक नृत्य के उदाहरण के द्वारा इस भेद को स्पष्ट किया जा सकता है। सामूहिक नृत्य विशेष रूप से ग्रामीण और वन्य संस्कृति में ही गेप रह गये हैं। नागरिक सभ्यता ने उन्हें त्याग दिया है।

किन्तु सामूहिक नृत्य का उदाहरण एक जगह जैसा है। इसके अतिरिक्त भारतीय लोक-संस्कृति के ऐसे अनेक रूप हैं जो ग्रामीण और नागरिक सभ्यता में समान रूप में पाये जाते हैं। लोक-संस्कृति के कुछ रूपों के सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि अधिक जनसंख्या और अधिक स्पष्ट के कारण नागरिक जीवन में इनका रूप अधिक भंग्य बन जाता है। होली, दीपावली आदि के पर्व इसके उदाहरण हैं। नगरों में इनकी शोभा ग्रामों की अपेक्षा अधिक होती है।

हमारे तीज त्योहार पव-अन उत्सव सहज मन तीज आति हमारी इस अद्भुत लोक सत्कृति व मन्त्रवृण जग हैं। ग्रामीण और नागरिक दोनों प्रकार के समाजों में इनका समान महत्त्व है। दोनों ही समाज लोक सत्कृति व इन रीति का समान रूप से निर्वाह करते हैं। जहां कि अभी कहा जा चुका है—जैसे वार लोक-सत्कृति व कुछ रूप ग्रामीण समाज का जयश्री नागरिक समाज में अधिक जनसंख्या और सृष्टिक वारण अधिक भाव रूप में सम्पादित होते हैं। लोक सत्कृति व कुछ रीतों का भूमिगत भूतल ग्रामीण कृषक समाज में बनी थी। किंतु हम भूमिका व ऊपर के लोक-सत्कृति का विनाश हम सुन्दर रूप। म हूँ कि व नागरिक जीवन में भी समान भाव से समाहित हो गया है।

दीपावली नामी जाति के पव हमारी इस अद्भुत लोक सत्कृति व सर्वोत्तम उदाहरण हैं। समाज का अर्थ जिनो सम्मान में हम पव करने को गये मिलते हैं। प्रायः कहा जाता है कि समाज व अर्थ देना भी रीति का पव होता है तथा दीपावली जनाये जाते हैं। कर्माचर दूसरे देना भी व प्रवाह हमारी समस्त परम्परा का जाति अनुसरण मान है। हमारी दीपावली वरन् दीपावली का पव नहीं है। दीपावली का जनाय वरन् उमका एक अर्थ है। कर्माचर पवन नाम दीपावली का माना गया वरन् जानी और न दीपोत्सव को दीपोत्सव कहते हैं। ३५ देना में सम्पादन की होता। दीपावली का नाम दीपोत्सव व अनिष्टन घटनादि प्रयोगों पर अनुष्ठानों सम्पादन परा को नकार पुनर्वा मिलित आयतन मिष्टान्तविरण पवन वरन् नवान वस्त्र निमाण दन मन्त्रों तथा पक्षीसिद्धि व परा में दीप दान जाति पवन प्रवाह सम्मिलित हो जो उम विदेशों व दीपोत्सव की जयश्री वरन् अधिक सम्पन्न और साधक बनती है। दीपावली की प्रतिष्ठा को गायधनपूजा तथा उसने शास्त्र आनवादी आनुष्ठानों को और अधिक सम्पन्न बनाती है। दीपावली की इन सभी प्रथाओं का पवन ग्रामों और नगरों में समान रूप से होता है।

इसी प्रकार हमारा नामी वरन् रीति का पव नहीं है। पवन रीति प्राकृतिक रीति है। सब रीति साधों का रीति तथा जा हूँ कि भावमय जीवन की पवित्र भूमिका है। दूसरे अनिष्टन वस्तु पक्षी से जानी की स्थापना रीति की पक्षीनी में जानी व माना जा आरम्भ माना पूर्विका व हाविकावन्त व पूर्व कर्माचर द्वारा कर्माचर तब निरपेक्ष हाविकावन्त पक्षीनी का आनवकी पूजा पूर्विका व हाविकावन्त नमान की आहुति प्रतिष्ठा का हूँ कि वरन् अनिष्टन का नामपण अपरिचितों का पक्षमित्र आनुष्ठानों जाति सभी प्रवाह हैं जा दीपावली व पव की भाति जानी व पव का भी जयश्री समान और साधक बनाता है। रीति सम्पन्न और साधक पक्षी का उदाहरण सारा व किंग दन की सत्कृति में नाना मिल सकता है।

दीपावली और जाना व अनिष्टन जय अन्तर्गत साधुद्वारा पव आति भारतीय जीवन का सुन्दर और आनन्दमय बना है। एक प्रकार से हमारा सम्पूर्ण पव ही पक्षी और उत्सवों का निरन्तर पव है। कुछ दिन के अनन्तर गे निरपेक्ष नम पव और उत्सव जाते रहते हैं। समान व स्वरा की भाति व पव और उत्सव अन्तर्गत प्रवाह व जान हैं और जानों के साथ साथ समय समय पर पारिवारिक सहकार देना जाति व सवागी गद्य हमारा जीवन लोकसत्कृति को एक सम्पन्न जीवन का रूप देते हैं। पव व आरम्भ व नवग्रह की दुहापूजा कोमाय पक्षी माना पूजा जाति व आरम्भ हाविक गाय उत्तरीय वरन् मानिनी गगा-गगाहारा तम पूर्विका रथावधन नामाचरों गगा रथों अति पक्षी अन्तर्गत अनुष्ठानों विरुद्ध पारदाय नवरात्र दीपावली गायधनपूजा महामन्त्रादि वस्तु पक्षमा और गायधन व स्वरा घोषणा जा हूँ कि जानों का पवन वरन् हमारी लोक सत्कृति की रागिनी अन्तर्गत वरमा रीति पर पक्षी है। लोक सत्कृति की रीति परम्परा व दान पव उत्सव जो जाति समीप व विभिन्न स्वरा की भाति एक वरन् व सजाये गये हैं कि लोक-सत्कृति की रीति साधकों साधु जीवन का एक सुन्दर मानिनी बन जाता है।

नवरात्रों का उत्सव पक्षिपूजा व घाल और मन्त्र स्वर में सम्पन्न की रीति रागिनी जा आरम्भ होता है। दान हा जान व जापार है। मानव उत्साह भूत है। कोमाय व अभिमान में सवाय व गायिक की परम्परा पावित होता है। अनन्तर साधक अभिमान व पक्षी का आरम्भ वरन् पक्षी उचित है। पक्षि की मन गगाओं को भी जानी है जा पक्षी जाति का पक्षि पूजा दान प्रतिष्ठा की पक्षिपूजा की पक्षी है। दान व पवन रूप हैं। अनन्तर जा व पक्षि पक्षी जीवन और हमारा सत्कृति का जापार है। नवरात्र व रीति रीति का दान और पवन व माय गमान रूप में पवन करते हैं। दान व तीर्थों में जाने जान मान पवन व उत्सव का पवन अनन्त और सभी विरति को व्यावहारिक जीवन में प्रतिष्ठित करते हैं।





अथय तृतीया भी एक प्रकार से शक्ति की अवयव परम्परा के प्रसार की प्रतीक है। यह परम्परा भी जयन्ती के रूप में ही मनाई जाती है। घड़ा, मत्, पखा, अनुकट आदि का दान शक्ति परम्परा में दान के महत्त्व को सूचित करता है और दान की विभूति को सामाजिक सम्बन्धों में अन्विष्ट करना है। यह सावित्री का दान नारी की सजीवनी महिमा को अमर बनाना है। मन्त्रवान् जो दान के पान में पीटा जाने वाली सावित्री भाग्योन्नति नारी का आर्थिक दान नहीं है। ग्राम और नगर सभी स्थानों की स्त्रियाँ सावित्री के दान का पावन करती हैं। उन अवसर पर कोई भी मेला या उत्सव का नहीं होता, जीवन-मरण का सम्पूर्ण अवसर उनके विषय उपरुक्त भी नहीं है किन्तु भी घर में उस दान के निमित्त से कुछ उत्सव का वातावरण ही बन जाता है।

महादशहरा कोई दान न होकर गंगास्नान का पर्व है। ग्रामीणों के विषय में अथवा तब में गंगा-यात्रा और गंगास्नान एक धार्मिक पर्व बन जाते हैं। गंगा के किनारे के नगर निवासी भी उस पर्व के पुण्य में भाग लेते हैं। गंगातट के मेले उस पुण्य पर्व को उत्सव भी बना देते हैं तथा उन्हें आतिथ्य एवं सामाजिक भूमिका में प्रतिष्ठित करने हैं। पिछले तीन शताब्दों के बाद महादशहरा के उत्सव में नृत्ति की गति का स्वर बदल जाता है। व्यास पूर्णिमा मुख्यतः दान का पर्व है। प्राचीन विद्या-परम्परा में गुरु का दान दान योग रहा है उसी के उपरान्त ने निष्पयोगी होने लगे भी विद्या की परम्परा पोषित रही है। जापानी-पूर्णिमा का यह पर्व उसी पुण्य की गति का स्मारक है। स्वराज्य में उसकी प्रथा मर हो चली है। किन्तु उस प्रथा का पुनरुज्जीवन राष्ट्र के पुनरुज्जीवन में बहुत कुछ सहायक हो सकता है।

रक्षावन्धन का पर्व दान का पहला सामाजिक पर्व है। ग्रामीणों का उत्पन्न और दानों की गति उनके दो पक्ष हैं। ये दोनों दान धार्मिक और सामाजिक उत्तरदायित्व के सूचक हैं। वैदिक उत्पन्न तो लोग प्रायः भूल चले हैं। किन्तु वहनों की गति ग्राम और नगर दोनों के घर-घर में एक अद्भुत आनन्द की नृत्ति करती है। वहन का सम्पन्न एक अत्यन्त मधुर और पवित्र सम्पन्न है। भाग्योन्नति में उसका समर्थन अधिक आदर दिया जाता है। रक्षावन्धन का पर्व विवाहिन स्त्रियों के पीछे से दान सम्पन्न की प्रतिवर्ष नया कर देना है और उनके जीवन की मर्यादा को सुनिश्चित बनाना है। यह सुन्दर पर्व हमारी लोक-संस्कृति का भी रक्षावन्धन है। भूत के गीत और मधुर व्यजन उस पर्व के माध्यमों का विस्तार करते हैं।

रक्षावन्धन के आठ दिन बाद जन्माष्टमी का धार्मिक पर्व आता है। उसने दान और उत्सव दोनों का सम्पन्न होता है। घरों और मन्दिरों में भी श्रीकृष्ण की भाँकियाँ मजाई जाती हैं और उत्सव के आनन्द में दान का पावन होता है। गणेश चतुर्थी में गणेश की पूजा होती है। महाराष्ट्र में उसकी विशेष महिमा है। किन्तु मंगल के देवता के रूप में गणेश सम्पन्न भाग्य में पूजे जाते हैं। ऋषि-पत्नियों ऋषियों के सम्मरण का पर्व है। उनमें वन्य आहार के द्वारा ऋषियों का स्मरण किया जाता है। अनन्त चतुर्दशी अनन्त परम्परा का दान है। ये दोनों दान ही माने जाते हैं। उनकी सात्त्विकता के कारण कदाचित् उनमें उत्सव का मगम नहीं हो पाया।

अनन्त चतुर्दशी के दूसरे दिन ने पितृ-पक्ष का प्रारम्भ होता है। पितृ-पक्ष का श्रद्धापूर्वक स्मरण भी एक सामाजिक सत्कार और पारिवारिक उत्सव का अवसर बन जाता है। गरीब, अमीर सभी घर-घर पितरों का श्राद्धोत्सव करते हैं। यह रक्षावन्धन के समान ही एक व्यापक और सावभौमिक कृत्य है तथा हमारी लोक-संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

पितृ-पक्ष के बाद शारदीय नवरात्र का आरम्भ हो जाता है जो वास्तविक नवरात्र की आवृत्ति है। यह आवृत्ति जीवन में शक्ति के महत्त्व का समर्थन करती है। शक्ति का तत्त्व अत्यन्त रहस्यमय है। किन्तु तांत्रिक विद्वानों ने लेकर ग्रामीण नर-नारियों तक अमर्युग योग नवरात्र का दान करते हैं। कार्तिक की कृष्णा चतुर्थी में दीपावली की भूमिका आरम्भ हो जाती है। करक-चतुर्थी सौभाग्य का दान है। उसके बाद अहोई-अष्टमी वात्सल्य का दान है। सौभाग्य और वात्सल्य दोनों का भाग्योन्नति-संस्कृति में अपार महत्त्व है। ग्राम और नगर की शिक्षित और अशिक्षित, गरीब और अमीर सभी स्त्रियाँ इन व्रतों को करती हैं। धन्वतरी त्रयोदशी का आयुर्वेदिक पर्व साधारण जनो के लिये नये पात्र खरीदने का पर्व बन गया है। किन्तु अपने इस नये रूप में बहुत व्यापक है। नरकचतुर्दशी का यह 'यमदीन' जमावस्था की दीपमाला

और स्वजनो का मोहाई, नींद, बाछ, मोह आदि उसे एक उत्सव या त्योहार के हैं। उन प्रकार विवाह या प्राङ्गिक सम्बन्ध एक विवाह मानवृत्ति उत्सव बन जाता है। अन्यष्टि की अधिक चर्चा उचित नहीं है। फिर भी उनका विचारणीय है कि जिस त्यो में अन्यष्टि या मस्कार होता है उस त्यो में वह योग्यता या योग्यता की अपेक्षा और उसकी विमोचन का प्रभाव अपनी सामिक प्रक्रिया के द्वारा बहुत कुछ दूर हो जाता है। दूसरी ओर फिर श्रद्धा और मद्भावना के साथ मन्द या मस्कार होता है उसकी चर्चा ही प्रत्येक जीवन मनुष्य को अपनी निवृत्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ मान्यता देती है। मनुष्य जीवन का अतिवाहक है। उसे कोई रक्त नहीं पकता। अन्यष्टि मस्कार तथा प्रकाश आदि के योग में जिस प्रकार भारतीय परम्परा में मनुष्य को उस अतिवाहक विधि या समाधान दिया गया है तथा उसे सुन्दर और तब्य बनाने या प्रत्यक्ष दिया गया है उससे जिसकी अतिवृत्ति मान्यता मनुष्य को मिल सकती है उसमें आसक्त गावना की जाना किसी समाज में नहीं की जा सकती।

उन प्रकार जातकर्म में तेकर अन्यष्टि तर के मस्कार उसमें लेख मनुष्य प्रत्यक्ष समस्त जीवन को सुन्दर बनाने है। मस्कार का अर्थ परिभाषित अवस्था गोपनी है। किन्तु मस्कार मनुष्यता की मौलिक वस्तु है। उन उन मस्कारों में परिभाषित है साथ-साथ मस्कार का चर्चामान भी होता है। पर्य और मस्कार दोनों विचार जीवन को द्विगुणित सुन्दर बनाने हैं। पर्वों की गति वर के जातकर्म के अनुमान है। मस्कारों की गति ध्वनि के आनुक्रम के अनुसार होती है। उन प्रायः होता या मान होता है। गाव-वाय की गति की भाँति होता की गति जीवन और तब मनुष्य की गतिनी का समावेश बनानी है। मस्कार माध्यात् जीवन के पर्व है। इनमें मानवृत्ति मोदक को जीवन के अर्थ में अतिवृत्ति दिया जाता है। पर्वों में मानवृत्ति मोदक में जीवन के अर्थ में अतिवृत्ति दिया जाता है। उन प्रकार इस विविध और परस्पर प्रक्रिया के द्वारा जीवन और मोदक या द्विगुणित सम्बन्ध जीवन को अपार मोदक प्रदान करता है।

पर्वों और मस्कारों के अतिवृत्ति नीचे-दर्शन, तीर्थस्नान, यात्रा, मेले आदि भी लोक-जीवन को अनेक प्रकार में सुन्दर और आनन्दमय बनाते हैं। तीर्थ व्रत के पीछे ह। भारत में सर्वत्र इनके तीर्थ फेंके हुये हैं जि मनुष्य भारत को धर्मभूमि कहा जा सकता है। पुण्य अवसरों पर तीर्थों में मेले भी होते हैं। इस प्रकार तीर्थों में धर्म और अर्थ का संगम होता है। तीर्थ-यात्रा, तीर्थ-दर्शन और तीर्थ-स्नान की प्रथा भारत में बहुत प्रचलित है। राम और सगर सभी स्थानों के निवासी तीर्थों में श्रद्धा रखते हैं। यह तीर्थमेवम हमारी लोक-मनुष्यता का एक धार्मिक अंग है और उनका ही लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण है जितने कि पर्व, उत्सव, मस्कार आदि हैं। यह भारतीय जीवन की पवित्र भावना का चोकर है। हमारे वनों और पर्वों में भी धार्मिक भावना अंत-प्रोत है। तीर्थमेवम उन भावना की गति को पूर्ण करता है तथा देश की भूमि के साथ में हमारी एकात्मता स्थापित करता है। पर्वों, व्रतों और उत्सवों की भाँति तीर्थ मेवम के अवनतों की बहुमन्यता धार्मिक भावना का जीवन के साथ व्यापक सामाजिक स्थापित करती है।

तीर्थों के अतिवृत्ति भी अनेक स्थानों पर छोटे-बड़े मेले लगते हैं। मूल रूप में तो ये मेले आर्थिक व्यवसाय के अन्वयायी केन्द्र हैं जो समय-समय पर सक्रिय होकर आर्थिक जीवन की गतिविधि को मनुष्यता करते हैं। किन्तु मायावरण जनों विरोध वादकों और स्त्रियों के विरोध में मेले आर्थिक व्यवसाय के साथ-साथ विवाह और विनोद के केन्द्र भी बन गये हैं। बड़े नगरों का दैनिक बाजार ही मेले के समान होता है, किन्तु छोटे नगरों के जीवन में इन मेलों का बड़ा महत्त्व है। इनके निवासियों के विरोध में मेले एक नई चहल-पहन और नये उत्साह का अवसर लेकर आते हैं। समय-समय पर आकर ये मेले लोक-जीवन में एक नई स्फूर्ति और नवीन प्रसन्नता भर जाते हैं।

इस प्रकार पर्व, उत्सव, व्रत, मस्कार, तीर्थ, मेले आदि के अनेक रूपों में युक्त हमारी लोक-मनुष्यता अपनी समृद्धि है जिसकी तुलना अद्वैत ही किसी देश की मनुष्यता कर सकती है। मानवृत्ति रूपों की विविधता और विपुलता इस समृद्धि का एक लक्षण है। किन्तु मनुष्यता की समृद्धि का एक दूसरा लक्षण भी है जिसकी दृष्टि में भी हमारी लोक-मनुष्यता अनुसम और अनुकूल है। मनुष्यता की समृद्धि के इस दूसरे लक्षण को जटिलता कह सकते हैं। जटिलता का अर्थ उलझन नहीं वरन् अनेक तत्वों और पक्षों का संगम है। जटिलता में अनेक अंश-तत्त्व मिल जाते हैं। जटिलता जटिलता शब्द उलझन के अतिवृत्ति तत्वों और पक्षों की अनेकता का भी सूचक है। हमारी लोक-मनुष्यता

अनक क्पा म दग बाग मानवीय सम्बन्ध उत्तरण त्रिधि निमित्त रय सगात देवता आनि अनेक विगप तस्सा एव गथा वा सगम रत्ना है । य सब मितवर सास्त्रनिक आसार व प्रत्येक रूप को जटिनता की दृष्टि स सम्पन्न बना दत हैं । यही सम्पन्नता हमारी दापावरी और हामी का निदेगा म प्रचलित रगलीता और दोषोत्पन्न म भन्ना है । जटिनता की दृष्टि म सस्त्रनि क एक सम्पन्न रूप बनाबित् ही किसी अन्य दग म मित सकने । सस्त्रनि के जटिन र्पा की विपुलता और भा प्रचिन रत्न है ।

जसा उपर सवन किया जा चुका है हमारी यह तीस सस्त्रनि जीवन म समवत है । यह कहा जा सकता है कि य लोकमस्त्रनि जीवन का । सास्त्रनिक रूप है । तत्कमस्त्रनि की परम्परा म सस्त्रनि का मोदय जावन म हो समवेत हा गया है । य प्रकार हमारी यह तीस सस्त्रनि उन अभिजात सस्त्रनि मे भिन है जिसे पश्चिमी धारणा क अनुसार सस्त्रनि का एक मात्र रूप समझा जाना है । य अभिजात-मस्त्रनि जावन का साम्प्रतिय पर्याय नहीं है बरन् जीवन का एक अग मात्र है । धम दान बना आनि इनक पण है । ये सम्पूर्ण तीस जीवन के माय समवन नही ह व न तीस का मर आ ही उन रत्न हैं । य प्रकार यह अभिजात सस्त्रनि जीवन और सम्बन्ध का आगिर रूप है । य धारणा क अनुसार लोक सस्त्रनि प्राचीण और धर्म समाज म गप रह गयी है । नागरिक जीवन क लिए यह केवल अध्ययन और कौशल की वस्तु है ।

किन्तु हमारी भारतीय तत्कमस्त्रनि इनको सफ़द और गट्टिदृत है कि प्राचीण और नागरिक समाज उनके समान आन्द म अपनात रत्न हैं । नागरिक समाज न इस सस्त्रनि का निरुद्धार करने क स्वार पर नसके अनक क्पा को अपने धर्म से सफ़द बनाया है । नगर की दीवारों की भी नागरिक मन नागरिक तीस नागरिक बिबाह आदि इनके उपाकरण हैं । इतनी विगल और सफ़द तीस सस्त्रनि का नागरिक जीवन क साथ क्पना घनिष्ठ सामञ्जस्य बनाबित् ही किसी अन्य रत्न म मित सकना । य रत्न म हमारी तीस सस्त्रनि समार म अद्भुत और अनुत्तमीय है ।

इस तीस-सम्बन्ध की एक अन्य विगपता की महत्वपूर्ण है । विद्यवाग मगीत साहित्य धम आनि जा अभिजात सस्त्रनि क अग माने जाते है व भी यम जीवन रूप म समवेत हा गप हैं । भित्ति विगण भूमि आलखन आनि चित्रकला क साधारण रूप म म मित हैं । तारगाना के रूप म विपुल बाध्य साहित्य इन तीस-सस्त्रनि म समाबित् हो गया है । इनक अनिरुक्त गीता रामायण आदि जग अष्ट साहित्यिक ग्रन्थ भी इस तीस सस्त्रनि की विभूति बन गये हैं । इन ग्रन्थ का विद्वाना म जितना आन्द है उनके ही के जवता म भी लोचप्रिय हैं । प्राची और नगर म तीस समान रत्न के अनुसार नववा पाठ और पावन करते हैं । भारतीय आवागवाणी म तत्क साहित्य का जितना प्रचारण होता है उनका बनाबित् ही किसी अन्य दग की आकाशवाणी से होता होगा । मूर तुगरी मीरा आनि की रवनात्रा म धष्टनम साहित्य का जसा लोकप्रिय रूप मितता है वसा कदाचित् ही किसी अन्य रत्न म मित सवेगा । धम का भी हमारी तीस सस्त्रनि म अद्भुत समन्वय हुआ है ।

अस्तु भारतीय परम्परा म तत्क-मस्त्रनि का एका रत्न और सम्पन्न रूप विवमिल हुआ है कि यह नागरिक जीवन म भी लोकप्रिय बनी रही है । नागरिक जीवन के व्याप्त ऐसी सफ़द लोक मस्त्रनि का किसी भी अन्य दग म उपाकरण मितता कल्पित है । सस्त्रनि का निमाण और प्रचार तिराट और महान् सरल गति क मर होता है । प्राचीन भारत की जिन आय विभूतिया म अपने तिराट और महान् सत्त्व क द्वारा इन अद्भुत तत्क-मस्त्रनि का निर्माण और प्रचार किया वे हमारे नये मन्व वन्माय रत्न है ।



लोक-साहित्य

श्री चम्पालाल गुप्त, एम० ए०

आयुर्वेदरत्न, नारतीनूपण



आधुनिक युग विज्ञान का युग है। विश्व के बाह्य चमत्कारों की चलाचाल में चकित होकर मानव प्रत्येक वस्तु को अपने पूर्वजों की प्रपेक्षा भिन्न दृष्टिकोण में देखने लगा है। और अपने आप को अपेक्षाहीन जगत् में समझ व समझूत समझने लगा है। फिर भी जब हम आधुनिक साहित्य की ओर दृष्टिपात करने हैं तो हमें उनमें उन मूल मवेदना, नैतिक दृष्टि, सरलता, स्वच्छन्दता और जीवन की व्यापकता के दर्शन नहीं होते जिनमें लोक-साहित्य में होते हैं। भौतिक मायनमस्मन्ता और पदार्थवाद की बटनी उद्दाम प्रवृत्ति आज साहित्य में दृष्टिमता और प्रत्यक्ष-माध्य ऊहापोह का पर्याय बन गई प्रतीत होनी है। ऐसी अवस्था में हमारे ध्यान का लोक-साहित्य की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक ही है, जिनमें मवेदनात्मक जीवन की रमण व्यापक हृदय की निदरत माया में अभिव्यक्त हुई है और गगात्मक दृष्टियों के साथ पूर्ण सामंजस्य एवं तादात्म्य हुआ है।

साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों और गण्यताओं ने भी लोक-साहित्य के महत्त्व को प्रतिष्ठित करने में सहयोग दिया है। वास्तव में साहित्य का लोक में जगिच्छित सम्बन्ध है। लोक का अर्थ है—विगट जनममुदाय, जहा व्यक्ति और समष्टि का जीवन व्यापक चेतना के एक समन्तर पर आदर्शित होता रहता है। उसकी सत्ता सर्वव्यापक एवं प्रकृति के अणु-अणु में व्याप्त है। उनमें भूमि और जन दोनों के जन्मिद का भाव है। वस्तुतः दृष्टि और समष्टि दोनों में अभिव्यक्त समस्त मनोभावनाएँ ही शोकेतना है और यही मन्दृति, कथा, साहित्य, धर्म, दर्शन व सम्यता का प्रतिबिम्बित रूप है।

‘लोक’ शब्द की व्युत्पत्ति दर्शन अर्थशास्त्री लोक प्रातु में हुई है। लोक के अर्थ के विषय में अभी तक भारतीय और पाश्चात्य भाषाविदों में मतभेद नहीं हो पाया है। नन्दे में प्रयुक्त ‘देहि लोकम्’ के अनुसार लोक शब्द का स्यान के अर्थ में प्रयोग हुआ है, पर ब्राह्मण-ग्रन्थों, बृहदारण्यक उपनिषद् एवं वाजसनेयी संहिता में उस प्रकार की किसी भेदात्मक स्थिति का कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। लोक-ग्रन्थों, आकाश-पातान, मृत्युलोक आदि में लोक की अभिव्यक्ति ‘लोक’ के सम्बन्ध में एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। लोक साहित्य को अर्थ या अनाय परम्पराओं में विभाजित करके देयता न तो समाचीन ही है और न ही मभव। लोक की व्यापक सत्ता को अवीकार कर कोई भी परम्परा अपने अस्तित्व को चिरस्थायी नहीं रूप मकनी। इसलिए वेद लोक को भी अपने साथ लेकर चलता है। वेदवेत्ता महर्षि वेदव्यास ने स्वयं लोक-धर्म और विद्या के प्रति आस्था प्रकट करने हुए कहा है—“प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्तर”^१ गीता का—अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुनपोत्तम” यजुर्वेद में लोक के विगट स्वल्प की कल्पना^२ एवं जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में उमका नाना रूपों में वर्णन^३ इसी सम्बन्ध को पुष्ट करना है। प्राकृत एवं जपभ्रम में प्रयुक्त ‘लोकजता’ व ‘लोकणवाय’ शब्द भी लोक का महत्त्व व्यक्त करते हैं।

१ महाभारत, उद्योगपर्व, ४३। ३६।

२ गीता, अध्याय १५, श्लोक १८।

३ ‘सहस्र-शीर्षा पुरुष सहस्राक्ष महत्तपात्’।

४ ‘बहु व्याहितो वा अथ बहुशो लोक’।

जा जवीजो आसी । जन् मुणिमघो नुत्तमणपरिवण्डेण हिञ्चा तुम पहाणपरिवण्डे पयच्छता ता अज उववखापडा न उट्टु ना । ता वि मग्गवन्ति पारिविअमि ते तत्ता चव अणित्तंति यणति य । तवाकरिममिमावण्णं गच्छुअण सम्मानति । त वायद्वारायणयाग पसणा यणच्चत्ता उल्लमिया एव मन्तिता भवन्ति । तहिं सद्धि थ मवि तवाहिण्णदण करमि ।

पसरथो—करीरचदसिस्तेण धामेण पुष्पभिक्षुणा ।

मरुवरेशरीभिक्षु मिसोमत्ताहिण्डण ॥१॥

झाण भेत्त व दो वाते वेवधमे वच्छरे सुहे ।

अस्सिणोमुक्कपवत्तामि तरसी सोनवासरे ॥२॥

गुडगाममि गुग्गामे टाणे परमसोहेणे ।

अणेतविहारमि कय चित्ताहिण्डण ॥३॥

उवमहारी—जयउ-जयउ चोरो सध्वक्त्ताणकारी ।

जयउ अयउ धोरो पावसत्तावहारी ।

जयउ य मरुत्ते णाणमुत्तुठ्ठिकारी

जयउ मिरिममत्तो केसरी इव विहारी ॥४॥

•

इस अभिनन्दन का अभिनन्दन

श्री सुरेणमनि नास्तो

वाग्जम्बक-यमसालुगल्थ ।

गणादभुते वस्तिनी मौनिता चेत् । —महावि हृष

गत किसी भा समाज व्यवस्था राज्य का एक शासन प्रणाली है । अपनी समय माधनता क अति एव पर आगे बढ़ता हुआ वह शासन के लिए भी अपने आपसे अपने करना करता है । अपने वरान्त मूलक पुनीत वाचन विचारों से वह जनमानस को जगाता और वञ्चना तथा वञ्चनमुखाय अपनी वचारिक धारों का अद्भुत अर्थ भाव स पुनरा करता है । जीवन यय र मूढ वक्ता गिरि की का य मकानि नाम माग्यन करण है । स्वामी आत्मा का को व क्षेपनी वाणी का अमन रिताता है और अति समाज तथा राज्य का सत्य कहनाय साधन करता है ।

और जन मानस का गला शासनात्मक उच्च अस्तुत्य की प्रेरणा प्रदान करना—सत्य जीवन की यय जीविका-माधनता नेही प्रत्युत उसकी जीवन माधनता ज यात्म साधनता तथा समय साधनता का एक म हयूण अग है—जिसका दिन वह निरन्तर नगर नगर अर अर धूमना है हयन मुक्तता का हयन अर अर कठिनायों को भयता है जमान तिरस्कार का जूरी के मूढ धोकर भी वय वयन को जयत वायता है जयन मायूत हाया म पात की जयती मगाल नगर म मास का अ रा मिताना है और समाज तथा राज्य के योगे माय की जगता है ।

मरुवरेशरी नामिध्रीमलनी म राज राजस्थान म स्थानकवाणी जन-नयाज क मक एम हा प्रवक्त समाज सुधारक निर्भीक प्रचारक प्रतिष्ठा दायी तथा सवायुगी प्रतिभाव धनी सा है । राजस्थान की मधरा म उ न अयन आधार विचारमूलक पात की म विनी प्रवाति की है । सपात का वचारिक एवं वारिज धरातल ऊचा उठ समाज विभाग एवं प्रगत की मजिह पर सयन आग बढ़—य उनक मन की माय रण है । और एक निष् स सम्योभावन गतिगीत तथा प्रय वगीत रह है । समाज का नयन एवं धर्मणि स्तर ऊचा उठाने का नि जनक शिक्षण सत्वाभा क मध्यायन म उनका छेड़ थाग न रा है । सामाजिक एकाकरण तथा अद्विवा क उ मूयन क नि भी वय य मायन क नि साय न है । साठी गाजन भीतायन म सामाजिक सम्मानता क मय



चुगत-चुगत गई दूर मो दूर जनमनिया रे,
मार्यो वियावा ने वान गेवन पागी दोउ आनिया रे।

यह हमारे विकास की अमूल्य निधि के समान है। जातीय हृदय की उन्नत-पुथल, सुख-दुःख, मयोग-वियोग, सम्पत्ता, सम्पत्ति को प्रतिविम्बित करने वाला स्वच्छ मुकुर है। अनुभव की गरमता, मत्पत्ता व मजीवपत्त का उनमें सुन्दर समावेश है। देश का मत्त्वा इतिहास और उसका नैतिक व सामाजिक आदर्श—उनकी मूक वाणी है। आद्या-वाद और जीवन-स्फूर्ति इसका आलोकमय स्तम्भ है। जो स्थायी रूप से मत्पत्त की शिवा पर प्रतिष्ठित है। 'मत्पत्त, शिव, सुन्दरम्' भावों का अपार सागर है।

वामनव में 'लोकसाहित्य' साहित्य की अमूल्य निधि और धरोहर है। उसकी महत्ता में उन्कार नहीं किया जा सकता। मनोवैज्ञानिक अध्ययन साहित्यिक चिन्तन और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण ने तो यह मत्स्वपूर्ण है ही, सांस्कृतिक एकता की स्थापना की दृष्टि ने भी उसका योगदान महान् है। वन उसका अध्ययन और सर्वांगीण विवेचन होना अपरिहार्य है। राजस्थान 'लोकसाहित्य' की दृष्टि ने अन्य किसी प्रांत में पीछे नहीं है। वार्ता, गीत आदि के रूप में यहा साहित्य की अपार निधि छिपी पड़ी है। संस्कार, आदर्श, उत्तमता, विशुद्धता और मनोरमता सभी दृष्टियों से वह सुन्दर व मुश्चिसम्पन्न है। इसकी प्राचीनता के आवरण में देख कर ठुकरा देना अथवा भुल्ला देना मूर्खता ही नहीं, जातीय आत्मघात के समान होगा। यह सुभ लक्षण है कि अब हमारे मनीषियों व विद्वानों का ध्यान साहित्य की इस अमूल्य निधि की ओर गया है और नये-नये रत्नों को उस जात निधि में गोजकर निकाला जा रहा है। आग्रा है 'लोकसाहित्य' को अपना उपयुक्त स्थान शीघ्र ही प्राप्त होगा और आधुनिक साहित्य भी इसके सम्पर्क में अधिक गरिमामय व गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर ज्ञान-आलोक में जनमानस को विशेष रूप में आलोकित कर सकेगा। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का यह कथन मत्पत्त है कि—

'लोक का अध्ययन युद्धि का कौतूहल मात्र नहीं है। लोक-सम्पर्क के बिना नव शास्त्र अधूरे हैं। जो ज्ञान लोक-हित के लिए नहीं, वह अधूरा है, वह मानवी चिन्तन का छुंछा फल है।'



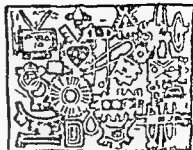
भारतीय लोक-साहित्य में उस प्रकार के अनेक अन्वविष्ट्याम आज भी उपलब्ध होने हैं जो लोकमानस की एक विशेष अवस्था का परिचय देते हैं। ग्रामीण, अल्प-शिक्षित, मूल स्वभाव के लोग अनेक प्रकार के अन्वविष्ट्यामों में पीड़ित हैं और उनका धर्म-भीम दृश्य उनकी अवज्ञा की कल्पना भी नहीं कर पाता। नृने भवता और स्थाना में भूतों के रहने की कल्पना, विशेष दृश्यों पर राक्षसा का निवास, दुःख काय, याथा, व्यापार के प्रारम्भ के समय शुभ मुहूर्त और अशुभ-अपशुभ का विचार, रोग और मृत्यु का कारण किसी देवता, और देवी अथवा भूत-प्रेत का आशेष और फिर अमिचार और अनुष्ठान की विशेष विधि से उन्हें प्रमत्त करना इत्यादि अन्वविष्ट्याम लोकजीवन में अभिन्न रूप में सम्मिश्रित मिलते हैं। इन्हीं प्रकार बलि देने का रिवाज भी आरिज जातिया में इसी प्रकार के अन्वविष्ट्यामों से जुड़ा हुआ है। आज भी दधी-देवताओं का प्रमत्त करने के लिये कुछ जादिम जादियों में नरबलि की प्रथा मौजूद है। पशुबलि देना तो आम रिवाज है।

लोकदर्शन और धर्म के उन मूलभूत विवेचन में निम्न हो जाना है कि जातिगत समाज में जो धर्म और धर्म हमें आज उपलब्ध होता है, उसी में लोकदर्शन और धर्म में हैं। निम्न और शिक्षित वर्ग की दार्शनिक और धार्मिक मान्यताओं की नहीं व्याख्या और स्पष्टीकरण लोकदर्शन और धर्म के मूल अन्वयन में ही संभव हो सकते हैं। लोक के टीने-मन्त्र, अनुष्ठान, शकुन-जाशकुन आदि उन बुद्धि और तर्क के युग में हमें विनिर्दिष्ट और अनुचित लग सकते हैं किन्तु लोक की समाजवादी दृष्टि, अनेक दर्शन, समष्टिगत चिन्तन, दृष्टि आचरण लोकनग्रीय जीवन प्रणाली के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहे जायेंगे। जीवन के वर्तमान मदन में लोकदर्शन और धर्म से महत्ते अध्यापन और अनुसन्धान की आवश्यकता है।

लोक-दर्शन और धर्म का स्वरूप

डा० रामप्रसाद दाधीच

हिन्दी विभाग जोधपुर विश्वविद्यालय जोधपुर



'लोक' शब्द आज हम विविध परिभाषित अर्थ में प्रयुक्त होते पाते हैं। सामाजिक विज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान के एक युग में अनेक जन प्रवर्तित गठना जा उनसे सामान्य अर्थों के अतिरिक्त विशेष वर्णनित अर्थ और सम्प्रदाय मिले गए हैं। लोक का व्यापक सावधानाज्ञा में अर्थ न केवल जाबाना विज्ञान आज मानव समाज के उम्र वयस में अंत समाया है जो भाषितज्ञानसम्पन्न जाभायना और पाण्डित्य की वस्तुता और पाण्डित्य के अन्तर्गत गूँज है और जा एक परम्परा के प्रवाह में जातिता रहता है।^१ एमसांस्त्रोपाधिया शिक्षिता में लोक शब्द का उम्र उम मानव-वयस में दिया गया है जा भाषितर सम्प्रति और मरिषि विज्ञान की धाराभा में सुपुन्य पर है जा निरन्तर अट्टाचाप है अथवा जिन्हा सामग्री-भाषा स्तर जा है—धार्मिक और गवारा।^२

लोक शब्द का उपयोग अर्थ और परिभाषायें यन् स्पष्ट करने हैं कि लोक मानव और हृदय मन्त्र और सास्त्र मन्त्र होता है। उम्र में स्थिता नयी हाभा मानव-सम्भाव की वस्तुतायें और कुटिलतायें जा होता। प्रसिद्ध मोरवासीविद् जम्म के अर्थ में लोक जास्मानम-और हृदय का स्पष्टीकरण करने दृष्टे प्रस्थापित किया है कि वह निवर्तपूर्वी (Prelonial) और मिश्रिक हाता है।^३ अन्तर की न्न सूत्रस्थापना का जास्मानम और जास्माना विज्ञानों की पूरा सम्प्रति मरिषि नहीं मित्र जास्त्रि सुष्टि से लोक अवधार है जिन्हा के समी स्वीकार करने हैं। य लोक मोर में दृष्ट प्रकार है—(१) लोक मानव यथा और बन्तता में अर्थ है। बन्ता (फेला विज्ञान) (२) वह प्राणी अग्रभाषा अन्तरकी भाषा में सुपुन मानता है (एनिमिस्टिक विज्ञान) (३) उम्र का यज्ञ विज्ञान रहता है कि लोक में लोक यज्ञ हाता है (मजिक् विज्ञान) (४) उम्र का यन् अमिक् विज्ञान है कि विज्ञान विधि में बाध करने में निष्ठन पन् अथवा धर्मोत्तर का प्राप्ति होती है (रिपुग्रन् विज्ञान)।^४ इन तरका के परिणामस्वरूप लोकज्ञान में हम में अनेक विज्ञान मानव जावन् अमिक् और अनुज्ञान दान का मित्र हैं। विज्ञान जोविषय और उपायिता आज के सुष्ठिप्रदाय वर्णनित युग में समझ में नहीं आते। इन्हा के धर्मस्वरूप जा लोक यज्ञता। प्राप्ति और परावर्तनिक भाषिता अर्थ और प्रता में विज्ञान करता है। वह एक पलाट नयी जाव आर्ति का जास्मानम में जाव मानता है—उम्र का विज्ञान है कि जाव मानता की भाषि यन् सब काम करत है। सब दान और अनुज्ञाना की लोकज्ञान में इन्हीविषय परमात्र रहति है। उम्र का विज्ञान है कि विज्ञान विधि में वह अन्त अजीम् और अमिक् का प्राप्ति कर लगा।

उपपन्न गतिविज्ञान विद्वान् लोकज्ञान की मानसिक कूटनुमि का प्रस्तुत करता है। जब हम दृष्ट अन्तर्गत पर लोक के स्तर और पद का समझन का बन्ता करते हैं। लोक विज्ञानों की राश्ट्र की अमूर्त सम्पन् हाता है। एक जाति

१ मोरवासीविद्य विज्ञान पृ० सं० ३ हां भाषेद्व।

२ फास्त्र-मोर इन्हा सास्त्रभाषाविद्या कि निष्ठा भाषा १०

३ हि माण्डव काठ-मर जेम्स के अर्थ।

४ लोक सास्त्रिय विज्ञान पृ० सं० ४८ हां भाषेद्व।

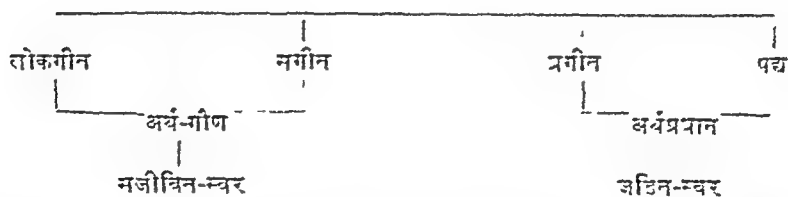
एक अभिव्यक्ति का महजान तत्त्व है। रूप, अभिव्यक्ति और अनुभूति का निरूपण सम्बन्ध है, तो रूप के वैविध्य के साथ अभिव्यक्ति और अनुभूति का वैविध्य भी स्वीकार करना होगा। नाट्य में आव्यात्मक अनुभूति को मूलतः अद्वैत ही मानना पड़ेगा। विविधता का अनुभूति के अद्वैत के विस्तार में ही निहित है। केन्द्र-दिन्दु जब अपनी अभिव्यक्ति के लिए आत्म-प्रसार करना है तो वह परिधि का निर्माण करना चाहता है। परिधि देता तब तो जन्म देते हुए ही उद्भूत होती है। बीच में वृक्ष, उसकी शाखाएँ, पत्तियाँ, पुष्प तथा फल भी समाने हुए हैं, वे बीच के विस्तार के ही परिणाम हैं। अनुभूति भी उसी प्रकार अपने अन्तर्गत निर्माण में वैविध्य समाहित रखे हुए है। यदि की अद्वैत अनुभूति को तो अनिवार्यतः वैविध्य युक्त होना होगा। हमारे भारतीय शास्त्रकारों ने बताया है कि तीन प्रकार के काव्य-उद्भव हो सकते हैं। (१) शक्ति निपुणता अथवा प्रतिभा द्वारा, (२) ज्ञानार्जन या (तीर्थयात्रायात्रायात्रेक्षणम्) और (३) अभ्यास (काव्यजनिक्षयाभ्यास)

शक्तिनिपुणता लोककाव्यशास्त्राद्यवेक्षणात्।

काव्यजनिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

आरम्भिक अवस्था में मानव के पास व्यवसाय कम और प्राकृतिक प्राणियों की भाँति चहक विनोद थी। वह जो व्यवसाय कर्म के साथ भी निपट रहती थी और ऐतिहासिक भी बृहत् ही भाँति समस्त उल्लास-उन्माद के लक्षणों में यही चहक तब-ध्वनि में युक्त होकर 'गीत' रूप में कठ में अभिव्यक्त हुई होती। प्रकृत मानव की प्राणी की दो ही प्रवृत्तियाँ आरम्भ में हुई - १—गीत तथा २—खान। गीत का उत्पन्न खान में पहले ही जाना चाहिए। यद्यपि गीत प्राकृतिक इकाई है। उसका भावोच्छ्वास में गहरा सम्बन्ध बनाना भी गीत के स्वरूप का ठीक से प्रतिपादन करना नहीं, सम्भव। गीत स्वयं भावोच्छ्वास है। आदिभावस्था में भावोच्छ्वास के रूप में ही गीत उत्पन्न हुआ होगा, उस मात्र के मानव-जीवन में इस गीत ने प्रमुख स्थान ग्रहण किया था, उसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। उस अवस्था में मनुष्य की प्रत्येक क्रिया करने ही वह व्यवसाय-वृत्ति में उद्भूत हो भावोच्छ्वासमयी रहती है। गीत सबसे अग्रतः विरचित होकर निम्नलिखित रूप ग्रहण कर सका है -

गीत



लोकगीत ही आदिम गीत का यथार्थ उत्तराधिकारी है और यह निरर्थक जगती गीत-ध्वनि में लेकर मार्गक शहरी हवालो तक के विविध प्रकारों में व्याप्त है। इसका प्रधान उद्देश्य है सजीविन-स्वर का महान् उत्प्रेरक उपयोग। मानव भावोन्माद में अपने को भूतकर जब गीत के हाथों अपने को बेच देता है, उसमें मनन और शरीरत लीन हो जाता है, तब वह लोकगीत रचना होता है। स्वर, लय, तान, ताल आदि भाव की विरक्त के साथ स्वयमेव आते जाते हैं। आगे उन्मत्त परिभाजन और सम्कार द्वारा ऊँचाई अथवा भव्यता के लिए शास्त्रीयता का सहारा लिया जाने लगता है तो तब मगीत हो जाता है। लोकगीत और मगीत का प्राण यह सजीविन-स्वर जब उच्छ्वास-गति के साथ भाव और उसमें भी अधिक शब्द अर्थ के तत्त्व में ओझित, मथन और लपुकाय होने लगता है तो प्रगीति अथवा लीरिक में परिणति प्राप्त कर लेता है। यहाँ तब स्वर पूर्णतः सजीविन रहते हैं अर्थात् स्वाभाविक लोच और लचक के साथ, उच्चारकृति के व्यक्तित्व में लिपटे हुए, किन्तु जब इन सजीविन स्वरों को जमा दिया जाता है, मात्रा की तान में स्वर को नहीं अक्षर या वर्ण को बाध दिया जाता है, और माचे बना दिये जाते हैं तब वह गीत 'पद्य' का रूप ग्रहण कर लेता है। शास्त्र-नियमों का निर्माण तो जयपन की मुविद्या तथा विचार-कोटि तथा वक्रा-कोटि का स्वर स्थिर करने के लिए करता है, पर ये नियम बना के बंधन बन जाते हैं, और मर्यादाओं का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। इसमें फिर किसी छानि में महज और स्वाभाविक गति और लाच का स्थान नहीं रह जाता। शास्त्र ऐसे स्वानुबन्ध को उपेक्षा

काव्यरूपो मे लोकतत्त्वो की प्रतिष्ठा

डॉ० सत्येन्द्र

एम० ए० पोस्ट० ग्रेड डी लिट०

शाचाय एव अध्यक्ष हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर



प्रत्येक उच्च गिद्ध मनीषी बर्तमान अभिव्यक्ति का मूल नीचवर्तमान होता है यह एक अलङ्कार है । "स नीचमभिव्यक्ति का हिन्दी अथवा भारतीय दृष्टि से प्राकृतवाणी अथवा प्राकृत अभिव्यक्ति कह सकते हैं । एक प्रकृति प्रत्येक अभिव्यक्ति को सहेकन रूप बन की सवय विग्रहा है । दूसरी प्रकृति नीचम अथवा प्राकृत होती है । एकका सम्बन्ध सवयनस्वतन्त्रमानवकी अभिव्यक्ति की स्वाभाविक धारा में होता है । ये दोनों प्रकृतिवा एक साथ चलती मिलती हैं किन्तु दोनों की प्रकृति में बहुत अंतर है और वन अंतर सन्त अंतर है । सहेकन प्रकृति का सम्बन्ध मनुष्य की सौन्दर्य विषयक कहना छति म ह । वह प्राकृत अभिव्यक्तिवा म सुखी और सीध व तत्वा की चुन गती है । सहेकन धारा सग पीछे की ओर चलती है प्राकृत धारा सग आगे की ओर । प्राकृत धारा स्वाभाविक रूप स आगे चलती है ।

प्रत्येक युग की सहेकन प्रकृति अपनी प्रामाणिकता के लिए गारवा को दसती है । उदाहरणार्थ बगव सहेकन प्रकृति का प्रतिनिधित्व करते हैं । उमर तुगसी म गीर्जि अथवा प्राकृत प्रकृति है ।

सतवाणी प्राकृत परम्परा का सहेकन रूप है ज विविध प्रभावा का परिणाम होती है । आचाय रामचर युवन ने हिन्दी म एक सधुक्की भाषा व रूप का अवपण किया था । कबीर को सधुक्की भाषा का प्रमाण माना जा सकता है । पर यह सधुक्की भाषा प्राकृत रूप म प्राकृत व साथ विद्यमान रही है । वन म इसके प्रमाण हैं । पाली प्राकृत और अपभ्रंश मते परिपूर्ण हैं । विविध विधान् ऐसा सधुक्की भाषा पर विचार करने समय भ्रम म पड जात है और अपनी हचि गौर प्रकृति व अनमार उस भाषा का नामकरण करते हैं । बचि भाषा म सहेकन और प्राकृत सन्धा का अवपण हो हो चुका है । य क्षता सहेकन साथ साथ मिलने हैं । बुद्ध की भाषा और अगोत्र व गितागला की भाषा म गौरमनी मगराष्ट्री भाषा की अथवा अद्धमागधी व लक्ष अलक्ष अथ माने गये हैं । सिद्धो म स त्रिषी म वगना का मून त्रिषी म मयिली का मून त्रिषी म भोगुरी का मून त्रिषी म पचिमी का मून परिवर्तित हुआ है । त्रिषय काई उठे वगानी कोई मयिनी कोई िद्धी का मानत है और स्वाचातानी करते हैं । भाषा की रचनाआ म विद्यापति और वज्रजुती म वस हा गता म यह प्रकृति है । "सी को गारवा ने भी आगे चलकर प्रामाणिक मान किया और प्रत्येक काय के लिए वज्रमाया ही मुख्य श्रद्धभूमि पर वडमायाआ स युक्त होना आग्य माना । य शास्त्रीय मायना का मूल सतवाणी अथवा सधुक्की भाषा की विद्यमानता म ही है । तुगसी ने गनी प्राकृत धारा की सतवाणी म रामचरितमानस रच और अपनी भणिति को भाषा भणिति माना ।

यस्तुत तुगगा साव धारा व स्वाभाविक परिणाम थे और बगव ने साहेकन पुनरुद्धार । य रूप है नि लाव धारा स गान्धिव व लिए वचन विषय अथवा विचार ही गनी गिये जाने हैं ग्राधारा व उत्तर नव रणा को भी प्रेरण करना पड़ता है । य बान् वाद्य रणा व विकास पर विचार करने से स्पष्ट हो जानी है । स विकास के इतिहास का रूप प्रसार समझ मान है—बाई आ अनुभूति अभिव्यक्ति व सवय रूप प्ररण करगी जिना रूप व सहेकन अभिव्यक्त नहीं है सक्ती । सहा वम यनी हाभा—(अनुभूति)अभिव्यक्ति धार अथ रूप ।



क्यों न हुआ हो, एक बात स्पष्ट दिखायी पड़ती है कि उन सब का मूल तोर-क्षेत्र है, और प्रत्येक रूप का तोरान्वय मे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

छन्दों के आधार पर तो पते हुए हैं उनके जिनहान में हमें विहित जाना है कि गाथा' काव्य रूप प्राकृत भाषा का एक प्रकार ने पर्याय हो गया था। उसी प्रकार 'दोहा' अपभ्रंश का। 'दोहा वय' का अर्थ होता था, अपभ्रंश काव्य। पद्विधिया वय उत्तरकाशीन अपभ्रंश अथवा अवहट्ट ने सम्बन्धित माना जा सकता है।

चौपाई-दाहा-वय रूप अथवा चरित्र-काव्य ने सामान्यतः गवय हो गया, और यह रूप हिन्दी के प्राचीन काव्य में चलकर बीसवीं शती के आरम्भ तक अत्यन्त दृढ़ता के साथ प्रवाहित होता चला आया है।

उन नमस्त छन्द-परम्परा का मूलन तोरक्षेत्र और तोरान्वय ने मन्वय है। उनका सबसे प्रबल प्रमाण तो उन छन्दों का स्वभाव है। ये छन्द स्वभाव में मात्रिक हैं। मात्रिक छन्द मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि 'मात्रा' का आधार मूलन मात्र है, और मात्र या जम्ब वृत्त के साथ हुआ। मात्र या जितना सम्बन्ध वृत्त में है, उतना मगीत में नहीं। क्योंकि निश्चय ही मगीत के दो रूप मूठ में रहे हैं—एक त्रयवद्ध और दूसरा तानवद्ध। तानवद्ध मगीत वृत्त-वद्ध मगीत था। त्रयवद्ध मुस्त-मगीत था। आगे दोनों प्रणालिया मिल गयीं। 'नृत्य' अथवा तान में विराम गाने के लिए 'लय' मगीत का उपयोग होने लगा। उनमें वैभिन्न भी आया। यह 'लय' जब आरम्भ में उपयोग में जाने लगी तो 'टकर' कहलायी। आज पर्यन्त नृत्य तान में गुंथे हुए गीत में लय द्वारा विराम प्रचलित है। रमिया या चौपालों को देखिये। रमिया जब अत्यन्त तीव्र-तान-गीत में समाते हैं साथ करने हैं तो किसी दोहे के रूप के 'लय' वद्ध छन्द का उपयोग किया जाता है। चौपालों में तान पर पहुँचने के लिए पहले दोहे के दोन रत्ने जाने हैं, जिसका लय में ही सम्बन्ध है। इस प्रकार तानवद्ध जैसे नृत्य गीतों में 'तय-विराम' की प्रणाली प्रचलित हुई। उन लय के आधारे में 'तान' को अधिकाधिक नपेटा गया। आज यह देखा जा सकता है कि प्रत्येक मगीत में 'ताल' उसकी रीढ़ है और स्वर का उतार-चढ़ाव और लय उसके सौन्दर्य और मायूस प्रभावन के तत्त्व हैं। यह तान नृत्य में विरग होकर गीत में रही। गीत में लय और उतार-चढ़ाव के नन्व जब जुट होने लगे, और शब्द की, जय की दृष्टि में, अधिकाधिक प्रवचना होने लगी, तब उसका सम्बन्ध मात्र गीत अथवा तान में रह गया। ये, शब्द में बचने पर तान 'ममय की कला अथवा अंग', पर निर्भर नहीं कर माने थे। उनके लिए शब्द में ही कोई आधार दृढ़ता होगी, और वह आधार मात्रा का था। एक 'मात्रा' इसकी टुकाई होती। यह एक मात्रा एक अक्षर के 'उच्चारण' के बाल की कला का भान प्रस्तुत करती थी। हिन्दी की मात्राओं के स्वरूप के अनुकूल ये मात्राएँ 'तु' और 'गुरु' में बाँट दी गयीं। 'तु' मात्रा की एक टुकाई है। गुरु मात्रा दो टुकाइयों के समान। उन प्रकार 'शब्द' के निर्माण अधरो में गुरु-तु के माध्यम में वस्तुतः ताल को, 'ताल' का लघुतम कालकला (टाइम फैक्टर) को घनिष्ठता बाँध दिया गया है। इनमें यह मिश्र है कि ताल का ही एक रूप मात्रिक छन्द-विधान है। मात्रिक छन्दों में 'मजोबिन' शब्द स्वर भरते हैं। उन मात्रिक छन्द स्वभाव में ही कठोर शास्त्रीय ढाँचे में नहीं बैठ सकते। एक आन्तरिक स्वच्छन्दता उनमें रहती है, जो लोक-प्रकृति के अनुकूल है। इसमें मात्रिक छन्दों में लोकतत्त्व रहता है। 'चौपाई' एक ऐसा छन्द है जिसमें यह लोक-प्रवृत्ति की अनुकूलता सबसे अधिक है। चौपाई विविध लयों में हो सकती है।

इसीलिये लोक-कथा के लिए यही छन्द विशेषतः चुना गया। इसमें रूप और वस्तु की दृष्टि में अद्वितीय लोकोत्तर अभिमत है। विविध आवेग, विविध आवेग, विविध रस और विविध भाव उन छन्द में गुम्फित हो सकते हैं। इस छन्द में वर्णन, कथा, विचार और विवेचन सभी रूप पाते हैं। जन्म जित छन्दों के नाम में शब्दरूप खड़े किये गये हैं, वे हैं छप्पय, कुडलीनी, रामा, दोहरा, कवित्त, मवैया, बरवै।

रामा छन्द का उल्लेख स्वयम्भू ने किया है। गाथा-वय जिस प्रकार प्राकृत का पर्याय हो गया था, दोहा वय अथवा 'दूहा-विद्या' जैसे अपभ्रंश हैं, वैसे ही रामावय का सम्बन्ध अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के सधियाल की कथा-चरित्र-काव्य की शैली वाली भाषा में विदित होता है। रामा-वय में पहले रामा छन्दों का ही बाहुल्य होता होगा बाद में रामा का सम्बन्ध विषय में जुट गया, रामा छन्द गीत हो गया। बीरे-बीरे रामा काव्य में ने इस छन्द का लोप हो चला, और रामा विषय में वैविध्य लाने के लिए छन्द वैविध्य का आश्रय लिया गया। जब रामा-काव्य-रामा-वय



मैत्रीगत रूपों में 'अवगवट' पर ध्यान जाना है। जगन्नाथ अथवा अवगवट स्वभावतः शास्त्रीय प्रवृत्ति में सम्बन्धित है। अवग-रूप में अवगों को आदि में देकर जिन्हीं चरणों की अवग छंद की अवग जाग्रत-वट की रचना करने में जिस दिनष्ट मनोवृत्ति का उपयोग होता है, वह मूल्य शास्त्रीय विदित होती है। पर वस्तु ऐसा नहीं है। अवगवट जैसी रचनाओं के मूल में शब्द ब्रह्म नहीं, अवग वस्तु या वह धारणा व्याप्त है जो आदिम मनुष्य के ऐतिमिष्टिक पदार्थ—आत्म-तत्त्व में सम्बन्धित है, नाथ ही जो उस अवग—आत्म में अवगण रूप तार्थशास्त्र परम्परा में किसी ऐसे तत्त्व की स्थिति मानती है जो उस अवग में आरम्भ होता है।

ना—नागद यह रोय पुसाग।

कि जुलाहे से मैं हारा। आदि

'ना' का नागद में सम्बन्धित उस लोक तत्त्व में ही चरितार्थ हुआ है। उस प्रवृत्ति के फलस्वरूप 'अवगों' में मजीबित आत्म-शक्ति का विज्ञान प्रकट होता है। जो केवल अवग अथवा वट विपरीत शास्त्रीय विपरीत नहीं रह जाती। मैत्रीगत में अनामिका और दशमला तथा मुकरी पर भी ध्यान जाना है। उन तीनों का जन्मदाना जमीन खुदगे माना जाता है। जमीन खुदगे का जन्म पटा में हुआ था, यह जन्म में व्रज-क्षेत्र के थे। व्रज में अनामिका और दशमला का एक प्रवाह प्रवाह प्रवाहित है। जहाँ में जमीन खुदगे ने उन्हें विना दिया। क्योंकि उनमें जमीन खुदगे में नहीं दीवना है।

विपरीत अथवा वस्तु के आधार पर वट किन्ने गये रूपों में वट अथवा मगल विद्योप रूप में दृष्टव्य है। ये दोनों लोक तत्त्व पर निर्भर हैं। 'नहट' एक मन्त्र है। उस मन्त्र पर जो गीत गाया जाता है वह नहटूँ रहा जाता है। उनका गीत-रूप-नाम अभिन है। वह वस्तु भी पूर्ण लोभित है।

मगल का सम्बन्ध विवाह में होता है। विवाह के अवसर पर ही यह मगलगीत गाया जाता है। अनन्तर जानियों में तो उस मगल गीत को ही मगल या मगल मिता हुआ है और उसमें ही गयी विधियों में ही भावों पट जाती है। इस प्रकार मगलगीत मूल में जोनप्रवृत्ति के ही परिणाम है। मगल का दूसरा नाम 'व्यामूलो' भी है। यही स्थिति मोहर की है। 'मोहर' या 'मोहिले' 'मोहर' अथवा मोहिले के गीत हैं जो मनान के जन्म के समय गाये जाते हैं। मन्त्रा के आधार पर 'रूप' वस्तुतः मुक्त के ही भेद है। क्योंकि उनमें मुक्त छन्दों पर मुक्त विषयों पर रचना रहती है, पर छन्दों की मन्त्रा बोध हो जाती है। जैसे पञ्चमी, शतक, मनमर्द, दशक आदि। इन मन्त्राओं का रूप विषय में सम्बन्ध नहीं माना जा सकता। यह रूप—विभाजन अथवा नामकरण कोई विषय जय नहीं रखता। केवल रचना की मन्त्रा का ज्ञान करना है।

इस प्रकार यह स्पष्ट विदित होता है कि इस काल के प्रायः समस्त रूपों का मूल लोक-क्षेत्र में था। इन रचनाओं का विषय भी जोन-वस्तु में लिया गया था और अनेक व्यक्त निदान भी लोक-मानस में प्रतिष्ठित सम्बन्धित थे। ऐतिहासिक के पूर्व का हिन्दी-साहित्य-लोकक्षेत्र में धनिष्ठरूप सम्बन्धित था। उस काल के पूर्व की प्रायः समस्त साहित्यिक-नियम लोक में मौखिक रूप में सुरक्षित मामूरी में में सकलित की गई थी और ऐसी महान् प्रतिभाओं ने उन्हें परिनिष्ठित रूप में स्थापित करने की चेष्टा की जो न्यय लोकक्षेत्र के जग थे जिन्हें समस्त पाठित्य लोकक्षेत्र के प्रवाह में में ही मिला था।

कवीर, जायसी, मूर, तुलसी सभी ऐसे थे जो महावीर की दृष्टि में 'महि-रागद' नहीं छुने थे। जिनके व्यक्तित्व का समस्त मौखिक निर्माण जोनप्रवाह में हुआ था। इन और इनकी परम्परा के सभी कवियों की स्थिति लोक-कवियों की स्थिति थी। उनके शब्द के समस्त ताते-वाने मूल लोक के ताते-वाने थे। उस पर कही-कही कभी मनीषी-परिष्कार किया गया। अतः नन्त सम्प्रदाय, कृष्ण सम्प्रदाय, राम सम्प्रदाय, और प्रेमगाथा प्रवृत्ति सभी का साहित्य लोकभूमि के अत्यधिक निष्ठ है।

नृत्त रच गया। पृथ्वीराज रासो में दोहा छाप्य गाह्य पाषडी मौजीनाम अङ्कित गानि छंदा का उपयोग हुआ है। इन छन्दों में दास्य घंटा का स्थापन है। छप्य और छन्तिका प्रायः एक है। पाषडी पदवी तो पद्धिका का ही स्थापन है। इसमें दूध अथवा दाही और पद्धिका अप्रमत्त व अवशेष हैं तथा छप्य में मिनी तब विभाजित है। इन मन्त्रों में तत्त्व विद्यमान हैं जिनका अर्थ ताक-भया में हुआ तथा यह कविया तथा साहित्यकारों ने पञ्च ताक क्षेत्र में स्वरूप अपनाया फिर उन्हें शास्त्रीय दृष्टि से स्वरूप प्रदान किया।

यह प्रश्न प्रस्तुत होता है कि छन्द का नाम पढ़ने पडा या वस्तु के कारण छन्द ने नाम ग्रहण किया। लोक साहित्य के सामान्य व्यवस्था में यह सिद्धि होता है कि वंशा छन्द का नाम वस्तु के नाम पर रखा गया। आज लोक में प्रचलित गीतों का लीजिये छोटा घाल्हा निगाँव रमिया होनी पवार साँचे गरायेक ताक मान अपने विषया के नाम पर ही गीत के प्रकार को भी अभिव्यक्ति करते हैं। ऐसे गात साहित्यिक अभिव्यक्ति के अन्तर्गत मित्र करते हैं। रूप वस्तु और अनुभूति दोनों एक साथ एक-दूसरे में अविलक्षण ही अवलीन होन हैं। ताक-गीतों में आज भी यह तत्त्व विद्यमान है उसमें प्रत्येक गीत का अपना धृष्ट राग होता है। व गायत्री का अपना राग है और वं वंशवन् राग ही है। बिजराता भागजा घनजारा गवा—य सभी धृष्ट विषया के नाम हैं पर प्रत्येक का राग निजक रचना के और वन्ने नाम राग का भी कर्ता आ सकता है। साहित्य के जिन गीतों में गाने छन्द और विषया का साम्य अथवा अन्त है वे भी ताक प्रगति की प्रवृत्ति के साथ ही हैं।

छन्दों के उपरान्त गीतों के नाम पर वाक्य का मिलने हैं। इन गीतों की स्थिति भी छन्दों की भाँति का विकास प्रस्तुत करता है। रसिया लोरी अथवा जाय म गीत और वस्तु का साम्य है और वस्तु इन रसिया का नामकरण उसकी कस्तुरी के कारण ही हुआ है किन्तु आज वं गीत का अपना नाम हो गया है इसीलिए होनी विषय का वजन यदि किसी अन्य गीत में गाना तो उस गीत को होनी नहीं कहा जायगा। वही प्रकार होनी राग में होनी वजन के अभिव्यक्ति भी वंश अथ वजन हाया ता वं होनी ही कहा जायगा। वस्तु तो होनी विषय और होनी गीत में अन्त ही है। होनी के वजन की भाँति ही गीत में ही है।

गीतों में सामान्य रूपों में अधिक गीत-तत्त्व विद्यमान रहता है। गीतों में वस्तु ताक का भावक और मर्मज्ञ अभिव्यक्त होता है। यह एक भावक के लिए एक स्वयं ही अन्तर्गत होता है। यह जहा वंश जसी प्रवृत्ति वंशता या वजनारम्यता व निज उपयोगी सिद्ध होता है वही गीत भावक-भागा के लिए। गीतों में अब गीतों का रूप वजन में प्रत्येक गीत-व की आवाँगा करने लगता है तब गीत के हाथ वंश गीतों में वंश के वंश पढ़ने लगने हैं तथा गीत और स्वर के विविध संयोगों को राग रागिणियों के नाम दिये जाते हैं। उनमें नियम तान निये जाते हैं और उनमें अन्तर्गत की जितनी प्रगति निरक्षर हो जाती है।

किन्तु इन गीतों में प्रवाह व साथ साथ प्रवाह निरन्तर रहता है। लोक प्रवाह शास्त्रीय नियम और नाम की परवाह नही करता। पञ्चाङ्गिक वा गिह्यक वंशता है कि इसका अर्थ लोकभाषा का लोकभाषा या और गीत सम्प्रदाय में सजे पञ्च लोकसम्प्रदाय अथवा लोकिक धर्म की प्रतिष्ठा का उद्योग किया उमने जहा ताकभाषा का अपने सम्प्रदाय का माध्यम बनाया वही उनी लोक परम्परा से प्राप्त गीत अथवा वंश को भी बुना। बौद्ध सिद्धा ने पञ्च को अपनाया नाथा ने आताया फिर गाना ने अपनाया। वही प्रकार जायारा वाउता ने पञ्च गाये और उनकी परम्परा में वंश गाना ने इनमें अन्तर्गत ही उन्वय प्रकट किया। ये शास्त्रीय सौम्य और शास्त्रीय ताकिकता में अभिव्यक्ति हुए ताक-वंश की गार्ह पाने का काम किया गया। ये सभी सम्प्रदाय लोक-वंशों पर पायित हुए हैं। इसीलिए ही लोक-तत्त्वों को सम्यक् करने का उद्योग किया ताक की विजय वजयनी का गीत भुजाये। इन ताक-सम्प्रदायों की वाणी धर्म या मन्त्र भाँति नामों से अभिव्यक्ति हुई। इनमें ही इन सम्प्रदायों के अन्तर्गत में अपने गीतों का आध्यात्मिक अनुभूति प्रस्तुत की। ये पञ्च प्रायः दो वर्गों में बंटे १ विषय वाणी तथा २ सगुण गान। जोर वंश दास्य वर्गों में साथ की अनुभूति निरन्तर वनी रही। यह ने ताक की आस्था को साधक-साध्या और साधक-वन्त्र का साथ मनुज करने गाता का प्रसारित किया दूसरे में सगुण ने आध्यात्मिक सौम्य का मूल बनना का ताकभाव से अभिव्यक्ति कर दिया।



पर भी उन्होंने अपनी बड़ी कर्मठता, चित्रकला कुशलता तथा सतत तपस्या का सातार परिचय दिया है। इनकी उन ओकोंपयोगी एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों को कैसे भुलाना जा सकता ?

तो, लोकार्हाणी प्रवृत्तियाँ, व्यक्तित्व की समृद्धता और जीवन की गरिमा आत्म-रोषका पर चढ़ ही जाती है, जनता के अन्त-मन-मर्मस्थल को छू ही जाती है। जन समान के हृदय की छद्म निष्ठा, भक्ति तथा लोकार्हाणी कार्यों के प्रति मानसिक आकर्षण की यादृच्छिक अभिव्यक्ति का नाम ही नीं जनिनन्दन है। इसका स्पष्टतः तर्क तो यह है कि, मत्प्रसेनरीजी के प्रखर व्यक्तित्व, निर्भीक वक्तृत्व, एवं सुशक्त स्मृत्त्व ने सदाशरीर जैन समाज का ध्यात वगत अपनी धोर आरपिन किया है। “जनिनन्दन” भी होता ही रहा है? व्यक्ति के विभिन्न व्यक्तित्व प्रभाव-शील वक्तृत्व, सक्षम स्मृत्त्व तथा समाजहित के प्रयत्नों में उनके योग-सहयोग की पुस्तक में प्रथमा एवं सरागा।

भारत में नम्र, त्याग, तप, सदाचार-मृगत जीव के उच्च आदर्शों का मर्यादा स्थापन-संरक्षण होना आग है। यह ध्यातव्य है नही, व्यक्तिके जीवन की मौलिक विनिर्दिष्टताओं तथा तत्प्रेरित सामाजिक उत्तरदायित्वों का सम्मान है। व्यक्ति तो एक माध्यम है। “गुण-पूजा” का एक महत्वपूर्ण एवं जीवन-जागरण है यह ए-।

राजस्थान के जैन समाज का यह परम नीमाग्य है कि, ऐसे कर्मठ, समाज-हितैषी, एवं समाजसुधारक मन्त्र उनके बीच में आज भी विद्यमान हैं। राजस्थानी दुनिया के उस जाने माने मन की सम्यग्-साधना के पचास वर्ष की प्रति की हादिर प्रगल्भता की अभिव्यक्ति के रूप में राजस्थानी जैन समाज ने जो अपनी धारणा-पद्धति के सुभक्त अभिनम-मर्मित किए हैं और उनके जीवन की सामाजिक सेवाओं तथा शोरोपयोगी उत्तरदायित्वों का गार्जनिक जनिनन्दन किया है, वह हर्ष का विषय है। इस अभिनन्दन का अभिनन्दन। अपनी सम्यग्-साधना के पर पर अग्रसर होते हुए वह जनहितकारी ध्येय की दिशा में सतत गतिशील रहें। इस हृदय की वही मगर कामना।

•

श्रद्धा के फूल

मुनिश्री मुशीनकुमार

मत्प्रसेनरीजी समाज की वह ज्योतिर्ह, जो सदा ही जागृतमान रही है। उनकी स्पष्टवादिता, सदा-पना, गाँवों के प्रति मोह-ममता, कर्तव्यपरायणता, मत्प्रद देण की ही नहीं, पूरे ही मान्य की एक देण है।

उनके सच-संगठन का बहिर्नीय तर्ज इतिहास के लिए एक सुन्दर पृष्ठ है। विभिन्न समाज के हित-गन्नों को श्रमणमय में गृहना एवं ‘श्रमणमुरतन’ का निर्माण उनके मर्मिण्ड की अमृत्य देण समाज को है। मेरी सहृदयी श्रद्धाजति इसी रूप में सदा ही उनके साथ रही है। इसी भावना के साथ ये ‘श्रद्धा के फूल’ प्रस्तुत हैं।

•

कलाधर महान् केसरी

पं० नीमाग्य मुनि ‘कुमुद’

भूमंडल पर कुछ ऐसे आश्चर्यजनक व्यक्तित्व पाये जाते हैं जिनमें विरोधी बलों का अद्भुत मिश्रण होता है। मत्प्रसेनरी श्रीमिश्रीमरजी म० ना० का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसी विविधता लिये हुए है कि प्रत्येक कोई अपने निश्चित मापदंड में उसे नहीं माप सकता।

गालि, आग्नि दोनों अपने आप में चरम सीमाएं रखती हैं किन्तु केसरीजी का व्यक्तित्व दोनों की अति में

लोककला का आधुनिक कला पर प्रभाव

श्री ओ३म्प्रकाश जोशी

प्राध्यापक समाजशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय भीलवाड़ा (रा००)



संस्कृति एक व्यक्ति अथवा समूह द्वारा निरूपित गये सामाजिक व भौगोलिक वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने का साधन है जिससे शरीर, धर्म, अपनो आवश्यकतापति का साधन प्राप्त करता है। यह एक वांछनीय समस्या होती है। सामाजिकता का ज्ञान है ताकि यह अपने वाली पीढ़ी पर मान का नभ सिरे में न। मान्य व्यक्ति सक्षम मान का उपयोग करे व उनमें अपनी श्रेष्ठ के अनुसार उद्दिष्ट करे। संस्कृति उप-संस्कृतियों में बंटी हुई है। जटिलता की दृष्टि से संस्कृति का तान मध्य भेदा में बांटा जा सकता है। (१) उच्चवर्गीय संस्कृति (२) निम्न संस्कृति (३) जनजातीय संस्कृति। प्रथम दो संस्कृतियों विरुद्ध अन्तर विद्या करना पड़ेगा। लोकसंस्कृति एकान्त अथवा उच्चवर्गीय संस्कृति से बड़ी हुई जाती है। भारत की अधिकतर जनता इसी संस्कृति में होती है तथा प्रतिभासित परिभाषा में भी लोकसंस्कृति का अपना भस्वरूप है। यह संस्कृति मध्य रूप से मौखिक आ गीत विचार कथानक पर आधारित है परन्तु उच्चवर्गीय लिखित संस्कृति का सारण रूप ही लोकसंस्कृति का आधार बने हैं। लोकसंस्कृति को बिना उच्चवर्ग का संस्कृति के जाने नहीं समझा जा सकता। वस्तुतः शास्त्र यदि यद्यपि उन्नीत रूप में लोक संस्कृति के धर्म नहीं है। निम्न रूप में उच्चवर्गीय संस्कृति के परन्तु लोकसंस्कृति के प्रेरणा स्रोत ये ही हैं। परन्तु यह सोचना भी गलत होगा कि लोकसंस्कृति केवल उच्चवर्गीय संस्कृति के गुणों के सरलीकृत रूप को अपना लेती है। इससे विपरीत लोकसंस्कृति का गुणपरिष्कृत रूप में उच्चवर्गीय संस्कृति शरीर अथवा लिखित जाते हैं।

यह मानना कि लोकसंस्कृति आदिभारतीय है अथवा उच्चवर्गीय संस्कृति का सारण धनुकरण मात्र ही उपयोग्य नहीं है। यह रचना व प्रा-रेफ़ीड का इस कथन का पूर्ण नहीं माना जा सकता कि लोकसंस्कृति जो छात्र परम्परा है उच्चवर्गीय संस्कृति अथवा महान् परम्परा का अनुसरण मात्र ही है। लोकसंस्कृति व उच्चवर्गीय संस्कृति में दो तरफ़ा गन्त विद्या होती रही है। इस विचार को स्पष्ट करने हेतु लोकसंस्कृति के मूलवर्णन पक्ष लोक कला का अध्ययन व उसका आधुनिक कला पर क्या प्रभाव पड़ा है यह जानने का यत्न किया गया ताकि हम प्रक्रिया का ज्ञान जा सके कि लोकसंस्कृति जिसे केवल अनुसरण मात्र कहा गया है किन्तु सृजन भी है। लोकसंस्कृति का धारक आध्यात्म में शास्त्रों के माध्यम से अध्ययन किया गया है। लोकसंस्कृति का रूप व आध्यात्म भाषा व भौगोलिक वातावरण से सीमित नहीं है। जहाँ कि हम अनेक उदाहरणों का आधार पर देखेंगे। लोकसंस्कृति केवल सामाजिक गमाज तक ही सीमित नहीं होती जा सकती। यह सब नगर के निम्नवर्गीय लोग भी लोकसंस्कृति में जीते हैं। इसी प्रकार भारत में उच्चवर्गीय समाज की स्थिति भी लोकसंस्कृति अपनाये रहता है। यह रूप से लोकसंस्कृति का अपना क्षेत्र वस्तु ही विस्तृत है। इस क्षेत्र में लोकसंस्कृति का लोकसंस्कृति के माध्यम से समझने का यत्न किया गया है।

लोककला किसे कहें ?

सब प्रश्न का उत्तर में यह कहा जा सकता है कि लोककला लोकमानस की सृजनमय अभिव्यक्ति है। लोक मानस सरल व सरल है तथा उसका विचारण। व समलये हुए हैं। लोककला आन्तरिक तथा स्पष्ट है व अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष माध्यम है। परन्तु इसका कहा जा सकता है कि लोककला का स्पष्ट नहीं कर पाया। लोक



कला जितनी सरल दीखनी है उतनी वास्तव में है नहीं। लोककला को समझने के लिये कुछ परम्पराओं की जानकारी आवश्यक हो जानी है क्योंकि कला धीरे-धीरे एक स्थायी स्वरूप ग्रहण कर लेती है तथा कला वास्तव परम्परागत स्वरूप (conventionalized form) यथार्थ में दूर होता चला जाता है जिसे सृजक भी समझना नहीं हो जाता है। जैसे त्र्योहार पर बनाया जाने वाला अर्घ्य का चित्र उनका व्यापारिक हो गया है कि केवल तीन रेखाएँ ही अर्घ्य व उसकी कावड के प्रतीक हो गये हैं। इसी प्रकार लोक चित्रों में प्रयोग किये जाने वाले — भिन्न २ प्रतीक गूट अर्थ वाले बन जाते हैं।

चित्रों के स्वरूप यद्यपि अनौपचारिक रूप में परम्पराओं द्वारा नियन्त्रित होते हैं परन्तु चित्रकार उनमें अपनी मृजनात्मक प्रतिभा के कारण बहुत परिवर्तन लाते रहते हैं।

लोककला धार्मिक भावनाओं से जानप्रोन है तथा इसमें धार्मिक कथा या लोकदेवताओं की कथाओं का चित्रण किया गया है। ये चित्र जिनमें कथाएँ चित्रित हैं अपने में एक चित्र होते हुये भी चर्चचित्र में दिग्विस्तृत होते हैं। लोक-कलाकार एक विस्मृत कपड़े पर लोकदेवता, लोकनायक या किसी प्रेमकथा का प्रदर्शन चित्रों के माध्यम से करता है। राजस्थान में मूसर रूप में ऐसे चित्र पड कहलाते हैं। जिन्हें नवयों की तरह लपेट कर रखा जाता है, लोक गायक इस लिपट 'पड' चित्र को प्रदर्शन हेतु उठाता जाता है व नगीन के माध्यम से कथा कहता है। गीत को मरम बनाने के लिये एकतांग वाद्य या रावणहत्या का प्रयोग किया जाता है। राजस्थान के 'पडों' के विषय लोकदेवता देवनारायणजी, रामदेवजी, तेजाजी व पावूजी हैं। उनकी शौर्य-गाथा का वर्णन गीतों के माध्यम में किया जाता है। गायक मण्टली एक परिवार होता है जो गीत के बोलों को थोड़ा २ गाते जाते हैं व उन्हें चित्रों में दिखाने हैं।

राजस्थान के अलावा अन्य प्रांतों में भी लोककला प्रचलित रही है। महाराष्ट्र में लोककला का विकास बहुत सुन्दर रूप में हुआ है। महाभारत का अलग बड़े-बड़े पटचित्रों में बदीवारों पर किया गया है। महाभारत के अद्वि-मेघ के वर्णन को चित्रों में अंकित किया गया है। कथा को स्थानीयकरण करने की प्रवृत्ति लोककलाकार व कलाकार में रही है। जैसा कि 'मैकिम मेरियट' ने अपने अध्ययन में बतलाया है कि लोक-संस्कृति अखिल भारतीय-संस्कृति का स्थानीयकरण कर लेती है। इसी प्रकार स्थानीय-संस्कृति का गुण अनेक बार अखिल भारतीय हो जाता है। यह प्रवृत्ति लोक-कला व आधुनिक कला के मध्य में भी देखी जा सकती है।

लोककला की विशेषता उसका सरल रूप है। स्थानीय रंगों में सपाट आकारों पर चित्र बनाये जाते हैं। लोककला के चित्र स्थानीय पर्यावरण से प्रभावित होते हैं। ये चित्र आटम्वरहीन होते हैं। तकनीक की दृष्टि में विभिन्न रंगों को रेखाओं से बाँधा जाता है। ये रेखाएँ गहरे रंग, मुख्य रूप से काले रंग में बनाई जाती हैं। अनेक बार चित्र बनाते समय पहले रेखाओं से चित्र बनाया जाता है। उसमें रंग भर दिये जाते हैं। परम्परागत तरीके में पहले रंग भर कर रेखाओं से बाधा जाता है। रंगों की दृष्टि में लोक-कला में सीमित रंगों का प्रयोग होता है। भूरा, गोमवा, मफेद, काला रंग ही प्रमुख होते हैं। छाया व प्रकाश को बतलाने की प्रवृत्ति लोककला में नहीं है। रंग सपाट अमिश्रित होते हैं तथा चित्र में आकारों की बहुतायत रहती है। पशुओं में घोड़े, हाथी आदि का चित्रण बहुतायत से हुआ है। जाली स्थानों को विभिन्न रंगों की मोटी रेखाओं द्वारा भरा जाता है। लोककलाकार नई तकनीकों को अपनाता है पर उन्हें परम्परा में बाँध लेता है। लोककला के आकार स्थानीय रंग में रंगे होते हैं। अतः एक ही नायक अलग-अलग रवणों पर अलग २ रूप में अंकित होता है। जैसे महाराष्ट्र में कृष्ण को महाराष्ट्रीय धोती व गहनों में अंकित किया गया है और उनके चेहरे पर मूँछें भी अंकित की गयी हैं। इसी प्रकार अर्जुन मूँछ-दाटी में युक्त व त्रिशुल पगड़ी पहने हुये हैं। परन्तु सब लोगों की आँखों का आकार एक जैसा है। राजस्थान के पड चित्रों में भी यही वेश-भूषा व आकारों का दर्शन होता है। स्त्री-पुरुषों का पहनावा स्थानीय व्यवहार में प्रभावित है। अलीकिक शक्तियों या नायकों का चित्रण अद्भुत आकार में किया गया है। जैसे—राक्षस का आकार बहुत बड़ा, सींग वाले चेहरे में चित्रित किया है। अनुप, तलवार व बाँध-बाँधन के माधन भी लोकसंस्कृति के तत्व हैं जो चित्रण के अंग बने हैं। चित्रण में पशुओं को आलंकारिक रूप दिया गया है। गयान्त मिर वाले घोड़े गहनों व रंगों में सजे हुये हैं। इसी प्रकार सारे



स्वामीय कला को विविष्ट दर्जा दिया। राजस्थान के राजे-महाराजे मुगल दरबार में जाते थे जहाँ उन्होंने वादशाह के कला के प्रति सम्मान की भावना पाई। उन्हीं का अनुसरण कर उसी लोका ने उन राजागरी की तो लाज-वीरता का चित्रित करते थे, विविष्ट कला के चित्रकार बना दिया। अतः यह तथ्या उचित है कि लोककला का अनेक बार अपने उसी रूप में अथवा परिष्कृत रूप में उच्चवर्गीय तथा बनाने का क्षेत्र राज्यों को रहा है।

उस प्रक्रिया को आधुनिक कला के मन्दन में और भी अच्छी तरह पता जा सकता है। भारत में आधुनिक युग का प्रारम्भ १८४० ई० में कलागुरु अबनीन्द्रनाथ के द्वारा वे पुनः-रचन के प्रारम्भ में हुआ। अजन्ता व रावपुत शैली को मुद्रा कला मानकर उस स्तर तक पहुँचने का प्रयत्न किया गया। शास्त्रिकेताव में अद्वितीय है अनेक शिल्प रत्न जिन्होंने उनके दृष्टिकोण को ग्रहण किया। दूसरा प्रयत्न अजन्ता मेरुगिर व गगनम्भराय ठाकुर द्वारा हुआ जिसने पश्चिमी तकनीक को प्रपनाया व भारतीय विषयों का चित्रित किया। परन्तु दोनों ही आन्दोलन सार्वांगिक नहीं रहे। जिन्हें सामाज्यजन व विविष्ट-महाज अग्रिम मनन नष्टप्राप्त नहीं देता। तैमिनीयः न उन का योग्य है प्रति प्रतिक्रिया की तथा कला में मग्न प्राकृतिकता का जनाया। लोककला का परिष्कार कर उन्हें विविष्ट शैली का रूप दिया। चित्रों व लोककला के रूपों को उसी आकार में तथा वैसी ही रंगों में अधिक प्राचीन व सुरक्षा हेतु अंकित किया गया तथा अलङ्करण का उही रूप बना रहा जो लोकराज ने बना है। मन्मथी साक्षरिया पात्रमिक व गहरे भूरे रंग तथा रंगों का नष्ट प्रयोग बना रहा। तैमिनीय के मन्मथ की श्रीनिवासमठ नर्मिष्मन्ना व अग्र चित्रकारों ने भी लोककला का वैसा ही रूप अपनाया। परन्तु वह शैली भी कला का प्रत्यक्ष रूप नहीं बन सकी। क्योंकि इसकी गमानरूपता उसा देने वाली है। आधुनिक कलाकारों ने कला में लोक-रूप के तत्वों का अधिक उच्छा व सृजनात्मक प्रयोग किया है। तैमिनीय की तरह इसे लोककला का परिवर्तन मान ही नहीं रखा जा सकता। आधुनिक कलाकारों ने लोककला को पचा लिया है तथा उसी रूपनाशीरुता ने नये आगमों को जन्म दिया है। नये रूप व विषयों का भी निर्माण हुआ है।

पक्ष्मी मालूम किता हूनेन अन्तराष्ट्रीय ग्यानि-प्राप्ति नियतार है जो लोककला में प्रमाणित है। प्रारम्भ में उन्होंने एक शिल्पीने बनाने वाले के रूप में कार्य किया तथा वहाँ ने लोकपरम्परा का उच्चवर्गीय तथा में स्थापित किया। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे लोककलाकार ही हैं। रंग, नये रूप व आकारों की मरुता की प्रेरणा उन्हें लोककला में मिली पर उन रूपों को वैसे के वैसे ही बनाये रखने के बजाय उन्होंने इसे पचाकर प्रस्तुत किया। राजस्थानी लोककला में घोंटे का चित्रण बहुतायत में हुआ है। हूनेन ने घोंटे का जवन वृत्त हीनमनन रूप में किया। घोडा तथा नारी उनके प्रसिद्ध चित्र हैं। दूसरी, चित्तौड़ व जैमलमेर पर बनाई गई फिल्म 'Through the painter's eye' उनकी प्रसिद्ध फिल्म है, जिसमें उन्होंने लोक-कला व लोक-जीवन के चित्रों को उभारा है।

इसी प्रकार स्वामीनाथन न तानिक प्रतीकों को नये रूप में प्रस्तुत किया है। श्री लक्ष्मण पें ने रामायण, महाभारत व राममालाओं का चित्रण नयी शैली में किया है।

मूर्तिकला के क्षेत्र में भी राम-किंकर, वनराज भगन, अमरनाथ महगन, रमनपटेल व अन्य मूर्तिकारों की कृतियों में लोक-कला का प्रभाव झलकता है वचपि इन मूर्तिकारों में अन्धी मकल की प्रवृत्ति नहीं रही है। उन्होंने मृज्जन के नये आगमों को समझा है तथा परम्परा को पचा कर नयी कृतिया प्रस्तुत की हैं। राजस्थान में लोककला का प्रभाव आधुनिक कलाकारों की कृतियों में स्पष्ट देखा जा सकता है। श्री गोवर्धनलाल जोशी, रामनिवास वर्मा व कृपालसिंह शेखावत के चित्र लोककला की अभिव्यक्ति-शक्ति को पचा कर प्रस्तुत करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोककला केवल उच्चवर्गीय सम्स्कृति का सरलीकृत रूप ही नहीं है अपितु स्वयं में मौलिक, मृज्जनात्मक रही है तथा लोकसंस्कृति की मौलिक उपज को व खोजे गये तत्वों को उच्चवर्गीय सम्स्कृति ने सुधार कर परिष्कृत कर अपना लिया है। मूल रूप में लोक-संस्कृति जनमानस की अभिव्यक्ति है। लोक संस्कृति जड़-भाव नहीं है। यह सक्रिय व नये तत्वों की उत्पादक है। नयी परिस्थितियों के साथ चल नकने की सामर्थ्य भी लोक-संस्कृति में है क्योंकि यह मृज्जनात्मक है।

[illegible]



गया है। पुराणों और महाभारत में यह भी पता चलता है कि वैश्यों के उत्पन्न दीपावली या प्रारम्भ ब्रजभूमि के वैष्णव गणराज्य में हुआ था। वैश्यों के गणराज्य की सूचना 'वैश्यवाट' या वैशवाट शहर में मिलती है। इसी तरह ब्राह्मण के ध्रावणी-पर्व का सम्बन्ध ब्राह्मणों के माररवत गणराज्यों में था। नैमिषारण्य के क्षेत्र या पुराणों में 'ऋषिवाट' कहा गया है। वह ब्राह्मणों का मारस्वत-गणराज्य रहा होगा। नपावन के ऋषि-आश्रम मारस्वत-गणराज्य ही हुआ करते थे।

विजयादशमी धर्मियों का उत्सव है। इसका प्रारम्भ आनुजिबी और राजसूयपजीबी धर्मिय-गणराज्यों में हुआ। शूद्र वर्ण में सम्बद्ध होली पर्व का प्रारम्भ शूद्रागीर गणराज्य में हुआ। यद्यपि चारों वर्णों के इन उत्सवों का सम्बन्ध विशिष्ट वर्ण में रहा है, परन्तु इनको मनाने का उद्देश्य समाज को मज्जित और मृद्वन्वित करना था। इसलिए कालान्तर में ये सार्वजनिक उत्सव बन गये। धर्मियों के उत्सव धार्मिक-धर्मियों को नमस्कार के लिए विनियोजित करने के उद्देश्य में, ब्राह्मणों के उत्सव ब्रह्म-ब्रह्म को सामाजिक हितकार्य में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से, वैश्यों के उत्सव वित्त को समाज के उपयोग में लाने के लिए प्रिनिमुक्त करने के उद्देश्य में और शूद्रों के उत्सव श्रम-धर्मियों को राष्ट्र-निर्माण के लिए उपयोग में लाने के उद्देश्य में प्रचारित हुए। इनका लाभ समाज के सभी वर्गों ही मिलता था। इसलिए सभी लोगों ने इन उत्सवों को अपना लिया और इन प्रकार के उत्सव हमारे जातीय-जीवन के अंग और सामूहिक-समन्वय के प्रतीक बन गये।

होली, दीपावली, ध्रावणी-पर्व ऋषिपंचमी, विजयादशमी आदि उत्सवों के नाम किसी न किसी तरह से अग्नि का सम्बन्ध है। हमें स्पष्ट है कि ये वैदिक-यज्ञों की परम्परा हैं प्रमाण है। वैदिक-परम्परा में वैष्णव, शैव, शाक्त और तान्त्रिक परम्पराएँ समाहित हैं। जैन और तीर्थों की श्रमण परम्परा वैदिक-परम्परा में भिन्न, किन्तु उसकी पूरक है। ये सभी परम्पराएँ इन उत्सवों में जैसे एक हो जाती हैं और उन प्रकार भागीय समाज की एकता का परिचय देने का नेहरा इन उत्सवों के मिर पर बांध देती हैं।

दीपावली—दीपावली सामूहिक समन्वय का परिचय देने वाला सबसे बड़ा पर्व माना जा सकता है। श्रमण-परम्परा में दीपावली महावीर के निर्वाण-दिवस के रूप में प्रसिद्ध है। वैदिक परम्परा में पुराणों के अनुसार इसे उस दिन की स्मृति के रूप में मनाया जाता है जिन दिन मर्यादा पुत्रोत्तम राम रावण को मार कर अयोध्या लौटे थे। वामन रूपधारी विष्णु ने तीन चरणों से विश्व को नाश कर बलि को इसी दिन रमातल में भेज दिया—ऐसा कहा जाता है। इन परम्परागत बातों में पृथक् रूप से देखें तो भी दीपावली पर्व का महत्व कम नहीं जात होता। त्रयोदशी को धनतेरस के रूप में मनाया जाता है। आरोग्य-दाता धन्वन्तरि की जयन्ती के रूप में धनतेरस का महत्व है। इसका किसी सम्प्रदाय में कोई सम्बन्ध नहीं है। धन्वन्तरि का अर्थ है—मरुस्थल की नौका (धन्वन् + तरी)। नीरोगी काया ही मरुस्थल की नौका है। दीर्घायु पाने की अभिलाषा किसको नहीं होती? घर-आगन की सफाई करके शरीर और सारे वातावरण को स्वच्छ बना कर और स्वास्थ्यप्रद भोजन करके आरोग्य लाभ किया जा सकता है। लोक में ऐसा करके ही धन्वन्तरि की जयन्ती मनायी जाती है। नरक चतुर्दशी को रूप चौदश भी कहा जाता है। कृष्ण ने नरकामुर को इसी दिन मारा था। जो रमणीय और कमनीय न हो उसे ही नरक कहा जाता है। असुन्दर को जीत कर सुन्दर-जीवन का निर्माण करना—यही रूप-चौदस की पृष्ठभूमि में निहित भावना है। अमावस की घोर अन्धेरी रात में अगणित दीप जलाकर ज्योतिर्भय-जीवन की साधना में जुट जाता मानव की अपराजय निष्ठा का द्योतक है। इस दिन सामाजिक-जीवन में लक्ष्मी का आह्वान करने के लिए वैयक्तिक-जीवन में श्री साधना की जाती है। समाज की शक्ति लक्ष्मी है और व्यक्ति के जीवन की सूत्रधारिणी श्री। जब व्यक्ति में सत्य, दया, क्षमा, करुणा, विनय, श्रद्धा आदि मानवीय भावों के विकास के साथ चारित्रिक दीप्ति जागती है तभी समाज में समृद्धि की अधिष्ठात्री लक्ष्मी का आविर्भाव होता है। श्री और लक्ष्मी दोनों विष्णु की पत्नियाँ हैं। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में चारित्रिक दीप्ति जगा कर सच्ची लक्ष्मी-पूजा करता है। वैयक्तिक-साधना के द्वारा सामाजिक-हित-साधन की प्रेरणा देने वाला दीपावली-पर्व इस प्रकार हमारा जातीय पर्व बन गया है।

श्रीगणेश की उपासित शीघ्र जन्म कर मनाया जाता है। दीपक घसुनु आत्म-प्राप्ति का प्रतीक है। जन परम्परा में तप का-प्राप्ति और ज्ञान का-प्राप्तिमान बना गया है—“नीलो ओई तपो-रीदृष्टाणः। बौद्ध मत में माधव की आभवाप लावन का प्रस्थापनीय है।—

किन्तु हास किमान्द नित्य प्रवर्तिते सति।

अथकारान्द कि प्रदीप न सर्वव्ययः॥ (धम्मपद)

इसमें स्पष्ट है कि धम्म परम्परा में उपासितम जीवन की प्राप्ति के लिए माधवा पर चल दिया गया है। बौद्ध साधनापद्धति में भी जीवन का लक्ष्य प्राप्ति प्राप्त करना है। आर्यभूत-प्राप्ति व कृत्यात् प जि त्ति धारने जीवन का-रोनिमय बना दिया है। साक्षात् तमसा या उरोनिमय कृत्यर उरोनि की कामना करने में। तम तत्रस्थी पुरुष विषय उत्तमा पर महत्वा में सत्प्राप्ति का प्रतिष्ठा के लिए उनका घर पर गया करते थे। साक्षात् की ब्रह्म राजम्यान में सा गिनें शीघ्र जन्म पर पत्नी का बना एक आती है। इस परम्परा का ज्ञान अथवा श्रम दिया हुआ अनिष्ट (स्पष्ट प्रापृष्टिक) बना जाता है। शीघ्र के रूप में अनिष्ट का पत्नी की वहाँ पहुँचाना इस ध्यान की और सकल करना है कि आत्म-प्राप्ति का काम करने वाले गिद्ध पुरुषों का एक घर आत्म-गम्माना करने अपने पत्नी की वहाँ पहुँचा दिया करते थे।

प्रतिपत्ति का शीघ्रजन्म पुनर्जन्म होता है और अनपूरा मनाया जाता है। रात्रि का कपल का घरा में बला का पूजन होता है। माया का व एक दिन पत्नी की पूजा लेने है। पूजा का समय पशुआ का मुखों से स्वयं और रत्न का आभयनों तथा हनुमा सुत्राई आनी है। “मम स्वयं मित्रा है कि कपल अपने शक्ति को मा धम्म का मन मानता है और शीघ्रजन्म इनको स्वयं मानने की परम्परा चली है। यहाँ में मा श्वी प्रकार से पत्नी की पत्नी में एकप्राप्य या मरुप्य प्रस्थाप जाता था कि पत्नी को स्वयं की वष के लिए था। हनुमा यह बात आज भी पत्नी में प्रचलित है। भारताप जन्मावा में व्याप्त पदवा की सत्ता भारत में पत्नी अति का परम्परा और मन्त्रन का रूप में माधवा का नियम बनाने वाले ज्ञान और बौद्ध मत में विनिष्ट बना गया है। इनके बिना ब्रह्म-परम्परा का मन्त्रन श्रमप्राप्ति अथवा हा रह जाता। स्पष्ट इन मतों की भारतीय-मन्त्राणि का अभिन्न अंग का रूप में ब्रह्म परम्परा का पूजा कहता उन हनुमा विराधी नहीं।

पूजा का उपासित पशुओं की मन्त्रमन्त्राणि (मन्त्राणि) का शीघ्र सा विज्ञान जाता है और नी के पर बला का शीघ्रजन्म पशुआ जाता है। इस प्रतिपत्ति में पशुमन्त्र का भावना निहित है। पशुआ का एक चरामाहा धीरे पत्नी पर चराना प्राप्ति जा हिनक जीवा में रत्नि हों और अहाँ पुष्टिकर धाम प्रकर माता में विद्यमान है। शीघ्रजन्म पत्नी का पत्नी साधन है।

मान साधना का ब्रह्म साधनों का टीका करके उनकी मन्त्रमन्त्राणि करना है। यहाँ में मन्त्री का स्थान पत्नी के रूप में ही मन्त्रित रहता था। यहाँ इन उपासित में मन्त्री का भविष्य रूप का भी प्रतिष्ठा मिला। यह हनुमा सांस्कृतिक पत्नी में एक नया माद था।

इस प्रकार शीघ्रजन्म उपासित प्राप्ति तक प्रवृत्त म मनाया जाता है। पत्नी के वतमान स्वयं पत्नी जन्म और बौद्ध शीघ्र परम्पराओं का समा का प्रवृत्ति का कर्मकर्म प्रवृत्ति है। इनमें इन सांस्कृतिक साधन का प्रस्थापन का रूप में सा मन्त्रन किया जाता रहता है।

होनी—साधनापत्ति के साक्ष्य सांस्कृतिक-मन्त्राणि का प्रस्थापन का रूप में साधना का स्थान माता का मन्त्राणि है। मूलन में साधनापत्ति में प्रचारित होने पर भी यह साक्ष्य है। साधनापत्ति उपासित बन गया। यह ब्रह्म पत्नी का पद है। माया में मन्त्र पत्नी पत्नी का कर अपना साधनमि का साधन पुनर्जन्म का मन्त्रन साधनापत्ति करने वाले साधनापत्ति का मन्त्र मन्त्री का मन्त्रन कर मा मन्त्रन है और साधन रत्न में परम्परा अभिन्न न कर है। मन्त्रन साधना





काल में पुष्परज ने अभिनन्दन करके पारम्परिक-सम्मिलन में नौन्दर्य-निष्ठा को व्यक्त किया जाता होगा। तभी अज्ञात रूप में पुष्परज का स्थान पार्थिवरज न ले लिया और अनजाने में ही जीवन में राष्ट्रीयता या मूलमन्त्र-मानृमूर्ति की धूल में मामाजित-रत्नको का दृष्ट बनाना, प्रतिष्ठित हो गया। राजपूत भाग्यीय समाज में वृत्ति-उद्देश की प्रिया को 'धूनेटी' (धूल-टिप्पि) या धूनेण्डी (धूल-धरन) कहा जाने लगा। भाग्यीय हम बात तो जन्मी तरह से जामते थे कि मन्त्रधर्मा पृथिवी की धूल में नमस्कार जोड़कर ही जीवन में स्वर्गज-समिद्धि ही पा सकती है। आत्मदानी और कर्मशील मानव धूल और पानी में युग्म जूमि में मानृ-रूप देखकर उनके नाते उपयोगी पदार्थ के उपनो। या अधिपरी स्वयं को बना लेता है (अथर्ववेद १२.१।६०)।

होली जलाने की प्रथा अग्निहोत्र या ही परिवर्तित रूप है। उनके साथ प्रत्याद और शिष्यवर्गियों के विरोध की स्मृति भी जुट गई है। प्रह्लाद मृत्यु की भी परवाह न करने नव्य के मार्ग पर दृष्टान्त बनता रहा। होली निर्भीक बनने की प्रेरणा देती है। हम बात ही पुष्टि हम दिन समान होने वाली अन्य शिष्यों ने भी होती जाती है। होली के पहले बानसों के लिए मानाए जाकर ही टाल व लकड़ी की तलवार आदि बनाती है। होली जलाने समय 'टूले ईवन के टेर में टाल दिये जाते हैं। स्त्रिया पानी उलटकर हाथी की प्यास को मान्य करने की चेष्टा करती है, प्रोट होली की ज्वाला में गेहूँ या जौ की बालियाँ मँक लेने हैं। प्राचीन समय में गरुडभूषों के अनुसार हम समय यज्ञ में नवाग्र की आहुति दी जाती थी। जब नमस्तेष्टि के स्थान पर उन्मत्तपरम्परा चली तो टाल तलवार की आहुति देने की प्रथा चर पड़ी। नमरागे या जलाने में हिमा ने जिन जाने की और टाल को जलाने में अपनी आत्मशक्ति के विषय में पूर्ण रूप में विश्वस्त हो जाने और निभयता सम्पात्ति करने की सूचना मिलती है। चण्डी की तलवार और गावर की टाल-मुद्र को प्रवर्तित करने वाले जानकवादियों की सम्मता या रूपा चित्र भाग्यीय जन-मानस में अचिन्त है। युद्ध छेड़न वाला तो विश्व-चेतना के प्रति अग्राधी है ही, साथ ही प्रतिशदा के नाम पर सम्मानों और मेताओं की वृद्धि करने वाला भी समान रूप में अपराधी माना जा सकता है। पूरा धामि को प्रतिष्ठा नहीं हो सकती है जब युद्ध के साधन और प्रतिशदा के साधन-शेनों को समाप्त कर दिया जाय और जन-जन के आत्मवल में वृद्धि हो। सम्मृति की पूर्ण विकासमन्त्रा का मानदण्ट निर्भयता का सम्पादन ही है। होली या उत्सव हम यही संदेश देता है। युद्ध की अग्नि को बुझाने में नारी-जाति महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। होली की अग्नि को जल में बुझाने का यही मान्य ज्ञान होता है। होली की ज्वालाओं में अन्न की बालियाँ मँकने में यह प्रेरणा मिलती है कि विवेकपूर्वक विनाश के साधनों को भी मृज्ज के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है।

श्रावणी पर्व—श्रावणी पूर्णिमा को यह पर्व मनाया जाता है। इसे रक्षा-वन्धन भी कहा जाता है। धृति वेद ज्ञान की भजा है। प्राचीनता में शिक्षा-नक्षत्र का प्रारम्भ इसी दिन में होता था। यज्ञोपवीत पहना कर सबसे पहले छात्र को व्यक्ति के मत्स्य, धृति, क्षमा, उत्तम, नीच, धी, अक्रोध, विद्या और इन्द्रियनिग्रह इन नौ गुणों को बनाने की प्रेरणा दी जाती थी। यज्ञोपवीत के तीन तारों में छात्र वेद-ग्रन्थी, और उसमें प्रेरित आचरण की शिखा भी लेता है। ऐसे आचरण द्वारा वह देव-ऋण, मित्र-ऋण और ऋषि-ऋण से मुक्त होने में सफल होता है। यज्ञोपवीत धारण करने के उपरान्त विद्यार्थी गुरु के साथ यज्ञ में भाग लिया करता था। वैदिक परिवारों में अब भी प्रचलित है। वहिने भाइयों के रक्षा-मूत्र बाधती है। राखी के मूत्र ने कई बार उत्तिहाम की आग में मोड़ ना दिया है। वर्तमान काल में यह भाई-वहिन के पवित्र सम्बन्ध की उद्घोषणा करने का उत्सव बन गया है और इस प्रकार हमारी साम्प्रतिक-चेतना का महत्वपूर्ण वाहन कहा जा सकता है। रक्षा-सूत्र बाधकर पारम्परिक-नीतिवाद का परिचय देने की परम्परा इस पर्व के साथ जुड़ी हुई है। गुरुदेव श्रीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस पर्व की इस विशेषता को देखकर इस दिन रथामून बाधकर हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रतिक-मेनु बनाने का प्रयत्न किया था ऐसी परम्पराओं को आगे बढाना राष्ट्रीयता के हित में है।

हृदि पचमी—वैदिक परम्परा में इसे ऋषिपचमी और जैत परम्परा में सत्यमरी कहते हैं। ऋषि-मुनि वर्षाकाल में चतुर्मास्य श्रिताने के लिए वस्त्रियों के निकट आ जाया करते थे। सामान्य गृहस्थ उनकी इस उपस्थिति का

गाम उत्पत्ति करते थे। य. योग जगत्क तत्त्वविद्या से जीवन वापन का विधि पद्धति का विषय में माननी प्रा-
करक उनके सान्निध्य में जाकर विचार का धर्ममात्र किया करते थे। गव. मरा मवान वाक श्रमण परम्परा के अनुयायी
पुनर्वल जीवन (एमे वत्ता व समान जीवन, जो एक बार श्रमणी माना का स्थान छोड़कर पुन. गम गाव) के लिए
मरत करते थे। ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रकृति माना का स्थानी वाता. गुरुत्व आश्रम में ऐसा करना छो. र. वानप्र. ३
और स. गाम में पुन. गाने जाता है। इसीलिए आश्रम व्यवस्था की पुनर्वस जीवन का ना उचित है। वल्कि परम्परा
पर आश्रित धर्म और जन-बौद्धा. श्रमणधर्म का भा. में वल्य बर कर वि. व. परम्परा के वास्त. प. प्राप्ति करने का
प्रतिनिधित्व गती है। जनधर्म में गम्भीरता की साधना व अल्पम माग में वास्त. की भी गिनता जाता है (चारि-
पा. ७)। धर्मात्माशा का प्रियवचन और आचरण में अनुसरण करने वान सम्भव. जीवन का वास्त. अग
ना है (वास्त. यानुप्रधा. १) वास्त. में वस्तु और वस्तु दो पण होते हैं। जनमत में आश्रित श्रमण (पगव)
ही वस्तु है। माघन तप और ब्रह्म द्वारा श्रमण का वास्त. शा. त. करता है। बौद्धग्रन्थ चरित्र. में माग्निका
का उल्लेख मिलता है— गावनिवास गाम. दवता। जनमत में वास्त. प्राप्ति के लिए माधना करने की वान का समा
का माग्निकी में ही हुआ जागा। बौद्धमत में भी आश्रित काचर में गाम. हान की बात कही गई है। जन वल्कि
परम्परा में वस्तु जीवन की साधना की मोचनी ही का जाता है। परम्परा का गाना बर. त्याग और तप. जीवन
गामन का जो परम्परागत माग का सत्व या पूण वस्तु का माधना का माग का जाता है धीरे. सब सरी ऐसे जीवन
का लिए सम्भव करने का उत्सव है। माघ माघ. अनुयायी इस. पुनर्वस साधना का लिए उक्त सम्भव गते हैं।
गाव और अमण परम्पराशा में सम्भव स्थिति करी बा. ग. सवत व. व. माता का करता व।

विश्वामात्मि - विश्वामात्मि शास्त्रजीवन से सम्बद्ध उत्पन्न है। मारी मायना री है कि मातव गरीर
गुदक्षेप है जिम. दवी और जातरी मनोवृत्ति में अनवरत सव. छिटा करता है। व. गुद. व. दरी वृत्ति का विशयी
बनाने का लिए साधनारत प्रया. माधक क्षत्रिय है। व. प्रकार विश्वामात्मि आचार्य. माग पर चरन वान प्र. व.
वृत्ति का लिए उसकी आत्मविजय की साधना करने वाला मयसे बना पय है। म. र. में यह भारत के सभी समु.
शायी का मम. य. उत्सव मन गया है। ग. व. व. व. माधना का लिए मवरावन्नत किया जाता है। व. व. क.
अत. में गुमागुन. व. माय. कुमारी का मा. का पूजन. की किया जाता है। का. पूजन. भारतीय समाज में गाम. ममान
की गिना में एक मयोन. दक्षिण उपस्थित करता है। रावण के पु. का गाना व. का हो परिवर्तित रूप है।
शामुगी वृत्ति का समाप्ति करने में ही विश्वामात्मि की विजय मभव है।

यहा कुछ ही उत्सव का उल्लेख किया जा सता है। व. गाम. गति का उत्सवमान जानि कहा जा
गता है। यहा व. क. ३६५ गि. में ३६६ उत्सव मनाने की बात कहा जाता है जो अनुविन न. का ग. सवनी।
य. उत्सव समाज का वगविण. से सम्बद्ध हो सवत है। परन्तु भारतीय समाज का सगन्त. हा. म. है कि ए. उत्सव भी
सवमाय. उत्सव मन जाया करते हैं। भारत में मनाये जाने वाले सभी उत्सव यहा प्रचलित विभिन्न सामाजिक
परम्पराशा में सम्भव स्थिति कर. राष्ट्रीय एवना की भावना का सदन करने वाले हैं। व. प्रकार जीवन का जीवन
का लिए भारत में त्रिम. विविध दक्षिण का विकास हुआ है वह भारत राजना है जिम. सकाणता का कोई स्थान
प्रा. न. है। हम अपा. उमदा में प्रविष्टि. की वाला व. मा. मा. मा. सम्भव की प्रवृत्ति का जाधार पर अपने
जातीय जीवन का सम्बन्ध व. व. विकास कर सतते हैं।



कहावती ग्रन्थों की जैन-परम्परा

डा० कन्हैयालाल सहल

अध्यक्ष हिन्दी-संस्कृत विभाग बी०आई०टी०एल०,
पिलानी



कहावते मानव-जानि की सर्वसामान्य सम्पत्ति है, उन पर किसी जाति अथवा राष्ट्र का एकाधिकार नहीं होता। जीवन के अनुभव का एक "लघुतम स्मृ" सर्वत्र देखने को मिलता है जिनकी धर्मव्यक्ति नमिष्ण माग्यमिन तथा चटपटे वाक्यों द्वारा कहावतों के रूप में पुरा काल में होती आई है। इसीलिए किसी विद्वान् ने कहावत को 'जीवन का लघुतम समापवत्ये' कहा है।^१

जानि-विज्ञान और संस्कृति के विद्वानों का कथन है कि जनता की विचारधारा जन-कथाओं, कहावतों और मुहावरों आदि में व्यक्त होती है तो यह बात मोलहो आने मही है। कहावते और मुहावरे धार्मिक जनता की सम्पूर्ण और ऐतिहासिक अनुभूतियों के संक्षिप्त रूप हैं। लेखकों के लिए इस सामग्री का अध्ययन करना आवश्यक है। मैंने कहावतों और मुहावरों आदि से बहुत कुछ सीखा है।^२

राजस्थान में कहावतों का प्राचुर्य है। शिक्षा की दृष्टि से यह राज्य जय राज्यों की अपेक्षा भले ही पिछड़ा हुआ रहा हो किन्तु इसका लोक-साहित्य अत्यन्त विद्याल और समृद्ध है। भारतवर्ष के किसी भी राज्य की तुलना में यहाँ का लोक-साहित्य निमकोच रखा जा सकता है। राजस्थान की कहावतों को लेकर ही विचार करें तो वे महदा में १० हजार से कम न होगी। अभी राजस्थानी कहावतों का कोश तैयार नहीं हुआ है जिनके प्रणयन में लेखक वर्षों से सलग्न हैं। इसलिए मस्या आदि के सम्बन्ध में निश्चित रूप में कुछ कहना निरापद तो नहीं तथापि इतना निमन्देह सत्य है कि विविधता और प्राचुर्य की दृष्टि से यहाँ की कहावतों की समता महज ही नहीं की जा सकती।

राजस्थानी मध्यमा और संस्कृति को समझने में जैन विद्वानों के ग्रन्थों से बड़ी सहायता मिलती है। राजस्थानी कहावतों के सवन्ध में भी उन्होंने मराहनीय प्रयत्न किए हैं। स० १९६६ को पीप मास में श्री धनविजयगणि ने राजनगर के समीप ऊप्पापुर नामक नगर में 'आभाण शतकम्' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसकी अनेक कहावतें ऐसी हैं जो राजस्थानी लोकवित्तियों का अनुवाद-सी जान पड़ती हैं। तुलना के लिए यहाँ कुछ लोकोक्तिमा उद्धृत की जा रही हैं—

(१) गता तिथिर्यथा पूर्वं ब्राह्मणेन न वाच्यते ।

तथा पुराकृतं पाप धर्मिभिरनितुमन्यते ॥२१॥

अर्थात् गई तिथि जैसे ब्राह्मण नहीं वाचता, उसी प्रकार पूर्वकृत पाप का धर्मात्मा अनुमोदन नहीं करते।

१ The L C M of Life has been expressed in every Country by Combination of words or pithy Sentences, which are called proverbs

(Prof Mukkhan Lal Roychoudhury, D Lit)

विरहित है। जलत आना वा एक पत्नी मधुर तथा अचारीकी नमिषण उसमें पाया जाना कि त्रिमका यत्र तत्र पाया जाना कठिन है। श्रान्तिगुण आश्रयो भाषा म कर्त्तव्य अथ कर्मगोत्री वा सुनकर गायत्री एसा कोई साव पाण रि निह्ना मधराणि मधरम भी है किन्तु शीता कुछ समय म ही अनुभव करने गमना है कि वह कूकार वस्त सहजम्पण प्यार म परिणतिन हा चुकी है। विपयना र है कि व हिसा श्रानि म नो जाएग। वस्तुत उनका य गल्लो मोठा स्वभाव यो उनम म नि वस्तव गविन का निर्माण करता आ समाज म सज्जात्मक उपनयनो का भार भर रहा है।

समाज म पदा होन घां प्रत्येक स्फुरणा वा कर्मरात्रा वा यकित्व प्रभावित करता है। श्राना हो न। उम समुचित मोहन की समता भी रहना है। श्रवणमधीय श्रानि इस की अद्वैतक घटनाओं म आपका महान यकित्व सक्ष है व वनमान गतिविधिया म भा सज्जन है।

श्रानित्व की सामाजिक सफाया उमका समुचित प्रभावप्रयोग है और श्रम आवश्यक्ता होती है शैक्षिक सज्जता की। सध्यग शैक्षिक निर्माण क विना र प्रभावशाली यनित्व भी श्रान्तन गिरते व स्वते दंष्ट्रे गय ह। ज। तत्र कर्मगोत्री श्रानित्वका प्रव है उम अन्तःकरण का महता है कि उमके पाछे समुचित सध्यग शैक्षिक निर्माण काम करता र। और यका कारण है कि कर्मगोत्री का यकित्व आपक आपनतर यानवतन होता वना जा रहा है।

आपक श्रमश्रम की श्रानि श्रानि मिश्रित प्रतिभा म ही गव एसा जाहू है कि दानक बरदस आकषिण व प्रभावित नो जाना है। श्रानि र समान सोम्यता व श्रानि व समान विका त तेजस्विता का ऐसा सुत्र समवय अ यत्र मिश्रता कठिन है। श्रान्ति म उम कर्मगोत्री महान कर्मगोत्री क रूप म देखता ह।

आगा य नो पूण विश्वास है कि अमा क युगा तत्र कलाधरमान कसरी अपनी शैक्षिक-श्राना को प्रव करत हूण सध म समाज का उल्लति का और श्रानत रहग।

•

चमकते दिन के सम केसरी

श्री होरामनिजी द्विजदर

जगत मे निसरी भुनि राजते
नगर मे सुर मे नित गावते।
गरवते रहत जिन केसरी
वन गये मर व सम केसरी ॥

वन रहे अब तो सुर कसरी
अमर हो दिल के तुम कसरी।
नगर में घर में बरबा सुनी
तारन तारन है मिसरी सुनी ॥

बहत हू गुन गायन धार
बहत हैं जिसत जद पाव क।
मुगुन गिय सधाकर आपक
सगन व गन आरर भावने ॥

मधरे मिसरी भनि केसरी
चमकते दिन व सम केसरी।
क ज्ञ पूजन की जद बाटते
बचन धोर जिनै सुनावन ॥

नित करो मिसरी गुण गान थे
उत्तर जो जिन स मय पार थे।
हियकरो बिधि है कर बरना
बिषय स विनय महा तारना ॥



•

राजस्थानी कहावत

हाथी के गोज में मैका गोज ममार्ये ।

(७) मधुरवचनेन युक्ता मय हितमेव वेत्ति न त्वहितम् ।
सकल ध्वनं दुग्धं पश्यति बालस्तु नो तत्रम् ॥८८॥

अर्थात् जो भी मधुर वचन में युक्त है, उसे हित के रूप में ही ग्रहण करना है, अहित के रूप में नहीं ।
बालक, जो भी संकोच है, उसे दूध ही समझता है, ठाठ नहीं ।

राजस्थानी कहावत

ऊँताड़ छाय भी धोली, दूध भी घोओ ।

अर्थात् उनके लिए छाछ भी संकोच है और दूध भी संकोच ।

(८) दातुर्दानं यथा स्वल्पमल्पं न विचार्यते ।
धर्मधेनोन्तया दन्ता न विलोपया हि धौघर्न ॥८९॥

अर्थात् दाता के स्वल्प या अधिक दान पर विचार नहीं किया जाना । धर्म की भाव के दात नहीं देखे जाते ।

राजस्थानी कहावत

धर्मादे की गाय का दान नीनी देखा जाय ।

“आभाणगतकम्” के भी कई नौ वर्ष पहले कहावत-ग्रन्थों की रचना होने लगी थी । “ओहाणक म्मोय” की एक प्रति म० १८३० की लिखी मिलती है जिसमें ने कुछ कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—

१ बलिकिय त सुन्न ज सुन्न तोए पन्न ।

राजस्थानी रूप—बाल मोनू जो जान तोडे ।

२ चियकण घडे सामिय डलिकण पाणिय ताइ ।

राजस्थानी रूप—चीकणे घडे पर वून कोनी ठैर ॥

३ पक्काण भडाण कि पहु कन्नाय लगति ।

राजस्थानी रूप—पाकै घडे के कानो कोनी लागे ।

४ जो मरेइ गुलेण चिय तस्स विस दिज्जे कीस ।

राजस्थानी रूप—जो गुड में मरे ऊने झैर क्यूँ देणो ?

५ नय मरइ न मचय देइ ।

राजस्थानी रूप—मरे न माचो छौडे ।

६ जइ नच्चाण पविट्ठठा ता कि धुघट्टकरणेण ।

राजस्थानी रूप—नाचण हाली के क्याको धूमटो ?

७ हत्थटिठय ककणय को पुण जोएइ आरिसए ?

राजस्थानी कहावत

गम निहिता वामन भा वानी वाच ।

(२) स्वकीयाश्रयस्य मिथ्यास्य स्वित को न ?

दुष्टाया को निजायाया गान्निह्य प्रकाशयेन ? ॥२७॥

अर्थात् वीन मन्थ्य एसा ह जा अपन अणुद घम वा मिथ्या बनगना है ? अपना दुष्ट माता का भा गान्निही की न ना है ?

राजस्थानी कहावत

गान्निही मा म नान्ण कुण बनाव ?

(३) बहुरक्षितयगुनिक्षितनीचजनो भजति नव सामागम ।

दुष्टमिव गुनो मासिकाघतमपि सरल यथा न स्यात् ॥२८॥

अर्थात् मालिका म रखी हूँ भी कुते की पूछ जग सीधी नहीं होती उसी प्रकार बहुरक्षित और गुनिक्षित बीच मनुष्य सामाग का अनुसरण नहीं करता ।

राजस्थानी कहावत

कुल या पूर १२ यण नागे म राया तो वा टहो की टेहो ।

(४) धन्यो धमनागाय तदवधो वसित व सुधी ?

धन्येन वचनागाय यथा त को निययते ? ॥२९॥

अर्थात् जिस वक्ता म धम का वाग पाता है उसे बहुत से वीनसा बुझिमाना है । जिस सोने से मान का वाग होता है उसे वीन बनाने लगा ?

राजस्थानी कहावत

वाक मानू वात तो ।

(५) सपमेन विमुक्तस्य यद्वत्साधो विद्याविधि ।

अथो गनन्य मयस्य गस्तव मोलिवधनम ॥३०॥

अर्थात् गमन विन साध की विद्याविधि वसी है । जानी है अथे को मनुष्य नाच से नाग हो और मन्त्र पर मोलिवधन कर रहा है ।

राजस्थानी कहावत

ऊपर मोल रया वण नाच व वन्दया ।

अर्थात् मिर पर ता रग बिहरी वाग अथवा र रिया चारण कर रहा है पर नाच क्या पढ़ता है ?

(६) अनावागाधयो दया द्वावागाधो प्रतिष्ठिता ।

मवागीना दया वादा हस्तिपादे महत्तरे ॥३१॥

अर्थात् अनावागाधो दया द्वावागाधो प्रतिष्ठिता है अथवा अनावागाधो व वन्दया व वीर म गमा जान है ।



धर्मस्थानों का जैन लोक-साहित्य

महेन्द्र भनावत,

एम० ए०



धर्मस्थानों के लोक-साहित्य में सपना साहित्य, तीर्थयात्रा, पर तीर्थीय यात्रा-साधना सपनों की नया बनाव, थोकेडे, गर्म चित्ताणियाँ तथा मृत्यु-पूज के गीत, सपना-गीत, चौक, टाक, नया नया नया, तथापे, ध्यापने, जान (वरात) ध्वजण, कुडनीक, बालक-वाचिजाजी के गीत तथा चौकीन तीर्थीयों, नयापनों एवं मोट्ट पतियों वगैरे साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर उदाहरण दिया जा रहा है -

सपना साहित्य - सपनों में विशेष रूप से तीर्थकरों की जीवन मितियाँ हैं। जैसे ध्याप-पाठियों में नान-नूतने में राकर घादी होने के दिन तक प्रतिदिन प्राप्त रात्र के गाने गाये जाते हैं परन्तु तीर्थकरों के दिनों में सपना-गीतों में भी विशेष रूप से ये सपने गाये जाते हैं। इन सपनों के लिये एक प्रकार का गीत है। इन गीतों में तीर्थकरों के विशेष-विशेष महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख रहता है और इन में 'सामी गिरायाजी' जैसा उदाहरण रहता है जिसमें उनके सिद्ध होने की बात व्याप्त होती है। कुछ सपन तीर्थकरों की पूजा के सम्बन्धित रहते हैं जिसमें गर्भ तीर्थकरों की पूजा के लिए विभिन्न पूजा-नामग्री का उल्लेख रहता है जैसे—प्रपन्नता के लिए केसर, नेमिनाथ के लिए पूजा, पार्श्वनाथ के लिए केवडा, महावीर स्वामी के लिए नारियल तथा शानिनाथ के लिए गानके आदि। पूजा का माल लेकर दूर-दूर से आई महिलाएँ दर्शन की लक्ष्मी प्रतीक्षा-पति के चली-चली एक जाती हैं तो वे अपनी शिकायत भगवान तक पहुँचाने के लिए ललक पड़ती है—

सामी कदकी ऊनीने कदकी पडो रकप्रनाथ के दरवाजे
सामी केसर घोटी-घोटी भयरि पिवाला
तोईनी खोल्या दरवाजा रे।
सामी पाव पूजन दोनी मुप देराण दोनी
म्हे दूरा सू आयाजी।

इन सपनों में तीर्थकरों के बाल्य-जीवन के भी कई गंभीर चित्र मिलते हैं। उदाहरण के लिए नेमिनाथजी के सपने में उनका बालहठ विशेषरूप से छलक पड़ा है। सपनों के अंत में कई प्रकार के कूकडे तथा चूदड़ गीत गाये जाते हैं जिनमें स्थान-स्थान पर भगवान का निवास बताया गया है। चूदड़ गीतों में तीर्थकरों की माताओं द्वारा चूदड़ें रगवाकर सावणीतीज जैसे त्यौहार मनाने की बात बड़ी भली लगती है।

सपनों के अंत में सपने गाने का फल वैकुण्ठ की प्राप्ति तथा नही गाने वालियों को अजगर का अवतार होने का जिक्र रहता है, साथ ही गाने वाली को सुहाग चिह्न चूडा तथा चूदड़ एवं जोड़ने वाली का पुत्ररत्न की प्राप्ति जैसे भी संकेत मिलते हैं वगैरे—

जोरे रो सपनो जो गावे ज्या रो वैकुण्ठ वासो जी।
नही रे गावे नी सामे ज्यारो अजगर रो अवतारो जी॥
म्हे रे गावा जी सामला जी म्हारो वैकुण्ठ वासो जी।
गावा वारी ने चूडा चूदड़ जोडणवाली ने शोलेण पूतो जी॥

राजस्थानी रूप है। कण न जायगी तू क बाम ?

८ दुद न दिवइ दाली पुण गरिय निगोणिय च ।

राजस्थानी रूप बररी दू ता न पुण न भोगी करये ।

९ सीरी सङ्ग मिळ परतोय कण पुण डिटठ ।

राजस्थानी रूप — जो भर मीठा पर भव विण दीठा ?

इस प्रकार स्पष्ट है कि जहाँ जहाँ यह प्रचलित बहावती की प्राकृत और संस्कृत के रूपों में निबद्ध करने का प्रयत्न प्रयत्न किया था।

व्यावहारिक शिक्षा का दृष्टि से जोड़ाविनया से परिचय प्राप्त करना अत्यन्त उपयोगी है।¹

•

1 Acquaint thyself with proverbs for of them thou shalt be in instruction
(Ecclesiastic 8:5)



हृदये हिदा में जो उमाओ म्हाग अग मे
 वर नृग मागमागी मेवा
 वरमा आऊ ली
 गु गाऊ आरग
 परमने वाय्याजी मागी जी अगी भवे उरगया
 आन दूदो अतगग

चौकडा — गेर-गुन पर प्रचरित चौकडो का जी विशेष महत्त्व है। ये चौकडे ही तर्क प्रमाण के सिक्के हैं निरुपमा अथवा विशेष 'शब्द' कहलाते हैं। ये चौकडे प्रायः चार श्लोक हैं जिन्हें अनेकानेक कुसुमों से लुटाया जाता है। मुसुमों द्वारा नन्दगति पाने की भावना निहित रहती है। उन चौकडों के अन्त में सामान्यतः ये शारभूत शब्द लिखे हैं। नाथ शी - 'यो' चौकडों में 'मौ', 'नामने', 'नामना' से प्रभावित होते हैं। आत्मों और आत्मे शब्दों से। आद्यो शब्द आने लगे हैं। ज्ञाना मानव दृष्टि नीचे आये हैं। पाप दास जगत्वा ने नमः मन्त्राणि दृष्ट - " तौ धान भी मिलती है। पाठको जी जानकारी के लिए यथा आत्मनिष्ठा चौकडे का आदि जी-वन आन दिशा जा रहा है।

आदिभाग—ये आदिभाग के चेतना, सोई नाथों के। सोई परमों के। उन गिर्योत्तम से गौरी-गौरी धूम्र जी आती हैं तो दो घटी के मर्म में आती चित्तावगा मन कर।

नेवारे रामराग मे। तेवारे गदे राग मे। नेवारे मन पुन मे। नेवारे वचन मन मे। नेवारे राग मरग मे। नेवारे मरग प्रसदी मे। नेवारे गीत लेख्या। नेवारे तपोन लेख्या। नेवारे उपाध्याय। तेवारे रमगावार्ड। नेवारे गवागवार्ड। आठरमा गीत सोने अन्तर्गामी परवरति। उठेमा आनम घारा-जीव वीग लगीन्या ने वारडा। मीलन गजों, भाग, तमागु, दादरी, तारागे, उतरी हरी लीलोनी रा श्रोगत नेवारे मागमी तो आग जीवगी गज गजाम् रगमी ने वारडा।

गुरु मन्त्रमे मे विनोरा उठे है। गुरु धारी विनोरा विनोरा उठे है। अने जीव व रगमी तो अने छे पर मूना मन म् करे। उरग मन म् रगमी तो आने लगे लगाची नीतर माही मन्त्रे समान होमी। उतर जीवा ने वम करीने आदो म्हाग पारम पुनर। आदो म्हाग नवदेस्तन। आदो म्हाग नवगुप्तान। आदो म्हाग रमाग वनगई। आदो म्हाग रमग पटका। आदो म्हाग अमरन रा नृण। अतगजीवा ने वम करीने नेठ वेडग। नेनापति वेडग। नापती वेडग। अष्टम वेडग। राजा वेडग। भिन्नी वेडग। परधान वेडग ने गमागनी वेडग। भिन भिन करीने पुदगन्या से उपाव करी द्यो छे।

अन्तभाग — अने चेतन मातागी अग्य मे चाल। समगत मातागी अग्य मे चाल। मोड अग्यग चीज ने वार। ज्येध, मान, माया, लोभगी चकरी ने पटरी पार। आनुन विचलपणो आने मटे नती। नमणा रती रा आने उधे नती। अन्त आने। पन्त आने। अरम आने। वरम आने। । अन्त जीवा। पन्त जीवा। अरम जीवा। वरम जीवा। ररग मवे जोग। गमायन ने वमायन। दमवनी ने मरवनी। मानने ठकाणे ने अनाता ने ठकाणे नती। पाचरी गति पावनी नती। कचन तो प्राप्ति हरे ने पन्तर ने दूर करे। कंचन तो रघु न मिथमी ने पन्तर धारी छानी पटनी। या सम या नमाई तो धारी नहीं छे ने नहीं छे। या नमाई तो वनी छे ने वनी छे। अतदजी, रामजी, गजजी, पीकरजी चद्रगुनगजा, सुमनोद पुण्यानामा आबक या नमाई तो वनी छे ने वनी छे। आनी नमाई तो या छे ने या छे। रोदर फोड, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष जगजगामान होई ग्या छे। अनी नमाई तो या छे ने या छे। नतनननी मू। नती मू के घंटा मू। पटा मू के पटा मू। पटा मू के नधिमू। अवि मू के अमविमू। अमवि मू के दुर्मविमू। गान तो ग्यानी मागव। मरारे तो ने ने। दडीग जोडा। नदी न टाटा। मानारे ठकाणे। अमानारे ठकाणे नहीं।

गर्भविनायिका और मृत्यु-पूर्व के गीत — हमने यथा सम्मानन व्यक्ति की सुनाये जाने वाले मृत्यु-पूर्व के

सौधीसियां तथा परबोरीत — परना व निम पाकि धमन धामणा (६ गायना) व का म वई प्रहार
का सौधीसिया माई जानी है जिनमें एव दूतर म बारवार समायाचना की जाना है ।

परबोरी तमत सामणा
जगजी बेसा रचवनाथ वण्ड सां
वई बूजा जगत-थ दण्ड
परबोरी तमत सामणा ।

सौधीसिया की गनिया म अल्पतः द्वारा गमाज छोकर ध्याग मयम भाग धारण का वलवता भावनाका भी
गुनर अधि वणि मिनी = ।

मने नग दया सतार सारा सुगत म भाग दो
मन लग दयो मयम ध्यारो सुगत मे भावा दो ।

साधु साधु तपश्चो गीत तथा वधाये — किमी गाव जयवा गनर म गाव साधिया व पधारन पर उनक
रचागन म वई प्रहार व रचागन गीत गाय जान है जिनम उम निम का जाना तथा रचना बाग निम वनर निम
हय एव उलगा प्रनर दिया जाना है ।

भाज सोना रो सुनज ऊ गयो ।
भाज रतनां रो सुनज उगियो ।
ऊ धा मारासारा बैमणजी
गावे परगदा रो ठान ।
गुनर जगोती रा वधिया जी
भरवा रो छुप न गार
माराभा ओभाज जितवानी सुनज उगियो ।

माराजधो व वगू रगर व वम या पर भावा-बाया (ध्याव ध्याविकाभा) की धार भा वारवाय वमना
व निम नल नल पन्नी है उता समय वमना है जग गारे । गाव म रना का मिमिमि वरमान हूँ —

वगू दे वगह्ये मारासा वधारिया
वतार दे वगह्ये माराभा वधारिया ।
ओरा गामा होरा मोती निपानो
माण गामा रतना रो छान ।
धोनी अरज ओ धणी विनती ओ
मल सुम सागुसो वीय ॥

साधु-गारिवना व रचागन म पधारने पर ता जमे सावर ध्याविकाभा व जम उगागर व भाग्य जग गो
। जी वल जम व अचारण व गये हो तेमी म बुद्ध जनामी बाव नगा म भाग है ओर म जवनर पर व
वेगर म धारिया का वीर गुरागन जम नी गवा भावक । वगाव व वग म मेमि व वग वग व विनता वगना जमा
विम है—

तया धनी ए वधायो
वगू रगर धो मारा वीर वगू
ए धोरे धोरे जाम हूमे भाग्य जी ।
भाजरो बीयाजी जी भना सुनज उगियो



- इस जन्म पर गाने की सुनार गाने इजिप्ता बिरद की लम गाना श्रानि ना हो गता है—

चीक, डाल, तवन त्या भजन

(न) होन बा वृ य्या नाते । अणेन य्या त्रिनगता है । पुन्याय तो बांध्या जीवने जैसा ही फल पाता



मण्ठा बोली—'बाओ लाडी व गा मे बाण ।' वा बोली-नी आऊ ।' जतगा मे वटी नामु छोरी । 'तटी तपो मलाटी, नारे आडीऊ मनाई नी ।' अटी फावागावा 'पो-पानी ने रागमे गा ।' दागमे मध मधिया हो शिले, मिने, नावे, कूदेने नीत गावे पण वा एक तगा छानी मानी देटी देटी वगावा येन नमन्था देने । बागा वरन उवीन्था ने वटी पति आया । घरे देने तो बड मलीनी । वणी ह्रीन्थो के कटे मरीरा नेगी । माने पुट्टो । मा बोली बाग मे नी है देटा । वातोनी जावा लागी । पण मे गज करो तोटी फाटा गाजा पेरीनगी । देतो थो-थो-थो-थो राग मे री देने तो रव मुगावा तो हनी-मुयो मनाई री ने ग पफरी छेटी ।

जदी वो बोल्थो—लावा गोरी पानरीने गज गज लावा देश ।
नव नविषा सुहायणी रे पारे पतू मेरा देश ।

वा बोली--आडा परवन अति घणारे जणो वणी देश ।
पीऊनो परदेस वने रे जणी नू मेरा देश ॥

वो बोल्थो—लाव लगावो दृगन्ध्या ने काटो धो वणी देश ।
पीऊनो दूजा करो ने नत नवा करो श्रुगा ॥

वा बोली—अमर तारा आनाग मे ने घरनी धान न हाय ।
पाणी मे दीवली जले जद पीऊ दूजा हाय ॥

अनरो केजे वो पराग्या । पाछाऊ सब त्रिषा ने हाटे वा भी नी । जाउने देने तो दोट अडो घणी है । वा पगा मे पडी । वो बोल्थो के मे तो नी पगीक्षा नी दी ही थू वणी मे मरी उतरी । वापरका वणी घणी तो दूजी आदी की दी है ने वऊ दया नीने आपणी ज्ञानमारा कन्थाग ता दा ।

वर्मन्थानो के माहित्य के बारे मे जितना जो कुछ कहा जाय उनना ही कम है । यह माहित्य उनना महान और मेधावी है कि किनी भी वर्मन्थावृत्त के समझ उसे 'ए-वन' की कोटि में रखा जा सकता है ।

है। विन माया भाग्य भाग्यवत बार्ह स्पष्टावरी करता। अम अपत्रगता बाधया जीवन जमा हा पारज सरता। पाप अंगार संघा जावन न्णम गवरी पयता है। इत्यादि रम काम भाग म कृ वा पूना वा करता है। आर बार और तुमानी मारी पाप कर बहवा लगता।

तवना और गजना व सा संभडा प्रसार मित्रने ह। तवना म मनिवों तथा तीयकरा व घटाया रतनजा जूजी गणपया तथा राम जीवन सवधी गज विगम लावप्रिय हैं। 'यावदा म ममजा (विमोनापडा) वा ध्यावला विगम प्रपन्नि है।

डागा में भ- 'रत मधुमार पवन कुमार रायग विजया मठ तथा जूजी की डालें उल्लेखनीय है। हा हागा म छत्रज जावन की वर सुन्दर सावित्री मित्रता हैं। य गव और गव लोना रगा म मित्रनी हैं। मंगगा वा हाग म वर और कवरी वा वार्ताग्य यहा मामिक बन पया है—

कवर—बावेरी घारे बैवडो ओओ कावरी घारे नेम।

बावेरी घारे छूमरी एववरी वर तो घारा मोलजी ॥

कवरी—जल भोडर रो बैवडो ओओ रगवरी घारे नेम।

कमल कुलारी घारे छूमरी ओ कवरा साळे रोपारी मोम जी ॥

कवर—गारा रो घारे बैवडो ओओ सणकी घारे नेम।

गाव पुवरी घारे छूमरी एववरी कोडो रो घारो मोल ॥

कवरी—बगर बिजराया विमे सोलिया भाओ सोलिया इ डड वमर।

अतरीतो वाता बई वरो ए कवरा घारे वतोव है नार ॥

कवर—घारा सरीही घारे अत घनो ओओ दाणारी घारीघार।

अन लावने पाणी घोव ए कवरी वे नी मवरी वात ॥

कवरी—घाणा सरीहा घारे अत घना ओओ घोडा रा चरवासर।

अन लावने पाणी घोव आ कवरा कोनो मवरी वात ॥

कथा-कहानियाँ—यम स्थानों में स्थान स्थित कथा कहानियाँ का सहस्र सर्वाधिक है। इन कहानियों की भाषा सामान्य व साने वान म मूरी हूँ होना है। ये कहानियाँ प्रायः समान ही हैं। अधिपति कहानियाँ का समाप्ति संवसमान धारण करने—नीति देने में होता है। कहानियों में छाने या छाने तथा बहा म वया कहानियों में छाने या छाने वया वया वया म मगने वा मित्रनी हैं। मगन उ तेवा बई वयाविया भाग की है जिनमे मे वया गारी प्रकाशित भी करवाई है।

गारुड का वानी म गारुड व गीत गीत वानी भाग्य हाहा लपटाया था ता है वि दनो म गारुडवा का विजया आ जाता है। गवाण म गारुड बहा वर जाती है गीत उमका मकट वन जाता है। गारुडवा म वर नी ता नी का भावना भाग है। गारुडवा रोना का भावना नी वात वा नाम पना मूछता है म पर गारुड वरनी है— भाग दो वात भी जा है। गारुड भाग भी जा है और भाग वात भी भाग है। गारुडवा उम रोना द वया है और भाग मई ल वया म भाग है।

यहाँ हम प्रकाश की एक कथा दकर म प्रकाश का समान विद्या जाता है—

एक हागा नी जेद एक व है। हागावया म इ कोडरी वरनी वरुण है। वरुण नी दे। गवाण वया वया। वरी वर वया वया है। वा वया वया वरनी म व वया वया वया वया वया वरनी। एव न वा



गौरव-गीत

श्री रसिक मुनि

तर्ज—यारी मोह माया ने छोड़

हो जिनशामन-सिनगार, सदा गुणधारी ।
 गुरुदेव आपकी बाग्यार बलिहारी—देर ।
 “मरुधर” ने सुन्दर पाली शहर कहलावे ।
 है जन्मस्थान वहा सौम्य-छटा मन भावे ॥
 है मिथीमल्लजी नाम जगत में जहारी ।
 गुरुदेव आपकी बार बार बलिहारी—
 थे पिता आपके सहजमलजी नामी ।
 थे धर्मों और धनवान श्रावक गुण धामी ॥
 लिया केसर कुवर की गोद जन्म मुखकारी ।
 गुरुदेव आपकी बार बार बलिहारी—
 नित मात पिता परिवार सभी हर्षाया ।
 पुण्यदान पुत्र यह पुण्योदय से पाया ॥
 मुल-मण्डल शशिवत सूरत मोहन गारी ।
 गुरुदेव आपकी बार बार बलिहारी—
 जब पांच चर्य में जननी स्वर्ग मिधाई ।
 तब से दिल में वैराग्य नावना आई ॥
 में लेऊँ सयम बनूँ महायत धारी ।
 गुरुदेव आपकी बार बार बलिहारी—
 आराध्य देव श्री बुधमल जी थे प्यारे ।
 महा ज्ञानवान वे पटकाया रसवारे ॥
 कर लिया सयम स्वीकार आत्महितकारी ।
 गुरुदेव आपकी बार बार बलिहारी—
 किया ज्ञान ध्यान महापटित बन गये ज्ञानी ।
 मरुधर में मोटा सन्त, सकल गुण खानी ॥
 आगम के ज्ञाता तत्त्व मनन मन हारी ।
 गुरुदेव आपकी बार बार बलिहारी—
 हो निर्भय-वक्ता आप सुपथ बतलाओ ।
 भगवान वीर का अमर सन्देश सुनाओ ॥
 हो मरुधर-केसरी रटे सदा नर नारी ।
 गुरुदेव आपकी बार बार बलिहारी—
 शासन की बढाओ शान भारत के माही ।
 युग-युग तक जीयो मंगल-कामना या ही ॥
 अभिनन्दन चाहे ‘रसिक’ मोद मन हारी ।
 गुरुदेव आपकी बार बार बलिहारी—

राजस्थानी चित्रकला मे लोकतत्त्व

डा० जयसिंह नीरज
राजपूत छात्रावास जलवर



भारतीय चित्रकला की विभिन्न शक्तियों में राजस्थानी चित्रकला का सर्वोत्कृष्ट स्थान है। यदि हमें यह कि आज तक विश्वभर में इस चित्रकला के सम्बन्ध में विभिन्न पर्यटकों पर गहरा गूँघना फैला हुआ है। राजस्थानी चित्रकला का उत्पन्न एवं उत्कर्ष राजस्थान के प्रांत में हुआ तथा यह अन्य भारतीय शक्तियों से प्रभावित हुआ है। स्वतंत्र रूप से राजस्थान के चार प्रमुख में पाँचवें एवं उत्कृष्ट हैं। यह विकास एवं संवर्धन में राजस्थान का प्राचीन चित्रकला और भौगोलिक स्थिति का प्रमुख कारण है। और राजपूतों का वीरभूमि के रूप में उनका शीघ्र की भावनाएँ लोक कथाएँ सम्प्रदाय और गहरी कथा चित्रकला के विचारों के रूप में व्यक्त हैं। वास्तविकता से यह है कि अपने प्राकृतिक निर्माण और मोहक वातावरण के कारण काय एवं कला की सम्भावना के लिए राजस्थानी चित्रकला अत्यधिक उपयुक्त रही है।

विशुद्ध राजस्थानी शैली का प्रारम्भ १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बीस १५ ई. के लगभग माना जाता है। तब से चार १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक राजस्थानी चित्रकला अनेक शक्तियों में परिष्कार प्राप्त होनी रही है। इसका विकास एवं निर्माण दूसरी अधिकांश शक्तियों की भाँति नहीं एक स्थान में हुआ है और न ही कुछ कलाकारों द्वारा। राजस्थान के जिनके भी प्रमुख प्राचीन नगर राजधानियाँ तथा धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठान हैं वहाँ चित्रकला प्राचीन और प्रतिष्ठित रही है। धर्म श्रद्धा रियासतों के कला प्रेम राजाओं सामन्तों और आगीर द्वारा तथा सामान्य जन जीवन का राजस्थानी चित्रकला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

धार्मिक प्रतिष्ठानों के अनिर्वच्य कवियों चित्रकारों सौजन्य शिष्याचार्यों के दरबारी अमलदारों के कारण राजस्थानी चित्रकला की अनेक धाराएँ अन्य रियासतों शक्तियों का परिष्कार करती हैं १७ वीं १८ वीं शताब्दी में अपने चरमोच्च पर पहुँचा जिसमें इसका सर्वोच्च स्वरूप सामने आया। अधिकांश रियासतों के चित्रकारों ने दिन दिन और तरीकों से चित्र बनाये स्वातन्त्र्य और अपनी शैलियों को भौगोलिक तथा सामाजिक लाक्षणिक विषयों का कारण बना। चित्रकारी कला है। राजस्थानी चित्रकला में प्रचुर अनेक शक्तियों का समन्वित स्वरूप है जिसमें महाकाव्य विषयों वृद्धि जयपुर, बीकानेर मारवाड़ का अन्तराल शक्ति शक्तियों विशेष उदाहरण हैं।

राजस्थानी चित्रकला के प्रमुखता दो स्वरूप मिलते हैं—एक लाक्षणिकता और दूसरा दरबारी। प्रथम स्वरूप अधिकतर धर्मशैली एवं जनमार्ग में अधिक प्रचलित है और दूसरा सामान्य परिवर्तन में। शिष्य ही उपलब्धता स्वरूप अनेक शक्तियों में प्रचलित है। प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रकला लाक्षणिकता अधिक है। महाकाव्य से यह कि लोक जीवन का राजस्थानी चित्रकला के रूप में सामान्य है। मिति चित्रण की परम्परा में विभिन्न राजस्थानी चित्रकला का लाक्षणिकता में विशेष महत्वपूर्ण है। मिति चित्रण में लाक्षणिकता का पुनर्निर्माण है। एका कथा धार्मिक भावनाएँ महाकाव्यी भावनाएँ तथा महाकाव्य की भावनाएँ राजस्थान में मिलती हैं। प्राचीन समय में ही मिति की शक्ति है और वह परम्परा (जब तक रूप में है) आज भी प्रचलित है। राजस्थान के प्रमुख मिति चित्रण में चित्रों की विभिन्न चमत्कारी शक्तियों के अनेक कारणों से कथा चित्रण का कथा तथा



अन्य लोक-जीवन सम्बन्धी कथाओं का समावेश विशेष रूप से मिलता है। कोटा के राजमहल, वूदी के छत्रगाल महल, आम्बेर और जयपुर की अनेक छतरियाँ तथा शेखावाटी की विभिन्न अट्टालिकाओं का चित्रण लोक-जीवन एवं लोक-तत्वों के अधिक समीप है।

राजस्थानीचित्रकला का विकास ही प्रमुख रूप में अपभ्रंश शैली की दाय है, अतः अपनी पूर्ववर्ती शैली की रूढ़ता, भेदभेद, रेखाओं की मुटाई आदि लोकतत्त्व प्रारम्भिकराजस्थानी शैली में विशेष देखने को मिलते हैं। अत्यधिक नफासत पच्चीकारी और मोनाकारी तथा रेखाकन की वागीकी मामनी प्रभाव के कारण ही राजस्थानी चित्रकला में आयी है। प्रारम्भिक मेवाड़ शैली के चित्रों में इस प्रकार का भेदभेद विशेषतया द्रष्टव्य है। 'चोरपचाशिका', 'दुर्गा सप्तशती' तथा 'गीत-गोविन्द' पर आधारित चित्र उपर्युक्त लोकतत्त्व के प्रमुख उदाहरण हैं। यह वारा १७ वीं और १८ वीं शती में भी सामंती चित्रण के साथ-साथ प्रवाहित होती रही है।

राजस्थानी चित्रकला में लोकतत्त्व को सर्वाधिक कृष्ण चरित्र ने उभारा है। कृष्ण का चरित्र अपने आप में लोक-जीवन का मायात् प्रतीक है। स्वच्छन्द वातावरण में कृष्ण का गीत-चराना, जंगल में अनेक प्रकार के खेल रचना, पूतना में लेकर कस तक का उद्धार करना तथा गोवर्धनधारण, काली दमन, दान-लीला, मान-लीला आदि का चित्राकन विषय की दृष्टि में तो लोकजीवन में सबद्ध है ही, साथ ही चित्राकन की शैलीगत विशेषताओं के कारण भी लोकतत्त्व के अधिक समीप है। ऐसे चित्र प्रमुखतया धर्म-पीठों में तो बने ही हैं साथ ही विभिन्न दरबारों की घासिक भावना के कारण भी विपुल रूप से अंकित किये गये हैं। हा १८ वीं शती के चित्रों की लोककलात्मकता में सामंती परिवेश का प्रभाव अवश्य आ गया है। मेवाड़ शैली, वृन्दी शैली, मारवाड़ शैली के ऐसे चित्र विभिन्न संग्रहालयों में विशेष द्रष्टव्य हैं। जिनमें विषय और शैली की दृष्टि से लोककलात्मकता है।

चित्रकला के माध्यम से कृष्ण चरित्र को सर्वाधिक प्रसार दिया है मेवाड़ की उपशैली नाथद्वारा-शैली ने। नाथद्वारा में श्रीनाथजी के स्वरूप के स्थापित होने के साथ ही गुसाईयों के साथ अनेक चित्रकार भी व्रज-क्षेत्र से अपनी जीविका उपार्जन हेतु आ बसे और श्रीनाथजी के स्वरूप एवं अन्य लीलाओं का चित्राकन करने लगे। स्थानीय जागिड़ ब्राह्मण भी श्रीनाथजी के चित्राकन में जुट गये और इस प्रकार व्रज के प्रभाव तथा मेवाड़ शैली के योग से १८ वीं शती के अन्त में नाथद्वारा शैली जोर-शोर से अपना विस्तार पाने लगी। ये चित्रकार अधिकतर कपड़े पर चित्राकन करते थे जो श्रीनाथजी की पिछवाइयों के रूप में प्रचलित हुआ। इन पिछवाइयों का अकन ठेठ लोक-कलात्मक शैली में हुआ है। माता यशोदा के चित्रण की प्रमुखता के कारण स्त्रियों की आकृति में प्रौढता, शारीरिक स्थूलता और भावों में वात्सल्य की झलक विशेष दर्शनीय है। पुरुषों में गुसाईयों के पुष्ट कलेवर बाल-गोपालों की ग्रामीण आकृतियाँ तथा गाय, बछड़े, चूँ, निकुंज आदि का अकन सरस एवं सौम्य बन पड़ा है। इन चित्रों में लोक-जीवन की पूर्ण छाप है, इसलिये ये चित्र लोककला के सच्चे प्रतीक हैं।

राजस्थानी चित्रकला की सबसे बड़ी विशेषता है काव्याकन। काव्य को आधार बनाकर चित्र अंकित करने की यहाँ परम्परा रही है। लोककथाओं पर आधारित चित्र तो लोककला के चोकर हैं ही पर उच्चकोटि के साहित्य पर आधारित चित्र भी लोकतत्त्वों से प्रभावित हैं। प्रारम्भिक चित्र अपनी शैली-गत विशेषताओं के कारण लोक-कला से सबद्ध हैं। भक्तिकालीन साहित्य जैसे सूरसागर, परमानन्दसागर तथा अन्य फुटकर भक्ति पदों पर आधारित चित्रों में भी भक्तिकालीन लोकजीवन का यथेष्ट पुट द्रष्टव्य है। दूसरी ओर रीतिकालीन अर्थात् रसिक प्रिया, विहागी सतसई, रसरज आदि काव्यों को आधार बना कर जो चित्र मेवाड़, वूदी जयपुर, बीकानेर आदि शैलियों में निर्मित हुये हैं, उनमें रीतिकालीन मोनाकारी पच्चीकारी और वारीक अलकरण का विशेष प्रभाव है। ऐसे चित्रों में सामंती परिवेश की पूर्ण छाप देखने को मिलती है।

राजस्थानी चित्रकला में जो चित्र लोक-कलात्मक शैली में अंकित किये गये हैं उनमें रंगों का प्रयोग भी लोककलानुक्रम ही है। मिट्टी और पत्थर से बनाये गये ऐसे रंगों का प्रभाव सहज मौलिक है। ऐसे चित्रों में रंगों का नालमेल अधिक नहीं हुआ है और वे अपनी सूचक अवस्था में ही प्रयुक्त किये गये हैं। सूचक अवस्था का सबन्ध प्राचीनतम

रंगा स है। ऐसा लाकर आकर रंग प्रायः ऐतिहासिक काल की मुद्राओं से निकलकर अमूर्तता गला जन गला मुद्राओं गली और फिर राजस्थानी शैली में विपरीतता प्रयुक्त हुये हैं। जाग चलकर रंगा की ये सूचक अवस्था टूट गयी और रंगा का सम्पूर्ण दान से आनन्द हाकर हारमनी की ओर अग्रसर आ। इस प्रकार राजस्थानी गीत की आकृतियों पर रंग सामनी परिवर्तन की चमक एक म आपनी सहज सूचक अवस्था छोड़कर एक दूसरे में घुस मिट गयी। राजस्थानी चित्रकला का लक्षणात्मक चित्रण में रंगयोजना भी अत्यधिक सहज है। गान पीत नील हरे कान रंगा का आकाश उनका सहज प्रयोग भित्ति चित्रण की परम्परा का परिचायक है।

साथ में राजस्थानी चित्रकला का अविभाज्य चित्र विषय गली एवं रंगयोजना की दृष्टि से आकृतियों में अत्यधिक प्रभावित है। भारतवर्ष के ही नहीं ससार भर के अनेक मध्याह्नक वाद्यचित्रों तथा चित्रों पिछवाले तथा अग्रवाले पक्षों में इन चित्रों में सुगम भव है। ये सभी हैं कि अनेक अनेक धरो रंगों का सामूहिक परस्पर के प्रति हम और हमारी सरकार तनिक भी आकर्षक नहीं है।

•



राजस्थान का किसान गाता है !

डा० मनोहर शर्मा

पेठ लान० एम० लइया काले
राजगढ़ (झोखावाटी) राजस्थान



राजस्थानी लोकगीतों में कृषिकार का सम्पूर्ण जीवन गाया गया है। खेती सम्बन्धी कोई भी काम नहीं है जिसके साथ अनेक गीत जुड़े हुए नहीं। जमीन को साफ करने में लेकर अनाज को घर पहुँचाने तक के सभी प्रसंग गीतों में गुंजायमान हैं। ये गीत श्रम को नरम बनाने में असाधारण योग देते हैं। किसान का मन गीतों की राग में इतना रम जाता है कि वह अपने तन में किसी भी प्रकार के श्रम में थकान अनुभव नहीं करता और पूर्णतया कर्मठ जीवन का आनन्द प्राप्त करता रहता है।

खेती के गीतों की रमयांग जरागमन के साथ प्रवाहित होती है। मोगे के देश राजस्थान में वर्षा—मगन के समान सुन्दर समय और क्या हो सकता है ? इस समय जड़ प्राकृतिक और चेतन जीव सभी उत्कृष्ट-विकसित हो उठते हैं। किसानों के लिए तो यह अवसर जीवनाधार ही है। ऐसे अवसर पर उनके हृदय की राग अपने आप गूँज उठती है—

सुरंगी रत आई म्हारे देस,
भलेरी रत आई म्हारे देस,
मोटी-मोटी छाट्या ओमर्यो, ए वदली,
तो छाट-घडे के मान, मेवा-मिसरी
सुरंगी रत आई म्हारे देस, भलेरी० ॥
मुन्धाणो मोज्याणो सँ भर्या, ए वदली,
तो धोल-पालियो ठेलम-ठेल, मेवा मिसरी,
सुरंगी रत आई म्हारे देस, भलेरी० ॥
यो कुण घोवे बाजरो, ए वदली,
तो यो कुण घोवे हरिया मोठ, मेवा मिसरी,
सुरंगी रत आई म्हारे देस, भलेरी० ।
ईसरराम दावे बाजरो, ए वदली,
तो कान्हीराम दावे हरिया मोठ, मेवा मिसरी
सुरंगी रत आई म्हारे देस, भलेरी० ॥

“हमारे देश में सुरंगीरत आई है, हमारे देश में वडी भली ऋतु आई है। अरी वदली, तू काकी मोटी बूयो में ब्रम्भ पडी है एक एक वूद एक घडे के समान है। हमारे देश में मेवा और मिसरी के समान सुरंगी ऋतु आई है।”

“मुन्धाणो” और मोज्याणो नामक ऋच्वे जोड़ पूरे भर गये हैं। ‘धोलपालियो’ नामक पक्का तालाव ऊपर तक गहरा हो गया है। वदली, हमारे देश में मेवा और मिसरी के समान सुरंगी ऋतु आई है। हमारे देश में वडी भरी ऋतु आई है।

बाजरा की वारदा है ? हर भाग बीन बा र है ? ह वन्नी हमार रंग म मवा और मिथी र ममात
अनु आई है हमार रंग म वडी मली ऋतु आई है ।

इसरराम बाग बा र है और बाग राम हर भाग बा र है । ह बाग हमार रंग म मवा और
मिथी के समान गरली ऋतु आई है हमार रंग म वनी भत्री ऋतु आई है ।

हम रंग व गिरन मही-मव म पूछा अपना खुद गर सजाता ह । सवन गोमा लव मय बा बातावरण प्रर
जाता है । रंता म हन चरा रंग ह । राखस्थान बा बिमान बाता हमा भी जाता है । गाये बिना तो उमर र । र
जा जाता है । जय प्रगति म सवन आनंद है । ता वह उमर अग्रभागत कम रह सकता है ? जलाई व ममय बा
महा गीत सुप्रसिद्ध है । यह गीत बाफी रंभा है और रंगम गो भत तजाजी की जीवा गाया गाइ जाती है । बाण
लोखना व रंग म पूजित है । गीत बाफी ऊच स्वर म गाया जाता है । जब बिमान डग गाता है ता माना सम्पूर्ण
बातावरण भा उसा माय गाने रंगता है । तजागीत राजस्थानी हल्लाहा बा स्वस्तिवाचन है । यह उनका जीवन बा
गीत है ।

गीत व प्रारम्भिक बाग रंग प्रकार हैं ।

भरियाजी भरियो मेवातिया जोम गहारा साइसर रे

भरियोजी भरियो मेवातिया म जोम रे

बोई बोलन भी लाग्या रे पणवा बडा दूपरा ।

घालजी घाल मयलिया री बाल रे गहारा साइसर रे ।

कोई सरतो तो उतरयो रे बीमारी बेग लाग्या ।

सू-याजी सूयो घर घर हल्लाज रे गहारा साइसर रे

बाई अ लये तो अलिये बा रे रैनी भी मे लागियो ।

म मर लाइल बेग बाग्लो म पूरा वम मर गया है और व रंग म पणहु पणी बोले लग है ।

ह मरे गाने बेग बाग्लो बा ठडा हवा चने गी है अब मर्मी की नयन मित्र ग है और बीमारा लग
गया है ।

ह मर लाइल बेग अर घर घर म हन का गात्र लवार दिया जा रहा है और वाम पक्षी व सभा लाग
रंगा व वाम म जग पड़े है ।

यन बा बुजार् व बाग तिलाण अयवा निराई होनी है । जब गान व बोले हुए वन जा जान है ता अवा
वस्त्र और वस्त्र पर घात म उनकी रखा करना जरूरी है । अयवा आन वड गी पाता और उमर पति ममान हो
जाता है । इन बाय म बीमारा बा आरंभकता जाता है । अन मयवत रंग गग रंग जा । हा पूरा कर बा पला
की जाता है आगगा व मय बिमान उस यन म हल्ला जा जाती है । बिमारा निराई वय बिमान—गिरवार पर म
वग गाता है । म मय मामूली रूप म उमकी निराई कर जाता है । रंग अयवतवा रंग रंग जाता है । रंग अय
मर पर यन व मालि बा मय गाविया व मल आवा आर म माठ भजन बा रंग करवा पणता है । इन बा
माया म रंग वग जाता है । रंग व अयवत पर अये हने रंगवार बड उ माह घोर रंगि म वाम करम
है । व वाम करन मय गाने भा है । यह मामूली रंगमगात बहा प्रिय रंगता है । रंग मय रंगि : विपवा व प्रचलित
गग ऊच स्वर म गाव जाता है रंग गिरवार रंग है और इन मूत्र म प्ररंगा बा बाग है वर बुा रंगे म
रंगता है—





घर जाता, ध्रम पलटता, त्रिया पडता ताव ।
 तीन दिहाडा मरण रा कहा रक कहा राव ॥ हो
 पावू कहू क परमराम, अरजन कहू क भौव ।
 तेरा परवाटा कृण गिण्या, धन धाधल का भौव ॥ हो
 काले मू ह की गादडी, खाया मूना खेत ।
 वासी फौज हमीर की, लेमी छाल ममेत ॥ हो
 सिध गमन सापुरम वच, केल फले इक वार ।
 तिरिया तेल हमीर हठ, चढे न हूजी वार ॥ हो

निगाई के समय अनेक गीत भी गाये जाते हैं । समूहगान का एक नमूना यहा प्रस्तुत किया जाना है —

तन्नं ब्याको फीकर लाग्यो, छोरा राम धनिया ।
 तू तो माडो कैया होगो, छोरा रामधनिया ।
 तेरे दो भाया की जोडी, छोरा रामधनिया ।
 तेरे दो भावज कमावै, छोरा रामधनिया ।
 तेरे चढवा ने दो घोडी, छोरा रामधनिया ।
 तेरे दो दो ऊट लदीजै, छोरा रामधनिया ।
 तेरे दो दो भैंस्या हूजे, छोरा रामधनिया ।
 तेरे च्यार च्यार गाया हूजै, छोरा रामधनिया ।
 तेरे ऊचे चोक तिवारी, छोरा रामधनिया ।
 तू तो काला कैया पडगो, छोरा रामधनिया ।

“अरे रामधन, तुझे किस चीज की चिन्ता लगी है जो तू कमजोर हो गया है ?”

“रामधन, तेरे दो भाइयो की जोडी है और दो भाभी हैं, जो सब कामो मे पूरा सहयोग देती हैं ।”

“रामधन, मवारी करने के लिए तेरे घर मे दो घोडिया बघी हुई हैं और घोभा लाने के लिए घर मे दो ऊट हैं ।”

“रामधन तेरे दूध देने वाली दो भैंस और चार गाये हैं ।”

“रामधन, तेरे मकान का चौक ऊंचा है और फिर उममें तिवारी है । इनने सब ठाठ होने पर भी तू काला पड गया है, कैसे ?”

इस गीत मे सुखी एव सब प्रकार से सम्पन्न तथा मद्भावनापूर्ण गृहस्थ की यशोगाथा गाई गई है, जो खडी खेती के वातावरण मे बड़ी नरस लगती है । खेती मे कठिन काम करने के कारण और धूप की तेजी के कारण किसान का बेटा अपने न्वाभाविक रंग को छोड कर काला-ना प्रतीत होता है परन्तु यह उसकी तपस्या का रूप है । इस गीत मे प्राचीन भारत के सुखी एव सम्पन्न किसान जीवन का मनोरम चित्र देखते ही बनता है ।

निनाण के समूहिक गीतो के बाद खेत मे यही अवसर “लावणी” (रटाई) के समय फिर देखने को मिलता है । इस अवसर के अनेक गीत और ‘मिन्धूटे’ लावणी के समय फिर गाये जाते हैं परन्तु यई गीत अतिरिक्त भी हैं ।

उत्तम गीतः (हमिया) गान विगिरा^३ । यः समग्र किन्नर क लिए अपना लक्ष्य वा वल प्राप्त वा है । यः उत्तरी एण उत्तम गीत य परा^३ । गान गत प्रकार है । —

उभूय दरि न ओ देवर आयणी ओ भल सावणी ।
 देवर तो मोरई ओ आपां करवा ओ भल सावणी ।
 सास तो सराव मेरा देवर करवा ओ भल सावणी ।
 नीम तउ सुफारी वो देवर घवा दे दांतियो ।
 तन अरल क्षेत्री की घवाघ ए भावज लरो सो दांतियो ।
 हांडी तो दिवा दे ओ देवर चण्ड बान् बी ।
 म तो बुद्धे क रस म ओ देवर वावली दांतियो ।
 पे तो धिरम क पन्थार देवर बाघोनां दांतियो ।
 पे तो बूछे के रलज तो भावज बाघाना दांतियो ।
 पे तो पूपट के कटवारे भावज बाघेनां दांतियो ।
 मन घपरिया घवा दे देवर म्प व झोल का ।
 म तां एही व टिज व ते देवर बावला दांतियो ।
 म तो दरवां उरवां बाघली देवर लरो सो दांतियो ।

मर लक्ष्मी पूरन की ओर ध्यान धन। मेरे न जाने का समय आ गया है। दफन भोजी मिलाने के लिए बटाई करे
अभिषेक करा जा मेरी सांग करन लग।

मर देवर नाम व नीज सखी है । उमस मभे गरुडगिदा बनवा ॥
भावत लुण्ठार (मणवत्त लो) वा जहटा मा हृमिया माया दया ।

मर दहर उग हृमिव वा हाहा (गरउने वा भाग) चन्त वा लखडो वा यतयाना । म अपने बुद्धि का
हिलान हल नेम गोघो पर थाऊगी घोर तुम यवना हृमिया मिर क टिरये वा हिलान हुव चल्ता ।

भाष्य सुम अथना हगिया हाय वा पूरा ऊपर लगी श्रुत कथना । उय आनघूषर वा हिलाते हूय कथना
द्वय मर त्रिय वा । क घषर सी लयथाना । भि गहा क त्रियर न आवाज कत हूये अथना
हगिया कथना ।

मैं गन की गभा टूटिया म भल म हसिय का प्रयोग करूंगी ।

इस गीत में भागी वर का गवां गवसा में बाग और अरु वा सुषुप्त है । हल में जो बिना प्रारंभ होता है उसका पक्ष हृदयेय प्राप्त किया जाता है । वह हृदय अनेक-रूप से वर मान आपावकन निम्न गान-धारा प्रसारित करता है । जब दगावा मासुष्टिक मान ऊंच स्वयं से अनेक स्थाना है । मां गाता मधुमा श्रुति या इतमें अनेक पक्ष दा लगता है ।

शुभा व शान्ति म विमान क मास उमका पत्र की साधारण जायज है। यदि गुरु है। परन्तु धर्मो पनि न
मास पग भी माता का मास ब्रह्म सत्त्व प्रकृति नही बनती रहनी ।

आन विमान पवित्रा न भोजन वा न च मरणं तस्या स्वामिनिह विद्ये पश्य ॥ त्रिमये हृदि नमः न। मातुल
पात्रा प्रद हृदि ॥





वाली तो पीली ए मा मेरी वादली, घमक र बरस्यो मेह,
 वावोजी ने, कहज्यो, हाली ने बेटी नल देई ।
 सोला बलदा को ए मा मेरी नोणो ।
 आठ हाल्या की झाती छाक,
 वावोजी न कहज्यो, हाली न बेटी मत दीज्यो ।
 छोर जिठाण्या सँ मा मेरी ओलणो,
 कुण उठावे झाती छाक ॥ वावोजी ॥
 ऊचो तो घालो ए बाई म्हारी चू तरी,
 मचक उठायो झाती छाक वावोजी ॥
 घोरा तो घोरा ए मा मेरी में फिरी,
 कटे ए न लाग्यो म्हानें छेत ॥ वावोजी ॥
 धीरे तो दलती ए मा मेरी आसदी,
 झक्कर दुलगी बाला छाट ॥ वावोजी ॥
 टीव तो ओलें ए मा मेरी टीवडी,
 जँ तले हालीउ रो छेत ॥ वावोजी ॥
 देवर जेठा सँ एमा मेरी ओलणो,
 कूण तो उतारं झाती छाक ॥ वावोजी ॥
 काठो तो कसत्यो ए बाई म्हारी लाडणो,
 मचक उतारो झाती छाक ॥ वावोजी ॥
 धीरा तो धोरां ए मा मेरी धाजरो,
 ढँरा मे कोड्याली जगार ॥ वावोजी ॥
 ढेरा तो ढेरा ए मा मेरी काकडी,
 टीवा पर गुडे छँ मतीर ॥ वावोजी ॥
 कोठी तो कुठला ए मा मेरी सँ भरया,
 बाकी को गाड्यो ऊटी खास ॥ वावोजी ॥

“सुसगल मे नई बहू आई है । बेटी का मौम है । बहू घर के धन्धो मे लग जाती है और अपनी माता को समुराल के सम्बन्ध मे सदेश भेजती है । वह कहती है—

“कालि-पीले वादलो की घटा उमडी और काफी जोर की वर्षा हुई । मेरे वावोजी को कहना कि उन्होंने हल चलाने वाले किसान को अपनी बेटी देकर बड़ा अच्छा किया ।”

फिर घर के काम का भारी बोझा उस पर अचानक आया तो वह कुछ घबरा गई और फिर उसने नया सदेश इस प्रकार भेजा —

“माता, यहाँ सोलह बैलों को चारा-पानी देना पड़ता है और आठ हल चलाने वालों के लिए भारी मात्रा में खेत पर भोजन बनाकर पहचाना पड़ता है । वावोजी ने कहना कि ऐसे किसान के घर में अपनी बेटी कभी न देवे ।”

मरी बराना और गिरानी हार नी ॐ । गिरानी जना बनी छार (भीजन) मेरे गिर पर बीन उ । व ? बाबाजी ग जना कि एव किसान का जपनी बनी बसा न दन ।

जब उत्तर म उनका माना सत्य भिन्नानी ॐ वे । बसा मा एव बचतरा बसा गी और उस पर एव का पाव रखर कि तार कातर उव उताता । एव बरन पर तुम्हें समुदाय मली लोण ।

माना मे गिर पर छार ता भार रखर छाया (ग ग) म खुब घमी पर तु मुभ ता गी छत मिता गी गी । तुम बाबाजी म व ना कि एव घर म अपना वे न नवे ।

माता पर गी । उनरत समय मरा पर तारा किसान और छार म रखी न छार बिगुर म । बाबाजी म वना कि एव घर म अपना वे न दन ।

माना पर वी । तब वी छछ छारा गी है । उसर दूगर तरक आधर म न घन मिता गी गी । बाबाजी म कहता कि एव घर म बनी न नवे ।

माना मर दवर और जठ नवे य ह । फिर जनी नी छार का भार मेरे गिर पर म बीन उताते । बाबाजी म कहता कि एव घर म किसान को वी अपनी बनी न व ।

माना म उत्तर भजा— वेता जपन घाघर व गी वी अछा तरक बमनी और फिर तार गी कर मचन ग गिर का छार नाच उताता । बाबाजी का यह कहना मितावा कि किसान का अपना वेनी नवर उनी अछा काम किया ।

अपन घन ता समय उ वर जप म उनर सत्य भेजा— माता हमारे घन व टाली पर मरपर बाजरा घन है और तान बाकी जरा पर मूरार है । माना गिर बाजी परती बाजरा म मरी हुई है और टीका पर मार कर लूटा रू ॐ । बाबाजी का व ता कि एव घर म वी नवर उनी वडा अछा काम किया ।

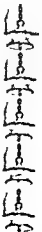
जब जगन परन पर घन का जनाघर म आ गया ता फिर उगन अपन पोतर सत्य भेजा—

माता माघ घर म गिर छट बने ताता कुटाल (अनाज रखा व भाट) ॐ वे म न म और फिर भी बाकी अनाज गुरातिन करने व जिय बसा ता उव जमीन म गहरी गा घाव (अनाज रखा का मरदान गी) बसा कर उगम भर दिया । बाबाजी म कहता कि एव किसान का घर में अपना वे । माघ भी मना हुआ है रने ।

ग प्रहार मारा किसान अपन थर व बयन अपन जीवन का हा नदी व हमारे दग व जीवन को भा मुग्रा एवं समझ बाता म बाग्यान करगा है । अब व मन्मान का पाव है ।

जय जगत जय किसान ।

•



राजस्थान की मण्डन-कला (मांडणा)

कु० स्नेहलता



बँठने के स्थान को कुत्ता भी पृष्ठ में भाड़ लेता है। मनुष्य को विनोदना तो उसके आगे घटने में है। मनुष्य की पशु-जीवन में आगे घटने की यही प्रवृत्ति उसे कृता-प्रेमी बना देती है। पर या छोटा-बड़ा पशु-पक्षी होना तो गृहस्वामी की आर्थिक दृष्टि पर निर्भर होता है, परन्तु उसका पशुत्व का उपयोग निम्न ही गृहस्वामिनी की मृत्वि-मत्पन्नता का परिणाम होता है। इसीलिए 'गृहिणी गृहमृचये' की उक्ति लोक में प्रचलित हुई है। मन्त्र के सबसे प्राचीन प्राण ग्रन्थ ऋग्वेद में भी कहा गया है—'जायेदन्तम्' अर्थात् जाया ही पर है। जला और ज्ञान-विज्ञान का आश्रय गृहस्थ-जीवन ही माना गया है और गृहिणी उसकी मृतधार्मिणी मानी जा सकती है। नारी ने ही मर को अन्न से पूर्ण बनने का अवसर व मोक्षार्थ प्राप्त होता है। आत्मीय जीवन-यज्ञ में भाग लेने का अधिकारी नहीं होता। धर्मा-स्वरूपा नारी ने मिल कर पुष्प मत्त-स्वरूप बनना है और उन दोनों का उत्तम मिश्रित स्वर्गलोक का मृत्जन करना है। फल का माधारण सौपडा भी नारी के हाथों में सम्कार लाभ करके ज्योतिर्मय-जीवन का अद्विष्टान बन जाता है।

वर और वधू के रूप में पहली बार मिलन भोगों को 'चतुर्मार' (चित्रमाला) में परिवर्तित कर देता है। यही पति की महचरी बन कर वधू पहली बार अपने आगत होना का सम्मान-वन का रूप देने और ओवरी को कला के बागे पहना कर देवगोक के विमान जैसा बनाने का मन्त्र लेती है। जीवन भर उसका वह मन्त्र 'नवो नवो भवति जायमान' के रूप में स्मकार होता रहता है। अभावों में अमम मृत्यु को प्राप्त होती हुई आशाएँ—आकाशाएँ भी उसको इस मन्त्र में नहीं डिगा पाती। मन्त्राकुनियों ने रूप में हृदय की भावनाओं को साकार रूप देने रहना ही उसके जीवन का व्रत बन जाता है और वह देवताओं को मनानी हुई प्रार्थना करती है कि कहीं अपने व्रत को अधूरा छोड़ कर वह मर न जाय। इस रूप में उसका छोटा-या सकल जीवन में मृत्युजयी मायना का स्वागत नापान बन जाता है। सुखदुःखमयी भावनाओं की लोन्गीतों में अभिव्यक्ति होती है तो जीवन के उल्लास और आभावाद को लोक-कलाओं में अभिव्यक्ति मिलती है।

विवाह के उपरान्त पतिगृह में प्रवेश पाने पर पहला स्वीकार आते ही कुत्रघू में माडणें माडने के लिए कहा जाता है। नणद, जिठानी पडोमिनें आदि माडणा माडने में उसकी सहायता कर सकती हैं, परन्तु माडणें की रेखाकृति तैयार करने का काम वधू ही करती है। यह एक प्रकार में उसकी सुधरता की परीक्षा ही होता है। वचपन से ही माता, बुआ, भोजाई आदि ने उसे इसकी निष्ठा मिलती है। सबसे पहले वह 'भैतल' देती है।^१ इसमें माडणा का स्थान समतल हो जाता है। नूत्र जाने पर वह राती गार को गोवर में मिला कर लीपती है। जितने दिनवार में माडणा होगा उतनी जगह में वह पुन गोहली देती है और उस स्थान पर हिरमिच में माँडणें की आधारभूत रीगटिया (रेखाएँ) 'टोलती' है। उनके सहारे पाडु या खडिया मिट्टी में माडणें की रेखाकृति उठाती है। सीधी रीगटियाँ बीचने

१ भैतल शब्द संस्कृत भक्ति शब्द से विकसित हुआ है। राजस्थानी के भात, भैत, भैतल आदि शब्दों का प्रयोग भक्ति के अर्थ में होता है।

जय मारवाड का सन्त पुनीत

श्री गणेश मनि गारुश्री साहित्यरत्न

जय मारवाड का सन्त पुनीत ! थोले 'तन जय तेरी हो विनीत !

तमसामयी निगा घोर-र तू आनुसम प्रवटा कुल म
खिले परिजन व आनन ज्यों कमलदल सुखल म
गंगावरया बीत चली और तरणाई आकर फूट पड़ा
तभी सयम रश्मि बरसने की एक विराग रत्नाभटपड़ी

बला तू करन अबनी जीत ! जय मारवाड का सन्त पुनीत !

अंतरिक्ष-सा निर्मोही बन साधना मे बरम लड़ाया
घोर नासन की सेवा का सुदृढ़ सकल्प बनाया
आये थे विघ्न कई बर म फिर भी न बनते तू डरा
धम-धमस्तकों ने भय बिलाये दहाध्येय पर मेह ता लड़ा

निभाता धम की सत्य रीन ! जय मारवाड का सन्त पुनीत !

महधरा की पावन धरा पर, जहाँ भी पड़े तेर चरण
सप-सगठन और धम का होता सानों यहाँ नया वरण
गिनियाबार बिटाने म फूँक निया निज जीवन बल
सत्य-सध्य बतलाने मे विविध रत्नता न मन म छल

जय हो एकता के सुमीन ! जय मारवाड के सन्त पुनीत !

पाण्डित्य तेरा अति इलाध्य साहित्य भी तेरा है खरा
अभुत तेरी यग देला तू नन्दनवन सा हरा मग
तू बेसरी सत्य ही कमरी गिरा म अमित ओज-वन
करता है तू अभिगुजित समाज हित का गीत प्रतिपन

बनी रहती सदा सनीम ! जय मारवाड का सन्त पुनीत !

जग धुति से बरक गियो पर अंतर मे तू नवनीत
वयातु कृपालु आधुनता की बहती जिवेनी अपरिमित,
सत्य जयन्ती पर हे सपत्नी करते हृष तेरा अभिनन्दन
महक तू चढ़ दिगि दिगि म क्यों धूप मलयज चन्दन

रपता सापता से अश्रोत ! जय मारवाड का सन्त पुनीत !

•





चित्रण तो अपना काम करने चला जाता है। दीवारों पर पोते देना आगन में चार माटना द्वार पर चौद पूरना, घा फर्श को माटणे में मजाना आदि काम तो स्त्रियों को ही करना पड़ता है। गुट्टियाँ को ही पना रहता है कि होली दीपावली के माटणे तो लाल-मिट्टी और गोबर में आगे आगन में माटे जायेंगे और नीचे आदि के माटणे प्रमानों से नोबर में लीपी हुई गाँव-भूमि पर ज्यादा गुलेंगे। द्वार पर चौक पूरने के लिए गट्टिणी हल्दी और आटा देने हैं। मुलम होने पर रंग-विरंगी गुलान का प्रयोग भी किया जाता है। मायागण समय पर लिये आगन में केवल पाच या छठियाँ मिट्टी में माटे जाते हैं होली दीपावली नवरात्रि आदि पर्वों या प्रियाहासि के अवसर पर ग्वाहृति गेह या हिमिच में तैयार की जाती है और अरण आदि में पाच या छठियाँ का प्रयोग होता है। जौगन बड़ा हुआ तो उसके बर्ग या आपतासार का छटि में रखने हुए बड़े माटणे माटे जाते हैं। आगन लम्बा अक्षिण हुआ तो दो या तीन माटणे भी चित्रित किये जा सकते हैं। ऐसा ही बड़ा माटणा विवाह के अवसर पर माया के घर में उसके सारे कर्ण पर अंकित किया जाता है। उसे राजस्थानी भाषा में पाटण (मन्वन् प्रमरण-कैलाव का लोभ-भाषा में विद्वन्मन्व) कहा जाता है। विविध भक्तियों में दीवारों और पसरण में कर्णों के सुसज्जित होने के कारण ही कदाचित् घर-घर के प्रथम मितन के स्थान इस प्रकार को 'चतुर्मास' भी कहा जाता है। उस घर में प्रवेश को लक्षण ही लोभ 'घर में लेना' प्रचलित हुआ है।

कैलदि श्रीवमदराजेन्द्र-विरचित 'शिवनत्तरनाकर' में ६८ 'लालाजी में विवाहेपन का भी उल्लेख है। 'मम-रागणसूत्रावर' नामक ग्रन्थ में इस कला का विधद रूप में विवरण दिया गया है। वहा चित्रण के ६ अंग दर्शित हैं— १ रूपभेद अर्थात् रंगों की मिलावट आदि का ज्ञान, २ प्रमाण अर्थात् दूरी, गहराई, अनुमान आदि का ज्ञान, ३ भाव और लावण्य-योजना, ४ सादृश्य, ५ वर्णना अर्थात् रंगों का नामजम्ब और ६ अंग अर्थात् रचना-कौशल। भारतीय चित्रा इस कला में बड़ी निपुण होती थी। आज भी वे इस परम्परा को निमाती चली आती हैं। सामाजिक और धार्मिक उत्सवों पर दीवारों और फर्श पर चित्रित किये जाने वाले माटणे उनकी माझी देने हैं। सीमित मात्राओं और रंगों में स्त्रियाँ घर-आगन को चमका देती हैं।

राजस्थान के विशिष्ट माँडणों में कुछ के नाम हैं— चौक, खोल टपकियों के रेखाचित्र और स्थानीय उत्सवों मन्वन्धी माटणे। चौक कई तरह के माटे जाते हैं— यथा, मुकुट का चौक, मिश्रामन का चौक, जहरी का चौक, जलेबी का चौक, स्वस्तिक-नीक आदि। राजमहली आदि में गुप्त, आवेट, नीला-विहार आदि के चित्रों के चौक भी बनाये जाते रहे हैं, परन्तु अधिकतर वे चित्र भित्तियों पर ही अंकित किये जाते थे। दीपावली का गायों और बैरों की पूजा करते समय उनकी पक्ति के नामने एक लम्बा माटणा माटा जाता है जिसे खोल कहा जाता है। यह लगभग दो हाथ चौड़ी होती है और इसकी लम्बाई उतनी होती है जितनी दूर तक गायें या बैल पूजने के लिए खड़े किये जाते हैं। इसके पाम सामने की ओर हल-जूड़ा भी माटा जाता है और पीछे की ओर गायों के खुर के निशान माटे जाते हैं। ऐसी ही खाल विवाह या गगोत्र (गगोत्सव) की रमोई के समय या घर में मेहमान आने पर बहा माडी जाती है जहाँ उनको भोजन के लिए बिठाना होता है।

टपकियों के माटणे महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशों में भी माटे जाते हैं, परन्तु राजस्थान के ऐसे माटणे अपनी विशिष्टता रखते हैं। उनमें जालियों के नमूने अंकित किये जाते हैं। तीज, गणगौर आदि राजस्थान के विशिष्ट उत्सव हैं। इनमें मन्वन्धित माटणे राजस्थान की अपनी विशेषता रखते हैं।

ये माटणे गृहमज्जा के मादन नो हेते ही हैं, इनका भावात्मक महत्व भी कम नहीं है। इसीलिए प्रत्येक उत्सव में मन्वन्धित माटणे अलग-अलग तरह के होते हैं। भारत की अध्यात्म-प्रधान संस्कृति की झलक इन माटणों में

३ माया के घर में विनायक बिठाने से लेकर अन्य सारे पूजाकार्य सम्पन्न होने हैं और इसी में मुहगरान की व्यवस्था की जाती है।

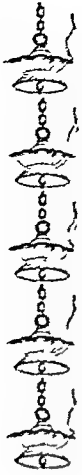
वर्णित पुत्र आदि का प्रयोग नहीं किया जाता। भाषाकार आकृतियाँ का उद्गार भी बिना किसी उपकरण के साधारण क हाँ उठाना जाता है। रेखाङ्कित का उद्गार सदा ही जान पर सीक के साक्षात्कार विधान या चौड़ाई द्वारा ही पाठा निरुद्धा रीतिगत्या से भराव दिया जाता है। भराव करने का भरण क्या जाता है। कौी काड़े का बही पूर का भीर पनी तो। या भारियन का भरण किया जाता है। भरण पूरा। जान पर आगमन चार गीन ग्या भरण का धाव कर उनका निरुद्धा रीति या में भरा जाता है। कामयाव गुरू शब्दों आदि उद्गार जान है। भाषा के आगमन मन्त्र पान बाइका गाय क रार स्वस्तिक आदि माइ जाने हैं। प्रत्येक भाषणा विधान प्रकार के प्रतीकमय अथवा ध्वनिन करता है। मीमिक प्रत्येक स्वरार्थ का मोड़न अलग प्रकार के होते हैं। वयु के ज्ञान मोड़नी में गान रराकति उठान भरण करने भरण भरण अथवा कृति का बचाने आदि का घर का घना दूरा का मोड़ पनेमिने व उठान म दयना है। और अपन धनुभन के आधार पर वयु के जमे हुए गाय का मासी बना कर हम नवीन क स्वा की मन्त्रका की धावणा कर मनी हैं और नया वयु की प्रगता करने न। यचना पर मु यनि वयु के कन्तमय रचित की कमा। उवका गाय गिन के नेम म जमा नूना न ही प्रपका अन्तमय के कारण वयु हम मृत्त ही मृत्त का विधान ता गय मयानी निर्या गवा करने गता है कि वयु वमी क म्यो का मुग्धभाषन से भर मयेगी।

माइण मार भारत में ही माइने जाने हैं परन्तु राजस्थान का मा भी न म नेक म जवा गिन कीपन और अन्धिय पुक्त कात्मक अभिवि का परिचय दकर म प्रप की वयन जाय वता दिया है। माइण का काँ प्रनि का म अन्धिय या एक स्वाँ हा मा क्या जान। म सूचना के अनुसार काल वय—हामायाइ क्षेत्र म ही ३०० म अधिक माइका के प्रनिम हो तु है। म म कि मारे राजस्थान के भाषणा के प्रतिक्रम अमा लकन न। गिन का गद और भाग गिन की म अमृन्ध विधा का स्वाधी म म मुग्धिय रचन की गि म अथ म काँ टाम काय मनी हुआ।

घर का गस्कार करन क विन गतिनी प्र तव हाता—पाव। पर घर की नीना का लायना है। या म दाँडू या छडिया म लायना के पाता जता है। पक्क मयान को वून म पोता जाता है। मात का विनय मिया मा मीट्री म पाव दिया जाता है। गिर सीधी लगीरें सीक कर पोा र य जात हैं। काना म विविध प्रकार का मोन निर्यानी जाती हैं। कई गाँव में पात आधा दोवार मे भा डँक हात हैं। सीक विविध वयु पतिशे के गिन नीगमिड या गैजिमिक महापुर्णों र ररागिन या उनने बिमा लाइवि मुा काय के माकगिन विन अकिन रिय जाने हैं। मंथानि नव ववाग्म आदि के अन्तर पर हाँर के कल पर मयन कला आदि रामी पर गिजिया हाथी या श्वेगन वृमार आदि तथा अथ उपाव। पर बिमा न विधी प्रकार के मोरेनिक विन बनाये जाने हैं। धावन्मया का कात पर हात और नील रग मे उवार या वात्रे का पोछा कलमजिन यकिन दिया जाता है। नय वय के गिन रन्ना कमल हाते की गुमेष्टा का मयेन है। कमी मेवन मायिया या हाथ की पाप ही मन्ने मे या मन्ने न अकिन का जानी है। दावायना पर मेडे (मार का उतरा भाग) पर वरन् मयन का कडि मिडि सहिन विन अकिन दिया जाता है। पुम गम के अन्तर पर दोवार पर गान्ना म्या कर वेमाता का विन बनाया जाता है। सीप के रन का उद्यान करने समय विमूल और गान गिनयाँ रगा कर पूजा की जानी है। विन प्रगति के मार रन्मन गुण के प्रर गिन का और मात टगिना मन्-वद्धी या मन्मातुका के रूप म सुपात मजन्मति के प्रया है। गुगलिया का हाथ की पात लायना पर लावार उवका मिदूर वचिन करन पता जाना है। हाथ विन गति का प्रया है। य मय मनि पर अकिन होन माल मोड़न है। विद्यानि के अन्तर पर बिमर म। भाग पर विन बनात का प्रया भी प्रयनि है। इन विन म राजस्थाना जन जीवन की शरीरी देयन को मिल्नी है।

१. बमया या कडिका पाता की घटावी या बिहाई (अथ प्रान्ती में प्रचलित नाम) को बना जाता है। महा भारत वनपथ (२९०।१६) तथा कान्धरी में बडा और कडिका नाम प्रयुक्त हुए हैं। प्रतिगाम में दगरी पूजा की जाती है। यह उदा की दाविन-अजयप्रकति नाम होनी है। बिहाई के चीन भारत मर में प्रचलित हैं।

Handwritten signature or mark on the right margin.



- ७ टोलना—गोत्र या हिरमिच की आज्ञा देनाएँ गैचना । सभजन इसका उर्थ परिष्कार करना है । मूंग माफ करने के लिए मूंग टोलना शब्द प्रयुक्त होने हैं । गोहन्सी की नकाई करने उम न्यान पर रेखाचित्र अंकित करना टोलना कहा जा सकता है ।
- ८ पूजना—जाटा आदि भुस्व कण माडणा तैयार करना । सूर ने कृष्ण-जन्म के समय मोतियों के चौक पूजे जाने का वर्णन किया है ।
- ९ पीने देना—तिपाटे और पुताई के बीच में नटिया में नीची सीमारेखा का अंकन ।
- १० गैगटिया-देनाएँ ।
- ११ नरण-नगाव करना ।
- १२ भैतर-भवित्र, भक्ति दाना, पूर्ण माडणा माडने की क्रिया का छोटक, अर्थमशोच ने केवल माडने के न्यान को समतल बनाने के लिए गारा लगाना व तीपना ।

सी मिल जाती है। रमाइ धन पर भाँटे जान बान मांडणा में जवबहुमान पौराणिक कथातक की आर (वन कृता हवा पुत्रधम का विनायन करता है। साओ वर का प्रतीक है और गंधी द्वारा रर का गंधा बाधन की पारागिक गाथा की मत्ता का उपाधयणा करता है। चिडिया धनि सपणविद्या का मवर्तित करती है। हांग पर गल गल गल और गेहूँ की बालो मानी जाना है। उस समय यह प्रथा भी प्रचलित है कि वल्के गावर के गल गल गल गल और गेहूँ हाकिम गहन म धन बनाते हैं। मित्रया खाड डूने स जलती रर आग का गल करता है पर न रमर पद उसम गहूँ की बागिया की रेंक का दग्गी रना नी जानी है। यर रर बान का मान है कि आरमण और रता व साधन पारम्परिक प्रविश्याम का धानक है। सामाजिक सामुज्य रकी हांगी जग कर उनका आग का पुम कर्षा म उपयोग म लन म स्थापित होना है। बराइया का पुष्पयायी की अभि म धन बना कर याति नाम का साजन बना लना बालिग।

दीपावला पर माँटे जान बाड ह्म जड व चित्र कृपि प्रधान भारत की सामर्य क सूचक हैं। रर जाइया रिमर-योति का नाम करन की प्ररणा रती है। मि रमन का रीक गरर ररिडा व स्वागत क रिग मीना जाना है। पांडयानी आध्यात्मिक याति प्राप्त करन क रिग साधना करते रन क सकल क प्ररर करती है। प्राचीन का म गुरुकुला म जान समय रिग इसी भाष को प्ररर करन क रिग समिरयाणि ह्मर करता था। सफाणि पर कना माना जाना है जा भीतिक समरिडा रर सवतक है। एक गेवगीत म साधना की रई है—

रू हो भर कर रूय राइकी लोने र्हारा नाथ ।

रम प्रायना म जिम भाड का साधक रर म प्ररन किया गया है उस ही मांडण द्वारा सिड रर म प्ररर किया जाना है। राट की गम्यसम्यता क प्रतीक क रर म यट आनि वग रनाम कूल कल आनि को मांडणा म उक्तीण किया जाना है। रर रयाना पर माँण क भावो का र्याविड प्रान करन क रिग कलाकारा न उनका प्रमररररिग कर रिया है। रग मांडणा म समरर लरर और रीक विगप रर म उरनखरीप हैं। भारत क अनक भागा म पाये जाने वाले रना चित्र भी हाडरला का गरगिन ररन के गफ-प्रयल मान जा सकते हैं। कुल बाबनिया की जगत पर अनर रयाना पर रीर साडरसार आनि उक्तीण करते हैं। इनका उपयोग लाग लारी समय म मनारान के रिग करते है। रर रयाना पर रररूरा म भरणरीक अरिग विडे गय मिलने है विनम अरगीड काम बागभा क विम उरकाण रत है। शूछ जातिमा म गमभिधारे के सममान जान पर सडाक क रिग लम विर धना की प्रथा है। रमा रीना रटन कम है। अधिकांश रगी म लो शुगरिक भावा को रीन प्रतीकों क मांडण माड कर ररिग किया जाता है।

रमर है कि मांडण गेव जीवन मे अभि न सम्बध रखने है। ये विविध भावों को रक करन वाल प्रना कामर-मनेन मान जा सरन हैं जिनका उपयोग कल ररिगिया अपन धर-आगन को सजान क रिग भा कर रता है। ररररर का रिग नाम म अरिगिनि किया जाना इस बात की ओर सवत करता है कि प्रारम्भ म कभी रर को रीग कर उन पर चित्रारन करर भाव प्ररर रिये जाने रहे हगि। इन प्रकार मांडण रिगि क पूरज है और रर भी भावाकन के गगत साधन क रूप म प्रयुक्त होते हैं। उनका प्रतीकारक रररर का धम्यधन रररने पर रमागी रररुनि के धनक रररुन ररर हमार सामन आ सउने हैं।

मंडन-कला सम्बन्धी लोकभाषा क कुछ पारिभाषिक गवः—

- १ उठान—रेखाओं क सहारे मांडण की रररेखा लरी करना ।
- २ रीन—आयताकार मांडणा क बा लय में भी प्रयुक्त ।
- ३ गुलना—गुणीभित होना ।
- ४ रीरण—तिरछी रेखाए भर कर मांडण की गोभाए बनाना ।
- ५ गोहनी जडा मांडणा रररना है उस रयान को गोलाकार में लोचना ।

आभा—त्रिकोणमक बराहमक या गोलाकार ररनी रयान ।





३ गृहमज्जा मन्वन्धी माडण—वैमती मभी माडणो या उपयोग गृहमज्जा मे हाना है, परन्तु कुछ माडणे विभी प्रकार की प्रतीयात्मकता के बिना केवल गृहमज्जा के लिए उपयोगी होने ह। फुट, पत्नी, बेलें, विविध प्रजा की जालियो आदि के रेखाचित्र इस वर्ग मे आते हैं। अतिथि आन पर उनके स्वागत को देने मीन्द्रयं उपादानो मे सजाया जाता है।

४ पूजा मन्वन्धी माडणे—पूजा के लिए गणेश, शिव, गौरी, गोवतन, वैमाता आदि के रेखाचित्र प्रसार उनकी पूजा की जाती है। ऐसे देवविग्रहो के रेखाचित्र या उनके प्रतीको के मकेनचित्र इस वर्ग मे आते हैं।

मंडनकार

विशेष अवसरों पर मांडे जाने वाले इन माडणों को माडने वाले हाथ एक नहीं होते। सामान्यतः द्वार पर द्वागचार के लिए चौक घर की नाउन पूरनी है। मृत्यु आदि के अवसर पर माग पर शोक-मनन होता है, उस समय पर तीमरे, नवें या ग्यारहवें दिन लोपना और माडणे माडने का काम नाउन ही रहती है। विवाह मे नव्यादान के उपरान्त घर के पिता की गोद मे कन्या को बिठाने की प्रथा प्रचलित है। उस समय घर के पिता को चौकी पर बिठा कर पूजा जाता है—वस्त्रादि देकर उसका सम्मान किया जाता है। चौकी के नीचे हन्दी-चून का चौक माड जाता है। इसे कुल का गव या उसकी पत्नी माडती है। राखी के माडणे वहिन माडती है। वैशाख पर भी वहिन ही इस कार्य को करती है। वादक को पहली बार पालने में मुला पर बटा करते समय, अन्नप्राशन के समय, उसके पहली बार कही बरात मे जाकर लौटने पर या उपनयन आदि सम्कारों के समय माडणे माना माडती है। अन्य अवसरों पर कुल की शुभकामना मे मन्वन्ध रगने वाले माडणें वहिन-बेटिया माडती हैं, जैसे घर मे 'उत्तीग' (विवाहपरिनिता) आते समय या नाई के पुनजन्म होने पर विविध उन्मवो मन्वन्धी माडणे गुठवधू द्वारा चित्रित किये जाते हैं। पारिवारिक-जीवन के उल्लाम को व्यक्त करने वाले विवाहादि के चौक, माया के घर की परमर्ण आदि राखी-भूमियों द्वारा माडे जाते हैं। होली, गणगार आदि के माडणे भी काखी-भूमिया ही माडती हैं। माझी के भित्तिचित्र कुवारी रत्नाओं या व्याह के पहले माल सुवनियों द्वारा अपन पितृगृह मे अंकित किये जाते हैं। अक्षय-तृतीया पर णेल के रूने पर पलाज के रग मे ज्वार के पीये का चित्र रगले की पत्नी या परिवार मे मन्वन्ध रखने वाले चर्मकार की पत्नी माडती है। दीपावली पर आल गृहस्वामिनी गोवर पायने वाशी मेविका की महायता मे माडती है। गोवर्द्धन पूजा के समय माडणे पासपडौन की मृहागिनो के साथ मिश्रकर गृहस्वामिनी माडती है। पुनजन्म के समय देमाता का चित्र वाला की बुआ अंकित करती है। इस प्रकार लोकजीवन मे पाई जाने वाली विविधता के दर्शन यहां भी होते हैं। विविध अवसरों पर माडने वाले हाथ एक नहीं होते।

मांडणे के साधन

मीनों पर माडे जाने वाले माडणे हिरमिच या पलाश आदि के रगो मे माडे जाते हैं। कभी ऊँचे पीले लगा कर नीचे बची हुई जगह मे बटिया या पाडू मे भित्तिचित्र अंकित किये जाते हैं। नीचे जमीन पर अंकित किये गये माडणें भी खडिया या पाडू मे ही माडे जाते हैं। इनकी प्रारम्भिक रेखाकृति गेरु या हिरमिच मे अंकित की जाती है। इसी के आधार पर माडणे का उठान उठाया जाता है। रेखाकन के लिए चक्र या काम की बारीक कूची बनाई जाती है। भरण के लिए मिर् के वालो की कूची बनाई जाती है। यह केवल पाडू आदि को घोर भरने और निश्चित दबाव के साथ छोटते रहने के उद्देश्य मे ही प्रयुक्त होती है। येय काम तो माडणा माडन वाली की अगुली ही करती है। पूरे जाने वाले माडणों के लिए हन्दी आटा, गुन्नाल आदि का प्रयोग होता है। राजस्थानी नारी का हाथ इतना मघा हुआ होता है कि वह मीठी रेखा खींचने के लिए फुटे का, वृत्ताकार-आकृति बनाने के लिए प्रकार का अथवा अन्य प्रकार के उपकरणों का उपयोग नहीं करती। अन्य प्रांतों मे ऐसे उपकरणों का प्रयोग होता है। माझी के भित्तिचित्रो मे पत्ते, फूलों की पत्रुडिया, पत्नी आदि भी प्रयोग मे आते हैं। स्थानीय स्वल्पतम साधनों मे सुन्दर कलाकृति तैयार कर देना कुशल नारी के कलात्मक ज्ञान मे ही सम्भव है। राजस्थान की गृहिणी इस रत्न मे बहुत आगे है।

[illegible]

य प्रान्त म माण्य क साधनापररणा की उम्मासूची हाता है। गुजरात म मन्मन्तर क नाम चित्रकला क लिंग अपेक्षित मारी मामयी यथा कपयत्र दन पुरहा रथ विविध रथा की कल्पिया रथ पुत्रा आनि गेता है। अय प्रान्त म भा विविध रथ आनि जटान पन्त हैं। मय विपराय राजस्थानी मारी मय मा तान मिटटी छी मा या पादू जाति से ही मय माण्य तयार कर गती है। क मभी प्राप्त साधना क मय तह नि अपन वाला तह क उपयोग कर गता है।

मांडणा की रथ सज्जा

भारत क दूसर प्रा म म माण्य म विविध रथा त उपयोग किया जाता है परन्तु राजस्थान म मामा य तया ही रथा का प्रयोग जाता है क मा और वन। ला रथ गीय का प्रयोग है पत्रनि दन रथ हय की पवित्रता का मय है। न रथा क माध्यम म राजस्थान की मय क महार मय क निवासिया क गरिब में जागन है। हय प्रविश क तिल राजस्थान म मय गुजरात प्रमयन जाता है। य गुजरात — मयका जागता। जय गंगा म अता अतन क्षय की मयि के मयार जायन है मभी उनक मय मय रथ का निर्माण जाता है। न प्रयार रथ उनक निवासिया का उत विगिण मनाभूमि का नाम है जा कय तिल साहित्य आनि में विविध रथा म मयिजा गीती रता है। राजस्थान म माण्य मय न निवासिया म राजस्थान की मयका जागन क उत उतारण मय गी ग मयन है। ला और दन रथा त आनिमय गी मी वान की प्रमायित करता है।

ला रथ क तिल रानी मय मय क मीर मयन के तिल छडिया मा पादू का प्रयोग जाता है। गहरी लाणिमा लने के तिल तिमिष का प्रयोग मा किया जाता है। य माण्य रानी मय मय मय मोवर क गीयन पर अत्यत सत्त लयन हैं। मयन भाय मय म माण्य बरमानी हय मयन के गीयन पर मयन जाता है। कुछ विगिट मांडणा म मयन क मयमय और रथान गुलाब के विविध रथा का प्रयोग भी जाता है। मिति पर अतिन की जान वाली माली म फूटा की मयमयि जाति क हारा रथमय का जाती है। गुजरात क फूटा क मयमी तरद और कुम्ह क फूटा क मीर कुछ मय जगती मयनाय फूटा क मीर लान और उत तया मयों क हरे और प नी के मयमयि रथा त सामा क मयमयि अत्यत मयन वन जाती है। अय प्रान्त म माण्य म मय रथा का उपयोग भी जाता है परन्तु राजस्थान म मा और वन आनि के मयल हार पर चीर पूर जाने हैं। मयानी माण्य की मयमय म दोमीन रथा मय मा माण्य का मयन मयमयि तयार करदना राजस्थानी मयि की मयमयना का जोता मयना प्रमाण है।

विगिट भावनाओं क प्रतीक मांडण

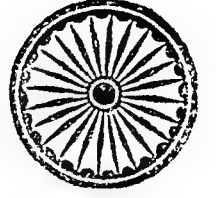
आय कय जा फूटा है नि मयमय क तिल वनाय जाय कय फूटा माण्य किमी न किमी मानवीय भावनाओं क प्रतीक होने हैं और मय प्रयार हमारी मायमयि भावनाओं का मयकार करने वाले मयमयन मायन माने जा मयते हैं। प्राधान मयन विपराय आनि क मिति आयेमयों के प्रणामोत लाय का कलात्मक अभिविष का मयन करने वाले य मांडण माने जा मयते हैं।

कयमय मयन म मय प्रयार क क्षणीय उपायना की हा मयमयता ली जाती है। कयमीर की वार्द भी कयमयि विनार क पत क विना अयरी मानी जाती है मी उर राजस्थान क आलमयन म मयानीय फूलपता येलों मयुनीया आनि की मयन मयल जना मयका मयमायि है। मय प्रयार कयमयन का मामाय मयन और मयमयि मयमयि मय मानय पर मयनाय प्रयार क प्रभाव का मयन जाता है। अय जिन मांडणों का अयन है विना न किमी मय की मयि करन क मयि जाता है उनका मयमयि मयन तया अयनीय हायन है।

१ डा मयिप्रमाय पयानी मयमयि विनार और मयमयन विमयमयि माय १९६७

२ डा मयिप्रमाय पयानी मयि मयमयि साधना विमयमयि विमयमयि १९६६





राजस्थान के देवी-देवताओं के गीत :

सांस्कृतिक मूल्यांकन

श्री भागचंद जैन, एम० ए०

राजकीय माध्यमिक जाला, किशनगढ़ (राज०)

लोकगीतों में देवी-देवताओं के गीतों का विशिष्ट स्थान है। इन गीतों में घुंरी हुई शक्ति श्रद्धा, पावन प्रेम और पारिवारिक सहयोग-भावना विशेषी मगम में कम नहीं है। इनकी पंक्तियों में कूट-कूट कर मरा हुआ आत्म-विश्वास उज्ज्वल भविष्य की मधुर आशा का मार्मिक दर्शन कराता है—इनमें गहरे एवं हृदय स्पर्शी भावों का उद्रेक सरल भाषा के माध्यम से हुआ है।

इन गीतों में भक्त-हृदयों की भक्ति-पूर्ण श्रद्धा जड़न होती है। वे अपना सर्वस्व मनुहार के साथ माद-समर्पण करने के लिए सदैव तत्पर रहने हैं। राजस्थान में मनुहार का स्थान व्यावहारिक जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा इसे शिष्टाचार का प्रमुख अङ्ग माना जाता है। यही रीति भक्ति धर्म में भी उभरी है। कही कही नौ भोगे वालक सी सरल, महज एवं निष्पक्ष भावनाओं के दर्शन होते हैं। भारतीय संस्कृति का वास्तविक रूप इनकी प्रत्येक पंक्ति में गवदवेदी बाण चलाता-सा प्रतीत होता है।

प्रस्तुत पंक्तियों में विनायकजी (गणेशजी) की स्तुति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है। परम्परानुसार उनका स्थान सर्वोपरि है। शुभ कार्यों में सर्वप्रथम इनको स्मरण किया जाता है। विनायकजी प्रत्येक कामना को पूर्ण करने वाले हैं, ऐसा अटल विश्वास लोकजीवन में व्याप्त है—

गढ रणत भवर से आयो विनायक करो अन्नचीतो विडदडी ।

विडद विनायक दोनू जी आया, आय पवास्या सिलंबडतल्ले ।

दूक्षत दूक्षत नगर पवास्या पोत बताओ दशरथ राय की ।

आपकी कृपा से सरवर का पानी नीतल हो जाता है, वाग हरे भरे हो जाते हैं तथा पेड़ों में पत्तियों का अगम छाया प्राप्त होती है—

पे' लो तो वासो सरवर वसियो, सरवर भरियो ठण्डे नीर से ।

दूजो तो वासो वाडी जी वसियो, वाडी भरियो विशोवना ।

फल फूल वाडी सुफल फलियो, कुञ्जाँ जी सरवा केवडा ।

अगणो लो वामो वड तले वसियो, वड नारेला छाईयो ।

विवाह के अवसर पर फेरो के समय वेदी पर बैठे हुए दूल्हा-दुल्हन के लिए सौभाग्य एवं दीर्घायु प्राप्ति की प्रार्थना की जाती है। दुल्हन के पीहर व समुराल में आनन्द-मगल हो ऐसी सामूहिक प्रार्थना अटूट विश्वास के साथ प्रस्तुत गीत में द्रष्टव्य है—

छठो तो वासो फेराजी वसियो फेरा मे बँड्या लाडो लाडली ।

म्हारी लाडल को चीर बढज्यो, राई वर को बढज्यो बीटली ।

बढज्यो बढज्यो ए लाडी गोद यारी, एक पीहर दूजो सासरो ।

मूचित करने ह। गीतावली पर ओ और ममद्वि की कामना की मूचित करने वात अवत भासपूण माडण पाठ जान ह। एत जगहुरा का चीत माडण जाता है ओ पूण जीवन की कामना का यतन करता है। सकाति पर नूत माण जाना है ओ कूडा भर कर धा य पान की भावना का व्यक्त करता है। ओला पर दाज सलवार गढ़ की वाला आनि माण जान है। य इम समय होला मदाल सलवार जडा निय जाने हैं और ओली का जाला म अनाज का बाणिग तारा जाता हैं। एत बात का मूचक है समाज स जाकमण क साधना के माय भय क मूचक राज-माण भी नए ह। एत बाणिग। उतवा सामाजिक निरीयों म अयथा उपयोग कर जना चानिह। ओली समाज म पूरी तर म निभरता क सम्पाना करने की निगा का माय प्र गित करता है और ये माण्य की उमी भावना का व्यक्त करते हैं।

भारत पब और जसस का देग है। एत पर सबस गिणतवा राजस्थान म विगिण भावनाओ क प्रतीक मान्ये भी माड जाते हैं। यही पर कछ ह। माण्य क विषय म प्रभावामा सबस किये गये हैं। यस्तुत एम नि म राजस्थानी माण्य का विस्तृत अध्ययन होना चाा। इम प्रकार का अध्ययन हमारी संस्कृति क महत्वपूण तथ्या पर प्रभाव डाल सक्ता य माण्य का जा सकती है। राजस्थानी माडण का एम अध्ययन सम्पूण भारत का मन्त क का साधनिय अध्ययन का भाग प्रगण कर देगा।

•



प्रत्येक घर में मन्दार भरपूर रहे, धन प्रायः भंडारित रहूँ तथा जीवन में लक्ष्मी हो। प्रायः मंगलमय एवं सख्तमय हो या आगमन होता रहे। प्रस्तुत पवित्रता में आत्मा की उच्च भावनाओं का संगलक्षण हो है—

सातवो तो दासो ओवरन बसियो ओवरदो गुट धो भरियो ।
 एक छून चावल कि एक मदा बरहत करो बिनायकजो
 एक कोयलजो द्रव देहियो बिनायक लाडले क थाप ने ।

य अपन जीवन स मन्त्रार्थ मधुरवाणी सब आदि सभुवन परिवार का वरदान मानते हैं । यही ता भावनाएँ जीवन स प्राण चक्र वसुधै कुर्वन्वकुम स रिचर का आधार बनता है —

ना तो यीही सी घोल नमकर चले जस रव या के व्याह म ।
एक गहिइली बल देइयो विनायक साइल के ओर नै ।
एक नात म जस केइयो विनायक साइली क नाना मामा नै ।
एक आरत जस देइयो विनायक साइल की भवा भष नै ।

विनाश म सर्वप्रथम विनाशक को निमग्नपत्र डाल कर मरक क साथ पाया जाता है तथा श्रद्धा क साथ उन पर आग दी जाती पूज विद्वांस भी रखा जाता है। इन भावा म पात्र जीवन म पाप भाग्यवान् एवं पापिनका क पाप दहन होते हैं। उनका इच्छि म अवधान की प्रस नता पर ही सम्पूर्ण कार्य का सफलता निर्भर है।

आराध्यते की प्रशंसा करने का जितना सहज भरा हृदय उन्में दिया जाता है तथा तत्प्रशंसा के माध्यम से वातावरण का आयाजन कर पलक पलक विद्युत् मिले जाते हैं। श्रीकृष्णाय नमः सर्वप्रमाण जीवन के भी दर्शन मिलें :-

एक भाव भूतल की दास सुगंधी हूँ ए सहायण गणपत पूजियो ।
गणपत पूज लाड सच की माय सहायण 'दा' घर बिडव उतावली ॥

राधावती के जन्म पर लक्ष्मी पूजन के समय विनायकी का पण्डे स्मरण किया जाता है तथा उनका प्रतीक स्वास्तिक गण प्रदाम अर्पित कर उसका वसन भी किया जाता है। या घर पर लक्ष्मी पावन चित्तु का स्थापन मान है। सभी मासगिरी अवसरों पर गणपति पूजन असाध्य श्रद्धा के साथ किया जाता है।

जीवन म सुखास्व एव शानि शांतता जाति व ल्पि पिता याता वा वजन परम धडा क साय किया जाता है । माता क मन्दिर को गंगा व डाला जाता है । बाी के शाल म ककुम्भ रखी माता व नवय शानि सामग्री व साय मा व गुण-गिन महय म पावर भाव भाव मे अचन किया जाता है । गलत-मिया क पत्र-व्यवह इम अथय राग का ० प्रतीक माना जाता है परन्तु कभी अन्तल गहरा म उतरने पर लोक प्रसूतवान विचार वन प्राप्त येन है । जा भा (अमनामिनी सभी प्राणिमा का भार उठान शान धरती या) क प्रति पावन प्रम व वजन उडा वा भूत का देन म अन्तिम योगदान देने के । साम्राट् रूप म वृज्जन ममारा ममाना जाता है । मम गाता वाय-मा म-मागी सन्धि व मल जाधार प्रकता म व सन्ध्याग व बीज अज्ञान रूप म विद्यमाना है । जीवन का पान व पुनप्राप्ति क ल्प रचना है ॥

ज्ञान भौरा वा माता मर्या म विराज वा मर्या ववन जाउ ए भवानी एर बाण्डा दई ।

सास - पाप्मे पादु भरिया छावडा वरु थे मिदु चाया ज।

४७—जात्र मकरा ना भाना मन्थ म विराग वा मह्य नाशना ता ए मन्थान गो ए तावा दः ।

प्रधानी समय में प्रजा उ राजा के मध्य प्रम घोर धडा हा मवान करने में भी गीता ता स्वात नरुव
 वग रता है । मय गाति का अत्रय-मयन व नि बाग य ही मान का व वनीय इत्यर्थ है ।





"(राजा का नाम लेते हुए) दरवाजा खोल था पर मैयाजी करछे माता शीतला ।
राजा द्वारा उत्तर-म्हाने काई फरमावे माता शीतला ।

थाने देमी गट तिलडी रो राज शीतला ।

हमारी सस्कृति बड़ों के माय श्रद्धापूर्ण व्यवहार तथा छोड़ों के माय स्नेहपूर्ण व्यवहार, एकना व प्रेमपूरित ममाज की व्यवस्था करती है । लोकगीतों में कुछ ऐसे हैं जो परिवार के अविवाहित सदस्यों के मरणोपरान्त गाये जाते हैं । वे प्रेम मंगलकामनाओं पुनर्जन्म के मिश्रान्तों में प्लावित हैं । पारिवारिक मनाहागी उत्थान में वे कलियों, फूलों व लताओं के माय बेलकर मरणोपरान्त भी वरदान-स्वरूप मिट्ट हो रहे हैं । प्रेम की अनूठी मीख इनमें पीयूषवाग के रूप में प्रवाहित हो रही है—“दादासा रा वाग में उड़यो चमेनी रो रुख जी म्हारा छोटा-मा पीतर कनिया में खेय, मोगरा में खेल, हग्य हरख फल देय ।

इसी प्रकार लोकगीतों के अन्तर में छुपे हुए तत्त्व नागी-ममार में एकना, प्रेम व आदर्शभाव को प्रकट करते हैं । कभी कभी पुनप प्रथम विवाहित स्त्री की मृत्यु के बाद द्वितीय स्त्री में विवाह जगता है तो पहली बाय्की के लिए कितना श्रद्धापूर्ण स्थान हृदय में रहता है ? इन भावों का सुन्दर चित्रण निम्नलिखित पक्तियों में द्रष्टव्य है—

बडी जी तो आया जी ल्होडी के प्यारा पावणा ।

चौकी तो टलावा जी बडी जी थाने बैसना,

दूध पखा लाग पाव, बडी जी तो

नव-बधू बडी जी को श्रद्धाजलि अर्पित करने के माय ही माय उन्हें हमेशा अपने माय ममझनी है । उनके अग प्रत्यग की शोभा का स्मरण हो आता है । उनके प्रति आराध्य देव के नुन्य सेवा-भाव प्रकट किया जाता है । गीत की पक्तियों में सेवा और त्याग का रूप दर्शनीय है—

“जीमत नीरखा जी बडी जी थारा आगली, मुलकत नीरखागा थारा दात जी । मूगफली मी जी बडी जी थारी थगरी दात दाड़ का बीज ।”

बहुरानी ममुराल में नाम और ध्वमुर का अपने माँ बाप की भाति ही बाहर मत्कार करती है तथा उनके हृदय में ससुराल के सभी सदस्यों के लिए श्रद्धा और प्रेम की गंगा यमुना बहती रहती है । वह सर्वदा उनकी प्रगति, स्वास्थ्य आनन्द एवं समृद्धि के लिए मगवान में प्रार्थना करती है । उसका हृदय विनाल सागर की भाति प्रेम-तरंगों में तरंगित रहता है, भेदभाव की तंग गलियों को छोड़कर व्यापकता धारण करती है । दूसरों के हित व सेवा-कार्य में ही अपने जीवन की मफलता मानती है । वह अपने अमर मुहाग के प्रतीक चुडले (पति के लिए) के लिए, अपने पुत्र (दादासा के पौत्र) के दीर्घायु होने के लिए देवी-देवताओं को डोकती है—उनसे प्रार्थना करती है—

‘मुमरा जी म्हारा ये हो धरम का बाप जी म्हारा ये छो धरम का मायेत जी, थारा हस्तीणा मीणगारो म्हे वालाजी ने डोकम्या ।’

कोइरा खातर भवण बोली छै जात ए भवण बोली छै जात ए

सुसरा—ये तो काहेरा खातर वजरग जी ने डोकस्यो ।

वह—कवरा री सातर मे तो बोली छै जात जी म्हारे चुडले खातर वालाजी ने डोकम्या ।

उपर्युक्त पक्तियों में परिवार के ऐश्वर्य, पदप्रिया के अभाव आदि का भी स्पष्ट संकेत मिलता है ।

इतना ही नहीं वह देवर और देवरिया के उज्ज्वल एवं मंगलकारी भविष्य के लिए भी उत्सुकता व हार्दिक कामना प्रकट कर आदर्श मनुक्त परिवार की स्थापना करती है । प्रस्तुत पक्तियों में देवर आदि से वालाजी टोकने के लिए कह रही है—

देवर म्हाारा देवरिया चतुर मुजान जो धारा करहलिया सखारों म्हें घानाजो ने डोकस्या
कवारो खातर बालाजो ने डोकस्या जो धार जोवडा री खातर बालाजो ने डोकस्या ।

पतिव्रता नारी की मूर्तर एवं स्तुत्य भावनाएं भीना में उमड़ी पड़ती है । म्हाारे देव का सांस्कृतिक पक्ष हम दृष्टि से अत्यंत सफल दृष्टिगत होता है । ध्यार और त्याग में द्वा लोकावन सत्ता एक दूसरे के प्रति भावपूर्ण कामना करता रहता है तथा उच्च भावी जीवन के लिए हासि अर्था ईश्वर का भक्ति करता रहता है ।

लोक में प्राप्त परिणाम के माध्यम में अतिविमल्वार की पुनीत भावनाओं का जन्म होता है । लोग विभिन्न प्रकार के स्वास्ति रस भरे यजन तयार कर जपन जाराध्यैव की मनुहार के माथ जिमान के लिए हासि अमिलपा व्यक्त करते हैं । उनके लिए अनिष्टों से ही आराध्यैव का मुख्य है । प्रमूर्ति भावना है —

म्हारी करिया में जायो दोनाना जियावु घाने मिजवानी ।

चावल दाल गुधा का फलका खूब बनाया साय ।

पुढो पकौडी और पकौडी मठडी बनाई भजेदार ।

गरीब गिन विभिन्न पदवाना का अभाव में माछारण भोजन का उत्सव है । उसमें पुजा आ है अर्था और प्रेम का मधुरत । वट अंगी दीन अवस्था के लिए क्षमा-याचना करते हुए अनाथ को अपनाते की अनुनय विनय करता है । भगवान भाव का भक्त हैं । वे मरामा का मन्त्रपुरित चावडा का चवान में लगी बूकते भीरुनी के ठूठे बर पाने में नहीं हिचकिताते तथा बरमा बाई का घोचडा खान में भी आग पीछे नहीं सोचते । 'नीक गीता में छत्र छूत एवं छाते बड़े की सकीण भावनाओं को प्रत्यक्ष में मिता है । यरन प्राणीमान को ध्यार करन की निमन भावनाओं का पावन-गान हात हैं । ऐसी स्थिति में ही विषय-धुर्य की पुनीत भावनाओं का बल मिता है । यही हमारी संस्कृति का पूनमन का मुख्य भाग है ।

प्रस्तुत है वरमावादी की खीचनी—

ये तो आरोग्यो मदनमुपाय वरमावाह का खीचलो ।

मैं हू अनाथनी नहीं जानु पुजा बच ।

नयो नवायो क्षतियो यो धंधो मोक्षलच

तू ही राखणियो भगत की राजा क्याम ।

जन्म मर्त्य के सर-सांसारिक एवं आडम्बरहीन जीवन के पावन दान होते हैं । उनके जीवन में यह व्याप्त विनम्रता की स्पष्ट अभिव्यक्ति है ।

अस्तु निविधान रूप से वर्णन आ मरना है कि राजस्थान के देवी-देवताओं सम्बन्धी लोकगीतों में आगावा गाणी सत्ता अर्था प्रेम नम्रता आस्तिवता एतता एवं सहयोग से पूर्ण जीवन के दान होते हैं । यही का लोक जीवन में ह्योल्लास की मधुर ध्वनि मजायमान है ।

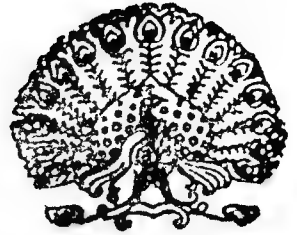
ये गीत लोकजीवन में कामना की तरफ ही प्राप्त है । गीतों के बिना जीवन की गानों आगे नहीं बढ़ सकती । प्रत्येक हृदय और उल्लास का समय गाय अपने कुतन्त्रता कुल्लबी गानों केरुजी बालाजो फिर नाग देवता कुमा बावडो का चानर पर निराजन वाले विधिष्ट दंडता आदि को याद करते हैं अपने पशुधन की रक्षा के लिए हीरामन तथा जो आदि गाय बीरा की स्तुति करन हैं और अपनी सांस्कृतिक गाय का सुरक्षित बनाये रखन के लिए राम वृष्ण आदि अवतारों गुणों के चरितों का गान करते हैं । इन सबके लिए ही गीतों का उपयोग करते हैं । एता कोई भी उत्पन्न नहीं है जो नदी ज्वनाओं का गीतों का बिना सम्पन्न हो जाना हो और ऐसा कोई भी धार्मिक या सामाजिक आधोशन नहीं होता जिसमें देवी देवताओं की स्तुति नहीं जानी हो । इन गीतों और स्तुतियों में हमारे सांस्कृतिक धर्म का स्पष्ट चित्र अंकित रहता है और लोक की मरगरी भावभूमि का स्पष्ट दान होता है जिसकी जान बिना कोई राष्ट्र अपने स्वयं का बनाये नहीं रख सकता ।



राजस्थान के चैत्र-मासीय पूजोत्सव- गीतों में नारी-जीवन

डा० रामप्रसाद शर्मा

गवर्नमेन्ट कालेज, फिरोजगढ़ (राज०)



साहित्य समाज का दर्पण है, पर जिन रचनाओं को साहित्यिक कहा जाता है उन पर तो रचनाकार वाञ्छित-अपेक्षित-व्यवहारों एवं मर्यादा और साहित्य के निर्धारित आदर्शों का आवरण टाट देता है जिसके फलस्वरूप उसका वह साहित्य तो उक्त समाज का निष्पन्न और कुछ कृत्रिम प्रतिबिम्ब ही प्रस्तुत करता है। यो कहना अधिक उपयुक्त होगा कि सत्य, शिव, सुन्दर के आधार पर निर्मित साहित्य-दर्पण तो समाज का आदर्श और व्यवहार से समन्वित प्रतिबिम्ब ही प्रस्तुत करना है जो वास्तविकता में उतना ही परे होना है जितना 'फार्निशिंग' किया हुआ कमरे का फोटो। इसके विपरीत लोक-साहित्य द्वारा उक्त जनपद के जीवन का वास्तविक और अप्रच्छन्न रूप प्रकट किया जाना है। साहित्यिक गीतों और लोक-गीतों के माध्यम में प्रकट होने वाली सामाजिक-मानविक जन-जीवन की प्राप्ति में भी स्वरूपतः यही अन्तर विद्यमान रहता है।

लोकगीतों की गणना अपरिष्कृत-साहित्य में भले ही की जाती हो पर उनमें प्रकट होने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक तथ्य अत्यन्त स्पष्ट और मत्स्य होते हैं। यहाँ लोक-मानस का नग्न, अनाश्रित और विमुक्त चित्र प्रकट होता है। लोकगीतों में मन का स्वच्छन्द-आलाप छन्द-स्वर में परे टटकर और यहाँ तक कि मनोविकारों-उद्वेगों के स्वाभाविक प्रवाह को बाधित करने वाली सामाजिक मान्यताओं-सीमाओं को तोड़कर वन्यवायु की भाँति धेपटके चलता है। अस्तु लोकगीत ही जन-मन और जीवन की सत्यता को गापित करने वाले होते हैं।

लोकगीत जीवन के अनेक सम्कारों, सामाजिक-व्यवहारों, रीतिरिवाजों, वैयक्तिक अनुभवों साधारण-असाधारण परिस्थितियों से सम्बन्धित होते हैं जिनके आधार पर उक्त समाज के जीवन का अध्ययन किया जाता है। यहाँ हम राजस्थान के चैत्र-मासीय व्रत-पूजा-उत्सव-पर्वों पर प्रचलित लोकगीतों के आधार पर यहाँ के नारी-जीवन का चित्रण करना चाहते हैं। राजस्थान एक बृहद् भूभाग है जहाँ अनेक बोलियाँ और जनभाषाएँ व्यवहृत होती हैं जिनके समन्वित रूप को मरुभाषा या राजस्थानी कहा जाता है। मरुभाषा अथवा मारवाडी को साहित्यिक शैली डिङ्गल है जो बोल-चाल व्यवहार की साधारण भाषा मारवाडी में भिन्न हो गई है। आज जिसे मारवाडी कहा जाता है उसी भाषा में यहाँ के व्रत-उत्सव-त्यौहार और सस्कार सम्पन्न किये जाते हैं। इसी माध्यम से यहाँ के विभिन्न उत्सवों-पूजापर्वों पर महिलाओं द्वारा गीत गाये जाते हैं जिनमें जनपदीय-जीवन की सामाजिक सांस्कृतिक-परम्पराओं का अध्ययन किया जा सकता है।

राजस्थान का नारी-समाज धर्म-प्राण है जिसके जीवन में आये दिन एक न एक पूजा और व्रतोत्सव का विधान है। वसन्त, पावस और शरद ऋतुएँ जीवन में विशेष स्फूर्ति और चेतना प्रदान करती हैं और यही कारण है कि हमारे जीवन में सारे पूजा-महोत्सव और त्यौहार लगभग इन्हीं ऋतुओं में आते हैं। होली, दशहरा, रक्षावन्धन, दीवाली आदि त्यौहार और अनेक व्रत-उपवास-पूजा के पर्व इन्हीं दिनों आते हैं। राजस्थान में फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा से चैत्र मास तक तीनों महत्वपूर्ण पूजोत्सव मनाये जाते हैं—होली, शीतला और गणगौर। इन पूजोत्सवों में यहाँ के नारी

जावन सम्बन्धी अनेक तथ्य निहित हैं। हासिकदृष्टि से एक मामूली फागुन की प्रतिपत्त को होना रोपण किया जाना है और उसी दिन से गीता की रचना उमड़ पड़ती है। गाँवा गहरो मोहला में चब और टफ पर फागुनीत गाये जाते हैं। मीठा और पुरुष अंग अंग ममूहण करते हैं। कनुराज वसन की प्रणाम से पुनर्तिथी 'नैवगीता' का माध्यम से स्तुत शृंगार का चित्रण करती है। निमम मन की निरुत्तमता और काम परवर्तता व्यक्त होती है। होलिका-पूजा का समय ग्रामीण बाला जो हात बाँधी हैं उसमें जीवन की सरिता भाग्यजन और वसन्त-रस की भावना प्रकट होना है। प्रायः उनका जीवन में हास और क्लेश से लदा वसन्त पाना साथ साथ आया है इसी देश में उनका बाह्य जसा नगा महुमार भाई बसिरिया वस्त्र पहिने खेल रहा है। ऐम पगल अवसर पर उन्हें प्रह्लाद जैसे भाई की कुलना का अनिरुक्त और क्या चाहिये ? हर पग हाली पर उनका भया प्रपुल्ल मन में खेला रहे मला उनकी चिर-अभिप्राय है —

होली आई है फूलों की झोली झरमटियों से ।
 झोली खेल है बसिरियों बागों झरमटियों से ॥
 झोली खेल है गहरो बाहुओं की झरमटियों से ।
 झोली खेल है पहलाद जूझ प्यारों झरमटियों से ॥

चब मास का कृष्ण सप्तमी-अष्टमी को यहाँ गीतना पूजन किया जाता है जो प्रायः दो दिन तक चलता है। गीतना चबक नामक भयंकर रोग का नात करने वाली देवी समझी जाती है। चबक भारत का प्रचलित सनातन रोग है जिससे प्रतिपत्त हुआ चबक मरते हैं और कुल हो जाते हैं। अध्यात्म प्राण सङ्कति में पड़ने वाले भारतीय मारा समाज में इस रोग का देवी का प्रयोग माना है और इससे यकने तथा स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए गीतना पूजन का विधान स्वीकार किया है। वैज्ञानिक युग में चबक का चमत्कारो टीका का आविष्कार हो चुका है फिर भी आज भी शक्याम और चमका उपचार असाध्य है। गीतना पूजन का परम्परागत विधान ही आज भी असाध्य रोग को सन्ने का आत्मबल पता है। चाहे हम इसका ना-आविक स अनिमित्त अद्वैतमय नारी हृदय का अधिनिवास कहें फिर भी पूजन का महत्व कम नहीं है। जहाँ महुमार जस्रिया के साथ रागी एवं उनका सतत मातृ हृदय की असीम कष्ट सन्धिपूना और आत्मबल प्रेता है। गीतना की कृपा से असाध्य रोग से बच पान का आत्मविश्वास कलाश्रया में प्राण पूजना है। यही आंतरिक उपचार है जिसका अभाव में कितनी भी नुन्यवान कापयिया वन पर भी छाट रोग भी मृत्यु के कारण बन पाते हैं।

गीतना-पूजन यहाँ सभी वर्गों और जातियों की भाताएँ करती हैं। इस दिन देवी से बनी रावटी या ओपा से देवी गीतला को गीतना किया जाता है। मानाएँ दो दिन वाली भोजन करती हैं और धीतला से सनान के मगन की प्रायना करती हैं। यह द्रवोत्सव और पूजन माना के वास्तव्य का प्रतीक है। चब मास के गीत अमन निधि है। अतः चबो का गीत की सुरक्षा करने वाली तथा चबक रोग में जीवन प्राप्ति की माता गीतला ही यहाँ की माताओं के लिए सवपूजा सर्वोच्च देवी है—

और माता आलपाल साँबो माता सोतला ।
 सोरां ने बाला कर बाला ने बिजबावरा ।

गीतना-पूजन नारी हृदय की देवी जस्रिया परम्परागत विधान और उनका पवित्र वास्तव्य मान का प्रतीक है जिसमें ध्यात और समर्पण का ब्यापन निहित है। नारी हृदय का अग्रप्राय वास्तव्य का ध्वनन करने वाला यह पूजा अधिनिवास प्रदान की परिधि में पड़े है। यह पूजन निहित परिवार की महिमा ही नहीं करती बल्कि निरुत्तमता, हास्य की प्रतिपत्ति और इसी उपना में करना। चाहे विधान का विधाना मग आम्ना की मारा का अधिनिवास हो कहें और चबक रोग विरोध ही क्यों न कर फिर भी चमका अग्नि व स्थाया रचना बवावि यह





पुत्रवती नारी का आग्रह है जिसके सतानप्रेम की तुलना में पतिप्रेम भी नगण्य है। इस पूजन में प्रसविनी मातृ हृदय की दृढ़ता है। जिसने प्रसव-पीडा का कटु-अनुभव किया है, क्या वह कठिन साधना में प्राप्त मतान की मंगल-कामनाओं के अवसर छोड़ देगी ? नारी-हृदय अत्यन्त कोमल और भावुक होता है जिसे व्यष्टि में परे समष्टि की पीडा का अनुभव भी गीघ्र ही होता है। अतः वह कैसे सह सकती है कि चेचक का प्रकोप समाज पर हो और उसके तथा समाज के नौनिहाल महामारी द्वारा छीन लिये जायें ? किमी की आख चली जाय तो किमी के मौन्दर्य और प्राणों का अपहरण ही हो जाय ? भावुक और करुण नारीहृदय किसी का रुदन नहीं देख सकता। उसकी छाती पराये दुःख से फटने लगती है। उसका हृदय वात्मत्यातिरेक से पड़ीमी के निवन पर भी मिसकिया भरने लगता है, किमी बालक की सद्य मृत्यु पर वर्षों पूर्व की हृदय-द्रावक स्मृत्यनुभूतियाँ उसे स्वतः ही खलाने लगती हैं। नारी में मृष्टि की पालयित्री शक्ति का निवास होता है, जिसके स्तनों को दुग्ध-धारा में सृष्टि पलनी है तो महानुभूति में बहने वाली अश्रुधारा में लोककल्याण पलता है। 'आबल में हे दूध और आखों में पानी' वाले नारी व्यक्तित्व का यही रहस्य है। यह गीनन्ता पूजन मातृ-हृदय के इन्हीं रहस्यों को प्रकट करता है।

शीतला-पूजन सप्तमी की अर्द्धरात्रि से प्रारम्भ होता है तथा अष्टमी तक चलता रहता है। गाव के किसी एक स्थान पर शीतला देवी का मंडप होता है जिसे हम चव्वनरे के रूप में बना छोटा मंदिर कह सकते हैं, जहाँ सारे भेदभाव-जानपात को भूलकर सभी माताएँ पूजन करती हैं। महिलाओं के सरस-स्वर्ण में बड़ी ही श्रद्धा के साथ बच्चों की रखवाली (वालूडी रखवाली) माना शीतला का पूजा गीत गाया जाता है। गाती हुई वे कहती हैं—“बछड़ों और बालकों के तन पर चेचक का आगमन हुआ है।” सेढल (शीतला) मा का देश में पधारणा हो रहा है, शिशु-धन उमी का है। उसका पूजन ही उपचार है। अतः हम पीले वस्त्र, दीपक अक्षतादि से उसे पूजेंगी। उसके मंडप को स्वच्छ करके सजायेंगी। शीतल भोजन करेंगी—

माता (सेढल) आई ई देस में हे माय । बालूडा रखवाली माता शीतला ॥

धडकी छ बालूडारी हे माय ॥

दडवया छ टोडा-डोरडी य माय ।

माता रो मडो चूणस्या री माय ॥

माता रो मडो डोलस्या हे माय ।

नाता रो मडो चरचस्या हे माय ॥ बालूडा—

घर घर दीवलो जोवस्या हे माय ।

नी नेवज कर पूजस्या हे माय ॥

ऊजली अठाई पूजस्या हे माय ।

सइय सवारो पूजस्या हे माय ॥ बालूडा—

मोतो रा आखा चढास्या हे माय ।

पीला पोतला सू पूजस्या हे माय ॥

टावर-दूवरा दुखास्या हे माय ।

बालूडा रखवाली म्हारी शीतला हे माय ॥

राजस्थान के स्त्री-समाज में राजतन्त्र के प्रति अगाध श्रद्धा विद्यमान है। सुयोग्य राजाओं के कुशल-उदार प्रशासन को वे आज भी कृतज्ञतापूर्वक याद करती हैं। शीतला के पूजागीत में राजतन्त्र के प्रति गहरी श्रद्धा और मंगलकामना प्रकट हुई है। इन गीतों में माताएँ आज भी स्थानीय राजाओं के मंगलमय भविष्य की कामना करती हैं तथा अपने से पूर्व उनकी पारिवारिक कुशलता एवं वंशवृद्धि की बलवती कामना करती हैं। गीतों में अपने पारिवारिक पूर्वजों से पूर्व क्षेत्रीय राजा का नामोच्चारण करती हैं। जो उनके हृदय का पुरातन मोह है। राजस्थान की सभी रियाजतों का भारतीय मध में विलीनीकरण हुये बहुत समय हो चुका है, पर स्त्रीशिक्षा के अत्यल्प प्रसार के कारण यहाँ

यान भी इन प्राचीन राजनारीय विद्यायां-परम्परायां वा अवमान नहीं हुआ है गीतला पजन का प्रस्तुत गीत इसी तथ्य का दातक है—

सुमेरसिंह सा (विजयगढ़ के वतमान राजा) ही दरबाना खोल—
 या पर दया जो करेली माता सीतला ।
 म्हान बाईं जो फुरमाय माता सीतला ।।
 याने देसी जो गढ दिल्ली रो राज—
 याने देसी जो भाई मतीजादारी जोड—
 याने देसी जो बेडा पाता रो जोड । या पर—
 ताम्र पुया हो ओवतिया (कोटरी) खोल—
 याने देसी जो फूलडीया रो बेस—
 याने देसी जो पोलडो रो बैष—
 याने देसी जो ताम्र पुयां रो जोड
 याने देसी जो दोर जीठाजिया रो जोड । या पर

राजस्थान के इसी समाज का मूल उद्देश्य गणगौर पूजन है । ईसर गणगौर का यह पूजन अपने मन में गिर पावसी की युगलावासना है । य पूजा चक्र क्रिया प्रतिपदा में सोलह दिन तक चरती है । अधिवाहित विंगरी बालिकाएँ-समाग्य पर की प्राप्ति के लिए तथा विराहित युवतियाँ अपने साथ म्हाग की मण्डल उद्धि के लिए गौरी पूजन करती हैं । मात्र दिन तक पूजा और दिन का विधान निरंतर चलता रहता है । गौरी पूजा के लिए माता के किये गए घर पर नग म्ही ममह सरस्ता के एकत्र हो सकना है यथा सर गणगौर का भित्तिचित्र बना दिया जाता है तथा नग पूजन अम चरता है । बालिकाएँ और युवतियाँ गौरी पूजा के लिए न्वाणल गौर पुष्प केन उपवना में जाती हैं तथा नगमयों से स्वाच्छ जल के कचन भर कर लाती हैं । फिर दूर्वाजल में मन्ने गवित्त जल के कलशों को भावे पर गिर्य प्रस्तुत गीत समवेत स्वरों से गाता है पूजास्थल पर चरती आती है—

बाभी बाला बाडी खोल आटी की किवाडी खोल छोण्या आई हूव नै
 ये कुण्या जीरी ये हो कुण्या जीरी भण काई धारो नाम छ ?
 म्हें वीरमा जीरी बेटी हूँ ईसरदास जो रो भण गोरा म्हारो नाम छ ।।
 म्हें आया ये कलसार धार छँ घमोडा पुजरी ।
 धमोडाये ईसरदास धर धार आछो धोलो पायलो ।
 म्हें पातलियाँ म पातलियाँ धार सोधासन बटियाँ ।
 म्हें वेण्या तिलडो रो हार हरीया भुग मरोडियाँ । म्हें आया—पुजरी ।

ईसर—गणगौर के भित्ति चित्र की पूजा दूर्वाजल-पुष्प जल से की जाती है और सालभरें दिन आटे और गुड में चने के आग गायता जाता है । पजा वरते समय प्रतिदिन निम्न वरदान गीत गाया जाता है—

गौर हे गणगौर माता खोल हे बिधाडी ।
 बायर उन्नी धारी पूजन हारी ।
 पूजो हे पूजारीयाँ भायाँ काँई पाई भायाँ ।
 म्हें भाया हलवल कूडो छाद्य मजु रो ।
 हियाँ सवाणो गोबर भाया कड्याँ सवाणो साव है ।
 भलजल जामो भाया राता दे म मा है ।
 बाण्ड कवर सो वीरो भाया रा मी मोनाई ।
 बडा धमालो धारो भायाँ पूजना धारो काजी ।





फूस उडावण फूको मांगा हाडाधोवण भुआ ।
 काजलियो वहण्योई मागा सदा सुहागण भैण हे ।
 महला चढता साहिव मागा ज्याकी म्हें घग्गार हे ।
 इनरा तो दे म्हारी गौरज्या इतरो सो परवार ।
 वाप तो दव' वेटी लाडली मा कव परदेस ।
 धीरो तो कव वनड वीजली चमक' छ चारो देस ।
 गाजू नो घोस् धीरा मालवरे वरसु वावाजी क देस ।
 वरस नीपजाऊ मोठर वाजरी र कोड्याती जु वार ।
 टका रो मण वाजरो र पइसा रो मण मोठ ।
 झाला तो झाला वीरा वाजरी र गाडा गाटा मोठ ।

यदि हम राजस्थान की ग्रामवामिनियों के जीवन का दर्शन करना चाहते हैं, तथा उनके भावी जीवन के प्रति उनकी अभिलाषा-आशा, उत्साह-उमंग, व्यावहारिक परिकल्पना को परखना चाहते हैं तो गीत की ध्याया कर लें । गणगौर मे राजस्थानी युवतियां न केवल सुख-मुहाग, आमोद-प्रमोद ही मांगती हैं वरन् वे उनमे मरठ, श्रमसाध्य जीवन और मयुस्त परिवार का वरदान भी चाहती हैं । वे कहती हैं — हे गणगौर, आप हमे भरापूरा कृपक परिवार देना, जिसमे हल कुआ बँलादि खेती के समस्त साधन हों तथा जिममे मूव दूध-दही होता हो । हम कर्म मे विद्वाम करती हैं, श्रम ही हमारा जीवन है अतः हमे बहुत-सा पशुधन देना जिसके गोबर लाद से हम अपने खेत भरा दें । सरल हृदय वाले पिता देना, खर्चीठा-रोवीला काका देना, सुन्दर माई देना, राई-सी भोली भाली भाभी देना, भरपूर कपडे देने वाली मा देना, सुन्दर छूडे वाली काकी देना, कामकाज मे हाथ बटाने वाले फूफा-फूकी देना, मजीला-रगीठा वहनोई देना, सदा मुहागिन वहन देना, तथा निगन्तर हमारे ही नाथ रमण करने वाला पति देना । मारवाड की सूखी मरुधरा के इस नारी-जीवन मे किना उल्लास-उत्साह भरा हुआ है । वे श्रम और कर्तव्य के प्रति कितने मजग हैं ? उनमे नामूहिक परिवार की भावना किननी दृढ है ? उनका मानस कितना सगम और भावुक है ? तथा वे कितनी सयत होकर आडम्बर रहित सच्चे आनन्दमय जीवन की परिकल्पना करती हैं ? वह जीवन शहरी आडम्बरो से परे, छुट्टी चमक-दमक और थोथी कल्पना से दूर किना सरल और व्यावहारिक है ? जिममे फूहड ग्राम्यत्व नही । आज पाश्चात्य परिधान मे अपने तन को आधुनिकतम फेशन मे सजाने वाली तथा मन को 'सिने-ससार' की आसमानी कल्पनाओं मे रगने वाली युवतियां क्या शतांश मे भी भारतीयना के पूर्ण ठोम व्यावहारिक जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं जिस जीवन का मूलाधार कृषि और पशुधन है ?

राजस्थान का यह गणगौर पूजापर्व सामंत-काल मे आकर राजसी और शाही उत्सव बन गया । यदि हम ईमर-गणगौर के भित्ति चित्र को देखे तो उममे राजपूतकालीन वेपभूषा और चित्रशैली दिखाई पडती है । राजस्थान के प्राचीन राज्यों मे यह पर्व शाही तरीके से मनाया जाता था, प्रत्येक राज्य मे ईमर-गणगौर की काण्ड-प्रतिमाएं रखी जाती थी जिन्हें गणगौर पर्व पर खूब अलङ्कन किया जाता था और घूम-ग्राम मे उनकी सवारी निकाली जाती थी । आज भी जयपुर का गणगौरपर्व दर्शनीय बना हुआ है । गणगौर राज्य के मान-अपमान का प्रतीक भी बन गई थी, ऐसी कई घटनाएं हुई हैं जत्र कि एक राजा ने दूसरे राजा की गणगौर प्रतिमा को बलपूर्वक मगवा लिया । इस प्रकार की छीना-झपटी और अप्रत्याशित लूट के कारण गणगौर-समारोह पर रक्नपात भी होता रहा था । स्वतंत्रता के बाद राज्यों के त्रिलय से गणगौर का उत्सव अब उतना समारोह-पूर्वक और शाही ढंग मे नो नही मनाया जाता फिर भी आज इन पर्व के प्रति प्रत्येक हिन्दू परिवार मे पूर्ववत् उत्साह और आस्था वर्तमान है । आज भी वह प्रत्येक सुहागिन स्त्री के मुहाग का मंगल दिन बना हुआ है । प्रवासी प्रियतम इस दिन अवश्य आते हैं और अपनी पत्नी के सुख-सौभाग्य को सरसाते हैं । आज के दिन पति से अलग रहना पत्नी का दुर्भाग्य है और यदि पति गणगौर पर आने से किसी प्रकार अममर्थ रहता है तो वह इस गीत द्वारा लज्जित किया जाता है—“निकल गई गणगौर मोल्यो मोडो आयो ।” यो कहना चाहिए कि गणगौर आज दाम्पत्य जीवन के उत्साह और उमंग का मंगलपर्व है जिसमे पत्नी ही गणगौर है और पति ईमर, और वे शिव-पार्वती के जोडे की भांति अपने लिए भी चिर-साहचर्य की कामना करते हैं ।

इस पद पर और भी कई पूजा उत्सव गीत प्रचलित हैं जिनमें गणगौर आरती गणगौर पाणी प्याज गीन वधावा सीढना और बिनाई गीत गौर पूजा से सम्बन्धित हैं। अन्य उत्सव गीत हैं जो नारी जीवन के साथ समाज विलास के परिचायक हैं। इन गीतों में जीवन की उन्नत भावना का दर्शन होते हैं।

साथ ही इन गीतों में नारी जीवन के परम्परागत विधान का समाय हुआ है जिनमें हम राजस्थानी नारा के जीवन स्तर वपभूषा अलंकार आचार विचार का भी ज्ञान होता है। मैम (मगमद कस्तूरी का तेन) रवणी (धार सजाव का प्रतीक गीत अलंकार) कुण्डल बरत लहंगा चूनी पायल आदि गीतों के सहारे प्रस्तुत गीत में वर्णित आभूषण अलंकारों से सजी राजस्थानी महिला का चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है —

म्हारे माये न मैमद सजाय म्हारा हुआ भाव यहाँ रहवो जी ।

म्हारे काना न कुण्डल रयाव — — —

म्हारे गन मे कठी हयाव — — —

म्हारे नाक मे बेतर हयाव — — —

यहाँ रहवो उगता सूरज यहाँ रहवो जी ।

— — — घरसता बादल — — —

म्हारे काल छ गिणगीर म्हारी हुआ माय यहाँ रहवो जी ।

गावा छो नखरानी दिगनारी नार जावा छो न जी ।

म्हारा भावना जोवे छ खाट मिरमानगी नार जावा छो जी ।

म्हारा पचा न चुडली रयाव म्हारा हुआ भाव यहाँ रहवो जी ।

— माया न बाजूबद हयाव — — —

— पगल्या न पायल — — —

— भावना न बोदिया — — —

भाते माया पुजावा न गिणगीर म्हारी मिरमानगी जावा छो न जी ।

महिला समाज की महिलाओं के द्वारा पूजन भी करती हैं। मिट्टी के पात्र में जो गढ़ की पीथ बनाई जाती है और प्रत्येक परिवार के पुण्या का काम लेकर सत से अन्न ताड़ने का मंत्र करती हुई महिलाओं के पुण्या की वृत्ति का जोर दिया प्रेरणा देता है और सुख-मर का अपा जोर बिना समाज के लिए निभाने का मधुरतम उपाय बना है। १७ तिन गीत गाती हैं। गीत से प्रकाश होता है कि —

म्हारी हरीमां जुआर सलीजा जुआर जोट चिरता मगता ।

मुया ताबो न भावबद जी का — कुण्डल साव ओ मय ला — ।

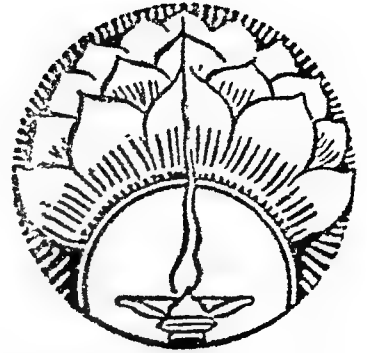
इस प्रकार हम राजस्थानी के इन चित्रभातीय मन्त्रपूष पूजासव में यहाँ के महिला समाज के अनन्य तथ्य का उद्घाटन कर आये हैं। वास्तव में यहाँ के वर्णित नारा जीवन में भारत की प्राचीन भस्मि आन भी माय से रही है। यहाँ की नारा का सम्पूर्ण चित्रित पति और पुत्र के कल्याण में समाया हुआ है और यह निरवध गण का पायक है।



हाड़ीती प्रहेलिका साहित्य की परम्परा

डॉ० नाथूलाल पाठक

एम० ए० (हिन्दी, मस्कृत), पी-एच० डी०
गदरनेमण्ट वारोज, कोटा (राज०)



हाड़ीती लोक मे प्रचलित प्रहेलिका के नाम

हाड़ीती प्रदेश मे पहेली के त्रिने दो मण्ड-पयाली और पानी-प्रमस्मिह । नामान्वयन पयाली मण्ड का ही प्रयोग देखा जाता है । पयाली मण्ड मस्कृत के 'प्रहेलि' मण्ड का विवृत रूप है । पयान प्रहेलि मण्ड की व्युत्पत्ति प्र उपमर्ग हिल् वानु मे उन् प्रभव जोडकर हुई है । हिल् वानु केन्द्रकीटा या समनेच्छा प्रवृत्त करने के अर्थ मे प्रयुक्त होती है । मनोज्ञन का नामन होने मे पयाली मे अपने धाम्बय को भी नही छोडा है । प्रहेलि मण्ड के अनिरिक्त प्रहेलिका मण्ड भी मस्कृत साहित्य मे पहेली के त्रिने प्रयुक्त हुये है । वैदिक साहित्य मे पहेली को शास्त्रीय कहा गया है । पहेली के त्रिने भारत की पानीय भाषा मे गिनन-भिन्न मण्डों का प्रयोग निरुता है । अवधी लोक-भाषा मे इसके त्रिने 'हियाली' और हरियाणा की जनभाषा मे फाली मण्डप्रचलित है, जो हाड़ीती पयाली मे मिलने जुलने हैं । बुन्देली मे पहेली को बुझावल और पजाबी मे बुझागन कहते हैं । उही उसके उपाग भी कहा जाता है ।

हाड़ीती लोक भाषा मे पहेली के अर्थ मे प्रयुक्त हुंगर 'पारसी' मण्ड निम्नजनक-ना प्रनीन होता है । यह मण्ड हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत अमीर मुनगे की कविता मे इनी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है । समझने मे कठिनाता के भाव को लेकर यह नामकरण किया गया है । पारसी भाषा की कठिनाता और पहेली की रहस्यमयता व दुन्हाता का समन्वय होकर 'पारसी' या 'पानी' पहेली का वाचक बन गया । जाजरु भी विद्यालय मे पढ़ने वाला बच्चा गांव मे जाकर अपने अधिष्ठित परिवार वानों के नामने जब हिन्दी बोचना है, तब वे लोग यह कहते हैं कि अंग्रेजी बोला रह है ।

हाड़ीती लोक-प्रहेलिका की परम्परा

हाड़ीती की बौद्धिक-परम्परा मे पहेली का अपना विशेष स्थान है । इन पहेलियों का मूढम अध्ययन करने पर जात होता है कि वैदिक युग के विकसित चिन्तन और परिष्कृत अभिव्यक्ति-पद्धति के मूल मे जो परम्परा विद्यमान हैं, वही इनमे भी चली आ रही है । उदाहरण के लिये हाड़ीती लोकमुख मे नचरमाण निम्न पहेली को देखा जा सकता है ।—

“चार ठडा चार ताता, चार हरण्या सरे ।

एक टाग सूं वारा हरण्या, ग्यारी च्यारी चरे ॥”

“चार ठडे हैं, चार गरम हैं और चार मे भरने भरते हैं । वारह हरण्या एक पैर मे खडी होकर अलग अलग चरती है ।”

हाड़ीती लोक मे प्रचलित इस पहेली मे शीत, शीघ्र व वर्षा-नीन प्रधान ऋतुओं तथा वारह महीनों का संकेत किया गया है । इसके साथ ऋग्वेद के प्रथम मंडल के पितृवर्णन सूक्त का प्रथम मंत्र द्रष्टव्य है—

दूर रहत जा रहे हैं दम्भ छत्र से द्वय से
बर लिया भक्तों को वग जाचरण युत उपदेन स ।

दास्यों के जान की ही इव नयने हैं शरी
सोय धों एकाग्र बनते देखत फिर ना घी ।

हम कहें आपण उस या मोतियों की इव सगी
जय मिलाने आप जात हैं धडी से ही कडी

आप की गुन प्रणाम छत्र निक साय हैं
सादरी सोजत गुरुकुल विन्ध म विख्यात हैं ।

हैं अनेकों सस्याए और राजस्थान मे
आपके सकल पर रत हैं जो जन-कल्याण म ।

सादरी के हो पुजारी सडक है न भडक है
रवाग की बराम्य की पर आप म इव भडक है ।

आप अपने दावकों का नुब रखते हैं पवाल
धूम आने हैं आ हर गाव में हरएक साव

सूबियों कुछ और भी तो आप धी म खात हैं
मोह सज नमरों का करत बाव म चौमान हैं ।

कहा कहें आपक जीवन की जो भी गान है
आप पर शीतल को ससार को अभिमान है

है अभिन-दन मुनि चदन क द्वारा आप का
और भी जग जलवा देखे आपने प्रताप का ।

•

मैं टकरा गया

मनि रजत जन

इस जिन्दगी म मैं बठिन धावाण स टकरा गया
हा ! साय खल-दल क मिरा क्षमपार म चकरा गया ।
सच्चा सहारा आपका उस वक्त था मुक्तो मित्रा
जिसके मुचन पर हो सुखद जीवन सुमन मेरा लिना ।
सोजय गुचि पीयूष स सय आपि मेरो दूर कर ।
पुनि पूण प्रम प्रवाह से मेरो तमना पूर कर ॥
दुर्दान्त करि अरि हेतु श्रीमान ! आप मदघर वसरो ।
बर जोड़ अभिन-दन करू गई मुन मम जीवन सरो ॥
तरा विमल बिन्दास मेरे दवात के मम धुन रहा ।





बालक और महिलाये ही प्रहेली कहते-सुनते देखे जाते हैं। वैसे स्त्री-पुरुष सभी में इनके प्रति रुचि देखी जाती है, किन्तु प्रायः देखा गया है कि इस कला में स्त्रियाँ ही अधिक प्रवीण होती हैं। प्राचीन काल में प्रहेली को स्त्रियों की कला समझा जाता रहा है। जैन-कल्पसूत्र में प्रहेली को स्त्रियों की एक कला बताया गया है। कल्पसूत्र में वर्णन आया है कि भगवान् ऋषभदेव ने अपनी पुत्री सुन्दरी को जिन चौसठ कलाओं का बोध कराया था, उनमें एक प्रहेलिका भी थी। प्राचीन समय में प्रहेली द्वारा बर-वधू एक दूसरे के वीद्विक स्तर का मूल्यांकन करते हुये परस्पर माधुर्य भाव का तादात्म्य स्थापित करते थे। इसीलिये यह विकसित परम्परा विकसित एवं अविकसित सभी परिवारों में पाई जाती है।

विवाहसंस्कार में कवर कलेऊ पर, वधू को लेने आये हुये अतिथियों के लिये, मगाई सम्बन्ध के अवसर पर, हाड़ीजी को लिबाने के लिये नणदोई के प्राप्त होने पर अथवा समधी-ममधिन के आगमन पर सध्या के समय हाड़ीती प्रदेश में गीत गवाने की प्रथा प्रचलित है। गाल-गीतों की समाप्ति होने पर अतिथि की बुद्धि-परीक्षा के लिये एकत्र हुई महिलाओं के द्वारा प्रहेलिया बूझी जाती है। स्त्रियाँ प्रहेलिया गाती हैं और अतिथि उनका उत्तर देते हैं। आज-कल भी यह पद्धति इसी रूप में विद्यमान है, किन्तु परम्परा का निर्वाह मात्र ही इस प्रथा का एक मात्र लक्ष्य प्रतीत होता है।

हाड़ीती लोक-प्रहेली पूछने का ढंग

हाड़ीती प्रहेलिया महिलाओं द्वारा रागविशेष अलापकर गायी जाती है। मगीत और साहित्य के इस अनुपम सामजस्य से श्रोताओं की हृत्तंत्री झकृत हो उठती है। प्रहेलियों को गाते समय अपने प्यारे पाहुनों के लिये अनेक विशेषण लगाये जाते हैं। जामता के लिये कवर विहारी और राजकवार, समधी के लिये रसिया ब्याई जी, भोला ब्याई जी, चतर-विहारी आदि तथा सामान्य अतिथियों के लिये रगीला फाऊणा, छवीला फाऊणा और प्यारा फाऊणा विशेषण प्रयोग में लाये जाते हैं। कभी-कभी श्रोताओं के उत्साहवर्धन के लिये “पडत जोसी करो वच्चार, या साध्या में कुण सरदार”—इस अर्द्धालिका का पाठ किया जाता है। प्रहेली पूछने का ढंग निम्न प्रकार है —

जो बियाइजी, धोली जी धोली बेलडी, धोला छाया फैल
फैरया सुँ दुख नोपजै, लागे घणी सरूप
चतर म्हाकी पयाली को फल खीज्यो जी
फ अन्तर कपट्या छो जी बियाईजी,
बोलो न, अमरत बोल।

श्रोता की बुद्धि पर शाण चढ़ाने के लिये महिलाये प्रहेली पूछती हुई उत्तर अर्द्धालिकाओं में यहाँ तक कह देती हैं कि यदि हमारी प्रहेली का उत्तर न दे सको तो अपनी मा पत्नी को हमारे गिरवी रखकर इसका उत्तर पूछिये। यदि अतिथि प्रहेली का उत्तर न दे सके तो उसे हार स्वीकार करनी पड़ती है। प्रहेली प्रस्तुत करते समय ही महिलाये कह देती हैं कि हमारी प्रहेली न बता सको तो नाक कटा कर यहाँ से उठिये। यदि कोई अतिथि नकटा बन जाये और हार स्वीकार न कर सके, तो उसे स्त्रियों द्वारा गाव बलाई या मीषे का पुत्रकहकर सम्बोधित किया जाता है। पयाली के फल को न बता सकने पर महिला मडल द्वारा नाको में तीर-चलाना तो साधारण बात है। इसके साथ ही हार गाने वाले श्रोता को चक्की—चलाने का विधान भी बता दिया जाता है। हर प्रकार उत्तर में विफल होते रहने पर महिलाये यहाँ तक कह देती हैं कि जो हमारी इस प्रहेली का फल न बतावेगा, वह कालीसिंध नदी का पत्थर होगा। यहाँ नौ उनकी वचनावलि की सीमा समझनी चाहिये, क्योंकि मेघा शक्ति-मम्पन्न व्यक्ति की चेतना के स्पन्दन की यहाँ सगन्धि हो जाती है।

हाड़ीती प्रहेलिकाओं की प्रकृति

ज्ञान की याह लेने वाली प्रहेलियों की रचना कई प्रकार में होती है। वक्ता भेद से उनकी प्रकृति निम्न-

इ विरूपे चरत स्वयं अयाया धत्तमुपापयेते ।
हरिरयस्या मवति स्वधादान गुह्यो अयस्या दवग मुधर्चा ।
(ऋग्वेद १.६५.१)

अर्थात् (विरूप) विभिन्न रूपों में संयुक्त (इ) दोनों स्त्रियाँ और रात (स्वयं) गौत्र प्रयोजन के लिये (चरत) विचरण करते हैं । (अयाया) दोनों ही अपने अपने (वस्त्र) बज्ज की (उपधापयेते) रक्षा करने हैं । (अयस्या) एक (रात्रि) के पास में (चरि) मूय (स्वधादान् अग्नि) अन्न प्राप्त करते हैं और (अयस्या) दूसरे (दिन) के पास में (गुह्य) चरत (मुधर्चा) गौत्रनिष्ठ से युक्त होकर (चरत) प्रशान्त होते हैं ।

विद्वान् न इसक शून्य का एक चरत हुए दाना बोलिनी और रात वन लाया है । उनके वस्त्र चद्र और मूय हैं । ऋग्वेद के इस मंत्र में वही चरत अथवा चरत विद्या का प्रयोग किया गया है । हाडोती पन्थी में बार-बार इन तथा एक टांग से एक रात्रि का भाव प्रदर्शित होता है । शोना स्थला पर पशु के माध्यम से समय के रहस्य का वर्णन किया है ।

अन्न रूपवाचक चरत में हाडोती की उक्त पक्षी ऋग्वेद के इस मंत्र के समकक्ष रखी जा सकती है । गौत्र प्रसिद्ध उपररणा द्वारा मूय विषय का स्वानत कराया गया गौत्राधिक प्रयोग से युक्त इस प्रकार के अलङ्कार प्रयोग हाडोती के प्राचीन लोक साहित्य में अत्यन्त उच्च माने जाते हैं । "सम प्रतीत होता है कि मानव सभ्यता के विकास के साथ चरित मूय में चित्तन की अभिव्यक्ति पद्धति के द्वारा सुसंस्कृत बग चाहे विद्या का अनुपनीय साहित्य प्रकाशमान आया । दूधरी और स्त्री मरुत बग में गौत्राधिक अभिव्यक्ति का दूधरी रूप सामान्य जीवन में पनपना रहा था लोकसाहित्य के रूप में समय समय पर प्रकाश में आता रहा । इसीलिये आज भी दानों धाराया के मूय में विद्यमान चित्तन की एकलता दृष्टिगोचर होती है ।

रहस्यमूलक अभिव्यक्ति का यह प्रकार मानव की संज्ञात प्रवृत्ति है । इसी कारण विद्वान् की विभिन्न भाषाओं में यह पद्धति दृष्टिगोचर होती है । भारतीय साहित्य के अन्तर्गत वेद गौत्राधिक में प्रहलिका न साहित्य और कमराण्ड के क्षेत्र में संप्रयोग स्थान प्राप्त किया है । ऋग्वेद की प्रहलिका का यह वह ही असुविन्न न हागा । चरित मूय में जिग समय लम्बे समय वागा की परम्परा थी उस समय सत्त्वना के मध्य अवकाश के समय सत्त्वना में प्रवृत्त ऋग्वेदिक ब्रह्मण्ड द्वारा मनोरंजन किया करते थे । यही यौद्धिक परम्परा धनानुष्ठानों के समान ही प्रवृत्ति स्वरूपान् विभिन्न उत्सवों और विभिन्न सामाजिक अवसरों पर अत्यन्त आनन्द के सपत्नी जाने लगे । यही प्राचीन परम्परा आज भी समयानुसार परिवर्तना के साथ हाडोती समाज में चली आ रहा है ।

हाडोती लोकप्रहेलिका का प्रयोजन

हाडोती लोक प्रहलिका का प्रयोजन उद्देश्य बुद्धिबिज्ञान के मनोरंजन होता है । वक्ता के बुद्धिबल के प्रमाण और श्रोता की बुद्धि परीक्षा के लिये स्तब्ध उपयोग किया जाता है । बुद्धि का तीव्र करने स्मरण चर्चन का ब्रह्मण्ड और वस्तु ज्ञान के प्रति सदा का प्रतिक्रिया करने का वाय प्रहेलिका द्वारा मग्न न होता है । प्राचीन काल से इनका उपयोग प्रोडा गाष्टी और विनोक्तक में होता चला आ रहा है । भाषाशास्त्र में संस्कृत प्रहलिका का उपयोग के लिये में लिया है कि एक गाष्टी और विनोक्तक में प्रहलिका जानने वाले नागरिक पारस्परिक विचार विनिमय एवं ध्यानाओं की जांचपचर्चा करने के लिये इनका उपयोग करते हैं ।^१

हाडोती के भाषा में ज्ञाता की बुद्धिपरीक्षा के लिये समुदाय में प्रायः चर्चा प्रवृत्ति जाता है । यदि ज्ञाता समकाल में अनेकाल पक्षों का ही भाव के युक्तपक्षविद्या का उत्तर देने में समर्थी मशवरा करते हैं । हाडोती प्राज्ञ में





(ग) कालो फाणी दमका कर, भँस्या पटी पचास ।

झोट्या झोट्या छाटज्यो, ज्या को ह्व उफाणो जाये ॥

(घ) रींग गींग्यो, तीन सौंग्यो ।

खाल कड्डी, मास मोठो ।

प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत की योजना का जो विधान पहेलीकार द्वारा प्रस्तुत किया जाता है उसमें ग्रामीण वातावरण स्पष्टतः प्रतिबिम्बित होता है । ऐसे उपमानों का नयोजन वर्ण्य विषय के साथ प्रायः नहीं किया जाता, जिनकी प्रतीति सामान्य मनुष्य की पकड़ के बाहर हो । विषय के अनुसार हाडौती पहेलियों को मोटे तौर पर निम्न लिखित वर्गों में बाटा जा सकता है—(१) धर्म सम्बन्धी (२) कृषि सम्बन्धी (३) प्राकृतिक पदार्थ सम्बन्धी (४) गृहवस्तु सम्बन्धी (५) वस्त्र भूषण सम्बन्धी (६) भोजन सम्बन्धी (७) वृक्षफलादि सम्बन्धी (८) पशुमरीमृपादि सम्बन्धी (९) व्यावसायिक वस्तु सम्बन्धी (१०) शरीरावयव सम्बन्धी ।

१ धर्म सम्बन्धी पहेलियों के अन्तर्गत ईश्वर, मन्दिर, धार्मिकसिद्धान्त तथा पूजा सम्बन्धी उपकरणों का नमावेध किया जा सकता है । हाडौती की जनता आस्तिक है और भक्ति का प्रधानता देती है । भोजन करने से पूर्व प्रतिदिन मन्दिर में बैठे हुये भगवान के लिये एक पहेली इस प्रकार कही गई है—

“म्हा तो म्हाकै थावा जावा, अन्न फाणी न खावा ।

म्हा तो म्हासू मुखण न वोलो, गुण म्हा खुण का गावा ।”

इस पहेली का रहस्य ‘म्हा’ शब्द में छिपा हुआ है । एक आस्तिक भोजन से पूर्व मन्दिर पर नित्य दर्शन करने जाता है । भगवान की प्रतिमा मुह से नहीं बोलती, फिर गुणगान किमका किया जाये ? इस पहेली में मनुष्यों के प्रत्यक्ष व्यवहार को लेकर ईश्वर सम्बन्धी सामान्य व्यञ्जना प्रदर्शित की गई है । शब्द के सम्बन्ध में एक पहेली इस प्रकार है—

“भूरी भँस भराडो पाडो ।

पकड्यो सींग, करयो अड्डाटो ।”

इस पहेली में भूरी भँस (शख का कीड़ा) ने भराडे (मोटे) पाडे को जन्म दिया है । शख के पिछले भाग रूपी पाडे के सींग ज्यों ही पकडे, त्यों ही वह अर्द्धा उठना है अर्थात् शख को पकड़ कर फूक मारने में वह बज उठता है ।

२. कृषि सम्बन्धी पहेलियों के अन्तर्गत कृषि-कर्म उपकरण, फसले, खेत आदि आते हैं । चने के पौधे के लिये एक पहेली इस प्रकार है—

‘एक नर सूतो माल मे, ओढ्या हरी जी सोड,

नीचे लटक घूघरा, ऊपर मोत्या का पान ।”

एक नर माल में हरी (मोड) चादर ओढकर सो रहा है । नीचे घूघरे लटकते हैं और ऊपर मोती के पत्ते लगे होने में नर कहा गया है । उसके शयन के स्थान और ओढने की दुलाई का संकेत करते हुये नीचे स्वल्प का ज्ञान कराया गया है । पत्तो पर खार जम जाने में वे मोती जैसे चमकते हैं ।

३ प्राकृतिक पदार्थ सम्बन्धी पहेलियों में ऋतु, मास, आकाश, चन्द्र, चन्द्रिका, नक्षत्र, नदी, पर्वत आदि दार्थ उपमिन होते हैं । चन्द्रिका का मानवीकरण करते हुये एक पहेली इस प्रकार कही गई है ।

हाडौती ३

“घोली साडी घोली घाघरो, घोली मारणी को रूप ।

जा

उजली बतीसी, बडला पान का, मोत्या तपे छै ललाट ।”

भिन प्रार की भी जानी है। प्रहृति व अनुसार हाजीरी पट्टियों का वर्गीकरण निम्नप्रकार से किया जा सकता है —

- (१) सामान्य वणनात्मक
- (२) स्वयं परिचयात्मक
- (३) आत्मानुशासक
- (४) परवस्तु निदर्शक

(१) सामान्य वणनात्मक प्रहृति वाली पट्टियाँ में वस्तु सामान्य वणन व द्वारा वण्य विषय की प्रस्तुत करता है। यह प्रकार की पट्टियाँ भी मुख्यतः सर्वांगिक हैं। उदाहरण के लिये निम्न पन्नी देखी जा सकती है —

एक सादरों अट्ट जे घोस चड्ड ।
जो की छाल छालावार गोने सावें बरानार । १

(२) स्वयं परिचयात्मक पट्टियाँ में वण्य विषय या उपस्तुत स्वयं अपनी विशेषताओं का परिचय देता है। जग —

जपर म्हारो सासरो धरो म्हारो कीर
कोन म्हारी भाइलो उग म्हारो जीव । २

(३) आत्मानुशासक पट्टियाँ में वण्य विषय नष्ट बना अपन उचितगन अनुभव की प्रशंसा करते हुये पहली प्रस्तुत करता है। जग —

जल मरी झारी म्हार सराण धरी
सारी सारी रात मू तो तताया मरी । ३

(४) परवस्तु निदर्शक पट्टियों में दो मम आधारवाणी वस्तुओं का निवेदन किया जाता है। उस प्रकार का नाम साम्य वाता सीसरी वस्तु का नाम आता की स्मरण गतिन अदवा अनुभव से निश्चिता है जैसे —

एक तो मूड गवानन की दूतरी मूड हाथी की ।
सीसरी आप बतौ बीयो न तर पाकी सोठा न मये भसो जो । ४

हाइली प्रहेलिकाओं के वण्य विषय

हाइली प्रहेलिका के वण्य विषय निविष्ट हैं। माधारण से साधारण वस्तु की पत्रों का विषय बन जाती है। जग या संपत्ति का विनाश होना आना है या यों वनरी शब्द प्रती जाती है। यह भी शब्द में आता है कि एक ही वस्तु पर कई प्रतिभाओं का स्थान जाने पर भिन्न भिन्न प्रकार से उग वस्तु का विषय प्रस्तुत आता है। उदाहरण के लिये निपाठ न जिये निम्नविध चार व निपाठ दृष्टि पथ में आई हैं।

(क) ऊँची सी छतरी दूक की मोरन बतरे जो पान ।
बतर बतर बइसा बइसा चाबो राजबवार ॥

(ख) रंग रंगी सोन सीप्यो ।
पोगी नाय दूय सीप्यो ॥



६ भोजन सम्बन्धी पहेलियों में दूध, दही, मक्खन, छाउ, रोटी, पावड, गंदीडा, जनेवी नमन, मिर्च, गहद पान, गुणगी आदि वस्तुएं आती हैं। मक्खन विषयक निम्न कहावत द्रष्टव्य है—

“मल डूब, लोडी तर, जल में छायो पाप।

एक अचम्भो में चुण्यो, बेटी ने जायो दाप।”

‘मिना डूबती है और बट्टा (लोडी) नैरना है। जल में पाप छा गया है। मेने एक अचम्भो मृता है कि पुत्री ने पिता को पैदा किया है।’ इस पहेली का अर्थ तो उस प्रकार है। इस में दही तो मिना (जो पानी में डूब जाती है) और मल्लाई को बट्टा (जो पानी में नैरना है) कहा गया है। जब टांके ही मक्खन पाप के रूप में ऊपर छा जाता है। छाउ रूपी बेटी मक्खन रूपी बाप को जन्म देती है यह आश्चर्य की बात है। गहद के लिये निम्न पहेली द्रष्टव्य है—

“घन कडलू, वन चुचणो, वन फाणी वन भाग।

सुन्दर नीरो वर रही, होयो बहोत सवाद।”

मिना कडाही, मिना पण्डे, मिना पानी और मिना अग्नि के सुन्दरी हलुआ बना रही है। वह बट्टन ही स्वाद बना। गहद की मक्खी रूपी सुन्दरी द्वारा गहद का निर्माण का यह तरक बड़ा हृद्यग्राही है।

७ वृक्ष जनादि सम्बन्धी पहेलियों में आम, जामुन, तेहू, जनाग, मिनाडा, रंग, कैय, खजूर, खरबूजा, इमली निम्बाली, मृगफली, कच्छी, बैंगन, नारियल, प्याज आदि पदार्थों ने सम्बन्धी पहेलियां आती हैं। आम की गुठली के लिये निम्न पहेली कही जाती है—

“गगन सतारां होंदनी, मुसंडे पड़ती लाल।

व्हाहीं जमारो वारती, चामडी चामडी वाल।”

आम की गुठली आकाश में नक्षत्रों के साथ झूलती है। उसके मुँह में लाल गिरनी है। ऊपर ही जन्म लेती है और जिनकी चमड़ी पर बट्टन अधिक बाल होते हैं। मिठाई के लिये प्रस्तुत एक पहेली इस प्रकार है—

“ऊंची सी छतरी टूंक की, मोदण कतरै जो पान।

कतर कतर बटला कट्या, चावो राजकवार।”

जामाता का मिठाई द्वारा माननी स्वागत करने के लिये वानावरण के चित्रण द्वारा मिठाई का गहन्य बताया गया है। टोंक के बाहर की एक पहाड़ी के नीचे की एक झील में मिठाई बट्टन होने हैं। मिठाई वाली स्त्रियां इनको तिजोना काटती हैं। पान की तरह इनको बना देती हैं। मिठाई को चबाया जाना है। वन यहा चवाना क्रिया का प्रयोग किया गया है, जो उपयुक्त है।

८ पशुपक्षीमरीमृपादि सम्बन्धी पहेलियों में सूकरी, नाग, बिच्छू, दीमक, बीरबहूटी, आदि जीवों पर पहेलियां कही गई हैं। दीमक पर पहेली निम्न प्रकार है—

“अत्तर तोड़, पत्थर फोड़, फोड़ सीतम सीता।

बना फाणी के म्हेल बणाई, म्हे कारीगर कैना ?”

“पृथ्वी की पत्त तोड़ने वाला, पत्थर और सीमे को फोड़ने वाला तथा बिना पानी के महल बना देने वाला कारीगर कैना ?”

बीरबहूटी के लिये “हरया खेन में लोई को टपको” कहा जाता है। सावन के दिनों में हरियाली के बीच में बीरबहूटी की उपमा रत्न की बूद में दी गई है।

“वेन माता न लह्या दवन रूप दवन त्त वकिन और नमन रूपी नन माना त्रितके लप्ता पर चमकत है चित्रा व सव त्तमय रूप की दगवहली म चावी प्रस्तुन की गई है ।

नमन के लिय निम्न पद्यों प्युट है —

माली की बाढी फुल री र सात औ न तोडया हातो वण छ ?

रगोला फाऊना र सात छुडीली फाऊना र सात ।

मन्दर रूपी माली व आवाग रूपी बागी फल रहा है । म ठाऊन वाता कोई नहीं है । त तत्रा म नर हुये आवाग का रूपक सम गहना म बाधा गया है ।

(४) मन्दरमु सम्बन्धी पदलिया म चवका बिबा सावत कु र ताता मियडा पया त्रिटा तत्रा चरवणा चमका धावणा र त्र तराऊ माति पर मन्दरु व प्रसिन्धन उपयोग म आन बागी वस्तुता पर वनी हुई पदलिया आनी है । छछ त्रितीन व लिये रई पर निम्न पद्यों कहा गई है—

धार धरुववा चक चक बोली बोली अमरत यानी ।

मरया ममवर मे जा पडी ऊपर छु मायो फानी ।

मम प्रथम वी व भाग म रई डारुवर धीर धीर चरुव जानी है । उम समय वह चक चक म करनी है मानों अमनमय बागी डाल रनी ने । धरे हुये (मल रनी) सम म गिरत व वन्वात भी डार से पानी मागना है । मवयन निशान व लिय माट म टण्डा पानी डाला जाना है ।

अनाज वीसन की चवकी व त्रि निम्न पद्यों प्रस्तुत —

एक सींग की डांगरी जनरो मोर जतनोद साव ।

चतर ग्हावी पयाली को फल लछो छो ।

म पद्यों म चवकी व सव मात की डांगरी (पाव माति वगु डगर) वन गया है । पर सींग व मातव चवकी चाने व लिये म हुये हुये (डांगरी) म है । चवकी म त्रिनता डालते हैं उनता ही या जानी है । म पद्यों म वन सम्बन्धी सामग्री ता ऊपर की ही वकिन म है । दूसरी वकिन तो वान युनि व लिय वी गई प्रवात हानी है ।

५ सम्प्रामुण सम्बन्धी पदलिया म पमडी वगुकी अमरली, धाली आति वस्तु तत्रा पूडा मय वान का पद्यों माना बिनिता कोटरी आति आमुण आत हैं । पमडा का दृश्य निम्न पद्यों म कहा गया है । हम मत्री वचना अतिमय अमम ववन वरता हुई कहना है ।

‘तोस! तोस! हात की साढी ग्हाटे सराये धरो ।

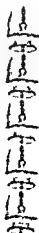
सारी सारी रात ग्हा तो व्हाई मरो ।

पमदिया प्राय मातह हाव का दूआ करनी हैं । माडी व रवात पर उमता उपयोग नहीं किया जा मरना । पनी ववन पमना की मग्वाई का और गरीर पर पद्यों आने म अममवना का मवन करव दृश्य का टिप्पणी गया है । पुन व लिय म पनी म प्रवात की गई है —

हमियो ओ पलो लीलडो माय वगुनल रंग ।

नारी रव परण चड वन ऊनरे म राव ।

हम पाना पावा मयम व वगुनल रंग बाणा नारा व विला व मन्दर म हा व ना है आ निन और मय उमरना ही गरी है । वडा त्रिनता का वहाव बिह माया जाना है । उमम वच बिबिध रंग हाव है ।



“छोटो तो मनीराम, बड़ी भारी पूछ ।
ऊँ गयो मनीराम पन्ड लाओ पूछ ।”

वाल्म के नामान यह पहली आते ही उसको लम्बी पूछ वान मनीराम की तन्नाह होनी है । बड़ी पूछ वाला चूहा बाल-बुद्धि मे आता है । इन प्रकार अन्य वस्तुओं का निर्देश करना हुआ वाल्म एक जाना है, नो माना मूर्ख-तारा बताकर उसकी जिज्ञासा शान्त कर देनी है । वाल्म के अनुभव और ज्ञान की परिधि मे आन बाने विषयों पर ही वाल्मों ने पहेंचियाँ पूछी जाती हैं ।

अनन्यफल-प्रहेलिकायें

कभी कभी ऐसा अवसर उपस्थित हो जाता है कि पुष्प-श्रोता-यों मस्तिष्कों द्वारा पूरी गई प्रहेलिकाओं का उत्तर देना चला जाता है और मिया पहेंचो कहते कहते पर जाती है । ऐसी परिस्थिति मे कुछ ऐसी पहेंचियाँ होती जानी हैं, जिनका कोई उत्तर नहीं होता । उन प्रकार की पहेंचियों को हाडीनी कोर भाषा मे “ओगवण्या” कहा जाता है । ये ओगवण्या पहेंचो का अर्थ बताता वाटे को चक्कर मे डालने के लिये गयी जाती है । जैसे ही श्रोता उन पहेंचियों के अर्थ नो जानने के लिये अपनी दृष्टि को दोहराता है वैसे ही मस्तिष्क समझ मे कुछ विश्राम मित्र बनाता है । इन पहेंचियों का अर्थ नहीं निश्चयता । प्रत्यक्ष रूप मे नो यह विश्राम नहीं होता कि उनका कोई अर्थ नहीं है । ओगवण्या के निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

“पैलो मूना गखडी, पैलो चणा की माल ।
रगीला फाऊणा रे ताल, छवीला — फाऊणा रे ताल ।”

हूसरी इस प्रकार है —

“चौंटी मे मूँया मूतणो, जी की धार चलींटे जाय ।
रगीला फावणा रे ताल, छवीला फाऊणा रे ताल ।”

हाडीनी पहेंचियों की रचना गजी सरन है । उनमे अनुप्रास, रूपक, श्लेष आदि जलकारी की छटा सर्वत्र देखने का मिलती है । कहीं ध्वनिर्वचित्र्य और शब्दवैचित्र्य द्वारा वस्तु का चित्र प्रस्तुत किया जाता है । कहीं-कहीं दृष्टिकूट शैली द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने कीतूह्य पूर्ण जिज्ञासा तो मृष्टि की जाती है, जिनका सम्बन्ध दृष्टने पर भी नहीं मिलता ।

कुछ पहेंचियाँ शु गार्किक वातावरण प्रस्तुत करती हैं । कहीं-कहीं ऐने शब्द-चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं, जो यौन विज्ञान मे सम्बन्धित हैं । अर्थमन्त्र और अनन्य जातियों मे ये शब्द चित्र पर्याप्त सरा मे मिलते हैं किन्तु अन्य जातियों मे ये स्वल्प मात्रा मे और सयन हैं । इस प्रकार की पहेंचियाँ अबोध श्रोता के अवचेतन मन मे विद्यमान यौन तत्त्वों को स्पन्दित कर देती हैं ।

हाडीनी पहेंचियों का भाषावैज्ञानिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों मे अध्ययन अपेक्षित है । इनमे प्रयुक्त भावों और शब्दों का विश्लेषण करने मे ज्ञान होता है कि कुछ भाव और शब्द तो अत्यन्त प्राचीन काल से चले आ रहे हैं । वैदिक साहित्य मे उनका तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है । कालक्रम के अनुसार हाडीनी पहेंचियों का अध्ययन कष्टमाध्य है । इनके सम्यक् विश्लेषण, अध्ययन और मनन मे ज्ञात होगा कि युगों मे चगी आती हुई प्रहेलिका की मवल परम्परा के अमिट स्वर आज भी लोको मानन मे गुजायमान हैं । हाडीनी प्रहेलिका साहित्य की गरिमामयी परम्परा का अनुशीलन कर विद्वान प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य की रहस्यमय ग्रन्थियों को खोलने मे समर्थ हो सकते हैं ।

६ यावदायिक वस्तु मध्यस्थी पहुँचता है गिन भिन उत्राया की साधन भुन वस्तु ॥ पर कही गई पहलियाँ सम्मिलित हाता है । इस वग म बागज वस्त्र दवात तत्रवार सारणा तरातु मगर पनर आनि वस्त्रये आता ह । सारनी पर एक पानी निम्न प्रकार है —

‘चार चतर चात्या चाकरी साया उडदगी नार ।

न तो लाव न तल पीव बोल सारी रात ।

चार चतर (समीतन) चाकरी म चत । एवं उडत्या स्त्री वा त जाये । व न छानी के छोर त पाना पीती है कित्त सारी रात बाकरी रहता है । ऊपर की पंक्ति म उत्पन्नग्राम का छत्र स्थानीय है । सोडा का मतवार व विषय म पहुँची इस प्रकार है —

बाली छो बोडानी छो बाता वन म र छो ।

नाल पाणी व छो भरदा क साद र छो ।

तत्रवार बाल म्यान म रखी जानी है । छार पर अजर बाता वन बोडानी हाती है । वन तथा पान पानी पीती है और मी के छो क ये पर गाभा दनी है । नामद इस धारण नशा कर मानता ।

१ धरीरावयय सम्म वी पहलियों म जाय नाव कान चली आदि का वयन आता है । तात्र पर एक पत्रा निम्न प्रकार की जाता है —

‘तात्र जतनी सी आवरी ओ जतनी सी बवाड ।

तीमे सूवर सापडो रषट थडया माटवार ।

नित क वगवर पात्रा और जी क धरावर विवाह हैं । उम स र वन है । उम दलत ही वक रण पन्न है । सुत्र नना क प्रति आवयण स्वभावत हाता है । इसा प्रकार स्थानी क विषय म पहली पत्रा प्रकार है —

पांच पीपया वस्त्र तनता ।

पांचय है नि वस्त्र की तत्रा पर पांच पीपय त वड छत्र है । कितना सत्र स्पष्ट है । हानेनी की उपमा वस्त्र म सत्र दी गई है । स्थानी क मध्य भाग का वस्त्र का तत्रा और पांच जगुनिया का पांच पापय की उपमा म गई है । हाथ की वस्त्र की उपमा पिष्टसाहित्य म प्रचर भाषा म दी जानी री है ।

पान प्रहेलिकायें

छोट छोट बच्चा म प्रलिया व प्रति गिनाया पाव पत्रा करन तथा उत्र प्रलिया साहित्य का गिना वन क गिना बालापयोगी प गिया हानेनी स्तर साहित्य म प्रचुर भाषा में विद्यमान है । य पत्रिया युवका एवं प्रीत दानियम म पूछी पान बाती पत्रिया का जेता सत्र होना है । तत्र उत्रम त्रम हाता है । सात्र पनाविनात का पूरा पूरा ध्यान नम रता जाना है । त्रिप वस्त्रा म जितना वस्त्राया जेसित है उमक जगुगात्र हा पत्रिया ता है । यडा साता त्र ताया नानी माने समर रात्र म ववा मय त्रवां पूछता है । य वय जी की त्र जने का मानधाना म मुनन है । माना या मयावनी क सुत्र स त्रवा ही जेता घर य दा का टपक — पत्रिया त्रवा त्रिवा का मस्त्रिया दी जनी तत्रा और टपक जनी सात्र वस्त्रु की सात्र म रण जाना है । अत्र त्र जितना सात्र और गोत्रा त्र उमक अनुभव म आय है उन मवरा नवरा उमक सामक जा जाना है । व वनी त्र त्रवा और वमा त्रनामा वना लयता है । अत्र माना ना ही करता जाना है और बात्रा का बुद्धि व सात्रा वदना जानी है नव व व उत्रा है कि मी लु यता । तत्र सात्रा वी का वयसा वट कर त्रया त्रिनामा का पान कर ना है । त्रवा प्रकार पांच व ववा म भाषा पूछता है —



फूलों जी करेलो, लटपट छा रही वेन
 इत मरवो उत मोगी, गुन गुन गीर गुलाब
 मदमाती म्हेला चटी, पिय जाणें मेहताय,
 प्याग बाके आगन जी फूलों जी करेनो
 लटपट छा रही वेन ।
 बागा जाजो मायजो, नीर लाज्यो चार
 नाग्यो मत त्यावजो, नीर-रुखा नो नार
 प्याग बाके आगन फूलों जी करेलो
 लटपट छा रही वेन ।

आत्मन की स्थिति में जब ही अनुभूति अधिगम्य होती है । प्रकृति का वह मोन्दर्य स्थापित नहीं बल्कि भावात्मक माहुर्य के आधार पर ही स्थित है । इस प्रकृति में मोन्दर्य माहुर्य में यदि स्वयं अपने को नजम पाना है, और यह नजमता विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है—

चादा बारी चादणी मो रात रस
 नगद नीजाया पाणी निमनी,
 घटल्या तो मेल्यो छं समदर तीर
 नपद तो सींचि छं भोजाई सेले री
 हूमली तो दाकी छे दोर्या भाऊ ने
 रमबा ने चाल्या चम्पा बाग में ।

आत्म-नलीनता की स्थिति में जन-भाषण प्रकृति-मोन्दर्य की चेतना भूत जाता है । और उसके मन में वह मोन्दर्य आनन्द के रूप में स्वयं अभिव्यक्ति की प्रेरणा दत्त जाता है—

हरियाला आंवा क'नीचे पातणो घलायो
 हरियाला नीम क'नीचे पातणो घलायो
 चिड़िया बोली चूं चूं चूं
 मो ज्या नहीं चूं चूं चूं
 हरियाला रुखा पे बंठी
 चिटियां बोली चू चू चू

ऐसे विरल मोन्दर्य-चित्र हाटीनी गीतों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं । एक चित्रहिणी तो पावन के उद्दीपक चित्रों में अन्दर ही अन्दर निमग्न होती जा रही है, उसे चारों ओर सूना ही सूना नजर आ रहा है—

काली काली बादली में
 बिजली चमके रे
 मेघा मेघा झरमर झरमर
 मेदलो बरसे रे,
 भोजे म्हारी नुई नुई कोर
 डू गर में बोलरिया छं मोर,
 बिन साजन मूं तडफू एरुनी
 किया घराऊ घोल ।

उधर पंखा डोल रहा है उधर वह बके न डोल रही है परन्तु—

निदेशक गिरीश मृत्याङ्गन त्रिमास अजमेर



आज्ञा माय त प्रहृति स्नान करत समय जन तबि प्रहृति-वर्णन ये रस जाना है । एगरी अग्रिमार्थि व
 िए कबि प्रहृति बे रस स्नान धरति आनि म सुवन गो-रस वो कपना सह्या म करता है । ओर रस कपना म
 विर प्रगाढ़ सुग वा अनुमति वा योग भा उपस्थित करना है । यह गो-रस क प्रति आह्वान वा भावना गम्भीर और
 मू म कर कपना वा आहार लक्ष्य विभिन्न रूप ग्रहण करता है । हाथीनी कीम म पूरा वा अत्यय एकर ग भाव
 वा गन्ध अग्रिमार्थि हई है --

श्रीगुरुदेव नमः

[illegible]

पपड़यो बोल्हो छऽ
 छजी भू बागा विरू अवेसी
 भवर भागा भ आग्यो जी
 छन बागा भ आग्यो जी
 यरी पपड़यो कूँ 'री ये ।
 विण विध जीयू 'री
 पपड़यो बोल्हा ए
 ए जी भू बागा विरू अबली
 भवर बागा में आग्यो जी ।

हाडौती गीता म अन्धारा व माध्यम म बन् गु र विष प्रस्तुत किये सय है—

रेत का तो लेन बणाया
 पानी को घुनबयारी
 खो सुन का बस बणाया
 राम लगाया हावी ।

बसी प्रसार तन अन्ध गीन म गोरी की उगमा भुनय व कून मे दी स है—

गोरी कूल गुनय की जी
 पपड़ा पल्लव व बीध
 बलिमा लूटो भवरजी ज सें
 लाल जणद का बीर

हाडौती जन गानिय प्रकृति का भी प्रचुर माथा म मिलता है जिनम अन्धारा व माध्यम से प्रकृति का प्रस्तुत किया गया है—

जी ऊँची टाण चरस का होरा
 लाग्यो धार पातना पाणत बरऽ
 गोरी कर कर जाय—(भत)
 जी लम्बा मल की मोरदी
 बड़ी जाग्रम रवि
 'री आग्यो पणहो भानवा
 आग्यो नागर धान—(दुवका)

प्रकृति पर तन व्यभिचार का आरोप ही मान्यो करण है । यह प्रकृति बनि बाल मे पला बा है । गूँध पान बायु ज और मय आनि का दबन प्रदान करना ही मान्योकरण का प्रकृति का प्रकट करता है । यह अपने समाचार तान मे बहती है—

उड रे गूँघा भू दधरग्या
 जने रे मार पोयर प की धानतिर्या ।
 मारा बाबाजी मले तो भू बीज
 बांरी अन्धा बने छ परदेम
 प की आसमिया





म्हारा वीराजी मले तो यू कीजें
थाकी वहन वसे छँ परदेम
धू वी आमलियाँ

विरहिणी ऐसी दुगिनी होती है कि उसकी व्यथा ने गार जगल की बेलें, वृक्ष सब लताएँ भी भुगने लग जाती है, एक विरहिणी कुरजा को मन्देश देती हुई कहती है—

कुर्जडी भारी बेनजी, पाँस उदारिल्या
पीव मल्या उच्छ्रय करा मे, भलकर पाट्रीछा
गगन उडा बेचुगा अदविच गामिल्या
मे परदेशी कुर्जडा पाग फणीन ददरा ।

एक भाई अपनी वस्त्रि ने मिलने के लिये जा रहा है, वह पशु तो भी लगने लगान लगता है, उमने तदात्म्य स्थापित करता है, और उसे जोश दिखाना हुआ कहना है—

चालो म्हारा बलछा उतावला रे
म्हारी मा की जाई जोवे वाट
चाल्यो म्हारा घोल्या उतावला रे
म्हारी जामण जाई जोवे वाट
गाडो तो रलकी रेत मे रे वीरा
हो गई गगना—गोट
बलछा का चमक्या सोंगडा रे
म्हारे वीराजी की पचरग पाग

रहस्यमय प्रकृति में जन-कवि परमतत्त्व के दर्शन करता है, और इस प्रकार प्रकृति विद्यात्म के दर्शन का माध्यम बन जाती है। 'शिकार गीत', जिसमें शिकार के माध्यम में लोगों को परम-तत्त्व की याद दिलाई है।

अठोन' इ गर अठोन मारवर
अध विच घेरो घाल्यो राज
छोड छोड रे सपन सुरगा
कई हठ लाग्यो रे

इधर मोह-ममता का फन्दा है, तो इधर माया ने अपनी हाट सजा दी है और बीच में भोला मानव दिग्भ्रमित सा चक्कर लगा रहा है, उमके चारों तरफ घेरा डाला हुआ है।

ऐ मानव, उठ ! निद्रा को त्याग । इन सुनहरे स्वप्नों को भूत जा, ज्यादा हठ ठीक नहीं है।

इन गीता में आध्यात्मिकता की गंगा प्रवाहित हुई है, वहाँ भीरा-मी तन्मयता भी है। पचरग चोला प्रेम माधुर्य में भीज रहा है—

काली काली बादली मे
बिजली चमके रे
मेघा मेघा क्षरमर क्षरमर
मेवलो वरसे रे ।
भीजे म्हारी नुई नुई कोर

ठगरिया म बोले छे मोर
उजनी चादर राखू जय की ज्यू
रेण अघेरी बिजली क्षण रे
काली काली चादली मे
बिजली चमके रे

गाइनों गाना म एने प्रयोग प्रचुरता स दृग् हैं। हरियाली सज्जन का सब दृष्ट प्रतीक है। गेन जावन क निय हरियाली स बढकर काई अन्य मुम्ब नहा है। ससिया किसी भी समय किसी भी पव पर आगारा भी गिया जाना है ता हरियाली म यादर क कोर उपमान हा मने सुमते। बहिन भाई क आगीवाड दनी है ता कहनी है—

बघाये रे बीरा बड पीपल ज्यू
फल-यो रे बीरा कडव नीम ज्यू
बीरा बघाये भी हरियाली दूब।
बघाये रे बीरा बेला ज्यू
फल-ये ए भावज फल पूला ज्यू
बघाये ए भावज मायनी दूब ज्यू
बीरा फूल-यो रे फल-यो आमा री डाल ज्यू

जहाँ पक्षियों का घन हानेनी आ गीता म प्रचुरता म दृग् है वहाँ पशु भी पीछे नहा रहे। शिवा म घनगर पर घाँस का बघू की तरह निजगास जाता है—

घोड़ी ने गुररा री झटप उड़ाय
कसरियो साबो परणवा ने जाय
घोड़ी ने नीरा नागर पाल
कसरियो बीरी वरणवा न जाय।

गाय उनक परिवार की मुख्य सम्भ्या है एक लोहगीत म इनकी स्वरता का भी वजन आ है—

साथीडा गहारा गायां ने बेगी छोड़ रे
हा रे रग भरवाना
गायां ने बेगी छोड़ रे
दनडो ऊगी आयो रे
साथीडा गहारा गायां ने घोड़ी डाबो रे
हा रे रग भरवाना
गायां ने घोड़ी दाबो रे।

गाय जहाँ उसकी मातृ स्वरुपा है ता व उल्लेख भाई म सुख-सुख क गागा हिम्मत बघाने वाल अहा और कल स पार गाने वाल। फिर लोक गावक क्या उन्हें बल मका है? दरी हा री है भाई की बलिन क घन जाना है। कनी कर न हा जाय करी बहिन कुछ और न गान न व वता का गोपनीय म चमन क निय प्रार्थना करता है—

घाली गहारा बलदा उतावसा रे
गहारी मां क जाई गल्ले बा
घाली गहारा घोल्या उतावसा रे
गहारी कामण जाई आवे घाट।





गाडी तो रत्तकी रेल मे रे घीरा
हो रही गगना गोठ
बलदा का चमकया सींगडा रे
म्हारे घीरा जी की पचरगी पाग

मानवीय जीवन कृपि प्रधान है, यद्वा प्रकृति का मुख रूप देया जा सकता है। भारत ने विभिन्न गावों की तरह हाडीनी ग्रामों का भी एक अनोखा आकर्षण है। इन गीतों में खेत-खलियान, नदी-नाले, पग-उडिया, कन्ते-गन्ते गाडी-गडार, कुण, मरवरिया री पाल तथा उद्यानों आदि का महज वर्णन हुआ है। हाडीनी जन-जीवन सामान्य जीवन है। पति खेत में हल चला रहा है, स्वयं बैलों को हाक रहा है।^१ स्त्री रोटियां और छाछ लाई है।^२ स्त्री गाव के किनारे स्थित सरोवर जाती है, समदर तालाब में घटा भर कर लाती है।^३ उमका काकड़ बाग में है।^४ जहा उमका पति हल चलाता है। वह खुश है। अपने पति के विषय में बड़े माई के प्रति आभार प्रदर्शन करती हुई कहती है, हे माई ! धन्यवाद है। तुमने ठीक किया, गो हाली मा बहनोई चुना। हे पिता ! तुम मने ही परणारी इस घर में, अच्छा जवाई डंटा है—

भला ही जणो छी री म्हारी
राता देयड माय
भलो ही हालीडो घर हेरयो
भला ही परनारी र म्हारा जरमर वामी बाप
कान्ह कवर घोर, भला ही हालीडो घर हेरियो।

उमे इमसे ज्यादा चाहिए क्या ? सुखी जीवन है, गाम है, स्वयं का निमित्त मकान है, सुन्दर पति है, खेत है, खलियान है, उमका पति हल चलाता है, वह खाना पहुँचाती है और दोनों मिलकर हम-हम कर खाते हैं, इमने ज्यादा सुख उमे चाहिए ही क्या ?

घर लिये - पुते हैं, जिसमें गोबर और पीली मिट्टी होती है।^५ वह अपनी झोपड़ी को ही स्वर्ग समझती है, विशालमन्त्रों के समकक्ष मानती है।^६ उमके महलों के वजर किवाड है।^७ उसके महल की ऊँचाई इतनी ऊँची

- १ मु हल हाक् ए गोरी आपणू, दौड घडो भर ल्याव।
- २ साथ' हो लीन्हें जी हाली भस की डाल, हाय रोदया भर छाछ।
- ३ झड झड झडया छे हालण का मोर, दौडी गई कुवा बावडी देल्या देल्या समद तलाव।
- ४ कस्यो ओ दीले री बाई थारो काकड़ खेत
तो वो हल हाकै री थारा घर घणी।
- ५ या तो गोबर पीली की कीच मची
म्हारो घर लीप्यो ई जाय।
- ६ भवर म्हारे मेला आज्यो जी
ऊँची अटाडी दिवलो बले।
- ७ तोडया जी तोडया वजर किवाड।

है कि वह चले चले हाथ जागो है।^१ ऊपर चलेकर वह अपने पति की बाट जाहती है भराय ग काटना है।^२ घर उमरा सिपा पुता जाता है बसर और कूक की गार डाला जाता है। और चण चौक पूरा जाता है।^३

पत्नीनी बं कई लोक भीतों म बाजार गलियो दुकाना आग का वणन भी आया है।^४ प्रत्येक ग म वण का हाना मुम माना गया है। विशेषत बं का वणन मिलता है।^५

ग्राम मागों पर लोन्ती हुए मन्त्राणियों का सोल्य-वणन गाता म वने ली स्वाभाविकता म नारा मगा है। माय क की गार पाने वाली गा ली की उडता घूता उस बगर और वकुम स भी ज्वाग स वना नमना है।^६

हार्मोनी लाइमोर्ता प्रकृति विधाय से आत प्राप्त है। प्रकृति के प्रत्येक छोट म छोट वणन का म य का अवकाश को नभी तमयना स्वाभाविकता एवं समस्पर्शिता म डाला गया है कि उन भाल पाने जनाम ता गायका क प्रति नडा म हमारे मस्तक मक जाते ह जि हान ग्राम्य संस्कृति हाडीती लाइमोर्ता का गला क विधाय गीता म बायकर ग गुण बना दिया है।

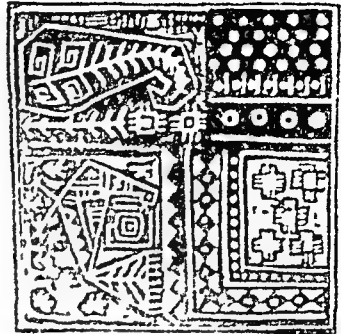
•

- १ माकी तो माकी बना रग जो ओ मेल
चन्ता उतरती माकी ग्हरा राज।
- २ मना चढ़ी ने जावू राज री ओ बाट।
- ३ बसर कू कू की गार पुलाऊ बावण चौक पुराऊ।
- ४ बोग रे बाजार से ये पाटका घाड़जी—।
- ५ मूरज मायो ग्हरा राज री पोत आंगणिये
में बेस डावुनिया जो लाय।
- ६ ग्हरा पोयसिये री गाडी भीनी जड़े रे गुवाल
भीनी बेसर बाजार माता जो ये मागल रोम यो।



हाड़ीती अंचल के ब्रत तथा उत्सव

श्री हरिवल्लभ 'हरि'
कोटा (राज०)



हाड़ीती अंचल का सम्पूर्ण जीवन उत्सवमय है, आवालयद्व-वनिता वर्ण भ- किमी न किमी उत्सव मे व्यस्त रहते हैं। उत्सवों की परम्परा के उत्स की कल्पना करके हृदय आश्चर्य मे भर जाता है। मिना नमृद्विधाली होगा वह जीवन, कितना निर्द्वन्द्व और कितना निश्चल। जातीयता, सामाजिकता और राष्ट्रीयता की भावना मे ओतप्रोत तत्कालीन लोक-जीवन मे हर्षोल्लास मे परिपूर्ण जिन ब्रतों और उत्सवों की उद्भावना हुई, वे आज भी लोक-संस्कृति को अधुण वनाये हुए हैं।

प्रकृति ने रग बदला और लोक-जीवन हर्ष मे उन्मत्त होकर नाच उठा, युगान्तरकारी किमी धर्म प्रवर्तक का जन्मदिन आया और धर्मप्राण लोक-जीवन मे श्रद्धा तथा भक्ति की लहर दौड़ गई, व्यक्तिगत सम्कार मृत्यु, विवाह, अठमासा की आनन्द के प्रतीक बनकर सम्पूर्ण जाति एवं समाज के लिए उत्कृष्टकारी बन गये। वर्ण का कोई महाना ऐसा नहीं जिसे कोई निश्चित उत्सव न मनाया जाता हो।

लोकोत्सव कुछ म्वायी होते हैं और कुछ सामयिक। म्वायी उत्सव निश्चित तिथि पर प्रतिवर्ष मनाये जाते हैं। होली, दशहरा, दीपावली जैसे बड़े उत्सव तो इसके अन्तर्गत हैं ही, तेजा दशमी, जैसे वीर-पूजात्मक भी इसी श्रेणी के हैं। कथाओं एवं स्थलों के अनेक ब्रत भी इसी कीटि में आते हैं। सामायिक उत्सव अधिकतर व्यक्तिगत होते हैं, किन्तु उनमें जातीयता एवं सामाजिकता का पूरा योग रहता है, लोकजीवन मे मैथिलीशरण गुप्त का इस पवित्र का बड़ा महत्त्व है —

‘सुख बढ जाता, दुःख घट जाता, जब है वह बढ जाता।’

लोक-जीवन व्यक्तिगत सुख और दुःख को भी सब मे बांट कर भोगता है। फलतः उल्लासकारी उत्सवों मे तो सम्पूर्ण जाति, समाज और परिवार का योग रहता ही है, मृत्यु जैसी भयंकर, किन्तु मुनिश्चित चीज भी सामाजिकता का बाना पहनकर उत्सव बन जाती है।

लोक-जीवन जिन तत्वों से प्रभावित होकर आन्दोलन मनाने को ललक उठता है, वे व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रकृति जन्य होते हैं। पुत्रोत्पत्ति, पुत्र-पुत्री के विवाह, यज्ञोपवीत आदि अवसर तो व्यक्तिगत उल्लास के होते ही हैं, यहाँ तक कि मरण भी उत्सव बन कर लोक-जीवन मे व्याप्त मृत्यु-भय का निराकरण करने मे समर्थ होता है। किमी की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी द्वारा सामूहिक भोज (मृत्यु-भोज जिसे सरकार ने कानून से बन्द कर दिया है, पर लोक-जीवन मे आज भी वह अनिवार्य माना जाता है।) मरणोत्सव का ही प्रतीक है। लोक-रूढ़ि के अनुसार यह भोज मरने वाले व्यक्ति की आत्मा की शान्ति के लिए होना है, जिसे मृतव्यक्ति के ‘मूह की राख निकालना’ कहा जाता है, यह भोज लोक-जीवन मे उतना ही आवश्यक माना जाता है जितना मृतक की भस्मी को गंगाजी या किसी नदी मे प्रवाहित करना। यदि कोई पुत्र अपने माता-पिता की मृत्यु पर भोज देने मे अमर्ष होता है या समर्थ होकर भी किमी सिद्धान्त-परा नहीं देना तो वह लोकउपालम्भ का शिकारी बनता है और यह मान

जिन्ना जाता है कि उस वक़्त के माता पिता का सम्पत्ति नही मिल सकती। फलस्व आधुनिक जिन्ना प्राप्त तथा नरत व विराधी यवन भी तारापराय म वचन व जिन्ना तथा अवन माना पिता का स्वयं या मोक्ष प्राप्ति व प्रतामन म वि ता व जिन्ना मय म सुकता कर था म है।

पाकट माता मूकता जहा तारापराय म ता आता भी मय माता में मय दने वाली मुल्लिम को मय वन प्रकारेण सुकुल कर दिया जाता है मय मुल्लिम निविन्द सम्पत्ति म जाता है।

मरणात्यय का दूयय अवसर दीव ता जाता है। मय यवित घना। या निधन उत्तरण का हा या निम्नवण का जाति तथा व्यवसायी जाति को उपस्थिति म सुमय उत्तराधिकारी का कृपा वधवाना तम दीव करना अनिवार्य प्रथा है। वरत हैं कि राजा मर गया राजा का भी नही मरता। मय मिद्धात व अमातर राजाजिन्ना मय वजा छाती मही र ता। राजा व मरन पर सुमरी जयति मय म का जाती है वरत उत्तर उत्तराधिकारी का अधिवक् होता है। राजा जीवत म मा म नियम की सल्लव मिन्नी है। वन पिता व पण्य उत्तराधिकारी व विर पर द्योही जाता है। सल्लवान मममय सल्लव या तथा व्यवसायी उसका तिष्ठ करव भान। जपनो आर म वगही मयव वर अपने म्भीष्टुनि को मुहर मगत है। मयव का मयाधि यहा नी म थाका। वन य जय मममय उत्तरा धिकारी का उगी मय म मरि पर ल जाना और मगवान ता मा की वमा मर वन का विवाह व उत्तराधिकारी का जिन्ना याचना करता है। आगे आगे छा उत्तरा है। जिम पर वन का म मय प्रसार माग जाता हैं कि हयों मय मय नावात्मन म सल्ल म विवा ता मगता है। टाउ की वनिक का मुवकर हो व दाता जा वरता है कि मय किम अवसर पर वयादा जा रहा है। मय वर वर मय। माग वरमी गोर पर माव जान हैं और मरणात्यय व माय-माय मय उत्तराधिकारी का मारीताय सल्ल म मता है।

म मी है कि उवय उत्तरव पर मरी तथा उत्तरा म की माया न। ता पर मात्र टाका मरिद दगन द्वायामन मीन आता माया वरम व हो जाना म मा मुम माय व हानी ट। मय कि म तमारा मा वनिक व मरी के मीम जिम म हो प्रारम्भ हा जाता है। जिममण मेव जान है परिवार मयधिया का मूना म जानी है जिमम विवा जाति मरवार व निम-मया व अनुगा म ववार वता पधारमय जहा आधु मा नी होता पर मल्ल की दिवि नि की मूचना अव य होता है। इम प्रार म व्यवमण माय व अवसर मा सामाजिक उत्तरव वन जाता है।

गोमोत्सव

हाथीती की ताव मायया में जम वरण और मयज जोता व मय-मूण अव है। मरणात्यय का वपान म ता में जिमा जा जाता है। पुव पुत्री जम वर जा उत्तरव मयाय जाता है वह मियया म हा मीमन वरता है। वन जम पर अधिव मुनी मयार जाता है। व ता का जय व अमातर माग जाता है वर आवयव प्रथा मूक वरन पुता ममता मा का मय मय पर भी की जाता है। प्रवम मनामागि वर लड़का व वार म मागता मा की प्रथा भी वट्टव ल है जिमम माया तथा वया व लिम वरता व अनिवार्य अवधान जिम व जिम वर जाता मय। माय-माय जि नी आति म है।

विवाहोत्सव

वरम (परिणय) आवन का मयम मय-मूण उत्तरव है मयार व मभी जायिया म म विमि मता म मता के प्रथा है। हाथीती म विवाहात्यय माय आवन व विमि मयान वरता है। विवा की नि विर निवि मे मयम म म म मय व हो मय प्रारम्भ हा जाता है। विवा म मयार व माय हा मय-मय व माया का म है। मा मा है कि मयव मा- मय मय। मय-मय मयार हा हा विवा मय व माय माया मय मय मय म है। माय माय मय मय मय विर विवा आवन मय वरन। मय व मयिमा



प्रतीक कोई वानर जो 'वन्द्याक' (विनायक) मन्त्रज्ञात है भोजन, पूजन आदि कार्यों में गंदा-गंदा के साथ रहता है और उसे प्राथमिकता दी जाती है।

इस उत्सव के साथ अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न भी जुड़े हैं। गंदा-गंदा के समस्त तथा व्यवहारी उन्हें अपने घर पर निमंत्रित करते हैं और सुस्वादु भोजन व उच्छिष्ट वृत्त करते हैं। व्यवहारियों की अतिक्रान्ता होना पर कभी-कभी तो वर-वधू को दिन में चार-चार, पांच-पांच जगह भोजन करना पड़ता है।

वर-वधू के वैवाहिक उत्सव भी ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। 'निकाही' के समय घर का नुकीदार पाजामा, धोती, टंगने तक लम्बा चूचनुमा लाल या केसरिया रंग का मोटदार रंग पहनाया जाता है। फिर पर उसी रंग की पगड़ी बाँधी जाती है जिसका 'मार' की मुड़यो (जाबियों) में उतना मजबूत रंग दिया जाता है कि तीन-चार दिनों तक वह पीला न हो, क्योंकि उस समय यारी बड़े पगड़ी विवाह करने आने के बाद ही उत्सवी है। पैरों में चाम्पदार मयमरी जूतिया पहनी जाती हैं और कमर में मात शालरंगा केसरिया या लाल रंग का टुट्टा, जिसे 'मोन्ना' कहते हैं बंधा रहता है। पाँड़ी पर मोर तथा कनगी की मोमा भी दमनीय होती है।

विवाह के लिए प्रस्थान करने से पूर्व घर की भाभी उठती जाती में वाज-देवी है और माँ अपने आचल का दूध पिलाने का अभिनय करती है। वर के कंधे पर लज्जा रखी है और कमर में कटारी। इस स्तर में वर का घोड़ी पर बिठाकर घुमाया जाता है, उष्ट देवताओं को दृश्या जाता है।

वर की इस युद्ध जैसी तैयारी में अनुमान होता है कि किसी समय वधू का विवाह करके जाना दही देवी नीर होती होगी। एक कन्या के लिए दो या अधिक बने के जाने की अपेक्षा दही रहती होगी। माता पुत्र को अपना आचल देकर जामना करती होगी कि 'बेटा' मेरा हाँ मत लज्जा। 'रह' को गिर ही लीटना।' इन अदम्य पर वर को अपने उष्ट देवता का आशीर्वाद प्राप्त करना भी आवश्यक होता होगा।

इसी प्रसंग में वधू ने घर पर 'तोष' मानने की प्रथा भी उल्लेखनीय है। यह प्रथा उस अनुमान की पुष्टि करती है, वर घोड़े पर बैठकर वधू के दरवाजे पर टांगे हुए लाली के नारंग को अपनी तलवार में स्पर्श करता है और तत्काल वधू के घर में प्रविष्ट हो जाता है। तारण द्वार तक आते-आते निश्चय ही उसे अपने प्रतिद्वन्द्वियों में नम्रप करना पड़ना होगा। इस बीच में कन्या पक्ष की अनुमति एवं व्याकुलता भी द्रष्टव्य होती है। कन्या से जायु तथा 'पग' में बड़े स्त्री-पुरुष उस दिन, दिन भर भूँचे चूकर 'खाना' करते हैं और 'किर' पट जाने के बाद ही अन्न ग्रहण करते हैं।

कन्याओं के व्रतोत्सव

वैयक्तिक उत्सवों में कन्याओं के व्रत का लोक-जीवन में उल्लेखनीय स्थान है। भावी वैवाहिक जीवन को सुखद एवं जातिमय बनाने के लिए हाड़ीनी अचल में कन्याओं में अनेक व्रत करवाने हैं जो विवाह के बाद तक चलते हैं। ये व्रत भी दो तरह के होते हैं—(१) वार्षिक और (२) दैनिक। वार्षिक व्रत वर्ष में एक बार किये जाते हैं और कई वर्षों तक जब तक कन्या अविवाहित रहती है करने पड़ते हैं। दैनिक व्रत प्रतिदिन करने पड़ते हैं और वर्ष भर चलते हैं।

वार्षिक व्रतों में प्रमुख व्रत 'अमकारया' (ओंकार उपासना) है, जो मादो में शुद्ध पक्ष की अष्टमी को किया जाता है। इस दिन कन्या दिन भर निराहार रहती है, अग्नि में पड़ाया या मेंका हुआ अन्न ग्रहण नहीं करती और जब तक शिवपूजन करके तत्सम्बन्धी कहानी नहीं सुन लेती, मूँह में पानी को बूद तक नहीं डालती। यह व्रत पर्वती के व्रत और तपस्या का लघुतम सम्करण है जो उसने शिव को पति रूप में प्राप्त करने की कामना से किया था। तीन-चार वर्ष की आयु में ही यह व्रत आरम्भ कर दिया जाता है। कन्या को कम से कम नौ व्रत करने पड़ते हैं। नौ व्रत पूरे हो जाने पर कन्या स्वभावतः विवाह के योग्य हो जाती है।

बड़ी चुम्बनशा बन्ने बैठ्या ।
 भाग्य दाद बडावल दाजी,
 मज्जा फूली लागे जग्या,
 छोटा मून, मिनाफा गाय्या
 मूनी जी या मून गरी,
 मूनी बाबा राम ' राम ' ।

और जग्या 'राम-राम' यह कर अपना मोन भग कर गयी है ।

'बड़ी मन' 'चुम्बन' में भी जाती है । जग्या उस बड़ी ही 'समझदा' हो जाती है । इसलिए मोन तेने और भग करने समय किसी अन्य में 'राम-राम' करने की आवश्यकता नहीं होती । जग्या का मुनभावना गायन में फैलने ही वह स्वयं 'राम-राम' यह कर मोन धारण कर लेती है और प्रत्यक्ष रूप से दर्शन कर स्वयं ही राम-राम यह कर भग कर लेती है ।

गार्हस्थ्य-जीवन में गृहिणी के लिए यह महाप्राप्तिक मोन अत्यन्त आवश्यक है । क्योंकि जग्या धन्याम गक-भय वर्ष के लिए दा दा जग्या जाता है । पति, देवर तथा घर के अन्य लोग अपनी छत्रिगतियों में दिनभर काम करने मज्जा हो जाने को उसी का लोहने है । इस में उनके स्वभाव में चित्तविचलन आ जाना स्वाभाविक है । उद्यम करने भी उद्यम-रूप का मज्जा हो जा जाता है । मांग घर चरकर-चरकर और गायन में भर जाता है । कोई कुछ चाहता है, ना कोई कुछ । गरी डाट-कटकार दिखाना ही को गरी नान मानता है । देवारी गरी गृहिणी और यह उद्यम निम-निमको उत्पन्न है । निम-निम का 'मूढ' का 'मन' यह मोन रहकर अपना महाप्राप्तिक गरी सम्पन्न करनी चाहती है । यही वह भी कम नहीं होती, पर यदि वह भी चित्तविचली होकर दण्डवत् होने को पर गृह-कार्य का ध्यान ही बन पाये । महाप्राप्तिक अपने मोन द्वारा घर को तरह की जा में करने में बचानी है । दोनों प्रकार के 'मोन' के उद्धार का यही महत्त्व है ।

स्त्रियों के अन्य व्रतोत्सव — रत्नाथों के व्रत योग पति की प्राप्ति तथा भारी गार्हस्थ्य जीवन में सुख और धार्मिक की कामना में विभे जति है । विवाहित स्त्रियों के व्रतों में इन जीवन के गार्हस्थ्य गक मकलना की कामना मन्त्रिहित होती है । गार्हस्थ्य जीवन में धार्मिक और मज्जा का गृह्य तन्त्र गृहस्थाधीन रूप, मज्जा गक कमठ होना है । सुव्रता स्त्रियों के लगना सभी व्रत पति की मज्जा कामना के लिए ही विभे करने है । मज्जा को यह है कि माग्यीय नारी का जीवन ही पतिमय है । पति के बिना वह अपने जीवन की रूपना भी नहीं बन सकती । अतः वह जीवन भर अपने पति की चुम्बन कामना के लिए व्रत किया करती है । उन व्रतों में सभी आगम्य पारवती होती है । जिसमें अपने अपने व्रतों में एकमात्र मित्र का ही पति रूप में वरना किया आ । 'गठ' मौमागती 'का चौड', गगगौर, श्रावणी नीज, वड मावित्री अमावस्या, आदि उसी प्रकार के व्रत हैं ।

नारी का सम्बन्ध दो कुल में होता है । एक कुल की वह पुत्री होती है, दूसरे की पुत्रवधू । एक कुल में जन्म लेकर उसके अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण समय दक्षयन बिताया है और प्राचीन जीवन की पैदारी की है, दूसरा कुल उसकी पैदारी का प्रयोग-स्यर है । एक कुल में उसका जीवन क्रीडाओं और चित्रगातियों में बीता है, दूसरे कुल में वह मर्यादित हो गई है । पति-गृह उसके दोष जीवन का आनन्दन होने हुए भी उसके लिए प्रारम्भ में तथा और अटपटा होता है । इस तथ्य में अतभिन्न पतिगृह के वरान मास, मसुर, देवर, ननद, आदि सभी-सभी नववधू के मस्तिष्क में उल्लङ्घन पैदा कर देने हैं । वे उसके पीछर के लोभा की यदायदा निर्याद करने में ही अपनी प्रजमा सम्झने हैं और नवागन वधू के मसझ वह प्रकट करने का प्रयत्न करने हैं कि उसके पीछर के पर तथा लोभों में हमारा घर बन, मसपति, प्रणिठा, मिठा, मस्यना आदि में कही बटकर है । पीछर के उन्मुक्त बानावर्ग में स्वच्छन्द चिरगी के नमान छिगोरे करते जाती कर्या इस तथे जीवन में पुटन का अनुभव करने लगती है । उसके जीवन की मारी आभाएं

मर पूव गुप्त कर्मों के प्रभाव से हा सन्तुष्ट की प्राप्ति हु जिसका सक्षिप्त वर्णन कर गया ह । शिन्तु
दुःख के साति नष्ट म म क्या क क्या हया ? उसकी चला ओह तपनी स वाज पर उतारना कठिन है । तना हा
सापा हापा शि सन्तुष्ट क वर्ण छुन नी म ओह म स्वन म वद गया । बाज मरा गीवन जगतजन की घरोर है
और मी गद-गद-गदज वा कवगा समझा जावा ह ।

सचयन सभ्य ने भेज दिया नहीं दिया ? सब कुछ प्राप्त है और आपका चरण कमल ममक विविध विषयों की जिज्ञासा प्राप्त हो रही है। मैं बार-बार चानुमाता हो न चाम है और एक नूतन दो विषय हमारे सामने आया है। मन्त्रों की धर्मप्रचार करते जाते पचास वर्ष होना जा रहे हैं और आपकी आसु भी एक तर से घागे पड़ने लगी है। मैं अवसर पर आरम्भ स्थल जयता जा जायोजन करन जा रहे हैं। मैं किन गंगा में क्षणी श्रद्धा प्रकाश प्रकाशित भेज रहे हूँ जिसका जीवन की मिट्टी में बोना बन गया ?

उपकार अनुपम आपका जाने श्रमण मगार है ।
जो स्नेह कर सिर पर परा उमारा भी येन पार है ॥
जितको न ध्याया आपकी वह भटवता छावार है ।
जितको न आश्रय आपका वह हूँता लपार है ॥
मैं क्या कहूँ क्या-क्या कहूँ इस- न मुझ को शान है ।
गुरुदेव ! तुमसा भय असनी पर नहीं सतिमान है ॥
आपके वप पप का पूजक रहूँ यह चाह है ।
आपसे ही मित्र लकी यह सिद्धि को नृप राह है ।

मेरी श्रद्धा

श्रीमहेन्द्र मुनि

मैं अकिञ्चन हूँ परन्तु जिज्ञासु भी न हूँ। मेरे जीवन में जो भी प्राप्त है वह महामरकसरी का ही वन है। मैं जब से आपसे चरणों का स्पर्श करता हूँ—सभी उपजियाँ, राधा माधवा और समस्त सख्य स्वाधीन बन गये हैं।

सामुद्रिक युद्ध की कृपा मन्वा नहीं है ? एक म रागा और रागा म न । राज यह जीवन बन गया और आगे भी क्षय बनकर रणा सह सरा ह्तर अत्र विद्याग है । तबून यदि गुरुय की श्रमा न होवी ता में की का न रहता और जीवन न्य चा जाता ।

रुग्ण पञ्चनरत मद्राष्ट्रिन् । मिथ्यामज्जा सत्ताराज साहव न रिषे कृत्विषा उग कचन वता ण्ण ।
निमिष भागभाए और निमज्ज विवह उग प्राप्त हा मया । आश्रमं वृत्तवृत्त ह । अने जग जना को मैं विन्वास
णि साता हूँ । मदमह प्राप्त का आश्रमा करन पाठ व । य विद्वत्तया ण्णानु प्रविधाप गुर की शरण ऐनी
पाणि ।

सफल पथिक के प्रति

जनसाध्यो उमरावकुंवर भचना

निज वा। गायना व अनु गमुन् म निमन् वर गन्ध वा साधो वाला म न है स्वमनि व साय-गाय
परप्रति वो गाथाया वा निरा र्त्त वरन् वाला मधता मन्त है ।





होती जगने की प्रथा के साथ कई वैदिक, पौर्वाणिक तथा मास्तुनिक परम्पराएं जुड़ी हुई हैं, जिनमें से लोक-जीवन में होत्रिका और प्रह्लाद के प्रधानता की ही प्रबल रूप में 'वीरार' किया है, परन्तु परोक्ष रूप में वह 'उद्गी' (गृह की वादे) को होली की आग में सेंक कर दिक नव जन्मेष्टि तथा तथा रत वैगुण्य और पारमार्थिक मिलन के द्वारा उसके सामुचित तथा सामाजिक महत्त्व को भी स्वीकार करना है ।

वृद्धाश्रम की वनजाग आदि में होली का उत्सव विभिन्न रूप में मनाया जाता है । युवकों और युवतियों की टोलियां बन जाती हैं । नमक में अंगी बोरी को एक लम्बे मोटे रस्से में बांध कर रस्से के दूसरे सिरे को गुंजा छोड़ दिया जाता है । युवतियां हाथ में लोटे और आँखियां पेंसर बोरी की रक्षा पर दृढ़ जाती हैं । वृद्ध रस्से को पीचकर बोरी को वे जाने का प्रयत्न करते हैं । युवतियों ने उड़ो की मां ने बचने, मां छाने, युवक बोरी का खींच कर निश्चित स्थान तक ले जाने हैं । इस प्रयत्न में कई युवक घायन हो जाते हैं जो कई निम्न हानि का ब्रीह जाते हैं । अन्त में जो युवक बोरी को अलग अधिकांश में रक जाता है, उसे जयमात्र पटनाई जाती है और तब रत, पान-पान में नमस्तेन न-नारी निमान हो जाते हैं । इसे 'नेजा मोडना' कहा जाता है । युवकों के पुन्यार्थ तथा शीर्ष की परोक्षा का जैसा अद्भुत दृश है ?

जातिगत, ऐतिहासिक तथा जांगोष्ठिक कारणों से होली स्नान के विभिन्न दृश प्रचलित है, पर सब में एकत्व की मगठन की, मैत्री की और वैराभाव भुक्तकर जीवन क्षिताने की भावना गन्तिष्ठित होती है ।

होली के प्रारम्भ होकर उत्सवों की जो परम्परा चरती है वह अक्षयतृतीया का जागर विराम लेती है । नहान-होती, तपोर, मैराइज गीतला-अष्टमी, दुर्गाष्टमी, रामनवमी आदि सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक उत्सवों में लोक-जीवन मलान रहता है । फल खेती में पल रही होती है, रिमान और मजदूर के पान लेती सम्बन्धी विशेष-कार्य नहीं होता और लहलहाते हुए गेहू-बने अन्धी के घेन उसे उमगित करने रहते हैं ।

घोरपूजोत्सव — लोक-जीवन इन बीरों का प्रति वर्ष हजजना एवं श्रद्धापूर्वक स्मरण कर उत्सव मनाता है जिन्होंने कभी अपने मत्व वीरता एवं नाह्य में नोकरखन के पवित्र कार्य में अपने प्राणों की जाह्नित दी थी । पौराणिक तथा ऐतिहासिक वीर पुत्रों की कहानियां तो लोक जीवन में मान्य हैं, पर पूजनीय वही लौकिक वीर पुरुष हैं, जो उसकी आवश्यकताओं, भावनाओं तथा आनाओं को पूरा करने में धाज भी स्मरण माने जाते हैं । 'वीर नेजा' का नाम कौन नहीं जानता है ? जिनने शत्रुओं ने माह्मपूर्वक लडकर गाथों की रक्षा की । तबने-लडने मार्ग शरीर घावों में जर्जर हो गया, पर लडक को दिष्टे हुए वचन की रक्षा के लिए अपने अनाहत जग-जीव को लडक के नामने कर दिया । लोकविश्वास के अनुसार मां के काटे के गले में तेजा के नाम को 'उमी' (उपडे की रस्सी) बांध डेने पर व्यक्ति मर नहीं मरता और तेजादनमी के दिन तेजाजी के चबूतरे पर 'उमी' को काटने के बाद तो वह सर्प त्रिप में सर्वथा मुक्त हो जाता है ।

देव जी, फालूजी, हांगमन जी, ताया जी आदि भी ऐसे ही लोक पूज्य वीर देवता हैं, जिनकी जयन्तियां गाथों में समारोहपूर्वक मनाई जाती हैं । स्थान-स्थान पर इनके नाम के थानक, चबूतरे आदि बने होते हैं, जो वर्ष में एक बार टोप, नगारे, जलगोजा, बाँसुरी के वादन तथा लोगों के मन्वर गायन में सुश्रित हो उठते हैं ।

अन्त में एक ऐसे उत्सव का उल्लेख कर देना आवश्यक है जिसका सम्बन्ध केवल बालकों में होता है । भादो सुदी चतुर्थी को 'गणेशचौय' के रूप में मनाया जाता है । गणेशजी विद्या बुद्धि प्रदाना है । बालकों को और क्या चाहिए ? इन दिन बाउक अष्ट्रे वस्त्र आभूषण पहन कर 'बनरा' बनते हैं । एक दिन पूर्व अच्छी तरह स्नान करके हाथों में मेहवी रचाने हैं और रग-बिरसे सुडौन डडे बजाने हुए एक-दूसरे के घर पर जाने हैं । उडो के नाथ अवसर के लिए लोक-प्रचलित कुछ पद्य पवित्रता सन्वर उच्चरित करते हैं, जिनमें अन्ततः गणेशजी में बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना होती है । बाउको को घरो पर प्रनाद के रूप में मोदक विनरित किये जाते हैं । कुछ वर्ष पूर्व तक इस उत्सव में लड्यायकों का भी सहयोग रहता था, परन्तु अब शिक्षा के यंत्रीकरण तथा अतिवैदिकता के प्रभाव ने गिजन अभिभावकों के इन जनाहन एवं अनौपचारिक सम्मेलन का अवसर ही समाप्त हो गया ।

आश्चर्यजनक गर्वोग ली वान है कि यहा के अधिकांश गावों में मन्दिर प्रायः राम के पाये जाते हैं लेकिन घरों पर पूजा वालमकुन्द के रूप में दृष्टि की जाती है। भगवान राम का आदर्श जहा मायजदिक रूप में समूचे ग्राम को प्रेरणा देने की क्षमता रखता है वहा भगवान कृष्ण का वानस्पत्य पारिवारिक जीवन के अतिरिक्त अधिक नजदीक पडता है। निमाउ को यदि राम-कृष्ण के समन्वय का उपासक नहे तो भी अत्युक्ति नहीं, यही वजह है कि जिनमे यहा रामलीला और राम-मण्डल दोनों समान रूप में मनाये जाते हैं। साथ ही रामकृष्ण के साथ शिव की उपासना भी की जाती है।

वेश-भूषा

यहा पर पुरुष धोती कुरता और सिर पर लान रंग की पगडी पहनते हैं। कही मेहमान आदि जाने पर पगडी के ऊपर से एक पत्ता (दुपट्टा) लपेटने का भी रिवाज है। यह सम्मान सूचक माना गया है। कुछ वृद्ध पुरुष अग्रत्वा भी पहनते हैं। जिनमे वजाय प्रान के वगल में कमने के प्रद रगे रहते हैं। दोनों दोनों निरी को पीछे की ओर कच्छ लगाकर पहनी जाती है।

स्त्रियाँ लट्ठा साडी और कानचडि (कचुकी) पहनती हैं कचुकी में वजाय नामने के पीछे की ओर बंद होते हैं। उत्तर भारत और दक्षिण भारत की मत्रि रेखा पर वसे होने के कारण यहा की वेशभूषा में दोनों का सम्मिश्रण पाया जाता है। कही पर साडी उत्तर भारत की तरह बिना कच्छ के पहनी जाती है और कही पर दक्षिण भारत की तरह कच्छ लगाकर।

बच्चों में झग्गा, टोपी और चउडी पहनने का रिवाज है।

यहा पर पहने जाने वाले वस्त्रों के नाम निम्न हैं—

पुरुषों के वस्त्र

- अगा—अ ग (शरीर) में पहनने का वस्त्र।
- अ गरखा—अ ग (शरीर की) रक्षा करने वाला वस्त्र।
- वालावडी—दोहरे परले की बनियान।
- दुपट्टा—दो पुट करके गले में डालने का वस्त्र।
- पत्ता—पगडी के ऊपर लपेटने का सम्मान सूचक वस्त्र।
- अगोछा—अग लपेटना का छोटा वस्त्र।
- मुकस्तर—मुख्य वस्त्र।
- धोती, पगडी, साफा, कुरता आदि।

स्त्रियों के वस्त्र

- लुगडा—जनानी धोती।
- काचलई—पीछे वाली बन्द कचुकी।
- चोलई—सामने बन्द वाली कचुकी।
- अ गिया—अ ग (शरीर) में पहनने का चुस्त वस्त्र।
- परकोर—अधोवस्त्र
- वाघरा—घेरदार लहगा।



य । राम कृष्ण गिर शीर विष्णु की समान रूप से उपासना की जाती है । उत्तर भारत की तरफ यहाँ के प्रत्येक गांव में एक नृमान मन्दिर होता है । जिसे हनुमान मन्दिर के बाईं बाईं नद्री बसाया जा सकता है । यहाँ एक



मदरा - पानी रखने का बड़ा बर्तन
गत्रा - छोटीनुमा पानी रखने का बर्तन
हठी—दान बनाने का बर्तन
दुनरी—दूध दूधने का बर्तन
दधणी—दही बनाने का बर्तन
घागर—तेल रखने का बर्तन
दागरी—एक मक्का टहन

आभूषण

यद्यपि बदलने हूये समय तथा बदलने हुए काल के कारण आभूषणों का स्थायक कम होता जा रहा है तथा निमाह में नव में मिश्र नव पहनने के निम्नलिखित आभूषणों का प्रचलन पाया जाता है ।

बेला—पैर के अंगूठे में पहनने का आभूषण
दीक्षा—पैर की मध्यमे छोटी अंगुली में पहनने का आभूषण
इन्ना और मच्छी—पैर की बीच की तीन अंगुलियों में पहनने का आभूषण
अनबट—पैर के अंगूठे के ऊपर पहनने का जर्जरनुमा गुंथा हुआ आभूषण
पिङ्गरी—(पायल) पाव में पहनने का आवाजदार आभूषण ।
झालरिया—छोटी छोटी पुष्पियों में गूँथा हुआ पाव में पहनने का या आभूषण
रमझोरा—चैन और पुष्पियों में गूँथा हुआ पाव में पहनने का आवाजदार आभूषण
कटा—पाव का ठोस चादी का आभूषण
रन्ना—पाव का पोला आभूषण
तोडा—चादी का घुमावदार जड़ियों में बना गान का आभूषण
राम्या—पाव के पजे तक फैला हुआ टेढ़ा कर्तारमय आभूषण
कटन—कमर में पहनने का आभूषण
मूदी या छल्ला—हाथ की अंगुली में पहनने का आभूषण
आरमी—हाथ के अंगूठे में पहनने का काच में बड़ा आभूषण
हाथ माकड़ा—हाथ के पट्टे पर पहनने का जर्जर में गुंथा आभूषण
बद—पट्टे पर पहनने का आभूषण
चूडा—हाथ में पकटने का लाल में बना नक्कलीदार नीलाग्न मूचक आभूषण
कावण्ड—हाथ में पहनने की चूड़िया
करोदी—चूड़िया के बीच पहनने का आभूषण
गजरी—कलाई पर पहनने का गुंथा हुआ आभूषण
कडा—कलाई में पहनने का ठोस चादी का आभूषण
पाँव भावट्या—बाह में पहनने का चादी के तारों का गुंथा आभूषण
पाँव बाजूबद—बाह में पहनने का आभूषण



जैसलमेर के कतिपय लोक-विश्वास

मोहनलाल पुरोहित

चौकानेर (राज०)



लोक-विश्वासों की परम्परा बहुत ही पुरानी है। निरुद्ध उनके पीछे उनका अरथ हजारों वर्षों का इति-
हास छिपा हुआ है। लोक-शास्त्र की जहा जल्दी एक विवरण नहीं है—जन्म-मरण या मरण-पान्तर चक्र का हाना है,
यहां विश्वास नाम का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। नरक का लोक-शास्त्र में स्थान नहीं दिया जाता। ठीक उसी
प्रकार हम लोक-विश्वासों में भी देखने जा रहे हैं—ये समाज में एक प्राचीन-परम्परा के लिए चले जा रहे हैं। क्या
उन्हें यों मानने हैं? उसका प्रश्न कोई प्रश्न ही नहीं उठता। समाज में ऐसा ही लोक-प्रचलित-विश्वास है। अतः
समाज हमें अपनी छाती में चिपका अपने पूर्वजों की जानी, प्रती माय-जानी में उसकी रखा लिए, 'मरना आन भी
पावन करता था रहा है। स्थानीय रीति-रिवाजों, विश्वासों, टीका-टोहों और लोक-देवताओं की पूजा-पाठ को पार
नहीं ही इनमें थोड़ा-बहुत अन्तर था या हो सकता है। लेकिन जो टीका-टोह का राजस्थान-ग्राम में प्रचलित है मरण
है वही मराठवाड़ा, मध्यभारत, श्री बंगाल जगत् गिरी अथ मगध में, किसी दूसरे रूप में प्रचलित हो सकता है।
माय ही विभिन्न-ग्रामों एवं स्थानों में स्थानीय-विशेषताओं के कारण ही एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए नए-नए टाटों
और विश्वासों का प्रचलित होना भी स्वाभाविक है। अतः यह समझना कि जो लोक-विश्वास यहां दिए जा
रहे हैं, वे राजस्थान भर में सर्वत्र ही समान रूप में प्रचलित हैं, अथवा उनकी सत्ता एक गणना करने में ही इति थी
हा गई है - ऐसा नहीं है।

प्रस्तुत हमारा विषय तो जैसलमेर के कतिपय 'लोक-विश्वासों' को लेकर है। राजस्थान के अन्य जन-पदीय
लोक-विश्वासों पर तो स्वतंत्र-रूप में लिखने की आवश्यकता है। अतः

चोप

आज में देखने समय जगत् जगत् जगत् का थोड़ा-बहुत एक-प्रकार की लाली-सी था जानी है—उसे चोप
कहते हैं। चोप को निकालने के लिए दूई-बड़े का एक तामी के कटोरे में पानी भर लेनी है। एक दुन्ना मज का के
रिया जाता है। उसे भी जगत् नेत्र में धुवो देने हैं। फिर उसे जलाया जाता है। बुटिया अथवा चोप-निकालने वाली
एक तरफ एक कोने में बैठ जानी है और उसके सामने वह व्यक्ति, जिसे चोप की पीछा हुई होती है, बैठ जाता है।
चोप निकालने वाली उसे मावमान करने हुए विशेष आदेश देनी है—उस कटोरे में ध्यान में देखते रहना तुम्हारी
चाप झड़ी जा रही है। और वह फिर उस प्रकार में रहना प्रारम्भ करनी है—

चोप चोप झड़ जा

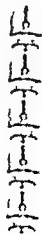
बाडेनी, पाडे नी,

आए नी, गए नी,

मेलैरी, छैलैरी,

कुनेरी, मिनी नी,

दुग्धी—मर का आमरण
 हरिगार—मर म वलन का अमीरनुमा आमरण
 मारुगुन—मर म वलन का मीमांस्य मृगक आमरण
 हरि—मर का सान का आमरण
 त्रयगुपी हरि—मर का मी मर का आमरण
 टविवर—मर म वलन का श्री म विवरा का आमरण
 यज्ञ—मर का मान का माना म यज्ञ आमरण
 दुग्धी—मर का मान का माना म दुग्धी आमरण
 मारुगुन—मर का अद्वयगुनर आमरण
 मारुगुन—मर म वलन का आमरण
 टीका—मान का गुण का आमरण
 मारु—मान का मान आमरण
 मरुगुन—मान का गुणर आमरण
 मारु—मान म वलन का माना का आमरण
 मरु—मान म वलन का आमरण
 मरु—मीमांस्य म मर म वलन का मर आमरण
 मरु—मान म वलन का माना का आमरण (मान का)
 टीका—मर म माना का मीमांस्य मर आमरण (टीका)
 मरु—मान म वलन का आमरण
 मरु—मान म वलन का आमरण
 मरु—मान म वलन का गुण का आमरण





हं हूँ मई,
हूँ लूँ गई,
हूँ लूँ गुजर मटकाली

इस प्रकार कन्या-पक्षवाली स्त्री मातवार ऐसा कहती है और वर उसके उत्तर में मात ही वार यही उत्तर देता है—

हूँ लूँ मई,
हूँ लूँ गई,
हूँ लूँ गुजर मटकाली,

ऐसा 'विश्वाम' है—इस प्रकार का टोटका करने में व्यक्ति-विशेष की तीमरी वाली पत्नी की मृत्यु नहीं होती ।

ठीक इसी प्रकार के अन्य कई टोटके एवं 'लोक-विश्वाम' हैं, जिन्हें यहाँ विज्ञ-पाठकों की सेवा में सक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं ।

छोटे बच्चे को पानी के घड़े अथवा मटकियाँ आदि जहाँ रखी रहती हैं, वहाँ नहीं ले जाने । ऐसा ब्याल किया जाता है—इसे वहाँ ले जाने पर टट्टियाँ लग जाएंगी । यह क्रम उमरा मुटन-मस्वार न किया जाए, तब तक रहना है । यदि ऐसा कही अमावधानी में हो जाता है—वह भाग दौड़ कर पानी की मटकियाँ जहाँ रखी हुई हैं, पहुँच जाता है, तो उसे टट्टियाँ लगनी प्रारम्भ हो जाती हैं । इसका प्रतिकार घर के ऊपर से पानी निकलने की मोरी (Outlet) में अनाज उड़ेल कर किया जाता है । उन बच्चे विशेष के कपड़ों में बाजरी अथवा गेहूँ रात्रि में बांधकर उसके सिंहाने रख देते हैं । सुबह घर का कोई भी व्यक्ति चुप-चाप कोठे पर चटकर कुछ दाने तो चारों-ओर चारों दिशाओं में उड़ाता है और शेष को मोरी, जिसे हमारे यहाँ 'खाल' कहते हैं, उसके रास्ते में नीचे बागन में उड़ेलता है ।

छोटे बच्चे को कहीं नजर न लग जाए ! अतः माताएँ नाना-प्रकार के टोने-टोटके किया करती हैं । बच्चे के गले में घोड़े का खुर, जरख का दान्त, छोटा-सा चाकू मजदून डोरे में पिरो कर पहना देती हैं । उसके काली टीकी लगाते हैं और ललाट में एक किनारे पर काजल में चाद बना देती हैं । बच्चे के दोनों हाथों में भी काजल की टीकियाँ लगा देती हैं । बच्चे के नजर लगने पर उसके ऊपर में रुई की चाती को घी अथवा तेल में भिगोकर सात बार घुमा-फिराकर फिर उसे भीन पर चिपका देते हैं और बच्चे को उस ओर देखने के लिए कहा जाता है । नजर लग जाने पर रोटी और एक लोटा पानी का भर कर उसे मात वार बच्चे पर धोलकर बाहर पाराहे पर रोटी रख आने हैं और रोटी के चारों ओर एक गोल-वृत्ताकर कर दिया जाता है । नजर के लग जाने पर नमक लेकर उसे सात बार बच्चे के मिर पर में घुमाकर अग्नि में जला देते हैं । नजर लग जाने पर पीसी हुई लाल-मिर्चें भी इसी प्रकार सातवार बच्चे के ऊपर में घुमा-फिरा कर अग्नि में डाल देते हैं । इसी प्रकार नजर लगने पर फिटकरी को सातवार सिर पर से घुमा फिरकर उसे अग्नि में डाल देते हैं । फिटकरी के जल-भूज जाने पर उसे निकाल लेते हैं । फिर उसे अपने पैरों से कुचलकर बाहर गली में फेंक देते हैं । यह समझकर कि अमुक व्यक्ति की कुदृष्टि, नजर बच्चे पर लगी है—उसके पैर की धूल (स्त्री हो तो दाया और पुरुष हो तो सीधा पैर) लेकर उसे भी सात बार सिर के ऊपर से धोलकर अग्नि में फेंक देते हैं ।

बच्चों के दात बड़ी कठिनाई में निकल्य करते हैं । अतः इसी विश्वाम में कि इन्हें कण्ट भी न हो और दात भी आसानी में निकल सकें इनसे, उन्हें शायी-दात की चुड़िया पहना देते हैं । बच्चों को काच नहीं दिखाया जाता । ऐसा माना जाता है इससे उनके दात कठिनाई में निकलते हैं । बच्चे के मुँह में अगुली भी इसीलिए नहीं डालते कि

लेलीरी लवो-लीरी
खोचोरा धाचोरा
नाईरी धाबोरी
गोबोरी उगारो
बाग बाग हाड जा

यस प्रकार बाग निरान्त बाग मान बार यह वर आत में बाग व जाय ठर वना है और बाग निरान्त बाग — य द बार यही उत्तर म वना है भड ।

तमा विभाग बिया जाता है यस प्रकार न भाग बी पाडा जा नर प्रकार म होना है गार हा जानी है ।

रोंड शोंड

कभा कभा एसा भी मयाग न है — गन्ध म यानर ४ मील दूर गन्ध म जा म मिया बा जाता माना है । एसा दूरा बका न। घर पर सा नी रमा जा-मना अर म मयम दप दाल बका व निग हा एसा दूर दिया जाता है । उक्त भी माय लना है होना है । उम मयम जय और म मा म बागि म बा म जानी है सा बार व प्रमुद नर वर भवसा उम मयम है बागि जहा म गहिर मयम दिया हु ना है बी वड जाता हैं । बा व मान छाग छोरी वरव व। कता मनी हैं । बा व निर व उम म उक्त मान बार मयम हा म ऊपर ना वर मनी है य कहना हूँ —

रा मा
रावनिवा । वन मा नार
हानिवा वनमागो माग ।

उना तमा नि बाग है यदि तमाने कीया जात ना बा वर आर वर रोग हा मान रहना है । यह गुण न । वर वर। जब तक उम गन्ध व बाग नर उम पर राग पाड न बी जात ।

गुजर

एक स्थित न। पला व म म जान पर उमकी जो बका बा । हाता है उम पला व। हमारे पशु लोहा कहन हैं । और यदि दूर बाग यह वनी 'लोहा' भा दमागव वर जात और वर स्थित यदि हा । उम म हा मा उमना तामरा विराह भा मयम हा जाता है । ऐम मोह वर उम तामरा पने व। मर व मना न। जाना है ।

गुजर व माय विराह हा जान वर भा स्थित विगव को एक प्रकार का म-मा मना रहना है — यदि य भी न नर जात । मर विराह वर मान व बाग दू वर म प्रविष्ट जान म पुव दू प्रकार का टोका वरना है । य जान दुगन्ध व। एर उम गुजर व रंगाने मान म बांध वर व मुक्त दरवाजे व बाग नर जाता है । फिर उम गुजर व मिर पर । दिन एसा माना व मर बदन रंग न। जाने हैं । बाग व म मर मोरन गुजर व। मान बागना है —

कोई ल। कोई लोई लोई
कोई ल। गुजर म बाग

घोर वर उम उम म वना है —



पय की अनन्तता मायना की अनन्तता की प्रेरित होती है और मायना की अनन्तता यय की अनन्तता का बनाए रखती है।

दोनों अन्योन्याश्रित हैं। माध्य पवित्र हो तो मायना भी पवित्र होना चाहिए, पय पवित्र हो, लम्बा हो, तो पायेय भी उसके अनुरूप ही होना चाहिए अन्यथा पथिक नष्ट हो जाता है।

विचारों का अजन्म प्रवाह चिरकाल से चला आ रहा है। यह सतत प्रवृत्तगीला प्रेममय शोणित्य की कभी नहीं सूखी। यह अपने प्रवाह की उपयोगिता पर कभी नहीं स्की, यह बहती गई थी जब मरुधर केसरी ने जन-मानस को आप्लावित करती गई। जिन्होंने इसका पान किया वे अब हो गए, जिन्होंने उनके नाद की सुना वे हृत्-कृत्य हो गए।

अमणमस्कृति के अग्रदूत भगवान् महावीर ने पूछा गया भगवन् ! उनसे लम्बा पय गौन-मा है ? उनका पायेय क्या है ?

भगवान् ने कहा—सत्कार का पय ही नमसे लम्बा पय है उसे पान करने के लिए पायेय है—सम्पन्नान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र।

अद्वेय मरुधरकेसरीजी म० सफ़र पवित्र हैं, पथदर्शक हैं, और पायेय के विवेकदाना। वे मानव मन के मूर्च्छित दीपों को पुनः ज्वालिमय बनाते हैं। और स्वयं शुभ आलाप बन प्रसाद विस्तारते हैं। जो भी उन प्रसाद में अपने आप को देखेगा, वह अवश्य ही लाभान्वित होगा।

•

महान सन्त

साध्वी कचनकुमारी

इस विश्व स्पी बाजार में अनेक प्राणी जाते हैं। वे अपने कर्तव्य के द्वारा अपने जीवन में क्या करना चाहिये, किस तरह से रहना है, अपने जीवन को उन्नत कैसे बनाये, नमार में आर इत्यादि के माय कौन बनाये करना है, यहाँ तक कि जीने की कला को भी नहीं जानते हैं। उनमें गीचने की शक्ति नहीं होती। मजाहीन होते हैं। कीड़ो-मकोड़ो की तरह जन्म लेते हैं और यों ही चले जाते हैं। जगती मनुष्य ऐसे ही होते हैं जिन्हें आज भी माया में लोग जानाया आदि कहते हैं। उनके मन में न कोई दया है, न माई हृदय है। अपने आपको पहचानने या जीवन के लक्ष्य को समझने की ता वात ही क्या ?

लेकिन ऐसे भी कई महान् सन्त इस नमार में जन्म लेते हैं जो स्वयं तपते हैं और दूसरों को तारते हैं। खुद मोक्ष के राही हैं, दूसरों का मार्गप्रदर्शन करते हैं। उनमें से एक महान् सन्त हैं मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज। मैं उनके चरणों में भक्ति भरे हृदय ने थड़ाजल के पुष्प भेंट करने का श्रीभाग्य प्राप्त कर महान् हर्ष का अनुभव कर रही हूँ।

आपका जीवन सत्य, अहिंसा, सयम और शान्ति में भग्नूर गभीर एवं प्रशमनीय है। आपके गुण बहुत हैं लेकिन मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं आपका गुणानुवाद कर सकूँ।

•



रहता है—दूध नफेद है और नफेद वस्तु पर हर किसी की कु-दृष्टि ठहर सकती है। अतः गीर्ण पकाने समय उसमें एक कोयले का टुकड़ा डाल देते हैं। गाव के बच्चे देने पर, कहीं इसके दूध को नजर न लग जाए, उसके थनो को तबे की कलमस में काला कर देते हैं। दूल्हे को शादी के समय नजर न लग जाए, उसके नल्लाट में एक तिनारे पर काजल से चन्द्रमा का आकार बना देते हैं।

विवाह के समय दूल्हा एवं दुल्हन को हाथों में लोहे की छड़ों, जिसे हमारे यहाँ 'गेडीयो' कहते हैं, दिया जाता है। यज्ञोपवीत के समय भी ऐसा उमे रखने का आदेश रहता है। ऐसा विश्वास किया जाता है। इस प्रकार की क्रिया से प्रेतात्माओं में किसी प्रकार के अनिष्ट होने की आशंका नहीं रहती। बच्चे का खाली झूला नहीं झुलाया जाता। ऐसा करने में बच्चे का पेट दर्द करेगा। विश्वास किया जाता है। रात्रि में भी बच्चे को झूले में नहीं सुलाया जाता।

रात्रि के समय घर में बाहिर में मिष्ठान्न आदि नहीं लाया जाता। और यदि अभी सम्भव भी हो तो घर में लाने में पूर्व उसमें में हर मिष्ठान्न का थोड़ा-थोड़ा अंग तोड़कर बाहिर गली में फेंक देना होता है।

जहाँ गया लेटा हो, उस स्थान पर चलने में पावों में 'मरणे' (एक प्रकार का मोठा-मोठा थकान के समान दर्द) चलने लगती है, ऐसा विश्वास किया जाता है।

बिल्ली द्वारा रास्ता काट लेने पर आगे पाव घरना लड़ाई का निमन्त्रण देना समझा जाता है। जूना फेंककर फिर आगे पाव रचना, इस दोष का प्रतिकार करते देखा गया है।

दीवानी एवं अक्षय तृतीया जाति शुभ-पर्व के दिन विच्छू आदि का निकलना शुभ माना जाता है। इस दिन विच्छू को मारा नहीं जाना—मिट्टी की एक हड्डि में गोबर, दही, शक्कर आदि डाल कर उसे घर में ही रख दिया जाता है। त्यौहार आदि समाप्त हो जाने पर उसे बाहर छोड़ा जाता है।

राह चलते समय राह में रु० पैसा आदि का मिल जाना शुभ माना जाता है। इसे खर्च नहीं किया जाता—सम्भालकर भीतर पेटी में रखा जाता है अथवा पूजा में रखा जाता है। चांदी का इस प्रकार प्राप्त होना शुभ एवं मोने को अनुभूत समझा जाता है। मोना मिल जाने पर उसे मन्दिर में भगवान् के भेंट कर दिया जाता है।

घी का दुल जाना अनुभूत एवं तेल का दुल जाना शुभ समझा जाता है।

म्याही की दवात का गिर जाना शुभ माना जाता है।

रसोई करते समय यदि तवा हलता हुआ दिखाई दे तो उसे शुभ समझा जाता है।

जूती का दूसरी जूती पर चढ़ जाना कही यात्रा करनी होगी, ऐसा विश्वास किया जाता है।

हिचकी आने पर ऐसा विश्वास किया जाता है हमारा स्वजन प्रवास में हमें अवश्य याद कर रहा है।

हमने यहाँ कुछ जैमलमेर के 'लोक-विश्वास' थोड़े में रखे हैं। विज्ञ-पाठक इससे सहज ही में अनुमान लगा सकते हैं—ये सभी केवल अंध-विश्वास मानकर अपेक्षित किए जाए, अथवा ये सभी अंध-विश्वास मूलक हों, ऐसा नहीं है। इनमें लग्नी मंड्या में बहुत से ऐसे भी हैं, जिन्हें स्वास्थ्य एवं विज्ञान की दृष्टि से सही माने जा सकते हैं। इन सब पर आज मनोविज्ञान की दृष्टि से मूल्यांकन करना आवश्यक है। इस प्रकार के 'लोक-विश्वास' सैकड़ों की संख्या में खोजने पर मिल सकते हैं। इन पर स्वतन्त्र-रूप से लिखा जाना आवश्यक समझा गया है।

भूत-व्याधि चिकित्सार्थ ब्रज के मंत्र

श्री रामशरणदास गुप्त एम० ए०

गोध-दात्र (हिंदी विभाग) राजस्वान विन्धविद्यालय
जयपुर (राज०)



विश्व की प्रत्यक्ष सृष्टि में भूत प्रत की गत्ता में विन्धविद्या विद्या जाना रहा है। भूत प्रत क्या है ? लोक मान्यता के अनुसार मनुष्य की मर्त्यु के पश्चात् कर्मों की आत्मा हो भूत है। कुछ मनुष्यों की मर्त्यु में मर्त्यु हो जाती है। इस मर्त्य के कारण होत हैं जाग म जलना पानी में डूबना आदि। जिन मनुष्यों की मर्त्यु में मर्त्यु हो जाती है व भूत बन जाते हैं। जिन भूत बनने की यह प्रतिष्ठा गत नहीं है। क्षेत्रीय सर्वेक्षण करने पर पता होता है कि जिनमें ही एक मर्त्यु हैं जिन की मर्त्यु उत प्रसार की जाहिरिया घटनाओं के कारण नहीं है किन्तु ये मर्त्यु के पश्चात् भूत बन हैं। उत्तर प्रश्न के विभिन्न ग्रामों में इस प्रकार के उत्प्लरण मिलते हैं। ये भूत उत मर्त्यु का पाठिन करते हैं जिनमें इसी मानवीय ज्ञान में पढ़ना नहीं है अथवा जिनमें ज्ञान नहीं है किसी प्रकार का अहित नुमा होता है। जब किसी व्यक्ति को इस प्रकार की मर्त्यु पाठिन करती है उस समय वह उन्मादग्रस्त हो जाता है। यह मान्यता के अनुसार बड़-बड़ बीमारी उन्मादिकी स्थिति में होता है कि प्रसार की आचरण होत विद्या करता गुप्त साथ ही जाता एक साथ वैज्ञानिक होत तथा इन विद्याओं की पुनरुत्था होत ही हम के मान्यता में स्थित है कि इस व्यक्ति पर भूत प्रत का प्रभाव हो गया है इसी का प्रत है। बाल्य कालीन आदि क्षेत्र में मन का जाना व्यापार ज्ञान का व्यापार का ज्ञान होता था का जाना आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया जाता है। इन की चिकित्सा के लिए लोक चिकित्सक विभिन्न मंत्रों का प्रयोग करते हैं। मनुष्य में उग्र मानसिक विटुति या इन भूतों का प्रसार के कारण होती है अथवा हमने इन मंत्रों का मंत्र भूत-व्याधि चिकित्साय मंत्रों की गत्ता में अभिहित किया है।

भूत व्याधि चिकित्सा में जिन मंत्रों का प्रयोग जिन की प्राचीनतम संस्कृतियों में किया जाता रहा है। भाषा में भी यह ज्ञान जिन पर विचार किया जाय तो यह जीवों के अंतरिक प्राचीन गार्थ में भी स्थित रहता है अथवा जिन मंत्रों में जिन का उपयोग भूत-प्राचरण के लिए किया जाता था। जयवन्त मंत्रों का प्रयोग उत रहता है। जयवन्त मंत्र प्रसार के लिए मंत्र प्राप्त होते हैं। बीज मंत्र के द्वारा मंत्र प्रत का गत्ता में विन्धविद्या और विचारण इन मंत्रों का प्रयोग के स्पष्ट उन्माद विन्ध है। डा. जयवन्त मंत्रों के प्रयोग—We have clear references also to beliefs in ghosts, goblins, evil spirits and other Super Natural beings meddle with man's affairs. Spells were practiced to ward off their influences and schemes. Some of spirits live on the earth and some in the air. People stood in Constant Terror of them and appeased them by offerings.

महाभारत मंत्र में मंत्रप्रसार के विभिन्न विन्धविद्या। प्रभाव के मान्यता हेतु निम्नलिखित मंत्र दिया गया है।—



“Tutte Tutte Vutte Vutte Patte Patte Katte Katte amale amale Vimale Vimale nime nime hime hime vame vame Kale Kale Kale Kale Matte vatte tutte tñette Katte Katte latte Patte dime dime cale cale pace pace bandhi bandhi añche mañche dutāre patāre arkke arkke sarkke sarakke Carkke Carkke dime dime hime hime tu tu tu tu du du du du ru ru ru ru phū phū phu Svāhā (2)

इस प्रकार भूत-प्रेत व्याधि अथवा प्रभाव आदि के विमोचन हेतु मन्त्रों के प्रयोग का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। आज भी भारतवर्ष की विभिन्न जीविन बोलियों उपभाषाओं एवं भाषाओं में इस प्रकार के अनेक मन्त्र प्रचलित हैं। विभिन्न हिन्दी की उपभाषाओं एवं बोलियों में भूत-प्रेत व्याधि निवारण के विभिन्न मन्त्र आज भी प्रचलित हैं। यहाँ इन मन्त्रों का विवेचन ब्रज-भाषा क्षेत्र में प्राप्त सामग्री के आधार पर किया जाता है—

भूत-व्याधि चिकित्सा के लिए लोक-मात्रिक तीन प्रकार के मन्त्रों का प्रयोग करते हैं। प्रथम प्रकार के वे मन्त्र हैं जिन का प्रयोग भूत-प्रेत आदि के भय के निवारण-हेतु किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति को मार्ग में जाते समय भूत आदि का भय प्रतीत होता है। तो वह इन मन्त्रों का स्वयं मन ही मन जाप करता है। इसके साथ ही इन मन्त्रों से मात्रिक छोटें २ वच्चों को झाड़ा देते हैं। इस प्रकार इन मन्त्रों द्वारा झाड़ा देने से वच्चों आदि पर भूत-प्रेत के प्रभाव का भय नहीं रहता। दूसरे प्रकार के वे मन्त्र हैं जिनका प्रयोग रोगी-विशेष पर भूत को बुलाने के लिये किया जाता है। प्रायः ऐसा होता है कि भूत-प्रेत के प्रभाव में रोग-ग्रस्त व्यक्ति प्रत्येक समय अचेतन अवस्था में या असामान्य अवस्था में नहीं रहते, अपितु जिस समय भूत का प्रभाव होता है तभी वे एक उन्माद-कारिणी अवस्था में हो जाते हैं लेकिन भूत के जाने पर उनकी सामान्य स्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में लोक-चिकित्सक ऐसे व्यक्ति की चिकित्सा करते समय मन्त्र के प्रभाव से इन आसुरी मत्ताओं को बुला लेता है। तत्पश्चात् रोगी की विविध चिकित्सा करता है। तीसरे प्रकार के मन्त्रों का प्रयोग भूत-प्रभाव-मोचन हेतु किया जाता है। इन्हें क्रमशः ‘चीकी या भूत का बसर रोकने’ ‘भूत बुलाने या भूत वाधने’ एवं ‘भूत उतारने’ के मन्त्र कहा जाता है। हम इन्हें यहाँ क्रमशः, भूत-भयहारी, भूताकर्षक एवं ‘भूता-पसारक’ मन्त्रों की सज्ञा दे सकते हैं —

भूत-भयहारी मन्त्र—भूतभयहारी मन्त्रों का सम्बन्ध नरसिंह एवं हनुमान से है। अस्तु, इन्हें नरसिंह की चीकी तथा हनुमान की चीकी भी कहा जाता है। मन्त्रों में प्रायः उस उद्देश्य को व्यक्त कर दिया जाता है जिसके लिये मन्त्र विशेष का प्रयोग किया जाता है। लेकिन इनमें इस प्रकार के किसी उद्देश्य का निर्देशन नहीं हुआ है। नरसिंह से सम्बन्धित मन्त्र का जाप करते हुए मात्रिक भूत-भय की आशंका में मुक्त करने के लिये झाड़ा दे देता है। मन्त्र इस प्रकार है।

“मनका मनका मनकवीर मनका हकारो ।

तू कहिये परचड वीर, तेरा नाँउ डहारी ॥

कहती पीछे जाऊ, कह मारु वजरगा ॥

तेरे ही अरक दरक, तेरी वजरगा ॥

वाध गरज झूठे करे हाक देत नरसिंहा ।

फलै मन्त्र ईश्वरी, मेरे गुरु का सबद माचा ॥”

हनुमानजी से सम्बन्धित एक मन्त्र में प्रथम उनके पराक्रम का वर्णन है, तत्पश्चात् उनकी पूजा करने का विधान है और अन्त में हनुमानजी द्वारा सीता की खोज का वर्णन करते हुए मात्रिक ने अपने ऊपर कृपा करने का निवेदन किया है। यदि हनुमान उस पर कृपा नहीं करेंगे तो उन के प्रति अनेक शपथों का विधान भी मन्त्र में वर्णित है —

बाप च हनम न समद मा ग य
 मन म वरी निमर
 धीर बाध बाध धरे
 कहा धार की वान कहा वध की छाया
 सदा मेर बा रा नगान हनमत बा चढाया
 तेरी पूजा पान मुपारा
 ये पूजा अपनी के आ
 ये पूजा सहरो क्यू
 अप समान व दउ
 मैचिया द्रव्य की पक्ष बाप हनुमत
 भाङ्ग हकार मन्हा की
 धीर धार म लह
 नरसिंह धीर भरो की निगा वर
 उठाव पाव गदी प धरे
 ये हनुमत जमी लामुग
 सीता माता का गता कू गये
 पैसा गता भरी ना करीये
 तानी नाव चौह म उ अस्तान के मारे परोग
 माता भवनी का दूध पीव हराम करीये
 वन मनी ईवरी बाबा भर मुद का सव साबा ॥

हनुमान सम्प्रदायी दूसरे मन्त्र म हनुमान के गाव ह। अय अनिमानवाय नवियो का नमावग किया गया है। इस म गग और हनुमान व पराक्रम का वर्णन है। हनुमान वगवान है उनका हाथ म लड्डू है और मुल म पान है। जब ये बापने है तो गिरि गमन मन्त्रारम आदि बनावमान हो आते हैं। दूसरी ओर अरुमा कदमा धीर मवान एक ताईवा सस्ताव म म 'धीर' स पाव एक शीव भाई का विचार बिये जिना हो मारते हुन (हनन) को मारते (हनिये) प निय प्राप्तता प। गई है। इस वाम व देतु कहु हनुमान की आन दी गई है। भग का ब्रज के ता को सो को बनी लया वर रसा वरम हनुमन का आनग किया गया है —

गिरि चन पवन व
 चन मगुन्नर गान
 मन्त्रावन निर सीमग
 लय बाये हनुमान
 अरुमा कदमा धार मगाव
 ताईवा सस्ताव महुमग बाव
 हनन की हनिय
 पाव दाय म । गनिय
 हनुमान वगवान





हाथ मे लड्डू मुह मे पान
भैरो की चौकी हनुमान की आन
लोहे की तारी वज्रर का तारा
ठोक बैठे भैरो मतवारे
इस चोटे का हनुमन्त रम्बारा ॥”

भूताकर्षकमन्त्र —ये मंत्र काली, चामड एव महम्मदावीर मे मन्त्रधिन है । काली मे सन्निहित मन्त्र मे काली का ब्रह्मा एव इन्द्र के साथ मन्त्र व्यक्त करते हुए उम ने निवेदन किया गया है कि जहा मे तुम्हारा स्मरण करू वही आकर उपस्थित हो । तत्पश्चात् काली देवी को इक्कीम लोग के जोड़ों एव पान के बीटों का प्रलोभन देकर नदी, नाले माडी, घाट आदि के भूत-प्रेत, खईम, ममान को बाध कर लाने का आदेश दिया है । यदि देवी मायिक के इस आदेश का पालन नहीं करती है तो वह घोड़ी की नाद तथा चमार के छोडे मे गिरेगी—

“काली काली महाकाली
बिरम्हा की बेटी इन्दर की माली
दोनों हाथ बजावे ताली माला लिये खड़ी तेरी माली
जब मुमन् जब हाजिर ठाढो
छाप बोकरा पीवे दाट
नदी कू नवारे कू गैल के घाट कू
खईम कू, ममान कू, चुरैल कू, भूत कू
बाध-बाध कै मुमन्ने चढावैगी
इक्कीम लॉग कौ जोडा पान को बीडा पावैगी ।
मेरी बाचा ते टरेगी धोवी की नाद मे गिरेगी ।
चम्वाली के चमडे मे गिरेगी ।
जो मेरे वचन को टारैगी ।”

चामड मे सम्बन्धित मन्त्र में चामड के साथ काल भैरो एव नरसिंह वीर का समावेश किया गया है । मन्त्र के आरम्भ मे चामड की प्रार्थना और पूजा का विधान है— ‘हे चामडमाता ! तू गुणों को देने वाली है । मैं तेरा पुत्र हूँ, तू मेरी माता है । मैं तुझ पर घटाघोर (प्रचुर मात्रा मे) मिदूर चढा कर ऊपर मे लाल शाऊ उढाता हूँ ।” तत्पश्चात् काल भैरो को भूत की छाती पर चढ कर (भूत की) मुक्कों बाधने के लिए तथा नरसिंह वीर को भूत की गर्दन और पैर बाधकर मोते हुए को जगाकर, बैठे हुए को उठाकर लाने का आदेश दिया है —

चावड माता गुन की दाना
हू तेरा पुत्र तू मेरी माता
घटाघोर मद्दूर चढाऊ
ऊपर मालू लाल उढाऊ
आगै लें कालिया भैरो
चट छाती पै मुमन्ने बाधै



की सहायता करने वाली है, तू मार्ग, घाट, कुआ आदि के खईम, चुडैल एव भून को बाध ले । यदि इन को बाध कर नहीं लायेगी तो काली गऊ के रक्त में कौलारे के थान पर बैठ कर स्नान करेगी —

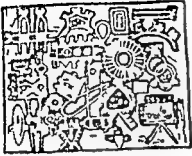
“चामड माता गुन की दाता
तू राखै पुत्र कू माता
देखू तेरे तरकसे
देखू तेरे वामन वीर
चामड विलीनी साची कहाई
पाप कू छोडि धर्म कू घाई
ऊध वाचा ब्रह्म वाचा
जो तू मेरी वाचा से हटे
वाधि ले जिद मसान, खईस, चुडैल भूत ।
गैल, घाट, कुआ, पनघट, गोडा, गिरारा मे से,
छत्तीमों कौमकू वाधि कै नहीं लावैगी
काली गऊ के रक्त में वैठिकै
कौलारे के थान पै नहायगी
जो तू मेरी वाचा से टरैगी ॥

इसी प्रकार हनुमान, नरसिंह, कमालखा, विममल्ला रहमान रहीम को मानिक ने मार्ग, घाट, पनघट, नदी, नाले, पास के पडौस के भून-प्रेत, जिंदा, खईस, मसान, चुडेल, डाकिनी, शाखिनी आदि को रोगी के चाम-चाम, गूद-गूद, हाडे-हाड, नोड नाडी एव वहत्तर सौ कोठों से खीच-खीचकर बाध-बाध कर लाने का आदेश दिया है । आदेश के न मानने पर इन अलौकिक सत्ताओं के प्रति अनेक प्रकार की शपथ एव अभिशाप की अभिव्यक्ति की है ।

हनुमान के प्रति शपथ विधान उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है —

- १ “तीन लोक चीदउ अस्तान के मारे परीगे ।”
- २ “राजा रामचन्द्र के सिंहासन के मारे परीगे ।”
- ३ अजनी का खीर खेचो हलाल न कियो हराम कियो ।”

इस प्रकार भूत-व्याधि चिकित्सा के लिये प्रयुक्त अनेक मन्त्र लोक में प्रचलित हैं । इन मन्त्रों को गुरु-शिष्य परम्परा से प्राप्त किया जाता है । गुरु मौखिक रूप से शिष्य को मन्त्र दिया करता है । शिष्य जब मन्त्र सीख जाता है, तब वह गुरु के निर्देशानुसार उन्हें सिद्ध करता है । सिद्ध करने के पश्चात् उनके गुरु द्वारा निर्देशित विधि के अनुसार ही प्रयोग में लाता है । इन मन्त्रों के प्रयोगता एक ग्राम से दूसरे ग्राम में अनेक विद्यमान हैं ।



પઠ સ્ખંડ



અગ્રેજી-માપા-નિવન્ધ

मंगल-कामना

जय साध्वी सगीताकमारी गान्धेरी

जनममात्र न जिग रिगयन स्थानववासी जनसमाज के लिए यह गौरव का विषय है कि आज उसम मधररोमरीकी बात में मन सत अपना अंगीकार मजस से बिन्दु का सुयोगित कर रहे हैं ।

मधररोमरी यन् नाम यथायता की जिग ०० है । नयोवि सम्पूर्ण मधररा में आप मित्र की भाति विचरण करते हैं । ७५ वी की आयु हान पर भी यन् आपकी विगपता है कि आप अपने प्रान्त में अभी तक भी सवत्र विचार करते हैं । मधर गनिरिक्न मिश्रामल यह नाम भी सत्यता का प्रकट करने के कारण साधक है । अपनी मिथी जवा मधरता का कारण गान्धेय होता है मधर नाम की साधकता है ।

आप जन आयमा में वणिन स्थविर की सीमा उपाधियों से विभूषित हैं । वय स्थविर तथा सूत्रस्थविर होने के साथ ही विगपता से भी सत्यविर है । विगनि अप की सीमायार्थ जाने का दीक्षास्थविर कहा जाता है । किन्तु आपकी दीक्षा यथायता उसम अनाई पुण अधि है । यन् जय त प्रसन्नता का विषय है । इसी प्रसन्नता से अभिप्ररित हुए हैं तो आज जन जन का मन आपकी दीक्षा अधगता की विस पर आपका अभिनन्दन करने के लिए तयार हो उठा है ।

आप सत्य के अग्रदूत हैं । सत्या सम्मन्त्र के वास्तविक सूत्रधार तो आप ही थे । अजमेर और भोजत सम्मन्त्रों में भी सारा में प्रदूषण योगदान र है । य आरती गान्धेयता और गन्ताप्रियता का परिचायक है ।

हे नन्नाभूति ! सत्य घन राव रेक कोई भी आप सम्पक में आया किन्तु आप उसम प्रभावित नहीं हान प्रत्येक अपने साम्प्रभाव में उस की प्रभावित कर रहे हैं ।

अगरवली अन्त प्रत्येक जग में नजर निरन्तर घन मनो र गौरव से चर्चों का मुद्रासित करती है । हमी प्रचार जीवन के दाता (मानव और साधक) के प्रारम्भ में और आप अपने महामानवीय गणा की समग्र में निगमित न सवासित करते रहे हैं ।

म पुनः अमर पर आपकी काटिवाटि अभिवन्दन और अभिनन्दन आप गतायु हो यही धन का माता है ।

हादिक अभिनन्दन

हरिभाज उपाध्याय

अध्याय सान्ध्याय अकाशमी

म नता का हान मानवता की बड़ा म बड़ा छत है । ननिता किरी भी देव का सर्वोत्तम पुत्री है । हमने विराम पर राट्ट का विराम निमर है । हमारे म म ननितभूया की विराम अवगता और है समस्त दली मय पूव जग त है । प्रत्येक मय मागति के जिग स्वभाव यह विराम का विषय है । एग अमर पर जो तन मतामा आगे आर ननिता के विराम के लिए प्ररणा करत हैं वे सम्पन अभिनन्दीय हैं । मधररोमरी मुनि श्रीमि श्रीमत्तमा म उ मता म म म हैं । नानर जावरण का गन्ता पूवन हूय के मारवाड म म विवरण करके जाता का जागुन कर रहे हैं । आपका ध्यनिता बरा प्रभावता और वनत्व बरा आजमा है । दाभा मयन जयनी के मुभावसर पर म आपका हादिक अभिनन्दन करत है ।



ANTIQUITY OF JAINA CULTURE

DR. MOHAN LAL MEHTA M.A. Ph.D.



Culture is that complex which includes knowledge belief art morals rules customs and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society. In other words culture is the sum total of man's learned behaviour. The culture of the individual is mainly dependent on the culture of the society to which that individual belongs. Thus the acquisition of culture is predominantly a social phenomenon. The application of a particular culture may be social as well as individual.

There are individual differences in a group or class or society. Similarly we find social differences in the world. Some of these differences are purely non-cultural whereas some differences are definitely cultural. A number of causes individual as well as social may be attributed to the cultural differences.

Indian Culture

Indian culture is remarkable for its peculiarities. It consists of two main trends Sramanic and Brāhmanic. The Vedic Aryan (or Hindu (in a restricted sense) traditions come under the Brāhmanic trend. The Sramanic trend covers the Jaina Buddhist and similar other ascetic traditions. The Brāhmanic schools accept the authority of the Vedas and Vedic literature. The Jains and Buddhists have their own canons and canonical literature and accept their authority.

Jaina Culture

Jainism is one of the oldest religions of the world. It is an independent and most ancient religion of India. It is wrong to say that Jainism was founded by Lord Mahāvīra. Even Lord Vardhman cannot be regarded as the founder of this great religion. It is equally incorrect to maintain that Jainism is nothing more than a revival of the Vedic religion. The truth is that Jainism is quite an independent religion. It is even older than the Vedic religion. The Jaina culture which represents not the Sramanic culture in India is in negative terms non-Vedic non-Aryan and non-Brāhmanic. It has its own peculiarities. It is flourishing on this land from times immemorial. The Indus Valley civilization of Mohenjodaro and Harappa sheds some welcome light on the antiquity of the Jaina culture. Of course we cannot deny that there has been a good deal of mutual influences on both the currents of Indian culture. In fact Indian culture is a composite culture. The two most predominant currents in the stream of Indian culture are Brāhmanism and Sramanism. They have greatly influenced each other and thereby contributed to the composite Indian culture. It is true that they have some mutualities and certain common principles. But it is equally true that they have their own peculiarities and marked differences.

Mahāvīra

Mahāvīra was the twenty-fourth, i.e., the last Tirthankara. According to the Pali texts he was a contemporary of Buddha but they never met. The early Prakrit texts do not mention the name of Buddha. They totally neglect him. This indicates that Mahāvīra and his followers did not attach any importance to Buddha's personality and teachings. On the other hand, Mahāvīra is regarded as one of the six Tirthankaras of Buddha's time in the Pali Tripitaka. This shows that Mahāvīra was an influential personality and a leading venerable ascetic.

According to the tradition of the Śvetāmbera Jainas the liberation of Mahāvīra took place 470 years before the beginning of the Vikrama Era. The tradition of the Digambara Jainas maintains that Lord Mahāvīra attained liberation 605 years before the beginning of the Śaka Era. By either mode of calculation the date comes to 527 B.C. Since the Lord attained emancipation at the age of 72, his birth must have been around 599 B.C. This makes Mahāvīra a slightly elder contemporary of Buddha who probably lived about 567-487 B.C.

There are many references in the Buddhist canon to Nātaputta and the Niganthas, meaning Mahāvīra and the Jainas. The Buddhist canon refers to the death of Nātaputta at Pāvā at a time when Buddha was still engaged in preaching. According to Hemacandra, Mahāvīra attained liberation 155 years before Candragupta's accession to the throne. This leads to a date around 549-477 B.C. for Mahāvīra and places his death slightly later than that of Buddha. Some scholars support this view.

There is no doubt that Pārśva preceded Mahāvīra by 250 years. The Jain canon clearly mentions that the parents of Mahāvīra were followers of Pārśva whose death took place 250 years before that of Mahāvīra (527 B.C.). Since Pārśva lived for a hundred years, his date comes to 877-777 B.C.

Mahāvīra was not the inventor of a new doctrine but the reformer of a law already long in existence. The Uttarādhyayana-sūtra gives a good account of this fact. The following is the essence of this account —

There was a famous preceptor in the tradition of Lord Pārśva. His name was Keśi. Surrounded by his disciples he arrived at the town of Śrāvastī. In the vicinity of that town there was a park called Tinduka. There he took up his abode in a pure place.

At that time there was a famous disciple of Lord Mahāvīra. His name was Gautama. Surrounded by his pupils he too arrived at Śrāvastī. In the vicinity of that town there was another park called Koṣṭhaka. There he took up his abode in a pure place.

The pupils of both, who controlled themselves, who practised austerities, who possessed virtues, made the following reflection:

“Is our law the right one or the other? Are our conduct and doctrines right or the other? The law as taught by Lord Pārśva, which recognises only four vows, or the law taught by Lord Mahāvīra (Vardhamāna), which enjoins five vows? The law which forbids clothes for a monk or that which allows an under and an upper garment? Both pursuing the same end, what has caused this difference?”

Knowing the thoughts of their pupils, both Keśi and Gautama made up their minds to meet each other. Gautama went to the Tinduka park where Keśi received him. With his

Jainism and Buddhism

Jainism and Buddhism now represent the Śramanic culture. If we examine the antiquity of Jainism from the Buddhist and Jaina records it will be clear that Jainism is older than Buddhism. The Nigantha Naṭaputta of the Buddhist scriptures is none else but Lord Mahāvīra the last Tirthaṅkara (Fordmaker) of the Jains. The place of his death is mentioned as pava. The Buddhists often refer to the Jaina as a firmly established rival sect. Buddha made several experiments in the quest of enlightenment. But such was not the case with Mahāvīra. He practised and preached the old Nirgrantha Dharma. He made no attempt to found or preach a new religion. Buddha is even said to have entered the Śramanic (Nirgrantha or Jaina) order of ascetics in his quest of enlightenment.

The Samannaphala sutta of the Dīgha nikaya refers to the four vows (Caturyama) of the Nirgrantha Dharma. It shows that the Buddhists were aware of the older traditions of the Jains. Lord Parsva who preceded Lord Mahāvīra had preached the four fold law (Caturyama Dharma). Mahāvīra adopted the same but added one more vow to it and preached the five fold law (Pancayama Dharma). This is clear from the Uttaradhyayana sūtra of the Jains. There is a nice conversation between Kṛśi the follower of Parsva and Gautama the follower of Mahāvīra in this canonical text. In this conversation the two leaders realise and recognise the fundamental unity of the doctrines of their respective teachers. They discuss the view points of the four vows (non injury, truth, non stealing and non possession) and five vows (chastity added) and come to the conclusion that fundamentally they are the same.

Historicity of Parsva

The historicity of Parsva has been unanimously accepted. He preceded Mahāvīra by 400 years. He was the son of King Aśvasena and Queen Vamā of Varanasi. At the age of thirty he renounced the world and became an ascetic. He practised austerities for eighty three days. On the eighty fourth day he obtained omniscience. Lord Parsva preached his doctrines for seventy years. At the age of a hundred he attained liberation on the summit of Mount Samnatha (Parasnath Hills).

The four vows preached by Lord Parsva are not to kill, not to lie, not to steal and not to own property. The vow of chastity was no doubt implicitly included in the last vow but in the two hundred and fifty years that elapsed between the death of Parsva and the preaching of Mahāvīra abuses became so abundant that the latter had to add the vow of chastity explicitly to the existing four vow. Thus the number of vows preached by Lord Mahāvīra was five instead of four.

Neminatha

Neminātha or Ariṣṭanemi who preceded Lord Parsva was a cousin of Kṛṣṇa. If the historicity of Kṛṣṇa is accepted there is no reason why Neminātha should not be regarded as a historical person. He was the son of Samudravijaya and grandson of Andhakaviṣṇu of Sauryapura. Kṛṣṇa had negotiated the wedding of Neminātha with Rājmatī the daughter of Ugrasena of Dvārakā. Neminātha attained emancipation on the summit of Mount Raivata (Girnar).

Other Tirthaṅkaras

The Jaina tradition believes in the occurrence of twenty one more Tirthaṅkaras. They preceded Neminātha. Lord Rṣabha was the first among them. It is not an easy job to establish the historicity of these great souls.



made a request to admit him as his disciple. Mahāvīra did not entertain his request, Gosāla again approached the Venerable Ascetic when he had left the place at the end of the rainy season. This time his request was, however, accepted and both of them lived together for a considerable period. While at Siddhārthapura, Gosāla uprooted a sesamum shrub and threw it away challenging Mahāvīra's prediction that it would bear fruits. Owing to a lucky fall of rain the shrub came to life again and bore fruits. Seeing this Gosāla concluded that everything is pre-determined and that all living beings are capable of reanimation. Mahāvīra did not favour such generalisations. Gosāla, then, severed his association with Mahāvīra and founded his own sect known as Ājīvika.

Mahāvīra had travelled up to Lādha in West Bengal. He had to suffer all sorts of tortures in the non-Aryan territory of Vajrabhūmi and Śubhrabhūmi. Many of his hardships were owing to the adverse climate, stinging plants and insects and wicked inhabitants who set dogs at him. The Venerable Ascetic had spent his ninth rainy season in the non-Aryan land of the Lādha country.

Mahāvīra passed twelve years of his ascetic life with equanimity performing hard and long penances and enduring all afflictions and calamities with undisturbed mind. During the thirteenth year on the tenth day of the bright fortnight of the month of Vaiśākha the Venerable Ascetic obtained omniscience under a Śīla tree in the form of Śyamāka on the northern bank of river Rjupālīkā outside the town of Jṃbhikagrāma. He preached the law (Dharma) in the Ardhamāgadhī language, taught five great vows etc., initiated Indrabhūti (Gautama) and others and established the four-fold order (monks, nuns, male lay-votaries and female lay-votaries).

Jamālī, who was the son-in-law of Mahāvīra and had entered his church, left the order after some time and founded a new sect known as Bahurata. He is regarded as the first schismatic (Nihnavā) in the Jain church.

Lord Mahāvīra passed the last thirty years of his life as the omniscient Tīrthankara. He spent his last rainy season at Pāpā (Pāvāpurī). On the fifteenth day of the dark fortnight of the month of Kārttika the lord attained liberation there at the age of seventy-two. The eighteen confederate kings of Kāśī and Kosala (and eighteen Kings) belonging to the Mallakī and Lecchakī clans were present there at that time. Thinking that spiritual light of knowledge has vanished with the passing away of the Lord they made a material illumination by lighting lamps.

Lord Mahāvīra was the head of an excellent community of 14000 monks, 36000 nuns, 159000 male lay-votaries and 318000 female lay-votaries. The four groups designated as monks, nuns, laymen and laywomen constitute the four-fold order (Tīrtha) of Jainism. One who makes such an order is known as Tīrthanākara. Tīrthanākara Mahāvīra's followers comprised three categories of persons: ascetics, lay-votaries and sympathisers or supporters. Indrabhūti (monk), Candanā (nun) etc. form the first category. Śāṅkha (layman), Sulasā (laywoman) etc. come under the second category. Śrenika (Bimbisāra), Kūṇika (Ajātasatru), Pradyota, Udāyana, Cellaṇā etc. form the third category. The Tīrthankara's Tīrtha or Sangha consisted of only the first two categories.

Sudharamun, Jambū, Bhadrabāhu and Sthūlabhadra

Of the eleven principal disciples (Ganadharas) of Lord Mahāvīra, only two, viz., Indrabhūti and Sudharman survived him. After twenty years of the liberation of Mahāvīra

permission Keśi asked Gautama. The law taught by Parsva recognises only four vows while that of Vardhamāna enjoins five. Both laws pursuing the same end what has caused this difference? Have you no misgivings about this two fold law? Gautama made the following reply. The monks under the first Tīrthankara are simple but slow of understanding those under the last are prevaricating and slow of understanding and those between the two are simple and wise. Hence there are two forms of the law. The first can but with difficulty understand the precepts of the law and the last can but with difficulty observe them. But those between them can easily understand and observe them. This answer removed the doubt of Keśi. He asked another question. The law taught by Vardhamāna forbids clothes but that of Parsva allows an under and upper garment. Both laws pursuing the same end what has caused this difference? Gautama gave the following reply. The various outward marks have been introduced in view of their usefulness for religious life and their distinguishing character. The opinion of the Tīrthankaras is that right knowledge, right faith and right conduct are the true causes of liberation. This answer too removed the doubt of Keśi. He thereupon bowed his head to Gautama and adopted the law of five vows.

It is clear from the account of the Uttarādhyayana sūtra that there were two main points of the difference between the followers of Parsva and those of Mahāvīra. The first point was relating to vows and the second was regarding clothes. The number of vows observed by the followers (monks) of Parsva was four to which Mahāvīra added the vow of chastity as the fifth. It seems that Parsva had allowed his followers to wear an under and an upper garment but Mahāvīra forbade the use of clothes. Precipitor Keśi and his disciples however adopted the law of five vows without abandoning clothes. Thus Mahāvīra's composite church had both types of monks with clothes (Śacelaka) and without clothes (Acelaka).

Mahāvīra was the son of Kāstīra Sidhartha and Trisāl of Kundapura or (Kunḍagrāma) the northern borough of Vaiśālī. He belonged to the Jātī clan. He was born on the thirtieth day of the bright half of the month of Caitra when the moon was in conjunction with the Hastottarā constellation. As the family's treasure of gold, silver, jewels etc. went on increasing since the prince (Mahāvīra) was placed in the womb of Trisāl he was named Vardhamāna (the Increasing One). He was known by three names Vardhamāna, Śramaṇa (Ascetic) and Mahāvīra (Great Hero). The name of Vardhamāna was given by his parents. He was called Śramaṇa by the people as he remained constantly engaged in austerities with spontaneous happiness. Since he sustained all fears and dangers and endured all hardships and calamities he was called Mahāvīra by the gods.

Vardhamāna lived as a householder for thirty years. When his parents died with the permission of his elders he distributed all his wealth among the poor during a whole year and renounced the world. After observing fast for two days and having put on one garment Vardhamāna left for a park known as Jīrṅgharī in a palanquin named Candraprabhā. He descended from the palanquin under an Akoka tree, took off his ornaments, plucked out his hair in five handfuls and entered the state of homelessness with one garment. He wore the garment only for a year and a month and then abandoned it and wandered about naked after wards.

The Venerable Ascetic Mahāvīra spent his second rainy season in a weaver's shed at Nālanda a suburb of Rajagṛha. Goṭhila the Ājīka approached the Venerable Ascetic and



Khāravela

Some where near Samprati's time there lived King Khāravela of Kalinga. His inscription in a cave of Khandagiri, dating around the middle of the second century B.C., tells among other things of how he constructed rock-dwellings and gave abundant gifts to Jain devotees. There are some Jain caves in sandstone hills known as Khandagiri, Udayagiri and Nādagiri in Orissa. The Hāthīgumpha or Elephant Cave, as it is now known, was an extensive natural cave. It was improved by King Khāravela. It has a badly damaged inscription of this king. The inscription begins with a Jain way of veneration.

Kālākārya and Gardabhilla

In the first century B.C., when Gardabhilla was the king of Ujjain, there lived a famous Jain preceptor known as Kālākārya. King Gardabhilla carried off Sarasatī, a Jain nun, who was the sister of Kālākārya. After repeated requests and threats when Kālākārya found that the king was not prepared to set the nun free, he travelled west of the Indus and persuaded the Śakas to attack Ujjain and overthrow Gardabhilla. The Śakas attacked Ujjain and established themselves in the city. Vilamāditya, the successor to Gardabhilla, however, expelled the invaders and re-established the native dynasty. He is said to have been won for Jainism by some Jain preceptor.

Jaina Stupa at Mathura

An inscription of the second century A.D. has been found in the ruins of Jain stupa excavated in the mound called Funali Tila at Mathura. The inscription says that the stupa was built by gods. The truth underlying this type of belief is that at that time the stupa was regarded as of immemorial antiquity. The sculptures and inscriptions found at Mathura are of great importance for the history of Jainism. They corroborate many of the points current in the Jain traditions. For instance, the series of twenty-four Tīrthankaras with their respective emblems was firmly believed in, women also had an influential place in the church, the order of nuns was also in existence, the division between the Śvetāmbaras and Digambaras had come into being, the scriptures were being recited with verbal exactitude.

Kumārāpāla and Hemacandra

Coming to the medieval period, King Siddharāja Jayasimha (A.D. 1094-1143) of Gujarat, although himself a worshipper of Śiva, had Hemacandra, a distinguished Jain preceptor and writer, as a scholar member of his court. King Kumārāpāla (A.D. 1143-1173), the successor to Jayasimha, was actually converted to Jainism by Hemacandra. Kumārāpāla tried to make Gujarat in some manner a Jain model state. On the other hand, Hemacandra, taking full advantage of the opportunity, established the basis for a typical Jain culture by his versatile scientific work. He became famous as the Kalikālasarvajña, i.e., the omniscient of the Kali Age. In South India the Gangas, Rāstrakūṭas and Hoysalas were Jains. They fully supported the faith.

Digambaras and Śvetāmbaras

There were both types of monks, viz. Sacalaka (with clothes) and Acalaka (without clothes), in the order of Mahāvīra. The terms Sacalaka and Śvetāmbara signify the same sense and Acalaka and Digambara express the same meaning. The monks belonging to the Śvetāmbara group wear white garments, whereas those belonging to the Digambara group wear no garment. The literal meaning of the word Digambara is sky-clad and that of the Śvetāmbara is white-clad. It was, probably, up to Jambū's time that both these groups

Sudharman also attained emancipation. He was the last of the eleven Ganadharas to die. Jambū the last omniscient was his pupil. He attained salvation after sixty-four years of the liberation of Mahāvira. Bhadrabāhu belonging to the sixth generation since Sudharman lived in the third century B.C. He died 170 years after Mahāvira. He was the last Śrutakevalin (possessor of knowledge of all the scriptures). Śthūlabhadra possessed knowledge of all the scriptures less four Pūrvas (a portion of the Dṛṣṭivāda). He could learn the first ten pūrvas with meaning and the last four without meaning from Bhadrabāhu in Nepal. Thus knowledge of the canonical texts started diminishing gradually. There are still a good many authentic scriptures preserved in the Svetāmbara tradition. Of course some of them have partly or wholly undergone modifications. The Digambaras believe that all the original canonical texts have vanished.

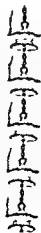
Up to Jambū there is no difference as regards the names of successors in the Digambara and Svetāmbara traditions. They are common in both the branches. The name of Bhadrabāhu is also common although there is a lot of difference regarding the events relating to his life. There is no unanimity with regard to the name of his own successor too. Besides the names of intermediary successors are also different. Judging from the total picture it seems that in fact there had been two different preceptors bearing the name of Bhadrabāhu in the two traditions. Probably they were contemporary. The Svetāmbara account mentions that the death of Śrutakevali Bhadrabāhu occurred 170 years after the liberation of Mahāvira whereas the Digambara tradition maintains that Bhadrabāhu died 170 years after Mahāvira.

According to the tradition of the Svetāmbaras preceptor Bhadrabāhu had been to Nepal and remained there engaged in some specific course of meditation. Śthūlabhadra and some other monks went to Nepal to learn the Dṛṣṭivāda from Bhadrabāhu.

The Digambara tradition believes in a migration of Bhadrabāhu and other monks to South India. It holds that the head of the Jain church in the time of Candragupta's reign (300 B.C.) was Bhadrabāhu. He was the last Śrutakevali. He prophesied a twelve years' famine and led a migration of a large number of Jain monks to South India. They settled in the vicinity of Sravana Belgol in Mysore. Bhadrabāhu himself died there. King Candragupta, an adherent of the Jain faith, left his throne and went to Sravana Belgol. He lived there for a number of years in a cave as an ascetic and finally embraced death.

Samprati

Śthūlabhadra's pupil Suhastin had won King Samprati, the grandson of and successor to Ashoka for Jainism. Samprati was very zealous in the promotion and propagation of Jainism. He showed his enthusiasm by causing Jain temples to be erected over the whole of the country. During Suhastin's stay at Ujjain (Samprati's capital) and under his guidance splendid religious festivals were celebrated. The devotion manifested by the king and his subjects on such occasions was great. The example and advice of King Samprati induced his vassals to embrace and patronise Jainism. He had sent out missionaries as far as South India. In order to extend the sphere of their activities to non-Aryan countries Samprati sent there Jain monks as messengers. They acquainted the people with the kind of life and other requisites which Jain monks may accept as alms. Having thus prepared the way for them Samprati induced the superior to send monks to those countries. Accordingly missionaries were sent to the countries of Andhra and Dravida in South India.





THE CONCEPT OF ARAHANTA (ARHAT) IN JAINISM

DR K C. SOGANI, M A , Ph D

(Department of Philosophy, University of Udaipur, Udaipur)

The supreme objects of devotion enumerated by the Jainas are five, namely, Arahanta, Siddha, Acarya, Upadhyaya and Sadhu. The same may be expressed by saying that Deva, Sastra and Guru deserve our highest reverence. Again, we come across a different expression that the four objects, namely, Arahanta, Siddha, Sadhu and Dharma preached by Arahantas, are most auspicious and unexcelled in the universe. These ways of expression are essentially one, and each is inclusive of the rest. To make it clear Arahanta and Siddha are comprised under the category of Deva, Acarya, Upadhyaya and Sadhu are styled Gurus, and the religion preached by the Arahantas is called Dharma or Sastra. Considered from the perspective of mystical realisation, Arahanta and Siddha stand at par. But as the former enjoys embodied liberation, and the latter, disembodied one, it is alleged that Siddha occupies a higher status. In view of this it may appear that disrespect is shown to Siddhas, inasmuch as Arahantas are everywhere bowed first, Siddhas, next. But the conviction of the Jainas is that it is through Arahantas that we have been able to recognise Siddhas, and it is through his intervention that Apta, Agama and Padartha have been made intelligible¹. Hence this supreme Guru is entitled to receive our preferential obeisance. Thus Arahanta is the perfect Guru owing to the delivering of sermons for general beneficence, and is also called perfect Deva on account of the complete actualisation of the divinity potential in Himself. It is through his medium that mystical life has been possible on earth. Hence he must have our highest gratitude and reverence.

Thus the concept of Arahanta in Jainism plays a double role—the role of the perfect Deva, and the role of the perfect Guru. And this is quite consistent with the view-point of spiritual experience, and the consequent upliftment of mankind at large through preaching. Guruhood refers to the outward manifestation of intuitive experience while Devahood signifies simply the inward spiritual realisation. Thus the concept of Arhat stands for the consistent identification of Devatva and Gurutva, of the inward experience and the outward expression. In the state of the Siddha, there is no outward representation of mystical experience, which, on the other hand, is integrally connected with the life of Arahanta. Because of this double role, Arahanta is bowed first in preference to the Siddha who is simply the Deva on account of his being incapable of preaching Dharma. Prof A N Upadhyaya rightly remarks: “The magnanimous saint, the Jain Tirthankara, who is at the pinnacle of the highest spiritual experience is the greatest and ideal teacher and his words are of the

formed the composite church. Then they separated from each other and practised the faith under their own heads. This practice is in force even in the present time. The Śvetāmbaras hold that the practice of dispensing with clothing has no longer been requisite since the time of the last omniscient Jambū.

The following main differences exist between the Digambaras and Śvetāmbaras —

- 1 The Digambaras believe that no original canonical text exists now. The Śvetāmbaras still preserve a good number of original scriptures.
- 2 According to the Digambaras the omniscient no longer takes any earthly food. The Śvetāmbaras are not prepared to accept this conception.
- 3 The Digambaras strictly maintain that there can be no salvation without nakedness. Since women cannot go without clothes they are said to be incapable of salvation. The Śvetāmbaras hold that nakedness is not essential to attain liberation. Hence women are also capable of salvation.
- 4 The Digambaras hold that Mahavira was not married. The Śvetāmbaras reject this view. According to them Mahavira was married and had a daughter.
- 5 The images of Tirthankaras are not decorated at all by the Digambaras whereas the Śvetāmbaras profusely decorate them.

The two main Jain sects viz. the Śvetāmbara and the Digambara are divided into a number of sub-sects. There are at present three important Śvetāmbara sub-sects. Mūrtipūjaka, Sthānakavāsī and Tērāpanthī. The number of present important Digambara sub-sects is also three. Biṣṇānṭī, Tērāhapanthī and Tārānapanthī. The Mūrtipūjakas worship images of Tirthankaras etc. The Sthānakavāsīs are non-worshippers. The Tērāpanthīs are also not in favour of idol worship. Their interpretation of non-violence (Ahimsa) is slightly different from that of the other Jains. The Biṣṇānṭīs use fruits, flowers etc. in the idolatry ceremony, whereas the Tārāhapanthīs use only lifeless articles in it. The Tārāhapanthīs worship scriptures in place of images. All these sub-sects have their own religious and other works in addition to the common ones. They have their own temples and other religious and cultural centres.

BIBLIOGRAPHY

- 1 Jainism—The Oldest Living Religion—Jyoti Prasad Jain—Jain Cultural Research Society, Banaras 1911.
- 2 Doctrine of the Jains—Wether Schurrim—Motilal Banarasidass D. No. 101.
- 3 Heart of Jainism—Sinclair Stevenson—Humphrey Milford, London 1911.
- 4 Sources of Indian Tradition—Motilal Banarasidass D. No. 193.
- 5 Cultural Heritage of India Vol. I—Ramakrishna Mission Institute of Culture, Calcutta 1954.
- 6 Philosophy of Culture—N. K. Dasgupta—Kitab Mahal, Allahabad 1903.
- 7 Most Ancient Aryan Society—Ram Chandra Jain—Institute of Historical Research, Gandhinagar 1954.
- 8 Jaina Sūtras—Hermann Jacobi—Motilal Banarasidass D. No. 124.
- 9 Archeology of World Religions—Jack I. Meggin—Princeton University Press 1960.
- 10 Jainism and Jainism—Sukhlal Sarkhavi—Jain Cultural Research Society, Banaras 1950.





गुरुदेव के चरणकमल में सादर अभिनन्दन

आर्या रोजनकुपर, जैनप्रभाकर

धन्य मात तात जात जगत विद्यात आन मरुधर पाली नम्र योगवशगरी ।
जाहि मे जनम पाय, पूरण बैराग्य लाय, जग छिटकाय लीनी दीक्षा जैन वेशरी ॥
तरत अनेक तार-भार मोह मच्छरता, धैर्य को दृष्टाय क्षमा तजि वात मलेशरी ।
प्रतप चमत्कार निहारे अनेकबाग-ऐमे योगीराज महा मरुधरकेसरी ॥

०

वीर प्रभु से प्रार्थना

जैनार्या जैनमती

आपने स्थानकवासी जैन समाज के ऊपर जो उपकार किया है वह कदापि भुलाया नहीं जा सकता, फिर भी भुलाया नहीं जा सकेगा । पूज्यश्री की अवस्था वृद्ध होते हुए भी कार्यप्रणालिका युवकों से लज्जित कर रही है । आप अप्रमत्ता रूप में ग्राम-ग्राम विहार करके धर्मप्रचार का कार्य अविश्रान्त करने रहते हैं ।

भारीक मानसिक कष्टों की परवाह न करने हुए भगवान् की प्राणी का अश्रुतमय पान करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं । आपने अत्यन्त परिश्रम में जैन-जैनतर जनता पर असीम उपकार किया है ।

हमारी मुक्तप्राय समाज में अगर आप जैसे योग्य विद्वान और महाकवि अनेक हों तो ज्ञान, चरित्र तथा सत्य का शीघ्र दिन-प्रति-दिन उदय होता रहे ।

परमपिता महावीर प्रभु से प्रार्थना है कि आपको उत्तरोत्तर अधिकाधिक शक्ति प्राप्त हो ताकि जैनसमाज के ऊपर और भी उपकार करते रहे ।

आप चिरजीवी हों, आयुष्मान् हों ।

०

उपाधि चरितार्थ है

अचलसिंह जैन, एम० पी०

श्री मरुधरकेसरी हमारे समाज के वास्ते उत्तम देन हैं । आप दृढप्रतिज्ञ, त्यागी और वक्ता हैं । मुझे आपके व्याख्यान दो एक बार सुनने का अवसर प्राप्त हुआ है । आपको जो 'मरुधरकेसरी' की उपाधि दी गई है वह चरितार्थ है । मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि भ्रमणमय की दृढ और मजबूत बनाने में उनका पूर्ण सहयोग आवश्यक है । मुझे विश्वास है कि वे इसमें कोई कोर कसर नहीं रखेंगे ।

०

highest authority. This does not imply the belittlement of the Siddha but simply the glorification of the Arhanta as the supreme Guru. Gurutva being his additional characteristic.

Now two kinds of Arahanta namely Tirthankara and non Tirthankara have been recognised. The distinction between the two is this that the former is capable of preaching and propagating religious doctrines in order to guide the mundane souls immersed in the life of illusion and his sermons are properly worded by the Ganadhara while the latter is not the propounder of religious faith or principles but silently enjoys simply the sublimity of mystical experience. These two tendencies of the perfected mystics or Arahantas may be compared with the * activistic and quietistic tendencies of the mystics¹. Thus the word Arahanta should be primarily esteemed as referring to the Tirthankara and only secondarily to the ordinary omniscient souls. It is only the privilege and prerogative of those rare souls to have the designation of Tirthankara Arahanta who in the past or the present life have accumulated in themelves the potency of revealing truth by the performance of virtuous activities resulting from their dedication to the sixteen kinds* of reflections². According to the Jain dogma the number of Arhats in each cycle of time is limited i.e. twenty-four³.

Thus Arahanta is the ideal saint the supreme Guru and the divinity realised soul hence he may be designated as Paramatman or God. Siddha has also been called God. But neither Arhat nor Siddha has on him the responsibility of creating, supporting and destroying the world. The aspirant receives no boons, no favours and no curses from him by way of gifts from the divinity. The aspiring souls pray to him, worship him and meditate on him as an example as a model as an ideal that they too might reach the same condition⁴. But it should not be forgotten that unified, singleminded devotion to Arahantas or Siddhas accumulates in the self the Punya of the highest kind which as a natural consequence brings forth material and spiritual benefits. Samantibhadra observes that the adoration of Arahanta occasions great help of Punya. He who is devoted to him realises prosperity and he who

The sixteen kinds of reflections are —

(1) Transcendental awakening (2) Possession of reverential attitude towards the Guru and the spiritual path (3) Observation of vows and renunciation of passions for the proper pursuance of vows (4) Application of oneself constantly to the earning of spiritual knowledge (5) Due apprehension of worldly miseries (6) Charity in the matter of food, shelter and knowledge (7) Pursuance of proper bodily austerities without the concealment of strength (8) Removal of obstacles from the path of a Muni (9) Nursing of the virtuous souls (10) Devotion to Arhats (11) Devotion to the Teacher (12) Devotion to the Learned (13) Devotion to the Sastra (14) Performance of the essential duties (15) Influencing the society through the medium of knowledge, austerities, charity, Bhakti and adoration and (16) Having an affectionate attitude towards the spiritual brethren (Sarvārtha VIII 9)

1. Mysticism in Maharashtra. Preface. I. 8

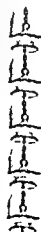
2. Mokṣamārga. I. 6

3. Sarvārtha. VI. 24

4. II. Intro. I. 76

5. PP. Intro. I. 30

6. Svayambhūta. P. 5



casts aspersions, sinks to perdition, in both these Arahanta is astonishingly indifferent¹ The aspirant, therefore, should not breathe in despondency for the aloofness of God (Arahanta and Siddha) Those who are devoted to him are automatically elevated The ultimate responsibility of emancipating oneself from the turmoils of the world falls upon one's own undivided efforts, upon the integral consecration of energies to the attainment of divine life Thus every soul has the right to become Paramatman, who has been conceived to be the consummate realisation of the divine potentialities

We shall now dwell upon the characteristics of Arahantas, the effects of transcendental life, the effects which the realisation of Paramatman produces upon the perfected mystic The Acaranga tells us that the Arahanta is established in truth in all directions² He is Ātmasamāhita³ He has freed himself from anger, pride, deceit, greed, attachment, hatred, delusion, birth, death, hell, animal existence and pain⁴ Arahantas lead a life of supermoralism, but not of a-moralism It is inconceivable that the saint who has attained supremacy on account of the realisation of perfect Ahimsā may in the least pursue an ignoble life of Himsa, a life of vice. He is no doubt beyond the category of virtue and vice, good and evil, Punya and Pāpa, auspicious and inauspicious psychical states, yet he may be pronounced to be the most virtuous soul, though the pursuit of virtuous life is incapable of binding him to the cycle of life and death Samantabhadra ascribes inconceivability to the mental, vocal and physical actions of Arhat, since they are neither impelled by desire nor born of ignorance⁵ Whatever issues from him is potent enough to abrogate the miseries of the tormented humanity Hundred of souls get spiritually converted by his mere sight, forsaking their sceptical and perverted attitude towards life His presence is supremely enlightening Even his body causes amazement to Indra in spite of his beholding it with thousand eyes⁶ As he has transcended human nature and is revered and worshipped even by celestial beings, he is supreme God⁷ Thus he is the embodiment of mystical virtues, and is the spiritual leader of society⁸ He is beyond attachment, aversion and infatuation, and consequently, he is absolutely dispassionate⁹ By virtue of his intuitively apprehending the nature of reality, as also the implications of the sacred text, all his doubts have been resolved¹¹

The perfected mystic has been able to adorn himself with self-control, since he has abandoned all Himsa and has resisted the temptations of senses and mind He has also subdued anger, lust, greed etc by performing the internal and external austerities¹² In

1 Ibid p 69

2 Acara p. 199

3 Ibid p 131

4 Ibid p 171

5 Jnana LXII-33

6 Svayambhu p 74

7 Ibid p 89

8 Ibid p 75

9 Ibid p 35

10 Prava p 1-14 and Comm Amrta

11 Prava p 1-14, 11-105

12 Prava, Comm Amrta. p 1-14

mystical language we may say that with the emergence of the Atmanic experience and stead fastness in it the conquest over the mind the senses and the passions becomes natural to him i.e. a thing flowing from his intrinsic nature. By virtues of his self realisation and of having achieved sublime concentration and owing to his simultaneous establishment in the triune path of right belief right knowledge and right conduct he has transcended the dualities of friends and enemy pleasure and pain praise and censure life and death sand and gold.¹ And yet in spite of this transcendence he embraces reconcilable contradictions. He is self established yet all pervading; knowing all things yet detached; is associated with great longevity yet devoid of senility.² The transcendent mystic has manifested pure consciousness has destroyed the destructive karmas and has attained super-sensuous knowledge³ infinite potency and unique resplendence.⁴ As a consequence of which all his desires for bodily pleasure and pains vanish immediately.⁵

The infinite life of the mystic has rendered possible the emergence of omniscience which possesses the potency of completely simultaneously and intuitively or unassistedly** apprehending all the substance along with their present and absent modifications† in contradistinction to the limited life of sensuous knowledge which cognises substances incompletely successively and intellectually or assistedly.⁶ In view of the fact of possessing omniscience it will not be contradictory to say that the omniscient being is all pervading and that all the objects are within him since Arahanta is the embodiment of knowledge and all the objects are the object of knowledge.⁷ The omniscient being neither accepts nor abandons nor transforms the external objectivity⁸ but only witnesses and apprehends the world of objects without entering into them just as the eyes see the objects of sight.⁹ Yogindu in a similar vein proclaims that the universe resides in the Parmatman and he resides in the universe¹⁰ but he is not the universe. The pure soul according to him is all pervading in the sense that when delivered from the karmas he comprehends by his omniscience physical and superphysical words.¹¹ The knowledge which is independent perfect immaculate intuitive and extended to infinite things of the universe may be identified with bliss on account

1 Prava p 114 III-41 42

2 Visapahira Stotra p 1

That is called supersensuous knowledge which knows any substance with or without space points with or without form and those modifications which have not come into existence and those which are destroyed (Prava I 41 Trans Upadhyaya p 6)

3 Prava p 116 19

4 Ibid 1 20

** Unassistedly—Without the help of senses light and mind (Sat Vol I p 101)

† Absent modifications—Those which have never originated and those in fact that have been and are already destroyed are the absent modifications (Prava I 38 Trans Upadhyaya p 7)

5 Prava I 21 51

6 Ibid 1 20

7 Ibid 1 7

8 Ibid 1 9

9 PP I 41

10 Ibid 1 32





universal love and service far and wide for the next thirty years and attained salvation in 527 B C at the age of seventy-two

Lord Mahavira's Teachings

Lord Mahavira's first and foremost principle is that of non-violence and universal love, which changed the very hearts of the people at that time. The principle of non-violence or non-injury had visible effects. It has had salutary effect on man's habitual diet. Those who came under the influence of Lord Mahavira's personality and teachings gave up eating meat and fish for food and adhered to a vegetarian diet. The same principle served to mitigate the rigour and ruthlessness of the criminal injustice of ancient India. The principle of compassion was also encouraged by Him.

In His last sermon, when asked by one of His disciples, which principle is the most fundamental of His teachings, He replied "Of all my teachings, the first of my five commandments is the most important. Do not kill or hurt any living being by word, thought, or deed. Do not kill animals. Do not hunt or fish, never kill even the smallest creature at any time. Do not go to war. Do not step upon a worm on the roadside. Even the worm has a soul."

The message of "Ahimsa" or non-violence to living beings was the greatest heritage Lord Mahavira has left to mankind. The principle of non-violence may also be explained—if we cannot give life to a living being, what right do we have to take life of others. Mahatma Gandhi also followed and preached the same principle for freedom of India in the twentieth century.

The other four commandments of Lord Mahavira are

- 1 Never to tell a lie,
- 2 Never to steal any thing which belongs to others,
- 3 To lead a life of chastity, and
- 4 To renounce the pleasures in external objects

The Jain Philosophy

The Jain philosophy consists in attaining the infinite bliss. The ultimate object, according to Lord Mahavira, is "Nirvana," which consists in peace, deliverance, and liberation. This can be attained by leading a painful and hard life, by practising penances thereby destroying sinful deeds of past lives and not affecting to new ones.

Jainism believes in the birth and rebirth-cycle and emphasizes the doctrine of soul. The soul never perishes. The body is just the cover of the soul. One should not think for the comforts of the body, rather one should strive for *Sahitya* to free his soul from birth and rebirth. This state of liberation can be attained by *Samantabhadra* (Sva) and the comforts of the body and doing severe austerities. Today's *Uotra* of Dhananjaya (Mulacanda) is and there is rapid advancement in luxuries and there is no real peace and happiness. People are *I-59* and Comm Amrta. Their approach is wrong because the infinite bliss *I-13* and by leading a life of austerity.

Some *106*
 ledge, right fa *p 103, 104*
 belief, and no *II p 76, 77, 78*

sum up in the right know-
 right conduct without right
 be attained by avoiding

sins The path of right knowledge right faith and right virtue leads to the destruction of sins and to perfection Austerity and meditations are two other very important factors in Jain philosophy These lead to Nirvana a state of peace

Classifications in Jainism

With respect to its sub division Jainism can be compared to Christianity Just as Christianity has been divided into Catholicism and Protestantism and Protestantism further sub divided into Methodists and Presbyterians Jainism has also been divided into Digambaras whose monks are clad in white Svetambaras are further sub divided into Deravasi or temple goers and worship idolatrous and Sthanakwasi those who believe in private worship being non idolatrous and having no temples and Terapanthu a small group which emphasizes on thirteen principles and is also non idolatrous

Just as all the Christians whether Catholic or Protestant believe in Lord Christ all Jains whether Svetambaras or Digambaras worship the twenty four teachers The goal is the same for all Jains although the means to achieve it differ slightly from each other

About a Jain Monk

Leading the life of a Jain monk is like a hard nut to crack A Jain monk or a nun lives away from his or her family and travels from one place to another on foot For him the whole world is his family He usually lives in a group of five or six or more monks He keeps very limited clothes and things which he gets from his followers He does not keep money with him The eldest among them lectures every morning and many followers visit them to listen to their lectures One of the monks goes out from house to house in order to collect food He is respected by all Jains and they feel greatly honoured if visited by a monk The reason for collecting food from house to house is that he keeps himself away from monetary attachments The whole day he studies religious books meditates for a few hours and performs routine religious duties During the rainy season for four months from July to October he does not go out from one city to another city If it rains the whole day he does not go out to collect food and observes fast on that day The reason for not travelling from one place to another during the rainy season is that there are too many insects and worms on the roadside due to the rain and mud and he is not supposed to kill them in keeping with the principle of non violence Thus in modern times also he lives a very hard life observe several fasts a month and does not eat before sunrise or after sunset

Jain Temples

Temples are also important for the Jains who are temple goers There are hundreds of Jain temples in India Jains visit them every day Some of them are well known for their architecture For example Dilwara Temple of Abu which is located in Rajasthan We term India on a mountain is very famous for its architecture and beauty Another temple Palitana (Saurashtra) Kesarivaji (Rajasthan) Shikharji (Prithvi) Ranakpura (Patan) and others have great historical significance

Jain Festivals

The festivals of Jains are of great importance The important festivals are Paryushana, Mahavir Jayanti, Ganesh Chaturthi and others Since vegetarianism is emphasized in Jainism attaining infinite bliss Jains observe fast on the festival days.



BIBLIOGRAPHY

- Lord Mahavira edited and published by the World Jain Mission Aliganj India 1969
Diwakar S C *Glimpses of Jainism* Delhi 1964
Shastri I C *Jainism and Democracy* Delhi (All India S S Jain Conference) 1964
Lathe A B *An Introduction to Jainism* Delhi Jain Mitra Mandal 1964
Lalwani Genesh (Compiled) *Thus Sayeth Our Lord* (Teachings of Lord Mahavira) Calcutta Jain Bhavan 1965 (Pamphlet)
Diwakar S C Jainism and Peace *The Voice of Ahimsa* Vol XV No 78 (July August 1965)
Bhol Chand *Lord Mahavira* Delhi 1918
Law B C Mahavira *His Life and Teachings*
Stevenson E *The Heart of Jainism*
-



SRAMANIC FOUNDATIONS OF ANCIENT EGYPT

RAM CHANDRA JAIN, Advocate,
(Hon' Director, Institute of Bharatological Research Ganganagar)



Human society, through its long experiences, developed an understanding that in the motley of these ever-changing events, there is something permanent without which the changes would be unmeaningful. There is grief, suffering and woe which none cherishes, then why bring grief, suffering and woe to a fellow human being, nay, to any being on earth enjoying life. The discovery of the identity of something permanent in the plurality of living beings became the foundation stone of the human society. This permanent substance came to be called Ātman or soul. The discovery of soul was the result of the dialectical historical efforts of mankind. Human efforts conditioned the nature of society. The efforts of the individual members of the society reduced the woe and suffering of his fellow beings to the minimum. The ideal individual efforts began to be directed to the end which would cause the least suffering to the other living beings. This second discovery of the Efficacy of effort became the driving force of the Soul or Ātman. This is what we call Sama in Prākṛta and Srama in Sanskrit. Sama in Prākṛt¹ and Srama in Sanskrit² means Efforts. The rightness of the efforts is indicated by the word "N" both in Prākṛt³ and Sanskrit⁴. The word Samana or Sramana, thus, means Right Ātmic Efforts. The way founded on right Ātmic effort is called Sramanalogy. The basic foundations of the science of Sramanalogy are the five well-known tenets of Non-Violence (Ahimsā), Truth, Non-Stealing, Continance and Non-Attachment, (Aparigraha).

A group of expert mariners, led by great engineers and accompanied by spiritual leaders, under the supreme leadership of Menes, reached the shores of Egypt in the middle of the fourth millennium B.C. He was the first Pharaoh, the supreme leader of the people, who founded the great city of Memphis and excavated a lake on the north and west sides of the city. He peacefully developed the new country as the interpretation of the Slate Palette of Narmer indicates. Menes and his people remembered their original home as Punt. The root of the word is Pwn, the T being the usual feminine ending for a foreign country. The Pwn may be identified with Panī of Bhārata. Punt, thus means 'the country of the Panis'. The Panis of the Ahī sub-race were a great sea-faring adventures of Bhārata. Menes, thus, appears to be a great Panī leader who took his Sramanalogical culture and civilization from Bhārata to Egypt.

The Sramanalogical beliefs of the ancient Egyptians are contained in the Book, "The Manifestation of Light" miscalled "Book of the Dead". The essential parts of this book originated in the most ancient times. This book claims to be a revelation from Thoth. The oldest monumental evidence of the existence of Thoth is available in the oldest existing Egyptian temple belonging to the reign of Chefred (Shafra), the builder of the second pyramid. He belonged to the fourth dynasty and lived circa 2800 B.C. Thoth is the same as Tet. He flourished circa 3350 B.C. This Thoth was later regarded as essentially the god of learning,

he was the master of the words of god i.e. Hieroglyphes he was the scribe and messenger of the gods he was the Measurer of time and the Mathematician Hesepti or Hesept is mentioned in several copies of the Book as the author of the two of its most important chapters Thoth or Tet and Hepti or Hesept the plebians certainly do belong to the first Dynasty and lived also during the times of Menes⁹


The Egyptians believed in Soul its Right Effectiveness Transmigration of Soul and its final Attainment (Siddhi) They believed in body and intelligence Matter and Spirit The five Sramanalogical tenets of the Egyptians are given with manifold details in the 17th chapter of the Book This chapter Hall of Truth is very significant This chapter contains 48 Sramanalogical tenets of Non Violence Truth Non Stealing Continence and Non Attachment along with three tenets of Right Knowledge Right Conduct and final aim of Siddhi¹⁰

These Sramanalogical beliefs of the most ancient Egyptians were at the foundations of their political social and economic institutions

Sramanology reflects itself in political institutions as a Republican system Kingship Ganapatiship and dictatorship is abhorrent to it Menes was the first great personage at the dawn of the Egyptian history who united the two regions of upper and lower Egypt Menes Mena or Mns means the establisher of the nation¹ He is the first pharaoh At first no single minister stood between the Pharaoh and the various branches of the administration There was no grand vizier The vizierate was however introduced under the fourth Dynasty¹ The Egyptian state was divided into various nomarch Nomarch was the local administrator resembling the modern pattern of a provincial executive head Nomarch Nesutnefer of the fifth Dynasty is marked by his title as Leader of the Land He led the people he did not govern them Perhaps the people selected him and the Pharaoh nominated him He enjoyed the confidence of both the pharaoh and the people The election or selection of this official was dependant on the moral virtues of the incumbent of the office The ideal official was the silent man who is respectful of established authority and just an maat (which means Truth Justice Rightness) is part of the world order of which his royal master the pharaoh is the champion The silent man is not the meek sufferer but the wise self possessed well adapted man modest and self effacing upto a point but deliberate and firm in the awareness that he is thoroughly in harmony with the world in which he lives¹² His idealism was not of the cowardly type of the brave Pharaoh the supreme leader of the people possessed these qualities almost to a point of perfection He was the best and the noblest servant of the people Men of high moral fibre possessing great intellectual and spiritual qualities self effacing having little material possessions occupied high public offices with no hereditary rights This ancient type of republican society flourished in Egypt till circa 2000 B C

Sramanology reflects itself in the social sphere as freedom equality and progress of the individual and the group This was the age of Tirthankar Mallinath when the first servant of Egypt under the leadership of Menes went from Bharata to their new home Egypt imported custom of matrilineal descent from here first immigrants Monogamy was the general custom The position of women was of equality and prestige She was economically independent and enjoyed status and freedom She would attain the position of a priestess She could go anywhere without molestation All landed property descended in the female line from mother to daughter¹³ Family was the social unit and based on a single





individual was of necessity small. The marriage took place outside the family. Monogamy was compulsory. Polygamy was unknown to the inhabitants of the Nile Valley. Women constantly appeared in public, were equal in the eye of law, could ascend the throne and administer the government of the country. The Nobles also limited themselves to a single wife whom one made the partner of his cares and joys and treated her with respect and affection¹⁵.

The economic life of the ancient Egyptians was marked by simplicity, equality, peace and progress. Though the people voluntarily granted certain privileges to the priests for their specific services, their general living was marked by simplicity¹⁶. The society generally was composed of middle classes. They lived in one-storeyed or two-storeyed simple houses. Side by side the houses of the common people, we find massive, huge, spacious and palatial buildings, pyramids and temples. Private houses and community buildings characterise the individual and state-governed economic life of the people. It was a mixed economy.

Egypt in the fourth millennium B.C. was the granary of the civilised world. The peasantry was simple. It was really free from the entire class of restrictions and interferences. It was not vexatiously interfered by the Government. It had freedom of choice with respect of crops and farming operations¹⁷. The common people were mostly tied to the land which they tilled for their own living and for the maintenance of the State¹⁸. The Egyptian peasants lived wonderfully simple and unpretending¹⁹. The Egyptians were good and industrious peasants and employed improved methods of husbandry. Their natural intelligence was remarkable as they were free tenants of their land. They had not to render forced labour. They employed elaborate system of canals, with embankments, sluices and flood-gates and constructed reservoirs for flood water. Land was extensively reclaimed from marshes for cultivation. They had abundant surplus yields.

The Egyptian industries were diversified and individual-owned. The most important Egyptian industries were building, stone-cutting, weaving, furniture-making, glass-blowing, pottery, metallurgy, boat-building and embalming²⁰.

The surplus agricultural and industrial outputs were stored by the society in the community buildings. It appears that the internal trade was left largely in private hands. The international trade was centrally organised by the community. Pharaoh was the wholesale merchant. Foreign trade was the royal monopoly²¹.

The earliest immigrants into Egypt peacefully developed their new home. Egypt shows its peaceful development till the fourth Dynasty. Snefru built a fleet of sixty ships of one type for trade purposes. His times were free from wars²².

This picture of the most ancient Egyptian people reveals their basic character. The society was organised on the basic principles of human freedom, equality and harmony. The people lived like brothers in peace and happiness. Though the pattern of family earning was private, there was no greed and vulgarity attached to it as private wealth was counter-balanced by community wealth. There was no private or public display of wealth. The disparities in incomes and possessions appear to be negligible hence there were no classes. There might have been high and low people but that was not on account of the differences in material possessions. That was due to the inherent merit in intelligence and character of the individual.

पूज्य गुरुदेव के चरण सरोज में

आर्षा विलम्बकर जन

आदि अत टाकामय भाषा। महाभारत को लिखता जा दोना है अभाय गुणा वर म ।
 बीनो है उद्धार गत जन अय जानीय को मुद मित्री मनि आश नम पालीपत्र मे ॥
 आथत अनेकों सोय पापपर पाने दग थायन हुमात गै मात को चतर में ।
 भावण दे हमेतरी मदपरकतरी ने छमद्यान जूरी बीज बोये भय उर में ॥

•

श्रद्धा सुमन

डा० दोस्ततिसु होगरी

अध्यय वि० वि० अनुदान-आयोग दिल्ली

सुग सुग स बली आ रणी भारताय सहृदयि की प्रतिष्ठा मंगना म समाजो श्रविषो जीय सुनिया वा स्थान
 मव मे ऊपर है । इन दिग्गज तथापनो व मन्त्रपूज्य योगदान व वाग्य हो समारम्भ वा सहृदयि मन्त्र धन मवा है ।
 अय हृदिया स मन्त्राचार्य होने पर भी भारत मातृनिम महारव की शक्ति व आज भी विद्वय म गौरवगात्रा मिया
 जाता है । अनपत्र मम मनो व प्रति श्रणा है वृत्त है । उनका सम्पदन अभिनन्दन और उनका प्रति श्रद्धाभिषेकजन
 करना स्वय हमारे हो लाभ म है । मैं समाजो की और अभिनन्दन व मंगलता पाता हुना घनिनी के
 प्रति अपनी आभारिण श्रद्धा व्यक्त करता हूँ ।

•

श्रद्धाजलि अर्पण

गोभाराम

इयिमत्री राजस्थान

राजस्थान कीरप्रगिनी ममि है । यारना व इतिहास म राजस्थान वा स्थान समग्र विश्व म अनुगम है ।
 इस तथ्य को बहुत साग जानते हैं । परन्तु हम व क्षेत्र में राजस्थान वा जो गौरवपूर्ण स्थान है उमग कम हो साग
 परिचित हैं ।

मनी ॥ मि श्रीमन्महा महाराज राजस्थान व एक धर्मोपदेश्य मन्त्रपूज्य हैं । उारी वाणी म महत्ता मानना
 व अपन जीवा ना उन्न और गतिवक वाग्या है । मैं उन्हें हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ ।

•

विशिष्ट साधक

गिषचरण माधुर

गिराधर्मत्री राजस्थान

भारतीय मन्त्रिणी मन्त्री वा समाजो म हा अनुगम पात्रि और पुत्रिण हूँ है । समाजो वा श्रि
 मन्त्री और वाणी वा इतिहास म भारत की आध्यात्मिक मन्त्रिणी वा ममि मम है ।



THE JAIN CONCEPTION OF AHINSA

G L AMAR

(M A , Shastri, Kavyatirtha, Sahityaratna)



What is Ahinsa

Jainism¹ is a practical religion, and consistent with temporal activity and prosperity. It does not inculcate laziness, or inertness. It is not the fatalism of the idle do-nothing-fellow. It is a religion which can be practised while one is engaged in the daily transactions of life in this world. A good Jain may happen to be engaged in any kind of pursuit. He may be a king, a statesman, a military commander, a soldier, a trader, an artisan or an agriculturist, and yet he is in a position to adopt the vow of Ahinsa and other vows, to the extent of his limitations and capacities, situation and circumstances in life, and be a good and true Jain.

The word Ahinsa is the negative form of a Sanskrit word Hinsa meaning violence, killing, slaying, destruction, injury, mischief, wrong, harm, hurt, etc. in any shape or form. It is defined as injury to the vitalities, caused through want of care and caution. The vitality, literally Prana is of two kinds. Bhava Prana, conscious vitalities, are the attributes of Jiva, the soul, such as consciousness, peacefulness, happiness, power, etc. Dravya Prana, material vitalities, are ten: the five senses (Indriya) of touch, taste, smell, sight and hearing, the three forces of body, speech, and mind, and breathing and age. The conscious vitalities are possessed by all Jivas alike. So far as the material vitalities are concerned, a Jiva may possess at least four and at the most all the ten of them.

Ahinsa is either Autsargiki Nivritti or Apavadiki Nivritti. The first is defined as complete Ahinsa in nine ways, by self, through another, or by approbation, and in each case through mind, body and speech. That which is not complete, is Apavadiki, and its degrees and forms are innumerable, varying from the slightest to that which just falls short of being complete.

Hinsa is also classified as Sankalpaja or Arambhaja. Sankalpaja is that which is committed with the sole intention of Hinsa, without any justifying reason whatsoever behind it. Arambhaja is committed unavoidably, by householders in the performance of various duties and occupations. This kind of Hinsa may be sub-divided as Udyami, Griharambhi, and Virodhi. Udyami is Hinsa unavoidably committed in the exercise of one's profession. Griharambhi Hinsa is that which is unavoidably committed in the performance of necessary domestic purposes. Virodhi is Hinsa unavoidably committed in defence of person and

¹ This essay is based specially upon the PURUSHARTHASIDDHYUPAYA of Amritachandracharya, edited by Ajit Prasad

The society was happy and prosperous for want of social tensions. It was an integrated society.

This study of this integrated society of the most ancient Egypt is of prime importance in the present age of disintegration wrought by the Aryan materialism of history that established its hegemony over the whole world by the beginning of the first millennium B.C. The communist tribalism and the capitalist tribalism both the ultimate dialectical developments of the Aryan materialism stand at the brink of self annihilation. Matter is characterised by division and disruption. It has divided, disrupted and disintegrated the human soul and the human society. How the materialistic tribal force displaced the Sramanic free society is an interesting chapter of history. The fundamental way that would regain to humanity its lost freedom, equality and peace has to be rightly understood and followed. This is the imperative necessity of the age. This purpose of the age forces upon us the necessity of undertaking the Sramanalogical research on an international scale. The imperialistic necessity gave birth to the science of Oriental Research. The human necessity has to give birth to the science of Sramanalogical Research to discover the principles which may lead to the establishment of an integrated society of mankind.

REFERENCES

1. M D T Sath Pat Sudda Mahanpavo 10¹⁹ page 1081
2. Monier Williams A Sanskrit English Dictionary 1936 page 1070
3. H D T Sath op cit page 467
4. Monier Williams op cit page 431
- Herodotus The Histories 9 page 178
6. (1) M A Murray The splendour that was Egypt 9th Plate LXXVIII on page 196
(2) P C Jain The Most Ancient Aryan Society 1964 Chapter 5 sec VII Origins
The Plate is given a detailed interpretation here
7. M A Murray op cit page 191
8. (1) G Rawlinson Ancient Egypt 1941 Vol I page 136 Vol II pages 34-35
(2) M A Murray op cit pages 230-261
9. J H Breasted Development of Religion and Thought in Ancient Egypt 10th page 17-18
10. (1) James B Pritchard Ancient Near Eastern Texts Relating to the Old Testament 1950 page 313
(2) R C Jain op cit These tenets have been reclassified and reorganised in the chapter The Sramanic Way of M A A S
11. G Rawlinson op cit page 2
12. H Frankfort The Birth of Civilization in the Near East 1951 page 81
13. H Frankfort op cit page 87
14. M A Murray op cit pages 101-102
15. C Rawlinson op cit Vol I page 173 Vol II page 24
16. G Rawlinson op cit Vol I page 4
17. C Rawlinson op cit Vol I page 161
18. H Frankfort op cit page 90
19. G Rawlinson op cit Vol II page 47
20. C Rawlinson op cit Vol I page 443
21. H Frankfort op cit page 92
22. M A Murray op cit page 97



Even when simultaneously committed by two persons, the same Hinsa at the time of function, curiously enough causes severe retribution to one and a mild one to another. One goes out to kill another, and takes his servant with him. Both master and servant join the murder. The master all along feels an excitement, pleasure and satisfaction in having got rid of one whom he hated. The servant however, for fear of losing his job unwillingly joins the master in the foul deed and all along regrets, curses himself and repents for his weakness in serving such a master and enjoying such a foul deed. Both are equally guilty, but the degree of culpability varies because of the degree of evil intention entertained by them. In effect the same Hinsa committed by both, will affect them differently.

Because of intention Hinsa is culpable sometimes before it is committed, sometimes at the time of commission, sometimes even after it has been committed and sometimes for attempt to commit it, even when it is not committed, because of the intention to commit Hinsa. A person has been contemplating and devising schemes to commit murder but for some reason incapacitated from carrying out his intention another commits murder, a third commits murder, and thereafter continues to gloat over his act; and a fourth attempts but fails in the attempt to murder. All the four are culpable, and have to suffer from Hinsa. It is the intention which makes one culpable.

Hinsa is committed by one, and there are many who suffer the consequences, many commit Hinsa, and only one suffers the consequence for Hinsa. A person commits murder. The many persons who look approvingly on take interest in and applaud the deed have to suffer the consequences thereof. Again a whole army fights and kills but the responsibility for all the carnage committed under his order lies with the King.

Hinsa gives to one at the time of fruition, the consequence of Hinsa only, to another the same Hinsa gives considerable Ahinsa rewards. A number of persons happen to witness lynching by a mob. One of them sympathises with the victim and puts forth his best efforts to save him from the fury of the assailants. Another excites and encourages the mob in the lynching. The latter is guilty of Hinsa and the former acquires the merit of Ahinsa.


In result, Ahinsa gives to one the consequence of Hinsa to another Hinsa gives the benefit of Ahinsa. A person protects and saves an innocent victim of oppression. Another declaims against this act of Ahinsa, and wishes that the victim were not so protected and saved. By such thought he becomes liable for Hinsa. Again it the person who interferes to protect and save an innocent victim fails in the attempt he would acquire the merit of Ahinsa though Hinsa has been caused by some one else.

Having thus correctly understood what is meant by Hinsa its consequence, its victim and perpetrator, persons who embrace the doctrine should at all avoid Hinsa to the best of their capacity,

Physical Sphere of Ahinsa

Those who desire avoiding Hinsa, should, first of all take care to renounce wine, flesh, honey and the five Udumbara fruits.

The five Udumbara trees are Gular, Anjeera, Banyan, Peepal and Palar all belonging to the fig class.



Those who take their meals at night cannot avoid Hinsa. Therefore abstains from Hinsa, should give up night-eating. Day is the natural time for work and taking food. Food is more easily, with greater care, and with less probability of injury to living beings prepared in the day than at night. The light of the sun makes it easy to pick out, to separate unwholesome stuff, and to remove the worms and small insects which find place in provisions. There are many insects which are not even visible in the strongest artificial light. There are also many small insects have a strong affinity for food stuffs and which do not appear in day light. It is not possible then to avoid Hinsa when food is taken day and night. Hearing this observation a carping critic might exclaim that one may well give up eating in the day and take his meals at night only. This is obviously improper. It is established that he who has renounced night-eating, through mind, body and speech, always observes Ahinsa.

International Sphere of Ahinsa

Those who have been impressed with the highest Ahinsa-Char, which leads to immortality, should not be distressed on being improper behaviour of the ignorant.

'Sacred religion is very subtle, and there is no wrong in committing Hinsa for the sake of religion.' People should not allow themselves to be thus deceived in the name of religion and should never kill embodied beings. Never entertain the wrong idea that religion flourishes through Gods, and that therefore everything may be offered to them. It is a perverse notion that religion sanctions Hinsa, or that the Gods are pleased at sacrifices of living beings offered in their name. Gods are good, and religion is peacegiving, and can never encourage or sanction what gives pain to living being. Animals should not be killed for guests in the belief that there is no harm in killing goats, etc., for the sake of persons deserving respect. With the idea that a meal prepared from the slaughter of one living being is preferable to that produced by the destruction of many lives. One should never kill a living being of a higher grade.

Some people urge that the Jains believe that there is life in all vegetables, and further that there are innumerable, and even infinite Jivas in some vegetables. Vegetable food would therefore lead to the killing of innumerable lives and it would be preference to kill one animal for food rather than cut up and cook a number of vegetables. This argument is misleading and false. It ignores the fact that the body of an animal has innumerable mobile and immobile beings therein. The presence of innumerable Amœbae in a drop of blood is a matter which has been proved to demonstration by science, microscopic examination also show the presence of infinite germs in faces, urine and in all parts of the body. Thus there is comparatively speaking, the least Hinsa in injuring the motionless one-sensed living beings belonging to the vegetable kingdom. The higher of vitalities possesses a Jiva, the greater it is Hinsa in killing it.

Beings which kill others should not be killed in the belief that the destruction of one of them leads to the protection of many others. The plausible argument is often raised by sportsman. They defend hunting on the ground that by doing so they protect humanity from the ravages of ferocious animals. The wanton shooting off birds, and fowls, of pig and fox, of deer and rabbit, and fishing or obviously indefensible. Lion hunt is a pastime. The hunters go in larger parties for the excitement of sports, and not for freeing mankind from the possible attack of the lion. In fact the poor lion is beaten and brought out from his seclusion for being shot at for the fun of the big men who level their guns at him from a safe distance.

Wine stupefies the mind one whose mind is stupefied forgets pity and the person who forgets pity commits Hinsa without hesitation And wine is said to be the worst place of many creatures which are generated in liquor those who are given up to wine necessarily commit Hinsa Pride fear disgust ridicule ennui grief exasperation anger etc are forms of Hinsa and all these are concomitants of wine

Flesh cannot be procured without causing destruction of life one who uses flesh therefore commits Hinsa unavoidably If the flesh be that of buffalo or etc which has died of itself even then Hinsa is caused by the crushing of creatures spontaneously born therein Whether pieces of flesh are raw or cooked or in the process of cooking spontaneously born creatures of the same genus are constantly being generated there He who eats or touches a raw or a cooked piece of flesh certainly kills a group of spontaneously born creatures constantly gathering together

Even the smallest drop of honey very often represents the death of bees Even if one uses honey which has been obtained by some trick from honey comb or which has itself dropped down from it there is hin in that case also because of the destruction of creatures of spontaneous birth born there

Honey wine butter and flesh are extreme fermentation Those with vows would not eat them Therein are born creatures of the same genus

The Udumbaras i.e. Gulab Anjeer Peepal Banyan and Pakar are birthplaces of mobile beings Therefore Hinsa of those creatures is caused by eating them Again if they the above five fruits be dry and free from mobile beings on account of effect of time even then in using them there is Hinsa caused by the existence of an excessive desire for them A person would not think of eating such prohibited things unless he has strong desire for them and one who has a strong uncontrollable desire certainly injuring his pure character and is likely to be tempted into the use of the forbidden things The practice of drying vegetables for use is reprehensible because of the strong desire for the thing itself Those pure intellects who renounce the above eight things which cause painful and insufferable calamity render themselves worthy of Jain discipline

The use of all Ananta Kaya vegetables must be given up because in destroying one infinitesimal (one sensed living being) are killed Ananta Kaya vegetable is that which infinite Jivas adopt as their one and common body Vegetables are either Pratyeka or Ananta Kaya or Sadharana In Pratyeka vegetable only one Jiva pervades through the body whereas in Ananta Kaya infinite Jivas adopt the vegetable as their one and common body and it is therefore called Sadharana also There are many distinctive characteristics of Sadharana vegetables Most of the vegetables which fructify under ground belong to the Sadharana class such as potato ginger radish etc

Fresh butter if not at once melted on fire and strained away becomes the place for generation of innumerable Jivas This is visibly apparent in what is called fermentation Fermentation in the case of butter actually commences at once though it is not visible early As examples of other prohibited articles may be mentioned curd after twenty four hours of its preparation milk if not boiled within forty eight minutes of its being taken out water which has been kept in a leather vessel Jivas do not generate in butter for forty eight minutes after its preparation Even then it is prohibited and has been included with wine flesh and honey



state, one is in, continue by killing him Cessation of one form of existence does not mean the wiping of all evil Karmas previously acquired, and the continuence of the good Karmas in operation at the time he is killed

A disciple desirous of piety should not cut off the head of his own preceptor when he, by means of constant practice has attained such perfection of concentration, as leads to a good condition of life Here is another illustration of Hinsa committed by misguided fanatics in the name of religion Some persons believe that if the soul of person in deep concentration, and thus in close communication with the super-soul, is separated from the body while in that condition, he will attain everlasting bliss This is a false belief The person in concentration, make, if he is sufficiently spiritually advanced continue the concentration throughout and enjoy the bliss of communion If he is not so advanced, death cannot add to his spiritual advancement The killing is not only useless, but positively harmful as bringing evil Karmas in bondage

Do not believe in the doctrine of "Pot-breaking immediate salvation" inculcated by Kharapatikas, impelled by their thirst for small riches, in inducing such belief in their pupils The sect of Kharapatikas now extinct, believed that the soul was imprisoned in the body, just like a light covered by a pot When the pot is broken the light becomes free and spreads out in all directions The body being destroyed the soul would be free This doctrine was inculcated by wicked priests in order to get rid of their votaries who stayed with them, and whose belongings were on their death likely to come into possession of the priests Much crime was once committed in the name of religion, and the unsuspecting credulity of ignorant people was employed by criminal sophists

One should not kill himself by zealously giving one's own flesh as food to another starving person, seen approaching in front Self-sacrifice, literally speaking was also at one time considered an act of religious piety It is undoubtedly Hinsa Attempt at suicide is a criminal offence

Ahinsa in the Lyman's Life

One who has perfectly renounced Hinsa will not utter a word which is likely to give pain another, will not do any act which may cause injury to another, will not harbour any thoughts prejudicial to another, will not make anybody else utter words likely to cause pain another, nor commit acts likely to injure another, nor entertain feelings of ill will towards another, and will not opprobate or encourage other who by words, deeds or thought cause pain to another The nine-fold renunciation is Perfect Renunciation If the renunciation is limited in respect of mobile or immobile or of any one or more of the nine kinds of the commission, it would be Imperfect Those who, even offer listening to the doctrine of Ahinsa are not able to renounce the Hinsa of immobile beings should at least give up the Hinsa of mobile beings

Whatever any wrong statement is made through Pramada Yoga (careless activities of body, mind or speech), it is certainly known as falsehood Pramad Yoga having been stated to be the cause of all false speech, sermon, preaching the renouncement of vices and the performance of religious duties, would not be a falsehood, even it should be distasteful, or cause mental pain to the listener Pramada Yoga, chief cause of Hinsa is present in all the false Speeches, therefore Hinsa comes, certainly, in falsehood also Those who are not able to

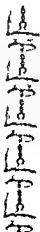
and take pleasure in watching his death agonies. The rare case of a person going out to kill a man eating tiger now requires to be discussed. In this case also it may safely be said that the feelings which actuate him or the hope of a reward, praise, renown, the expectation of being called a bold man, and excitement of sport, rather than the pure desire of saving his fellow men. The argument is in fact an apology and an excuse.

To proceed further. You cannot make some happy by destroying others. The feelings of animity, hostility, and revenge are the cause of pain and misery, dread and fear. It has been known that serpents and tigers have approached and gone past the saintly ascetics who wrapped up in their meditation had in them no fear of and no hostility towards them. The serpent or the tiger attacks man not because as is wrongly supposed it is his nature to do so, but because it apprehends harm from man and strikes in self defence. If man, the most intelligent of all creatures, himself cast aside all fear and looked at a serpent or a tiger fearlessly eye to eye, it would simply be magnetised or hypnotised, would obey his will and never think of injuring him. This is the scientific explanation of the miraculous fact that tigers and serpents, bears and scorpions, crawled at the blessed feet of the Munis and Rishis of Yore.

Those who kill many lives and accumulate grave sin. Doing this act of mercy, those who injure others should not be killed. This is also a fallacious argument. Killing does not mean an extinction of life for ever. The only way to stop the accretion of bad deeds is by self-restraint. Loss of life is only a last of the opportunities for spiritual advancement. By killing such living beings you incur sin and retard the spiritual progress of yourself and of those whom you kill.

Those in great suffering will on being killed soon obtain relief from agony. Do not even kill the distressed one by having grasped the sword of such misconception. The wrong notion that by killing a dog or a horse permanently disabled or suffering from incurable wounds, you would relieve of his pain and would then do good to him is very commonly prevalent. In Egypt some people considered it a pious religious duty to stab their old parents to death in the belief that by doing so they relieved them of the miseries and infirmities of old age. This false belief arises from an ignorance of the law of karma. The pain and suffering which a living being has to endure and go through is inevitable and a necessary consequence. There is no possible escape from it. It must be undergone now or hereafter in this life or the next through bad karmas which bring it about must be worked out. You cannot reduce the effect of karmas. The chief influencing cause in the killing is that you cannot bear to see the misery of the suffering of the living being and wish to put an end to the disagreeable sight or the piteous means by the cheap process of killing him outright. Such an act of Ahimsa. It is wrongly called and believed to be an act of mercy or compassion. One may well help the distressed by nursing or helping otherwise. A veterinary hospital would be as much care of the sub-human class as other hospitals do for humanity. All hospitals should be free. There should be no fee charged for medicine, attendance, or surgical operations. This is the primary duty of individual citizens, Municipal Corporations, and of the State. Its neglect is a culpable omission.

It is difficult to obtain happiness. The happy shall if killed continue to be happy. Do not please adopt the weapon of this (false) reasoning for killing those who are happy. Happiness and misery depend upon one's own acts, thoughts. We cannot make the happy



which is a form of Hinsa, and hence gifts made to a worthy recipient amount to a renunciation of Hinsa. Mutilation, beating, tying up, overleading, withholding food and drink, are the five transgressions of the vow of Ahinsa, such acts would not be transgressions if indicated for correction or by way of punishment, by one having due authority, and without ill will.

Thus knowledge and continued practice will bring about graduated renunciation, and hence it is that a limitation to the use of objects necessary for a healthy growth is inculcated. Graduated renunciation, with increasing enlightenment, will lead to total renunciation, and perfect conduct, the path of liberation. In the practice of Sallekhana (renunciation of the body), all passions, which cause Hinsa, are subdued. Like the other vows this also helps, strengthens, and leads to Ahinsa. Sallekhana, also called Sannyasa, or Samadhimarana, is adapted when in the event of an incurable disease, extreme old age, famine or calamity, one finds that death is certainly approaching. He then obtains forgiveness from all friends and relatives, and with perfect peace of mind, gives up all possessions, gradually reduces his meals, and engages in spiritual contemplation.

Conclusion

The philosophy of Ahinsa is liable to be misunderstood. Ahinsa must proceed from perfectly disciplined mind. All moral weaknesses, Pramada, are manifested in the animal impulses of anger, pride, deceit and greed, and unless these mental and moral weaknesses are completely overcome, mere practice of external code such as a vegetarian diet and the like will not lead to the spiritual development. In one word a man aspiring for perfection must be spiritually free from animal passions and in external conduct must follow the path of non-resistance to evil. All discomforts, inconveniences and lack of creature comforts must be endured without resistance and with infinite forbearance. This is of course the ideal which can be lived and fulfilled only by saints. But the householder also has no immunity from the moral obligation. Purity of conduct must be the exponent of perfectly pure mind.

The concept of Ahinsa is not negative. One has no right to take the life of another creature for his self-gratification. Life cannot be restored to the victim, and it is nothing short of brutish barbarism to indulge in self-pleasure at the expense of other creatures who have the same charter of rights to live and work out their ultimate destiny. The tyrant is the worst coward, though he poses to be the boldest man. The true hero is he who has mastered the animal in him.

Ahinsa is in reality the basic social ethic. It takes its birth in sociality in human nature, and it builds its whole edifice on that principle. It emphasises all those qualities which would inexorably lead to the fortification of the social life of mankind by the ending of all conflicts based upon differences of race, religion and creeds. These conflicts, so say the psychologists, are born of human narrowness. Ahinsa therefore aims at the eradication of all the proclivities of men. Of all the forces which have functioned in human history as solvents of conflict, Ahinsa has naturally been by far the strongest and the most powerful.

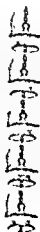
give up Savadja untruth (All speech which makes another engage in piercing cutting beating ploughing training stealing etc) as unavoidable is arranging for articles of use should renounce all the other untruth forever

The taking by Iramada Yoga of objects which have not been given is to be deemed theft and that is Hinsa because it is cause of injury. The person who thinks of stealing injures the purity of his own inner nature and if defected in the act of stealing he is punished and suffers pain. He causes pain to the person whom he deprives of the things stolen which deprivation even bring about death what to say of inconvenience and trouble. The pursuit of desire and the injury to self in the form of a moral and a spiritual fall and to the person deprived resulting there from constitute Hinsa. A layman is not able to follow this high discipline but he also should obtain taking things which are not given him except such as may be appropriated without permission.

Abrahma is copulation arising from sexual desire. The vagina is said to be full of numerous living organisms being constantly and spontaneously born there and thus would of course be killed in the function brought about on sexual intercourse. Again whatever indulgence of the sex passion is had in unnatural ways on account of lust it always brings about Hinsa because it had its rise in desire etc. Many a householder is not sufficiently advanced to give up sex-desire altogether. It is only the ascetics who do so. The householder also should however observe the vow of Brahmacharya to a limited extent by total abstinence from all sexual desire with reference to females other than his own wife.

Attachment itself should be understood to be Parigraha. It may be object that if Parigraha is defined as mental attachment to things then there can be no external Parigraha. The answer is that the Parigraha (Possession of goods) create an attachment to them. It is therefore necessary to give up all external possession to avoid any possibility of an attractions for them. Thus Parigraha is of two kinds external and internal actual possession of property is external (Bahiranga) while an inclination for possession is internal (Antaranga). All the internal attachment should be suppressed and all external attachments whether living or non-living should also be avoided and if one is unable to wholly renounce cattle corn servants building a wealth etc he also should at least limit them. Such limitation will act as a beneficial check on greed.

One should fix the limit of his activities in all the ten directions and thus complete the vow of Ahimsa as regard what is beyond these limits because of total abstention from restraint there. Then again one should fix a limit within those limits for a fixed time in order to shorten the area and duration of Hinsa. He who deliberately renounces all the unnecessary sins e.g. evil thinking evil intention careless dealings gift of instrument of offence of hearing and gambling etc. leads his Hinsa vow ceaselessly up to admirable victory. One with Partial Vows who observes with 48 hours in the prescribed days may well during the period be said to have practically reached the stage of a saint. He is not actually a saint because the harmful tendencies which obstruct the observance of ideal conduct are not extinct. One with partial vows incurs Hinsa arises from the use of articles of life (Anjanyant) for just which can only be used in such as food and drink fruit and flower and apparel (Anjanyant) of an object which can be used several times such as furniture dresses ornaments building etc and not other is. He should therefore ascertain the reality of things and renounce these two also in accordance with his own capacity. In making a gift one is not greedy



भारतवर्ष में ज्ञान अनीन कान में नेकर आधुनिक युग तक गया ही जायसिद्धन परम्परा चालू है। इन मन्त्रों ने जन-जीवन के विभिन्न अंगों का परिभाजन करने में महत्वपूर्ण योग दिया है।

मुनि श्री मिश्रीमलजी म० उसी परम्परा में हैं। आप एक विविध साधक हैं। आप अपना समग्र जीवन स्वयंस्वरूप के अर्थ ही उत्सर्ग कर दिया है। वे जनजीवन की उन्नत प्रगतियों में गहरे प्रयत्न करते हैं। वे उनकी दीर्घा का सामना करते हुए हृदय से अद्वानलि मग्नित करना है।

०

सराहनीय देन

दानोद्वन्द्वान ध्याम
गृहमन्त्री, राजस्थान

भारतीय सभ्यता के निर्माण में राजा, ऋषियों, मुनियों का महत्वपूर्ण योग रहा है। यही कारण है कि यह सभ्यता अनेक अवस्थाओं के कारण विभक्त हो गई थी। उसमें एक ही धारा प्रवाहित नहीं है। हम इन सत्तों के श्रेष्ठ हैं। मरुधरकेसरी मुनिश्री मिश्रीमलजी उसी परम्परा की एक कड़ी के रूप में हैं। इन्होंने हमें अपनी देन सराहनीय है। दीक्षा स्वरूपस्त्री के अमर परम मुनिश्री का हार्दिक अभिनन्दन किया है।

०

श्रद्धा सुमन

राजप्रसाद लडटा
विकासमन्त्री, राजस्थान

राजस्थान की भूमि ने जहाँ अनेकानेक महापुरुषों को जन्म दिया वहीं उसने उनमें एक महान् महात्मा का भी जन्म दिया है। मन्त्रों की यह परम्परा आज तक अखण्ड रूप में चली आ रही है, यह इस प्रदेश का नौभाग्य है। हर्ष का विषय है कि उनमें से एक दयोद्वन्द्व सन्त के अभिनन्दन का मूल कारण बन गया है। मरुधरकेसरी मुनि मिश्रीमलजी म० की साधना नदी अभिनन्दनीय रही है। इन अवसर पर उनके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करनेवालों में एक में भी है।

०

शत-शत श्रद्धाजलियाँ

(राव) नारायणमिह, मन्त्रदा,
वनमन्त्री, राजस्थान

पञ्चम वर्ष के उठते यौवन में जिनमें सामारिक प्रलोभनों की दुरुक्त अहिचनता अंगीकार की और त्याग-वैराग्य की राह पकड़ी और जो निरन्तर पञ्चम वर्ष में स्वयं के अभ्युदय में निरत है और पञ्चदश वर्ष की उम्र में ही पैदल पूर-पूर हो जाता तो यम और नीति का पथ प्रदर्शित कर रहा है, उस महान् सन्त का अभिनन्दन करना भी एक पुण्यकृत्य है।

मरुधरकेसरी मुनि श्रीमिश्रीमलजी म० ने राजस्थान में महत्वपूर्ण कार्य किया है—अपने प्रवचनों द्वारा, साहित्यमजला द्वारा और सम्पर्क द्वारा उनका समग्र जीवन इसी पुण्यकार्य में व्यतीत हुआ है। इस परम अध्यवसायी सन्त की मेरी शत-शत श्रद्धाजलियाँ समर्पित हैं।

REALITY AND RELATIVITY OF SPACE AND TIME IN JAIN METAPHYSICS AND MODERN PHYSICS

MUNI SHRI MAHENDRA KUMARJI DVITEEYA
B Sc (Hons)



Introduction

Human mind is an ocean of inquisitiveness and curiosity. Every now and then waves of question spring forth in it. Man tries to find answers to them by his rational, intellectual and intuitional power. Philosophy and Science are two powerful branches of the same stream of knowledge which has been ceaselessly flowing to satisfy the curious mind of man. Some of the questions tackled by Philosophy as well as Science are regarding the nature of space and time. What are space and time? Do they really exist? Are they the forms of matter—or consciousness or some independent entities? etc.

A comparative study of the views of Philosophy and Science can be of great assistance in answering these questions. The well known modern physicist Sir Edmund Whittaker rightly remarks: "It is still true that many central philosophical questions cannot be discussed profitably without reference to the physical universe and recent advances in physics have exhibited some classical philosophical problems in a new light. Among this is a question as to the nature of physical space."¹

The different philosophies have given different solutions to the above problem. To give a full account of their efforts is a bit lengthy task. In this short paper the concepts of Jain metaphysics and modern physics are discussed and compared.

A Jain Metaphysical Concept

In Jain philosophy a very elaborate characteristic and systematic exposition of the theory of the universe is to be found. But we shall have to confine ourselves only to a brief review of its metaphysical exposition of space and time.

Space

Space which is termed as *Ākāśa* is defined as that substance which acts as a container of other substances. It is an independent objective reality different from matter, energy and consciousness. It is infinite in extent and is composed of infinite number of space points. It is eternal in existence. It is immovable, continuous in texture, non-atomic and invisible. It is imagined to be divided into two parts on account of the existence of other substances.

1. The portion of space which is occupied by other substances is termed *Loka Ākāśa* i.e. universal space.

The rest of space which is empty is called *Aloka Ākāśa* i.e. non-universal space.

¹ From *Euclid to Einstein* p. 1

Thus the universe is infinite and is surrounded in all directions by the non-universe which is boundless. The problem of the finiteness of the universe is solved by the Jain theory thus. There are two substances, called *Dharmāstikāya* and *Adharmāstikāya*, which can be translated as 'positive ether,' and 'negative ether' respectively, for they are considered to be the indispensable media of motion and rest respectively. They exist only in the finite universal space, and hence, no substance can move or be at rest in the non-universal space. That is, in no condition or under no force, a substance can travel or stay in the non-universal space.

The *Loka-Ākāśa* or the universe has a definite size and shape.

Its volume is believed to be 313 cubic *Rajju*. *Rajju* being an astrophysical unit. Though the value of a *Rajju* cannot be stated in round numbers, it is definitely greater than X light-years¹, where

$$\left(10^{134} \text{ times} \right)$$

$$\begin{array}{c} K \\ K \\ K \\ K \\ X=K \\ 43 \\ 10 \\ 10 \\ \text{where, } K=10 \end{array}$$

The space of the *Loka-Ākāśa* is similar to a solid figure consisting of three pyramids with rectangular base but with the tops chopped up, which are put one above another, smaller faces of the lowest and middle and the bigger faces of the middle and top touching together.

Time

While there is unanimity of opinion about the ultimate reality of space there is considerable disagreement amongst the Jainas themselves regarding time. One school does not accept time as an ultimate reality, but maintains that the unceasing mutability of other substances like souls and matter, etc. is in itself symbolised into an 'existent' called time. On the other hand, another school of thought considers it to be an ultimate reality. Both the schools, however, agree to the fact that the, *Samaya* is the absolute mathematical unit of time. The *Samaya* is defined to be the indivisible unit of time. Though it is beyond our numerical comprehension, it has a definite value². Roughly speaking, one second is greater than X *Samayas* the number 'X' being defined above.

1 For the discussion of *Rajju*, see the author's *Viśva Prahelika*

2 For the discussion of the mathematical computation of *Samaya*, see *Ibid*

B Newtonian Concept

Newton conceived space as some absolute entity. His concept of absolute space was Absolute space in its own nature without regard to anything external remains always similar and immovable.¹ According to Newton All things are placed in space as regards order of situation. It means that the earth and the heavenly bodies are situated in an immovable container of boundless extent—which exists and has always existed independently of whether it is observed by perceiving minds or not and independently of whether it is occupied at any particular place or not. It is the scene of all that happens in the physical universe at any instant every material body is located somewhere in it and has the possibility of changing from one location to another. Its size is infinite its character uniform its texture continuous and its geometry Euclidean.²

Newton's concept of time was Absolute true and mathematical time of itself and from its own nature flows equally without regard to anything external.³

C. Theory of Relativity and Modern Concept

After the advent of the theory of relativity the concepts of space and time were changed. According to Dr Einstein Space and time are forms of intuition which can no more be divorced from consciousness than our concepts of colour shape or size. Space has no objective reality except as an order or arrangement of the objects we perceive in it and time has no independent existence apart from the order of events by which we measure it.⁴

The philosophical interpretation of the theory of Relativity in Einstein's view is 'The universe is a four-dimensional space-time continuum which is not simply a mathematical construction all reality exists both in space and in time and the two are indivisible'.⁵

Some Scientists have interpreted the Theory of Relativity in a different way. According to Hans Reichenbach From conventionalism the consequence was derived that it is impossible to make an objective statement about the geometry of Physical space and that we are dealing with subjective arbitrariness only. The concept of geometry of real space was called meaningless. This is a misunderstanding. Although the statement about the geometry is based upon certain arbitrary definitions the statement itself does not become arbitrary once the definitions have been formulated. It is determined through objective reality along which is the actual geometry. Let us use our previous example although we can define the scale of temperature arbitrarily the indication of the temperature of a physical object does not become a subjective matter. By selecting a certain scale we can stipulate a certain arbitrary number of degrees of heat for the respective body but this indication has an objective meaning as soon as the co-ordinative of the scale is added. On the contrary it is the significance of co-ordinative definitions to lend an objective meaning to physical measurement.

Thus although Reichenbach has accepted the Theory of Relativity he has maintained that the absolute space and time have objective existences. In the concluding chapter of his

- 1 *Principia Mathematica* a Tr. By Motte & Canjore p. 6
- 2 Cf Sir Edmund Whittaker *From Euclid to Eddington* p. 13
- 3 *Principia Mathematica* p. 6
- 4 *The Universe and Dr. Einstein* by Lincoln Barnett p. 21
- 5 *Ibid* p. 6
- 6 *The Philosophy of Space and Time* p. 17



work on space and time he observes "The statement that physical space has three dimensions has, therefore, the same objective character as, for instance, the statement that there are three physical states of matter, the solid, liquid and gaseous state, it describes a fundamental fact of the objective world .

"We may therefore regard the following statement as the most general assertion about space-time order everywhere and at all times there exists a space-time co-ordinate system

"This result implies the topological distinguishability of space and time In a space-time co-ordinate system one of the dimensions is to be considered as time and the three others as space "1

D. Newtonian Concept and Jain Concept

The Newtonian Concept of absolute space has striking similarities with the Jain Concept of *Ākāśa* Both the concepts regard space as an independent objective reality which is single, continuous, infinite and immovable substratum of all other substances and which exist even in the absence of the external substances Nevertheless, there is an important difference in the two Concepts In the Newtonian physics, the problem of motion was tried to be solved by postulating a material medium called 'ether' which was supposed to fill the whole space and act as the medium of all kinds of motion including the wave motion On the contrary the problem of motion and rest is solved in Jain metaphysics by the principal of *Dharmāstikāya* and *Adharmāstikāya* which are non-material media of motion and rest respectively It was the postulation of material ether in Newtonian Concept, which was responsible for creating an insoluble enigma for the physicists, as a consequence of which they had altogether discarded in the new theory, viz the Theory of Relativity But, as far as the question of reality of Newton's space is concerned, it can be said that its logical consistency is still unobjected The renowned western philosopher, Bertrand Russell accepting this fact observes "The Newtonian theory of absolute space meets the difficulty of attributing reality to not being To this Theory there are no logical objections The chief objection is that absolute space is absolutely unknowable and cannot therefore, be a necessary hypothesis in an empirical science The more practical objection is that physics can get on without it" 2

Thus it becomes clear that Newton's theory of absolute space and the Jain Theory of *Ākāśa* are irrefutable on logical basis Newton believed that absolute true, and mathematical time exists, Jain metaphysics also asserts that the *Samaya*, etc are absolute mathematical time-units Thus both the concepts are quite akin to each other There is however a slight variance in them In Newton's physics there is no conception of finite velocity of light, and hence it does not accept the space-time relation which has emerged out because of the finiteness of the velocity of the light, whereas the Jain metaphysics has no objection to such relation

E Post-Einsteinian Concept and Jain Concept

There are two aspects of the theory of relativity regarding the nature of space and time

1. The relativity of space and time
2. The reality of space and time

1 *The Philosophy of Space and Time*, p 27

2 *History of Western Philosophy*, pp 90-91

We shall first discuss the former

The special theory of relativity of Dr Einstein states It is impossible to determine the absolute motion of any uniformly moving system by any experiment whatsoever On the basis of the theory it is usually interpreted that there is no existence of absolute space If this is the true interpretation the Theory of Relativity does not become consistent with the Jain metaphysics But fortunately the above interpretation is not unanimously accepted and it seems that is not the true interpretation

Subjective Inability or Objective Indeterminacy

First of all it is necessary to find out whether the impossibility stated in the theory of relativity is subjective inability or objective indeterminacy If our inability to know the absolute motion of any system in uniform motion is in reality the subjective inability then it does not mean that the absolute motion does not really exist On the basis of the Jain metaphysical concept it can be said that the said impossibility is a result of subjective inability and not that of objective indeterminacy Reinchenbach has very well explained this confusion in his wellknown treatise He observes

Thus we are accused of having confused subjective inability with objective indeterminacy

There are indeed many cases where physics is unable to make measurements Does this mean that the magnitude to be measured does not exist? It is impossible for instance to determine exactly the number of molecules in a cubic centimeter of air we can say with a high degree of certainty that we shall never succeed in counting every individual molecule But can we infer that this number does not exist? On the contrary we must say that there will always be an integer which denotes this quantity exactly The mistake of the theory of relativity is supposed to consist in the fact that it confuses the impossibility of making measurement with objective indeterminacy ¹ Thus it becomes clear that it would be wrong to infer on the basis of the theory of relativity that the absolute space has no existence at all

Dr Heisenberg on Absolute Space

One of the top-most physicist of our age Dr Heisenberg has also made an attempt to remove the above misunderstanding He writes The hypothetical substance ether which had played such an important role in the early discussions on Maxwell's theory in the nineteenth century had—as had been said before—been abolished by the theory of relativity This is sometimes stated by saying that the idea of absolute space has been abandoned But such a statement has to be accepted with great caution ²

Thus although Heisenberg has not accepted that there exists an independent reality called space he has at least accepted that abolition of material ether does not mean an abolition of absolute space At another place Heisenberg quotes an argument of the critic of the Theory of Relativity He also though he has not accepted this view he has asserted It is seen at once that this argument cannot be refuted by experiment since it is not making any assertions which differ from those of the theory of special relativity

¹ The Philosophy of Space and Time p. 8

² Physics and Philosophy p. 107

³ Physics and Philosophy p. 109

not space time space time

The argument of the critics of the theory of relativity is

"The non-existence of absolute space and absolute time is by no means proved by the theory of special relativity. It has been shown only that true space and true time do not occur directly in any ordinary experiment, but if this aspect of the laws of nature has been correctly taken into account, and thus the correct 'apparent' times have been introduced for moving co-ordinate systems, there would be no arguments against the assumption of an absolute space. It would even be plausible to assume that the centre of gravity of our galaxy is (atleast approximately) at rest in absolute space. The critics of the special theory of relativity might add that we may hope that future measurements will allow the unambiguous definition of absolute space (that is, of the hidden parameter of the theory of relativity) and that the theory of relativity will thus be refuted"¹

Prof Margenau's Construct

Another Eminent Philosopher-scientist Prof Margenau calls absolute space a possible 'construct', which is his term for 'reality'. He writes "The advocate of absolute space bases his attitude on the simple fact that he can intuit three-dimensional space even when it is vacant of objects. This kind of space is a possible construct, and it is absolute within the framework of the initial question"²

Further, Prof Margenau has explained that this kind of absolute space is not adopted by the scientist only because it is not useful to them. But it does not mean that the absolute space has ceased to exist.

The *Ākāśa* of the Jain metaphysics is also an absolute space, and this theory of *Ākāśa* cannot be refuted on the basis of the theory of relativity, yet we have to accept that in the empirical science, such passive space is of no use, and hence, the physicists may not take account of its reality, as stated by Russell. Thus, we may conclude that space is essential in the logical field, lest it is not so in the field of empirical science. It should be remarked here that the scientists are not able to solve some other aspects of the enigma of the universe probably on account of their abandoning the absolute space.

The Reality of Space-time

The second aspect of the theory of relativity is regarding the reality of space and time. We have already seen that all the scientists are not unanimous regarding it. Whereas Einstein, Jeans etc. consider space and time as merely the intuition of consciousness. Reichenbach, Hiesenberg do not deny their reality. To reach some definite conclusion, first of all it is necessary to clearly understand some scientific concepts, such as space-time four-dimensional continuum of space-time, gravitational field, metrical field, ether etc. It will be also fruitful to know their relation with the metaphysical concept of '*Ākāśa*' 'time' *Dharma* and *Adharma*.

Einstein, etc. mean by space an 'order of things', Reichenbach etc. conceive space as an independent reality, besides such an order, the Jain metaphysics define *Ākāśa* as an objective reality or real substance giving room to other substances. This concept of Jain metaphysics is quite different from the Einsteinian concept. But if we accept the Einsteinian concept, the problem of the substratum of the substances is not solved. We therefore, on the logical

1 *Physics and Philosophy*, p. 12

2 *The Nature of Physical Reality*, p. 153

grounds have to abandon the Einsteinian concept moreover the Einstein definition is not sufficiently clear For the general theory of relativity unifies space with the gravitational field or the metrical field Then space no more remains a mere order of things but takes the form of some reality or field which has curvature Now the question is whether this field is an independent reality? If the answer to this question is not in negative then this field would be probably not much different from the real space

It is generally believed that such a field or curvature is generated only due to the presence of the mass of the substances That is to say anything possessing the mass creates a gravitational field around itself just as magnet creates magnetic field or an electric current creates an electromagnetic field around it If this is so the gravitational field cannot be considered as an independent reality But this is not strictly true Even in absence of matter or mass there exists a sort of residual curvature or field in the space This is clearly expressed by Sir Arthur Eddington the renowned physicist thus In a region where there is no recognised matter or electromagnetic field there is still a certain small natural curvature viz that specified by the famous cosmical constant The mass momentum and stress equivalent to this curvature ought therefore to be ascribed to whatever we suppose to occupy such a region i.e. to the space field or ether¹ whichever term we are using² This question makes it clear that even in complete vacuum there exists something which we have to consider as an independent reality The *Ākṣa* of Jain metaphysics may be even different from this The *Ān* ethers *Dharma* and *Adharma* seem to be responsible for this natural curvature of space Though we cannot say anything³ certainly about this at last it becomes clear that the Einsteinian definition of space falls short in this respect Also the above discussion makes it clear that the concepts of *Ākṣa* which is given by the Jain metaphysics is not fulfilled by the concepts of space ether or field of the modern physics

Now we shall consider the curvature or field which is different from the natural curvature denoted by the cosmical constant and which is created by the masses The general theory of relativity proposed by Dr Einstein is supposed to replace the Newton's Law of Gravitation by its Law of Curvature of Space According to this law the properties of space or even the existence of space depends upon the material bodies and energy or masses that are present Where there is a mass a field or space is generated around it If the mass is removed from that place the field or space is also removed In other words as said before this field is connected with a magnet The philosophical interpretation of this phenomenon would be that a gravitational field or metrical field is essentially an attribute of matter and not an independent reality in itself Hence it is clear that the realities represented by *Ākṣa*, *Dharma* and *Adharma* of the Jain metaphysics are quite different from this gravitational field produced by a mass

Next we consider the concept of four dimensional continuum of space and time The Einsteinian concept is a bit different to be understood As said before first in Jain

1 Sir Arthur Eddington has given a clear conception of ether. According to him the theory of relativity has abolished the material ether but a non-material ether still exists. Although he believes that there is no space without ether and no ether which is not to occupy space. Thus he makes ether a real and materialistic independent thing. (cf. *New Philosophy*, Sec. 4, p. 48 ff.)

2 cf. *Philosophy*, Sec. 4, p. 47



consider it not to be an objective reality. The universe, in their view, is nothing but a four-dimensional continuum of space and time.¹

Also, they believe that the universe consists not of things but of events, and that these events are the various modes of the four-dimensional continuum of space and time. Such a picture of the universe is certainly quite confusing. On one hand, it is believed that the matter causes curvature in the four-dimensional continuum. This belief is clearly expressed in the following analogy: "Just as a fish swimming in the sea agitates the water around it, so a star, a comet, or a galaxy distorts the geometry of the space-time through which it moves."² On the other hand, all these objects which constitute the universe are taken to be the modes of the four-dimensional continuum itself. Such ambiguous concepts have weakened the philosophical or more precisely the metaphysical aspect of Einstein's theory. Contrary to this, Reichenbach's concepts are quite clear. He accepts the fact that space, time and matter are related to each other, but at the same time he does not deny their independent existences. Also it is his clear view that calling time a dimension of space on the basis of the concept of the four-dimensional continuum would be wrong. He remarks, "Whereas the conception of space and time as a four-dimensional manifold has been very fruitful for mathematical physics, its effect in the field of epistemology has been only to confuse the issue. Calling time the fourth dimension gives it an air of mystery."³ He concludes "We may therefore retain the perceptual difference between space and time without fear of contradicting the mathematical representation. The properties of time which the theory of relativity has discovered have nothing to do with its treatment as fourth dimension."⁴

The Jain metaphysical concepts are more logical and clear than Einsteinian concepts. By accepting the *pudgala* (i.e. matter), *Ākāśa* (i.e. space) and *Kāla* (i.e. time) as independent substances. The Jain theory does not seem to contradict the theory of relativity. The Jain view is that the material attributes of *pudgala* such as mass, motion etc. should have no effect on the structure of *Ākāśa*. On the basis of the Jain concept, it can be said that the gravitational field, etc. generated by matter or material effects should be material and hence the changes or modifications brought about thus also should be connected with matter and not with space.

Russell's Conceptual Space

Russell's theory of space is of great value in understanding the confused concepts of the scientists. He, in the conclusion of a philosophical discussion on space, states "We have, on this view, two spaces, one subjective and one objective, one known in experience and the other merely inferred. But there is no difference in this respect between space and other aspects of perception, such as colours and sounds. All alike, in their subjective forms, are known empirically all alike in their objective forms are inferred by means of a maxim as to causation. There is no reason whatever for regarding our knowledge of space as in any way different from our knowledge of colour and sound and smell."⁵

The two kinds of space interpreted by Russell can be called perceptual space and conceptual space. The Jain metaphysical *Ākāśa* can be compared to the conceptual space of

1 *The Universe and Dr. Einstein*, p. 76.

2 *The Universe and Dr. Einstein*, p. 92.

3 *Philosophy of Space and Time*, p. 110.

4 *Ibid.*, 112.

5 *History of Western Philosophy*, p. 144.

Russell while the space of the physicists is akin to the perceptual space of Russell. But on logical basis without accepting the reality of conceptual space the problem of substratum of substances cannot be solved.

Zeno's Nest of Space

The Jain metaphysical concept of *Ākasa* is based on the logical necessity of the substratum of all the substances. Against such a concept the general argument which is the well known paradox of Zeno is as follows. If all that exist were in space space also would have to exist in space and so *ad infinitum*.¹ The answer to this argument is as follows. If the substratum of the other substances is conceived to be a material substance there would be a fallacy of regressus *ad infinitum* for experience tells us that any material substance cannot stay without a substratum. We therefore have to conceive of some non material substratum. Thus *Ākasa* or space which is a non material substratum is defined as that substance which is self supported and which can support other substances. Hence we need not think of any other substance to support the space.

Thus we can conclude that the Jain metaphysical concept of *Ākasa* is not only irrefutable by the theory of relativity but also unobjectionable on logical grounds.

Physical Aspects of the Theory of Relativity

After having discussed the philosophical aspect of the theory of relativity now we shall discuss some of its physical implications.

Shape of the Universe

Einstein's theory of the universe imply that the universe has no definite shape. This is expressed by Lincoln Birnitt thus. And the most remarkable of these assumptions is that the universe is not a rigid and immutable edifice where independent matter is housed in independent space and time. It is on the contrary an amorphous continuum with no any fixed architecture. Wherever there is matter and motion the continuum is disturbed. Such a picture of universe does not seem to be logical for if the total mass of the universe is constant its effect on the four dimensional continuum also should remain constant. Even when a body moves in the space from one place to another place there is no change in the total mass contained in the universe. Hence the total curvature of the universe which should depend upon the total mass contained in the universe should remain constant and subsequently there should be no change or distortion in its architecture.

The Jain theory also states that the shape of the universe which is in fact the shape of the Lokadhya Dharma and Adharma remains the same in spite of the motion of the masses inside it.

Field Contractions

One of the important implication of the theory of relativity in the field of physics is the contractions in space and time dimensions which are popularly known as Fitz Gerald Contraction. Their mathematical values can be found by the Lorentz equation. According to this theory of contraction when a system moves there occurs a contraction in the space and time dimensions. In other words the length of the moving body contracts in the direction of the

1 Cf. *Major on The Nature of Things* Life line p 47





motion, and a clock placed in such a system moves slowly. Such contraction in the length of the moving body, is generally spoken of as the contraction in space. Now, if we consider it to be the contraction of the real space, it would not be correct. For this contraction is the result of the change in the state of the material substance, and not that of the non-material entity like space in which the material body exists.

The contraction in time-dimension is a bit difficult to comprehend. Let us take a simple illustration. Imagine that a star is 10 light-years away from the earth. Now, if a rocket moves with the speed of 240,000 Kilometers/second, how much time would it take to reach from the earth to the star? The theory of relativity gives two answers to this question —

- (1) For the observer on the earth the rocket will take

$$\frac{300000 \times 10}{240000} = 50 \text{ years}$$

to reach the star (300000 km/sec is the velocity of light)

- (2) For the passenger who is travelling in the rocket, there will be contraction in the time-dimension according to the laws of Fitzgerald Contraction. This contraction will be in the ratio of 10:6 i.e. for the passenger in the rocket, it will take

$$\frac{50 \times 6}{10} = 30 \text{ years}$$

to reach the star

This illustration explains the contraction in time-dimension. But, there is still a confusion in the philosophical aspect of this contraction. The question arises whether the natural processes of man (one of which is his age) are affected by this contraction, that is to say, whether the natural processes of man will take place according to the contraction in time created by his motion?

The scientists are probably not unanimous regarding its answer. Prof. Margenau, for example, states "That the length of rigid bodies is different when it is measured by an observer moving relative to these bodies from what it is when measured by an observer at rest with respect to them. Similarly, clocks have their tempo changed when read by moving observers. These are empirical facts which are not subject to metaphysical interpretation, they are true and real in every ordinary sense of these words."¹ Contrary to this, the famous physicist Sir Arthur Eddington in answer to the above question writes "In the early days of the theory of relativity one of the most frequent questions asked by my correspondents was, 'Is the Fitzgerald Contraction real or apparent? Is it really true that a rapidly moving rod becomes shortened in the direction of its motion?' The answer which I have given in *The Nature of the Physical World* (pp 32-34) is too long to quote here, but having pointed out with an example that we often draw a distinction between things which are 'true' and things which are 'really true', I explained that on the same principles the contraction of the moving rod would be described as true but not really true."²

This statement of the renowned scientist makes it clear that the contraction in space and time are not real from the point of view of absolute truth. Our commonsense also forbid

¹ *The Nature of Physical Reality*, p. 149

² *New Pathways in Science*, p. 278

(the ultimate atom), is also capable of moving with a velocity of 14 Rajus Samaya. This is the maximum velocity of matter.

Now if we examine the theory of relativity in light of the above facts, we find that the fundamental assumption of the theory of relativity may not hold good in microcosmos. Another interesting thing is that in accordance with the theory of relativity, the velocity of any thing may become greater than that of light, if it has no mass. The Jain metaphysics asserts that the ultimate atoms and certain types of bodies composed of infinite number of the ultimate atoms are completely massless. Mass, according to the Jain theory, is not the fundamental property of matter. Thus if such massless bodies travel with a velocity greater than that of light the theory of relativity would have to accept it.

We may also note here that in the modern age, together with the developments of the techniques of space-travelling, the mind of the scientists are eager to cross the speed limit set by the velocity of light. In one of the advanced scientific works on the exploration of space Arthur Clarke expressing this possibility writes "Before closing this chapter we must deal with two questions which any discussion of interstellar travel inevitably raises. In the first place, despite the categorical remarks made a few pages ago, can we be absolutely certain that the speed of light will never be surpassed? The theory of relativity is after all, only a theory. May it not one day be modified just as it modified Newton's law of gravitation, which had remained inviolate for centuries and was generally regarded as being absolutely correct?"

"Any attempt to answer this question would lead us to the deep waters of Philosophy and would involve such ideas as the fundamental structure of space and time. It is doubtful if anyone alive today could contribute much of real value to such a discussion. The verdict must be left to the future."

The above question supports the plausibility that the barrier of velocity of light may be practically overcome one day and if it actually happens, the foundation, on which the theory of relativity stands, itself would fall to the ground.

Macrocosmos and Microcosmos

The truthfulness of the theory of relativity will probably be certified only when the law of the macrocosmos would hold good in the microcosmos. The amount of knowledge about the microcosmos possessed by the present day physics is also quite small.

In such a condition nothing can be said finally about the truthfulness of the laws of physics. As far as the theory of relativity is concerned, its experimental basis is also not satisfactorily strong. The renowned atomic physicist, Werner Heisenberg himself has accepted this fact thus "In the present state of astronomical observation the questions about the space-time geometry on a large scale cannot yet be answered with any degree of certainty. But it is extremely interesting to see that these questions may possibly be answered eventually on a solid empirical basis. For the time being even the general theory of relativity rests on a very narrow experimental foundation and must be considered as much less certain than the so-called theory of special relativity expressed by the Lorent transformation."

1 *The Exploration of Space*, p 175

2 *Physics and Philosophy* p 111

us to believe that the age of man travelling in rocket will increase with his velocity. Thus we can say that the absolute units of space and time have real existence and that they are not affected by the external phenomena of motion etc. If this had not been the case how the velocity of the light would remain absolutely constant? For velocity is measured in space units per time—units.

The above contractions when considered in the light of Jain metaphysics seem to be only material changes for only material can be relative and the ultimate units of space and time are absolute.

Space and time related to each other

In the theory of relativity space and time are related to each other because of the finite velocity of light. Heisenberg has explained this in this way. In the theory of relativity we have learned that the situation is different. Future and past are separate by a finite time interval the length of which depends on the distance from the observer. Any action can only be propagated by a velocity smaller than or equal to the velocity of light. Therefore an observer can at a given instant neither know of nor influence any event at a distant point which takes place between two characteristic times. The one time is the instant at which a light signal has to be given from the point of the event in order to reach the observer at the instant of observation. The other time is the instant of the observation when it reaches the point of the event. The whole finite time interval between these two instants may be said to belong to the present time for the observer at the instant of observation.¹ Thus it becomes clear that the knowledge which we obtain through our senses and external equipment cannot be obtained faster than the velocity of light. Hence the definition of simultaneity also depends upon the spatial distance between the event and observer. Consequently in any event the space and time becomes related to each other. So far it is unobjectively acceptable. But the question whether the velocity of light is the maximum possible velocity or not is certainly not uncontroversial.

It is a fundamental assumption of the theory of relativity that the velocity of light is the maximum possible velocity. Now if we re-examine this assumption in the light of Jain metaphysics we find that this assumption is not strictly true. According to the Jain theory out of the six substances constituting the universe only matter and soul are capable of moving. The soul besides being capable of moving in space from one place to another is also capable of getting knowledge of the things situated at far distances without taking help of the external means. The actual motion of soul takes place when any living thing moves from one place to another when a soul transmigrates from one body to another when an emancipated soul transgresses to the end of the universe and also when gods or persons with special powers travel with high speeds from one place to another. The epistemological motion is not the actual change of place in space but in it the soul perceives intuitively or transcends a distant object by its epistemological powers. In both types of motions a soul can travel at a velocity higher than that of light. In the transmigration a soul can travel with a maximum velocity of one Rajju per one Samaya. Also in epistemological motion an omniscient soul can transcend an object *Rijju* away within a *Samaya*.

The above is the possibility of the velocity of soul. Now matter is also capable of moving with surprising speeds. The ultimate indivisible particle of matter known as *paramanu*

¹ *Physics and Philosophy* pp. 102-3



THE NATURE OF REALITY IN JAINISM AND BUDDHIST PHILOSOPHERS

DR BHAGCHANDRA JAIN, Sahityacharya,

M A (Sanskrit), M A (Pali), Ph D (Ceylon)

Head of the Deptt of Pali & Prakrit, Nagpur University,
Gandhi Chaur, Sadar, Nagpur



Conflicting views and heated arguments about the nature of reality confused the minds of people to such a degree that it became essential to reconsider this burning philosophical question in a conciliatory spirit. This important step was taken by the Jainas through the theory of Anekāntavāda, which postulates a theory of manifold methods of analysis (Nayavāda) and synthesis (Syādvāda).

According to Jain philosophy, an entity consists of infinite characteristics which cannot be perceived all at once. Therefore one who perceives a thing partially, must be regarded as knowing one aspect of truth as his position permits him to grasp. Even though he is not aware of the entire truth, the aspect he has come to know cannot be altogether disregarded or ignored.

The question arises as to how the whole truth of reality could be known. According to Jain standpoint, all the theories contain a certain degree of genuineness and hence should be accepted from a certain point of view, but the nature of reality in its entirety can be perceived only by means of the theory of manifoldness (anekāntavāda). The Jain philosophers synthesize all the opponents' views under this theory.

The nature of reality, according to this theory, is permanent in change. It possesses three common characters viz utpāda (origination), vyaya (destruction) and dhrauvya (permanence through birth and decay). It also possesses the attributes (gunas) called anvayī, which co-exist with substance (dravya) and modification (pariyāyas) called vyatirekī, which succeed each other.¹ Productivity and destructivity constitute the dynamic aspect of an entity and permanence is its enduring factor. This view is a blended form of the completely static view held by the Vedantins and the completely dynamic view held by the Buddhists.

All this has nicely been described by Dr Padmarajah in his book entitled Jain Theories of Reality and Knowledge. He also pointed out three different views with regard to the relation of guna and pariyāya with a substance (dravya), viz the bheda-vāda, abheda-vāda and the bhedabheda-vāda.² The bheda-vāda represents the view that the attributes and the modifications are a combination with the substance which gives birth to the triple characters (dravya, guna and pariyāya) of an entity.³ Both, guna and pariyāya are distinctive elements

1 Utpādavyayadhrauvyayuktam sat, Tsū 5 30, Saddravyalakṣaṇam, Tsū 5 29, Gunaparyavavaddrayyam, Tsū 5 38. See for explanations the Tattvārthavārtika of Akalaṅka.

2 P P 258 also see the Darsana aurā Cintana, Khaṇḍa, 2, P 163.

3 Atho Khalu dāvvaṃ dāvvaṃ gunappagāṇi bhaṇidāṇi. Pravacanasāra, 119.

Payovrato na dadhyatti na payetti dadhivratah
Agorasavrato nobhe tasmāttattvam trayātmalām¹

The etymology of the word “dravya” itself indicates that a thing is permanent-in-change taking a new form simultaneously with the disappearance of the previous form². This view was also accepted by Durvekamiśra according to Krdanta section³. Śāntarāśita⁴ and Arcata⁵ have also recorded this conception in their respective works.

Trayātmakavāda and Arthakriyāvāda

The arthakriyāvāda (causal efficiency) is the result of the doctrines of Bhedavāda, Abhedavāda, and Bhedābhedavāda. The Satīśvavāda of Śāntarāśita, Asatīśvavāda of Naiyāyikas and Buddhists and Sadasatīśvavāda of Jainas are well-known to us in this respect. Here we are concerned with the views of the Buddhists and Jainas.

The Buddhists assert that the “Particular is the only real element of an entity characterised as svalakṣaṇa (thing-in-itself). It is supposed to be momentary and a congregation of atoms. A thing accordingly is born and immediately afterwards it is destroyed⁶. The substance is nirhetuḥ (devoid of causes) in the sense that it originates without the assistance of causes other than its own cause of origination. Each moment produces another moment destroying itself and thus it presents a sort of continuity of existence. Thus it manages to maintain a cause and effect (kāryakāraṇabhāva) relationship.

According to Buddhism, momentariness (lāṇabhāṅguratā) and causal efficiency (kāryakāraṇabhāva) are inseparable. It treated momentariness, efficiency, causality and reality as synonyms and hence argued that an entity is momentary because it was efficient and it was efficient because it was momentary. On the basis of this idea, the Buddhists criticise causal efficiency in a permanent thing. They say that entities come into being either simultaneously (yugapadena) or successively (lāṇabhāṅguratā). But in a permanent thing both these ways cannot be effective since they are not able to originate it immediately due to the non-proximity of a cause. In the first alternation, the substance should originate all the possible effects in the very first moment of its existence. As regards the type of causal efficiency that takes place simultaneously, a permanent thing cannot have any effects because it can be neither perceived nor inferred. As Śāntarāśita say after having brought about all the effects simultaneously, the nature of a thing comprising its capacity for effective action disappears and therefore

1. Ātmamīmāṃsā 59-61 quoted in Pramāṇa Vārtika Svavṛti Tīkā by Karmagomin, p. 333, Durvekamiśra quotes one more kārika in the Hetubindutīlōka, p. 371.

Na nasena vinā so'lo notpādena vinā dhṛtiḥ
Sthitā vinā na mādhyasthyam tasmāt vastu trayātmalām

2. Laghuvastava, 30 Pramāṇamīmāṃsā, p. 24.

3. Dravyasabdena dravati parivāyena gacchati ti vutpatyā dharmī parināmīnīti vivalakṣitah
Parivāyasabdena ca parisamantadetyeti dravyamiti vyutpatyādharmah, Hetubindutīlōka, p. 337.

4. Tattvasaṅgraha, Atmaparīkṣā. I utilized its English translation in the article.

5. Hetubindutīlōka, p. 98.

6. Yo yatraiva sa tatraiva yo yadaiva tadaiva sah

Na deśakālayor vyāptir bhāvānāmiha Vidyate. Quoted in the prameyaratnamālā, p. 4.
See Jaina theory of knowledge and reality. Also see the VIII chapter of the Tattvasaṅgraha.

in this view. The former is called *sahabhāvi* or intrinsic while the latter *kramabhāvi* or extrinsic.¹ This ideology was promulgated by Kundakunda and supported by Umasvami Samantabhadra and Pūjyapada.

According to *abhedavāda* the *gunas* and the *pariyāyas* are synonymous signifying the conception of change inherent in which are both external modifications of all realities without creating any contradictory position.² Siddhasena Divakara is the chief supporter of this view and he is supported by Siddhasnagaṇi, Haribhadra and Hemachandra.

The third view (*bhedabhada*) held by Akalankadeva has been accepted by all his commentators and followers such as Prabhācandra, Vādirajasūri and Anantavīrya. This view appears in a more developed and harmonized form and clarifies further the relation between *guna* and *pariyāya* in opinion of Dr Padmarajah. On commenting on the Sūtra *Gunapariyāyavaddravaya* of the *Tattvarthasūtra* Akalanka suggests that *gunas* are themselves a distinct category from as well as identical with *pariyāyas*.³ It means *gunas* always exist with realities and their modifications which follow one after another. Prabhācandra⁴ gives a more critical and comprehensive explanation.

All these three views are not fundamentally different from one another since they unanimously accept the common factors *utpāda*, *vyaya* and *dhrauvya* simultaneity (*sahabhāvitya*) and modifications with successivity (*kramabhāvitva*). The Buddhist philosophers are familiar with the first and last view but they do not make any distinction between them. This view shall be examined through the Buddhist literature itself.

Samantabhadra explains the triple characters which abide with a substance at one and the same time. They are not mutually independent. *Utpāda* can never exist without *vyaya* and *dhrauvya*. The other two characters are mutually dependent. Samantabhadra uses an example to clarify this view. If a jar made of gold is turned into a crown it will please a man who has an attachment to the crown but it will displease a man who dislikes the crown while the third man who is neutral about the crown but is interested in the gold will have no objection to it at all. Here origination, destruction and permanence abide in one reality.

Another example is presented to make this controversial point clearer. He says he who takes a vow to live on milk does not take curd; he who takes a vow to live on curd does not take milk and he who takes a vow to live on food other than that supplied by a cow takes neither milk nor curd. Thus Samantabhadra concludes that *utpāda*, *vyaya* and *dhrauvya* may exist in a relative sense.

Na sāmānyatmsnodetī na vyatī vyaktamanvayāt
Vjetudetī viśeṣīte sahaikatrodāyādī sat
Gṛatamaulīstarnārthī na utpādashuṣvīyam
Śokapramodaṁ dhvasthyam jano jātī sahetukam

1. Pravacanasāra Jayasena's commentary p. 11.

2. Sammatī Tarka Prakaraṇa 29-14.

3. Guṇabhāva dṛṣṭikṛtī cet na arhat ravaṇanhrdayādīṣu guṇopādesāt guṇa evā pariyāyīti va nirdesaḥ viśeṣaṇupapatturarthābhedadātī cet na matāntarānvisṭvār thatvat Tattvārtha Vārtika 5/37 2-4.

4. Nayaḥ I amara's Cand. p. 303.





He, then, on the basis of above view, tries to point out defects in the theory of absolute momentariness and absolute eternalism stating that causal efficiency is not possible in either of these theories of reality. Clarifying his own position, Kulabhūṣana asks whether momentary character has causal efficiency during its own existence or in another. If the first alternative is accepted, the entire universe would exist only for a moment. The effect produced by a certain cause during its own existence would be a cause of others, despite being caused itself, and this series will never end. The argument "Cause makes an effect during its own existence and an effect comes into being during the existence of others" is not favoured, since an effect is supposed to be originated during the existence of its own cause and not of another. Otherwise, an effect cannot take place and there will be defect of "Samanāntaravirodha", according to which the effects would emerge in the distant future.

Tanna tāvaḍaṣaniko bhāvah kāryam kartum śakti, tasya karmayaugapadyābhya-
marthakriyāvirodhāt nāpi kṣaniko bhāvah kāryam kartum prabhavati tathāhi kim kṣaniko
bhāvah svasattākāle kāryakāraṇasvabhāve'thānyadā. Yadi prathamavikalpastada tadāiva
kuryāt svasattāksane ca kāryakṛtau sarvam jagadekaśanavartī prāpnoti tathāhi kāraṇam
svasattāksana eva yat kāryamakṛta tadapyanyasya kāraṇamiti tadapi tadaiva svakāryam
kuryāt ¹

The next moment is also not powerful to generate the thing, since it is not a creator. Otherwise, what would be the difference between sat and asat, and kṣanika and aśanika. We could conclude, therefore, that arthakriyā is possible only in permanent-in-change character.

Tarhi kāryamapi tadaivotpadyaeta'nyada tatī ālam parihṛtya kāryotpattirūdrhyata ²

Afterwards, Durvekamiśra tries to criticise the view of Syādvādaśaśī not by advancing arguments but merely hurling insults. As a matter of fact, whenever the Buddhist philosophers came across people whose views were different to theirs, especially when they could not refute their theories, they resorted to the practice of ridiculing them by means of ironical speech. It is in this manner that the arguments of the Jains against the theory of kṣanikavāda came to be dismissed by pandit Durvekamiśra with cursory remarks that a wise-man should disregard the above objects raised by the "Ahrīas" or Digambaras (yadi nīmahri-loktirupekṣanīya prekṣāvatām) ³. He then tries to show that only the momentary character has a capacity of casual efficiency.

Śāntaraksita also refers to a view which seems to belong to the Jain tradition, but it is attributed to Bhadanta Yogasena, who is claimed by certain scholars to be a Buddhist philosopher. For instance, Bhattacharya says in his introduction to the Tattvasaṅgraha that "nothing definite is known about Yogasena, he is not mentioned in the Nanjio's catalogue of the Chinese Tripitaka nor in any of the Tibetan catalogues". He then tries to prove that Yogasena was a Buddhist philosopher on account of his appellation "Bhadanta" saying "But the word 'Bhadanta' is always used in the Tattvasaṅgraha to denote a Buddhist, or more preferably a Hīnayāna Buddhist. Our authors have not made a confusion in this respect anywhere in this book and on this ground we can take Yogasena to be a Buddhist" ⁴.

1 Ibid p 374

2 Ibid p 374

3 Ibid p 374

4 Tattvasaṅgraha, introduction, p 1

the momentary character of things is an essential factor for causal efficiency. Furthermore they point out that auxiliaries (sahakari) must follow the things with which they are connected. These auxiliaries as a matter of fact cannot abide with permanent things because the peculiar condition produced in a thing by auxiliaries would neither be similar nor dissimilar. If they make any difference the efficiency of the permanent thing in producing the cause is compromised and becomes dependent upon other things in order to be efficient. If on the contrary they are not able to make any difference the arguments for inoperative and ineffective (akriyākara) elements in a thing have no meaning. The Buddhists therefore conclude that causal efficiency is the essence of the simple and unique moments each of which is totally different from the others.¹

On the other hand the Jains believe that a substance is dynamic (paryami) in character. It means thing is eternal from the real standpoint (niscayanayena) and momentary from a practical viewpoint (vyavaharīnayaena). Causal efficiency according to them is possible neither in a thing which is of the static nature (kūṣa thanīya) nor in a thing which does not suite to the doctrine of momentariness (kāmikavāda) but it is possible only in a thing which is permanent-in-change. To clarification of this view they say that efficiency takes place either successively or simultaneously. Both these alternations cannot be effective in the momentary existence since the spatial as well as temporal extension which requires the notion of before and after for efficiency are absent from the momentary thing of the Buddhists. Santāna (continuous series) is also not effective in this respect since it is too momentary in the opinion of the Buddhists.

Pūrvam naśvarāśchakītkīryam kinnaviniścarat
kāryotpattirviruddhijeta nīvarīkṛānasattayā
Yadvā dīkāryamutpitsu tattad īpādanātmakam
Kīraṇam kāryabheda na līhinnam kīrikam yathā²

This view of the Jains is recorded by Durvekamiśra in the Hetubinduṭṭikaloka. A writer of the Vādanyāya called Sīdhavādakeśari who is supposed to be the same as Akalanka dīva is said to have defeated the opponents and established the Jaina Nyāya. Vādirāja pays homage to him by saying tarkīkalohamastikamani in the Nyāyavinīścayavivaraṇa and Prabhāchandra Sīdhavādakeśarasasatasatī ramūrtī in the Nyāyakumudachandra.

According to Sīdhavādakeśari Durvekamiśra says every entity is anākantika (having infinite characters) which is the basis of arthakriyā (causal efficiency). Kālabhīṣaṇa a commentator on the Vādanyāya explains this view that anyathānupapatti is the main character of reality and arthakriyā is possible only in that character.

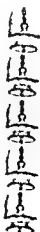
Tathācāriditī vādam āye Sīdhavādakeśari— akhīla a vastuno nāntīkaat am sattī it anyatharthakriyā kutah īti etacca vyākāṣaṇa nīkulalīhūyāgēna tīkīrtī evam vyākhyātam upādīstāca

Anvathānupapannatvam yasyā au heturīyate
Draṇṭau dīvāpistām vā dīcī tau līnā līraṇam³

1 See Tattvataṭṭa 340-341. Also see HBT p. 213.

2 Siddhī Vinīścaya 711-1. Also see vyākāṣakamūlāchārā p. 270.

3 Hetuśūnīlīlīkā p. 23-24.



pratyaya) in plurality of different conditions (vārtitapratyaya) of the same individual. In other words, the permanent character of an entity is called Ūrdhvatāsāmānya.¹

Sārasyaśāstrīya, the so-called Tiryalasāmānya (horizontal) represents unity in the plurality of different individuals of the same class.² The word "cow" is used to denote a particular cow and it also refers to other of the same class, because of similarity.³ Likewise, Viśeṣa is also of two kinds, parvāya and vyatireka.⁴ The former distinguishes the two modes of same entity, while the latter makes a distinction between the two separate entities.

Thus each and every reality is universal and cum-par-ticularized (sāmānyavaiśeṣītmaka) along with substance with modes (dravya-parivārtītmaka). Here "dravya" represents the particular character of a thing. The adjective "sāmānyavaiśeṣītmaka" indicates the apprehension of Tiryalasāmānyātmaka and Vyatirekasāmānyātmaka, while "Dravyaparyāvārtītmaka" points out the ūrdhvatāsāmānya and Paryavartītmaka character of a reality.

Both these types of sāmānya have dealt with by Śāntarāśītra, Karna'agomīna and Arcata. They take the traditional example of a jar (ghata) made of gold which can be changed into several modes, while preserving gold as a permanent substance.⁵

Another example has been given by Buddhist philosophers on behalf of Jainas. They say that the identical-in-difference (bhedābheda) between the substance and the modes is accepted by the Advaitas as the nature of reality.⁶ When a substance is spoken of as one, it is with reference to space, time and nature. When it is spoken of as different, it is with reference to number, character, name and function. For instance, when we speak of a jar and its colour and its other attributes, there is difference of number, and name, there is also a difference of nature inasmuch as an inclusiveness or comprehensiveness is the nature of the substance of the jar, while exclusiveness or distributiveness is the nature of successive factors in the form of colour and so forth. There is also a difference of function, inasmuch as the purpose served by the two are different. Thus the substance is not totally undifferentiated, as it does become differentiated in the form of the successive factors.

Desa' āśvasabhāva īnāmabhedādēśatocyate
 Saṅkhyāśāstrīyānārthabhedāt bhedīśtu vartate
 Rūpādāvo ghaṭasceti saṅkhyāśāstrīyā vibheditā
 Kāraṇānūrtti, āvrtti lal saṅkhyāśāstrīyā vibheditā
 Dravyaparyāvartevam na' āntavaiśeṣavat
 Dravyam paryavartīyārūpena viśeṣam yāti cet svayam.⁷

1 Tāsu tāsu hyavāsthāsu sa evāyam nara itī anuvrttipratyaya hetor naratva jāterūrdhvatā-sāmānya sabdābhilāpyastāsu cāvasthāsu. Hetubindutīkāloka, p. 343. cf. Parāpara-vivartavāpī dravyam ūrdhvatā mrdva sthasādisu. Pramāna Mīmāṃsā, 4. 5. Eśasmīn dravye lābhābhāvinah parināmah paryayah ātmani harsavaiśeṣavat, ibid., 4. 8.

2 Tiryalasāmānyavivartipratyaya heto—Hetubindutīkāloka, p. 343. cf. Sārasaparīnamastīryaka khandamundādisu gotvavat. Pramāna Mīmāṃsā, 4. 1.

3 Arthantaragato viśadrasaparīnāmo vyatireka go-mahisādivat, p. 4. 9.

4. Pramāna Vārtika, Svavrtti Tīlā, p. 333, Hetubindutīkāloka, p. 369, etc.

5 Hetubindutīka, p. 98.

6 Tattva Sangraha, 313—315, also see, Hetubindutīkā, pp. 98.

But Śāntarakṣita has not indicated anywhere that the word Bhadanta should be limited only to the Buddhist Āchāryas. It has been widely used in Jaina literature as a term of respect to elder Bhikkhus.¹ It is therefore not impossible that Yogasena has been a follower of Jainism or has been influenced by its conceptions as his views against Kṣāṇikavāda represent the Jaina standpoint. Further Śāntarakṣita did not mention anywhere explicitly the criticism made by Jainas against Kṣāṇikavāda. Moreover it is unlikely that in such a comprehensive work he should forget to mention the refutation of the Buddhist theory of momentariness by the Jainas when the Jainas were their greatest opponents.

Some schools of thought opposing the doctrine of momentary (Kṣāṇikavāda) were rising even within the Buddhist system. For instance, Śāntarakṣita refers to the views of Vātsaputrīyas who classified things under two headings momentary and non momentary.² The conception of soul according to them has been also refuted by Śāntarakṣita.³ Stecherbatky mentions the Vatsaputrīyas who admitted the existence of a certain unity between the elements of a living personality. In all probability they have been influenced by the Jaina views as their arguments are very similar to the Jaina arguments raised against the view of Kṣāṇikavāda and Anātmavāda.

There are however two important points of difference between the Buddhist and the Jaina in the meaning they attach to dravyavāda in their common denunciation of the view which connects this notion of arthakriyākaritva with dravyavāda. First the Buddhist is against dravyavāda of any kind while the Jaina is against ekāntadravyavāda. Secondly the Buddhists attack actually turns out whatever his profession may be to be on the hypothesis of the static (kūṭasthanīya) dravya whereas the Jainas's attack is also on the same hypothesis but only as a contrast to his own theory of the dynamic (parināmi) dravya.⁴ We have already discussed the Jainas's view against ekāntadravyavāda.

Dual character of an entity

Some systems of thought accept only the Universal (sāmānya) character of reality. Advaitīdins and the Sāṅkhyas are the typical representatives of the view. Some other schools led by the Buddhists recognise only particular (viśeṣa) character of reality. The third school of thought belongs to Nyāya Vaiśeṣikas who treat Universal and Particular (sāmānya and Viśeṣa) as absolutely distinctive entities.

Śāntarakṣita first establishes the Jainistic view on the nature of reality. He says that according to Jainism an entity has infinite characteristics which are divided into two categories viz. Universal and Particular. Just as different colours can exist in a lustrous gem without conflicting with each other so the universal and particular elements could abide in a reality.

We find two kinds of existence of own nature (svayūpastitva). The former tries to separate the similar (sajatiya) and dissimilar (vijatiya) substances and indicates their independence. This is called Vertical Universal (Urdhvatassāmānya) which represents unity (anugata

1 Uttarādhyakṣana 01 23 "4 "6 "8 1f Bhāṣaṇi 73 209 Darśan 4 etc.

2 Tattvasaṁgraha 3

3 Ibid 336-340

4 Nanavācchāśāstra 1.2.10-11 mevalakṣaṇatrayat

1 rakṣitaiva sa 3 bhāṣaṇi viśeṣa tathā sati Tattvasaṁgraha 1.10



मे कर सकते हैं जिनकी मत्स्या हमारे देश में कम नहीं है। मुनिश्रीमिथीमलजी म० राजन्धान ने नैतिकशास्त्र के लिए अपने प्रवचनों और निबन्धों आदि के द्वारा दीर्घकाल से यही प्रयत्न करने जा रहे हैं। वैदिक भ्रमण करने जाय-याव में जनता के नैतिक मन को ऊंचा उठाने के उनके प्रयास सुनिश्चित हैं। दीक्षामर्णजपन्ती के अवसर पर हम उनका अभिनन्दन करते हैं — दीर्घजीवन की कामना करते हैं।

प्रकाशपथ के नेता

सत्यपमन्निह भडार्गे

जो नए मानव जीवन में सर्वोत्तम हैं और जिसकी वशीकरण तथा मे आज भी पश्यत नाशान् पनापरीत नहीं हुई है वह उच्च नस्ल प्राणिमान को अपने समान मान कर व्यवहार करने वाले महान् लोगों की ही बन हैं। मनुष्य का जीवनव्यवहार जो उपदेश मानमानि को अग्रगण्य के प्रमाण की ओर ले जाने वाला होता है। समस्त ऐसे लोगों का सदा ऋणी रहा है।

राजन्धान की एक विशिष्ट विभूति महप्रकेमरी मुनि श्री मिथीमलजी म० की मर्ने में पश्यते हैं म फल है। म उनके प्रति अपनी शक्ति श्रद्धाति अभिनन्दन करता है।

श्रद्धामिव्यक्ति

टी० बी० रमणन

सचिव, राजन्धान विद्युत् बोर्ड

मनुष्य पुण्य मानवजाति की सर्वोत्तम विभूति है। जीवन के उच्चतम आदर्शों की उदात्तता के लिए वे नर-त्यागमय जीवन वाचन करने हैं और समस्त के समक्ष सर्वम एव त्याग का आदर्श उपस्थित करते हैं। उनके जननाश्रम को बड़ी प्रेरणा मिलती है। तन्मो की यह देन बहुत मूल्यवान् है। मौल्य में हमारे देश में आज भी ऐसे अनेक मनुष्य विद्यमान हैं जो मरम, तप और त्याग की महान् परम्परा को स्मिर करने का पुण्य-प्रमाण कर रहे हैं। वयोद्वि मुनि श्री मिथीमलजी म० की उम्र में वे एक महान् मनुष्य हैं। पन्धत्तर वर्ष की वय में भी आपरा पाद-विहार मनुष्य चालू रहता है। आपकी दीक्षामर्णजपन्ती का आशीर्जन उनके प्रति श्रद्धाभिधरित के लिए ही नहीं करने मौरजीवन को दीवी प्रेरणा प्रदान करने का भी निमित्त निश्च होगा। मैं हृदय में इस आशीर्जन की मफरना चाहता हूँ।

श्रद्धासुमन-समर्पण

बालकृष्ण जुत्नी

पवित्रता साधनी, और उच्चता भारतीयमस्कृति का मूल है। हमारे मन्त्रों ने हमारी संस्कृति के उन मूल्यवान् तत्त्वों को मदैव ही सुरक्षित रखा है और समय-समय पर विकसित भी किया है। उनके जीवन में प्रेरित होकर हम लोग भी जराही इन महान् संस्कृति की धारा के साथ चलते हैं और बढ़ते हैं।

महप्रकेमरी मुनि श्री मिथीमलजी म० का जीवन एक तपोनिष्ठ मनुष्य का जीवन है। मैं उनके चरणों में अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करता हूँ।

Later the Jainas dealt with the difference among things. They say that if a jar were entirely devoid of dissimilarity to those other things, then there being no difference between them, the jar could not be anything different from those things. This would involve a self-contradiction. When one is ready to accept some sort of difference among things, he has also to accept dissimilarity as a particular character.¹

Thus according to the Jainas view, like the gleaming sapphire, every entity, while being one has several aspects. Of these, some are apprehended by inclusive notions. Those that are apprehended by inclusive notions, are inclusive, and hence spoken of as "common", while others, which are apprehended by exclusive notions, are exclusive and hence said to be "particular". The inclusive notion appears in non-distinctive form of "This is an Entity", while the exclusive notion appears in the distinctive form "this is jar, not cloth".

Vastvekātmakamevedamaneḥālāramisyate
Te cānuvrttiyāvrttibuddhigrāhyatayāsthitaḥ
Ādyā ete'nuvrttatvātsāmānyamiti kīrtitaḥ
Viśeṣāstvabhīdhiyante vyāvrttatvāttatato'pare²

Refutation of Jain conception of reality in Buddhist literature

The Buddhist philosophers criticised the Jain conception of reality on the grounds of self-contradiction, commingling, doubt, etc. The main arguments of the foremost Buddhist logicians were as follows:

Nāgārjuna (about 150-250 A.D.), the profounder of Śūnyāvāda made the charge that the theory of triple character is itself a self-contradiction formula, as it cannot be associated with reality, since such a thesis is faulty on account of anavasthā-dosa (regressus ad infinitum).³

Dharmakīrti remarks that the Anekāntavāda is mere non-sensical talk (pralāpamātra). He then mentions the Jainas' view "all is one, and all is not one" and points out why the Jainas do not recognize the jar or pot itself as a general character, since Dravyatva is in all of them according to Jainism (Sarvam sarvātmakam na sarvam sarvātmakam).⁴

Dharmakīrti is of the view that the Jain theory of dual character, viz. universal and particular, is so formulated that the character of particularity is relegated to the background and made less significant. He explains this with reference to the famous example of camel and curd. If the particularity which distinguishes camel from curd or vice-versa is not an important factor, he says, one may as well eat a camel when he wants to eat curd. He tries by this argument to demolish the Jain theory as he understood that curd is not only curd by itself (svarūpena) but also camel in a relative sense (pararūpena). According to Dharmakīrti, these cannot be a universal character between camel and curd and even if such a character

Svabhāvānugatāśaktiranenaivopavarnitā.

Atyantabhinnatā tasmādghatate naiva kasyacit

Sarvam hi vasturūpena bhidyate na parasparam — Tattva Sangraha, 1714-16

1 Ibid

2 Ibid 1720-1721

3 Mādhyamika Karṇā, 45-46

4 Pramāṇa Vartika, 1-183

exists their mutual difference or particularity is all that matters for both identification and use

Sarvasyobhaya rūpatve tadviśeṣanirākṛtāḥ
 Codito dadhī kḥīdeti kumāram nābhidhāvatī
 Athīstyatīśayāḥ kaścit yena bhedenā vṛtate
 Sa eva dadhyonyatra nāstītyanubhayam param¹

Prjñākaragupta (c. 900 A.D.) the well known commentator and a pupil of Dharmakīrti also refutes the Jaina theory of reality on the line of arguments submitted by Nāgārjuna. He says origination and destruction and permanence cannot exist together. If it is destroyed how can it be a reality, if it is permanent how can there be destruction and if it is permanent it should always be in mind. He then argues that the reality cannot be realised as both eternal and non eternal. It should be accepted as either eternal or non eternal.²

Samantabhadra's view mentioned in the *dravyaparīkṣayorakyaṃ* and *sañjñāsan khyāti śāstra* has not been refuted by Dharmakīrti. Whatever may be its reason it is criticised by his commentator Arcata who followed the arguments of Nāgārjuna.³ At another place he tries to refute the *Bhedābheda-vāda* (identity in difference) conception which means the substance and its modes cannot be separated from a realistic standpoint but they are different in name, number, nature, place etc. from a practical viewpoint. It appears as if he does not see much difference between *ubhaya-vāda* of Vaiśeṣikas and *Bhedābheda-vāda* of Jains. That is the reason why he conceives the substance as being completely different from its modes. He refutes the view first in prose under the heading *Ahrīkādisammatasya dravya paryāyayoh bhedaḥ śāstraśāstra nīrāsah* and then the same arguments are repeated in forty five stanzas.

Arcata refers to the Jainas' view that they analyse reality through *sañjñāsan* (jñāna-tara) which expresses the combination of identity and difference although it makes a distinction between the particular and general character of reality. For instance *Narasimha* is a combination of man and lion which is not self-contradictory because of the theory of *sañjñāsan*.

Opposing this theory Arcata points out that *Narasimha* is a compendium of atoms which cannot be transformed into *Narasimha*. Due to a combination of the forms which is called *sañjñāsan* a place of existence of diverse natures. How then could a unity in nature be proved? Arcata finally remarks that is the philosophy of block heads (*ḥarṇanākṛtā yam viprajāśa mīlhamatīnām*).

This criticism is based on the understanding that the nature of reality is completely in two different forms. This is the view of Vaiśeṣikas not Jainas. This criticism made by Arcata is answered by the later Jaina philosophers such as Vādirāja and Anantavīra Prabhācandra.

1. Ibid. 1. 181-184.

2. *Atthapādāyāyādhravayavakṣamāyattatadvyate*
Esamvāna sstvām vyāt etadbhavadhūyātaḥ
Yadāvyaya tē lāstvam katham tasya pratīyate
U'tvāna pratīyate svām vyāt tādā tasya vyayaḥ katham

—*Pramāṇasādhikāśikā* p. 147

3. *Hetūnīti* 1. p. 233



Śāntarāśīta examined the Sādvāda doctrines of Jainas in a separate chapter of his *Tattvasaṅgraha*. He points out there that if the oneness between substance and modes is real (aguna), then the substance also should be destructive like the form of the successive factors or those successive factors themselves should be comprehensive (anagatatma) in their character, like the substance. Therefore it should be admitted that either there is absolute destruction of all characters or it consists of the elements of permanence, exclusiveness and inclusiveness, which cannot exist in any single thing.

Hence he turns to the universal and the particular character of an entity. He says there would be a commingling (sāṅkṛāya) and a confusion (saṁdha) in the dual nature of reality, the result of which would not be helpful to decide which is general and which is particular. If the general and the particular are regarded as non-different from one and the same thing, how could there be any difference in the nature of these two characters? And being non-difference why should it not be regarded as one?

Karnaśāgomin in the *Pramāṇavārtikasaṁgraha* and Jitāri in the *Anekāntavādinirāsa* refuted the Jaina conception of reality on the same arguments put forth by their predecessors.

Evaluation

As a matter of fact, the Buddhist philosophers misunderstood the theory of Sādvāda, since they treated the dual characteristic of the nature of reality as absolutely different from each other. The theory is originally belonged to the Vaiśeṣika.

The foremost argument against this doctrine is the violation of the Law of Contradiction, which means that "be" and "not be" cannot exist together. But the Jainas do not accept this formula in toto. They say that the validity of the Laws of Thoughts should be considered by the testimony of Experience (samvedanā) and not by pre-conception¹. Experience certifies that the dual character of entities exists in respect of its own individuality and does not exist apart from and outside this nature (sarvamasti svarūpena pararūpena nāsti ca). In relativistic standpoint, both being and non-being can exist together. Everything is real only in relation to and distinction from every other thing. The Law of Contradiction is denied absolutely in this respect. The point is only that the absolute distinction is not a correct view of things, according to Jainism.

As regards the triple character (origination, destruction, and permanence) of reality, the Jainas support it through "anyathānupapannatvaḥetu" as explained before. The permanent element possesses the character of identity-in-difference (bhedābheda-vāda). Identity is used in the sense that the substance and its modes cannot be separated from a realistic standpoint, and difference in the sense that they are different in name, number, etc. from a practical viewpoint². In other words, the modes are not absolutely different from substance, as in that case, the modes would not belong to the substance. With past reflections the substance is transformed into present modes and proves itself as a cause for future modes that are necessary for the understanding of the permanent character of an entity.

To preserve the unity of terms in relation to different characters, the Jainas assert an element which is called Jātyantara (super-genus or unique)³. This is illustrated by the instance

1 The Jaina Philosophy of Non-Absolutism, p. 4

2 Nāyaviniśaya, 117-18

3 Anekāntajaya Patākā, vol. I p. 72

of Narasiṃha which is criticised by the Buddhist philosophers. Prabhācandra says in response to the Buddhist criticism that it is neither nara nor siṃha but because of their similarities they are called Narasiṃha. While having mutual separation they exist non differently in relation to substance and like waves in water they emerge and sink in each other. Thus there is no self contradiction in a dual character of an entity in relative sense as the Jainas assert.

Na narasiṃharūpatvaṃ na siṃho nara-rūpataḥ
 Śabdavinyānakāryaṃ bhedaḥ jatyantaram hi tat
 Na nara nara eva na siṃhaḥ siṃha eva hi
 Samāna dhikāryena narasiṃhaḥ prakīrtitaḥ ¹

Dharmakīrti urged with regard to the Universal-cum particular character of reality that this theory compelled one to recognize the curd and camel as one entity. In connection with the fallacious middle term (hetvabhāsa) Akalanka points out that the Buddhist philosophers discover defects to censure the Jainas on the basis of invalid arguments (mithyajati) ². For instance Dharmakīrti ignores the formula sarvabhāvastadātaḥ vābhavaḥ and tries to establish equality between curd and camel. Hence he questions why one who intends to eat curd does not go to eat a camel in place of curd since according to Jainism both have the universal character.

Akalanka tries to disarm critics like Dharmakīrti by pointing out the definition of sāmānya and viśeṣa. Vādirāja a commentator of Akalanka explains that the similar transformation of a thing into its modes (sadrāśaparināmo hi samanyam) is called samanva ³. According to this definition the modes of curd and camel are not similar they are really completely different as well as similar. How is it then possible that these elements are mixed? ⁴

Another argument used for the refutation of the Buddhist standpoint is that the identity is only among the modes of curd as hard harder hardest etc. but they have never any sort of relation with the modes of camel. Hence they can never be mixed with each other. Vādirāja refers here to a traditional fiction the Dharmakīrti proved himself as a Vidūṣaka (jester) because a good knowledge of the opponents theory ⁵.

Akalanka again criticises the view of Dharmakīrti saying that if the argument that the atoms of curd and camel may have been mixed sometimes before and the atoms of curd have still the capacity to be transferred into the modes of camel is to be raised it would not be advisable. For the past and the future modes of an entity are different and all transactions and transformations run according to present modes. The curd is for the purpose of eating while the camel is for riding. The words for them are also completely different from each other. The word curd can be applied only to curd not camel. It is the same case with the word camel too.

Akalanka further points out that if in relation to past modes the unity between curd and camel is divided then Sugata was Mṛga (deer) in his previous birth and the same Mṛga

1 Nyaya Kumuda Canda p 369 Anekānta Praveśa Tika p 15

2 Nyāyaviniśayaavivaraṇa vol 2 p 233

3 Nyāyaviniśayaavivaraṇa vol 2 p 233

4 Pūrvapak amavinyānaśya duṣko pi viduṣakah Nyāyaviniśayaavivaraṇa vol 2 p 233



become Sugata Why then should Sugata only be worshipped and Mrga be considered edible ?¹

Sugato' pi Mrgo jāto Mrgo'pi Sugatah smrtah
Tathāpi Sugato vandyo Mrgah khādo yathesyate
Tathā vastubalādeva bhedābhedavyavasthiteh
Codito dadhi khādeti kīmuṣṭramabhihāvati

Thus he tries to prove that as the transformations of Sugata and Mrga are quite different, and their being worshipped and eaten are related to their modes, all substances have the capacity to be transformed only to their possible modes, not to others. Therefore the identity between the modes of curd and came cannot lead to the truth. Their transformations do not have the *tādātmyasambandha* and *niyātasambandha* ²

In fact, Akalanka and other Jaina philosophers tried to meet the arguments of the Buddhist philosophers in forceful words. The innumerable examples of scathing attacks against Buddhists can be seen in Akalanka's and other Jaina Ācāryas' works. The caustic remarks, such as "Jādyahetavah", "ahnikalaksanam", "Pasulaksanam" etc. made by Dharmakīrti himself on opponents' views are criticised by Akalanka in the *Pramāṇa-sangraha* ³

Thus the Jaina philosophers do not accept any self-contradiction in the nature of reality in Jainism. Likewise, the other defects such as confusion, commingling etc. which are based on the self-contradiction, are also proved as "mithyādoṣāropana". And, according to them, the criticism made by the Buddhists or others is not effective in this context. As matter of fact, in their opinion, the nature of reality in Jainism has no defects provided it is clearly understood.

Nature of relation of an entity

The nature of an entity is also a controversial point among the philosophers. For instance, the Naiyāyikas, the extreme realists, think that relation is a real entity. According to them, it connects the two entities into relational unity through conjunctive relation (*samavāya sambandha*). *Samavāya* is said to be eternal, one, and all-pervasive ⁴

The Vedāntins and the Buddhists, the idealists, are against the view of Naiyāyikas. The Buddhists assert the subjective view of relations. A relation, according to Dharmakīrti, is a conceptual fiction (*sambandhaḥ kalpanākṛtaḥ*), like universal, and hence it is unreal ⁵. He also rejects the two possible ways of entertaining a relation in universal. They are dependence (*pāratantra sambandha*) and interpenetration (*rupasleṣa sambandha*) ⁶

1 Nyāyaviniścaya, 2 204-5 Likewise at another place

Akalanka, commenting on the Buddhist Ācāryas, especially Dharmakīrti says

Dadhyādau na pravartete Buddhah tadbhuktye janah
Adrasyam saugatim tatra tanum samsankamānakah

2 Nyāyaviniścayavivarana, pt II p 172

3 Pramāṇa Sangraha, p 115-116

4 Tarkabhāṣā, pt I p 5

5 Pramāṇavārtika, p 3 237

6 Nyāyakumudacanda, p 305

On the other hand the Jainas on the basis of non absolute standpoint try to remove the extreme externalism of the Naiyāyikas and the extreme illusionism of idealism of Buddhism and Advaitism. They maintain that a relation is a deliverance of the direct and objective experience. Relation is not merely as inferable but also as an indubitably perceptual fact. Without recognising relation no object can be concrete and useful and atoms would be existing unconnected.¹

As regards the rejection of two possible ways of relation the Jainas says that they should not be rejected. For *pīratantyāsambandha* is not mere dependence as the Buddhists ascribe but it unifies the entity. *Pūpasleṣa* is also untenable for this purpose.²

The two points are here to be noted the first is that according to Jainism the entity never lose their individuality. They make internal changes having consistent internal relation with the external changes happening to them. In adopting this attitude the Jainas avoid the two extremes of the Naiyāyikas externalism and the Vedāntin internalism.

Another point is that the Jainas consider relation to be a combination of the reality in it as something unique or sui generis (*jatyantara*). It is a character or trait in which the natures of reality have not totally disappeared but are converted in to a new form. For instance *nara simha* is a combination of the units of *nara* and *simha*. They are neither absolutely independent nor absolutely dependent but are identity in-difference. Hence the Jainas are of view that relation is the structure of reality which is identity in difference.³

Conclusion

From these comments we may conclude that —

- (i) *Arthakriyā* is the essence of *śyadvāda* conception. According to Jainism the *arthakriyā* is possible in only the dynamic (*pariṣṭhāmi*) substance.
- (ii) The nature of reality is universal cum particular and the nature of relation of an entity is deliverance of the direct and objective experience.
- (iii) There is neither self contradiction nor any other defect which the Buddhist philosophers tried to point out in Jain conception of reality.

★



¹ *Jaina Theory of Reality and Knowledge*

² *Nyāyakurucāṇḍa* p. 30

³ *Jaina theory of reality and knowledge* p. 33

to him is the primary postulate of morality¹. It may be a general postulate common to all system of ethics but different schools of metaphysics will give different answers to this problem of moral accountability. In a similar way other postulate of morality like the immortality of the self the existence of God freedom of will and the real existence of evil in the world will be explained in different ways. One more axiom seems to be admitted in Jaina Ethics and it is the possibility of liberation i.e. the possibility of the attainment of the ethical ideal. Jaina Ethics presuppose that liberation must be an actual event in the life history of the soul². As regards the metaphysics behind this postulate it is said this aspect of Jaina philosophy did not much attract the attention of the Jaina thinkers themselves. Like others they also did not doubt the possibility of liberation because this possibility is the very hope for which an entire system of philosophy is constructed³. Jaina Ethics is not much in disagreement with other systems in respect of these axioms but the connected metaphysics to explain them must be different on account of the anekanta nature of Jaina philosophy. This anekanteka reflection on the problems of Ethics is a singular contribution to the ethical studies by the Jaina and it has given a distinct feature to Jaina Ethics.

No less important are the psychological researches to the study of ethics. The Jaina writers show a satisfactory insight into the psychological aspect of the ethical problems. The truth of psychological Hedonism seems to be admitted in the proposition. All living beings in the three worlds desire sukha (Happiness or pleasure) and fear pain⁴. The summum bonum of life is the attainment of unalloyed bliss⁵ but perhaps very few may be found to be conscious of this high ideal. On account of the psychological factors this basic urge for unalloyed bliss is changed into a lust for pleasure. The very capacity which in the absence of obstructive conditions could have been directed towards the ideal is turned towards the worldly pleasures. The capacity for unalloyed bliss and worldly pleasures is fundamentally the same as Aurbindo has observed pleasure can become pain or pain pleasure because in their secret reality they are the same thing differently reproduced in the sensation and emotion. A drift from the psychological Hedonism to the ethical one does not require a special proof if the truth of karma psychology is accepted. Karma psychology explains the deviations from the pure functions of the self by means of karma forces which vitiate and delimit its cognitive and conative energies in various ways.

McDougall gives another psychological truth in the form of purposiveness. He holds that purposiveness is the essence of mental activity. We rightly feel that we did not act as a mere machine but the action was a purposive action in which our nature was truly expressed and we may confidently infer that the goal was foreseen however vaguely and incompletely at the time of action⁷. So purposiveness means that every living organism is guided by the idea of the end or purpose in view in its behaviour. It is not simply impelled to action by a push of causing factors from behind but also feels a pull from ahead. The idea of the end

1 William Rashdall Theory of Good and Evil p. 203

2 S. C. Jain The structure and the function of the soul in Jainism p. 90

3 Ibid. p. 100

4 Daulatram Chhahadhatta 1. 1

5 C. R. Jain Key of Knowledge p. 10

6 Aurbindo The Divine Life p. 319

7 McDougall An outline of Psychology p. 49



ब-येयालाल कीचर

जनक-प्राण का तीव्र भावना में अनुपम चित्रण काय कर सकता है। यह समझने के लिए माधोदा का जीवन मनीष है। उपाय लाजोवन के बिना भी क्षेत्र का अद्वैता नहीं छोड़ा था। माधोदा का यहाँ प्रवृत्ति मधुरवेगवादी मुनि मित्रात्मकता में ही जीवन में भी परिवर्तन होती है। पंचम वष के अवन मन्त्रिजीवन में उपाय ने जा बटुपरी प्रसिद्धि का है उनका मेधा बोधा करना भी बड़ा कठिन कार्य है। पञ्चाधिक प्रयास का प्रणय अनेक विघ्नान्तरावा वा स्वाभाविक पुत्राख्या घोर वाचनालस्य की प्राप्ति परावर्तित की विरुद्ध विना गया अभिप्राय समझ में नक्ति प्रयास की बाधा को के लिए विरक्त पर उनका प्रयास लक्ष्य और समझने के लिए किम गण स वापद प्रसिद्धि का प्राप्ति प्रवचन पाठना का सहायता के लिए उपाय कई बल साधन अति प्राप्ति उनका वापद मारवाड की प्रामाण्य जनता के लिए भुला नुमा सहन। मन्त्रिजी आत्मसाधना का साथ लाई बल्यार्थ की साधना में भी सत्ता अग्रसर रहता है। उनका परस्परप्रापण ज्ञान वांछि अभिप्रेरणीय है।



रानी जमिना देवी मगुडा

अध्यक्ष समाज कल्याणविभाग राज

जन जीवा म गतिरस्ता की भावना का ह्रास किसी भी देश के लिए सब से बड़ा महरा है और जब वह गिरावर घटित होता है तब ही मा देश का नवतारा के लिए गाम्भीर्य स्थिति उत्पन्न हो जाता है। इस स्थिति का सामना करने में देश का मत और निस्वायभाव का भावना का निरसन हो जायागी और प्रभावशाली बाय बर सकत हैं। प्रगतिशीलता का नियम है कि महत्त्वपूर्ण मुतिजा तब ही महत्त्वपूर्ण योग दे रहे है। इस गति का कारण भाति सात्त्विकता का प्रभाव कर रह है। मतिशी के इस मरान् मितान् इस से हृदय में अतिर दन बरती है और उनका दापांयु की सामना करने है।



श्री० ए०० भाटिया

सॉ गेजटरी बन्दीव सरकार

जिं भा अग्र्यामगायन क माधना बरियय म बुद्ध बन्नाया तियना बठिन है तिर बिदुता उम साधना क दोष म प्रकाश हो गइ। बिबा उतव लिय गा घोर भी बठिन। तबारा तेम माधना के उपदेश म सनमाधारय क साम्य मिश्रता है। उमय मध्यम म ता बन्ना हो जा सतना है।

मृति आ मित्राभात्रा म नि मरुत् एव महात् उग गव है प्रवर वचना है। गवम माहिराया भा है।
आरया वग व और मनन जन दोषन व। उवव घरात वर। जाने वाण हाता है। अगव्य ग नारा उतग प्ररणा
घण वरग है। महान मापव व। गग। अमिनरन।



refers to this ethical ideal. All this points to a distinction between the ideal and the actual. The ideal is implied by the actual and the actual is actual only with respect to the ideal. There is nothing like the absolute actual and the absolute ideal. Advaita Vedanta's dictum that thou art may be similarly interpreted. That refers to the ideal and thou to the actual. Kundakunda himself has differentiated his position from the Samkhya absolutism on this very ground¹. From this standpoint we find a newer type of consistency in Bradl's concept of my station and its duties. One may be at any station in life his duties must be in congruence with the ethical ideal. Ethically the actual must agree with the ideal. This is the way how we apply this criterion to judge the worth of lower Ethics. The Jain has to justify the householder's Ethics in this very way. The lower ideals are simply means to the higher ones and they are so admitted to make the gradual ethical progress possible. These very ideals when not accompanied by right faith are when they are not in congruence with the ultimate ideal are said to be false ideals.

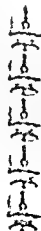
A closer study of the nature of the ethical ideal will provide a better faculty for moral judgment. An action found to be in agreement with the ethical ideal must be called moral. A motive itself is an action of the mind. If it is in agreement with the ethical ideal then only as a motive will be morally valuable. Consequences are something external to the self and they may be in agreement with the internal state of the self. If this agreement between the self and the consequences is conducive to the attainment of the ideal of pure soul the consequences may also be said to be morally valuable. This problem of moral judgment is basically the problem of moral accountability which in Jaina Ethics is technically called the theory of the soul's bondage. The self bound by the karma forces gives us the structure of the self of the karma psychology. The things which lead to this bondage state of the self are said to have no ethical value while those that bring about a free state of the self from such bondage are ethically valuable.

One more implication of the Jaina theory of ethical ideal is that in Jaina Ethics the viewpoint takes the most significant position. No doubt the ultimate ideal of the pure soul is the point of view of the ideal it must be final, self-contained and free from all external restrictions². But according to Jaina logic the viewpoint is not absolute in an absolute manner i.e. with total negation of other viewpoints. The truth yielded by such viewpoints is faithful to reality if they are accommodated to each other. In spite of the fact that the ideal viewpoint occupies a very important place in Jaina Ethics it must be accommodated to the actual viewpoint. The latter viewpoint though always found to be in relation with its time and environment while the ideal viewpoint presents us the picture of eternal ideal the actual viewpoint gives us the actual picture of the situation in which the self happens to be placed. Both the viewpoints are equally essential to the ethical path. If the ideal viewpoint is upheld in an absolute sense there is a great fall in the position of the Self. As far as the Purva is absolutely immaterial. When we enter the region of the higher we have to take cognizance of the actual condition of the self and take in the picture of the ideal always as a guide. The structure to let us know the actual situation is the first step and the last. The latter is the actual condition of the self. As the ethical ideal of non-attachment to the

1. Kundakunda, *Samavayavagya*, 1.6-17.

2. *Samavayavagya*, 1.6.

3. *Samavayavagya*, 1.6-17.



MAN-MADE GOD

K. B. JINDAL
(F. A. L. L. E. R. S.)



More than half the world believes without question or argument that God created man in his own image.¹ Cool consideration will however show that it was man who created God in his own image. The gods of the Greeks were conceived as finite beings differing from human beings only in degree. They lived in Olympus and thought and acted like any one of us. Only they thought more rationally and acted more wisely. They were deified ancestors or apotheosized men. The incarnated gods of Hindus were also human beings. There was nothing supernatural about Rama. He was the essence of all that is best and noble in man.

As long as religion is a matter of individual conscience and as long as no priestly caste comes in between God and man, God will continue to be like us. Each has his own God and conceives Him after his own fashion. And since most of us are similar in physiognomy our God tends to be one.

The Church Fathers of the middle ages created a great gulf between God and man. They made him a Deity and took him away from us as our brother man. They imputed to him the whole creation of the Universe and such of man as he chose. There is much to fear from Him. I ought to cease to do sin not because that is higher self impels them to do so but because there is somewhere some mute glorious power that is their arbiter. They worked at the talisman, bidding with the muses and God returning cloud. The eternal self-consciousness communicates to human consciousness the idea of social good.

It is profoundly interesting to find Shelley laying down a century ago quietly in his poem the laws by which modern scholars govern themselves. His Faith in Christianity is a belated reminder against the popular and orthodox form of religion, a corruptible churches into a dilemma. If spirit of Christ as an historical character and as a man. I find him up with materialists to curb his influence. When the miracle of us learn of it. It is Christ remains no inflexible Deity but living humanity. Shelley's view of Atheism is a rationalist spirit of free intellectual inquiry. The spirit of scientific philosophy and of skepticism is the evidence of God. If earth was result of millions of years of formation is more reasonable than that God made earth in six days. Leers used to be blamed for personal immortality. Tennyson and Browning reach a compromise in 160. That compromise is embodied in three lines.

1 Book of Genesis ch. 1 vs. 27

2 Creative Idealism

Saranas and poets changed the course of Kannada literature. The Champu form gave way to Satapadi, Tripadi, Sāngatya, etc., and the common man's language was taken as the medium of expression in poetry also. Apart from all these things, the literature was made a direct means to propagate the religion. But during this period, the 10th century spirit was not maintained. The literature, of course, was used to propagate the religion, but the poets of this period brought in the literature not only the praise of their own religion, but also the abuse of other religions. So the literature produced during this period has become "Vāda Sāhitya" (वाद साहित्य) and contains satire of other religions. Jain poets of this period did not lag behind, even though, they were in a weak position. They did produce literature containing defence and praise of their religion i.e. Jainism and satire of other religions. Glimpses of this attitude, may be seen in many poets of this period, but in this article mention may be made only to outstanding three poets. They are 'Nayasena', 'Brahmasiva' and 'Vrittavilāsa'.

Poet "Nayasena" was a Jain monk and has written 'Dharmāmṛta' in the year 1112 A.D. He lived in Mulgunda, now a village in the Dharmar District, Mysore State. 'Dharmāmṛta' contains 11 chapters. In each chapter the poet has written a story connected with "Darsana" and its eight folds viz., Nisanīṣā, nīlāṅkā, nirācī'itā, amūdhadrīṭva, upagūhana, sthūṭikarana, vātsalya, dharmaprabhāvanī and five anuśrīṭs viz., Ahimsā, Satya, Asteya, Brahmacharya and Aparigraha.

In all these stories the poet has tried to maintain the supremacy of Jainism. The follies of other Faiths are depicted in a very high type of satire. In one story a priest of another Faith condemns Jain monks. This very priest is made to live and eat like Jain monks for only a temporary period. The priest is made to eat food prepared out of Ghee etc., and is kept in a room duly locked. After some hours he feels thirsty but no water is given till the next day's food time. He is made to live without bath like Jain monks and within a week's time his body becomes abed of itches etc. He could not live like Jain monks and he openly admitted the greatness of Jain monks who have full control over all limbs. The fine satire in this story is clear evidence to show that poet "Nayasena" was a master in that art. Examples of such fine satire are full of his work. Nayasena has written his work in the Champu form. He is not in favour of writing a book mixing up both Kannada and Sanskrit. This attitude of the poet is seen throughout his book. Though there are Sanskrit words, his book contains pure Kannada spirit. Poet Nayasena uses Kannada proverbs and similes. His similes are another noteworthy point in his work. The poet gives similes one after another and they are all from the local stock and tongue. The effect of such fine similes is ever lasting and unforgettable pleasure. Because of this 'Deshi' (देशी) 'Dharmāmṛta' has earned a permanent place in the heart of Kannadigas apart from its religious tinge and satire.

Poet Brahmasiva lived during the first half of the twelfth century and has written two works viz. "Samayaparīkshā" and "Trailokyachūlāmanistotra".

In "Trailokyachūlāmanistotra" the poet condemns the worship of Tree, Sea, River, Sun etc., and says that they are all not gods. To be liberated, the poet advises, to follow the path of Jina. The 36 verses in this work depict poetry of high order.

"Samayaparīkshā" is a masterpiece of poet Brahmasiva. This work is a mirror to the contemporary society that existed in Karnataka during the first half of the 12th century from

JAIN SATIRISTS IN KANNADA LITERATURE

DR B S KULKARNI

MA Ph D Reader in Jainism Karnataka University Dhawar



Kannada literature has a history of one thousand years. The pioneers in the field are Jain poets though Jainism is supposed to have come from the North. The Jain poets though well versed in Sanskrit and Prakrit preferred to write in the local tongue. That is why Jain poets have become the pioneers in creating literature not only in Kannada but also in Tamil. There are a good number of inscriptions in Kannada to show that good literature might have come up as early as 5th or 7th century A.D. But no written book is available till the 9th Century A.D. The first written book is *Kavirajamarga*—written in the court of Nripatunga—the Rāstrakūta king who reigned from 814-877 A.D. This is a book written mainly on Rhetorics. When a book comes out on Rhetorics it is sufficient proof to show that there must have come a lot of literature. But to one's surprise there is not a single work traced so far till we come to the 10th century A.D.

The first work on poetry is *Ādipurāṇa* written by the first Kannada poet Ādipampa in 941 A.D. in the court of Arikesari II a Chalukyan king. Pampa has written another master piece called *Pampa Bhārata*. He has written these two works in Champu form. There is a fine blend of Sanskrit, Prakrit and Kannada in his works. In *Ādipurāṇa* the poet has tried to explain his own religion i.e. Jainism along with pure poetry. In his *Bhārata* the poet has given the story of Vyasa Bharata in Kannada. This method of the first poet was followed not only by the poets of his own times but by the poets of later centuries also. But the latter poets could not raise to the height of the poets of the 10th Century. That is why 10th Century is called the Golden period in the history of Kannada literature.

The literature produced during this golden period does contain praise of the poets of the poets on religion. In *Ādipurāṇa* Pampa gives unique picture of a controversy among different religions viz. Cārvāka, Buddhism and Jainism. The poet pleads in a very good sportive manner for each religion. His satire towards each religion is entirely objective. He never brings in low taste nor condemnation of any one religion. The same case is with poet Ranna. He praises Jainism but never depicts low taste for other religions.

But this attitude did not continue during the later centuries. During the 11th century a lot of change took over in the field of religious and social life of the people of Karnataka. Jainism began to decline. There was no royal help nor protection to Jain poets. Virasaiva

Manovega told that that cat could smell the presence of a mouse round about 1000 'Yojanas'. When the cat was examined it was found that its ear was torn and it was bleeding. When asked the reason for bleeding, Manovega said "Yesterday night when the cat was sleeping a mouse came and bite the ear". When they laughed Manovega told them stories of inconsistency from Vaidic sources. The work is full of such interesting stories full of satire.

Though "Dharmapārśvī" is a translation, it is a very useful addition to the Kannada field. Vittalavilāsa's satire and poetry is of very high standard.

In his second work "Shītravīra" also poet Vittalavilāsa tried to condemn 'mithyavāda' and has given 'Samas' for common man. But this work has not been published so far.

To praise one's own religion is something. But one should not condemn the religion of others. Ofcourse this should be the spirit of the poets as well as common men in general. But things shape themselves in the light of the time and circumstances. So one should not worry about such things. In Karnataka 'Vādarthika' was produced in the light of the times, and its poets also contributed their might, though they were in a declining state and the names of these satirists stand immortal in the history of Kannada literature.

religious social and political points of view. All these aspects are depicted with historical sense. It is from this point of view that Samayapariksha gets unique place in the history of Kannada literature. The poet describes the decline of Jainism and all other different Faiths which had gathered in Karnataka claiming supremacy over each other and leaving the common man in despair. This work contains 15 chapters. The poet has tried to show that Jainism was a very ancient religion and held its sway all over the country. According to the poet every temple, religious place, one day or the other belonged to Jain Faith and it is the best Faith to be followed. His verses in praise of Jina display a very good poetry. Brahmasi, a condemns blind or foolish belief. The poet takes references in the epics of other Faiths and describes the folly of them. He has done this part of satire with utmost mercy. He condemns the ten incarnations (avatars) of Vishnu. He condemns the idea of Ardhanarineshvara. He does not believe in the Svayambhu (स्वयम्भु) evolution of any man or god. He mercilessly criticises the manners, food, drinks etc. of other Faiths. The satire of Brahmasi may be felt harsh but as history admits with him all the honour becomes due to him. His book really satisfies the saying that Literature is the mirror of contemporary life. The satire of Brahmasi has become a boon to the students of history and here lies the poet's greatness.

Poet Vrittavilasa has written two works viz. Dharmapariksha and Shatrasara. He has not given any thing regarding his date, place, parentage etc. So it is difficult to say about his definite date etc. He is supposed to have lived during the year 1300 A.D. His Dharmapariksha is based on poet Arutacata's Dharmapariksha written in Sanskrit. Vrittavilasa has written his work in the Champu form. Dharmapariksha contains ten chapters. The poet has taken stories from Vaedic sources and has tried to show the follies there in. The satire is direct and fierce. His technique of telling the stories and condemning them is fine. He has taken two friends viz. Manovega and Pavanavega. Manavega was a believer in Jain Siddhanta. Pavanavega was a believer in Vaedic system. Manavega wanted to make his friend a believer in right things and not in false ones. He wanted to do this without hurting the feelings of his friend. So he adopted a method as if for a fun and at last convinces his friend and brings him to the right path. He took his friend to Lalitputra (Lata) in different garbs such as woodcutter, hunter etc. and going to Brahmatmya in the debate he defeated the Jain party. Manavega followed the method of telling a fantastic story. The other party did not believe and questioned its reality. Then Manavega asked them about such stories which were in their religious books. Then he told a story and asked, 'If this is true mine is also true, if this is not true then mine is also not true.' The story is a powerful medium to win our minds of listeners. So Manavega wins over his friend without hurting his feelings and brings him to Jain Siddhanta. When Manavega was in the disguise of a shepherd he told a story as follows: 'We two went to a forest with our herd. We saw a tree full of fruits. Then we cut off our heads and went up the tree and ate fruits. As our heads ate fruits, the bulges of the bodies lying at the trunk of the tree became full. After eating a lot the heads came down and attached themselves to the trunk of the tree while the shepherd was singing and we are in search of them. The Jain people hear this and questioned its possibility. Then Manavega gave a good number of examples from Vaedic Epics such as the birth of Jarisandha, Ghatodgaja and Ravana, Uttanishtha and Adisatya, the misadventure. During another occasion he took a cat and told the Jain people that the price of the cat was 1000 Varahas. Being surprised they asked the speciality of the cat.

Jiva with the object is called, *pratyaksha* Sense perception or mediate knowledge is *paroksha* *Avadhi Manah-parya* and *kevaljñān* are *pratyaksha* and *Matī* and *Srutajñāna* are *paroksha*

Charvaka-view accepts sense perception as *pratyaksha* and gives maximum importance to sense perception, Jain view stands against it The *nyaya* system recognises the difference between a quality and the possessor of a quality but by saying that Jiva consists of a quality *Upayoga* which is made up of *Jñāna* and *Darshan*, the theory of *nyaya* is upset

According to *Vyavahara Naya* the general characteristics of Jiva are said to be eight kinds of *Jñāna* and four kinds of *Darshana* But according to *Shuddha Naya* pure *Jñāna* and *Darshan* are the characteristics of Jiva

2 Amurta

Jiva in its natural or real state is invisible When the soul is attached by passions, desires etc it takes on the Karmic material fit for the bondage of Karmas The Karmic material mixes with the soul as milk mixes with water or fire with iron Due to karmic material the Jiva becomes *Samesarī* and it has to travel in to four *Gatis* When the soul becomes free from karmic bondage it attains complete liberation or *Moksha* According to *Vyavahara Naya* the Jiva is *Murta* or with karmic form and it is *Amurta* according to *Nischaya Naya*, i.e. without karmic bondage It has no colour, taste, smell or touch

3 Karta

According to *Vyavahara Naya* Jiva is the doer of *Pudgalkarmas* According to *Nischaya Naya*, Jiva is the doer of *Bhava-karmas* And according to *Shuddha Naya* (Jiva is the doer) of *Shuddha Bhavas*

Puggalakammadinam katta vavaharado du nichchayado
Chedana kammanada Shuddhanaya Suddhabhavanani

—Dravya-Samgraha 1-8

Anger, pride, attachment, aversion etc are the *bhava-karmas* of Jivas Jiva being the doer of these karmas influx *Pudgalkarmas* or *Dravyakarmas* *Vyavahara Naya* says that Jiva is doer of *Dravyakarmas* but in reality it is the agent of its own *bhavas* *Vedanta* considers the whole universe as one spiritual *brahman* but *Jainism* asserts different units of Jivas Unlike *Charvaka* which declares that the universe is made up of matter only, it holds the view that universe has Jiva and Matter both They act and react and a constant state of activity is going on *Sankhyas* believe *Purusha* as indifferent or inactive where as Jain philosophy confirms Jiva as an agent or doer of actions

4 Svadachaparimana

According to *Vyavahara Naya* the conscious Jiva becomes equal in extent to a small or large body by contraction or expansion, but, according to *Nischaya Naya*, it is existent in innumerable *pradeshas* A soul can occupy the space represented by ant or elephant or *mahamachha* found in the greatest ocean *Svavambhuramana* It may also occupy the body of *Nigodas* As the gases like oxygen or hydrogen fill up the whole of the space within different *jaras* of different capacities So is the case with Jivas *Tatvartha Sutram* also confirms this principal

Pradesh samhata visarpabhyam pradivvat

—Tatvarth Sutram 5-16

SOUL IN JAINISM

KHEM CHAND JAIN
MA



Almost all the Indian thinkers have accepted two entities i.e. soul (jeeva) and non-soul (Ajeeva). According to Jain view soul is that element which knows, thinks and feels. The fourfold characteristics of Anant Jnana, Anant Darshan, Anant Siddhant and Anant Vrata are found in the soul. Ajeeva in all respects is the opposite of Jeeva. Truth, sat, chet, anant etc. are the attributes attributed to it. Ajeeva is divided into Pudgla, Dharm, Adharm and Kala.

Acharya Datta Chandra Siddhant-Chikarvarti lays down the eight characteristics of Jiva.

Jivo uvaṇa amao amutti katta idhapaṇimano
Bhotta samsaratho siddho so vassa vaddhagaṇa

—Dravya Samgraha I*

The following verses from Panchastikayasamayasa by Kundacharya are similar to this verse of Dravya Samgraha —

Jivoti havati cheda uvaṇa vasa idha pahu katta
Bhotta ya dehamatto nahi mutto kamma amutto

—Panchastikaya Samayasara*

Kamma malappa mukko udham loka ant madhiganta

—Panchastikaya Samayasara*

1. Upayoga

It is the sole characteristic of Jiva. It is a sort of inclination which is a firm and seriousness. This inclination is either towards Darshan or Jnana. The details known and indefinite cognition is called Darshan. In Jnana the details are also known. If the attention is directed merely to an awareness that something is present to it that cannot be called Darshan. If it is directed to know this something definitely it is Jnana. Darshan is divided into four parts i.e. Chakshu, Achakshu, Avakshi and Kevala. There are four kinds of (Karma) obscures each of these varieties. By removal or extinction of one or more of the varieties of Karma the corresponding classes of Darshan are achieved. Jnana is of five kinds i.e. Mati, Sruta, Avakshi, Manahpariya and Kevala. Karmat karmat. It is also divided into two pratyaksha and paroksha. Direct contact

सच्चे मणिकार, कर्षक, वणिक

डा० लक्ष्मीमल सिंघवी

श्रद्धेय मन्मथकेसरी का व्यक्तित्व हमारी भारतीय धर्म-परम्परा का एक लोकात्मकता का प्रतीक है। उनके धर्म-प्रवचन जन-जन को सुबोधगम्य भाषा में व्यापक और गहरा प्रभाव डरते हैं, उनके उपदेश अपनी निर्भीक मत्प्राप्त्यपी विशेषताओं के कारण जन-माधारण के हृदय में गमा जाते हैं। उनका स्वभाव मधुर करुणोच्चित और उनकी शिक्षा यवायों पर जायारित है।

धर्मगुरुओं या समाज में आचार-विचार के मयम और निर्देशन में वरुण महत्वपूर्ण स्थान है। वे जीवन की प्रवृत्तियों और उदात्त आदर्शों के बीच सामंजस्य का नेतृत्व बनाते हैं। धर्म के माध्यम से जीवन के उदात्तीकरण की प्रेरणा देते हैं। वे हमें आत्मशुद्धि, आत्मविकसन और आत्मनिरीक्षण की ओर प्रवृत्त करते हैं और इस प्रकार नमूचे समाज और उनकी इकाइयों को मजबूत बनाते हैं। समाज की अन्तरात्मा उनके स्वर में जीती और जागती है। यही मुनिश्री की नायना का नामाजिक अंत प्राण है। श्रद्धेय मुनिवर मिश्रीमलजी महाराज इसी नेवा और माधना की अन्तर-चिन्ता के प्रतीक हैं।

श्रद्धा, ज्ञान और कर्म की जीवन-त्रयी में मन्मथकेसरीजी ने अपनी नायना और नेवा में कई अनमोल मोती-मनत्रे परोये हैं। वे जैन धर्म-परम्परा के अनुसार सही माने में भद्रविचारों का सफल नार्थक वर्णन और वाणिज्य करते हैं। उनका वन्दन हमें मन्मथ में सुदीर्घकाल तक रहे।

०

हादिक कामना

मन्मथकेसरी

मन्मथकेसरी मुनिश्री मिश्रीमलजी म० ना० की दीक्षास्पर्णजयन्ती के सुभावसर पर आयोजित अभिनन्दन-समारोह सदा उचित है। मुनिश्री के दर्शन करने और पावन प्रवचन सुनने का मुझे अनेक बार पुण्यवसर प्राप्त हुआ है। आपके प्रवचन आपके व्यक्तित्व के ही अनुपम प्रभावजाली होते हैं। माण्डव प्रदेश में आप निरन्तर धार्मिक चिन्ता से ताग्रत रहने के लिए प्रयत्नरत रहते हैं। आपके मधुप्रदेश में अनेक शिक्षा संस्थाएँ स्थापित हुई और चल रही हैं। साहित्यिक क्षेत्र में भी आपकी सेवाएँ सगाहनीय हैं। मन्मथकेसरीजी म० न्यायसवामी समाज के सुदृढ स्तम्भ हैं। मज्जन के प्रवर्ग मर्मरत हैं। हादिक कामना है कि मुनिश्री चिरकाय तक धर्मगुरु की शाना की वृद्धि करते रहे और अपने उच्च आचार-विचार से समाज का पथ-प्रदर्शन करते रहे।

०

f Bhokta

Jiva enjoys misery and happiness according to Vyavahara Naya. According to Nischaya Naya Jiva enjoys continuous Bhavas only. Broadly Jiva has the thinking and action in terms of attachment and aversion. Due to this these states of Jivas there is influx of matter in them. Jiva has to undergo misery or happiness as the fruits of pudgal karmas. As Jiva is an agent or doer of actions, it has to assimilate karmas. These karmas maintain a state of Sata (happiness) or Asata (misery) for coming incarnations. The fact that Atma is Karti and Bhokta refutes the doctrine of the Buddhist philosophy that an agent does not enjoy the fruits of karmas.

In this world we see that A is happy and B is unhappy. A is rich whereas B is poor. A is healthy and B is unhealthy. Why? Jainism gives satisfactory answer to these questions. The proverb As you sow so shall you reap or Jo jas karahu o tisa phal chakhi (Tulsidas) gives the proper reply. Every soul in the course of evolution is knower, enjoyer and the actor jñata, Bhokta and karta. In Sankhya school purusha as a chetana entity is knower and enjoyer. But he is not karta. Prakriti (pudal) is considered karta. Jain thinkers object to this view. They say if purusha is non active (Akarta) how can he become bhokta (enjoyer) of actions carried out by some other agency. Hence the tripolar declaration (jnata karta and bhokta) of Jain school solves all such problems.

g Samsarasth

Jiva or soul is mainly of two kinds—Samsara Jiva and Moksha Jiva. The soul with karmic bondage is Samsari Jiva. It has to adopt the cycle of birth and rebirth. It has to take birth in four gatis or classes. The chaturgati bhraman cycle is subject to birth and death. This cycle is called Samsara or Samsarnam Sansarah. Each samstic soul is born with a body and continues to live as embodied soul subject to growth, old age, decay and death when it has to quit its body in search of another body, it acquires another body consistent with and determined by its own karmic conditions. This Samsara Jiva associated with its own corporal existence is considered to be uncreated and therefore beginningless. For the Jaina materialist physician Samsara is Anadi. Other schools of Indian thought agree in this particular point that Samsara is Anadi.*

h Siddha

When the soul destroys all karmas by constant Tapa and Nirjara, it becomes free from karmic bondage. It attains intrinsic purity. This perfect self attains a state of existence which is permanent, immutable and incomparable. A Siddha has nothing to do with the cycle of Samsara. Moksha is a state of perfect liberation, peace and bliss.

Sri amī Samantabhadra defines Moksha —

Janam jara bhaya maraṇaś dukhāścācchīdyaśchāparimuktam
Nirvāṇam Shuddhī sukhi Nishkreyāsmishyate nityam

—Ratnakarand Sharavakachara 6-131

Mukta Jeevas enjoy four infinites—Anant Jñana, Anant Darshan, Anant Sukh and Anant aśya and enjoy them for ever. The following verse describes that every Mukta Jiva enjoys and will enjoy the true self with four infinites.



Vidyadarshan shakti swasthya prahlad trapti sudhi yujah
Nirati shaya nirvadyo, Nihshreyasamavasanti sukham

—Ratnakarand Shravakachara 6-132

Every mukta Jiva like purest form of gold possesses the magnificance and radiance of its auspicious soul

8 Urdhvagami

A Jiva which destroys karmic fatters becomes liberated It goes upward, right vertically to the end of Loka or universe

Ṭadanantaamurddham gachhatya lokantat

—Tatvarthasutram, 10-5

Being void of eight Karmas a Jiva finds eight qualities in it They are Samyaktva, Jñana, Darshan, Virva, Sukshma, Avagahena, Aurulaghu and Avyavadha corresponding to the destruction of Mohaniya Jñanavarana, Darshanavarana, Antaraya, Nama, Aayu, Gotra and Vedaniya Karma

The upward motion of a Jiva is due to four considerations 1) Purvaprayogata—like a potter's wheel, 2) Asangatvat—like an empty gourd coated with clay, 3) Bandhachchadat—like the castor-been, 4) Tathagatiparinamat—due to the soul's nature to go upwards, like the flames of fire Because of the non-existence of Dharmastikaya or the medium of motion the soul does not rise higher than the extreme limit to Loka or universe All Siddha Jivas enjoy four infinites individually in Siddhaloka This refutes the doctrine of vedanta which accepts one supreme being and other souls being part of it

Stages of Atma

With the development or decrease of Ratnatraya i.e. Right belief, Right knowledge and Right conduct, the soul has three stages

- 1 Bahiratma —The soul which accepts his body as soul It does not believe in good or bad deeds, punya or paap The lack of self-confidence and right knowledge leads a Jiva to the circle of chaturgatis
- 2 Antaratma —Antaratma is he who has faith in himself, who wants to attain salvation Antaratmas are of three types
 - (A) Uttamantaratma is he who has won over emotions, passions, avarice etc who has full faith in four infinites, who completely follows the principle of non-possessiveness and owns twenty-eight Moolgunas
 - (B) Madhyama Antaratma is he who has faith in Ratnatraya and follows five Anuvratas He is called Deshvrati Due to the chhayopsama Mohaniya-karma he cannot attain full conduct (purna charitra) like uttamantaratma
 - (C) Jaghanya Antaratma —It is also a laity or householder like Madhyama Antaratma He does not observe any vow Thus he is Abrati Still he has faith in his soul and strives for salvation without renouncing the social responsibilities

1 Paramatma—is of two types Sakal and Nikal Parmatma

- (A) Sakal Parmatma —At the end of twelfth gunasthana the aspirant d troya cth r ghati karmas and attains four infinites. This state is known as Sayog kevali because the activity of mind speech and body continue. A Sakal Parmatma is call d Arhat.
- (B) Nikal Parmatma —This is the highest stage of the soul. Here the soul is fr e from the bondage of Aghati Karmas. The soul kei n fr e from karmic bondage rests on the Siddhshila. Nikal Parmatma is the perfect self enjoying Anant Chatustaya.

Conclusion

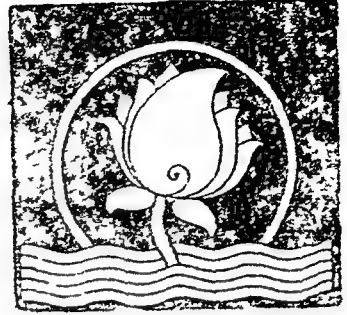
The chaos and the confusion in the present world is all due to the i norance about the essential qualities and characteristics of the soul and the knowled and faith that flow there from. The realisation of the self is the only p nacea for the solution of the crisis of confidence and collapse of national character. Live and let live as preached by Mahavira and other great saints can b p ssible only when the individuals realize that their soul is akin to other souls and all are striving for perfection. The dreams of saints will become null and void and the who universe will b thrown in to the abyss of univ rsal destruction if we throw compassion mercy non violence peace and love—the true attributes for a happy life—over board.

•



THE BUDDHIST CONCEPT OF VINNANA

Prof P. CHANDRA
University of Saugar



Vinnāna (variously translated as consciousness, cognition and intellect) is one of the most significant Buddhist concepts. Few others have attracted an equal amount of attention from the editors of the Pali Canon. This term has been used in a wide variety of meanings and contexts and no accuracy seems ever to have been maintained in this respect. Is it necessary, or even probable, that all the different imports of this word were prevalent at the same time? The Buddhist Canon, as is now almost universally accepted, was not produced at one time. There are discernible in it many strata of antiquity. Perhaps some ideas were peculiar to the earlier strata while others characterize the developed stage. *Vinnāna* is one of those few important ideas which seem to have been common to all the stages of the Canon's development. This can only mean that this particular concept must have had a process of growth all of its own. If it is true that there are earlier and latter strata in the Pali record and that *vinnāna* is referred to in both, a mere change of context would necessitate a change of meaning.

It is not intended here to take up the whole complicated issue of a sound and acceptable criterion for ascertaining the relative antiquity of Buddhist ideas. This problem has been with us for a long time already, and we are not much nearer its solution. Here, we can at best try to discover why some meanings of the term *vinnāna* should be considered earlier than the others. And this can be done only in general terms, on the basis of widely accepted tenets. Going into the merits and the details of the arguments, however, would be out of the scope of the present paper.

There are some considerations that may help us in this search. We have been told by generations of anthropologists that some form of animism—the belief that there is something within every living body which enlivens it—characterized all early religious thought. Questions based on this belief are found in as late a Buddhist work as the *Milinda-pañho*.¹ Similarly, there is little difference of opinion that there was a tendency towards a dualistic analysis of the human personality in almost all the earlier speculations on man. Dualism, it is said, comes naturally to a beginner in the field of philosophy. Finally, the movement of the thought-process is usually considered to have been from simple to complex, from homogenous, less exhaustive and less dogmatic to heterogenous, all-comprehensive and rigidly dogmatic.

1 *The Questions of King Milinda*, SBE vol 35, by T W Rhys Davids 1890, pp 86 ff, vol 36, pp 85-86, where water is held alive

the same name, should also be quite plain. In the standard and detailed analysis of the personality, it is never admitted that any one of the four non-material factors could replace the other three. All the four are on the same plane. When one of them assumes the role of all, as here, the conclusion is forced on us that we are dealing not only with two different meanings, but also with two levels of antiquity. Such basic change of import is hardly understandable otherwise.

Almost the same thing can be said about the often-repeated phrase to which Oldenberg has referred¹ 'This is my body, the material, framed out of the four elements, begotten by my father and mother but that is my consciousness (*viññāna*), which clings firmly there to, is joined to it'. This way hardly differs from the common man's understanding of the subject. There is nothing specifically Buddhistic in it. Dr Thomas believes that, "Either we have here a more rudimentary analysis, or the sensations and thoughts are implicit in consciousness"². That is rudimentary is borne out by its nearness to the dualistic mode of thinking, and if it is dualistic, then all the mental attributes are bound to be implicit in consciousness.

III

If consciousness is synthetically attached to the body, without any way forming a part of it, it can be imagined that, if transmigration were accepted in the earlier strata of Buddhist thought it would be left for consciousness to accomplish it. In other words, as the body cannot move from existence to existence, and as its destruction was visible to everyone, it certainly could not help in perpetuating the chain of existence. Consciousness, as we saw above, combines in itself all the spiritual functions, and hence if there is to be a moving on, it would be the moving on of the consciousness. And that is exactly what we find. Transmigration was accepted in Buddhism from the very beginning, and there are many passages which directly point towards *viññāna* when the need of finding out the link between two lives was felt. We are referring to the passages that talk about the "descent" into the mother's womb to form another name-and-shape. Foremost among such passages is the *Mahānidāna Sutta* of the *Dīgha-Nikāya*. The Buddha is explaining the links of the causal chain to Ananda. In what way does the *viññāna* cause the coming about of *nāma-rūpa* (name-and-shape)? "If *viññāna* were not to descend (*okkamissatha*) into the mother's womb, would *nāma-rūpa* take form therein?" He asks. In order to bring about new person, nothing short of the descent of consciousness into a new womb is needed. Further, if the *viññāna* become extinct after the descent the new person would not take birth. Consciousness is not only responsible for the origin of a new personality, it has to foster it into full growth as well³. This passage eludes all explanation unless some sort of a belief in animism is presumed on the part of early Buddhism. The very idiom is based on a prior acceptance of a living principle inside the body which moves on to form another person. And here also, it is difficult to see how consciousness could have been used in the sense it is used in the five-factor analysis. As we saw in the passage quoted earlier, the body is what is brought about by father and mother, but the consciousness comes from outside and joins it.

The way the Buddha mentions the descent in a *Samyutta* passage is interesting inasmuch as the Buddha, instead of offering it as an explanation, takes for granted as an established fact

1 *Buddha His Life, His Doctrine, His Order*, Tr by W Hoey, 1882, p 253

2 *op cit*, p 96

3 *D N*, II, 63, *D B*, II, 60

along with some disciples visited the scene—to find the *Māra* in the shape of a smoky cloud, going in all directions to find out where the *viññāna* of the deceased had established itself (*patitthan*) As it was established nowhere, the deceased being a liberated person, he failed to find it¹ It is no use arguing that the Buddha might have been speaking in figurative terms The physical reference is only too obvious And here, as earlier, the *viññāna* cannot be treated in the limited sense of being one of the four non-material *khandhas* It quite plainly represents the life itself The *Māra*, in fact, is the power that maintains the cycle of rebirths His failing to find somebody's consciousness means his inability to keep that person in the chain of rebirths And how does he come to lose his hold upon a particular individual? Through that individual's succeeding in eradicating the fetters, and thus rendering the *viññāna* untraceable And an untraceable entity cannot descend into a new womb It has been asserted by Rhys Davids² and Childers that it was not any part of the personality that transmigrated but the individual's karma However, the authors of this argument appear to have already decided against the possibility of the transmigration of the living principle, because they did find the transmigration of the soul maintained in the *Pāli* Canon, and they had to ascribe rebirth to something In the opinion Dr Thomas, 'no evidence has ever been given for this views'³

V

It appears that *nāma-rūpa* was another way of describing the personality dualistically After an animistic descent in the womb, the *viññāna* caused the arising of the *nāma-rūpa* complex Now what is *nāma-rūpa*? Sāriputta explains in the *Sammā-ditthi Sutta* by equating the *nama* with the mental attributes, *vedanā*, *saññā*, *cetanā* *phassa*, and *manasikāra* (feeling, perception, volition, contact, and attention, respectively), and *rūpa* with the four great elements⁴ This is good evidence of the fact that whatever the standard analysis of the person later became this dualistic interpretation was part of early Buddhism *Viññāna* is related to the two in the same way in which a transmigrating soul is related to the newly-created being in the popular terminology The soul causes the coming into being of a new person, but it never leaves the new person as long as he is alive Probably in the same way, *viññāna* also caused a new *nāma-rūpa*, but stayed in it in the form of the mental attributes Although *viññāna* was not equated with the *nāma*, it would not be unreasonable to suppose them denoting the same object, because the early Buddhists evidently realized the distinction between mental and physical, *viññāna* has elsewhere been identified with the mental factors Thomas also considers *nāma-rūpa* to have been adopted from popular usage, which failed to become the standard form for the analysis of the individual⁵

VI

Nibbāna or liberation affected the *viññāna* in an inexplicable manner It was certainly not annihilated, but it became untraceable This has been told in many passages describing many happenings As we saw above, in the case of the suicides, the *viññāna* became untraceable even to the *Māra* Two more instances are now dealt with

1 S N , 1, 122 and 111, 124

2 Hibbert Lectures, 1881, 4th ed 1906, p 92

3 op cit , p 105

4 M N , 1, 53

5 op cit , p 97

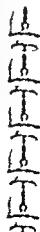
In the *Udāyapajjā Sutta* we are told that after winning the truth the Tathāgata's body (*kāya*) remains but that what binds him to rebirth is no more (*sa dāna ttha tti*).¹ If it had become untraceable after death, what is there next? And what is that which would be an untraceable² after death? Obviously not the body but some other factor which must have been there along with the body and on which depended the future becoming. That factor could only be the mental constituent or *vinnaṇa* although this has not been specified in as many words. *Udāyapajjā Sutta* is more clear. When his (a monk's) heart is thus delivered, not Indra or Brahma or Iśāpati with all their trains can succeed in tracking down aught even which I would call a truth finder's consciousness. And why?—Because he says I already have and now the truth finder is untraceable.³ Both these passages clearly define the role of *vinnaṇa* in transmission. As long as something is left on which a person's *bhava* could depend in other words as long as there are ignorance, craving and the *dukkha* present in him, he cannot be liberated. After death such a person's consciousness will under the sway of the *Māra* which means that it will move on to inhabit another womb. But if that person has conquered the *saṁsāra*, his consciousness will have no support and will thus be in a condition immune from the unpleasant liability to move on.

That the consciousness can persist only through depending on some object appears to have been clearly recognized in the Canon. Thus in *Samyutta Nikāya* we learn that it is vitality which furnishes a station for the consciousness, thus enabling it to grow and bring about the perpetuation of the sense of suffering.⁴ There is no rebirth if the consciousness is refused a standing space. Similarly at another place the factors of body, perception, feeling and predilections are declared to be the home of consciousness and thus the latter becomes a home haunter.⁵ This can only surmise that at least some considered consciousness to be more fundamental than the other factor. Does it mean that there were two levels even among the five factors? It is declared later that it was through attachment to body and the *sahāras* (pre-disposition) that the *saṁvāsa* passed. There could be no coming or going or the decrease or the relinishing of consciousness without the other four factors. I abandoned lust for these four one cuts off the platform for consciousness and rebirth is no more.⁶ Almost the same idea is put forward in the *Āpatti Sutta*⁷ where *vinnaṇa* is compared to a seed sown in the field of karma which is fostered by the moisture of craving and thus brings about rebirth.

It appears that all the passages here referred to are coupled with body dualistically or is treated as more fundamental than the other factors or finally it is a needed key role in the transmission should be considered as intimate at an earlier stratum of Buddhist teaching. The developed scholastic doctrine has assumed⁸ none of these characteristics. No matter how inferior level these two currents are in the Canon they can be sorted out by close examination. But this should not be understood as a denial of the modification affected by the Buddhist monks in the medieval and colonial period of the 19th century. It is a serious thing which

1. DN 1.46.

2. MN 1.16. 3. SN 12.1. 4. SN 12.1.



डक मिश्री और सघ

श्री सुरजचन्द डालो

मगन व मिश्री स वन नटने र परत वन मिश्री तो मगर नी प्रमाणित हुं । सार माधुमार्गी मघ का ही म बला गिया । राजस्थान का पुन पुन घ घ बना गिया । कौलाहल पूष वातावरण म भी अपने र का एसा धारा कि समाज उनकी गामा गात करने ग्या है अभिनन्दन मर्षित कर रग है । यदि सघटन मुन र । ता इम व मिश्री म वतना तावत है कि ममत्ववाली मरवा पर उगने ही उमम म खून के स्थान पर घमम भरन ग । उमी छेकाय रा सघ की भाव मजबूत जम ।

उम पर पान गन मुख और पुण्याय व मर भवन निर्माण हा ।

॥

श्रद्धा सुमन

विज्ञान भारित

हिन्दवस्तु श्री० काव० सी ए

बिरागी । ससार व ममस्त जीवधारियों व बोध प्राणो रो आर्य वर देने वाले सी व एष मान के ना का सुमन तो दिया है और अपने अतीव पान व नवा व प्रकाश का अग्नि स नीलवठ की तरन विन के व न रूप कुममायुष को मरम पर गिया है ।

मोगी । तुम्हारा तपस्या की अनन्य तजपुत्र निरणा रा वातरवि की विविधवर्षी आगे व रमिया म न पठ नी है और सताव व मिनि पिपरा का अपने गानकी मौन्य रा मरुत वर दन वाता जगमाहिनी साध्य सुपमा रा पर तुम्हारा तपोभूमि म उतरने व पूष ही यामिनी की वाजिमा म विनीत हा जाती है । मयजय । अनन्त मूह्य मातिया क स्वाभा सम की हरे अनामिकाय म तुम्हारा यगागान यावी है और मविन व माग का प्रगस्त ने गानी तुम्हारे चरणों की रज अमर लाज क अधिपति अपने मस्तक पर ग्या कर कृताय होने हैं । है तपोघन । ही चरणा म माना निरन म प्रस्फुटित श्रद्धा व सुमन समपिन हैं जिह सारा वरना ।

४

रुधरकेसरी अमर हो

गाह होराचन्द भोक्तमचन्द गोपपुर

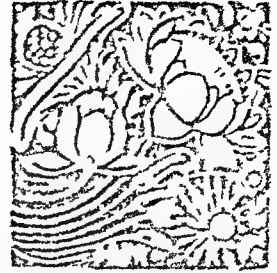
पूय गुप्त मरुधरकमराजी म का अनुगामन वग वठार जागनी तव वडर माग्म जना है मगर तिमन्तमाण र गि मनीव निवारी है । पूय गुप्त व पत्रों का हमार पुवशा पर वृषा यनी री है उगी प्रार दव की म पर है मार पुवजा की और मारी मरु व व पुवशा और मरु व प्रति जिनता नीर व मी जडा किन है ग्या । गायकन । वी ता सनी । मारी हार्ति वामनाम है नि पूय गुप्त अमर वन गिम्न मानय माज का मग पयप्रगन हाता र तीर वयाय का माग मिजता रहे ।

॥



THE PLACE OF YAKSHA IN ANCIENT DEMONOLOGY

R. N. MISRA
Saurashtra University



Yakshas have been variously designated, sometimes broadly, and sometimes specifically, for instance, *rumajara*,¹ *vaisrevaṇ kāksha-detas*² or *āyānācava* or *churavatas*³ or *ruksha-detas*⁴. This group of words indicates that Yaksha formed a kindred group of *detas* (Amarakosa I 16) along with other various gods, such as *deva*, *Yaksha*, *Nāga*, *Gandharva*, *Apsaras*, *Asura*, *Kinnara*, *Suparna*, *Siddha*, *Siddhi*, and *Vidyadhara*.⁵ Some of them are older as demi-gods than Yakshas. It would be interesting to study how the Yakshas may have derived some of their characteristics from them. The Yakshas shared characteristics with the Gandharvas in so far as they liked fragrance.⁶ They both were the fertility deities and created

1. *Aṅgīrśvede* VIII 10 28 (Itaregana in the *Paippalāda* version) *Meṇubhāro* XVIII 4 18.
2. *Bhagavatī Sūtra* III 7 167 p. 166.
3. *Vinaya Pitaka*, I 277, D I 116 S I 91, *amanussa* is a Yaksha, a spirit, a ghost. The commentary explains that "the object of Yaksha or men, who, being departed, desire to return" of *Vinaya Pitaka* I p. 117 note 2. According to the *Pali English Dictionary*, *amanussa* is "not human being (but not a sublime god either) being half-deified and of great power, regards influencing people (partly helpful partly hurtful)".
4. *Uttarādhyayana Sūtra*, 36 206. The list of *Vyantara devatā* of *Tattvārtha Sūtra* IV 1-12 which enumerates four orders of gods of Jain pantheon, namely *bhavanatās*, *vyantara*, *Jyotiṣhka* and *devatā*. Each of these four classes has ten grades, viz., *Indra*, *Sāmānika*, *Trāvastrimśa*, *Pāriplava*, *Ātmarakṣa*, *Lohpāṇa*, *Anika*, *Prakīrṇaka*, *Ābhīyogya* and *Kilvishaka*. The gods of the *Vyantara* region are *Kinnara*, *Kimpurusha*, *Mahoraga*, *Gandharava*, *Yaksha*, *Rākshasa*, *Bhūta* and *Pśāca*. All these seven classes of *Vyantara* gods except *Rākshasa* live in the uppermost stratum of the first earth *ratnaprabha*.
5. *Dīgha Nikāya*, II 254-257. The word includes other demi-gods such as *Naga*, *Supanna*, *Yaksha*, *Asura* and *Gandharva*.
6. *Petavatthu*, II 9. Cf. also Coomaraswamy *Yaksa* 2 Addenda p. 7.
7. Some of these gods are *navāsikā* gods, "genii loci", in the Buddhist sense of the term. Cf. Bailey H. W., *B. S. A. O. S.*, Vol. XIX (1957) p. 50 ff. *Jātala*, V 171 uses a word *bhūtabhavyāni* i.e. fully developed and embryo deities which may include some of the deities of the above list. For *bhavya* as a class of gods cf. *Viśṇu Purāṇa*, III 12.
8. Cf. *Bṛīhathāśloka-saṃgraha*, XIX 140 p. 297 (Yaksha-Kardama).

Nagasena declares that there could be just as one lamp can be lighted from another or a pupil can learn a verse from his teacher¹. In both these cases one thing or person is causing something in another without any actual movement. No descent is here spoken of.

That the Buddha was teaching a new doctrine is clearly hinted by the force and vehemence that he used against the popular conception represented by Sati. Could it be that the Buddha and Sati were talking of two different objects? What we learn about the arising and naming of consciousness here would lead us to believe that it is fallacious to talk about the consciousness as we do when we refer to descent or even to untraceability. We should speak only of so many consciousnesses each produced by and named after a particular sensefaculty. How shall we reconcile these apparently incompatible ideas? There is at least some possibility that at some earlier stage in his career the Buddha did accept *vinana* in the then current sense. Sati must have concluded that if the Buddha had gone to that extent in agreeing with contemporary thought he would go all the way. Whatever it may be it does not seem that the same stratum of ideas is reflected in the earlier passages and the present one.

A NOTE ON ABBREVIATIONS AND REFERENCES

- D N** Dīrgha Nikāya Edited by Rhys Davids and Carpenter 1890 reprinted 1939 in three volumes
- D P** Dialogues of the Buddha Tr by T W Rhys Davids and C A I Rhys Davids in three volumes SBB vols 2 3 4
- M N** Majjhima Nikāya Edited by V Trenckner and Lord Chalmers in three volumes reprint d 193
- Furth Dial** Further dialogues of the Buddha Tr by Lord Chalmers 1896
- S N** Samyutta Nikāya Edited by L Feer in five volumes reprinted 193
- K b** The Book of the Kindred Sayings Tr in five volumes by Mr Rhys Davids and F L Woodward 1917 1930
- A N** Anguttara Nikāya Ed by R Morris and E Hardy in five volumes 188-1900
- G S** The Book of the Gradual Sayings Tr by F L Woodward and E M Hare 193 1936



Rākshasas¹ and also the Pisācas stand in close proximity with the Yakshas. Rākshasa is 'by far the most frequent generic name in the *Rigveda* for terrestrial demons and goblins'² They, like Yakshas have beastly or birdly forms³. Sometimes as Rākshasas destroy offsprings⁴ so the Yakshas are dreadful on those accounts⁵. Both have been regarded as having the most uncommon appearance and monstrous deformity⁶. Their food-habits too are akin. Thus, the *Mahābhārata* (XIII 101-60) tells the food of Yakshas and Rākshasas must be a mixture of meat and liquor. In the same context (XIII 101-0) it is said that the *aguru* scent was a choice of all Yakshas, Rākshasas and Nāgas. As for the Pisācas, atleast some common habits with Yakshas may be discerned in them too inasmuch as they ate raw flesh or corpse⁷. These parities between the demi-gods or demons in their Vedic conception and Yaksha in their Vedic and subsequent conception confirm that Yaksha was a compound of different, and in essence disparable ideas that Yakshas obtained different elements of various demi-gods to contribute towards their own ultimate and mature personality. This absorption continued for long. As a matter of fact, this process of mutual subsistence sustained the Yaksha cult to survive the grim struggle for existence with the subsequent cult gods e.g. Śiva, Vishnu, Buddha, and Tīrthankaras. These later gods exerted their influence to dislodge the Yaksha cult. Although this struggle had some abiding effect in the reduction of prestige of the cult it could not be completely wiped off.

1 Kubera-Vaishrava, the king of Yakshas according to his fully developed conception, is earlier called the king of Rākshasas. Cf. *Śatapatha Brāhmaṇa*, XIII 4.3.10 *Saṅkhāyā*, a S S XVI 2 16-17, *Āśvalāyana* S S uttarasatkaḥ IV 7, this transformation of Kubera confirms the statement of Keith, *Rel and Phil of Veda and Upanishad*, p 181 in reference to S 1 33, where Pisācas replace Gandharva, that "this is the case where demons have been allowed to obtain a name which is not theirs by their right, and which has been as a result of some obscure or vivid contact". This proximity between Yakshas and Rākshasas helps their reciprocal identification. Thus the *Krodhavasas*, 'Northern Rakshasas' (*Mahābhārata*, III 152 20, V 50 24) are implied as Yakshas (Ibid, III 155 23). Hopkins has remarked that "Yakshas and Rakshasas in the account of battle (in the *Yaksha yuddha parva*) are exchangeable terms". The relationship between Kubera and Ravana, the son of Pulastya in the *Rāmāyana*, is too well known but whereas the former is called Yaksha, the latter the Rākshasa.

2. Macdonell, *op cit*, p 162

3 Compare, Suciloma 'Porcupine' or Khara 'donkey' in *Sutta Nipāta*, Hare, II 5. Gardabha in *Gilgit Mss* III Part I p, 16 and Rākshasa in *Rigveda*, VII 104, 18-22

4 *Atharvaveda*, VIII 6

5 *Jātaka*, nos 510 & 513, *Gilgit Mss* III Part I p 16

6 Compare Yakshas in the *Rāmāyana*, I 33, 18, *Rasavāhinī*, p 99 ff and Rākshasa in *Atharvaveda*, VIII 6

7 Compare Pisācas in *Atharvaveda*, V 29. 9 ff, Yakshas in *Visuddhimagga*, II. p 665; *Gilgit Mss*, I p. 13, *Jātaka*, III 132, V. 257. However it has been remarked that "In many respects they (Yakshas) correspond to the Vedic Pisācas though different in many others and of different origin. *Pali-English Dictionary* sv *Yakkha*

offspring¹ and had the same region as their habitat² they possessed women³ had control over speech⁴ and possessed the highest wisdom⁵ as well as great beauty⁶. Lastly they were both music lovers⁷. The Apsaras etymologically meaning 'moving in waters' *ap sārini*⁸ and being the celestial water nymphs according to their old-⁹ conception also have certain common features with the Yakshas. In the post Vedic literature they are very often spoken of as frequenting forests, lakes and rivers; in the later Samhitas their sphere extends to earth and in particular trees¹⁰. They like Yakshas inhabit banyan and the sacred *śvātthī* tree in which their cymbals and lutes resound¹¹ or else they inhabit *udumbara* and *plaksha*¹² trees. Like Yakshas dancing, singing and playing are their favourite pastimes¹³. Then both Apsaras and Yakshas are fond of dice and bestowal at play¹⁴ both are capable of causing mental derangement¹⁵ great beauty¹⁶ as both are they are occasionally enjoyed by human beings¹⁶. The Vedic

1. *Pancaviṃśa Brāhmaṇa* XIV 3-1 where Gandharvas along with Apsaras are prayed for granting offspring and Yakshas in the *Vipaka Sūtra* VII 23 p 84 f.
2. *Gandharvas dhruve padam* *Rigveda* I 22 14 Sayana explains *dhruve padam* as *antarīkṣhe* and quotes a statement of *Nṛsiṃha Tapasyopaniṣad* I 2 that the sky is inhabited by groups of Yaksha, Gandharva and Apsaras. *Allo Sūtra Nipāta Comm* I 270 (*Ākasaṭṭha Vīmāna*).
3. *Gandharva* *Rigveda* X 8 40 44 and *Yaksha* in *Dharmapada Comm* III 208 f. *Jātaka* VI 194.
4. *Gandharvas* are said to impart upon women in suspicious speech according to the *Yājñavalkya Smṛiti* I 3 71 in the marriage ritual. Cf. *Kubera Mahābhārata* III 170 1 ff. *Śānti Parva* 5 3.
5. *Gandharvas* are described as the receptacles of secret. *Ātharvaveda* II 1 2 and *Yakshas* are repository of wisdom they ask pungent questions regarding existence of *Yaksha Prājña* *Mahābhārata* III 96 297 *Sūtra Nipāta* Hare I 9 10 II 5.
6. *Gandharva* *Śatapatha Brāhmaṇa* XIII 4 3 7 and *Yaksha* in *Meehāduta* II 19.
7. *Gandharvas* are celestial singers in epics but not so in the Vedic literature. Macdonell *Vedic Mythology* 137 *Yakshas* in *Vimānatatthu* III 4 ff. *Vimānavatthu Commentary* 131 f.
8. *Yaksha* *Nirukta* V 13 *Rigveda* X 10 4 calls them *āpya yashā* aqueous nymphs.
9. Macdonell *Vedic Mythology* 134 *Vedic Yakshas* too are immenely connected with waters. Cf. *Ātharvaveda* XI 2 24 GB I 1.
10. *Ātharvaveda* IV 37 4 5 for *Yakshas*.
11. *Taittirīya Saṃhita* III 4 8 for *Yakshas*.
12. Cf. *Yakshas* in *Bhārata Nāṭyaśāstra* V 20 47.
13. *Apsara* *Ātharvaveda* IV 38 *Yakshas* in *Jātaka* VI 137 *Kāthāsaritṣagira* IX 1.
14. *Apsaras* *Ātharvaveda* II 2 5 for *Yaksha Sūtra Nipāta* Hare I 10 p 9 *Caraka Samhitā* *Nidānasthānam* VII 11 10.
15. *Apsaras* *Śatapatha Brāhmaṇa* XIII 4 3 8 *Yakshas* *Manjusrīmūlākalpa* I 100.
16. *Apsaras* in *Rigveda* X 95 10 17 *Yakshas* in *Manjusrīmūlākalpa* II 293 3 *Bṛhatkathā śloka-samgraha* XI 15 ff and XIV 130 ff.



In the epics the Yakshas are found braving shoulders with Indra in being the opulent repository of wealth. As lord of wealth Kubera shared the role of Indra¹ with whom he shares the northern districts. Indra rains gold in the epic and his wealth is proverbial. He is sometimes specially grouped with Kubera Dhanesvara as contrasted with other divinities.² But soon Kubera the lord of Yakshas supplanted the other gods e.g. Indra Yama and Varuna³ and became the norm of exhaustless wealth.

A common list of attendants is encountered in the *Mahabharata* in connection with the Yaksha king Kubera and Karttikeya. Thus one of the attendants of Karttikeya as well as of Kubera and some of the latter's *grahas* (III 219-42) are all called *Dhanada*. While one attendant of Skanda is called *Vasija* the giver of wealth still another has the name *Pingakshi* an epithet of Kubera.⁴

The Yakshas and Deva are inseparably interconnected by their nature and attitudes as well as in carrying that designation.⁵ The elements of tree worship which had been considerably popular during the prehistoric⁶ the chalcolithic and the Vedic age⁷ have been found in the Yaksha cult. Sometimes the deity living in a tree has been called *devata* but that can be identified as Yaksha⁸ from its various attributes. Besides there were certain common features between the tree spirit (called *devata*) and the Yakshas such as that they granted wishes and their mode of worship was more or less similar. Just as trees were the abodes of the spirits they were also the abodes of Yakshas.

- 1 Indra is *Dhanada* and *Dhanapati* in *Rigveda* I 3^o 2
- 2 *Mahabharata* XII 29 2 f
- 3 Hopkins E W *Epic Myth* p 116
- 4 *Ibid*
- 5 Cf *Mahabharata* II 5^o Appendix I 37^o. For a proximity between Kubera and the Mothers Cf Hopkins *op cit* I p 140
- 6 *Ibid*
- 7 *Ibid* p 145 20
- 8 For details Cf my paper 'A Semantic study of the words Deva and Yaksha' *Madhya Bharati* 1959 p 1 ff. The words Yaksha Devata are identical and voluntarily applicable for each other Cf *Kindred Sayings* I 273 9 note 1
- 9 Sri S K Pandey of the Department of Archaeology University of Saugar has collected a number of prehistoric rock paintings from Madhya Pradesh many of which indicate the idea of tree worship
- 10 *Rigveda* X 97 *Atharvaveda* VI 136 1 *Taittiriya Samhita* II 15 (Plants hinder child birth and their favour is procured by offering an animal victim). Cult of *Vanaspati* in *Rigveda* X 61 8 Cf also Keith *op cit* p 181 ff and Shine *Foundations of the Aryan Civilization* B O I Poona
- 11 *Petarattu* II 9. In cultures also sometimes god of a particular tree is called *Yakshi* as for instance Yaksha Candramukha of *Vakula* tree Cf *Sivaramamurti Amaravati Sculptures* p 8





Yakshas have thus many demonological traits. It may be pointed out here that Yaksha is not always a personage. It indicates, at times, a pure and simple word having an appellative sense. The wholesale demonisation of Yaksha came only at the later stages. In some cases—as for instance, in the Barhut labels, Nāga king Virūdhaka has been designated 'Yaksha'. To explain this anomaly Barua had suggested that "term-Yaksha has been used in the Barhut labels in a special sense to denote a mighty hero or warrior"¹

Historically, Yakshas have been called the "remnants of ancient demonology" and regarded as "of considerable folklorist interest as in them, the old animistic beliefs are incorporated and as they represent creatures of wild and forest"². It may suffice here to say that their demonological features are portrayed by their food habits their supernatural powers, physical features such as unwinking red eyes, the legs turned the other way, their malevolence as well as their beneficence and many other similar attributes and modes of worship etc. A rich folklore has also gathered around the personality of Yaksha as indicate his numerous references in the Brahmanical and non-Brahmanical texts. Mention may here be made of the *Kathāsaritsāgara* the *Jātakas* and the *Bṛhatbathūmañjarī*. In the folklore as in literature traditional beliefs on various aspects of Yaksha exist in different parts of India, particularly in South where even the word *Yaksha* has been retained. The Yaksha as a potential malefic or village god exists in present times in all the villages of India either in the guise of different names or under specific terms such as *Jakkhatyya* in the Mathura region³ or *Jakkha* in Gujerat⁴. Among the individual Yakshas mention may be made of Mānik Pir (Manibhadra Yaksha) whose worship is still very much in practice in Bengal.

o

1 Barua and Sinha, *Barhut Inscriptions*, p. 66

2 *Pali-English Dictionary*, sv. Yaksha

3 Prof. K. D. Bajpai has kindly given the information about it

4 Crooke, *Religion and Folklore of Northern India* p. 194. Crooke further says that in the Western India are worshipped such maleficent goddesses as Jakhin, Jakhai, Jolhai, Mokai, Nagulai or Alavantin. About the village gods cf. also Whitehead, *Village gods of South India*

appears that Yakshas could not dislodge Guhyakas their predecessors from their proximity with Kubera so they chose to coexist with them and earned their connection with Kubera as along with the riches. Later they have been identified with each other.¹ Kubera is however referred to as Guhyashilpa in the *Mahabhashya* of Latanji. There seems a complete identity between Yakshas and Guhyakas in so far as assumptions of any form² possession of riches its concealment and also the service of Kubera are concerned. They are more or less synonymous. However the Yakshas inherited the lordship of Kubera from the Guhyakas as they inherited many other features already described.³

Kumbhandas were the other demi gods in the service of Kubera. The name has an interesting etymological interpretation. It is said that they had huge stomachs and their gullets were as big as pots hence their name.

This attempt at comparison and reciprocities between Yaksha and a number of other demi gods shows that Yaksha cult swelled as a result of borrowings. Although Yaksha is only Yaksha he is none of Rakshasa, Ganharva, Apsaras, Isika or Kinnara but he is so closely associated with this kindred group that it is sometimes difficult to alienate him from another. Precisely all these demi gods or cult personalities are manifestation of a folk element in the society and therefore a unity binds all of them. There has never been any remarkable difference among folk gods upto the present times because of the factor of their being manifestation of the simple popular beliefs. That the Yakshas were very much near the masses or the tribal settlements of India can be specifically substantiated. The Jaina work *Avasthaya Churni* informs us that one Āṭambara Jakkha also known as Hiraṇka Jakkha was worshipped by Mātangas who were a low class people. Similarly Dombas worshipped a Ghanṭika Jakkha.⁴

It is thus beyond doubt that Yakshas and other demi gods were the gods of aboriginal settlers of India and with this idea in background it is perhaps not anachronistic to believe that the personality of Yaksha as also of other demi gods should have imbibed the aboriginal beliefs. For this reason probably various folk gods have palpably similar characteristics which so much overlap that sometimes a dividing line is difficult to draw among them.

- 1 The *Varu Purāṇa* (Ch. 63) says that Pūnyajana Guhyaka and Devajana Yakshas all under the category of Guhyakas. For more about Guhyakas see Hopkins *op cit* p. 119. Jain J. C. I. *in Ancient India* p. 218 f. and *Kathasaritsāgara* I App. I where it is said: They are often synonymous with the Yakshas.

Compare *Mahābhārata* III 147. 2^o and *Manuśrīmūlakalpa* III 6^o.

- 2 Kubera on the other hand was earlier the kind of Rakshasas. Cf. *Satapatha Brahmana* XIII 4. 3. 10 and *Supra* p. 4 note 6. Such types of adjustments pertaining to different cults and classes are as interesting as they are numerous.

- 3 *Pali English Dictionary* sv. Kumbhanda.

Cf. Shah U. P. J. O. I. III (1) p. 19. In Karnataka there is still a *Jakkulu* community having ballad concert and theatrical activities as their traditional pursuits and it has been surmised that they may be the descendants of ancient Yakshas. I am thankful to Dr. S. V. Joga Rao of Andhra University for this information. This Modern habitation of *Jakkulus* further corroborates the tribal connection of Yakshas.



is obviously the river Krishnā known also as Krishnavena and the place has been identified with Mahimanagara in the Satara district. When this message reached them, they discussed the matter and chose Pushpadanta and Bhūtabali, two scholars of repute, to be sent to Dharasena.

To these two Dharasena revealed the canonical knowledge and they were asked to reduce it to writing. The subject he dealt with is said to be *Mahākarma-prakṛiti-prākṛita*. After bidding farewell to the teacher and receiving his blessings, the two saints set on their homeward march. They first halted at Ankuleśvara (modern Broach) where they spent the rainy season.

Dharasena was living in the Chandra-gupha (Moon cave) of the mount Ūrjavat in Girnar i.e., Junagadh. It may be noted that Girnar is the place where the inscription of the grandson of Javadāman (either Damaysada or Rudrasimha I), of the 2nd century A.D. is found, besides the famous record of Rudradāman. This record refers to men who had attained perfect knowledge (*Kevali-Jñāna*) and were free from *Jarāmaraṇa*, old age and death. This record is found engraved in a cave wherein symbols like the *svastika*, *bhadrāsana*, and *mīnayugula* are found carved suggesting that it was probably the abode of Jaina monks. It is probably here that Dharasena was residing. It may also be noted that this inscription is considered to be the earliest record that refers to the Jaina monks claiming the attainment of perfect knowledge.

When the rainy season came to a close the two monks rendered their march and of the two, Pushpadanta proceeded towards Banavāsī-desā while Bhūtabali marched on towards Dramiladesa, i.e., Tamilnad. Pushpadanta had been joined by his nephew Jinapālita who was also initiated into the order. It was at Banavāsī that Pushpadanta composed the first twenty cardinal *sūtras* relating to *Saṃprarūpana-adhikāra* which was the first of the eight *adhikāras* of *Jīvasthāna-khaṇḍa*.

It may be incidentally noted that according to the *Śrūtāvatāra* of Indranandi the two monks spent their rainy season at Kurisvara-pattana from where they proceeded further. This place has not been identified but it is probably the same as Ankulesvara. From here they marched to Karahata which is the same as Karad in the Satara district of Maharashtra. It was here that Jinapālita joined his uncle.

Jinapālita was sent to Bhūtabali by Pushpadanta after he had completed the *Sūtras*, with the manuscript he had prepared. It was left for Bhūtabali to complete the work which came to be divided into six *Khaṇḍas*. Hence, it came to be known as *Shatkhanda-gama-siddhānta*. The work was completed on the fifth day of the bright half of the month of Jyeshtha and this day is a day of festival among the Jainas. It is called *Śrutapanchami* and on this day the Jaina scriptures are worshipped.

It has been said that Pushpadanta was responsible for the redaction of a part of this canonical work, and that he did so after he migrated to Banavāsīdesa. Where exactly in Banavāsīdesa he lived is not known and it is probable that he settled down at Banavāsī itself which by then was a prominent centre. We are not sure also as to when exactly these works were reduced to writing although obviously it was during the last years of the 2nd century A.D.

It is seen above that the work of reducing the canonical knowledge to writing took place probably only after c. 156 A.D. The Girnar inscription referred to is assigned to about the 2nd century A.D. It is tempting to suggest that it was at that time that Dharasena was

BANAVASI AND JAINISM

B. R. GOPAL

M. A. Ph. D. Dharwad



Banavasi is now a small town in the Sirsi Taluk of the North Canara district of the Mysore State. It is one of the very few cities which has a continuous history from at least the historical times. It has been referred to also as Vaijayanti and is mentioned in the Epics of India specially the *Mahabharata*. Banavasi was one of the important centres of Buddhism right from the days of Asoka. Not only do we know from Buddhist literary sources like the *Mahavamsa* that Asoka sent his missionaries to Banavasi besides several other places but we have also an epigraphic evidence in the inscription found at Nagarjunakonda, the Buddhist centre in Andhra Pradesh. This inscription is engraved on the pedestal of the Lord Buddha wherein it is stated that the Buddhist missionaries converted hordes of people of Kashmir and several other countries and regions of which Vanavasa i.e. Banavasi figures as one.

It is however not so well known that Banavasi was also a centre for Jainism. In the history of the Jaina canonical literature of the Digambara tradition Banavasi figures as a prominent place. Original canonical knowledge was preserved only by the word of mouth passed on from the Guru to his disciples and this continued right upto the middle of the 2nd century A.D. All the Digambara *Pastavals* begin from Bhadrabahu II (c. 37-14 B.C.) who had the knowledge of Nine Angas and his successor was Lohacharya (c. 14 B.C.-38 A.D.). Thereafter there were five *changanadharis* viz. Arhadbali, Maghaqandi, Dharasena, Pasupadanta and Bhutabali. Of these the last three Dharasena, Pushpadanta and Bhutabali are considered to have been responsible for the redaction of the surviving canonical knowledge. There is no unanimity of opinion among scholars regarding the dates of these Gurus. While some hold the opinion that they lived in the period between 38-136 A.D., others think that the monks who undertook this task have to be assigned to a period after 136 A.D. However, all are agreed that the original canonical tradition in the memory of authorised saints survived upto 136 A.D. and that whereafter no such saint is known to have existed.

An interesting story regarding this redaction of the Angas is told and it is in this connection that Banavasi figures prominently. Dharasena mentioned above was one of the very few who were considered as learned in canonical knowledge. It was feared that this knowledge may not be available to posterity unless somebody who was qualified enough could commit it to writing. With this desire Dharasena sent an invitation to the saints (*Ācāryas*) of the south who had assembled then at Mahima which is described as Venakatapura. Venā



प्रेरणा-स्रोत

रितुबराज कर्णावट, एडवोकेट

मरुधरकेसरीजी महाराज समाज के नवग्रन्थों में हैं। समाजहित में उनकी यत्नयात्रा निविघ्न श्रमाघ गति में मुख्याग्निपूर्ण चलती रहे, यह सभी समाजप्रेमी व्यक्तियों की आशा है। उन व्यक्तियों में भी समाज को उद्-
बोधित करने की उनमें अपरिमित शक्ति है। उनके दर्शन में कर्मठ जीवन विधानों की बड़ी प्रेरणा मिलती है।

नमस्कार शतवार

जतनगज मेहता साहित्यरत्न

हृदयगत स्फुटता से उठकर मेरा मन-भर गुरुदेव श्रीमरुधरकेसरीजी महाराज के चरण-रामलों में पहुँच कर एक अलौकिक शान्ति का अनुभव करता हूँ। आपके शान्तिध्व में शान्तिपत्र का अनुपमेय पात्र प्राप्त करना है। नमस्कार ! शत वार नमस्कार !

एक महान् क्रान्तिकारी विचारक व स्पष्टवक्ता सत

हकुमचन्द जैन, एडवोकेट, जोधपुर

पूज्यपाद मरुधरकेसरी श्रीमिश्रीमठजी महाराज जाने पहचाने जैन महात्मा हैं। उनकी मृदुता, उनकी सरलता व कठोर सत्यपूर्ण अभिभाषण में जनसमुदाय को वास्तविक मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। उनका नातिगरी सत्य बोले समाज के लिए बहुत लाभकारी मित्र हुआ है। जोधपुर में ही अभी हाल के प्रवास में आपकी सत्प्रेरणा व प्रभावोत्पादक वाणी के प्रभाव में आगबिलुआता का समुचित संचालन होना प्रारम्भ हुआ है। आपने जैनसमाज की महती सेवा की है। आप केवल मरुधरा के ही रहते नहीं, बल्कि समस्त भारतवर्ष के दीदीप्यमान नक्षत्रों में हैं। जैनसमाज की समृद्धि व जैनधर्म के उत्थान में आपका सहयोग बहुत रहा है। आपको स्मरणशक्ति भी बड़ी विरक्षण है। महावीर भगवान् ने आज तक की पट्टावली आपको कठम्य है। मरुधरा के महारत्न का वरद हस्त जैनसमाज पर अनेकों वर्षों तक छाया रहे और जैन समाज आपके रामों पर चलना रहे। मैं अपनी ओर से मरुधर के महान् सत, चितक, एवं प्रसन्न वक्ता श्री मिश्रीमठजी महाराज का अनन्त में विधिवत् अभिनन्दन करता हूँ।

मरुधरकेसरी और जैनेतर जनता

विमलकुमार राका, नीमाज

मानव में मानव के प्रति कितना प्रेम-प्यार, भवेदना और सहानुभूति होंनी चाहिए, यदि इसका मूल्यांकन करना हो तो हमें मरुधरकेसरीजी के दरबार में जाना चाहिए। मानव-मानव के साथ कैसा व्यवहार करे, इसका सही निर्देशन भी उनके प्रवचनों में दिया जा सकता है।

living. But all this is based on tradition which came into existence much later. Therefore it is not possible to be absolutely sure about it.

This traditional account of the redaction of the Jaina canonical knowledge is thus connected with Banavasi Jainism according to tradition had been introduced into Karnataka much earlier in the 3rd century B.C. when Chandragupta Maurya and his teacher Bhadrabahu came to the South. Before the establishment of the Kadamba kingdom the Banavasi region was under the sway of the Śātavāhanas in the 2nd-3rd centuries A.D. and thereafter under the Chutus. Traditions and legends incorporated in the literary compositions of the Jaina writers of later age suggest that the Śātavāhanas came under the influence of Jainism. Pratishthanapura i.e. Paithan which was their capital was a stronghold of Jainism. However this was in the Andhra country and there is nothing to show that the Banavasi region came under the influence of Jainism in this early period.

The tradition around Simhanandi who was responsible for the establishment of the Ganga kingdom suggests that the faith had continued its hold and it had facilitated his efforts in investing the princes Dadiga and Madhava of the Ganga family with royal authority and making them rulers of the kingdom. The date of the foundation of this kingdom has been much disputed. However there are reasons to suggest that the two earliest kingdoms of Karnataka of the Kadambas of Banavasi and the Gangas of Talakad came to be founded almost simultaneously in the early part of the 4th century A.D. However while the Gangas are known to be the followers of Jaina creed the Kadambas were definitely Hindus who worshipped Śiva.

Yet the Kadambas were tolerant towards other religions. The Halsi copper plate refers to a grant of land situated in the village called Kheta made by the Kadamba king Kakusthavarma to the Jaina general Śrutakirti. We have other records which register similar grants by kings like Viṣṇu Śavarma. Several grants of this king were issued from Vijayanagara Banavasi. He even had a *Jirdiya* built at Halsi. His Devagiri grant of his 4th year of rule is interesting because it registers a gift of the village Kālavandī which was divided into three parts each of which was given respectively to the great god Jinendra, the holy Arhat to the Svetapata-mahā Saṃgha and to the Vīgranthamahāśaṃgha Saṃgha. This indicates the existence of the Svetambara sect also in this part of the country from very early times.

But we know that a few centuries later Jainism became an influential religion in this part of Karnataka. In spite of this however so far as Banavasi is concerned it is surprising that there is no relic of such antiquity that would connect it with Jainism. All that remains now is a Basadi which is of a much later date and within the precincts of which a few nishidi stones are found with inscriptions of the XII-XIII centuries A.D.

The earliest of these records belongs to the period of rule of the Kadamba chief of Hāṅgal Kāmadeva. It is dated his 7th year of rule the cyclic year Pingala Māghaśukla Monday. The details of the given date are irregular but the equivalent Christian date would probably be 1109 A.D. January 14. On this day the record says that a follower of Jina whose name is not clearly passed away. It mentions *Dasi-gana*.

The second record refers to the death by *Sarādhā vidhi* of Bhogave wife of Tippiseti of Sateya who was a disciple of Akala handrabhajiṭṭaka of Konlak in Janavaya. Dāṣaga and Puntaka gachchhīa. The record probably belongs to the reign of Kadamba Kāmadeva and the





details of date given, viz , year 12, Durmatī, Kārttiā ba, 5, Monday, may possibly correspond to 1201 A D , October 18 The third record also probably belonging to the same chief, is fragmentary The extant portion refers to the cyclic year Īsvara, Vaisāl ha, su 3, Sunday probably corresponding to 1213 A D ?, April 10 This record is set up in memory of a Jaina devotee, Kāla-gāunda, son of Boppa-gāunda

Record No 4 refers to a Jaina teacher Nāgachandrabhattāraka of Mūla-saṅgha and Surastha-gana Other details of the record are not known as this also is a fragment The transliterated texts of these records are given below

I

- 1 Svasti Śrīmatu Kadamba chaḥ ravartī kaligalamku-
- 2 sa Kāvadeva [va] rsha, 7neya Pīṅgala samvatsarada mā-
- 3 gha śuddha pañchamī Somavāradam-
- 4 du Deśi-ganada mayābhara
- 5 mudra mudipī su

The rest of the record is lost

II

- 1 Svasti Śrīmatu Kadamba chaḥ ravartī kaligalamkuśa gamdara davanī Vīra-
- 2 [Ka] mavarshada 12 Durmatī samvatsarada Kārttiā bahula pañchamī Soma-
- 3 vāradamdu Deśi-ganada Pustakagechchha Komdal urd-ānvayada Sakalacham-
- 4 dra-bhattāraka guddī Tippisetī Sāteyana hemīlatī Bhogave
- 5 samādhivīdhīyīm mudī [pī] sugatī prāptīy ādalū
- 6 Mangala mahā sī sī sī

III

- 1 siraschumbī chandraclānarachārave trailokya
- 2 sambhave Svasti Śrīmatu Kadamba chakrava
- 3 Īsvara samvatsarada Vaisāl ha śu 3 Ādivara
- 4 ya Boppagāunda na maga Kālagāvunda

IV

- 1 Śrī Mūlasaṅgha vidita
- 2 tra Surasta sadgana nīsvara
- 3 Nāgachandra-bhattārakasya ta
- 4 kṛitavān achalam

THE HUNAS IN ANCIENT INDIAN LITERATURE

K. L. AGRAWAL
University of Saurgar



Homeless and lawless the Hūnas are most prominent in ancient Indian history. They disturbed the peace and order of the Indian people and during the last quarter of the 5th and the beginning quarter of the 6th Centuries ruled over the greater part of the North India. In order to have a clear picture of the Hūnas as described in ancient Indian literature the topic will have to be discussed fully.

Epics

Epics are our earliest sources where the mention of the Hūnas is found. A casual reference to the Hūnas occurs in one of the manuscripts of the Rāmāyana¹ though their elaborate description is never found. The next reference we find in the Sabhaparvan of the Mahābhārata where Arjuna is said to have led an expedition in the North West just as Raṅghu did in the Rāhuvaṃśa of Kālidāsa. But there the Bhlīkas, the Daradas, the Kambojas, the Rishabas and the Paramśhibas rather than Hūnas are mentioned as his main opponents.² Further in the same epic the Śakas, the Turāṅgas and the Kāntas are said to have presented horses to Yudhiṣṭhira on the occasion of his Rājāsūyayagña.³

1 The St. Petersburg Dictionary records only one reference to the Hunas in the Rāmāyana namely as a *varia lectio* in the Benares recension (ed. Gorresio Paris 181 V 40 a). Here instead of *भरतदास* one manuscript has *वन्धुदास*.

2 तत्र परमविशाला बाहीवान् पारशमानि ।
मन्त्रा परिषत्तं यथा च दुर्योधनम् ॥
श्रीराज पुत्रं तारुण्यं (बभूवु) यो नय गच्छत ।
दण्डात्तु बभूवुः प्रत्ययान्वितामनि ।
प्रागुत्तरादि यथा यथा यथा ॥
निर्गन्ति बने यथा तामराक्षसम् ॥
महाभारतमहाभारतानुविद्यापुत्रानि ।
महाभारतमहाभारतानुविद्यापुत्रानि ॥ *Mh. 2 47 19*

3 यथाभारतमहाभारतानुविद्यापुत्रानि ।
महाभारतमहाभारतानुविद्यापुत्रानि ॥ *Mh. 2 47 19*
महाभारतमहाभारतानुविद्यापुत्रानि ।
महाभारतमहाभारतानुविद्यापुत्रानि ॥ *Ibid. 2 4 6*

Wilson has pointed out that the Hūnas are mentioned along with the Yavanas, the Ghandhāras the Sauras, the Madras, the Kunindas; and at least two references are found in the Visnupurāṇa, that can be laid in the support of his contention. The author first gives the vivid description of India, which shows his fairhard knowledge of its extent, mountains divisions and rivers, principal nations and those living in the far east. Speaking of the Hūnas, Wilson says "By the Hūnas we are to understand the white Huns or Indo-Scythians, who were established in the Punjab and along the Indus at the commencement of our era as we know from Arrian, Strabo and Pto my, confirmed by recent discoveries of their coins"¹

Reghuz.msc

The greatest luminary in the galaxy of the Sans'rit poets is the poet Kālidasa whose work has not only been appreciated by the Indologists of his own country but of far and wide in the world. The mention of the Hūnas is found in the Raghuvarṃśa as bearded horsemen. Nearly twenty śloka's have been devoted to the description of Raghu's ambitious victory over the western tribes, including the Hūnas. The date of this poet is not certain, though "the balance of evidence is in favour of the view that he flourished in the sixth Century A.D." Prof. K B. Pathak has translated three verses referring to Raghu as follows:

- 2 Ibid., p. 194, II 3 17.

मौदीन मयदा हृणा मान्वा योगलवानिन ।

माद्रागमान्नदान्प्रष्टा पाग्नीजदयन् तज्ज ॥

Vajrapurāṇa also mentions the Śālas, the Tuṣāras (Tukhāras, the stock of Yue-Chi), Lampakas (a people akin to the Śālas)

नान्त्रान्नुपागन् लम्पकान्प ह्वान्दरदाञ्छकान् ।

एताञ्जनपदाञ्चक्षुः प्लावयन्ती गतादविम् ॥ *Vaṣupurāṇa*, 47.44

Also, तुषारान्वर्वरवान् लुप्तान्भारदाञ्छकान् ।

प्राञ्जनपदाञ्चक्षुः प्रावदिन्द्रोदयि गता । *Matsyapurana*, 121.45

3. Sircar, Geog. of Ant Med Indic, p 36

- ४ कण्ठादराज्यैव ह्या दावी न-हृत्का ।

तत प्रत्ये ऋदिर्गे भान्वातिव न्दुदिगम् ।

नरैर्नन्त्रं विवोदीच्यातु द्विगुप्यन्मानिव ॥

विनीताध्वयमानस्य निवृत्तीविशेषः ।

द्वयवर्वाजिन स्वर्वात्मनश्चन्द्रमकमगन् ॥

तत्र ह्यादरोव्राना भर्तृषु व्यक्तविश्रमम् ।

कपोल पाट्नादेणि वनूव रघुचेष्टितन ॥ 4.66-68

Cf *Ind. Ant.*, Vol XV, p 24, *New Ind Ant.*, Vol IV, p 36, *IHQ*, Vol XII, p 532;
Bhandarkar Commemorative Volume p 65

Thence I² a₂hu marched against the regions of Eubera. Subjugated the northern
king with arrows as the Sun drinks up the water with his rays.

His horse relieved of the fatigue of the journey by rolling on the banks of the
Varku (Indus) shook their bodies which had saffron flowers clinging to their sides.

There the redness of the cheeks of the Hūna queens testified to Rahu's achievement
in which his power was displayed against their husbands.

It is still controversial whether in the above cited verses the reading Sindhu is
correct or Vanku. Mallinātha the great commentator of the epic Dr. D. R. Bhandarkar¹
and Hodiwala are of the opinion that the reading Sindhu should be accepted. But Prof.
I. B. Patil² challenging the view argues that the correct reading is Vanku and identifies
it with the oxus. Dr. S. K. Aiyangar³ and B. C. Law⁴ have also endorsed this opinion. The
Nappur stupa inscription of Narvarma dated V 5, 1171 (A.D. 1104-1105) is more helpful
in ascertaining the correct reading. It elaborately describes the victorious campaign of
Iśakamadeva the brother of Narvarma. One of the verses refers to the encampment of
Iśakamadeva where his victory over the king of the Hūnas is mentioned. The translation of
the verse is as follows:

Being encamped on the banks of the Vanku which were even softer than nature
made them because the saffron filaments on them were withering under the rolling of the
team of frisky horses presented by the Turukas whom he had eradicated with ease he taught
the Hūna chief to utter most flattering speeches who on account of proximity of the Sasavai
was eloquent beyond measure and who was like a parrot shut up in a cage.⁵

The first line of the verse is simply a repetition of the Rahuvaṃśa. Dr. Buddha
Prakas⁶ remarks that a glance of the imagery and phraseology of these verses leaves no room
for doubt that the author of the Nappur prasasti who was probably Narvarma himself
had in mind the conception of Kālidāsa and recapitulated it in almost the same style.⁷ It
appears from above references that the Hūnas probably had some relation with India.
Dr. Buddha Prakash places this conquest of Rikshita the oxus between 300 A.D.
and 320 A.D. and that Kālidāsa's reference to the Hūnas in the *Megasthenes* is to that period.

D. 1. *Abhiṣ*

The *Abhiṣ* is common in the glorious days of the Cāṇakya. It is a
details about Astronomy, Geography, Architecture, Sculpture, Medicine, etc.

1. JPASB (Letter) Vol. XII (1913) pp. 70-3.

2. JPHIAS (1917) pp. 65-63.

3. Ind. A. (1917) p. 70.

4. P. J. (1917) p. 71.

5. C. C. J. V. of the 1st and 2nd p.

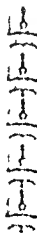
6. E. I. A. II p. 14.

7. *Abhiṣ* is a common in the glorious days of the Cāṇakya.

It is a details about Astronomy, Geography, Architecture, Sculpture, Medicine, etc.

f. 1. II. 3. 1. 1. 1. 1.

8. 1. 1.



Physiology, Physiognomy and several other subjects Twice atleast Hūnas are referred to, in this monumental work of Varahamihira as white Hūnas ¹

Chāndravjākaraṇa

A few references to the Hūnas are found in the Śūtra-vṛtti of the Chāndravjākaraṇa, where the phrase 'Ajvad-gupto (or jupto) Hūnān' is presented as an illustration of the incomplete use to express an event which happened in the time of the author ² Dr R C Majumdar says that this probably refers to the victory of Skandagupta over the Hūnas ³ Further, Somadeva, ⁴ a Jaina author, mentions a tradition that a Hūna king conquered Chitrakūṭa Dr Majumdar ⁵ suggests that this probably refers to Mihirakula

Chaturbhānī

The Chaturbhānī, a work of the later-Gupta period, records that the Hūnas had become prominent in Eastern places like Pataliputra In the Pādatāditakam of Śyamālaka, the Vita finds Bhaṭṭi Maghavarman, the son of Commander Senaka, opening the door and entering the house of somebody ⁶ It appears from this work that Ujjayini the Hūnas had become so powerful and predominant that they could break the house of any body and enter it The terror of the Hūnas was so much that local people could also take the law into their hands in their garb

Harsacharita

The Hūnas are referred to in several passages of the Harsacharita It is mentioned by Bāna ⁷ that Prabhākaravardhana was a lion to the Hūna deer The poet ⁸ again speaks of Rājyavardhana, who defeating the Hūnas of the North-West, had returned to the capital with limbs emaciated and long white bandages abounding with arrow wounds received in battle

1 उल्काभिताडिताशिख शिखी शिव शिवतरोऽतिवृष्टो य ।

अशुभ स एव चोलावगाणसितहूणचीनानाम् ॥ 11 61

गिरिदुर्गपल्लवश्चेतहूणचोलावगाणमरुचीना ।

प्रत्यन्तवनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेता ॥ 16 38

2. Belvalkar, System of Sanskrit Grammer, p 58 See, JRAS, 1909, p 114, JBORS, XIX, pp 115-16

3 The Vākātaka-Gupta Age, p 197

4 श्रूयते किल हूणाधिपति पण्यपुटवाहिभि

सुभटै चित्रकूट जग्राह ॥ ८८॥ (एल० एल० शास्त्री द्वारा सम्पादित) पृ० २६१

5 The Vākātaka-Gupta Age, p 197

6 "जये कस्य खल्वयमहूणे हूणमण्डनमण्डित आर्यं घोटक पाटलिपुत्रिकाया पुण्यदास्या भवनद्वारमाविष्करोति ।" (निर्वर्ण्य) आ ज्ञात एभिर्हिवावद्धश्चेतकाष्टकणिकाप्रहसतिकपोलदेशैर्वद्धकरैरमज्जमप्यसकृत्सज्जमिति साजलिप्रतिवादिभिर्लाटडिडिभि सूचित मेनापते सेनकस्य अपत्यरत्नभट्टि मधवर्मा भविष्यति । तन्न शक्यमेनमनभिभाष्यातिक्रमितुम् ॥

Ed by Dr Motichandra, p 181-82

7 "हूणहरिण केसरी" Calcutta ed, p 343

8 "हूणनिर्जयसमरशरवणवटपटुकैर्दोषधवलै" Chowkhambha ed, p 301

Kuvalayaṃalā

We find an interesting account of the Hūṇa king Toramāṇa in a Jaina work called *Kuvalayaṃalā* (A D 748).¹ It is mentioned in the work that on its bank (Chandrabhāgā) is the celebrated town of Pavāṇya where lived Śrī Torāya or (according to the Poona manuscript) Toramāṇa enjoying the sovereignty of the world.² Śrī N. C. Mehta³ says that Torāya is the celebrated Hūṇa monarch Toramāṇa who shook the Gupta empire to its very foundations and extended the sway as far as Alakā (C. 499-10 A D).

Naradaśaśāṅkacarita

Th. Paramāra Siyaka II is mentioned in this historical epic to have conquered a Hūṇa chief though his identity is not clearly known.⁴ Dr H. C. Ray⁵ however conjectures that the Hūṇa prince might have died in the battle with Paramāra king. The tenth Canto of this epic mentions that Sindhurāja too defeated a Hūṇa king. This fact is corroborated by the Udaipur Prasthī⁶ of the Alakā king.

Rājatarāṅgiṇī

Both the Hūṇa kings Toramāṇa and Mihirakula are referred to in the *Rājatarāṅgiṇī* the chronicle of Kashmir. One of the verse runs: Then his son Mihirakula a man of violent acts and resembling Kāla (death) ruled in the land—which was overrun by hordes of Mlecchas. Kāthana the illustrious author of this historical epic further mentions Mihirakula as a powerful king of Kashmir and Gandhāra who conquered India and Ceylon. His heart-rendering deeds of cruelty are briefly mentioned in the work. Dr M. A. Stein⁷ the translator of this great work thinks this Mihirakula is undoubtedly identical with the great ruler of the Hūṇas. After making a careful and detailed study of the evidences of the inscriptions of Iran and Mandsor with the dates of *Rājatarāṅgiṇī* Hiuen Tsang, Sung Yun and coins Dr Fleet⁸ also holds the same opinion. However Dr R. C. Majumdar is of different opinion. He argues that *Rājatarāṅgiṇī* also refers to Toramāṇa but he flourished long after Mihirakula about eighteen kings intervening between the two. The career of this Toramāṇa hardly fits in with what we know of the Hūṇa chief of that name from other sources though the age assigned to him fits in with that of later.⁹ In the absence of more corroborative

1 JBORS Vol XIV pp 98 ff

2 Tirammi tiyapayada Pavvayanāṃ rajanasohillā |
Jithithu thie muttā puhajam siritorayena ||
JBORS Vol XIV p 34

3 In a recently published paper it has been suggested that he (Toramāṇa) was a Huna king. IHQ Vol XXVIII p 33

4 अक हूणमकपूरमगूरुगुप्तमेमवलयम् ।

५ नावराजवधव दीशान् ययत्त य ॥ 1190

5 DHNI Vol II p 850

6 अयत्तमत्र मम नवात्तभीमनमनि हूणवृषनि वाञ्छनि । 1011

7 Ep Ind Vol I p 23

8 I 989 ff III 10 ff ed by Dr Stein

9 Translation p 43

10 Ind Ant Vol XV pp 45 ff

11 Classical Age p 3 Also The Vakataha Gupta Age p 197



dates it would, however, not be wrong to presume that Mihirakula of the Rājataranginī is identical with the Mihirakula of the epigraphs

Kathāsaritasaṅgāra

An interesting story¹ of the king, Udayana, is given in the Kathāsaritasaṅgāra, 'the Ocean of Story'. It is mentioned in this work that King Udayana who subdued the king of Sindhu at the head of cavalry, destroyed the Mlecchas as Rāma had destroyed the Raksasas. The cavalry of the Turushas was shattered. The king beheaded the Pārsilas. This was the final blow to the Hūnas. Dr B N Puri remarks that "the value of this tale might be nil but it clearly throws welcome light on the grouping of these powers situated in the close proximity to each other. The Pārsilas were at that time living some where in Rājputānā, close to Sindhu and nearer to the Hūna territory."²

Dvyāśrayakāvya

The Hūnas are also mentioned by Hemachandra, a Jaina author, in his Dvyāśrayakāvya. It is mentioned there that the Chalukya king, Durlabhārāja who succeeded the throne of Anhilapātana in A D 1006, won his queen Durlabhādevī in a Svayamvara and fought for her with a number of kings of Anga, Kāśī, Avantī, Hūnadesa, Mathura and Vindhya.³

The Social States of the Hūnas

The Harakelinātaka throws welcome light on a different interesting aspect. It refers to that the Hūnas were no longer barbarians but had some literary taste. Some portions of this drama are found in the Ajmer slab inscription⁴ which was composed by Vigraharāja and engraved by Bhaṭṭāra, son of Mahipati and grandson of Govinda, who was born in a royal Hūna family. He was a favourite of king Bhoja. Rājasekhara⁵ also mentions that the Hūna ladies were noted for the lustre of their cheeks. Some of the medieval inscriptions have preserved a few examples of Hūnas and other chiefs being married into Brāhmana families. Allata (10th Century A D)⁶ of the Guhilas of Mewar married a Hūna lady named Hariyādevī. Similarly Karnadeva, of the Kaichuri family married a Hūna princess, Āvalīdevī.⁷

The above analysis reveals that the Hūnas had started gaining favour in the Indian Society of that period. They are mentioned in the list of thirty-six royal clans of Rajputs, which is a further proof that they definitely earned a high social status.

1 मिन्दुगज वशीकृतं हर्मिन्वर्गमुद्रुत ।
अपयामानं च म्लेच्छान्द्रावचो राजनानिव ॥ 18 ॥

हृणहानिकृतमन्य मुग्धरीकृतदिदमुग्धा ।

कीर्तिद्वितीय गङ्गाव विचचार हिमाचले ॥ 108 ॥ Bihar Rāstra-Bhāṣā ed

2 JUPHS, Vol V, (new series), p 5

3 हृणाण गङ्गा इह त्व गायणो इमे पट्ट रमन्ते ।
अङ्गाण रण्णा राटणो तह मणेण गाण ॥ 461

4 Ind Ant, Vol XX, p 210 ff

'कुम्भसवज्जचित हृणरणी ।'

5 Bālarāmāyana, VII, 59, p 198 Cf Kāvya-mīmāṃsā, (Bos), Chap XVIII, p 109

'हृणानाम् कृते मधुकुमुदलम् लावण्यलुठकम् ।'

6 Ep Ind Vol XXIII, p 108

'(यस्य हृणक्षणीयवजराजहर्गियेवी)', Also, p 373

7 C II Vol IV, p 289 ff

'कर्णदेव क्षजनि कलकुगीणा स्वामिना तेन हृणान्वय जलनिविनदम्या श्रीमदावन्तदेव्या ।'

मरुधरकेसरी
अभिनन्दनग्रन्थ



परिशिष्ट



प० चैनसुखदाम जैन



प्रेममुमन जैन



दयाचन्द्र माहित्याचार्य



डा० भगलदेव शास्त्री



पारसमत 'प्रसून'



डा० हरीद्वभूषण जैन



मुन्दरलाल बॅट



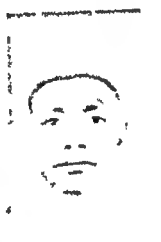
डा० ज्योतिप्रसाद जैन



डा० मोहनलाल मेहता



प० गोपीलाल अमर



श्री परमानन्द जैन



ब० पी० शास्त्री



पुष्पोत्तमलाल मेनाररिया



श्रीचन्द्र जैन

विद्वान् लेखक—जिनके चित्र प्राप्त हो सके



डा नरेन्द्र भगवत



सत्यचन्द्र नारयण



प० दरबारीलाल ढोडिया



रामचन्द्र बघावत



कृष्णलाल शर्मा



नित्यचन्द्र चौधरी



नित्यचन्द्र चट्टारिया



अनन्त चूनिया



जयन्तीप्रसाद जैन



हीरालाल नायर



अजितकुमार नायर



सोभागधर जैन



नित्यचन्द्र जैन



डा बसन्तचन्द्र जैन



अमिनीय नाय



सत्यचन्द्र नाय जैन



भागचंद्र जैन



राजकुमार जैन



लक्ष्मीचन्द्र 'मगोज'



रामनारायण उपाध्याय



डॉ० देवेन्द्रकुमार
रायपुर



डा० राजाराम जैन



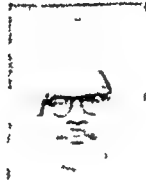
डा० गोकुलचन्द्र जैन



डा० बी० एम० कुलकर्णी



गणेशप्रसाद जैन



अगरचन्द नाहटा



डा० जयमिह नीरज



के० बी० जिंदल



डॉ० कन्हैयालाल सहल



हेमचन्द्रजी जैन



जयमगवान वकील



ଡଃ. ଶର୍ମିଷ୍ଠା ଚକ୍ରବର୍ତ୍ତୀ



ଡଃ. ଉପସନ୍ଧ୍ୟା ଦାଶ



ଡଃ. ଶ୍ରୀରାମ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଦାଶ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



ଡଃ. ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ



श्री दीपचन्दजी मूया

आप जोधपुर निवासी श्री गणेशमलजी मुणोत के सुपुत्र हैं। बड़े मेधावर्धी, व्यापार-कुशल, आधुनिक विचारों के सुधारवादी नवयुवक हैं। व्यवसाय जोधपुर में ही मुन्दर डग से चल रहा है।



आप मारवाड़ कापरडा के निवासी हैं। पिता का नाम श्री अनराजजी जागडा है। उदारमना, धर्मपरायण तथा ममाजसेवी हैं। जालना में अनराज पन्नालाल के नाम में प्रसिद्ध फर्म।

आप सादडी निवासी कुन्दनमलजी मा० मेहता के बड़े पुत्र हैं। पेढी पृथ्वीराज रतनचन्द के नाम में बम्बई में हैं। सादडी म्या० ममाज के नेता, मूक सेवक और उदारदिल हैं।

आप 'शालिभद्र' के नाम में प्रख्यात हैं। दानी, सदाचारी, मितभाषी हैं। व्यवसाय-शक्ति बड़ी सुन्दर थी। आपके सुपुत्र श्री पारममलजी भी योग्य उत्साही नवयुवक हैं। आपका व्यवसाय व्यापार में ही चल रहा है।



आप चण्डावल निवासी श्रीकेसरीमलजी मूया के सुपुत्र हैं। आप सोजतरोंड स्थानक-वासी समाज के प्रमुख हैं। धार्मिक लगन वाले उत्साही कार्यकर्ता हैं। आपकी सोजतरोंड में जालमचन्द दीपचन्द नामक प्रसिद्ध फर्म है।



श्री निहालचन्दजी के० मेहता

श्री बस्तीमलजी बालिया



अथ सहायक चित्रावली (प्रथम श्रणा)

श्री अनराजजी मादिया



श्री अनराजजी (मादिया) क निवास क
स्थानमा ह । आपन अपन स्वयंसेवा
क सम्पत्तिमा क विनि विचारणा
कर पूरा सम्पत्तिमा क क सम्पत्ति
कर क १० अंश रम मागत क उभ
जमा कर मात बराबर कर य । एव
अनराज आपन जीर भी समाज नि क बाधो
म माग निवा । आपन आना श्री अनराजजी
श्री वडा सर प्रेति क मनप ३ । आपन
दल क पुत्र मा पुत्रराजजी भी बडा सर एव
आना रमा ३ ।



श्री देवचन्द्रजी रामदाया



श्री अनराजजी क निवास क निवासमा ह ।
आपन दलमा क समाज समाज समाज
आपन हृदय क धर्म प्रती समाज ह ।
आपन आना श्री अनराजजी क तथा आपन
समुदा की समाज समाजमा ह ।

श्री अनराजजी (मादिया) क निवासमा ह ।
आपन दलमा क समाज समाज समाज
आपन हृदय क धर्म प्रती समाज ह ।
आपन आना श्री अनराजजी क तथा आपन
समुदा की समाज समाजमा ह ।



श्री० श्री० विनायकजी मुनिया



श्री मदनराजजी मुरगा

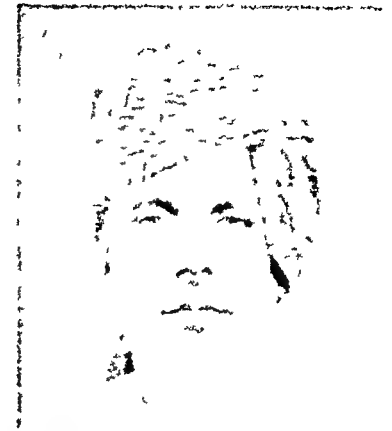


आप श्रीमान धीमलालजी बोम्बिया के द्वितीय पुत्र थे। हजारों का दान किया। बड़े गुणदानी थे। अजमेर सम्मेलन पर गुने दिने में खर्च किया। श्री मन्सूरकेसरीजी म० के अन्य भक्तों में से एक थे। ३९ वर्ष की अल्पायु में ही साधन विलीन हो गये।

आप भावी निधामी श्री मोहनलालजी नेटिया के सुपुत्र और मोहनलालजी के बड़े भ्राता थे। आप बड़े होनहार नवयुवक थे किन्तु अल्प समय में ही आपका स्वर्गवास हो गया। आपने पिताजी तथा लघु भ्राता दोनों ही पिता-पुत्र धर्म स्मरभर्य हैं। आपकी धीमलाल मोहनलाल नेटिया फर्म मैसूर में है।



आप चौधपन् निधामी श्री मदनराजजी मा० के सुपुत्र थे। आप पुलिस विभाग में उच्च पदपर कार्य करने थे। आपने समाज की तन-मन में खूब सेवा की थी। उपाध्याय श्री हम्मीमनजी महाराज के शिष्य के दीक्षा-महोत्सव की व्यवस्था करने हुए आपका स्वर्गवास हो गया।



आप दिवंगत निधामी बहादुरमन्जी कटारिया के सुपुत्र हैं। उन्हीं उन्नीस वर्ष की आयु में ही दिवंगत हो गये। आपका नाम ही आपकी कम प्रतिष्ठा है।

आप दिवंगत निधामी श्री हम्मीमनजी मन्सा के दत्त पुत्र हैं। आप स्थानिकवासी समाज के नैकेटरी उदारमन्सा माध्व-श्रवण प्रिय मन्त्र हैं। आपने अपने कुटुम्बियों को आर्थिक दृष्टि में उन्नत एवं सुदृढ़ बनाया है।



श्री पारसमलजी मूला



०

आप उमाही गरीब समाज के स्वल्प रूप थे। आप छापमलजी बाबडिया के गुरु थे। ज्ञानार्थी का सम्बन्ध दिया। गुना में श्री गजराज गजराज के नाम में आपका प्रसिद्ध पत्र है।

आप मानव विद्या का धर्म धर्मार्थी के गुरु थे। श्री गजराजजी का बचपन ही ज्ञानार्थी का नाम है। मानविक बायोमैट्रिक बायोमैट्रिक का व्यवसाय में मानव सम्बन्ध बना दिया है। आपका व्यवसाय कर्म में चलता है।



श्री धर्मालालजी सुगरवाल



आप भारवाह में मानविकी की कर्मकाण्ड के निष्कर्ष हैं। व्यवसाय में धर्मालालजी नित्यप्रमाण के नाम में व्यवसाय में। धर्म का व्यवसाय प्रमाण है। ज्ञान ही परिणाम में कृति उत्पन्न की है।

आप बाबडिया विद्या में मानविकी का व्यवसाय पाठ्यक्रम में सन्तुष्ट हैं। धर्मालालजी नित्यप्रमाण हैं। आपका व्यवसाय पराम्भ में मानविकी में चलता है। धर्म का प्रतिपक्ष लयन में तथा आप गुरुत्व के अन्तर्गत हैं।

आप स्वयं गुरुत्वार्थी सुगरवाल के दत्त गुरु थे। धर्मालालजी एक दानवा थे। किन्तु आप स्वयं ही धर्मालालजी थे। आपका नित्यप्रमाण गुरुत्वार्थी भी उभा। गुरुत्व है।





श्री एपचन्दजी बोहरा



व्योपागी-मारवाड निवासी श्री पन्नालाल-जी खीवमरा के चतुर्थ पुत्र हैं। आपने चारों खव कर रखे हैं। धर्मशिक्षण में अग्रसर हैं। आपके बड़े भ्राता श्री माहवचंद जी चिक-मगनूर में सुन्दर ढंग में व्यवसाय चला रहे हैं। छह भाइयों का संपन्न परिवार है।

आप सादडी निवासी वेद भूषा हैं। आप का व्यवसाय बम्बई में है। आप समाजसेवा में सुन्दर सहयोग करते हैं।



श्री हिम्मतमलजी मेहता

आप वृन्दी निवासी मेठ चन्द्रभानजी बोहरा के सुपुत्र हैं। आपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीमाणचन्द जी अपना व्यापार मद्रास में सुन्दर ढंग में चला रहे हैं। बोहराजी धर्मप्रेमी तथा ग्यानरवासी समाज के प्रमुख पुरष हैं।



श्री मंगलचन्दजी मद्रास निवासी मेठ मिश्रीमनजी कटागिया के सुपुत्र हैं। श्री माहवचन्दजी आपके ज्येष्ठ भ्राता हैं। दोनों भाई सम्मिलित रूप में मद्रास में अपना व्यवसाय चला रहे हैं। सुन्दर के परम भक्त हैं।

आप तीर्थ-मारवाड जन्मन निवासी श्री फौजमनजी सा० के तृतीयपुत्र हैं। गण-वास छायाचर श्री एच. मुन्य ज्वरीम द्वारा रखा प्रदान किया। मोरानाह जी मद्रा-वरी पर भी हजारों पत्र लिखे। बड़े भद्र दानशील एवं धर्मनिष्ठ हैं।



श्री एफ० लालचन्दजी मुणोत

શ્રી અનૂપચંદ્રજી બોહરા



आप भयपहा निवाना हूँ । घने परिश्रमा
एव धममाधर्ता मं लान्द नृवान् पुरुष ॥

आप कुमा निवासि स्व० मठ गीष मठा
सराजी म मत्त वृत्त = । अनहार नवपुत्र
हे । आप म त रा म मत्त जन ह्यतक
मत्त मी प्याऊ एव धमालाए बना है ।
दसमाय म मगरी म मत्त म है ।



શ્રી દેવોશ્વરજી બોહરા

શ્રી અગરાજજી વરમલા



श्री सुन्दरबाई विनायकिया



आप भ्रामान स्वयं राजा विनायकिया
पत्रा वा वयवाम (भारवा) निवासी वा
धमपत्नी ह । जी विगतपत्रा जी वा मान वरा
१ । धम वार्यो म रम गनवाली मद्रिवा है ।
आप वरिवार वा वयवाम भाम्बर म म
म है ।

जाप अष्टाष्टा मारवाड व निवासी है। जापक गजराजजी कवच-राजी वा छाटे भाई है। सोना भाई धमप्रसा ममाजमदा एव गानधी हैं। चिकित्सालय भवन वा निमाण कराया इन्डिगूल व और भव स्थानक के निर्माण म पूरा ग रहा है।

जाय व मित्रमार तव उत्ता । पश्य ५ ।
जाय सुपथ था जगज्जो तथा आ मन्त
राजशा नान्तर युवक ह । मामाजि वाय
म अछा नम तै । प्रायः यवमाय
निवन्नायान् दणि म चन्ता है । गुरुव
अनय भवत है ।



શ્રી વૃણરાજજી મૃણોત

नाष्ट होकर होता है। माध्याग ने साधारण व्यक्ति भी आपकी जैसी, आपा विचार, धर्म, ज्ञान, चारित्र्य, आदर्श आदि न मान्यताओं हुए बिना नहीं रह सकता।

आप मनुष्य के वर्ण में पाँचों महाद्वारों का निष्ठा से पालन करते हुए सत्य मार्ग के अनुगामी हैं। आपने जीवन का प्रदीप्त जीवन में प्रवीण किया है। इसी प्रकार सत्य, तत्त्व, ब्रह्मचर्य व अहिंसा को प्रेरणा की है। आपका जीवन सत्य व सत्य की मूर्ति व मूर्तिवत्त्व है। आप अन्तरंग में वीतरागभाव की उत्पत्ति जला रहे हैं, इसी कारण सत्य के आदर्श को मूर्त बनाए, यह स्वाभाविक है।

आप विमल भावना में जीवन के प्रचार हेतु अनवरत अधिक प्रयत्न कर रहे हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चरित्र की पूर्णता का ज्ञान करना ही आपका अभीष्ट ध्येय है। जहाँ-जहाँ भी आपका पदार्पण हुआ है, आपने उन क्षेत्रों में जिनमें धर्म की उन्नति होनी है।

धर्ममाला मनुष्य में जब कि जन-जीवन की समस्याओं में उलझा है, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय समस्याएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं, धर्म की ओर रुचि होना कठिन होता है, अद्वैत मन्त्रक्रेमरी मुनिश्री ने मनुष्य के अज्ञान को मल्लोत्पत्ति पहचाना तथा धर्म का ऐसा विस्तार किया है जिसमें धर्म मानव-जीवन का एक अंग बन सके।

आपको अक्षयवृत्तीय के दिन आपके दीक्षापर्याय के पचास वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं। इस अवसर पर सब की प्रशंसाभावना की भाँसा आते हैं कि हम आपका अभिनन्दन करने हैं तथा आपकी दीक्षा की कामना करने हैं।

●

प्रणामाञ्जलि

मानचन्द्र जैन, जोधपुर

वसन्त ऋतु के महान् नेता, नमोजोद्गमक एवम् के अग्रणी, जन-जागृति के प्रतीक, चारित्र्यकृतमणि आचार्यजी ५० वत्स मुनिश्री मिथीमठजी महागुरु साहब की ५० वीं दीक्षा-जयन्ती पर प्रकाशित होने वाले मन्त्रक्रेमरी 'अभिनन्दनग्रन्थ' की योजना अत्यन्त सुन्दर है।

स्वनाम्न मन्त्रक्रेमरीजी के पालन चरणों में मन्दिर का चप्पा-चप्पा पुष्पित होता रहा है। मन्त्र योगी की प्रति प्रतिबन्धन की भाँसा का उग्र विचार कर हजारों लाखों प्राणियों को प्रतिबंध द्वारा मन्त्रमार्ग बताने वाले महामन्त्री के उपासी को लिखित करने का सम्मान कार्य है। फिर भी अद्वैतज्ञानों द्वारा जो प्रगम किया जा रहा है वह प्रशंसनीय है। मैं अपनी प्रणामाञ्जलि अर्पित करना हूँ।

●

अहिंसा के पुजारी के प्रति

केन्द्रीय पण्डित, मोरार

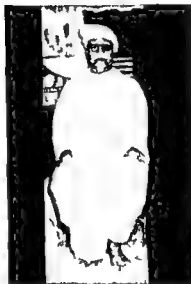
आपने जो दिवस है कि मैं धर्मोत्प्रेक्षा, मन्त्रक्रेमरी ५० मुनिश्री मिथीमठजी म० वंश के पचास वीं वर्ष के अवसर पर मन्त्रमार्ग प्रवृत्त कर ५० वीं वर्ष में प्रवेश करने जा रहे हैं। मुनिश्री के मनुष्यदेवों



आप राणावान निवासो सठ गणपतजी बोहरा क मुमुक्षु है। आप कनिष्ठ भ्राता श्री जयवीरजी है। आप राणावाल क मरपच रू बुक है। आजरल प्रमराज गण पतराज एक। पोतलिया (मारवा) क भागीदार उ माही धर्मप्रिय नवयुवक है।

पट्टा का बर्माबाम (मारवा) निवासो स्व सठ पुष्कराजी विनायकिया की धम पत्नी तथा श्री मानराजी सा मलाला विनायकिया की मान वरी है। आप का प्रेरणा म बच्चा म धार्मिक प्रेम पतन है। विवकाना मणि है। धर्मसाय साम्बरम म चरना है।

श्री पुष्कराजी कटारिया



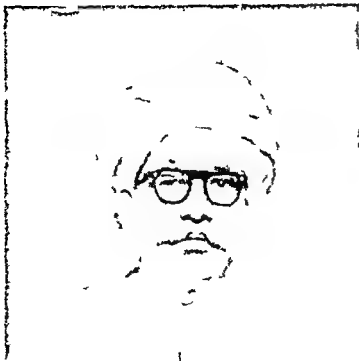
मवाज निवासो श्री हिममतमलजी कटारिया क मुपुत्र है। बन्धान दानवार धर्मपरायण बभोवद्ध मन्त्र है। आपक पधभ्रता श्री अतराजजी एव मपुत्र श्री पारममजी मित्रसार तथा मुपुत्र क भवन है।



मिरियारी निवासो दानवार सठ विवकु रानी क मुमुक्षु है। आपक बन्धान श्री बठारजी बन्धान मित्रसार एव आपक नवयुवक है। धन एव धर्म दोनों कमान म कुशल है। आपका व्यवसाय रत्नागिरि म है।

आप चाउनिया निवासो जावरराजजी साठ क पोत्र और वृद्धि म्मा सा क मपुत्र है। श्री हीरागवनी तथा अमालकच रानी आपक बाबा है। आप उदारमना नवयुवक है। धर्मसाय मण म है।





श्री मुगतचन्दजी तालेडा

आप गुडागिरी, मोजत रोड निवासी सेठ गणेशमलजी मरलेचा के दत्तक पुत्र है। आपके मात पुत्र एव पुत्रिया है। आप विशेष मातृभक्त है। आपकी दामिक श्रद्धा अच्छी है।

आप जयतारण निवासी श्री देवराजजी मा० चावरी की धर्मपत्नी है। और श्री गान्धिलालजी व श्री धर्मोचन्दजी की मातेश्वरी है। आप परम गुरुभक्त है और भाग्यवती है। आपके सुपुत्र तिरुपाति, मद्रास में प्रत्यात व्यवसाय का संचालन कर रहे है।



श्री केली बाई चौधरी



आपकी जन्मभूमि चाउण्डिया (मन्वाड) है। आपके लघुभ्राता का नाम श्री जुगराजजी है। बैंगलोर में दोनों भाइयों का व्यवसाय सम्मिलित रूप में बड़े सुन्दर ढंग में चल रहा है। आप देव-गुरु के परम भक्त है।



कु० कन्हैयालालजी, मादरिया निवासी सेठ मिश्रीमराजी मरा के पौत्र तथा श्री सम्पतराजजी मा० के सुपुत्र है। आपके पिताजी ने अपना सारा साधु कुल तथा गंगावती में चला रखा है। पिता-पुत्र की गुरुभक्ति, त्याग तथा तपस्या अनुकरणीय है।

आप मोजत निवासी श्री निरमनजी पगारिया के सुपुत्र है। आप आन्तिकारी विचार वाले गुरुभक्त एव धर्मनिष्ठ व्यक्ति है। आपके सम्पतराजजी बदरीचन्दजी आदि तीन सुपुत्र है। आपका सारा निधन रमेडी में सुन्दर ढंग में चल रहा है।



श्री पारसमलजी पगारिया



श्री सोहनराजजी बन्हेवालजी बन



आप जयशरण भारवाज निवासी श्री
मि. रामजी अग्रवाल का सपुत्र हैं। आप अपने
माता पिता के सम्मान में सेवा करते हैं। यह मिशनगार
उपासक मान्य हैं।

मह. सुरेश्वरी जी धर्मिया भारवाज का
प्रसिद्ध शिष्य हैं। आपने गुरु का नाम
लेकर भा. गुरु म. का नाम ले कर सेवा
निवासी। श्री धीमन्ताजी आपका सपुत्र
हैं। श्री धीमन्ताजी धर्मिया-भारवाज अग्र-
वाल बन्हेवाल मिशनगार तथा गुरु
रक्षक मान्य हैं।



आप जाडवा की सेवा का निवासी
गुरु भा. गुरु तथा धर्मिया म.
ही धर्मिया उपनिषद् करके सपुत्र मान्य
रहते हैं। आपका जवाहर प्र. प्रम. का नाम
स. भा. गुरु म. प्रम. है।

आप धर्मिया (भा. गुरु) निवासी श्री
उपनिषद् निवासी का सपुत्र हैं। धर्मिया
का यह उपासक तथा धर्मिया मान्य हैं। आपका
सपुत्र मान्य म. है।

म. भा. गुरु निवासी बाहरी भा. गुरु
का तथा गुरुभा. गुरु म. का सपुत्र म.
हैं। श्री धीमन्ताजी म. का सपुत्र म.
हैं। यह का. गुरु म. मान्य हैं।



श्री धर्मियाजी धर्मिया



श्री धर्मियाजी धर्मिया



आप पिन्नाय (मानवाट) निवामी मेठ डाटमलजी मालिक फर्म श्री चैमनन्दजी सवरलालजी चोरडिया के दत्तक पुत्र हैं। आप प्रकृति में उत्साही और एक हिम्मतवर व्यक्ति हैं। आपकी बड़ी जमींदारी है आप गन्त संचालन में भी निपुण हैं।

आप सोजनि निवामी श्री समर्थमलजी नावरिया के सुपुत्र हैं आप दिग्ग के बड़े उदार एक धर्मनिष्ठ हैं प्रकृति में मिलनसार व हंसमुख हैं।

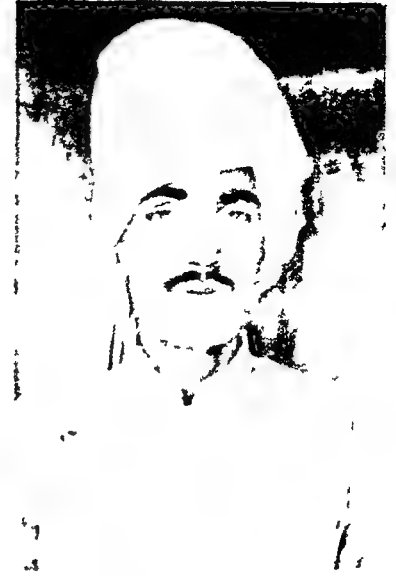


श्री मुन्तालालजी नावरिया

श्री मोहनलालजी भटानी



आप बिनाडा निवामी गणेशमलजी भटानी के सुपुत्र व म्हा० जैन श्रावण गय के प्रमुख हैं। आपके कनिष्ठ भ्राता श्री पारममलजी हैं। दोनों भाइयों का प्रेम सम्बन्धन सा है। दोनों उत्साही हैं। व्यवसाय विलाटे में ही है।



आप कुन्दाया निवामी मेठ मयगलजी के पौत्र मोहनलालजी के पुत्र हैं। आप बड़ी प्रामाण्य लगन वाले श्रावक हैं। आप की प्रेरणा में गांव में धर्म का अच्छा प्रसार हो रहा है।

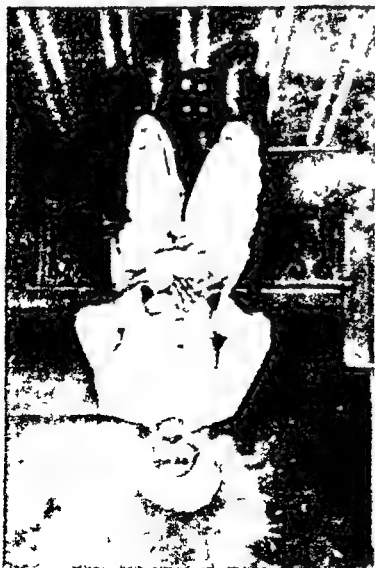
आप बूनी निवामी म्हा० मेठ चन्दनमलजी खोडरा के सुपुत्र हैं। आप में धर्म के प्रति लगन, समाज-प्रेम मूल्य है। आपकी गुरुभक्ति अतृप्ती है। आप आदर्श युवक हैं। आप ने समाज को बड़ी आशाएं हैं।



श्री मोतीलालजी बोहरा



1. ፪ ፻ ፲፱ ዓ.ም. ሰላሳ ስድስት ሺህ ስምንት ሺህ ስምንት
 ዓ.ም. ሰላሳ ስድስት ሺህ ስምንት ሺህ ስምንት
 ዓ.ም. ሰላሳ ስድስት ሺህ ስምንት ሺህ ስምንት
 ዓ.ም. ሰላሳ ስድስት ሺህ ስምንት ሺህ ስምንት



12212 14412212 14

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥



॥ श्री गणेशाय नमः ॥



1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840.

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 एतद्देवता चतुर्धा । इति चतुर्धा चतुर्धा चतुर्धा
 ध्यात्वा । इति चतुर्धा ध्यात्वा चतुर्धा चतुर्धा
 ध्यात्वा । इति चतुर्धा ध्यात्वा चतुर्धा चतुर्धा
 ध्यात्वा ॥



॥ श्री गणेशाय नमः ॥



आप तिरियारा माजत निरामा धमपरायण पुरुष ह। खहर क पूण प्रमा । सामाजिक बायी म मुध्द लव मे म क रना बहुन पम क रत ह। आपका यवमाय मनमाड म चल रत ह।

आप राम (मारबाड) क निवामी श्री राजमन्त्री बाहरा क सुपुत्र ह। प्रन्नि म धन उदार जीर धमप्रमी सज्जन ह। आपन सामाजिक क्षेत्र म अत का अछा उपवास किया। आपकी सम्पत्ती मा गान्धी बाइ श्री बंगी धमपरायण भट्टि ह।



श्री सम्पतराजना बोहरा

श्री भूरजमलजी सकरेवा



आपकी कम श्री शराचन् शीकमचन् क नाम स जाधपुर म मगहूर ह। आपक पू य गाई सा शीकमचन् की का स्वयवाम हा गया है। आपक तब भ्राता श्री चन्मड जी श्री आप ही क समान मरत उार एव पूरे माग्नी पस ह। आप दाना भाग्वा का तथा श्री शीकमच दजी मा० क सुपुत्र श्री पारममडजी का समाज सेवा का वन् चाव है। बडी महत्पता म समाज सेवा मा राम उत है। आप मदशरकरमी जीवन म अ व प्रचान ममिति क म्मभ है।



कुतागुर निवामी प्रसिद्ध मावक है। धार तपस्वी है। कई मामजमण जीर ५१ नि तब का तपस्या की है। गानो ह। आप क मपुत्र पतेहुवन् की चम्पातानजी मन्म म यवसाय करत है।

आप चाउणिया निवामी श्री बु नीताजी तातना क सुपुत्र है। आप वन् एव धम निष्पुत्र ह। मन्म मे विविन स्थानी पर आपका चार प्रसिद्ध फर्म है।



श्री घोसुलातजी राका

श्री कवतच दजी सूया, मादलिया



आप मा लिया क निबानी सरत प्रकृति क यकिन है। अम म आपनी पूण जाहना है। ममूर म कवतच रामसख नाम की आपका प्रसिद्ध कम है।

आप बारबडी निबासा उत्साही युवक है। आपका व्यवसाय म म चल रहा है। यहा भी अच्छी जमाना है।



श्री रिलवचंदजी मरलेवा

द्वितीय श्रेणी

श्री स्व गुजानमतजी बोहरा



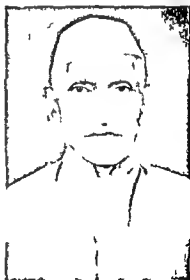
आप पीपाड (बारबा) निबानी व। आपक ममूर श्री ममूरराजजी बोहरा है। आपक खानदान म म उपाध्याय श्री हस्तामन्त्रा म० एव महापनी श्री तत्र कवरजा म म भगवना जन दो मा प्रण क। आपका व्यवसाय यवतमा म है।

श्री नेमोचंदजी राजमतजी कोटवा



आप धमवरापण जनसवी एव उपा मना यवित है। आपका व्यवसाय यवतमा म अच्छा म चल रहा है।

आप म विनयवान विवकीन यवित है। आपका व्यवसाय यवतमा म उत्तम रीति म चल रहा है।



श्री नेमोचंदजी उदयचन्द्रजी बरलोटा



1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840.

1. ከፍተኛ ጥራት ያላቸው የፍትሕ ጥያቄዎች
 ይቀርባሉ፡፡ 2. የፍትሕ ጥያቄዎች ለፍትሕ
 ተቋማት ይቀርባሉ፡፡ 3. የፍትሕ ጥያቄዎች
 ለፍትሕ ተቋማት ይቀርባሉ፡፡ 4. የፍትሕ
 ጥያቄዎች ለፍትሕ ተቋማት ይቀርባሉ፡፡

[illegible][illegible]

स्व श्री देवरच दत्तो पगारिया



आप कुसावरा निवासी समाज प्रभो स जन थे। आपका सपुत्र भी धर्मप्रिय और परम गुरुभवन है।

४

आप जयपुर निवासी उदारमना समाज सेवा सज्जन हैं। आपका सपुत्र श्री गिरधारीदासजी भी आपकी व गुणा का अनुकरण कर रहे हैं।



श्री धर्मदासजी गधरा

श्री मोहनदासजी बोहरा



आप कुसावरा मारवा निवासी गान्धिलालजी बोहरा व सपुत्र हैं। आपका जिन बाणी प्रवण का व त गीत है। स्वाभाविक ऋद्धि का सनुपवाग कर रहे हैं। आपका बालूदासजी कपभराजजी आदि चार मंगीत व जानाकारी सपुत्र हैं। आपका ध्यानाय मारवा एवं मण्डल दोना जगह चलाता है।

आप धराला निवासी हैं। समाज सज्जन एवं करने वाले तथा एक धर्म प्रज्ञा सज्जन हैं। आपका सपुत्र श्री गान्धिलालजी एक योग्य व्यक्ति हैं। आपका व्यवसाय मण्डल स है।



श्री होराच दत्तो दोहरा

अपने मन स्वयं से जन्म-जन्म के चक्र में घूमने के लिए जाना स्वयं बना लिया है और यही माना जाता है कि शास्त्र द्वारा की गयी मन्त्रों का मुनि ने कर्मों के लिए मन्त्र-सा बना लिया है।

पूज्य-स्वामीजी पर हममें जोड़ने में प्रभावित होकर जन्ममात्र में ही स्वर्गजन्म की समारोह मनाने का निश्चय किया है। इसी अन्तर पर पूज्य गुरुदेव के करम में अभिन्नानन्द के भेंट करने का आवाहन किया गया है। यहाँ पर हमें ज्ञान मिल प्रसन्न है कि मरण एवं अहिंसा के पुत्रों के रोगमय जीवन का अज्ञान की मार जा रही है। जिनमें जन्म में मुनि का स्थापन जीवन की अमृत दान की रस।

हमारे गुरुदेव

श्री परमपूज्य श्री

मन्त्री श्रीरघुनाथ जन्म पत्तनपाल साजसज्जा

पूज्य गुरुदेव मरणपरम १० रतन श्री मिश्रमन्त्रा म० गाँव उत्तराखण्ड के मन्त्रा गाँव अष्टादश निष्ठ १७ श्री मन्त्रा गाँव है।

आप जन्म बाद जन्म के हैं जन्म में जन्म है। आप आत्मिक और मन्त्रा जन्म के उत्पन्न में मन्त्रा मन्त्रा रहे हैं।

आपके मन में पवित्रता गुरुदेव के जन्म और स्वर्गमन्त्रा में मन्त्रा जन्म के प्रभाव भी जन्म है। आपका मन मन्त्रा के जन्म में मन्त्रा जन्म है परन्तु आपका मन मन्त्रा में मन्त्रा है। मन्त्रा मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। मन्त्रा मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है।

पवित्र मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है।

आपके मन में मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है।

आप मन्त्रा के जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है।

श्रद्धा के फूल

जन्म के श्रद्धा

पवित्र मन में मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है। आपका मन मन्त्रा जन्म में मन्त्रा जन्म है।



अथसहायको का सक्षिप्त परिचय जिनके चित्र प्राप्त न हो सके

श्री एम० मिश्रीमलजी मूवा

आप जयभारण निवासी श्री सिमवरमजी मूवा व सुपुत्र हैं। आप एक गढ़वाण एक मुन्व व अन्य मन्त्र हैं। आपने अपने ही परिवार में धनराशि उपार्जन का है। इस मिश्रीमलजी के नाम से ताम्बरम मण्डप में आपकी पद चरता है।

श्री छप्पातालजी सरकेवा

आप गुरु निवासी श्री धाम्नालजी सरनवा के बड़े पुत्र हैं। आप प्रसिद्ध आपारा समाज सेवा उबार मन्त्र प्रपुत्र हैं। आपका सबसे छोटा भाई सिद्धांतजी भी हार्दिक मन्त्रवक्ता हैं। दादा मा या का व्यवसाय मन्त्रिण रूप में जाना में चरता है। यही धाम्नालजी चम्पाकाल के नाम से आपका पद प्रसिद्ध है।

श्री धीमूनालजी रिलबाजी पुनमिया

आप छात्री प्रिय उत्तरी समाजसेवा युवक हैं। आप एक भी व वरद पुत्र हैं। मारा श्री एक समष्टि सेवा प्राप्त है। आपका मा गौरव मन्त्र धीमूनाल रिलबाजी नामक प्रसिद्ध पद है।

श्री चन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी

आप स्वामिपुरा निवासी हैं। आजकल गाठन में आपका प्रभाव गुरुवद माहन्ताजी के नाम से चरता है। आप समाज के अग्रणी हैं। मन्त्रों का गुरुवद माहन्ताजी तथा चम्पाकाल चारा ही भाई बड़े गढ़ाण पुत्र मुन्व व परम भक्त हैं।

श्री जयवन्तराजजी गुलछा

आप मिश्री निवासी हैं। उत्तर में प्रिय पुत्र हैं। आपके मन्त्रों में उद्योगराजजी मण्डप में बनाने पर हैं। आपका व्यवसाय आन्तरिक मन्त्र में अत्यन्त पर चरता है।

श्री जयवन्तराजजी सुगनचन्दजी बाफणा

आप मुसाणपुरा निवासी हैं। आपका व्यवसाय वगैरह सेवा मण्डप दादा स्वामी पर अच्छा चरता है। आपका धर्ममन्त्र प्रसिद्ध है।

श्री भवदत्तलजी रवि

आप गुरु के प्रसिद्ध गुरुवद हैं। आप अत्यन्त तर्क एवं प्रतिभाशील व्यक्ति हैं। आप अपने आपकी पिता श्री गुरुगजजी गुरु के परम भक्त हैं। आपकी वर्यन्त जायपुर जयपुर छबबर पावर एवं द गी में अच्छी चरती है।

श्री रामचन्द्रजी सरकेवा

आप मन्त्राज निवासी गुरुमन्त्रा सरकेवा व पौत्र और श्री मण्डपमन्त्रा व सुपुत्र हैं। आप धर्मगुरुवद पात्र एवं परम विनाश प्रसिद्ध हैं। आपका वर्यन्त मन्त्र गुरुमन्त्र मण्डपमन्त्र नामक प्रसिद्ध पद है।

श्री रिलचन्दजी गौधी

आप राधानाथ निवासी श्री नवमन्त्रा व सुपुत्र हैं। आपकी समाजसेवा शास्त्र गुरु हैं। आपका धर्ममन्त्र गुरु गुरु गुरु गुरु हैं। आपका व्यवसाय मन्त्रमन्त्र में चरता है।

श्री हिमात्मलजी गुलेच्छा



आप व्यावर निवानी श्री केमरीमन्त्री गुलेच्छा के सुपुत्र ह। आपके कनिष्ठ भ्राता का नाम श्री श्रीवराजजी था। वनपन में ही आपमें धार्मिक लगन अच्छी है। आपके दत्तक पुत्र श्री उदयराजजी नवयुवक एवं सुशील ह।

आप निगियारी (मारवाड) के प्रसिद्ध मेहता खानदान के पीतलिया गोथीय समज पुरुष हैं। आपकी जीनवाल समाज में अच्छी ख्याति है। भगवद् वाणी के बहुत प्रेमी ह। आपके परिवारजना में अच्छी धार्मिक भावना है।



श्री कस्तूरचन्दजी पीतलिया

श्री वादमचन्दजी काकिया



आप चौहरी (बंशी) निवानी हर्ना-मन्त्री मा० काकिया के सुपुत्र हैं। आप उत्साही एवं बड़े उदार व्यक्ति हैं। नाथ हैं। कवि, गायक एवं हस्तकार हैं। आजकल आप मद्रास में रबी प्रसन्न सम्मानित स्थिति में उच्च पद पर कार्य कर रहे हैं।

आप श्री शिवराजजी बाकडिया के सुपुत्र हैं। आपमें धार्मिक लगन अच्छी है। आपकी तमराज नेमीचन्द के नाम से पत्नी में प्रसिद्ध कर्म हैं। आप मूलन जागडा के निवानी हैं।



श्री लालचन्द बोकडिया

श्री पारसमलजी सुराणा

आप माजत निवाना श्री केसरीमलजी सुराणा के सुपुत्र हैं। आपका माता नमीरमलजी मा० व फिदिन ज्ञाना श्री मदनराजजी तथा सुपुत्र माहनराजजी एवं सुदयनराजजी आदि सम्पूर्ण परिवार धर्मानुराग, विद्वत्गीत, एवं समाजसेवी परिवार है। आप गुरुदेव के अनन्त भक्त हैं। आपका कुमहान् मद्रास तथा मैसूर में अच्छा व्यवसाय चलता है।

श्री नयमलजी भसाती

आप राजपूताना निवासी श्री पन्नालालजी भसाती के सुपुत्र हैं। आप सरल हृदय नयपुरुष हैं। आपका व्यवसाय अपने गाँव में मद्रास में पन्नालाल नारायण के नाम से चलता है।

श्री फुटरमलजी राजमलजी बरलोटा

आप मादड़ी निवासी बरलोटा निवासी हैं। आपने लोकाशाह जैन गुरुकुल मादड़ी (नागवाड) का एक पुस्तक धीम हजार तथा मादड़ी सम्मेलन में अवसर पर भी एक पुस्तक धीम हजार फुटरमल दानमय के नाम से दिये हैं। और जैनक सम्वादा को आप चुने हावा में रान देने रहते हैं। आपका व्यवसाय पूना में सुन्दर ढग में चल रहा है।

श्री फूलचन्दजी धनीचन्दजी डोंगरवाल

आप धारवा निवासी हैं। आप फूलचन्दजी मा० ने जैनक दीक्षा दीक्षाई की। वे समाज के प्रमुख व्यक्ति हैं। आपकी स्मृति में स्वयंसेवक का निमाण करवा गया है। आप सभी की भाँति में लीन रहनेवाले अमरुन्त व्यक्ति हैं। आपका व्यवसाय धारवा में ही चलता है।

श्री विसनराजजी कटारिया

आप महाराज निवासी श्री वसन्तवर्मलजी कटारिया के सुपुत्र हैं। बड़े परापरार्थी एवं समाजसेवी पुरुष हैं। आप ग्रन्थश्रद्धा में दृढ़ रहने वाले हैं। आपका व्यवसाय मद्रास में सुन्दर ढग में चल रहा है।

श्री भवरलालजी नौरतनमलजी सेठ

आपकी धर्म व्यावर में गणेशदान नमीरमल के नाम में प्रसिद्ध है। आपने स्वोपाजित चक्र लक्ष्मी का मनुष्ययोग में व्यवहार का सीमागत प्राप्त किया है। आप प्रमत्तपण एवं दानी हैं। दानों भाइयों का अटूट स्नेह है। आप अपनी जन्मभूमि निमाज मागवाड में एक बड़ी धनराशि व्यय करके अमरुन्त का निर्माण करवा रहे हैं। आपकी पूजनीया बीजाई माह्व का दयालु महिलाजी में बजोड है।

श्री राजमलजी नयमलजी बरलोटा

आप मादवाड मादड़ी के निवासी हैं। बड़े दानी एवं नमृद्धिवाली पुरुष हैं। आप लगभग चार लाख की कीमत की जमीन तथा ३१ हजार रुपये नकद श्री लोकाशाह जैन गुरुकुल को समर्पित कर यशस्वी बने हैं। तथा अब मादड़ी में एक सुन्दर जैन स्थानक का निर्माण करवाना चाहते हैं। आपका व्यवसाय पूना तथा जंगलोर में चल रहा है।

श्री मिश्रीमलजी कटारिया

आप महाराज निवासी सैनमलजी मा० के सुपुत्र हैं। स्वोपाजित लक्ष्मी का त्व मनुष्ययोग कर रहे हैं। आपका व्यवसाय मद्रास में चलता है।

श्री हेमराजजी सिंगी

आप कुमायपुरा निवासी तपस्वी, धर्मानुरागी, एवं हठपनिज पुरुष हैं। आपने अनेक जगहों पर अपना चक्र लक्ष्मी का दान कर सच्चे लक्ष्मीपति होने का परिचय दिया है। नये जैन धर्मनुयायी खड़ीक भाइयों के लिये

श्री प्रतापमल्लजी मगराजजी भक्तगढ़

आप बंगालमहाराज का गुण व निवासी है। समाज क प्रमुख गायक है। आप म न गव सनिया का सबसे म न्तचित्त रहते हैं। आपका व्यक्तित्व गाँव में भी चरना है।

श्री तिलमोचनजी खारीवाल

आप माजरी निवासी नारमन्ना खारीवाल क भक्त हैं। आपकी धर्म क प्रति म री ग्यन है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है।

श्री सिलगारबाई खारीवाल

आप माजरी निवासी नारमन्ना खारीवाल का भक्त हैं। आपका उत्तम व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है।

श्री सुपनाबाई खारिया

आप खारिया गाँव निवासी हमारबाई खारिया का भक्त हैं। आपका उत्तम व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है।

श्री हरचन्दजी क श्यामलजी कोठारी

आप खारिया गाँव निवासी हैं। आपका उत्तम व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है।

श्री च बनमलजी श्रीमन्तजी रांवा

आप कुमायपुरा गाँव निवासी हैं। आपका उत्तम व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है।

श्री चम्पाबान खारीवाल

आप कुमायपुरा निवासी अनमन्ना खारीवाल का भक्त हैं। आपका उत्तम व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है।

श्री मांगोलालजी रंज

आप बीजपुर निवासी श्री मगराजजी रंज का भक्त हैं। आपका उत्तम व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है।

श्री मोमोचन्दजी बाटिया

आप बंगला निवासी श्री शिवमन्ना का भक्त हैं। आपका उत्तम व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है। आपका व्यक्तित्व उत्तम म है।

श्री नरमन्नाजी खारीवाल

श्री चम्पाबानजी खारीवाल

श्री श्रीमन्नाजी मगराजजी गाठी विलास (कोलीबाकम)

आप गाँव निवासी श्रीमन्नाजी मगराजजी और गुण व भक्त हैं।

- २५ श्री मिश्रीमलजी गायराजजी गुगलिया राणावाम (मिहं बराबाद)
- ३ श्री मिश्रीलाडजी मातालालजी नहर कलकाज (मद्रास)
- ३७ श्री माणसचंदजी रणसाजजी राका कलानपुरा (मद्रास)
- ४८ श्री माहुराजजी गणगमलजी नहर नवली (जाऊवा की)
- ४६ श्री भवनलालजी जसवंतराजजी मुराणा साजत (कुम्हवाणम)
- ४ श्री मातीलालजी सरदारमलजी काठारी (दुपड) कुरडाया (मगा)
- ६१ श्री मिश्रीबाई गानायमलजी की धमपनी जैनारण
- ६२ श्री गानच दजी सप्तशराजजी काठारी कलानपुरा (बगलोर)
- ६३ श्री लखमाचंदजी नयाच जी करणावट जाधपुर
- ६६ श्री विनयचंदजी हाराच दजी पीतलिया साजतराड
- ६४ श्री सप्तमलजी भवरलालजी मलदा यडा गुडा (आरकानम)
- ६६ श्री हिमनमनजी भमच दजी साकरिया सागराव
- ६७ श्री मिश्रीगानजी चारमनजी जामड भवाल (भारवाड)
- ६८ श्री जनेराजजी धनममनजी सप्तलया जैतारण (भारवाड)
- ६९ श्री जयतराजजी कसरोमनजी सोनकी सादडी
- ७० श्री साहुनसाज लुवासाज मन्मदान कावडिया सादडी

चतुर्थ श्रेणी के सहायदाता

- १ श्री वयनच दजी भमतलालजी काठारी बगडी (आरबोनम)
- श्री कलमलजी धनराजजी मुराणा बागरवा
- श्री गणगमलजी बाखलालजी गुगलिया राणावाम (सिक दराबाद)
- ४ श्री गुवाच दजी जयनराजजी नडारी जोधपुर
- ५ श्री चम्पालालजी दवरराजजी सोमदिया इदावड
- ६ श्री जोवरराजजी उगमराजजी दरडा पुजतू
- ७ श्री जमराजजी मोरमनजी मोहरा कातू (मगूर)
- ८ श्री जोवरराजजी नयाच जी सोसां या इदावड
- ९ श्री जयनराजजी चम्पालालजी सिवा रातू जान दपुर (आमपुर)
- १० श्री जमराजजी पारसमनजी दबीचंदजी सिवा सिरियारी (हराराबाद)
- ११ श्री गसरराजजी रामच दजी गंगाद कसरसिंगजी का गुडा (हराराबाद)
- १२ श्री गावराजजी मोरमन दजी काठर काठडा (बलीपुरम)
- १३ श्री दासीराम (नररीया) व देवाचलजी चाराडया की धमपनी चारायता का नाता
- १४ श्री भुलच दजी चारमलजी लनयाणी चारिया मोठापुर (मद्रास)
- १५ श्री पुमातामजी महाधरचंदजी गाडिया गाजत (बगलोर)
- १६ श्री गुमराजजी मागालालजी गुणाजन बकुडा मगूर
- १७ श्री गुमराजजी हाराच दजी रिवमरा बाणारी (हराराबाद)
- १८ श्री गीतमलजी शेटमलजी चौधरा जामार
- १९ श्री बल्लोमनजी गातिगानजी काठर साजत
- २० श्री मानालालजी गातिगानजी सपरडिया कलकाज (बगलोर)
- २१ श्री माहुरराजजी मोहरराजजी दई मागनिया मगूर

तृतीय श्रेणी के सहायदाता

- १ श्री अमोनकचन्दजी टगनमनजी धारोपात्र, बगडी (जानकानम)
- २ श्री जमयराजजी रामलालजी कोठारी (दूगड) कुरडाया
- ३ श्री जेशरीमलजी तेजराजजी भडारी, पीपाड़ (मैसूर)
- ४ श्री जमोनकचन्दजी नवरलालजी नाहर काठू आनदपुर (मद्रास)
- ५ श्री कानिनालजी चादमलजी पुननिवा, नादडी
- ६ श्री गणेशमलजी चादमलजी काठेड, कोटडा
- ७ श्री गणेशमलजी मुन्नराजी पोन्नरा, नामाजी का गुडा (मद्रास)
- ८ श्री गणेशमलजी लालचन्दजी पोतलिया, निरियारी, (हेरगाव)
- ९ श्री गहरीलालजी नवरलालजी पगारिया, बिलाडा (मद्रास)
- १० श्री घीमूलालजी नवरलालजी लुन्ड, सोजत मोडी, (बंगलोर)
- ११ श्री जमराजजी चन्दनमलजी सोमायत, सिरियारी (मद्रास)
- १२ श्री जेयतराजजी पारममलजी सोठारी, (दूगड) कुरडाया
- १३ श्री जोगीलालजी कट्टीलालजी हिरण, बिलाडा
- १४ श्री जगुराजजी जवरीलालजी नाहर, हरियाडाणा, (मद्रास)
- १५ श्री जवरीलालजी जमरचन्दजी कोठारी, व्यावर
- १६ श्री जगुराजजी गजराजजी जटारिया, नेवाज
- १७ श्री देवीचन्दजी रूपचन्दजी माकरिया, (साडेराव)
- १८ श्री धूलचन्दजी पुलराजजी मिर्गी, मिर्गियारी (हदरावाद)
- १९ श्री धनराजजी चम्पालालजी समदडिया, केलवाज, (बंगलोर)
- २० श्री प्यारी बाई, जालोर
- २१ श्री प्रेमराजजी मोतीलालजी म्या, चावण्डिया, (मद्रास)
- २२ श्री पुलराजजी विरदीचन्दजी चौधरी, जेतारन (मद्रास)
- २३ श्री प्रेमराजजी विरदीचन्दजी गुगलिया, राणावास (मिकन्दरावाद)
- २४ श्री पुलराजजी विरदीचन्दजी गाधी, बुनी
- २५ श्री प्रेमचन्दजी बानूलालजी ब्रोहरा, बुनी
- २६ श्री प्रेमराजजी हस्तीमलजी सोलकी, देवली जाऊया को
- २७ श्री प्रतापमलजी दुलहराजजी जटारिया, सेवाज
- २८ श्री वसीलालजी मोठालालजी सिगी, सोजत मोडी (बंगलोर)
- २९ श्री वस्तीमलजी बाठिया, सोजत मोडी (मद्रास)
- ३० श्री नवरलालजी लुकड व चम्पालालजी नाहर, बंगलोर मोडी
- ३१ श्री नवरलालजी विरदीचन्दजी कोठारी, (दूगड) कुरडाया
- ३२ श्री मोतीलालजी काठेर, कोटडा (बंगलोर मोडी)
- ३३ श्री मंगलचन्दजी नेमीचन्दजी ब्रोहरा, केलवाज, (बंगलोर)
- ३४ श्री मिथीलालजी फूलचन्दजी दत्ता, बीजाजी का गुडा (मद्रास)

ग्रन्थ-प्राप्ति के स्थान

(१) श्री मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति

श्री हीरालालजी भीकमचन्द

मुमर मार्केट जावपुर (राज०)

फोन न० ५४२

•

(२) श्री मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति

श्री पुखराज सीसोदिया

गोहिष्ठा गाजार यावर (राज०)

फोन न० ३१७

•

(३) श्री मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन-समिति

श्री तेजमलजी पारसमलजी धोका

गाजत मोटा (राजस्थान)

२२. श्री मंगलचन्दजी मीठालालजी चौधरी, जालोर
 २३ श्री मोतीलालजी महावीरचन्दजी श्रीश्रीमाल, सोजत, (कुम्भकुलम)
 २४ श्री मागीलालजी काठेर, कोटडा
 २५ श्री रतनचन्दजी मीठालालजी आचलिया, कोटडा (मद्रास)
 २६ श्री शोभाचन्दजी लुणावत, वगडी (मैसूर)
 २७ श्री सैतमलजी भवरलालजी वर सोजत, (मैसूर)
 २८ श्री माकलचन्दजी लालचन्दजी चौधरी, जालोर
 २९ श्री मिश्रीलालजी मीठालालजी सचेती धुधला (राजीवरम)
 ३०. श्री मोहनलालजी केवलचन्दजी काठेड वगडी (वीडकी)
 ३१ श्री मोहनलालजी रमेशकुमारजी सचेती, सोजतरोड
 ३२. रत्नचन्दजी, चान्दमलजी, मकाना नोमाज (चगल पैठ)

अभिनन्दनग्रन्थ प्रकाशन समिति प्रबन्धकारिणी

- | | | |
|---|------|--|
| १ अध्यक्ष— श्री पुखराजजी शीशोदिया, व्यावर | २६ " | श्री हस्तीमलजी मुन्नातननजी मूया, दामपा |
| २ उपाध्यक्ष— श्री बालचन्दजी वाफणा, तादडी (मार०) | २७ " | श्री पुपराजजी लुंरुड, सोजत मीठी |
| ३ उपाध्यक्ष— श्री केवलचन्दजी चौपडा, सोजत सीटी | २८ " | श्री जुगराजजी कोठारी, चावडिया |
| ४ मंत्री— श्री सम्पतगजजी वरडिया, जोधपुर | २९ " | श्री पुखराजजी गादिया, आगेवा |
| ५ सहमत्री— श्री मदनराजजी तालेडा, चावडिया | ३० " | श्री पारममलजी मूया, पीपाड सीटी |
| ६ सहमत्री— श्री सोहनराजजी सुराणा, सोजत मीठी | ३१ " | श्री जुगराजजी मुणोन, मावाड जऊन |
| ७ सहमत्री— श्री मदनराजजी नाहटा, सोजत सीटी | ३२ " | श्री बालचन्दजी काकगिया, चौहडी वडी |
| ८ सहमत्री— श्री मदनराजजी बाठिया, सोजत सीटी | ३३ " | श्री धीमनालजी मेठिया, भागी |
| ९ कोषाध्यक्ष— श्री इन्दरमलजी सकलेचा, जोधपुर | ३४ " | श्री निहालचन्दजी मेहता, मादडी |
| १० सलाहकार— श्री पारसमलजी वोका, सोजत मीठी | ३५ " | श्री फूनचन्दजी लुणिया, पीपलिया |
| ११. " | ३६ " | श्री चम्पालालजी डूगरवाल, कस्माचम, |
| १२. " | ३७ " | श्री बन्धाराजजी पीतडिया, मिरियारी |
| १३. " | ३८ " | श्री दीपचन्दजी मूया, नाजत रोड |
| १४. " | ३९ " | श्री छातमलजी विधमरा, बोपारी |
| १५ मदन्य— श्री सोहनराजजी राठोड, सोजत रोड | ४० " | श्री रामचन्दजी मरुलेचा, सेवाज |
| १६. " | ४१ " | श्री पन्नालालजी जागटा, जालपणा |
| १७. " | ४२ " | श्री पारसमलजी बालिया, व्यावर |
| १८. " | ४३ " | श्री माणकचन्दजी मूया, कुणल |
| १९. " | ४४ " | श्री लालचन्दजी मुणोन, विकन्दगाव |
| २०. " | ४५ " | श्री मुनीम मूया लादुरामजी कामदार, वर |
| २१. " | ४६ " | श्री पुखराजजी ब्रोहरा, राणीवाल |
| २२. " | ४७ " | श्री मानमलजी चोरडिया पिचियाक, |
| २३. " | ४८ " | श्री रामलालजी कोठारी, कुरटया |
| २४. " | ४९ " | श्री रूपचन्दजी लुणावत, पीपाड सीटी |
| २५. " | ५० " | श्री बन्नीमलजी मूया, पाली |

५१. " श्री भवरलालजी राका एडवोकेट, व्यावर

अनूठा व्यक्तित्व

वेद्य मोहनलाल गोड, आयुर्वेदग्रन्थ

सयम की मातार मूर्ति मरुधरकेसरी मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज का व्यक्तित्व अद्भुत है। उनमें परस्पर विरोधी में प्रतीत होने वाले अनेकानेक मद्गुणों का गुग्गुलु समावेश हुआ दृष्टिगोचर होता है। उनके स्वभाव में जहां मिश्री का माधुर्य है वहां भवरोगा का समूल उन्मूलन करने के लिए वे पुट्टी के समान भी हैं। दूध के प्रति अतिशय दशानु हैं तो स्वकीय गयममाधना में वज्र के समान कठोर हैं। उनकी भाषा में गुग्गु का पुट्ट होता है तो कभी-कभी कटुकता भी आ जाती है। किन्तु उम-द्वाना में भी उनकी अनन्त कृपा या मित्रण होता है, मरुधर-कामना छिपी रहती है। वे अतीव सहृदय, प्रतिभाशाली और शान्ति मग्न हैं। गोष्ठ चतुर्भाष में धार्मिक उन गुणों का परिचय पाकर मैं प्रसन्न हो गया। राजस्थान भाग्यशाली हैं जिन्हें ऐसे श्रेष्ठ मन्त्र पावा कर रहे हैं।

•

मरुधरकेसरी का अभिनन्दन

कविराज प० मूलचन्द्र भट्ट

हमारे चिरपरिचित मरुधरकेसरी तपोवन महामुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज एक आदर्श मन्त्र हैं।

आपके जीवन के साथ एक महान् पृष्ठभूमि है। आपका जन्म ऐसे स्थान में है, जिनके इतिहास में समाज सन्कृति एवं धर्मनाधना की एक विशाल कड़ी है। पाली नगर पुष्पवती पाग नगरी तथा सम्प्रति पाली है। मारवाड़ में राठौड़ राज्य के मूल पुरुष पाली में ही अपना उत्तिष्ठान प्रारम्भ करते हैं। उनके पदों की नीहात, परमार, चान्दुप आदि का सदियों तक शासन रहना पाया जाता है।

सैठ सहमलजी और केसरवाड़े महामुनियों की पदरत्नप्रण पाली नगर में ही रहते हैं। मरुधरकेसरी के पिता श्री सहमलजी उदारचेता थे और केसरवाड़े सरल प्रकृति की महिला रही, यह दोनों महान् गुण गुग्गु श्री मिश्रीमलजी का विरामत में मिले। जिस पर पूज्य गुग्गु की मरण २५ वर्ष के गुग्गु जीवन में प्राप्त हो गई। पूज्य बुधमलजी महाराज साहब परम शान्त विरक्त तपस्वी तथा तप पुज्य पुरुष थे।

पाली नगर ऐतिहासिक एवं सन्कृतियुक्त रहा है तो साहित्यिक रचि भी यहां प्रबल रूप में रही है। योगी-राज कवि गिर, भक्तगज पूनमचन्द्र, महाकवि मनोहर तथा देवकरण, महात्मा गगानानन्द एवं कविराज लालचन्द्र जैसी महान् कविआत्माओं तथा विभूतियों ने जन्म लेकर 'काव्यशास्त्रविनादेन काला गच्छति धीमताम्' तो ही प्राप्त किया। हम अपने चरित्रनायक में इन सभी गुणों की प्रचुर मात्रा में पाते हैं।

मुनिश्री के जीवन में क्या नहीं पाते? उदारता का पितृगुण प्रत्येक प्रेमी देवता आ रहा है। सरलता व सेवापरायणता मातृदुधामृत का प्रभाव रहा। जैन-अजैन बालाओं की शिक्षा और धर्मशिक्षाशालाओं की व्यवस्था में भी प्रत्यक्ष है। बीलाडा चतुर्भाष वि० न० २०१० मयवती द्वारा किए गए प्रबल प्रहारों का सटकर भी धमा दे देना किस पाठक से छुपा है? मुनिधर्म की महान् सेवा के साथ समाजसेवा में आप विमुक्त नहीं।

महाकवियों के काव्यगुण का विकास भी आप में असीम है। आपने दीर्घकाल महाभाषा आदि विविध गद्यों की रचना कर महाकवि की प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

तप पुज्य महामुनि बुधमलजी महाराज साहब ने वि० न० १९७५ में मुनिव्रत ग्रन्थ किये आज ५० वर्ष हो जाते हैं और श्रद्धालु यावत् स्वर्णजयन्ती मनाए तथा अभिनन्दनग्रन्थ भेंट करें यह परम श्रद्धा का चोतक ही है।



झूठ बिगाड़े पेठने, रूठ बिगाड़े पेन ।
कूट बिगाड़े फौजने, तूट बिगाड़े रेन ॥

इस महान् सन्तरल का समाज युगों तक ऋणी रहेगा । ऐसे प्रतिभापुञ्ज मरुघरकेसरीजी म० ना० के श्री-चरणों में शन-शत वन्दन के पश्चात् मेरी यही कामना है कि पूज्यश्री चिन्ता हो, आराम रम-रौति दिन हूनी तब चौगुनी बड़े और समाज के बहुमुखी विकास में आपका पूर्ण योगदान रहे ।



श्रद्धा-पुष्प

वादलचन्द काकरिया

मद्वपता सोभामदन, रक्त-शील गुणराम ।
मित्रो मुनि अनमोल मणि, करता ज्ञान प्रकाश ॥
ओसवाल वश को उजावला हुलान होय,
एकदम त्यागी-भो सजोग ज्ञान मेन को ।
शिक्षा सब पाय "बुजगुरु" हु से दीक्षा लेने,
गाय जिनवाणी टप जाण्यो हैं जिनेश को ॥
भाषण विस्तार नान-भान अधताड हुए,
श्वेत रंग जीनो रहे सोमित हमेश को ।
मार लीनो मार-ने अपार तपताप तप-
तन को सुधार लीनो तार दीनो देश को ॥



पुष्पाञ्जलि

कृपाराम परमहंस

मुनिवर की घर भूत मे, आनन्द रहे अपार ।
अष्टनिद्रि नवनिद्रि दे, भवरा मिटे विकार ।
मनुष्योनि आछी मिली, कर लो सुकृत काम ।
दरसन मुनियां देखना, इनमे है आराम ॥
मिसरीमल मुनिराज को, वन्दन बार हजार ।
केहरि-पदवी सत करी, धरम भुजा पर धार ॥
शरणागत रक्षक सदा, केहर-सत कृपाल ।
"कृपाराम" सत कहत हैं, सलक रयो निज बाल ॥

सूरवीर सत यही सत है सराहनीय
धरमरक्षाता दधानी धम मतवाला है ।
विकट सप्तस्याओं को डूर कर दोनो सब
पक्षपात पाले नहीं समी अव चात्ता है ॥
वर्णव व जन भाई एक निगा दले आष
दिव्यभाव दानी दया सत का रसाला है ।
मदपरकसरी की जय ज पुकारे जन
कृपाराम कहै ऐते एक ही निराला है ॥

•

गुरु स्वागत गीत

धमचन्द जन

आ तिरण तारण रो जहान कि भवजल तारेला जो तारेला ।
धो जन सघ तिरताज कि भवजल तारला जो तारेला ॥ ८१ ॥
बदा सु यादा उज्जवल है अमल सु यादा मोटा है ।
है तिग जसी आवाज कि भवजल तारेला जो तारेला ॥ ८२ ॥
ज्ञान इमानसम गुण भरिया नाम दम गील रतन का दरिया ।
मदपरकसरीराज कि भवजल तारेला जो तारेला ॥ ८३ ॥
जिनमन धाक जमाने वाला धीर ध्वजा फहराने वाला ।
जग जाहिर मुनिराज कि भवजल तारेला जो तारेला ॥ ८४ ॥
भ्राज भाग्य की बंदी सपकियो सोना रो मरजरो दमकियो ।
धाय हुआ मैं आज कि भवजल तारेला जो तारेला ॥ ८५ ॥
भाज पुनी को पार नहीं है धम की गया अठ बहो है ।
हरषी सबल समान कि भवजल तारेला जो तारेला ॥ ८६ ॥
स्वागत मुदयर स्वागत धारो मदधरा रा उज्जवाला धारो ।
धम की राखो लाज कि भवजल तारेला जो तारेला ॥ ८७ ॥

•

शत शत वन्दन

श्री प्रमचन्द लोढा जयपुर

स्वांगी मत तप पून हाते हैं उनम धट्टहाररि नान गरिमा हुना है । स्वमाध म य एक निम्बन बागान
क समान जलन निम्बन हाते है । उनका शिष्य यकिनत्व और मोन सावना स्वन गन-सात रूप म सुगरिन हाते है ।
व आत्मपापनारत मन्त्रपुरुष अधकार म भक्तन वाला वे न्ये एन प्रनाम गीत हाते हैं । ऐम समयी सपाधन गो





मिश्रीमन्त्री महाराज मातृ के चरणों में सेवा धन-धन उठन रा ।

जब मैं छह वर्ष का बाल था, मुझे तपावन वैराग्यमुनि, पान्थगणित आचार्य श्री श्रीमान् श्री महाराज मातृ के वचनामृत सुनने का मौमात्र प्राप्त हुआ । उनकी वृत्तवाणी ने मेरी मनोवृत्ति का स्वरूप ही मेरे अन्तर में गूँथ रखा है । उस तरह बाल्य में ही मेरा ऐसा मनो-प्रतिमन्त्र प्रवृत्त रहा है कि जिसका प्रत्यक्ष-प्राप्त रूप है । मेरे देवतुल्य स्व-पिता के लाज चाहने और तन्मय के सम्पर्क करने पर ही जब उसका गायक अन्तर उठ गया, तब मैं पड़ितार्थ मुग्ध हो नहीं पाया । उस प्रपञ्च जीवन में जब अभी किसी अन्तर्भाव के दर्शन होते, मन में एक अन्तर्-हृदय छिप जाता । फिर भी मैं भटक जाता । उस वर्तमान नीतिगत मन्त्र में मन्त्रावली और मन्त्र निरालम्ब जीवन जीना गिनता प्रत्यक्ष है । छह वर्ष और बाल्य के दिवसों में हमारे जीवन का अधिकांश भाग प्रवृत्त जाता है तब हम अपने को स्वयम्भू मान बैठते हैं । जीवन की यह रूढ़ि विचित्रता है । हमारे अन्तर में बड़े रूप का अन्तर ही हम बाहर प्रकट नहीं होने देते और जब तक हम उस दिव्य (राक्षसी) जीवन में प्रवृत्त नहीं होते, हम मन्त्रीय के मन्त्र प्रवृत्त नहीं होते ।

पर मौमात्र में जब अभी हम मन्त्रों का प्रवृत्त हो रहे हैं, हमारे अन्तर का यह विमान स्वयं प्रवृत्त-मित्र उठता है वही हमारा वास्तविक अन्तर्गन्ध होता है ।

सतशिरोमणि श्री मिश्रीमलजी महाराज

चित्राज हेमचिह्नागदाम

मन्त्रत्व ज्ञातव्यो ने मानव मन्त्रित्व को अनुप्राणित करना रहा है । मन्त्र-धर्म-प्राप्त-मुनि ने आन्तरिक मन्त्रित्व के अन्तर और अन्तर्गत मन्त्रों के वैदिक जीवन में स्थान देकर अध्यात्म की मौलिक प्रवृत्तियों को न केवल मुग्ध हो रहा, अपितु, मुग्ध-मन्त्र मन्त्र-मन्त्र उदात्तों द्वारा उसका प्रवृत्त भी किया । तन्मय भी मन्त्र और मन्त्र की वही एक ऐसी विरासत है जिसके आधार पर वह अपना भावी अन्तर्गत रूप निर्माण करता है । मेरा तो बड़े विमान है कि राजनीति द्वारा प्राप्त स्थानीयता को रक्षा और उत्कर्ष नैतिकतापूर्ण मनो के महावाग्मय जीवन के माध्यम से ही सम्भव है, वरन् और यही तो ही वे उत्कर्ष मानते आते हैं और उनकी एक-दूसरे पर मनो का अन्तर्गत स्थान बना हुआ है ।

जैनधर्म आनन्दार्यों का धर्म रहा है । धर्म, धर्म, धर्म, धर्म के अनुसार महापुरुषों द्वारा उसे वेग मिलता रहा है । महाप्राण लागागाह ऐसे ही आनन्दार्य महामना है । आपने अपने मन्त्रधर्म-वाग्मय के अन्त पर ऐसी प्रवृत्ति की कि उस समय का माया जैनमन्त्र उसका धीरे धीरे विरोधी बन गया । पर कहना उचित होगा कि लोकागाह मन्त्र के अनुगामी और मन्त्रधर्म के पोषक है । धर्म के नाम पर पवित्रित जाइवनों के प्रति उनसे हृदय में स्थान न था । वे जीवनगत प्रतिपादित मित्राणां की सुनिधि के वैदिक जीवन में देवता चाहते थे । उनका मन्त्रधर्म मन्त्र मन्त्रित्वगत विरासत में अन्तर्गत हो उठा था । इसीलिए आपने परम्परागत मन्त्र धर्म का न केवल अनुगामी ही किया, बल्कि मन्त्रधर्म परम्परा भी कायम की । इस पन्थ के मन्त्र पाठकों ने जैन-मन्त्रित्व को गौरवमय स्थान प्रदान किया ।

महामुनि श्री मिश्रीमन्त्री उन्नी मणिमात्र के एक उल्लेख है, आपने तब मन्त्र पर विरोधों की परीक्षा न करने हुए दिनप्रतिदिन धर्म और मन्त्र को माध्यम मन्त्र ही औपदेशित अन्तर्गत वाणी के माध्यम में जनता को नैतिकता की ओर आकृष्ट किया । उनका ब्रह्मन्त्र जीवन आज एक उत्कर्ष उपस्थित करता है ।

विचार मुनने का अवसर मिला। महाराजश्री वास्तव में महान विद्वान् मन्त हैं। माय ही विचारक एवं ओजस्वी वक्ता भी। यही कारण है कि महाराज श्री का प्रवचन मानव की हृदयतंत्री को झकून करते हुए उसे ज्ञान के माय देश व समाजहित की प्रेरणा देता है।

देश की दयनीय अवस्था, चारित्रिक पतन, गोवध का व्यव देश की गद्दी राजनीति ने भी महाराजश्री के हृदय को काफी झकझोरा है। इसी कारण आप में एक महर्षि के माय माय राजश्री के भी दर्शन होते हैं। हमारे देश के मन्त्री-मन्त्रियों और मुनियों का, जब भी देश पर विपत्ति आई, अन्याय व अत्याचार बढ़े, उसे निरस्त करने के लिये, समाज को मृत्यु एवं कर्तव्य की प्रेरणा देने के लिये समय समय पर प्रादुर्भाव होता रहा है। उन्हीं में मरुधरकेसरी भी हैं, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

जैन जगत की विमल विभूति

मदनलाल जैन

परम श्रद्धेय मरुधरकेसरी मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज साक्षात् स्नेह की मूर्ति हैं। आपके हृदय में पवित्र प्रेम का जथाह सागर हिलोरें लेता रहता है। मायावी ममार के मोह जाल को त्यागकर आपने अपने गिलते जीवन, उमंगती जवान्नी के २५ वें वर्ष में स्वामीजी श्री बुधमलजी महाराज के चरणों में पहुँचकर दीक्षा ग्रहण की। तब से आज जीवन के लम्बे पचास वर्षों तक समाज एवं माहित्य की सेवा में अपने को अर्पित कर दिया एवं मिठा प्रमार के कार्य में मलग्न रहे।

आप युगप्रवर्तक महापुरुष हैं। जैन दर्शन, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, विंगल आदि के ज्ञाता एवं अनुठी प्रतिभा के धनी हैं। आशुकवित्व जिनके लिये मात्र कोड़ा है। महाभारत जैना वृहत्काय ग्रन्थ जिनकी कवित्व शक्ति का मूर्तिमान् प्रतीक है। मरुधरा के कवि समाज ने आपकी प्रतिभा में प्रभावित होकर ही आपको आशुकवि की पदवी में विभूषित किया है। आपने राजस्थानी भाषा में प्रखर पाण्डित्य प्राप्त किया है।

मरुधरकेसरीजी सर्वजन हितैषी महापुरुष हैं। आपके दिल में सभी के उत्थान की मंगल कामना धनी रहती है। आप एक दीर्घदृष्टा अनुभवो मत हैं। जिन्होंने मदा ही जीवन में सुख और शान्ति को स्थिर रखने के लिये ममता मृत्यु और अहिंसा को ही परम आवश्यक बताया है। भगवान् महावीर के “अहिंसा परमो धर्म” के सिद्धान्त को अपने जीवन में पूर्णरूप में उनारा और उसका घर घर में प्रचार किया है।

मरुधरकेसरीजी स्थानकवामी जैनसमाज के एक प्रकाश-स्तम्भ हैं। आपने श्रमणसंघ के मगलन के लिये भागीरथ प्रयत्न किया और उसे मुटु बनाया। समाज की गला घोटने वाली अनेक कुन्दियों के विरुद्ध सिहनाद किया और नृद्व धार्मिक भावनाओं का प्रसार किया। और साधारण जनता को सन्मार्ग का दर्शन कराया।

आपने श्रमणमण की मर्यादा में रहकर गत पचास वर्षों में जैन-शान्ति, जैन-मृत्यु और जैन-मन्त्राति की जो महान् सेवा की है वह अनेकों साधकों के लिये पथ-प्रदर्शक सिद्ध होगी। जैन समाज के लिये अपने सम्पूर्ण जीवन को समर्पित करने वाले कर्मठ मन्त को हार्दिक श्रद्धा एवं सम्पूर्ण निष्ठा के साथ यह श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और यह मंगल कामना करता हूँ कि आप दीर्घायु हों। इति।



प्रमाद न करना—ये आपके पावन जीवन के महज गुण हैं।

मागवाड प्रांत में पूज्य रघुनाथजी महाराज के सम्प्रदाय में अनेक तेजस्वी सतों में आपका भी उच्च स्थान है। ज्ञानसाधना के बल पर, सत्य बात पर अटिग रहने के कारण, आगम एवं ग्रन्थों व दर्शन ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन करने से सत्य बात हो वह अपनी मानना, प्रखर प्रतिभा और स्मरण शक्ति के बल पर, जो पाण्डित्य आपको सरस्वती देवी की कृपा से मिला है, वह वस्तुतः सम्मान की वस्तु है।

आपने अनेक पुस्तकें लिखी व मागवाडी भाषा में कवितामय शैली में जीवन चरित्र लिखे हैं, तथा 'श्रमण कल्पतरु' का चार्ट आपके ज्ञान का प्रकाश चमकाता है।

आपका व्यक्तित्व बड़ा ही अद्भुत एवं प्रभावशाली है। जो व्यक्ति एक बार आपके परिचय में आया, वह सदा के लिए आपका अनुयायी बन गया। वानचिंत में आप वडे पटु और साव ही विनोदप्रिय भी हैं। समाज को मार्ग-दर्शन कराना व प्रेरणा देना, समाज की कुरीतियों व कुसृष्टियों को दूर कराना, हिंसा को बंद कराना आदि कारणों से आप लोकप्रिय हैं।

•

क्रांतिकारी वीर मरुधरकेसरीजी

मेघराज मेहता

मरुधरकेसरी प० रत्न मुनिश्री मिथीमलजी म० भारतप्रसिद्ध जैन साधु हैं। आपने जैन समाज के उत्थान के लिये विशेष कार्य किया है। राजस्थान में आपके सैकड़ों श्रेय हैं। हर तीन साल में आप उन सभी का दौरा करते हैं। आप हर सम्प्रदाय से मिलजुल कर रहने की भावना में विश्वास रखते हैं। स्थानकवामी सम्प्रदाय पर अटूट श्रद्धा होने पर भी सम्प्रदायवादिता उनमें नहीं है।

आपकी साहित्यिक सेवाएं प्रशमनीय हैं। आपके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और हो रहे हैं। आपके उपदेशों में सदैव नवीनता रहती है। उम्र में वृद्ध होते हुए भी आपके विहार और उपदेश जवानों को मात कर देते हैं। आप देश और समाज के उत्थान में विश्वास रखते हैं।

साधुसम्मेलन के आयोजनों में आपका विशेष सहयोग रहता है। अजमेर, सादडी, सोजत, भीनामर और द्वितीय (साधुसम्मेलन) अजमेर के सम्मेलनों की सफलता में आपका विशेष हाथ रहा है। सादडी सम्मेलन और उसके पश्चात् के सम्मेलनों के तो आप प्राण थे। आपने आपसी विरोध को मिटाकर जाति स्थापना के सफल प्रयत्न किये। आपकी विचारधारा समाज के लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई।

आपकी सदैव यही भावना रहती है कि समाज में एक ही रीति और नीति हो। उसी भावना के आधार पर समाज में मगठन कायम रह सकता है। श्रमणमण्ड के तो आप प्राण हैं।

आप स्थानकवामी समाज में एक विद्वान, क्रांतिकारी, मुमुक्षु, मिलनसार और व्याख्यानी सत हैं। आपके व्याख्यानों में बड़ी धूम रहती है। आपकी आज्ञा में प्रमुख तीन मत और हैं। अनेक साधुओं भी आपकी आज्ञा में हैं।

आपके उपदेश से कई शिक्षणमस्थाओं का भी निर्माण हुआ है जैसे लोकाशाह जैन गुरुकुल सादडी, सिरयारी श्री गीतम गुरुकुल, नोजन और विलाडा आदि कई क्षेत्रों में वाचनालय आदि भी खुले हैं। सादडी क्षेत्र पर तो आपकी विशेष कृपा है। व्यसन होते हुए भी आप समय निकाल कर पढ़ाते हैं। सादडी, मुन्डारा, वाली, सान्देराव,

बनो भाति क्षमा म आपक उपलब्धा का विगम प्रभाव है।

आप कतिन परिश्रमी ह। साचार (राजस्थान) जस दूर क्षत्र म जातर चतुर्मास बर चुक ह। आप छान छाना म विरहरना विगम रूप से पमन करत हैं।

गसत देव सयरी प्रायना है नि मरुधरकेसरी प रतन मुनि श्री मिश्रीमलत्री मन्तराज जन महान् प्रातिहारी सन का राष्त्र ओर समाज की सेवा करा के निव विगम बन प्रगन करें।

•

एक आदर्श महर्षिवर

महर्षिवर जन बरनाता

महर्षिवरना ना जीवन क्या है ? अहिंसा सत्य, समम तप जीर क्षमा का सातन नियम जैविक नैयमगाना जीवन है। जो जन जन म धर्म का निमन बना का सातन उहाकर उनके मानस का पवित्र स्वच्छ बना रहा है।

गता बीनमा दावन जन समाज म हागा जो आपके नाम तप योग और दराय्य से परिचित न था ? भार समाज का ही भारतीय कानन गिने मनुष्या म से एक है।

आप सत्य त्याग सदा सदा ज्ञान का प्रखर शक्ति विरणा म मरुधरा का प्रकाशित कर रहे हैं। मरुधराग द्वारा आप ज्ञान के प्रति सभी निष्ठा पदा कर समाज का सत माग के पवित्र बना रहे हैं।

आपके सत्य समम और दराय्यपूज ज्ञान का सुमधर सुगम भारत के कण कण का सुवाधन के मोक्षना और गानि प्रान कर रहा है। केय ममानमानव कायय प्रगति मुनाय का नव जन का को मित्रता रहू।

•

मरुधरकेसरी एक परिचय

मरुधरकेसरी पितृसीमा सादर

परमपूज्य गुरुदेव कविगुणिगामिनि मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलत्री मन्तराज जन जगत के यगपुरुष है। आपने गुरु जनपद का माग वण्णी है छात्र की धार का समचले हुए मरुधर आधिमातक मरुधराजा का तिगानि हरेर मोक्षमाग का अनुसरण करत वाणी दाया का स्तोवार किया। आप अपने जीवनपत्र का ज्ञान दान की ओर निरंतर प्रसरण करा चारह हैं।

निरंतर भ्रमणगाल रत नम भी आप अध्ययन को अपना जीवनसाथी मानत हैं। आप से रुद्ध अवस्था म भी प्रत्येक क्षण का उपयोग विद्या के चिंतन में समत करने रहते हैं। आपका बाने गात आरव ज्ञानरासा का अपन यत्नामस से सतन कर आप समय अध्ययन तथा साहित्यनिर्माण म लगते हैं। आप प्रारम म नो हृद निश्चयी रहें तथा प्रारम किये हुये कार्य का पूण करत रा कठिन श्रम भी करत रहें। बाह्य उमम रिजना जो अतिशय उपस्थित था परत समस्त बाधाओं का पराजय समाज के हित को ही एकप म रहत नम आपका सदा आर्तिनाद नव मन्त्रांग बना रहता है। आपका महान मन्त्र तिनाण सारियाण जात्र अकर्मिय है।



आप लोकहित के लिये भ्रमण करने हुए अपनी जानमाधना मे मानारिक मुख मे लिपि व किर्नव्य-विमूढ मानवों का अपने वचनामृत मे अज्ञान दूर कर सच्चे मार्ग का प्रदर्शन करते हैं। आपके व्याख्यान सर्वदा समाज-वाद की प्रेरणा देते हैं। आप इस समय मे अत्यन्त विन्तुत भ्रष्टाचार, कालावाजार, गिथनखोरी आदि का निरन्तर वहिष्कार करते हैं। इसके लिये आप प्रारम्भ मे ही गुरु खट्टर के बन्धों को धारण कर अपने तपस्वी जीवन को सच्चे कर्मयोगी की तरह आपन कर रहे हैं। आप विश्व मे शान्ति के मदा पुजारी रहे हैं परन्तु सर्वदा शान्ति की प्राप्ति वीरता मे करने मे विश्वास रखते हैं।

आप नियमों का पालन नाग्रह करते हैं। जैन शब्द का निर्माण 'इन्द्रियजय' मे हुआ है जिसके कि यम-नियम मूर्तिमन्त उदाहरण है। मतत चिन्तन अध्ययन लेखन आदि विषयों में इतने व्यस्त रहते हुए भी सगठन मे आप पूर्ण विश्वास रखते हैं। सगठन मे दरार होना आपको कठई अभीष्ट नहीं तथा सगठन हेतु आप महान् मे महान् त्याग करने का भी मतन तत्पर रहते हैं।

आपकी गारोरिक सुपमा तप के तेज मे मतत दीपन रहनी है। इतना होने हुए भी आपका जीवन त्याग तपस्या एव सरलता-मादगी की साक्षात् प्रतिष्ठति है।

हम सर्वदा मे अनुभव करते आये हैं कि आपका अमूल्य उपदेश मानव के समस्त दुर्गुणों को दूर करने वाला महोपविद् कार्य कर रहा है क्योंकि प्रवचन मे मदा समभाव, महिष्गुता और विश्वमैत्री की त्रिवेणी प्रवाहित होनी है। विश्वशान्ति की साकार कल्पना की अनुभूति आपके वचनों मे मानव प्राप्त करना है।

●

श्री मिश्रीमलजी म० सा० के प्रति मेरी अभिव्यक्ति

जगदीशकुमार वेणव, सादडी

मेरे दृष्टिकोण मे श्री मिश्रीमलजी महाराज हमारे मारवाड प्रदेश के अवतारी हैं। आप अनेक सद्गुणों की खान हैं, जिनका सपूर्ण वर्णन मेरी यह लेखनी मैकडों वर्षों मे भी नहीं कर सकती, किन्तु “अकरणान् मदकरण श्रेय” तथा वाच्य मे “महापुरुषों के कुछ गुणवर्णन भी अपने आपको पवित्र करने वाले होते हैं” की उक्ति अनुसार यथानामर्थ्य कुछ लिखना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

इस वैज्ञानिक चकाचाँव के समय जबकि सब प्रकार के आनन्द के माधन मानव मात्र के इन्द्रिय मुखों को प्रदर्शित कर रहे हैं, उस समय समस्त आकाशाओं को रोककर अपने आपको जैनमाधु के तप मे दीक्षित कर प्रतिवर्ष हजारों मील की पैदल यात्रा करते हुए तथा छोटे-बड़े नगरों मे रहने वाले अज्ञान मे लिप्त हमारे आवागच्छ मानवों को अपने त्यागमय मादगी के जीवन के मारभूत अमृतमय उपदेशों का आप दान करते रहते हैं। आपने कई पथभ्रष्ट तथा बिलुठित व्यक्तियों को केवल मात्र दर्शन देकर या साधारण उपादेश मे भी इतना प्रभावित किया कि अपने समस्त जीवन के मचित दुर्गुणों को क्षण मात्र मे ही त्यागने को उद्यत हो गये। यह मैं तो आपकी सच्ची तपस्या का ही वर्दान समझता हूँ। आपके एक बार दर्शन करने वाले व्यक्ति की सदा यही लालमा बनी रहती है कि वह आपका मान्निध्य मदानवदा बनाये रखे। आपने भी स्वाभाविकतया सबको संभावित रहना अपना कर्मक्षेत्र बना रखा है जो कि हम सामारिक मानवा पर उपकार करने हेतु है।

●

मेरे हृदय मे मरुधरकेसरीजी महाराज का स्थान

कह्यासात सेठ सादरी

मरुधरकेसरीजी जनधम का आलापप्रसारण करने के लिए इस आश्रमपी विद्वानगरी में मृग के समान काय करते जा रहे हैं। जिस प्रकार मृग का प्रवाग अति प्रचुर हात हूण भा प्राणामात्र के जीवन की स्थिति को बनाये रखने के लिये अत्यंत आवश्यक होता है तन्मुख ही मन्त्रीमणि के प्रवचन बाहर में दीपन पर कानार हात हूण भा एक ठाव पर तो के के लिये व्यवस्कर होते हैं। आपसी उक्तिचातुष्य के सामने जन्मे से अन्धे मान्दिक भा द्रवीभूत का जान है। आप जनधम के मूले रहस्य के जनसाधारण के मानने में तथा अतिविचारवान यकिनियों के लिये भा मममाय के माररानी भाषा में मरुधर केसरि समझाने का सतत प्रयत्न करते जा रहे हैं। आपन दण विष्णु में जननरव के प्रचार का बल्ल बड़ा काय किया है।

आपका हृदय दुखी पीड़ित एवं आत जना के प्रति पूर्य में भी कामर है जबकि आप नियम पालन करने में बल्य में बगार हैं। आपने दण या प्रवचन मन लेने के लिये को भी पढ़िन आपस प्रमादित जाकर आश्विन मरी हा सज्जना का ऐसा प्रदान नही होता। प्राय यो लेवा गया है कि आपका उपदगामत का गुनन बाग्य वाकिन अवन जीवन में उन बाता को प्रायोगिकरूप में उतारने का प्रयत्न करता ही है। यो मैं आपकी तपस्या का ही बल्लन प्रभाव मानता हू।

डाई हजार वर्ष पून या प्राचीन काल में जिस प्रकार स्वामी महाशरीर या आरागाहन जनधम का प्रविष्टाभा का अवन जावन में उगार कर उनरी का वनसिद्धि का प्राचीन मान का किया होता था प्रचार आज हमारे सामने काल पर परा से तिराहित जनधम का पुन निर्माण करने हेतु आप मन्त्रपुत्र्य का जीवन हमारे सम्मुख है। आप निरनर भ्रमण करते हुए जनधम के ध्वज का तथा उनका वाक्य और मूत्रा का आचार प्रमादित कर रहे हैं। मैं तो यो तक भी बल्ले का सा तो कर सक्ता हू कि इस विविध परिवर्तित समय में जनधम के अन्तरव का रखने के लिये आपने अपना ममल जीवन उत्सग कर लिया है। आप प्राणवण से हता च गे म लग रहने ह कि विद्वानाति के लिये धम का आराधना तथा उनका नियम का पालन यन बन रूप में जाता रहे।

•

विनम्र अभिव्यक्ति

मणिलाल भट्टरा अभिप्रेता
सादरी गुप्तकुल

पूय महेश्वरी मरुधरकेसरीजी महाराज में भारतवर्ष का स्थानरचामी मशज बहुत घण्टा तरफ पारचित है। स्थानरचामी जा मशज हा ममल भारतवर्ष के जन समाज तथा मारवा प्रान्त के जनेनर ममात्र पर भी आपका प्रम सहितगुता त्याग बराग्य और चारित आति का अर्थ प्रभाव है। आपके आज्ञा सम्पत्तान का पालन चारित्राति मया में परिरूप अष्टतमप श्यावाश से एक बाक्यरग से परिरूप ववितात्रा के कारण जन के जननर ममाज के आमात्ररुज नरनारी प्रभावना है।

आपका जीवन कल गे भा अधिक् कामर एवं बल्य में भा अधिक् कठोर है। एका सदिन का नागिना सारातर विमूर्तिता में ही प्राप्ति होता है। जब भी आपका समय पाई अनाप जन का मन कात्रति का उर प्रमात्रा य एका योगदान का जाता है और जन एव म भुक्ता का प्रामना करता है तब आप जे सन्ने का माररना दन है त्रिमय कि उग तमल पानि प्राप्ति हो जाता है। यह जन एव का निरपण कर दता है।





आप अनुशासन और मगठन के भी पूर्ण हिमायती हैं। इन दोनों के बिना समाज का अस्तित्व खतरे में खाली नहीं है। इसी कारण से आपकी कृपा में श्री लोकाशाह जैन गुरुकुल मादडी के भव्य विशाल प्रांगण में अखिल भारतवर्षीय स्थानकवामी जैन साधु सम्मेलन सफलीभूत हुआ उसी समय करीब ३०० मत सती और पचास हजार थावक-श्राविकाएँ आबालवृद्ध नर-नारी मनुपस्थित थे। इनको एक मूत्र में पिरोने, सम्प्रदायवाद को समाप्त करने, आचार्य पदवी को सघटितार्थ समर्पित करवाने में आका अथक परिश्रम, अनुग्रह त्याग, मधुर व्यवहार समयनिष्ठ जीवन और सब सत्त-मनियों को स्नेहपूर्ण समझाना ही अधिक काम आया है। इस वक्ष्यमान स्थानकवामी जैन श्रमण सघ व थावक सघ को समस्त भारतवर्ष में स्थापित करवाने में प्रमुख भाग आप श्री ही ने लिया है। इसके लिये आपको जितना भी व्ययवाद दिया जावे उतना ही कम है। जब कभी श्रमणसघ की कांठन समस्या मुनिगजों के सामने आ पड़ती है तब उस कठिनाई के समय आप द्वारा सहज सरल ज्ञानि का मार्ग प्रदर्शित कर दिया जाता है। यह आपकी अपूर्व सूझबूझ का सफल परिचायक है। इसी कारण से प्रमुख मुनिवृन्द समय-समय पर सघटितार्थ आपकी सम्मति की प्रतीक्षा किया करते हैं। आप जैन समाज को सुमंस्कृत एवं सुशिक्षित देखना चाहते हैं। आपकी मान्यता है कि माधुवर्ग और सनीवर्ग चाहे कितना भी समयनिष्ठ चरित्रनिष्ठ क्रियाश्रद्धा वश न हो यदि उनके अनुयायी मच्चे सुमंस्कृत सम्मन्विता न हो तो उनका समयी जीवन अधिक दिन तक सुगन्धित रहना असम्भव तो नहीं मगर दुष्कर अवश्य होगा। हमारी जैन समाज के बालक व बालिकाएँ अधिक से अधिक मात्रा में सुशिक्षित हों, धर्माध्ययन करें, विनीत बनें, जैन धर्म की विगलता को अपनावे, यह पूज्य गुरुदेव की हृदय में तमन्ना रहती है। इसी कारण आपके मनुपदेश में प्रभावित होकर कई सस्थाएँ स्थापित हुईं।

स्व० प्रधानमंत्री श्री नेहरू का यह नारा कि आगम हराम है, आपने कई वर्षों में अपने जीवन में कार्यान्वित कर रखा है। आप एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देना चाहते हैं। हर समय कुछ न कुछ जनसमाज के हितार्थ विचार करते हैं या कविता या लेख के रूप में लिखते रहते हैं। आपके अनमोल वचन गद्य, पद्य, कहानियाँ, कविता आदि के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इनका प्रकाशन भी पूज्य रघुनाथ जैन पुस्तकालय सोजत मिटी ने और बुद्धवीर जैन स्मारक मण्डल जाधपुर ने करवाया है। जब आप विक्रमादित्यचरित्र, रामायण, महाभारत आदि रचनाओं को सुनाने बैठते हैं तो श्रोतागणों का हृदय ऐसा हो जाता है कि हम हर समय पढ़ा करे और सुना करे तो अच्छा हो। इनको पढ़े बिना या सुने बिना कहीं भी जाने की इच्छा नहीं होती है। मच्चे और सुयोग्य वक्ता लेखक कवि की असली पहचान भी तो यही है कि श्रोतागण या पाठकगण उनकी रचना को पढ़ या सुनकर अधिक से अधिक पढ़ने सुनने को जातुर हो उठे।

पूज्य गुरुदेव को अपने मिशन में सहयोग देने हेतु विद्या-विनोदी उपप्रवर्तक श्री रूपचन्दजी म०, आतस्वभाव सेवासात्री श्री महेन्द्र मुनिजी म० विद्यार्थी श्रीमुकून मुनिजी म० जैसे शिष्यरत्न प्राप्त हुए हैं जो आपको प्रतिदिन प्रतिलक्षण सहयोग देते रहते हैं और आपके आदर्श जीवन को अपने जीवन में उतारने के लिये सदैव सचेष्ट रहते हैं। पूज्य गुरुजनों की नेत्रा-नुश्रूपा करते हुए ये शिष्यगण अतीव आनन्दानुभव करते हैं।

पूज्य गुरुदेव हम मरुघरकेसरी के केसरी हैं। आपका विहार प्रायः इस मारवाड़ की धरा में हुआ है। जिस भाति मिहगर्जना को सुनकर सियाल, लोमडी, हाथी, व्याघ्र आदि प्राणी रफूचककर हो जाते हैं इसी भाति आपकी सम्मन्विता आदि तमोगुण भाग जाते हैं। जिस भाति तिमिर सूर्य के उदित होते ही स्वतः समाप्त हो जाता है तद्वत् मिथ्यात्व की देवी-देवताओं की उपासना, ज्ञानान्धकार, अनुकम्पारहित भावना स्वतः जहाँ जहाँ आपका पदार्पण हो जाता है वहाँ से समाप्त हो जाने है।

गुण गान

गिरधरात्मज सवाईराम नारा सोजत

(तज—घनश्याम तेरी बनी हमका भी सुना नैना)

बुद्धमल मुख क शिष्यवर मरुधर के बेगरी हो
 रघुनाथ सम्प्रदाय भ मुनिबोर बेगरी हो ॥ ८ ॥
 मन्त्री मुनि भी निधीमल क्यों न बेगरी हो
 अवतार ग्राह कुल मे श्री सद्य बसरा हो ॥ ९ ॥
 सयम से सिद्ध पद पे अधिकार यू जगामा
 त्यागी हो धीतरागी जिनबोर कगरी हो ॥ १० ॥
 गुण बाध ब्रह्मचारी बसु कम का बिहारे
 सिद्ध छष्ट गुण को धारे बन्धान बेगरी हो ॥ ११ ॥
 सिद्धात भूय जाता उद्ग व हैं बाता ।
 भवि जीव तत्त्व बोधक गुनवान बेगरी हो ॥ १२ ॥
 उपहार भी अनेकों करते सदा विवर क ।
 सत गीत ज्ञान जप तप तप तेज बेगरी हो ॥ १३ ॥
 धरत चरण मे भूमि होतो पवित्र धन धन ।
 दलितहार इन चरण पे भग ध्यान केसरी हो ॥ १४ ॥
 बयानिधि दिवाकर गुन हैं अनन्त धारे ।
 अनुचर सुबधि सवाई कवि विरत बेगरी हो ॥ १५ ॥

•

श्रद्धेय मरुधरकेसरी, काव्य काननकेसरी क चरणो मे

अम्बोदान भट्ट अम्ब कुरदावा (राज०)

दाहा जयजिनेन्द्र भजगुणहरण भगवत्करण महान ।
 चारुचरण-तारनतरण अवरण शरण निधान ॥
 मतगय—जो बदनानिधिराज निरन्तर जाहिरजारी विप्रुति भचार ।
 वेद्यतद साम बाम-अम्ब अघागु हेतु हु यादवरा ।
 सगप-सब शिष्यसब भाधति ज्ञाननिज्ञान सुध्यास जुटा ।
 निधीमुनीवर सो कविराज हरेममभानमकी जइता ॥

•



पेखो मुनि मिश्री प्रभा

प० जालाराम 'बाल' जोधपुर

सोरठा

सद्गुरु ने सो वार, करु नमन कर जोर ने ।
जिण निज विरद विचार, वर्ण बोध दोनो विमल ॥१॥
अनुपम ओ उपकार, सद्गुरुरो स्वीकार कर ।
सुगुन लिखु श्रीकार मिश्री मुनि रा मोदसू ॥२॥
घरकर उर मे ध्यान, आदिनाथ अरिहन्तर ।
कायारो कल्याण, करते मरुधर—केशरी ॥३॥
सिद्धा ने सो वार, शीत नमावे स्नेहसू ।
उर ज्यारो उपकार, माने मिश्री मुनि महा ॥४॥
अति उत्तम उपकार, उर मे घर आचार्यरो ।
वन्दन वारम्बार, करते मरुधर—केशरी ॥५॥
आद्यो ओ उपकार, उपाध्याय रो हे सही ।
सुत्तागम रो मार, समजायो मुनि मिश्री ने ॥६॥
अधिकारी अणगार, जेते हे इण जगत मे ।
व्हाने वारम्बार, दग्दे मिश्री मुनि विमल ॥७॥
नादर और सहर्ष, पूज पञ्च—परमेष्ठि पद ।
उत्तम गुण आदर्श, मिश्री मुनि मन मे मढ़े ॥८॥
जवर वतायो जाप, सद्गुरु श्री बुधमल अहा ।
जिणरे पुण्य प्रताप, मोहे जन-मन मिश्री मुनि ॥९॥
भाव सुद्ध हो भवित, सद्गुरु रो कीबी सरस ।
इण कारण आ शक्ति, पाई मिश्री मुनि प्रबल ॥१०॥
करन आत्म कल्याण, अपनायो गुरु-ज्ञान उर ।
पेत्तो पुण्य प्रधान, मिश्री मुनिरा जगमगे ॥११॥
निगमागमगे नाण, गुरुमुख सेती ग्रहण कर ।
काया रो कल्याण, करते मरुधर केशरी ॥१२॥
सुत्तागमगे तार, सद्गुरु समजायो सही ।
उणहीरे अनुत्तार, वाणी मुनि मिश्री वदे ॥१३॥
मुक्त न ररते स्नेह, मुगुर-भक्ति तज मुक्ति ने ।
अति उत्तम मत एह, मन मे घरयो मिश्री मुनि ॥१४॥

वादन शरिर करि श्लोष तरवस सप्त निज ताद मे ।
 बाण सरिस गुरु श्लोष धारयो मरुवर-केगरी ॥१५॥
 जग दरानरी दीर घट दरान दोरे सदा ।
 प्रतिपल उगरी धोर धुनि मुनि मित्री री पुके ॥१६॥
 जगरी ममता नीत प्रभु पारस स प्रीत कर ।
 हृदियनीत अतीत बनिमे मित्री मुनि विमल ॥१७॥
 हिय मे अति हरपाय पारस-प्रभुरा पाय मे ।
 मित्रीमल धुनिराय पूजे प्रतिदिन प्रमत्त ॥१८॥
 भेदन भव-भय श्रान्ति जाप गानि री नित नप ।
 मित्री मुनिगी कान्ति पसरि पाते पुनि प ॥१९॥
 पुरन पाले भ्रम नित्य मम स निरखलो ।
 टाले टुक ना नेम गुरु मित्री मुनिमिष्टु जत ॥२०॥
 दुषा तया श्रु नीत उरण आदि परिपह सहे ।
 पर ना तोडे प्रीत, महाधीर से मित्री-मुनि ॥२१॥
 धार ब्याप्य विसार पचमहाभत देखनो ।
 ए मित्री अणवार पाले परन प्रमत्त ॥२२॥
 मुक्ति-हेतु तज मार सपमे समरागये ।
 ए मित्री अणवार जवरा जूझ गचलो ॥२३॥
 नयिचन छति उर धार मार तथो मद मार क ।
 त मित्री अणवार महि मे विचरे सोदल ॥२४॥
 जारन जय जजार सपमे के दुष सुगुप्त स ।
 पार ब्रह्मसू धार करते मरुवर केगरी ॥२५॥
 तज सामस ततकार उरविष समता आन्दे ।
 पुष्य इसासू धार करते मरुवर केगरी ॥२६॥
 मन की ममता भार जल मे रहता जलन जिमि ।
 ओ मित्री अणवार साबर जय मे सचरे ॥२७॥
 अनगन बायाबलेन उनादरि भिलाचरि ।
 रत परिहर क हमेन प्रतिसलीनता तप तप ॥२८॥
 प्रायश्चित्त क ध्यान विपुल्य स्वाध्याय पुनि ।
 वेदायच महान तप विनय तप मित्री मुनि ॥२९॥
 मन की रत्न मजवत मेल रुख प मारत ।
 असे अ अवधूत मित्रीमल भनिराज है ॥३०॥





शोधन आत्म—स्वकीय, दीनबन्धु, गुनगिन्धु की ।
 कविता अति कमनीय, करते मरुधर—केशरी ॥३१॥
 घन सन अति-गम्भीर, गुण मिश्री नी सुन गिरा ।
 धरते मन मे घोर, चातक-ने चातुर लखो ॥३२॥
 सज्जन को सम्मान, करते पै करने नहीं -
 मन से अपने मान, ब्रह्म मरुधर—केशरी ॥३३॥
 मुनि-मग की मर्यादा, पाते प्रतिदिन प्रेमसू ।
 पै पल भर न प्रमाद, करते मरुधर—केशरी ॥३४॥
 सज्जन-हित नव-भीर, घोर ब्रथावे घोर ने ।
 गुन ऐसे गम्भीर, गुण मिश्री मे हैं घने ॥३५॥
 देकर विद्यादान, शुचि शिष्यन की गर्वदा ।
 भद्रात्मा को नान, मिश्री मुनि करवा रहे ॥३६॥
 महिमा लखो महान, जग मे जिनकी जलद सम ।
 अल्प न पै अभिमान, करते मरुधर केशरी ॥३७॥
 गिरते आ जो गोद, नय-भय से नयनीत हो ।
 उनको दे आमोद, मलयगिरि सम मिश्री मुनि ॥३८॥
 चलत चित चार्वाक, चरण चरण पर ले करें ।
 मिश्री मुनि की धाक, सुन शरमाये वे सनी ॥३९॥
 शरणागत को ताज, सदैव हृदय मे सर्वदा ।
 मिश्रीमल मुनिराज, सुर पादप नम दे सही ॥४०॥
 विमल सुधा सम वेण, दूर करे दिल देण ने ।
 सुण नृप पावे तेण, मिश्रीमल मुनिराजरा ॥४१॥
 शील तपो शृङ्गार, अनुपम ललि के अग पर,
 मन मूर्छित हो मार, गुर मिश्री ग पद गहे ॥४२॥
 जिनवाणी गी जोड, क्रोड छोड, अडब न करे ।
 मन मे विमल मरोड, गुण मिश्रीने आ धनी ॥४३॥
 दम्भ-तिमिर को दूर, नतत करण-हित सू सम ।
 मुनि मिश्री रो नूर, जगमगात जग मे जवर ॥४४॥
 करि-न्म शत्रु कर्त कर्म करग चकचूर थो ।
 मुनि मिश्री रो नूर, हेरो है हृयंक्ष-शम ॥४५॥
 सत्तन की सुचि सेव, तन से, मन से, वचन से ।
 अल्खो रस अहमेव, करते मरुधर—केशरी ॥४६॥

समाज के प्राण में आपका विशिष्ट व्यक्तित्व है। आप नामाङ्गित एवं धार्मिक दृष्टिकोण में सर्वोच्चता रखते हैं।

अन्त में मैं परम श्रेष्ठ मरुधरकेसरीजी के प्रति हार्दिक मंगल कामना रखता हूँ। आप युग-युगों तक उनी तेजस्विता-ओजस्विता के साथ चिरजीवी रहें।

०

मरुधरकेसरी सिलोका

जोगीलाल मेवक

समस्त शारदने गौतम गुण ज्ञाना, सानिधकारी करजो मुन्य शाता ।
 मिथी मुनि की महिमा मुन्य गाऊ, शब्द सुकोमल आपमू चाऊ ॥१॥
 मरुधर पाली में जन्म्या जयकारी, महता सोनकी जानि हूँ द्वांगी ।
 सहस्रमन्त्रजी तात कहाया माता केमन्दे निज कूछे जाया ॥२॥
 रूप अनोपम बुद्धि रा नागर पूरा पुनर्धना वंश उजागर ।
 बाल बुद्धि में विद्या बहु नीली, चाल चतुर्गई देखी मैं नीली ॥३॥
 सबत उन्नीमें गुणतर नामी, पाली परार्थ बुद्धमन्त्रजी स्वामी ।
 बाणी मुनीने वंरागी वंरा, दिक्षा लेवाणा मुख में यो केना ।
 स्वामी जी नाथे आप मर्चया मुयाजी आय गुरुवर नु लडिया ॥४॥
 मारा दावर ने सिखा कर लाया, आछी कीनी घर ताना जडवाया ।
 नाथे स्वामीजी म्होतो नहीं नाया पाछा चाले तो ले जायो नाया ॥५॥
 बोले वंरागी घरे पवारो म्हारे आबणरी आन्य निवारो ।
 करियो भमेनो कारी नहीं लागी आखिर में नजम लीनो वड भागी ॥६॥
 बोलचाल में थोकटा गहरा, सूत्र अठारा गिह्या गुण शहना ।
 काव्य न्याय में व्याकरण पहिधा, वित्तय करी ने अच्छा गुण मडिया ॥७॥
 वर्ष मत्तग लो मेवा गुरु कीनी, नजित करीने प्राशिसो लीनी ।
 नमत उन्नीने पिछ्यासी वर्षे, स्वर्ग सुगुंजी परार्थ हूँ ॥८॥
 विरह गुरुवर रो लमियो नहीं जावे पल पल ज्याने यादज आवे ।
 आखिर विचारियो ज्ञान गुणवता, मघर छाती तो करली सतवना ॥९॥
 केई विगयरा त्याग कर लीना खाना पीना नव ऊँचा घर दीना ।
 मात द्रव्य तो राख्या गुण जाहर, महन परिषह गुन बनियाओनाहर ॥१०॥
 बाणी अमृतमी वर्षे एक धागा, गुणतो हरनावे नर नारी सारा ।
 हेतु जुगती तो स्वामी इमडो जो मेले ग्यान गया तो घर घर रेले ॥११॥
 कविता करवा में बुद्धि अनमोली नानो घट में तो शारदा बोली ।
 आसु कवि री पञ्चीजी पाया, चर्चावादी तो सोरे मन भाया ॥१२॥

नाम गुणतो ही पावडी धूने मिथी भुनि तो सिंह ज्यो मूजे ।
 रिमो वत्रतोडा वेई जान चढ़ावे गुन कपा सू सारा दह जावे ॥१३॥
 छोटा मोटा परवा नहीं राखे साचो बात तो चोडे ही भाले ।
 मिथ्या अधारो कई गामों रो टायो जघ्रविहारी काज मुफायो ॥१४॥
 गुप्तकुल विद्यालय कई खुलवाया सालो ह्व्या रा दान विराया ।
 उपदेग यहा परचो है ऐसी काय बन जावे मन चाहे जसो ॥१५॥
 गुप्त कदगासगर ने करुणा बहू आवे गोपाला वेई गामों खुनवावे ।
 थडा परनी है लालो नहीं चुक कई परवासी जभाडा कूके ॥१६॥
 जन घम रा सदा सहाराया दया घम रा ठाढ लपाया ।
 पुन्य रघुपती गावा दोपाई भलो सुत पायो बेगरदे माई ॥१७॥
 घारा बिना म धाजे इक डको स्वमत परमत रा आणे मन सकी ।
 सामो धोलन री हिम्मत नहीं होवे निगुरा निदक छानेजी रोवे ॥१८॥
 छोटा मोटा बड़ ग्रथ बनाया स्तयन चौप्यो रा पार न पाया ।
 स्वामी बुधमलजो सा माथे जो गाजे ज्यारी गावी प आप विराजे ।
 कोरत कमला तो बेल करावे, दिन दिन स्वामीजी नाम दिपावे ॥१९॥
 साधू सम्मेलन सादको माई भारत रा मुनिवर मिलिया सब आई ।
 बाडा बड़ी ता जनता नहीं धावे भेग यद्यो रा बयनी दफनाय ॥२०॥
 मलियो शमेलो नदभुतरग द्वापो मानस मंदिर तो एकवच पसटापो ।
 बीर लोहाशाह कोनी नरकारो सूकोडा जाग्या सबहो अणगारो ॥२१॥
 गुप्तर हमारा कमरा कस लीनी मनता गद्यो री सारी तज बीनी ।
 मिथी मुनिवर सहनत कर भारी ग्रम खर्पायो मिलयो फुलवारो ॥२२॥
 इजो सम्मेलन सोजत रो चमो उठ पण मुनिवर खरियो पद्धरगो ।
 गहर विलाडे धर्मा आया सय सारा म हृष सवाया ॥२३॥
 अमावस सायन बेरी धन आई गुप्तरचे दिल म धर्मा दर्माई ।
 मरती मद्योवा ने रोकी वडभगो मारण घालो रे तामस अति जागो ॥२४॥
 मारण रे जाने साडी धर्मा घन घन हो अनिवर समता अपमाई ।
 गहर सारा री जनता जव हिनजी बसो ग्रम री सारा मे यजगो ॥२५॥
 हिं आला मे हागयो हाकी नाम तो ब दयो गुप्तरजो धारो ।
 गनी मजूर होगी यल भाही सान कमायो स्वायो इन आई ॥२६॥
 जन मनियो री गति रहे बेसी चोडे दिखलाई जनता मे बेसी ।
 ताजव तो पाया यड थडो फिनर इसको लम्बा बिम राखो इन अवसर ।
 लोग हजारो दान ने आया गहर विला मे मानव रण द्वाया ।
 सकरत मे रनिया हमारो उडिया मौनारा आनर चीमाते मडिया ॥२७॥





वीरदलमडल रासेवक गुणवरिया, किनी भल भवित करके केशरिया ।
 कितरा गुण भापू बुद्धि छे थोडी, चाल लीलावत मैने या जोडी ॥२६॥
 रूप मुनि की सेवा अति भारी, सरल स्वभावी आनन्दनारी ।
 गुरु आज्ञा में रहते उपकारी, धन्य धन्य मुनिद्वय जाऊँ वतिहारी ॥३०॥
 दोय हजार वर्षे दमारो, माम कानिक ने पक्ष उजियाने ।
 ज्ञान पचमी बुधजयागे, 'जोगी सेवग' कहै बिलाछा वारो ।
 मिश्री मुनि रो जस सवायो, 'विजयमोहन' तो जोड वणायो ॥३१॥

०

मिश्रीमल-वत्तीसी

कविराज वदरीदास, एडवोकेट, जोधपुर

- १— भूमि धन धन आयावृत्त, रिपि मुनियो रो गाव ।
जिण घर पागी जनमिया, मिश्रीमल महाराज ॥
- २— नगला राजस्थान मे, ऊची मरुधर आज ।
बड त्यागी कीयो विगद, मिश्रीमल महाराज ॥
- ३— धन धन है मानधरा, पागी पुन ही पाज ।
जिण पाली मे जनमिया, मिश्रीमल महाराज ॥
- ४— मा केशर पिनु नेनमल, ओमवाल दिन आज ।
जाया जठे पुजाविया, मिश्रीमल महाराज ॥
- ५— बालपणै वैराग्य बट, करिया उन्नति आज ।
चमत्कारि कुल चानणा, मिश्रीमल महाराज ॥
- ६— जिन प्रभु जैनी धर्म ने, ऊचा कीयो आज ।
चीले हुआ हि ज चल रह्या, मिश्रीमल महाराज ॥
- ७— भवत कवीश्वर वीरवर, नाराण मिरनाज ।
उण धरती मे अवतर्या, मिश्रीमल महाराज ॥
- ८— मती सूरमा व्हा मुहद, कर्मवीर ध्रम काज ।
जिण धरती मे जनमिया, मिश्रीमल महाराज ॥
- ९— वचनामृत रा बाह्ला, गहरा करे अग्राज ।
ग्यान तणी देवे गुटक, मिश्रीमल महाराज ॥
- १०— वाला बहै व्याख्यान रा, श्रीपम वरसा गाज ।
तू पायर कर दै तृपत, मिश्रीमल महाराज ॥
- ११— अलग रहै आठभ्वरा, तपस्या रा मिरनाज ।
जानी ध्यानी अनगहर, मिश्रीमल महाराज ॥
- १२— बडभागी त्यागी बिहद, जाहिर पुन जहाज ।
चरण-कमल दरमण करा, मिश्रीमल महाराज ॥

- १ — शब्द भाष ह्म साग्वी ावण भया ि ।
निमन् जात्या अा रिडर मिथीमन् मन्तराज ॥
- १६ — गान चित्त हिय भाव पध समता जानि समाज ।
मा ी ताविन मन्त्राग्वी मिथीमन् मन्तराज ॥
- १५ — पर भाव भते गहा विनरा इ परा अवाज ।
ममन्ता रव मन्त्र मित्रामन् मन्तराज ॥
- १६ — गर्मी गर्मी नहि गण समता सन्त्र मन्त्र साज ।
विण जूनी वन्त्र चह मिथीमन् मन्तराज ॥
- १७ — पूष पर पर भाव प्रान तास तप सुभगाज ।
आद्य इ टाछ अराग न मिथीमन् मन्तराज ॥
- १८ — जाण ह्यान् न जीम भो गुरा सुभ गाज ।
पर पर मू न गावरी मिथीमन् मन्तराज ॥
- १९ — जन्ता म आग्वि नर भाव गात्र प्रति गाज ।
राजम्पान रा वनरी मिथीमन् मन्तराज ॥
- २० — गत विवाहा साग्वी ह्यने जिवा न यात्र ।
भूवा रत पन्त्र वई मित्रामन् मन्तराज ॥
- २१ — शब्द बीर जानि बिहन् साह्य पण म् गाज ।
पदन् पर म पव म मिथीमन् मन्तराज ॥
- २२ — प्राज्ञा मन्त्रण पारणी पण गजराती यात्र ।
शिमन् रा मित्र मन्त्र मिथीमन् मन्तराज ॥
- २३ — बलिण दन कुण नर पर म् बुझाई आज ।
गात्रम पूव आदवा मिथीमन् मन्तराज ॥
- २४ — गिण्य भाष न आदवा भाव्यो जन समाज ।
गारा न म् गुणारिया मिथीमन् मन्तराज ॥
- २५ — पून् घडा पड वन्त्रो ह्या म हुडे अवाज ।
पन्त्र पून् न बाड बी मिथीमन् मन्तराज ॥

निवेदन

- २६ — गात्रु री म्त्र ३१ भया गात्री ई ४१ समाज ।
भर बी भाग बीरता मिथीमन् मन्तराज ॥
- २७ — रिङ्ग साग्वी हिन् रा इन्तराज म्त्र गात्र ।
मन्त्रा भूवा ३१ रिङ्ग मिथीमन् मन्तराज ॥
- २८ — मन्त्रगाथा इन्तराज मन्त्र भूजीरन प्रम पत्र ।
मन्त्रा वाग्वी ह्म अरा मित्रामन् मन्तराज ॥
- २९ — मन्त्र गात्रि रिङ्ग वन्त्रा रि म्त्र पडा दगात्र ।
मन्त्राज नर चर मन्त्रा मित्रामन् मन्तराज ॥





- ३०— महावीर प्रभु आदि मही शूङ्गीर मिग्नाज ।
अनुयाई उणरा करो, मिथामल महागज ॥
- ३१— अहिमा बरतो अवल पर, मयरा दया न माज ।
दमन करावो दुष्ट दिल, मिथीमठ महागज ॥
- ३२— वैष्णव वैरागी बिहद, मगना मोड समाज ।
नगठिन कर नमस्कार दो, मिथीमल महागज ॥

०

श्रीमरुधरसिंहाष्टकम्

देवकीनन्दन शर्मा, शास्त्री

यो हि क्रियाज्ञानविशिष्टरूप, नरिष्ठव्यग्रातो युप्रपु गवस्य ।
स्थितो मरी केसरिवन्मुनीन्द्र नमामि मिथीं गुरुवरवरेण्यम् । १॥

रत नदा धर्मममाजकार्ये, जैनेन्द्रमार्गमतिक्रामति नो ।
सम्मेतने मन्त्रिपदेऽभिषिचन, नमामि मिथीं गुरुवरवरेण्यम् । २॥

गोवशरक्षामनिवाञ्छति य-स्त्रिभिर्हि योगैस्तद् रक्षणे मन ।
विभेति नो वण्डप्रहार-मृत्यो नमामि मिथीं गुरुवरवरेण्यम् । ३॥

कुवावदुःशीलनिवारणाय कडकेन नाम्ना जगति प्रमिदो ।
मयु इवानाति परोपकार्ये नमामि मिथीं गुरुवरवरेण्यम् । ४॥

रजत-शुकुन-नामधरी हि शिष्यो आचारनिष्ठो श्रुतसम्पदी च ।
ताभ्या सदा पट्टविराजमान, नमामि मिथीं गुरुवरवरेण्यम् । ५॥

ध्यानाद्विनिश्चयन्ति नवदुःखीडा डाकिन्य शाकिन्य पिशाचभूता ।
अभोस्सितार्ये लभते मनुष्यो नमामि मिथीं गुरुवरवरेण्यम् । ६॥

स्मरामि गुरुवर तव नाम पूतम्, न कामये राज्यपद न ऋद्धिम् ।
जिनेश्वराग्र्यो मम प्रीतिरस्तु, नमामि मिथीं गुरुवरवरेण्यम् । ७॥

श्रीनन्दनो यस्य पदारविन्दमहर्निशो ध्यायति दत्तचित्त ।
श्रेयस्करो भव्यजनेषु नृपान् नमामि मिथीं गुरुवरवरेण्यम् । ८॥

पद्यपुष्पाञ्जलि

श्री रघुवरदत्त नास्त्री साहित्याचार्य

मदपरबत्सरीति विशदालङ्कृतायां विभ्रुलुलावतसानां
पूयमुनिवर्याणां धः मिथीमल्लमहाराजानां
इवणजयस्वपुनरये पद्यपुष्पाञ्जलि ॥

(१)

मदरयत्तासङ्कुरणेऽतिरम्ये वालीतिनाम्ना प्रयिते पुरे य ।
सहस्रमल्लालयविदुनिवाये गीरेमरीमामुरलरजम ॥

(२)

पञ्चालतापिष्यपुन गतेभूच्चतशौविने एतु यज्ञमेष्टये ।
महात्मनो यस्य जनु प्रगहन पित्रोमहात्मवमाततान ॥

(३)

इययोमात्पञ्चमे गननीशिरहे सति ।
यस्यात्त करणे गत निवेदस्य गुभकिर ॥

(४)

जननग्राहप्राप्यमेन गगवे विभ्रुमीनामुपगनस्तया ।
गन गन वद्विमवाय यस्य ता सतारसोगेपु शिरापनावना ॥

(५)

पुण्यात्मनो लोहहितायुवधिना कामानुरागेपु न जायने सति ।
स्वयमवयस्यस्यप्रभचना यतत एत ननु मुनसदे निगम ॥

(६)

वसतरे वञ्चविनेतो कुम्भनमुनी वरात ।
आमण्यदीक्षामाशय श्रमण्यमवाप्तुवन ॥

(७)

काम्यालङ्कृतिरोगगदरचनामभयय बुद्धवलाद्
विद्वद्भूष परितभ्यततवनियय पाणिन्यपूर्ण इमे ।
मिथीमन्त्रमहोदया मुनिवरा लोह प्रमिद्धि गता
मानापञ्चविधायकागुणवय स्याता पुनमनये ॥

(८)

तपस्विन श्रीविद्वन्मानवो न वक्तुं बुद्धिगोपय हिता ।
दारीरसम्भाषणभिततोप्यहो महरचले वसन्तिमुवापना ॥

(९)

मदधरवैतरिषर्वा विहाय विषयवामनाज्ञातय ।
मदमयमपरीता निर्वाणापमेव प्रयनन ॥



(१०)

समस्तजीवेषु दयालवोऽपि समान्भोगेषु कठोरभावा ।
परोपकारेषु च मोदमाना कषायवृन्देषु निन्दुचित्ता ॥

(११)

जय किं मानेण्ड न तु विपुनसन्तापनिग्रह
मुराचार्य किं वा नहि खलु स नास्तेकनित्य ।
अहो किं पञ्चास्यो नहि स पशुहिंसाप्रवृत्तिको
विजङ्गन्ते लोका मुनिवरमवेक्षेभ्यमवती ॥

(१२)

श्रीमद्भिः प्रतिभाबलेन निनरा जेनीयमदर्शने
ज्योतिर्व्याकृतिकाग्रपिङ्गलविधौ ग्रन्था अनेके कृता ।
नानापद्यमय विधाय विपुल श्रीनारत प्रप्नुत
यद् दृष्ट्वा भवता कवित्वपटुता नर्वैरभिजायते ॥

(१३)

नानाशास्त्रदिक्षणा कृत्रियो वाक्पाडवालङ्कृता-
दृश्यन्ते भुवि मानवा घटनरा शिष्टप्रदेयगमा ।
किन्तु ज्ञानसदृक्षर्मकुशलाश्चारित्रचर्यापरा
स्वल्पा एव नवाद्दशा युजवरा नश्यन् अत्राधुना ॥

(१४)

नयभ्येन्द्रियवाजिनो दृढतया चित्त विरोध्यात्मन-
त्पदत्वाभोगमुख स्वबुद्धिबलनो वराग्यनिष्ठा इमे ।
दग्ध्वा कर्तन्ति कषायनिचय प्रोत्सार्य स्वच्छान्तरा
निर्वाणिकरता न्वधमनिरता मुक्ये यतन्तेऽग्निनाम् ॥

(१५)

मान्या मानविर्जिता समतया मुग्धा मनोहारिणी
नर्त्यामोदमनोविनोदरसिका मात्मर्यमन्दादरा ।
माधुर्यामृतमण्डितान्तरधियो मोमुद्यमाना मुहु-
मोहध्वान्तदिवाकरा महधरामिहा महीमण्डले ॥

(१६)

परोपकारैकधिया भवद्भिः श्रामण्यमघ परिनिष्ठितोऽत्र ।
अनेकशिक्षालयनिमित्तिश्च विद्यानुराग भवता व्यनक्ति ॥

(१७)

कान्तरुमेणाः समाजमध्ये कुरीतयो भूरितरा प्रष्टुः ।
तासा निरानार्थकृतप्रयत्ना म्नुत्या न केपा मुनयो जनानाम् ॥

(१८)

साप्नोति यो य पररायणात् स ऽथ साधु कथितो मुनीन्द्र ।
सा साधुना मूर्तिमती प्रवष्टा भवन्मु लोच समयमानचित्त ॥

(१९)

ध्यास्त एव भुवने मरुद्गवा य
स्वाय विहाय पररायणात् सति ।
तेषां अनु राक्षसमत्र मनुष्यलोक
स्वार्थैरुन्निविरतान् नपान् मुहुषिण ॥

(२०)

गाडशाचकारमर्त्तिरीकृतमानसानां
वृत्तानानां सममधिप्यविहोषवार ।
श्रीमदङ्गा मुनिवरा न महस्यने व
विष्णुता समवतारमदाष्टीपदन् ॥

(२१)

आनन्दधरिपेयणात्तकीति
रागुयधर्मिह लोकमस्तद्विरुद्ध ।
स्वयं क्षिणी क्षितितने वसतां गानां
चेतनमदृष्टिगदाप्यति य समतान् ॥

(२२)

सम्यक् चारित्र्यनाया विगलितरमुपा सत्समस्तमवर्षा
सम्पादयन्नाया नमसितगिता धर्मवर्गपुरता ।
सम्पादनीयलभारामिहवस्तववेत्तार एते
निधीमनाभिधाना अनिवारणा वर्य न ह्युनमस्या ॥

(२३)

अधीतलक्षणाया सम्यक्पदप्रोक्षणा
मुभाचरणानि न प्रभुनास्त्रचर्मादेशा ।
मदावगमनोपनिषत्प्रभुता भवेद्युयदि
जना मुवि वर्य पुन मुरतिन समे ह्यु नहि ॥

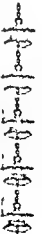
(२४)

धयेयमद्य धरणी भवरापये
धया धय मुनिवरावभुतगानेन ।
धयात्रिलक्षमणमङ्गनिहा मङ्गि
धया मङ्गिपुरमवन किस जनमङ्ग ॥

(२५)

साम्यकप्रवर्षा प्रवर्षा प्रमो गानिषत् ।
गात्रसिद्धयमह ॥ दद्यात्त्रि तपये य ॥

०





अमिनन्दनम्

कविभूषण रामचन्द्र शास्त्री, थावला

(१)

चिद्वस्थप्राणिना यो वे, हिताचारपरायण ।
चरो विश्वम्भरो देव, प्रसीदतु दयापर ॥

(२)

प्रभवतु जन-वृन्दद्वेषवर्षोधहारी ,
सकलमनुजवन्द्यो ज्ञान-विज्ञानधारी ।
जयतु भुवितलेऽस्मिन् जैनसिद्धान्तमूर्यं ,
नितिलनिरपराधो "मिश्रिमल्लो" मुनीन्द्र ॥

(३)

जैनसिद्धान्तमार्त्तण्डो मरुमडलकेसरी ।
यतीन्द्र "श्रीमिश्रिमल्लो" जीपादं शरदा शतम् ॥

(४)

श्रीजैनधर्मागमपारदृशवा,
अहिंसया भासितदिव्यदेह ।
विद्या-तपोज्ञानवरिष्ठवृत्त ,
"श्रीमिश्रिमल्लो" मुनिराजराज ॥

(५)

जिननयजननेता धन्यमयी महात्मा,
विमलमतिविशुद्धप्रौढविज्ञानराशि ।
विदुष्यजनसमाजप्राप्तसम्मानवृन्द ,
जयतु जगति वन्द्यो "मिश्रिमल्लो" कवीन्द्र ॥

(६)

यो लोकाञ्जिनधर्मकर्मरहितान् हिमारताञ्जिद्वक्ष्यन् ,
सच्छास्त्रप्रपदून्मनीषितुजनान्नित्यं मुदा वर्धयन् ।
अज्ञानान्वविमूढबुद्धि- कुपयान्सन्दर्शयन्सत्पथम् ,
पूर्णज्ञानदिवाकर प्रतिदिश "श्रीमिश्रिमल्लो" ह्यटन् ॥

(७)

सेवकानां कल्पवृक्षो, वन्द्यो विश्वहितैषिणाम् ।
"श्रीमिश्रिमल्लो" दिव्यात्मा, पावक पापसन्तते ॥

श्री मिश्रीमल्लमहाराजजीवनचरितम्

- १— पातालाध्वयाधिगन्तव्यया नानप्रभाभरा ।
नानधोगङ्गाधिवारिप्रसन्नाना नानाप्रसन्नाना ।
नाना रामविरामविश्वविभवा स्वात्मस्वच्छिन्ना ।
नानाया विनोदरा विनोदरा न नानुमत्त सन् ।
- २— श्रवणवर्मणापवापरात्तापा तत्प्रभाभरा ।
मन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
नानाविरामविश्वविभवा विनोदरा ।
नानाशक्ति वरावर्तिन्या वाग्वाग्नि स्नाच्छिन्ना ।
- ३— वारिप्रसन्नानवनापनराविवाह नानप्रभाभरा ।
व्याहाराविनोदरा वरावर्तिन्या वरावर्तिन्या ।
- ४— मन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
- ५— वरावर्तिन्यापरात्तापा विनोदरा ।
वरावर्तिन्यापरात्तापा विनोदरा ।
- ६— वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
- ७— वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
- ८— वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
- ९— वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
- १०— वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
- ११— वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
- १२— वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।
वामिनिमल्लमन्त्राव्यवस्थापरात्तापा विनोदरा ।





- १८— नरास्मि पात्रीनारी विद्याया, नामानुत्तमा वृत्तार्थमा च ।
छर्मप्रधाना नगीप्रधाना आशर्यावद्वा विद्याया प्रीत्यु ।
- १९— मन्त्रे च या मित्ते नदी नडाव्य, न तज्ज्यन्तीव मनेभ्यः ।
मेया न मोक्षप्रविद्यानेत्र या नात्तया नैवनाममया ।
- २०— गद्य प्रभूत विपुल च प्रान्त, मुखादुत्पिष्टान्तमत्र विद्याय ।
स्वयान्तनाभायना आशान्ते श्रेष्ठि, न विद्याय विद्या ।
- २१— श्रीजैनधर्म मदय, विद्यायै नमस्ते देवायप्रमाणम् ।
नमिन्मन्त्रेया अतिमानरं, नमः विद्यायै प्रमाणम् ।
- २२— यद्येतिपुत्रे दृष्टमन्त्रारी नमो अती पावनवन्तम् ।
श्रीमान् यद्यम्बी दृष्टमन्त्रारी भातेन मेयाप्रमाणम् ।
- २३— जयतिपुत्रा गुणगज्योन्मिन् प्राप्तेनृवृत्तार्थमा च ।
जन्मान् यद्येतिपुत्रे गुणीनां नैवाप्रिपन्नमममिदानीम् ।
- २४— मातृव्य नाज्जैम्ननायिना यो दाता पराधायिपुत्रोत्तमम् ।
नोदतिपुत्रे नितरा गजज पुत्र पुत्र यावन्ति धावन्ति ।
- २५— श्रीविद्याय नमो गृहीता नदीया जज्ञे गुणेश्वरान्तमैविमिष्टा ।
नामायि यस्या निविद्यायिपार्थ नैवे च या देव मचाय दया ।
- २६— ना वेदभागा भूति या स्वमर्तु स्वातान्ता स्यान्नुमनीभूता ।
नैमी नम्य विद्याया न चाम्ये, मम्यजे शीतगपना वा ।
- २७— पुण्यान्मनो मोक्षमन्त्रमेतदंमन्त्रान्मोक्षदुत्तमा नि दानम् ।
जानेन दृष्टी नुनभायगमि दये च नमो गृहीतायम् ।
- २८— प्रामोष्ट मन्ता समये नुजेन, मन्त्रुग्रन्त नुनयोगसाधम् ।
श्रुत्वा मिनेज्जन्म मुदा न पा, नेमे पिनामी निजवशमान् ।
- २९— जाने नृत्त पुत्रयमे च नातो मन्ता नया दाद्यमिद्वर्तम् ।
नेमे यथानन्दमहो तथा न्व, वानु क ईय आश मर्तव्य ।
- ३०— इपाच्छिजोर्नाम चगर नावा, विदितान्कृत् नम दान्प्रवैद्य ।
मिथीनिमल्लो महता महेन, मिष्टान्तपानाम्ब्रधानद्वयम् ।
- ३१— नेलिप्रिप्राप्येय प्रमावधोने बाह्यविनादे नम पापुत्रोर्ल ।
श्रीदृष्टव दार्ढमिनरा ज्ञात, चेतामि पिथोरपि दान्प्रवानाम् ।
- ३२— दैनन्दिन वृद्धिमवान वाय युक्ते यद्योव प्रवृत्तनाम् ।
वायोपि बालञ्चदुलोक्तिदक्ष सर्वेषु वानेषु बन्धु पुत्र्य ।

- १६— भातिप्रधान किल कन मोक्ष गिगमस्तितिरिव निगमरश्मे ।
दृष्ट्वास्त्य मर्षे धिषणा विगिष्टामादधमात्र कतम बभूवु ।
- नष्टीरस्यामवद्विरज वात्रो प्रमार्यो विभया याम्बो ।
सूयस्य दिव्य कर्वाटया व जग्रात् सूनु पवनस्य विम न ।
- १— प्रातिष्ठिपत्तामिम पिना म शिखालयेच्छाणकपात्रम् ।
अल्पनकादन धिया निघाना अज्ञेऽतिगिप्त प्रतिमात्रता हि ।
- ३२— अष्टयात्राव्यस्य निरीदय बुद्धि नम तिम्य विषय विनपि ।
घत पत् ना त्रिम् कस्यचित्त चातुयगाम्भायमुला गुणीव ।
- ३ — निस्कारगमारविगसवारा भगव नां निखिलञ्च मिथ्या ।
स्याजत मुख चाय वय प्रवाणा राय समद मुमुनु दानय ।
- ४४— वराश्वमाकाकुरता यान्द्वय गातस्मिन्नेष्ट वत्मा धृष्टम् ।
तावन्मरुदुमलाभिधाना भागवत वात्रो समलञ्चकार ।
- ५— मृत्पाणि जनममस्तस्य प्राज्ञागमन सप्तमस्य मधु ।
अप्यो न केय ममुनि चात्र चित्तमणी पाणिगत प्रधासन ।
- ३५— तस्त्वेवागताय सप्त मयवन यात्राप्यनी गदमना जगाम ।
इत्या गरा जनमा मनोपो मा अनुध्यानम विनातम ।
- ५७ — पत्तमारीव मरु गुपात्र राज्ञश्च वारिश्यमणिप्रभाभि ।
मृत्पात्रासुखा धाद्वज तरस्य प्राणां पितृछान्तपयाधिपार ।
- ५८— वराश्वगात्र विघ्नवर्तनस्य क्षाणा गराशान्द लप भय ।
दाक्षा शान मनम प्रवर्तिञ्चय त्रिया मय कर्माय ।
- ५९— शश्यात्रे वीक्ष्य मनस्तु तस्य मोक्षेन मुग्धा जनको बभूव ।
वाम्य रतु मृत्मा विहात वरुको जनो वाठति पुत्रमत्र ।
- ४ — शङ्कोवि धाता गुणा मरुत पदस्या वि त गुप्तात्र ममत्र ।
म वारिता मा भवचात्राभनी वस्ये कशपि विगुद्विवाध ।
- ५१— आनाय पुत्र निजने मध्य शार त्रिषायावन्राघ तान ।
वराश्वरगात्रिवनाद्वस्तमिवा घन नादय मय चागोत ।
- ५५— मघा तस्यातिमृदा नि तान म्पात्रने माघ वगाचरार ।
प्रादायि चान्ता निविरानयाम व ननिमाम मण्डयित मनस्वा ।
- ४ — दानाणि याम्ना मृत्पात्र तथैव भाग्येन याम सुधिया भवद ।
स्वपात्रनाम मृत्पात्र गिग्रास पद वराश्वर्यमप्रसार ।



- ४८— वागाद्रिनन्देन्दुभिरे हि वर्षे वैशाखमासि पितृवर्द्धनक्षत्रे ।
श्रीमोज्जनाय्ये नगरे महान्, दीक्षा ग्रहीताऽमुनरमैर्यः ।
- ४९— दीक्षा च शिक्षा नमकाक्रमेव, स्वात्मीयत्वाज्जेन गुणद्वयेन ।
राज्यञ्चपैतृयं स्पृष्ट्वास्मिन्नायं, गृह्यति किं नो भुवि राजसूनु ।
- ४९— मन्त्राग्नि नाधु चकार मेधा, बुद्ध्यादिमन्त्रं पुनरेन्विष्टाऽगम् ।
मेधा गुणानाम् मफरी ग्वेन्नेत्-प्राप्यं ततोऽगन्तव्यमिह गीते ।
- ४९— द्वात्रिंशत्पदाध्यायनैरदक्षो, जगत् नारं जिनभारणीयम् ।
यद्वे च तर्कं पर्याप्तमवाप्ते, वेनेय मिधा प्रवृत्ताऽयं दृष्टि ।
- ४९— द्वात्रिंशत्पदाध्यायनैराजिमन्त्रे, न्याति मुनेने मुनिरेव तय ।
ध्वान्तं विनाशयैव जन्ति गानुधुते पद रिक्तं च तजमान ।
- ४९— ध्यान्त्यानयाने रयितायिनोदे, नोऽग्निनादे परवोदने च ।
काप्यस्य यन्निह दये रगाज, प्राग्गन्तव्यं दयनीह नयम् ।
- ५०— शुद्धपमाणे सुगुणे दिमानि, श्रानार्थंनद्यान्तद्विदाये ।
यानानि जालो महान् नदैव, नन्दमन्त्रा यानि शिक्षाद्वयेन ।
- ५१— मनार गय क्षणमगुण हि, नित्या म्यिति तस्य न चात्र दृष्टा ।
कायस्य पर्या कृतिन जगलो, नापेदने न समये ददाऽगम् ।
- ५२— पञ्चाष्टनन्देन्दुमिते हि वर्षे, निदांणमाच्छन्दगुणद्वयेन ।
नान्ता गुणं नो गुणराजमेतं, वस्तु नमर्गे गुणीन्यादगम् ।
- ५३— गतेऽत्रये वाग्निध्वीरमावो, मिथीनिर्गो म्वगुणे दयालो ।
तत्पादगर्जं गुन्ता दधान नर्वादिगमाय नममून् अनेन ।
- ५४— शोको गुण्या मनमोन्तानि जीहृक् कथ तस्य न एव वेना ।
जानी यथाज्ञानमहामाहात्म्यं, ज्ञानानि नान्यो विषयी विदाय ।
- ५५— वैराग्यभूमिर्मुनिरेव श्रीमान्, नयोनयामान ममाजमद्ये ।
धाव्याद्गुणोच्चारविचारयामा किं हेनिरश्मिर्नच हेमिन् ।
- ५६— द्यानक्रियाब्रह्मण्य समाधिपोगैश्च योगैर्मुनिमिष्टमन्त्र ।
यन्वे विहार पयितो विनेपात्, दुर्वल तेषा विविनो वस्तु ।
- ५७— गतिञ्च सा वापि यया मुनीनो निर्दम्भनिर्भाविकरन्त्यल जी ।
भद्राणि कार्याणि वचोविशानं नङ्कारतत्त्वव ब्रह्मणि योगी ।
जैना परे वैतत्त्वार्थयैत्री हृष्ट्वा जहर्षु प्रवृत्तिर्गुणानाम् ।
ग्राह्यो गृणज नकडै नदैव, नो पद्यमानो गुणवास्मि पुनि ।

- ५६— याणी यनीया नुतसारयुता नायो रा वा भवभाजनेश्वराम ।
श्रद्धाविपत्ताविरतावभव सिद्धि स वाचि म जमनीनाम ।
- ५७— उत्पत्तवद्ध पुरतोऽस्य वपि वा न दा ना विना वभव ।
न प्रमाणापि घटा यजाना वा रत्नवदनगणन पुरस्तात ।
- ५८— न्ययऽङ्ग ननु गीनवर्गे स्वीय परे वा गताभ्याम ।
रक्ता यथायस्य यथा छिनत् मिथीतिमिच्छापि कृपया ।
- ५९— मवन्न मयं सधानबुद्धिर्धेना भवन मोन मगमत्तम ।
भृते निनावनो वन शेषपाता रक्षा ततोऽस्या मुनिभि सूत्राया ।
- ६०— मि यापयारम निजवाद्यदीप्ता सच्चक्रमाणा हरते द्विजानाम ।
अथो ह्यो कानिबर सत्तव कम्पे न वाञ्छति विना समूहम ।
- ६१— उग्र विहारी मुनिराजिहारी वाग्मी जिनान्ता प्रवागी ।
चन्द्र मुनिश्चप जन ममाया माध्यमानो नितरा विमानि ।
- ६२— विद्याधन तवधनप्रधान प्रदत्त नि मवन्न मुनां लप ।
विद्याविषय्य विमोपदेश प्रावाद्यच्छात्रवयमायी ।
- ६३— प्राज्ञानिना वन पुरं पुरं विद्याकथा गीधनसारमुता ।
न्ययङ्ग पीठिपीठराग कल्याणहेतुविप्रप्रीषदौ ।
- ६४— ध्याया जनि मन् धरा जनाना दुःखीपनाय मन्तनास्ति ।
जानति नयति पर मघान मना पर न भववाभिजा ।
- ६५— मन्तान्ता मन्ति मन्ति वासे गुह्य का गुह्यता क्वत्ती ।
पद्मासम मन्तामायत्रया धीवपन्तुयमुनीवराणाम ।
- ६६— तस्मिन् गुणस्य विज्ञा चित्त प्राप्ति तस्मिन् वपुः सुताय ।
मन्तमन्ताय रचनावहस्य योग्य रुचि मन्त भवन्त पणि ।
- ६७— या गात्री कस्य न कस्यमृता व्योमोल्लत मन् विमानि न्ययम ।
गदाभि जीव मुनिमिहोति गदातवद्दिगु प्रवागधानाम ।
- ६८— मघ तया यत्र निजानाऽमातत्राणि मन् मन्तरय चत्र ।
गहन प्रभाव जिल चेटान्ति मवन्न सा मो विरत्त च पणि ।
- ६९— गामाष्ठानां मन्तरस्य सन्निहित मन्तमान मन्तर ।
पद्माविरामाणि गुणजन्य कल्याण या मन्तानि ।
- ७०— मन्पट्टन त्रिवसनी करानि चमडिभोजनगामनरय ।
शान पुरे धावन्नमरास्य मणे कर्त्री मन्तरपूवमन्त्रम ।





- ७४— अन्वे प्रचागे मुनिना ह्यतारि वमस्य तस्मान्मृदिनो हि सत्र ।
घन्वैणमिह पदमिन्वमममै युक्त दशो नत्र गुणा हि हतु ।
- ७५— ध्यतारि यमो जिनगामनीया नात्रमनयाऽतारि दयापदध्या ।
प्रादापि तस्मै पदमिन्वच चाशीर्षोऽगिन्विचरनीव त्रिनित्रुवाणै ।
- ७६— या दीपवामान प्रिया पुनर्मि, पाट गुणे श्रीगुनावमस्य ।
णाने न निप्ये निमला निपा वै, नत्र फट्ठनीहविताम्मुने ।
- ७७— मन्त्रे प्रभू ना वरकेशराग्या जुशो न यस्या मुन ईहशोऽभूत् ।
यनात्र भूम्ना वृषवैजयन्ती चारोपिता गामनयूपमृष्टि ।
- ७८— पत्तुर्धृताणा पुन्ता दशा या दीपस्य गैवास्य पुर पण्डाम् ।
जाता, प्रभाता महता मदैव सर्वत्र नवैष् पद त्रिपत्ते ।
- ७९— ग्रन्था त्रियन्त कविकोविदेन, विनिर्मिता उत्तमबोधपुरा ।
आस्थेऽस्मि यस्यामरगरतीनामन्ये च मिद्धि कण्ठकृजोऽहम् ।
- ८०— ध्यानस्थराजद्गुरुबुद्धमल्ल-पादाब्जरोम्भमृगारिरेप ।
तत्पाटमिहाननमार्यमार्य न दीपयत्यत्र मरी नमन्ते ।
- ८१— यत्कीर्तिपद्या मूत्रदा मनांजा, चान्द्रीय ताप हरते गह्वराम् ।
अद्यापि य कीर्तिरमाप्रमादात् सम्पूज्यते देव ज्ञान पुष्पि ।
- ८२— ना नादशो नादगुणिताऽभूत् सम्पेरनेनैव महामुनीनाम् ।
तत्रापि वादे मुनिरेप रेजे चनीव भूषेणु रणोयमेनु ।
- ८३— जैनागमप्वन्यप्रमिद्धशान्ते, दक्षस्य चास्य प्रतिवादिनन्ते ।
मूका इव क्षीणप्रभावजुग्या के के न जाना प्रथित यशोऽन ।
- ८४— आचार्यमुन्या मुनयोऽपि चामन्गम्भीरवादस्य विप्रग्निरायाम् ।
वनता यथाय निरपेक्षनोऽभून्नान्यस्मन्था केपि वदन्ति विज्ञा ।
- ८५— मन्त्राप्य कीर्ति मुनिमेलनेऽय, देवेष्ट्विवाचार्यगुरुर्महीयान् ।
वभ्राम भूयस्मकमिद्वयेऽल, धन्वान्तरालेषु पुरान्तरेषु ।
- ८६— श्रीमोजने मन्त्रिमहामुनीना निर्व्याजिमाकार्यपम्पगयाम् ।
मन्दर्शयामाम प्रभावमेप, शान्त्या यत मिद्धिरभूत् क्षणेन ।
- ८७— शैलेन्द्रप्रस्थावलिमिन्द्रशम्भ मेघार्वालि वायुनिवाति गाटाम ।
दारिद्र्यदोष तन्वत्सुगुणा चिच्छेद मिथ सकल विवादम् ।
- ८८— तद्वेपभावा अपि ये महान्तस्तद्वाक्-छटाभि स्वयमेव लीना ।
जग्रे मुराणा मग्निो गति का वर्षाधिकाले प्रचलन्नदीनाम् ।

- ८६— एतन्मुनिमिच्छेत्तु मयाधनामा वीरत्ववाचस्पत्युत्तमाधना ।
सम्भन्ता १ वत्सा विजय सारात्रनडाहृणविजय ।
- ८७— वायसि भगणि विजय गच्छक मनि साध परमपारा ।
यनात्र १ परमपरा विजयभानन प्रमिद्धिमति ।
- ८८— नूये गच्छातिमित च वये श्रीमन्निडात्तमगवकन ।
सम्प्राप्तिताडय विनय याया नपाविवासाय कयो भिन्न ।
- ८९— स्वाह य तेषा निमिन्न मन्त्रमा मन्त्रागनेन परमाविश ।
यायासुधाभिखिन्ना मनानि प्राणापयनाहृणविजय ।
- ९०— तन्नामि नाम्ना पुरि वाणमङ्गला सत्ता छतोया विमलप्रभ ।
वागानराविजयकित्ताय मगजने यत्र निमात्रनीया ।
- ९१— तानि मना मुनि मन्त्रोच्छिन्नान् वच्छन्मुनि स्वर्णिमममाम् ।
द्वेने हृष्टया कणापयोषिस्तान् गतात्र या प्रथम यपदात ।
- ९२— कथा प्रवृत्तया यवना निम्न्या बालास्तथा यु शिवरात्र गता ।
ना मनिरे वाचमयो हृष्टता मन्त्र यथा जानिवच्च प्रमाणम ।
- ९३— यथेतिव वचन तत्र काञ्चो गीनागवलिमिवरा विमल ।
मात्रेय य जम्भुनरित्त च वाग वरसा यथा यातस्मात्रजनीय ।
- ९४ — अथा च वाञ्छा मनिनामि मायेव योद्ध मन्त्राचराय ।
मूर्धो निमारे मुनिमप त्त व्याधो यथा गा हृष्टिकाभूत ।
- ९५— एवने एतन्वागु मन गगारे इति यच्छित्ति विन्दवसार ।
दम्भोनिषाण गिरिवमनीय समोन्वान वमप्रधानमत्ता ।
- ९६— बालान्नादमहता स्वभाववाचो परम्यामनमगव हि ।
छायाकरोत्सव मन्त्र स्वभक्तन मूर्ध्निगयो नि सवा वृत्ता ।
- १००— अथादमेन मुनिमपवागे हृष्टयाऽह त मीम्य कस्यगि विश्वम ।
वायो मन्त्र मिच्छमयो मुनीना गत्य द्विपागारिव राजनेय ।
- १०१— तस्मिन्नि मन्त्रोद्धरनिस्त्वरय चन प्र गगना निगिद्ध ।
गानि मयेयमा न च रात्रान मोनिवथा मुष्टुषागवम्भ ।
- १०२— मिथामनिमो निवय धीरो छमो क मयागमवाभाव ।
इष्ट प्रमोपि जगत् मन्त्र साद्वान पगन या प्रतिता नवना ।
- १०३— गान मन्त्रनिमन्त्र अनोप यवत्र वागो प्रमवार मद्य ।
ह्लाष्टयमाना यवनाहृ कथा गाराय ना शक्ति रा योप ।





- १०४— वृष्टो विमृष्टो यवनो दुग्धम् पाणिद्वयोऽम्बुप्रशारी ।
रुद्र मलोऽसौ नगरान्नीर्यैर्मेद दिशयं मुनिप्रतापी ।
- १०५— हृन्त्य एव श्रमणप्राणी, सर्वमिच्छति मियो नृगादि ।
केचिन्मर्यादा नृगैस्त्वरैव, चाद्गामिभद्रगोऽस्य विव्रेष आह ।
- १०६— इत्यत्र तान् शान्तिपदाभिगामी, व्रजानहो ज्यैष्ठ्यादवस्थी ।
मिश्रीनिधौगो नदयान्येषोन्पन्ना वडाशान्तिमगे मुनीनाम् ।
- १०७— जितवचनप्रमाणी योगिगद् वा परी या, पञ्चकुलविजानी जायते नो वडाप ।
कुमनिप्रवतमने प्रोगिमिश्रीदंयावान् नमजनिमिदमार्गश्चान्यथा पश्यते ।
- १०८— निजचरन्ताना भक्तिभाजा नृगातामुपरि यदि दयातु स्वाऽस्या तत्र हेतु ।
परमगुञ्जत प्रोऽवाच्यवादोदितनिर्य, भवति नदयभाज न मुनि जने वश्य ।
- १०९— शशिनि हिमवदस्ये चन्दने जीनता या, नुमुनिगामरामानैर्गन्मीनि मनो ।
उत्तररज्जमणीना रूपान्तर पुनामय परममुनीना भूषण शान्तिरव ।
- ११०— अतिद्विदयप्रहारी पीडितोऽप्येव योगी मनुष्यचनयोगाद्वोपगामान् सर्वान् ।
श्रमु-हितकृतेस्मिन् सज्जना कादमिद्विदयपत्रविचारस्यज्जना नृगप्रतापी ।
- १११— नृगाविवाहो मुनिगद् भूयो म्हेऽस्मीभिर्दयै नमस्कृते ।
मन्थाश्च निहत परिपालनीया कन्यागणानु चेदमीषाम् ।
- ११२— मीना न मार्या जलहृत्प्रभाजो, निष्कारनीयो यवन प्रहारी ।
कायान्मियाजा अमरा दृष्टानो तैरेवविद्या प्रनियष्टिमस्या ।
- ११३— वृत्त मुनीना परम पवित्र यने महन्ते स्वयमेव वष्टम् ।
नोऽस्मिन्निरेव धरणि त्रयं स्याद्दर्मस्य पन्था हि मशोऽज्जदोऽन ।
- ११४— इत्य मनाशान्तमय मुनीशो धर्मकनिष्ठ पुस्तो नमेषाम् ।
चष्टे च सर्वैर्यवर्गैर्मिलित्वा, सर्वं च तत् स्वीकृतमेव नय ।
- ११५— हिमादि नाभूत्प्रयन वृषस्य, जाना च मिद्धिर्मुनिवाक्प्रमाणा ।
देहो विनाशो ममता मुधा का, पाठोऽयमस्मान्निश्चिदैर्यथाति ।
- ११६— ये राजनीया पुन्पा प्रशाना आमन्मूनेवृत्तमिदं ननोऽव्य ।
वर्तमानाश्चकिता वभुवु गिज्ञा च शान्तेर्दरेषु दयु ।
- ११७— अङ्गाभिभङ्गेऽपि मुगान्मभावो दुष्टे मुनिश्चैव वृत्तायगधे ।
इत्यवृत्तागन्त मियोऽस्मिन्ने, अद्वाविना स्वीरमपुत्रेष्टम् ।
- ११८— वृत्तान्त एव त्वरिति दिशान्, प्राजीगमद् भेव दिवाकरस्य ।
यत्त्वा हि ननेषु पद दधाति, मारु नृथाकारसम्युद्योको ।



- १३४— उत्थ सर्वत्र सधैर्यम्यापनाविपत्रे मुधी ।
परामर्शञ्च प्रस्तावाश्चक्रे शामनवृद्धये ।
- १३५— साचोगादिप्रदेशेषु प्रथम पदमादधे ।
प्रतिषोर प्रतिग्राम यय स्तम्भ निमोजयत् ।
- १३६— श्रीक्षाजनगरे रम्भे चन्द्रभृगुभक्तके ।
राकाया चैत्रमाने च शुभोदयशुभाशके ।
- १३७— महोत्साहेन नघम्य ज्ञानयोगपुष्पमम् ।
दीक्षाऽभूत्पूर्णमन्त्रस्य श्रीगन्धर्वमुनिस्त्रिवनी ।
- १३८— मशदीक्षा ततो जाता दाम्पानामपरागन्तरे ।
तत्रापि परमघनेन मशोत्साह प्रदर्शित ।
- १३९— जालोरनगरे तस्मादागत्यो मन्दिशःपुत्रम् ।
वापिकृपाणाहेनोन्तगाभीष्टापिक्त तप ।
- १४०— दुग्धाडानगरे चाभीक्ष्णामिनायणो मुनि ।
सर्वमान्य प्रसन्नात्मा तदानी शोभणीयिन ।
- १४१— तन्निरामयपुच्छाया धनेणकेमरी तत ।
दुग्धाडानगरे रम्भे प्राहोक्तिरु महायथा ।
- १४२— समदीपमहापुण्या दुग्धाडायान्तर्गते च ।
सर्वैर्यम्यापना चक्रे मुनिनाऽनेन मन्त्रिणा ।
- १४३— पालीपुण्या महापुर्वा ततोऽय जग्मिवान् मुनि ।
सीवाणास्त्वमहासधश्चाययो तत्र भावत ।
- १४४— नेवाणागीरसघने चानुर्भागाय प्रायित ।
रूपेन्दुमुनिना तत्र चातुर्भागाय सन्धित ।
- १४५— चातुर्भागे पुत्रे तत्र धर्ममार्गाणि म्रिज ।
जानानि ज्ञानवृद्धिश्च भाग्येन मुनिमगम ।
- १४६— सर्वैर्यम्यापना तत्र श्राद्धात्ताडय सर्वत ।
कारिता पुष्टये तस्य द्रव्यशोशोऽपि पुष्कल ।
- १४७— प्रवचनपटुचारो न्ययकृतानन्गचार श्रुतकलग्नहारम्भीप्रपदेशवार ।
मरुधरमृगनाथश्चातुरीसिद्धिपात्रो जयतु जयतु दीर्घ ज्ञानमिद्वान्तमार ।
- १४८— श्रीमन्मुनीना गुणवर्णनेन, कल्याणमाला भवना जनानाम् ।
बुद्धयेति तावच्चरित मनोज्ञ दृष्ट्य मया स्तात् पठना शिवाय ।



श्री धर्मदासजी महाराज

मुनिश्री रूपचंदजी 'रजत'

जहमदाबाद के पास एक मखेजा नामक ग्राम था। वहाँ जगमग मान भी भावमार रंगे जाति के मद्-गृहस्थ रहते थे। ये सभी लोकागच्छीय जैनधर्म के अनुयायी थे। इनका जीवन बड़ा ही मृदुमय था। ये सभी श्रीमम्पल एव उच्चकोटि के व्यापारी थे। लालिदास के पुत्र जीवनदास भी उसी वर्ग के मीनाग्रथाली वस्तुओं में से थे। वे स्वभाव में बहुत मरन, गान और उदार थे। उनके चरित्र की उच्चता एवं व्यक्तित्व की सम्मीक्षा के कारण समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनकी पत्नी हीरादेवी मुनील एवं धार्मिक प्रवृत्ति वाली थी।

वि० स० सत्तरह सौ एक की चैत्र शुक्ल एकादशी को अर्धरात्रि के समय जीवनदासजी के यहाँ पुत्रगन्त की प्राप्ति हुई। वच्चे का जन्म भाग्यालौ नक्षत्रों में हुआ। नवजान त्रिशु का नाम 'उर्मदान' दिया गया। आपका वचपन बड़े ही मृदुमय वातावरण में बीता।

आठ वर्ष की अवस्था में धर्मदासजी ने लोकागच्छीय जैन धर्म की पाठशाला में अध्ययन प्रारम्भ किया। उन दिनों का नाम केजवजी था। व्यावहारिक एवं नैतिक अध्ययन के साथ ही आपने धार्मिक शिक्षा भी वहाँ प्राप्त की। आपकी बुद्धि बड़ी प्रबल थी एवं प्रश्नों का उत्तर आप इतनी सम्मानार्थक प्रवृत्ति वाली में दिया करते थे कि मनने वाले आश्चर्यचकित रह जाते थे। दार्शनिक विषयों पर चर्चा करने की इनकी प्रवृत्ति देखकर केजवजी यति ने दर्शन के गहन तत्त्वों की व्याख्या आपको समझायी। आप मदैव दार्शनिक तत्त्वों के गूढ़ रहस्यों का चिन्तन किया करते थे। आपने लोकागच्छीय प्रति तेजसिंह में भी इस सम्बन्ध में चर्चा की। आध्यात्मिक तत्त्वों के अध्ययन, मनन और चिन्तन ने इनकी रूचि परिमार्जित हो गई और परममत्त्व को जानने की उच्छा प्रबल हो उठी।

सामाजिक विषयों के प्रति आपकी रुचि प्रारम्भ में ही नहीं थी। वचपन में ही एकान्तप्रिय एवं कम बोलने वाले थे। अध्ययन ने इस वैराग्य की भावना को प्रोत्साहन दिया और आपने सन्मार्ग पर चरने के लिये किसी धार्मिक सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय किया।

आप माना-पिता के बड़े आज्ञाकारी थे। उन उचित अवसर देखकर उर्मदासजी ने अपने माना-पिता ने विनयपूर्वक दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा मांगी। उनके वचनों को सुनकर माना-पिता और परिवार वाले आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने बहुत ही दयनीय स्वर में कहा—“तुम ही तो हमारे एक मात्र जीवन के आधार हो, जन्मे की लकड़ी हो, यदि तुम ही हमें बेमर्रा करके चले जाओगे तो हमारा क्या होगा? इस प्रकार के जट्टों का कहते हुए सभी विलाप करने लगे। दुःख और वेदना का उनका तीव्र प्रवाह बह उठा कि सभी कहना चाह कर भी कुछ नहीं कह सके।

उर्मदासजी के हृदय में पूर्ण आस्था, निरन्तरता एवं धैर्य था। उन्होंने सभी वस्तुओं को धर्म, विनय और प्रेम से समझाया कि वह नग्न नखत्र है। मनुष्य काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह में पड़कर धर्म और दर्शन के मत्त्वों को भूल जाता है। मनुष्य की यह कुरावा भी नखत्र है और जिसने जन्म लिया है, उसे निश्चित रूप से एक दिन मृत्यु





खाने के लिये यह राख पड़ी है, यदि चाहो तो दे दूँ।' उसने कुटिलना में महाराज की ओर देखा। नीम्यमूर्ति धर्म-
दानजी महाराज ने कहा "बन्धु ! यदि तुम्हारी इच्छा राख देन की ही है तो राख दे दो।" कुम्हार ने हाथों में
राख उठा कर महाराज की ओर फेंक दी। उसमें से कुछ ना हवा के प्रवाह के साथ उड़ गई, शेष बची हुई राख
पात्र में लेकर आप गुरु की सेवा में उपस्थित हुए। शांत और कोमल शब्दों में आपने गुरुदेव का सभी वृत्तान्त सुनाया
अपने जिय के वैयं एव आत्मविश्वास में गुरुदेव गद्गद् हो उठे। उन्होंने कहा—“तुम बटे नीमाग्रशाली हो। प्रथम
दिवस ही तुम को राख जैसी पवित्र मिखा मिची है। इस कलियुग में तुम धर्मरक्षा करने में समर्थ होगे और तुम्हारे
द्वारा धर्म का प्रचार और प्रसार होगा। तुम्हारे अनुयायी बहुत अग्रिम मत्स्या में बढ़ेंगे। जिस प्रकार प्रत्येक पशुचार
में हमें राख मित्र मकनी है ठीक उसी प्रकार ग्राम-ग्राम में तुम्हें शिष्य मिलेंगे।”

श्रद्धापूर्वक गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर आपने राख को पानी में मिलाकर तीन बार पिया।

चानुर्मान्य के पश्चात् बिहार कर आप एव गुरुदेव यात्रा करते हुए उज्जैन की ओर चले। वहां अचानक
गुरुदेव के शरीर में वेदना उठी। पीड़ा की अमहनीय स्थिति और अन्त समय की नजदीक जानकर उन्होंने सहाया
ले लिया। मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी को जीवराजजी महाराज स्वर्ग निवारें।

धर्मदानजी महाराज पर गुरुदेव की छत्र-छाया केवल इक्कीस दिन तक ही रही। इस अल्प समय तक ही
गुन्मन्मर्क में रहने के कारण ऐसी प्रसिद्धि हो गई कि आप स्वयं दीक्षित थे। गुरु की कृपा में ही आपके हृदय में
मत्स्य की प्रेरणा मिली थी एव आपने गुरुजी की पूर्ण श्रद्धा में सेवा भी की थी।

समय, शुद्धि एवं साधना के साथ धर्मदानजी महाराज ने धर्म प्रचार का कार्य तीव्र रूप में प्रारम्भ किया।
धर्म का प्रचार और प्रसार करते हुए आपके मार्ग में अनेक बाधाएं आईं, परन्तु आपने असीम श्रम में उन पर विजय
प्राप्त की।

धर्मप्रचार के लिये आप त्रिविध यात्राएं करते रहते थे। वि० म० सत्तरह सौ चालीस में यात्रा करते हुए
आप ग्वालियर पहुंचे। ग्वालियर नगर के बाहर शीतल जलाशय के किनारे विशाल वृक्ष देखकर रात्रि में विश्राम
किया। विश्राम के पश्चात् आप आध्यात्मिक चिन्तन में लीन हो गए। दैवयोग की बात है, उसी दिन वहां का राजा
शिकार खेलने के लिये अपने दल-बल सहित जंगल में गया। जंगल में राजा को किमी जहरीले गर्प ने काट खाया जिससे
राजा को मूर्छा आ गयी। मूर्छा की स्थिति में राजा पृथ्वी पर गिर पड़ा। राजा की यह हालत देखकर उसका मन्त्री
बहुत चिन्तित। राजा के मृत (बन्धुन मूर्छित, जिसे उन लोगो ने मृत समझ रखा था) शरीर को लेकर जब वे नगर
की ओर लौट रहे थे तो उनकी दृष्टि धर्मदासजी महाराज पर पड़ी। मन्त्री राजा की मृत्यु ने उद्विग्न तो था ही,
जब उसने महाराज को ध्यानस्थ देखा तो उसका क्रोध उमड़ पड़ा। बहुत ही कटु शब्दों में (परन्तु शीघ्र नमाकर जैसे
कि उस युग की परम्परा थी) उसने कहा—‘हे मन्त ! आप जाँचें खोलकर मेरी बात ध्यान में सुन लो। आपका
इस नगर में आना बहुत ही अशुभ हुआ है। सब जगह ब्राह्मि-ब्राह्मि मच गई है। सारी जनता राजा के विरह में दुखी
हो रही है। महाराज ! यदि तुम मन्त्रे माधु और ज्ञानी हो तो किसी प्रकार राजा को जीवित करो अन्यथा आपको
निश्चित रूप में सोच लेना चाहिए कि आपके प्राण भी सकट में हैं। निवेदन है कि आप माँग के जहर को दूरकर
राजा को स्वस्थ कर दें।’

गुरुवर धर्मदासजी मन्त्री की बात को सुनते रहे। फिर उन्होंने गम्भीर ओजस्वी शब्दों में कहा—“मन्त्री !
तुम अज्ञानी हो। मनुष्य को मृत्यु का भय नहीं करना चाहिए। मुझे मृत्यु से किंचित् भाव भी भय नहीं है। परन्तु
यदि तुम्हें विश्वास हो कि तुम्हारा राजा भविष्य में शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा करेगा और अन्य जीवों को अपने
ही मग्न जीवन का अधिकार देगा तो उसकी चेनना लौट सकती है।” मन्त्री ने ससम्मान नतमस्तक होकर कहा—
“महाराज ! ऐसा ही होगा।”

उसी समय राजा को स्वाम्थ्यशेष हो गया। उसने श्रद्धा सहित महाराज के चरणों में गिर रख दिया।
राजा ने जी हत्या न करने की प्रतिज्ञा की।

नगर में महाराज का भव्य स्वागत किया गया। राजा एवं प्रजा न आचार्यजी से बड़ा चानमास्य करा की बार बार प्रार्थना की। आचार्य जी न बड़ी पर चानमास किया और धार्मिक सिद्धांत पर चर्चा हानी रीती। वहीं जिना पांच महामाया ने आपसे प्रणमनीय प्रणम की।

इन जिना धर्म का खूब प्रचार और प्रसार हुआ। महाराज की वाणी में नूतना मित्राग और गाम्माय धर्म का धावक मुद्रा जा जत ये। आपने बहुत प्रमुख निनास (६६) गिण्य वनधे और अनक परिवारों में गणक सिद्धांत की स्वीकार कर लिया। आचार्य जी न जिना १७७२ के चतुर्गुण प्रयोगों की २२ सप्ताह (विधा) स्थापित किया। धनराज लातूर हरिण आचार्य (बड़ा) धृष्टीगर्ज लघु हरि लघु प्रयोग मन्त्र प्रम ननसी लातूर भवानी मूत्र रनि पुरोहित मुनि मुकुटमी गुम्मा एवं महाहर वागसा तिमरय और मुधार्मा गानि। आचार्य जी न धारा नगरी में बाईस सम्प्रदाय की स्थापना की। इस प्रकार सब की प्रवस्था होने से प्रचार एवं प्रसार में सिरता आई।

महाराजजी धर्म का प्रचार और प्रसार करते हुए सजरात पत्राव उत्प्रेषण काठियावाड़ वच्छ महाराष्ट्र और राजस्थान में भ्रमण करते रहते थे। महाराज के अनुयायियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। महाराज की वाणी इनकी मधुर और प्रभावशाली थी कि उसका प्रभाव आत्मा पर पड़ा था उमम रोम राम जालाविन हो उठना था और जारना पड़ा जा जानी थी। महाराज मन्त्र धर्मप्रचार और आध्यात्मिक चिंतन में रत रहते थे।

महाराज के एक गिण्य ने धारानगरी में संधारा करने की घोषणा की। कुछ समय तक न उम गिण्य का चित्त स्थिर रहा पर तु धर्म में उनकी भावना अस्थिर होने लगी। उसने सब के सामने गाना नन की गाना प्रगट की। उपस्थित समुदाय में स्थिर रहने के लिये निबन्ध किया पर तु धर्म स्थिर नहीं रह सका। मध ने उपयुक्त प्रस्ताव की सूचना गिण्य को महाराज का दा। महाराज सा का इसका बहुत दुःख हुआ और वे उसी समय धारा नगरी के लिये रवाना हो गए। माग में कवच तन के भ्रमिय वाही जागिर कर जागरी और जग गान धारानगरी वन्धे। धर्म ननने अथिक् चितित हा उम य कि आपको माग में जग प्रणम करने की भी गाना नन। संध्या समय आचार्य धारानगरी पधार। आपने गिण्य की सभी प्रकार से उपेक्षा किया परंतु उसका चित्त स्थिर नहीं सका। तब गुरुदेव ने यज्ञे हो गम्मार एन गान न म्वर में उस स्थान पर बढकर अपने साधारा नने की घोषणा की।

महाराज सा का म घोषणा की सुनकर उपस्थित जनसमुदाय किन्तु अविमूढ़ न गया। महाराज न उह धर्म का उपदेश दिया और जग न न कर्मा न कर लिया। उस समय गर्मी का ऋतु थी और गर्मी इनकी प्रवृद्ध थी कि मनुष्यों के प्राण सूखते जा रहे थे। परंतु महाराजजी के चरण पर की कागि और भावपण मुक्ताग या। थंडा में जनसमुदाय उमड पडा। उनक वठन की प्रवस्था करना भी एक समस्या बन गई। महाराजजी सात दिन तक गाना स्थिर एवं मौन रहे और जिना १७७२ की चतुर्गुण प्रयोगों का उद्घाटन इस नम्रप काया नो छान लिया।

आचार्यप्रवर श्री धर्मगमजा का जीवन आनंद जीवन था। उन में सत्य अहिंसा गयम बुद्धि गहन चिंतन और वास्तव सभा की अपने चरित्र में समेट रखा था। जीवन भर उद्घाटन धर्म का प्रचार और प्रसार किया और मम के नाम पर भी उन्होंने अपने जीवन का उत्सव कर लिया।

आज भी उनके अनुयायी बड़ी संख्या में विद्यमान हैं और उनके धर्म का पत्रा धारानगरी में आज तक हानी है।



धन्नाजी महाराज

श्री सुकन मुनि



मारवाड के नाचौर परगने के मालवाडा ग्राम मे पोरवाड जानीय बागाजी मूया रहने थे। उनकी गणना वहाँ के श्रेष्ठ नागरिकों मे की जाती थी। उनकी पत्नी का नाम भूमकुवाई था। वि० स १७०१ की चैत शुक्ला दशमी का उन्हें पुनरुत्थ की प्राप्ति हुई। बच्चे का नाम 'धन्ना' रखा गया। बच्चे का लाडल-पालन बड़े प्रेम से हुआ। धन्ना जी बचपन मे ही शांत एवं एकाग्रमेवी थे। परिवार वालों ने उनकी वाङ्मयवृत्ति पर ध्यान नहीं दिया और वे लगातार गहन चिन्तन मे व्यस्त रहने लगे।

१३ वर्ष की अवस्था तक ध्यान व्यावहारिक जीवन की शिक्षा ग्रहण कर रही थी। आप प्रकृति मे ही बड़े दयालु भावुक थे। एक दिन किसी कार्यवश आप बाहर जा रहे थे। मार्ग मे उन्होंने एक गाय को लोगों द्वारा मारने देखा। इस घटना ने उनके हृदय को प्रबुद्ध कर दिया। उन्होंने सोचा यह समार मरकर है। प्राणी मात्र जीवन लेकर कर्मों के फल को भोगता है और मृत्यु के पश्चात् फिर जीवन का यह क्रम चरना ही रहता है। उन्होंने जन्म-मरण के इस चक्र मे छूटने के लिये चिन्तन प्रारम्भ किया।

जीवन और जगत् के प्रति आपके हृदय मे नीवतम वैराग्य था। मुक्ति का मार्ग बनाने वाले किसी योग्य गुरु की धारने खोज प्रारम्भ की। उस समय राजस्थान मे पोनियात्रय पथ का विशेष रूप मे प्रचार हो रहा था। अपने माता-पिता की आज्ञा ग्रहण कर धन्नाजी ने उस पथ मे दीक्षा ग्रहण की। कुछ समय तक उन्हीं के साथ रहकर आप ज्ञान की चर्चा करते रहे परन्तु उन्हें इस पथ के मिथ्यात्व और नायता मे कोई अनुपि नहीं मित्ती। उनका मन स्थिर नहीं रह सका और वे किसी योग्य गुरु की खोज निरन्तर करते रहे।

करीब आठ वर्ष तक वे लगातार गुरु की खोज के श्रिय प्रयत्नशील रहे। एक दिन मीभाग मे आपको श्रीधर्मदासजी महाराज के दर्शन हुए। उनके साथ धार्मिक चर्चा करने पर आपको परम शान्ति का अनुभव हुआ। वि० स १७२१ की कार्तिक शुक्ला को धन्नाजी ने धर्मदासजी मे दीक्षा ग्रहण की।

धन्नाजी ने सभी प्रकार के प्रपञ्चों का त्याग कर साधना प्रारम्भ कर दी। वे भच्चे साधक थे। उन्होंने इतनी कठोर साधना की जो कल्पना से भी परे है। जेठ महीने की मयानक गर्मी मे वे नदी की तटी हुई बालू पर सो जाते थे। उनके लिये मर्दों और गर्मियों की ऋतु का कोई विरोध भेद नहीं था। उनकी ज्ञाया इस तरह ने टल गई थी ऋतुओं के परिवर्तन का उस पर कोई विरोध प्रभाव नहीं पड़ता था। वे गर्मी मे मिट्टी पर और सर्दी मे पहाड़ों पर इस प्रकार विश्राम करते थे मानो आगम मे सो रहे हों। मर्दों की ऋतु मे भी वे केवल एक 'चादर' मे काम चलते थे। इस प्रकार का कायमयम आश्चर्य की ही वस्तु है। उन्हें भोजन मे स्वाद की इच्छा ही नहीं रहती थी। वे मौन रहकर अध्यात्मचिन्तन ही किया करते थे। उनकी स्मरणशक्ति विचित्र थी। उन्होंने सभी सूत्रों को कठम्य कर रखा था और उनकी बड़ी मार्मिक व्याख्या करते थे।

धन्नाजी महाराज का जिन प्रकार काया पर अविकार या ठीक उसी प्रकार वाणी पर भी पूर्ण नियम था। उनकी वाणी मारगमिन् एवं माधुर्य मे ओतप्रोत थी। श्रावक मन्त्रमुग्ध मे उनके उपदेशों को सुनते रहते थे। आप बड़े वाक्पटु थे। समझाने का तरीका बड़ा मार्मिक था। आपकी भाषा बड़ी सरल थी और उसी भाषा मे आप जनसमुदाय

वो उत्पन्न किया करते थे। आपन प्रमुख पांच गियर हूँ। व क्षम म श्री भूधरजी जी मूलचरणी था स्वतः जी जी गवयम्भोजी और श्री मेराचरणी य। सभी गियर योग्य एवं गुणवान् थे। सभी न मिलकर जनधर्म व उत्थान म म योग्यिया। आपने गियर न उत्पन्न अथवा क्षम म उत्तर धर्म का प्रचार किया।

जि म १६८६ म मझता क बाहुर क नामर तावाव के पास वना दुई छत्रिया म आपन राखि विश्राम
रिया। राखि त समय आप ध्यानमग्न थ तभी आपका आ नरिअ प्ररणा भिगी। आप छारी क घा न घब क पाम
खे गेर ध्यान भरत गय। प्रात वाद सभा मे आपका थके रहार ध्यानमग्न र्था जीर नास्ते क
क एिय निवृत्त किया ता आपन मग्नता न कवा रि यणि प थर (यथा) धान खाण्ण ता मे भी धान खाऊगा।
धनजा क न्न वचना का मुनवर सभा प्रिमित न गय। छ नाज मथाराख ने मथार को घापागा वरक भीन रख
रिमित।

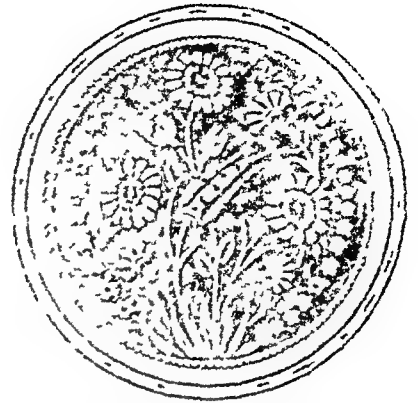
दा जिन नर व ज्ञानाग मोन रहै और तल्लखात डम न धर बाया का गान्धर्व स्वर्गमोन हूँ । मयु के पचात भा ३ नाजी की वसुध व मयान बनी श्रावै खवा हूँ सी और उनक मुँ पर लपट्या वा तज बलक रहो वा । राजा के सीका छोड़यी न प्रव उहें स्व म्बान म न्या ता यन प्राप्तव न्या । भडारीजी न हा उनका ससहार दिया ।

आपका यहित्व प्रमाणही था। आपने सधम का साधना उत्कृष्ट रूप से की थी। वाचासधम और वाणीसधम आपका विविष्टनाम था। आपका हृ। सधम गित्य श्रीसूधर स्वामि आनि न धम का लू प्रसार और प्रमाण किया।



श्री भूधरजी महाराज

श्री रजत मुनि



मारवाड के नागौर क्षेत्र में मुर्गांधार ग्राम के माणिक्यन्दरी पट्टन ही जन्म हुआ था । उसी वर्ष का नाम रखा देया । वि० स० १७१२ की विवाहसन्धि के दिन उन्हें पुष्पगन्ध ही पहनाई गई । परिवार में बड़ा जानकर और उत्सव मनाया गया । भूमी न मिलकर उनका नाम 'भूधर' रखा । भूधरजी पंचान में ही बहुत मुन्ध और भावुक थे । जितने ही वे मुन्धर थे उनका ही गुणी और चतुर भी थे । आपकी चाल चलन की दृष्टि ही तुमान वाली थी और चेहरा अत्यन्त आनन्ददायी था । उनकी जाँघें नदीव लाक रंग वाली थी और उनके मांसका रंग भी था । भ्रमरों के समान रंगों वाली आपकी मुँहके मर्दम चमकाया करती थी ।

जिज्ञा के प्रति आपकी प्रारम्भ में ही रुचि थी । आपने व्यावहारिक एवं नैतिक शिक्षा विशेष रूप में ग्रहण की । कौजी शिक्षा में विशेष रुचि थी । बुद्धकला में निपुणता प्राप्त करने के कारण वीरन में आपकी कौजी के लिये शिक्षाकारी का पद दिया गया । आपने स्वेच्छा से मोजन नगर में अपनी निवृत्ति कराया । माणिक्य की लड़ाई के लिये मुख्यव्यक्ति रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया । उस समय माणिक्य राज्य में अस्थिरता उत्पन्न होने लगी थी । आपकी आदि के कारण अज्ञानता फैली जा रही थी । भूधरजी ने अपनी बुद्धि और बल द्वारा उन पर विजय प्राप्त कर ली । उन दिनों माजत ही आपका प्रिय स्थान रहा । वहीं पर साह दवाजी गतादेश परा के बहा आया गया । राजकाय के साथ सामाजिक कार्यों में भी आप सदैव रुचि लिया करने थे ।

वि० स० १७८० के लगभग की घटना है । जयपुरी ग्राम पर कौजी डाकुओं ने हमला कर मार मार डाला । वहाँ के ठाकुर के निमंत्रण पर भूधरजी वहाँ महाराजा के लिये पहुँचे । वहाँ की लड़ाई के प्रभाव में आपने डाकुओं को पीछे हटा दिया । भूधरजी ने डाकुओं का पीछा किया और राजकाय नामक स्थान पर विराम आपने लड़ाई प्रारम्भ की । उस संघर्ष में भूधरजी की विजय हुई ।

इस लड़ाई के बीच एक मामूली घटना हुई जिसने आपके हृदय में वैराग्य उत्पन्न कर दिया । युद्ध में मृत्यु एक डाकू की लड़कियों ने उनका घोड़ा घायल हो गया और उसकी गर्दन पर चढ़ा दिया गया । उसी समय वेदना से तड़फ-तड़फ कर पोंटे ने आपसे हो मानने प्रार्थना दे दी । उस घटना का प्रभाव आप पर उनका गहरा पड़ा कि आपकी हिंसा में रानि और मनार ने वैराग्य उत्पन्न हो गया । साजन पहुँचकर आपने मरती की मर्त ने अन्तान प्राप्त कर धार्मिक चिन्तन प्रारम्भ कर दिया । परिवार वाला ने आपका लौटने गुडों में उल्लास करने के लिये हर संभव प्रयत्न किये । परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली ।

एक दिन आपने 'पानिदाय पथ' के प्रचारकों के आगमन की खबर सुनी और उनसे साक्षात्कार किया । उनके मिथ्यात्व को सुनकर आपके हृदय में इस सम्प्रदाय में दीक्षित होने की भावना प्रबल हो उठी । आपने परिवार और वैभव के संकेत छोड़कर पानिदाय पथ को स्वीकार कर लिया ।

बहुत समय तक यह पथ के अनुयायियों के साथ रहकर भी जब आपका सतीत प्राप्त नहीं हुआ तो आपने भागि न था यह गुरु को ध्यान प्रारम्भ की। मानसिक शांति के लिये आप यज्ञ-सत्र भ्रमण किया करते थे।

सौभाग्य से अचानक माता का पाठ्य गाव में आपकी अन्तर्जातीय जी घनाजी में से हो गई। महाराज उन दिनों माता का मध्य प्रचार का साथ दिया करते थे। श्री घनाजी से ७० के उपरान्त का प्रयोग कर आप बहुत अधिक साहित्य प्राप्त कर ली। आपने घनाजी से भी साध्यात्मिक चर्चा करने का अवसर आपकी मिला। इस सम्प्रदाय के लोग और सिद्धांत में प्रभावित होकर आपने स्वयं का सा ग्रन्थ करने की अभिलाषा व्यक्त की। वि. म. १७५१ की पाणिन पुस्तक पत्रों में नि. आपने घनाजी से इस समय की लेखा ग्रहण की। दो सा ग्रहण करने के पश्चात् आप अपने आत्म विचार में मग्न रहने लगे थे।

आप सत्य प्रगटभाव में रहे की तथा सत्यरत्न थे। अनेक प्रकार के बदला का सत्य करने भी मूवराजों का धर्मप्रचार किया करते थे। आपने भी सा पत्र विचार दत्त किया। उपरान्त का प्रचार में तरह हुआ माना जिससे जनता की तीव्र रस प्रदान हुआ है। अनेक श्रद्धालु यत्न कर आगे स विविध प्रकार के ग्रन्थ पूछा करते थे और आप अनुरूप युक्ति या स उत्तर। गवाहों का सम्पादन किया करते थे। साध्यात्मिक प्रचार करने वालों की आपने सत् आलोचना की। आपने सत्य सत्य सत्य द्वारा जनता का स्वयं अधिक प्रभावित कर दिया कि विराटों भी आकर आपका चरणा में गिरने लगे।

महाराज महाराज का प्रभाव उन दिनों सत्य अथवा फल रहा था। उनकी बलि की अलौकिकता प्रगटनीय थी। वे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अपनी अधिकतर पूछा गया स दिया करते थे कि समस्त बात का उस स्वीकार करना पड़ता था। इस प्रसंग में एक घटना का उल्लेख किया जा सकता है वह इस प्रकार है—

आपसुर के खोसलजी महाराज बड़े बलिमान और योग्य नामरिक्त थे। महाराज असततमहर्षी की आप पर विचार किया थी। आपका प्रस्ताव सुनकर दिल्ली के साध्यात्मिक नारायण महाराज उक्त अधिकांश का पत्र किया। मीनर को अपनी मायका से आप साध्यात्मिक विचारोंपात्र एवं कथापात्र बन गए। साध्यात्मिक न आपकी सिरपाव और साध्यात्मिक देखकर सम्भावित किया।

वा साध्यात्मिक प्रिय बगम का पुत्री (गहना १) बहुत ही सौंदर्यवाता था। उक्त रूप की प्रस्ताव चर्चा का विषय थी। किन्ता कारण से राजकुमारी सगर्भ हो गई। उस विमाता का उसका पता गया तो उसने इस घटना की चर्चा साध्यात्मिक से की। साध्यात्मिक इस घटना का सुनकर आगे बढ़ा हो गया। साध्यात्मिक ने सोचिन्त हीन राजकुमारी का पता—सूत मरे गिर घर बांधा गया है। उक्त यत्न का नाम बता जितने मुझे सोचा कि साध्यात्मिक की गस्ताधी की है।

राजकुमारी ने कहा— धर्मोत्तार ! साध्यात्मिक ए जात्रम ! वितात्रा ! मैं बचपन खारन कन्ती हू कि मैं सत्य एक रात्रि घर चला रही हू और पवित्रता से ही अपने मन में सत्य हू। यह सब किस तरह से हो गया है यह तो मैं नहीं बता सकती हू। यह कुत्तर का बाग है जिसमें पक्षी हैं उल्ला दी गयी हू। यथापथ में इस सत्य का मुझे कोई पता नहीं है।

साध्यात्मिक ने इस पत्र में साध्यात्मिक का साथ जीव भी भग्न उठा। साध्यात्मिक हीन साध्यात्मिक कचारी में थाया और उगने काजी मुन्ना साध्यात्मिक और पत्नी को पीछे बरबाया। उन सभी की उपस्थिति में साध्यात्मिक ने प्रार्थना किया कि— आप सभी अपना अपने धार्मिक सेवा का अध्ययन करके बताओ कि किना गारित सत्य के गम से सहा है या न। ? मुन्ना प्रार्थना का उत्तर देते ही मीनर गहना।

प्रभा वा अध्ययन कर सभी ने हाथ जोड़कर साध्यात्मिक में निवेदन किया कि साध्यात्मिक को घाम् ! सभी धार्मिक सेवा की छायाओं में गवत सेवा की पता चला है कि सम्पूर्ण के विना गम नहीं रह सकता है।



बादशाह ने उसी समय अपने दरबार की दर्यास्त्र रखे जाणा दी कि दुष्ट राजकुमारों को भीष्म ही मार डाला जाय। बादशाह की घोषित मुद्रा देख कर हिमी की हिम्मत नहीं हुई कि वे उसी समय के लिये निर्दिष्ट कर गये। तभी बहुत ही नम्र स्वर में श्रीवर्मा ने कहा 'जब मायरा आया।' निवेदन है कि मुझे तब बार मरने के बाद राजकुमारों ने मिलन की आज्ञा दी जाय।' बादशाह ने पंडित वा आतातानी की प्रार्थना श्रीवर्मा ने कहा 'भीष्म निणय देने ने नभव है अन्धाय हा जाय और आपकी बदमाशी हा, अब आप उस तब पर शांति में प्रियार रहे।'

बादशाह की आज्ञा लेकर श्रीवर्मा भटारी महल में गए और नागरण पुत्रराज को पंडित पीट ड म। उन्होंने बादशाह ने निवेदन किया—'राजकुमारों को तब तक दंड नहीं दिया जाय जब तक कि राजा की पुष्टि न हो जाय।' इस नथ्य के निर्णय के लिये उन्होंने बादशाह ने कुछ समय मांगा। बादशाह ने उनके मरने का पता पाने के लिये अवसर दे दिया।

भटारीजी ने कि सभी क्षमिन् विद्वानों ने मरने का प्रमाण दिया और दिना सम्मोह के लिये राजा के नथ्य की पुष्टि के लिये प्रमाण प्रस्तुत करना चाहा। सभी ने कहा - कि 'यस प्रमाणों का पूर्ण मान्यता पर दिया है और उसी के आधार पर निर्णय दे दिया है। परन्तु भटारीजी ने उनके उत्तर ने मंजूर नहीं किया।

विशेष ताम ने उसी दिना भटारीजी को उद्दीर जाना डटा। वे अपने घर पर नहीं उद्दीर की ओर जा रहे थे। उद्दीर के पास एक पादरुज नाम का गांव है। वहां भटारीजी महाराज अपनी समूह-गणों ने लक्ष्मण हा प्रचार कर रहे थे। भटारीजी उधर ने ही निराश रह रहे। भटारीजी की सीमाओं और सम्मोह राशि का आप पर विशेष प्रभाव पडा। श्रीवर्माजी भटारी अपना पैसा मांगने पर पंडित उन्हा में ही महाराज के पास घाते और उनकी बन्दना की। तत्पश्चात् उन्होंने अपना पन्थिप दिना और भटारीजी के नामों पर बना प्रस्तुत की कि प्रता प्रिता सम्मोह के गम ठहर सकता है? भटारीजी ने कहा कि 'मन उस नथ्य की मांग के लिये विद्वानों ने भी परन्तु मुझे कहीं भी सतोषप्रद उत्तर नहीं मिला। जत आर ने निवेदन है कि आप उस धारा का समाधान करें और आगमो ने उनकी पुष्टि करें।

भूधरजी महाराज ने कहा—'आनाग मय के पंचम आगे में गर्म के पात प्रचुर कारण दिखे हैं। वे गर्म है और हमें उन पर पूण अक्षा रखनी चाहिए। उन्होंने कहा—'जिन वस्तु में पुण्य के स्थान दिया हा और पुण्य के बीच-पुद्गल उनमें नैर रहे हो वही पर यदि कोई भी प्रता प्रता के ल्या रहे तो उसे गर्म ठहर जाता है। यदि कोई भी खुले में बिना वस्त्रों के ना रही हो और जल ने बीच में पड़े तो उसने भी गर्म हो सकता है। यदि किसी वस्त्र पर बीच में गिरा हुआ हो और रज्जुवत पीनि ना उसमें गर्म हो जाय तो भी गर्म ठहर सकता है। दैवयोग में भी गर्म ठहर सकता है। इन पाचवें प्रकार को तुर्य भोग कहते हैं।'

भूधरजी म० ने आगे कहा—यदि सम्मोह ने गर्म ठहरगा तो वस्त्र के धरीर में छिड़काई बढेगी परन्तु यदि शारीरिक सम्मोह नहीं दिया गया तो वस्त्र के धरीर में अस्थि नहीं होगी। भटारीजी ने कहा—महाराज, यदि आजका यह वचन सत्य हो जायेगा तो आपने समय की निष्ठा पश्य कर आवश्यक धन माँगा।

उद्दीरयात्रा में लौटकर श्रीवर्माजी भटारी ने 'नारी प्रदना विष्णु' में बादशाह को सुनाई। बादशाह यह तथ्य सुनकर व्याचर्यचकित रह गया। उसने कहा—मुझे इसमें बहुत कम समय दिया है, फिर भी यदि तुम कहते हो तो मैं उसे मान लेता हूँ। बादशाह ने महल में पूरी व्यवस्था कर दी। प्रधानमन्त्री राजकुमारों ने वस्त्र का प्रसव दिया। उसने महाराज के वस्त्रों को सत्य निद्रा कर दिया। तत्पश्चात् वस्त्र के धरीर में छिड़काई नहीं दी और वह रई के समान नम्र ही था। जब बादशाह को यह समाचार मिला तो उसका हृदय मन्तुष्ट हो गया।

बादशाह बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने श्रीवर्माजी को कहा—'मैं भूधरजी महाराज के दर्शन करना चाहता हूँ। उनका वचन पूर्ण सत्य है। मेरी आत्माएं बहुत ही कम होती हैं। तुम ऐसे महान् व्यक्ति में मेरे मित्रने की भीष्म व्यवस्था करो। यदि वह महान् आत्मा यही समय पर मेरा मार्ग-दर्शन नहीं करती तो प्रोच में महत्तादी की हत्या कर देता और वह कनक मेरे पर उन्नत भर के लिये लग जाता अतः भीष्म ही उसे मोक्षर के राजा है।'



और म्यानक ने उनका उपचार किया गया। आचार्यश्री को जब जाट के पिढवाने की बात पत्नी का कहना सुना हुआ। उन्होंने कहा कि किसी तरह से जाट को बाने में छुड़वाकर लाओ, फिर मैं उनका इलाज करूँगा। मरुघरदेसरी ने दोउकर राबले में और हवदशर का जाजर महाराज की प्रतिज्ञा मनायी। मरुघरदेसरी ने पत्नी की पुनः तरफ़ नज़र डाल गये। जाट की छुड़वाकर महाराज के पास में ले जाया गया। जाट ने ज० सा० के चरण पर पड़ कर और बार-बार माफ़ी मागी। महाराज ने कहा कि तुम्हें मान और मदिरा आदि देते हैं। चाट्टियाँ भी मैं तुम्हारा दान दूँगा। वह घटना महाराजश्री भूगर्भी की सपनसोचना और स्यादुता की प्रतीति है।

यात्रा करते हुए सूकरजी नामक पक्षि है। वहाँ पर विरागी लोग हैं जिन्होंने मरुघरदेसरी को पाला था। जाट की ठहरने के लिये गेरवालों की हथेली में स्थान दिया। आपश्री ने परिचयार्थ दुर्ग, देवी के किया। वहाँ पर बड़ी म्यानक भी और लोगों की ऐसी मान्यता थी कि इन देवीश्री में दर्शन करने पर प्रत्येक की समस्याओं का निवारण होता है। रात्रि की महाराज के पास में भी वह आत्मा जाट पर ज० सा० ने उसे समझाया जिसका उद्देश्य था कि प्रातःकाल जब आपश्री को लोगों ने मरुघरदेसरी में देखा तो मरुघरदेसरी ने पत्नी का स्पर्श किया। विरागिता ने आपश्री से क्षमायाचना की। उसी समय जोड़पू के अडारी पीरमीजा वना पर जाकर गीत उर्ली-उर्ली के। अपनी ने पत्नी के मित्र भुकाया। वहाँ के कोट के मोड़ने में, पत्नी वहाँ चारभुजा मन्दिर था और जाट में उसे समिद्ध देखा दिया गया था, उस स्थान पर आपश्री ने दर्शन कर उद्देश्य दिया। उस स्थान पर पत्नी मरुघरदेसरी के पास पर दिया गया।

आपने प्रसन्न ६६ सिध्द बनारस है। यह निष्ठा, प्रसिद्धि की शायद प्राण चतुर्दश गव फौज। महाराज ने जनेर जज्ञानी मानवों की नृत्य मार्ग की और अग्रसर किया।

[illegible]



विवाह की तैयारियाँ हा रही हैं, इन्हीं तुम देवी का प्रसाद पाने के लिए मिर गाँव लग चला देने की तैयारी कर रहे हो ।'

मित्रों की बात का रघुनाथजी के मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । मित्रगण उनके पिता के पाप पट्टन । पिता ने नगी न-ह में समझाने-सुझाने का प्रयत्न किया, किन्तु अमर होने की स्पृहा अब न मारी । उन्होंने पिता से कहा—'मेरा न्याय अब चामुंडा माता के चरणों में है । मुझे किसी ने बहाराया नहीं, मेरे ही मन ने मातृपूजा में अपने आपका जपित करने की भाव उत्पन्न हुई है । मुझे आजीवार्थ दीजिए । मैं जन्म-मरण के चक्र में मुक्ति पाना चाहता हूँ ।'

रघुनाथ का अटल मन्त्र देख सब हैराण हो गए । ईश्वरों ने मोक्षों के लिये तुम आचार्य श्री बृहस्पतिजी का अचानक पदापण हुआ । समस्त वृत्तान्त विदित कर चामीजी ने कहा 'बाबू ! पिता ने तुम्हें भ्रम में पाल दिया है ? जरा मानकर तो देख कि क्या कोई किसी को अमर बना सकता है ? अपना पुरुषार्थ और भावना के द्वारा ही अमरत्व प्राप्ति किया जा सकता है—यह दास ने नही मिनता, न आत्महत्या करने से प्राप्त करता है । आत्मबल का जन्म-मरण की शृंखला ही मुट्ट अग्ने बाधा घोर पातक है । अमर होना है तो मैं तुम्हें माया दिखा सकता हूँ ।

भूवरजी स्वामी के अत्यन्त तीक्ष्ण मुकुट-मण्डल, ग्लिष्ट नयों और प्रभावोपेत वाणी ने रघुनाथजी को तन्मूलक प्रभावित किया । वे स्वामीजी के मार्ग चानक पकड़े । स्वामीजी ने आपके समक्ष अद्यावत् मय दर्शनशाला में सम्बद्ध ऐसी प्ररूपण की कि उनका मन मनुष्ट हो गया । यह तत्त्वचर्चा लगातार तीन दिन तक चाल रही । अन्त में रघुनाथजी आत्मसन्तुष्टि का समीचीन मार्ग समझे और बोले— 'गुरुदेव ! आपने ज्ञानज्ञान ने मेरे चित्त को छील दिया है । अब मैं आपकी चरण-शरण छोड़कर गोपित नहीं रहूँ मन्ता । मुझे अग्ने में जलन न लीजिए । अपने चरणों में न्याय दीजिए ।'

पारिवारिक जनो के अत्यधिक विरोध और निवेदन के कारण आचार्यदेव न आपकी घर लौट जान के लिए कहा । मगर आपका हृदय तडप उठा । जनीव दुखी होकर उन्होंने आचार्य महाराज के पैर पकड़ लिए । कहा— 'गुरुदेव ! क्या मुझे कीचड़ में फँसने का परामर्श किम प्रकार दे सकते हैं ? मेरा तो निश्चय है कि मैं लौटकर परिवार में नहीं रहूँगा ।'

मगर आचार्य की आज्ञा को शिरोधार्य करके वे एक बार घर जान को उत्थन हुए । मार्ग में नेचते जाते थे—प्रभु को लीला कैसी विचित्र है ! मनुष्य वस्त्रों को तोड़ना चाहता है और माया के प्रभु उन उन्मत्तना चाहते हैं ।

मार्ग में ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं घर वालों को इस प्रकार समझाऊँगा कि उनका मोह टूट जाए, वे प्रसन्नतापूर्वक मुझे आत्मभावना की अनुमति प्रदान करेंगे । उन्होंने यही किया । माता-पिता को समझाने का यत्न किया, भावी स्वप्न के सामने मन्त्र की अनागता प्रदर्शित की । मगर न वे समझे न वे समझे । दोनों पक्ष अपने-अपने विचार पट्ट दृढ़ थे । कुटुम्बी राग का न्याय न कर सके, रघुनाथजी विनय न त्याग सके । आखिर कुटुम्बियों के प्रबल आपत्ति की देखकर आचार्यजी ने रघुनाथजी से कहा—वत्स ! काठलवृक्ष धनी आई नहीं है । इस समय गृहत्याग करना उचित नहीं होगा । अवसर की प्रतीक्षा करो । माता-पिता के आपत्ति का आदर करके चार वर्ष तक घर में रहने में क्या हानि है ?

रघुनाथजी ने इस आग्रह को मान तो लिया मगर वे गृहमन्यामी की भाँति विरजत रूप में रहते और अपनी भावना में व्यस्त रहते । किसी प्रकार चार वर्ष की अवधि पूरी हुई और आप गृह-कारागार में बाहर निकलने का उपाय खोजने लगे । आचार्यजी ने जोधपुर-पदापण का समाचार सुनकर एक दिन वे बिना किसी से कहे, पैदल, नगे पैरों, जोधपुर की ओर चल पड़े । कितना माह्न, कैसी लगन !

जोधपुर पहुँच कर थापन रियासत के शासन से मुलाकात की। प्रभावशाली तब से अपनी स्थिति समझाई। उधर आचायरी महाराज के समक्ष भी गीता श्रवण की प्रार्थना की। जोधपुर के राजमाध्य प्रतिष्ठित गन्धर्व महाराजी की भी तब तक भेंट नहीं। धाराशाही ने जो पुरस्कार से अनुमान माया। नरेण ने प्रसन्नतापूर्वक अनुमति प्रदान करने का कड़ा—अम्बार गुह प्रणय के साथ कि उच्चरति से संयम के घनी है। तुम निश्चित होकर दीक्षा समाप्त कर आपादन करा। जो भी यद्यपि वह राजकीय कोष में दिया जाय।

इस प्रकार रानानुमति प्राप्त कर छावनीजी ने गीता की उच्चस्तर पर व्यवस्था की। धरागी का जलूस बड़ा ही भव्य गनीय और विभाज्य था। उस गठ का क्या नाम? अथन दूत था। गङ्गा हज़ारों फीटों की लंबाई और बहुत सफ़ेद पानी सदा उस गंगा यन्त्र के लक्ष्य की जलधारा में बह रहा था। प्रभावशाली के भय से मुग्धजन जन सरगढ़ उच्चरतिधारी और उनसे नामदार सम्मिलित थे। सन्तर स्वस्थ सम्पन्न तरण आज जगत के प्रलोभना की उत्सव पर धारणा भावा पत्नी के साथ को त्याग कर और समस्त भोग उपभोग से विमुख होकर त्याग व्रत के कर्त्तव्य के पथ पर प्रयाण कर रहा है। इस भावना में धानावरण में अथव गम्भीरता भर दी थी। भारत की विराग्न तप त्याग की सत्कृति में आज माना मूर्तिमान रूप धारण किया था। दबदुब यह दृश्य कितना स्पष्टगीय था।

नियत समय पर रघुनाथजी थापन गंगा का लक्षण धरकें तथा जिस धरकें बसत धरकें से सहित होकर साथ साथ ने आज्ञाय श्रीमधर स्वामी के सम्पन्न करबद्ध उपस्थित हुए। प्रव्रजित होने का प्रार्थना की। आचायरी ने उच्च प्रवक्ष्या प्रदान की। वे मुनिमहोदय भी सम्मिलित थे।

उपस्थित विराग्न जनसमूह में बसत गङ्गाजी नामक एक सन्त थे। उन समय उन्होंने जिनासा यक्ष था—‘जनधर्म क्या है? मैं इसका नाम जानना चाहता हूँ।’

गुह की अनुमति प्राप्त कर गङ्गा प्रव्रजित थे। रघुनाथजी ने लोप में जनधर्म की दाख्य करते हुए उनकी जिनासा का समाधान किया। ‘मम धर्मता से आप—प्रतिभा वभक्त का आज्ञा तब एक साहस का अनुमान किया जा सकता है। गङ्गाजी भी अतः तब प्रभावित हुए और उन्होंने सम्भवतः प्रवक्ष्य किया। उसी समय ने पाँच पाँच की तपस्वियों आरम्भ कर दा गिर चार विगया की त्याग पर किया।

सदर धाम में आपका उन्नीसी सा सम्पन्न हुई। तपस्वियों आप पूज्य की का गया में रहते हुए पान चारिन का आराधना में निरत रहते थे। अल्पकाल में ही आप में अगाधारण तेज का प्राग्भाव हो गया। आगम में गया है—

देव दानव मधुया अवध रक्षस किन्नर ।

समयारि समसर्ति हुक्कर ग कर्त्ति सः ॥

हुक्कर गङ्गाधर का पालन करने वाला गङ्गाधारी ने चरणा में देव दानव मधुया राक्षस और किन्नर भी में तब तक हैं। मनि रघुनाथजी काय बल्लवारी थे। और पान तथा तपस्या के तेज में दीप्यमान। यही कारण था कि मन्त्रा में भद्रव की भी थापन करने लगा।

यान धीरे धीरे विमान में आप एक सुन स्थान में ठहरें। गीता ने उस स्थान में ठहरने का निमित्त सवधान किया भगवत् आत्मवत् सन्त भूत प्रसाद में भयंकर नृपति। आप पूज्य की के साथ की ठहरे। अर्द्धरात्रि में जोधमय में मम भयंकर की का वागमन हुआ। अनेक प्रकार के गगन प्रपक्कन का प्रयत्न किया। तब मनि रघुनाथजी ने भद्रव का कड़ा—आपका मन्त्रा से हम गवगत हैं। जनसूत्रा में आप का प्रार्थना की गई है। फिर क्यों आप उल्लास मचाते हैं? याना कर्त्तव्य आपने मानुष्य पर चरित्र माया। अथर्वी मुनिकर प्रग न हल और बोध—आप पानी सन ह। सुख में विमान काचित।





प्रातः काल कौतूहलवश लोगों की भीड़ लग गई। सभी मनो को मनुजाल देव काम अव्यक्त चरित और प्रभावित हुए। मैकडो नये भवन बन गए। आपके बटने प्रभाव का देव न्यायोपति जग-भूत गए। उन्होंने उन मनो को मताने के प्रयत्न में कोई कमर न रक्खी—यहा तक कि सूठ भी चलाई। किन्तु 'धर्मो रक्षति रक्षित' अर्थात् जो धर्म को रक्षा करना है, धर्म उसकी रक्षा करता है। किसी मन्त्र या वाक्य भी वाक्य न रहा। यही नहीं, यतियों की कुत्सित कर्तव्यों के कारण मुनियों के प्रभाव में बहुत घटि हुई। यतियों के साथ शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करके तो श्री रघुनाथजी ने अपनी प्रतिष्ठा में चार चाद लगा दिया। यहा के जनेक प्रतिष्ठित अंगरेजों आपके बटानु बन गए। यही आपका चौमाना हुआ। पर्युषापर्ण की प्राप्ति के निमित्त तापपुत्र के भटारी जीधरीजी भी अपने लङ्कर के साथ सेवा में आए। भटारीजी के समक्ष भेजना-निवाहियों ने मुनि श्री-रघुनाथजी की मुक्त तट में भूँ-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा— उनकी महिमा का वर्णन करना बुद्धि में पड़ेगा। वे ज्ञान के अथाह सागर और शान्ति तथा धर्म के प्रतीक हैं।

इन चानुमान में मुनियों ने १२८ दिन की तीव्र तपस्या की। इसमें रहा आपकी जाया कृप हो गई यहा आत्मिक तेज में अतृप्त वृद्धि भी हुई। पारणा के दिन नगर के समस्त तारवाने बन्द रखे गए। उस समय भेजना में जैनों के ३००० परिवार थे, जन्म-उत्सव जैनपुरी कहा जाता था। यही श्रीजयमन्त्री महाराज ने दीक्षा ग्रहण कर आचार्यश्री भूधरजी का गिणित्व स्वीकार किया जो जाने कब-कब सम्प्रदायप्रवर्तन आचार्य पद के विभूषित हुए।

श्रीरघुनाथजी महाराज ने गाव-गाव विचरण करते अपने गर्भीर तत्त्वज्ञान और शुद्ध मर्म के बटने में सहस्रो नर-नारियों को नन्मार्ग पर आरुढ़ किया, धर्म का प्रकाश दिया और धर्म की प्रशस्त प्रभावना की।

किन्तु यह सब महज ही नहीं हो गया। इसके अति उन्हें भीषण ने भीषण रात महज करने पड़े। यतियों और पोतियावन्दों की ओर ने किये गये उपनगों को सज्जना पड़ा। उन्हें चार निगहार करना पड़ा, दम्भी ने बाहर बृलों की छाया में निदान करना पड़ा, कटु वचनों को सुनना पड़ा, अपमान और निम्नकार के गन्तव्य को अमृत समझना पड़ा। विरोधियों ने छुलका कर कुत्ते आपके पीछे छोड़े ताकि तब ने परेशान किया और राज्य में मृत्यु करने के लिए कोई उपाय ढोप न रक्खा। मगर महात्मा रघुनाथजी इन सभी उपनगों को हिमाय की तरह अचर, समुद्र की तरह गर्भीर और पृथ्वी की तरह नर्वनभ भाव ने महज करने हुए अपने पथ पर अग्रसर ही होते गए। भयानक विपत्तियाँ उन्हें निराश न कर सकी, उनकी प्रगति को प्रामी न कर सकी और उनके विजय प्रयाग को विद्या का बदल न सकी। यही, शोर-जनिघोर विवादों को उन्होंने आत्मबल ही वृद्धि का साधन बना लिया। उनमें उनका मन्त्र और उत्साह बढा।

वि० सं० १८०४ जी विजयादशमी के दिन, पंचोत्सव की पारणा में लड़े-लड़े बोरन्तुति का पाठ करने हुए, ६० वर्ष की उम्र में आचार्यश्री भूधरजी ने नन्दर नगरी का त्याग किया। तपस्वान् श्रीरघुनाथजी म० पर मन्त्र के नेतृत्व का उत्तरदायित्व धारण किया। आप आचार्य के पद पर जानीन हुए। आचार्य पद की प्राप्ति के पश्चात् भी आपकी धर्मप्रचार और आत्मसाधना का 'मिशन' यथापूर्व चलना रहा।

तेरापथ के प्रवर्तन श्री मीरूमजी आपके गिणित थे। नैदानिक मनभेद के कारण बगडी (मारवाड) में आचार्यश्री ने आपका गन्दाह बाधित किया और तेरा साधुओं के साथ पूर्य होकर उन्होंने तेरापथ सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया।

इस महान् उद्योगिक आचार्य ने लगाना साठ वर्ष तक जिन जानन की अर्चुन सेवा की। जन-मानस में पड़े ज्ञानान्धकार का निरसन किया। अपने दिव्य नेत्र ने सध की महिमा बढाई।

राजस्थान तो आपकी प्रदान विहारभूमि थी, जोधपुर, सीरानेर, जालौर, जोजत, मेरवा आदि राजस्थान के विभिन्न प्रदेश आपके चरणरज में पादत हुए। मगर आपका प्रचार-क्षेत्र यही तक सीमित नहीं रहा। गुजरात, काठियावाड कच्छ, मेवाड, मालवा, उत्तरप्रदेश, दिल्ली यहा तक कि जम्मू जैसे सुदूरवर्ती प्रांतों तक

इन महापुरुष ने पणपण करके धर्म का उद्घोष किया। मन्त्र जिनासन की प्रभावना की और जानामन की वर्षों का। जितना विस्तृत विचार है आपकी छद्मप्रचार भावना की प्रकट करता है। उम्र वाला मर्यादकवागा मनिया का विचार जान की तरफ़ सरल बना था। उस समय यनिसमात्र का काफी प्रभाव था और साम्प्रदायिक दुराग्रह बने उध था। जनपद जगह जगह प्रवृत्ति विरोध का सामना करना पड़ा था। अन्तः प्रचार का कठिनायका धीर मन्त्रों परनी पत्नी थी। आवाय धारपुत्राधरी मन्त्राज ने उन सभी का धनने हल भ्रान्त क अवगत प्रमाण म धर्म जायति रा गन्तव्य किया। आप जित्तीय प्रतापगाला मन्त्रावृष्य थ। धारणा विगाल गिप्पगिधार था। पाँच सौ पदचानगी ताल आन प्रदान की। आपका वाच्य प्रसिद्ध सुगाक और विनाय गिप्प थ। पत्नीस प्रसिद्ध पन्थ प्रसिद्धा का गिप्प थ। गान सौ सहस्वा का दंड सम्पत्तवारी बनाया। मन्त्रावाओ ने आपका चरण म ननमन्त्रक हावर जपने जायन का धर्म माना।

जीजनमा जयमन्त्रा तथा कुणलका जाति महाप्रभावगाना मुरुधाना थ जा उचकाटि क समयो धीर जानो थ।

जायकी आगामुयादिना मातया की सख्या भा विपुल थी। उनम मन्त्रावना धारतनु बना मन्त्र था जिनका मात्र जायका विधान मान वाला था। चरितनायक व शक्ति मन पर सायक माना पिना न विज्ञा मुयाय्य कर क माय आया विधान कर रना वाला था पर तु राजनानि की परम्परा म पत्नी मन्त्रावागारी मन्त्रावृष्य स्पष्ट कह दिया था—म भक्ष म वाई अव पुत्र मरा पति न। न सक्ता। म विज्ञा का स्थिति मैं विवाह करना स्वीकार नहीं करूँगा। आतिर ग्यारह जय मन्त्रावा क साथ वह शक्ति हो गई था। उमा समय सत्तरह स्त्री पुत्रा न भा दीक्षा लगाकार का थी।

वास्तव म आवाय धीरधनायका ने जिनगान व उद्यान म मन्त्रावृष्य दास प्रदान किया है। थ जनसप की अमृत्य विमति थ। स्थानकवासी मन्त्रावृष्य की जन्मान यात्र प्रमुख महापुरुष थ। उनम मन्त्र उचकारा की समाज सभी विस्तृत नहीं कर सकता।

अन्तिम जिना म मूयदा १८८६ म पाये नगर म पणपण किया। नदीका जा सक्ता किम दायक स अथवा विगिट मान म आपन भिक्षु मन्त्रावाकार कर लिया था। थाली म पचारन की आपन मय मना का पात्र आकर मिलन का सूचना भिजवा था। स्थानीय सप दस जाकम्बिक विमचन की बाध जान कर चकित था। तान ताकत थ—न जान क्या घटना घटित होना था। उस रत्न्य का आवाय थी जानने ही थ।

आपका पाकर सत्ता और भक्तिया का आगमन प्रारंभ हो गया। गाइन से मन्त्रावृष्य रत्नकचररा भा जा पत्नी। माय कृणा मन्त्रावृष्य की जायन चतुर्विध सप म धर्म का आनन प्रदान किया। मन्त्र गतिदा का बतान का मन्त्र था। मन्त्र पात्र उठा। ताना का तन जय वर्षों तरा तव और निवन्त करन जने—अन्तगना। धर्मा यनगर नहीं है। जिना श्वमर का वाय।

मन्त्रावृष्य की मन्त्रा उन्नत जल सत्ता म रत्ना है। पूज्य की का मन्त्रा भी मुनेक के ममान अन्त्र था। उ पा सवार का सक्ता प्रवागिन कर दिया।

तन धीर समझा जायका का अमृत अन्तिम और मन्त्रावृष्य मायना वन्त्र की दूगरी और विधान म सप मेघ माना उमठ री था और वह जिनामुक्ति मयन म मयननर हाता जा रही थी। जन्म म माय मुचका मन्त्रावा क बिना सत्तर मन्त्रावा सत्तरा मन्त्रावृष्य और जनमय का मन्त्रावृष्य मय अन्त्र हो गया।

अन्तिम श्वमर म प्रणाम करन हूँ गिप्प का उतारा छनिस म ग था—

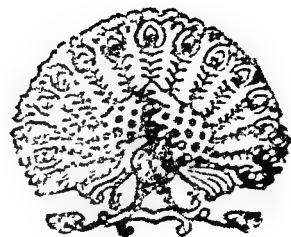
जय ! नि ता त क। वार प्रभु ने धर्म का उद्घोष करना। आत्मा म मयना-मुदा का निहार बहाना। मन्त्रावृष्य और धरीर अति थ है।



श्री बुधमलजी महाराज

ज्ञान भारिल्ल,

एम० ए०



स्वानुभवामी जैन मन्तो की परम्परा में स्वामी श्रीबुधमलजी महाराज का नाम उल्लेख में सदा आदर और श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाएगा। स्वामीजी महाराज एक आदर्श दयाली, नमस्वी, प्रभावशाली और अनानुसृत मन्त थे। आपका व्यक्तित्व अत्यन्त उच्च कोटि का था और आप साधुजीवन की सभ्य विनिष्कृतियों में सम्मिलित थे।

मन्तजीवन का प्रमुख लक्ष्य है—आग-द्वेष आदि रूपाओं को अद्विष्ट में परिवर्तित करना करके अतीतकामों को जागृत करना और जगत् के प्रपञ्च में अलिप्त रह कर आत्मस्वच्छ में निष्ठा प्राप्त करना। स्वामीजी की जीवनी का पर्यालोचन करने पर यही लक्ष्य स्पष्ट प्रतिभासित होने लगता है। दाम्पत्य में आप उच्च कोटि के रूपावलिज्जा थे और साधुचर्या में सदा निम्न रह कर अनामकभाव में विचरण करने में। अपनी निष्ठा का प्रसार करना या होना आपको अनीष्ट नहीं था। प्रसिद्धि की कामना में प्रयत्न ही नहीं करते थे। मानसम्मान की बात नहीं थी। फिर भी आपके सद्गुणों ने, आपके निर्मल चरित्र ने, आपकी सादगी और सात्विकता ने, आपकी तपोनिष्ठा और अनामसि ने आपको जो प्रतिष्ठा, प्रख्याति और प्रसिद्धि प्रदान की, वह विरले ही महापुरुषों को प्राप्त होती है।

स्वामीजी महाराज के जीवनकाल में जिनमें उनके सम्पर्क में आने का मौकाम प्राप्त हुआ, वे अल्प हूँ। जीवनपरन्तु स्वामीजी आत्मदण्डा का साथ उगलू का लक्षण करने लगे थे। जिनसे सम्पर्कमें आने के रूप में आने उत्तमपित्तारी को छोड़ कर आज भी वे परम्परा महान् उपकारक हैं।

स्वामीजी का जन्म सनपुर में हुआ था। आपके पिता श्रीहीनाराज जी छज्जे (देवान) तार्थीय जैन-वाल थे। यगोव्रता श्रीमती लम्बादेवी के उदर में आपका जन्म हुआ। वि० सन् १६२४ की श्रावणपूर्णिमा ११ को अर्थात् 'आवस्थान पर्व' के दिन आपने इस भूतल को पावन किया। आपके जन्मदिवस ने ही मानो आपके भावी जीवन की सूचना दे दी कि आवस्थान के दिन जन्म देने वाला यह महाभाग भिनु भविष्य में समार के सभी प्राणियों का रक्षक होगा। लोकोक्ति प्रसिद्ध है 'पूत के पाव पाएने में दोष जाने है।' अर्थात् आपका जन्म ने ही आपके भविष्य जीवन की सूचना मित्र जानी है। किन्तु आपके भावी जीवन की सूचना प्रकृति ने जन्म होने के साथ ही प्रदान कर दी। दाम्पत्य में प्रकृति के रहस्य इनमें निगूढ होने हैं कि उन्हें बड़े-बड़े सुवीजन भी नहीं समझ पाते।

विमते स्मृति की होगी कि आवस्थान के दिन जन्म ग्रहण करने वाला यह बालक पट्टाया में रक्षा प्रदान करने वाला बनेगा। सगर चौदह वर्ष बोलते ही जो रहस्य शिष्या हुआ था वह प्रकाश में आ गया। श्रीबुधमलजी के अल्प वयस में वैराग्य की उच्छाह तर्कों तरंगित होने लगी। समार का कोई भी प्रयत्न उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ नहीं हो सका। विरक्ति के बीज हृदय-क्षेत्र में पनपने लगे और वे ज्योति सुयोग्य पञ्च-प्रद्वंज की बात जोहने लगे। मौकाम में आपको विरक्तात्मा स्वामी श्रीमानमलजी महाराज का सान्निध्य प्राप्त हो गया। स्वामी मानमलजी महाराज उस समय बड़े तेजस्वी और ओजस्वी मन्त थे और उच्च श्रेणी के सत्समागम मन्तों में से थे। स्वामीजी के सत्समागम ने श्रीबुधमलजी को अपने जीवन की सही दिशा प्राप्त हुई। आपके विचारों में नूतन स्फूर्ति आई। जीवन का उच्चतर लक्ष्य निश्चित हो गया।

सत्त्वगान्धी पु. पों का सक्लर अन्त होता है। वि. सक्ल १६३६ म तब वष क पचात ही १५ वष की आयु म आपने भागवती जिन पीया अशीवार कर ली। आपके तैनामनारी का सौभाग्य पावर नगर का प्राप्ति हुआ था घमश्दि जीर गासन प्रभावना क बायीं म सन् अग्रसर रहा है।

स्वामी श्री मानमलजी महाराज पुष श्री रघनाथजी म० क सम्प्रदाय के एक रत्न थे। आपके विप्लव को अगाकार करके श्रीबुधमतजी महाराज सयमभावना म प्रवृत्त हुए जीर गान तथा चारित्र्य की आराधना करने लगे।

उन जिन विविध भाषाया के अध्ययन की अपेक्षा आत्ममा के और ऊर्ध्व मम का समस्त क गिए पायी के समान थाकडा क अध्ययन की विषय गहव यि जाता था। तन्नुसार आपन भी थोका के तथा जिनाममा के ज्ञान पर सन् जिया जीर उस समस्त क उद्देश्य से आकरन तथा पात्रिय का भी अध्ययन किया।

म प्रकार गान और चारित्र्य म सम्पन्न हाकर आप स्वगत के श्रयस म अपना समय धापन करने। कतमया के अनुसार विवरण करते हए आपने जन समाज का म जन उपकार किया। अपने जीवन्मन्त्रा म त आप जनता के सम उदात्त भाग्य उपस्थित करते हा थे सच्चना द्वारा भी उन्नापन ले थे। आपका प्रवचन सन् ही सामिक होता था। आताश के अतस्तुत सब पहुच कर उस हाग करता था। तममे अ भुन प्रभावगिन थी। इन विषयनामो के साथ आपन व्याख्याना की एक विषयना था—राचरना। जना मरी हकि क माय उत अवण करते थे। महुन स महुन और नीरस से नीरस विषय आ आपकी मनोन्म गी क वारण सरन गरम जीर हकिवर मन गाना था। जता अभी उबता नहीं था। हुआ जाता—आपक प्रवचन पीपुष का पाव करत हा रह।

आपक प्रवचना का प्रभाव तत्काल पडना सिद्ध होता था। आपकी दानान किन्ने हा लोवा क जीवन की मोड दिया। न जान कितने प्रवचनका का गुण्य पर नयाया। गगिन अघवार म डोहरें छाने वाग की न्य प्रकाश किलाया। भाषा आपकी सरल सुगोत्र राजस्थानी था। यमण परम्परा के गुला के कभी भाषा के प्रति किसी प्रकार का मस्त्व या आदर न थी रहा। उन्मन से व सन् मिन्तल का अनुकरण किया गान अनूठा बाग म भासा कीक गहु। जमण जिस प्र म वण सयागत उगी प्रण का भाषा का उन्मन जनाया और अधिक स अधिक जनता का कल्याण का मान मनवाया। स्वामी बुधमतजी म का प्रत्य विहारम्वल राजस्थान क। गीर म वारण आपकी प्रवचनभाषा भी राजस्थानी हा रहा। स्वामीजी न वर्याग गस्थान से बाग गुजरात गीर मधुवनप्रण नर भ्रमण किया था और वहा भी घम का उद्घाव किया था मगर आपना अधिकार समय राजस्थान म हा ध्यनात हुआ।

स्वामीजी का गानन सब जीर हाग का निम्न था। समय समय पर आप उपवास सन् तैना गाग करत ही रहते थे। आपन डकरीस बाग अगहा का और एर पक्ष तक की भी उपसत्तर्वा का। या आपका ममप्र जावन ही सयामय था। गय से बत भुन वेज की एक का चान्द तन पर रखत थे बाहे गितरात की कडवना म गी पडनी हा या घाग का तात हो। तन पर आपकी समता न थी। समय माधना म जिस प्रकार वह महायक बना रहे वस उनना हा मनावान के उमकी करत थे।

जाममा के अध्ययन अध्यापन के अनिरुति जाग छागमा की प्रतगिवा करके भी जनदया किया करत थे। आरती हगगिनि बहुत मन्त्र थी। आपक हाग गिनि आर गानना का प्रतया आज भी मोडू हैं जा आप की मानाराधना का तात म रणे हैं।

स्वामीजी प्रकृति से अभाव शीम्य और धा न थे। उत्तजना के प्रवया पर भा कभी उत्तजिन नहीं हात थे। भाषा का प्रयोग कम करते थे। आपकी भाषा नया मुन्वी हागा जिन मिन हागी और कडुना ता तम कभी आनी गी नगी। यहा वारण यि आरती बाधा म घटपन नी ज्ञानेवा और कसरत न थी। सचनमिद गान क म म नगी कयानि दूर दूर तक पक्ष म रणे था।





रत्नत्रय के समान आपके तीन शिष्य हुए—(१) श्रीजयवन्तमलजी, श्रीधूलचन्द्रजी और मरुधरकेसरी मुनि श्री मिश्रीमलजी म० ।

उनमें से श्रीजयवन्तमलजी म० तथा श्रीधूलचन्द्रजी म० आपकी विद्यमानता में ही स्वर्गवासी हो चुके थे ।

स्वामीजी महाराज ने ४३ वर्ष तक निर्दोष नियम का पालन किया । ६१ वर्ष की आयुपाई । वि० म० १९६५ की पीप कृष्णा प्रतिपद् के दिन कुरडाया (राजस्थान) में भौतिक शरीर का पतित्याग कर स्वर्गलोक के लिए प्रयाण किया । अन्तिम समय में पांच दिन का मथारा आया । जानना स्वर्गगत स्वानुभवों जैसा समाज ही एत गभीर क्षति थी । समाज का एक तेजस्वी नक्षत्र अस्त हो गया ।

स्वामीजी जैसे अपने गुरुदेव के प्रति अनन्य भक्ति रखते थे उसी प्रकार आपके मुनिपुत्र मन्मथकेसरीजी महाराज की आपके प्रति अप्रतिम आस्था, श्रद्धा और भक्ति थी । स्वर्गवास के समय मन्मथकेसरीजी म० ने ही अद्वितीय भाव में आपकी अन्तिम आराधना में सहयोग दिया ।

स्वामी बुधमलजी महाराज के प्रति जिस भाषा और किम शब्दावली में हम अपनी कृतज्ञता की भावना प्रकट करें ? उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक अपन व्यवहार और वचनों में द्वारा समाज का उपकार किया और मन्मथकेसरी जैसा ओजस्वी, तेजस्वी और धर्मस्वी उत्तराधिकारी तैयार कर अपने जीवन के पञ्चात् भी जन-समाज का महान् कल्याण किया ।

आपके जीवन की अनेक घटनाएँ श्रीमरुधरकेसरीजी म० के जीवनपरिचय के अन्तर्गत हो चुकी हैं, अतएव उनका पृथक् उल्लेख नहीं किया गया है ।

लौकाशाह • व्यक्तित्व ओर विचार

कुं लालचन्द्र नाहटा 'तरुण'



भस्मकण्ड—श्रीवत्सुधै म उत्पन्न है कि शक्ति न था महावीर स्वामी म पूछा—भगवन ! आपका निधान व समय आपका जन्म स्थान (उत्तरप्रांतगुनी) पर मरान हल भस्मकण्ड था या प्रमाद होगा ? भगवान न उत्तर दिया—॥ हल व हल वत्स्वरूप २ वष तक माघ माघिका व ७ य पूजा सम्मान म् हागा । अथान धम की अवन्ति हागी । जब भस्मकण्ड दूर हागा तभी सन्धे साध माधिका व पूजा सम्मान हागा ।

भगवान का भविष्यवाणी अक्षरान् ठीक निक्ली । दा गार वष तक धम की तमिद अवन्त त हूँ । यन्त्रि वाचन्धाव म सिद्धि सभाजन व श्रिय दूधुत्त प्रवन्त भी ॥ शिन्तु य व्यापक नगी हो सक वैवल माहित्य प्र म प्रन्त सि हूए ओर पुन गये । शै श्मर वष का अतिम गन्तव्य तब सा परिश्रमिया अत्यंत गभीर हा म् । भगवन् म निधियागार का वाचना हा गया । उनका आचार विचार गन्था ले भी निरुद्ध हा गये । धर गन्था म भी तर तर ह व आन्धर का प्रादुर्भाव ना गल । धम का मूल धला दिया गया और धम की लाग का ही धम मोना जाने लगा । धम व चमक श्रुत का प्रवृत्त ना गया । त्याग और वराग पर आधारित धम म विगमिता गीर जागर का पुन गग गया । तप श्रम जी सा ओ समय र स्थान पर परिश्रम और वास्तु विधाता का जाग हो गया । चत्वार का गिरा सवर्ग प्राप्त ना गया । प्रयत्न श्रिया र प्रतिश्रिया शैली है श्रम के वा श्रुत गार पुन व पदचान कृष्ण पत आता भी है । प्राविश एक दिन धम का सप उन्म होता है और पागुड का अग्रकार प् वृत्त हाता हो है । प्रवृत्ति व हसी अ ग नियमागुमार अनन्त म ज्ञ विचार निमिर अत्यंत घना हो गया तब लाकागाह कपी भास्कर का उन्म हुआ ।

जन्म और वाचकाल—राजस्थान के सिराहा राज्य म निरो म गगम १८ मान उत्तर म श्मरारा नामक एक छात्र सा गात्र है । पन्ने इस जन्मवाग जन्म अन्तर्वाग व नाम मे पुकारा जाता था । पन्ना गन्तानी म पन्ना नगर और गारार का केंद्र था । वतमान म प्राचीनकाव के सन्दर्भ भग्नावशेष स्तं गौरवगानी गतगत का स्मरण करीत हैं । दमा गाव का सप्रगिड धमपरायण मठ भेमाग वी धमपत्नी गगावर्मा की कुति म

१ ज स्मरण व ण समय भगव महावीरे जाव सवदुषवर्णाणे स रयाज च ण पुत्राए भावरासी नाम महागहे दो— वाससहस्रदिई सभगस भगवओ महावीरस जम्मवसत्त सक्ते । जप्पभिई च ण से पुत्राए भावरासी महागहे दो वाससहस्रदिई सभगस भगवओ महावीरस जम्मवसत्त सक्ते तप्पभिड च ण समणान निग्गवाण निग्गधीण य ने उणिए पूजा सव्वारे वप्पसई । जया ण से खुद्दए गाव जम्मवगत्ताओ विद्दवत्ते भविस्सई तया ण समणान निग्गवाण निग्गधीण य उदिए पूजा सव्वारे भविस्सई ।

—श्री वत्सुधै श्री जनादिवानरजी द्वारा संपादि पन् १५६ ६

२ लाकागाह के जन्मस्थान व विषय म कुछ मतभेद हैं यथा—

(१) दिगवर श्री रत्तन श्री स्वामी नन्दबाहु चरित्र पृ ६ पर लिखते हैं कि लौकाशाह का जन्म पाटन म हुआ था ।

(२) इन्हीं का अनुकरण करते हुए वि० स० १६२७ में हुए दि० श्री सुमतिकीर्तिजी ने भी जन्मस्थान पाटन ही बताया है ।

(३) लो० गच्छीय यति केशवजी २४ कडी का शिलोका में लिखते हैं—

‘इण कालई मोरट्ट धरा मई नागवेश तटिनी तट गामई
हरिचद श्रेष्टि तिहा वमई, मउघी वाई घरणी शील लतर ॥१०॥’

इन्होंने लोकाशाह का जन्मस्थान मौराट्ट का नागवेश ग्राम बताया है व माता पिता का नाम मउघी वाई व हरिचद सेठ बताया है ।

(४) कच्छी मुनि श्री नागेन्द्रजी —

एह जवसर पोमालिया गढ जातोर मजार,
ताउपत्र जीग्ण थया कुलगुन करे विचार ॥४०॥
लु को महतो तहा वने अक्षर नु दग्ग तान,
आगम लिखवा सूपिया लिपे शुद्ध सुविलास ॥४०॥

इसमें उनका जन्मस्थान जालोर बताया गया है ।

(५) इनके अतिरिक्त कुछ सम्माननीय लेख— श्री वा० मो० शाह, आचार्य श्री अमोलस श्रृंगिजी म० एव श्री सतवालजी उन्हें अहमदाबादवासी बताते हैं ।

(६) तपागच्छीय यति कातिविजय जी (स० १६३६) लिखते हैं—

—आ महात्मानो जन्म अरहटवाडा ना ओसवान गृहस्थ चौधरी अटङ्गना सेठ हेमानाईनों पवित्र पतिव्रतपरायण भार्या गगानी कुक्षि र्यो सवत १४८२ चौदा मो द्यामी ना कातिक शुद्ध पूनम ने दिवसे धयो । प्रभुवीर पट्टावली, पृष्ठ १६१

स्वामी मणिलाल जी म० ने स्वयं ने भी पट्टावली में उक्त मत का समर्थन किया है ।

(७) श्री मरुघरकेसरी मिश्रीमलजी म० सा० ने भी अरहटवाडा को ही लोकाशाह का जन्मस्थान माना है । धर्मवीर लोकाशाह पृष्ठ ११-१४

(८) सिरौही राज्य के अरहटवाडा ग्राम की चर्चा अभय जैन ग्यालय बीकानेर की स्वविरावली प्रति न ७५८८ पत्र ५ में भी हुई है, किन्तु वहां लोकाशाह को नहीं, नाणो जी को अरहटवाडावासी बताया है और उनकी दीक्षा का उल्लेख भी किया गया है—जिनवाणी वर्ष २४ अंक ६ एव पुष्पक १५ भाग २

इससे भी सिद्ध होता है कि लोकाशाह या लोकागच्छ के साथ अरहटवाडा का संबंध रहा है ।

उक्त न्तों के अनुसार लोकाशाह के जन्मस्थान के विषय में (१) पाटन (२) नागवेश (३) जालोर (४) अहमदाबाद (५) अरहटवाडा । पांच स्थानों का वर्णन मिलना है ।

जहां तक जालोर का प्रश्न है, श्री वा० मो० शाह को उपलब्ध कुछ पन्नों के अतिरिक्त किसी भी लोकागच्छीय अथवा विरोधी साहित्य में, किसी भी पट्टावली में, कहीं भी उसका उल्लेख नहीं पाया जाता है । यह संभव है कि लोकाशाह युवावस्था में कभी जालोर गये हों । वहां भी कुछ समय तक श्रुतसेवा की हो । अतः उन्हें जालोर का किसी लेखक ने लिख दिया हो । परंतु इस मत का समर्थन भी अन्य प्रमाणों से नहीं होता । इसी प्रकार नागवेश का समर्थन भी अन्यत्र कहीं नहीं मिलता । स्वयं लोकागच्छीय यति भानुचंद्रजी भी इसे सही नहीं मानते । पाटन अहमदाबाद का ही उपनाम था अतः पाटन और अहमदाबाद में कोई विरोध नहीं है । रहा अहमदाबाद, सो अहमदाबाद

विषय मन्त्र १४८२ की काविक पुष्पा शूणगा की पुत्र वात्स्यामया उपपद्यन्त नियम निगम तात्पर्यात् वा जन्म भ्रा ।

वात्स्या नाम गार्हपत्य रथा गया । गुर्वन पत्र व रजन पति की तरह वात्स्या रुद्धि को प्राप्त पात्र गया । पात्र वग की अवस्था म मानव को पाठगाल्य म प्रविष्ट कराया गया । वात्स्या पूर्व सत्परा व कारण प्रारम्भ स ही तीक्ष्ण मधारी वा । उसकी अंग धारणागित स अध्यापकगण भा उचित रत्न जात थ । अपनी विभगण बुद्ध व कारण वात्स्या रत्न समय म भी ध्यावार्तिन निगण म वारयन हा गया । गामात् एव गगावाई स्वय धमप्रमी थ । उनक धन वा वानावरण महारिना गुधिया एक धामिना स वाप्त था । गन गार्हप वर इसका गन्ता प्रभाव पत्र ।

तो लोकानाह का कमक्षेत्र भी था और धमक्षेत्र भी । उनके जीवन का अधिकांश हीर महत्वपूर्ण भाग अहमदाबाद में ही बीता था अन उह इसी दृष्टि स अहमदाबाद का मान लिया गया हो तो कोई वा तथ और आपत्ति नहीं । गम अतिरिक्त ज म ही अहमदाबाद म हुगा हो ऐसा कोई प्राचीन उत्कल उपलब्ध नहीं होता गता अहमदाबाद के विषय मे होता है । म० १८३६ म हुए काति विप्लवी व लेखन से भी इसकी पुष्टि होती है ।

- (६) अमी २ प्रकारात् पुत्रा ना सहस्रिमा ५८ वोल की भाषा भी राजस्थानी प्रभावित गुजराती है । यदि उनका जन्म सीरापुत्र गुजरात म हो होना तो उनकी भाषा गढ़ गुजराती होती यदि उनका जन्म और कमक्षेत्र दोनों राजस्थान म होते तो भाषा गढ़ राजस्थानी होती । परत भाषा सिरोही जसे दोनों राज्यों के सीमात पर स्थित जिलों की सी है जिससे उनका जन्मस्थान अहमदाबाद होना अधिक सम्भव लगता है । तथा भाषा म गुजराती प्रभाव स उनका विवरण तत्क अहमदाबाद रहना भी सिद्ध होता है ।

धी मधुकरकारी जो म ने भी जैतारण बरडाया जैतसमेर आदि भडारों व लोकानाह सबधी साहित्य व अवलोकन व वाचात अहमदाबाद की ही लोकानाह का जन्मस्थान माना है ।

उपराहत गानो मर्तो पर विचार करने व पञ्चान अहमदाबाद ही लोकानाह का जन्मस्थल सिद्ध होता है ।

१ गनी प्रकार ज मसकत व विषय म भी मानेद हैं यथा—

- (१) पत्ति मुनिधी सावण्यसमयजी (वि स १७६३)

सह उमणीस वरित यथा वणयसीस प्रसिद्ध ।

त्योर पद्यी लुक हई असापत लोण कट्ट ॥३॥

—सिद्धाधीणा

धी महावीर स्वामी स १६४५ पय वात् गयति वि स १६७५ म इहोने लोकानाह का जन्म बनाया है ।

- () मणिभी धीना उत्तुप्रनिरावरण यत्तीसी ध—

वीर जिनेतर मुचित यथा सह ओगणीस वरत जक यथा

वणयलीस अधि माजनई गायवाट वत्सई गायन ।

आप भी लोकानाह का जन्म उपरोक्त मतानुसार स १४७५ म मानने हैं ।

- (३) लोकानाहदीय यति वगवदी २८ वजी का गिलोहा मे—

पुत्र समुण ययो लनु हरिय गत चउद सत तिनर धवि ।

आपवा मत है कि लोकानाह का जन्म वि स १४७७ म हुआ था ।





प्रारम्भ में ही उनके मन्त्रार्थ निमंत्र, प्रवृत्ति प्रामिण्या की थी। सामाजिक प्रतिक्रमण स्वाध्याय गुरुवदन प्रवचनप्रकाश आदि का मन्त्रांग मिलते रहने में उनकी प्रामाणिक भावनाएँ प्रतिबिम्बित रहने लगी। लोचन्द्र की स्मरणशक्ति भी उनकी नीति थी कि एक बार सुना हुआ व्याख्यान उन्हें पूरा याद हो जाता था। उस प्रकाश कृष्ण ही बात में लोचन्द्र ने अपना विशेष संपूर्ण कर दिया।

गृहस्थ जीवन जब लोचन्द्र विमोह हुए तो इमाणाह ने अपने तारागुरु का उत्तरदायित्व लोचन्द्र को सौंप दिया। अतोप वृत्ति व्यापनीति, मन्थना, प्रामाणिकता एवं उदारता ने लोचन्द्र का काग्रेसी बन गया और अधिकाधिक विस्तृत होना गया, उनकी क्रीति चांगे और फीट गयी। लोचन्द्र वात्सल्य, तपस्वीभूत एवं भाषणमाधुर्य ने प्राज्ञों का मन जीत लेने थे। लोग उन्हें प्रेम से लोकाणाह कहने लगे। उन्हें अपने व्यासों के निमित्त दूर-दूर तक जाना पड़ता था। एक बार जब वे मिनेही गये तो वहाँ के नगरपाल जापदजी आह में परिचय हुए। आठवने आह मानव-मन के पारंगती थे। वे लोकाणाह की दुष्प्राप्त बुद्धि और नेत्रस्थिता ने अपना प्रभावित हुए। दूसरे ही दिन वे अग्रहृद्वाटा आये और अपनी गन्धा मृदंगना की मगाई लोकाणाह के साथ लगे ही वहाँ कुछ समय पञ्चान् विवाह भी हो गया। विवाह के तीन मास बाद लोकाणाह के पुत्र हुआ जिसका नाम पूनमचन्द्र रखा गया। पौत्र प्राप्ति के पञ्चान् हेमाणाह और गगावाई निवृत्तिमय जीवन व्यतीत करने लगे।

अहमदाबाद प्रवास—कुछ समय पञ्चान् उनके माता पिता का स्वर्गवास हो गया। उनकी समय अनादृष्टि आदि कारणों ने अनाह की स्थिति भी उत्पन्न हो गयी, एक सन्तकालीन छाटे २ राज्यों के आगम। वहाँ के राज्य सौरी, टकैनी आदि में वहाँ का जनजीवन भी अमुरक्षित हो गया। अतः लोकाणाह परिवार सहित अहमदाबाद आकर बस गये और वहाँ पर जवाहरान का व्यापार प्रारम्भ किया।

त्रिदशम प्रज्ञा के धनी तो वे ही लोकाणाह, स्वल्प समय में ही जवाहरान के व्यापार में पुरस्स में वे पारंगत हो गये। एक बार मुहम्मदशाह बादशाह के दरबार में मूरत का एक जीहरी दा मोती लेकर आया जिसकी पत्थर के लिये बादशाह ने नगर के सभी प्रमुख जीहरीयों को बुलाया। सभी ने दांतों का गच्चा और मृत्पवान बनाया किन्तु

(४) लोकागच्छीय यति नानुचंद (वि० स० १४७८) द्वाप्रमं चोपाड मे—

“चौदस्य व्यामी वडसालई वद चौदम नाम तुको राउई।

आठ वरिसनी तुको ययो ना दुगर परलोऊई गयो ॥८॥”

ये लोकाणाह का जन्म स० १४८२ मानते हैं।

(५) तपागच्छीय यति कातिविजय जी (स० १६३६)

‘आ महात्मानो जन्म अरहृदयाजाना ओमवाल गृहस्थ चौधरी अटन्ता सेठ हेमाभाई नी पवित्र पतिव्रतपरायण नार्या गगा वाई नी कुक्षि नी मवत १४८२ चौदा लो व्यामी ना कार्तिक शुद्ध पूनम ने दिवने ययो।”

ये भी लोकाणाह का जन्म स० १४८२ मानते हैं।

(६) इनके अनिरुधित लोकाणाह के जीवन पर विविष्ट प्रकाश डालने वाले श्री सनवालजी एवं श्री न्वामी मणिलालजी आदि भी उनकी समय मवत १४८२ ही स्थिर करने हैं।

हमें भी यही मत उपयुक्त लगता है, कारण यति नानुचन्द्रजी लोकाणाह के ही अनुयायी थे और उनके कुछ समय (८० वर्ष) बाद ही उन्होंने लोकाणाह का चरित्र लिखा है, तथा यति कातिविजय जी ने यही लिखा है।

श्री मतदानजी द्वारा लिखित ‘आन्तिनो युगसृष्टा’ एवं श्री मन्दरकेमरीजी द्वारा लिखित ‘धर्मवीर लोकाणाह’ के आधार पर।



इधर मुहम्मदशाह बादशाह को विपप्रयोग में मार दिया गया था। इसकी लोकाशाह पर तीव्र प्रतिनिध्या हुई। पहले ही वे जल-कमलवत् जीवन तो बिता ही रहे थे, अब उन्होंने नीकरी त्याग कर नये बादशाह कुतुबशाह द्वारा दिये गये बड़े-बड़े भौतिक प्रलोभनों को अस्वीकार कर निवृत्तमग जीवन बिताने का निश्चय किया। इसके बाद मिल गया ज्ञानजी यति का सयोग। ज्ञानजी यति ने उपाश्रय में लोकाशाह के समथ समस्त आगमों की प्रतिलिपि का प्रस्ताव किया। लोकाशाह को तो मुहमागी मुगद मिली, उन्होंने यतिश्री का प्रस्ताव तुरत स्वीकार कर लिया। ग्राम्यो तो वे दो दो प्रतिलिपियां करने लगे—एक अपने लिये, एक यतिश्री के लिये। अन्य लेखका का भी सहयोग लिया। इस प्रकार उनको कई वर्षों तक शस्त्रों के चिन्तन-मनन और स्वाध्याय का अवसर मिला। नतत नाथनों में स्नान कर उनका अध्ययन निरख गया। उनके जीवन का पाला ज्ञान के सोमरग ने परिपूर्ण हो छत्रकने लगा।

लोकाशाह ने अपने नाथना-शिविर में बाहर की ओर देवा-चारों ओर धर्म के नाम पर जैतानियत का साम्राज्य छाया हुआ था। उनकी नाथना विद्रोही हो उठी। उस समय नन्मक ग्रह का प्रभाव भी समाप्त हो रहा था। एक दिन उन्हें ऐसा आभास हुआ मानो कोई कह रहा हो—ओ महान क्रातिनाथ! उठ, उठ। निराश होने का कोई कारण नहीं है, शिथिलाचारियों के पापों का घडा भर गया है, उसे फोड़ दे अब समय आ गया है। ऐसी अनन्वित नुनते ही उनके दिल में नया उत्साह, नयी चेतना, नयी ज्योति जागृत हो गयी।

क्रातिनाथ—अब लोकाशाह ने प्रवचन देना प्रारंभ कर दिया। प्रवचन क्या थे क्रातिनाथ थे। उन्होंने कहा अबे होकर जैतानियत के पीछे दौड़ने वाला। आखे खोल कर देखो। किसी भी विचार को किसी भी पथ को बुद्धि की कसीटी पर कम कर ही ग्रहण करो। जहा हिमा है वहा धर्म नहीं हो सकना। आगमशास्त्र में मूर्तिपूजा का विधान कही नहीं है। ग्राम्यो के पठन-पाठन का सब को अग्रिहार है। रुडियो और अवविश्वानों का नोडना जैनत्व है। सच्चा धर्म आडवरयुक्त क्रियाकांडों में नहीं किन्तु आन्तरिक गुणों के विकास में है। वर्तमान यनियों का आचार विचार निकृष्ट, हीन, गया गुजरा एव आगमविरुद्ध है। इन मुख्य मुख्य शीर्षकों की व्याख्या जब लोकाशाह विभिन्न नयनिक्षेपो, आगमप्रमाणों, युक्तियों, तर्कों, एव हेतु-दृष्टान्तों के साथ करते तो जनता अत्यन्त प्रभावित होती थी।

अधविश्वान की उस अवेगी दुनिया में लोकाशाह के बुद्धिवाद की गर्जना प्रलपकातीन विजली की तरह कोध गयी। जनता चौकी, स्वार्थाव धर्माधिकारी घबराए। उन्होंने देखा उनके दुर्धप दुर्ग में एक नर-नाहर वही से आ घुसा है और उनके गुरुडम के गड को दीवारों उसकी दहाड में डगमगा रही है। इमने तत्कालीन स्थितियों में मगदद प्रारंभ हो गयी। पुरातन पथी कठमुल्लों के खेम में खलवली मच गयी। उन्होंने अणहलपुर पाटन के प्रभावशाली सठ श्री लखमसी शाह को लोकाशाह को समझाने-बुझाने भेजा। लखमसी शाह को पहले लोकाशाह के विरुद्ध बूब वरगलाकर एव तकगस्त्र से मज्जित कर भेजा। जब लखमसी शाह आये तो लोकाशाह स्वाध्याय में तल्लीन थे।

दोनों के बीच मूर्तिपूजा आदि विषयों पर लम्बी चर्चा हुई। लोकाशाह ने आगम प्रमाणों से अपने विचारों को प्रमाणित किया। उनकी सबल युक्तियां सुन कर लखमसी अत्यन्त प्रभावित हुए। तत्पश्चात् लखमसी शाह लोकाशाह के अनुयायी हो गये और दोनों ने मिल कर गुड जैनधर्म का मफल प्रचार किया।

१ लुकइ वात प्रकासी इति, तेहुनु सीस हुइ लखमसी।

तिणई बोल जयाप्या घणा, ते सधला जिनशासन तथा ॥११॥

लावण्यसमय कृत निद्रात चौपाई (स० १५४३)

(क) तेहवई शिष्य मिलई लखमसी, तेहनी बुद्धि ही आयी रिवसी।

टालई जिन प्रतिमा नई मान दया दया करि टालई दान ॥३॥

(छरतरगच्छीय उपाध्याय कमलसयग कृत सिद्धांतसारोद्धार चौपाई)

घातप्रत्याघात—“आत्मोन्मत्तं वा प्रसारं प्रवृत्तं सर्वं मज्जन् वसन्ते गता सा ब्रुह्मणा गीर्वाणतया न उतस्य
प्रतिवा—विद्या विन्त्वा लाङ्कायां न आश्रमं प्रमाणां पश्यन्ति यथा स सर्वदा विरमन्ति नरिणा । ब्रुह्मन्मन उत ममयं बी
भावा मृदुनिय—

ਪ੍ਰਸ਼ਨ ੧—ਤੂੰ ਦਫਾਇੰ ਧਮ ਸੁ ਚਾਰਿਖੀਤ ਨੀਯੋ ਕਾਫ਼ ਤਰਾਇ ?

होना चाहिये—जुत नवी उत्तर है धम हूँ तउ यह धर्मसि व उत्तर है ।

[illegible][illegible]

अन्तिम शक्तिशाली मन्त्राणां वृत्तिः—उक्तानि चतुर्वर्णानि । वनवाग्नाम् । मायाम् । अन्तः प्रमाणवद् । पितृनामा । गुरुणा । त्रैलोक्याणां स्वामी । अथ गान्धर्वः ।

- (મ) મયમતી તં તિહીં લઈં જારમારા થા તુ જા મો થવા સદ્યારો ।
અમારાં રાત્રિમાં ઉપરેજ જગો થવા ઘમ દુઈં સદ્યો થારો ॥૧॥
સોંજામરુપીય થતિ યાનુચડ જૂત દયાપમ ધોઈંઈ ।
- (ગ) જિવ મોગઈં સાથકો ઘામ જામદાર યો સલમગો માય ।
તુ જા મુજ મો ધરીં ઉપરેજ ઘમ પસાર ઓ દેખ વિરેજ ॥૧૬॥
(સોજમગામ જગમ કાવિ જૂત સોંજામઃહ મો મિયઃકો)
- (ઘ) તમ અનુઈં જડમો તામમીઈં જિવર લખો તોગ સાપો મીઈં ।
મડાઈં મીંપડ મિડીંય મના મપાર મગમ ॥ ૧૧
- (મુનિ થોદા જૂત અલગ્નિરાજન ઘમમી) ।

1

25

अहिमा के अवतार, मृत्यु के पुत्राग्री, ज्ञान के देवता, गति के सुगमपुत्रा अमप्राण श्री लोकायाह मम के दीवानो द्वारा अवत्रिश्वाम की वत्रिश्वादी पर वत्रिश्वादी कर दिये गये । प्रत्येक महामानव की—चाहे ईसा हो या मुक्तान मीरा हो या गांधी प्रतिनिष्ठावादी ठोग ऐसी ही गति किया करते हैं । किन्तु हमने उनका उद्देश्य पूरा नहीं होता ।

— लो० गच्छीय यति भानुचद्रहत दयाधर्मचौपाई

३ 'धर्मवीर लोकाशाह' (म० के० श्री मिश्रीमलजी म०) पृष्ठ ५८

४ धर्मदीन लोकोशाह

लोकसाह ने अपने मन के समयेन मे जिन् मुनियों को जागमप्रमाणों पर टीकाश्री आदि के लक्ष्य पाठों को उल्लिखित किया है उनमें उनके पाण्डित्य, अद्भुत तर्कशक्ति एवं प्राकृतिक भाषाभाषा पर उनके अधिकार एवं उनके गभीर गान्धर्वज्ञान का पता चलता है।

इही मुन्यमानों के प्रभाव की वान मो कुछ व्यक्तियाँ हैं जहाँ मुनिपूजा का विरोध कीमती है वही उनको सम्मान नजर आने लगते हैं। परन्तु यह उनका दृष्टिकोण श्री मतिविभ्रम ही है।

लोकसाह के पास मूर्तिपूजा के विरोध में गहन चिन्ता, तबल आशा और प्रबल मुक्ति का भी विचार उनके विरोधियों ने न बन पड़ा। उनके मद्भावे में यह आशय, आशयतन्त्रियों के आशय का प्रतीक बनकर रह गया है।

हमारा कर्तव्य—लोकसाह ने जिस अद्वितीय अनुपम शक्ति का नाप किया, हमारा कर्तव्य है कि हम उस शक्ति की मज्जा को जलाये रखें। उन्होंने जिन कठिनों का, वृत्तों का विरोध किया यदि वे हम से भी हम उनको दूर करें। श्रीमन्नवणिया जी उनके विषय में एक महत्वपूर्ण पुति की प्रकाश में आते हैं कि उनके लिए एक सम्मान है। अन्य विद्वानों को भी लोकसाह के जीवन एवं साहित्य के विषय में अधिक मोह-मोह करना चाहिये ताकि हम अधिक प्रकाश का प्राप्त कर सकें।



द्वितीय खण्ड



- धर्म
- दर्शन
- अध्यात्म

धर्मतत्त्व का विश्लेषण

प० चैनसुखदास जैन न्यायतीर्थ,

आचार्य दि० जन शास्त्रत बल्लि जयपुर



भारतीय बाइबल म धर्म धर्म के व्यवहार में काफी स्थान प्राप्त करता है। यह कहा नहीं है ? आध्यात्मिक और दार्शनिक मान्यता में तो वे आनन्दान्त हैं ही। हिन्दु आदर्श की बात तो यह है कि उपातिष्ठत आध्यात्मिक आनि विद्या का विभाग म भी विभिन्न विभाग रूप में बहुत उच्चता पड़ा है। उपातिष्ठत आध्यात्मिक म प्रतिबुद्ध पड़ा है। मुर धर्म का निष्पन्न करने का यह विभिन्न धार्मिक क्रियाकारण का वर्णन है। इसी तरह आध्यात्मिक में भा रागा को दूर करने का निष्पन्न धार्मिक विधि विद्या का आश्रय लिया गया है। राजनाति भी अनेक बार धर्म का आधार के बिना नहीं चलता। क्योंकि उनमें भी कुछ म विज्ञान पान के हेतु मन्त्रों की साधनाओं के विधानों की कमी नहीं है। इस तरह धर्म का प्रभाव अथवा आकाश हम हर जगह हमारे का मित्रता है।

धर्म नाम का अर्थ और प्रयोग

अमरकोशकार धर्म नाम के कई अर्थ करते हैं। उन्होंने इसका अर्थ भी स्थापित किया है। पुण्यवाचक धर्म धर्म को वे धर्म और नामधेय मानते हैं।^१ उन्होंने धर्म का अर्थ पुण्य यमराज या स्वभाव आचार और सामर्थ्य का चीनकाता माना है।^२ कि वलाचन कोष के वलाचन आचार धीमे^३ पुण्य या स्वभाव उपमा यमराज आचार वलाचन यम या धर्म अर्थात् और सामर्थ्य का चीने वाला धर्म नाम का अर्थ करते हैं। इनमें पुण्यवाची नाम धर्म और नामधेय एक अवगति धर्म है। यन्त्रों में भी धर्म धर्म का अर्थ नामधेय धर्म म है। इस प्रकार धर्म नाम के अनन्त अर्थ होते हुए भी हम यों उन धर्म नाम प्रयोग हैं, जिसका अर्थ है स्वभाव तथा मनुष्य का आचरण।^४ अर्थ और यन्त्रों म इस नाम का कई स्थानों पर प्रयोग मिलता है। ईशावास्योपनिषद्^५ अमरकोशोपनिषद्^६

१ इत्यादि धर्ममस्त्रिधा पुण्यधर्मिण मुक्त सव । अमरकोश प्र० वाक्य २४

२ धर्मो पुण्यधर्म-पापस्वभावाचारसोमया ।—अमरकोश ततोय वाक्य इतोय १३६

३ धर्म इत्यादिप्रधान पुण्ये धर्मो धर्मस्वभावयो ।

उपमायां यमाकारे वेदांते पि धर्मोपनिषद् ॥ १ ॥

याने याने उद्दिष्टायां सोमये य वदधिमत् ।—विश्वकोषचरकोष मात द्वितीय

४ हिरण्यमेव कात्रण शतस्योपनिषद् मुत्तम ।

शतव पुनःप्रापयन्तु शतस्योपनिषद् इष्टये ॥ १५ ॥—ईशावास्योपनिषद्

५ ओं आपायां मु समायाति काव नामकल धीमन्मयी वनमिन्द्रियाणि च सर्वाणि । शत बहुषोपनिषद् मात इन्द्र निराहुर्वा मा मा बहु निराहरोत अनिराहणमस्तनिराहणं यन्त्रु । तस्माधनि निरत य उपनिषद् धामाते मयि सन्तु मे मयि सन्तु ।—इशावास्योपनिषद्



कठोपनिषद्^१ और श्वेताश्वतरोपनिषद्^२ आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में इसका अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलेगा। उन ग्रन्थों में भवित के अर्थ में भी धर्म शब्द आया है। मीमांसा आदि सभी दर्शनमूल्यों में इसका बहुरूप से प्रयोग हुआ है। धर्मसूत्रों और स्मृतिग्रन्थों का तो प्रधानतया विषय यही है। समाज, महाभारत और गीता तो उनके अन्यत्र प्रभावित हैं ही। जैन और बौद्ध साहित्य भी इस शब्द के व्यवहार में भरा पड़ा है। कहना यह है कि समूचा भारतीय साहित्य धर्म तत्व के प्रतिपादन, इसकी विभिन्न व्याख्याओं और विविध परिभाषाओं में भरा पड़ा है।

धर्म की आवश्यकता कब और क्यों हुई ?

कोई समय था जब मनुष्य में जिज्ञासा का उदय नहीं था। पशुओं की तरह उसका जीवन भी मर्यादित नहीं था। उसकी उच्छ्रायें अत्यन्त सीमित थी और प्रकृति ही उन्हें स्वयं पूर्ण कर देती थी। लोगों का तब तक उपासी नहीं स्थिति रही, किन्तु युगपरिवर्तन हुआ और मनुष्य की उस स्थिति ने पड़टा दिया। पहले तब वर्तमान ही में तन्मय था। न उसे भविष्य की चिन्ता थी और न मृत्यु का विचार। जब वह अपने अपने कर्तव्य के विषय में भी सोचने लगा। उसकी जिज्ञासा बढ़ने लगी, प्रकृति भी पहले की तरह उसके अनुकूल नहीं रही, जोखिम भविष्य की चिन्ता ने उसमें सग्रह की भावना भी उत्पन्न कर दी और उसके जीवन में मर्यादा का जन्म हुआ। जीवन में अनेक प्रभाव उसे पड़ने लगे और इन प्रभावों की पूर्ति को ही वह मानव-जीवन का उद्देश्य मानने लगा। उसके सामने जीवन की मुश्किलों का प्रश्न तो था ही, जिसे भारतीय मनोविदों ने 'काम' कहा है, किन्तु उसने भी अधिा महत्त्वपूर्ण प्रश्न अर्थ, अर्थात् धन का था। बहुत दिनों तक अकेला काम ही पुरुष का प्रयोजन बना रहा। अब धन भी उसके साथ हो गया और इसी तरह काफी अंश तक इन दो पुरुषार्थों के बीच यह मनुष्य दौलत रहा। तब तब धर्म की उत्पत्ति नहीं हुई थी, पर अब उसे धर्म की आवश्यकता का भी अनुभव होने लगा। अर्थात् की पूर्ति के लिये जो मर्यादा होगी उनके लिये हिंसा, झूठ आदि का आश्रय लेना पड़ा। किन्तु ये चीजें सभी के लिये प्रतिफल नहीं, इसलिए उसका निषेध करना जरूरी माना गया और यही मनुष्य का धर्मतत्व रहा।

धर्म की विविध परिभाषाएँ और व्याख्याएँ

धर्म की उत्पत्ति के बाद विभिन्न विद्वानों ने उसकी विभिन्न व्याख्याएँ की। पूर्वमीमांसादर्शन के निर्माता महर्षि जैमिनि ने अपने द्वादशाध्यात्मक मीमांसादर्शन में धर्म-जिज्ञासा का सबसे अधिक महत्त्व दिया और अपने दर्शनमूल्य को 'अर्थात् धर्मजिज्ञासा' इन सूत्रों ने प्रारम्भ किया। वे धर्म का लक्षण करने लगे उसने अपने सूत्रों में कहते हैं कि "चोदनालक्षणायां धर्मः"। इस लक्षण ने ज्ञात होता है कि वे धर्म के विषय में एक मात्र वेद को ही प्रमाण मानते हैं। "वेदाद् धर्मो हि निर्वर्णः" इत्यादि वाक्य भी इसी बात का अनुमोदन करते हैं। मनुस्मृति भी "वेदोऽग्रिष्ठो धर्ममूलम्" कहकर इसका समर्थन करती है। यद्यपि वह वेद जानने वालों को स्मृति, शीघ्र और आचार तो भी धर्म कहती हैं। धर्म का यह लक्षण बिल्कुल स्पष्ट है। किन्तु वैजैणिकसूत्रकार महर्षि कणाद अपने वैजैणिक सूत्रग्रन्थ में धर्म का लक्षण इसने अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "यतोऽनुदयान् प्रेयसनिद्रिः प धर्मः" अर्थात् जिससे लोभानुदय और मुक्ति की प्राप्ति हो वह धर्म है। जैमिनि की तरह यह भी धर्म को इस महत्त्व नहीं देते और अपने वैजैणिक-दर्शन की रचना केवल धर्म की व्याख्या करने के उद्देश्य में ही करते हैं। सभी तो उस दर्शन का पहला मूल्य अर्थात् धर्म व्याख्यास्याम' के रूप में प्रकट होता है। इन दोनों ही दर्शनों में धर्म की जिज्ञासा अथवा व्याख्या को अमाधारण महत्त्व दिया गया है। आचार्य कणाद ने धर्म की व्याख्या अधिक व्यापक और मनोबलात् की है। साथ ही आत्मा के

१ अन्यत्र धर्मद्वयत्राधर्मद्वयत्राम्मात्कृतात् ।

अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥—कठोपनिषद्

२ स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्च परिवर्ततेऽयम् ।

धर्मविहः पापनुदः भगेशः ज्ञात्वात्मस्यममृतं विश्वधाम ॥ ६ ॥

परम पुण्याय मांग वा आर तो नवका लय है । मर वियरान अमिनि मोह वा अतिव नो हवीबार नरो करत मद्यति व पञ्चो व । अवय मावने है । विर भा मीयामाकार वा चरम पुण्याय मुनि नो अतिव हय है और व केवल मर ए प्रार होता है । हय दान में य धम वा परायवाची धन गया है । विवना म हय वग वा हय दादा दाता । निया है उता मर व नित्यन व प्रथता मरि ध्याम न । दा वा वे । यह वान नो है वि दान अने वानमूत्र म धम दा वा प्रयेव न विवा हा वि व धम की पगा प्रप न । धिर मरन दन है और उनने दान वा प्रयोजन धमशान्या नो अतिव वदतिनामा है । वर दान धम और वाना म ने नही गाना और यो कारण है वि वान न नाना म धम न दा परायिताना भाव निया गया है ।

[illegible]

ते त भुवना स्वर्गसाध विनात
 क्षीणे पुण्ये मयनोऽ विगति ।
 तव प्रदीपमनुप्रपन्ना ,
 जनागण जामहामा सन्ते ॥

[illegible]

स्वातन्त्र्य मयदीन सम आ की स्वाध्या गती मित्या विर मो धर्म आ प्रयोग यो मित्या है ।
ममता का उद्भव स्वामी को स्वयं आत्मा की (नर) विद्या के लक्ष्य का समझना या सम की स्वाध्या करना
नहीं । ममत्व मम और हमारे स्वान आ विद्या । ममत्व मम स्वान-स्वाध्या पर मम आ प्रयोग करना वह
हमारे अर्थ म समझिय है ।

भाजनं योगं यत्तु न वदं स्थानां पर धमं गच्छति तत्र प्रयोग इति ॥ ३॥ इति ह्यग्न्यायां वा लभ्य धमं मन्त्रं त्री
 ध्यानां चरन्तं न । तस्मिन् योगस्य वा सम्यग्ज्ञानं है । यत्तु द्रुष्टव्यं योगं त्री है । यमं वा । तस्मिन् । यमं वा । तस्मिन्
 यत्तु न तस्मात्तस्मात्तु है त्रि वागवतारं तत्र धामं वा अर्धं धमं गच्छति वा तत्र ध्यायमानः । तस्मिन् त्रिधा ।

[illegible]

१ धर्मज्ञ गमनगुणार्थं गमनमथक्ताह नदभ्यधर्मैश्च ।

मानेन चान्तरां विषयवैविध्यं ह्यपि ।—सां पञ्चदश ४४



है, वह धर्म है। इसके बाद वे कहते हैं कि —“मद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः” और नीर्यनारी ने मन्त्री श्रद्धा, मन्त्रे ज्ञान और मन्त्रे चरित्र को ही धर्म कहा है। इनमें भी पढ़ने जैनों के मशान् आचार्य गुन्दकुन्द वस्तु (आत्मा) के स्वभाव जो ही धर्म कहते हैं। ‘धम्मो बन्धुमश्रयो’। अर्थात् आत्मादि पदार्थों का स्वभाव ही धर्म है। जैनों के प्राचीन सूत्रों में धर्म के विषय में लिखा है कि —

धम्मो मगलमुक्खिद्ध अहिंसा सज्जमो तवो ।

देवा वि त नमसति जस्म धम्मो मया मणो ॥

अर्थात् धर्म ही उत्कृष्ट मगल है। जिसका मन उस धर्म में उगा रहता है, देव भी उदा उसे प्रणाम करने हैं।

बौद्धधर्म के ‘धम्मपद’ नामक ग्रन्थ में धर्म के नाना रूपों का वर्णन किया गया है। उसमें सबसे अधिक मनुष्य के आचरण पर जोर दिया गया है। इसमें धर्मक वर्ण आदि २२ वर्णों में धर्मतत्त्व का विस्तृत विवेचन है। बौद्ध साहित्य में धर्म की कई त्राम परिभाषा या लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हुआ अपितु वहाँ उसके विभिन्न रूपों का विस्तृत वर्णन है। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि —

नहि वेरेन वेरानि मम्मती ध कदाचन ।

अवेरेन च मम्मन्ति एते धम्मो मनातनो ॥

अर्थात् वैर से वैर नहीं उत्पन्न होता, किन्तु अवैर से वैर का नाश होता है। यही मनातन धर्म है।

धर्मों की विभिन्नता

दुनिया में इस समय करीब आठ सौ धर्म हैं। इनमें पारस धर्म ऐतिहासिकता, साहित्य और मन्त्रा आदि अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। चाहे कुछ भी हो, धर्मों की इस विभिन्नता में भी मनुष्य में विश्वास और सहृदयता हो तो समन्वय और एकता का हृदयगत कर सर्वधर्मसमभाव के तत्त्व को समझा जा सकता है। जो भी इनमें कोई शक नहीं है कि धर्मों की विभिन्नताओं ने धर्म के विषय में मानव के मन में व्यामोह पैदा कर दिया है और धर्मतत्त्व विवादों का कारण बन गया है। किसी धर्मतत्त्व के गवेषी विद्वान् ने ठीक ही कहा है—

श्रुतिविभिन्ना स्मृतिविभिन्ना,

नैको मुनिर्यस्य वच प्रमाणम् ।

धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायाम्,

महाजनो येन गत न पन्था ।

धर्मतत्त्व के प्रतिपादन के विषय में श्रुति अर्थात् वेद एकमत नहीं है। वह विभिन्नताओं में भरी पड़ी है। और यही वान स्मृतियों के विषय में भी है। कोई एक मुनि नहीं है जिसका वचन प्रमाण माना जाय। इसलिए यही कहना ठीक है कि धर्मतत्त्व गुहा में छिपा हुआ है। इस विषय में वही रास्ता पकड़ना चाहिए जिसमें महाजन (महापुरुष) गया हो।

कठोपनिषद्^१ की द्वितीय बल्ली के बाह्ये पद और मुण्डकोपनिषद्^२ के प्रथम उण्ड के आठवें सूक्त एवं

१ त इवर्षा गूढमनुप्रविष्ट गुहाहित गह्वरेष्ठ पुराणम् ।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देव मत्वा धीरो हर्षशोको जहाति ॥ १२ ॥

—कठोपनिषद्, द्वितीय बल्ली

२ सप्त प्राणा प्रभवन्ति तस्मात् सप्ताक्षिप नीमघ सप्त होमा ।

सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिता सप्त नप्त ॥ ८ ॥

—मुण्डकोपनिषद्, प्रथमखण्ड

स्वेताश्वतारापनिषद्^१ का अध्ययन में यह भी पता चलता है कि ऊपर के वचन में गुहा का अर्थ हृदय है। धर्म का सम्बन्ध भी हृदय से ही है और वड़े लोग ने धर्म का प्राप्ति करने का ऋण अपने हृदय की ही टटोला है तथा उमी का द्वारा उस प्राप्ति करने की चेष्टा करते के सफल हुये हैं। क्या सहानुभूति परतु छात्रानरता आदि धर्म का लक्षण भी हृदय से ही सम्बन्ध रखते हैं। सबसे हम कह सकते हैं कि चाहे धृति क्षणित और विभिन्न मुनियों का वचना में कितना हो विरोध क्यों न हो उसका समानता और पाना उतना निपुण नहीं है जितना मापारजन्य पाना जाता है।

धर्म जीवन के लिए अनिवार्य है

धर्म का विषय में चाहे जितने ही मतभेद क्यों न हो फिर भी वह जीवन के लिये अनिवार्य है। धर्म का बिना मानवजाति की कोई भीमत नहीं है। किन्तु अवश्य ही उस धर्म का अर्थ है नित्यता और सत्ताचार। प्राण रहित शरीर को तरह उस जीवन का कोई मूल्य नहीं है जिसमें धर्म अपना नित्यता नहीं रहनी। अगर जीवन में धर्म का प्रमाण न हो तो वह अर्थ है और वह अपना लिय भी भारम्बन्ध है एवं दूसरे का लिये भी। मनुष्य में मनुष्य का निष्ठागत का अर्थ धर्म की ही है। धर्म ही मनुष्य में सामाजिकता लाता है किन्तु बोधे त्रिपाठा^२ का नाम स जिस धर्म का बहुत से लोग चिन्तित करते हैं उसे धर्म मानना एक आत्मवचना है और वह मनुष्य को सभी आत्मविकृता की ओर नहीं ल जा सकता।

धर्म मनुष्य का दबो दृष्टि है। वह दृष्टि ही उसमें दया दान गताव करणा अन्तर्भाव दामा अहिंसा आदि अनेक गुणों को उत्पन्न करती है। जितने जितने आत्मा में जहाँ जहाँ धर्म की प्रतिष्ठा है वहाँ-वहाँ धार्मिक गुण और बल का विलास देखने को मिलेगा।

धर्म का प्रस्ताव म एव प्राधान्य जन महति आचार्य गुणमन्त्र कहते हैं -

धर्मो रक्षते मर्त्यं याचते सत्तावद
हृताम हतुरविषय गतेऽप्य तस्मिन् ।
उदटा परस्परद्विजन्तवामनाम
रक्षा ततोऽप्य जगत स्तु धर्म एव ।

अर्थात् जब तक मनुष्य के मन में धर्म रहता है तब तक वह मारने धान को भी नहीं मारता। किन्तु देना जब उसने मन में धर्म निजल कर बना जाता है तब और की बोन वह विता धन का मार लाता है और पुन विता का धन यह निश्चित है कि जगत् की रक्षा का कारण धर्म ही है। इनके धर्म कहा जा सकता है कि मनुष्य और मनुष्यविषय जीवन बिना के लिये धर्म अनिवार्य है।

धर्म और एकात्मत वाह्याचार

मनुष्य धर्म जीवन के लिये अनिवार्य है किन्तु उसका स्वयं एकात्मत वाह्याचार कभी नहीं है। आचार प्रथमो धर्म अर्थात् आचार ही सर्वप्रथम धर्म है। शास्त्र का इन मान्य की शोषा ने हम तरह पकड़ा कि क्याय आचार इनकी परत में न आया। आचार ता धर्म का उद्यम का प्रथम है। यह प्रथा मनुष्य में ही तो उसका जीवन रहने पर भी उसका मानवता भर जाती है। मनुष्य वह नहीं है जो हम बोध रहा है व ता कथन उसका बाध रूप है। मनुष्य का उद्देश्य ही तो हम उगर् मन प्रयत्नों में बुद्धता हाथा। पर उगर् व प्रयत्न वेबल बाध में हमने क्योंकि उनमें धोषा हाता सम्भव है। आचार म मनुष्य का उन दोषम प्रयत्न की मणता है जो अन्तम हा। जगत् में अधिकांश मान्य मानवता में बहिष्कृत हैं चाहे वे किता हा वडे आचारी माध तना अपका शास्त्रप्रपता क्या

१ अथर्वणीयाम्मन्त्रो मरीयानाया गुणानां निहितोऽप्य ज्यो

तपःपुत्र वृत्ति कोतनाको धानु प्रसादायहिंसाधर्मोप ॥ २० ॥

— दवेनाअनरोपनिध तमोय अध्याय





न हो। यदि बहुत मभीष जाकर उनका अध्ययन करे तो हमे निराशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा। यह मनुष्य का बुद्धिभ्रम है कि वह एकान्त बाह्याचार को धर्म मानता है। पर अब यह इसका फैला हुआ अर्थ बन गया है और बहुत से मनुष्य इससे चिपटे पड़े हैं। एकान्त बाह्याचार में वास्तविक श्रद्धा रहती है और न सच्चा ज्ञान। जो श्रद्धा और ज्ञान इस सदाचार में है उसे अविश्वास और अज्ञान कहने हैं। यह इतना निष्फल और अमह्य हो जाता है कि इसे न मनुष्य का हृदय छूता है और न मरिचक। तब फिर वह उसे क्यों करता है? इसका उत्तर है कि वह परम्परा का पुजारी है, गतानुगतिक है, रुढ़ियों के विरोध में उठकर वह क्यों नहीं आफत मोल ले? मल-घट की तरह वह पापों से भरा पूरा रहने पर भी अपने बाह्याचार के बल पर दूसरों से अपने को ऊँचा समझता है, उनसे घृणा करता है और इस तरह अभिमान के सिर पर बैठकर वह अपने को एक भिन्न वर्गीय समझने की धृष्टता करता है।

आचारतत्त्व में खाने-पीने, नहाने-धोने, उठने-बैठने आदि क्रियाओं का समावेश करना हो तो पहले इनका एकान्त आग्रह छोड़ना होगा। निराग्रहपूर्वक कायिक शुद्धि के लिये जहाँ तक इनकी आवश्यकता का मवध है इन्हें स्वीकार किया जा सकता है। पर इन्हें आचार जैसा महामहिमाशाली नाम देना तो मुर्दे को जीवित कहने के बराबर है। इन बाह्य क्रियाओं से आचार में भी कभी मजीबता नहीं आती। इसीलिये महावीर और बुद्ध ने स्थान-स्थान पर इनकी नि सारता बतलाई है और कहा है कि हृदय को शुद्ध रखो, अहंकार को छोड़ो, समभाव धारण करो, सहानुभूति, क्षमा, शान्ति, शम, दम, आदि को जीवन में उतारो। वही आचारतत्त्व के मूलावयव हैं।

मदाचार और धर्म में कोई भेद नहीं है। सदाचार से जीवन भीतिकता से हटकर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होता है। सदाचार स्वयं ही आध्यात्मिकता है। उससे जीवन में स्फूर्ति और चैतन्य आता है। मदाचारी मनुष्य पर जगत् के घात-प्रतिघात का कोई असर नहीं होता। वह प्रलय की बात सुनकर भी क्षुब्ध न होगा। कोई भी सम्प्रदाय तभी विजयी हो सकता है जब उसमें आचारवान् मनुष्यों का बाहुल्य हो। भूतकाल में जो महात्मा हो गये हैं वे भी आचार-व्यवस्था के बल पर ही मानव को ठीक रास्ते पर लाने में सफल हो सके थे। हमें इसका ताजा उदाहरण देखना हो तो महात्मा गांधी के जीवन से देख सकते हैं।

आचार की तेजस्विता वाते बनाने से नहीं, उन्हें जीवन में उतारने से आती है और वह तेजस्विता जब उत्पन्न हो जाती है तब तो ऐसे महात्माओं के पैरों में गिरकर सम्राट् भी अपने को घन्य मानता है, किन्तु तेजस्विता बाह्याचारियों के जीवन में कदापि नहीं आती। आचार अथवा आचरण के नाम से हमारे देश में आज जो कुछ प्रचलित है उसने राष्ट्र की प्रगति में बहुत कुछ बाधा पहुँचाई है। इसने राष्ट्र के प्राण निकाल कर हमें निर्जीव बना दिया है। इस बाह्याचार के एकान्त आग्रह ने ही हमारे देश में करोड़ों अज्ञत पैदा किये और इसी की राक्षसी सस्कृति और कृपा से कराडों भारतवासियों को ऐसे धर्मों में परिवर्तित होने को बाध्य होना पड़ा जो उनकी सस्कृति और सभ्यता के बिल्कुल प्रतिकूल थे। और दुःख तो यह है कि आज भी यह स्थिति बदली नहीं है। इस बाह्याचार ने सचमुच हमारे जीवन को कलाहीन बना दिया है।

जीवनकला और धर्म

कला शब्द में हम बहुत परिचित हैं। नृत्यकला, गानकला, वाद्यकला आदि शब्दों का प्रयोग हम बहुत बार करते हैं। पुरुष की वृत्तर और स्त्री की चोमठ कलाओं के बारे में भी हमने सुना है किन्तु जीवनकला, मृत्युकला आदि शब्दों में हम परिचित नहीं हैं। यथार्थ यह है कि कोई सब कलाओं को जानकर भी यदि जीवन-कला को न जाने अर्थात् अपने जीवन को कलामय न बनावे तो उसका कला-ज्ञान व्यर्थ है। वह उसके लिए भार स्वरूप है, किन्तु किसी का जीवन कलामय तभी कहला सकता है जब उसके जीवन में धर्म उतरे।

हम कैसे जीवें? जीवन की उचित विधि क्या है? किस क्रम से जीने से हमारे जीवन में उपयोगिता है? आदि अनेक प्रश्न, यदि हममें विवेक हो तो, हमारे मन में जरूर उठेंगे। कोई प्रश्न बिना उत्तर का नहीं होता, इसलिये

इस प्रश्न का भी जवाब है : हमारे उत्तर में यह जीवनकला की परिभाषा है :

धर्म हम वनगाना है कि हम तरह जाने की आत्मा जाली चाहिये जिससे हमारे अंतःकरण में आगति शोध धर्मनोप जसी कोई चीज पदा न हो। क्योंकि वह सब जीवन रण का नष्ट करने वाली है। जीवन रण का वस्तु है तो धार्मिक की सहायता केरव उसका पोषण देना है। जबतक मेला क्यों होगा है कि मनव्य जीवन के साधने वाह्य साधना की वाह्य भा ध्यान आध्यात्मिकी वस्तु बना जाता है? इसका कारण दूसरा होगा। मरणात्मक की भी गति नहीं है। कुरोरोप धर्मवृत्ति वा स्वामी भी सच के स्थिते तब रहता है। सब कुछ हाते हुए भी उनको पाम वधा नहीं है जिसमें उन्हें देखनी को रही है? हम गारे विचारों का एक मने उत्तर है कि रका की तरफ उन्हें भा अभाव सता रह है। उनको पाम में तब अधिक और है कि उनको अभाव भाग विचार वस्तुतम है हम उनको दुख का परिमाण भी बढ जाता है। हम दूर से सच गात्रियों को मछो देखने का विभ्रम करते रहते हैं मग्रात धनकुदरतव बभवाला को बहुत नजीक का भी देखत। यदि देखें ता निमल हमारा यह भ्रम दूर हो जायगा कि उनका अभाव की अभाव है और व सार दुखा पर विषय भाये हुए है। सच ता यह है कि वे केवल अपने घर का मछो हैं। नी ता उनमें और साधारणजन में कोई अंतर नहीं है। ऐसे कोई वस्तु वकार सा एक ही गेग हम मित्र सजत है तो अपने अंतर में अपने दुखा का स्थिति बढे हैं जिनसे उनका सार सच का साधन 'यथ हा जाते हैं'। तो अपनी धारण सतापवर्जन द्वारा सारे अभावों को निरूप करने की कला का नहीं जानता वह सदा काग हा मरना है? तब ता पयमा का वधवर्ती स्वयं का भी और को भी हो आत्मा असंतुष्ट था एव मुनी ही रहेगा। हमने हम मम परिणाम पर गहवना चाहिये कि तब भी अपने का जीवन वन स ही सुखो बना मकता है बाह्य साधना स है। और उसका जय है जीवन व धर्म का सतारता।

यह एक ग्राह्यप्राप्त मूल्य है कि अधिकांश मनुष्य जीवन बिधि में अपरिचित हैं। उनका मन यद्यपि प्रगतिशील नहीं है, कि वह कैसे जीवें? तो कुछ प्रयासिन ही हैं। उनमें मिन जीवन की उपयोगिता उनका सामना नहीं आता। पत्राचारमार्ग ही एक मात्र वाजीवन का उद्देश्य है। उनको प्रत्यक्ष का रिश्ता का साथ संपर्क न हो और यदि हो, तो वह परास्त्र के द्वारा ही जानें। अतः भर यद्यपि है। पर यद्यपि संपर्क है? अतः यह वाजीवन ही उनका जीवन का उद्देश्य है कि वह कैसे जीवें? तो कुछ प्रयासिन ही हैं। उनमें मिन जीवन की उपयोगिता उनका सामना नहीं आता। पत्राचारमार्ग ही एक मात्र वाजीवन का उद्देश्य है। उनको प्रत्यक्ष का रिश्ता का साथ संपर्क न हो और यदि हो, तो वह परास्त्र के द्वारा ही जानें। अतः भर यद्यपि है। पर यद्यपि संपर्क है? अतः यह वाजीवन ही उनका जीवन का उद्देश्य है।

[illegible]



कला, अजिव को शिव और अमुन्दर को मुन्दर बनाती है। अव्यवस्थित और विकीर्ण को व्यवस्थित और केन्द्रित करना ही कला का काम है। कला रम-प्रवाहिनी होती है। जैसे हर एक गाना, हर एक वजाना और हर एक नाचना कला नहीं है वैसे ही प्रत्येक जीवन कलामय नहीं कहला सकता। गाना, वजाना और नाचना आदि को कलामय बनाने के लिये हमें इनमें रहने वाली अव्यवस्था, अक्रम एवं अनौचित्य को दूर करना पड़ता है। हमारे जिम प्रक्रम में इनमें रसोत्पादन आये वही हम करते हैं। रसोत्पादकता की सफलता ही कला की सफलता है। जीवन के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि वह अव्यवस्थित अनुचितोपयुक्त एवं रमहीन है तो उसमें कला का अभाव है। उसे कलामय बनाने के लिये उसकी ये बुराइयाँ दूर करनी होंगी। हम यह जान ले कि जीवन को रमहीन बनाने वाला असयम है। असयम दूर हो तो जीवन व्यवस्थित हो जाता है और उसके फलस्वरूप उसमें रसोत्पादकता भी आ जाती है। यही तो जीवन की कलात्मकता है। जो विलासी एवं विषयापेक्षा है और जगत् की नानाविध एषणाओं के द्वारा मत्ताये हुए हैं उनका जीवन कलामय नहीं है। अन्तिय को नित्य और अपावन को पावन, दुःख को सुख और अस्व को स्व मानने के भ्रम में पड़ना जीवन की कलात्मकता को नष्ट करना है। इसी का दूसरा नाम अधर्म है।

अहिंसा और धर्म

यहाँ यह नहीं भूलना चाहिये कि अहिंसा और धर्म न केवल एक दूसरे से पूरक हैं अपितु एक दूसरे के लक्षण हैं। यही कारण है कि मसार का ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसमें अहिंसा की महत्ता का उल्लेख न मिलता हो। धर्म का मूल स्रोत अहिंसा है, इसलिये प्रत्येक धर्म ने अपने को प्रतिष्ठित एवं गौरवान्वित करने के लिये अहिंसा को किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया है। अहिंसा इतना व्यापक धर्मोत्तम है कि कोई भी सम्प्रदाय इसमें पृथक् रहकर धर्म कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। आचार्य समन्तभद्र ने ठीक ही कहा है कि —

“अहिंसा भूतानाम् जगति विदितं ब्रह्म परमम् ।

“अहिंसा परमो धर्मः, हिंसा सर्वत्र गहिता ।” व्यास का यह वचन भी कम महत्वपूर्ण नहीं। अहिंसा प्राणी की स्वाभाविक आकांक्षा है। जगल के भयकर पशु भी अनेक अंशों में अहिंसक रहकर ही जीवित रह सकते हैं। सिंह भी अपने बच्चों से प्रेम करता है और उनकी रक्षा करने के लिये हर तरह का प्रयत्न करता है। दुनिया के इतिहास का अध्ययन करने से भलीभाँति ज्ञात होता है कि मसार के सभी देशों के साहित्य अहिंसा की प्रतिष्ठा से अनुप्राणित है।

यूनान के मत पीथागोरस ने अहिंसा की महत्ता का जो वर्णन किया है उसे पढ़कर ऐसा कौन है जो दयाद्वै न हो? मसार के सभी सत्ता ने अहिंसा की आवश्यकता पर जोर दिया। भारतीय सभ्यता में तो अहिंसा को सर्वोदरणीय स्थान प्राप्त हुआ है। जैन और बौद्ध साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि इस देश के मनीषियों ने अहिंसा की विस्तृत व्याख्याएँ की हैं और उसे जीवन में उतारने की मानव की हर प्रकार की प्रेरणा दी है। जैनशास्त्रों में हिंसा व अहिंसा की सूक्ष्मातिमूक व्याख्याएँ हमें आश्चर्यजनक कर देती हैं। उसकी अहिंसा का विस्तार कीट, पतंग, वनस्पति और पौधों तक पहुँचा है। अहिंसा का इतना गहन वर्णन शायद ही कहीं पर मिलता हो। इसमें हम कह सकते हैं कि अहिंसा और धर्म का अभेद सम्बन्ध है।

धर्म के दस भेद

धर्म के दस भेद जैनो की तरह बौद्धों, ईसाइयों और हिन्दुओं ने भी माने हैं। बौद्धों के दस धर्म ये हैं — (१) अधिकारी मनुष्य को दान देना (२) सदाचार की शिक्षाओं के अनुकूल अपना जीवन बिताना (३) सद्बिचारों की उत्पत्ति तथा दृष्टि में सदा तत्पर रहना (४) मेवा को ही अपना उद्देश्य बना कर दूसरों की सेवा में लगना (५) अपने माता-पिता और अपने से बड़े लोगों की रोगादिक कष्टों में मेवा सुश्रूषा और सदा उनका आदर-सत्कार करना (६) अपने गुणों का लाभ दूसरों को भी देना (७) दूसरों के गुणों को ग्रहण करना (८) न्यायपथ पर चलने वाले

मिथ्यात्व को सुनना (६) चायमाण पर चलन मान मिथ्याता का अर्थ लोगों को भी उपदेश देना (१०) अपने धर्म मन्त्रों का नाम को गाना निम्न और सुन्दर रखना ।

ईसाइयों के दस धर्म

(१) तुम अपने लिए कुराह को हर्ष सुनि मन बनाओ । न तो स्वयं म ऊपर का जो है उनका न पथी पर नाक है उनको । तुम मर मानने और किसी को ईश्वर मन माना । (२) इन मूर्तियों के सामने मस्तन मत नमाओ () अपने स्वामी ईश्वर का नाम स्वयं मत ना बधावि ईश्वर का नाम जो लाग पथ लेने हैं उनका ईश्वर निरन्तराप मर । मगलना (४) पवित्र जिन का नाम रखना । हमको पवित्र ही रखा है जिन तक परिश्रम करा और अपना पूरा काम करा परन्तु मानना जिन मुझारे ईश्वर का पवित्र नि है । हम जिन तुम काई काम मत करो । न तो तुम न तुम्हारे लक्ष्य न लक्ष्य न मोहर न मोहरानी न ठेका मव ॥ और न तुम्हारे घर व अनिविधम जिन काम करें । बधावि ईश्वर न छ नि म मगल स्वयं पथो समु और जो कुछ भी वस्तु हैं जो सबको बनाया और मानवें जिन आराम दिया । अतः ईश्वर ने मवाक व जिन का घरवन दो और पवित्र कर दिया (५) तुम्हारे माना दिया का जो र करा सावि पथी पर जो जिन तुमका ईश्वर न जिये हैं उन्हीं छुट्टि हा । (६) किसी का मारा मन (हत्या मत करो) (७) व्यभिचार मत करो । (८) चोरी मत करो । (९) अपने पड़ोस व बिस्व भूमी गवाही मत दो (१०) अपने पड़ोस व घर को छाना का लालच मत करो । न उन्हीं का व विषय म न उन्हीं को बरा व विषय म न मोहरना व विषय म न उन्हीं चल मा गया व विषय में और न किसी भी वस्तु व विषय म जो तुम्हारे पड़ोसी की हैं वसी भा छाना का विचार करो ।

हिन्दुओं के दस धर्म

(१) धर्म धारण करना (२) सम्पत्ति जाना (३) मन का वग म करना (४) विना जिये किसी की बीज न लेना (५) लोभ न करना (६) शिष्टता का वग म करना (७) बुद्धि का उपयोग करना (८) मान बढ़ाना करना (९) सार बोधना और (१०) वाद्य न करना ।

जनों के दस धर्म

(१) समाजकी भी परिस्थिति म मन मवाक व भाव न उन्हीं होन देना । (२) मानव जिन कुछ पवित्र वस्त्र दिया ज्ञानि का वभी अभिधान करता (३) राजदर लक्ष्य वग निम्नमपान मवाक व आनि म करना । (४) मोन धर्म म भावित न रखना लोभ लालच लोभा छानि व प्रसार को रोकना । (५) मरुद ज्ञान व बोधना कर लक्ष्य म मान जिन विन और द्रव्य लक्ष्य का प्रमाण करना । (६) मयम मन और शि वा का वग म करना (७) नर पदोन्नति का निरन्तर न होना ज्ञान और ध्यान म अध्ययन म गहन का लगाना । (८) स्वयं हमारे पास जो कुछ है पवित्र व अगाध उगाध शान्ता अनायास और जग जग म विनयेन करना (९) आश्विन्य परिषद का मयम म करना बधावि म । मव पाता की जह है । (१०) कष्टमय मगल शान्ता लक्ष्य मवाक व माना मवाक भाई आनि का तरह ममाना ।

धर्मों का यह सग का बहना मयम ममाना क्या है यह अनिश्चित मयमना का विषय है ।

यद्यपि धर्म नारदवल्क्य है ?

माना जाता है धर्म का मतलब का अर्थ है जान पर भी बर्मा-बर्मा सोच यह कहन मन मय है कि धर्म मनुष्य का जिन एक बोधा है । यह उन्हीं यह का जिन मय है । धर्म का स्वयं तो होता है । यह स्वयं हा हाकर हा ता यानी का ऊपर उगता है । माना का जह म विनय और भा मा व अभिमुख जाना मी जगहा ऊपर उगता है । जो माना जाना यह निम्न और दूसरी का भा निराला । धर्म भारी न ता उन्हीं पवनमान जाना नि पथ है । तब यह धर्म माना म । हाकर पवनमान जाना और धर्म भारी का भी निराला । इसी मय, माना माना नि जो अनुमान व मय माना माना मय यह धर्म नो है । मय मनुष्य की न उन्हीं ।



अनेकान्त

स्व० मुनिश्री श्रीमलजी



प्रत्येक दर्शन एवं धर्म का एक विशिष्ट मौलिक सिद्धान्त होता है, जिसके आधार पर उसके विचारों का महल खड़ा होता है। जैनदर्शन एवं जैनधर्म भी एक स्वतन्त्र और मौलिक दर्शन तथा धर्म है। उसका भी अपना सिद्धान्त है, अपनी दृष्टि है, अपना मौलिक चिन्तन है। और उसका मौलिक रूप आगम एवं दर्शनसाहित्य के पृष्ठों पर अंकित है।

भगवतीसूत्र में उल्लेख मिलता है कि श्रमण भगवान् महावीर को केन्द्रज्ञान होने के पूर्व दस स्वप्न आये थे। उनमें एक स्वप्न का वर्णन करते हुए आगम में लिखा है—“एग न ण मह चित्तविचित्रपत्तयग पुनरोत्थग मुविणे पामित्ताण पडिबुद्धे” अर्थात् एक महान् चित्र-विचित्र पत्र वाले पुष्कोकिल को देखकर प्रविबुद्ध हुए।

इस स्वप्न का क्या फल मिलेगा, इसका उल्लेख करते हुए बताया गया है—“जण समणे भगव महावीरे एग मह चित्तविचित्र जाव पडिबुद्धे तण समणे भगव महावीरे विचित्र समसय-परमसय दुत्तालमग गणिपिटग आपवेहिंति पन्नेवेहिंति पत्तेवेहिंति।” अर्थात् श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्न में एक चित्र-विचित्र पत्र वाले पुष्कोकिल को देखा है, उसका फल यह है कि वे स्व-पर—सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले विभिन्न द्वादशांग का उपदेश देंगे।

प्रस्तुत पाठ का पाठ्यार्थ करने में यह स्पष्ट हो जाता है कि आगमकार ने अनेकान्त सिद्धान्त का कितने सुन्दर एवं व्यवस्थित ढंग में वर्णन किया है। यह चित्र-विचित्र पत्र वाला पुष्कोकिल अनेकान्त या स्याद्वाद का प्रतीक है। श्रमण भगवान् महावीर ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया वह एक वर्ण के पत्र वाला कोकिल नहीं, विभिन्न रंगों के पक्षों वाला है। जहाँ एक ही वर्ण के पत्र होते हैं, वहाँ अनेकान्त नहीं, एकान्तवाद होता है।

एकान्त और अनेकान्तवाद में यही मौलिक भेद है कि एकान्तवादी वस्तु के स्वरूप को एक ही दृष्टि में देखना हैं। अनेकान्तवादी उसके स्वरूप को एक दृष्टि में ही नहीं, विभिन्न दृष्टियों में देखना है। वस्तु एक रंगवाली नहीं, विभिन्न रंगों से समुक्त है। अतः उसे किसी एक विशेष रंग की मानना और उसमें स्थित अन्य रंगों का अपलाप करना सत्य का निरस्कार करना है। इसलिए एकान्तवाद सत्य नहीं, मिथ्या है। वह वस्तुस्वरूप को जानने की परिपूर्ण एवं सही दृष्टि नहीं है। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने-समझने की सही दृष्टि है अनेकान्त या स्याद्वाद।

जैनविचारणा की भाँति जैन साधना का भी प्राण अनेकान्तदृष्टि है। अनेकान्त की नींव पर ही समस्त विचार और आचार का भव्य भवन खड़ा है। इसलिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि अनेकान्तदृष्टि का मूल आधार क्या है? आगम साहित्य एवं अनेकान्तवाद का अनुशीलन-परिशीलन करने में यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेकान्तदृष्टि सत्य पर स्थित है। प्रत्येक व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार करना चाहता है परन्तु उसकी दृष्टि में अन्तर रहता है। हम देखते हैं कि तथागत बुद्ध भी सत्य को जानना चाहते थे। परन्तु सत्य को देखने की उनकी दृष्टि दूसरी थी। आचार्य शंकर ने भी वेदों एवं उपनिषदों के आधार पर सत्य को समझने का प्रयत्न किया है। अन्य दार्शनिकों एवं विचारकों ने भी सत्य को परखने का प्रयास किया। परन्तु सत्य को देखने की सबकी दृष्टि एकांगी रही है। श्रमण भगवान् महावीर की दृष्टि इन सबमें भिन्न थी। उन्होंने सत्य को एक दृष्टि से, एक अपेक्षा में नहीं, प्रत्युत अनेकान्त-मयी दृष्टि में देखा। इसलिए भगवान् महावीर की सत्यप्रतिपादनशैली का नाम अनेकान्तवाद पड़ा। उसके मूल में दो

वस्तु के स्थापित में प्रत्यक्षता नहीं है, मायावा नहीं है, विवक्षा नहीं है, जीव परिचयन में वस्तु के पूर्व रूप का विनाश अब उस रूप की उत्पत्ति होती है। वस्तु का परिचयन में वस्तु की उत्पत्ति में ही हुए भी न तो वस्तु का सर्वज्ञ नाम होता है न पूर्णयोग रूप रूप में उत्पत्ति में होता है। जैसे स्वभावानुसंगत प्रत्यक्षता को बोद्धव्य होना होता है। समस्तानुसंगत नाम होता है और शब्द की उत्पत्ति होती है। प्रत्यक्षता उस प्रत्यक्ष जीव उत्पत्ति दोनों में स्वयं का स्थापित होना होता है। उसी तरह वस्तु के उत्पत्ति प्रत्यक्षता के रूप में प्रत्यक्षता की स्थिरता नहीं है। उसका न तो पूर्ण विनाश होता है और न उत्पत्ति। वस्तु की प्रत्यक्षता है, प्रत्यक्षता है, उसी को आगमिक भाषा में श्रोत्र-निष्पत्ति कहते हैं, उसी को प्रत्यक्षता के 'प्रत्यक्षता' कहा है।

द्रव्य और मत् एव है, इसलिए जो ज्ञान द्रव्य का है वही मत् का है। इस प्रकार निश्चयन द्रव्य या मत् जो न तो एकात्म रूप में नित्य मानता है और न परात्म रूप में अनित्य। वह जो नित्यानित्य स्वीकार करता है। वह गुण की अपेक्षा नित्य है और परात्म की अपेक्षा अनित्य है।

जैन दर्शन वस्तु में उत्पाद और व्यय मानता है । वस्तु यह मानता है मृत् वस्तु का व्यय न उत्पाद नहीं, प्रत्युत वस्तु की पर्यायों का व्यय और उत्पाद है । जैन परम्परा में उत्पाद एवं व्यय ही ज्ञानात्मा के प्रमाण की गई है "स्वजाति का परित्याग किए बिना पर्यायान्तर का ग्रहण करना उत्पाद है और स्वजाति को बिना छोड़ पर्याय के पूर्व भाव का विगम होना व्यय है । उदाहरण के लिए मिट्टी का पिण्ड स्वजाति का परित्याग किए बिना घट रूप पर्यायान्तर को ग्रहण करता है, यह उदात्त उत्पाद है । और घट की आकृति में परिवर्तन होने ही मिट्टी-पिण्ड की आकृति का नाश हो जाता है, यह व्यय है और पिण्ड एवं घट का दोनों अवस्थाओं में जो मिट्टी का अन्तर है वह प्रतीय है । यहाँ जो मिट्टी का उदाहरण दिया गया है, वह केवल वस्तु को स्वल्प से समझने के लिए दिया गया है क्योंकि मूर्ति का कोई द्रव्य नहीं, पुद्गलद्रव्य का पर्याय है, अतएव जैनदर्शन में उक्त परमाणु निश्चय नहीं मानता । परमाणु पुद्गल निश्चय है, वह सदा परमाणुरूप में रहता । वस्तु मिट्टी, पानी वस्तु आदि पर्याय है और उनमें परिवर्तन होता रहता है । मिट्टी रूप में दिवाराई देने वाले परमाणु वस्तु के सा वनस्पतिके रूप में भी परिवर्तित हो सकते हैं, परन्तु परमाणु द्रव्य का सभी नाम नहीं होता ।

निष्कर्ष यह रहा कि वस्तु में नित्यत्व-अनित्यत्व, एतत्त्व-अनेकत्व, यदि धनेत प्रमे है और उनको हम एक एक अपेक्षा में समझ सकते हैं। उस अपेक्षादृष्टि को जैनदर्शन में नय कहते हैं। नय में वस्तु के स्वस्व को देखने-परखने की समस्त दृष्टियाँ एक दर्शनों का समावेश हो जाता है। जैसे द्रव्याधिक नय को अपेक्षा में हम वस्तु के नित्यत्व स्वहम को देखते हैं और उसे नित्य कहते हैं, और पर्यायाधिक नय की दृष्टि में हम उसके पर्यायों को परिवर्तित होने-एक-दूसरे अनित्य कहते हैं। दोनों दृष्टिग प्रयार्थ भी हैं और दोनों में मेलभाव पा है। हम दोनों को तब तब अलग नहीं कह सकते, जब तक दोनों मिलकर चलते हैं। एक नय अपनी दृष्टि से वस्तु स्वस्व या अपरमेय करना है, परन्तु दूसरे नय या निरस्कार करके उसे जगत्त्व या मिथ्या नहीं कहता है, तो वह सम्यक्ता है और उस नय में या उस दृष्टि में वस्तुस्वरूप को देखने वाला दर्शन ही सम्यग्दर्शन है।

नयवाद में जितने भी एकात्मवादी दर्शन हैं। उन सबका समावेश हो सकता है क्योंकि वे वस्तु के स्वरूप



इनमें प्रथम भग विवेयात्मक विचार के आधार पर निमित्त है। उसमें वस्तु के अस्तित्व का विवेयात्मक दृग में प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय भग का आधार निषेध है। इसमें वस्तु के अस्तित्व रूप का निषेध ही नापा में विवेचन किया गया है। प्रथम में अस्तित्व की स्थापना की गई है, और इसमें उसका निषेध किया गया है।

तृतीय भग विधि और निषेध का क्रमशः प्रतिपादन करता है। यह प्रथम और द्वितीय भग के संयोग में बना है।

चतुर्थ भग विधि और निषेध का युगपत् प्रतिपादन करता है। दोनों का युगपत् प्रतिपादन करना प्राणी के सामर्थ्य से बाहर है। अतः इसे अवक्तव्य कहा गया है।

पञ्चम भग विधि और अवक्तव्य दोनों का प्रतिपादन करता है। यह प्रथम और चतुर्थ के संयोग में बना है।

षष्ठ भग निषेध और अवक्तव्य का विवेचन है। यह द्वितीय और चतुर्थ के संयोग में बना है।

सप्तम भग विधि, निषेध, और अवक्तव्य का प्रतिपादन है। यह तृतीय और चतुर्थ भग के संयोग में बना है।

जब हम आगम और दर्शनशास्त्र का अध्ययन करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इन युग में ये प्रश्न चर्चा के महत्वपूर्ण विषय थे। कोई विचारक वस्तु के अस्तित्वरूप को प्रधानता देना था और उसी को नग्न मानता था। कोई उसके निषेध रूप को प्रधानता देकर उसका प्रतिपादन करता था।

यह हम स्पष्ट कर चुके हैं कि मूल रूप में वस्तु में विरोधी प्रतीत होने वाले धर्म विद्यमान हैं। इनका अपेक्षा से विवेचन करना स्याद्वाद है। जैसे हम कहते हैं कि मनुष्य मनुष्य रूप में है। उसी समय उसका निर्गुणी पक्ष हमारे सामने उभर आता है कि मनुष्य पशु रूप में नहीं है। वह मनुष्य रूप में अस्तित्व में है, और पशु रूप में नास्ति।

अभिप्राय यह है कि किसी भी वस्तु में जो अस्तित्व है वह निरोक्ष नहीं वरन् उसके अपने स्वरूप की अपेक्षा से है और अपने स्वरूप से सत् वस्तु परस्पर की अपेक्षा में अमत् भी है। उसमें प्राद तृतीय पक्ष को इन उभय के स्वीकार रूप में कह सकते हैं—वस्तु सत् भी है अमत् भी है। यह पक्ष स्वरूप-परस्पर दोनों की क्रमिक अपेक्षा से है।

प्रथम के दो भगों में वस्तु का एक-एक रूप मामने आता है परन्तु तीसरे भग में दो रूप हैं। उसमें उभय पक्ष को स्वीकार किया गया है। अगर हमसे पूछा जाय कि वस्तु सत् है या अमत्? तो हमारा उत्तर यही होगा कि वस्तु स्वरूप से सत् और परस्पर से अमत् है। यही तीसरा भग है। इसी कारण जैनविचारकों ने सत्त्वत् के क्रम-पूर्वक कथन को तृतीय भग में रखा। 'स्याद् अवक्तव्य' नामक चतुर्थ भग में उभय के युगपत् प्रतिपादन को स्वीकार किया। इसका अभिप्राय यह है कि सत्ता और असत्ता दोनों धर्म अपेक्षाभेद में विद्यमान हैं परन्तु इनका एक साथ प्रतिपादन नहीं हो सकता, क्योंकि शब्दकोश में ऐसा कोई शब्द ही नहीं है और हो सकता है जो युगपत् दोनों का वाचक हो। ऐसी स्थिति में विवश होकर हमें वस्तु को अवक्तव्य ही कहना पड़ता है।

अन्तिम तीन भग संयोगज होने से सुगम हैं। वस्तु का और वस्तुगत धर्म का विवेचन करने की यह एक अनुवी पद्धति है जो हमें सत्य की ओर ले जाती है और परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले पक्षों में समन्वय स्थापित करने की सुन्दरतम कला का निदर्शन करानी है। यह जैन विचारकों की अनुपम सूझ एवं अनुपम देन है।

स्याद्वाद में वस्तु के स्वरूप का निश्चिन दोष होता है। यहाँ स्यात् का अर्थ शायद नहीं, अपेक्षा है। जब हम कहते हैं—आत्मा स्याद् अस्तित्व, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि शायद आत्मा है परन्तु इसका अभिप्राय यह है कि आत्मा अपने चैतन्य स्वरूप की अपेक्षा से है। इसी तरह स्यात् नास्ति का तात्पर्य यह है कि परस्पर अथवा जड़ता की

अपेक्षा से आत्मा नहीं है। तीसरे पक्ष में चतुष्टयस्वरूप की अपेक्षा में आत्मा है और परस्पर अर्थान्तर जड़ता की अपेक्षा में नहीं है। उभय पक्ष के युग्मगत कथन की अपेक्षा से आत्मा अवक्त है। इस प्रकार भगवान् महावीर के कथन में भाग्य का स्थान नहीं है। सब वस्तु का निश्चयात्मक बोध होता है।

इतन अन्धे विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि अस्ति नास्ति अस्ति नास्ति और प्रवक्तव्य का भाग्य भोग्य भोग्य है। दोष भोग अस्ति नास्ति के संयोग में है। इन बातों में समस्त अपेक्षा का समावेश हो जाता है।

एक तरह का निमित्त क्षण में चलने वाले संपर्क का समाप्ति करने के लिए भगवान् महावीर न विद्वत् का अनुशासन एवं त्याग को भाषा में वस्तु स्वरूप को समझाया। जीव की निमित्त अनित्यता की तरह जब उनके सामने यह प्रश्न आया—नारक ग्राह्यत है या अग्राह्यत है? इसका समाधान में भाग्य उन्हीं त्याग का भाषा का प्रयोग करते हुए स्पष्ट कहा—बहु ग्राह्यत है और अग्राह्यत भी।

यह कैसे हो सकता है ?

अनुचित द्वयार्थिक नय की अवस्था नारक ग्राह्यत है और अनुचित त्रयार्थिक नय की अपेक्षा में अग्राह्यत है। जिस प्रकार जीवसामान्य को द्वय की अपेक्षा से नित्य और नारक आदि गति रूप पर्याय की अपेक्षा से अनित्य कहा। उन्हीं तरह नारकान्ति जीवों का जीव द्वय का अपेक्षा से नित्य और नारकत्व का त्रयार्थिक अपेक्षा से अनित्य कहा है।

भगवतीसूत्र १५ उ ६ सूत्र ३६७ में जीव नित्य है या अनित्य इस विषय को स्पष्ट करते हुए भगवान् महावीर तमोरी की समझ २० हैं—हजमात्री। जीव ग्राह्यत है नित्य है प्रवक्तव्य है अवक्तव्य है। क्योंकि भूत भविष्य एवं वर्तमान तीन कालों में ऐसा कोई क्षण नहीं जिस समय जीव का अस्तित्व नहीं रहा हो।

हे जमात्री ! जीव अग्राह्यत है क्योंकि वह नरक अवस्था में त्याग करने विवक्त योग्य में उत्पन्न होता है नियत भय से निवर्तन मनुष्य बनना है मनुष्य से देवगति का प्राप्ति करता है। इस प्रकार विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होने का कारण वह अनित्य है।

नित्यता अनित्यता की तरह भगवान् से प्रश्न किया गया—जीव सात है या अनात ?

उत्तर दिया गया—जीव सात भी है और अनात भी है। द्रव्यदृष्टि से जीव द्रव्य एक है। अतः वह सात है। सात की अपेक्षा में जीव असंख्यात प्रमाण से युक्त है इसलिए वह सात है। बाल की अपेक्षा से जीव सदा सदा है और सदा रहेगा इसलिए वह अनात है। भाव की अपेक्षा में जीव के अनन्त पान पर्याय हैं अनन्त क्षणपर्याय हैं अनन्त चारित्र्यपर्याय हैं अनन्त धर्मधर्मधर्मपर्याय हैं इस कारण वह अनन्त है। इन प्रकार द्रव्य और सात की अपेक्षा में जीव सात है इसलिए यह सात है। बाल और भाव की अपेक्षा में वह असीम है अतः अनन्त है।

इन प्रकार सोमिल के प्रश्नों का उत्तर देते हुए भगवान् महावीर कहते हैं—हे सोमिल ! द्रव्यदृष्टि से मैं एक हूँ। पान और त्याग की अपेक्षा से मैं एक नहीं दा हूँ। कभीनहीं जाने वाले आत्मप्रदान की दृष्टि से मैं अनात हूँ अवस्थित हूँ। और परिवर्तनशील उपयोग की अपेक्षा से मैं अनेक रूप हूँ।

भगवत्तिरिक्त अस्ति और नास्ति का सम्बन्ध में भाग्य चलाता था। एक विचार कहना सर्वमस्ति सब सत्य है, दूसरा कथना सब नास्ति—सब असत्य है। परन्तु भगवान् महावीर न दोनों का अस्तित्व को स्वीकार किया। उन्होंने अस्ति और नास्ति दोनों का परिणमनात्मक माना। और त्याग का भाषा में कहा कि अस्ति और नास्ति दोनों सात हैं। पदत्व की दृष्टि में पदत्व का हन सत कहते हैं और पदत्व की अपेक्षा में असत कहते हैं। पद पदत्व की अपेक्षा से सत है और पदत्व की अपेक्षा में अगत है। इसलिए सब वस्तुओं में अस्तित्व भी है और नास्तित्व भी है।



भगवती मून य० ७ उ० १० मून २०४ मे भगवान् महावीर ने कहा—“इम अग्नि की नास्ति नहीं रहने और नास्ति को अग्नि नहीं कहते। जो पदार्थ जिम अपेक्षा मे है, उमे अस्तित्व रहने के और जो नहीं है, उमे नास्ति रूप कहते है।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने अनेकान्त एव स्याद्वाद के द्वारा पन्थु के चकार्य एव मन्थ स्वन्थ को समझा कर दार्शनिक सधर्षों को समाप्त करने का प्रयत्न किया और उस ध्यान पर जोर दिया कि सधर्षों को समाप्त करने का अमोघ उपाय अनेकान्त है। एकान्त आग्रह अमत्य पर अवलम्बित रहने के नाश-नाश सधर्षों को जड़ है, वैमनस्य, राग द्वेष, एव वैर-विरोध को बढ़ाने वाला है। अतः पूर्ण मन्थ को जानने-देखने एव पूर्ण ज्ञानि की प्राप्ति करने का मार्ग अनेकान्त ही है।

आज भी हम नैदान्तिक चर्चा के समय अनेकान्त को नामने रखते है। अपने आपका अनेकान्तवादी कहने एव मानने में गौरवानुभूति करते है। परन्तु जब जीवन-व्यवहार की ओर देखते है तो अनेकान्तवाद से बहुत ही दूर नजर आते है। प्रत्येक जैन विचारक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने जीवन में उस ध्यान का अंगीकार करे कि उसने अपने जीवन में अनेकान्त एव स्याद्वाद को कितना उतारा है।

प्रत्येक जैन, भले ही वह दिगम्बर हो, ध्वेनाम्बर मूर्तिपूजक हो, श्रान्तवासी हो या तेरहपत्री हो, अपने आपको अनेकान्तवादी मानता है। प्रत्येक सम्प्रदाय अपने आपका अनेकान्तवाद का उपासक मानता है। फिर भी प्रत्येक सम्प्रदाय अपने धर्म को सम्प्रगृह्यि और अपने में भिन्न सम्प्रदाय को मिथ्यागृह्यि करने में मगोच नहीं करना और विचारभेद को लेकर कभी-कभी एक दूसरे में सधर्ष करता है।

यह सत्य है कि जैनतर दर्शनो की मान्यता में भी सन्धान है। परन्तु उनके विचारों में अनेकान्तवाद का आग्रह होने के कारण वे पूर्ण सत्य को समझ नहीं पाते। इसलिए उनमें सधर्ष होता है। और इस एकान्तवाद के कारण ही हम उन्हें मिथ्यागृह्यि कहते है परन्तु अनेकान्त के उपासकों में भी विचारभेद को वैर-विरोध होने ही और वे एक दूसरे को मिथ्यात्वो समझते हो, यह किन्तु दृष्ट एव आश्चर्य की बात है। यदि अनेकान्तवाद में तू-तू-मै-मै को पनपने का अवकाश है, और वहाँ भी मिथ्यात्व रह सकता है, तब फिर पूर्ण ज्ञानि कहा मिनेगी और सम्मत्त्व का उदय कहा हांगा ? जहाँ अनेकान्त है वहाँ सधर्ष एव मिथ्यात्व सभव ही नहीं है। यदि अनेकान्तवादियों में भी पारम्परिक सधर्ष होता है, तो समझना चाहिये कि उन्होंने अनेकान्त को न तो पूरी तरह समझा है और न जीवन में उतारा है। वे अनेकान्त के स्वर में एकान्तवाद का पोषण करते ह, जिमने मन में वैर-विरोध, ईर्ष्या, मन्थर एव प्रतिशोध की भावना जागृत होती है और परिणामस्वरूप हिंसा की ज्वाला भस्म उठती है। धर्म के नाम पर होने वाले साम्प्रदायिक सधर्षों का मूल कारण एकान्तवाद का आग्रह है।

जैनदर्शन का व्यावहारिक पक्ष अनेकान्तवाद

प्रो० भाग्यचन्द्र भागेन्दु,

एम० ए गाहरी वास्तवीय

अध्यक्ष तत्त्वत विभाग

महात्मा गांधी स्मारक महाविद्यालय इंदौर



इति नाम्न क प्रतिभाग म जनमानस या आह्वानम् यस्तु । । एतत् सत्यं वा । है । मन् जगुमार मगार म घनम् यस्तु है । प्रत्यक्ष वस्तु म अनक घम नम गते है । प्राचाय गुणरत्न । । तत् धर्मात्मक यस्तु । । न कर यस्तु व प्रा न धर्मो ही ओर सज्जन विद्या है । जितु मनुष्य का गत जगुमार है अतः व तत् न ममय म ओर एत साध उत सभी धर्मो वा यस्तु व विवेक य गो या स्वभाव वी न । जात सज्जन । भाग्यवीय । । न इश्वरान्तर व विज्ञान हुनु मनुष्यिन अथगर प्र । न करता है । जनमानस भी यस्मिन् व गूण विज्ञान यत्न विधिप । । नाराय परि धारनाये (प्रतिभाषे) परिभाषित हाती है । प्रथम धारक वी ११ प्रतिभाषा व न य ओर स्वभावान १४ मुलस्यान व रूप मे । एता न प्रतिभाषे ता जिज्ञासी व जमिद अध्ययन वी स्वार कथाभा के तुय है जिनम ध्यान करने व्यक्तित्व व । प्रत्यक्ष उच्च धर्मात्मक प्रतिष्ठित करना जाता है और १४ गुण स्वान साध्यामिद विभाग व स्थि मातात वा भाति है ।

यस्मिन् व परिगुण विज्ञान व गूण जनमानस जगुमार यस्मिन् ता गान मनुष्य तव आतिर । । न विन् परिगुण विज्ञान व गजरा व की गान परिगुण ओर परिपक्व हा । गाना है । केने ममानता वी जनमानस । । जन मया प्राप्त है । य वद गान ममान मन् है । ओर कवकता । गरा यस्तु व ममान धर्मात्मता वा गत साधतात है ।

धारन म जिनम भा धार्मिक सम्प्रदाय विरहित हुए उनमें अज्ञान वी उनना मन्तर विभा म न । । वि धा जिनना जनपम न दिया है । यौद्धिधम म विर भा अज्ञान वी एत गोमा है वि—स्वय किनी वा यत्न न व । । जितु जना वी अज्ञाता गूणन निरामम है । एत विना करना दूतरा स विना करवाना या अवधिमी भी तर न विज्ञा म माग देना अनयम व विरहीन है । जनधम वैकल्य पारीरिध अज्ञान सक्त हा सोमिद न वी वरन् व यौद्धिध अज्ञान व भी अज्ञान माता है । य यौद्धिध अज्ञान वी जनमानस का स्वाभाव या अज्ञानता है । य विर व नाना म अनूरी वस्तु है । इतर म ए वी दनी विज्ञानी सभी ज्ञानविज्ञान मे उच्च स्वर म स्वाभाव दिया है ।

आत विर म अज्ञानि वा मूल कारण यहा है वि गव मन या वा न वी मानव वात । । न धर्मे म भि

१ पुरी स्वाध्याय व विधि विवरण—यद्वेदान्तमुच्य व० २५ तथा उपपर आधाय गुणरत्न वी होवा ।

२ (अ) २१० ह्यन पाकोवो—अनुयाय प्रथम भाग (मन्वाहृत कल्पमुत्र)

(ब) निगेम रटीयतान—हाट थोक जतिम धनुष अध्याय ।



मत या वाद को मानने वाले लोगों को आख बन्द कर गलत गमझते हैं। लोग अपने प्रतिपक्षियों के प्रति असहिष्णु हो गये हैं। ऐसी स्थिति में भी यह मत्त है कि—कोई भी मत मोलह आने मत्त एव मोलह आने अमत्त नहीं है। वस्तु एक ओर में जैसी दिखाई पड़ती है, दूसरी ओर में भी वैसी ही दिखाई नहीं पड़ती। अतः बिना विवेक के किसी भी मान्यता या मत को सर्वथा खण्डित करने का कार्य हिंसा का कार्य है। सत्य को पहचानने के अनेक मार्ग हैं, मत्त के मार्ग पर आरुढ़ व्यक्ति का दुराग्रह और हठधर्म समाप्त हो जाती है। मत्यान्वेषक की दृष्टि उदार होती है। समन्वय, मह अस्तित्व और सहिष्णुता ये एक ही तत्त्व के नामान्तर हैं। जनमावागम को जीव-हिंसा ने बचाने के लिए जैन-दर्शन ने अहिंसा का उपदेश दिया, किन्तु चिन्तकों और विचारकों को हिंसाय प्रवृत्तियों में विरत करने के लिए 'अनेकान्तवाद' का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

जैनदर्शन का कथन है कि दर्शन नाना रूपिणी सत्ता के अथ मात्र का विवेचन करने में अपना महत्त्व रखते हैं। उनमें आपस में किसी प्रकार के मतभेद के लिए स्थान नहीं है। इस उदार चित्तवृत्ति तथा विचार-हृदयता के कारण जैन तत्त्वज्ञान का किसी भी दर्शन में विरोध नहीं है। जैनदर्शन युक्तिपूर्ण तथ्यों को ग्रहण करने का सदैव सदैव प्रस्तुत करता है, उसका व्यक्तिविशेष में कोई आग्रह नहीं, बल्कि वह तो मिथ्यान्त की उदात्तप्रवृत्ति पर बल देना है। आचार्य हरिभद्र का कथन इसी तथ्य की पुष्टि करता है—

पक्षपातो न मे बोरे, न द्वेष कपितादिषु ।

युक्तिमद् वचन यस्य, तस्य कार्य परिग्रह ॥

भगवान् महावीर के प्रति न तो मेरा विशेष अनुराग है, और न ही साधुदर्शन के प्रवर्तक कपिल आदि में कोई द्वेष ही है, जिसका कथन युक्तिपूर्ण हो, उसे स्वीकार करना चाहिये।

इतनी उदारता सम्भवतः अन्य दर्शनों में नहीं दिखाई पड़ती। उस उदारता का मूल्य आधार है—अनेकान्तवाद। अनेकान्तवाद का दार्शनिक आधार यह है कि प्रत्येक वस्तु अनन्तगुण, पर्याय और धर्मों का अनन्त पिण्ड है। वस्तु को तुम जिस दृष्टिकोण में देख रहे हो, वस्तु उतनी ही नहीं है। उसमें अनन्त दृष्टिकोणों में देखे जाने की क्षमता है। उसका विराट् स्वरूप अनन्त धर्मात्मक है। तुम्हें जो दृष्टिकोण विरोधी मानूँ पड़े, उस पर ईमानदारी में विचार करो तो उसका विषयभूत धर्म वस्तु में विद्यमान प्रतीत होगा। चित्त में पक्षपात की दुरभिमति निकालो और दूसरे के दृष्टिकोण के विषय को भी सहिष्णुतापूर्वक छोड़ो, वह भी वहाँ लहरा रहा है।

भारतीय सस्कृति के विप्रेक्ष्य मनीषी डा० दिनकर का स्पष्ट अभिमत है कि 'अनेकान्त' का अनुसन्धान भारत की अहिंसाधारा का चरम उत्कर्ष है, और सारा समार इसे जिनना ही शीघ्र अपनायेगा, विश्व में शान्ति उतनी ही शीघ्र स्थापित होगी।^१

आचार्य मिद्धमेन दिवाकर ने सम्मतिप्रकरण (३-४७) में अनेकान्त को एक ऐसे समुद्र की भाँति निरूपित किया है जिसमें सभी वाद विलीन होते हैं।

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर डा० आर्चीब्राह्म अनेकान्तवाद के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

"अनेकान्त जैनदर्शन का वह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है, जिसका पाश्चात्य अथवा हिन्दू दार्शनिकों ने समुचित मूल्यांकन नहीं किया है। यह अपने तत्त्वज्ञान के द्वारा समार का बड़ा उपकार कर सकता है।"^२

१ दिनकर, डा० रामधारीसिंह—सस्कृति के चार अध्यायः।

२ जैन, स्व० डा० कामताप्रसाद, विश्व को जैनधर्म की देन, पृष्ठ १६ से उद्धृत—

The Anekant is an important principle of Jain Logic not commonly asserted by the Western or Hindu logician, which promises much for world peace through Metaphysical harmony

भारतीय दान व सम्प्रदाय ग्रन्थक दा० सा बी गोसायने प्रायः भारतीय दान व स्यादवाद का सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते हैं।

स्यादवाद जिनका सर्व भगवान् या कर्त्तृ हू पावप्रार्थन व सम्भ्रम म गोसायने दाया विद्वान् है। स्यात्वाद का ग्राह्य अर्थ है सम्भावित। तात्पर्य है यद्यपि है। और इसीलिए स्यादवाद स्यादवाद का अनुवाद सम्भावना का सिद्धांत (Theory of Probability) अथवा दाया सत्ता की दाया वना (Doctrine of the may be) दिया जाना है, किन्तु स्यादवाद ग्राह्य सत्ता सम्भावना व ग्राह्य अर्थ में नही ग्रहण किया गया है। क्योंकि सम्भावना म स्यादवाद (Scepticism) को स्थान प्राप्त है जब कि जनाना म स्यादवाद का कोई स्थान नही है।

कभी कभी स्यात्वाद का अनुवाद किसी तरह (some how) दिया जाता है किन्तु इस ग्राह्य म अन्यायवाद (Agnosticism) की वृत्ति निहित है जब कि जनाना वनापि अन्यायवाद नही है।

यदि जनाना म स्यात्वाद का प्रयोग सापेक्षता का अर्थ म हुआ है और स्यादवाद का सप्रति अनुवाद सापेक्षता का सिद्धांत (Theory of Relativity) है।

जनाना म के प्रतिपक्ष आचार्य उमास्वामी का तत्वाव मूत्र व प्रथम अष्टादश का निनाय मूत्र तत्वाव श्रद्धाव सम्प्रदान है। वानुन तदा पर यथाय श्रद्धा स्यात्वाद के विना म। सा सत्ता। स्यात्वाद हा एव एवा सापेक्षता प्रणाती है जा तत्वा व यथाय श्रद्धा का दाया वरानो है। हम वानुन हा यह वक्त है कि प्रत्यक्ष तत्वा या एवाय अनन्त गुणा का सत्ता है या अनन्त गुणा म व वृत्त को सम्मिलित है जो परस्पर विरोधी हैं फिर भी एक हा देग और वानुन म एक साथ पाय जाते हैं। इन विरोधी तथा मित गुणा का विचार भवत म परस्पर न टकराया इकर उनका मुटुदाया सामञ्जस्य या सान्त्वय वक्त हो स्यात्वाद सापेक्षता या अनन्तत्वता है।

अनेकात्मवाद और स्यादवाद

विनाय का सापेक्षताय प्रक्रिया का नाम अनेकात्म है और उक्त प्रकटीकरण वन की सापेक्षताय की गोसायने है। अर्थात् अनेकात्मता का सम्बन्ध मनुष्य व विचारों मे है किन्तु स्यादवाद उक्त विचार का वानुन एव सापेक्षताय सापेक्षताय भाषा की सापेक्षताय करता है।

अनेकात्मता दाया व तीन ग्राह्य है—अतीत अन्त और वानुन। अन्त=नाता अन्त=वस्तुधर्म दाया=मायता। एव वस्तु मे विभिन्न धर्मों—स्वभावों (विरोधी और अविरोधी) का सापेक्षताय का नाम अनन्तत्वता है।

अनेकात्मता म व वस्तु म परस्पर विरोधी और अविरोधी धर्मों का विपाता है। व वस्तु का नासापेक्षताय

१ गोसायने दा० सा० बी इन्द्रिय फिलासफी

Syadvada which is also called Sapta Bhanganaya is the theory of relativity of knowledge. The word Syat literally means probable perhaps may be. But Syadvad is sometimes translated as the theory of probability or the doctrine of the may be. But it is not in the literal sense of probability that the word Syat is used here. probability suggests scepticism and Jainism is not scepticism.

Sometimes the word Syat is translated as somehow. But this too lacks of agnosticism and Jainism again is not agnosticism.

The word Syat is used here in the sense of the relative and the current translation of Syadvad is the theory of relativity of knowledge.





मन्त्र बन्नाज ही चरितार्थ हो जाता है। जहाँ अनेकान्तवाद हमारी दृष्टि हो वस्तु के सम्मत्त धर्मों की ओर समग्र रूप से नीतिता है वहाँ स्याद्वाद वस्तु के एक धर्म का ही प्रधान रूप से दाव करने में समर्थ है। माना धर्मात्मक वस्तु हमारे जिज्ञे सिम प्रकार उपयोगी हो सकती है, यह बात स्याद्वाद बन जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अनेकान्तवाद का एक विशिष्टात्मक जो स्याद्वाद का एक उपयोगात्मक है। यह भी कहा जा सकता है कि अनेकान्तवाद का एक स्याद्वाद है। अनेकान्तवाद की मान्यता ने ही स्याद्वाद की मान्यता को जन्म दिया है। क्योंकि जहाँ माना धर्मों का विधान नहीं है, वहाँ दृष्टिभेद की व्यवस्था हो ही नहीं सकती है।

स्याद्वाद और मन्त्रभंगीवाद

मन्त्रभंगीवाद जैनधर्म के स्याद्वाद का विपक्ष है। जैन आचार्यों ने स्याद्वाद को मान रूपों में विभक्त कर सम्मानित या मन्त्र प्रशमन किया है। उन मान रूपों को ही 'मन्त्रभंग' कहते हैं। प्रश्न हो सकता है कि यह मन्त्रभंगी क्या है और उसका क्या उपयोग है? उसका उत्तर स्याद्वादमन्त्रों के चरित्रों आचार्यों मन्त्रिणों के शब्दों में निम्न प्रकार है—

‘मन्त्रानि प्रकारं वचनविन्यास मन्त्रभंगीनि गीयन्ते ।’^१

(विश्व की प्रत्येक वस्तु के स्वस्वरूप में मान प्रकार के वचनों का प्रयोग किया जा सकता है, यही ‘मन्त्रभंगी’ है।)

मन्त्रभंगी की परिभाषा करने हुए कहा गया है कि—

‘प्रत्येकजादेकस्मिन् वस्तुप्रतिरोधेन विप्र-प्रतिरोधविकल्पना मन्त्रभंगी’^२

(प्रश्न उठने पर एक वस्तु में अविरोध भाव में एक धर्म-विषय को विप्र और निषेध की कल्पना की जाती है उसे मन्त्रभंगी कहते हैं।)

यह का अर्थ है—विकल्प, प्रकार या भेद। किसी भी एक वस्तु के किसी भी एक धर्म के विषय में मान प्रकार में ही विवेचन समझ होने से उसे ‘मन्त्र भंगीवाद’ कहते हैं।

अनेकान्त स्याद्वाद और मन्त्रभंगी

अनेकान्त दृष्टि का चरितार्थ यह है कि प्रत्येक वस्तु में सामान्य रूप में, और विशेष रूप में मिश्रता की और अभिव्यक्ति की दृष्टि में निरन्तर की प्रवेष्टा में और अनिश्चय की अवस्था में तथा मूर्च्छा में और अमूर्च्छा में अनन्त धर्म होते हैं। अनेकान्त दृष्टि का प्रयोजन यही प्रष्ट करता है कि ‘प्रत्येक धर्म अपने प्रतिपक्षी धर्म के साथ वस्तु में रहता है’। परन्तु मन्त्रभंगी की उपयोगिता इस बात में है कि वह वस्तुगत अनेक धर्मों की दोषहीन भाषा में अवस्था का विवेचना करे।

उपर्युक्त प्रतिपादन का अभिप्राय यह है कि—अनेकान्त, अनन्त धर्मात्मक वस्तु स्वरूप की एक दृष्टि है, और स्याद्वाद तथा मन्त्रभंगी उस मूल ज्ञानात्मक दृष्टि को अभिव्यक्त करने की प्रवेष्टामुक्त एक वचनपद्धति है। अनेकान्त एक लक्ष्य है और मन्त्रभंगी एक स्याद्वाद एक साधन है, उसे समझने का प्रकार है। अनेकान्त या क्षेत्र व्यापक है जबकि स्याद्वाद या प्रतिपाद्य व्याप्य है, दोनों में व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध है।

स्यात् शब्द के विभिन्न अर्थ

‘स्यात्’ पद मन्त्र की ‘वन्-भुवि’ वातु में बना है। स्यात् का ही विग्रहा हुआ हिन्दी में ‘पायद’ मिलता है।

१ आचार्य मन्त्रिण-स्याद्वादमन्त्रों ७० जगदीशचन्द्र जैन सम्पादित, (वम्बई, १९३५ ई०) कारिका २३—टीका

२ आचार्य अकर्म-सिद्धेय तत्त्वार्थराजवार्तिक सूत्र १—६ टीका।

हो सता है Perhaps May be Probable के अर्थ में इगवा प्रयोग होता है। कुछ विद्वान इसका अर्थ Some how किमा तरफ भी करते हैं। किन्तु जनन में इसका प्रयोग नम से किसी भी अर्थ में नहीं हुआ है।

भारत की पुरातन भाषाओं प्राची और प्राकृत में स्यात पत्र का रूप लिया उपलब्ध होता है। वहाँ यह वस्तु के सुनिश्चित अर्थ का साथ प्रयुक्त दिखाई पड़ता है।

स्यात शब्द का पारिभाषिक प्रयोग

जनन में स्यात् शब्द का प्रयोग एक विषय अर्थ में किया गया है। इसका अर्थ है—सापेक्ष कथित सापेक्षता का सिद्धांत। स्यात वाक्यशास्त्र के अनुसार असंघात का विधिविग्न प्रकार अर्थ पुरुष एक अर्थ का रूप है जिसका अर्थ होता है ऐसा हो या एक सम्भावना यह भी है। जनन में इसे सापेक्ष विधान का वाक्य अर्थ बनाकर अपनी अनेकान्त विचारधारा को प्रवर्तित करने का साधन बनाया गया है। इस अनिश्चयबोधक समझना कदापि सुनिश्चित नहीं है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसका उत्पत्ति और विस्तार सापेक्षता का सिद्धांत (Theory of Relativity) का नाम से किया है।

स्यात शब्द के अर्थ का आचार्य मन्त्रिण स्यातियम् अनेकान्तवाद का अर्थ है—सापेक्ष कथित सापेक्षता का सिद्धांत। स्यात पत्र का महत्व स्वीकार करते हैं। आचार्य हेमचन्द्रजी भी स्यात को अनेकान्तबोधक मानते हैं।^१

आचार्य अन्तरिक्ष देव उद्योगस्थली में अनेकान्तवाद का अर्थ है—सापेक्ष कथित सापेक्षता का सिद्धांत। स्यात पत्र का महत्व स्वीकार करते हैं। आचार्य हेमचन्द्रजी भी स्यात को अनेकान्तबोधक मानते हैं।^२

स्यात और कथित ये दोनों शब्द एक अर्थ के बोधक हैं। कथित शब्द का अर्थ है—किसी प्रकार का अर्थ। स्यात शब्द का भी यही अर्थ समझना चाहिए। किसी प्रकार का अर्थ दूरी विषय से या किसी विषय अभिप्राय से—इस प्रकार का भावना का ही नाम स्यात है।

इस प्रयोग के अर्थ का आचार्य मन्त्रिण स्यातियम् अनेकान्तवाद का अर्थ है—सापेक्ष कथित सापेक्षता का सिद्धांत। स्यात पत्र का महत्व स्वीकार करते हैं। आचार्य हेमचन्द्रजी भी स्यात को अनेकान्तबोधक मानते हैं।^३

शब्द ऐसा नहीं है जो वस्तु के पूर्ण रूप का रूप कर सके। हर शब्द एक निश्चित इतिहास से प्रयुक्त होता है और अपने विविध धर्म का धारण करता है। नगर जब शब्द में स्वभावतः विविधानुसार अनुक्त धर्म का प्रतिपादन करने की शक्ति है तब तक यह आवश्यक हो जाता है कि विविध धर्मों की सूचना के लिए एक प्रतीक अर्थ हो जा सके और धर्मों का भ्रम न हो। स्यात शब्द यही कार्य करता है वह शब्द को विविध धर्म का प्रतिपादन से जान बराबर की विविध धर्मों के अस्तित्व का चेतन करता है।

स्यात् शब्द जिस धर्म का साथ प्रयुक्त होता है उसी स्थिति के अनुरूप न करने वस्तु में रहने का तत्त्वनिर्णय धर्म की सूचना देता है।^३

स्यात्वाद् का प्रयोग

प्रत्येक शब्द का दो भाग होते हैं—विधि और निषेध प्रत्येक विधि के साथ निषेध है और प्रत्येक निषेध का साथ विधि है। स्यात शब्द में न कोई विधि है और न कोई निषेध। प्रत्येक वस्तु का विवेक द्रष्टव्य क्षेत्र काल और

१ स्यातशब्द के अर्थ का आचार्य मन्त्रिण स्यातियम् अनेकान्तवाद का अर्थ है—सापेक्ष कथित सापेक्षता का सिद्धांत। स्यात पत्र का महत्व स्वीकार करते हैं। आचार्य हेमचन्द्रजी भी स्यात को अनेकान्तबोधक मानते हैं।

२ स्यातशब्द के अर्थ का आचार्य मन्त्रिण स्यातियम् अनेकान्तवाद का अर्थ है—सापेक्ष कथित सापेक्षता का सिद्धांत। स्यात पत्र का महत्व स्वीकार करते हैं। आचार्य हेमचन्द्रजी भी स्यात को अनेकान्तबोधक मानते हैं।

३ जनन प्रयोग संस्करण प्राची १९५५ ई० पृ० ६०।





भाव की अपेक्षा में किया जाना है। विवेचन के पूर्व विवेच्य वस्तु के साथ 'स्यात्' पद का प्रयोग आवश्यक है। गौण अथवा प्रधान विवेका की सूचना उस पद के माध्यम से प्राप्त होती है।^१

'स्यात्' शब्द के साथ किसी वस्तु का विशेषण अधिक से अधिक ७ प्रकार में हो सकता है। प्रमाण करने पर भी ७ में अधिक प्रणालियों में विवेचन समभव नहीं है। वे तान प्राप्ता या भग उपनिविष्ट हैं।

- (१) स्याद् अस्ति
- (२) स्याद् नास्ति
- (३) स्यादस्ति नास्ति
- (४) स्याद् अवक्लव्य
- (५) स्याद् अस्ति अवक्लव्य
- (६) स्याद् नास्ति अवक्लव्य
- (७) स्याद् अस्ति नास्ति अवक्लव्य।

इन पञ्चनि में मूल भग तीन ही हैं। पहला दूसरा और चौथा, अर्थात् अस्ति, नास्ति और अवक्लव्य। उक्त मान भगों में से तीन द्विवर्गीय और त्रिवर्गीय हैं।

उदाहरणार्थ —

| | | | |
|---------------------|--------------|---|-------|
| (१) स्याद् अस्ति | लौकिक प्रयोग | = | नमक |
| (२) स्याद् नास्ति | " " | = | मिर्च |
| (३) स्याद् अवक्लव्य | " " | = | जीरा |

देखिये, सर्व प्रथम तो इन तीनों वस्तुओं का पृथक् पृथक् उपयोग हो सकता है, तत्पश्चात् एक को दूसरे में मिश्रित करने के उपयोग कर सकते हैं और अन्त में तीनों को एक साथ मिलाकर काम में ला सकते हैं। जैसे —

(१) नमक, (२) मिर्च, (३) जीरा, (४) नमक मिर्च, (५) नमक जीरा, (६) मिर्च जीरा, (७) नमक, मिर्च, जीरा,

उपर्युक्त ७ भगों या प्रणालियों में वस्तु की विवेचना समभव है। उनमें अधिक में नहीं।

विवेचन

(१) स्याद् अस्ति

पदार्थ कश्चित् सत् है। उदाहरणार्थ एक घड़े का विवेचन करना है। घट के अनन्त धर्मों में एक सत् (Existence) अस्तित्व है। प्रश्न हो सकता है कि वह अस्तित्व किन अपेक्षा में है? उन्हीं का उत्तर स्याद्वाच्य या अनेकान्तवाद की पद्धति में पहले प्रकार में प्राप्त होता है।

१ इस मर्म में देखिये — आचार्य अकलकदेव का 'लघीयस्त्रय' जहाँ उन्होंने उल्लेख किया है कि चक्षु और श्रोता यदि शब्दशक्ति और वस्तु के स्वरूप के विवेचन में निपुण हैं, तो 'स्यात्' पद के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। उनके अन्वय में भी अनेकान्त का प्रकाशन हो जाता है —

अप्रयुक्तोऽपि सर्वत्र, स्यात्कारोऽर्थात्प्रतीयते।

त्रिवी निपेधेऽप्यन्यत्र, कुशलश्चेत्प्रयोजकः ॥

घट का अस्तित्व वक्ष्यित स्यात् है स्यात् अस्ति घट अपने द्रव्य, रस, रस और भाव की अपेक्षा यह घटा है। यह घटे के अस्तित्व की विधि है अतः यह विधि भग है। परन्तु यह अस्तित्व की विधि स्व की अपेक्षा है पर को अपेक्षा न नही है क्योंकि—

सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च

यत् पवित्र स्यादस्ति इति वचनपद्धति की विवेचना है।

यदि स्वरूपेण स मित्र पर स्वरूप स भी घटे का अस्तित्व हो तो घटा एक घट है क्यों रहे ? वह विचार क्यों न हो जावे ? और वही स्थिति में उसमें घट-व्यवहार के अतिरिक्त वस्तु अस्ति के क्रिया-कारण का समाप्ति हो जाना चाहे और वही हा सत्ता शक्ति नही है। अतएव यह स्पष्ट है कि घटे की सत्ता किसी एक अपेक्षा से है सब अपेक्षाओं में नही।

(२) स्याद नास्ति

दूसरा बार जब हमें का वचन होता है यत् कहा जावेगा कि पूर्व में अस्ति घट प्रतिपादन हुआ है उसका यदि उससे छोट या उसमें बड़े घट का दृष्टि में रख कर अथवा सोच पीछे या कपड़े का दुष्टि में रखकर प्रतिपादन किया जाय कि पूर्व स्थिति का अनुपपन्न क्या घट है तो उत्तर होगा— स्यादनास्ति घट

यहां घट की सत्ता का निषेध परन्तु पर-रूप पर-रस और पर-भाव की अपेक्षा से किया गया है। अतः घट वक्ष्यित नहीं है घट स मित्र वस्तु सत्ता चाहे अस्ति की—परवस्तुत्व की अपेक्षा स घट नहीं है।

(३) स्याद अस्ति-नास्ति

प्रायः वक्ष्यित सत् अर्थात् उभय रूप है। पूर्व वर्णित घटे का स्पष्ट रूप यह है कि घट सत्ता है किन्तु सोच पीछे या कपड़े की अपेक्षा यह नहीं है।

यहां पर स्व की अपेक्षा सत्ता का और पर की अपेक्षा अस्तित्व का अर्थान्तरों का किन्तु प्रमाण वचन दिया गया है।

प्रथम और अन्तिम विवरण पद्धति प्रमाण विधि और निषेध का स्वतंत्र रूप स पक्ष पक्ष प्रतिपादन करती है जब कि यत् तीसरी पद्धति विधि निषेध दावा का किन्तु प्रमाण उल्लेख करती है।

स्याद अस्ति नास्ति घट। स्वकीय द्रव्य, रस, रस और भाव की अपेक्षा घटा है चित्त पर द्रव्य रस रस और भाव की अपेक्षा स घटा नही है।

(४) स्याद अवयवतय

अवयवतय का अर्थ है क्या है? ता शक्ति। जब एक ही समय में विधि और निषेध दोनों की विवक्षा होती है तब दोनों को एक ही समय में एक साथ व्यक्त करने वाला कोई शक्ति न होने से उक्त अवयवतय कहते हैं।

घट की शक्ति सीमित होती है। जब वस्तु की विधि घट का विवरण होता है तो निषेध पक्ष उपनिषत् हो जाता है और जब निषेध पक्ष का प्रतिपादन किया जाता है तो विधिपक्ष शक्ति हो जाता है यदि वस्तु की विधिनिषेध पक्ष का पक्ष पक्ष का क्रम-क्रम-क्रम प्रमाण करना हो तो पूर्ववर्तिन तीन विवरणपद्धतियों में प्रमाण (१) अस्ति (२) नास्ति (३) अस्ति नास्ति घट का द्वारा काम चल जाता है परन्तु विधिनिषेध की एक साथ अस्ति स्थिति में काम नहीं है जिसे अवयवतय घट के द्वारा हल किया गया है।

इस पद्धति में यह भी ध्यान रहना है कि वस्तु का स्वयम् अस्तित्व नास्ति का वाचक शक्ति नहीं है।



इनविषे विद्विनिषेष् का युगपत् कथन अगम्य है। परन्तु स्मरणीय न कि यत् अवस्तव्यत्वं तस्या न्यूनोपवेन नही है। अतः 'स्याद् अवस्तव्य' पद ने विदित होना है कि यो के स्वभाव में पूर्ण अज्ञित हो तो दृष्टिहीन है, वे एक साथ रहे नहीं जा सकते। यह है 'स्याद् घट अवस्तव्य'।

(५) स्याद् अस्ति अवस्तव्य

कचचित् अमत् है किन्तु अवस्तव्य। उमा अभिप्राय है—घट है, और अवस्तव्य भी है। किसी विशेष दृष्टि में घटे को लाल कह सकते हैं, किन्तु जब दृष्टि का स्पष्ट निर्देश न हो, तो यो के रंग का वर्णन अगम्य हो जाता है, अतः अपने स्वभाव में पटा है तो, किन्तु उमा का स्पष्ट न जाने के कारण उमा प्रमाणित नहीं कर सकते।

(६) स्यात् नास्ति अवस्तव्य

कचचित् अमत् है किन्तु अवस्तव्य। यहाँ पर प्रथम समय में विशेष और द्वितीय समय में एक साथ युगपत् विद्विनिषेष् की विवक्षा होने ने 'स्यात् नास्ति घट अवस्तव्य' पटा नहीं है, और यत् अवस्तव्य है, ऐसा कहा जाना है।

(७) स्यादस्ति, नास्ति, अवस्तव्यश्च

पदार्थ कचचित् अमत् है, कचचित् अमत् है, माय ही उभय दृष्टिगोचरी या युगपत् प्रतिपादन गम्य नहीं है। किसी दृष्टि में घट है, किसी दूसरे पदार्थ की विवक्षा में घट नहीं है, और परस्पर विरोधी इन दोनों धर्मों का एक साथ निरूपण करना गम्य नहीं है।

उपनिषद्विचित मानो वचन-पद्धतियाँ अपनी अपनी मार्गगत होती हैं, तथापि उमा उमा रूप में वस्तु-स्थिति के एक अंग का ही प्रकट करती है, उनके मूल में स्वभाव जो नहीं। उमात्रिण् जैनदर्शन उन बात पर बल देता है कि पूर्वविवेचित मान वचन-पद्धतियों में ने प्रतिपादनकर्ता अपने अभिप्राय के अनुसार चाहें जिस वचन-पद्धति का उपयोग करे, परन्तु उनके पूर्व 'स्यात्' शब्द अवश्य मनुक्त रहे, जिसमें यह सुस्पष्ट ज्ञान होना रहे कि वस्तुस्थिति में अन्य सम्भावनाएँ भी हैं। अतः प्रतिपादनकर्ता का कथन सापेक्ष रूप में ग्रहण किया जावे।

कल्प प्रतिपादित भिन्न भिन्न दृष्टियों में विचार करने पर ज्ञान होता है कि एक ही वस्तु के अनेक समन्वय या पक्ष होते हैं। प्रत्येक वस्तु एक दृष्टि में भावात्मक है तो दूसरी दृष्टि में अभावात्मक किसी वस्तु के सम्बन्ध में हम जो विचार करते हैं, उसकी मर्यादा हमारी विशेष दृष्टि पर निर्भर करती है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विचारभूमि ज्ञान तथा हमारे दृष्टि करते हैं। हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि किसी विषय संबंधी कोई एक मत ही एकान्त मत है, दूसरा अभिमत भी गम्य हो सकता है।

जैन तीर्थंकरों ने मानव को अहंकारमूलक प्रवृत्ति और उसके स्वार्थी कामनामय मानस का स्पष्ट दर्शन कर उन तत्वों की ओर प्रारम्भ से ध्यान आकृष्ट किया है, जिसमें मानव की दृष्टि का एकगोचर दूर हो और उसमें अनेक-गिता का समावेश हो, वह अपनी दृष्टि की तरह माननेवाले मनुष्य की दृष्टि का भी सम्मान करना भीचे, उसके प्रति महिष्णु बने। दृष्टि में इन प्रकार के नाशों का समावेश हो जाने से उसकी भाषा परिवर्तित हो जाती है, उसमें स्वमत की हठाग्रहिता हटकर समन्वय की प्रवृत्ति आ जाती है। उसकी भाषा में दूसरों के निरस्कार का भाव न होकर उनके अभिप्राय, विवक्षा और अपेक्षादृष्टि को समझने की क्षमता आ जाती है। यही स्थिति उसकी मानसिक शुद्धि अर्थात् स्याद्वादमय वाणी के स्वीकारण की है और वैसी स्थिति में मानव का आचारव्यवहार पूर्णतः 'मनस्येक वचस्येक कर्मण्येकम्' के अनुरूप हो जाता है।

अनवज्ञानवादी और स्वाभाविकी का पक्षन समझने में अनेक कठिनाई और चौड़ी प्रश्नोत्तर और धीमा या विज्ञानों की बहुत भ्रम हुआ है। उमर अनेक कारण रहे हैं परन्तु अब उन मना या आत्मिकता का विचारपूर्वक निराकरण हो चुका है और अनवज्ञानवादी का मानवीय रूप का मनीषित्वन एतद्दृष्टि से स्वीकार करने पर।

स्वाभाविकी या अवेज्ञानवाद मित्रता में यह स्पष्ट है कि जना की दृष्टि जिनकी उम्मीद है। जन ज्ञान में आने निकट दिवसों की मगर नही समझने प्रयुक्त अथ दृष्टिमान के अर्थ में समझने हैं। हाँ वे जिनका एक भाग की दृष्टिमान का नहीं मानने बल्कि एकी दृष्टिमान के अवेज्ञानवाद (Fallacy of exclusive particularity) का लोप द्वारा अवेज्ञानवाद है। समझने में अवेज्ञानवादी का नष्ट बन्धुत्वानि में इस अवेज्ञानवाद का धार विराट् किया है।^१

भारतीय दार्शनिकों के सम्मोह व्यवस्था विज्ञानों का यह अविमर्श अन्तर्गत सुविचारित है कि 'एक अवेज्ञानवाद' का दाव यह सुझा देने की अथवा सुझित जना के दिवसों है। बगी त्रिणी अथवा प्रायः या प्रायः दार्शनिक न मरी।^२

अवेज्ञानवादी यह मित्रता अनेक प्रकार में अन्तर्गत व्यवस्था है। इसका मुख्य अन्तर्गत तथा मनन की नितात भाव प्रकृति है। समस्त विज्ञानों और मन्त्र अन्तर्गत आदि की प्रायः अथवा मन्त्रान्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत मित्रता के आधार पर आवायप्रवर अन्तर्गत अन्तर्गत स्वाधीन के अब मन्त्रमन्त्र १७ की वष पक्ष अन्तर्गत महाभारत का जन ज्ञान का मन्त्रप्रवरीय अन्तर्गतों का निवारण प्रायः तथा सर्वाम्बुधकारों तीव्र का रूप में स्मरण किया है—

सर्वाम्बुधकार निरतम् सर्वोदय तीर्थमिदं तवम्।^३

आज जबकि सम्पूर्ण विश्व दार्शनिकों के दूर पर बटा हो और एतद्दृष्टि Atom Bombs के जार पर ऐंठा हो तब इस प्रकार के अवेज्ञानवादों विचारों के अन्तर्गत से अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत और अन्तर्गत सा आदि सुप्रवर्तित नष्ट हो सकती है और अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत हो सकती है।

१ इतिहास के अनु विचारों में पृ. १४—१५.

२ इतिहास के मनीषित्वन अन्तर्गत अन्तर्गत और हाँ धीरे-धीरे अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत पृ. ५४

३ आवाय मन्त्रमन्त्र सुप्रवर्तित अन्तर्गत ६१



जैनदर्शन की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

प्रो० निहालचन्द्र जैन

एम० एस-सी०

महापरा (शान्ति)



(१) धर्म और विज्ञान के समन्वय की आवश्यकता

आज के इस वैज्ञानिक युग में बुद्धिजीवी मानव अपने को निरन्तर गतिशास्त्री बनाने का प्रयत्न कर रहा है और वह उन्हीं नयी एवं तथ्यों को मान्यता दे रहा है, जो प्रयोग-परीक्षण (Experimental verification) की कमीटी पर खरे उतर रहे हैं। इसके बावजूद वह अपने भीतर एक घूमता (vacuum) और अज्ञान का गहरा अंधकार पा रहा है। लगता है, शक्ति-उपलब्धि में शान्ति खोना जा रहा है। इसमें एक तथ्य सामने अवश्य आया है कि जिन्होंने मात्र विज्ञान की खोज की, वे शक्तिशाली हो गये पर अज्ञान और विपन्नता में डूबे हुए हैं। जोर जिन्होंने मात्र धर्म का अनुसंधान किया, वे शान्त हो गये पर अशक्त और पिछड़े हैं। ऐसा मानव या राष्ट्र जो अपने को शक्ति और शान्ति में अखण्ड रूप से प्रवर्तमान रखना चाहता है, उसे विज्ञान और धर्म, दोनों की शरण लेनी होगी, क्योंकि एक की भी कमी से मानव की साधना और राष्ट्र की संस्कृति अधूरी रह जायेगी। इतिहास इसका मासो है कि ऐसी शक्ति, जो शान्ति में अटूटी रही, क्रूरता और संहारकता के विकृति रूप में अपनी ओर मानव का उसमें कुछ शुभ नहीं हो पाया।

विज्ञान ने जहाँ मानव को ज्ञान (knowledge) में भरा, वहाँ धर्म की रिवनता में वह विवेक-शून्य हुआ। और फिर विवेकहीन ज्ञान ने अणुवस्त्र और उद्‌जन धर्मों का निर्माण कर मानवसंस्कृति पर कुठांगघात किया, जिसका दोषारोपण विज्ञान पर थोपा गया। मानव ज्ञान की आवश्यकता के साथ विवेक की अनिवार्यता भुला बैठा। परिणाम में विवेकशून्य ज्ञान से उसमें गति (speed) तो भरी लेकिन वेग (velocity) उत्पन्न नहीं किया और जिना वेग के वह दिशा-भ्रष्ट हो मात्र भटकता रहा। लक्ष्य की निश्चिन्ता मात्र गति करने से नहीं मिल सकती, उसके लिए तो एक खास दिशा में जाना होगा।

मानव ने धर्म (अन्तर्मुखी चेतना) के विस्मरण-मूल्य पर शक्ति की होड़ में सघर्ष खरीदा है, जो मात्र विज्ञान रूपी करघे से मोत का कफन बुनने जैसा ही है।

एतएव धर्म और विज्ञान में समन्वय लाने की अनिवार्य आवश्यकता है। यद्यपि विज्ञान का विषय उन प्रयोगों का अध्ययन और निरीक्षण है। जो प्रकृति की गतिविधियों से सम्बद्ध है, जबकि दर्शन वहाँ में शुरू होता है जहाँ विज्ञान अपनी अन्तिम पगाकाष्ठा पर पहुँच जाता है। फिर भी सत्य हर पहलू से सत्य होता है और इसलिए धर्म या दर्शन के सत्य भी किसी भी तराजू के पलड़े से तोले जा सकते हैं। यह विश्लेषण, सिद्धान्तों के प्रति अधिक आस्था पैदा करे वगैरह इसका उद्देश्य है।

(२) जैनदर्शन का परमाणुवाद और आधुनिक विज्ञान की मान्यता

जैनदर्शन ससार की रचना छह द्रव्यों (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) से हुई मानता

है। इनम म वेवत पुनल द्रव्य (matter and energy) मूक्तिक या रूनी हैं णव अमूनिक। मुख्य रूप मे यन ससार जीव और पुनल वा गमियन है णव चार द्रव्य इनने सहायक हैं।

पूबि भीनन विनान मूक्तिक पुनल द्रव्य से नी सम्बन्ध रखना है इमल्लि यहाँ पुनल द्रव्य (परमाणु यान) की चर्चा दणन और विनान की पठभूमि म करीगे।

पुनल न पनी से मिलकर बना आ है। पनल पुन विमका अथ है मिन्ना (Combination) और दूसरा यन—विमका अथ गलना या विनान (Disintegration) स है। इस घटना की इस प्रकार समझाया गया है कि एक सन्ध (Molecule) दूसरे स्निध या सन्ध सन्ध से मिलकर अधि रूध या स्निध पुनपुन सन्ध उत्पन्न करेगा। इसी प्रकार एक सन्ध म से कुछ स्निध या रू सन्ध निरत जान म कम स्निध या सन्ध गन मुक्त सन्ध प्राप्त होगा।

बनानिक गारिभापिक णनी म स्निध और रूध परमाणुओं स तात्पर्य अविभाय घनामक विद्यमय वण (Positive charged particle) और ऋणात्मक विद्यमय वण (Negative charged particle) की है। इनो दाना प्रकार क वणा से मिलकर उन्मोन् (Neutral) परमाणु (Atom) बनता है जिन्ह पदम प्रोत्तन और ऋबद्धान (Electron) नाम स पुकारा जाता है। इनने अणवा मूद्रान उन्मोन् वण भी परमाणु म अणना स्थान रखता है।

परमाणु नी रचना मे इलेक्ट्रॉन (Electron) नामि (Nucleus) के चारु आर बाह्य परिधवा म भीवगति से घूमने र ते हैं। परमाणवा क बीच णवकाली की सहकारिता (Co valency) और विद्यत-समोत्रकता (Electrovalency) स जो वधना (Combination) होती है वह ठीक जलनन क मिदालत से मेल खाती है।^१ इगव अनुसार दो वे ही परमाणु मिलकर जिनी योगिक क स्वयं बनने जिनक बाह्य रूध म इलेक्ट्रॉन (रूधना) के अविभागी प्रतिदेन की सधवा समान नही होती तथा दा अधि गन बाह्य क साथ ही वध हाता है। चान यह वध स्निध स्निध या रूध रूध अथवा स्निध रूध वा हो।

उन्मोन्नाय —साधारण नमक सोडियम और क्लोरीन परमाणुआ स मिलकर बना होता है जिनर बाह्य रूध म कम णव और सात इलेक्ट्रॉन हाते हैं। परन्तु अरगन (Argon) कप्टान (Krypton) जेनॉन जमी अजियागील गमा क परमाणु जिनक बाह्य-रूध मे आठ आठ इलेक्ट्रॉन हाते हैं कमी भी थापस म वधना का प्राप्त नहीं हाते हैं।

१६ना सता वे प्रारम्भ म डाल्टन न अपने वारमाणविक सिद्धान्त (Dalton's Atomic theory) में यह कहा था कि एक तथ वे परमाणु दूसर तथ क परमाणुआ में नही बनन जा मरने लेकिन जननन वे अनुमार पदम णव (जिनने घातन विनान सम्मन १ २ तथ हैं) अपने द्रव्य-ननण क अनुसार एक तथ की पर्याय (Modification) स दूसरे तथ की पर्याय घाण कर मरता है। णव तथ की पन्ति आयुनिक भौतिक विनान क तजान्गणन मरता (Radio-activity) न कर दो है। जिनक अनुसार गूरनियम अथवा गनियनियम घातु क घण णनी क मूद्रुहनावा का वार करने क बाह्य मोसा (Lead) क अणु में परिवर्तित हो जान हैं। साना म प्राप्त होन यानी विविध घातन और होरा (Diamond) आदि णमी सिद्धान्त स णव रूप मे दूसर रूप मे उमी पदो क गम म म यन सन्धने र त है।

परन्तु परमाणु द्रव्य नही मूलभूतम अविभाय वण परमाणु अविभाय है य ण रतिन है एक प्रदेगा तथा

१ गुन साम्ये सानुनाताम ॥३५॥ ह्यमिकादिगुणानां तु ॥ ६॥ बभेऽधिको पारिजामिको च ॥

—सावा गुन अ ५



मूल्य है। परमाणु-द्रव्य की पुष्टि आधुनिक के परमाणुवाद के अन्तिम नियम तथा ऊर्जा-अविनश्यता के सिद्धान्त (Principle of conservation of energy) के ही है। जिसमें अनुमात्र द्रव्य न तो पैदा किया जा सकता है न ही नष्ट, परन्तु उसके रूप में ही परिवर्तन या भ्रमण है। अर्थात् सम्पूर्ण रक्षाण्ड की विभिन्न उर्जाओं का मान हमेशा एक ही रहता है।

पुद्गल द्रव्य की अन्य कुछ और विशेषताएँ हैं जिनको विज्ञान के आशय में अध्ययन में लाते हैं—

- (१) पुद्गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध, और चार्म के चार गुण पाये जाते हैं।
- (२) पुद्गल-परमाणु गतिशील, सज्जित तथा अन्तर्गत शक्ति बाण्ड होता है।
- (३) गरम, नरम, मृदुलता, स्थूलता, सन्धान (आकार), भेद, विभक्त्य, ठोस, गताव, और उन्नत के मध्य पुद्गल द्रव्य के पर्याय हैं।

(i) पुद्गल-परमाणु की गतिशीलता — पुद्गल के एक परमाणु में एक समय में (Absolute unit of time) १४ लाख गमन करने की जो शक्ति वस्तुओं है उन्हीं उन्हीं गतिशीलता का प्रमाण मिलता है। इनका ता वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा बताया दिया कि प्रमाण-विण्ड (Quantum) का वेग १८६००० मील प्रति सेकण्ड है। ये प्रमाण सिद्ध जो कि प्रमाण-विण्ड (Photons) के उद्गार हैं पुद्गल के रूप हैं। विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों, प्रकाश-विण्डों, ताप-विण्डों आदि के गमन का तरंग-सिद्धान्त (Wave theory) उन बात का द्योतक है कि पुद्गल परमाणु नीचतम गति रखता है और अन्त में परमाणु रचना में उन्नतियों का जन्म बाह्य बलों से तीव्रतम गति से हमेशा घूमने रहता उस बात की पुष्टि का सब-प्रमाण है।

(ii) पुद्गल अन्तर्गत शक्ति का उद्गार :— आइन्स्टीन के द्रव्य-ऊर्जासूत्र (mass-energy relation) $[E=mc^2]$ जहाँ E =ऊर्जा m =द्रव्य, c =प्रकाश-वेग] ने यह स्पष्ट कर दिया कि द्रव्य की मात्रा को ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। एक ग्राम यूरेनियम धातु जब शक्ति में परिवर्तित होती है तो उसमें उन्नीसवीं शक्ति प्राप्त होती है जितनी ३ हजार टन कोयला जलाने में मिल सकती है। इसी प्रकार Annihilation Phenomenon द्वारा यह देखा गया कि शक्ति को द्रव्य में बदला जा सकता है। डॉ. भाभा ने अपनी Cosmic Rays की छोगी में यह बताया है कि निम्नलिखित द्रव्य वाले प्रमाण-विण्ड (Photon), अ-कण (a-particles) से मिलकर बनते हैं जो कि शक्ति के रूप में होते हैं।

इसी प्रकार जब एक शक्ति दूसरी शक्ति के रूप में परिवर्तित होती है तो परिणाम में भारी अनिश्चित उर्जा निष्पत्ती है। जो इस बात का प्रमाण है कि पुद्गल अन्तर्गत शक्ति रखता है।

(iii) द्रव्य — पुद्गल परमाणुओं के द्रव्य की प्रक्रिया पहिले ही बताये हैं। आगे कर्म सिद्धान्त में कर्मण वर्णना रूप पुद्गल परमाणु, जो कि माय में द्रव्य को प्राप्त होते हैं, बताये हैं।

(iv) शब्द — वैज्ञानिक दर्शन का मत था कि शब्द (ध्वनि) आकाश द्रव्य का गुण है। परन्तु आधुनिक प्रयोगों ने जैनदर्शन के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए सिद्ध कर दिया है कि यह पुद्गल द्रव्य की पर्याय है क्योंकि ध्वनि को ग्रामोफोन या टेपरिकॉर्डर द्वारा बाँधा जा सकता है। मराहक (Receiver) द्वारा पकड़ा जा सकता है। वायुमय द्वारा भेजा जा सकता है। यह परावर्तित होकर प्रतिध्वनि (Echo) उत्पन्न करता है। तथा हवा के माध्यम से अनुप्रस्थ और अनुदैर्घ्य तरंगों में गमन करता है। गमन करने का अनुनाद नली (Resonance-tube) द्वारा जाना गया जा सकता है। चूँकि इसे मूलिक वर्णोन्मिष्टा प्रहय करनी है इसलिए, भले ही बाँझों में वह न दिखे, मूलिक ही है। इस प्रकार शब्द के परम्पर स्पर्श में उत्पन्न शब्द पुद्गल की ही पर्याय है।

(v) छाया — जिस प्रकार ध्वनि को रोना या पकड़ा जा सकता है उसी प्रकार छाया को भी तरंगों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजकर टेलीविजन द्वारा पकड़ा जा सकता है। जिसमें द्रव्य की प्रतिच्छाया

$$(dx)^2 + (dy)^2 + (dz)^2 + (ict)^2 = 0$$

जैनदर्शन और विज्ञान

श्री महावीरसिंह मुर्धिया,

एन० एस०सी०

उदयपुर



जैनदर्शन एक प्राचीन वैज्ञानिक दर्शन है। निम्नलिखित विज्ञान-जगत् में हो रहे निरन्तर जागरणों तथा अनेक वैज्ञानिक मान्यताओं का अभूतपूर्व वर्णन जैन ग्रन्थों में किया गया है। यही नहीं, अनेक ऐसी जटिल समस्याएँ, जिनके बारे में आज के वैज्ञानिक प्रायः हतप्रभ हैं, उनका बहुत बड़ा समाधान भी कई जगह पर जैन आगमों में प्राप्त होता है। वनस्पति में जीवन है, यह मान्यता जैनदर्शन की बहुत पुरानी है। वैज्ञानिक लोग इन बातों को मानने के लिए तब तक तैयार नहीं हुए जब तक कि श्री जगदीशचन्द्र बसु ने अपने ग्रन्थों के द्वारा यह पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं कर दिया। इसी प्रकार पानी में भी कीड़े (germs) हैं और इसलिए जैन माधु कच्चे पानी का उपयोग नहीं करने हैं, उसे वैज्ञानिकों ने माइक्रोस्कोप के आविष्कार के बाद ही मान्यता दी। वास्तविकता तो यह है कि जैनदर्शन का यदि वैज्ञानिक रूप में गंभीर अध्ययन किया जाए तो विज्ञान-जगत् को अभूतपूर्व लाभ ही होगा ही, साथ ही वैज्ञानिकों की अनेक समस्याएँ, जिन्हें वे दिन-रात प्रयोग कर मुलजानें में ले रहे हैं, स्वयं ही हल हो जाएँगी।

जैनदर्शन और परमाणुवाद — जैनदर्शन में परमाणुवाद पर विस्तृत वर्णन किया गया है। आश्चर्य तो यह है कि जैनदर्शन में जिस परमाणु का वर्णन आया है, वह आज के परमाणु से भी अत्यन्त सूक्ष्म है। जैनदर्शन के अनुसार वैज्ञानिकों के परमाणु (Atom) से भी छोटा कण, जो अविभाज्य है, अचल्य, अमेट, अदाह्य, और अघात्य है, विसी भी उपचार, उपाय या उपाधि ने जिसका भाग नहीं ले सकता, जिसी तीक्ष्णानिरीक्षण यन्त्र में जिसका विभाजन नहीं हो सकता, जो अग्नि में जलता नहीं, जिसकी न उमड़ाई है, न चौड़ाई है और न गहराई है, ऐसे इवार्ड रूप का परमाणु माना गया है। सूक्ष्मता के कारण वह परमाणु स्वयं ही आदि, स्वयं ही मध्य और स्वयं ही अन्त है।

आधुनिक विज्ञान ने परमाणु के भीतर भी कई कणों को खोज निकाला है, जो कि परमाणु की बनावट जानने में बड़े सहायक हुए हैं। तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक लोग जिस छोटे कण को परमाणु समझ बैठे थे, अब वे ही उससे भी छोटे छोटे कण, यानि इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, मेयॉन, पोजीट्रॉन, न्यूट्रिनो आदि अत्यन्त सूक्ष्म कणों का पता लगाने में समर्थ हुए हैं। उपर्युक्त कण भी जैनदर्शन के परमाणु से बड़े हैं। स्पष्ट है कि आगे बाने वाले आविष्कार जैनदर्शन के परमाणु की यथार्थता को पुष्ट कर सकेंगे। वैज्ञानिक प्रगति बड़ी तेजी से हो रही है और अब तक परमाणु के भीतर इस प्रकार ३३ कणों का पता लगा गया है। यह विज्ञानपूर्वक साधिकार कहा जा सकता है कि सूक्ष्म न सूक्ष्म कण के अस्तित्व का पता भी विज्ञान प्राप्त कर मकेगा।

जैन शास्त्रों में परमाणु की गति के सम्बन्ध में बताया गया है—“परमाणु एक समय में कम से कम एक आकाश-प्रदेश का अतिक्रमण कर सकता है और अधिक में अधिक एक ही समय में चतुर्दश रज्ज्वात्मक लोक के पूर्व चरमान्त से पश्चिम चरमान्त या उत्तर चरमान्त से दक्षिण चरमान्त तक पहुँच सकता है। ‘समय’ एक जैन पारिभाषिक शब्द है। परमाणु की तरह वह काल का अन्तिम टुकड़ा है। स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि आँखों के पलक के एक बार उठने या गिरने मात्र में अमर्य समय व्यतीत हो जाते हैं। इस एक समय में परमाणु चतुर्दश रज्ज्वात्मक मारे विश्व का भ्रमण करता है। यदि एक हजार मन लोहे के गोले को इस अनन्त आकाश में छोड़ा जाए और वह गोला छ महीने तक गिरता ही जाए, इस अवधि में जितने आकाश-प्रदेश का अवगाहन गोला करता है, वह एक रज्ज्

है। यह प्रमाण ऐसे चोट रज्जुओं का है। अब एक समय में हम छोटे से उग छार तक पहुँचने वाला परमाणु अत्यंत लोच गति करता है।

आधुनिक विज्ञान ने भी अब और परमाणु की गति का छाज निराला है। एक एक्स्ट्राएन अपा का म १ मीटर प्रति सेकण्ड का रवदार में गति करता है। प्रकाश की गति १८६० मीटर प्रति सेकण्ड। हारे आदि टोम पन्थ के अणुओं (Molecules) की गति प्रत्यक्ष १६० माल है। सुप्रसिद्ध पन्थानक जनक आइस्टीन के अनुसार प्रकाश की गति अतिम है अथवा रोड भा वण १८६० माल प्रतिसेकण्ड की गति में अतिम न होकर सक्ता है। बाकी समय तक बसालिक गणन में यह मापना का और आइस्टीन का म निष्कर्ष सक्ता है। एका मा कथा पर माप का पक्कवण प्रत्यक्ष मात अतिम न माना जाने गता है। एका मा कथा की प्रकाश की गति में मा अधिका गति प्रान का गई है। य न सम्भव है आ वा न सव आविष्कारों के कस्ववण बन्धानक अभी तक प्रत्यक्ष तथ्यो म भी आम यद्वन म सक्ता है सक्ता।

जनमान के अनुसार बांटे से परमाणु एक निरन्तर आवर्तगत का पर न हैं और कभी कभी ये परमाणु पनीधन होकर ब न छा म जाका म म सक्ता जात है। पन्थ की सू म परिणति का मव य म बन्धानिना न पक्कवण परमाणु सक्ता न। यह है किन्तु आय निरन्तर निरन्तर पन्थों का पना सक्ता है। परमाणु की सू म परिणति का मव य म जन बागनिना द्वारा कही गई बाता का पुष्टि करत हैं। एक एक स्वसायर पीन पन्थ के टकड़े म और उतने ही बने लाटे के टकड़े के बजन म बाका अ कर हाता है। इन निरन्तर प्रकाश म एा भी प्रप्रिण देख गय है जो प्पलिनम घातु म भा दोहारा घुना मपन हैं। एा जाका पीय नि म म कुष्ठ पिण म सा प तय बतना सक्ता म धरा है कि एक वषुविक इव म ७७ गन सक्ता हाता है। सक्ता पन्थ तारा जा पन्थ ही म लोका गय है उतक एक वषुविक इव म १६७४० सक्ता बतना हाता है।

जनमान के अनुसार एा स छा एक बाल वण म अन त परमाणु होत हैं। एक एक क्व वक्ताता है। एक प्प्रिणैममक अर्थात् परमाणुका का भी हा सक्ता है। नात्यय म एा नि बिता भा स्वय का बनि नाता ही जाता रहा तो एक स्वय अक्क स्वय म बट जागया। विज्ञान के क्षम म बा माना गया है कि एक बट पानी के अक्कर ५ लाख स्वय होत हैं तथा इतम भी अधि हो सक्ता हैं।

सक्ता वष पुव प्रतिपातिन जनमान का परमाणुवाक बाज भी बिन्दु नया गता है। बाज के इस मक्कप्रधान युग म तय परमाणुवाद एक गहेता बना हुआ है तो उत युग म जब प्रयोगालाए और याक्क माघन नही म जनमानिनी त परमाण की सू मना का जो बजन बिना है नि बष ही अन्तिदी है।

यह पन्थी लोच — मानवमस्तिष्क म पन्थी हक्का ही एक स्वय वन कर रही है। पन्थी बज बनी स्वरा नाग बज होना और अभी गया देवस्था है। नि प्रकता की मनुष्य सक्ताता रहा है। मनुष्य का नात उता या आगे बढ़ता गया पन्थ की वक्ताता उमक निए निरन्तर हाती म। प्राचीन नि धर्मावधिवाया का अक्काम बा नि पन्थी म्मर की कथा है और पापाम के मक्कवण पर टिकी म है। युवानिया का बिन्दास था कि पन्थी बारह वक्को पर टिकी हुई है। आकार के बार म भी माना प्रचार क मय है। बिना न पन्थी का नक्क ममान माना तो बिना न वक्कन के ममान।

आधुनिक विज्ञान म भी पन्थी का उत्पत्ति के बारे म म माना गया है कि वम स मय दो जय मय पुव एक तारा आका म इत्ता हुआ सूय क पात आया। जिस प्रकार हमारी पन्थी पर सूय और च म बार पन्थ करत है उमी प्रकार उम तारे ने भी सूय की सक्ता पर चार पदा बिब हाये और एक सक्कर मर सूय की सक्को मना पर क गई। यो या व तारा निक्क आया व म्मर एक क्वे पक्क का म्मर जेनी म है। बागत्तर म पक्क व टकड़े टकड़े म गये और व छो म्मर अपने सूय क बाका बार धूमने गये। यो हमार छाज और व पाट हैं जिनम पन्थी भी एक है।



पृथ्वी के भविष्य के बारे में विज्ञान का मन है कि थोरे थोरे पृथ्वी की परिकल्पनाओं में मध्य होती जा रही है। अभी पृथ्वी का पुरी का परिकल्पना करने में २४ घंटे लगते हैं किन्तु पहले यही वह सीतलार घटे में ही जलती परिकल्पना समाप्त कर देनी थी। इन समय का घटे में जित और दो घटे की रात होती थी। एक यन्त्री अवधि के बाद पृथ्वी की गति इतनी मन्द हो जायगी कि २४ घंटे का अक्षराय, १४०० घंटे का भी जायगा। गति के साथ पृथ्वी की उपाता भी कम होगी जायगी और स्वतन्त्रता भी कम होगी जीत में पृथ्वी पर के प्राणीगत का ठोप हो जायगा। यह भी हो सकता है कि कभी वह सारी पृथ्वी उल्टा जा होकर अपने पुरी में बिखर हो जाय।

पृथ्वी की उत्पत्ति विज्ञान ज्ञाति के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में माना गया है कि विश्व की अन्य पृथिवियों में
 ने हमारी यह पृथ्वी (निर्वाण) पर है। हमें ज्ञात की अन्तःकाय में पृथ्वी २ अन्य पृथिवी है। की नीचे
 की अन्य पृथिवी है। उस प्रकार यह चतुर्विध रचनात्मक सम्बन्ध विश्व है। यह साध्य है और अन्य शीतलता व
 अन्य समुद्रात्मक यह हमारी पृथ्वी की उत्पत्ति पर साध्य होता है। कारण यह है कि पृथ्वी न सभी वनी, और
 न हमला गई अन्त है। न यह पूर्व में हठी की न चतुर्विध उत्पत्ति हुआ। पृथ्वी वनीति बाद में ही उत्पत्ति प्राप्त
 न गहरी। वैज्ञानिकों का यह विचार नहीं एक दृष्टिमान है। पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो माना प्रकार के
 विचार हैं वे गलत कि शी लगे हैं।

[illegible]

वैज्ञानिक आज हम तथ्य की ओर से दृढ़ हैं कि अन्य ग्रहों पर भी जीवन है अथवा नहीं ? माना प्रश्न के प्रश्न के द्वारा अध्ययन किया जा रहा है कि मानस्य पर मनुष्य का निवास सम्भव है या नहीं ? किसी भी उत्तरों की वृत्ता में वह भी माना जाता है कि जिन प्रश्न आज हम पृथ्वी के निवासी अन्तर्ग्रह में नये नये गैरकेंद्र छोड़कर पहुँचने की योजना कर रहे हैं, उसी प्रकार सम्भव है हम पृथ्वी पर भी बाहर से कभी इसी प्रश्न के अन्तर्ग्रह में वैदिक अन्य निवासी आए हों । जैनदर्शन का स्पष्ट अभिमत है और वह मानता है कि हमारी पृथ्वी की तरह हम विश्व में अनेक पृथ्वियाँ हैं । इस प्रश्न जैन पर्यावरणविज्ञान द्वाारा है हम नहीं चिन्तित में माना प्रश्न के रहस्यों की प्रकट करने में सिद्धि प्रश्न के प्रोत्साहन कर सकता है ।

धर्मद्रव्य और ईश्वर :—भगवान् महाशिव ने बताया—“धर्मद्रव्य एव है। वह शेषश्याम है, शाश्वत है। वांग्मय है, तन्मय है, स्पर्शमय है, स्पर्शान्मय है। वह जीव और आत्मा की गतिस्थिति में महाशय है। जीवों का आगमन, गमन, शोभा, उन्मेष, मानसिक वाचिक स्मृति व अन्य प्रवृत्तियाँ भी धर्मीमित्रता में होती हैं।”

पञ्चान्निगाय में श्राकुन्दकुन्दाचार्य लिखते हैं—‘धर्मान्निगाय न स्वयं ज्ञानी है और न किसी की चलायी है। वह तो केवल गतिगीत जीव व पुद्गल की प्रभावत है। मच्छत्रियों के लिए जन जैसे गति में अनुपस्थित है, उसी प्रकार जीव और पुद्गलों के लिए धर्मरक्षक है।’ नेत्र के लिए पटनी ही मशायदा निम प्रकार अनिवार्यतः अपेक्षित है, उसी तरह गतिगीत जीव व पुद्गल की गति में धर्मरक्षक की अनिवार्य अपेक्षा है। पटनी नेत्र को चलने के लिए प्रेरित

नन्ना बरती फिर भा रेण व चण म उसकी मन्थन र ना है । आव और पुनः की गति म बनी सम्बन्ध घमन्थ का है ।

उनीसवीं गताली व पूव घनानिर्वाय म स्थिर का बोई स्थान नहीं था । इस आर वनानिवा का स्थान तन तन नहीं गया था । फिर प्रन्त मायन आया—सूय ग्रह और तारा व वाच जा चना नूय प्रन्त पन्ना है प्रकाश विरसे कम एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती हैं ? उनकी गति का मा यम क्या है ? बिना माध्यम य अतस्मन् माना गया रि प्रकाश जो गर भारवान बरत है एव क्षन स दूसरे क्षेत्र तक पहुँच मय । परिणामस्वरूप ईश्वर का चना की गई । माना गया—स्थिर तारा ग्रहा और दूसरे आकाशीय पिण्डों की घाटी जगत् म नही भरा है अगिनु जयन्त सूर्यम परमाणु के रिवन द्य य मा व्याप्त है । आहस्तीन के अनुसार स्थिर अमीनार अपारमाणविक आस्थानत न्ना देखा जा मना चाला एक अवस्था म्य है । स्थिर का गति मालम वरन व रि एनेका प्रयोग हुए और अन्तिम निष्पत्ति यह निकला कि ईश्वर म की गति नन्ना है । यह निनात निष्पत्ति है । ऐसा लगता है कि आज म सहसा यप पूव जब कि निजान का प्राप्तिभार हा नी हुआ था जनानानिर्वाय म मन्ति व इस सूक्ष्मतरंग तरंग का प्रामाणिकता म माय निष्पत्ति करिना था ।

स्वाध्याय और सापेक्षवाद —स्वाध्याय जनान का अनादी न्न है । स्वाना व अनुसार वरतु क्षान घमात्मान है । अर्थात् वस्तु अन्ततमन व विपत्तया की धारण करी जाती है । निम प्रसार एव घने व विषय म य वना जा मवता है रि यत्त मिश्रता का है रास्त्रान म घना है घीष्मकतु म वना है उनी गमय दूगग दकिन य कहता है —य सोन का घना नही है मध्यप्रान घानी है य हेमन् न्तु म टा रना है । यनी है य नी है देन का सापेक्ष है । अस्ति मास्ति की क्षान जमे स्वाना म मिलनी है उगा प्रसार सापेक्षता म पायी जाती है । यन्ति किसी वस्तु का भार १ ० पींड है सापेक्षता कहता है य है भी और नहीं भी । यनाकि भूमध्य रेखा व य १०० पींड है तो दक्षिणी ध्रुव पर १ १ पींड है ।

स्वाना और सापेक्षवाद म कई प्रसंग समान हो गिया देते ह । एव गीटरिका म हाते याना विस्को एव लाख प्रसारय दूर स्थित हमारी पन्ना पर एव लाख वप याना यम वरगा यनानि प्रकाश का हम तन व चने म एक लाख वप जमे और जमे एसा मात्रम पड़ेगा कि य घटना अमा हा है है । सायाय य यन्ति उस नीमरिका का को प्राना हमम मिने ता इत घन्ना व विषय म दोना के निणय विपरात हाये वर अन्त अन्ते क्षेत्र का अना स दोना निणय रा है । सापेक्षवाद व अधिष्ठाता अधिनीन कहते हैं— इस वच आपनिन मय का हो जान सकन है मयूष सत्य ता मयन व द्वारा हो नात है । गति और स्थिति आपक्षा घम है । व जहाज जा स्थित है व पथी का अये व स्थिर है उचित पथी सुय की अगता से गति म है और ए जा भी फिर गतिगो है । सूय भी यन्ति गतिगुय हा जाण ता भी य दूरस्थ नीमरिका का अगता म गतिगो हाये । सात्य यह है रि सापेक्षवाद व अनुसार प्रत्येक घ व यना वर भी है । और स्थिर भी है स्वाना वना है परमाणु नित्य भी है और अनित्य भी शमार गानन भा है और अगानन भी ।

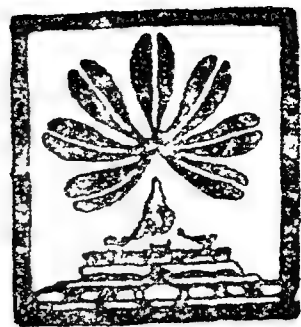
स्वाना और सापेक्षता नना हा मिद्वान्त अपने अपन क्षेत्र में सरत ना है और मन्ति भी हैं । स्वाना की अस्तिता निम्नप्रतिष्ठ है । गकरावाय न स्वाना की सगयरा वना है । साय राना का मिद्वान्त भी गतिन की गतिवता से भरा पडा है और निव व केवल यो यनानि नी न्न समग्र पाण हैं । आज सापेक्षता यनानिक जगन म वामरी ती व म न्ना आकाश मान गिया गया है । य मिद्वान्त स्वाना व क्षन म आज म सहसा वप पूव व्यपस्थित न्न से जगान म प्रविष्टा न विवा गया है ।



जैनदर्शन का मूलाधार

डा० कुन्दनलाल जैन,

एच० ए०, पी-एच० डी०



प्रत्येक दर्शन में इहलोक और परलोक आदि के विषय में तात्त्विक अनुशीलन एवं परिशीलन करने के पश्चात् उनके मूलभूत तत्वों की स्थापना की गई है। प्रसिद्ध षड्दर्शनयोग, न्याय, वैशेषिक, मान्य, मीमांसा और वेदान्त में यही बात प्रत्यक्ष होती है। जैनदर्शन में भी, इसी प्रकार, उनके मूल तत्वों को आधार मानकर, उनका नविस्तार विवेचन किया गया है।

जहाँ अन्य दर्शनों में इन तत्वों की संख्या चौबीस तक परिगणित की गई है, वहाँ जैन-दर्शन में केवल दो तत्व ही मूल तत्वों के रूप में स्वीकार किए गए हैं। वे तत्व हैं जीव और अजीव। वस्तुतः यह दो तत्व ही जैन-दर्शन के मूलाधार हैं। इन्हीं तत्वों के पारम्परिक समन्वय, आदान-प्रदान में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का रूप प्रत्यक्ष होता है।

जब तक जीव तत्व का अजीव तत्व में सम्बन्ध बना रहता है तब तक वह जीवात्मा या मनागी जीव के नाम में अभिहित होता है, किन्तु ज्योंही आत्यन्तिक रूप में जीव तत्व में अजीव तत्व का सम्बन्ध टूट जाता है तभी वह शुद्धात्मा, परमात्मा या मुक्तात्मा कहलाने लगता है। मुक्तात्मा हो जाने पर फिर कभी उसका अजीव में सम्बन्ध होने की संभावना नहीं होती है। जीव की यही बड़ी अवस्था है जो उसका चरम लक्ष्य होती है और इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए जीवात्मा नदैव प्रयत्नशील रहता है। इन अवस्थाओं को ही दृष्टि में रखते हुए जैन-दर्शन में जीव के दो भेद परिकल्पित किए गए हैं — मनागी जीव और मुक्त जीव।

जीव या आत्मा के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए अपने ग्रन्थ 'द्रव्यमगह' में आचार्य श्रीनेमिचन्द्र ने लिखा है:-

तिष्ठकाले चतुषाणा इन्द्रिय वालमायु आणपाणो य ।

ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्त ॥

अर्थात् व्यावहारिक दृष्टि में तीनों कालों में जिसके इन्द्रिय, बल (मनोबल, वचोबल और कायबल) आयु और श्वाभोच्छ्वास—ये चार प्राण पाये जाते हैं, किन्तु निश्चयात्मक दृष्टि में जिसमें चेतना (उपयोग-ज्ञान दर्शनादि) पाई जाती है वह जीव कहलाता है।

इसी जीव की विशेषनाएँ बताते हुए कहा गया है —

जीवो उपभोगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।

भोत्ता ससारत्यो सिद्धो सो विस्तोडुगई ॥

जीव उपभोगमय (ज्ञानदर्शनयुक्त), अमूर्त, स्वकर्मों का कर्ता, अपनी देह के परिमाण वाला, कर्मफल का भोग करने वाला, होता है। कर्मरहित विशुद्ध अवस्था प्राप्त करने पर वह नियम से ऊर्ध्वगति वाला होता है।



सम्बन्ध बना रहता है तब तक जीव मसारावस्था में ही रहता है ।

‘आश्रव’ के कारण आने हुए कर्म आत्मा में चिपटते जाते हैं-बन्धते जाते हैं और आत्मा इन कर्मों के बन्धन में निश्चित कालम्यति तक बद्धा रहता है । इसी बन्धन का नाम है ‘बन्ध’ तत्त्व ।

किन्तु जब जीवात्मा अपनी साधना द्वारा कर्मों के आगमन को रोकने का प्रयत्न करता है तो उस रुकने का नाम है ‘मवर’ । किन्तु वह ‘मवर’ तत्त्व आत्मा के माय बन्धे हुए कर्मों का क्षय करने में समर्थ नहीं होता । पूर्ववद्ध कर्मों का अभाव करने के लिए तपश्चर्या की आवश्यकता होती है और तपस्या द्वारा ही उन कर्मों का नष्ट होने अभाव होता है ।

निर्जरा करते करते जब कर्मों का आत्यन्तिक अभाव या विनाश हो जाता है तब आत्मा बन्धन में मुक्ति प्राप्त करता है । इस अवस्था का नाम है ‘मोक्ष’ । मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है । यही परम पुरुषार्थ है ।

इस प्रकार ये—जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष—जैन-दर्शन में सप्ततत्त्व कहे जाते हैं ।

‘जीवाजीवाश्रवबन्धसवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्’ (तत्त्वार्थसूत्र)

इनमें जीव और अजीव ही मुख्य तत्त्व हैं, शेष तत्त्व उन दोनों के ही सम्बन्धित रूप हैं । अतः यही तत्त्व जैन-दर्शन के मूलाधार कहे जाते हैं । जैन दर्शनकारों ने इन्हीं को आधार मानकर उनका बड़ा विशद व्यापक विवेचन किया है । वस्तुतः इन्हीं तत्वों के ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का रहस्य प्रत्यक्ष हो सकता है ।

बहुदेवो ज्योतिषा मेव यः साक्षात् भर्त्तुः सत्यम् ॥ (इष्टमयम् २६)

प्रकार जल मछलियों के चलने में, परन्तु गमन न करनेवालों को उनके गमन में प्रेरक नहीं है, उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। अधर्मद्रव्य उसका नाम है जो स्थिति रूप परिणत हुए जीवों तथा पुद्गलों को उनके ठहरने में उस प्रकार सहायी-उपकारी होता है जिस प्रकार पक्षियों को ठहरने में वृक्षादि की छाया, परन्तु चलने हुए को ठहरने की प्रेरणा नहीं करता और न उन्हें वृक्षपूर्वक ठहराता है। जो जीवादिद्रव्यों को अपने में अवगाह अवकाश-दान देने की योग्यता रखता है उसे आवाग द्रव्य कहते हैं, जिसके दोक-अलोक के विभाग में दो भेद उपर वतलाये जा चुके हैं। जो द्रव्यों के परिवर्तन रूप है—उनके परिवर्तन में सहकारी है—उसे काष्ठद्रव्य कहते हैं। कालद्रव्य के भी दो भेद हैं—एक निश्चय काल और दूसरा व्यवहार का। लोककाल के प्रत्येक प्रदेश में जो अनादि-निधन एक-एक कालाणु स्थित है और जिसका वर्तन लक्षण है, जो जीव पुद्गलादि द्रव्यों को उनके प्रतिक्षण उत्पाद व्यय-प्राप्त्यात्मक सत्त्व वर्तन में महाप्रक अवकाल-मन्तानुभूति में कारण है—उसे निश्चय काल द्रव्य कहते हैं। व्यवहार कालद्रव्य उसका नाम है जो समय (क्षण), पण, घड़ी, घंटा, मुहूर्त, पहर, दिन, रात्रि, मन्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष आदि के भेद को लिए हुए आदि-अन्त-महिन है, निश्चय कालद्रव्य के पर्यायस्वरूप है और जिसके परिणाम, गिया, परत्वं, अपरत्वं ये चार लक्षण हैं। द्रव्य में अपनी जानि को न छोड़ने हुए जो न्यायविक्र या प्रायोगिक मूक परिवर्तन-पर्याय में पर्यायान्तर होता है उसे 'परिणाम' कहते हैं। बाह्य तथा आन्तरिक कारणों से द्रव्य में जो परिणामान्तर-परिणाम होता है उनका नाम 'श्रिया' है। कालकृत बड़ापन को 'परत्वं' और छोटापन को 'अपरत्वं' कहते हैं।

इस प्रकार जैन-दर्शन की द्रव्यव्यवस्था और उसके अन्तर्गत छह द्रव्यों का यह मक्षिप्त सार है, विशेष तथा विस्तृत परिचय के लिए तत्त्वार्थ-सूत्र की तत्त्वार्थ-राजवार्तिकदि टीकाओं तथा दूसरे आगम-ग्रन्थों को देखना चाहिये।

ॐ

- १ गङ्ग-पिपासा धम्मो पुग्गल-जीवाण गमण-सहयारी ।
तोयं जह मच्छाण अच्छता जेव सौ जेई ॥ (द्रव्यमग्रह)
- २ ठाण-जुवाण अधम्मो पुग्गल-जीवाण ठाण-सहयारी ।
छाया जह पहियाण गच्छता जेव नो धरई ॥१८॥ (द्रव्यमग्रह)
- ३ अवगाम-दान जोग्ग जीवादीण वियाण आयाम ॥१९॥ (द्रव्यमग्रह)
- ४ द्रव्य-परिवट्टद्वयो जौ नो कालो हवेइ, व्यवहारो ।
परिणामादीलक्खो, वट्टगवक्खो य परमद्वो ॥२१॥ (द्रव्यमग्रह)

सम्प्रदाय या धर्म ?

सोभाग्यमल जैन



भारतवर्ष धार्मिक वृत्तिवादी देश है तथापि जनसाधारण म धर्म तथा सम्प्रदाय का भेद स्पष्ट नहीं है। यहाँ मनुष्य अल्पजु जनसाधारण सम्प्रदाय का ही धर्म मानता रहता है। मनुष्य के विन्दन म धर्म तथा सम्प्रदाय का भेद स्पष्ट हो सकेगा या किन्तु जनप्रवृत्ति विचारणा व अभिप्राय व कारण यह धर्म भी स्पष्ट नहीं कर पाता। धार्मिक म धर्म तथा सम्प्रदाय म म न अन्तर है। धर्म उन्पर तथा विनाश दृष्टिकोण अपनाता है जब कि सम्प्रदाय अथवा पक्ष मनुष्य दृष्टिकोण। सम्प्रदायवादी या पक्षवादी मतपक्ष बदल उम सम्प्रदाय अथवा पक्ष व अनयायी का ह्रा स्वयं तथा मान म प्रयोग का अधिकारी मानता है कि धार्मिक मनोवृत्ति व निष्कर्ष प्रत्येक सज्जन साधनता यकिन व निष्पत्ति स्वयं म मान का द्वार खोल है। भारतीय स्वयंभूता व पञ्चात ा सधनासन न धर्मनिरपेक्ष नाति का घोषणा की ा स यह प्रश्न राजनीतिक क्षय म भी बहुराजित रहा है। धर्मनिरपेक्ष नीति का यादवा म नवन तराफ पक्ष है कि जनसाधारण म म प्रान धारणा गन्दाई मे बठ गई है कि भारतीय मानव अधार्मिक राय है अथवा उमका धर्म या धार्मिक सिद्धांता व कोई मन्त्र नहीं है। जना तक म समझा हू य तालय नही था। धर्मनिरपेक्ष नीति का उद्देश्य केवल यह था कि मानव किसी सम्प्रदाय विनाश को प्रथय नहीं देगा। न उमका प्रचार करेगा। धार्मिक रूप म नीति का नाम यदि सम्प्रदाय निरपेक्ष नीति रखा जाता तो अधिक उपयुक्त रहता। विश्व म सम्प्रदाय का नाम पर ा स्वतन्त्रता सूत्र काट म ह्रा है वह धर्म नीति व निर्माणागण की दृष्ट म था। किसी सम्प्रदाय विनाश का प्रथय नन का अर्थ यह होता कि मानव उम सम्प्रदाय विनाश का हामी है। स्वतन्त्रता न नीति का मानना कि था। जहाँ ऊपर निर्माण किया गया है धर्म तथा सम्प्रदाय म अन्तर पताला न अन्तर है। भारतीय मानव का धार्मिक सिद्धान्ता मे काई विरोध नहीं है। सज्जन। आधिर धर्म क्या है ? मेर मन म जिन सिद्धान्ता म मनुष्य का जीवन उन्पर उन्नत मानाति जीवनबन मने भविष्यता के उम उच्चतम नियम का नाम धर्म है। किन्तु धर्मनिरपेक्ष नाति के कारण उन्नत भातधारणा न कत्र २० यय के अन्तर्गत म ही भारतीय जन जीवन म नतिरता राकार का जो धर्मयुक्त किया है वह विचारधर्म का क्रिय अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है। भारतीय जनमानस म आध्यात्मिकता व स्वतन्त्रता भौतिकतावादी विचारा का प्रभाव स्पष्ट है। मन आम जुताव व पूर तथा पञ्चात क्ष धर्म म आ धर्मात्मा देन म जीवनसा विधानमोक्षम म धर्मी उनका दृष्टिगत रहन हूण य सोचन का विनाश जाना पडता है कि क्या भारतीय म सांसारिक प्रश्ना समस्या का ह्रा कराने का मनुष्य तरीका होय रह गया है ? मानव जन जीवन म चाह उन्नतजन प्रश्न हो पाते साधननिक प्रश्न मे गहनरीत्या की कमी साधनता का कमी जानी जा रही है। इस पष्ठभूमि में यह अवश्यता है कि सम्प्रदाय तथा धर्म का भेद स्पष्ट समझें तथा धर्म भी निष्पक्ष करें कि अनपेक्ष धर्म सम्प्रदाय है अथवा धर्म है ?

विनाश ज साहित्य के अद्वैतपूज तथा प्राचीनतम धर्म आचार्य मनुष्य म भगवान मनुष्य न य मन्वासा का है कि —

त धीमहि य ईशं यो य धर्मपूजा यो य आगमिह्मा अरिहता भयवता तं सत्त्वे मयमात्मन तत व भगति एवपणविति एवपणविति — सत्यपणा सत्त्वे जीवा सत्त्वे सत्ता व हृत्तया म अज्ञानवैयथा ा परिचितया न परिचयवैयथा न हृत्वेप्रस्था। एत धर्म मनुष्य निहृद सामान्य समिध्व शीय लेपनीहृदयेय तमहा उद्दिष्ट या अर्थात्तुम या उयद्विष्टु या अनुवद्विष्टु या उवरयद्विष्टु या अणवरयद्विष्टु या शीवद्विष्टु या अनोवद्विष्टु या राजोवद्विष्टु या

असजोगरएमु वा, तच्च चेय, तथा चेय अस्सि चेय पवुच्चड ।

अर्थात् भूतकालीन, वर्तमान कालीन तथा भावी तीर्थंकर यही प्रतिपादिन करने हैं कि सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव, सभी मत्त्व को दण्डादि में नहीं मारना चाहिये उन पर आज्ञा नहीं चलाना चाहिये, उनको दाम की भाँति अपने अधिकार में नहीं रखना चाहिये, उन्हें शारीरिक मानसिक सताप नहीं देना चाहिये और उन्हें प्राणों में रहित नहीं करना चाहिये । यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है । समार के दुःखों को जानकर जगत्-हितकारी भगवान् ने समय में तत्पर अथवा अतत्पर, उपस्थित, अनुपस्थित, मुनि, गृहस्थ, रागी, त्यागी, योगी, भोगी को समान भाव में यह उपदेश दिया है, यह मत है यह तथारूप है और ऐसा धर्म जिनप्रवचन में कहा गया है ।

इस प्रकार में प्राणी मात्र को असम्यक्ता, आश्वस्तकर्त्ता धर्म किसी भी दृष्टिकोण में सम्प्रदाय नहीं हो सकता । वह धर्म शब्द में निहित उच्च तथा महान् विचारों में समन्वित होने के कारण “धर्म” है । यह सचविदिन है कि “धर्म” शब्द अनेकार्थी है । विभिन्न मतों में विभिन्न अर्थ का द्योतक है । यहाँ जिस अर्थ का उद्देश्य है वह तत्त्व अथवा आचार-सहिता का द्योतक है । एक प्राचीन आचार्य ने जैनधर्म की व्याख्या निम्न श्लोक में अत्यन्त गहिष्ण किन्तु महत्वपूर्ण की है—

स्याद्वादो वर्तते यस्मिन्, पक्षपातो न विद्यते ।

नास्त्यन्यपीडन किञ्चित् जैनधर्म स उच्यते ॥

जिस दर्शन में स्याद्वाद हो, अनकाती दृष्टिकोण अपनाया जाता हो, विभिन्न धर्म, दर्शनों के प्रति समन्वयात्मक दृष्टि रखी जाती हो, जिसमें किसी के प्रति पक्षपात न हो, जिसमें किसी प्राणी को पीडा न पहुँचाने का विधान हो उसको जैनधर्म कहते हैं । यह सचविदिन है कि विश्व में विभिन्न वादों की प्रस्थापना करने वाले कई धर्मविद्यमान हैं । उन विभिन्न वादों में एकांगी मत (Partial Truth) का अस्तित्व जैनधर्म मानता है । यदि उन आशिक मतों को एकत्र कर लिया जावे, उनमें समन्वय कर लिया जाये तो सत्य का साक्षात्कार हो सकता है । इस प्रकार जैनधर्मानुसार जैन्य में प्रचलित विभिन्न धर्मों के प्रति उदार विचार रखना आवश्यक है । यह मुनिञ्चित है कि भगवान् महावीर के समय विभिन्न वादों के विस्तार में ३६३ मतों का प्रचलन था । भगवान् महावीर ने विभिन्न मतों के दृष्टिकोण में उन सबके प्रति अनेकाना दृष्टिकोण अपनाया, तथा अपना मतस्य समन्वयात्मक रूप में प्रकट किया । उस शैली को स्याद्वाद कहा जाता है । यह मत है कि जैनागम में स्याद्वाद के विचार बीज रूप में संक्षिप्त विद्यमान थे । पश्चात्-वर्ती जैनाचार्यों ने उन बीज रूपी विचारों को पुष्पित, पलविन करके स्याद्वाद पर विगाल साहित्य की रचना की और स्पष्ट रूप में घोषणा की कि—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेय कपिलादिषु ।

युदितमद्वचन यस्य, तस्य कार्य परिग्रह ॥

उक्त जैन आचार्य ने घोषणा की कि उनका महावीर के प्रति कोई पक्षपात नहीं है, न कपिल आदि मुनियों के प्रति द्वेय ही है । जिसका वचन युक्तिपुरस्सर होगा उसको अंगीकार करने में हिचक नहीं है “पन्ना समिक्खए तत्त” तत्त्व की समीक्षा प्रज्ञा द्वारा (बुद्धिपूर्वक) की जानी चाहिये । इसी विचारमरण के अनुरूप जैनाचार्यों ने तत्कालीन प्रचलित भारतीय दर्शनों में विभिन्न नयों के दृष्टिकोण में ‘आशिक’ सत्य का दर्शन किया जैसा कि महान् साहित्यकार ममदर्शी विचारों के जनक जैनाचार्य हरिभद्र सूरि के “पडदर्शनममुच्चय” के पृष्ठ १५७ पर टीकाकार ने अंकित किया है कि—

वीर्यदर्शन

ऋजुसूत्रनय

वेदान्त

साय्य

मीमांसा

मग्नह नय

| | |
|-----------------|-----------|
| आचार | व्यवहारनय |
| याद वार्तिक | नयमननय |
| गन्त ब्रह्मवादी | गन्तनय |

यही नही आचार मीसिद्धमन विचारन ता यहा तक प्रचलित चरन म चिचिचाहू नही की वि जनम मिच्छागमनमूहा ३। स्पष्टवादिता की यन् चरन मीमा है। तात्पर्य यह है कि विभिन्न वा १ म आदि सत्य हाने व कारण व मिथ्या दान ३ क्याकि यह एगो दैटवाण रखर केवन उसी की सम्य सत्य व न म प्रपणा करने हैं और अवन से भिन्न वा का असत्य मानत ह। जनम समस्त वा १ व प्रति उतर विचार रखर अनेवाता न्तिवाण अपनाता ३। आचार आ सिद्धमन सी कारण उसी मिथ्या दाना वा समूह कहते है। वास्तविकता य ३ कि तात्पर्य रूप स अत्य प्राचीन ग्रथा म भी कहा गया है कि ए सदिता बन्ना वन्ति एह ही सत्य वा विभि न र म विप्र (वि न) वन्त है। यहा सव ता सत्यनिष्पण की बात कू ३। किंतु जनापयो न इस 'मात्राहारी' रूप भी प्रान रिया। पाठक जानत है कि जनम मे नववार मय वा अत्यन्त मन्त्र है। वास्तव म बहु नमस्कार वा मन है जिसम आध्यात्मिक पुणता का प्राप्त सिद्ध आदि वा सया मुक्तिपथ व पदि साधवा वा नमस्कार किया गया है। 'म मन म जने ददि किन्दी 'यावक'। ग ३ है इस तरह वन्त कम विनायी वा ध्यान गया है। 'म मन म अहिम सिद्ध आचार उपाध्याय व पचात वि व व समस्त साधनना को नमस्कार अपि रिया गया है। पूर म ४ प म रिगिण्ड अवस्था क छोनक है आ प्रथमि सौ। साधना व विकास क्रम म प्राप्ति होनी है। प्रथमिक 'का' मायु है। साधु म विव व नमस्त साधुना वा मम्मिलित कर लिया जाना जन धम वा वि गन्ता वा 'वनन प्रमाण है। यहा गणधर भगवान ने विाय चिह्न विप्र धारन जन साध का ही मायता नही दी। यही नग जो साधुनायुक्त आत्मा हैं उन सबको नमस्कार करने जवना मानन व्यक्त रिया ह। एर जनाचार न वन्त सुन्दर ढग म धय धर्मो द्वारा माय देवता (ब्रह्मा विष्णु महेश) वा वा नमस्कार रिया ३। उक्त जनाचार न एक इगो म य प्रनिपाति रिया है कि मे ब्रह्मा विष्णु रिर मद्ग जिन सबका नमस्कार करता हू वचन वह एा है। कि नितम भव भयन आवा गमन के धीर रूप राग द्वेप ममूल नष्ट हो गये ह। यह सचविनि है कि जन धमामनयन सुवि आत्मा की उच्चतम अवस्था का नाम है ज। अनतवीय अनत मुव जनत गा अनत दान प्रश्न होना है जहा पर जाकर घामा वा भवभ्रमण समाप्त हो आना है। भविष्य र पयि व आने जीवन म पूष आध्यात्मिक जीवन 'पानन कन्ना होना ३। तब बहु आत्मा वा सा रकारकरन मुक्त होना है। जनम की मायता व अनुसार मवन १५ प्रकार ह हो सकते हैं जिसम यह स्पष्ट बताया गया है कि 'अधम के अनपायी हा या जनय व अनपायी न हो अस्तव जनय द्वारा माय विप्र धारन करने हा या न करते हा मुक्त हो सकते हैं। तीवसिद्ध अतीपसिद्ध स्वामिसिद्धा अय निमिद्धा आदि। यही नही म भी आवश्यक नही है व ममणवा म ही हा मुक्त व व म भी हा सकते है।

भगवान महावीर क अनुयायिया म राजा महारोजा जस आभिजा व वग व लण विभिन्न प्रकार क ध्यन सया मधमवग के 'गेम चिन्ता' जन निम्न जाति के 'वाग दाहण सत्रिय वय' पूर वण क 'गेव भी सम्मिलित थे। यही नही तत्कालीन विभिन्न परम्पराया ने जस परिवारिक 'साध्यामी आदि भी भगवान क अनुयायिया म सम्मिलित थे। यह मत्र भगवान महावीर की उतर स्थानमय सच-वचनरी वति का परिणाम था। वास्तव म जनवागी न्दितिविषय अथवा स्वात्ममय भाषा भगवान् का जहिमान्ति कि हा गत अय था। 'भगवान ३ जग आचार म अहिमता वा उपने' लिया बहा विचारा म अनवागीन्तिकोण नर तथा वाणी म स्वाग्ना का उरण दिया। जग तब आचारान श्रुति वा मय्य प है 'म ने म १ न १ अति निव व वातिप्राल विगता न भा य स्वीकार रिया है नि अन्ति की जा भूटम व्याख्या तथा जितना विचार जनम म रिता गया है उनता रिती भी धम म नी रिया गया। अहिमा म सारय कन्त्र प्राणिवध का रचना नी है अपितु मन वचन काया म रिया भा प्राणी वा नु मना सनाग राग वनाता गमाजिक अथवा आधि 'पाप्य कता य सब हिमा मान कर उगका निवप रिया गया है। य। नही जग जहा जीव की समाधान हा मवती है जननत्व की गमायना ३ उग उग स्थान प म अ हि मा वा पाप्म आवर मना गया। अहिमा वन एर ररात्येक सिद्धान्त न है अपितु उगता विधायक स्वरुप





वता कर उसको जीवन में उतारने का उपदेश भी दिया गया है। अहिंसा का इतना विशाल दृष्टिकोण देकर भगवान् महावीर ने प्राणिमात्र का उत्कार किया है। इस देश में यत्र-तत्र अहिंसक वृत्ति के जो दर्शन होते हैं वह उस महान् पुरुष के उन प्रयत्नों के परिणाम हैं जो उन्होंने देश भर में घूम-घूम कर लगभग २५०० वर्ष पूर्व किये थे। वास्तव में जैन-धर्म, धर्म है, सम्प्रदाय नहीं। केवल मानवधर्म नहीं अपितु प्राणिमात्र का धर्म है। विश्व-धर्म है। आवश्यकता इस बात की है कि “अहिंसा” के नाम पर जो इस लम्बे काल में भ्रात धारणाएँ बन गई हैं, उनका निराकरण करके उसको वैज्ञानिक स्वरूप दिया जावे। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यदि जैन समाज अथवा नमन्त्रयवादी दृष्टिकोण-सम्पन्न देश के प्रबुद्ध वर्ग ने इस दिशा में सक्रिय प्रयत्न किया तो विश्व का बहुत बड़ा उपकार होगा। दुर्भाग्य यह कि आज के परस्पर राग, द्वेष, अमहिष्णुता के इस युग में अहिंसक, सात्विक विचारों का अभाव होता जा रहा है। उम्मी का परिणाम यह है जो हमें देश के जनजीवन में यत्र तत्र सर्वत्र परिलक्षित हो रहा है। इस युग के महान् क्रांतिकारी मन्त महात्मा गांधी ने अहिंसा का प्रयोग सामूहिक तथा राजनीतिक प्रश्नों को सुलझाने में किया। गांधीजी ने जीवन के कई क्षेत्रों में अहिंसा का प्रयोग किया। पशुबल, शस्त्रबल के प्रतीकार के रूप में भी उसका प्रयोग किया तथा सफलता प्राप्त की। आज गांधीजी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी नन्त विनोबा उनका प्रयोग कर रहे हैं। किन्तु अभी पर्याप्त सफलता नहीं मिल सकी। आज बड़ी निराशाजनक स्थिति है। आज प्राणीमात्र की बात तो दूर है किन्तु मनुष्य-मनुष्य के बीच भी स्नेह, प्रेम, सौहार्द, सज्जनता की कड़ी नहीं है। अन्तराष्ट्रीय स्तर पर बड़ा देश, कमजोर देश को दबाकर गुलाम बनाना चाहता है। व्यक्तिगत जीवन में भी मक्ल, निर्वन का शोषण कर रहा है। इन्सानियत कराह रही है। देश में आज के युग में भगवान् महावीर की वाणी उनके उपदेश, अहिंसा की अत्यन्त आवश्यकता है। स्थिति बड़ी विषम है। कोई मार्ग नजर नहीं आता है जैसा कि उर्दू के एक कवि ने कहा है—

“इक रह गई थी मजहूदे इन्सानियत की बात ।

वह बात भी वा फजले खुदा, जुमं हो गई ।

यन्त्र-युग में जड़-चेतन-विज्ञान

लक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज'

एम० ए० बी० एड० साहित्यरत्न



आधुनिक मानव जीवशास्त्रज्ञों की समस्या में जड़ना अजिब प्रस्तुत हो गया है कि घम और दान साहित्य और मस्तिष्क गरीर और आत्मा जड़ और चेतन जड़ सावधानीपूर्वक सावधानीपूर्वक प्रमाणों की मान लन के लिये भा वह समय का जभाव घोषित करने लगा है। विज्ञान वमानाज आधिपत्य के कारण आज के ज्ञानी का जीवन जठाय मायिक और योनाग में परिपूर्ण गता गया है। बूढ़ विविध प्रमाया के बावजूद भी बेरादी मर्यादें पम्पता बना पाते हैं। जगत्प जाज का मानव निरान यत्र सत्ता बाय दशक भी मुख गति सताय और समष्टि का साग नी ग पा रहा है।

आ का आत्मी कापायना के वि जयगकरप्रसाद के गता में कहना बा ता है —

प्रकृत गति यत्रों से तुमने सबकी छीनी।

नोपण कर नोदनी बना दी जाद छीनी ॥

माधुनिक यत्राग युग में मानव गरीर की तुलना यंत्र की जाती है। यह अकारण नह है बयावि वास्तव में मानव गरीर है ता एक यंत्र है। एक समय एक यंत्र चित्रित हैं जा गरीर का सारी म्मायु गिरा हकी का गि मानते हैं। हाथ निरान्दव मानव गरीर और यंत्र में कतिपय समानताएं अवमानताएं हैं।

समानता की दृष्टि में कहा जा सकेगा कि माना बाय करने हैं दोना गतिगाठ है दाना की गति गति छीण हानी है दाना के त्रिग गति और दनि (विराम और अनुगम) अपेक्षित हैं। माना गति की पुन प्राप्ति में विराम रलते हैं। इस विषय में विगपदया उदघनाय यत्र है कि माना-गरीर ज है अपनी गति हया पाना माजन बागुयम बातावरण विराम स्वच्छता स रलता स पाना है बहा यत्र अपनी गति के गिकायला लेक सफा परिमम गरीर माग्य सरलता इर निभर है। विरार यत्र ने पर मानव गरीर गय यत्र की भाति विराम था ता है बग यत्र की मानव गरीर की गति जयग अपनी अजिब गति में विविध और उज्ज्वल छीण हाता जाता है।

जमानता की दृष्टि में कहा जा सकेगा — (१) मानव विचारक है। ज्ञ आग पीछा सोच विचार कर काय करता है। इमीडिय व एक भी परिस्थिति हा पर भा यत्र जया एक सा बाय नहा कर सकता है। (२) मनुष्य म यत्र में समान लगानार काम करने की क्षमता स्वभावतः नही है। हवने पर भी यत्र यत्रवत बाय करन लगे ता न कव उमरा लौकिक पावद है। तारम असामानिक अव्यावहारिक हागा बकि छात्र बववर असमय हा दम तोन दगा और अनिया स बा बरागा।

आधुनिक आत्मी की अजाय यादिवता जयवा जहन यस्तता को देखकर बुद्धे यत्रगानी प्रकृतिवादी की स्थिति हा जाता है। इस विचारधारा के जनसार पुनग और गति स निमित्त निप्राय यत्र की जगत है। जम दृष्टि में मनु य भा एक एग यत्र है जो बाह्य प्रमाया में निगो गहोता है। विस्मय की बात ता यह है कि यत्रवा की प्रकृतिवाद

१. कमी प्रकृतिवाद के जनगपदक की सती सत्य है। (६) पदावविज्ञान प्रकृतिवाद (२) यत्रवादी प्रकृतिवाद (३) जीवविज्ञान प्रकृतिवाद। गति प्रमति प्रकृति की भी प्रकृतिवाद का सत्य माना गया।



केविचारक एक ओर मनुष्य के चेतनत्व में विश्वास नहीं करते हैं और दूसरी ओर वे मानते हैं कि मनुष्य में एक ऐसी शक्ति का अस्तित्व है जिसके आधार पर वह मौलिक बस्तु का निर्माण करता है। ये आध्यात्मिक ध्येय-प्रयोजन को कौरी मृगतृष्णा मानते हैं और इन्हीं जैसी भावनाओं की नींव के आधार पर उम व्यवहारी मनोविज्ञान का जन्म हुआ, जो मानसिक क्रियाओं को बाह्य क्रियाओं की उत्तेजना कहता है और मानव को गतिशील यन्त्र मानता है।

यन्त्रवादी प्रकृतिवाद ने भले ही जड़ और चेतन के विज्ञान को, विगिष्ट ज्ञान को, भुला दिया हो पर उन दोनों में जो मौलिक भेद है, उसे अतीत के धर्माचार्यों की भाँति आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी किन्हीं अंशों में स्वीकार कर लिया है।

दुनिया दुरंगी है। द्विधात्मक है, द्विधामूलक है। दुनिया के स्वभाव में हमें विदित होता है कि उसके मृजन और मरक्षण के तत्त्व जड़ और चेतन हैं। उन दोनों में एक दूसरे में उतना ही अन्तर है जितना कि शक्य और सम्भव है। ये दोनों तत्त्व बाह्यदृष्टि में एक-दूसरे में दूध और पानी जैसे मिल भी क्यों न जायें, वरमों तक साथ ही क्यों न रहें पर अन्ततोगत्वा हैं ये भिन्न ही, अभिन्न तो कदापि नहीं। यदि ये दोनों अभिन्न होते तो इनके नाम-गुण पृथक्-पृथक् नहीं होते और उनका एक दूसरे में अन्तर्भाव या समावेश कब न ही हो गया होता। पर हुआ नहीं और हो भी नहीं सकता।

उल्लिखित अभीष्ट मत्त एव तथ्य को धार्मिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में समझ लेना समुचित और श्रेयस्कर होगा।

धार्मिक दृष्टिकोण

(१) चूँकि शरीर स्वयं कोई कार्य नहीं करता है और उसे कार्य करने के लिए प्रेरणा देने वाली आत्मा है तथा आत्मा के अभाव में शरीर निष्क्रिय और नगण्य हो जाता है, अतएव शरीर जड़ है और आत्मा चेतन।

(२) वह मूर्ति, जिसे मनुष्य जन्म और जीवन देता है, जिसकी प्रतिष्ठा करता है, मन्दिर की वेदी पर स्थापित कर मान्यता देता है, जिसे अपने अन्तर की श्रद्धा का सम्बल मानता है, जड़ है, पर उसे नगण्य से सर्वम्ब घोषित करने वाला मनुष्य चेतन है। मूर्ति और मनुष्य में आकार-प्रकार विषयक समानता होने पर भी आकाश-पाताल जैसा भेद है, अतएव मनुष्य मूर्ति नहीं है और मूर्ति मनुष्य नहीं है।

(३) वह लेखनी, जिसमें लेखक निर्वन्ध लिखता है और ज्ञान की दिशा में पाठकों को अपने साथ ले चलता है, जड़ है—अचेतन है। लेखनी में बुद्धि नहीं। बुद्धि तो लेखनी का प्रयोग करने वाले लेखक में है। अगर लेखक में बौद्धिक क्षमता अथवा विचार-शक्ति अथवा भावनामयी मीन्द्रयन्त्रभूति नहीं होनी तो न निर्वन्ध लिखा जाता और न पाठक लेखक के साथ ही चलता। लेखक चेतन है और लेखनी जड़ है।

(४) घर के चूल्हे में अभी जो लकड़ी जल रही है, वह कभी पेड़ पर थी। इनमें अणुभर नन्देह नहीं, पर पेड़ जहाँ बाज भी लकड़ लिये जान में खड़ा है वहाँ चूल्हे की लकड़ी जलकर कोयला बन रही और कोयला राख का रूप धारण कर रहा है, चूँकि पेड़ बट रहा है, हरा-भरा है। अतएव वह चेतन है और लकड़ी बड़ी नहीं, अतएव अचेतन है।

(५) पुस्तक, शिक्षक की जीवन-नगिनी है। पुस्तक, शिक्षक और शिष्यार्थी के लिये शिक्षा का माध्यम बनी है पर इतने पर भी शिक्षक और पुस्तक में अथवा शिष्यार्थी और पुस्तक में काफी अन्तर है। शिक्षक और शिष्यार्थी के ज्ञान में न्यूनाधिकता के दर्शन होते हैं पर वे एक पुस्तक में अनेकों पुस्तकों तैयार कर सकते हैं। परन्तु पुस्तक के शब्द,

उसका पट्टसह्या उमम पुजीमन भावना सामिन है। अत शिक्षक और विद्यार्थी श्वेतन हैं पर उन्हें बाह्य चेतना देने वाली पुस्तक जन्म है।

(६) जस शिक्षक का पुस्तक प्रिय है वगैरे ही योद्धा का तलवार प्रिय है। तलवार से याद्धा का बन् बन्ता है तलवार के प्रयोग से याद्धा अपने विपक्ष का धरापायी कर सकता है पर इतन पर भी गति याद्धा म है तलवार म नी। बूझि याद्धा को अपनी गति का ना है पर तलवार का नह। अत याद्धा चेतन है और तलवार जन्म है।

(७) वक्ता जानता है और ज्ञाता सुनता है वक्ता और श्रोता के मध्य गन् पान क माध्यम बन है। ज्ञान की बात जो अनभवपथ है और प्रवहारज्य है वह वक्ता और श्रोता के मध्य और वक्ता म सोमित हाकर भी असामित है। कारण वक्ता और श्रोता के प्रयोग को जानते हैं पर गन् न वक्ता को जानते हैं और न श्रोता का तथा न अपने प्रभाव का भी। अतएव गन् जन्म है पर वक्ता और श्रोता अनन ह।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

(१) भौतिक पन्थ स्वयं बाय न। करता है। मनस्य को गति म बहु क्रियाशाल हाता है। माटर चलाने के लिए मनस्य चालक (Driver) चाहिये अन्यथा वह स्वयं तो उस स मस भी नहीं हो सकती है। पर चीनी अपने आप चलती है। आकार प्रसार म बनी होने पर भा मोटर जन्म है अचनन है और चीनी छोटी होने पर भी चलन है मवेदनशील है।

(२) प्राणिमा का व्यवहार बाह्य वातावरण से समी कमी प्रभावित होता है पर पूण रूप से वन् उसपर उतना निर्भर नहीं जितना कि वास्तविक प्रतिनिधा पर। विज्ञान के बन्म को ऊपर नीचे कर ले ता तत्काल विज्ञानी चुप या जल यात्रागो पर मनस्य के सबध म यन् ज्ञान ना कि गुणात्मकानु म्पने हा मूत्र ग्ग जावेगा अथवा वह अप मानजनक वान का क्षण दो भाग म भन् ज्ञाता। विज्ञानी या प्रह है उसम प्रवहार को प्रहण करने की क्षमता नहीं है अतएव वह जड है। पर मनस्य जो यन्मारी है व चेतन है सर्वव्यापक है अन चेतन है। मनस्य बाहर म विनली सहज प्रभावधारक नहीं यदि क अंतरम म ही मूत्र कायकारी है।

(३) हम जिन दिशा म पत्थर फेंकेंगे वह उसा गिना म वगैरे जावगा क्याकि वह जड है उसकी गति निश्चय है पर मन म सहना तोर का विज्ञान व्यवहार भाग सगता है वेगना हो सगता है वन् पर चक्कर अथवा अजिन जलानर आत्मरणा कर सकता है। कारण वन् चेतन है उसका अस्तित्व विविध कायकलाप का स्रोत है। वन् बन्वान होकर किसी को भी म्द म्द का लिए उत्तर कर सकता है।

(४) प्राण काल होत की सुचना देने वागै बन्मरवारी चक्काने वाली चिन्तिया भविष्य के लिए भोजन का प्रय म करती है क्याकि व चेतन म पानमय हैं उनम जीवन की भावना है पर रन्मायी का इज्जत भागे वान का लिए गान कोपे और पाना का कर् प्रवन्म नहीं करता है क्याकि वह अचेतन है जन्म है।

(५) पाच वरण का बालक आरम्भ म जसा चिन्ता है वसा हा वह जागे नहीं लिखता रहता है। उसा व्यवहार और आचरण की भाति नमन चिन्ता म उसकी वसन्तना का विकास होता है पर हवाई जहाज का पान ज्या का रगे निश्चित गिना म चिन्तित माना म निश्चित समय तक बाय करता है। म्द अन्तर का कारण भी बालक का चेतन होना और इज्जत का अचेतन होना है।

(६) जड पन्थों म जब तक क्षति रहता है वे कायगी बन्म रते हैं पर चेतन प्ररक गतिन के हात पर भी रुक सक्ते हैं। पन्म का भासा दे दें ता वन्मोदास अथवा छतोग छट बन्मोदास चल्ती रहेगा पर गाय बागै का मारन के लिए गीते ता बट दीजन की क्षमता हात हा म भा पहीना म घर म पुन जावगा या मुरधिन स्थान म पहुचन हो दम भने जोगा। म्द भी मन्मून कारण म है कि व जड है और बागै चेतन है।





(७) जड़ में विकास नहीं होता है, चेतन में विकास होता है। जन्म के समय जिन बालक के मस्तिष्क का वजन ३५० ग्राम होता है उसी बालक का मस्तिष्क, किशोरावस्था में १२६० ग्राम वजन वाला हो जाता है पर कपड़ा सीने की मशीन, भले ही वह ऊपा हो या सीता, आदि ने जन्म तब वजन की दृष्टि में उसी की त्यों बनी रहती है। इसका भी रहस्य बालक के चेतन और मशीन के जड़ होने का परिचायक है।

निश्चित निष्कर्ष

पूर्वोक्त एक में अधिक उदाहरणों के आधार पर यह महज ही ज्ञात किया जा सकता है कि जड़ और चेतन में जो मौलिक अन्तर है उसे जीवन (Life) शब्द द्वारा महज ही जाना जा सकता है। जीवन का अस्तित्व गतिशीलता, परिणमनशीलता, सुदूरदर्शिता, आत्म-रक्षा, परिवार-रक्षा, जाति-रक्षा, धर्म-रक्षा, समाज और देश-रक्षा जैसे तत्त्वों में जाना जा सकता है।

(१) यन्त्र में जीवन नहीं है, जीवधारी में है। जीवधारी जीवों (Organism) है। यद्यपि वह इन्जनों की भांति काम करता है तथापि उसका प्रत्येक भाग यों काम करता है, जैसे वह जानता हो कि हमारे भाग किस प्रकार काम कर रहे हैं। जीव या देही अथवा जीवान्मा, अपने अंगों का सम्मिलित रूप मात्र नहीं है, वह अतीन्द्रिय चेतन है। इसके विरुद्ध यन्त्र जड़ है, वह पुरजों का पिंड है, एक भी पुरजा न होने पर निष्क्रिय हो जाता है।

(२) सरटी० पर्मानेन के शब्दों में “प्रत्येक स्तर पर प्राणी में अनेकता में एकता (unity in diversity) की उपलब्धि होती है। पर यन्त्र की स्थिति इसमें विपरीत है। वह अनेक पृथक्-पृथक् अंगों का समूह है। उसका एक जग हमारे अंग की क्रिया में नितान्त अनभिज्ञ रहता है। इसका मूलभूत कारण यन्त्र में जीवनदायिनी चेतना अज्ञित का अभाव है।

(३) प्राणधारी में भोजन के पाचन द्वारा स्व-शरीर की वृद्धि करने की क्षमता है तथा अपनी जानि की रक्षा की योग्यता है। वह मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में वशानुक्रम और वातावरण की सम्मिलित अथवा गुणिन प्रतिक्रिया है। उसमें मजबूती, सरलता, सुबोधता जैसे मद्गुण हैं पर यन्त्र में ऐसा कुछ भी नहीं है। और जब वह स्वयं ही घट-बढ़ नहीं सकता है तब वह दूसरों को क्या घटावेगा-बढ़ावेगा? उनके वशानुक्रम का तो भवाल ही नहीं पर बाह्य वातावरण में अवश्य उसकी जीवनोपयोगी शक्ति में न्यूनाधिकता सम्भव है और यह व्यवस्था भी उसके स्वामी पर निर्भर है।

(४) प्राणधारी शरीरी जीव स्वनामित है, स्वनियन्त्रित है, वह अन्तरात्मा में आदेश भी प्राप्त करता है। वह एक ऐसा खिलाडी है, जो सभी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं, विधि-निषेधों को करने के लिए स्वयन्त्र है। उससे विरुद्ध यन्त्र है, जो दूसरों के द्वारा ज्ञातित है, दूसरा व्यक्ति जिसका नियामक है, संचालक है। यन्त्र वह गंद है जो पूर्वोक्तलिखित खिलाडी के हाथों की कठपुतली बनो है।

(५) जीवधारी का जीवन G W T Patric के शब्दों में आत्मसंयोजन, आत्मपोषण, आत्मरक्षा और आत्मप्राप्ति का चोक्त है परन्तु यन्त्र में संज्ञासंयोजन, पोषण, रक्षा और प्राप्ति जैसा एक भी गुण नहीं है।

(६) जीवधारी के पास इन्द्रिया है। उनके प्रयोगों की अपनी सीमायें व क्षमताएँ हैं। जीवात्मा के पास मन और मस्तिष्क है, उसका मन्देशवाहक व्यवहार है जो उसकी और दूसरों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर आधारित है पर यन्त्र में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

(७) जीवात्मा अनुभव करता है। वह ज्ञान-संवेदन-चेष्टा लिये है (भले वह चीटी या बमीबा भी क्यों न हो) और अपने अस्तित्व की घोषणा करता है। जीव आत्मरक्षा और विद्यमानता के लिये भी प्रयत्नशील रहता है पर

यज्ञ के पास अनुभवमयत्व दृष्टि नहीं । (यह चाहें रूढ़िवादी अथवा पुनरीकरण के भासनाय । यज्ञ भी क्या नहीं है, पर उसमें पान अनुभव-वेष्टा नहीं होने से अस्तित्व की धारणा करने का क्षमता नहीं है ।)

अध्यास और अनुभव बनलाना है कि ज्ञान और चेतन का ताना बाना अनन्त जटिल बन रहा है कि अणु भी आवर्त्मिक विभिन्नताओं समानताओं एक दूसरे के स्थिति जो-उन मध्य और वरिष्ठ अनिजीवित रहने का चेतनाया के बनी हैं । जड़ और चेतन में यज्ञ और मनुष्य में हम सजग दृष्टिकोण तब सतत भेद दिये रूढ़ि और समकाल-सममान रूढ़ि ।

मनुष्य ने यज्ञ की बनाया । यज्ञ न मनुष्य का नहीं बनाया । जो यज्ञ है वह मनुष्य नहीं और जो मनुष्य है वह यज्ञ नहीं ।

आज चेतना ही मुझे प्रस्तुत प्रसव में लिखना है ।

•



लोकस्वरूप : समीक्षा

श्री रिखबराज कर्णावट,

एडवोकेट,

जोधपुर,



कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके हृदय में यह जानने की आकांक्षा न रही हो कि विश्व में दृष्टिगोचर होनेवाली ये वस्तुएँ किम प्रकार अस्तित्व में आई ? यह सूरज, यह चन्द्रमा, ये तारे, यह वायुमान, ये पहाड़, ये नदियाँ, ये बड़े-बड़े समुद्र, झीले, वाग बगीचे, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष, क्या क्या अपने-आप ही मयोंमय अस्तित्व में आगये या कोई ऐसा हेतु है जिसके प्रभाव में किसी प्रक्रिया द्वारा इन सब का आविर्भाव हुआ है ?

अत्यन्त प्राचीन समय में भी मनुष्यों का ध्यान इन बातों की तरफ आकर्षित हुआ था और उनमें ने जो विशेष प्रज्ञावान् पुरुष थे, उन्होंने ज्ञान की माधना कर उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर खोजने के प्रयत्न किये और वे अपने अनुभवों का निचोड़ अपनी भावी पीढ़ियों को देते गये । उनमें से अनेकों ने उन विश्व को रचने वाले की कल्पना की और उस तथाकथित रचयिता को ईश्वर की सजा दी । क्रिश्चियन मतानुसार सृष्टि की रचना महोवा परमेश्वर ने छ दिन में की, और अन्त में आदम को भूमि की मिट्टी में रच कर उसमें जीवन का नाँम फूँक दिया । आदम को नींद में डाल दिया, और इसकी पसली निकाल कर उगे नारी बना दिया । उन दोनों की पुत्र-पुत्रिया बढनी गई । ईश्वर ने पशु-पक्षी भी बनाये और वे भी बढते गये और इन तरह सृष्टि का निर्माण होता गया । मुस्लिम मतानुसार भी खुदा ने मिट्टी में आदम को बनाकर उसको हुक्म दिया कि 'हो' और वह हो गया । पारसी धर्म के अनुसार अहुर मज्द ने तमाम वस्तुएँ पैदा की । वैदिक धर्म में भी पुराणों में सृष्टि का कर्ता ईश्वर को माना गया । सृष्टि की रचना कब और कैसे हुई, इस बारे में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ पुराणों में भी की गई हैं । इन कल्पनाओं और मान्यताओं ने माधारण लोगों को भले सन्तोष हुआ हो किन्तु विचारशील लोगों का समाधान नहीं हुआ, क्योंकि इन कल्पनाओं में दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को कोई स्थान नहीं है । अतएव उन कल्पनाओं पर प्रकाश न डालकर यहाँ हम भिन्न-भिन्न दार्शनिकों के विचारों पर ही दृष्टिपात करेंगे । पहले पाश्चात्य प्राचीन तथा अर्वाचीन दार्शनिकों के और तदनन्तर भारतीय दार्शनिकों के विचारों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जाएगी ।

यूनान के दार्शनिकों की विश्वसमस्या

पाश्चात्य समार में यूनानी दार्शनिकों ने ही सबसे पहले विश्व स्वरूप की समस्या का समाधान ढूँढने में दिलचस्पी ली । जिस तरह वच्चे खिलौने किस वस्तु के बने हैं, यह जानने के लिए गिल्लीने को तोड़ते हैं, ठीक उसी प्रकार विश्व जिन उपादानों में बना है, उनका पता लगाने में ये दार्शनिक लग गये । वे केवल कल्पना के आकाश में उड़ने वाले न ये बल्कि अपनी समस्या का समाधान वैज्ञानिक आधार पर ढूँढना चाहते थे । थैल (Thales) नामक यूनानी दार्शनिक ने, (जो ईसा से लगभग छ सौ वर्ष पूर्व हुआ था) विश्व का मूल उपादान कारण जल बताया । उसने देखा कि पानी जम कर ठोस बर्फ के रूप में आ सकता है और वाष्प के रूप में भी बदल सकता है । इससे उसने अनुमान लगाया कि कड़ी में कड़ी चट्टानें व हल्की से हल्की हवा पानी से निर्मित हैं और समय पाकर पानी में परिणत हो जायेगी । इस दार्शनिक के पश्चात् ही यूनान के एक अन्य दार्शनिक अनक्सीमण्डर (Anaximander) ने कहा कि भूतो के जिन स्थूल साग्न रूप को हम देखते हैं मूल तत्व को उनमें अत्यन्त सूक्ष्म होना चाहिये । उसने इसका नाम 'अनन्त' 'अनिश्चित' रखा । इस अनन्त में उसने गति मानी और यह माना कि गति के कारण अनन्त जनें जनें टुकड़ों

म विस्तर कर उस विश्व के भिन्न भिन्न पदार्थों के रूप में प्रकट हुआ है। इसी अनन्त में आग हुआ पानी आदि तत्व बने हैं।

जिसे उसका बाद एक अथ दार्शनिक अनक्सीमिन (Anaximene) ने उपरोक्त विचारों के साथ मेल मिला प्रकट नहीं की और कहा कि मूल तत्व वायु है जिससे सम्पूर्ण विश्व का प्रादुर्भाव हुआ है। मनुष्य और पशु भी वायु से ही श्वास लेते हैं और वायु से ही वारण जावित रहते हैं। वायु से पानी पड़ता पड़ता इन सबकी उत्पत्ति वायु में हुई है। यही वह ध्यान देने की बात है कि यूनान के इन दार्शनिकों ने मूल प्रश्न नहीं पूछा कि मूल विश्वने बनाया ? उनका प्रश्न था—ये कैसे बन ?

पाश्चात्य ज्ञान के विरासत में इन लोगों का चिन्तन चल रहा था। इन दार्शनिकों के बाद अगले विकास में हम विचारकों का सूक्ष्म तत्त्व चिन्तन की ओर रुख देखते हैं। पिथागोरस (Pythagoras) जन्म प्राचीन दक्षिण भारत के प्राग जन्मे सत्र आते हैं। पिथागोरस सूक्ष्म ज्ञान का छात्र आदि की ओर दौड़ता है। उसका ज्ञान है कि मनुष्य मूल तत्त्व नहीं है। मूल तत्त्व आदि या आकार है। बोना के तार की जम्माई की तरह वायु से बने वस्तुओं के उसने बताया कि अगले से आकार जिनकी सम्झाई या आकार का हम प्रयोग करते हैं उसी का जस्तार स्वर निश्चित है। आकार या निश्चित आदि से प्रकट की जा सकती है। इसीलिये सभी चीजें मनुष्य के और यह सम्पूर्ण विश्व सम्झाया बना हुआ है। इन दार्शनिकों ने मूल तत्व का परिवर्तन माना मान कर उसमें विश्व रचना की समस्या सुलझाने की कोशिश की।

हराक्लिट (Heraclitus) नामक दार्शनिक ने मूल तत्व अग्नि का बताया। क्योंकि जगत् सान्निध्य पर चलती रहता है। उसका कथन था कि सत्ता में कुछ भी स्थायी नहीं है। जगत् में दूगरी बार सुबकी लगा कर आप उसी पानी में नदी बना सकते हैं।

इसके विपरीत एक्सिफेन (Xenophanes) नामक दार्शनिक की यह मान्यता थी कि सम्पूर्ण विश्व एक ठोस ब्रह्म है जो परिवर्तनशील और अनिश्चित नहीं है। दूसरे दार्शनिक परमेनिडे (Parmenides) ने भी बात को बल देते हुए बताया कि जगत् एक जड़ अविनाशी सत्य ब्रह्म है। गति या दूसरे परिवर्तन जो हम देखते हैं भ्रम हैं। एलिफे के एक अन्य दार्शनिक जेनो (Zeno) ने यह साबित करने का प्रयत्न किया कि जो लोग परिवर्तन को गिना करने का प्रयत्न करते हैं वे अपना स्वयं का प्रतीकार करते हैं। यह दार्शनिक भी एलिफे के उस शक्तिशाली दार्शनिकों का साति स्थिर अस्तव्यस्त था।

हराक्लिट और एलिफे के उपरांत विचारों की ओर आदि दार्शनिकों का अन्तर्भव में काम उठाकर एम्पेडोक्ल (Empedocles) नामक दार्शनिक ने अग्नि वायु जल पृथ्वी ये चार चीजें स्थिर कर दीं और बताया कि ये चारों में जलवायु कण (Particle) भरे हुए हैं। इन चारों में संयोग और विभाग से सभी पदार्थ बनते और विभक्त हैं। यह विचारधारा ने परमाणुवादियों के लिए एक रास्ता खोल दिया। परमाणुवादियों में उस समय लूसिप्पस (Leucippus) और उसका प्रसिद्ध शिष्य दमोक्रिट (Democritus) हुए हैं। दमोक्रिट धर्म परिवर्तन का नहीं मानता। उसका कहना था कि जो परिवर्तन दिख रहा है वह वस्तुओं का आकार में गति से हुआ है। उसका कहना था कि मूल तत्व एक ही जिसका वह परमाणु कहता है। सभी परमाणु एक आकार के नहीं होते उनके बने पिप्पा के आकार में भेजे हैं। ये परमाणु निरंतर हरकत करते रहते हैं और हरकत करते रहते हैं उनका दूसरा नाम गलाग होता है तथा इस तरह का जगत् तथा दूसरे विषयों का निर्माण होता है।

अफलातून (Plato) की विचारधारा (४२७ से ३४७ ई. पू.)

पाश्चात्य सभ्यता में सभी मिथिला यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अफलातून (Plato) का अनुभव नहीं कर सका। यह अपने गुणगौरव का। इन दोनों सहजता का कि ठीक आरंभ प्रयत्न करने पर मान सम्भव है। साथ ही हेगेलियन की





राय ने भी सहमत था कि इन्द्रियगम्य वस्तुएँ मदा बदलती हैं और उनमें मत्स्य पर नहीं पहुँचा जा सकता। वह एलिया-निको की भांति एक परिवर्तनशील जगत् को मानता था और उसमें परमाणुवादियों के बहुत्ववाद का भी समर्थन किया। इन सब के सम्मिश्रण ने इस परिणाम पर पहुँचा कि ज्ञान का विषय इस जगत् की दिव्यता हुई चीजें नहीं बल्कि एक इन्द्रिय-अगोचर पदार्थ विज्ञान (Idea) है जो पियागोरस की आकृति में मिलता था। वह सामान्य का पक्षपाती था। उसका स्थान था कि विज्ञान में जितने पदार्थ ह वे वस्तुतः मत्स्य नहीं हैं, असली विज्ञान [Idea] की अपूर्ण प्रतिलिपि मात्र है। दिव्य में जितने अस्व रिचाई पड़ते हैं वे सब जगत् के विज्ञान (Idea) की प्रतिलिपियाँ हैं। अस्व दिव्यताई पड़ते हैं पर अज्यता (सामान्य) को कोई नहीं देख सकता। यह सामान्य अनादि अगोचर मूल स्वरूप है और नित्य तत्त्व है। एक मूल तत्त्व की जनको प्रतिरूपिया सम्भव है। जिस तरह मूर्ति के सामान्य (Idea) में उस आकृति की अनेकों मूर्तियाँ पत्थरों पर अंकित की जा सकती हैं। अफलातू (Plato) की मान्यता के अनुसार सामान्य तत्वों या नि मूल स्वरूपों का इस लोक में परे अन्य लोक है जहाँ पर वे मूल तत्व (Ideas) जगत् व्यवस्थित हैं। उनमें पूर्ण शिव (Perfect god) का विज्ञान सर्वोच्च है। चूँकि सामाजिक वस्तुएँ उन विज्ञानों की प्रतिलिपियाँ हैं और वे प्रतिलिपियाँ भौतिक तत्वों का आधार लिये हुए हैं, इसलिए अफलातू ने भौतिक तत्वों का अस्तित्व भी अनादि ज्ञान में माना है। विज्ञान (Idea) और भौतिक तत्वों को नाश लाने के लिए अफलातू ने एक विधाता 'देमिउर्ग' (Demiurge) की कल्पना की है जिसने उसने मूर्तिकार की उमा दी है। विधाता मानवमूर्तिकार की भांति विज्ञानजगत् (मानविक दुनियाँ-World of Ideas) में मौजूद नमूने (मूल स्वरूप-सामान्य-Ideas) के अनुसार भौतिक विज्ञान को बनाता है। भौतिक तत्व अपूर्ण होने में विज्ञान की गुंथ प्रतिलिपियाँ पैदा होने में बाधा पड़ती है, इस कारण इस विज्ञान में कमियाँ नजर आती हैं। अफलातू ने इन्द्रियगम्य प्रत्यक्ष जगत् में अलग बुद्धिगम्य विज्ञान-जगत् को वास्तविक जगत् बनाया है।

अरस्तू (Aristotle-३८४-३२२ ई० पू०)

अफलातू के बाद उसका शिष्य अरस्तू (Aristotle) एक महान् दार्शनिक के रूप में संसार के समक्ष आया। वह अफलातू के विज्ञान (Ideas) को तो मानता था किन्तु विज्ञान-जगत् की जड़ों को स्वीकार नहीं करता था। उसकी मान्यता थी कि विज्ञान (Ideas) जिसे वह आकृति कहता था, भौतिक तत्वों (Matters) में मौजूद है। उदाहरण के लिये एक वट वृक्ष को लीजिये। इसके बीज में वट वृक्ष की आकृति समाई हुई रहती है। उसी प्रकार वट वृक्ष में लकड़ी के तत्वों की आकृति समाई हुई है और लकड़ी के तत्वों में Furniture की आकृति है। इन हरेक में बीज में, वृक्ष में, लकड़ी के तत्वों में और Furniture में भौतिक तत्व और आकृतियाँ समाई हुई हैं। इन सब वस्तुओं के मूल में वट वृक्ष की आकृति (मूल-स्वरूप) रही हुई है, वह अपरिवर्तनीय है। केवल भौतिक तत्व भिन्न-भिन्न आकृतियों में बदलकर उपरोक्त वस्तुओं के रूप में हमारे समक्ष आया। भौतिक तत्व मदा आकृति पाने की चेष्टा में रहता है। भौतिक तत्व और आकृति अनादि काल में है। इनको किसी ने पैदा नहीं किया और ये मदा शाश्वत रहेंगे। भौतिक तत्वों की आकृति लेने की प्रक्रिया में इस विश्व में उत्पन्न हुई सब वस्तुएँ समझाई जा सकती हैं। इस विश्व के स्वरूप को समझने के लिये हम मूर्तिकार द्वारा मूर्ति बनाने के उदाहरण को लेते हैं। अफलातू का मूर्तिकार मूर्ति के नगमरमर में भिन्न स्वतंत्र है। किन्तु अरस्तू का मूर्तिकार नगमरमर पर निर्भर है। पूर्ण मूर्ति का विज्ञान अरस्तू के अनुसार नगमरमर में रहा हुआ है जो स्वरूप नगमरमर प्राप्त करता है। अरस्तू के विचार से विधाता नहीं है तो भी सभी वस्तुओं का विधाता पूर्ण विकसित विज्ञान-ईश्वर की ओर है। अरस्तू की मान्यता है कि प्रत्येक वस्तु चार कारणों से बनती है —

- (१) विज्ञान कारण (Formal cause) — मूर्तिकार के मन में मूर्ति के स्वरूप का विचार।
- (२) उपादान कारण (Material cause) — नगमरमर का भौतिक तत्व जिससे मूर्ति की रचना की जाने को है।
- (३) निमित्त कारण (Efficient cause) — वे औजार आदि जो मूर्ति के निर्माण में सहायक हों।
- (४) अन्तिम कारण (Final cause) — जिस उद्देश्य के लिये मूर्ति निर्मित की गई हो।

संचालित कर सकती है। ईश्वर के काम के बारे में दार्शनिकों का कहना है कि ईश्वर ने प्रकृति में जो गति पैदा की उसे जारी रखने के लिये ईश्वर को अब भी सक्रिय रहना पड़ता है।

स्पिनोजा (Spinoza १६३२-१६७७) — फ्रान्सु स्पिनोजा ने ईश्वर को एक परम तत्त्व के रूप में माना है और उसी को विद्वद मश्रुति किया है। उसका कहना है कि एक नान्त वस्तु अपनी सत्ता के लिये अग्रगण्य तत्वों पर निर्भर है और इनमें से भी प्रत्येक तत्त्व दूसरे अनगिनती तत्वों पर निर्भर है। उस तरह कोई ऐसा तत्व अवश्य होना चाहिये जो स्वयंमिद, स्वयं आना आया हो। ऐसा तत्त्व स्वयं प्रकृति या ईश्वर है जो अनन्त और पूर्ण है। हरेक अन्तिम शक्ति ईश्वर का गुण है। मनुष्य उन गुणों में दो गुणों को जानता है - विस्तार (Extension) और चिन्तन (Thought)। ये दोनों गुण अपने आप में स्वतन्त्र हैं। परन्तु एक ही परम तत्व ईश्वर के दो भिन्न-भिन्न रूप हैं। उस प्रकार स्पिनोजा के अनुसार सम्पूर्ण विश्व एक तत्त्व है जिसे वह परमात्मा या प्रकृति के नाम से पुकारता है।

जोह लॉक (Johan Lock, १६३२-१७०४) — उस दार्शनिक ने दार्शनिकों के विचारों को कुछ परिवर्तन के साथ स्वीकार किया है। उसका कथन है कि जगत् द्रव्यों ने निर्मित है जो भावनाओं और गुणों के आधार हैं, और जिनमें क्रियाएँ निहित रहती हैं और निष्कृत होती हैं। द्रव्य गुणों और क्रियाओं के कारण और आधार हैं। द्रव्य दो तरह के हैं—शरीर और आत्मा। शरीर द्रव्य के विशेषणपञ्च यानि विस्तार (Extension) कठोरता (Solidity) अवेद्यता (Impenetrability), ये प्रार (Space) में भरे हैं। आत्मा एक वास्तविक सत्ता है जिसके विशेषण प्रत्यक्ष या विचार शक्ति और सकल्य या शरीर को गतिमान करने की शक्ति है। इन गुणों को हम विमर्श (Reflexion) द्वारा जान सकते हैं। आत्मा, मन और शरीर एक दूसरे पर प्रभाव डालते रहते हैं। उदाहरण के लिये शरीर मन पर प्रभाव डालता है जिसमें हम रंग, शब्द, स्पर्श आदि को अनुभव करते हैं। लॉक का मिश्रान्त द्वैतवादी है। उसके कथनानुसार आत्मा और शरीर दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार के द्रव्य हैं जिसमें विश्व का निर्माण होता रहता है।

बर्कले (Barkeley १६८५-१७५३) — बर्कले भौतिक तत्त्व के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता था। उसका कहना था कि मुख्य या गौण गुणों के सम्बन्ध में हमारे विचार या वेदनाएँ हैं, वे किन्हीं वास्तविक बाह्य तत्वों की प्रतिबिम्ब नहीं हैं। वे सिर्फ मानसिक वेदनाएँ हैं। बर्कले के अनुसार सत्य के सत्य हैं भगवान्, उसकी वस्तु आत्मा और भिन्न-भिन्न विचार, जो उसकी आज्ञानुसार विशेष अवस्थाओं में पैदा होते हैं। बर्कले का कहना है कि मेरे मन में नवेदनों (Sensations) या प्रत्ययों (Ideas) का कोई कारण होना चाहिये। और यह कारण कोई सक्रिय द्रव्य होना चाहिये, क्योंकि यह कारण भौतिक द्रव्य नहीं हो सकता, अतएव यह अमूर्त सक्रिय द्रव्य या स्प्रिट होना चाहिये। स्प्रिट एक है, अविभाज्य है, सक्रिय है। हम स्वयं स्प्रिट को नहीं देख सकते किन्तु उसके द्वारा उत्पन्न कार्यों (Effects) को ही देख सकते हैं। फिर भी हमें आत्मा या स्प्रिट का और मन की क्रियाओं (सकल्य करना, धार करना, धृष्ट करना आदि) का, जिस अर्थ में भी हम उन्हें समझते हैं, बोध होता है। उस प्रकार बर्कले ने दार्शनिकों, स्पिनोजा और लॉक द्वारा बताये गये भौतिक विश्व को स्वीकार नहीं किया। उसकी मान्यतानुसार जो कुछ भी अस्तित्व में है वे मन में रहे हुए प्रत्यय हैं। उसका कथन था यदि वे मेरे मन में नहीं हैं तो आपके मन में हैं, परात्मा के मन में हैं, वे निम्नदेह भौतिक (Material) दृष्टिगोचर होने हैं किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है।

ह्यूम (Hume १७११-१७७७) — इस दार्शनिक ने यह महसूस किया कि बर्कलेय रॉयल आगे नहीं जा सका। हमको केवल द्रव्य का ही विचार नहीं छोटना चाहिये बल्कि ईश्वर का विचार (Idea) छोड़ देना चाहिये, जिसके मन में सब प्रत्ययों का होना माना है। ह्यूम का कथन है कि द्रव्य (Substance) की धारणा निरर्थक है, चाहे उसे मन पर उपयोजित किया जाय या पुद्गल पर। मनस द्रुत गति ने एक के बाद एक आने वाले अविच्छिन्न प्रभाव युक्त विभिन्न प्रत्ययों की राशि है। इन्द्रियजन्य अनुभव के अतिरिक्त ज्ञानप्राप्ति का माधन ह्यूम ने स्वीकार नहीं किया, और इसी कारण आत्मा व ईश्वर की सत्ता भी उसने स्वीकार नहीं की। ह्यूम के मदेहवाद में यह स्वाभाविक था कि लोगों को कोई मतोपकारक समाधान नहीं दिया।

लाइब्निज (Leibnitz १६४६-१७१६)—यह जर्मन गणितज्ञ आत्मरक्षणवादी (Monadism) का प्रवर्तक था। 'मन' अनुसार ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो जिज्ञास्य बन सके। अतः पदार्थ का मुख्य विभागण प्रत्यक्ष (Extension) न होकर शक्ति (Force) है। 'लाइब्निज' के दान में प्रकृति की गतिमान शक्तियाँ या शक्तियाँ की जगह गतिमान (dynamic) या ऊर्जा (energetic) शक्तियाँ की गई हैं। आज यांत्रिक जगत् का उद्गम है। चूँकि अनेक वस्तुओं की सत्ता नहीं है अतएव प्रकृत में एक मात्र न 'मन' अतीतमयत्व ओज है जिसमें सब हर एक विधि प्रत्यक्ष द्रव्य होता है जिसकी इकाई मोनड (Monad) कहलाती है। पदार्थजगत् अतीतमयत्व गतिमान शक्तियों या अतीतमय अग्रपक्षित निरवयव आज की इकाईयाँ से निर्मित है। हर एक मोनड में प्रत्यक्ष या उपगण (Representation) शक्ति होती है वह सारे विश्व का प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति और उपस्थापन करता है। इस अर्थ में यह स्वयं एक सूक्ष्म विश्व है। वह विश्व का गतिमान दान है या मयाशक्तिज्ञा है। मोनड सीमित होता है वह अलग प्रत्यक्ष होता है और अपने बाह्य उसमें अन्य मोनड भाँ होने है। मोनड जिनकी ऊँची शक्ति का हाथ वह जगत् के अनेक भाग का उत्तरी ही शक्ति प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति करेगा। 'मन' या 'नवीजा' निराला कि 'विश्व' में होने वाली प्रत्यक्ष घटना की अनुप्राप्ति प्रत्यक्ष की जाती है। जो सब कुछ देखता है वह हर एक विधि वस्तु में सब जगह होने वाली शक्ति का देव सत्ता है। यह अनन्तमय में प्रत्यक्ष (Space) और शक्ति में उन दूरस्थ शक्तियों का भी देव सत्ता है जो हुई हैं और होगी।

लाइब्निज का कथनानुसार सभी आत्मरक्षण (Monad) विज्ञान में एक से नहीं है। कुछ का विज्ञान अत्यंत अल्प है कुछ का विज्ञान इनसे ऊँचा और कुछ का अत्यंत ऊँचा है। जीवित प्राणियों में आत्मा (Queen Monad) होता है जो सब दूसरे मानवों का प्रत्यक्ष प्रमाण है। सबसे ऊँचा मोनड चरम विज्ञान की प्राप्ति ईश्वर है। उसकी चेतनागम्य अत्यंत और पूर्ण अत्यंत शक्ति है। मनस ईश्वर का विस्तृत शक्ति प्रमाण (Idea) नहीं बन सत्ता क्योंकि ईश्वर सबसे बड़ा मोनड है और मनुष्य सीमित है। पूर्ण मनस की एक पूर्ण मनस की पूरी तरह सम्यक् सत्ता है। ईश्वर की धारणा बुद्धि में गरी है किन्तु बुद्धि का विपरीत नहीं है। मोनडगत् दूसरे पर प्रभावशाली डालते किन्तु सभी मोनड ईश्वर इस नियम का अनुपालन है। उसने पर सब शक्तियों में सब आत्मरक्षण की प्रतीति दिया। आत्मरक्षण अपनी प्रियाता का सम्बन्ध में जो आपस में सम्बन्ध करत मात्र पड़ते हैं वह सब से स्वाधित समन्वय (Harmony) का कारण है। लाइब्निज अविच्छिन्नता (Continuity) का सिद्धांत का मानता है जिसका आवश्यक परिणाम है कि मोनड में सब शक्ति नहीं हो सकती जो उसमें सत्ता में नहीं है। मानव विज्ञान का विभिन्न अवस्थाओं में गुजरता है जिससे उसकी पूर्वनिर्मित शक्तियों का प्राप्ति होता रहता है। मानव के शक्ति और ईश्वर का सम्बन्ध में सारे मानवजाति पूर्वनिर्मित थी। जिस व्यक्ति का आज विज्ञान हो चुका है वह सब शक्ति रूप पूर्वनिर्मित था। भविष्य की अवस्थाएँ पढ़ने की अवस्थाओं में पूर्वनिर्मित रहता है। ईश्वर ने विश्व का सब प्रकार व्यवस्थित कर दिया है कि उसका हस्तक्षेप का बिना विश्व का संचालन होता रहता है।

इमैन्युअल कांट (Immanuel Kant १७२४ १८०४)—उपराज शिपोजा दत्त लाइब्निज आदि के दान में या तो भौतिक तरिका की ही सब तत्त्व होने पर जोर दिया गया है अथवा प्रकृति की उत्पत्ति करके विज्ञान (मनस) की ओर एक मात्र परम तत्त्व कहा गया है। जर्मनी का सविस्तरान्ता (जिसे कांट के दान का मुख्य उद्देश्य था) मन के गन्तव्य और पुनर्जीव शक्ति की सीमित करना तथा भौतिकता अतीतमयत्व का नष्ट करना। उसने ईसायन का सब चारों तरफ का बढ़ाकर ईश्वर सब स्वाधित तथा आत्मा का अमरत्व आदि धर्मों का भौतिक सिद्धांत की रक्षा करने की कोशिश की। इन्हीं की शक्ति उनमें अपने प्रकट तक वे जाने जाने हुए। उसका कथन था कि मानवबुद्धि बहुत दूर जा सकती है किन्तु उसकी गति अत्यंत तक नहीं जा सकती। ईश्वर और परमात्म मानव के तत्त्वों का बाहर की ओर है। इसलिये उनके बारे में कोई सब निश्चय नहीं किया जा सकता है कि वह उच्च श्रद्धावादी माना जाता है। सद्भावित्व और सब यह श्रद्धावान् ही बसबाद आत्म पढ़नी है। निश्चय व्यवहारमूलक (Practical) होने से वह काफी प्रबल है। ईश्वर तथा परमात्म में विश्वास समाज और व्यक्ति में शांति और सब का प्रचार करते हैं। कांट का कहना है कि जो ज्ञान हम भिन्नता है वह वास्तविक पदार्थों का उद्गम नहीं होता। यह है कांट का साहचर्य। तत्त्वों और प्रमाण में ज्ञान ज्ञान की बात कह कर यह प्रयोगशाला आत्म पढ़नी है। बाहरी





वातो की बिना परवाह किये अपने अनुभवों के चिन्तन में अपने स्वभाव के अनुसार ग्रहण करना बुद्धिवाद है। कान्ट ने अपने मतलब के लिये प्रयोगवाद, गदेहवाद, बुद्धिवाद तीनों का प्रयोग किया है। आत्मा के सम्बन्ध में उसने कहा कि हम माक्षात्कार नहीं कर सकते किन्तु उसके अस्तित्व पर मनन कर सकते हैं। आत्मा को उन्दिष्यो ही महायता से नहीं जान सकते क्योंकि वह सीमातीत और इन्द्रियागोचर है। वस्तुमात्र (Noumena) भी अज्ञेय है किन्तु वह है अवश्य।

वस्तुसार, अमर आत्मा, कर्मस्वानुश्रय, ईश्वर यदि हमारी समझ के विषय नहीं हैं तो उगमें उनका न होना साबित नहीं होता।

शुद्ध बुद्धि लिखने के बाद व्यावहारिक बुद्धि ठीककर कान्ट ने अपने अनुभवशील ज्ञान के सिद्धांत पर लीपा-पाती की है। इस प्रकार कान्ट ने दो प्रकार के विश्व बनला है—एक अनुभव के आधार पर जिसे उसने फिनोमिनल वर्ल्ड (Phenomenal World) कहा और दूसरा बुद्धि और तर्क के आधार पर (Noumenal World) है। एक शुद्ध वैज्ञानिक, दूसरा व्यावहारिक जगत् है।

फिशटे (Fichte १७६१-१८१४) —कान्ट ने बहुत प्रयत्न में वस्तुमात्र की समझ की सीमा के पार बुद्धि-अगम्य साधित किया था, किन्तु जर्मनों के एक अन्य दार्शनिक फिशटे ने कहा कि वस्तुमात्र भी मन ने पड़े की चीज नहीं। विश्व में प्रत्येक वस्तु एक मजीब प्रवाह है। फिशटे का विचार Ego को लेकर पाश्चात्य दृष्टि जिसे वह स्वतंत्र और स्वयं निर्माणकर्ता के रूप में देखता है और उसे "परमात्मा" कहता है। परमात्मा ने अपने को ज्ञाना (आत्म) और ज्ञेय (विषय) के रूप में विभक्त किया। क्योंकि आत्मा के आचारिक प्रित्ति के लिये ऐसे बाधा हटाने वाले पदार्थों की जरूरत है, जिनको कि आत्मा अपने आचारिक प्रयत्न से पार करे। इन्हीं कारणों से परमात्मा को अनेक आत्माओं में भी विभक्त होना पड़ता है। विश्व की समस्त भौतिक दिग्गज वस्तुएँ उसी परमात्मा ने उत्पन्न हुई हैं।

हेगेल (Hegel, १७७०-१८३१) —आधुनिक युग में भौतिकवादी दर्शन का जो नया प्रवाह आरम्भ हुआ, हेगेल के दर्शन के रूप में चरम सीमा पर पहुँचा। उसके दर्शन के विकास में अफगानू, अरस्तू, स्पिनोजा, कान्ट का हाथ है। कान्ट ने उसने लिया कि मन नारे विश्व का निर्माता है और हमारे वैयक्तिक मन विद्वय-मन के जगत् है। स्पिनोजा ने उसने यह लिया कि आत्मिक और भौतिक तत्त्व उसी एक जगत् तत्त्व के दो रूप हैं। अफगानू ने उसने यह लिया कि सामान्य विज्ञानों (Ideas) का ही वास्तविक जगत् है, भौतिक जगत् उसी आत्मिक जगत् की प्रतिच्छाया है। हेगेल ने अरस्तू के आत्मिक विकास को भी लेना चाहा। हेगेल की देन है "द्वन्द्ववादी विकास" (Dialectical Evolution)। उसके अनुसार विश्व निरन्तर होते विकासों का प्रवाह है। परमात्मतत्त्व (Absolute) विश्व के विकास का परिणाम है। वस्तु आगे बढ़ते-बढ़ते अपने विरोधी रूप में बदल जाती है। इन दोनों का द्वन्द्व चलता है, फिर दोनों का समन्वय एक तीसरी चीज से होता है। इसमें पहली बात वाद (Thesis) दूसरी प्रतिवाद (Anti-thesis) और तीसरी मवाद (Synthesis) कहलाती है। उदाहरण के लिये परमेनिद् ने कहा—मूल तत्त्व स्थिर है, यह वाद हुआ। हेराक्लितु ने कहा कि वह निरन्तर परिवर्तनशील है यह प्रतिवाद हुआ। परमाणुवादियों ने कहा यह न तो स्थिर ही है न परिवर्तनशील ही, बल्कि दोनों हैं, यह सवाद हुआ। हेगेल के अनुसार जगत् मवाद बनाया जा रहा है। वह विश्व में परिवर्तन की बात करता है किन्तु वास्तविक परिवर्तन को वह एक तरह से इन्कार करता है। क्योंकि उसके कथनानुसार जो सविषय से होन वाला है वह पहले से ही मौजूद है। इस परम तत्त्व की एकता में वह विश्व की विचित्रताओं को खपा देना चाहता है।

स्पेन्सर (Spencer, १८२०-१९०३) —स्पेन्सर ने अपने दर्शन के सिद्धांतों को डार्विन जादि Biologists के सिद्धांतों पर विकसित किया है। उसका कहना है कि हम सीमित वस्तु को जान सकते हैं। परमतत्त्व को जानना हमारी शक्ति से बाहर है। उसके अनुसार परम तत्त्व अज्ञेय है जो परस्पर विरोधी बड़े समुदायों में अपने को प्रकाशित करता है, वह है अन्तर और बाह्य, आत्मा और अनात्मा, मन और भौतिक तत्त्व। उसका कहना है कि विकास के

भारतीय दर्शनों में विश्व-स्वरूप

साएय दर्शन (महाय कपिन का) —इम दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष के मयोग ने सृष्टि होती है । प्रकृति जड है, अत अकेली सृष्टि नही कर सकती । प्रकृति की क्रिया पुरुष के चैतन्य से निरूपित होती है तभी सृष्टि

कहते हैं तब उनका मतव्य चनात्मक शक्ति में है। अगर अद्वैत वेदान्त को मानने है। ब्रह्म के अनिश्चित अन्तर्गत वस्तु की मत्ता अद्वैतवादी नहीं मानने — “ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या” । यह पदार्थ जन्म ममभाव में विद्यमान रहे वह सत्य कहा जाता है। इस परिभाषा के अनुसार जगत् की सत्यता अद्वैतवादियों को मान्य नहीं क्योंकि जगत् सदा परिवर्तनशील है। जगत् की पारमार्थिक स्थिति न होने पर भी व्यावहारिकी मत्ता है। आचार्य शङ्कर ने ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण बनलाया है, वे इस का निरस्तार नहीं करने प्रस्तुत चित्तशुद्धि के द्वितीय फलतामनाशीन निगमार्थ में के अनुष्ठान पर जोर देने हैं। अद्वैत मत में जीव स्वभावतः एक है, परन्तु वैशिष्ट्य उपाधियों के कारण वह नाना प्रतीत होता है। आमानुष मन में जीव अन्तर्गत है, वे एक दूसरे में नितास्त पृथक् है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार मृत्यु आत्मा ब्रह्म के साथ अभिन्न रूप हो जाता है, परन्तु विग्रहाद्वैत (समानुष) के अनुसार वह ईश्वर के समान है। ईश्वर के साथ उसका एकात्म्य नहीं हो जाता। वह ब्रह्म के स्वस्व तथा गुण को अलग पा देता है परन्तु ब्रह्म के साथ मिश्रण एक नहीं होता। मुक्त जीव में सबज्ञता आ जाती है, परन्तु सर्ववृत्तित्व गुण ईश्वर में ही मान्य रहता है। जीव में अधिष्ठा के अश्रित होने की शक्तता सदा बनी रहती है।

मृष्टि का विकास हम ने हुआ उस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ की गई हैं। परन्तु शङ्कराचार्य उसको अधिक महत्त्व नहीं देने। भिन्न भिन्न श्रुतियों में मृष्टिविषयक भिन्न-भिन्न वर्णन पाये जाते हैं। पुराणों में भी उनके तरह की कल्पनाओं का सहारा लेकर जल्द कल्पनाएँ की गई हैं। शङ्कराचार्य ने मृष्टि या मूल तत्त्व शुद्ध, शुद्ध चित्त को ही माना है। जगत् के क्रमिक विकास की उपमा मनुष्य की तीन अवस्थाओं में दी गई है — (१) सुषुप्तावस्था, (२) स्वप्नावस्था, (३) जाग्रतावस्था। सुषुप्तावस्था का ब्रह्म ईश्वर है। स्वप्नावस्था या ब्रह्म शिवायगर्भ है, जाग्रतावस्था का ब्रह्म वैश्वानर है। ये अवस्थाएँ हम में जान पड़ती हैं, तथापि वे एक ही नाथ हैं ऐसा माना जा सकता है। क्योंकि शुद्ध चैतन्य का अभी लोप नहीं होता।

बौद्धदर्शन — महात्मा बुद्ध ने आत्मा और जगत् के मूल तत्त्व के अनुसन्धान करने में अपना समय नहीं लगाया। उन्होंने दुःखनिरोध की समस्या पर ही अधिक बल दिया। बुद्ध मत में दिखते वाली नव वस्तुओं को सत्य मानते हैं। उनका कहना है कि किसी कारण के बिना किसी भी घटना का आविर्भाव नहीं हो सकता। ये नियम शिवा चेतन-शक्ति के द्वारा परिचालन नहीं होते बल्कि स्वयं चालित होते हैं। नागरी (समस्त कारणों के समूह) में ही कार्य उत्पन्न होता है, जैसे मूल, चक्षु, विषय का रूप, आलोक आदि के सहयोग में रूपज्ञान हो जाता है। इन नियमों की प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं। प्रतीत्य समुत्पाद में कर्मवाद की स्थापना होती है। वर्तमान जीवन पूर्ववर्ती जीवन के कर्मों का फल है और साथ ही वर्तमान जीवन का भविष्य के जीवन से भी सम्बन्ध है। प्रतीत्य समुत्पाद में सामान्य वस्तुओं की अनित्यता भी प्रमाणित होती है। बुद्ध सभी वस्तुओं को परिवर्तनशील तथा नागवान् मानते हैं, इसलिए बुद्ध ने अणिकवाद और अनित्यवाद का प्रतिपादन किया।

प्रतीत्य समुत्पाद के कारण ही बुद्ध परिवर्तनशील दृष्ट घटकों के अनिश्चित किसी अदृष्ट स्थायी द्रव्य को नहीं मानते, अतः वे आत्मा को भी नहीं मानते। फिर भी बुद्ध ने पूर्व जन्म को माना है और दीपक की ज्योति का दृष्टान्त दिया है। एक ज्योति ने दूसरी ज्योति को प्रदीपित किया जा सकता है, किन्तु दोनों ज्योतियाँ एक नहीं समझी जाती। बुद्ध के अनुसार मनुष्य पाँच प्रकार के परिवर्तनशील तत्वों का संग्रह है जिसे पञ्च स्कन्ध कहते हैं। पहला स्कन्ध है रूप, जिसके वर्तमान आकार, रंग, आदि आते हैं। दूसरा स्कन्ध है वेदनाओं का, जिसके अन्दर सुख-दुःख आते हैं। तीसरा स्कन्ध मज्ञा अर्थात् नानाविध ज्ञानों का है। चौथा स्कन्ध संस्कार है, जिसके वर्तमान पूर्व कर्मों के कारण जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं वे आती हैं। पाँचवा स्कन्ध विज्ञान यानि चेतना है। इन पाँचों स्कन्धों की सम्मिश्रिता ही मान्य मनुष्य माना है। आत्मा नाम का कोई स्कन्ध नहीं माना है, किन्तु पीछे जाकर बौद्धदर्शन में तबे विचारों का समावेश हुआ है और आत्मा का भी अन्तिम स्वीकार किया गया है। और यह कारण बताया गया है कि महात्मा बुद्ध ने मुक्ति बताया है, यदि आत्मा नहीं है तो मुक्ति (निर्वाण) प्राप्ति किसकी होगी ?

जैन दर्शन — अब तक हमने पाञ्चात्य और अद्वैत भारतीय दार्शनिकों के लोक-रूप सम्बन्धी विचार देखे।

अन्य सम सम्बन्ध में जन दार्शनिका का विचारधारा देखें।

जन दार्शनिकाने लोक के सम्बन्ध में अपने मन की प्रस्तुत करने के लिये चार अंगगणों प्रस्तुत की हैं —

(१) मय (२) क्षेत्र (३) वाक् और (४) भाव।

मय अर्थात् क द्वारा उत्पत्ति य लोक किन् वस्तुओं मय है यह प्रकट किया है। क्षेत्र के द्वारा उ ने इस लोक की सम्बाध चौगाद और ऊचाइ बतलाई है। वाक् के द्वारा लोक की आदि अन्तिमा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। तथा भाव के द्वारा उत्पत्ति य वनलाया है कि लोकगत द्रव्य का स्वभाव क्या है और मनम परिवर्तन क्या होता है?

द्रव्य की अवेक्षा—मय से जन दार्शनिका का मत है कि आकाश एक गम्य बड़ा द्रव्य है और वह जगत् है। उनकी एक बहुत बड़ी धारणा में जड़ पर घमास्तिनाय अघमास्तिनाय पुनर्गल और जाव य चार अस्ति नाम विद्यमान हैं वह (उम गाका समस्त) लोक कहलाता है।

जनघमप्रवर्तना के अनुसार आकाश घम जनघम जाव और पुनर्गल य वावा अस्तिनाय हैं क्योंकि ये सभी छोटे छोटे अत्यन्त सूक्ष्म व अविभाज्य प्रयोग की राशि रूप हैं। गणना के अनुसार घमास्तिनाय अघमास्तिनाय और आकाशस्तिनाय एक एक अक्षर रूप हैं तथा जीव और पुनर्गल सत्वा में अनन्त हैं।

क्षेत्र की अवेक्षा—समस्त लोक अक्षय्यमात्र के अन्तर्गत चौगाद और ऊचाई के त्रिभुज पक्षों के अन्तर्गत और वाक्पति बहुत सामान्य धारणा में हैं तथा वाक् का अधिकांश भाग पुनर्गल वाक्पति हैं।

वाक् की अवेक्षा—वाक् की अवेक्षा में वे वाक् का रूप य अनन्त है अर्थात् न समा स्वन उ पत्त मय और न कभी निगा स्वर या ऐह हा निनी तत्त्व के द्वारा उत्पत्ति किया गया है। जिस प्रकार यह लोक आदि रहित है उसी प्रकार अन रहित भी है अर्थात् य न कभी स्वन मय हावा न य प के द्वारा उत्पत्ति किया जा सकता है।

वाक् की सत्त्वा नवान् उत्पत्ति और सत्त्वा विनाश दोनों ही असम्भर इत्यन्ति हैं कि यदि सत्त्वा नवीन उत्पत्ति मानी जाता है तो उमक त्रिभुज प्रश्न य पक्ष होता है कि लोक का उपानान द्रव्य क्या रहा होगा? यदि अय उपानान द्रव्य का स्वीकार किया जाता है तो उम अय उपानान द्रव्य के रूप में ही सही लोक अनादि सिद्ध हो जायगा यदि लोक की उत्पत्ति के लिये उपानान द्रव्य स्वीकार नहीं किया जाता तो विना उपानान द्रव्य स किन्ही पक्षों की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

ई वर ग लोक की उत्पत्ति नही माना के लिये जन दार्शनिक यह तक गेते हैं कि ईश्वर ने यदि इसे सत्त्वा नवीन बनाया तो उपानान द्रव्य को उत्तर बनाया या पूर्य के हा निमित्त किया? यदि उपानान द्रव्य में मनाया तो उन उपानान द्रव्य की पक्ष लोक अनादि सिद्ध हो गया। ई वर चाहें किन्हीं हो गतिनाय क्या न मान लिया जाय अभाव स किन्ही पक्षों की निमित्त नहीं कर सकता। सत्त्वा अमृत का उत्पत्ति और सत्त्वा विनाश कल्पि सम्भव नहीं है। प्राचीन गण और अर्वाचिन विनाश दोनों एक स्वर में म मिद्धात य स्वीकार करते हैं। जिसे हम उत्पाद और विनाश कहते हैं वह सत्त्वा नवीन प पक्षों का एक अवस्था में दूसरी अवस्था में पट्टना मात्र है। पूर्य का अस्तित्व म आ जाना अथवा किन्ही विद्यमान प पक्ष का पूर्य रूप में हो जाना सम्भव नहीं है। कुम्हार घट बनाना है तो मिट्टी के पिण्ड की आवश्यकता होती है और घट नष्ट हो जाता है तो वह कपाओ का रूप धारण कर लेता है। वस्तुन घट का उत्पत्ति और विनाश मिट्टी के रूपान्तरण के अतिरिक्त और क्या है? मिट्टी अपने पिण्ड-अवस्था का त्याग कर घट के रूप में जाती है और घट के रूप में त्याग कर कपाओ रूप को धारण कर लेती है। प्रत्येक रूपान्तरण में मिट्टी अपना रूप म रचाये है। यही प्रक्रिया अमृत के समस्त वर्णों पर लागू होती है और समस्त वर्णधारिणी ही एक है। इस प्रकार जा दान मूलभूत रूप का अनादि—अनन्त अस्तित्व स्थापना करता हुआ भी अस्तित्व का





परिवर्तन मान्य करता है। अतएव द्रव्यदृष्टि ने लोभ नित्य और पर्याय दृष्टि ने अनित्य है।

पर्यायों के परिवर्तन के लिए किसी निगूढ स्वरूपमयी एवं स्वरूपान्वीत शक्ति की आवश्यकता नहीं है। यह प्राकृति कारणों एवं मानवीय आदि प्रयत्नों में होना रहता है। आज भी परिवर्तन का अपरिहृत प्रवाह चल रहा है और मरुधर चालू रहेगा।

यह एक ऐसी बुद्धि एवं तर्क में भगन दृष्टिगोच्य है जिसका विरोध नहीं किया जा सकता। उन मयम में बागे विरोध प्रकाश डाला जायेगा।

भाव की अपेक्षा—भाव के अनुसार, जैसा कि पहले कहा है गुण और पदार्थ दोनों ही ग्रहण किये जाते हैं। पाचो द्रव्यों के गुण क्रमशः उस प्रकार हैं—धर्मास्तिकाय या स्वभाव गतिमान् जीवों और पुद्गलों की गति में महायत्ना देना है। अधर्मास्तिकाय स्थिर होने वाले जीवों और पुद्गलों की स्थिति में महायत्ना देना है। आकाशास्तिकाय स्थान (अवकाश) प्रदान करता है। जीवास्तिकाय का स्वभाव ज्ञान और दश नमय है। अर्थात् द्रव्यों में रही हुई एकता को और भिन्नता को जानना और देखना वह समस्त गुण है। अगुह्य दशा में पदार्थों के प्रति मोहित होना और उसी प्राप्ति के लिये वीर्य का प्रयोग करना आदि और भी गुण माने गये हैं। पुद्गलास्तिकाय का स्वभाव वर्ण, गंध, रस और स्पर्श है।

इन पाचो अस्तिकायों में पर्यायों का परिवर्तन उस प्रकार माना गया है—

धर्मास्तिकाय सभी विना क्षेत्र में कुछ जीवों और पुद्गलों की गति में महायत्ना देता है तो वही दूसरे क्षण उन जीवों और पुद्गलों में अन्य जीवों और पुद्गलों को महायत्ना देता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के स्वरूप में भी माना गया है। अन्तर यही है कि धर्मास्तिकाय गति में महायत्ना देता है जब कि अधर्मास्तिकाय स्थिति में महायत्ना देता है।

लोक में व्याप्त जीव और पुद्गल जब एक स्थान को छोड़ कर अन्य स्थान में जाते हैं तो आकाश के साथ उनका संयोग-वियोग होता है। अर्थात् वे आकाश के जिन प्रदेशों में संयुक्त थे, उनमें विद्युत् हो जाते हैं और जिनसे विद्युत् थे, उनमें संयुक्त हो जाते हैं। संयोग-वियोग रूप अवस्थाओं का यह परिणाम आकाश का परांपर्यवर्तन है।

जीवास्तिकाय में पर्याय बदलने का क्रम यह है कि कभी वह दर्शन उपयोग में रहता है तो कभी ज्ञान उपयोग में रहता है। अर्थात् वह कभी सब पदार्थों में रही हुई एकता को जानता है तो कभी पदार्थों में नहीं हुई भिन्नता को। इसी प्रकार अन्यान्य रूपों में भी उसके पर्यायों का परिवर्तन होता है।

पुद्गलास्तिकाय में वर्ण की अपेक्षा काल में नीले में, नीले में लाल में, लाल में पीले में, इस प्रकार कभी क्रमवद्ध तो कभी क्रमवर्धित बदलने की क्रिया होती रहती है। गंध की अपेक्षा सुगंध में दुर्गंध में और दुर्गंध में सुगंध में परिवर्तन की क्रिया चलती है। इसी प्रकार रस और स्पर्श की पर्यायों का परिवर्तन होता रहता है।

पाचो द्रव्यों के नामान्वय गुण और पर्याय बन गए जा चुके हैं, परन्तु इन पाचो द्रव्यों में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनों को मुख्यतया हमारे लिये अनुमानग्रन्थ बनलाया गया है। आकाश का भी ज्ञान प्रत्यक्ष उन दोनों की अपेक्षा कुछ भीष होता है परन्तु वह भी अनुमानग्रन्थ ही है। अब जो वेद जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय हैं, वे भी जब शुद्ध स्वभाव में तथा शुद्ध पर्याय में रहते हैं तब तक इनके नामान्वय लोगों के लिये प्रत्यक्षग्रन्थ नहीं माने गये हैं।

जैन दर्शनिकों के अनुसार जीव की शुद्ध दशा मिद्ध दशा मानी गई है, जो कि देह रहित, इन्द्रियरहित और कर्ममुक्त अवस्था है। जीव की अगुह्य दशा ममार-दशा है जो देह, इन्द्रिय और कर्म सहित होती है। जीव की शुद्ध दशा एक रूप ही होनी है किन्तु अगुह्य दशा के प्रकार विभिन्न हैं। उन प्रकारों को जैनदर्शन में विभिन्न गतिगो में बांट कर बताया है। उनमें से एक गति के अनुसार १२ प्रकार है—

- १ पृथ्वीवायु सान आदि म रहने वाली वह मिट्टी जो बढ़ती हो ।
- २ अपवाय ऐसा जल जिसकी अग्नि आदि वा सम्पक न आ हो ।
- ३ तलसवाय सपथ आदि से उत्पन्न होने वाली अग्नि ।
- ४ वायुवायु हवा ।
- ५ वनस्पति वृक्ष पीछे आदिवा लतायें वगैरे हरा घास गाव धाय ।
- ६ द्वात्रिंश जिनको स्वर्णद्वय और जिह्वा त्रिंश मिली हो ।
- ७ त्रींश जिनको स्वर्णद्वय जिह्वा त्रिंश और सूचन वाली नासिका इन्द्रिय मिते हा ।
- ८ चतुर्विंश जिनको स्वर्णद्वय जिह्वा त्रिंश नासिका इन्द्रिय और रूप का पहिचानने वाली चक्षु इन्द्रिय हो ।
- ९ नारक नरक भूमि म रहने वाले पाव इन्द्रिया स युक्त जति दुखी जीव ।
- १० त्रिचक्षुष इन्द्रिय पशु पक्षी मछली सप नवज आदि ।
- ११ मनुष्य ।
- १२ अथ दश स्थाना आदि म रहने वाले जीव ।

विच्छेद चारा प्रकार क जीव पाव इन्द्रिया से युक्त होते हैं । सृष्टने वाली री य पाचवीं इन्द्रिय है । कुछ प्राणी म द्वीन्द्रिय म ७४२ पिछल जीव प्रचारा म ही जीवत्व माना है । परन्तु जा दागनिवा क अनुसार पृथ्वीवायु म अथ वनस्पतिवायु स क पाव प्रचारा म भी जीवत्व विद्यमान है । यद्यपि उनका जीवत्व मनुष्य आदि क जीवत्व की तरह नहीं है फिर भी अनुमान म आगम के आधार पर उक्त भा जीवत्व है ऐसा जाना जा सकता है । वनस्पति म जीवत्व माना भारतमा धर्मानिध श्री जगन्नाथ क मनु ने मित्र किया है जिस वक्तानिका द्वारा निविदा स्वीकार कर दिया गया है । हवा पानी अग्नि आदि पदार्थों का अकेल म या सामूहिक रूप म कई दागनिवा न इस रूप क मूल तत्व क रूप म माना है और आप द्वी य आदि जीवा का उत्पत्ति री मे मान म ६६ ऐसा कहा है । विन्तु जन मतानुसार उपरान्त बार हा प्रकार क जीव अनादि काल म हैं और अपने ही पुष्पागुम पुष्पाय क द्वारा पुष्पागुम कम उपाजन करन उनक निर्मित स न विभिन्न प्रकार म अनादि काल से परिभ्रमण करते हैं । य प्रकार मविष्य म भा स्या विद्यमान रहने । इनम स प्रयत्न करते २ कुछ जीव विरसित दया का प्राप्ति कर नत है । मानव जमा विरसित प्राणी भी त्रिंश स पञ्चाङ्गम आदि अधिकतम रूप म अम न पठा है । विकासशील जीव अपने पुष्पाय की प्रवृत्ति म विगुड दया प्रात कर पाता है । विगुड दया रा कारण कम है । कम का अर्थ यहा काय या आचरण नहीं करने पुद्गलानिवाय क उ तत्त एव विगुड प्रकार का धीनिक इन्द्रिय जिस जनन म म कामणवगणा क ते हैं । कामण वगणा के यह पुद्गल अत्यन्त सूक्ष्म और सघन वाष्पत ह । रागद्वेष आदि की सहायता पाकर वे जीवप्रवृत्ति क साथ एत यत्त हा जान हैं अम क्षुध और पानी ।

य कम आत्मा क साथ व्यतिरिक्त रागद्वेष आदि निर्मिता स जुक्त है । अल्पवयस ज्योत्त विचार जत भी शुभ या अशुभ हा उली प्रकार क शुभ या अशुभ कम आत्मा क साथ जुक्ते हैं । वे इन जगत क धीनिक मुखी की प्राप्ति म तथा दुःखा म निमित्त बनते हैं ।

जो विचार कमवयस म निमित्त बनते हैं वे मूलत आत्मा क गुण होने पर भी बाह्य पुद्गला का लेकर होते हैं । जन तब विचार बाह्य पुद्गला का सकर बनने है तब तब व नवीन कमवयस को उत्पन्न करते रहन हैं । जो विचार बाह्य पुद्गला क निमित्त स नहा बनन उनके कारण आत्मा क साथ कम पुद्गला का सम्बन्ध भा नहीं होता । जिन





विचारों में आत्मा के साथ कर्मपुद्गल का सम्बन्ध होता है, जैन दार्शनिकों ने उन्हें 'लेख्या' कहा है।

राग-द्वेष आदि आन्तरिक कारणों में कर्मपुद्गल का वन्ध होता है और वह कर्मपुद्गल जब अपना फल प्रदान करते हैं तब राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यह दुनरफा कार्यकारणभाव अनादिकाय में बना आ रहा है। इस प्रकार जीव की अशुद्ध दशा बनी रहती है। जिन समय जीव अपने आन्तरिक कारणों को दूर करके बाह्य कारणों को हटाता जाता है तब वह क्रमशः अनन्त होकर शुद्ध दशा में पहुँच जाता है।

पुद्गलान्तिकाय की शुद्ध दशा और अशुद्ध दशा दोनों का ही परिवर्तन अनादि ज्ञान में माना गया है। और यह परिवर्तन किसी समय रुक कर मात्र शुद्ध या अशुद्ध दशा ही रह जायगा ऐसा भी नहीं माना है। अर्थात् परमाणु अन्य परमाणुओं के साथ मयुक्त होकर सदा के लिये स्क्व रूप में ही रहे, ऐसा कभी नहीं होगा और परमाणु स्क्व में पृथक् होकर सदा के लिये परमाणु रूप में ही रहे, ऐसा भी नहीं होगा।

पुद्गलों में यह जो परिवर्तन बताया गया है, जैनदर्शन के अनुसार उनके तीन कारण होते हैं —

१. स्वत — अर्थात् बिना किसी चैतन्य शक्ति के भी इन में संयोग-वियोग चरता रहता है।
२. परत — कभी जीव के प्रयोग में भी पुद्गलों में परिवर्तन होता है।
३. उभयत — कभी पुद्गल और जीव दोनों की शक्ति में पुद्गलों में परिवर्तन आता है।

जीव और पुद्गल के सम्बन्ध में जैन दार्शनिकों ने जो कुछ बताया है उसमें पता यह चलता है कि इस विश्व में मुख्य रूप में परिवर्तनशील वे दो ही पदार्थ हैं और विश्व की जितनी रचना दिखाई देती है उसमें इन्हीं दो तत्त्वों की प्रधानता है। ईश्वर द्वारा लोक या निर्विश्व का निर्माण या संचालन किये जाने की बात जैनदर्शन कतई नहीं मानता।

जैन दार्शनिकों के अनुसार, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यह लोक धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवान्तिकाय, पुद्गलान्तिकाय, आवागान्तिकाय और काल, इन छ द्रव्यों का समूह है, जो जनादि और जनन है। धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य द्रव्य रूप से ध्रुव है और पर्याय रूप में उत्पत्ति-विनाशशील हैं। द्रव्यों के पर्यायों की प्रतिक्षण उत्पत्ति व प्रतिक्षण विनाश होने पर भी द्रव्य अग कायम रहता है। यही जैनदर्शन के स्याद्वाद का रहस्य है। जैन-दर्शनानुसार कोई भी पदार्थ नर्वाथा नित्य नहीं है, किन्तु द्रव्यरूप में नित्य और पर्यायरूप में अनित्य (विनाशशील) है। स्याद्वाद के सिद्धांत में जैनदर्शन ने पर्याय की दृष्टि में बौद्धदर्शन को और द्रव्य की दृष्टि में सांख्यदर्शन को अपने में अन्तर्भूत कर लिया है।

जैनदर्शन के लोकस्वरूप के विषय में जो थोड़ा-सा विवेचन दिया है उसमें प्रतीत होगा कि जैनदर्शन सर्वांगमम्पूर्ण दर्शन है। वह तर्क एवं बुद्धि में सगत है और उसके पीछे विज्ञान का समर्थन है।

डाक्टर एल० पी० टेनीटोरी (इटालियन विद्वान्) का कथन है कि “जैनधर्म बहुत ऊँची पक्ति का है। इसके मुख्य तत्त्व विज्ञान के आधार पर खड़े हुए हैं। ज्यों-ज्यों पदार्थविज्ञान बढ़ता जाता है त्यों-त्यों वह जैनधर्म के सिद्धांतों को मुहक कर रहा है।”

अज्ञात मरकार एम० ए० वी० एल० लिखते हैं कि “जैनदर्शन में जीवन-तत्त्व की जैसी विस्तृत आलोचना है, वैसी किसी भी दर्शन में नहीं है।” इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध साहित्यकार ज्यार्ज बर्नार्डशा ने तो जैन-सिद्धांतों और दर्शन के प्रति अपना अगाध प्रेम प्रदर्शित करने हेतु यहाँ तक कह दिया कि वे मृत्यु के बाद जैन परिवार में जन्म लेना चाहते हैं। महात्मा गांधी के पुत्र न्द० देवदाम द्वारा इनका कारण पूछने पर बर्नार्डशा ने कहा कि “जैनधर्म में ईश्वर या

परमात्मा का परवाना किता एक व्यक्ति का नहीं लिया गया है। जलन का कोई भी विधि या ग्यता वाता मनुष्य स्वामा की उत्कर्षित करके परमात्मा बन सकता है। दूसरी बात यह है कि हम परमात्मन का प्राप्ति करिय व्यवस्थित एक अभिप्राय साधना माग बताया गया है जो वानित आ है। एसा व्यवस्थित सन्धिय और वानित साधना माग अवगत ला है।

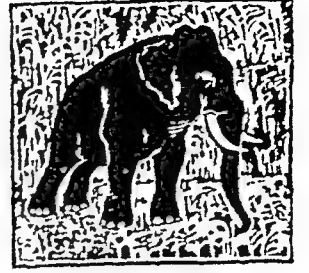
अम प्रकार विना की सम्मति म विना अत्यन्त उच्च वाता का दशन है। लाह मर्याद डम विना सम्मन विवेचना म भी अम तथ्य का आभास मित्र सकता है।



जैनदर्शन में मानस विचार

राजकुमार जैन,

एच० पी० ए०, दर्शनायुर्वेदाचार्य,



अन्य दर्शनों की भांति जैनदर्शन में भी मनोव्यापार या चित्तवृत्ति की अत्यन्त समुचित व्यवस्था की गई है। मानस विचार में जैनदर्शन ने बिल्कुल ही स्वतन्त्र मौलिक और स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया है। तदनुसार मन का सम्बन्ध शरीर में उतना नहीं है जितना आत्मा में है। मन की सत्ता स्वतन्त्ररूपेण नहीं है। वह एक स्वतन्त्र पदार्थ या तत्त्व नहीं है। वह तो आत्मा की ही एक विज्ञेय शक्ति है। उसकी प्रवृत्ति भी स्वतन्त्र नहीं है, वह पूर्णतः कर्मस्थिति मापेक्ष है अतः मन के स्वरूप एवं प्रवृत्ति का ज्ञान आत्मा व कर्मज्ञान मापेक्ष है। क्योंकि मन का सम्बन्ध इन्हीं दो पदार्थों में विज्ञेय है। शरीर में मन के सम्बन्ध का जहाँ तक प्रश्न है, वह पूर्णतः आत्मा पर आधारित है। आत्मा का मूल गुण है चैतन्य। अतः चैतन्ययुक्त शरीर में ही मन की अभिव्यक्ति सम्भावित है। आत्ममूर्त शरीर में चेतना एवं मन का पूर्णतः अभाव रहता है। इसी भाँति शरीर रहित आत्मिक स्थिति में भी मनोव्यापार नहीं होता। अतः शरीरयुक्त आत्मा अथवा आत्मयुक्त शरीर में ही मन प्रवृत्ति बोधगम्य है।

स्पष्ट देखा जाता है कि शरीर पर मन एवं मन पर शरीर का प्रभाव होता है। इनमें दोनों की ही प्रवृत्ति अन्योन्याश्रित की भाँति प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त दोनों का विकृतिजन्य प्रभाव भी एक दूसरे पर परिलक्षित होता है। अतः शरीर के साथ ही आत्मा की ही भाँति मन का घनिष्ठतम सम्बन्ध अपेक्षित लगता है। जैन आगमों में इस तथ्य को अत्यन्त ही समुचित रूपेण सुस्पष्ट किया गया है। जैनदर्शन में मन दो प्रकार का माना गया है—एक चेतन या भावमन और दूसरा पौद्गलिक या द्रव्यमन। चेतन मन ज्ञानात्मक होता है। उसके द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। किन्तु इसमें सहयोगी होता है पौद्गलिक मन, जो मनोवर्गणा के पुद्गलों में निमित्त है। उसके अभाव में ज्ञानात्मक मन अपने कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकता। क्योंकि पौद्गलिक मन वस्तु के स्वरूप को ग्रहण करता है और तत्संयोजित चेतन मन उस वस्तु को उपलब्ध करता है। अतः कहना न होगा कि दोनों के सहयोग में ही सम्पूर्ण मानसिक व्यापार संचालित होता है। दोनों में से किसी एक का भी अभाव मानसिक क्रिया प्रतिपादन में बाधक बन जाता है। अपने अपने स्थान पर दोनों की ही अपेक्षा, आवश्यकता एवं महत्ता है। पौद्गलिक मन चेतन मन का सहयोगी है, किन्तु उसके कारण या औजार के रूप में।

ज्ञानात्मक मन चेतन होता है। वस्तुतः वह आत्मा की ही एक शक्ति है। उसकी उत्पत्ति निर्माण अथवा अभिव्यक्ति पौद्गलिक परमाणुओं द्वारा सम्भावित नहीं है। क्योंकि पौद्गलिक वस्तु से उत्पन्न वस्तु पौद्गलिक ही होगी। अतः ज्ञानात्मक चेतन मन पौद्गलिक नहीं कहा जा सकता। वस्तु के स्वाभाविक गुण तज्जनित अन्य वस्तु में भी विद्यमान रहते हैं। वस्तु का स्वरूपान्तर हो जाता है, उसके मूलगुणों में न्यूनाधिक्य सम्भावित है, किन्तु वह गुण वस्तु में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। दो या अधिक वस्तुओं का संयोग एक अन्य वस्तु का निर्माणक हो सकता है। उस अन्य वस्तु के गुण भी उपादानभूत वस्तुओं के गुणों में ही निमित्त होते हैं। ऐसी स्थिति में पौद्गलिक परमाणु द्वारा चेतन मन की निमित्ति सम्भावित है। क्योंकि न तो भावमन का विघटन किया जा सकता है और न ही उसमें पौद्गलिकत्व पाया जाता है।

पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि ज्ञानात्मक चेतन मन को वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिए पौद्गलिक मन

सहयोगी के रूप में कार्य करता है। हमारा मानस चित्तन में प्रवृत्त होता है और उस शैक्षणिक मन के द्वारा पुनर्गठन (वस्तुओं) का ग्रहण करना ही पड़ता है। अथवा उसकी प्रवृत्ति अवस्थापित है। मानव द्वारा प्रतिपादित चिन्तन कार्य में जिस प्रकार के भावों का समावेश होता है उसी प्रकार के पुनर्गठन का ग्रहण मन (शैक्षणिक मन) ग्रहण करने में प्रवृत्त होता है। अनिष्ट भावों का चित्तन अनिष्ट द्रव्यों के ग्रहण का कारण बन सके भावों का चित्तन सके द्रव्यों के ग्रहण का कारण होता है। परिणामस्वरूप मानसिक भावरूप में परिणत न अनिष्ट पुनर्गठन। तत्परी का हानि होती है और मन रूप में परिणत इष्ट पुनर्गठन में परी को लाभ होता है। इसा तथ्य को निम्न ग। में स्पष्ट किया गया है—

मनस्सार्परानां पुद्गलविचयरूप इवमन क्षिप्त्वि ताप्रवृत्तेन ज वश्य मैत्रेयैर्वाद्यापराया
ह्यनिरुद्धायावेन उभापातानयति सदेव च नभपुद्गलगिरिरूप सस्यानुक्तं जिज्ञानात्तत्त्वेन पाठिभिर्हित्वा भयज
वदन्तुह विघत्त इति ।

—विशेषावश्यक भाष्य च गायत्र्या २२

इस प्रकार 'गरीब' पर मन का प्रभाव पड़ता है और 'गरीब' मानसिक क्रियाओं का परिणाम की अभिव्यक्ति का साधन बन जाता है। मानस भावा का प्रत्यक्ष अनिरेक 'गरीब' के बाह्य व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है जिससे द्वारा मन का स्थिति का आभास होता है। यद्यपि 'गरीब' पर प्रभाव उसके सनामीय पुनर्गठन द्वारा भी होता है तथापि उन पुनर्गठन का प्रत्यक्ष मानसिक प्रतीति पर निर्भर है। इसप्रति एक प्रक्रिया का हम 'गरीब' पर मानसिक प्रभाव कह सकते हैं। देखने की शक्ति नाश है। गान आत्मा का गुण है। फिर भी आश का बिना मनुष्य देख न। सफ़ता। आश में विवृति होन पर मानसिकता का बिनाग हो जाता है। उपचार द्वारा विवृति दूर करने पर पुन दानवप्रिया प्रारम्भ हो जाती है। यही बात मन और प्रसिद्ध की क्रिया का विषय है। इसी प्रकार साधनमूल 'गरीब' का द्वारा सम्पादित भौतिक क्रियाओं से मन प्रभावित होता है।

चट्टियाँ भक्त और ज्ञान

हिन्दी और मन विषय ज्ञान के साधन है। जब तक धारणा की गरिमा का पूरी तरह विनाश नहीं हुआ और वह स्वयं अथ ग्रन्थ में समग्र नहीं बन पाया है। तब तक सार का समस्त मोहित विषय का ज्ञान हिंदू और मन के द्वारा होता है। जनसाधारण में ज्ञान की जो यथार्थता की गई है उसका अनन्तर उसका विमान पंचविध रूप में दिया गया है यथा—मतिज्ञान अथ ज्ञान अधिज्ञान मन पश्यमान एवं वैश्वज्ञान। नमः मन्त्र मतिज्ञान एवं ज्ञानाने ये १० ११ हिन्दी और मननित होते हैं। नैप समस्त ज्ञान अर्थात् हिन्दी में है। यद्यपि मतिज्ञान और ज्ञान ज्ञान दोनों ही हिन्दी और मन से होते हैं तथापि ज्ञान में भिन्नता है। मति द्वारा ही यह और मन का साधन मात्र न अथ का ज्ञान होता है। नमः ज्ञान या अधिज्ञान प्रतीति मात्र होता है। अतिमूल्य है। इसका धारण की स्थिति ध्यान ज्ञान विषय है। अर्थात् ध्यान की गन्ध या सेवन की भी धारण है तो है। किसी वस्तु का ज्ञान जब उसका वेदन मात्र ग होता है—वह मतिज्ञान है और जहाँ उसी वस्तु का ज्ञान तन्मयत्व गन्ध या गन्ध द्वारा होता है—वैश्व अधिज्ञान है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि मतिज्ञान वे ज्ञानाने गन्ध और ज्ञान का वैश्व वैश्वभाव के आधार पर ज्ञान धारणा ज्ञान ज्ञान है। प्रथम हिन्दी द्वारा मतिज्ञान ज्ञान है। पन्ना ज्ञान मात्र स ग ज्ञान ज्ञान है। वैश्व अधिज्ञान है और 'सर्वज्ञ' धारणा का सर्वज्ञ के द्वारा ज्ञान ज्ञान होता है यथा है। नमः नमः का स्वरूप प्रथम में निम्न प्रकार मन्त्र दिया गया है—

मन्त्राणां प्रवृत्तं युतप्रवृत्तमर्थघ्नं वा घ्नन्ति गच्छन्तु सत्यं वाग्राचक्षुषावेन यदोषं घटा सः प्रमादघ्नः ।
प्राचारमन्त्रं सः प्राग्राक्षिपन्ति यान्ति निमिषा यः प्राणमुत्ति तत् त्वनप्राणमिति ।

—विनोदायन्यक भाष्य व गाय्या १०

॥मा प्रवार — मन् पुन अतनानसमधिगम्य वस्तुमते विषये विदधिष उपभारात्

—सत्यानुगासय २:११





उपबृंत्त समानुसार वस्तु के स्वरूप ज्ञान में उद्भिद्य और मन ही नापेक्ष रहित नहीं है। वस्तुतस्तु उद्भिद्य प्रतियोग अथवाही है, किन्तु मन सर्वार्थग्राही है। पाच उद्भिद्यो-न्यायन, मन, प्राण, बुद्ध और श्रोत्र के पाच ही विषय हैं- स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द। इन प्रत्येक उद्भिद्य अपने ही विषयों पर प्रत्यक्ष होती है। मग्नमन उद्भिद्यों के सभी विषयों को ग्रहण करता है। उसके अनिश्चित मन का मुख विषय श्रुत है। यथा "श्रुतमनिश्चितम्"

— तन्वायसूत्र २।२०

'पुस्तक' शब्द सुनने ही अथवा पढ़ने ही मन ही 'पुस्तक' वस्तु का ज्ञान में जाना है। मन को मग्न-मग्नपट वस्तु की उपलब्धि होती है। उद्भिद्य का पुस्तक देखने पर पुस्तक वस्तु मात्र का ज्ञान होता है और 'पुस्तक' शब्द सुनने पर श्रोत्र को उस शब्द मात्र का ज्ञान होता है। किन्तु पुस्तक का 'पुस्तक' वह वाक्यांश है जो ज्ञान उद्भिद्य को नहीं होता। उद्भिद्यों में मात्र विषय की उपलब्धि-प्रत्यक्षता होती है, उसमें ईश-गुण-दोषविचारणा, वीक्षा या चर्चा अथवा नहीं होती। मन में ईशपाद गति होती है। 'मन्दोपम' में उसी विषय का विवेचन किया है—

(क) "ऊपर या तल्लि ईश, ऊपर, मग्नता, गयेता, चिन्ता, वीक्षता में प्रत्यक्षगति रहति — ८१।

(ख) "तस्मिन् अस्ति ईश, आश, मग्नता, गयेता, चिन्ता, वीक्षता में प्रत्यक्षगति रहति — ८०॥

अर्थात् जिसके ऊपर, ऊपर, विचार, गयेता चिन्ता वीक्षता नहीं है वह अपनी रहता है और जिसके उपरोक्त समस्त बातें होती हैं वह पूर्ण (मग्नता) ऊपरता है।

इसमें स्पष्ट है कि उद्भिद्य नति और श्रुत दोनों में धर्मज्ञानिक व्यवस्था होती है। वह मग्न विषय को जानती है। मन-ईश-गुण-दोषविचारणा के प्रत्यक्ष-अनित्यताओं के परामर्शपर ज्ञान में मग्नता प्रत्यक्ष रूप से अवस्थित रहता है।

नैयायिकों के मतानुसार मन उद्भिद्य में पूर्ण होता है। तब समानुसार मन का उद्भिद्यों में ही अन्तर्भाव किया गया है। किन्तु जैनदर्शन में मन को अन्त-उद्भिद्य माना गया है। ज्ञान का अभिप्राय यह है कि मन उद्भिद्य ही भाति मात्र प्रतियोग अथवाही नहीं है। अतः वह उद्भिद्य नहीं हो सकता, तथापि वह उद्भिद्यों को उद्भिद्य के माध्यम में जानता है, अतः अतचित् उद्भिद्यत्वेन (स्याद्वाच मिद्वान्तानुसार) वह उद्भिद्य भी रहा जा सकता है। मग्नपक्षका वह उद्भिद्य नहीं है और उद्भिद्य-नापेक्षा की दृष्टि में उसमें भी उद्भिद्यत्व विद्यमान है।

इन प्रकार जैनदर्शन में दोनों व्यापार एवं मन विधि विवेचन भी उसी ही व्यापार रूप में किया गया है जितना कि अन्य मतों में। उद्भिद्यों को ज्ञान का वास्तविक साधन मानकर वास्तविक ज्ञान का प्रतिपादन मन को ही माना गया है।

जैन कर्म-सिद्धान्त का मूलमंत्र • स्वावलंबन

श्री शिखरचन्द्र कोचर,
बी० ए० एल-एल बी०



अनुग्रह क अनुसार प्रत्येक आत्मा कम करने तथा उगवा फल भोगने म पुण्यरूपन स्वतन्त्र है । कहा भा है कि—

स्वय कम करोत्यात्मा स्वय तत्कलमइनुते ।
स्वय भ्रमति तसारे स्वय तस्माद्विमुच्यते ॥

यथान आत्मा स्वय कम करती है और स्वय उमका फल भोगती है । वह स्वय तसारे म भ्रमण करती है और स्वय मन भ्रमण म मुक्तिन प्राप्त करती है ।

पूय आचार्य श्री अमृतमणिदा न किया है कि—

स्वय कल कम यदात्मना पुरा फल तरीप तत्पते गुमागुभम ।
परेण वस्त यदि लभ्यते स्फुट स्वय कल कम निरपक तरा ॥
निस्तान्ति कल निहाय देहिनी न को पि कस्यापि वदाति किंचन ।
विचारय नवभवनयमानस परो वदातीति विमुक्त येमुपोम ॥

अर्थात् आत्मा कम करता है उगवा अनुसार उग गुमागुम कम प्राप्त होते हैं । यदि उक्त अन्य-वृत्त तमों क फल भी प्राप्ति माना जावे तो स्वय वृत्त कम निरपक हो जाते हैं । वास्तव म स्वयवृत्त कमों के अतिरिक्त कोई बिगो को फल प्रदान करने म समर्थ नहीं है । मनवान को भी-भाति समयकर अन्य द्वारा फल प्राप्ति की आशा का परिचय कर देता साहित ।

जब गिद्वान क अनुसार आत्मा पर त कमों का आवरण दूर हो जान पर वह सिद्धावस्था को प्राप्त करती है और वह कम भरण क पधन से सदा क लिए मुक्त हो जाती है । कहा भी हो —

दग्धे बीजे यदात्मत प्रादुर्भूति नाकर ।
कम-बीजे तथा दग्धे न रोहति भवाकर ॥

अर्थात् जिन प्रकार बीज क जल जा पर अक्षुर उत्पन्न न होना उसी प्रकार कम हपी बीज क जल जाने पर मन रूप अक्षुर उत्पन्न नहीं हो सकता ।

अती कारण त इन मायनासार आत्मा क परमात्मा बन जाने के पश्चात् उमका अवतरण नहीं हो सकता । इस दूसरे गुरु म या कहा जा सकता है कि जन कम परमात्मा का अवतार होना स्वीकार नहीं करना ।

अनन्तर क सर्वोच्च मन्त्र नमोकार मन्त्र म जिन पाँच परमस्त्रिया का बन्ध विद्या गया है वे स्वर क अवतार अथवा स्त्री गतिन गतिन स्थिति नहीं हैं । नु उनही आदिवाणी भी माधायन आत्माका जमा था अवस्था है । अनर कपड तथा ही है कि उक्त दुइ निष्ठापूर्वक धारणा क मुखा का विहाय विद्या अवका कर रहे है जवनि



साधारण आत्माओं में वे गुण प्रभुपुत्र पड़े हैं। जैन-मनानुतां किसी आत्मा को परमानन्दता प्राप्ति के लिए किसी बाह्य महायना की आवश्यकता नहीं है। उस आत्मा को स्वयं ही अपने गुणों का प्रभु विभक्त करने करने की आवश्यकता है। भगवान् महावीर पर अनेक घोर उपवास करने पर उन्होंने स्वयं बीरतापूर्वक नामना किया। देवराज इन्द्र ने उनकी सेवा करने के लिए उनसे प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने उस प्रार्थना को बरकरार अस्वीकार कर दिया कि तीर्थंकर-पद की प्राप्ति किसी अन्य व्यक्ति की मनाया जानती, अपितु अपने दायरे ही होती है। जैन-विद्वान्-मुनार ज्ञाति जन्म से नहीं, किन्तु कर्म से होती है। भगवान् महावीर का कथन है कि—

“जम्मुणा वसन्तो होत, जम्मुणा होत पत्तिओ,
जम्मुणा वसन्तो होत, जम्मुणा होत सुदुओ।”

किसी भी ज्ञाति का स्त्री या पुत्र्य अपने पुत्र्यार्थ के अपने कर्मों का ज्ञान तथा ज्ञातिगुणों का विग्रह करना हुआ परमात्मा बन सकता है। इन प्रकार जैन-जन्मनिष्ठान्त में किन्तु पुत्र्यार्थ एवं स्वायम्भुवन का अनुमान पाठ पढ़ाना है, वह अन्यत्र अन्यत्र दुर्योधन है।

यदा यदा हि धर्मस्य, स्तानिभजति नास्त ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम् । —अध्याय ४/३ ।

अर्थात् अज्ञान । जब धर्म की ज्ञानि जानी है और अधर्म की यदि जानी है तब मैं (श्री कृष्ण) अवतार धारण करता हूँ ।

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्टाणाम् ।

धर्ममस्थापनार्थाय, मनजामि युगे-युगे ॥ —अध्याय ४/८

अर्थात् साधुओं के परित्राण-परक्षण के लिए, दुष्ट धर्म करने वालों का विनाश करने के लिए, तथा धर्म की स्थापना के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ ।

उपसृक्त पत्रितया वैदिक दर्शन द्वारा मान्य ईश्वर के स्वरूप का विशेष में परिचय दिया नहीं है । परन्तु जैनदर्शन का परिशीलन करने में पता चलता है कि उसमें परमात्मा के अर्थ में ईश्वर शब्द का ही प्रयोग नहीं किया है । जैनदर्शन में परमात्मा के लिए ईश्वर शब्द का प्रयोग न करने का कारण, बुद्ध, पारमार्थ, अम्भवाहा उन्मुक्त-कम्म-कवचा, अजर, अमर, अमरा, निस्तीर्ण-मर्त्यदुःख, जाति-जरा-मरण-व-व्यथित-जाति-मर्त्य-का व्यवहार किया है । वे शब्द शब्द पर्यायवाचक हैं । शिद्ध-तृप्त-तृप्त को कहते हैं । त्रैलोक्य-जित-द्वारा विद्वत् को जानने वाले बुद्ध कहते हैं । मनो-रूपी समुद्र न पार हुए ही पारगता कहा जाता है । तत्र-प्रथम-तत्त्व-दर्शन-ही-प्राप्ति, पुनः सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, तदनन्तर सम्यक्चारित्र्य की प्राप्ति, उक्त परमार्थ-ज्ञान-विषय-भी-ही-प्राप्ति-विषय-ही-उत्ते-परमार्थ-कहते हैं । सर्व प्रकार के जनों में रहित उन्मुक्त-कम्म-कवचा, तथा आदि अवस्थाओं में रहित अजर, अमर, अमरा, सर्व प्रकार के वल्लभा में रहित अमरा, मया प्रकाश के दुःखों में रहित निस्तीर्ण-मर्त्यदुःख, और अमर तथा मृत्यु के चक्र में विमुक्त जाति-जरा-मरण-व्यथित-विमुक्त कहलाते हैं ।

इसके अलावा, जैनसाहित्य में ईश्वर के प्रतिशोभक सर्वदुःख-प्रशान्त, मुक्तात्मा आदि शब्द भी देखने में आते हैं । सर्वदुःख-प्रहीण का अर्थ स्पष्ट ही है । मुक्तात्मा का विशेषण करने हुए भगवान् महावीर न आचार्यगुरु ने कहा है --

“मुक्तात्मा का स्वरूप बनाने के लिये कोई भी शब्द समर्थ नहीं है, नहीं ही पता गति नहीं होती है । बुद्धि कहा तक जा नहीं सकती है । उसकी रचना नहीं की जा सकती है । वह मुक्तात्मा सात्विक-कर्मरहित है, सम्पूर्ण ज्ञानमय दशा में विराजमान है । वह न लम्बा है, न छोटा है, न गोल है, न त्रिकोण है, न चौरस है, न मण्डलाकार है, न राला है, न नीला है, न लाल है । वह पीछा और मकेद भी नहीं है । गुणध और दुर्गन्ध वाला नहीं है । मोक्ष और तदुक्त नहीं है । कमेला, खट्टा और मोठा नहीं है । वह न ठण्डा है, न सुकुमार है, न हल्का है, न भारी है, न धील है, न उष्ण है, न स्निग्ध है, न पुष्प है, न गुरु है । वह जाना है, परिज्ञाता है, उसकी उमरा नहीं है, वह अन्तरी है, अवर्णनीय है, शब्दों द्वारा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । मुक्तात्मा शब्द, स्था, रस, गन्ध, और स्पर्शस्वरूप भी नहीं है ।”

जैनदर्शन में मुक्तात्मा के अर्थ में ईश्वर शब्द का व्यवहार नहीं किया जाता है । वैदिकदर्शन द्वारा माने गए ईश्वर का ईश्वरत्व (जगत्-कर्तृत्व आदि) जैनदर्शन को स्वीकार भी नहीं है । मभन है, इसीलिए वैदिक दर्शन ने जैन-

१ सिद्धं त्ति य बुद्धं त्ति य, पारमार्थं त्ति य परपरमार्थं त्ति य ।

उन्मुक्त-कम्म-कवचा, अजर अमरा असमा य ॥

निच्छिण्णसत्त्वदुक्ता जाइ-जरा-मरण-वधण-विमुक्ता ।

अम्भवाहा सुख अणुहोति सासय सिद्धा ।

२ आचार्यगुरु सूत्र प्रथम, श्रुतस्त्व, अ० ५ उ० ६



राम किमी को मारे नहीं, मारे मो नहीं राम,
आप ही आप मर जाएगा, करके छोटा राम ।

जीव अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है । स्वर्ग, नरक मनुष्य ही अपनी मद्-अमद् वृत्तियों के परिणाम अपनी नैया को पार करने वाला भी जीव स्वयं है और उसे दुबोने वाला भी वह स्वयं ही है । इसमें ईश्वर का सम्बन्ध नहीं है । उनका होने पर भी ईश्वर अध्यात्म जीवन का सर्वोपरि उद्देश्य है, धर्म है, अहिंसा, श्रम, तप की मध्य अध्यात्म साधना द्वारा जीव ने स्वयं ही ईश्वरीय रूप में प्रकट किया है । तमों के आवरणों का हटाकर जीव ईश्वर बन जाता है । आत्मा और ईश्वर में कोई मूलभूत পার্থक्य नहीं है । दोनों सत्तावीय हैं, अन्तर विपक्ष विराम हैं । ईश्वर नमस्करणीय है, सम्मरणीय है ।

यह ईश्वर का नीमरा रूप है । ईश्वर के उन रूपों में जैनदर्शन स्वीकार करता है । जैनदर्शन ने विबुध आदि पदों में जिन परमोच्च अध्यात्मशक्ति की आशंका रखी है, ईश्वर का नीमरा रूप उसी में समाहित होता है । शब्दकृत भेद जो छोड़ कर अर्थकृत बातें अन्तर नहीं हैं । उन प्रकार जैनदर्शन मनुष्य के समस्त आध्यात्मिक विकास प्रस्तुत करता है ।

ईश्वर शब्द की ऐतिहासिक अवधारणा पर विचार करते हुए मान्य होता है कि वैदिक दर्शन के भी काल में ईश्वर शब्द एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त था, उस समय जगत्सर्वस्व आदि विभिन्न शक्तियों की धारणा महात्म्य का ईश्वर के नाम में व्यवहृत किया जाता था, किन्तु अन्तिम कृत शताब्दियों में ईश्वर शब्द सामान्य रूप में परमात्मा का निर्देशक बन गया है । उन्नीसवीं शताब्दी ईश्वर शब्द का नया उच्चारण किया जाता है तो इनके मनुष्य सामान्य रूप में परमात्मा का बोध होता है । ईश्वर शब्द ने जिन जगत्निर्मात्री, भावनिर्मात्री, कर्मकृतप्रदात्री समार की सर्वशक्ति शक्ति का बोध नहीं होता है । साधारणतया हमने सोचा परमात्मा, प्रभु, जगन्, जमर या परमोच्च शक्ति का ज्ञान प्राप्त करना है जो सर्वोच्च निष्काम है, जन्म मरण के प्रत्येक में उत्पन्न है, जिसका स्मरण करने से आत्मा परमशान्ति को प्राप्त करता है, तथा उसके ऐहिक और पारलौकिक कल्याण होता है । जैनदर्शन, जो ईश्वरवादी कहा जाता था, और जिन ने ईश्वर शब्द को अभी अनायास नहीं था, आज उसी के अनुयायी अपने ईश्वरवादी कहने व मानने में जगत्सर्वस्व नहीं करते हैं । कारण स्पष्ट है कि ईश्वर शब्द आज वैदिक परम्परा ही अपना पारिभाषिक शब्द नहीं रहा है, अब तो सभी अध्यात्म-परम्पराएँ उसे परमात्मा का पर्यायवाची मान स्वीकार करने लग गयी हैं । आज जैन मन्त्रों के व्याख्यानों में —

ईश्वर से करते जाना प्यार, जो नादान मुनाफिर
जीवन की कर ले नद्या पार, जो नादान मुनाफिर ।

यह गीत मानन्द मुने ज्ञान है, मुनाए जाते हैं । सकीर्णता की चहानदीवागी ने निरुद्ध दर यदि स्वस्थ है तो चित्तन करे तो सभी मतभेद समाप्त या समाहित होते एक धारा नहीं लगता । जैनदर्शन तो अनेकान्तवाद-प्रदर्शन है । वह सकीर्णता ने पृथक् रह कर उपयोगी तत्व को अपना लेता है । उन्नीसवीं जैनजगत् में ईश्वर शब्द व्यवहार आज दृष्टिगोचर हो रहा है । पर एक बात नया ध्यान में रखनी चाहिए कि ईश्वर शब्द सामान्यतया परमात्मा का, मित्र प्रभु का मनुष्यक समझना चाहिए । वैदिकदर्शन-सम्मत ईश्वर के लिए जैन साहित्य में कोई स्थान नहीं है जैनागमों में परमात्मतत्त्व की लेकर जहाँ-जहाँ वर्णन मिलता है तथा किम-किम रूप में मिलता है ? उन प्रश्नों समाधान प्राप्त करने का उच्छास रखने वाले मज्झनों की जैनधर्मविवाक्य आचार्यश्रवर पूज्य गुरुदेव श्री आत्माराम महाशय द्वारा लिखित “जैनागमों में परमात्मवाद” नामक पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए । जैनदर्शन के ईश्वर जगत्-कर्तृत्व आदि में क्यों इन्कार करता है ? यह समझने के लिए इन पवित्रों के लेखकों की “भगवान महावीर पांच मिथ्यान्त” या “प्रश्नों के उत्तर” (दो खण्ड) पुस्तक पढ़ना चाहिए ।

१ उक्त पुस्तकें श्री आत्माराम जैन प्रकाशक समिति, जैनस्थानक, लुधियाना से प्राप्त की जा सकती हैं ।

जैनागमो मे अष्ट प्रवचनमाताए

मुनिश्री कन्हैयालालजी “कमल”



पांच समिति और तीन गुप्ति

- (१) ईर्षा समिति^१
- (२) भाषा समिति^२
- (३) लपणा समिति^३
- (४) आनन्द भाष्य भाष्य निगण्ठा समिति^४
- (५) उच्चार प्रप्रवण इत्यम सिपाण-अट् परिष्ठापनिवा समिति^५
- (६) मन गुप्ति
- (७) वचन गुप्ति

- १ (क) इत्येव विरतिसमिति भी ईर्षासमिति का एक नाम है क्योंकि यह चरा इन्द्रिय की यतना है । ग्रन्थ सू २७
- (ख) पुषरत पुषक्रीडित विरतिसमिति भी ईर्षासमिति का ही एक नाम प्रतीत होता है क्योंकि चारित्र ईर्षासमिति का एक आलम्बन है । पुषरत-पुषक्रीडितमितिमिति ब्रह्मव्रत का एक भेद है और ब्रह्मव्रत सामायिक चारित्र का एक भेद है । अतएव यह ईर्षासमिति का ही एक नाम हो सकता है । ग्रन्थ सू २६
- २ (क) इसका एक नाम अनुविचित्र्य समिति^१ है । ग्रन्थ सू २५
- (ख) इत्येव विरतिसमिति भी भाषासमिति का नाम है ।
- ३ (क) इस का एक नाम अवग्रहसमिति है । ग्रन्थ सू २६
- (ख) निर्दोष उपायय की प्राप्ति भी एषणासमिति का विषय है अतः विवक्षितपाप्मासमिति भी इस का नाम है । ग्रन्थ सू २६
- (ग) आहारसमिति भी इसका नाम है क्योंकि आहार एषणा द्वारा प्राप्त होता है । ग्रन्थ सू २६
- (घ) साधारणविषयपाप्मासमिति भी एषणासमिति का नाम है । ग्रन्थ सू २६
- (ङ) असप्तसप्तपाप्मासमिति समिति भी एषणासमिति का नाम है ।
- (च) 'प्रणीत-आहारपिरति परिभोग्यपाप्मा समिति का विषय है अतएव यह एषणा समिति का ही एक नाम है ।
- ४ (क) अति ससिप्त नाम — आनन्द-समिति । उक्त० अ २४, पाया २ ।
- (ख) ससिप्त नाम — धावान निवर्तना-समिति । —सत्त्वा० अ० ६ सू ४
- ५ (क) ससिप्त नाम — उच्चार-समिति । यही नाम व एक अंग का घट्टन करके पूरे नाम व घट्टन करने का शक्य है । —उक्त अ २४ पाया २ ।
- (ख) ससिप्त नाम — उच्चार-समिति । सत्त्वा अ ६ सू ५



(८) काय-गुणि^१

प्रवचनमाता की मार्यक सज्ज। —

उन अष्ट प्रवचनमाताओं में मरूण द्वादशांगी समाविष्ट है,^२ उसीमें उसी 'प्रवचनमाता' मज्ञा है। और इन मज्ञा की मायकता सिद्ध करने के लिए यह हेतु दिया गया है कि—“ये प्रवचनमाता चारित्र्यमात्राः । चारित्र्य, ज्ञान दयन के बिना नहीं होता है।^३ द्वादशांगी में ज्ञान, दयन और चारित्र्य का ही मिलन पाया है,” उन. द्वादशांगी प्रवचनमाता का ही विराट् रूप है।^४

जिम प्रकार माना की कुलि में मिश्र सूक्ष्म रूप में स्थित रहता है और उसी मिश्र जन्म के पश्चात् पश्यत बटता हुआ माना पिता के समान विद्यालय परीर प्राप्ता हो जाता है। मिश्र के उस विभिन्न परीर की देखकर भी हम यह महत्ता मान लेते हैं कि यह एक दिन उस माना की कुलि में सूक्ष्म रूप में स्थित था, उसी प्रकार उसका विद्यालय जिनप्रवचन उन अष्ट प्रवचनमाताओं में समाविष्ट है।

माना की गरिमा जितनी अधिक जीवन में है,^५ जाध्यात्मिक जीवन में उतनी ही उन अष्ट प्रवचन-माताओं की है। वास्तव में ये अष्ट प्रवचन-माताएँ अद्यात्मजगत् की जगदम्बा हैं जो—“जिन गतवान् उपाधिनाम्नः।^६ उह लौकिक जीवन में मानव पर माना का चितना उपकार है,^७ उसने जन्म रूप अधिक आध्यात्मिक जीवन में उन अष्ट प्रवचन-माताओं का है। इस तथ्य की अनुप्राति का अतिरिगी सुमुलु मानव ही है। उसीमें प्रस्तुत प्रसन्न में सुमुलु माधर का ही परिचयिन कर समस्त विधि-निर्णय प्रस्तुत किए गए हैं।

१ (क) सम० ८ वा नमदाय, सू० ७

(ख) अट्ट पवयणमायाओ, नमिडे गुत्ती तहेय य ।

पचेव य समिडओ, तओ गुत्ती उ क्षाहिया ॥

इरियानसैमणादाणे, उच्चारे नमिडसु य ।

मणुण्णो वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्टमा ॥—उत्त० अ० २८, गाथा १, २

(ग) मातरोऽष्टौ प्रकीर्तिता । - योग० प्र० प्रका० २ श्लोक ४५ ।

२ दुष्कालमग जिणकपाय, माय जत्थ उ पवयण । —उत्त० अ० २४, गाथा ३

यत्र यास्वप्तासु मातृषु द्वादशाङ्ग जिनात्प्रात प्रवचन श्रुत चारित्र्यं वा 'माय' इति मात—गृह्यसूत्रेण तस्मिन् ।
—तक्षमीवल्लभी टीका ।

३ नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूण—उत्त० अ० २८, गाथा २६

नादमणिस्म नाण,—उत्त० अ० २८, गाथा २६ ।

४ यतो हि सर्वा एता अष्टावमी चारित्र्यरूपा चारित्र्यं हि ज्ञान-दर्शनं विना न भवति, ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येभ्योऽनिरिक्तं द्वादशाङ्गं न भवति, तस्मात् द्वादशाङ्गानामु मातृषु स्थिता, तेनैताना प्रवचन-जननीमज्ञा ।

—तक्षमीवल्लभी टीका ।

५ (क) “देव यं गुरुं जणणी”

जननी-माता देव, गुरु के तुल्य है—उपा० अ० ३, सू० १३१

(ख) जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी ॥

६ “जगनाहो जगवधू, जयइ जगप्पियामहो नयव ।—नदी० स्य० गाथा १

७ तिण्ह दुष्पडियार नमणाउमो । त जहा—अम्मापिउणो, अट्टिम्म, धम्मावरियस्स । सपातो वि य ण केइ पुत्तिं अम्मापियर सयपाग-सहस्रपागेहिं त्थिलेहिं अदभमेत्ता सुरमिणा गबुट्टण उच्चट्ठित्ता तिहिं उदगेहिं मज्जावित्ता नव्वालकारदिभूसिय करेत्ता मणून्न थालीपागनुद्ध अट्टासवज्जणाउल मोयणं मोयावेत्ता जावज्जीव पिट्ठि-वडेमियाए परिवहेज्जा, तेणावि तस्स अम्मापिउस्स दुष्पडियार भवइ ।

—स्या० अ० ३, उ० १, सू० १३५

समिति और गुप्ति सना

धर्ममिति आदि पाच की समिति सना है। और मनगुप्ति आदि तीन की गुप्ति सना है। किन्तु न आठ की समिति सना भी है।^१ सबविरत मुमुक्षु समय की पारिव म आ सम्यक् प्रवृत्ति होनी है उसे समिति कहते हैं।^२ तथा उसी मुमुक्षु की गो गुप्त योगा म प्रवृत्ति होती है उस भी समिति कहते हैं।^३ मुमुक्षु का अनुभ योगा स सबया निवृत्त होना गुप्ति कहा जाता है।^४ इस प्रकार इन अष्ट प्रवचन माताओं की समिति और गुप्ति सना भी आगम साहित्य म प्रसिद्ध है।

पाच समिति और तीन गुप्ति की आधारभूमि

ममण परम्परा क धार्मिक पुरव भगवान आदिनाथ क साधन्य म कुछ साधक भ्रमण अध्यात्म आराधना का अभ्यास करने लगे। वे ममण सरन क किन्तु मूल न थे अतः भगवान् उक्त कर्म कर्म पर मावधान करते शिक्षा देने और प्रत्येक वाय विवेकपूर्वक करने क लिए प्रारंभ करते।

एक दिन एका ममण भिक्षा क लिए चला। मन तीन दिना स वह तपश्चर्या कर रहा था आज उस भोजन लेना था। वह तीन क मा स चला क्योंकि धुवा की वेना ये पातुन था अतः भगवान क बोध पाठ की वह भूल गया।

कुछ समय बीता। भ्रमण भिक्षा कर चला आ रहा था। अब भी उस की चरण चक्कर ये वह चान्ता था स्वस्थान पर गीत पढ़ूँ, दर हान पर यन्त्र पाठ और वय उष्ण न रहने।

भगवान यह सब कुछ देख रहे थे। वे जानने थे इस युग के मानव कत बुद्धि नहीं है फिर भी उस ममण का भगवान ने कहा—पातु मन। तुम्हें प्रत्येक वाय विवेकपूर्वक करने क लिए कहा गया है या नहीं? विस्मय तो नहीं हुआ?

भते! या है विस्मय नहीं हुआ।

आमुष्मन्! अमा तुम भिक्षा क लिए गए और आग कितने तन चला रहे?

१. पाच समितिओ पणत्ताओ त जहा ईरियासमिई आव पारिट्टावणियासमई।

—इया अ० ५ उ ३ सू० ४५७

—सम० अ० ५ सू ७

२. तओ गुत्तीओ पणत्ताओ त जहा मणगुत्तो जाव कायवत्तो।

—इया अ० ३ उ० १ सू १२६

—सम० अ० ३ सू० २

३. (क) अष्ट समिईओ पणत्ताओ त जहा—ईरियासमिई पाय कायसमिई। —इया अ० ८ सू ६३

(ख) एयाओ अष्टसमिईओ समासेण विपाहिवा। —उत्त अ० २४ पाया २६३

४. एयाओ पाच समिईओ चरणस्त यपवत्तणे। —उत्त० अ० २४ पाया ३२६

५. सम्यग इति प्रवृत्ति समिति

मनस कुणलताया समिति वाचाऽकुणलत्तरिणाये समिति वायस्य स्थानादयु समितिरिति।

—इया० अ० ८ सू ६०३ की टीका।

६. (क) गत्ती नियत्तणे सुत्ता अमुमरेषु सयत्तो। —उत्त० अ० २४ पाया २६

(ख) गोपन गति —मन प्रसतीना कुणलताया प्रवतनयकुणलताया च निपत्तनमिति।

(ग) तम्ययोगनिप्रहो गति —इया अ० ६ सू ४

७. 'पुरिया उज्जुवडा उ —उत्त अ० २३।





हां भते ! एक ओर क्षुधा सता रही थी दूसरी ओर ग्राह्य एवं पेय चीजें ली जा रहे थे, इसलिए भगवन्, मैं जल्दी-जल्दी गया और जल्दी-जल्दी आया हूँ ।

आयुष्मन् ! यह श्रमण-चर्या नहीं है । माधक श्रमण का उतना मेज नहीं बनता चार्तरण ।

भते ! आप ने तेज न चलने के लिए तो आज ही कहा है, पहले तो कमी पड़ा नहीं था ।

आयुष्मन् ! पहले तू गृहस्थ था, पाप कर्मों में अविरत था । अब तू प्रव्रजित हो गया है, सर्व माय्य कर्मों से विरत रहने की तूने प्रतिज्ञा ली है । गृहस्थचर्या गिनत है आयुष्मन् !

तब श्रमण ने सविनय प्रश्न किये—

भते ! मैं कैसे चरूं ? और कैसे गरा होऊँ ?

भते ! मैं कैसे बैठूँ ? और कैसे गाऊँ ?

भते ! मैं कैसे गाऊँ-पीऊँ ? और कैसे बोलूँ ?

जिसमें मैं पापकर्म में लिप्त न होऊँ ?

आयुष्मन् ! तू यतना में चल और यतना में गरा हो,

आयुष्मन् ! तू यतना में बैठ और यतना में गा,

आयुष्मन् ! तू यतना में गा-पी और यतना में बोल ।^१

इस प्रकार तू पाप कर्म में लिप्त नहीं होगा ।

ईर्या समिति के ६ निक्षेप

(१) नाम-ईर्या, (२) स्थापना-ईर्या, (३) द्रव्य-ईर्या, (४) क्षेत्र-ईर्या, (५) काल-ईर्या, (६) भाव-ईर्या ।

(१) नाम-ईर्या—किमी व्यक्ति या वस्तु का 'ईर्या' नाम हो वह 'नाम-ईर्या' निक्षेप है ।

(२) स्थापना-ईर्या—चलते हुए व्यक्ति की प्रतिमूर्ति या फोटो ।

(३) द्रव्य-ईर्या—तीन प्रकार की है —सचित्त, अचित्त और मिश्र ।

(क) सचित्त-ईर्या—वायु का या पुरुष आदि का चलना ।

(ख) अचित्त-ईर्या—परमाणु आदि पुद्गल द्रव्यों का चलना ।

(ग) मिश्र-ईर्या—स्थ आदि का चलना ।

(४) क्षेत्र-ईर्या—किमी क्षेत्र—प्रदेश में किसी व्यक्ति आदि का चलना ।

(५) काल-ईर्या—किमी काल में किसी व्यक्ति आदि का चलना ।

(६) भाव-ईर्या—दो प्रकार की है —(१) चरण-ईर्या, (२) नयन-ईर्या ।

चरण-ईर्या—

(क) श्रमण का—निर्दोष चलना ।^२

१ कह चरे कह चिट्ठे, कहमासे कह सए ।

कह भुजती भासतो, पावकम्म न वधइ ॥—दश० अ० ४, गाथा ७

२ जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जय सए ।

जय भुजनो भासतो, पावकम्म न वधइ ॥—दश० अ० ४ गाथा ८

३ आचा० श्रुत० २, अ० ३, उद्दे० १, निर्मुक्ति गाथा ३०५, ३०६

निम्नलिखित आगमावन निर्देशों के अनुसार चलन वा अथमण वा चलना ही निर्णय चलना माना गया है।

- (१) अथमण को चरते समय अष्टमंज्जित रक्षा चाहिए क्योंकि अन्त अवस्था में चित्त अगन्त रहता है अतः चलते समय जीवरक्षा नहीं कर सकता।
- (२) अथमण को अमूर्छित-आसक्ति त्यागकर चरना चाहिए क्योंकि आसक्ति व्यक्ति का मन किसी अधिमणित वस्तु में लगा रहता है अतः वह जीवरक्षा में उपयोग नहीं लगा सकता।
- (३) अथमण को मन्त्र गति से चलना चाहिए क्योंकि मन्त्र गति में चलन वाला जावरणा करता हुआ नहीं चर सकता।
- (४) अथमण को चरत समय अनुमिन् — प्रगात रहना चाहिए क्योंकि — उमिन् अवस्था में व्यक्ति समभोत रहता है अतः वह विवेकपूर्वक नहीं चल सकता।
- (५) अथमण को अव्याक्षिप्तचित्त से चलना चाहिए क्योंकि — विक्षिप्त चित्त चरत चित्त वाला व्यक्ति माग पर दृष्टि रख कर नहीं चल सकता।^१
- (६) अथमण को दोड़त हुए नहीं चलना चाहिए क्योंकि लौंडी वाला जीवा का बचाता हुआ नहीं चल सकता।

अथमण धीर और साहसी होता है अतः उसका दोड़ना व्यावहारिक दृष्टि से भी अच्छा नहीं माना जाता क्योंकि अधीर या भयभीत व्यक्ति ही प्रायः दोड़त है।

- (७) अथमण को चलत समय बातें नहीं करनी चाहिए क्योंकि जब मन बातचात करने में लगा रहता है तब वह जीवरक्षा करने में अक्षम नहीं हो सकता।
- (८) अथमण को चलत समय हसना भी नहीं चाहिए क्योंकि हसत हुए माग पर दृष्टि रख कर नहीं चल सकता। इसी प्रकार गान, क्रोध, खात, हण या ऐसी ही कोई अन्य क्रिया करत हुए नहीं चलना चाहिए।^२
- (९) अथमण का गवाण मन्त्री रक्षणमहोपाधि पर दृष्टि पातत हुए नहीं चलना चाहिए क्योंकि गवाण आदि की आरक्षण हुए चलने वाला रास्त के जीव-जंतुओं को मारने में लग सकता है। गवाण आदि की आरक्षण हुए चलना से अथमण की साधना के लक्ष्य में बाधा उत्पन्न होती है। अतः अथमण को माग पर दृष्टि रखत हुए ही चलना चाहिए।^३

- (१०) अथमण को लड़ होकर नहीं चलना चाहिए क्योंकि क्रोध मानव का मन अगन्त होता है अतः वह विवेकपूर्वक नहीं चल सकता।^४
- (११) अथमण चलन समय अपने साथी अथमणों को पहाड़ पर समभूमाय पर या सरोवर आदि के किनारे पर चरत हुए पशु तथा पक्षी आदि की ओर अनुमिन् करके या हाथ लम्बा करके न दिखावे। ऐसा करने से पशु-पक्षी समभोत होत हैं।
- (१२) अथमण चलत समय अपने साथी अथमणों को पशु पर बन बिन्दे आदि की ओर सनेन करने न दिखावे ऐसा करने से बिल आदि के रखकों को अथमण के प्रति गुप्तचर हान की आशंका होती है।

१ ब० अ० ५ उ० १ गाथा १ २

२ ब० अ० ५ उ० १ गाथा १४

३ ब० अ० ५ उ० १ गाथा १५

४ ब० अ० ८ गाथा २५





(१३) श्रमण को मनहर शब्द सुनते हुए नहीं चटना चाहिए ।

(१४) श्रमण को मनहर रूप देखते हुए नहीं चटना चाहिए ।

(१५) श्रमण को चलते समय मुग्ध या दुग्ध के सम्बन्ध में राग-द्वेष भरे मन्त्र स्मरण नहीं करना चाहिए । मुग्ध के सम्बन्ध में—“अहा, कैसी मनहर गन्ध आ रही है, मुग्ध या आनन्द नेता हुआ धीमे धीमे चलूँ” ऐसे विचारों में आगति बरती है ।

दुग्ध के सम्बन्ध में—“जरे, कैसी दुग्ध आ रही है, नाक फट रहा है, दम फुट रहा है” इस प्रकार के घृणा भरे संकल्पों में पुद्गल-परिणति का विवेक नष्ट हो जाता है ।

अतः मुग्ध आते समय मन्द गति में और दुग्ध आते समय द्रुत गति में श्रमण को नहीं चटना चाहिए । अपितु दोनों स्थानों पर स्थानाधिक गति में चलना चाहिए ।

(१६) श्रमण को मनहर स्तम्भासन करते हुए नहीं चटना चाहिए ।

(१७) श्रमण को सुगन्ध स्पर्श का भोग करने करते हुए नहीं चटना चाहिए ।

(ख) समय ईर्ष्या -- सत्तरह प्रहार के समय का विवेकपूर्ण पाठन करने हुए चटना ।^१

१ ईर्ष्यासमिति

ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की प्राप्ति या वृद्धि के लिए उपयुक्त धम्म में गुणपरिमाण भूमि (चार पाप प्रमाण) को एकाग्र चित्त में देखते हुए प्रसन्न-मग्न में यत्नापूर्वक (जीरञ्छा प्रसन्न करते हुए) समनागमन करना ईर्ष्यासमिति है ।^२

ईर्ष्यासमिति की विगुह्य आराधना के लिए मुमुक्षु नावक को आलम्बन, काल, मार्ग और यत्ना का विवेक करना अत्यावश्यक है, क्योंकि ये चार ईर्ष्यासमिति की विगुह्य के हेतु हैं ।^३

(क) आलम्बन

ईर्ष्यासमिति के आलम्बन ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य हैं । जिस प्रकार स्वयं आलम्बन से विना किसी अमुकिया के अभिलषित ऊँचाई पर पहुँच सकता है । उसी प्रकार साधक भी ज्ञान-दर्शन चारित्र्य के आलम्बन में उग एवं कठिन परीषद् महे विना सर्वोच्च शिवपद प्राप्त कर सकता है । क्योंकि ज्ञानादि की आध्यात्मिक जगति का सम्बल ही दुग्ध शिवपथ पर साधक को अगसर करता है ।

अधा और पगु भी आलम्बन के बल में उष्ट स्थान पर पहुँच सकता है । पक्षी पक्षों के आलम्बन से गगन-गामी होता है । सामान्यतया पत्नी को पति का, मित्र को गुरु का, भृत्य को स्वामी का, परिक को साथी का, शिष्य को माता का, समाज को नेता का और भक्त को भगवान् का आलम्बन ही जीवनयापन व जीवननिर्माण में उपयोगी होता है ।

यहां आलम्बन का अर्थ महारा तो है ही, उद्देश्य और लक्ष्य अथ भी यहाँ सगत है । साधक-जीवन में जितनी आवश्यक क्रियाएँ हैं उनका प्रधान लक्ष्य स्तम्भ की प्राप्ति या वृद्धि है । गौण लक्ष्य अनेक हैं और वे प्रत्येक

१ आचा० श्रुत० २, अ० ३, उद्दे० १, निर्युक्ति गाथा ३०७

२ “जुगमित्त च खेत्तो” — उक्त० अ० २४, गाथा ७, पद २

३ उक्त० अ० २४, गाथा ७

४ “चउकारणपरिसुद्ध”

विद्या म निष्पन्न बाय हे जा साधकजीवन म जिन रात विष बात है । अमिप्राय य है हि अमय आगर करना है तो उसका प्रधान लक्ष्य रत्नत्रय की अभिवृद्धि है और गौण लक्ष्य उत्तराशुनि है । यहा य विष्मय की बात है हि गौण लक्ष्य की मिद्धि सबप्रथम हाना है और प्रधानलक्ष्य की मिद्धि संपन्नतात । इसी प्रकार साधक की प्रतीक आव वर विद्या व सम्पन्न म समपना चाि ए । जिस विद्या द्वारा पान्थान चारित्र का प्राप्ति या अभिवृद्धि न हो म विद्या व जिन साधक अमय न तो अपना एक कर्म बनाता है और न उस विद्या व करने म अपना एक लक्ष्य बनाता है ।

साधक जीवन म यज्ञ-वत्ता ऐसे प्रयत्न भा उपस्थित हूँ ह जब साधक अपने प्रधान लक्ष्य का मिद्धि के लिए अर्थात्—रत्नत्रय का प्राप्ति या टुनि के लिए उत्तम माग का परिष्कार कर अपवासाय का आशय लेंता है ।

- यथा—
- १ पान की प्राप्ति के लिए
 - २ ज्ञान की प्राप्ति के लिए
 - ३ चारित्र का प्राप्ति के लिए
 - ४ आचार या उपाध्याय की दृष्टि से पान
 - ५ आचार या उपाध्याय की सेवा के लिए जयय प्राप्त आवश्यक न पार ।

उत्तम माग म यथाविम म जयय जाना गवया निविद्ध है । जिन अग्राज्य विधान म ऊपर विर करारण से यथाविम म अमय समिपवी जयय जा गवते हैं ।^१

- (१) किसी आचार को कुछ ऐसा समझना है जो अथ किसी को पान न हो । व यवयप्रवासाय करना चाहते हैं व लक्ष्य पान व जिसा योग्य पान व अपना अनुवर्णन पान दना चाहते हैं । योग्य पान किसी गुरुदेवता से म यथाविम विद्या रता है । मय ने उस योग्य पान व आचार का लक्षण बताया । य लक्ष्य आचार का लक्षण गुरुदेवता से यथाविम म जानागान व लिए पान पान । य लक्ष्य समिप का पान आचारम ।
- (२) किसी विधि-विधान का यथा गुरुदेवता के लिए या अह हान व यथाविम म विम यथाविम म समान अमय का लक्ष्य या आचार का लक्षण य यथाविम म मा आवता वि का दानविधि के लिए विहार करना पडता है । य है द्वागमिप का दान आचारम ।
- (३) यथाविममय समय का य अनुभव हा वि — य लक्ष्य मित्रता का लक्षण है या मित्रता वृद्धि का प्राप्ति के लिए समय का चारित्र से विवर्तित करने वाली कुछ विधि-विधान का लक्षण है य लक्ष्य दान वर मय चारित्र गुरुदेवता से रता — लक्ष्य मिपि म अमय यथाविम म हा वि वि वर गवता है । यह है द्वागमिप का चारित्र आचारम ।

य लक्ष्यमिपिप का समान लक्ष्य पाना का प्राप्ति यथाविम व अनुपाय म रता और गुरुदेवता का सेवा करना है । यथाविम म उत्तम हूँ आवरन व वयवृत्ति और अहुर विधान का लक्षण है । प्रधान लक्ष्य का मिद्धि से पार गौण लक्ष्य की मिद्धि हा या लक्ष्य अपना गौण लक्ष्य की लक्ष्य व लक्ष्य—यहा य लक्ष्य लक्ष्य रता है । यहा लक्ष्य प्रायमिपका लक्ष्य का विचारण है । प्रधान लक्ष्य की मिद्धि के लिए प्रयत्न करने हूँ जो लक्ष्य लक्ष्य भी मय प्रयत्नाय लक्ष्य मा लक्ष्य का लक्षण है । साधक व लक्ष्य लक्ष्य वर भा य विधि-विधानों को दृष्टि हो जाना या यह लक्ष्य लक्ष्य लक्ष्य लक्ष्य लक्ष्य ।

१ आचारमय य लक्ष्य ३ उह १ सु १११

२ यथाविम ३ उह १ सु ४१२



साधक श्रमण के चलने के चार मुख्य उद्देश्य —

(१) स्वाध्याय तथा ध्यान के लिए स्वाध्यायभूमि (विज्ञानभूमि) या ध्यानभूमि पर पहुँचने के लिए साधक श्रमण चलता है ।^१

(२) आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, और वनस्पति आदि एषणीय पदार्थों को एकत्र करने के लिए साधक श्रमण चलता है ।^२

(३) आवश्यक शारीरिक श्रिया (मल-मूत्रादि निगर्जन के लिए उत्सार-प्रश्रवणादि के परिष्कारानार्थ निम्नित भूमि तक साधक श्रमण चलता है ।^३

(४) एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाने के लिए साधक श्रमण चलता है ।^४

मुमुक्षु श्रमण निरुद्देश्य नहीं चलता, वह जय रही जाता चाहता है तो अपने शरीर पुनर्जनन या मांसी श्रमणों को आवश्यक कार्य सम्बन्धी विवरण बताकर जाता है ।^५

उपाश्रय में बाहर जाते समय वह उच्चस्वर में "आयमिषा" और उपाश्रय में प्रवेश करने समय 'णिमीहिया' का तीन-तीन बार उच्चारण करता है । यह उसी समीचीन आचरण-गुण है ।^६ यह है ईश्वर भक्ति का आचरण ।

(ख) काल

अथ ईश्वरभक्ति के साधक के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं । यहाँ पात्र का विमान दो भागों में किया गया है । ये दो विभाग हैं—दिन और रात । ईश्वरभक्ति का पालन दिन में ही करना है,^७ रात्रि में नहीं । दिन में सभी साधक श्रमण-श्रमणियाँ देव कर चल रहते हैं । मूत्र-मूत्र जीव-जन्तुओं को बचाने चल रहते हैं और इस प्रकार वे स्व-रक्षा और पर-रक्षा करते हुए समय का पालन कर रहते हैं ।

साधक श्रमण-श्रमणियों को रात्रि में नहीं चलना चाहिए, यदि एक गाँव में दूसरे गाँव जाने समय कदाचित् मार्ग में सूर्यास्त हो जाए तो वही ठहर जाना चाहिए । भूमि नम हो या विषम, इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । कदाचित् रात्रि में वहाँ श्वापद या सर्प आदि का भय हो तो समभाव में सहन करना चाहिए । रात्रि में एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाना या भिक्षा के लिए जाना नग्नता निषिद्ध है । केवल शारीरिक आवश्यक श्रिया के लिए उत्सार-प्रश्रवणादि भूमि तक, स्वाध्याय के लिए स्वाध्याय भूमि तक तथा ध्यान के लिए ध्यान करने योग्य किसी स्थान तक रात्रि में साधक श्रमण जा सकता है किन्तु रजोहरण में प्रमार्जन करते हुए ही जा सकता है, किन्तु बिना प्रमार्जन किए उसे एक कदम भी नहीं चलना चाहिए ।

१. आचा० श्रुत०, अ० ८, सू० ६०, १६३, १६४

२. आचा० श्रुत० २, अ० १, उद्दे० १, सूत्र० ४

३. आचा० श्रुत० २, अ० १, उद्दे० १, सूत्र० ४

४. आचा० श्रुत० २, अ० १, उद्दे० १, सूत्र० ४

५. कल्पसूत्र० सूत्र ६१

६. उक्त० अ० २६, गाथा २

७. उक्त० अ० २४, गाथा ५

८. (क) वृह० उद्दे० १, सूत्र० ४७

(ख) जल्यस्त्यमिए अणाउले, समविसमाई मुणिऽहिपासए ।

चरगा अडुवा वि भेरवा, अडुवा तत्य सरीसिवा सिया ॥

—सूत्र० श्रुत० १, अ० २, उद्दे० २, गाथा १४

विकाल

विकाल गद्या समय का कहते हैं। संध्या में भी चरन का निषेध है क्योंकि संध्या का प्रतिक्रमण का कारण है। समय का सारा विषय निचले समय पर करना चाहिए। अतः सुप्रसन्न व समय और सुयोग्य व समय प्रमाणप्रमाण जाति व जाति समनामयन नही करना चाहिए।

यप, हेमन्त और प्रीत्य

प्रमुख ऋतु विभागों के अनुसार एक वर्ष के तीन विभाग हैं। यथाकाल व चार मास हैं — प्राक्क भास्वन् आश्विन और वार्तिक। इन चार मासों में यमण यमणिया का प्रमाणप्रमाण विहार करने करना चाहिए। यथाकाल विधान है।^१

वर्षाका व दो विभाग हैं — प्रायट और वषा। प्रायट के भी दो विभाग हैं — प्रथम प्रायट और शिवाय प्रायट। प्रथम प्रायट में प्रमाणप्रमाण विहार करने का गवसा निषेध है^२ क्योंकि प्रथम प्रायट में शुभ स्फूर्त जीवा की अधिक उत्पत्ति हो जाती है। मनी मान कर्म और वार्तिक स मास अवरोध हो जाते हैं। किंतु यमण यमणिया मास मान पाक कारण उपस्थित होने पर आत्मरक्षा के लिए प्रथम प्रायट में भी वर्षाका क्षेत्र की छाड़कर अग्रज जा सकते हैं। यथा

- (१) अराजकता करने पर या गुरुदास्यरक्षा गमीचीन न होने पर।
- (२) दुष्कां होने पर या मिना दुष्कां होने पर।
- (३) विमो व अथवा पट्टवान पर।
- (४) मात आन पर।
- (५) आर्या का उत्पन्न होने पर।^३

यनी श्रवणमिति का प्रमुख उद्देश्य आत्मरक्षा है क्योंकि आत्मरक्षा के बिना मान गगन चारित्र की प्राप्ति या अतिरिक्त नहीं होती। परन्तु अर्थात् प्रायट का म उत्पन्न न माना प्रकार के जीव-जन्तुओं का रक्षा करने योग्य है।

वर्षाकाल के तीन विभाग भी माने गए हैं। यथा—अग्रज समय और उत्पन्न।

- (१) अग्रज वर्षाकाल—भास्वन् पुष्पा पक्षी म वार्तिक पुष्पिमा पक्ष ७ दिन का।
- (२) मध्यम वर्षाकाल—इसका अर्थ विवक्षित है। वार्तिक पुष्पिमा म आपाद् पुष्पिमा तथा अग्रजक म अग्रज वर्षाकाल व ७ दिनों में ५ करने पर १२० दिनों तक अग्रज विवक्षित होने है।
- (३) उत्पन्न वर्षाकाल—६ मास का। प्रथम प्रायट का तथा आर्या मास वर्षाका के चार मास यथा वार्तिक पुष्पिमा व पक्षान् भी वर्षाकाल रहे ता एक मासोप मास मिलाने पर वर्षाका व ६

१ के भिन्न नामायाग पञ्चोपधित दूहजद दूहजद या साहजद—विगीय उद्द० १ मत्र ६४१

२ अभिधान —पाउग गाद।

३ (क) मो कपड निर्गमण का निर्गमण का पञ्चमाउमति नामागुणम दूहजितए।

(ख) यथादि टाएटि कपड तं जहा—(१) अग्रज का (२) दुर्मिषणमि का (३) पञ्चजने का नं कोद (४) अग्रजति का पञ्चमागमि (५) मृत्वा का अग्रजिएमु।

—वार्तिक अ ५ उद्द २ मत्र ४१२



माम होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट ६ मास पर्यन्त के वर्षावाम मे श्रमण-श्रमणियों को ग्रामानुग्राम विहार नहीं करना चाहिए।^१

प्रथम समवसरण और द्वितीय समवसरण

एक वर्ष के ये दो विभाग समवसरण शब्द मे वने हुए हैं। समवसरण शब्द गमनागमन अर्थ का सूचक है। प्रथम समवसरण—वर्षावाम काल को कहते हैं और द्वितीय समवसरण—हेमन्त और ग्रीष्म के ८ मास को कहते हैं। प्रथम समवसरण मे ग्रामानुग्राम विहार का निषेध है और द्वितीय समवसरण मे ग्रामानुग्राम विहार करने का विधान है।^२

वर्षावास और ऋतुवद्ध काल

एक वर्ष के ये दो विभाग भी आगमो मे उपलब्ध है—वर्षावासकाल के चार मास और ऋतुवद्ध काल के आठ मास। हेमन्त आदि चार ऋतुओ मे आठ मास विभाजित हैं इसलिए यह ऋतुवद्ध काल है।^३ यदि आपवादिक स्थिति न हो तो ऋतुवद्ध काल मे श्रमण एक स्थान मे उत्कृष्ट एक मास तथा श्रमणियाँ एक स्थान मे उत्कृष्ट दो मास ठहर कर अवश्य विहार कर देते हैं।^४ ग्रामानुग्राम विहार के नौ कल्प (विभाग) हैं। आठ मास के आठ कल्प और नौवाँ चार मास का वर्षावामकल्प है।^५

मार्ग

मार्ग दो प्रकार के होते हैं —द्रव्यमार्ग और भावमार्ग।

द्रव्यमार्ग तीन प्रकार के होते हैं — (१) स्थलमार्ग (२) जलमार्ग और (३) नममार्ग।

स्थलमार्ग दो प्रकार के होते हैं —सम और विषम। सभी स्थलचर प्राणी सम मार्ग पर ही चलना चाहते हैं। सम मार्ग के अभाव मे या भय तथा त्वरावश उन्हें विषम मार्ग पर चलना पड़ता है। साधक श्रमण-श्रमणियों के लिए भी सम मार्ग पर ही चलने का विधान है, किन्तु विशेष हेतु से उन्हें विषम मार्ग पर भी चलना पड़ता है।

विषम मार्ग पर चलते समय या चटते-उतरते समय सहारे की अपेक्षा हो तो वण्ड अथवा किसी पथिक के हाथ आदि का सहारा लिया जा सकता है क्योंकि विषम मार्ग मे गिरने पर आत्म-विराधना और अन्य जीवों की विराधना होने की संभावना रहती ही है।

प्रकारान्तर से मार्ग तीन प्रकार के—हैं

(१) सक्रमण मार्ग, (२) स्थलमार्ग, (३) नोस्थलमार्ग।

१ सक्रमणमार्ग—पुलपर होकर जाने वाला मार्ग।

२ स्थलमार्ग—दो प्रकार का होता है—सम और विषम।

३ नोस्थल मार्ग—चार प्रकार का होता है—

(१) पापाणशिलाओ पर बहने वाले जल मे होकर जाने वाला मार्ग।

(२) बालू-रेती पर बहने वाले जल मे होकर जाने वाला मार्ग।

१ निशीथ० उद्दे १०, सूत्र० ६४१

२ बृहत्कल्प उद्दे० ३, सूत्र० १७ और १८ मे 'प्रथम, समवसरण' और 'द्वितीय समवसरण' शब्दों का प्रयोग हुआ है।

३ आचा० श्रुत० २, अ० २, उद्दे० २, सूत्र० ७८ और ७९ मे 'ऋतु वद्धकाल तथा 'वर्षाकाल' शब्दों का प्रयोग हुआ है।

४ बृहत्कल्प० उद्दे० १, सूत्र० ३७

५ कल्प० सूत्र०

(३) मचित्त पुरुषो पर बटने बाडे जल म हा कर जान बाग माग ।

(४) एकमिधिन जल म हाकर जागे बाग माग ।

उमाग का परिचय

मानव सग माग पर ही चटना चाना है उमाग पर नहीं । यदि पय विमम हा जाए निमूह हो जाए या विपम विप्लव हो जाए तो उस उमाग पर चटना पडता है । अमन अमणियां भा पय पर ही चाने हैं । किंतु पूर्वोक्त कारण म उह यग गग उत्पन्न भी चटना पन्ना है ।^१

सम्पितमाग और लम्बा माग

साधारण मानव हा या सा.र. अमण सभी मितिमाग (पयदो) म जाना चाहते हैं । अथ समय म अमीष्ट स्थान तत्र पशुवने की दृष्टा गना मानव का स्वभाव है किंतु सतिप्तमाग म कुछ कठिनायों हाता है ।

साक्षलमाग प्राय विपम हाते है दुर्लभ होत है या उनम न्याय तथा मुखा का भव होता है । यदि सतिप्त माग म अतुर बाज या घास हो येन या खडहर हा बदम या काट हा पयठ पडाह या साह सप्राह हो विगत हा या दोह बा हो बुड गाह या न्याय हा उमस मनुष्य या मणि ०। गुजर या न्याय कुछ या रहे हा कुक्क या कपोल आन मुग रह ना अववा एगो ही का अय बाधा हा तो अमण-अमणियां का उग भाग मे नहीं जाता बाटिल । यदि मति न माग के अनिरित्त अय काई माग न हा तो विवेकपूर्वक अपनी या अय प्राणिया का रक्षा करते हल उगा ना । एन माग म अमण अमणियां जा गान हैं । एते लम्ब माग म जाना भा निविड है जा अन्धम हाकर जाता है और अनक नि चल्न क पन्नात् शयान्त हुवा हा । जो लम्बा माग सम बिनाल तथा निराय हा उगा म साधक का जाना बाटिल ।

सुमाग और कुमाग

भाव माग तो प्रकार न हैं — सुमाग और कुमाग । प. १०१ सायाग और अम माग और प्रास्त माग अग्रस्त माग भी न जान हैं ।

सुमाग बट है जिन पर चाने स मान-मान चारित्र की प्राप्ति या कठि हातो है ।

कुमाग बट है जिन पर चाने स मान-मान चारित्र की हाति होता है ।

व्याप्रा का बीया म हाकर या समाग हाकर जान-जाने म चारित्र का हाति हातो ।^२ छत्तपूद क समाग हाकर जाने आन म गनमाधारण म आगद्धा य । हातो है । राज प्राग या अन्तपुर के समाग हाकर जाने आन मे तथा गंगागिरि^३ के या मुल भागालय क समीप^४ हाकर जाने आन से अमण-अमणिया के प्राप्ति मुलपर हाते की आगवा हो जाना है अन् बायिक कयन हाता मभव है । जिन माग म जाने आने म भागविक बायिक या बायिक कलेन हा उन माग म जाना आना मवना निविड है ।^५

१ माग होकर चमता ।

२ (क) भाषा० अत २ अ ३ उह० सूत्र १५

(ग) उत्पत् परिचरजए

३ गग अ० ५ उह १ गाथा ६ १

४ निगोष उह ६ तप ११

५ गग अ० ३ उह १ गाथा १६ का दुवडि ।

६ गग अ० ५ उह १ गाथा १५ उल्लाह ।





भावमार्ग का अभिप्राय है आचरण करना । गर्वज या वृद्धृतविभिन्न विधि-विधानानुसार चरना मुगार्ग पर चलना और डमरे विपरीत चरना कुमार्ग पर चलना है । जिस प्रकार लौकिक जीवन में ज्ञान, पुन और नमाज की तथा ग्राम, नगर और राष्ट्र की मर्यादाओं का पालन करना मन्मार्ग पर चलना है और मर्यादाओं से भग करना असन्मार्ग पर चलना है, उसी प्रकार कुछ, भग और सध से मर्यादाओं का पालन करना प्रयत्न पथ पर चलना है और मर्यादाओं का भग करना अप्रयत्न पथ पर चलना है ।

जलमार्ग

मनुष्य स्थलचर प्राणी है इसलिए उसका स्वतन्त्र-भूमि पर चरना स्वाभाविक है, जल में चरना अस्वाभाविक । अतः विना विशेष हेतु के वह जलमार्ग में जाना नहीं चाहता ।

माधक श्रमण भी मानव है, माध ही अहिंसा महाजन का पालन भी । जैनदर्शनप्रतिपादित प्राणी-विज्ञान के अनुसार पानी के एक बिन्दु में अमर्य जीव है । उन अमर्य जीवों की हिंसा करता हुआ जैन श्रमण जलमार्ग में कैसे जा सकता है ? जब जैन श्रमण मजीव (मचित्त) पानी का स्पर्श भी नहीं कर सकता तो फिर वह पानी में कैसे चल सकता है ?

ये प्रश्न तर्कसंगत हैं और जैनागमों में इनका समाधान भी तर्कसंगत ही मिलता है । समाधान इन प्रकार है —

माधार्ग मानव के समान माधक श्रमण भी विशेष कारण होने पर जलमार्ग में जा सकता है जैनागमों में जिन विशेष कारणों का उल्लेख है वे इस प्रकार हैं —

(१) वर्षा हो रही हो, पानी वह रहा हो और उस समय श्रमण-श्रमणियों को यदि शीघ्र के लिए गाँव में बाहर कुछ दूरी तक जाना आवश्यक हो तो वे जा सकते हैं ।

इस विधान की पृष्ठभूमि में श्रमण की स्वास्थ्यरक्षा का विचार प्रधान है और जल के जीवों की रक्षा का विचार गौण । यद्यपि जैनदर्शन में स्वास्थ्यरक्षा और जीवरक्षा दोनों को महत्वपूर्ण माना है किन्तु स्वास्थ्यरक्षा को प्राथमिकता देने का हेतु यह है कि मल-मूत्र के वेग का अवरोध करने में श्रमण अस्वस्थ हो जाएगा और उसकी समय-आराधना अवरुद्ध हो जाएगी । औषधोपचार के निमित्त में भी अनेक दोष लगेंगे । मल-मूत्र का वेग रोकने में श्रमण का मरण भी संभव है । इस प्रकार का मरण प्रायः अनमाधिमरण ही होता है, इसलिए जैनदर्शन का उपरोक्त विधान महत्वपूर्ण है ।

“माधक अनमाधिमरण में न मरे” जैनदर्शन का सर्वोपरि लक्ष्य है क्योंकि अनमाधिमरण में भव-भ्रमण की वृद्धि होती । भव-भ्रमण की वृद्धि से हिंसा आदि अनेक पापकर्मों की वृद्धि होती है । इस भव-परस्पर में होने वाली जीव-हिंसा से वचने के लिए वर्तमान में हो रही जल-जीवों की हिंसा नगण्य मानी गई है ।

श्रमण जब जल में चलता है तब जल के जीवों की हिंसा करने के कारण में नहीं चलता है । वह तो केवल अन्य मार्ग के अभाव में जल में होकर जा रहा है ।

श्रमण यद्यपि यह जानता है कि जल में चलने पर जीवों की हिंसा अवश्य होगी किन्तु उस जीवहिंसा से वचने का कोई उपाय उसके पाम नहीं है अतः वह विवश होकर जल में चल रहा है । यह हिंसा द्रव्यहिंसा है और इस की वृद्धि केवल प्रतिक्रमण द्वारा हो जाती है । इस प्रकार की द्रव्यहिंसा से कर्मवन्ध भी नहीं होता क्योंकि यह हिंसा कपायपूर्वक नहीं हुई है । जिस प्रकार काँच पर पड़ी हुई मिट्टी अल्प प्रयत्न में दूर हो जाती है उसी प्रकार यह द्रव्य-कर्म-रज भी केवल प्रतिक्रमण द्वारा परिमार्जित हो जाती है ।

(२) श्रमण या श्रमणियों शिक्षा के लिए गए हो और शिक्षा लेकर लौटते समय यदि मार्ग में वर्षा आ जाए तो कुछ समय तक कहीं पर रुक कर वर्षा बन्द होने की प्रतीक्षा करनी चाहिए । यदि वर्षा बन्द न हो तो मायकाल से पूर्व उन्हें उपाश्रय में पहुँच जाना चाहिए ।

इस विज्ञान का आधारभूमि में व्यवहार र ता प्रधान है और जोर रण मीन है। तानि म उपाधय व बाहर रण म समय या समी के प्रति दाय धमन धमनिता का अनव प्रहार की आवाजें हा मरना हैं। बा र रण मान समय या धमनिता का मयम मापना म अनव बाधाम उचित है मरना हैं। यद्यपि जीवरणा भी मयम मापना है किन्तु यी जावरणा म भी अष्टि मट्टवपूण व्यवहार रण है। व्यवहार रण व मामो जीवरणा इनी मयम धव य हा मई है कि रण म जिल मर तानि उपाधय म बाहर रण रू आ रणना और उमर जिल लावावा म मगा ही वाम अय परोपह मरता रती आ मरता ।

गत प्रवाह को पार करना

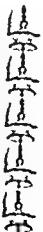
- (क) धमन धमनिता एव मीव म दूगरे मीव जा मयम यनि माम म लडा रिच्छणी पुत्रा या जवा जिनना मरता जल प्रवाह आ जाण ता पर म खर मरत व पयन सरीर का प्रमादन कर व एव पर जव म और लक पर अघर उठा वर पानी निगारन हल कयम मरतापूव जल प्रवाह का पार करें ।
- (ख) जलप्रवाह का पार करत मयम लक धमन दूगरे धमन व हाव म हाव का पर म पर का सरीर म गारा का रण न करें।
मो प्रहार धमनिता भी परमर मयम न करें ।
- (ग) जलप्रवाह का पार करने समय धमन धमनिता नीन मल्लि का मुख रणानुमति व लिल मरते पानी म रुधिरियो न मगारे किन्तु जिन सरे मर प्रवाह हो उम तरफ से पार करें ।
- (घ) जलप्रवाह को पार करने पर सभर जब तक बीन रते तक लक रिवाह पर गान मय म रिबर रहें ।
- (ङ) गान सरीर का बने भाति म वीद वर मगान का प्रयत्न न करें । जब सरीर का मामान रमन ममाल हो जाते तब प्रमादन कर व भाग विगार करें ।

वहिल पय

धमन धमनिता वामागुधम विहार कर रड टे माय में कुछ दूर लक बीपह में पाने म पर बीपह म सन मण है । मर व बीपह का दूर करने व जिल धमन म उमाय म वर और न पाग म रीर मर व अविशु धाम रित माय म जाव ।

मीन आरोहण का विधान

- (क) धमन या धमनिता वामागुधम विहार कर रू में छोरे माय म मीन द्वारा पार होने योग्य नो भाति का प्रवाह आ मर हा हा मीन में बटने म पूव मीन व मयम म पूव जानकारी मरना पानि ।
- (१) धमन व जिल मीन सरी । मई है ।
- (२) धमन व जिल मीन उधार हो गई है ।
- (३) धमन व जिल मीन व व न मीन ला है ।
- (४) धमन व जिल मीन जल म सपन पर या सपन म जल पर लाई गई है ।
- (५) धमन व जिल मा । मर मर मीन मरना व । मई है ।
- (६) धमन व जिल बीपह में वना हुई मीन व पर मीन मई है । मर प्रहार का मीन





चाहे प्रवाह के मन्दगु अनुकूल या निरुद्धी जाने पायी हो और योजन, अंश योजन या न्यूनाधिक जाने वाली हो, श्रमण-श्रमणियाँ इस प्रकार की नौका में न बैठें। श्रमण-श्रमणियाँ नौका में बैठने से पहले यह जान ले कि—नौका गृहस्थों के लिए नदी के उस पार जाने वाली है तो अपने उपकरणों को अच्छी तरह व्यवस्थित कर लें पश्चात् शरीर का प्रमांजन करके साधारण भजनप्रत्याख्यान (नदी के उस पार पहुँचने तक चार प्रकार के आहार का त्याग) करे, एक पैर जल में जोर एक पैर ऊपर उठाकर पानी नितार कर रखने हुए श्रमण त्रिवेक-पूर्वक नौका पर बैठे।

नौका में अप्रमाण, पृष्ठ भाग या मध्य भाग में न बैठें अपितु जहाँ से चटने की व्यवस्था हो वहाँ से चटकर बैठें।

नौका के पार्श्व भाग को पकड़कर किसी ओर अगुनी में नकेन न करें और न शरीर को ऊँचा-नीचा करके देखें।

(ख) नौका पर आरुह्य श्रमण की नाविक निम्न प्रकार के वाक्य रहे तो श्रमण उनके वाक्यों पर ध्यान न दे अपितु मौन रहे—

- (१) हे आयुष्मान् श्रमण ! आप इस नौका को आगे लीचें या पीछे लीचें। अथवा नौका को बलावे या नौका का रस्सा लीचें।
- (२) यदि आप नौका को आगे-पीछे लीचने में असमर्थ हैं तो केवल नौका ही रस्सी लावें।
- (३) डाढ़, पाटिया, वाम या कर्ने में नौका चलावें।
- (४) नौका के पानी को हाथ पैर में पान में या किसी और उपकरण में उलीचें (निकाल दें)।
- (५) नौका के छिद्र को हाथ, पैर, भुजा जघा, पेट या किसी शरीर के अवयव में, वस्त्र से, मिट्टी में, कुय में या कमलपत्र में ढके दो।
- (६) हे श्रमण ! इस छत्र-यावत्-चर्मछेदक को तो, उन नाना प्रकार के मन्त्रों को धारण करो या इस बालक को पानी पिलाओ।

(ग) (१) नौका पर आरुह्य श्रमण या श्रमणियाँ नौका के छिद्र में पानी जाना देखकर या जाते हुए उस पानी में नौका डगमगाती देखकर किसी ने यह नहीं कहे कि—आयुष्मन् ! छिद्र में पानी आ रहा है और उससे नौका डगमगा रही है।

(२) नौका के छिद्र में पानी आता देखकर श्रमण या श्रमणियाँ न मन में घबरावें और न घबराकर कुछ वाक्य कहें, अपितु शरीर का मोह त्याग कर शान्त एवं न्वस्थ मन में आत्म-रमण करते हुए समाधिस्थ हो जावें।

(घ) (१) नौकाह्य एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कहे कि “आयुष्मन् ! इस श्रमण ने नौका में भार अधिक हो गया है अतः इसे इस प्रवाह में फँक दो” इस प्रकार के वाक्य सुनकर श्रमण यदि वस्त्रधारी हो तो मारे वस्त्र उतार कर निर पर धर ले या अत्यल्प वस्त्र पहन ले।

(२) इतने पर भी यदि वे क्रूर व्यक्ति न मानें और भुजाएँ पकड़कर फँकने लगे तो मुनि उनमें इस प्रकार कहे —

आयुष्मन् ! मुझे न फँको, मैं स्वयं ही पानी में उतर रहा हूँ। इतना कहते पर भी यदि वे पानी में फँक दें तो श्रमण को उनका अनिष्ट न सोचना चाहिए, न अप्रसन्न होना चाहिए

और न अगात जाना चाहिए अग्नि स्वयं विसत स तरत हए उम पार पञ्च जाना चाहिए ।

- (३) पानी म तरत हए विसा दूसरे के हाथ म हाथ का पर म पर का —पावत — गरीर म गरीर का रण न हाने ।
- (४) पानी म तरत ए न दुबवियाँ लगावें और न माव वान या मज म पानी का प्रवण हाने ।
- (५) तरत एग यणि यवान आ जाग ता अधिक् भार वाल उपहरणा का एवाग दना चाहिए ।
- (६) बिहारे पञ्चन पर म ल घाघर का गहना मसना या बरड स पीछ कर मसना तथा अग्नि से नपाना नही चाहिए ।
- (७) नीचा गरीर स्वयं सूख जान पर ग्रामानुग्राम बिहार करना चाहिए ।
- (८) (१) नीचा रा पाना हो और उस पार जान कहिए नीचा न हा ता तर कर ही उस पार पहुचना चाहिए ।
- (२) तरत एग प्राक्कता स अपिक् हाथ पर न पञ्चन चाहिए ।

महानदियों को पार करना

- (क) अमण या अमणियों का निम्न पीच सान्निध्य एक मात म ए सोन बार पार न करनी चाहिए अग्नि विपण प्रमादन है। ता एक मात म बचए एक बार सहान । का पार कर सक्त है । व य हूँ—यमा यमना गरबू कोनिक् और म । एन म नि वा म ग किमी म । न । का पानी को पार दना घात है कि एक पर जल म और मक् पर ऊपर उठाकर पानी निवार कर सपना हुआ अमण उम पार पञ्च सक्त सो एक मात म दो या सोन बार भी पार कर सक्ते हैं ।

नदी पार करने के प्रमुख कारण

- (१) जिन गवि म या जिन स्थान पर अमण ठहरे हुए है व निम्न मिता प्राप्ति न हुआ है ।
- (२) अमण जिन गवि जाना चाहते हैं व ए स्तसमाग मरवा न हो ।
- (३) अमण जे ठहरे हुए है वही बस्ती न है ।
- (४) स्थलभाग म जान म जहाँ मिट्ट आनि दबावना का भय है ।
- (५) स्थलभाग से जाने म जहाँ चोरी का भय है ।
- (६) अभिष्ट वान प्रात से अभिष्ट वान प्रात म जाना चाहते हो ।
- (७) अराजकता वान प्रात से गानि वान प्रप्रेग म जाना चाहते हो ।
- (८) अनाथ आनि क उपव वान प्रात म पानिवाल प्र म जाना चाहते हो ।
- (९) गविप या विद्विचित्रा आनि की ओपधि क गिग जाना आवश्यक है ।
- (१०) कु (एक याचाय के गिग) क गिग कोई अराधनपर काम है ।
- (११) धामिग उपहरणा क गिग जाना आवश्यक है ।

नीचा द्वारा नदी पार करने के हेतु

- (१) पूर्वोक्त हतत्रा मे नो पार कराना आवश्यक हो जिन १ । मे मरमरण का भय है ।
- (२) नीच पाना अधिक् है या उबने का भय है तो नीचा म अचर न । पार करना चाहिए ।



भ० महावीर का नौकारोहण

"भ० महावीर ने मुरगिपुर में भूणाक सन्निवेश पधारते हुए मार्ग में गगानदी की नौका द्वारा पार किया ।^१ यह भगवान् के द्वितीय वर्षाव्राम के पूर्व का वर्णन है । भगवान् उस समय छद्मस्थ थे । उस घटना की स्थानमरवाणी विद्वानों ने अमान्य नहीं घोषित किया है ।^२ अतः यहाँ उन मन्त्र में कुछ उद्धृत करने की विचारणा आवश्यक है ।

१. भ० महावीर का भूणाक सन्निवेश की ओर पधारने का हेतु क्या था ?

२. न पधारते तो क्या जाना ?

३. नौका द्वारा होने वाली जीवविराघना ने होने वाला आघात और भ० महावीर ।

बिना प्रयोजन नौका में बैठना निषिद्ध है ।^३ इसलिए यहाँ यह विचार करना आवश्यक है कि—

भ० महावीर के नौकारोहण का हेतु क्या था ?

ग्रामानुग्राम विहार ही यदि नौकारोहण का हेतु माना जाय तो यह हेतु गंगा नहीं है जिसे प्रतिवारं साया जाय ।

मुदष्ट देव द्वारा जो उपमर्ग देवा से यह तो वन्द्य भी ही माना था ।

नौकारोहण के हेतु वे ही हैं जो नदी पार करने के हेतु हैं ।^४ भ० महावीर ने जब गंगा नदी पार की थी^५ तब उनमें का एक भी हेतु उनके सामने नहीं था । किन्तु उन्होंने गंगा नदी नौका द्वारा पार की है ।

दो यात्रा की दूरी तक यदि स्थूलमानं मित्र जाए तो नौका द्वारा नदी पार करना निषिद्ध है ।^६ पर इस दूरी के मन्त्र में तो तब सोचा जाय जब जान ना कोई वनिवार्य हेतु हो ।

(२) भ० महावीर भूणाक सन्निवेश की ओर न पधारते तो उन्हें कभी कोई जानि होनी । उनके निजी नाम का तो कहीं कोई प्रश्न ही नहीं था क्योंकि वे दीनराज थे । यदि वे भयं जनो के हित के लिए पधारते तो हमारे सामने यह एक उदाहरण योग्य प्रमग है ।

भ० महावीर ने जब गगानदी नौका द्वारा पार की थी उस समय वे छद्मस्थ थे फिर भी उन्हें लगने वाली सभी त्रियाएँ साम्प्रतिक नहीं थी—यह निश्चित है । इसलिए उन प्रमग को प्रमाद रूप नहीं कह सकते क्योंकि छद्मस्थ अवस्था में भी भगवान् अप्रमत्त थे । नौका द्वारा गंगा नदी पार करना—उत्पन्न मार्ग नहीं है यह तो स्पष्ट है । अपवाद मार्गों में यह तिन प्रकार का अपवाद मार्ग है जिसे भगवान् ने अपापरूप कह कर^७ स्वयं आचरण किया और धर्मणों के लिए दियात किया ।^८

१ आवश्यक० सू० प्र० ना० प० २८२

२ स्व० दिवाकरजी म० लिखित-भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, पृष्ठ २३६-२४३

३ निशोय० उद्दे० १८, सूत्र १

४ निशोय० उद्दे० १२, सूत्र ४२ । नाप्य गाथा ४२५४

५ निशोय० उद्दे० १२, सूत्र ४२ । नाप्य गाथा ४२१८

६ निशोय० उद्दे० १२, सूत्र ४२ । नाप्य गाथा ४२४७

७ आचा० श्रुत० १, अ० ६, उद्दे० ४, गाथा १५

८ आचा० श्रुत० २, अ० ३, उद्दे २, सूत्र ११८ ११६

महत् करने रहे। यह गुरु देश अनाप जनपदों में माना गया है।

आगमों के चार सीमाओं के बाहर अतीत में अनेक श्रमण गए थे। जैन समाज आदि समाजों में ऐसे श्रमण अनेक मिलते हैं।

आर्य जनपद और उनकी राजधानियाँ

| | |
|----------|---------------|
| १ मगध | राजगृह |
| २ वज्जि | वसती |
| ३ कोसल | राजगिरि |
| ४ कर्णिक | कुरुक्षेत्र |
| ५ काशी | वाशाली |
| ६ कोनार | गोमती (गोमती) |
| ७ कुण्ड | गजपुर |

१ (क) आचा० श्रुत० १, अ० ८, गाथा

अनाप जनपद लाट वगल का वह भाग जो गंगा के पश्चिम में स्थित है। उसमें नमनपुर, मिदनापुर तथा हुगली और बर्दवान जैसे नमिनित थे। मुगलवादा जिसे काटुछ भाग इनकी इनकी सीमा में था। तीर्थंकर महावीर पू० २११, १२१ का दिपण।

२ वज्जि-नाग का प्रसिद्ध पूर्वो जनपद है।

३ देखिए—मग० श० ३, उद्दे० १

४ कर्णिक पूर्वो नमुद्र तट पर एक जनपद।

५ मगध देश में यह एक जनपद था। —पाणि० पू० ७४

६ (क) काशी जनपद की वाराणसी राजधानी थी। —पाणि० पू० ७४ तथा ज्ञाना० अ० १ और ज्ञाना० अ० ८

७ (क) कोनार-मगध देश में यह एक जनपद था। —पाणि० पू० ७४

(ख) महाभारतकाल में कोनार के दो विभाग थे, जो दक्षिण और उत्तर में विभक्त थे। —भीष्म पर्व।

८ (क) देखिए—भरत चरित्र वर्णन-जट०।

(ख) इमता एक नाम विनीता भी है—जट०।

(ग) यह महाभारतकाल में भी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की राजधानी थी। देखिए जादि पर्व।

(घ) अयोध्या का मार्कण्डेय नाम बहुत प्राचीन है। देखिए—स्वप्ना० अ० १०, सूत्र० ७१८

९ (क) मरस्वनी और वृषावती नामक नदियों के मगध का प्रदेश कुछ या कुछसे रहा जाना था।

—महाभारत वनपर्व।

(ख) देखिए—ज्ञाना० अ० ८

१० (क) कुरु-जनपद की राजधानी हस्तिनापुर है। —ज्ञाना० अ० ८

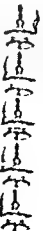
(ख) कुरु-जनपद की राजधानी हस्तिनापुर है। महाभारत आदिपर्व।

(ग) आधुनिक बिहार में २२ मील उत्तर पूर्व में और बिजनौर में दक्षिण-पश्चिम में इसकी स्थिति मानते हैं।

(घ) हस्तिनापुर का ही अपरनाम 'गजपुर' है। —प्रज्ञा० पद० १

| | |
|------------------------|---------------------------|
| ८ कुमावत ^१ | गौरिचतुर ^१ |
| ९ वचा ^२ | बागिचतुर ^१ |
| १० जाग ^३ | अट्टिचतुर ^१ |
| ११ गौरा ^४ | द्वारका ^५ |
| १२ बिन्हा ^६ | मिथिला ^७ |
| १३ ब न ^८ | कोणाम्बा ^९ |
| १४ गाविड ^{१०} | मन्त्रिचतुर ^{११} |

- १ बचावन—महाभारत नाम में इस नाम का एक तीर्थ था । अनुगामनवच ।
- २ (क) गौरिचतुर और गौरीचतुर दोनों एक हैं या भिन्न निम्न इस मन्थन में निम्नित चतुर गौरी कहा जा सकता ।
(ख) हेमिल—विवाह अ ८ और उत अ २७ गाथा ३
- ३ (क) वचास वचास क्षत्रियों का सन्निवस का जो स्थान था वह वचास कहा जाता था ।—बागि० पं० ४८५
(ख) वचास और वचनचान इन दो जनपदों का उल्लेख महाभारत का भीष्म पर्व में है ।
(ग) वचास जनपद को वत्समान में वक्राव करने है ।
- ४ (क) बंदिचतुर में भगवान महाबोर का इषडागवां वर्णवान हुआ था ।—उता० अ ६
(ख) बंदिचतुर बंदिच वचास को राजधानी थी । महाभारत आदि पर्व ।
- ५ (क) जागम निजल जनपद—महाभारत भीष्म पर्व ।
(ख) कुमावत नाम का जो यह जनपद प्रसिद्ध है ।
- ६ (क) अट्टिचतुर उल्लेख वचासवर्ती राज्य दुर्गा के राजपारी अट्टिचतुर थी महाभारत आदि पर्व ।
(ख) जागमों का अनुगार जागम जनपद को राजधानी अट्टिचतुर है ।
- ७ (क) तोरठ-गुजरात और बांढिवाबाहु का सम्मिलित जनपद ।
(ख) तोरठ-गौराष्ट्र केनवर्गारि का समीप का जनपद ।
- ८ (क) तोरठा को राजधानी द्वारका का द्वारकावती या द्वारकावती नाम भी थे । इनका चारों दिशाओं में बाद पवन था । इन महापुरी का वचास द्वार था ।—महाभारत समापक ।
(ख) द्वारका के विरसन वचास का निज—हेमिल अन्वष्टव प्र० वग० अ० ६
(ग) वनमान में पट्टमरी समुद्र में विष्णु मानी जाते हैं ।
- ९ (क) बिन्हा जनपद का दूसरा नाम मि वना जनपद था । मिथिला के राजा मिथिदेवाभिमान ने रत्न से इन इमलियुय विदेह नाम से विष्णुव हूँ । तारा जनपद भी विदेह नाम से प्रसिद्ध है गया था ।—उत अ० ६ तथा महामा आदि पर्व ।
(ख) वनमान में निरट्टन का पक्षीय नाम मिथिला एवं विदेह है ।
- १० मिथिला-गुर्जोतर नाम का एक प्राचीन जनपद अ मन्त्रिचतुर को यह नाम म है ।
- ११ बग नुर्वा भारत का एक जनपद । मन्त्रा समापक ।
- १२ (क) कोणाम्बा का वचन हेमिल—बिन्हा अ० ५
(ख) प्राचीन भारत को दस राज्या नवीं में एक कोणाम्बा नाम का राजधानी ।—दे लट्ट वचा० अ० १० पृ० ३६८
- १३ गाविड जनपद और उतावरी म गाविड राजधानी कहा थी इनका विवरण करने के निज प्रकार का कोई गावम मने है ।



| | |
|------------------------------|--------------------------|
| १५ मलय ^१ | मद्विलपुर ^३ |
| १६ वच्छ ^२ | वैराटपुर ^३ |
| १७ वरण ^४ | अच्छापुरी ^५ |
| १८ दशार्ण ^६ | मृत्तिकावती ^७ |
| १९ चेदि ^८ | शौवितावती ^८ |
| २० सिन्धु सौवीर ^९ | वीरभयपत्तन ^{१०} |
| २१ मूरसेन ^{११} | मयुरा ^{१२} |
| २२ भंग ^{१३} | पावा ^{१४} |

१ मलय-दक्षिण में मलय पर्वत के समीप का एक जनपद ।

२ मद्विलपुर का वर्णन देखिए अत० अ० ८ १०३,

३ विराट नगर मत्स्य देश की राजधानी थी ।—देखिए महाभा० विंगटपर्व । प्राकृत में मत्स्य का मच्छरूप होता है ।
सम्भव है लिपिदोष से मच्छ के स्थान में वच्छ लिखा गया हो । अन्यथा आर्य जनपदों में वच्छ नाम के दो जनपद
हो जाते हैं । जो मकलनशैली से उचिन् प्रतीत नहीं होने ।

४ वरण जनपद और उसकी राजधानी अच्छापुरी की भौगोलिक स्थिति जानने के लिए प्रयत्न अपेक्षित है ।

५ (क) दशार्ण जनपद के दो विभाग थे । पूर्वी भाग में उत्तरीमगट का कुछ भाग और पश्चिमी भाग में पूर्वी मालवा
और नेपाल की रियासत सम्मिलित थी ।

(ख) हिंदी शब्दसागर के अनुसार विन्ध्यपर्वत के पूर्व-दक्षिण की ओर म्विन उम प्रदेश का प्राचीन नाम
'दशार्ण' है ।

(ग) मेघदूत के अनुसार इस जनपद की राजधानी विदिशा-आधुनिक 'भैलना' थी ।

(घ) जैन कथाग्रन्थों के अनुसार इस जनपद की राजधानी 'दशार्णपुर' थी । भ० महावीर के समय में यहाँ का
राजा 'दशार्णभद्र' था । वह भ० महावीर के समीप दीक्षित हुआ था ।

६ मृत्तिकावती-यह दशार्ण जनपद की राजधानी थी ।—देखिए प्रज्ञा० पद० १

७ (क) चेदि-एक प्राचीन जनपद था, वहाँ का अधिपति शिशुपाल था ।—महाभा० जादि पर्व ।

(ख) चेदि और वत्स के दोनों जनपद पात पान में थे ।—पाणि० पृ० ५७

८ (क) शौवितावती-चेदि जनपद की राजधानी थी ।—प्रज्ञा० पद० १

(ख) शुक्तिमती नाम भी इस नगरी का है ।—देखिए ज्ञाता० अ० १६

(ग) शुक्तिमती नाम की नदी के समीप शिशुपाल की राजधानी थी ।—देखिए महाभा० आदि पर्व ।

९ (क) सिन्धुसौवीर दो जनपदों का संयुक्त नाम है ।—देखिए-पाणि० पृ० ५७

(ख) सिन्धु नदी के पूर्वी किनारे की तरफ पंजाब में फैला हुआ प्राचीन सिन्धु जनपद था ।

(ग) वर्तमान सिंध प्रांत का पुराना नाम सौवीर जनपद है ।—देखिए पाणि० पृ० ५०

१० (प) वीरभयपत्तन सिन्धु और सौवीर इन दो जनपदों की संयुक्त राजधानी थी ।

११ (श) मूरसेन एक प्राचीन जनपद है । वर्तमान में मयुरा के आसपास का प्रदेश जो ब्रजमण्डल के नाम से प्रसिद्ध
है वह प्राचीन मूरसेन जनपद है ।

१२ (क) मयुरा का एक नाम मूरसेनपुर भी है ।—देखिए महाभा० सनापर्व ।

(ख) मयुरा भारत की प्रमुख दस राजधानियों में से एक राजधानी है ।—स्थाना० अ० १०, सू० ७१८

१३ भंग-जनपद आधुनिक बिहार के समीप का जनपद है ।

१४ पावा-नगवान् महावीर की निर्वाणभूमि जो आजकल बिहार प्रान्त में पावापुरी नाम से प्रसिद्ध है ।

| | |
|-----------------------|----------------------|
| २३ पुरिवत्त | मासा ^१ |
| २४ कुणाल ^२ | धावस्ती ^३ |
| २५ लाट ^४ | वागीयप ^५ |
| २ कवयाध ^६ | वनाम्बिका |

आकाशभाग

अमण जब आकाशमाग स पच्छ स्थान पर पहुँचना चाहता है तब वह वायुयान (आकाशगामी विमान) आदि किसी साधन का उपयोग नहीं करता है बलितु वायु लक्ष्य-बन्ध का ही उपयोग करता है। वह लक्ष्य चारणगति का नाम से प्रसिद्ध है। उन लक्ष्यगति चारणगति का प्रमुख भेद है—विद्या चारण और जयाचारण।

चारणगति अमण अमण की आकाशगामिनी गति द्वयगति का समान साधन हो जाती है। मनुष्य देव तीन चतुर्की वजाव जिनकी देर में अमणगति की तीन परिवर्तमाएं कर सकता है। विद्याचारण अमण भी वही तीन गति स आकाश में समनागमन कर सकता है।

निरंतर पच्छभवन तप करने-करते आकाशगामिनी विद्या द्वारा आकाश में गगनागमन का सामर्थ्य अमण को प्राप्त हो जाता है तब वह विद्यानरूप कहलाता है।

निराशा का मध्य पक्ष उमान में मानुषोत्तर पक्ष पर और दूसरी उडान में मन्दोदर द्वीप पहुँच जाता है। तथा तीव्र समय पक्ष का उमान में स्वस्थान पर पहुँच जाता है।

ऊर्ध्वगति में विद्याचारण का उडान में अमण वन (मिथवत पर) और दूसरी उडान में पडर वन (मह पवत पर) पहुँच जाता है। तीव्र समय पक्ष उमान में स्वस्थान पर पहुँच जाता है।

जयाचारण का निरंतर अष्टमभवन तप करने करने प्राप्त होती है। विद्याचारण में जयाचारण की आकाशगामिनी गति अधिषा होती है। मनुष्य देव तीन चतुर्की वजाव जिनकी देर में अमणगति का इच्छीस परिवर्तमाएं

- १ पुरिवत्त जनपद और मासा राजधानी की भौगोलिक स्थिति जानने के लिए प्रयत्न अपेक्षित है।
- २ कुणाल जनपद का उल्लेख—देखिए ज्ञाता अ० ८
- ३ धावस्ती नाम समय सहेत सहेत के भगवद्गीर्णों के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान उत्तरप्रदेश के गोंडा और बहराच जनपदों की सीमा पर स्थित है। सहेत सहेत उत्तर पूर्वी दिशा की गोंडा-मोरलपुर सीमा पर बलराम पर स्थित से बहराच जाने वाली सड़क द्वारा प्राप्त हो जाती है। और इस स्थान से छोटी सड़क बहराच तक पहुँच जाती है।
- ४ वतमान में लाट जनपद की भौगोलिक स्थिति उत्तरी बंगाल है। अनाथ जनपद लाट आय जनपद लाट से भिन्न है।
- ५ दिनागपुर जिले में स्थित बानगड का प्राचीन नाम कोटिवध था।—देखिए तीर्थहर महावीर पृ० २११
- ६ (क) केवयाध-वजय जनपद का उपनिषद् था। केवय जनपद समय पच्छुर और पुनरात प्रदेश का पराना नाम है।—देखिए पाणि पृ० ६७
- (ख) केवय जनपद प्याग और सतलज के बीच का नु भाग है।—देखिए महाभा० भोदमपद।
- कवय जनपद का समय मे से दो भूत हैं। भारत में केवय जनपद की भौगोलिक स्थिति तोष का विषय है।
- ७ वेताम्बिका-नाथ्यो के समीप थी। यह साधक्यो कुणाल जनपद की राजधानी धावस्ती से भिन्न है या नहीं है? यह सातव्य है।





कर लेता है। जघाचारण श्रमण भी इतनी ही तीव्र गति से आकाश में गमनागमन कर सकता है।

तिरछी दिशा में जघाचारण एक उडान में स्वस्थान द्वीप पहुँच जाता है तथा लौटते समय एक उडान में नन्दीध्वर द्वीप और दूसरी उडान में स्वस्थान पहुँच जाता है।

ऊर्ध्व दिशा में जघाचारण एक उडान में पडक वन (मेखवंत पर) पहुँच जाता है। लौटते समय एक उडान में नन्दन वन और दूसरी उडान में स्वस्थान पहुँच जाता है।

विद्याचारण का गमन दो उत्पत्त (उडान) में होता है और आगमन पर उत्पत्त में होता है।

जघाचारण का गमन एक उत्पत्त में होता है और आगमन दो उत्पत्त में होता है। पर इन उड्डियों का स्वभाव है।

चारण लट्ठि के अन्य अनेक भेद हैं। यथा—

- १ जल-चारण-जलकायिक जीवों की हिमा न करता हुआ जो जल पर पृथ्वी पर चलने के समान चलता है।
- २ जघा-चारण-पृथ्वी में चार अगुल ऊपर आकाश में पृथ्वी पर चलने के समान चलता है।
- ३ फल-चारण-फलों के जीवों की हिमा न करता हुआ फलों पर पृथ्वी पर चलने के समान चलता है।
- ४ पुष्प-चारण-पुष्पों के जीवों की हिमा न करता हुआ पुष्पों पर पृथ्वी पर चलने के समान चलता है।
- ५ पत्र-चारण-पत्तों के जीवों की हिमा न करता हुआ पत्तों पर पृथ्वी पर चलने के समान चलता है।
- ६ श्रेणी-चारण-चार ती प्रोजन ऊँची निपट और नीलवन पर्वत-श्रेणी पर ऊपर या नीचे चलता है।
- ७ अग्निशिखा-चारण-अग्नि कायिक जीवों की हिमा न करते हुए अग्निशिखाओं पर चलता है।
- ८ धूम-चारण-ऊपर या तिरछे जाते हुए धूम का आलम्बन करते चलता है।
- ९ नीहार-चारण-जलकायिक जीवों की हिमा न करते हुए हिमशृंगों के माथे जो गति करता है।
- १० अवग्राम-चारण-जलकायिक जीवों की हिमा न करते हुए ओमकणों का अवलम्बन लेकर जो चलता है।
- ११ मेघ-चारण-जलकायिक जीवों की हिमा न करने हुए जो मेघ के माथे गति करता है।
- १२ वारिधारा-चारण-जलकायिक जीवों की हिमा न करता हुआ जो आकाश में गिरती हुई जल-धारा का अवलम्बन लेकर चलता है।
- १३ मर्कटतन्तु-चारण-मकड़ी के तन्तु का अवलम्बन लेकर जो आकाश में गमनागमन करता है।
- १४ ज्योति-रश्मि-चारण-चन्द्रादि ग्रहों या नक्षत्रों की रश्मियों का अवलम्बन लेकर जो आकाश में गमनागमन करता है।
- १५ वायु-चारण-वायु के अनुकूल या प्रतिकूल जो आकाश में गमनागमन करता है।^१

चारण लट्ठि सम्पन्न श्रमण सबह हजार प्रोजन ऊपर उठकर तिरछी गति करता है। आधुनिक अन्तरिक्ष विज्ञान के अनुसार जहाँ वाक्मिजन (प्राण वायु) का अभाव है वहाँ भी चारण उड्डि सम्पन्न श्रमण गमनागमन करने में समर्थ होता है।

लट्ठिप्रयोग प्रमाद-कार्य है अतः लट्ठि-प्रयोग करने वाले को लट्ठि-प्रयोग के पश्चात् आत्मशुद्धि के लिए आलोचना-प्रतिक्रमण आदि करना आवश्यक होता है अन्यथा वह भगवान् की आज्ञा का आराधक नहीं माना जाता है।



- १६ रत्न, वज्र, वैदूर्य-पावत्-रिष्ट रत्न हाथ में लेकर चलने वाले व्यक्ति के समान श्रमण आकाश में चलाता है ।
- १७ उत्पल, पद्म-पावत्-महत्पत्र हाथ में लेकर चलने वाले व्यक्ति के समान श्रमण आकाश में चलता है ।
- १८ कमलनाल नोटता हुआ व्यक्ति जिन प्रकार मगध में नौका द्वारा गति करता है इसी प्रकार श्रमण आकाश में गति करता है ।
- १९ मृणालिका (जो हवा के झोंके में कभी पानी में डूबती है और कभी ऊपर उठती है) के समान श्रमण आकाश में गति करता है ।
- २० व्याम, अतिव्याम-पावत्-मेघवर्ण रमणीय एवं दर्शनीय वन का रूप धारण करके श्रमण आकाश में गति करता है ।
- २१ चतुष्कोण, समतट सुशोभित प्राकार वाली एवं शुक्लमूह के सुमधुर रङ्ग वाली पुष्करिणी, वापिका के समान रूप धारण करके श्रमण आकाश में गति करता है ।^१

वैत्रिय-लब्धि में उत्तम रूप धारण करके आकाश में गमन करने का नामव्यं श्रमण में रहता है किन्तु वह धारण करता नहीं है । यदि मध-हित के लिए प्रभावोत्पादन के लिए एवं जिनप्रवचन के प्रति जनसमूह या विभिन्न व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिए श्रमण को अनेक आश्चर्यजनक रूप धारण करने पड़े तो वह लब्धिमिद्धि के पश्चात् आलोचना प्रतिक्रमण आदि करके आत्मगुद्धि कर लेता है ।

कतिपय नाशित आत्मा अनगार जब लब्धिप्रमपन्न हो जाते हैं तब वे ऐसा सोचने लगते हैं कि—अब हमारी माधना पूर्ण हो गई है, अब हम इस विभिन्न व्यक्ति से बहुत कुछ कर सकते हैं । यह अकुरित अहं उन नाशित आत्मा अनगारों की आध्यात्मिक प्रगति को अवरुद्ध कर देता है और उन्हें शून्य ज्ञान तप-माधना में डूबे विस्तार कर मन में विमुख कर देता है । वे अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अथवा सामान्य सुख सुविधा के लिए लब्धि का प्रयोग करते हुए नहीं सकुचाते ।

लब्धि-प्रयोग करने वाले अनगार मायावी माने गये हैं, क्योंकि वे लब्धि-प्रयोग में विविध प्रकार के आश्चर्य-जनक रूप एवं गगन में गमनागमन आदि क्रियाएँ दिवाकर व्यक्ति विशेष को या जनसमूह को प्रभावित करते हैं ।

इस श्रमणधर्म में तृतीय श्रमणधर्म 'आर्षेय' है । आर्षेय अर्थान् सरलता । सरलता माधु का धर्म है । माया अर्धर्म है । अब श्रमण को लब्धिप्रयोग का प्रावृत्ति करना पड़ता है ।

परिवर्तित वेप भाषा आदि में जिस प्रकार लौकिक जीवन में मायावी लोग जनता को प्रभावित कर अपना स्वार्थ मिद्ध करते हैं, इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में श्रमण भी यदि लब्धिप्रयोग में परिवर्तित वेप-भाषा द्वारा जनता को प्रभावित कर इष्टमिद्धि करता है तो वह मायावी ही है ।

आगमो में मायावी और अमायावी के जीवन की झलक दिखाते हुए कहा गया है कि—“मायावी मनुष्य (अनगार) प्रणीत (स्निग्ध घृत आदि का) आहार करता है । और वह जिह्वा लोलुप होकर बारबार स्निग्ध आहार करता है तो उसे कभी कभी वमन भी हो जाता है । अब अस्थि एवं मज्जा उसके पत्र हो जाती है । मांस और रक्त उसके अल्प परिमाण में बनते हैं । भुक्त आहार के स्थूल पुद्गलों का परिणमन श्रोत्रेन्द्रिय-पावत्-स्पर्शेन्द्रिय रूप में, अस्थि एवं अस्थि-मज्जा के रूप में, केश, श्मश्रु, रोम, नाख, वीर्य और रक्त के रूप में होता है ।

अमायावी मनुष्य (अनगार) रक्त आहार करता है और वह नीरसभोजी इतना अल्प आहार करता है कि वमन तो उसे होता ही नहीं । अब अस्थि एवं मज्जा उसके प्रतनु (अल्प) बनते हैं । मांस और रक्त उसके घन हो जाते

हैं। भुवन आहार के स्वरूप पुनरावृत्ति का परिणाम उन्मूलन प्रवचन रूप में यावत् रत्न रूप में होता है। इसलिए मायावी अनगार लक्ष्य प्रयोग करता है और अनामावी अनगार तद्विषयों में नहीं करता है।^१

आगमकथाओं में वक्रिय तद्विषयों में आयातभूति अनगार की वया मायावी तथा अनामावी अनगार का प्रमुख सन्तुष्टि है।

वह आहारप्राप्ति अथ साधारण वायु वक्रिय तद्विषयों में करता है और इस तद्विषयों ही उसका ध्यान होता है। एक निम्न समय में विमुख हो कर मन बना जाता है। यह है अथ मायावी जीवन का चित्रण।

वह आयातभूति अथ अध्यात्मिक तन में रत हो मायावी जीवन में भुवन में जाता है ता एक निम्न कल्पना में प्राप्त कर जाता है। यह है उसके अनामावी जीवन की सन्तुष्टि स्वरूप।

यतना

यतना का अर्थ है प्रत्येक दिशा की विवेकपूर्वक चरना। यतना के चार प्रकार हैं —

- | | |
|----------------|--------------|
| (१) द्रव्ययतना | (२) क्षणयतना |
| (३) वाक्ययतना | (४) भावयतना |

(१) द्रव्ययतना—जिन में आयात तद्विषयों में चरना। राजि में राजाहृष्ट स प्रमादित कर चरना।

(२) क्षणयतना—चार हाथ प्रमाण क्षणों को देखते हुए चरना।

(३) वाक्ययतना—जिनमें समय एक चरना उतने समय तक विवेकपूर्वक चरना।

(४) भावयतना—सन्तुष्टि अथवागवृद्ध चरना।^२

भावयतना में अथ व समय की रक्षा जाता है। समय की रक्षा का अर्थ है अथ अथम की रक्षा और अथ प्राणिमों की रक्षा। अथम के प्रातः विचार समय में विचारित न हो यही भावयतना है। वाचिक और वाचिक क्रियाओं का महत्त्व अथम के मानवित्व महत्त्वा के साथ है अथ अथम का अथमोत्तम उन सब नियमों का पालन करना चाहिए जो आत्म-पराधना में सहायक हैं और आत्म विराधना न होने देते हैं। यही भावयतना के लिए आवश्यक विधान प्रस्तुत हैं —

अथम का मन निम्न स्थानों में नहीं जाना चाहिए —

- १ राजा का शत्रु के वचात नया राजा पाट पर न बैठे ओ
- २ जिन गणराज्य में अनाति हो
- जहां मुबरात का सम्मानित न हुआ हो
- ४ जहां राजाओं का नाम हो
- ५ जहां समीपवर्ती राज्य विराधी राज्य हो
- ६ जहां राजा के निम्न प्रजा हो

इन स्थानों में जानने अथम का अथम परीक्षा पाते हैं।^३

१ मग० १० ३ उद् ४

२ उद् ४ २४ माया ७

३ आवा० धत० २ अ ३ उद् १ धृज ११६





निर्दिष्ट स्थानों में होने वाले शब्द मुनने के लिए श्रमण को नहीं जाना चाहिए, —

- १ प्राकार परिखा आदि स्थानों में होने वाले शब्द
- २ नदी, तालाब या भरावर आदि स्थानों में होने वाले शब्द
- ३ कच्छ में होने वाले शब्द
- ४ वृक्ष पर होने वाले शब्द
- ५ वन में होने वाले शब्द
- ६ वन-दुर्ग में होने वाले शब्द
- ७ पर्वत पर होने वाले शब्द
- ८ पर्वत-दुर्ग में होने वाले शब्द
- ९ ग्राम-यावत्-राजधानी में होने वाले शब्द ।
- १० आश्रम आदि में होने वाले शब्द
- ११ आराम आदि में होने वाले शब्द
- १२ देव कुल, भभा या प्रभा आदि में होने वाले शब्द
- १३ अट्टालिका, चरिका, द्राग या गोपुर पर होने वाले शब्द
- १४ तिराहे चौराहे आदि मार्गों पर होने वाले शब्द
- १५ महिषाला आदि विविध पशुशालाओं में होने वाले शब्द
- १६ कपिजल आदि पक्षियों की पक्षिशाला-चिटिया घर में होने वाले शब्द
- १७ महिष आदि पशुओं में होने वाले युद्ध के शब्द
- १८ कपिजल आदि पक्षियों के युद्ध के शब्द
- १९ लग्नमण्डप में होने वाले शब्द
- २० अश्व-गज आदि के युद्ध में होने वाले शब्द
- २१ धर्मकथा के अतिश्रुत शेष कथाम्थानों में होने वाले शब्द
- २२ तोल-माप होने वाले स्थानों में होने वाले शब्द
- २३ नाट्य में होने वाले शब्द
- २४ कलह में होने वाले शब्द
- २५ जिसे राज्य में श्रमण सम्मिलित है उस राज्य में होने वाले युद्ध के शब्द
- २६ पर-राज्य में होने वाले युद्ध के शब्द
- २७ दो परस्पर विरोधी राज्यों के युद्ध के शब्द
- २८ परस्पर विरोध के शब्द
- २९ वधस्थान पर ले जाई जाने वाली बालिका का या वधस्थान पर ले जाए जाने वाले पुरुष का शब्द
- ३० अनेक शकटों के शब्द
- ३१ अनेक रथों के शब्द
- ३२ अनेक म्लेच्छों के शब्द

- ३३ धनक अत्यजा क ग
- ३४ महोत्सवा योन वाङ ग
- ३५ महाभाज म हानि वाङ ग
- ३६ इन्द्रोक्ति मनुष्या क ग
- ३७ पारलौकिक देवा क ग
- ३८ भुक्त ग
- ३९ अन्न वा
- ४० इन्द्र, काम प्रिय वा
- ४१ स्त्रियों के कृजन अन्न को जाहल, मायन और हमने के वा

इन वाङ्गों में धन से राख डूब की छुट्टि हाजी है। समय में मन स्थिर नहीं रहता अतः इन प्रकार के गाने धन से लिए अन्न को नहीं खाया जाता चाहिए।

अगर जिनके अस्थान बहूँ उनमें से वाङ्ग स्वाना के अतिरिक्त गाय सभा स्वाना में दृश्य देखने के लिए भी अन्न खा नही जाता चाहिए।

पथिक प्रश्न

- (क) आचार्य उपाध्याय या रत्नाधिक आदि के साथ साधु या प्रवर्तिता आदि के साथ साधुओं या प्रवर्तितों के नामानुष्ठान बिहार करते हुए माग में एक दूसरे के हाथ से हाथ का पर से पर का या शरीर में शरीर का स्पर्श न करते हुए चले। अर्थात् पूरे पुरस्कारों का अभिनय न हो इस प्रकार चले।
- (ख) आचार्य उपाध्याय या रत्नाधिक आदि के साथ अन्न वा तवा प्रवर्तिता आदि के साथ अन्नियों के नामानुष्ठान बिहार करते हुए माग में पथिक मित्रों और आनुष्मन् अन्न (आनुष्मन् अन्नियों) आय कीन है? कहां से आया है और कहा जाएगा? इत्यादि प्रश्न करें ता जो रत्नाधिक (दीना मन्त्र) का उस ही उत्तर देना चाहिए।
- (ग) रत्नाधिक जन्म उत्तर न देता है। उक्त समय अथर्व हिंसी अन्न (अन्नियों) की बीच में नहीं वाला चाहिए।
- (घ) ये पथिक पूछें—आने के लिए किसी मनुष्य या स्त्री का बल आदि मनुष्य का तीनर आदि पक्षियों का उड़ान आदि तरीक़ों का क्रम आदि जन्मों का देखा हो या निन्दा या कर्ण।
अन्न-अन्नियों इस प्रकार के प्रश्नों की मुक्ति कर सों रहें। न उक्त निन्दा न उक्त कुछ कहें और न उक्त उत्तर देने का आग्रह न करें। यदि किसी प्राणी का पीड़ा होने की सम्भावना हो तो आने के लिए भी हम नही जानते ऐसा वा।

दस विधान का प्रमुख उद्देश्य प्राणा रक्षा है। पथिक के इन विचार प्रश्नों का उत्तर अन्न दया न दे यह एक समस्या है। दूसरा सबसे महत्वपूर्ण विधान किसी भी परम्परा के आगम मार्गस्थ में नहीं मिलता। यहाँ विधान का पक्ष लिए गए हैं। प्रथम पक्ष है—सर्वदा जीवन रक्षा। दूसरा आगम यह है कि—अन्न छद्मस्व है अतः पथिक





के पूछने का आशय क्या है ? यह वह नहीं जान सकता । पथिक ने प्रश्न का उद्देश्य भी बता दिया और वह उद्देश्य भी हिंसा का नहीं है फिर भी वह उद्देश्य सरल हृदय में बताया गया है या मायापूर्वक ? यह निश्चय नहीं होना अतः मौन रहना ही सर्वथा उचित है ।

द्वितीय पक्ष है —“जानते हुए भी नहीं जानता हूँ” ऐसा कहना । इस पक्ष के समर्थक हैं टीकाकार आचार्य । इस पक्ष के दो विभाग हैं —प्रथम पक्ष वह है जो मौन रखने का समर्थक है । उनका कहना है —“जानता हुआ भी मैं नहीं जानता हूँ” यह कथन अतथ्य है अतः श्रमणमर्यादा के विरुद्ध है ।

द्वितीय पक्ष का कहना है —अतथ्य होते हुए भी असत्य नहीं है, क्योंकि जिन प्राणियों के मध्य में पथिक पूछ रहा है उनका हित मान कर ही श्रमण अतथ्य कह रहा है । वास्तव में सत्य असत्य तो मानव के गकल्प है । शब्द जब हैं, वे स्वयं न सत्य हैं और न असत्य । कृपापूर्वक कहा हुआ सत्य जब आगम की परिभाषा के अनुसार असत्य माना जा सकता है तब प्राणिमात्र के हित के संकल्प से कहे हुए अतथ्य को सत्य न मानने का क्या कारण है ?

दोनों पक्षों के समर्थन के लिए हेतु हैं, युक्तियाँ हैं और प्रमाण हैं, फिर भी “परम सत्य तो वही है जो जिन भगवान् ने कहा है ।”

(ङ) पथिक पूछे—हे आयुष्मन् श्रमण ! मार्ग में कहीं जलज, कद, मूल, त्वचा, पत्र-पुष्प, फल, वीज, वनस्पति, जलाशय या अग्नि आदि देखें हो तो दिखावें या कहे ।

(च) पथिक पूछे—हे आयुष्मन् श्रमण ! मार्ग में कहीं खेतों या खलियानों में धान्य देखा हो तो दिखावें या कहे ।

श्रमण-श्रमणियाँ इस प्रकार के प्रश्न सुनकर मौन रहे । श्रमण-श्रमणियों को आरम्भजा हिंसा का निमित्त नहीं बनना चाहिए । इन विधानों की पृष्ठभूमि में यही भावना है ।

(छ) पथिक पूछें—हे आयुष्मन् श्रमण ! मार्ग में कहीं मेना का पड़ाव है ? मैनिक देवे हैं ? मैनिकों की वेपभूषा कैसी है ? इत्यादि के सम्बन्ध में बताइए ।

श्रमण-श्रमणियाँ इस प्रकार के प्रश्न सुनकर मौन रहे क्योंकि उनका जीवन आध्यात्मिक है । वे ऐसे प्रश्नों का उत्तर देकर संकट में क्यों पड़ें ? मेना सबधी जानकारी देने में अनेक प्रकार के उपमर्ग होने की सम्भावना रहती है । इसलिए यह विधान किया गया है ।

(ज) पथिक पूछे—हे आयुष्मन् श्रमण ! आगे कौन-सा गाव-गावत्-राजधानी आएगी ? अथवा-अमुक गाव-गावत्-राजधानी को कौन-सा मार्ग जायेगा ?

श्रमण श्रमणियाँ इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर न दे । जानते हुए भी मौन रहे क्योंकि न जाने मार्ग पूछने का उद्देश्य क्या है ? उद्देश्य बताने वाले ने जो उद्देश्य बताया है वह कष्टपूर्वक बताया है या सरलतापूर्वक ? छद्मसत्य को इन तथ्यों का ज्ञान नहीं होता । इसलिए मौन रहने का विधान किया गया है ।

प्रस्तुत अमिनन्दनग्रन्थ के लिए अष्ट प्रवचनमाता पर निबन्ध लिखने का मैंने मकल किया था किन्तु ईर्ष्या-ममिति पर लिखे हुए पृष्ठों की पर्याप्त सरया देख कर आगे लिखना मुझे स्वगित करना पड़ा क्योंकि पूरा निबन्ध इतना विशालकाय बनता कि उसके लिए अनुमानतः ग्रन्थ का आधा भाग आवश्यक होता । चरणानुयोग के प्रकाशन का कार्यभार अविकल रहने से इतना लिखना मेरे लिए शक्य भी नहीं था और इतने बड़े निबन्ध को ग्रन्थ में स्थान मिलना भी सम्भव नहीं था, अतः इतना लिखकर ही विराम लेता हूँ ।

नैतिक उत्थान एवं धर्मशासन

प्रो० अनन्त लूनिया



वर्तमान भौतिकवादी युग में नैतिकता का अवमूल्यन हुआ है। छत्र माया कपट से ढकत इस विचार में सच्चाई ईमानदारी पर परस्पर हातरता का स्थान भ्रष्ट वैदिकवादी पर स्वाध्यायपरायणता में मिल गया। भ्राता भाई, पिता पुत्र और बहन भाई के स्नेह मूल दूधन का रह है। नैतिक पतन अपनी चरमसीमा पर है। मानवता एक खोखला घात मान रह गया है। मन मानवाय भावनाओं समाप्त हो चुकी हैं। धीमे-धीमे एवं महापुरुषों का यह देश भाग्यमान जीवन उच्च विचार का जगह में हूँ कर भौतिकवादी का चक्कर में पड़ गया है। आर्थिक सामाजिक राजनैतिक एवं सभी क्षेत्रों में मनोव्यवस्था का पतन हुआ है। स्वायत्त दुराग्र अस्तित्व में महीनता भ्रष्टाचार इत्यादि प्रवृत्तियों में चली है। भगवान् महावीर के सत्ते पर जोर और जीवन का स्थान पर न जीआए वन जीवन का मूल्य लिया जाने लगा है।

इन परिस्थितियों से छत्रवादी पान का प्रयत्न विभिन्न समाज राज्य एवं विचार के कल्याण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। नैतिक उत्थान का परिणामस्वरूप रागद्वेष जोग द्वेष प्रयत्न से छत्रवादी पात्रर सगति प्राप्त की जा सकती है। अध्यात्मवाद के साथ में मानवीय क्षमताओं पर नियन्त्रण किया जा सकता है। धर्म साधना तप एवं ज्ञान से अनतिवृत्त की ममास्त दिया जा सकता है। विविध-व्यक्ति के सम्बन्ध समाज समाज के सम्बन्ध एवं राज्य राज्य के सम्बन्ध नैतिकता की नींव पर हा हूँ हो सकती है। अन्तर्निहित विचार सत्यता सत जीव महात्मा गांधी नैतिकता को व्यवस्थित जीवन में लान में सफल रहे। कठोर रण रागद्वेष परमेश्वर विचारों में आति में नैतिक मूल्यों का समाज में प्रतिष्ठित करने का गुणन प्रयास किया। गांधी नेहरू एवं आसि ने तो राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का संचालन एवं गामन में भी नैतिकता लान का प्रयत्न किया है। वास्तव में इन विधियों का पश्चात्ताप नैतिकता की आधारभूमि में निर्माण का कार्य और भी बढ़ गया है। आधुनिक विचार के कई दार्शनिक समय समय पर हमारा ध्यान इस ओर बढ़ाने का प्रयत्न रहे हैं। बड़े-बड़े रण रागद्वेष कृष्णन ज्योति मन्तुभाष आदि नैतिकता का ज्ञान प्रदान किया गया है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि नैतिक उत्थान का सबसे मुख्य तत्व क्या है? मनापिदा एवं विचारका में धर्म की नैतिक उत्थान का सधर्म माध्यम माना है।—उन्हीं अनुसार धर्म का अभाव में ही समाज विचार अधकार में देवा हुआ है। वर्तमान अनैतिकता का प्रमुख कारण भा धर्मविज्ञान एवं सिद्धांतों का लोप माना गया है। धार्मिक एवं स्वयंसेवक की मस्तिष्क में धार्मिक जगत् में मानवता की आत्मिक कार्यकुशलता के यंत्रों के रूप में हाट लिया है। अब नैतिक प्रगति के लिये एक ही आधारभूत दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिससे अन्तर में केवल अध्यात्म और राजनैतिक आधे-गुण जीवन हो अपितु आत्मा की मुक्त अवस्थाका में लिये भी स्थान हो। किसी समाज का वास्तविक रूप का पता उसकी दृष्टि से जाना नहीं जाता कितना कि उन्हीं आत्मिक मूल्यों और मन की सत्ता का। धर्म सम्पत्ति का आतिरिक्त रूप है। यह समाज की शरीर की आत्मा है। विज्ञान का उपयोग आर्थिक समझौते और राजनैतिक कार्य एवं मन्त्र हम विचार का बाह्य रूप में ही संपादित कर सकते हैं परंतु मनुष्य एवं विचार विचार एवं आत्मा की दृष्टि ही हम सद्गुण प्राप्त कर सकती है। धर्म मानव समाज के पुनर्निर्माण में सहायक सहायक द सकता है। मनुष्य शरीर मन और आत्मा का सम्मिश्रण होता है। उन्हीं इन तत्वों की भी वापस धर्म का स्थिति। मोक्ष और ध्याय शरीर की शुद्ध रखना है। विज्ञान और ध्यायका हाग मन का सान रख जा सकता है। परन्तु आत्मा की शुद्धता धर्म पर ही आधारित है। धर्म ही मनुष्य धर्म धर्म धर्म दया नम्रता



विवेक, समय, ब्रह्मचर्य अहिंसा, सत्प्रेरणा, शान्ति एवं माहम का मोन है। ये विद्योपतायें मानव का अनैतिकता से नैतिकता की ओर प्रेरित करती हैं। इन्हीं की महायत्ना से व्यक्ति छल, कपट, क्रोध, अहंकार, माया, ध्विषेय, अनयम, इत्यादि वचनों से वचता है।

आज धर्मशासन की आवश्यकता है। उसके अन्तर्गत रचनात्मक प्रवृत्तियों का विकास आवश्यक है। आज विश्व का स्वरूप बदल रहा है। पूर्व और पश्चिम के विचारों में श्रृंगारप्रद परिमेलन पैदा हो रहे हैं। विश्व के राष्ट्र अधिकाधिक परस्पर मेलन होते जा रहे हैं। मध्यतापे और अशुद्धिपूर्ण अपना रूप परिवर्तन कर रही है। ऐसे समय बुद्धि और आत्मा में एकता स्थापित करने की आवश्यकता है। पृथ्वी पर अज्ञान के मर्मोन्मत्त रूप मानव में भी परिवर्तन की आवश्यकता है। उन मर्मों के लिए आध्यात्मिक पुनर्जागरण जरूरी है।

जैनधर्म एक रचनात्मक धर्म है। वह रुढ़िवादी, मकीर्ण एवं बोर्षा रचनाओं के न्याय पर आदर्श विचारों को साकार रूप प्रदान करता है। जैनधर्म का तत्त्वज्ञान अनन्त पर आधारित है और इसका प्राचार अहिंसा पर प्रतिष्ठापित। जैनधर्म कोई पारम्परिक विचारों ऐहिक या पारलौकिक मान्यताओं पर अवलंब, स्मरण करने वाला सम्प्रदाय नहीं है। वह मूलतः एक त्रिगुण वैज्ञानिक धर्म है। इसका विज्ञान एवं प्रसार वैज्ञानिक दृष्टि से हुआ है। अहिंसा एवं अनेकात के सर्वांगीण विवेचन पर प्रतिष्ठित है। यह आत्मा की शुद्ध एवं भुक्ति पर विज्ञान करता है। भगवान् महावीर ने सूत्रकृतांग में बतलाया है।—

“निष्ठाणसेद्धा जह सत्त्वधम्मा”

अर्थात् सभी धर्मों का अन्तिम ध्येय मुक्ति है। जैनधर्म निर्वाण-प्राप्ति को परमात्मता का अन्तिम माध्यमानता है और इसी उद्देश्य की गति के निमित्त जगत् मोक्ष का विधान किया है। जैनधर्म ने नम्यज्ञान, नम्यकु-दर्शन एवं नम्यक् चरित्र की सीढ़ियों पर चलकर मोक्षप्राप्ति के लिये परम निर्माण किया है। उन तीन सिद्धान्तों की प्राप्ति मोक्षप्राप्ति का तरीका है।

जैनधर्म की सबसे बड़ी देन है अहिंसा। भगवान् ऋषभदेव ने भगवान् महावीर तक २४ तीर्थंकरों ने इसी का उपदेश दिया। आज अहिंसा का यही सिद्धान्त व्यक्ति समाज एवं मानव मात्र के लिये आदर्श बन गया है। शान्ति समाज एवं राष्ट्र की सुरक्षा, शोषणहीन विश्व की कल्पना एवं न्याय व समानता के मानवीय सिद्धान्त अहिंसा ही की देन है। भगवान् महावीर ने फर्माया था—

“सर्वे जीवा न हन्तव्या”

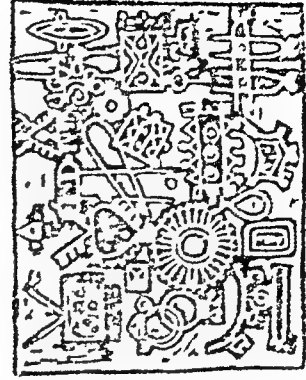
अर्थात् किसी जीव की हिंसा न करो। किसी को मार मतो एवं न किसी के पराधीन बनो और न किसी को पराधीन बनाओ। जैनधर्म की अहिंसा का तात्पर्य कायरता से नहीं लिया जा सकता। यह हिंसा पर प्रेम की विजय चाहता है। आध्यात्मिक जीवन का विकास ही वह बल है जो पशुओं को प्रेम करने की क्षमता प्रदान करता है। प्रेम का अर्थ स्वाभाविक कोमलता से नहीं है, जो प्रत्येक व्यक्ति में उसकी शरीररचना के अनुसार कम या अधिक होता है। अपितु विवेक और धर्मनिष्ठा पर आधारित आत्मा का एक अधिक व्यापक सिद्धान्त है।

जैनधर्म धार्मिक सहिष्णुता का संदेश देता है। धार्मिक असहिष्णुता के कारण इस विश्व में बड़े दुःख उठते हैं और रक्त बहाया है। इतना ही नहीं, समय-समय पर राजनीतिक असहिष्णुता ने भी धार्मिक जमा ओढ़ कर महत्वपूर्ण आकाशों की। कई बार दर्प आत्म-प्रशस्ति घृणा और अत्याचारों ने मानवता का गला घोट दिया। जैनधर्म ने पीड़ित विश्व को सहिष्णुता का पाठ पढ़ाकर मानव मात्र की बहुमूल्य सेवा की। अन्य धर्मों के साथ भी बढ़ते हुये जैनधर्म ने एकता का पाठ पढ़ाया। उसने धर्मनिष्पेक्षता के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दिया।

जैनधर्म ने नैतिकता के एक अन्य पक्ष को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया। “स्थानांग सूत्र” में भगवान् महावीर ने धर्म के दो पक्ष बतलाये हैं।

भावनायोग-एक मीमांसा

मुनिश्री गुलाबचन्द्र 'निर्मोही'



भगवान् महावीर ने कहा—जो एक को जान लेता है, वह सबको जान लेता है। जो सबको जान लेता है, वही एग का जानता है।^१ उपनिषद् की भाषा में जो आत्मा को जान लेता है, उसने चित्त सर्व जान ले जाता है।^२ किन्तु प्रश्न होता है कि जो आत्मा अदृश्य है, उसे कैसे जाना जाए ? भगवान् महावीर की भाषा में आत्मविद् वह है, जिसे जवद, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श मलीभानि जान होने हैं।^३ आत्मोपलब्धि का साधन है—चिन्तन-मार्ग। महापि पतञ्जलि ने विषयवती प्रवृत्ति को चित्तस्थैर्य का साधन कहा है।^४ इन्द्रियों के जो विषय हैं, उन्हें सब जानने हैं किन्तु साधन की भाषा में ज्ञेय का अर्थ होता है—ज्ञान और ज्ञेय का अर्थ होता है—परित्याग। किसी भी वस्तु का प्रतिपादन और त्याग नहीं हो सकता है, जब उसका स्वरूप मलीभानि जान लिया जाए। वस्तु का विषय क्या है ? रूप का स्थान कहाँ है ? उसका क्या नाम है ? प्रकाश कहाँ से आता है ? कैसे आता है ? आदि प्रश्नों पर विचार करने-करने जब चित्त स्थिर होता है, तब चित्तवृत्ति रज-विषयवाली रुहलाती है। उसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के विषयों में भी चित्त को स्थिर किया जाता है। इस अभ्यास में इन्द्रियों के विषयों का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त होता है। दर्शन के आवरण लीन होने हैं—अधकार में देखने व दूर-श्रवण आदि की शक्तियाँ विकसित होती हैं।

पुनः प्रश्न होता है कि शक्तियों का स्त्रोत क्या है ? उनका समाधान पाने के लिए भारतीय मनीषियों ने तर्क की अपेक्षा श्रद्धा और वहिर्दर्शन की अपेक्षा अन्तर्दर्शन को अधिक महत्व दिया है। तर्क और वहिर्दर्शन जहाँ समाप्त होने हैं, वहाँ अन्तर्दर्शन का आरम्भ होता है। जहाँ शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्तियाँ रुकती हैं, वहाँ अन्तर्दर्शन प्रवृत्त होता है। जहाँ इन्द्रिया अपने विषयों में विरत होती हैं, वहाँ अन्तर्दर्शन प्रस्फुटित होता है। यह अन्तर्दर्शन ही मत्त्व की उपलब्धि का साधन है। जिन्हें यह प्राप्त हुआ, उनकी भाषा में मत्त्व है—आत्मा।

तत्त्ववाद की परिधि में जो उस विषय में है, वह सब मत्त्व है। असत्य वही है जो नहीं है। मत् या अम्यित्व की उपलब्धि का जो साधन है, वह भी सत्य है। स्वत्व की दृष्टि में आत्मा सत्य है। उसकी उपलब्धि का जो साधन

१ आचारान् १।३।४।७४

जे एग जानइ से सब जानइ । जे सब जानइ से एग जानइ ।

२ बृहदारण्यक २।४।६

आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति

३ आचारान् १।३।१।४

जस्मिन्ने सदा य रूपा य रसा य गन्धा य फासा य अभिसमन्तागया भवति से आयवं ।

४ पातञ्जलयोगदर्शन १।३।५

विषयवती वा प्रवृत्तिरुपपन्ना मनस स्थितिनिवन्धिनी ।

पाँच महाव्रत जो पञ्चोक्त भावनाएँ हैं।^१ ये भावनाएँ महाव्रतों की निरूपणा के लिए हैं।^२ प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पाँच भावनाएँ हैं। आगमों में उत्तम वर्णन आचाराग, समवायाग और प्रव्रतवाक्यग में मिलता है, किन्तु उनके क्रम तथा नामों में सम्मेलन न होकर विभेद है। जैसे — आचाराग के अनुसार —^३

अहिंसा महाव्रत

- (१) ईर्ष्याममिति
- (२) मनःपरिज्ञा
- (३) वचनपरिज्ञा
- (४) आदान-निक्षेपममिति
- (५) आशुनि-पान-भोजन

सत्य महाव्रत

- (१) अनुवीचिभाषण
- (२) शोधप्रत्याख्यान
- (३) लोमप्रत्याख्यान
- (४) अन्नघ्न (अन्न-प्रत्याख्यान)
- (५) हान्यप्रत्याख्यान

अचौर्य महाव्रत—

- (१) अनुवीचिनितावग्रह याचन
- (२) अनुज्ञापित पान-भोजन
- (३) अवग्रह का अवग्रहग
- (४) अभीष्ट-अवग्रह-याचन
- (५) नाथमिक के पान में अवग्रह-याचन

ब्रह्मचर्य महाव्रत

- (१) स्त्रियों में तथा जा वर्जन
- (२) स्त्रियों के अंग-प्रत्यंगों के अवलोकन का वर्जन
- (३) पूर्व-भुवन-भोग की स्मृति का वर्जन
- (४) अतिमात्र और प्रणीत पान-भोजन का वर्जन
- (५) स्त्री आदि में सम्पन्न गयनासन का वर्जन

१ उत्तराख्यन ३१।१७

पणवोन्नावणाह् उद्देमेसु दमाङ्गा ।

जे मिक्खु जयई तिच्च मे न खच्छइ मण्डले ॥

२ तत्त्वार्थसूत्र ७।३

तत्त्वैर्वायि भावता पच पंच ।

३ आचाराग २।२।१५।४०२

अपरिपक्व महाप्रत

- (१) मनाज ओर अमनाज मय ममभाव
 - (२) मनाज ओर अमनाज मय ममभाव
 - (३) मनाज ओर अमनाज मय ममभाव
 - (४) मनाज ओर अमनाज मय ममभाव
 - (५) मनाज ओर अमनाज मय ममभाव
- मनाज ओर अमनाज मय ममभाव —

अहिमा महाप्रत—

- (१) अहिमा
- (२) अहिमा
- (३) अहिमा
- (४) अहिमा
- (५) अहिमा

सत्य महाप्रत

- (१) सत्य
- (२) सत्य
- (३) सत्य
- (४) सत्य
- (५) सत्य

अचोप महाप्रत

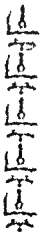
- (१) अचोप
- (२) अचोप
- (३) अचोप
- (४) अचोप
- (५) अचोप

दण्डधर्म महाप्रत

- (१) दण्डधर्म
- (२) दण्डधर्म
- (३) दण्डधर्म
- (४) दण्डधर्म
- (५) दण्डधर्म

अपरिपक्व महाप्रत

- (१) अपरिपक्व
- (२) अपरिपक्व





- (३) घ्राणन्द्रियरागोपरति
- (४) रसनेन्द्रियरागोपरति
- (५) रसनेन्द्रियरागोपरति

प्रश्नव्याकरण के अनुसार महाव्रतों को भावनाओं या वर्गीकरण ^१—

अहिंसा महाव्रत—

- (१) ईर्ष्यामिति
- (२) अपाप मन
- (३) अपाप वचन
- (४) एषणा नमिति
- (५) आदान-निक्षेप नमिति

सत्य महाव्रत

- (१) अनुवीचि भाषण
- (२) क्रोध प्रत्याख्यान
- (३) लोभ प्रत्याख्यान
- (४) लभय (भय प्रत्याख्यान)
- (५) हान्य प्रत्याख्यान

अचीर्य महाव्रत—

- (१) विविक्त वान-वसति
- (२) अभीक्ष्ण अवग्रह-याचन
- (३) शय्या नमिति
- (४) साधारण पिंड मात्र लाभ
- (५) विनय प्रयोग

ब्रह्मचर्य महाव्रत—

- (१) अक्षनक्तवास-वसति
- (१) स्त्रीजन में कथा वर्जन
- (३) स्त्री के अंग-प्रत्यंग और चेष्टाओं के अवलोकन का वर्जन
- (४) पूर्वभुजन भोग की स्मृति का वर्जन
- (५) प्रणीतरम भोजन का वर्जन

अपरिग्रह महाव्रत

- (१) मनोज और अमनोज शब्द में समभाव
- (२) मनोज और अमनोज रूप में समभाव
- (३) मनोज और अमनोज गव में समभाव
- (४) मनोज और अमनोज रस में समभाव

(५) मनोज और अमनाज स्वयं म समभाव

उपरोक्त तीनों वर्गीकरण म आचाराग और प्रवर्णनकरण के वर्गीकरण म अपेक्षाकृत कुछ साम्य है। समवायाग का वर्गीकरण नाम और जम दोनों हा दृष्टियाँ स कुछ भिन्न है।

आगमांतर साहित्य म सबसेप्रथम आचार्य मुन्मुद न पटप्राप्त छय म पचास भावनाओं का एक वर्गीकरण किया है जो इस प्रकार है—

अहिता महाप्रत

- (१) बचनगुप्ति
- (२) मनगुप्ति
- (३) स्थागुप्ति
- (४) स्थान निधय
- (५) अवलोकित पान प्राज्ञ

सत्य महाप्रत

- (१) अनाथ
- (२) अमय
- (३) अहास्य
- (४) अनाम
- (५) अमोह

यहाँ अनुवीचि भाषण के रूपान्तर पर अथाह भावना का उत्प्रेक्ष्य हुआ है। टीकाकार ने सपञ्चन भीतम का एक भाग उद्धृत करके इनका अर्थ भी अनुवीचि भाषणकुशाग्रता ही किया है।^१ अनुवीचि भाषणता स सात्य है— वीची वाग्वहरी सामनुकृत्य या भाषा वतते सानुवाची भाषा जिनसूत्रानुसारिणा भाषा अनुवाचा भाषा पूर्ववाच्य सूत्रपरिपाटीमनुकृत्य भाषणीयमित्यय । पूर्ववाच्य और सूत्रानुसारिणा भाषा । त्रैलोक्यपरम्परा म अनुवीचि भाषणता का अर्थ प्रायः अनुविचिभाव भाषण विचारपूर्वक बोलना ही किया गया है। किन्तु तत्वाचराजवानिज के

१ धारित्र प्रामत ३१ ३५

यपुत्तो मणपुत्तो इरिया समिदी शुवाणजिषलेवो ।
अवलोय भोपणाए हिसाए भावणा होति ॥
कोहभयहासलोटा मोहा विचरीय भावणा चेव ।
विदिपस्त भावणाए ए पचेय थ तहा होति ॥
मुष्णापारनिधातो विमोचितवात्त न परोय च ।
एतणगुडि सउत्त साहम्मो सवित्तवावो ॥
महिलालोयण पुत्तरइतरणसत्तसवसहि विक्काहि ।
पुटिठ रसहि विरभो भावणएचावि तुरियम्मि ॥
अपरिगह समणुण्णेणु सद्धरिततरसववधेणु ।
रायटोसाईण परिहारो भावणा होति ॥

२ धारित्र प्रामत ३२ (टीका)

अकोहणा अलोहो य भयट्टरसविचित्रो ।
अनुवीची नासकुसलो विदिप वरमस्तिवो ॥





दोनों ही अर्थों का ग्रहण किया है ।^१

अचौर्य महाव्रत

- (१) शून्यागार निवास
- (२) विमोचितायाम
- (३) पर-उपरोध न करना
- (४) एषणाशुद्धि
- (५) माधर्मि अविमवाद (माधर्मिकों के साथ विमवाद न करना)

ये पाँचों भावनाएँ श्वेताम्बर परम्परा में सर्वथा भिन्न हैं ।

ब्रह्मचर्य महाव्रत

- (१) महिला अवलोकन विरति
- (२) पूर्वभुक्ता का स्मरण न करना
- (३) समस्त वसति विरति
- (४) स्त्रीरागकथा विरति
- (५) पीण्डिक रस विरति

आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थ में जो भावनाविषयक वर्गीकरण दिया है उसमें ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावनाएँ उक्त भावनाओं से भिन्न हैं । वे इस प्रकार हैं ।^२—

- (१) स्त्री-रागकथावर्जन
- (२) मनोहर अगनिरीक्षणविरति
- (३) पूर्वरतानुस्मरण परित्याग
- (४) वृष्येष्ट रस परित्याग
- (५) स्वशरीरसंस्कार त्याग

अपरिग्रह महाव्रत

- (१) मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द में रागद्वेष का वर्जन
- (२) मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप में रागद्वेष का वर्जन
- (३) मनोज्ञ और अमनोज्ञ रस में रागद्वेष का वर्जन
- (४) मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्ध में रागद्वेष का वर्जन
- (५) मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्श में रागद्वेष का वर्जन

नामभेद और क्रमभेद होते हुए भी आगमोक्त और आगमोत्तर मन्त्री वर्गीकरणों का प्रतिपाद एक है ।
धर्म्य और शुक्ल ध्यान की चार-चार अनुप्रेक्षाएँ हैं ।^३ वे मिलित रूप में आठ भावनाएँ हैं —

१ तत्त्वार्थराजवातिक ७।५

अनुवीचिंसाणम् अनुलोमभाषणमित्यर्थ

विचार्य भाषणमनुवीचिभाषणमिति चा

२ तत्त्वार्थसूत्र ७।७

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरागनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीररसस्कारत्यागा पञ्च ।

३ स्वानाग ४।१।२४७

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ

- (१) एतत्त्वानुप्रेक्षा—म अकल है ।
- (२) अनित्यानुप्रेक्षा—सब समय अनित्य हैं ।
- (३) अगणानुप्रेक्षा—दूसरा कोई प्राण नहीं है ।
- (४) मत्सरानुप्रेक्षा—जीव सगार में परिभ्रमण कर रहा है ।

धर्मध्यान व निष्कथना स्वाध्याय और भावना अपेक्षित है यह उसकी अनुप्रेक्षा में पड़ता है ।

गुणध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ

- (१) अनन्तवृत्ति अनुप्रेक्षा—सब परस्पर अनादि है ।
- (२) विपरिणामानुप्रेक्षा—सब पण्य परिणामहीन हैं ।
- (३) अनुमानुप्रेक्षा—मत्सर व सब समय अनुभव है ।
- (४) अनायासप्रस्था—आसन्न व धन के हेतु हैं ।

गुणध्यान व त्रिगुणात्मक स्वभाव का अवगाहन और भावना अपेक्षित है यह उसमें और अनुप्रेक्षाओं से प्राप्त होता है ।

मन्त्रज्ञान की भावनाओं व धर्म तथा गुणध्यान की अनुप्रेक्षाओं के वर्गीकरण आगमवालीन है । उत्तरवर्ती साहित्य में भी वर्गीकरण और प्राप्त होते हैं । एक बारह भावनाओं का तथा दूसरा चार भावनाओं का । इन दोनों वर्गीकरणों की सो-हू भावनाओं का प्रकीर्णन तो आगमों में भी मिलता है किन्तु उनका वर्गीकरण एवं उत्तरवाच्य में ही हुआ है । विज्ञान की दूसरी गणना में आचार्य कुन्नु ने बारह अवस्थाओं की रचना की । जगत् बारह भावनाओं का वर्गीकरण किया गया है जिन सबप्रथम ही मानना चाहिए । वरुण प्रकार हैं १ —

- | | |
|------------|--------------|
| (१) अनित्य | (७) अनादि |
| (२) अगण | (८) आसन्न |
| (३) अकल | (९) मत्सर |
| (४) अनायास | (१०) निजरा |
| (५) मत्सर | (११) धर्म |
| (६) लज्जा | (१२) आधिपत्य |

बारह भावनाओं का वर्गीकरण मन्त्रप्रथम उपाख्याति में किया था । वरुण प्रकार हैं १ —

- (१) मनो
- (२) प्रमाद
- (३) आरुण्य
- (४) माध्यम्य

बारह भावनाओं व वर्गीकरण में उत्तरवर्ती साहित्य में प्रथम है । उपाख्याति में तत्त्वापगुण और प्रमा

१ बारह अनुप्रेक्षाएँ २

अद्वयभस्तरणमेगसमण्यसत्तारलोगमनुविष्ट ।

आतससवरणि-प्ररधम्य शोहि च चित्ते-मा ॥

२ तत्त्वापगुण ७।११

मन्त्रप्रमाण-बारहधर्माध्यायानि च सत्त्वगुणादि-चित्तरसमानाविनेयेषु ॥





मरुतिप्रकरण में बारह भावनाओं का जो वर्गीकरण दिया है, वे जवन वर्गीकरण ने भिन्न होते हुए परस्पर भी भिन्न हैं । तत्त्वार्थसूत्र का वर्गीकरण इस प्रकार है^१ —

| | |
|-------------|-----------------|
| (१) अनित्य | (७) आन्ध्र |
| (२) अजरण | (८) मय |
| (३) नसार | (९) निर्जरा |
| (४) एतत्त्व | (१०) लोक |
| (५) अन्यत्व | (११) बोधिदुर्लभ |
| (६) अशुचि | (१२) धर्म |

तत्त्वार्थ और प्रथमरतिप्रकरण का रचनाकाल विक्रम की नीमरी शताब्दी है । प्रथमरतिप्रकरण का भावना-विषयक वर्गीकरण इस प्रकार है^२ —

| | |
|-------------|-----------------|
| (१) अनित्य | (७) आन्ध्र |
| (२) अजरण | (८) सवर |
| (३) एतत्त्व | (९) निर्जरा |
| (४) अन्यत्व | (१०) लोक |
| (५) अशुचि | (११) धर्म |
| (६) नसार | (१२) बोधिदुर्लभ |

विक्रम की पाचवी शताब्दी में श्रीमद् वट्टकेर ने मूलाचार की रचना की । उनमें भावनाविषयक वर्गीकरण आचार्य कुन्दकुन्द की बारह अणुवेत्ता के अनुरूप है^३ —

विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में आचार्य नेमिचन्द्र हुए । उन्होंने बृहद्ब्रह्म-संग्रह में भावनाविषयक एक वर्गीकरण दिया है, जो ठीक तत्त्वार्थसूत्र के समान है ।^४ इसी शताब्दी में श्रीमत्तमोसदेव मुरि ने यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य की रचना की । उसमें बारह भावनाओं का भी वर्णन किया है । इस वर्णन में पूर्वोक्त वर्गीकरणों की अपेक्षा कुछ क्रमभेद है । वह इस प्रकार है^५ —

१ तत्त्वार्थसूत्र ६।७

अनित्याशरणसारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्त्वसंवरनिर्जरा लोकबोधिदुर्लभधर्मस्वात्पातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षा

२ प्रथमरतिप्रकरण ८।१४६, १५०

भावयितव्यमनित्यत्वमशरणत्व तत्त्वतान्यत्वे ।

अशुचित्व ससार कर्मास्त्वसवरविधिश्च ॥

निर्जरलोकविस्तर-धर्मस्वात्पाततत्त्वचिन्ताश्च ।

बोधे सुदुर्लभत्व च भावना द्वादश विशुद्धा ॥

३ मूलाचार ८।२

अद्भुतमसरणमेगत्तमणससारलोगमनुचित्त ।

आसवसवरणिज्जर धम्म बोधि च चित्तेज्जा ॥

४ बृहद्ब्रह्म संग्रह ३५ (वृत्ति)

अध्रुवाशरणसारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्त्वसवरनिर्जरलोकबोधिदुर्लभधर्मानुचिन्तनमनुप्रेक्षा.

५ यशस्तिलकचम्पू २।१०५-१५७

| | |
|------------|------------|
| (१) अनित्य | (७) आसव |
| (२) अगण | (८) सवर |
| (३) ससार | (९) लोच |
| (४) एकरस | (१०) निजरा |
| (५) अत्य | (११) घम |
| (६) अगि | (१२) बोधिल |

विनम की बारहवीं गता की म आचार्य गमक हूँ । उ २१० योग के विभिन्नपहल बारह भावना पाव महान्त कपायविजय आसन प्राणायाम आगाविचय विपाकविचय सम्पान विष्णु पन्थ कपस्थ गन्ध्यानादि पर विस्तार त प्रमाण बाला है । नानाणव इस विषय म उनका प्रसिद्ध ग्रथ है । इसम भी भावनाविषयक वर्गीकरण म प्रयत्न है । यह इस प्रकार है —

| | |
|------------|------------|
| (१) अनित्य | (७) आसव |
| (२) अगण | (८) सवर |
| (३) ससार | (९) निजरा |
| (४) एकरस | (१०) घम |
| (५) अत्य | (११) शोक |
| (६) अगि | (१२) बोधिल |

इसी गता की तृतीय स्वामी कार्तिकेय ने कार्तिकेयानुप्रगत प्रथ की रचना की । मम कवक भावनाओं का ही सविस्तार वर्णन है जो टीक सत्यायक के अनुसार है ।^१

विक्रम की दसवीं गता म आचार्य हेमचन्द्र हूँ । उ २१० योग विषय पर योगास्त्र नामक ग्रथ लिखा । इसमे भी बारह भावनाओं का एक वर्गीकरण है जो नानाणव के अनुरूप ही है ।^२

विनम की सत्रवीं गता म उपाध्याय विनयविजयजी ने गान्तमुधारण की रचना की । यन्त्रसूत्र नाम का एक उत्कृष्ट संगीत ग्रन्थ है । इसम सोलह भावनाओं पर विविध रचयिता म सार्व गतिगाए हैं । म काव्य म बारह भावनाओं का वर्गीकरण टीक नानाणव या योगास्त्र के अनुरूप ही है ।^३

१ नानाणव २

२ कार्तिकेयानुप्रस्ता २-३

अद्वयशरणागमिणा ससारामेगमणमनुत्त ।
आसव सवर नामा निजर-लोद्यानुपेक्षा ॥
इय जागिऊन मावह दुल्ल पम्मान भावना निच ।
मय वय काय मुढी एदा दस दोय गमिणा ह ॥

३ योगास्त्र ४।५५ ५६

सा ह्यानिममत्तेन तत्कते भावना श्रयन् ।
अनित्यतामगण भवमेकरसमयताम ॥
अगीचमाश्रयविधि सवर कमनिजरास ।
धमस्वान्पातता लोक द्वाङ्गी बोधिभावनाम ॥

४ गान्तमुधारण १।७ ८ (श्लोक)

अनित्यनागरणते भवमेकरसमयताम ।
अगीचमासव धामन ! सवर परिभावय ॥





विष्णु की इसकीसवी शताब्दी में आचार्यश्री तुलसी ने योगविषयक "मनोनुशासन" ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसमें बारह भावनाओं का वर्गीकरण है जो ठीक "ग्रन्थमुद्धारम्" में मिलता है।^३

इस विषय पर आज तक जो ग्रन्थ लिखे गए उनमें से कुछ एक वा ऊपर उल्लेख किया गया है। प्रश्न होता है—बारह भावनाओं में यह क्रमभेद क्यों है? इसका स्पष्ट और विशिष्ट समाधान तो नहीं मिल पाता, किन्तु उतना अवश्य कहा जा सकता है कि आगमों में बारह भावनाओं का वर्गीकरण न होता ही इसका मूल कारण है। बारह भावनाओं का जो प्रकीर्ण रूप आगमों में मिला, उसे उत्तरवर्ती आचार्यों ने अपनी स्वतन्त्र दृष्टि में वर्गीकृत किया। आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वाति, नोमदेव सूरि, शुभचन्द्र आदि ने जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया, उनके बीच नौकड़ों वषों का अन्तर है। मसबत उत्तरवर्ती आचार्यों ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिए गए वर्गीकरणों को न देखा हो अथवा आगमोक्त न होने में अपने स्वतन्त्र वर्गीकरण किए हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द और श्रीमद्वट्टकेर में लगभग तीन शताब्दी का अन्तर होते हुए भी भावनाओं के वर्गीकरण में एकरूपता है। आचार्य कुन्दकुन्द जैन परम्परा में एक सुप्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। भावनाविषयक वर्गीकरण भी सर्वप्रथम उन्होंने ही किया है। अतः मसबत है कि श्रीमद्वट्टकेर ने मूलाचार में भावनाविषयक वर्गीकरण के लिए कुन्दकुन्द का ही प्रमाण माना हो।

उमास्वाति, नेमिचन्द्र और स्वामीकानिषेय में काल का व्यवधान अधिक होते हुए भी भावनाओं के वर्गीकरणों में समरूपता है। तत्त्वार्थसूत्र के अध्ययन-अध्यापन का क्रम जैन परम्परा में बहुत प्राचीन है। जैनदर्शन में प्रवेश पाने के लिए इसे द्वार के रूप में माना जाता है। यद्यपि आचार्य नेमिचन्द्र और स्वामी कानिषेय ने अपने ग्रन्थों में कहीं भी तत्त्वार्थसूत्र या उमास्वाति का उल्लेख नहीं किया है किन्तु सम्भव है, उन्होंने इसका आधार तत्त्वार्थसूत्र में ही लिया हो। इनमें असंगति भी नहीं लगती क्योंकि आचार्य कुन्दकुन्द की "बारह अणुवेद्य" उतनी प्रसिद्ध नहीं है जितना कि तत्त्वार्थसूत्र। और यह पहले कहा जा चुका है कि उमास्वाति और नेमिचन्द्र व कानिषेय में लगभग जाठनी शताब्दियों का कालान्तर था। प्रश्न होता है कि उमास्वाति ने ही अपने दो ग्रन्थों में दो प्रकार के वर्गीकरण क्यों किए? इसके समाधान में तो यही कहना अधिक उपयुक्त होगा कि तत्त्वार्थ की रचना सूनरूप में है और प्रणमरति प्रकरण पद्यात्मक है। सम्भव है प्रणमरति प्रकरण में छन्दोभंग के मय में उन्होंने क्रमभेद किया हो। तत्त्वार्थसूत्र की रचना पहले हो चुकी थी अतः बाद में उसमें परिवर्तन संभव न हुआ हो। परिवर्तन का अधिक आग्रह भी नहीं रहा होगा क्योंकि यह पहले स्पष्ट हो चुका कि बारह भावनाओं का कोई एक निश्चित वर्गीकरण आगमों में नहीं मिलता है। उत्तरवर्ती साहित्य में तो केवल उसका प्रकीर्ण रूप ही मंगूहीत है।

अचार्य शुभचन्द्र, आचार्य हेमचन्द्र, उपाध्याय विनयविजय और आचार्य तुलसी द्वारा किए गए वर्गीकरणों में एकरूपता है। इसका कारण यह हो सकता है कि आचार्य हेमचन्द्र का योगशास्त्र आचार्य शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव में बहुत प्रभावित है। ज्ञानार्णव का अध्ययन करने के पश्चात् यदि योगशास्त्र पढ़ा जाए तो यह महसूस होगा कि सम्पूर्ण योगशास्त्र पर ज्ञानार्णव छाया हुआ है। ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ शब्दानाम्य और उचितसाम्य के साथ-साथ उदाहरण और अनुप्रास में भी नाम्य है। श्रीगोपालदाम पटेल ने लिखा है—“दोनों ग्रन्थों का विषय निरूपण देखते हुए ऐसा ही लगता है कि हेमाचार्य का योगशास्त्र बहुत व्यवस्थित और सक्षिप्त है। जबकि ज्ञानार्णव नाम्नाग्रय की अपेक्षा उपदेश-ग्रन्थ अधिक है और इस कारण उसका निरूपण जरा शिथिल है। अर्थात् ज्ञानार्णव को ही अधिक व्यवस्थित

कर्मणो निर्जरा धर्मसुकृता लोकपद्वतिम् ।

बोधिदुर्लभतामेता भावयन् मुच्यसे भवात् ॥

३ मनोनुशासन ३।२२

अनित्याशरणभवेकत्वान्यत्वाशौचाश्रयसवरनिर्जराधर्मलोकसत्त्वानबोधिदुर्लभता ।

और शिक्षण करके योगशास्त्र रचा गया होगा ऐसा जान पड़ता है।^१

इस अभिमान को और दृढ़ करते हुए श्री यन्त्र ने अपने उद्गीतघात^२ में लिखा है—

हमचन्द्राचाय क अ य शास्त्राय श्रया क विषय म भी उनक समग्र म स्तुव आशेष विगमय वि हनेमें तम्हारा गया क्या ?^३ म आशेष वा जबाब उहान प्रमाणमाममा क प्रारम्भ म इय प्रकार दिया है— पाणिनि विमल कणाक्षपात्राणि अक्षापौ न जव अपने व्याकरणाणि सूत्र लिख तब उसके पत्र उम उस विषय क दूसरे सूत्र थे ही। तो फिर उनका भा तम विमलिंग उन सूत्रा क कर्त्ता नहूत हा ? वस्तुस्थिति ही ऐसी है कि ये सभी विद्याएं अनानि हैं पत्र उनका श्लेष किया जाता है या विस्तार किया जाता है। इय अपेक्षा स वे नई-नई होती हैं और तब उन लोग का उनका कर्त्ता क जाना है।^४ इय उत्तर से यह भी भाति प्रमाणित होता है कि उनके कुछ ग्रन्थ पूर्वग्रन्थों क मुख्यवस्तुन सक्षप विस्तार रूप है और अन्य क बाई बाप नया समझते। अत योगशास्त्र को भी जानाजब वा सक्षेपीकरण या अङ्गुकरण कहा जाय तो कोई आश्चर्य नही होगा। श्रयमाय के साय ही भावनाविषय वर्गीकरण म भा साम्य सम्भव है।

आचार्य हैमचन्द्र का उल्लेख अन परम्परा क दिग्गज विद्वानों की कोटि म होता है। दान पाय व्याकरण का नाम्य आनि किमि न विषय म उनका स्थानी का अस्मिन् और अप्रतिहत प्रभाव मिलता है। श्री प्रभाव के कारण सम्भव है उपाध्यय विनयविषयको न अपने भावनाविषय वर्गीकरण म उनका अनुसरण किया हो।

उपाध्याय विनयविषयकी द्वारा प्रणीत या तमुद्यारत सहस्र भाषा का समग्र ग्रन्थ नाम है। श्रमण परम्परा म उनक क कारण और पुनरावृत्त का म अन्तः प्रम है। अधिकांश इस कण्टक करते हैं। इसका सह स्वाध्याय आत्मश्रवण कलि अर्थन प्रर होता है। म का य का अर्थविषय प्रचलन होने क कारण ही मनानु शासन म भावनाविषय वर्गीकरण के लिए आचार्य की तुलना ने मका आधार लिया हा ता बाई आश्चर्य नहीं। मनानुशासन योगविषय सय प्रणीत ग्रन्थ है। अन मय पश्चात भावना विषय अय वर्गीकरण उपर्य नहीं होता।

बाहर भावना के वर्गीकरण म प्रमभ होने हुए भी आर्योक्ति स उनम किसी प्रकार का भ्रम नहीं है। जामा म उनका प्रणीत रूप इस प्रकार है—

अनित्य भावना

धीर दुःख का गहूत भर भा प्रमा नहीं करना चाहिए। अवस्था कीये जा रही है। जीवन चला जा रहा है। रानिया भी जा रहा है। मनुष्य क भोग भा नित्य नहीं है। वे मनुष्य का प्राप्त कर उस वत ही छोड़ देते हैं अन क्षीण पत्र वात सक्ष का पक्षी।^५

१ योगशास्त्र (गुजराती) का उद्गीतघात पं० ४०।

२ योगशास्त्र (गुजराती) का उद्गीतघात पृ० ७।

३ प्रमाणसीमाता

पाणिनि विमल-कणाक्षपात्रादिभिर्यो विषय कानि विनीयानि च व्याकरणानिद्विमुत्रापीयेदपि पयनुपुदयः । अनारय पत्रता पिता श्लेषविस्तारविषयस्य नवनवीनवर्ति तत्तत्काले च उच्यते ।

४ आचार्य १।२।१।१० १२

इच्छेवं समुद्रं अरो विहाराए । अतरे च लज्जु इम सपहाण धारे मुहुत्तमवि गोपमायए । अरो अच्छेद जोरवण म । उत्तराभ्ययन १३ ३१

अच्छेद नामो मूर्तिन राइओ न यावि भोगा पुरित्ताय निरुवा ।

उविच भोगा पुरिं चयत्त दुम अहा पीणकस म पक्षी ॥



अशरण भावना

सगे-मद्यन्धी श्राण नहीं है । जब मैं अपने द्वारा दिए गए ज्यों में भेदा जाना हूँ तब माता, पिता, पुत्र, दत्त, भ्राता, पत्नी और औरस पुत्र ये सभी मेरी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते ।^१

संसार भावना

इन जन्म-मरण के चक्र में मुग्न नहीं है । मैं सभी जन्मों में दुःखमय भेदा या अनुभव किया है । तभी निमित्त मात्र भी मुग्न नहीं है ।^२

एकत्व भावना

आदमी बनेला जन्मता है और अन्त्या मरता है । उसकी भक्षा विनाश, और वेदना भी अश्रितान नहीं है । मित्रता, पुत्र, मित्र और दान्यव जीवित व्यक्ति के साथ जीने हैं, किन्तु वे मृत के पीछे नहीं पीछे । पुत्र जन्म पिता को बड़े दुःख के साथ क्षमदान ले जाते हैं और इसी प्रकार पिता भी अपने पुत्रों को और दान्यों को क्षमदान ले जाता है ।^३

अन्यत्व भावना

काम-भोग मुझ में भिन्न है और मैं उनमें भिन्न हूँ । पराई मुझमें भिन्न है और मैं उनमें भिन्न हूँ ।^४

अशीच भावना

यह शरीर अपवित्र है, पित्त, फोड़ा, पुन्नी, देहा और विविध प्रकार के मोक्षवादी राज इस शरीर का स्वयं

१ आचाराग १।२।१।२०-२१

जैहि वा सद्धि सवमति ते वा ण एगया पियया त पुट्ठि परिहरति । मो जा ते पियगे पच्छा परिहेज्जा । नान ते तव ताणाए वा, सरणाए वा । तुमपि तेसि नाल नाणाए वा सरणाए वा ।

उत्तराध्ययन ६-३

माया पिया णुसा नाया नज्जा पुत्ता य दोरत्ता ।

नाल ते मम ताणाय तुप्पन्तस्स सकम्मुणा ॥

२ उत्तराध्ययन १६-७४

सव्वभवेसु अन्ताया वेयणा वेइया मए ।

निमेसन्तरमित्तपि ज माया नत्थि वेयणा ॥

३ सूत्रकृताग २

अन्तस्स दुक्ख अन्नो न परियाइयइ अन्नेण फड अन्नो न पडिस्सवेदेइ पत्तेय जायइ पत्तेय मरइ पत्तेयं चयइ पत्तेय उयवज्जइ पत्तेय ज्ञा पत्तेय सन्ता पत्तेय मन्ता एव विन्तू वेयणा ।

उत्तराध्ययन १८।१४-१५

दाराणि य सुया चैव मिता य तह वण्णवा । जीवन्तमणुजीवन्ति, मय नाणुव्वयन्ति य ॥

नीहरन्ति मय पुत्ता पियर परम दुक्खिया । पियरो वि तहा पुत्ते, वण्ण राय तव चरे ॥

४ सूत्रकृताग २।१।१३

पुरिसे वा एगया पुट्ठिं कामनोगे विप्पजहइ, कामनोगा वा एगया पुट्ठिं पुरिसं विप्पजहन्ति । अन्ने खलु कामनोगा अन्नो अहमसि ।

करते हैं त्रिनस सह शरीर गतिहीन और विनष्ट हो जाता है ।^१

आस्रव भावना

आस्रव कम बंधन का हेतु है । य हेतु ऊपर भा हैं नीच भी है और मध्य म भी हैं ।^२

सवर भावना

नात्रे को बन्द कर देने से जिस प्रकार ताश्रव म पानी आना रुक जाता है उसा प्रकार समभाव की साधना से सावध योग की विरति होती है । प्राण ध्व मृषाया अन्त ग्रहण मयुन परिग्रह और रात्रि भोजन से विरत जीव अनाश्रय होता है । पाच समितियो से संगित तीन शुक्तियो से गुप्त अकपाय त्रितेद्वय अगौरव (मव रहित) और नि गत्य जीव अनाश्रव होना है ।^३

निजरा भावना

ताश्रव म भरे हुए जल को उलीच उलाच कर बाहर निवा देने से जिस प्रकार महाताश्रव सूख जाता है उसी प्रकार पूव माचन कर्मों को तपस्या द्वारा निर्दोष करने पर आत्मा कममुक्त बन जाती है ।^४

लोक भावना

जो लोकर्णों है वह लोक क अद्योगों को भी जानता है उच्च भाग को भा जानता है और तियग भाग को भी जानता है ।^५

बोधिबुलभ भावना

लोगो ! क्यों नहीं जाग रह हो ! जीवन कीता जा रहा है । इस संसार म प्राणिया क किंग चार परम अग

१ उत्तराध्यायन १० १७

अरई गण्ड विमुह्या आयवा विविहा कुसति ते ।
निवडइ विडसइ ते शरीय समय भोगम । मा पमायए ॥

२ आचारंग १।५।६।११७

उडड सोता अरे सोता तिरिय सोता पिपाहिवा ।
धते सोया विववलाया जेहि संगति पासहा ॥

३ उत्तराध्यायन ३ । २ ३

पाणवहुमुसावाया अदत्तमेहुणपरिग्रहा विरओ ।
राईभोगविरओ जीवो अव^६ अणासवो ॥
पच समिओ तियुत्तो अकमाओ जिन्दिओ ।
अगारवो य निस्सत्तो जीवो हो^७ अणासवो ॥

४ उत्तराध्यायन ३।५ ६

जहा महातलायस्य सनिवड जलागवे ।
उत्तिचणाए तवणाए कमेण सोसणा भवे ॥
एव तु सजयस्सावि पावक्कमनिरासवे ।
अवकोनेससिय कम्म तवत्ता निज्जिउजइ ॥

५ आचारंग १।२।५ १२५

आयवचवत्तु लोगविपस्सु लोगस्स अहोमाग जाणइ उडड भाग जाण तिरिय भाग जाणइ ।





दुर्लभ है—मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा और समय में पराक्रम ।^१

धर्म भावना

धर्म जीवन का पाथेय है। यात्री के पाम पाथेय होने में उसकी यात्रा सुखपूर्वक सम्पन्न होती है। इसी प्रकार जिसके पास धर्म का पाथेय होता है, उसकी जीवन-यात्राएँ सुख में सम्पन्न होती हैं।^२

अनित्य, अशुचि आदि शब्दों का प्रयोग महर्षि पतञ्जलि ने भी अपने योगदर्शन में किया है।^३ वेद, पुराण और उपनिषदों में इन शब्दों का पूर्णतः अभाव है। उत्तरवर्ती ग्रंथों में इन प्रकार के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पतञ्जलि ने अपने योगदर्शन में ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है जो वैदिक साहित्य के पारिभाषिक शब्दों में भिन्न हैं और श्रमणों के पारिभाषिक शब्दों से अभिन्न हैं। इसमें यह फलित होता है कि पतञ्जलि की दृष्टि में श्रमणों की मान्यता-पद्धति प्रतिविम्बित थी। पातञ्जल योगदर्शन का रचनाकाल जैन आगमों में उत्तरवर्ती है। मौर्य साम्राज्य का अस्तित्व ई० पू० ३२२ से ई० पू० १८५ तक माना जाता है। मौर्य नग्न का अन्तिम राजा बृहद्रथ था। वह ई० पू० १८५ में अपने मेनापति पुष्यमित्र द्वारा मारा गया। महर्षि पतञ्जलि पुष्यमित्र के समकालीन थे। इस तथ्य के आधार पर उनका अस्तित्वकाल ई० पू० दूसरी शताब्दी है। उत्तराध्ययनसूत्र (जिसमें भगवान् महावीर की अन्तिम वाणी का मकलन है) इसमें पूर्ववर्ती है। अतः यह स्पष्ट होता है कि वैदिक ग्रंथों पर जैन आगम साहित्य का प्रभाव रहा है।

तत्त्वार्थसूत्र में चार भावनाओं का जो एक और वर्गीकरण मिलता है उसका आगमों में प्रकीर्ण रूप इस प्रकार है—

मैत्री भावना

मम जीव मेरे मित्र हैं। इस प्रकार सबके साथ मैत्री का चिन्तन करना मैत्री अनुप्रेक्षा है।^४

१ सूत्रकृताग १।१।२-१

सबुज्झहं किं न बुज्झहं सबोही खलु पेच्च दुल्लहा ।
नो हवणमन्ति राइओ नो सुलभ पुणरावि जीविय ॥

उत्तराध्ययन ३।१

चत्तारि परमगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो ।
माणुसत्तं सुईं सद्धा सजममि य वीरिय ॥

२ उत्तराध्ययन १।१।८-२१

अट्ठाण जो महन्तं तु अपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो दुही होइ छुहातण्हाए पीडिओ ॥
एव धम्मं अकाऊण जो गच्छइ पर भय ।
गच्छन्तो सो दुही होइ बाही-रोगेहि पीडिओ ॥
अट्ठाण जो महन्तं तु सपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो सुही होइ छुहातण्हाविवज्जिओ ॥
एव धम्मं पि काऊण जो गच्छइ पर भवं ।
गच्छन्तो सो सुही होइ अप्पकम्मे अवेयणे ॥

३ पातञ्जल योगसूत्र २।५

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु-नित्यशुचिसुखात्मरयातिरविद्या ।

४ उत्तराध्ययन ६।२

मेति भूएसु कप्पए

प्रमोद भावना

तुम्हारा आज्ञा आश्चयकारी है और आश्चयकारी है तुम्हारा भावना । उत्तम है तुम्हारा क्षमा और उत्तम है तुम्हारी मुक्ति ।^१

वारुण्य भावना

बचन से मुक्ति का प्रयत्न और चिन्तन ।^२

साध्यस्थ भावना

समयान वचना पर भी सामान्य ज्ञान शक्ति श्रेष्ठ का त्याग न कर उस स्थिति में उत्तम न जाना किन्तु साध्यता की विविधता का चिन्तन करना ।^३

मैं पि पञ्चलि न भी जाने योग्यता में चार भावनाओं का एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जो ठीक उद्देश्य वर्गीकरण में मिलता है ।^४ पञ्चलि न इस चित्तप्रसादन और निश्चय का मत मानता है ।

चार अन्य भावनाओं का एक वर्गीकरण ध्यानगतिक में उपलब्ध होता है ।^५ इनके द्वारा पञ्चाभ्यास करने पर साधक ध्यान की साधता प्राप्त कर सकता है । विकल्प की पांचवां ध्यान । मध्यम भावना में ध्यानगतिक की रचना की । इसी प्रकार का एक वर्गीकरण आदि पुराण में मिलता है ।^६ विकल्प की नवमी भावना में आचार्य विनयन में इसकी रचना की । वह इस प्रकार है—

- (१) ज्ञान भावना
- (२) वीर्य भावना
- (३) चारित्र्य भावना
- (४) वराह भावना

१ उत्तराभ्यास १।५७

अहो ते अजय साहू अहो ते साहू सद्यः ।
अहो ते उत्तमा साहो ते मुक्ति उत्तमा ॥

२ उत्तराभ्यास १।६१

तोसे य आहूँ उ पाविषाए शुद्धासु सोवागनिवैसनेसु ।
सत्यस्त सोगस्त बुधदणिजा इह त कम्पाइ धुरेकडाइ ॥

३ उत्तराभ्यास १।६३

न तुम्हें भोगे सद्गुरु बुद्धो गिद्धो सि जारसपरिणहेसु ।
मोह कथा एतित विष्णुसाओ मद्गमि शाय आयतिओनि ॥

४ पातजायोगसूत्र १।३३

मन्त्रीकश्यामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविधयाणां भावनातः चित्तप्रसादनम् ।

५ ध्यानगतिक ३

पुत्रकयम्भासो भावनाहि ज्ञानस्त जोग्ययुवेइ ।
साओ य नाण-दसण चरित वेरग जणिवाओ ॥

६ आदिपुराण २।१६५

भावनाभिरसमूहो मुनिर्ध्यानिस्थितो भवेत् ।
ज्ञानदन्निचारित्र-वराग्योपगताच्च सा ॥





ज्ञान भावना

इससे मन का धारण-अशुभ व्यापार का निरोध और शोधन होता है इस प्रकार सुस्थिर मति से तत्वातत्व के विवेकपूर्वक यह ध्यान में योगभूत होती है । आम्त्रो का अव्ययन, जिज्ञासा, पदार्थ के स्वरूप का चिन्तन, कण्ठीकरण तथा धर्मोपदेश ये सब ज्ञान भावना के प्रकार हैं ।^१

दर्शन भावना

इससे दर्शन की विबुद्धि होती है । अका, काक्षा आदि दोष दूर होते हैं । प्रगम और म्यैर्य गुणों की प्राप्ति होती है व चित्त अभ्रात होता है । सवेग, अमूढता, अगर्व, अनुकम्पा, आदि इसके प्रकार हैं ।^२

चारित्र भावना

इसमें नए कर्मों का अनादान-अग्रहण, पुराने कर्मों का निर्जरण और शुभ का ग्रहण होता है । इसमें ध्यान सुलभता में होता है । पाच समिति और तीन गुप्ति का पालन तथा परीपहो को सहना इस के प्रकार है ।^३

वैराग्य भावना

इसमें व्यक्ति जगत के स्वभाव को जान लेता है । तथा निस्मग, निर्भय और आशसारहित होकर ध्यान में सुस्थिर होता है ।^४

१ ध्यानशतक ३१

नाणे निच्चदभासो कुणइ मणो धारण विसुद्धि च ।
नाणगुणमुणियसारो तो ज्ञाइ सुनिच्चत्तमईओ ॥

आदिपुराण २१।६६

वाचनापृच्छने सानुप्रेक्षण परिवर्तनम् ।
सद्धर्मदर्शन चेति ज्ञातव्या ज्ञानभावना ॥

२ ध्यानशतक ३२

सकाइदोसरहिओ पसमथेज्जाइ गुणगणोवेओ ।
होइ असमूढमणो दसणसुद्धीए ज्ञाणमि ॥

आदिपुराण २१-६७

सवेगप्रशमस्यैर्यमसमूढत्वमस्मय । आस्तिक्यमनुकम्पेति ज्ञेया सम्यक्त्वभावना ॥

३ ध्यानशतक ३३

नवकम्मणायाण पोराणविणिज्जर सुभायाण ।
चारित्तभावणाए ज्ञाणमयत्तेण य समेइ ॥

आदिपुराण २१-६८

ईर्यादिविषया यत्ना मनोवाक्कायगुप्तय ।
परीपहसहिष्णुत्वमिति चारित्रभावना ॥

४ ध्यानशतक ३४

सुविदियजगस्सभावो निस्सगो निद्वभओ निरासो य ।
वेरगभावियमणो ज्ञाणमि सुनिच्चलो होई ॥

आदिपुराण २१-६९

विषयेष्वनभिष्वग कायतत्वानुचिन्तनम् ।
जगत्स्वभावचिन्तेति वैराग्यस्यैर्यभावना ॥

1. 2020年10月10日 星期五 11:11

2. 2020年10月10日 星期五 11:11

3. 2020年10月10日 星期五 11:11

4. 2020年10月10日 星期五 11:11

5. 2020年10月10日 星期五 11:11

6. 2020年10月10日 星期五 11:11

7. 2020年10月10日 星期五 11:11

8. 2020年10月10日 星期五 11:11

9. 2020年10月10日 星期五 11:11

10. 2020年10月10日 星期五 11:11

11. 2020年10月10日 星期五 11:11

12. 2020年10月10日 星期五 11:11

13. 2020年10月10日 星期五 11:11

14. 2020年10月10日 星期五 11:11

15. 2020年10月10日 星期五 11:11

16. 2020年10月10日 星期五 11:11

17. 2020年10月10日 星期五 11:11

18. 2020年10月10日 星期五 11:11

19. 2020年10月10日 星期五 11:11

20. 2020年10月10日 星期五 11:11

21. 2020年10月10日 星期五 11:11

2020年10月10日 星期五 11:11



उपाश्रय में कार्योन्मग्न करता है—यह पहली मन्त्र भावना है ।^१

पहला अभ्यास परिपक्व होने पर उपाश्रय में बाहर नहीं एतान्त स्थान में कार्योन्मग्न करना दूसरी मन्त्र भावना है ।^२

इस प्रकार अभ्यास का परिष्कार होने-होने जब मुनि जीगहे मूल घर में ध्यान में कार्योन्मग्न करने लगता है—यह तृतीय तीसरी, चौथी और पाचवी मन्त्र भावना है ।^३

सूत्र भावना

इसमें समय का ज्ञान होता है ।^४ मूल के पावनन (स्मरण) के अनुसार ज्ञान के मूल में ज्ञान ही जाय, इस प्रकार सूत्रा को परिचित करने का अभ्यास किया जाता है । श्रमोन्मग्न की भावना के साथ इसका उच्चारण होता है ।^५

एकत्व भावना

इसमें देह और उपकरणों में अपनी आत्मा का भिन्न रूप में भावित कर निश्चिन्ता का अभ्यास किया जाता है ।^६

बल भावना

इसमें परीपक्षों पर विजय प्राप्त की जाती है । बल का प्रकार दो होता है—प्राणीक और मानसिक ।^७ इन दोनों प्रकार के बलों द्वारा मनोबल उत्पन्न करने का अभ्यास किया जाता है, जिसमें मुनि परीपक्षों व उपकरणों के उत्पन्न होने पर भी निश्चिन्त नहीं होता ।^८

१ मनोनुशासन ७।६

रात्रौ सुप्तेषु सर्वसाधुषु भयनिद्राजयायंमुपाश्रय एव कायोत्सर्गकरण प्रथमा ॥

२ मनोनुशासन ७।७

वचचिदुपाश्रयाद् वहिस्तयाकायोत्सर्गकरण द्वितीया ॥

३ मनोनुशासन ७।८

चतुष्कूम्भ्यगृहशमशानेषु कायोत्सर्गकरण परा ॥

४ मनोनुशासन ७।९

सूत्रभावनया कालज्ञानम् ॥

५ मनोनुशासन ७।१०

सूत्रपरावर्तनानुसारेण उच्छ्वासप्राणादय सर्वे कालभेदा अवगता स्युस्तथा सूत्रपरिचय ।

६. मनोनुशासन ७।११

एकत्वभावनया देहोपकरणादिभ्यो भिन्नमात्मान भावयन् भवति निरभिप्यग ॥

७ मनोनुशासन ७।१२

बलभावनया परीपहाणा जय ॥

८ मनोनुशासन ७।१३

\ बल शारीरं मानस च ॥

९ मनोनुशासन ७।१४

तत्र मानस तथा परिवर्धित यथा परीपक्षैरुपसर्गैश्च नोत्पद्यते बाधा ॥

पर्याप्ति-योग

मुनिश्री नथमलजो (निकाय-सचिव)



जैन तत्त्व-विद्या के अनुसार हमारे जीवन के छह शक्ति-स्रोत (पर्याप्ति) और दस शक्ति-केन्द्र (प्राण) हैं।

छह शक्ति-स्रोत

- १, आहार पर्याप्ति
- २ शरीर पर्याप्ति
- ३ इन्द्रिय पर्याप्ति
- ४ श्वानोच्छ्वास पर्याप्ति
- ५ नासा पर्याप्ति
- ६ मन पर्याप्ति

दस शक्ति-केन्द्र

- | | |
|-------------------------|-----------------------|
| १ श्रोत्रेन्द्रिय प्राण | ६ मनोबल-प्राण |
| २ चक्षु इन्द्रिय प्राण | ७ वचनबल-प्राण |
| ३ श्रोत्रेन्द्रिय प्राण | ८ वायुबल-प्राण |
| ४ गन्धेन्द्रिय प्राण | ९ श्वानोच्छ्वास प्राण |
| ५ स्पर्शेन्द्रिय प्राण | १० आयुष्य प्राण |

इनमें परस्पर कार्य-कारण का भाव प्रतीत होता है। शक्ति-स्रोत कारण हैं और शक्ति-केन्द्र उनके कार्य हैं। सत्यादिस्तार की सक्षेप में लाने पर दोनों की सम्या गमान हो जाती है।

शक्ति-स्रोत

आहार पर्याप्ति
शरीर पर्याप्ति
इन्द्रिय पर्याप्ति
श्वानोच्छ्वास पर्याप्ति
नासा पर्याप्ति
मन पर्याप्ति

शक्ति-केन्द्र

आयुष्य प्राण
वायुबल-प्राण
इन्द्रिय-प्राण
श्वानोच्छ्वास-प्राण
वचनबल-प्राण
मनोबल-प्राण

ये शक्ति-स्रोत और शक्ति-केन्द्र न तो चेतन की विभु अवस्था में होते हैं और न अचेतन में होते हैं। ये चेतन और अचेतन के संयोग में उत्पन्न होते हैं। हम जितने प्राणी हैं, वे सब चेतन और अचेतन (पुद्गल) के संयोग की अवस्था में हैं। हमारे विभु चैतन्य का उदय नहीं हुआ है, इसलिए हम केवल चैतन्य की भूमिका में अवस्थित नहीं



के अनुसार कण्ठमणि ही शरीर में रक्त-ताप तथा प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष और आदि वृत्तियों को उत्पन्न करता है। यह हमारे शरीर की नियामक ग्रन्थि है। इस पर जालवरबन्ध के द्वारा हम नियंत्रण रख सकते हैं और अनेक उपयोगी रसों का स्वाद कर सकते हैं।

व्यायाम—हाथ, पैर या किसी भी अवयव को इच्छानुसार मिकोडते हैं, फैलाते हैं, उसका नाम व्यायाम है।

प्राणायाम—श्वास का सकोच और विस्तार। इसके ३ अंग हैं—(१) पूरक, (२) रेचक, (३) कुम्भक। श्वास भरने को पूरक, बाहर निकालने को रेचक और रोकने को कुम्भक कहा जाता है। श्वास बाहर रोका जाता है, उसे वहि कुम्भक और भीतर रोका जाता है, उसे अन्तःकुम्भक कहा जाता है।

प्राणायाम के अनेक प्रकार हैं किन्तु वायुगुद्धि के लिए सर्वाधिक उपयोगी और सर्वाधिक निर्दोष अनुलोम-विलोम प्राणायाम है।

अनुलोम-विलोम प्राणायाम—दाएँ हाथ के अंगूठे से दाएँ नथुने को बंद कर बाएँ नथुने से श्वास लें और बाएँ नथुने से उसका रेचन करें। दाएँ हाथ की अनामिका और कनिष्ठा इन दो उंगलियों में बाएँ नथुने को बंद कर बाएँ नथुने से श्वास लें और बाएँ नथुने से उसका रेचन करें। प्रारंभ में ऐसी ५-१० आवृत्तियाँ की जा सकती हैं, फिर धीमे-धीमे ३० तक बढ़ाई जा सकती है।

प्राणायाम की कालमात्रा इस प्रकार होती है

| | |
|--------|---------------|
| पूरक | सोलह मात्रा |
| रेचक | बत्तीस मात्रा |
| कुम्भक | आठ मात्रा |

सुकुम्भक अनुलोम-विलोम प्राणायाम—प्राणायाम की द्वितीय भूमिका में कुम्भक किया जाना चाहिए। कुम्भक का काल-मान ऊपर बताया गया है।

समूल-बन्ध अनुलोम-विलोम प्राणायाम—इस प्रक्रिया में अनुलोम-विलोम प्राणायाम के साथ मूलबन्ध और जुड़ जाता है।

सोड्डीयान अनुलोम-विलोम प्राणायाम—इस प्रक्रिया में कुम्भक और मूलबन्ध सहित अनुलोम-विलोम प्राणायाम के साथ उड्डीयानबन्ध और जुड़ जाता है।

निर्लेपता—विषयों की आसक्ति से शरीर की अशुद्धि होती है। विषय विकार के हेतु बनते हैं और विकार से कायिक दोष उत्पन्न होते हैं। अनासक्त (निर्लेप) व्यक्ति सहज भाव से कायिक दोषों से बच जाता है।

इन्द्रियशुद्धि के उपाय—१ इन्द्रियों का सम्यक्-योग २ प्रतिसलीनता।

इन्द्रियों की प्रवृत्ति के तीन प्रकार हैं—अयोग, अतियोग और योग। इन्द्रियों की सर्वथा प्रवृत्ति न करना अयोग है। उनकी मर्यादा से अधिक प्रवृत्ति करना अतियोग है। ये दोनों इन्द्रिय-दोष उत्पन्न करते हैं। इन्द्रियों की उचित प्रवृत्ति करना योग है।

इन्द्रियाँ ज्ञान के साधन हैं। वे विषयों के प्रति व्यापृत होती हैं, यह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह शक्य नहीं कि आँख हो और वह रूप या वर्ण को न देखे। यह शक्य नहीं कि कान हो और वह शब्द न सुने। यह शक्य नहीं कि घ्राण हो और उसे गन्ध की अनुभूति न हो। यह शक्य नहीं कि रसना हो और उसे रस की अनुभूति न हो। यह शक्य नहीं कि स्पर्शन हो और उसे स्पर्श की अनुभूति न हो। इन्द्रियों के योग का सबध हमारे स्वास्थ्य से है, जबकि उनके सम्यक्-योग का मबध हमारी साधना से है। सावक को आँख प्राप्त है, इसलिए वह रूप को देखता है

वाक्-शुद्धि के उपाय — १ प्रलम्ब नाद का अभ्यास, २ सत्यपरक प्रयोग ।

वाक् मनपरिष्कृत होकर ही प्रगट होती है । मन की सरलता होती है, तब वाणी शुद्ध रहती है । मन की कुटिलता होने पर वह भी अशुद्ध हो जाती है । जिस माधक का मन सरल और पवित्र होना है, उसे वाक्-मिद्वि प्राप्त होती है । वह जो कहता है, वही हो जाना है । वाणी में यह शक्ति उमकी मानसिक पवित्रता में प्राप्त होती है ।

ओ, अह, सोहम् आदि मन्त्राक्षरो का दीर्घ उच्चारण करने से मन, वाणी के साथ जुड़ जाता है । मन का योग पाकर वाणी शक्तिशाली हो जाती है । वह वायुमण्डल में तीव्र कम्पन पैदा कर देती है । उसमें अनिष्ट परमाणु टूट हो जाते हैं और इष्ट परमाणुओं का परिपार्श्व बन जाता है ।

दीर्घोच्चारण का अभ्यास दो मिनट से प्रारम्भ कर १५ मिनट तक बढ़ाना चाहिए । प्रति सप्ताह दो मिनट बढ़ाया जा सकता है । इस अभ्यास में मन को समस्याओं से मुक्त और मरल रखना आवश्यक है ।

मन की शुद्धि के उपाय

१ दृढ सकल्प

२ एकाग्र सन्निवेशन

दृढ सकल्प—हमारे मन में कामनाएँ उठनी रहती हैं । उन कामनाओं में कार्यरूप में बदलने की क्षमता होती है, इसीलिए उन्हें सकल्प कहा जाता है । समुद्र में उमियों की भाँति सकल्प हमारे मन में उत्पन्न होते हैं और विलीन हो जाते हैं । वे अस्थिर सकल्प होते हैं । उनमें हमें कोई लाभ प्राप्त नहीं होता । स्थिर सकल्प कार्यरूप में परिवर्तित हुए बिना विलीन नहीं होता । वह दीर्घकाल तक टिका रहता है । उसे भावनात्मक रूप देने—बराबर उसकी पुनरावृत्ति करने से वह रुढ बन जाता है । दृढ सकल्प में कार्यरूप में परिणत होने की क्षमता पैदा होती है । उसके द्वारा हम मन के स्वभाव को बदल सकते हैं । बुरे विचारों को छोड़ने व अच्छे विचारों की आदत डालने में दृढ सकल्प हमारी बहुत सहायता करता है ।

एकाग्रसन्निवेशन

एकाग्रता मन की विरोधावस्था नहीं है । यह उसकी किसी एक विषय में निरोधावस्था है । अनेक भागों में जाते हुए प्रवाह को एक मार्ग में मोड़ देना है । नदी का प्रवाह जब अनेक भागों में बहता है, तब वह क्षीण हो जाता है । एक प्रवाह में जो शक्ति होती है, वह विभक्त प्रवाहों में नहीं हो सकती । सूर्य की बिखरी रश्मियों में वह शक्ति नहीं होती, जो केन्द्रित किरणों में होती है । मन का प्रवाह भी एक आलम्बन की ओर निरन्तर बहता है तब उसमें अकल्पित शक्ति आ जाती है । एकाग्रता के क्षेत्र में मन की शान्ति और स्थिरता का अर्थ है चिन्तन प्रवाह को एक ही दिशा में प्रवाहित करना । मन के एकाग्र प्रवाह की अनेक पद्धतियाँ हैं । उनमें से कुछेक पद्धतियों को मैं यहाँ प्रस्तुत करना चाहूँगा ।

१ द्रष्टा की स्थिति—मन की चंचलता को रोकने का यत्न मत कीजिए । वह जहाँ जैसे जाता है, उसे देखते रहिए । उस समय दृश्य या ज्ञेयमन को ही बना लीजिए । इस प्रकार तटस्थ द्रष्टा के रूप में जागरूक रहकर आप मन का अध्ययन ही नहीं कर पाएँगे, किन्तु उस पर अपना प्रभुत्व भी स्थापित कर लेंगे ।

२ विकल्पो की उपेक्षा—आपके मन में जो विकल्प उठते हैं, उनकी उपेक्षा कीजिए, जो प्रश्न उठते हैं, उनके उत्तर मत दीजिए । जैसे प्रश्न करनेवाला व्यक्ति उपेक्षा पाकर (उत्तर न पाकर) मौन हो जाता है, वैसे ही मन भी उपेक्षा पा कर (प्रश्नों के उत्तर न पाकर) शान्त हो जाता है ।

३ अप्रयत्न—मन को स्थिर करने का बलात् प्रयत्न मत कीजिए । अप्रयत्न से मन सहज ही शान्त हो जाता है । शरीर को स्थिर और श्वास को मद कीजिए । जैसे-जैसे शरीर स्थिर और श्वास मद होगा, वैसे-वैसे मन आपन आप शान्त हो जाएगा ।

४ श्वास-योग—मन का श्वास की गति के साथ योग कीजिए । श्वास के आने-जाने के क्रम पर ध्यान

उगाध द्वात की गिनती कीजिए मन अपने आप द्वास में चैन हो जाएगा ।

५ आकृति-आत्मन्त—अपने आराध्य की आकृति का मानसिक चित्रण बनाएँ । पहले देग राग और बाह्य वातावरण के साथ उस आराध्य की आकृति की चर्चना कीजिए फिर उस मानसिक चित्र में बस दोजिए । यह चित्र बहुत स्पष्ट और प्राणवान जसा कीजिए ।

यदि प्रारम्भ में ऐसा करता व्यक्ति उसे ता दुःख आकृतियाँ पर मन को स्वायत्त कीजिए और साथ साथ मानसिक चित्रण बनाने का अभ्यास भी करते रहें ।

६ गन्ध-आत्मन्त—इस मन्त्र में मन को अनाद । मन का प्रवाह राग का गीत में प्रवाहित होकर अन्तर्विष्णु में गूँथ हो जाता है ।

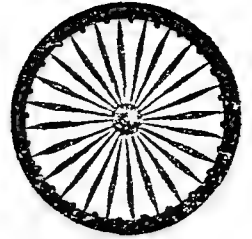
७ दृक्-दृष्टा-गन्त—इच्छा गन्त भावा में उतराने लगती है । भावा की प्रबलता का नाम ही इच्छा गन्त है । भावा को इच्छा गन्त के रूप में वर्णन का साधन है स्वन सूचना (आत्मसूचना) । मन को सूचना देने में भावा में उत्तमना आरम्भ होती है और वही दृष्टा-गन्त के रूप में परिणत हो जाती है । इच्छा-गन्त के विनाश का निरन्तर अभ्यास करने में वह दृक् हो जाता है । दृक्-दृष्टा गन्त से मन की एकाग्रता सहज ही लग जाती है ।

•



भाषा और शब्द

मुनिश्री मिश्रीमलजी “मधुकर”



मानव जाति के साम्प्रतिक विकास में भाषा का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। भाषा विचारों के आदान-प्रदान का अनावरण माध्यम है। कल्पना कीजिए, कदाचित् मनुष्य को भाषा का साधन प्राप्त न होता तो उसकी क्या स्थिति होती? न उसे वैचारिक समृद्धि उपलब्ध होती, न आज जैसा ज्ञान विज्ञान प्राप्त होता, यहाँ तक कि ममात्र-रचना भी सम्भव न होती और मानव-जीवन पशुजीवन के सदृश ही होता। अतएव अमरिग्न रूप में कहा जा सकता है कि मानवीय अस्तित्व में भाषा का स्थान अद्वितीय है। व्यक्त भाषा ने मानव को जागृत चेतना प्रदान की है।

मिह गर्जना करता है, घोड़ा हिन-हिनाता है, गाय रभाती है, कुत्ता भौंकता है, पक्षी चहचहाते हैं और इन्हीं हम श्रुतिगोचर करते हैं। अतएव गजना, रभाना आदि भी भाषा की परिधि में हैं किन्तु यह निरर्थक भाषा है, वर्णात्मक नहीं। यहाँ हम मार्थक भाषा के विषय में ही विचार करेंगे।

भाषा शब्दों से बनती है और शब्द वर्णात्मक है अतएव भाषा के तात्त्विक एवं मौलिक विचार के लिए वर्ण-विचार भी अनिवार्य है। जैसे उपाग और अग गरीर में अभिन्न हैं उसी प्रकार वर्ण और शब्द भाषा में अभिन्न हैं।

चिरन्तन काल से भारतीय दार्शनिक शब्द के विषय में विचार करते आ रहे हैं। अनेक दार्शनिकों ने शब्द-विचार में गहरे गोते लगाए हैं। शब्द क्या है? उसका मूल उपादान क्या है? वह किस प्रकार उत्पन्न या अभिव्यक्त होता है? उत्पन्न या अभिव्यक्त शब्द किस प्रकार श्रोता को कर्णगोचर होता है? इत्यादि प्रश्नों पर भारत के दर्शन-शास्त्रों में हमें गभीर विचार मिलते हैं।

शब्दविषयक सामान्यताएँ

कणाद आदि कतिपय दार्शनिक शब्द को द्रव्य न मानकर आकाश का गुण मानते हैं। सांख्यदर्शन ने आकाश का जनक अथवा आविर्भावक स्वीकार करता है। मीमांसादर्शन की सामान्यता है कि शब्द की उत्पत्ति ही नहीं होती, वह नित्य और व्यापक है। आकाश की भाँति उसकी सर्वत्र सर्वदा सत्ता है। जब व्ययजक निमित्त मिलते हैं तब वह हमारे श्रवण में जाता है, अन्यथा नहीं।

भर्तृहरि जैसे वैयाकरणों की सामान्यता के अनुसार समस्त विश्व शब्दमय है। जगत् में जो कुछ है, शब्द ही है। शब्द के अतिरिक्त किसी दूसरे पदार्थ-वाच्य की वास्तविक सत्ता नहीं है। शब्द का ही विविध अर्थों के रूप में प्रतिभाम होता है।

जैनदर्शन का अभिमत

जैनदर्शनानुसार शब्द पुद्गल द्रव्य के अन्तर्गत है। वह भाषा-वर्णों के पुद्गलों का पर्याय है। पुद्गल-द्रव्य मूर्तिक होता है अतः शब्द भी मूर्तिक है। रूप रस गंध और स्पर्श ये सभी पुद्गलधर्म उसमें विद्यमान हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है —

सद्विषयार-उज्जोओ, पहा छायाऽस्तवत्ति वा ।

वण्ण-रस गंध फासा, पुग्गलाण तु लक्खण ॥

(क) गान्धर्व का पौद्गलिकता का निषेध करने के लिए निम्नलिखित युक्तिवादी जानी हैं गान्धर्व का गुण है अतएव गान्धर्व का आधार आकाश है वह है । आकाश स्वयं स रजित है इस कारण उसका गुण गान्धर्व भी स्वयं रहित होना चाहिये । जब गान्धर्व स्वयं नहीं हो सकता तो उसे पौद्गलिक स्वीकार करना भी तर्क संगत नहीं ।

(ख) पुद्गल रूपा होता है मगर गान्धर्व रूपा नहीं है क्योंकि इसका प्रवेश सघन वस्तु में भी देखा जाता है । वह स्वयं-निरूपण अवसर के भीतर प्रवेश कर जाता है और उससे बाहर निरन्तरता है । जैसे रूपी घट दीवाल में प्रवेश नहीं कर सकता उसी प्रकार गान्धर्व यदि रूपी होता तो वह भी प्रवेश न कर पाता ।

(ग) घट वनन से पहले उसका पूररूप यतिवादि सिद्ध होता है और घट नष्ट होने के पश्चात् उसका उत्तर रूप गान्धर्वसमूह दृष्टिगोचर होता है । इसी प्रकार प्रत्येक पौद्गलिक पदार्थ का पूर्ववर्ती और परवर्ती रूप देखा जाता है । किन्तु गान्धर्व का न पूर्ववर्ती रूप उपलब्ध होता है और न परवर्ती । अतः गान्धर्व पुद्गल नहीं माना जा सकता ।

(घ) प्रत्येक पौद्गलिक पदार्थ दूसरे पौद्गलिक पदार्थ में किसी भी किसी प्रकार की प्रणाली उत्पन्न करता है । गान्धर्व पुद्गल माना तो वह भी अन्य पौद्गलिक पदार्थों में प्रणाली उत्पन्न करता किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता । इसी स्थिति में गान्धर्व का पुद्गलरूप स्वीकार करना समीचीन प्रतीत नहीं होता ।

(ङ) जन गान्धर्विकता में हत युक्तिवत् पर भगोमानि विचार किया है । उनका ध्यान है कि शब्द का आधार आकाश माना ही अनुपपन्न है । गान्धर्व का आधार तो वस्तुतः पुद्गल भाषाव्यवस्था है और उसमें स्वयं होता ही है । यह सत्य है कि गान्धर्व में यह रूप स्वयं का ही प्रत्यक्ष प्रतिभास न हो जाता तथापि इससे स्पष्ट है कि आकाश नहीं माना जा सकता । इसीलिए इति प्रत्यक्ष अत्यन्त स्पष्ट होता है । वस्तु परमाणु का सामान्यतः नहीं कर सकता फिर भी उनका सत्ता अनुमान प्रमाण के आधार पर निर्विवाद स्वीकार की जाती है । इसी प्रकार गान्धर्व का स्वयं का निगम भी अनमान के आधार पर किया जा सकता है । वायु का रज अनुकूल होता है तो दूरी पर प्रवृत्त गान्धर्व का स्पर्श कणोच्चर होता है । वायु का रज प्रतिबल हान पर समीप में वृत्त । मया गान्धर्व भास्वर मुनाई नहीं देता । इसका एक मात्र कारण यही है कि प्रतिबल वायु का एक प्रसार में प्रतिबल उपस्थित करती है जबकि अनुकूल वायु उसका मचर में सहायक होती है । गान्धर्व स्पर्श होता तो वायु उनका सचर की प्रभावित कर ही नहीं पाता ।

(च) बाहर प्रयुक्त शब्द का वस्तु में आने वाले वस्तु में भी वस्तु द्वारा वस्तु में प्रयुक्त गान्धर्व का बाहर मुनाई देना सघन वस्तु में प्रवेश करता नहीं कहा जा सकता क्योंकि यहाँ विद्यमान सूक्ष्म जिह्वे में होकर ही गान्धर्व का प्रवेश निगम होता है । इसीमें खले में जला स्पर्श मुनाई देता है वसा वद विद्याया में हाकर मुनाई नहीं देता ।

(छ) विद्यत और गान्धर्व घटन अर्थात् दृष्टिगोचर होने के कारण पौद्गलिकता से है मगर उत्पत्ति से पहले उसका पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती जान पड़ता है । अतः उत्तरवर्ती गान्धर्व सिद्ध नहीं देता । इसी प्रकार शब्द का पूर्व उत्तर पर्याय यदि दृष्टिगोचर न होता तो उस पौद्गलिकता की स्वीकार करना चाहिये ।

(ज) गान्धर्व यदि पौद्गलिकता होता तो दूसरे पदार्थों को प्रति करता वह यतिन भी समीचीन नहीं करी जा सकता । यह नियम स्पष्ट पुद्गलिकता में ही देखा जाता है । मद्य तथा रजकण जल सूक्ष्म पुद्गलिकता द्वारा पुद्गलिकता को प्रति नग करने फिर भी उनसे पौद्गलिकता अव्याहृत है । गान्धर्व सूक्ष्म हान के कारण अन्य पुद्गलिकता को प्रति नग करता है ।

शब्द की वाचक शक्ति

यस्तु चाहे चेतन हो या अचेतन शक्ति या अमूर्तिवत् उद्यम अन्य शक्तिवा विद्यमान रहती हैं । दोषों में प्रमाणों को प्रकाशित करने का नैतिक सामर्थ्य है इसी प्रकार गान्धर्व में पदार्थ का बोध करने की शक्ति स्वभावतः विद्यमान है । किन्तु यहाँ शङ्क्य यह है कि गान्धर्व का अर्थबोध शक्ति नियम या सामित नहीं है बल्कि प्रत्येक शब्द में विचार के समस्त पदार्थों का प्रतिपादन करने की शक्ति विद्यमान है । यद्यपि अन्य वस्तु वस्तु का वाचक है उसी प्रकार वस्तु का वाचक भी गान्धर्व है मज्ज कुर्सी वस्तु पुद्गलिकता का भाषा वाचक हो सकता है किन्तु मानव ने गान्धर्व



के इस वाच्य-सामर्थ्य को मन्त्र के द्वारा भीमिन कर दिया है। अतएव अर्थ नमस्त पदार्थों का वाचक होने की शक्ति से सम्बन्ध होने पर भी मानव समाज द्वारा निर्धारित मन्त्रप्रणाली के अनुसृत ही अपने वाच्य का प्रतिपादक होता है।

मन्त्र की आदव्यक्तता

अर्थ के व्यापक सामर्थ्य को यदि मन्त्र द्वारा निरूपित न किया जाय तो वह वक्ता के अनोपलब्ध निर्धारित अर्थ का प्रतिपादक न होकर श्रोता की इच्छानुसार किसी भी अर्थ का वाचक हो जाएगा और उस अवस्था में अर्थ के प्रयोग का उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा। गात्र नगवान् ही इच्छा से वक्ता कहेगा 'गो लाओ।' यदि गो गध जगत् के सभी पदार्थों का वाचक है तो श्रोता अपनी इच्छा से किसी भी पदार्थ को ले आएगा। ऐसी अव्यवस्थित दशा में भाषा का प्रयोग निरर्थक ही सिद्ध होगा। इस अव्यवस्था में वक्ता के लिए अर्थ की वाचकत्व-शक्ति मन्त्रद्वारा निर्धारित कर दी गई है। पूर्व परम्परा में जो अर्थ जिस अर्थ के वाचक रूप में रहते हैं उसी के अनुसार वह अर्थ का उद्घोषक होता है। हाँ, मन्त्र तब ही बनाए जाते हैं। उन सर्वान्तरिकता का अनुसरण करके अर्थ सर्वान्तरिक अर्थ का बोधक हो जाता है। पिछले कुछ समय में ऐसे सैकड़ों अर्थ गठे गये हैं और जो विज्ञान उन मन्त्रों से परिचित हो चुके हैं वे उन मन्त्रों के अनुसार अर्थप्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिये अंग्रेजी अर्थ Police के लिए हिन्दी भाषा में 'पुलिस अर्थ' ही व्यवहृत होता था, आज उसके स्थान पर 'आरक्षी' अर्थ का प्रयोग प्रचलित हो गया है। इसी प्रकार के बहुसंख्य दूसरे अर्थों का भी प्रचलन हुआ है।

अतएव यह कि अर्थ अपनी व्यावहारिक अर्थप्रतिपादन शक्ति और मन्त्र ने पदार्थों का वाचक होता है।

मन्त्रदृष्टि

मगर जैनदर्शन का मन्त्रार्थ-विचार इसमें भी आगे चलता है। उसमें विभिन्न दृष्टियों के आधार पर उसका सूक्ष्म विवेचन किया है। मुख्य रूप से तीन दृष्टिकोण हमारे समक्ष प्रस्तुत किये हैं। अन्तर्गत की मान्यता के अनुसार लिए वाच्य पुन्य और वचन आदि के भेद से एक ही मन्त्र का अर्थ निम्न हो जाता है।

समस्तित नम अर्थमेव मे ही अर्थमेव स्वीकार करना है, चाहे शिवादि का अर्थ हो अथवा न हो। इस मत की दृष्टि से कोई भी दो मन्त्र एकार्थक नहीं हो सकते क्योंकि उनकी व्युत्पत्ति पृथक्-पृथक् होती है। राजा नृपति और भूतपति जैसे शब्दार्थक मन्त्रों वाले मन्त्र अर्थमेव स्वीकार नहीं है। इन मन्त्रों की वक्तव्य पर ध्यान दिया जाय तो इन दृष्टिकोण की वास्तविकता सहज ही समझ में आ सकती है। उदाहरण के लिये सिंहासन आदि शब्द-चिह्नों से सुशोभित होने वाला पुन्य 'राजा' कहा जा सकता है। मानवप्रजा का पालन-पोषण करने वाला 'नृपति' और भूमि की रक्षा करने वाला 'भूतपति' कहलाता है।

तीसरा दृष्टिकोण अन्तर्गत नम कहलाता है। यह मन्त्र सूक्ष्म दृष्टिकोण है जो शिवा के भेद में ही मन्त्र के वाच्य में निहितता स्वीकार करता है। किसी व्यक्ति को तभी शिवा कहा जा सकता है जब वह शिवावृत्ति कर रहा है। तभी मुनि कहा जा सकता है जब मनन किया कर रहा हो और तभी साधु कहा जा सकता है जब स्वरूप का मार्ग कर रहा हो। शिवा करने समय वह मुनि नहीं कहा जा सकता और मनन करने समय शिवा नहीं कहा जा सकता।

अर्थ का ग्रहण -

श्रोतृद्वारा मन्त्र का ग्रहण कर्त्ता है। वक्ता द्वारा उत्प्रेषित मन्त्र-मुद्रा श्रोता के कर्णबुद्ध को जब भग्न होते हैं तब श्रोतृद्वारा मन्त्र को ग्रहण कर्त्ता है। किन्तु श्रोतृद्वारा मन्त्र ग्रहण है, अर्थ को ग्रहण करने में कर्त्ता नहीं है। अर्थ के वाच्य अर्थ की प्रतीति तो आत्मा को ही होती है।

अर्थ का संचार

वक्ता के द्वारा बोले हुए अर्थ को श्रोता किस प्रकार श्रवण करता है ? अर्थ कितनी दूर तक जा सकता है ?



गया है। यहाँ मक्षेप में उमका उल्लेख करेंगे। इसमें विदिन होगा कि तौदर्यन ता शब्दविचार विद्य के समस्त रमनो में अनूठा परिपूर्ण और वैज्ञानिक विचारधारा के अनुष्ण है। प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं—

प्रश्न—जीव स्थित-अचल भाषाद्रव्यों का ग्रहण करता है अथवा चर द्रव्यों का ?

उत्तर—स्थित द्रव्यों का ग्रहण करता है, चर द्रव्यों का नहीं।

प्रश्न—स्थित द्रव्यों को द्रव्य में क्षेत्र में यात्र में अथवा भाव में ग्रहण करता है ?

उत्तर—द्रव्य में भी, क्षेत्र में भी, यात्र में भी, भाव में भी।

प्रश्न—द्रव्य में एक प्रदेशी, द्विप्रदेशी, त्र्यम्बान प्रदेशी, अत्र्यम्बान प्रदेशी या अनन प्रदेशी द्रव्यों का ग्रहण करता है ?

उत्तर—अमर्यात प्रदेशी तब के भाषाद्रव्य मुद्धम होते हैं तात्पर्य ग्रहण नहीं किये जा सकते, अनन प्रदेशी द्रव्यों को ही जीव ग्रहण कर सकता है।

प्रश्न—आकाश के कितने प्रदेशों में अत्र्यम्बान द्रव्य ग्रहण किये जा सकते हैं ?

उत्तर—जो भाषाद्रव्य आकाश के अत्र्यम्बान प्रदेशों में अत्र्यम्बान होने हैं उन्हीं को जीव ग्रहण कर सकता है।

प्रश्न—कितने समय की स्थिति वाले द्रव्य ग्रहण किये जा सकते हैं ?

उत्तर—एक समय की, दो समयों की तथा तब कि अत्र्यम्बान समयों की स्थिति वाले द्रव्य ग्रहण किये जाते हैं।

प्रश्न—भाव में क्या वर्णवान्, रमवान्, त्र्यम्बान् और अत्र्यम्बान् भाषा-द्रव्य ग्रहण किये जाते हैं ?

उत्तर—हाँ, ग्रहण किये जाने वाले द्रव्यों में कोई एक वर्णवाले होने हैं, किमी में दो, किमी में तीन, किमी में चार और किमी में पाँचो वर्ण होते हैं। किन्तु इन सब द्रव्यों का समूह नियमन पंचमर्ग ही होता है। यही नियम रस और गद्य के सन्ध में समझना चाहिए।

हा, एक वर्ण किमी भी पुद्गल द्रव्य में नहीं होता। छोटे में छोटा पुद्गल जणू है और उसमें भी दो स्पर्श अवश्य होते हैं अतएव दो स्पर्शों वाले, तीन स्पर्शों वाले तथा चार स्पर्शों वाले भाषा-द्रव्यों को ही जीव ग्रहण करता है।

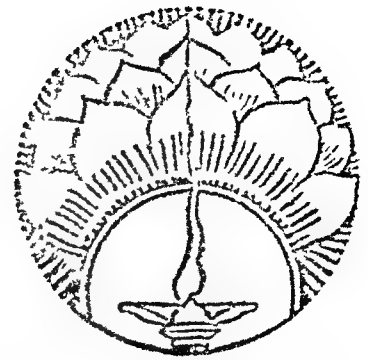
जीव उन्हीं भाषा-द्रव्यों का ग्रहण करता है जो उसके माय मृष्ट ही नहीं चर्चित एक क्षेत्रायमाड होने हैं। अभिप्राय यह है कि जिन आत्मप्रदेशों में जो भाषाद्रव्य स्थित हैं उन आत्मप्रदेशों में उन्हीं भाषाद्रव्यों का ग्रहण करना है, व्यवहित द्रव्यों का ग्रहण नहीं करता।

जब जीव में भाषण करने का सकल्प उत्पन्न होता है तब वह पूर्वोक्त प्रकार में भाषा-द्रव्यों का ग्रहण करता है। भाषाद्रव्यों का यह ग्रहण मान्तर अर्थात् समय का व्यवधान करके भी हो सकता है और निरन्तर अर्थात् लगातार भी होता है। मान्तर ग्रहण में एक समय से लेकर अमर्यात समयों तक का अन्तर पड सकता है। अगर जीव निरन्तर भाषा द्रव्यों का ग्रहण करे तो कम से कम दो समय तक और अधिक में अधिक असम्भ संख्या तक लगातार ग्रहण करता रहता है।

गृहीत भाषाद्रव्यों को जीव धारण करके नहीं रखता किन्तु जिस समय में ग्रहण करता है उसके बाद दूसरे ही समय में शब्द के रूप में परिणत करके उन्हें त्याग देता है। इस प्रकार पूर्व-पूर्व समय में ग्रहण और उत्तर-उत्तर समय में त्याग करता रहता है। ग्रहण और त्याग की इस प्रक्रिया को इस प्रकार समझा जा सकता है—

| | | | | | |
|-----------|------------|----------|-----------|---------|---------|
| प्रथम समय | द्वितीय स० | तृतीय स० | चतुर्थ स० | पंचम स० | षष्ठ स० |
| ग्रहण | ग्रहण | ग्रहण | ग्रहण | ग्रहण | ० |
| ० | निसर्ग | निसर्ग | निसर्ग | निसर्ग | निसर्ग |

ଶ୍ରୀ ୦ ୩୦, ବୋର୍ଡ଼



प्रश्न उद्भिन्न होता है कि आगम में प्ररूपित विषय सर्वज्ञप्रणीत होने में स्वतः प्रमाण है फिर उन्हें विज्ञान में प्रमाणित करने में क्या लाभ है ?



विज्ञान, सम्भवतः होने पर ही साधना के क्षेत्र में स्थान पाना है। अगमग्रन्थ होने पर वा विज्ञान ही नहीं ज्ञान भी अहितकर होना है।

उसी विषय पर दूसरी दृष्टि में विचारने में ज्ञान होता है कि साधारण प्राणि में तो जीवन के तत्त्व सीमित हैं, और न केवल आध्यात्मिक, प्रत्युत दोनों प्राण या है। जैन प्राणी के विशाल या सीमित होने दोनों ही पक्षों पर प्रमाण डालना आवश्यक होता है। जैन आगमसारा में यह तथ्य दिया नहीं था। उन्होंने साधना के विनियमों में विवेचन करने हुए ज्ञान दाना ही पक्षों के ज्ञान पर पर्याप्त प्रमाण डाला। आगम में विहित अनन्तविषयक वर्णन भी उसी ज्ञान का एक भाग है।

यह भी प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है कि आगमों में अनन्तविषय के विषय का उक्त विचार विवेचन क्यों किया गया? उसमें साधनाक्षेत्र में क्या लाभ?

उन विषय में सक्षेप में उद्धृष्ट जा सकता है कि आगम में पृथ्वी, जल, वनस्पति आदि साधारण जीवों पर मज्जा, कषाय, लेण्या, उपयोग आदि जिन पचामों द्वारा (प्राणों) में पचान डाला गया, इन्हीं प्राणों में शीघ्रिय, शीघ्रिय आदि अन्य समस्त जीवों पर भी प्रमाण डाला गया है। उन वर्णन के मुख्यतः उद्देश्य में प्राणी के विशाल-रूप और समकाल-प्राप्ति के समझने में सहायता मिलती है तथा उक्त विचार के बाद के प्रश्नों में भी सहायता मिलती है, जिससे साधना के क्षेत्र में बड़ा महत्व व उपयोगी स्थान है।

जैनानुसंगों में अनन्तविषयक विस्तृत विवरण विवेचन द्वारा ज्ञान प्राप्त करने में दिया गया है। उक्त समझ रखने हुए, उसका वैज्ञानिक विश्लेषण व समर्थन करना ही प्रस्तुत लेख का विषय है। उस प्रमाण में यह स्पष्ट है कि जैन आगमों में अनन्तविषयक जो सूट सूत्र आते हैं उनका आधुनिक विज्ञान की भाषा में 'अनन्तविज्ञान' व उक्त उप-नामों भूगविज्ञान (एम्ब्रियोलॉजी) आदि नामों द्वारा उद्घाटन कर सही है यह जैन ही नहीं जैन-जगत के लिए भी आवश्यक, रोचक, जीव-हृत्कारक तथा उपयोगी है। प्रस्तुत निबन्ध के पढ़ने पर पाठक स्वयं भी चमत्कृत हो इस सत्यता का अनुभव कर सकेंगे।

जैनदर्शन

जैनदर्शन विश्व का वर्गीकरण दो तत्वों में करता है—“जीवा चैव अजीवा य एव तेऽविवर्तिताः।” अर्थात् ज्ञान में जीव और अजीव ये दो ही मुख्य तत्व हैं। विश्व तो समस्त वस्तुओं इन्हीं दो तत्वों के मिश्रण के विविध-रूप व परिणाम है।

जीव तत्व के मुख्यतः दो भेद बड़े हैं—“ममा-ममावन्तगा तया चैव^१ धावरं चैव।” अर्थात् ममारी जीव दो प्रकार के हैं—जम और स्वावर। जो जीव चढ़ने-फिरने हैं वे जम और जो जीव स्थिर रहते हैं वे स्वावर बड़े जाते हैं। स्वावर जीवों के पाँच भेद हैं—

‘पच धावरकाया पण्यत्ता तजहा—इदे धावरकाए, धमे धावरकाए, निपे धावरकाए, नमती धावरकाए, पायावच्चे धावरकाए।’^२

पृथ्वी स्वावरकाय, जल स्वावरकाय, अग्नि स्वावरकाय, वायु-स्वावरकाय, और वनस्पति स्वावरकाय, ये स्वावरकाय के पाँच भेद हैं।

स्वावर के इन पाँच भेदों में से इस निबन्ध का क्षेत्र केवल ‘वनस्पतिकाय’ के विवेचन तक ही सीमित है।

१ उत्तराध्ययन अ० ३६ गा० २

२ स्थानाग स्थान २ उ० १ सू० ५७

३. स्थानाग स्थान ५।३६४

साधारण जन चल् फिर व बाल १ सखन रो दनस्पति मीव ३ एतक प्रति भी सन् भीत हात है । अतः सबप्रथम यस्पति की साक्षता पर यनानिक दष्टि स विचार किया जाता है ।

समीक्षता

विमानमयम व वनस्पति वी मज्जीव सिद्ध करा वात वनामिका मी सारप्रथम नाम धारणगीमन द वसु
वा आता है। उ ने गन १९२ ई० म वनस्पति म चेतना अभिव्यक्त करने वात एग यथा वा रचना वी जा पोधा
वा गति विधि वा म वरोड गुण बडे रूप म प्रियात य। साथ ही इनग समग्र वा बोध वी एक सत्त्व व स सर्वे
भाग तर हाता था। ये यश स्वयंपरी व। जन्मे पोधा वा म नविवि वा त्रिया प्रति त्रया प्रतिया स्वत अकि
होहा वी। जन्म यत्र म उज्जमे सत्त्व रूप म यद िद्ध कर ि श्याय कि वनस्पतिया और प्राणिया व समुद्रा पर नी
सात वायु गर गर अग्नि वा प्रभाव जन्म वृत्त म सत्त्व वी ही गत्ता है।

एक बार वन में परिणम वनस्थिति का मन्वन्त सिद्ध करने वाल प्रयोग किया वह था उस समय वृद्धि को देख कर वातावरणम मान्ना कि विष का प्रयोग किया । यह विष इतना नाश होता कि जिसका तिन मर जिनकी सा मात्रा मह म रवन्त स मनुष्य की तराण सुखु ना जानी । परन्तु वी उव विष क प्रयोग स पीया म मन्वन्त क स्थान पर मन्वन्त ना गया । य वानि यी न उपस्थित दन्तक क सम प्रत्यक्ष क दो । वम विचार म प मय । परन्तु वत ना जवन सिद्धांत का मन्वन्त पर अति वि वाम वा । ज अनुमान स मान त्रिप कि म विष न होय की अ य स्वादि म् माय मन्वन्त ही हा मन्वन्त है । अत जाय तथान्वित उ म जय न मन्वन्त विष को मन्वन्त समझ वा गया जीर वन्त यि कि दवावान स म्मा म्मा य विष विष न्मा मानी है । दवावा स यह विष वन वाला स्थिति म यी दन्तक क उपस्थित वा । उसने उन तम स्वाकार किया जीर विष क मन्वन्त मानी म्मे क काय ना स्वाकारणा की हू क्ता — म्म ना न्मा था कि त्रिप वा उपयाम म्म प्रयोग म्म हान मन्वन्त है म्मा य म्म हो गया वा वि विष म्मा पिका म्मा मन्वन्त म्मा मन्वन्त है म्मीति विष क मन्वन्त उमी मन्वन्त यह म्मीती हो ।

अमु न यह भा सिद्ध किया कि जीवित प्राणिमा म पाय तान वाद^१ यवतता (Irritability) ^२ स्थान
 चालता (Movement) (३) गारादिग म्ता (Organisation) (४) भाजन (Food) (५) वृधन (Gro-
 wth) (६) श्वसन (Respiration) (७) प्रजनन (Reproduction) अनुकूलन (Adaptation) (८)
 विसर्जन (Excretion) (९) मरण (Death) म्ता छमम विपय म्ता वनस्पतिया म विद्यमान हैं। य म्ता
 निर्वीर प नी म न। पाय जान है यत वनस्पति निर्जीव पम्ता त हाजर म्ताव है। आर विज्ञान म्ता म वनस्पति
 विज्ञान ज्ञावतान का प्रमुय माता वन म्ता है। म्ता वनस्पति जावा म पाय जान वाद इरराक्त विपय म्ता पर
 म्ता प्रकाश म्ता त म्ता है—

(१) सचेतनता—जागृत अवस्था का प्रथम प्रमथ स्थ है सचेतनता अर्थात् अनुभव का संचयन करने का क्षमता। जिस गुण के कारण ही जीव बाह्य वस्तु का प्रभाव का अनुभव करता है तथा उसका प्रति उत्पन्न श्रिया का प्रातिक्षिप्ता करता है। वनस्पति में भी सचेतनता का प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार पशु-पक्षी मनुष्य आदि प्राणिम में। पशुम के व पक्षी का जन्म मिला ही वह उसका स्वभाव है। अपने जन्मान्तक म जिसकी भी आवाज को वे पास बैठे क्षणिक ही स्पष्ट मना म्नी है। पक्षी का जन्म मिलने पर उनके मुखका हल फूट पुन छिन्न उठने ही कृच्छ्राव हल पक्ष हने के लिये है।

प्रकाश पाता पवन पृथ्वी की आसपास गति परिस्थिति परिवर्तन ताप स्थिति उत्तमरा का प्रभाव वन स्थिति पर विभिन्न प्रकार से पड़ता है। वनस्थितिविज्ञान में प्रकाश व प्रभाव का द्विदिशावर्तन (Heliotropism)





पानी के प्रभाव को हाइड्रोटापिज्म (Hydrotropism) और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के प्रभाव को जिओट्रोपिज्म (Geotropism) कहते हैं। प्रयोगों ने उन उत्तेजकों के प्रभावों के प्रति वनस्पति की क्रिया-प्रतिक्रिया स्पष्ट करी जा सकती हैं।

हिलियोट्रोपिज्म — प्रकाश का प्रभाव वनस्पति के अलग-अलग अंगों पर अलग-अलग प्रकार से पड़ता है। तना प्रकाश की ओर बढ़ता है, जब प्रकाश में विरुद्ध दिशा में बढ़ती है। पत्तियाँ अपने ही प्रकाश-दिशों के समकोण पर बढ़ने का यत्न करती हैं।

प्रयोग १ — पीधे लगे गमने को एक अपने कमरे में रख दिया जाय और कमरे की छिन्नी को बाहर-बाहर खोल दिया जाय तो कुछ ही दिनों में यह दिखाई देगा कि पीधे के पत्ते उसी ओर बढ़ रहे हैं जहाँ में प्रकाश आ रहा है।

प्रयोग २ — एक अकुशित चने को एक आर्कलिन द्वारा एक बातक के मार्ग में उल्टी-सी की ओर खड़ा करके लगा दिया जाय। इस बातक को उल्ट कर ऐसे क्षण में उदर कर दिया जाय किन्हीं क्षण में कुछ पत्तों द्वारा प्रकाश आता हो। इन स्थिति में चने की जड़ ऊपर की ओर प्रकाश की ओर बढ़ेगी। कुछ दिनों के पश्चात् बातक को खोल दिया जाय तो कुछ ही दिनों में यह दिखाई देगा कि पीधे के पत्ते उसी ओर बढ़ रहे हैं जहाँ में प्रकाश आ रहा है।

पीधे की इसी प्रकृति के कारण उनके चने गढ़ा भूमि में ऊपर प्रकाश की ओर व जहाँ जमीन के अंदर प्रकाश में विरुद्ध अक्षरों की दिशा में बढ़ती हैं।

हाइड्रोटापिज्म—जिधर पानी की मात्रा अधिक मिलती है, जहाँ उधर ही बढ़ जाती है। यदि किसी पीधे को एक ओर जड़ में नीचा जाय और दूसरी ओर सूखा हो रहने दिया जाय तो पीधे का बहुत बड़ा भाग सूखकर जलवाले भाग की ओर बढ़ने लगेगा।

जियोट्रोपिज्म—जिन प्रकार मनुष्य पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से परिचित होते हैं वे पृथ्वी की ओर और फिर अन्तर्गत की ओर बढ़ता है, उसी प्रकार पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के प्रभाव से परिचित होते हैं। वे अपने पैर (जड़ें) धरती की ओर और धड़ (तना) अन्तर्गत की ओर बढ़ते हैं। उदाहरण के लिए किसी पर्वत की टुकड़ों वाली भूमि पर उगे हुए चीड़, देवदार आदि के तना वृक्ष की ओर बढ़ते हैं। उदाहरण के लिए किसी पर्वत की टुकड़ों वाली भूमि पर उगे हुए चीड़, देवदार आदि के तना वृक्ष की ओर बढ़ते हैं। उदाहरण के लिए किसी पर्वत की टुकड़ों वाली भूमि पर उगे हुए चीड़, देवदार आदि के तना वृक्ष की ओर बढ़ते हैं। उदाहरण के लिए किसी पर्वत की टुकड़ों वाली भूमि पर उगे हुए चीड़, देवदार आदि के तना वृक्ष की ओर बढ़ते हैं।

जिन प्रकार मनुष्य को जल, वायु आदि की अत्यधिक व अल्पता मात्रा ज्ञात होती है, उसी प्रकार वनस्पति को भी ज्ञात होती है। पीधे अधिक जल में गड़ जाता तथा जल के अभाव में सूख जाता है। अधिक धूप में जड़ जाता तथा अधिक छाँट में ठिठुर कर ठंड बन जाता है। पत्ती नहीं, वनस्पति में आहार, भरण, मैनुन, परिवर्त, शोध, मान, माया, शोध, हर्ष शोध, निद्रा आदि वनस्पति के अभिव्यक्ति मनुष्य को पता चले हैं। इनका विशेष वर्णन अनेक प्रकारों में किया जायेगा।

स्पन्दशीलता (Movement) जीव अपनी आन्तरिक शक्ति तथा प्रेरणा से स्पन्द, हल-चलन व गति करते हैं। जीव की इन्हीं गतिविधियों को जीव-विज्ञान में गति कहा जाता है। यह गति दो प्रकार की होती है—एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना व जरीर के अंग-उपांगों में स्पन्द व संचरण होना। चर जीवों में दोनों प्रकार की गतियाँ पाई जाती हैं। साधारणतः वनस्पतियाँ अपने स्थान पर ही स्थिर रहती हैं। उनमें गति चने पत्र, पुष्प आदि की वृद्धि के रूप में या संवेदन में होने वाली हल-चलन के रूप में देखी जाती है। छूट-मूँट के पीधे की छूट ही उनमें हल-चल प्रारम्भ हो जाती है। उसकी पत्तियाँ मट जाती हैं व टहनियाँ मुक्त होती हैं। मृगमृगों फल मदा मृग की ओर मुँह किए रहता है और मृग के दूधने के माय-माय अपना मुँह भी घुमाना रहता है। जलिली की जलियाँ मृगमृग के

समय स्वतः बदल जाती है और सूर्योपस्थिति पर पुनः स्थिर उठती हैं। सनदूष और बीमस-प्लाज्म-दूष व पीथे अपन फूलों पर बीट पतंगों के बन्त हो उड़ें अपने नागवर्ण में बांध बैठते हैं। 'सब प्रकार जिया की पुर्तों इतनी चामत्कारिक होती है कि एक सचित्र न पतागम ही खेच खत्म हो जाती है।'

धारीरिक् गठन (Organisation)—जीवधारिया के शरीर का गठन किसी विधि व निश्चिन आकार प्रकार और रूप रंग का होता है। एवं ही जानि व जाव जंतु रूप व आकार में एक से होते हैं। निर्जीव वस्तुओं में यह बात नहीं होती है। उदाहरणार्थ निर्जीव व जिव वायन की लाजिय। वह किसी भी आकार प्रकार रूप रंग का व छाया प्रकाश सक्तता है परन्तु सजीव कुत्ता न तो चाता व बराबर बसा ही और न पीथी के बराबर छोटा हो हा सक्ता है। साथ ही कुत्ता व शरीर का गठन व आकृति एक ही व अर्थ प्राणिया से भिन्न होता है। इसा प्रसार वनस्पतियों भी अपना निश्चिन प्रकार शारीरिक् गठन रूप व आकार रखती हैं अथवा एक जाति का वनस्पति का रूप वस्तु फल फूल आदि का गठन सक्ता होता है।

भोजन और उसका स्वीकरण (Food and its assimilation)—प्रत्येक जाव शारीरिक् गति, वडि व क्षतिपूर्ति व जिव भोजन परना है। भक्षित पदार्थों को शारीरिक् सत्वा के रूप में परिणमा कर उसे शरीर का अंग घना लन की गिया का स्वीकरण या अंगीकरण कहते हैं। यह जिया जीवधारी में ही पाई जाती है, जन्म वस्तु में नहीं। वनस्पति में यह जिया प्रत्यक्ष नहीं मिलती है। वह मिट्टा पानी पत्ता आदि स भोजन ग्रहण कर गति प्राप्त करनी व भ्रमा को पुष्ट करती है। यही न ही अर्थ प्राणिया के समान वनस्पतियों में दुग्धहारी पिरामिवाहारी मागाशरीर आदि कई प्रकार की होती हैं। इसका विशेष धनन आहार के प्रकार प्रकरण में भोजन को मिलेगा।

प्रवृद्ध (Growth)—जिवित पदार्थों का शरीर में वडि होती है। पशु पक्षी आदि जीवा के वस्त्रे वडकर बड हात है। यह वडि आंतरिक होती है। इस वडि में समय आकार व आयतन को अधिकतम सीमा निश्चित होती है। यह गुण जन्म पदार्थों में नहीं पाया जाता है। वनजोवित प्राणियों में ही पाया जाता है। वनस्पतियों में भी यह गुण विद्यमान है। वडवडा का एक न ही बा बा अंग आंतरिक वडि से बन्कर विचार वृद्ध वन जाता है। उसने फल फूल पत्ता आदि निश्चित सीमा तक ही बढ़ते हैं। उसका वड वरकर न तो जीवा जिव वडते ही होते हैं और न पठ जैसे मारे हा।

श्वासन (Respiration)—जननगम व समान विज्ञान की भाषा मायता है कि विश्व का समस्त सजीव प्राणियों में श्वसन जिया विद्यमान है। 'सब विषय में समानि। का वचन है कि जीवित प्राणियों में सतत जिया चलती रहती है। इस जिया के लिए गति का आवश्यकता होती है। जीवा का इन गति की प्राप्ति उनके द्वारा ग्रहण किए आहार से उत्पन्न आवश्यकताएं होती हैं। आन्तरीकरण व परिणामस्वरूप वायन गन्-आवसाज बनती है। यह एवं विषय गम है जिस शरीर के बाहर निराकता अव्यावश्यक है। जीवित र न का जिव आस्वाजन प्राप्त करना व इसमें उत्पन्न कावनाश आकाशिक यादर निराकता निराक आवश्यक है। प्राणी हवा से आन्तरीजन प्राप्त करी के जिव श्वास लेता है और उ छवास का रूप में वायन हवा आस्वाजन शरीर से बाहर फेंकता है। जीव विज्ञान शास्त्र में इसी श्वासी-छवास प्रक्रिया को श्वसन कहा जाता है। इस श्वासा में यह जिया श्वसन-मस्थान (फेफड़े मरुपडे आदि) द्वारा होती है और वनस्पति में पत्ता आदि द्वारा होती है। हवा या जल के अभाव में अर्थ प्राणियों के समान वनस्पति में भी श्वसनक्रिया में अवरोध उत्पन्न होने पर क्षुब्ध कर घर जाती है। वनस्पति में समान जिया होती है इसे निम्नांकित प्रयोगों से देखा जा सकता है।

प्रयोग १—काच का एक जार में बाई पीठा रखिये। उसे जिला बने जेन्धार में दलित। जेन्धार के अन्तर एक काच के गिलास में जून या साफ पानी भर कर रख दीजिए। जेन्धार को बाने कच्चे से ढककर रात भर पना रहन दीजिए। प्रातः जून का पानी को हिन्कर देखिये तो वह अधिया होगा। इसके दूधिया होने का कारण पीथे





के उच्छ्वाम द्वारा छोटी गई कार्बन-डाई-आक्साइड गैस ही है।

प्रयोग २ — जीधे की चौड़े मुँह वाली बानल में थोड़े से अक्रुशित चने भरकर आठ उस प्रकार बंद कर दीजिये कि हवा उसमें न जा सके। उसे अन्यत्र रख दीजिये। उसी प्रकार की दूसरी बानल में कुछ अक्रुशित चनों को पानी में डबालने के बाद भरकर उसी प्रकार रख दीजिये। दूसरे दिन पहली बानल तो गोलकर उसमें जलना हुआ पलीता छोड़िये। पलीता तुरन्त बुझ जायेगा। दूसरी बानल में भी ऐसा ही कीजिये। उसमें पलीता जलना रहेगा। इसका कारण यह है कि पहली बानल में जो अक्रुशित चने थे, वे जीवित थे। जब उनकी श्वामोच्छ्वाम क्रिया द्वारा कार्बन-डाई-आक्साइड गैस उत्पन्न हुई और डी की गैस की विद्यमानता ने उसमें पलीता बुझ गया। दूसरी बानल में जो अक्रुशित चने थे वे उनाते जाने में मृत हो गये थे। इसलिए उनमें श्वामोच्छ्वाम नहीं हुआ और कार्बन-डाई-आक्साइड गैस पैदा नहीं हुई। इसीलिए पलीता जलता रहा। इनसे स्पष्ट होता है कि जीवित पौधों में श्वामोच्छ्वाम क्रिया होती है, मृत में नहीं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जैनागमों में वनस्पति का मृत या निर्जीव हो जाना वनशायन है जो जीव-विज्ञान विषयक उपर्युक्त प्रयोगों से प्रत्यक्ष प्रमाणित होता है।

उत्पादन या प्रजनन (Reproduction) जीवधारियों में अपनी जाति को नयायी रखने के लिए प्रजनन की शक्ति होती है। पक्षी अंडे देकर तथा पशु अपनी ही आश्रित-प्रकृति के बच्चे पैदा करके अपनी जाति की वंश-परम्परा को बनाये रखते हैं। इसी प्रकार वनस्पति भी अपने बीजों से अपने ही समान नये पौधों को जन्म देकर अपनी वंश-परम्परा को बनाये रखती है। इतना ही नहीं, अन्य प्राणियों के समान उनमें संभोग व गर्भाधान भी होता है। आज इस विषय का ज्ञान इतना अधिक विस्तृत हो गया है कि वनस्पति-विज्ञान में भ्रूण-विज्ञान नाम एक नई शाखा ही खुल गई है।

अनुकूलन (Adaptation) जीवधारियों में अपने आपका परिस्थिति के अनुकूल ढालने की अनुपम क्षमता होती है। घाम में रहनेवाले जन्तुओं का रंग हरा या उसी घाम के रंग का तथा मिट्टी में रहने वाले जन्तुओं का रंग मटमैला या उसी मिट्टी के रंग का होता है, जिससे वे जंगु अपने का शत्रुओं में छिपाकर जीवा निर्वाह कर सकें। गिरगिट तो प्रकृति के अनुरूप रंग बदलने में विद्वान्त ही है। पौधों में भी यह अनुकूलन क्रिया होती है। रेगिस्तान के पौधों की पत्तियाँ मजल स्थानों के पौधों की जपेक्षा छोटी होती हैं जिनसे उनके द्वारा भाप वनपर कम पानी उठे और वे कम पानी में जीवन-यापन कर सकें।

विसर्जन (Excretion) जीवों की शारीरिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप यूरिया, यूरिक अम्ल, कार्बन-डाई-आक्साइड आदि अनेक दूषित व मल पदार्थ बनते हैं। इनको शरीर में बाहर निकालने की क्रिया को विसर्जन या नीहार कहा जाता है। पशु-पक्षियों में यह क्रिया गुदो, त्वचा, फेफड़ों, आँतों आदि द्वारा होती है। पौधों में यह क्रिया पत्तियों द्वारा श्वसन, स्वेदन व सड़ने के रूप में होती है।

मृत्यु (Death) जीवित पदार्थ कुछ समय तक तीव्र वृद्धि करते हैं। फिर वृद्धि धीमी पड़ जाती या रुक जाती है और अन्त में वे मर जाते हैं। यहाँ मर जाने का अर्थ है जीवन-क्रियाओं का रुकने के लिए बंद हो जाना। जीवों की अविकृतम आयु निश्चित होती है। वनस्पति भी जन्म लेती, बढ़ती व जीवन-क्रिया बन्द हो जाने पर मुरझाकर मर जाती है।

सजीवता-निर्देशक उपर्युक्त लक्षण—चेतनता, स्वदनशीलता शरीर निर्माण, भोजन, श्वसन, प्रजनन, अनुकूलन, विसर्जन और मरण-केवल जीव-धारियों में ही पाये जाते हैं। निर्जीव पदार्थों में इनमें से एक भी नहीं पाया जाता है। इनमें केवल एक गुण या लक्षण की उपलब्धता या अभिव्यक्ति ही सजीवता का ज्वलन्त प्रमाण होता है। उपर्युक्त प्रमाणों से यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि वनस्पति में सजीवता-प्रदर्शक उक्त सभी लक्षण या गुण विद्यमान हैं। अतः वनस्पति की सजीवता में सन्देह की स्थान नहीं रह जाता है।

जैनदर्शन की समानता — जैन आगमों में वनस्पतिविषयक विभिन्न वर्गीकरणों द्वारा जो वर्णन आया

तमि श भने । 'गीयणवद् वज्रतोद्गो णत्ता'गो ? चत्तारि वज्रताआ णत्ताश्चा तत्र । आहारपज्जा
सरीरपज्जतो इदियवज्रतो आणपाणवज्रतो । — 'गीवामिमम

उपयुक्त वस्तुनिष्ठविषयक अनुसंधानों में आता है। एवं वैज्ञानिक विवेचन से सुलभतापूर्वक न पयन से पयन स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि वस्तुनिष्ठता सजीव सिद्ध करने वाले जा। तथ्य विनानुगत में ही वपण। स प्रतीति मामने आता है। वस्तु ही जन भास्य। मयून ही विद्यमाना है। जनानुसार उनसे गम्यता वप पुनः परिचित थे।

ब्रह्मस्मृतिप्रदीपः । पण्डितः । तत्र । मुमुक्षुर्ब्रह्मसंज्ञाया यदावदगच्छति ।

अथात् वास्पति काय व न। अद है गून्म वनस्पति काय धात्वर उन पति काय ।

— पन्तिवणा पद प्रथम

प्रत्येक शरीर जीव जड़ जड़ा जाता है या एक शरीर का श्वाभी एक ही जीव हाश्वर्षन् प्रत्येक श्वाभी का अपना शरीर पथक-पथक होता है यथा — जड़ सध-मरितवाण सितैर्याम-मान बाट्टिशवाटेटा । पतञ्जलीराण सह हाति शरारसधाया ।



जैसे अनेक मरुधर के दानों को गुट में मिलाकर उमका लट्टू बनावें। वह लट्टू एक पिण्ड रूप में रहता है। हममें मरुधरों के सब दाने पृथक्-पृथक् रहने हैं, वैसे ही वास्तव में एक ही पिण्ड रूप में रहने पर भी जो जीव अपना शरीर या व्यक्तिव पृथक्-पृथक् रखने ह वे प्रत्येकशरीरी कहलाते हैं। ये प्रत्येकशरीरी वनस्पतिस्वयं जीव अनेक प्रकार के हैं। पूरे पौधे में रहनेवाला एक जीव भी प्रत्येकशरीरी है और उसके भाग मूल, स्तम्भ, शाखा, पत्र, पुष्प व फल में वे इनके विभिन्न भागों में मयुक्त रूप में रहनेवाले भी प्रत्येकशरीरी हैं। ये मरुधरों में एक, दो, मंत्र्यात, अमंत्र्यात, अतन्त्र ही मरते हैं। एक बार स्वयं बाबू जोड़ेराजी ने एक मटरी रहित श्रीजगदीशचन्द्र घमू जी पयोगशास्त्र ने उमका समाधान चाहा कि वृक्ष के पत्ते, फल, फूल, बीज आदि में भी जलग-जलग जीव हैं या नहीं? अनुमानशास्त्र में यंत्रों के माध्यम में पत्र-पुष्प आदि में पृथक्-पृथक् जीव प्रमाणित किए थे। पौधे के अतिमूल्य पुष्प में भी अपना पृथक्-पृथक् जीव है, यह निम्नान्वित प्रयोग में सिद्ध होता है —

“एक तुरन्त के तोड़े डटल रहित मन्दे गुग्गुलु तो या अन्य किसी फूल को शायद पानी में डटल टुटकर रखिये। यात्री देर में फूल की पत्रुडियों पर शायद रंग जगह-जगह दिखाई देगा।”^१

उत्पन्न प्रयोग में स्पष्ट प्रकट होता है कि यदि फूल में अपना पृथक् जीव न होता तो वह पौधे में टूटने पर मृत हो जाता होता और शायद रंग का जलान न कर सकता। फूल ही नहीं प्रत्येक बीज भी मज्जीव होता है। कहा भी है —

जोनिभूष दीए जीवो वक्रमंड सो व अन्तो ना ।

जीवि व मूले जीवो, सो वि हु पत्ते पटमयाए ॥ —पन्तवणा प्रथम पद सूत्र १४

अर्थात् जोनिभूत बीज ही उत्पन्न होते हैं। जो बीज छेदन-भेदन करने व भूने जाने में निर्जीव हो गये हैं वे उत्पन्न नहीं होते हैं। जो, गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा, आदि अनाज के दाने जोनिभूत बीज हैं और मचित्त(मज्जीव) हैं, जैन माधु इन जीवों को किसी प्रकार का काट या नष्ट न हो पण्डित छूते भी नहीं हैं। आधुनिक वनस्पतिविज्ञान उन्हें जीव स्वीकार करता है। छाद्य-विद्योपज्ञ डा० विगने का कथन है—‘अनाज भी एक जीविन प्राणी है और उसकी मृत्वा आदमी की तरह ही रहती चाहिये।’^२

आगे आगमकार माधारण वनस्पतिस्वयं या निगोद जीवों का वर्णन करते हुए कहते हैं . —

मुहुमा आणागिष्मा चक्रुष्म न ने एति ।

एगम्स वोण्ड निण्ड व, गवेज्जा ण पपानउ मक्का । दानति मरीराड णिगांअजीवायनाण ।

—पन्तवणा, प्रथम पद

अर्थात् साधारण वनस्पतिस्वयं या निगोद के जीव इतने सूक्ष्म हैं कि वे चक्षु में अप्राप्य हैं और देखने में नहीं आते हैं। तथा बादर निगोद के भी एक, दो, तीन, मंत्र्यात व अमंत्र्यात जीवों का शरीरपिण्ड नहीं देखा जा सकता है। परन्तु अन्त जीवों का शरीरपिण्ड ही देखा जा सकता है।

जम्म मूळम्स मग्गम्स ममो म्मो पदीमउ । अणतजीवे उ ने मूले जे आवण्ण तहाविहा । माहारणमरीर-वायर-वगम्सइकाडया अणेगविहा पगत्ता, नजहा-अवए, पणए, मेवाने, लोहिणो, णिहत्तिमगाय ।

—पन्तवणा, प्रथम पद

एत्थ ण वायरवगम्सइकाडयाण पज्जत्तगाण गणा पणत्ता, उववाएण, मव्वलोए, ममुग्वाएण मव्वलोए,

—पन्तवणा, द्वितीय पद

अर्थात् जिस वारंशिता या मूल स्वध दाखा पत्ता पुण वज्र में स किसी को तात्पर दर्शा वरा से वराका गालाकार समायमाय अिद वद अनवजावधारा साधारण ववमपितकाय है । तस अवश गणक दावात आनि अनेक प्रकार हैं । बातर ववरतशिख आ समण ओक म उल न हाती है ।

उपयुक्त आगम कथन से यह स्पष्ट है कि वनस्पति मनुष्य विभव को नष्ट करने में विद्यमान है। साधारण वनस्पतिकार्य जाय जल्य व सूक्ष्म व शालाधार है तथा प्रायः पृथक् पृथक् लवण कुण्ड आदि भी वनस्पतिसम जाय हैं।

यहां प्रथम जनसंघति विषय में सबकुछ विद्यमान है जनसंघन के काम शुरू की गयी है। इस विषय में गांधीजी ने भी श्रीमत् बाबा निम्नोक्ति उद्घरण द्रष्टव्य है —

द्वितीयविनोद आफ कलिकानिया बरने अमरातर की एव विनाल सगोष्ठी में विख्यात औद्योगिक प्रगल्भ
नरदी आदिबिब सिस्म के फाइ एम० जानने में एव औद्योगिक प्रगल्भ में पड़ा है — एव आतिरिक्त में
एव औद्योगिक प्रगल्भ की बात यह अमर धारणा है कि बिब प्रगल्भ अथवा एव के अने है अथवा एव सगोष्ठी में आगम
एनी। एवमर परीक्षण के आधार पर मेरी राय है कि बिब कलिकानिया में एव है। एव एव एव एव एव
पण्य जो एव हरे एव प्रगल्भ बरती है कलिकानिया ही है।

सूक्ष्मवस्त्रप्रतिष्ठाप्य च विषय में आगमा में आया है कि उस घर जिसी भी पशुपति का मरण हुआ अन्न नीम ताल रूप प्रभाव न हो पड़ता है इसी मिद्वान्त का समथर उद्वरण पशुनीय है —

अमरीका की अनरिफ प्रयोगशालाओं द्वारा किये गये प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि प्लास्मिन्-जीवाणु अनि सूक्ष्म अणु प्रमाणों में व्यापित हैं जिनमें जलमय पदार्थों से निर्धारण है न नाग। यह जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता है न वायु की। व विना किसी धारा के अन्तर्गत पदार्थों पर रहते हैं। प्लास्मिन् 'जादुआ' पर अधिक ताप और गीन का भी कोई प्रभाव न पड़ता। यह अवातजीवी हैं। इनका भोजन कार्बोहाइड्रेट है।^१ जनावरों में इसी से मिश्रा हुआ कण सक्षम रसायन विज्ञान के जाचो का माता है। केवल विचारणीय है सो ज म मरण न होने का विषय है।

इस समयन के लिए दान म धर्मन एउ विष्णुन तथय को ध्यान म आना आया ओर व सधय है कि जनदशन निगम व गरीर व जम मरण से निगो क जाव। वा जम मरण नही मानता है किन्तु उन गरीर व आ क था विधमा रहते हुए भी उन गरीर म स्थित आन गीवा वा जम मरण निरतर बना रहता मानता है। इस दर्मनो से यदि धनानिका वा उन सुदमनय जावा क गरीर म छोड़े नजर न जाय हो ओर इसलिए उनका नाम मरण न माना हो तो नसे जागमाग को समग्रत नही हनी प्रत्युत समयन ही होता है। धनानिका गरा इन पीवा को एन ओर से अनादारी मानता ओर दूसरी ओर भास्वीय आगो मानता अनन्तन को इस मानता वा क करने बाता है कि शुधम निगो व जीन आदारी ॥

जनाममा म निक्षिपत् शुभं स्वाचारं जीवा वा सुतया प्रकुरिया जीवा मे वा जा सक्ती है । बकुरिया जीवा न विषय म धर्मानि वा कथन है वि । य बीजान् मन्त्रे छोः हुते हैं । शुभं चक य म धी मन्त्रा एवा म्माना सक्ति है । मन्त्रा म मां जगत् मन्त्री मन्त्री जनी य न । य बीजान् रश्मि र पानी म हवा म हर ज्वाह पन जमीन की गहराह तक मने हुए वा ओचित जायवरा म नवी पीया म बन्ध पाव जाते हैं । बहुत म बी म्ता तो हुराह पाव पाव गर र सक्ते हैं । यह कथन जनाममा म शुभं स्वाचार जीवा म भावे ह्य विषयन म

१ नवनीत अगस्त ६७ प २१

૨ નવનોત જન્ ૧૯૬૩ થા ૨૬ ૬૦

३ कवि शास्त्र प १२५



आशय यह है कि जीवामिगम व पन्ना सूत्र में भाधारण-निगोद वनस्पतियाय की ऐसी जातियों का उल्लेख मिलता है जो न तो चक्षुओ में दिखाई देती हैं और न श्रद्धि जिन्हें वनस्पति मानने को ही तैयार होती है उन्हें

१३ प्रा० कृषि-शास्त्र पृ० १२५



लाल वर्ण का गोमर-मेगनी खाद, पीले वर्ण का मक्कर, श्वेतवर्ण का मुपरकामफेट, हरे वर्ण का पत्तियो का खाद धनस्पति का आहार बनकर विविध वर्ण, गन्ध, रस, रास में परिणत होता है। पीछे उनी में पुष्ट तथा तुष्ट होते हैं।

वर्तमान में प्रायः सभी नगरपालिकाएँ मनुष्य के मल तथा खाद बनाती हैं और यह दुर्गन्धित खादपीछा हो दिया जाता है तो वही खाद पशुवृक्षों के पीछे के तने में कठोर व सख्त रास में, फूला में विविध वर्णों में, फलों में मट्टे, मोठे, कड़े आदि विविध रासों में स्थानान्तरित हो जाना है। नाशक यह है कि वनस्पति में आहार के पुद्गलों को विविध वर्ण, गन्ध, रस व स्वभाव में परिणमन करने की प्रवृत्ति होती है।

इसी प्रसंग में श्रीगीतम स्वामी भ० महाशय ने पूछने हैं—

कम्हा ण भते । वणम्मउत्ताड्या जाहारंति कम्हा परिणामेति ? गोयमा । मूला मूलजीवपुत्रा, पृथ्वीजीव-पडिवद्धा तम्हा आहारंति, तम्हा परिणामेति, कसा तदनीपकुडा मूल जीवपडिवद्धा तम्हा आहारंति, तम्हा परिणामेति एव जाव बीया जीवपुत्रा फलजीवपडिवद्धा तम्हा आहारंति तम्हा परिणामेति । —भगवती शतक ७ उ० ३ सू० ३

हे भगवन् ! वनस्पतिव्यापिक जीव कैसे शास्त्र कर रहे हैं ? तथा त्रिय हूँ आहार जो त्रि प्रकार परिणमन करते हैं ? भगवान् फरमाते हैं—गीतम । मूल जो मूल जीव वर्ण हुए हैं पशु पृथ्वीजीव में प्रतिवद्ध हैं इसलिए मूल (जड़) के जीव पृथ्वीजाय का आहार करने हैं और उने शरीर में परिणमाने हैं। उनी प्रायः आहार में से कुछ आहार रुन्द के जीव जाकपित करते हैं। रन्ध्र में से रन्ध्र (ताम) के जीव, रन्ध्र में से शाखा के जीव, शाखा में से प्रतिशाखा के जीव, प्रतिशाखा में से पत्ते और फूल, फूल में से फल और फल में से बीज के जीव जाकपित करते हैं और शरीर में परिणमाते हैं।^१

वनस्पति का आहार ग्रहण व उने परिणमन करने की आगम में प्रतिपादित उपर्युक्त प्रक्रिया का उद्घाटन वर्तमान में विज्ञान के प्रयोगों ने कर दिया है। वनस्पति के आहारग्रहण का विवेचन आधुनिक वनस्पतिविज्ञानवेत्ता उस प्रकार करते हैं —

“मूल रोम मिट्टी के कणों में चिपटे रहने हैं और उन कणों में मौजूद खनिज पदार्थों के पतले विलयन के सम्पर्क में आते हैं। खनिजों का विलयन अन्त रसाकर्षण द्वारा मूल रोमों के भीतर पहुँचता है। मूल रोमों की कोशिकाओं में पदार्थों के गाढ़े विलयन सदा मौजूद रहते हैं। उन कोशिकाओं के बाहर मिट्टी के खनिज पदार्थों के बहुत पतले विलयन (घाल) रहते हैं। कोशिकाओं की दीवारों पर जलप्रवेश्य भित्तियों का कार्य करना है। अन्दर का गाढ़ा विलयन बाहर के पतले विलयन की रसाकर्षण के नियमानुसार अपनी ओर खींचता है जो अन्त रसाकर्षण द्वारा कोशिकाओं के भीतर पहुँचता है। मूल रोमों की कोशिकाओं में इस पतले विलयन के पहुँच जाने से बहावा विनयन थोड़ा पतला हो जाता है। इसके पास ही अन्दर की कोशिका विलयन उसकी अपेक्षा गाढ़ा रहता है। अतः मूल रोम में पानी और पतला विलयन अन्दर की कोशिका में रसाकर्षण द्वारा चला जाता है। जब इस अन्दर की कोशिका का विलयन इसके पाम की अन्दर की दूसरी कोशिका के विलयन में पतला हो जाता है और फलस्वरूप यह विलयन अन्दरवाली दूसरी कोशिका में चला जाता है। इस प्रकार कोटेकम की एक कोशिका में दूसरी कोशिका में रसाकर्षण द्वारा पानी और पतला विलयन पहुँचता जाता है और अन्त में जाइलम नलियों में पहुँचता है। इन नलियों द्वारा फिर यह ऊपर तने और पत्तियों में पहुँचता है। इस प्रकार कोशिकाओं के अन्दर, बाहर का पानी तथा खनिज पदार्थों का पतला विलयन रसाकर्षण क्रिया द्वारा पहुँचकर तुरन्त तने की ओर आगे बढ़ता जाता है और शाखा, प्रशाखा और फूल में होता हुआ फल तक पहुँचता है।”

१ आचार्यश्री अमोलक ऋषिजीकृत अनुवाद पृ० ८६८

२ प्रा० जीवविज्ञान ।

उपपन्न कथन का तुलनात्मक अध्ययन यन् मिथ्य करता है कि वनस्पति व आहार की त्रिधा व परिणमन विषयक विवेचन में वनमान वनस्थानिनिधान व जाणमनिरूपित कथन में पूर्ण साम्य है।

वनस्पति क स्वार्थ पत्तियों का वर्णन आगम में इस प्रकार है —

त ग भन । जोवा निमात्तरमाहारैनि ? गायमा । ॥ इथा ण अणनत्तमयाद् दवाइ त्व जत्ता प तवणाण
पत्तम भात्तद्दस ए जार मत्तवणवणि आ तमा रैत । त ग भन । जोवा जमा तमात्तरैति त चित्तजि ज ना
भात्तरैति त ना चित्तजि चित्त वा त द्वाइ पत्तिमपति वा ? हुवा गायमा । त ग जवा जमात्तरैत त चित्त ज
ज ना जाव पत्तिमपति वा ।
— भयवती गतक १६ उ० ३ सुप्र ७ द

—भगवती जलक १६ उ० ३ सूत्र ७ द

हृ भगवन् । व (पथवी जल मनस्पति नायिक) ज्ञान व मा भ्रातर वरत हूँ ?

॥ गीतम् ! वेदस्य स जन्तुः स्यमानं पुष्पमात्रं आहारं करोते ॥ विष्णुः कृष्णः पतङ्गमात्रं प्रथमं आहारं करोति ॥ न प्रतुमारः समग्रं वायते सः सः आत्मश्रेयाः द्वारा आरिं हनुं करोति ॥

फिर गीतम स्वामा पूछन है—अ समवन् । क्या व जीव जा आहार करत है उनका क्या होता है जिनका आहार नहीं करत है उनका क्या ? क्या है ? क्या जिन आहारवा ना क्या होता है व आहार अमात्रमाग रूप म वा द निवृत्ते हैं और मार भाग मार इत्य रूप परिणमता है ? भगवान फरमाते हैं— गीतम । हा व जीव जिन वनाओं का आहार करत है उनका क्या करते हैं जिन वनाओं का आहार मंग करते हैं उनका क्या नहीं करत है तथा जिन आहारवा ना क्या किया है उनका मार भाग मार इत्य रूप परिणमता है और मार भाग का नीगर वा निमग्न हा जाता है ।

यही सूत्र में जाया बिजलत ग-रिग उत्तरवय है। बिजलत घा-घय अथ का टागन है। घय का अभिप्राय है जीव पदार्थ का चुनकर मलय करना। इस सूत्र का तात्पर्य यह है कि चतुस्त्रित अथन सतय में आग सभी पदार्थों का भाग्य रूप में ग्रहण करता है। घनिगु उभय व आग। योग्य पदार्थों का ही चयन कर उनका घूना या मलय करती है। आग र अथोग्य पदार्थों का चयन या मलय नहीं करती है—उन्हें छाड़ देती है। वन स्थिति का "म विलमण चयति को वनस्थितिविगपय भा स्वीकार करने हैं। उन प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि यदि मिट्टी में सोडियम और पोटैशियम दाता हो पथ गमनाय म दिन हा तब भा वनमयति मोडियम का अयण अथन हविजर भोग्य पदार्थ पाटर्गियम का ही अधिन सलय करती है।

[illegible]

प्राचीन विंग क्रान्ति म अधिक और विंग न्ति म कम आरार करती है आधुन म न्ति विद्वान इस प्रकार आया है —



—भगवतो गच्छ - ८० : सूत्र ?

[illegible]

आगम के उपायों तब जो स्वीकार करने पर मजबूरी तो प्रबल उठ सकती है, उन्हीं उपायों द्वारा गायत्री-गीतम श्रीमहाधीन प्रभु ने प्रकृत है — "एतन्मते । गिम्हायु वत्स्यतायाः नमःप्राप्ताया नमःप्राप्ता नमते । गिम्हायु वदते वत्स्यतायाः पत्निता पुत्त्रिता, पुत्त्रिता इतिप्रगरेण्यतायाः पितापि अथीव धर्मवत्तायाः उव-सोमेतायाः चिद्वृत्ति ? गोपता । गिम्हायु न वदते उन्मितायाः जीवा य पोताय य वत्स्यतायाः विद्वग्मते नमःप्राप्ता उववज्जन्ति । एव एतन्मते । गिम्हायु वदते वत्स्यतायाः पत्निता, पुत्त्रिता नाय चिद्वृत्ति ।"

—भगवती शतक ७ ए० ३ सू० २

॥ भगवन् ! जब वनस्पतिनाम के जीव शीम श्रुतु में अन्तर्गत जातार रहते हैं तब फिर क्या तन्मय है कि शीम श्रुतु में बहुत सी वनस्पति आधर फरती, फरती व हरीनिमा ग प्राप्त होकर अपनी मोक्षा मो बढाती है । हे शीम ! शीम श्रुतु में (गर्मी ही अनुकूलता के कारण) बहुत से उपायोन्मूलन जीव व पुद्गल वनस्पतिनाम रूप उपाते हैं, प्रविशता में उपाते हैं, विविध रूप में उपाते हैं, उसी कारण से शीम श्रुतु में बहुत से वनस्पतिनाम पत्र, पुष्प आदि हरीनिमायुक्त होते हैं ।”

गणम के उपर्युक्त गणन ही पुष्टि वनस्पति-विज्ञान-विशेषज्ञों द्वारा वनस्पति के आहार-मगह, प्रजनन आदि पर किए गए प्रयोगों ने प्राप्त परिणामों से होती है। उन विशेषज्ञों का ज्ञान है कि जन बर्तमान में आहार के विलयन की सुविधा व मुहमता अधिक होती है तब भी वे जब नून-ऊन पर आहार करते ही नहीं, करते भी हैं। उनमें से नितना आहार पौधों की वर्तमान आवश्यकता से अधिक होता है वह उनकी जड़ों, कन्धों व स्तब्धों में जमा हो जाता है तथा वसन्त व ग्रीष्म ऋतु में तारमान की वृद्धि में उत्पन्न ऊर्जा की मर्यादीयता ने पौधों में मज्जत व प्रजनन मन्त्रि मन्त्रि हो जाती है जिससे पौधे फलने-फूलने व हरीतिमा से प्राप्त होते हैं। उन गणन उन्हीं पूर्वमन्त्रित आहार ने पौधों को पोषण प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप पौधे के अन्य अंग भी फलने-फूलने व हरे-भरे होते हैं वन्तु ऊर्जा वन्द स्तब्ध पूर्व की अपेक्षा अधिक दुबने-पतने हो जाते हैं। इसका कारण पौधे की जड़, कन्द आदि में मन्त्रि आहार के पुद्गलों का उत्पन्न व प्रजनन क्रिया के कारण विकसित अवस्था में उत्पन्न होकर पौधे के अन्य अंगों में पोषण-रूप पन्त्रित होना ही है।

नातर्य यह है कि जैन आगम के उन कथन वा वर्तमान विज्ञान पूर्ण समंजन करता है जि ग्रीक मनु मे

गोधा क अधिर जलन मूलने व हरीतिगा म लीना गाभा बहान वा वारण उगागा म पु गरा वा चारमान व प्रजना
गविन वा गरिप हाता ३ ।

श्री प्रथम म प्र न उपस्थित ता है कि वनस्पतिविषय नीचे जाता आगर विषय म करन ? म
विषय म निम्नानि मयन १८४१ ३—

म न । रि जाति आहारिनि मन्ने आहारिनि वज्जयमात्ता आहारिनि । तावथा । आदि नि आरिणि च । रि
आहारिनि वज्जयमाणे वि आत्तमन । — योगविषय रूपम् प्रतिपत्ति

ह भगवन् । वन्यनिर्वासिक आस वया आसि म आहार कय ह ? क्या मन्त्र म जा ।र करय ह ? क्या मयमान म धातार कय ह ? मयमान कयमान ३— गीयम । वन्यनिर्वासिक श्रीय तसि (उर कय) म आगर करय ह । मय्य (तवा गाय्य प्रसाध आसि) म आगर करय ह । मया जय (जय तव भा.) म आगर करय ह ।

[illegible][illegible]

जो हस्ता म सामान्य आकार तीन प्रकार के हैं यथा—(१) प्रमाणिक (२) सामान्य
(३) जो हस्ता ३५० स्त्री हस्ता के प्रकार के हैं —

सरीरं यो वाहारो स जातु पावेन सोम माहारो ।

वशवेशाहारा पूज क-तिप्रो होइ गायत्री ॥

—तुम जमल्य गा टी ७ (जा प १ ६)

[illegible][illegible]

१ भगवती सत्र प्रथम गृह प ६४ (प डेवरदागजी वल अनुदाह का शिखी काँपर)

२. देश-प्रादेशिक ५४ ५३ १





रोमाहार—आहार की इन क्रिया में पीछे मूत्र (जड़) रोमों द्वारा जमीन में गड़ तथा गोद्विषम, कामकोविम रसित, पोशक आदि विभिन्न पदार्थों का योग मौजूद है। इस पौष्टिक पाठ्यक्रम रसियों द्वारा होने की वरक जाता है जहाँ वह पीछे के ओलाहम द्वारा उचित गये नार्बन-डाई-ऑक्साइड आदि पदार्थों का मिलता है। फिर इन द्वारा आहार की प्रक्रियाओं द्वारा तैयार किए पदार्थों का मिश्रण सामायनिक प्रक्रिया द्वारा स्टार्च, प्रोटीन आदि भोज्य सामग्री का रूप में देता है। यही भोज्य-सामग्री वनस्पति का पोषण का सफल बनती है। इस प्रकार वनस्पति रोमाहार और ओलाहार इन दोनों ही क्रियाओं से जीवन-सामग्री दुहाकर अपना जीवन-मंचालन करती है।

आगम में भोज्य पदार्थों का वर्गीकरण करने हुए कहा है—

उद्योगिकमरीग जाव मनुष्मा मचिनाहाण्डि, अचिनाहाण्डि, नोमाहाण्डि ।

—पन्नवण पद २८ उ० १ सूत्र २

औद्योगिक मरीग जाने मनुष्य पर्यंत जीव मचित, मचित और मिश्र, तीनों प्रकार का आहार करते हैं। इनमें स्पष्ट है कि औद्योगिक मरीगवाली वनस्पति भी इन तीनों प्रकार का आहार करती है। पीछे कहा द्वारा कामकोविम, कौटमियम, मादियम आदि निर्जीव विभिन्न पदार्थों का आगम करने है, यह अचिन आहार है। मिश्र आहार अचिन (निर्जीव) और मचित (मजीव) इन दोनों पदार्थों के मिश्रण में बना होता है। जड़ द्वारा किए गए ज्ञान वाले पुत्रे विरयत प्राय मिश्र आहार ही होते हैं। वनस्पति द्वारा किया जाने वाला दुग्धाहार भी उसी श्रेणी का है। वनस्पतिप्रियेपणों का कथन है कि “जिन प्रकार काय नैन, दूध आदि के दूध का आहार करने में मनुष्यों के मरीग का योग्य होता है, उसी प्रकार वनस्पतियों में भी दूध में पोषण होता है। नागियत का दूध पेठा में दही का रूप में होता है जो आहार का दूध पशु-जातकों के लिए रहता है। जिस प्रकार शाक के मरीग में जाय दूध मानवप्रियों में परिवर्तित हो जाता है ठीक उसी प्रकार यह दूध पीछों में जाय पाठ आदि में परिवर्तित हो जाता है और उनके इन भाग का पोषण और बढ़ाने करता है।” अमेरिका के कार्नेल विश्वविद्यालय के कृषिप्रियेपण ने इस पर विशेष प्रयोग किए हैं। नागियत का दूध गाजर के पीछों को दिया गया। फलस्वरूप के उद में बीसों गुन अग्रिम बढ़ गये। जब पीछे भी अमन में अग्रिम लंचे हुए। जगली चैम्बर, अग्रेजी अक्वेट में आदि के दूधों के प्रयोगों का प्रभाव भी आश्चर्यजनक देखा गया। इन दूधों में पीछों का विनाश बड़ी तीव्रता से होता है।”

मजीव प्राणियों का आहार मचिनाहा कहा जाता है। उन विषय पर प्रमाण डालने हुए आगम में कहा है—

गोममा । पुव्वभावपणदण पटुच्च एवचैव, पटुपयगभावपणवण पटुच्च तियमा एणियमरीगड आहारंति ।

— पन्नवण पद २८ उ० १

सात्वान् फामाने है—गोमन । पृथ्वी, पानी आदि स्यावरमायिक जीव पूर्वभाव अर्थात् आहार का परिणत होने के पूर्व की अपेक्षा एकैन्द्रिय में लेकर पंचेन्द्रिय तक का आहार करते हैं और वर्तमान की अपेक्षा अर्थात् पुद्गलों के आहार का परिणत होने की अपेक्षा एकैन्द्रिय का आहार करते हैं। हमने पहले में स्यावरकाय वनस्पति भी एकैन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रैन्द्रिय चतुन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय तीनों का आहार करती है।

एकैन्द्रिय के पांच स्तर हैं—पृथ्वी, पानी, वायु, पवन, वनस्पति। वनस्पति अपनी जड़ों में मजीव पृथ्वी व पानी का, पत्तों, गांजाओं आदि में उष्मा व वायु का आहार लेती है। उसी वही वनस्पति वनस्पति का भी आहार करती है। ऐसी वनस्पतिगण परापजीवी (Parasite-) वनस्पतियाँ कहलाती हैं। ये दो प्रकार की होती हैं, पूर्ण-परापजीवी व अर्ध-परापजीवी। पूर्ण-परापजीवी वनस्पति वह है जो अन्य पीछों पर उगती है और अपना पूरा का पूरा भोजन उन वनस्पतियों से ही ग्रहण करती है। ये जिन वृक्षों पर उगती हैं उनमें अपनी पत्तों जड़ें पुसा देती हैं और उनका पोषण कर अपना भोजन बनाती हैं। जमरवेर ऐसी ही पूर्ण-परापजीवी वनस्पति है। अर्ध-परापजीवी वनस्पतियाँ



मानव-भक्षी वृक्ष — “अफ्रीका महाद्वीप तथा मेडागास्कर द्वीप के मधुन जंगलों में बड़ी-बड़ी मानवभक्षी वृक्ष मिलते हैं, जो मनुष्यों और जंगली जानवरों को अपना शिकार बनाते हैं। कहा जाता है कि एक मनुष्य-भक्षी वृक्ष की ऊँचाई २५ फुट तक होती है। इस बियाल और भयानक लगने वाले वृक्ष की अनेक शाखाओं के अग्र भाग में थाली के आकार के बड़े फूल लगे रहते हैं। ये शाखाएँ १-२ फुट लंबे काटों से भरी रहती हैं।

जब भी अंदरे में कोई जानवर या मनुष्य अनावधान होकर उस वृक्ष के पान में गुजरता है तब वृक्ष की काटेदार शाखाएँ अपने शिकार को चारों ओर में घेर लेती हैं। काटे शरीर में चुभकर रून रून लेते हैं और बाहर निकल जाते हैं। तब वृक्ष की शाखाएँ निर्जीव शरीर को छोड़ देती हैं। शिकार का रून चूस लेने पर फूलों का आवरण बंद जाता है, किन्तु कई दिनों बाद वे फिर जलली हालत में आजाते हैं। इस प्रकार वृक्ष के नीचे कफालों का ढेर लग जाता है। कुछ वर्ष पूर्व साउथैल के द्वारा विज्व-भ्रमण करने वाले श्री मिथीलाल जायनवाह ने युगाण्डा के भयानक जंगल में मनुष्य-भक्षी वृक्ष की शाखाओं में फसे हुए एक बाघहमिये को ग्यब अपनी आँखों में देखा था।”

रैन हेट्टम्पट, नेपथीज, जीन्गलाबोरिया, चीनमफाई टैप, डामरा, पिचर प्लान्ट आदि अन्य मानवहारी पौधे भी बीटा का शिकार करने व उन्हें पचाने में बड़े निष्णात होते हैं।

तात्पर्य यह है कि आज में ढाई हजार वर्ष पूर्व जिस काल में विश्व के अन्य दार्शनिक व विचारक वनस्पति को सजीव मानने में ही ननु-नच करने में उस काल में जैनदर्शन में वनस्पति को न केवल अनदिग्य रूप में सजीव ही स्वीकार किया अपितु इस पर पचामो दृष्टियों में प्राण भी डाला। इनमें से एक दृष्टि आहार के प्रकार व पदार्थों पर भी डाली गई। इनमें वनस्पति द्वारा आहार-गहण क्रिया, आहार-परिणामन प्रक्रिया, नीहार, शोषाहार-रोमाहार तथा वनस्पति के ऐकेन्द्रिय होने पर भी पचेन्द्रिय जीवों तक का भोजन करना आदि के निस्पृह सूत्र सवया मौलिक व निराले ही थे। ये सूत्र विज्ञान के विकास के पूर्व विद्वानों को आश्चर्यजनक व उत्पनाप्रसूत लगते थे। परन्तु आज ये ही सूत्र विज्ञानजगत् में प्रयोगों में परिपुष्ट व प्रत्यक्ष प्रमाणित होकर आगमप्रणेतारों के अतीन्द्रिय ज्ञानी होने की उद्घोषणा कर रहे हैं।

भय सज्ञा — भय दो रूपों में व्यक्त होता है—(१) आगम आपत्ति से भयभीत होना, डरना, कापना, रोशों का खडा होना आदि (२) श्राप्ति में वचने के लिए सुरक्षा का प्रवन्ध करना। सुरक्षा की भावना का उद्गमस्थल भय ही है।

वनस्पति में ‘भय’ के दोनों ही रूप स्पष्ट अभिव्यक्त होते हैं। जिस प्रकार मनुष्य आपत्ति या प्रतिकूल परिस्थिति आते ही भयभीत हो जाता है और उसके निवारण या प्रतिरोध के लिए सुरक्षात्मक प्रयत्न करता है, उसी प्रकार वनस्पतिया भी आपत्ति आते ही भयभीत हो जाती है और रक्षात्मक प्रयत्न करती है। श्री जगदीशचन्द्र वसु ने यंत्रों की सहायता से स्पष्ट दिखाया कि वनस्पति के किसी अंग पर प्रहार होते ही या सहार का खतरा उपस्थित होने ही वह थर-थर कापने लगती है—उमके रोए खड़े हो जाते हैं। छुई-मुई वनस्पति पर तो भय का प्रभाव बिना यंत्रों के भी देखा जा सकता है। उमके किसी अंग को अगुली छू जाय तो वह भयभीत हो जाती है और रक्षा के लिए सारे शरीर की पत्तियों को सिकोड़ कर अपने सब अंग ढक लेती है। कश्मीर में ‘जवागल’ नामक वनस्पति होती है। यह हथेली पर रखते ही ज्वर-पीडित मनुष्य की तरह कापने लगती है।

जिस प्रकार मनुष्य अपने शत्रुओं में वचने के लिए विविध उपाय काम में लेता है, ठीक उसी प्रकार पौधे भी अपने शत्रुओं में वचने के लिए विविध उपाय काम में लेते हैं। विच्छू जाति का पौधा अपनी रक्षा पत्तियों के रोशों में करता है। इन पत्तियों को छूने व खतरा पहचानने वाले व्यक्ति की खाल में ये रोए चुभकर एक प्रकार का विष फेकते हैं जो जलन पैदा करता है। उममें अमह्य पीडा होती है। फलन व्यक्ति उसे छोड़ देता है और पौधा खतरा से छुटकारा पा जाता



न पनप सकने है। जत वह जानी मइज बुद्धि का सहारा लेना है। गर्भाधान की क्रिया उद्यो ही समाप्त होती है क्योंकि वह फिर दोवार की ओर झुकना शुरू कर देता है और दोवार के सहारे प्रजनन आगे बढ़ता है। जत तब कि उद्यो बीजों को निगलने के लिए हँद या घायली जगह न मिले जाय। उद्यो मिलने ही वह उगते भीतर घुसकर अपने बीज टाक देता है। इस प्रकार बीजों को उगाने व पालने के लिए गर्भाधान स्थान पर रख निर्भर व निर्दिष्ट हो जाता है।^१

अभिप्राय यह है कि वर्तमान वनस्पतिविज्ञान जैनागतों में प्रतिपादित उन नव्य ता नव्यन तरता है कि अन्य प्राणियों के समान वनस्पति भी गयाक्रात होती है और अपनी मृतानों को रक्षा के लिए विविध एव विविध उपायों का सहारा लेती है।

मैथुनसत्ता —आगमों में मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के समान वनस्पति में भी मैथुनसत्ता पायी है। ध्वज के वनस्पतिविज्ञान ने न केवल उसे स्वीकार ही किया है अपितु उस प्रिय क्रांति अथवा उपमाया का स्पष्ट दिया है वह है “भ्रूण-विज्ञान”। भ्रूण-विज्ञान का मध्य-वनस्पति की “मैथुनसत्ता” गर्भाधान व भ्रूण व बीज बनने आदि में है। भारतीय वैज्ञानिक प्रो० पंचानन माहेश्वरी विश्व के वनस्पति-भूत वैज्ञानिकों में अग्रणी है। आने प्रयोगों द्वारा आश्चर्यजनक तथ्य प्रकट किए हैं। पुष्पों पौधों के लगभग ८२ कुलों के पौधों के भ्रूण-विकास की रक्षा उनके अलग परिश्रम की साक्षी है।

वनस्पति-विज्ञान में पौधों में मैथुनसत्ता का विशद वर्णन है, उसे मक्षेत्र में उन प्रकार समझा जा सकता है—

फूल ही वनस्पति के गर्भाधान व प्रजनन का मुख्य स्थान है। फूल में मुख्य ५ भाग होते हैं—(१) पुष्प-वृत्त (Pedicel)—फूल का डठर (२) बाह्य दण्ड (Calyx)—उसमें स्थित पात्ता फूल के सब में नीचे या बाहर की ओर रहती है व फूल के भीतरी भागों की रक्षा करती है (३) दण्ड पुष्प (Corolla)—उसमें स्थित पत्तियाँ या कलियाँ चित्ताकर्षक चटकीले रंग की होती हैं। ये फूल के जननागों की रक्षा करती हैं ता जानी मृदरता में कीट-पतंगों को आकर्षित कर परागण कार्य में सहायता करती हैं (४) पुमग-परागणेश (Androeceum)—यह पुष्प का नर-जनन अंग होता है, यह चटकीली कलियों के भीतर ही आता होता है। उसके दो भाग होते हैं पुतन्तु और पराग कोश। पुतन्तु परागकोश को ऊपर उठाये रखते हैं। परागकोश में पराग कण होते हैं जिनके फटने पर अणुित पराग-कण बाहर निकलते हैं। (५) जायांग-गर्भकेसर (Gynaecium)—यह फूलों के बीचो-बीच होता है। इसके तीन भाग होते हैं—(१) अंडाशय (Ovary), (२) वनिका (Style), (३) वनिकाग्र (Stigma)। जायांग का निचला चौड़ा व चपटा भाग अंडाशय कहलाता है। फूल का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग है। इसी में बीजाण्ड-भ्रूणधानी आदि होते हैं। इसी में एक लंबी नली जायांग है जिसे वनिका या योनिमाली कहते हैं। उसके सिरे पर एक गोल घुंडी मद्दश रचना होती है जिसे वनिकाग्र कहते हैं।

पुकेसर के परागकोशों का स्त्रीकेसर के योनिछत्र में सम्मिलन, नगम या नयोजन ही वनस्पति की प्रजनन-क्रिया है। परागकण योनिछत्र पर आकर गिरते हैं और योनिमाली में होते हुए अंडाशय-गर्भजिप में चले जाते हैं, वहाँ फल और बीज बनते हैं।

वनस्पतिविज्ञान में परागकोश में परागकण का योनिछत्र तक पहुँचने की क्रिया का मेचन (Pollination) कहा जाता है। यह दो प्रकार की होती है—स्व-मेचन और पर-मेचन। जब किसी फूल का परागकण उसी फूल के योनिछत्र तक पहुँचता है तो यह स्वमेचन कहलाता है, जैसा कृष्णकोली, सूर्यमुखी आदि फूलों में होता है। जब किसी फूल का परागकण दूसरे फूल के योनिछत्र पर पहुँचता है तो उसे पहुँचने में वायु, कीट-पतंग, जानवर, जल आदि अन्य माध्यमों की आवश्यकता होती है। यह पर-मेचन कहलाता है। वायु-मेचन, गेहूँ, जौ आदि में, कीटमेचन-सुंदर-मुगप्रित

फूट म जन्मेपन बन्निगनरिया आनि जन्म म लगे पौत्रो म तथा जन्नुश्रो गरा मचन-बदव आनि मेरा ब फूल म होना है ।

गर्भाधान — मन्वन् प्रिया द्वारा परामर्श यानिन्ला व माग म गर्भाग्य (Overy) म पहुचन है। यहा प्रत्यक्ष परामर्श गन् रुक्चन स जखना है। परामर्श और रुक्चन का यह मित्र ही गर्भाधान है। गर्भाधान क फल स्वल्पा बीजा भी उत्पत्ति होता है। गर्भाग्य म निरत रुक्चन होत है उनम जितने म परामर्शना द्वारा गभ स्थित हो जाता है उनन ही बाज समुगाग्य म पदा होत हैं।

यदि परामर्शका का उद्देश्यो य मित्रन ए हा ना बाज न । यन सक्ते । कृष्णान प्रचार न होने हैं नरान्गो मातान्गिा व उमयान्गिा । परीता छत्रवृद्धा करला लोका आदि म नरान्गिा और मातान्गिा क अल्प अल्प मे होने हैं और माता कृष्ण ए । कनक चाण्डेय अलग गत हैं । एत प्रचार क कृष्ण म मर्षाधान परमचन म ग गेता है । यनी बारण है कि परीते क क्षणीय म मानव म का क्षाय क्षाय कही नरन ए न हा ता ये कृत हा मही है । गुण्ड म्हा त मल त्र ग जादि उमयान्गिा है । इत म्हा नो कृष्ण म पुर्वेसर तथा स्थासमर गमा हो मिलते हैं ।

समय या वर्गाधान की यह त्रिया कबल कूट का वाता बनस्पतिया म ही नहा अविशुधिता कल देने वाली बनस्पतिया म भी होना है । तेगी बनस्पतिया मुख्य तीन प्रकार की हैं—यथावाहता बायापाहता और टराहा पाहता । धरोपाहता म बादा काई तथा कल म मुख्य है । जवाल म नरयुमक नीर दशागुमरा का सायुय हाता है कल का म घन तथा अग्न अभा वा । दावापाहता म नर और नारी क अग अलग-अलग हात हैं । दावा म मिलन म स्त्रीभिणिय होकर प्रजनन जाता है । टरीपाहता म भी एगो स मित्रा-जुली प्रतिया म प्रजनन हाता है ।

तात्पर्य यह है कि कम ज़ीर बिना फूल वाले गन्ध ही ज्ञातिया की वनस्पति म मयन व प्रजननक्षम। विष्ट मान है घास व वनस्पतिविज्ञान म निर्दिष्ट म। य है। इनके जनाय व प्रविष्टानि म सिद्धान्त की पुष्टि हाता है कि वनस्पति में मयन क्षम है।

परिव्रजं सता — मन्त्रा वणिम । वता । — वृ० अम्यदन ६ गाथा २१

अथात् पश्यामी म मच्छा या ममत्वं भाव रखती एवं उनका समूह बना परिग्रह है। वनस्पति में परिग्रहवति भाजन शरीर रूप में पाया जाती है। इस विषय ब विधान-ज्ञान में महत्त्वपूर्ण मध्य सामने आता है ज। इष्टव्य है।

[illegible]

(२) एक दूग्रा बाय जा ललित फाइन ड्रेस पहन करत है बा ^१ प्रबलन बायीं बा सम्मान करना । पता बा विभिन्न करने तथा पत्र और दोष पत्र करने बा ^२ पडा की कला उडा की जात करना पडता है जा ^३ नहें मर जा भाज्य द्वारा प्राप्त होता है । पत्र बायीं म बाजने ललित करने हैं जा बायीं म अदुष्ट बाल म उनकी जाव द्यता पुति करना है ।

(३) मोर्चों व अनिरवध तथा तथा जाह म विपक्ष रूप से भाजन मयीन कर देह उक्त गारा व ही प्रमान मा वाप्य वरत है ।

(४) जहाँ तथा कब व्यवस्थित पत्र प्राप्त पत्तियों में या अना भोजन उपलब्ध करत है। य गोभी म पत्तियों में भोजन बड़ा रहता है त्रिगुण वापस व मा । हा खाना है । व्याज का गीठ व मोहर मा पत्तियां म हो भोजन उपलब्ध रहता है त्रिगुण शवक म पत्ती मागी तथा कटा हुई रहती है ।





पेटों के बीजा के मगहीत भोजन में स्टार्च, चर्बी तथा प्राचीन नीनो प्रकार के पदार्थ मिलते हैं। जड़ी तथा तना के मगहीत भोजनों में स्टार्च विशेष रूप में मिलता है। चर्बी की कुछ मात्रा रहती है किन्तु प्राचीन वृहत् ही कम पायी जाती है। इस प्रकार हमें मालूम हुआ है कि पेट बीज, जड़, तना और पत्तियों में भोजन मगहीत करते हैं।^१

बीज में भोजनसामग्री संग्रह करने वाले पौधों में नास्तिश की डिवा जा सकता है। यह अन्न भीतर इतनी पर्याप्त मात्रा में भोजन-सामग्री संग्रहीत रखता है कि उसका पौधा जब नया पौधा की तीन जड़ों में से एक को फोटकर अपनी जड़ें जमीन में नहीं जमा देता है, तब तक उसके भोजन के लिए सभी का मन्द, नरम, पोष्टिक गुदा विद्यमान रहता है। अण्डगोत्र, वादाम, तेग, नट के पौधे भी अपनी मतान के लिए पोष्टिक साधनसामग्री संग्रह कर पैतृक सपत्ति के रूप में अपने बीज में छोड़ जाते हैं। यह पैतृक धन छिड़के के लिये सुरक्षित रहता है। एक बीज फूलने वाला पौधा ऐसा नहीं है जो अपने वस्त्र के लिए बीज रूप में पर्याप्त भोजनसामग्री छोड़ती न रह लेता है।^२

तब से साध पदार्थ संग्रह करने वाली वनस्पतियों के अनेक प्रकार हैं, जथा — (१) गुल्मिन-गुल्म, अन्ननाम, रामधाम आदि (२) गड्ढोम-जड़गुल्म आदि (३) पट्टांग-पट्टा, जमीनज, गड्ढा आदि (४) दूध-आलू, सतावर, डेहिया आदि। ये पौधे भोजन-सामग्री अपने तन में विभिन्न प्रकार में संचय करने हैं। उनके तने भूमि के अन्तर्गत जड़रूप में रहते हैं।

पत्तियों में भोजन-सामग्री संग्रह करने वाली वनस्पतियों में गाजर, बदनामी आदि हैं। अनेक जाति के पौधों की पुरानी पत्तियाँ झड़ने के पूर्व ही नवीन पत्तों पैदा करने वाली कली न यह सब सामग्री संग्रह करते रहती हैं। जिसका समय आने पर पत्ती उपयोग कर अपने को विकसित कर सकें।

फूलों में भोजन-सामग्री संग्रह करने वाली वनस्पतियों में नागफनी जाति के काटेदार पौधे मुख्य हैं।

मनुष्यों की ही भांति कुछ पौधे सुरक्षा की दृष्टि में अपनी मगहीत सपत्ति को भूमि में छिपा देते हैं। गाजर, मूली, शलजम, गन्ना आदि उन प्रकार की वनस्पतियाँ हैं। वस्तुतः उनका भूमिगत भाग उनकी जड़ न होकर तना ही होता है। उन पर आगे होनी है वे उनके बीज न जताने हैं और आधे के भक्षण के लिये जोर का भाग पौधों के द्वारा इनके लिए संचय की हुई भोजनसामग्री है। उसका भक्षण कर वे मताने-नये पौधे उसी प्रकार जीते व बढ़ते हैं, जिस प्रकार बालक माता का दूध पीकर जीते व बढ़ते हैं। ये जाति ही उनकी मताने हैं, वह इसी में मिश्र हो जाना है कि आलू या अदरक के जिन टुकड़ों को खाया जा सकता है उसमें यदि आध विद्यमान है तो वह टुकड़ा नवीन पौधे का रूप ले लेता है, अन्यथा नष्ट हो जाता है।

कृषण वनस्पतियों के समान जलधनिया आदि कुछ वनस्पतियाँ भी कृषण होती हैं जो अपने लिए कुछ भी खर्च न कर सब कुछ अपनी मतान के लिए ही छोड़ जाती हैं तथा जिस प्रकार नया वस्तु अपने व अपनी मतान के लिए समान रूप में संग्रह नहीं कर पाते हैं, उसी प्रकार इन वनस्पतियाँ भी समान रूप में संग्रह नहीं कर पाती हैं। पीपल, पोस्ता, चना, मूँग आदि वनस्पतियाँ मतान के लिए बहुत ही कम भोजनसामग्री का संग्रह छोड़ जाती हैं। अतः इनके पौधे बीज में बाहर निकलते ही शीघ्र हरे हो जाते हैं और भोजन-प्राप्ति के लिए स्वयं परिश्रम करने लगते हैं। जिस प्रकार कुछ व्यक्ति बड़े निर्धन होते हैं वे अपनी मतान के लिए कुछ भी नहीं छोड़ जाते हैं, उसी प्रकार दूध आदि के पौधे बड़े निर्धन होते हैं और मतान के लिए कुछ नहीं छोड़ते व छोड़ते हैं। ऐसे पौधे अपनी वनस्पति के लिए एक विशेष रीति काम में लेते हैं। ये अपने तने भूमि पर फैलाने हुए बढ़ते हैं। उस प्रकार नवीन पौधे भोजन-सामग्री के सञ्चार के अभाव में भी अपना पोषण बिना अधिक श्रम किये कर लेते हैं।

अभिप्राय यह है कि, वनस्पति-विज्ञान ने प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि मानव के समान ही

वनरपनि म मा परिप्रमथा त्रिजगत् ॥ श्री य जपने अष्टिष्व व शाखा भनान की सुरक्षा सुविधा के लिए आमत्रा व संपत्ति गधित करता है ।

क्याय

जन प्र. ११ में प्रमुखता कराय गच्छ अथवा निगम पारिभाषिक अव. रक्षता है यथा —

सुखं दुःखं सुखदुःखसं कम्मवलेत करोदि जीवस्स ।

समार-इरभर तेष वसाभोत्ति य वति ॥ — गी १० १८२ प्रवता ११४

जीव शं मुखः च रूपं जलनं प्रसार न प्रायः का ज्ञानं चरनं चानं तथा जितो भसारं दयं मया।
 ज्ञानं दूरे नैसा कमः यो मोको कपणं चरा। यः दनं दायं चनाताः उमः प्रायः वृत्तः ॥

जात्मा वा ब्रह्मन यद्ध करन चाँरा वम है । ब्रह्म वा उन्नति वा मारण राग = य रूप परिणाम भाव है ।
अन राग = यामन परिणाम । ब्रह्म रूप उपाय है । ब्रह्म वा मारण भ = है ।

अन्तादि यगारा रणता ११ वी वसात मण रसा मया वसात एव रसात एव नरव्याण जाय
वसापियाण ॥

— स्थानांग ४ १ अ ४ उ १ गु १ द

पपाय चार ह — वीर मान माया जोर आन । य चारो हा कपाय नास तास सं खबर वमानिक दवो
सुख अर्थात् मग गसारा जाया म गाय जाते हैं । जे वनस्थिति म भी कपाय कय चारो हो अ मान गर ३ ।

कोष बचप्य — जिस प्रकार मनुष्य 'गु आन' पय प्राणी कुपित व विपत्ति होत है उसी प्रकार वास्तविकता भी कुपित व हृदय होता है। सुखान और वेद दुःख म एक ऐसा व पया जाता है जिसम म वही अमृत प्रसार का राग रागिणी निजन्ता रणी है और रात म ही कक्षा म ऐसा राग घना घाघन होता है कि वनी बनी याग का मय मय करता है कि निज ही वी का राग पारवार है जिसम जाई मर गया है जी सान नट रा रू ।

प्राथम्य का एक रूप रीति है। जिन प्रकार घर बाँटि गतिधमा के छत व पाल आदि स्थिति पहुँच जाये ग
य मायकाय रक्त हाँकर उन स्थिति को प्र मारन समीचीन है। नवक व मारन स तीव्र भाँट हाँकी है जो भाँट चा
न्ति मरु चकता रहता है। नम प्रजागीनी और पू साठव वस्त्र से एक होगा व वस्त्र जाना है जो अपन पा
मान पाल य वन को डर भाँटता है। नो टक गाँगा या नव मारन याग वस्त्र व जाना है।

१८ व १९ पर 'न' के आकार प्रसार के अनुयायक के पुनर्जात और तेज धारवादी बोल हैं। स-जवाब
मृदु बोल का बोध। १९ 'न' लुप्त हो भूष घना और पान्थ ब्रह्मचर का पतितो हाने के दोर उते पतितो पर लब्ध बाध के
समान राग होते है। अर-ई स्थान 'न' के पाम पद्वेज और मो व सदाया उस व्यभिक्त त बिपर माना है। गी
उग मारो 'ग'नी है। इनक ह- मारते ज ब- मर्माने की पीछ हानी के बि- मुरार पर दश न न प्राय तो घे। पीछ
'ग'मारा पर 'ग'नी के बन्धन है।

व्याख्या भाष्य या वाच्य या हो एवं रूप है । वस्तुनिष्ठ या श्रवणी रस व स्वाद शुद्ध मधुर बनता है । मया— मया पीत्र जपनी विपराध परिस्थितियो म सधन करण नावन च करन है । जग सहायता मित्र सरता है व । व पारंपरिक सहायता बन्तो और एवं दमर वा जात्रय रूप है । जहा सहायता सहज में ता । मित्रता वही लजा वसध महार पतनता है एवं च दमरा पीत्रा पापन पाता है । जहा सहायता मनुष्य म नी मिलनी वही वरवम ली

१ नवनीत जून १९६१ प ८७

२ नयनोत्त जलार् १६६२ य ७



जाती है। आत्म-रक्षा के लिए आपस में रगड़ा जगड़ा भी होता है—एक दूसरे का वे नाश भी करते हैं।^{१३}

मान—जैनदर्शन मनुष्य के समान वनस्पति में भी मान रूपाय मानता है। समसायाग मूत्र में मान के रूपों का वर्णन करते हुए कहा है—

“माणे, मदे, दप्ते, थमे, अनुत्तमे, गद्ये, परपरिवाए, उत्तमे, अवत्तमे, उत्तमे, उत्तमे” — समसायाग — ५२

अर्थात् मान, मद, दर्प, स्तम्भ, आत्मात्कर्ष, गर्व, परपरिवाद, उत्कर्ष, आपर्ष, उत्तम और उत्तम, ये सागुरु मान के अभिधान हैं। मक्षेय में कहा जाय तो धन-प्राप्त्य आदि पर-पदार्थों व गुणों में अहंत्व भाव होता ही ‘मान’ है, जैसे धन होने में अपने को धनी मानना, विद्या में अपने को विद्वान् मानना आदि। मानी व्यक्तियों की मान में उद्भूत वृद्धि होती है। वन मम्पत्ति के विस्तार में अपना विस्तार व उत्कर्ष मानता है। यही कारण है कि मानी प्राणी में नन धन, जन आदि संपत्ति के विस्तार की बड़ी भूम होती है। संपत्ति के विस्तार में उसके जहानार का पोषण होता है और फिर यह अहंकार गव, मद, उत्तमता आदि रूप धारण करता है। मान के ये रूप वनस्पति में भी पाये जाते हैं।

जिस प्रकार मनुष्य धन में सम्पन्न होता है तो गर्व में फूला नहीं समाना है उसी प्रकार पौधे भी फूलने में सम्पन्न होते हैं तो प्रकुल्लित हो फूले नहीं समाने हैं। और गर्व में उत्तमन हवा में झूलने लगते हैं। उनकी यह उत्तमता उनके अंग-प्रत्यंग में फूट पड़ती है। श्री जगदीशचन्द्र बम् ने पौधों की गहायता में मित्र किया कि मनुष्य की भाँति पौधे भी अनुकूल भोजन-समग्रों पाकर एक मधुर मीठी मुनकर रूप में उन्नत हो जाते हैं और उन्हें और प्रतिकूल पाकर मुरझाने लगते हैं।

उत्कर्ष मान का ही एक रूप है और उत्कर्ष की यह उपलब्धि धन, जन आदि संपत्ति के विस्तार में होती है। मनुष्य में विस्तार की यह भूम उई रूपों में प्रगट होती है। उनमें मुख्य हैं वैयक्तिक व पारिवारिक रूप। मनुष्य वैयक्तिक उत्कर्ष के लिए अपने बल, बुद्धि, विद्या, धन-प्राप्त्य आदि का विस्तार करता है और पारिवारिक उत्कर्ष के लिए वश-वृद्धि करता है। इसी प्रकार वनस्पति में भी विस्तारवृद्धि के वैयक्तिक और पारिवारिक ये दोनों रूप देखे जाते हैं। वृक्ष का अपने गरीर व शरीर सबड़ी विस्तार वैयक्तिक उत्कर्ष का रूप है व अपनी जाति या वंश का विस्तार पारिवारिक उत्कर्ष का रूप है।

वनस्पति अपना वैयक्तिक उत्कर्ष भोजन-समग्र के रूप में संपत्ति जुटाकर करती है। मूली, गाजर आदि कई पौधे जब अपनी जड़ में पर्याप्त भोजन समग्र कर लेते हैं तो फूलकर कुप्पा हो जाते हैं। घुट्टया आदि पौधे अपने तने में भोजन-समग्र होने पर गर्वोन्मत्त हो जाते हैं। बदगाम्भी आदि पौधे अपने पत्तों में भोजन का भण्डार भरकर अहंकार का पोषण करते हैं। नागफनी आदि पौधे फलों में भोजनसामग्री जमा कर फूले नहीं समाने हैं। तात्पर्य यह है कि वनस्पतियाँ अपनी जड़े, तने, पत्ते, फूल आदि अंगों में खाद्य संपत्ति का संचय होने पर उत्तम हो झूमने लगती हैं।

वनस्पति अपने वंश के विस्तार या उत्कर्ष के लिए भी पूर्ण प्रयत्नशील रहती है। जिस प्रकार जीव-जन्तु प्रजनन द्वारा अपनी जाति या वंश का विस्तार करते हैं, इसी प्रकार वनस्पतियाँ अपने वंश का भीधना से विस्तार कर अपना उत्कर्ष देखना चाहती हैं। उदाहरणार्थ ‘आधाशीशी का डोटा’ वनस्पति को ही लीजिये। एक समय था जब इसका डोटा बड़ी कठिनाई में मिलता था। और बड़ा महंगा विकना था। परन्तु कुछ समय पूर्व इसने अपने वंश का विस्तार करना प्रारम्भ किया और अरप काल में ही अपने जंगल के जंगल खड़े कर लिए। इसका यह विस्तार विम्वय-कारी था। जहाँ कहीं भी इसे यत्किंचित् भी खाली जमीन मिली, इसने अपनी जड़ें जमायी और फैलकर उस पर अपना ऐसा साम्राज्य स्थापित किया जिसमें मानव भी प्रवेश करते हुए हिचकता था।

राजस्थान के अनेक भूभागों का तो यह हाल था कि उनमें स्थित पर्वत, खेत, पड़त भूमि आदि पर जहाँ कहीं भी दृष्टि पड़ती थी यह वनस्पति अपने विस्तार के गर्व में उत्तम हो झूमती दिखाई देती थी।

कण्ट छवट्टान मे 'वीनस फ्लाई ट्रॉप' (Venus fly trap) पीछा भी कम निपुण नहीं है। यह कपट जगहों से महाने करता है। यह विशेषतया अमेरिका में होता है तथा नमी व दलदल वाले स्थानों पर उगता है। उसका पत्राल दीर्घ गम्भीर में दो भागों में विभाजित रहता है। ये दोनों भाग कण्ट की भाँति अन्दर की ओर मुड़कर बन्द हो सकते हैं। पत्रदल के प्रत्येक अर्ध भाग की उपरी सतह पर तीन लम्बे बाल होते हैं जो बहुत ही संवेदनशील होते हैं। किसी बाल को जरा-सा छूने पर ही पत्रदल के दोनों अर्ध भाग जोड़ने में अन्दर की ओर कपट की भाँति ढल जाते हैं। पत्ती की उपरी सतह में ताल रस की बहुत-सी छोटो-छोटो ग्रन्थियाँ होती हैं। जब कोई काड़ा पत्ती को बाँध में पड़ जाता है तो पत्ती बन्द हो जाती है और कौड़ा उसमें कैद हो जाता है। फिर पत्ती की सतह पर स्थित ग्रन्थियों से एक प्रकार का पाचन रस निकलता है जो कौड़े के मांस को पचाकर विद्यमान है रस में बदल देता है। यह विद्यमान फिर पत्ती के रोओ द्वारा चूस लिया जाता है।

धूर्तता भी माया का ही एक रूप है। मनुष्यों के समान कुछ पौधे भी अपना स्वार्थ मित्र करने में धूर्तता में काम लेते हैं। 'एशियाई दीव मनुह और अजैन्टाटना में विशेष जाति के वृक्ष पाये जाते हैं, जिन्हें वहाँ के निवासी 'करोगे पाम ट्री' कहते हैं। ये वृक्ष बड़े धूर्त होते हैं। पहले तो वे सुगन्धी शरिरों जैसे ध्वनि मिश्रण हैं जिन्हें जिका रस निकलना जाता है। फिर ये वृक्ष उस सोये हुए व्यक्ति का खून विगलन की भाँति चूस लेते हैं।^१

निम प्रकाश कुछ मनुष्य पहले तो मोहो-भावे व भले बनकर किसी के यहाँ जम जाते हैं फिर धीरे-धीरे आश्रयदाता के व्यवहार का चीनकर स्वयं उसमें जमाने लगते हैं। उनके इस अपटपूर्वक कार्य के परिणाम स्वरूप वे आश्रयदाता को बगल हो जाता है और वे स्वयं फलने-फूलने लगते हैं। इस प्रकार कुछ पौधे भी अपटपूर्ण व्यवहार करने में बड़े निपुण होते हैं। उनमें से 'अमरवेर' भी एक है। यह भारत में प्रायः सर्वत्र पायी जाती है। यह दीखने में बड़ी सुन्दर तथा में बड़ी सुवासनी होती है। इस प्रकार यह अपने रंग-रूप में बड़ी ही भरी व मोठी-भाठी लगती है। यह स्नेहना इतना दीवती है कि जिस वृक्ष का संग करनी है उसमें चिपट ही जाती है। परन्तु फिर यह धीरे-धीरे मृत् में राम बगल में छुगी' जहावन चरितार्थ रहती है। यह अपनी गाँवाओं का जात-जिमे मायाजाल ही कहना चाहिये—बाग और फैलती है और उनके द्वारा अपने आश्रयदाता वृक्ष का सर्वस्व हड़पकर उसे बगल व कड़ा बनकर ही छाँटती है।

मरेमिया के बर्बीस लैण्ड प्राय में अमरवेर जैसी ही एक अन्य वृक्ष होती है। यह बड़ी प्राण-प्राण होती है। यह वृक्ष जिस वृक्ष पर चढ़ती है, छ मांस के भीतर उस पर अपना जात बिछा देती है जिससे वह वृक्ष मृत् जता है। जब उस वृक्ष पर चूमने व चूटने को कुछ भी जेप नहीं रहता है तो अपना माया-जाल हमारे वृक्ष पर फैलाने के लिए उधर-उधर अपने चरण बढ़ाती है।

अपनी माया में जैसाकर जीव-जन्तुओं का निवार व आहार करने में सेफेराज या छटपर्णी वनस्पति भी कम नहीं है। यह आस्ट्रेलिया, बोरनियो, लवा व भारत के आसाम के वनों में मिलती है। अमेरिका में भी इसकी कई जातियाँ पायी जाती हैं। यह वीचट व दलदली भूमि में होती है। इसका पीछा छोटा होता है तथा तना जमीन पर रेंगना हुआ आगे बढ़ता है। इन तने में से गाँवाएँ निकलती हैं जो ऊपर की ओर उठी रहती हैं। इन गाँवाओं पर मोटी, चिकनी व लम्बी पत्तियाँ होती हैं। पत्तियों की गम्भीर तीन फुट से भी अधिक तक होती है। प्रत्येक पत्ती का निम पत्रा होकर बागे के रूप में हा जाता है। यह बागा किसी हमारे पेट या किसी अन्य वस्तु के बागे ओर लिपट जाता है। इस बागे में लटका हुआ एक खोबले घड़े-मा फूट होता है। घड़े का मुँह नदी ऊपर की ओर रहता है तथा उसके मुँह पर एक टखन होता है। मुँह के पान से एक मीठा रस निकलकर उसके चारों ओर उगा रहता है। पीछा अपने इसी रस में या कभी-कभी अपनी गंध में कीड़े-मकोड़ों को आकृष्ट करना है। वेचारा कीड़ा स्वाद व गंध के बलीभूत हो फूट के मुँहदार तक पहुँच जाता है। घड़े की मुँह की सतह अन्दर की ओर बहुत चिकनी व फिमलनदार

होता है। इन तारों काटकर जो हाथों के धुँएँ पर बठना है जिसपर चढ़े के भीतर जिन मोतों का मुँहा हो बठना भाग्य गिर जाता है और जिन का हाथ पत्ता में जिसका कुछ भाग भाग्य सरल चरार में भरा रहता है बन्द पाना है। जोड़ा उगार भी आर गाँव का यत्न करला है ता नीचे की आर मुँह हुए मुँहों का उगार हम यत्न में निष्फल बन दते हैं। बीजा भरत-पुष्प के सरल पत्रों में जोत यान लगता है और प्रायः द दता है। फिर वह सरल पत्रों में पचाकर भी बा भाजन बना देता है।

सन्धुष या ड्रासरा (Sundew or Drasara) वनस्पति का शोचमान वनस्पतिवा म म पत्र है। ऐग ता हमरा गोधा प्रायः सतार व प्र दव म्हाडिग म पाया जाता है परन्तु भारत के चटगाँव व पूर्वी बंगाल के जंगलों में विग पाया जाता है। इस पत्र में गतिवीं शिखरों वाली हैं। यह गोधा कुछ दन हा ऊँचा होता है और इस पर पत्तियों के गुच्छ दिखत रहते हैं जिन्हें टेंटैकिल (Tentacles) कहते हैं। प्रयेर टेंटैकिल म पत्र छोटा दन्ध होता है जिना गिर पर एट वृक्षों के पुटो रहती हैं। पुटो म म हा म्हा गुलाबा रग का गाड़ा-मा रग निवल्कर पुटो के चारा और का पत्तियों पर पत्र चढ़ता है। जा धुँव म दूर से हो आग बना के गमारा वृद्ध तज चमकता है। कुछ काँना मात्र दन चमकत म हा और कुछ गरीबी यथ म आहूट होकर गगन प्राप्त होते हैं और पुटो पर बठते हैं। म का चंटा पर बठत हा रम म विगत जात है। जो जग बाटा धन का छरान का प्रयत्न करता है वह भीर का अधिच विचरता जाता है। माय ही पत्ती के भाग का भाग दबकर प्यार की तरह हा जाता है। टेंटैकिल मुहवर की के रमा प्याल म आल रमा है। अथ टेंटैकिल की माय ही मरकर अपनी माँगी पत्तियाँ गगन बाँटे का प्याल म लोचने हैं। इन प्रकार कीहा हम प्यार में व पत्र जाता है। फिर टेंटैकिल की पत्तियाँ म पत्र प्रकार का रस निवल्ता है जा बाट के पाप्य भाग का पुला रता है। रमा विमयन का फिर टेंटैकिल पुगतर पीध का आकार बना देत है। टेंटैकिल भागिग गोधे चढ़ हा जान है। और बीज का जो भाग पचत स धन जाता है वह पत्ती में सटकर गिर गिर जाता है।

आप्य यह है कि वनस्पतिवा भी माया बाल रचन म मनुष्य की भाँति विविध उपाय काम म रती हैं।

सोन — राग जायदल का आगमिन का लाभ बना गया है। आयस में लाभ का रूप हम प्रकार बहते हैं—

लीम इच्छा मुच्छा बन्ना गरी निष्ठा भिन्ना बहिन्ना नामाना भोगाना आदिमाना मरणाणा नी राग ॥

सप्तमाध्याय—५२

अथान् लोम हाँहा मुच्छा का ता मच्छा लूणा धिन्ना बहिन्ना, नामाना भोगाना आदिमाना मरणाणा नी और राग म लोम के रूप है। आयस म लोम के रूप अथ प्रायिषा व समान वनस्पति में भी पाया है। हम विषय म हो जा जगतीय प्रभु म यथा व प्रयासा की म्हायना म व मिष्ट कर शिखा कि वनस्पति म पत्रों म या कामना ममता आदि रागात्मक बहिन्ना विद्यमान हैं। प्रयासों में यह जान पड़ा है कि मूलनिष्ठिग का गोधा अथवा मायणा का पुत्रि हनु अपनी जड़ें जमी आर जाते बढ़ाता है जिस आर उगार भाग पत्रों में जग होता है। फिर यह जग या मरका पत्र दूर हो गया त हाथ माय म विनयी हा माध्याय गया न आर।

रचना भी लोम का हा हाव रता है। जिस प्रकार मनुष्य इच्छा-पुत्रि हा प्रयत्नशील जान है उमा प्रकार वनस्पतिवा भी अपना इच्छा पुत्रि हेतु प्रयत्नशील होता है। जिस विवसान-विनाशना शक्ति का बयन है कि हमना गा गिर मायना की गेहा कि जह का ऊपर का आर चला है ता वहीं नाथ का आर बगल सजती है जो बड़ी होता है। मरने की आगना होन पर मुहक आते बढ़ता है। हमरा जग यो हुआ कि गोधा जगन भाग्य का इच्छा पुत्रि के लिए माय विचार पुनरु अथवा अथा का मरना व मर आते बढ़ता का प्रयत्न करता है।

लूणा भी लोम का हा हाव रता है। जिस प्रकार लोम विविध लूणा के रूप में मरका का मरक करता





है, इसी प्रकार वनस्पतियाँ भी तृष्णा के बग ही भोजन-मग्न रहती हैं। इस विषय में वनस्पतिविज्ञान-विशेषज्ञों का कथन है कि पौधों की ये आत्मे हैं जिनमें बहुत शक्तु में नई पत्तियाँ फूटती हैं। वनस्पतिविज्ञान में अभिन्न ध्वनि समझते हैं कि ये पत्तियाँ शुरू में बहुत शक्तु में ही बनती होती हैं परन्तु जब ना गट है कि पुरानी पत्तियों के गिरने में पहले ही उनका स्थान ग्रहण करने वाली पत्तियाँ बन जाती हैं। गर्मी भर में पत्तों पर पत्ती पैदा करने वाली कली में सब सामग्री जमा करके रहने है जिनमें उचित शक्तु आते पर नयी पत्तियाँ बन गती हैं।^१

जैसे कुछ मनुष्यों में अपने अवस्था अपनी गति के अनुरूप ही मुख्या के लिए धन संग्रह करने का लोभ-भावना होती है, उसी प्रकार कुछ वनस्पतियों में अपने या अपनी गति के अनुरूप ही मुख्या के लिए मा-प्रशय संग्रह करने की लोभ-भावना होती है। पहले पत्रिष्ठ-प्रारम्भ में बताया जा चुका है कि पौधे जड़ों, तनों, कटियों, फूलों, बीजों, आदि में रास-सामग्री संग्रह करते हैं। वनस्पति की यह संग्रहवृत्ति उसी लोभ या तृष्णा भाव ही की परिचायक है। प्राणी के लोभ या संग्रहवृत्ति का एक रूप वनस्पति में भी है। पौधे भी वान करना गृह जानते हैं। जंगली गाजर, मटरजम जीरा चुकन्दर की जड़ें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं और कुछ पौधों में तो यह वृत्ति प्रत्यक्ष मोटी होती जाती है क्योंकि अपनी आसानी में से कुछ न कुछ बचाकर वे पौधे अपनी जड़ में जमा कर लेते हैं।

जिस प्रकार कुछ ध्वनि अपनी वन ही मुख्या करने के लिए जमीन में गाट देते हैं, इसी प्रकार पौध भी जो कुछ वे चाहते हैं वह जमीन के नीचे बट के रूप में जमा कर देते हैं। आ-संग्रहण ध्वनि में ही बहुत पौधे हैं। सब में बड़े मजे का बात यह है कि गमार भर में अच्छी नमक के सभी पौधे इसी प्रकार अपनी भांग्य सामग्री चतुराई ने जमीन के अन्दर मुख्या करते हैं अगली जन्म या नयी पौधे के लिए।

जिस प्रकार मनुष्य की लोभ या मत्तय शक्ति का एक कारण यह भी है कि भांग्य में विराट, बीमारी, भोजन आदि अवसरों पर जम्हर पड़ने के समय गुलकर बन कर गये, कुछ पौधों में भी यही बात लागू होती है। घी-कुवाग जानि के पौधे फूटने में पहले वर्षों तक बटने रहने हैं और अपनी जड़ों में भविष्य के लिए आवश्यक सामग्री का मत्तय करते हैं। उस राय में उन पौधों को अत्यन्त मावधानी व धैर्य का परिचय देना पड़ता है। बाद में फल पैदा करने के लिए जब एकाएक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है तो ये अपनी मत्तय शक्ति का आगामी में उपयोग कर लेते हैं। शक्तिमत्तय में काफी समय लगना है और इसी में वे पौधे शीघ्र नहीं फूटने। बड़ी प्रसिद्ध कहानन है कि घीकुवाग वर्षों में एक बार फूलता है।^२

जैसे कुछ मनुष्य लोभ के बन्धन में हैं, जिस हाथ में पाने हैं उसी में छेद करने वाले होते हैं अर्थात् जिनमें पलते हैं उन्हीं का व्यवसाय व नपत्ति छीनने वाले होते हैं। परिणाम-स्वरूप पालक याचक बन जाता है और याचक पालक। इसी प्रकार की कुछ वनस्पतियाँ भी ऐसी होती हैं जो अपने आश्रयदाता पालक को हडपकर स्वयं ही वहा जम जाती हैं। पीपल, बरगद आदि में यह प्रकृति विशेष देखी जाती है। कलकत्ता के 'बीडानिज गाडन' में एक बरगद का पौधा ताड के वृक्ष पर याचक के रूप में उगा। धीरे धीरे उसने ताड को बर्बाद कर उसके स्थान पर अपना आसन जमा लिया। आज उस स्थान पर ताड का पेड़ नहीं, बरगद का पेड़ है।

आलू, बैंगन, आदि पौधों में, अपनेवाला गठवा रोग भी और कुछ नहीं, एक वनस्पति द्वारा डाला गया डाक है। यह वनस्पति अपनी जड़ें जमीन के अन्दर दूसरे पौधे के पान पहुँचाती है और उसकी पोषण-सामग्री का शोषण कर स्वयं पुष्ट बनती है।

तत्पर्य यह है कि वनस्पति में भोगेन्द्रा, काक्षा, संग्रहवृत्ति, शोषण आदि लोभ के रूप विद्यमान हैं।

१ नवनीत, जुलाई ६७, पृ० ४२

२ नवनीत जुलाई ५७

उपयोग

उपयोग का अनामय म अपने विषय पारिभाषिक अथ म प्रयुक्त होता है जिसके अन्तर्गत में पान और दान समझिन हैं। उपयोग का वनन पल्लवना मृत्त म इस प्रकार है—

कतिविहै प भते । उद्योगो वण्णत्त ? गोवमा ! बुद्धिहै उद्योगो वण्णत्त तज्जहा-सागारोवभागे य अणा गारोवभागे य ॥
—पल्लवनामृत्त प २६ सू १

गोनम गुणपर था महावार प्रभु स पूछत हैं—भगवन् ! उपयोग कितने प्रकार का है ? भगवान परमात् हैं गोनम । उपयोग दो प्रकार का हैं—साधार उपयोग (पान) और असाधार उपयोग (दान) ।

बुद्धिवाद्दमाण भते । सागारोवभागे कतिविहै वण्णत्त ? गोवमा ! बुद्धिहै वण्णत्त तज्जहा पतिमण्णान सागारोवभागे सयमण्णान सागारोवभागे एव जाव वण्णत्तइका-माण ।—पल्लवना प २६ सू ३

प्रश्न—ह भगवन् ! पशुप्राय म साधार उपयोग कितने प्रकार का है ?

उत्तर—गोनम । पशुप्राय म पशु वनस्पतिप्राय पशु मनि अगान और पशु अगान यह दो प्रकार का साधारोपयोग है । अगान त प्रहृत म अभिप्राय जात रहित अवस्था म हाकर अगम्य या अभिमान ज्ञान म है । जैन पान साधार पति प्राणियों का छाड़कर पशु सभी म अगानरूप असम्भवमान ही माना है ।

पति-भक्त ज्ञान—जिसके द्वारा पशु का स्वभाव जाना जाय उग ज्ञान का है । जैन पान वनस्पति म ज्ञान का वैशेष तो न पतिमान और पशुमान मानना है । पशु का अभिप्राय ज्ञान पर अर्थात् पशु का उपस्थिति म रहित और मन का साध्य म ज्ञान वाला सामान्य विषय अवकाश मनि और पशु पान कहा जाता है । इन दोनों म पतिम सत्य है यथा—

जय आनिगिवाहियनाय तय सुयनाय जय सुयनाय तत्पाणिगिवाहियनाय दोहि तयाह अणमण्णमणु मयाह ।
—मरी सूत्र २४

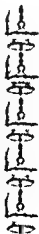
अर्थात् जहाँ पतिमान है वहाँ पशुमान है वहाँ पशुमान है वहाँ पतिमान है । दोनों एक दूसरे का अनुगम है तथा साध-साध रहत हैं । अतः प्रहृत म इन दोनों जाना जाय का समकक्ष हो समन किया जाता है ।

आधुनिक विज्ञानवत्ता वनस्पति म मृत्त का वन बन बन अना हिताहित साधने स्मृति म काम उठाने मृत्त-मृत्त म काम लने की पवित्रता मानते हैं । जैन पान के अनुसार इस पवित्रता का अनुमान पतिमणु ज्ञान म ही होता है । इस विषय म वनस्पति-वर्गीकरण के निम्नलिखित उद्धरण म सत्य है—

दी उद्योगीक-वन्तु ने मयन प्रयोगा म वर मिड कर दिया है कि जो वे स्वभाव के सहारे अपने वे सब काम कर मने हैं जो हम अना पति माने या म करत हैं । इनका ही नहीं व समय पर भोजन करत हैं समय पर धारण करत हैं समय पर मान है और समय पर जागते हैं ।

हमारी प्रसिद्ध वनस्पति गहल पौध म बुद्धिमान के विवरण पत्र पेरर लाउड म लिखा है कि पौधा म साधन-समयों का पवित्र वनमान है । उनसे वनमानमार पौधा म बुद्धिमान और बुद्धिमानों का साधन-समय रात्रि में विरामित है । पौधा का पवित्र पानपुत्र पौधों की जावनवर्षा का निरीक्षण करता जाय ता उनको बुद्धिमत्ता देखकर उग पतिम रत जाय ।

“वशात् कारिणा की शिरा तथा कारिणा म लिखे हुई मय तारई मर आता । केने आता अमर दष्टने ही होय । इन मिक वशात्ता म समयों का वशाई है कि वे केने आती उमरा पकड़त वशात्ता भी पकड़ लेता । बुद्धि मय तो पतिमान म ही आता समय-समय हृष्यद्विषी पतिमाना मृत्त कर दगो । माफ का माड है कि इनके पतिमान का वशात्ता मिक म व है । पक्षा को तरह कायों म पक्षी पिया का रहता है ।





मनदूरा फूट इतना नाजुकमित्राज है कि स्वर्ग की तो बात ही नहीं, नर्वा की एक घड़, नीर उसके भी बटकर हवा के एक झोके में ही तमस दिया देना है । उस एक घड़ की नाताम के बावजूद भी नष्ट-नष्ट चीजों के गिकार में वह एक और उमाङ दियाता है । उमे शोका उमे जी नीरन मे मरधर जैसी चीज उसके ऊपर मरधर आप उमे एक दो बार ही बहना सकेंगे, लेकिन बार बार त्यागनी यह बात ही जिया नहीं चट मरेगी । पूरा तारी तोमि-वार है और बमल मित्रा न आने तक वह अपना समाना आप ही फिर नहीं दियादेगा ।^१

‘पूराष्टम’ की हृदयिता तो प्रमिड ही है । यह पेट नहीं भी उगे, अपनी जड़ को फैलाकर तानी के उद्गम-स्थान तक ने जायेगा-चाहे पानी उस स्थान में मिलती ही न पड़ेगी न हो । पूराष्टम के एक पेट के सम्बन्ध में आशो-देवी पटना है । वह जहाँ पर उगा था, उसमें घाटी दर पर एक तरह की । यह पेट अपनी जड़ों को फैलाने-फैलाने तहर की ओर ५० फुट तक तो निमिष्ट ने गया, फिर गले में उगे एक दीवार मिर्चा, दिग्गं भीतर उसकी वह जड़ प्रवेश नहीं कर सकती थी । पर हवास नहीं हुआ । उसने दीवार के ऊपर ही अपनी जड़ फैली मुत्तर दी । अन्त में, उमे दीवार में जड़ फुट ऊपर एक उद मिला । तुम्हें छेद के नीचे यह प्रवेश न गया जो भीतर ही भीतर तब तक फैला गया, जब तक कि नहर तक पहुँच नहीं गया ।

पीछो की बुद्धिमानी यही तक सीमित नहीं रहती । वे नापसंदिग्ध और सामाजिक नियमों में भी पूरन्येन अभिज्ञ हैं और अपने जीवन में उन्हें अपनाते भी हैं । उनके जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करने ही यह बात स्पष्ट हो जाती है ।^२

कुछ पीछो में जन्म प्रेरणा या सहजज्ञान की जन्मूत शक्ति होती है । उसी शक्ति में उन्हें बिना किसी बाहरी साधन-प्रसाज, लापमान व पृथ्वी के पूर्णन के भी नही समय या पना चर जाता है । उदाहरणार्थ-नेम की पत्तियाँ गिन को बुल जाती हैं और रात को बन्द हो जाती हैं । इसका यह कार्य बड़ी के बाटे की तरह बिल्कुल ठीक वक्त पर होता है । जब कोई पीपा ठीक में बटना नहीं या ठीक टा में फल नहीं देता है तो उसका कारण ‘ईदिक घडों’ में टूटा जा सकता है ।^३ भारतीय दृषिबलनुमधान पण्डित के पीछोयरीर-विज्ञान विभाग के वर्तमान अध्यक्ष डा० गिरिगज किशोर मिश्री की उपर्युक्त कथन में स्पष्ट यह ध्वनि होना है कि जिन प्रकार मनुष्य के अनेक रंगों का कारण अन्तःकरण की विच्छिन्न होती है, उसी प्रकार वनस्पति की रंगावस्था का कारण भी उसके सहज ज्ञान या जन्म प्रेरण शक्ति की विच्छिन्न में विद्यमान रहता है ।

वनस्पति में व्यवन होने वाला यह जन्म प्रेरणा रूप शक्ति-श्रुत-ज्ञान किसी-किसी वनस्पति में उनका उच्च-स्तरीय होता है कि जिने जानकर पचटन्ट्रियदारी, अपने को अत्यधिक विकसित मानने वाला मानव भी दानों सले अगुली दवाने लगता है । दिक् काल व अविव्य सूचक ऐसे ही विनयग ज्ञानधानी वनस्पतियों में ने कुछ के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं ।

‘आविन का रहता है कि उद्भिजों के दिमाग नहीं है ।’ उनकी बात तो प्रत्यक्ष है ही कि जड़ें कहीं मुकनी हैं, कहीं हटनी हैं, नहीं जरा ऊपर की ओर चल पडती हैं, तो कभी फिर नीचे की ओर जाती हैं और इसका अर्थ हुआ कि घन्ती के भीतर जड़ें काफी तोच-विचार के साथ अपने भोगन की तलाश करती हैं । शोधों में यह प्रमाणित हो चुका है कि जड़ का ऐसा बहुत फूव-फूव कर बदन रखता है । जहाँ खनने की आजरा हुई वहाँ ने हट जाता है, कड़ी जमीन पाकर मुड जाता है तथा नमी और जल पाकर चाव में आने बडना है ।^४

१ विज्ञान लोक अप्रैल १९६०, पृ० १३-१४

२ नवनीत जुलाई १९५७, पृ० ४

३ दिनमान ६ अगस्त १९६७, पृ० २८-२९

४ नवनीत जुलाई ५७, पृ ५२

१. यहाँ मान्य यह है कि धन-योग्य बनस्पति में मति धृत जान ता मानते हैं परन्तु उसमें मन मस्तिष्क नहीं मानते हैं। यह बात सामान्य विचारों से बड़ा अन्तर है। उनका यह परन्तु विकासवादी व प्रगतिवादी प्रसिद्ध विद्वान् मानि के उपपन्न इस मतों से कि उदभिन्ना के निम्नान्तरा हाता है फिर भी वे बड़ी सूक्ष्म वृक्ष पुष्पक कर्म उगान हैं अनागमों की उक्त मान्यता का पूर्ण समर्थन हो जाता है।

२. इस प्रकार उनागमों में प्रगतिवादि इस सिद्धान्त का कि बनस्पति में मति-शून्य जान है—विज्ञान पूर्णतया समर्थन करता है। अब बनस्पति में अनाकार उपयोग (हान) के विषय पर विचार किया जाता है—

३. पुष्पिकाद्वय भते ! अनाकारोद्भवे बतिविहे षण्ण ? गोयमा ! एगे अन्तर्बुद्धसंग्रहणारोवओगे षण्णत्त एव जाव षण्णत्तकाव्याण ।

—पन्नवणा प २६ तम ४

मग्नत्त ! पय्याकाय म आकार उपयोग वित्तन हैं ? गीतम ! पन्नीकाय म बनस्पतिनाय पयत्त एव ही अवगुदगन हाता है।

अवगुदगन—एवने की गति को हान कहा जाता है। अवगुदगन से अभिप्रेत है कि वह इन्द्रिय व विना भा स्थिति आदि अर्थ नित्य व माध्यम से वस्तु एवं उक्त आकार प्रकार को देखता है। बनस्पति में एक ही इन्द्रिय स्थान होती है। अतः बनस्पति का यह स्थान केवल स्थिति नित्य से ही जाना है। यह विषय में धर्मात्मिका के मान्य कीर्तनजनक हैं तथा जनआगम से वित्तन मल्ल खाने हैं यह मान्य है यथा—

४. एक जमन बनस्पति विज्ञानवत्ता के वत्ता की ज्ञेया की गति व पत्ता न्याय है। अर्थात् कामव्य बाय हाता है वार्त्ता के जगत् व जान का भीतर वृद्धा दना। वेत्ता म यह बाय उनरी त्वचा करती है। पत्तरी त्वचा के ऊपरी भाग पर जो बिन्दु मत्ता छोट छोट कोण होत है उनमें ग वृद्धा म एक प्रकार का तरल पदार्थ भरता रहता है। पत्तरी तरल पदार्थ की सहायता म बल वा रा पत्तरी की उपस्थिति का अनुभव करते हैं।^१

आय यह है कि धर्मात्मिका बनस्पति में उनकी त्वचा (स्थिति) से दान व गति को स्वीकार करते हैं और बनस्पति में यह गति उसी प्रकार अविनाशित होती है जिस प्रकार मानव की किसी इन्द्रिय की गति का माग हा जाने पर उसकी वृद्धि इन्द्रिय में अधिक समता आ जाती है। उन्मूलनाय जीवा के चला जान पर अने व्यक्त की श्रवण धर्मात्मा की गति तीव्र हो जाता है।

लेख्य

५. वपायानुरजिता यागप्रवत्ति न्याय।^२ अर्थात् वपाय युक्त मन वचन बाय की प्रवृत्ति का न्याय बना गया है। यह पाँच अर्थ हैं—(१) वृष्ण लेखा (२) नील लेखा (३) वपाय लेखा (४) तजा लेखा (५) पय लेखा (६) पय लेखा।

गतिविधान । कइ लेखाओ षण्णत्ताओ ? गोयमा ! वत्तादि लेखाओ षण्णत्ताओ तजहा कइलेखा । जाव लेखेखा । पुद्गिकाद्वय भते ! कइ लेखाओ षण्णत्ताओ ? गोयमा ! एव चेत आउ-वणत्तद्वयव्याणवि

—पन्नवणा प १७ उ० २

अर्थात् धर्मात्मिका अल गीत धर्मव्यक्तिनाय म वृष्ण नील वपाय और तजम के वार्त्ता न्याय पायी जाती है।

तजम व पय म वृद्धे ता लेखा सुय अनुभव वतिता व प्रवृत्ति की दान है।^३ अनुभव वतिता वृद्धता व

१ नवम्बर दिनांक १९६२

२ धर्मा टीका प्रथम कइ प्रथम पुस्तक

३ मग्नत्त मय गीत २ प ६१ व अर्थप्रदात (व) वेत्ताद्वयकोक अनुवाद





रूप में व शुभ वृत्ति या दयानुदा के रूप में व्यक्त होती हैं। हृत् जलेश्या-जगुमनम (शून्यम) वृत्ति की, नील जलेश्या अगुमनर (शून्यर) वृत्ति की, आशुत जलेश्या-अगुम (शूर) वृत्ति की, तेजो जलेश्या शुभ वृत्ति की, पद्म जलेश्या-अगुमनर वृत्ति की, शुक्ल जलेश्या-अगुमनम वृत्ति की परिचायक हैं। जलेश्याओं के अन्तर्हित वृत्तियों, उनकी नग्नमता व पारम्परिक सम्बन्ध सम्बन्ध के लिए थर्मामीटर-तापक्रम का उदाहरण दिया जा सकता है। जिस प्रकार तापमान में उन्नति में पाया चढ़ता है तथा गीतलता में पाया उन्नति है तथा पारे का यह उताव-चटाव तापमान की न्यूनाधिकता के साथ घटता-बढ़ता रहता है, इसी प्रकार प्राणी की वृत्तियों की उतावता-अगुमनर (शून्यर) की वृद्धि में जलेश्या रूप पाया चढ़ता जाता है तथा वृत्तियों की गीतलता-अगुमन (दयानुदा) की वृद्धि में जलेश्या का पाया उन्नति जाता है। जलेश्याओं के पारे का यह उताव-चटाव वृत्तियों के शुभाशुभ अर्थों की वृद्धि-हानि के साथ बढ़ता घटता रहता है। परन्तु जिस प्रकार मानवशरीर का तापमान एक निश्चित सीमा ९८° से १००° के बीच ही रहता है, उसी के वैवा-नीचा नहीं जाना है तथा प्रत्येक स्थान, समय आदि की निम्नतम व उच्चतम तापमान की सीमा निश्चित होती है, उसी प्रकार जलेश्याओं के उताव-चटाव की भी प्रत्येक वर्ग के प्राणियों की, निम्नतम व उच्चतम निश्चित सीमा होती है। वनस्पति-काय के जीवों में यह सीमा कृष्णजलेश्या में लेकर तेजो जलेश्या तक है अर्थात् वनस्पति में वृत्तियों का उताव-चटाव हृत्, नील, कापोत और तेजो जलेश्या के बीच चला रहता है। परन्तु जिस प्राणी में जिस वृत्ति की अधिकता या मुख्यता होती है उसे उसी वृत्ति या जलेश्या धारा कहा जाता है। उक्त चारों जलेश्याओं में से जिस जलेश्या की प्रधानता किन वनस्पति में स्पष्टतः मिलती है, वह नीचे दिखाया जाता है --

कृष्णजलेश्या — यह जगुमनम वृत्ति, प्रवृत्ति व प्रवृत्ति मुख्यतः मानव, पशु, पक्षी आदि पंचेन्द्रिय जीवों का लक्षण करने वाली शक्तिजटल स्वरु जाति वनस्पतियों में देखी जाती है। ये अपने शून्यतम भावों में मद्धे शक्ति की ताव में रहती हैं। जैसे ही कोई भूला-भटारा अपरिचित पशु-पक्षी या मनुष्य इनके पास पहुँचता है, वे उस पर दृढ़ पड़ती हैं। उसे अपने पक्ष में ऐसा फसा लेती हैं कि बहुत प्रयत्न करने पर भी वह छूट नहीं पाता है। अन्त में वे उसका रक्त चूसकर ही छोड़ती हैं। ऐसी वनस्पतियाँ अफ्रीका महाद्वीप, तस्मानिया, मेडागास्कर द्वीप में विशेषतः पायी जाती हैं।

नीलजलेश्या — यह जगुमनर-शूरनर वृत्ति मुख्यतः कीट-मछी सूटीकुलेरिया, बटर-वार्ड, सनडू आदि वनस्पतियों में पायी जाती है। जैसे ही कोई जीवा इनके फूलों पर बैठता है, वे उसे अपनी कलियों के अण्डा लगा कारागार में बंद कर लेती हैं व अपना आहार बना लेती हैं।

कापोतजलेश्या — यह अगुम-शूर वृत्ति मुख्यतः कटीने, विपैले दुर्गंधित पौधों में पायी जाती है। ये वनस्पतियाँ आगन्तुक को नाटे चुमाकर, दुर्गंध व विष फेंकाकर परेशान करती हैं। ऐसे वनस्पतियों में 'टच सी नाट' काजू तुरई, चमचमी आदि को लिया जा सकता है।

इस जलेश्याप्रकार में ऊपर जिन वनस्पतियों का नामोल्लेख किया गया है, इनकी प्रवृत्तियों की विलक्षणता का वर्णन इस निबन्ध के अन्य प्रकरणों में आ चुका है।

तेजो जलेश्या — यह शुभ वृत्ति मधुर जल, नरम फल, मुरमिन फूल वाली वनस्पतियों में मुख्यतः पायी जाती है। मेडागास्कर में नारियल के पत्तों के आकार का एक 'जलवृक्ष' पाया जाता है। यह यात्रियों को पीने के लिए पर्याप्त मात्रा में जल देता है। यह तीस फुट तक ऊँचा होता है। इनकी पत्तियाँ पक्ष के आकार की चौड़ी होती हैं। प्रत्येक पत्ती के ठूल के अन्त में कटोरा-सा बना होता है जिसमें जल भरा रहता है। यात्री उसमें एक छेद बनाता है जिसमें जल निकलने लगता है। इस प्रकार यात्री को छ नात ढठल में लगभग एक किशोराय जल मिल जाता है जिसे पीकर यात्री अपनी प्यास बुझा लेता है।

मेडागास्कर के रेनीले प्रांत में एक दूसरे प्रकार का जाड़ीदार पौधा होता है जिसकी जड़ों में जल जमा रहता है। यह जन बड़ा ही स्बन्ध, गीतल, स्वादिष्ट व स्वास्थ्यवर्धक होता है। अनेक प्यासे यात्री इनमें प्यास बुझा-

कर अपनी जान बचाते हैं।

इण्डोनेसिया में सुमात्रा द्वीप में एक ऐसा वन होता है जो जल बरसाता है। अतः वहाँ में निवासा में जन वन वन कहते हैं। बापहर के समय जब सूर्य की किरणें काफी तेजी से चमकती हैं तब यह पड़ हवा के द्वारा भाप ग्रहण करता है। कुछ देर बाद यह भाप एकाएक हवा के रूप में बरसने लगती है। यह व नीचे पाड़ी देर में अच्छा खासा पड़ा भर जाता है।^१

दक्षिणी अमेरिका में ब्राजील देश में एक विशेष प्रकार का वन पाया जाता है जिसमें तन में छद्म कर देन से वृक्ष के समान सफेद तरल पदार्थ निकलने लगता है। धीरे में यह तरल पदार्थ गाय के दूध के समान मीठा और पोष्टिक होता है। इसलिए यहाँ में जमनी जाग वने खाते भी पीते हैं। वने तक उत्तर प्रदेश में भी अपने अपने बतन के कर पड़ के पास पड़ जाते हैं और तन में छद्म कर पत्र को तरल पदार्थ से भर लेते हैं।

आप यह है कि आगम में वनस्पति में वनस्पति प्रत्यक्ष दली जा सकती है।

अथ विवेचनाए

आयु —आगम में वनस्पति काय की आयु के विषय में कहा है—

द्विती जहनेय अतोमुह्यत उरकीलेन दस वाससहस्राद्—जीवामियम प्र० प्रतिपत्तः । अर्थात् वनस्पति की आयु जहम अतमोत्त व उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

परीजोता विन्विद्यालय के प्रसिद्ध वनस्पतिविज्ञानविभाजन डा. एडमन्ड गूमा ने कन्फिर्मेशन के द्वारा नेशनल जग में एक ऐसा पेड़ देखा है जिसकी आयु का अनुमान ४६ वर्ष के लगभग लगाया गया है।

मनुष्य गाय अमेरिका के इसी कलिफोर्निया प्रदेश में बड़े बड़े डगलस फर नामक वन पाये जाते हैं जिसकी ऊँचाई १ स ४० फुट तक होती है। किसी विशेष डगलस फर के तने का व्यास ५ फुट से अधिक है। तन में कुछ वर्ष ४५ हजार वर्ष की आयु के है। इनकी विगलता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यदि किसी एक वन के तन का घाटला कर लिया जाय तो उसमें २ से भी अधिक बालक बैठकर आसानी से पढ़ सकते हैं। यहाँ सबक बनाने समय माग में बाधा डालने वाले डगलस फर के वन का विराया नहीं जाता है बल्कि उनका तना का शोखना कर सबक आर-बार निकाल दी जाती है। जो नियम का बचन है कि एक डगलस वन की लकड़ी में यदि न्यासलाई की सीलियाँ बनाई जाय तो वे सतार के कुल दो अरब से भी अधिक मनुष्यों के उपयोग के लिए एक वर्ष तक पर्याप्त होगी।

निद्रा

जमग्र में तेरह जीवस्थानों में जगनावर्णीय वन की चार पाँच प्रकृतियों का उल्लेख माना है।^२ इन तरह जीव स्थानों में ऐक्वेम जीव वनस्पति आदि भी हैं व पाँच प्रकृतियों में निद्रा भी एक है। अतः वनस्पति में निद्रा लना माना गया है। और कहा था है—

छदमलेन भते । मनुष्ये निद्राएज्ज वा पयसाएज्ज वा ? हता निद्राएज्ज वा पयसाएज्ज वा ।

—मनवती ग ५ उ ८ सूत्र ७

गीत में गणधर पूछते हैं—भगवन् ! क्या छदमस्य मनुष्य निद्रा या ऊष लेते है ? भगवान् फरमान हैं कि वे वकी का छाडकर गाय सब जीव निद्रा लेते हैं। भगवन् यह है कि वनस्पति निद्रा लता है। इस विषय में बजानि र १७५

१ सा हिंदुस्तान १७ जून १९६२

२ सा हिंदुस्तान १७ जून १९६२

३ वृद्ध जमग्र गाय ३५



मय बोम का कवन हे—“जैमे जीविन (चलते-फिरते) प्राणी परिश्रम के बाद रात में मोकर थकावट दूर करने हे बैसे ही पेड़-पौधे भी रात को सोते है।”

“मद्रान में खजूर का एक ऐसा वृक्ष है जो मध्य रात में ऊँचकर गिरने लगता है और दोपहर तक सोता है। मध्याह्न के बाद फिर खड़ा होने लगता है और आधी रात तक पूर्णरूपेण गड़ा हो जाता है।”

संस्थान — जैनागमा में वनस्पति काय जो अनेक प्रकार के संस्थान (आकार) वाली कहा है, यथा—

‘अणित्यत्यसंठिया’—जीवाभिनगम प्रथम प्रतिपत्ति, सूत्र १७

इन अनेकविध संस्थानों में एक वामन भी है। मनुष्य के समान वनस्पतियों में भी कुछ पौधे बीने होते हैं। जापान के एक उद्यान में एक विशेष प्रकार के बेर का पेड़ उगा है जो पाँच सौ वर्ष पुराना होने पर भी केवल ३ फुट ऊँचा है। यह वृक्ष एक बड़े गमने में उगाया गया है।^१ अमेरिका के न्यूयार्क नगर में दूसरे प्रेसिडेंट मि० जॉन एडम की स्त्री ने १४६ वर्ष पूर्व अपने ही ग्राम में गुलाब का पौधा लगाया था जो अब तक फूल देता है।

उद्योत नामकर्म — जैनागमों में वनस्पति में उद्योतनाम कर्म का उदय माना है। अर्थात् वनस्पति को प्रकाशमान भी माना है। ऐसे वृक्ष आज भी यत्र-तत्र मिलते हैं जो प्रकाशयुक्त होते हैं। अमेरिका के निवाटी प्रान्त की बस्ती में सात फीट ऊँचा वृक्ष है, जिसे ‘रात्री’ कहते हैं। यह एक मील तक गैंगनी देता है जिसमें बारीक में बारीक अक्षर पड़े जा सकते हैं।

सागरीय वनस्पतियाँ — आगमों में जल में जन्म लेने वाली वनस्पतियों का विस्तार में वर्णन है। वनस्पति-विशेषज्ञों ने शोध करके पता चलाया है कि “धरती पर जिनने घने जंगल हैं समुद्र में उनमें कम घने जंगल नहीं हैं। यह बात अजीब भी लगती है, लेकिन सत्य है। समुद्र में पर्वत हैं, घाटियाँ हैं और मकरी नहरें हैं। वहाँ पौधों के अनेक समूह हैं, पर ये आज भी अपनी पुरानी ही अवस्था में हैं। उनकी जड़ें नहीं हैं। और उनमें पुनरुत्पादन बीज द्वारा नहीं होता, लेकिन अपवाद रूप में कुछ पौधे ऐसे भी हैं -- ईलग्रस (Eelgrass) ऐसा ही उदाहरण है।”^२

वनस्पति की निर्जीवता — जैनग्रन्थों में वनस्पति जिन कारणों से निर्जीव होती है वे इस प्रकार हैं—

सुक्क पक्क तत्त जघिल लवणेण निस्सअ दव्व ।

ज जतेण य छिण्णं त सव्व फासुअ भणिअ ॥

अर्थात् वनस्पति सुखाने, पकाने, नपाने, जटाई तथा लवण मिश्रण, यव द्वारा छेदने से प्रामुक्त (जीवरहित) हो जाती है। आधुनिक वैज्ञानिक भी वनस्पति को निर्जीव करने के लिए उबालना आदि उपर्युक्त क्रियाओं या उपायों का ही उपयोग करते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त भाषा में विहित तथ्य को प्रमाणित करते हैं।

उपसंहार

वर्तमान युग में विज्ञान का बोलबाला है और प्रत्येक सिद्धान्त की प्रामाणिकता विज्ञान के प्रकाश में निरखी-परखी जाती है। दर्शन भी इसका अपवाद नहीं है। आज वही दार्शनिक सिद्धान्त जगत् में प्रतिष्ठा पाता है जो शास्त्र-सम्मत तो हो ही, साथ ही विज्ञानसम्मत भी हो। इस बात को लक्ष्य में रखकर प्रस्तुत निबन्ध में वनस्पति-विषयक विश्लेषण किया गया है।

यह विश्लेषण आगम और विज्ञान इन दोनों पर विविध विवक्षाओं से तुलनात्मक तथा विवेचनात्मक दृष्टियों को लिए हुए है। तुलनात्मक दृष्टियों में आगम और विज्ञान में समता तथा विवेचनात्मक दृष्टि से आगम की महत्ता स्पष्ट प्रकट होती है।

आगमा में निरूपित निम्न सूत्रों की सत्यता गणना विज्ञान से प्रमाणित होने में सहज ही हृदय में यह भाव स्फुरित व स्फुरित होता है कि इन सूत्रों की प्रणना निश्चय ही अतीव द्रव्य ज्ञानी व अत्यन्त भौतिक प्रयोगशालावादी व यांत्रिक साधना से युक्त उच्च युक्त मनुष्यों की प्रणयन से कर पाते। वनस्पतिविज्ञान के समान ही जनागमा में निरूपित परमाणुवाद, कर्म सिद्धान्त आदि भी विज्ञानसम्मत ही हैं। साथ ही अत्यन्त कल्याणकारी भी हैं। शास्त्र प्रणयताओं की ज्ञान ज्ञान की गहान में वे आसार से रहित व चरणा में स्वतः खुल जाते हैं।

उपर वनस्पति विषयक जिन सूत्रों को विज्ञानसम्मत सिद्ध किया गया है उनमें से एक भी निम्न व अप्रत्याशित दान प्रदत्त मनुष्य मिलता है तथा वे विज्ञान व ज्ञान के पूर्व असम्भव समझे जाते थे। इन सूत्रों की रचना जन ज्ञानमन्त्रालय में भौतिक विज्ञान के ज्ञान से हजारा वर्ष पूर्व की थी। अतः यह कहा जाय तो अमुक या अनिर्माणावित न ज्ञानी कि वनस्पतिविज्ञान के सूत्रों की मूलप्रणयना जनागमकार ही थे।

निम्न की सीमा में निबद्ध होने से मने प्राप्त निम्न में प्रयुक्त सूत्रों का विवेचन व विवेचन अनिर्णीत व सांकेतिक रूप में किया है परन्तु इनका विस्तृत विवेचन व विवेचन भी अत्यन्त अपेक्षित है।



जैन खगोलविज्ञान

पं० मिलापचंद कटारिया
विद्याभूषण,



आममान में चमकी वादि सूर्य चद्रमा पारे होत है ? जी—उनका समान चमकी में क्या बताया है ? वे हमारी उन पृथ्वी में मिलने ऊँचे है ? उनका आकार कैसा ? चन्द्र की चौड़ाई कितनी मिलती ? ? उनकी चमकी कितनी मजबूत है ? ये चलते है ? या स्थिर ? और उनके द्वारा जिस तरह में राति-दिन बनते है ? उत्पत्ति क्या हैमा भी जैनशास्त्रों में पाया जाता है उसको भी जानागरी न केवल मामा व जीतो का किन्तु किन्तु ही जैनविद्वानों को भी मती है और न उनको इतना अवबोध है जो वे उन विषय के मशहूर-प्राप्त के द्वा-ए जैन तथा ता ज्ञान-मननर उन विषय को अच्छी तरह हृदयगत कर सकें। उनकी उन्ना दुई कि उन दिना म श्रुत ज्ञान ही मामा प्रस्तुत की जाये इसीके फलस्वरूप यह लेख लिखा जा रहा है।

जैनशास्त्रों में सूर्य चन्द्रादिकों के विमान लिखे है। ये विमान चमकदार पारिवर परतानु में से द्यो है। उनके भिन्न २ रंगों की प्रभा निकलती है। सूर्य में तपे द्यो मात जैमी, चद्रमा में मन्द रंग की चद्र-सुतु में तपे रंग की, बुध से नई चमेली जैमी, वृश्चरति से मोती की सी जैमी, शुक्र में अनु नमय, शनि में कृष्ण बुधमण्डल और मंगल में लाल रंग की प्रभा निकलती है। मिन्ही की प्रभा गहरी है और किन्ही की हल्की। सूर्य चद्रमा, राट, तारा और तारे व इन्ही ५ किम्ब है और ये ज्योतिष्क कहलाते है।

ठीक मोल चीज जिनकी मोटाई मंद जैमी है उनके दो माप करने पर उनमें से एक माप का डगर उन प्रकार स्थापन करें कि गाल भाग नीचे की तरफ रहे और समाल भाग ऊपर की रहे, ठीक ऐसा ही आकार उन ज्योतिषों का समझना चाहिये। ये सब ऊपर की वाली जैमे मोल होने के कारण जिनकी उनकी चौड़ाई है उनकी ही उनकी चौड़ाई है। चद्रमा की चौड़ाई एक योजन के ६१ भागों व ५६ भाग प्रमाण है। सूर्य की चौड़ाई एक योजन के ६१ भागों में ४८ भाग प्रमाण है। शुक्र की १ कोश, वृश्चरति की कुछ कम १ कोश। बुध-मण्डल-यति की आधा-२ कोश की चौड़ाई है। तारों की चौड़ाई किन्ही की पावकोश, किन्ही की आधाकोश, किन्ही की पीत तथा एक कोश की है। किन्तु यही यह भी लिखा मिलता है कि—तोई भी तारा आध कोश में अधिक विस्तार का नहीं होता है। और न कोई भी ज्योतिष्क पाव कोश से कम विस्तार का होता है।

मोटाई का हिसाब प्राय ऐसा है कि—जिनकी जिनकी चौड़ाई है उमने आधी उमकी मोटाई होती है। किन्तु राजवातिक—श्लोकवातिक आदि शास्त्रों ने शुक्र-वृहस्पति-बुध-शनि-मंगल और राहु की मोटाई टाई भी धनुष की ही लिखी है। प्रसंगोपात्त यहा हम क्षेत्रमान का भी कथन कर देते है—

व्यवधान्य के मध्य की जितनी चौड़ाई हो उतन माप का एक उत्प्रेषागुल होता है। ऐसे २४ अंगुलों का एक हाथ, चार हाथ का १ धनुष्य, दो हजार धनुषों का १ कोश और ४ कोशों का १ योजन होता है। यह उत्प्रेषा योजन कहलाता है। इसमें पाच से गुण एक प्रमाण योजन होता है।

कार मुर्वाहिक का बाप प्रमाण याजन व बताया है। उत्पद्य की छाया यह मान पावगी गुण अधि होया।
एकवारिक म लिया है कि—

अन्वयार्थारण्योत्तरकथयित्वावस्थात प्रमाणयोत्तरनयेक्षया सातिरेक्षितवतिप्रमाणतत्रप्रमाणस्यानुतोषयो
जनयेनया ।

—मूल मुद्रित ३७८

अथ - मूल का विस्तार जो एक याजन व ६१ भागों म ४८ भाग प्रमाण बताया व प्रमाण योजन का अयेना
म बताया है। उरार का अयेना ११ उरार विस्तार कुछ अधि २६३ योजन (१५७२ बोरो) का होना है।

शतारण्य म प्रमाणमानन की उत्पद्य यात्रा म चारगी गुणा माना है १ कि पां ती गुणा। अत उगरे
धनुवार एकाप्रमाण ११म व यात्रर अथ म मूल का विस्तार इस प्रकार बताया है—

गनानि शतयोजनयदि कोनास्तयोपरि ।

चापागतिमान त्रिहस्तो प्रथमुत्तम साधिका ॥

तत्तापन मूलविषयुत्तेषामुत्तमानन ॥

अथ १२५६ बाग ३२ धनु ३ हाथ और साधिक ३ अंगु इतना विस्तार उत्तमपायनकी अयेना म मूल
विष का मानना पां य ।

कार च मा का विस्तार एक याजन व ६१ भागों म ५६ भाग प्रमाण बना आव हैं। यह विस्तार गुणक
का है। कि चरमा चरमा वरुता की गिराई ला है। उरार वारण यह है कि—चरमा व नीच राहु का विमान
विचरता रहता है। यात्री राहु व विमान क दरकाड स ४ प्रमाणायन (उत्पद्य की अयेना कुछ अधि ८३ हाथ) कार
चरमा विचरता है। राहु व विमान का वण दवाग है अत उरारी ओट म चरमा का अग आना नै बरु अग हमका
गिराई गही देना है। तया राहु का गति होना व गति व मानन नहीं है। इसीये बरु चरमा म जिनता अगे
पाद रर आता है तन्नुसार चरमा हनका हन धरातर पर चरक ीजता है। दोना की गति म अवर कुछ एग डग
का रहता है जिनम कृष्णप म च मा का साहू मया (१६ बागमा) में प्रतिनि ए ए भाग हकता रहता है और
गुप्त वस म प्रतिनि ए ए भाग प्रक होना रहता है। विद्वानगारकीर अथ म किया है कि—

गुप्त पत्र में राहु की गति चरमा म गत्य धीमी रगी है और कृष्ण पत्र म गत्य तेज र नी है। इसीये
होना पता म य मा पत्रा बढ़ता नजर आता है। उराराय एगरी यह हुआ कि कृष्णप व पत्र म जब चरमा १६
भाग म स १४ भाग प्रमाण राहु की जा म एग आता है ता गुष्णप म चरमा की गति म राहु का गति धीमी होत
म गत्यका की प्रतिनि म च मा मान २ भाग राहु म अगे निरलता आता है रवा रवा हा बर हर नि मोर
भागों में एक-एक भाग अधि २ वरता हुआ नजर आता है। यहूटें नि बरु दनर चागे निरल जाता है कि उगरे
नी राहु का अ रगी हो नर। य नि गुप्त की गति का हुआ है। उगी त चरमा हम गुष्णप म गिराई देता
है। फिर उगरे अनवर उर कृष्णप। गुप्त होना है ता राहु का गति चरमा की गति म तेज हो जात व कारण च मा
मान २ बोरो रहता है। और उरारा नी राहु धीमे अगे बढ़ता जाता है रवा रवा हा चरमा हर नि म गत्य भागों म
एक-एक भाग वरता हुआ चरमा आता है उत्पद्य व हम प्रतिनि वस वस नजर आते एगना है। समान का चरमा
व १५ भाग राहु म आरणा त हा जात वरता उरारा एग भाग फिर ना अरारण हो व ता है और गुर्वाहिक के वरत
म हो चरमा मा उग निर आने धरतयान वर वरुच आते व कारण उरारा बर दनारण एग भाग हो हमारा समान
की गति म नजर नी आता है। बर निरनि ता निर राहु की बरत म होती है। किमु गुष्णप पत्र राहु और हाता है
बर भा गति होना है जिनका यहूट म च उरार होता है। गुप्त व निर अर निर राहु च व मान नी रगा ना
वनी २ उगी त वरत च मा व भाग आता है। व एगता मुल अगे पाते होता है रगा गार व उरार हम
गिराई देता है। एगता उरारा का एक वनु गामर उरारिक की होता है। य भी वमा समान का व



सूर्य के नीचे आजाता है जिसमें सूर्यग्रहण होता है। तिलोत्तमा गाया २३६ में चन्द्र को राहुग्रहण और सूर्य को केतु-ग्रहण ही होता बताया है। किन्तु भस्माभरन्तोत्र (मानतुंगकृत) के श्लोक न० १७-१८ में प्रमथ सूर्यचन्द्र दोनों को राहु-ग्रहण ही होना बताया है। श्वे० मरुहणी सूत्र में लिखा है कि—राहु के समान उभी उभी केतु में भी ग्रहण होता है। चन्द्रग्रहण मदा पूर्णिमा को और सूर्यग्रहण मदा अमावस को होता है। सूर्य और चन्द्रग्रहण काल में वस उह माना में एक बार और अधिक से अधिक चन्द्रग्रहण ४२ मामों में एक बार और सूर्यग्रहण ८८ वर्षों में एक बार होता है।

धरातल से ज्योतिष्को की ऊँचाई

इस धरातल में ७६० योजन की ऊँचाई पर तारे हैं। उाँगे दस योजन ऊपर सूर्य है। सूर्य में ८० योजन ऊपर चद्रमा है अर्थात् पृथ्वी में ३५ लाख २० हजार मील की ऊँचाई पर चद्रमा है। चद्रमा में ८० योजन ऊपर नक्षत्र हैं। ग्रहों की संख्या ८८ में से बुध का स्थान नक्षत्रों में ४ योजन ऊपर है। बुध में आगे शुक, बृहस्पति, मंगल और शनि ये क्रमशः तीन तीन योजन ऊपर-२ हैं। राहु-केतु का स्थान चद्र-मुख में नीचे है। शेष ८१ ग्रहों का स्थान बुध और शनि के अंतराल में है। इस प्रकार ज्योतिष्क पटल उग धरातल में ७६० योजनों की दूरी में प्रारम्भ होकर ६०० योजनों पर्यंत स्थित है अर्थात् ऊपर ७६० योजनों बाद ११० योजनों तक ज्योतिष्को का सम्भाव प्राप्त जाता है। और उन सबका निर्यक् अवस्थान प्रायः एक राजप्रामाण्यमाना ही है। किन्तु हमने स्तत्रा विशेष समझना कि—जबूद्वीपरव मेरु के इर्दगिर्द ११२१ योजनों तक किसी भी ज्योतिष्क का सम्भाव नहीं है। वरिष्ठ सूर्य-चन्द्र तो हमारा जवूद्वीप में मेरु में कम में कम ४४८२० योजन दूर रहकर ही घूमते हैं। जिस ज्योतिष्क की धरातल में जितनी ऊँचाई बताई है वह धरातल में मदा उतना ही ऊँचा रहता है जैसे सूर्य की ऊँचाई पृथ्वी में ८०० योजन ऊपर बताई है तो वह उदाम्ना के वनत भी पृथ्वी में उतना ही ऊँचा रहना है। दूर रहने की वजह से अपने को नीचा पृथ्वी में लगा हुआ दिखाई देता है।

ऊपर सूर्य में चद्रमादि की जो ऊँचाई बताई है उसमें वह नहीं समझना कि चद्रमादि सूर्य की सीध में इनमें ऊँचे हैं। जब परस्पर में उनकी समानगति नहीं है तो वे मदा एक सीध में कैसे रह सकते हैं? कदाचित् कोई कभी एक सीध में भी आजाये तो आजाये पर इस सीध की अपेक्षा यहाँ एक में दूसरे की ऊँचाई बताने की विवक्षा नहीं है। यहाँ तात्पर्य ऐसा समझना कि—जो ज्योतिष्क जागाय की जिस मतह में घूमता है वह मतह अमुक ज्योतिष्क में उतनी ऊँची है। जैसे चद्रमा में ४ योजन ऊपर नक्षत्र बताये तो उसका अर्थ यह हुआ कि आकाश की जिस मतह में नक्षत्र विचरते हैं वह मतह चद्रमा की विचरने की मतह में ४ योजन ऊपर है। यह ध्यान में रखना कि जिनका स्थान जितनी ऊँचाई पर बताया है वे सब आकाश में उस स्थान में एक ही मतह में विचरते हैं।

यह नियम है कि जिस द्वीप में जितने चद्रमा होते हैं उनमें से प्रत्येक चद्रमा के साथ निम्नलिखित ज्योतिष्क भी अवश्य होते हैं। यह उसका परिवार कहलाता है—

“१ सूर्य, २७ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६६७५ कोडाकोडी तारे” यहाँ कोडाकोडी ने मतलब है ६६६७५ क्रोड को एक क्रोड से गुणा करने पर प्राप्त होने वाली मत्था। वह मत्था प्रचलित के अनुसार ६६ लाख, ६७ पचा ५० नील होती है। जबूद्वीप में २ चद्रमा होने से ज्योतिष्को की उन्नत मत्था जबूद्वीप में दूनी समझना चाहिये। जबूद्वीप में जब कभी एक चद्रमा जहा अपने समस्त सूर्यादि परिवार के साथ, आकाश की गोलार्ध में विद्यमान होगा, उभी वनत आकाश की गोलार्ध में नामने दूसरा चद्रमा भी अपने सूर्यादि परिवार के साथ विद्यमान रहेगा। जबूद्वीप में जिस समय एक सूर्य अभ्यतर की प्रथम बीथी में विचरेगा, उभी समय ठीक उसी के नामने दूसरा सूर्य भी उसी प्रथम बीथी में (आकाश की गोलार्ध की बीथी कहते हैं) विचरेगा। उस वनत दोनों सूर्यों के बीच ६६६४० योजनों का अंतर रहेगा। वह इस तरह कि अभ्यतर की प्रथम बीथी जबूद्वीप की अन्तिम सीमा में १८० योजन भीतर है। अतः दोनों तरफ का १८०-१८० मिलाने पर ३६० योजन हुए जिन्हें एक लाख योजन प्रमाण जबूद्वीप में में कम करने पर ६६६४० योजनों की दूरी अभ्यतर की प्रथम बीथी स्थित दोनों सूर्यों के बीच जाननी चाहिये।



सामने के दो मूर्तों में दिन रहता है तब उम्मी वन विचने भाग में पूर्व-पश्चिम विदेह में रात होती है। और विचने भाग में सामने सामने के दोनों मूर्तों में पूर्व व पश्चिम विदेह में दिन रहता है तब अगल वगल दोनों भागों में (जबू-द्वीप के दक्षिण और उत्तर भाग में) रात होती है। जब निपधार्जत पर पूर्व दिशा में सूर्य उदय होता है तब उन वक्त जबूद्वीप के दक्षिण भाग में दिन हो जाता है। इसी वक्त इसी मूर्त का सामने वाला सूर्य नील पर्वत पर पश्चिम दिशा में उदय होकर उसमें जबूद्वीप के उत्तर भाग में दिन हो जाता है। तब उस वक्त पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह में रात्रि हो जाती है। जब निपधगिरि के पूर्व शिरे पर उदय होने वाला सूर्य चलकर निपध के पश्चिम शिरे पर आ जाता है तब वह जबूद्वीप के दक्षिण भाग के लिये अस्त होकर वहा रात्रि हो जाती है। और उम्मी मूर्त का उम्मी वक्त पश्चिम विदेह में उदय माना जाकर वहा दिन हो जाता है। तब उम्मी तरह जो दूसरा सूर्य नीलगिरि के पश्चिम शिरे पर उदय हुआ था वह चलकर जब नीलगिरि के पूर्वोत्तर शिरे पर आता है तब वह जबूद्वीप के उत्तरीय भाग के लिये अस्त होकर वहा भी रात्रि हो जाती है। और उम्मी मूर्त का उम्मी वक्त पूर्व विदेह में उदय माना जाकर वहा दिन हो जाता है। यह ध्यान में रखना कि ऐसा नम रात्रिदिन के वक्त होता है। पूर्व विदेह में उदय होने वाला दूसरा सूर्य जब नीलगिरि में चढ़ कर निपध पर आता है तो वही दूसरा सूर्य भगवत्क्षेत्र में दूसरे दिन उदय होता है। न कि पूर्व दिन में अस्त में अस्त होने वाला सूर्य। वह तो भरत में तीसरे दिन उदय होगा। क्योंकि जिन दिन जो सूर्य भरत में अस्त होता है उस दिन की रात्रि में वह पश्चिम विदेह में रहता है। उसके दूसरे दिन वह ऐरावत में रहता है और दूसरे दिन की रात्रि में वह पूर्व विदेह में रहता है। वही सूर्य फिर तीसरे दिन भरत में प्रकाश करता है। इसी गति में ऐरावत क्षेत्र का अस्त हुआ सूर्य पुन तीसरे दिन ऐरावत में प्रकाश करता है। एक सूर्य आधे विदेह को ही प्रकाशित करता है। बीच में पड़े मेरु के विदेह के दो भाग माने जाते हैं। पूर्व दिशा की ओर के एक भाग को पूर्व-विदेह और पश्चिम दिशा की ओर के भाग को पश्चिम विदेह कहते हैं। दोनों भागों में दो सूर्य का प्रकाश रहता है। निपध और नील पर्वत के बीच में विदेह क्षेत्र स्थित है। निपध में नीच तक जाने में सूर्य का उतना ही समय लगता है जितना निपध या नील के पूर्व शिरे में पश्चिम शिरे तक जाने में लगता है। क्योंकि जबूद्वीप के कुल १६० भागों में ६४ भागों में बीच का अकेला एक विदेह क्षेत्र है। और जेप ६३-६३ भागों दोनों तरफ के दक्षिण-उत्तर के सब कुलाचल और क्षेत्र हैं।

तत्त्वायंमूर्त के श्री अकरुन्देवकृत भाष्य में मेरु की सब क्षेत्रों में उत्तर में वसति हुये इन विषय में निम्न प्रकार प्रतिपादन किया है—

“पूर्वविदेहे हि भविता नीलादुदेति, निषधेऽन्तर्मुपनि। तत्र प्राङ् नील, प्रत्यङ् निषध, अपाङ् समुद्र मेरुदक् । अपरविदेहे तु निषधे उदय नीलेऽन्तर्मुपनि । तत्र प्राङ् निषध, प्रत्यङ् नील अपाङ् समुद्र, उदङ् मेरु । उदङ्कुण्डु गवमादनादुदयो माल्यवत्यस्तमय । तत्र गवमादन प्राक्, माल्यवान् प्रत्यक्, नील, अपाङ्, मेरु उदक् । देवकुरुण्डु सोमनमादुदय, विद्युत्प्रभेऽन्तर्मुपनि । तत्र सोमनम प्राक्, विद्युत्प्रभ प्रत्यक्, निषधोऽपाङ्, मेरुदगिति ।”

—अध्याय ३ सूत्र १० की व्याख्या

अर्थ—पूर्व विदेह में सूर्य नीलकुलाचल पर उदय होता है। निषध पर अस्त होता है। वहा पूर्व में नीलाचल है, पश्चिम में निषध है। दक्षिण में समुद्र और उत्तर में मेरु है। पश्चिम विदेह में सूर्य निषध पर उदय होता है नील पर अस्त होता है। वहा पूर्व में निषध है, पश्चिम में नील है, दक्षिण में समुद्र, और उत्तर में मेरु है। उत्तर-कुण्ड में गवमादन पर सूर्य उदय होता है, माल्यवान् पर अस्त होता है। वहा पूर्व में गवमादन है, पश्चिम में माल्यवान् है, दक्षिण में नील और उत्तर में मेरु है। देवकुरु में सूर्य सोमन पर्वत पर उदय होता है, विद्युत्प्रभ पर अस्त होता है। वहा सोमन पूर्व में है, पश्चिम में विद्युत्प्रभ है, दक्षिण में निषध और उत्तर में मेरु है। इन प्रकार सब स्थानों में मेरु उत्तर की तरफ रहता है। माल्यवान्, सोमन, विद्युत्प्रभ, और गवमादन ये ४ गजदत्त पर्वतों के नाम हैं और इनका स्थान क्रमशः मेरु की ईशानादि विदिगाओं में है। गवमादन और माल्यवान् के बीच उत्तरकुण्ड व सोमन और विद्युत्प्रभ के बीच देवकुरु क्षेत्र है।

नक्षत्र भ्रमण नहीं करते हैं। जिन नक्षत्रों की जो रात एक बीघी नियत है वे उसी मसरा भ्रमण किया करते हैं ऐसी बीघीयें सब नक्षत्रों की कुल ८ हैं। उनमें २ बीघी जवूदीय में और ६ उषण समुद्र में हैं। प्रथम बीघी में अग्निम बीघी उत्तर दक्षिण में ५१० गोचन दूर है। नक्षत्रों की प्रथम बीघी चन्द्रमा की प्रथम बीघी के ऊपर है और ८ बीघी बीघी चन्द्रमा की अन्तिम १५ बीघीयों के ऊपर है। नक्षत्रों की दोष २ बीघी में ७ बीघी बीघीयों में चन्द्रमा की ३ बीघी, तानरी, उठवी, आठवी, दसवी, ११ बीघी की बीघी के ऊपर है। नक्षत्रों की प्रथम बीघी में १२ नक्षत्र दृश्यते हैं, उनके नाम

जमिजित्, श्रवण, अनिष्टा, मर्तनिषा, पूर्वानिषा, पूजाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्लेषा, श्रवणि, पूर्वफाल्गुनी, भरणी।

तीसरी बीघी में—मघा, पुनर्वसु ये २ नक्षत्र दृश्यते हैं। तानरी बीघी में रोहिणी, निशा ये २ नक्षत्र दृश्यते हैं, छठवी में कृत्तिमा, आठवी में श्रियाया, दसवी में जनुगया, और ११ बीघी में ज्येष्ठा मसरा भ्रमण किया करता है। १५ बीघी बीघी में ८ नक्षत्र भ्रमण करते हैं उनके नाम—

हस्त, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्य और ज्येष्ठा। जो नक्षत्र जिन बीघी में प्रथम है वह अपनी छात्र में उस बीघी को ५६ ३३ ७ मूहों में पूर्ण कर लेता है अर्थात् पूरा एक चत्वार उगा लेता है।

प्रकाश और अधिकार

काई कहते हैं—“सूर्य जब, मेघ की आउ में था जाता है तब वह हमें अन्ध होता नजर आता है। और आठ से निकलने वन उदय होता नजर आता है। परन्तु ऐसी जैन-मान्यता नहीं है। क्योंकि मेघ उत्तर दिशा में है और सूर्य का उदयास्त पूर्व-पश्चिम दिशा में होता है। दूसरी बात यह है कि मेघ की चौड़ाई जैनगम में दस हजार योजनो में अधिक नहीं दिखाई है। इसको तो पूर्व अपनी गति में तभी दो मूर्तों में कम से ही गाय करना है। ऐसी अवस्था में मेघ की जाड की बात बनती नहीं है।

कोई कहते हैं—“पृथ्वी नारगी की तरह गोल है और सूर्य उसके नीचे ऊपर चक्कर लगाता है अतः उसकी आठ में आने में सूर्य अन्ध और आउ में निकलने पर उदय होता है। जिसमें उदयास्त के वन सूर्य पृथ्वी में निरन्तरता व उसमें प्रवेश होता नजर आता है। और इसी में उदयास्त के वक्त सूर्य का पाव आधा आदि हिस्सा भी दृष्टिगोचर होता है। एक दम पूरा मटल दिखाई नहीं देता है।”

किन्तु इस प्रकार की भी जैन मान्यता नहीं है, उसका कारण यह है कि—यद्यपि सूर्य पृथ्वी में आठ में योजन ऊंचा है यद्यपि वह उदयास्त के वन हमसे बहुत दूर रहने के कारण पृथ्वी में लगा हुआ प्रतीत होता है और दूर होने से पहिले उसका आगे का भाग नजर आता है, बाद में फिर पिछला भाग भी दिखने लगता है उसी में हमको उस के पाव आधा आदि हिस्सा दीखने का भ्रम हो जाता है।

तथा हम यह भी सर्वथा नहीं कहते कि पृथ्वी विस्तृत दर्पण के समान सपाट ही है, उनमें भी कालादिवश से ऊंचाई नीचाई हुई है। यह बात आचार्य श्री विद्यानंद स्वामी ने श्लोकार्थात् के निम्न वाक्यों में प्रगट की है—

“न च वयं दर्पणसमतलमेव भूमि मापामहे प्रतीतिविशेषात् तस्या कालादिवशादुपचयापचयमिद्वेनिम्नोन्नताकारमद्भावात् तत एव नोदयास्तमययो सूर्यादिविवाहदंशनं विरुध्यते । भूमिमलमनतया वा सूर्यादिप्रतीति-नं सभाव्या, दूरादिभूमेस्तथाविधदंशनजननशक्तिमद्भावात् ।”

(अध्याय ४ सूत्र १३)

अर्थ—हम जैन यह भी नहीं कहते कि पृथ्वी दर्पण के समान समतल ही है। समतल कहना प्रतीति के विरुद्ध है। कालादि के वन में घटावड़ी होकर पृथ्वी में ऊंचा नीचापन देखा जाता है। इसलिये उदयास्त के वक्त सूर्यादि का आधा बिज दिखाई देने में कोई आगति नहीं है। और त्रिपक्षी का यह कहना कि ‘पृथ्वी नारगीवत् गोल न होती तो

उत्थास्त क वनत मूर्त्ति ता भूमि से उभा उठा दष्टि म आना सभव नही था उचित नही है । क्या ता भूमि म दूरी मान और दूर की चीज पथ्या म उभा हूद नजर आये मयी नेत्रांकित होने से भा हो सकता है ।

इस प्रकार सामग्री ने विधी प १५ की आत्मा क कारण मूल का उत्थास्त नही है । किन्तु समस्त भूमि म जातिन मूल का प्रमाण पत्ता है । उसरी दूरी म मूल का उत्थास्त समगता पाविये । जब मूल अश्वतर की प्रथम बीबी म होता है तब उस का कुछ प्रमाण मूल म पाविये म ६४५२६ १ योजनो तक पत्ता है । उसमें म आधा आग का और आधा पात्र का दस्ता है । यानी साधार ४३२६४ यात्रनो की दूरी पर भरत क्षेत्र के अयोध्यावासियों को वह मूल उभा म उभा होता नजर आता है और अनन्त । दूरी पर वह पश्चिम म अस्त होता नजर आता है । निपटारा के जिन स्थान पर मूल का उत्थास्त होता है व स्थान भी जयोध्या से इतना ही दूर है । इना जन्म मे भरतभूमि क सामान्य मूल का उदयास्त निपट पत्र पर बताया है । एतना ही प्रमाण सामने के दूसरे मूल का र ता है । दाना तरफ अश्वतर म पदचिह्न र ता है । पशु या तब आग चन्मा तायगा समया प्रमाण भी उदय साथ आगे २ दस्ता जावगा और पात्र अश्वतर गोत जावगा । म बीबी का परिधि ३१५ ८६ यात्रनो का है । उनम म आमन सामने क दाना मूर्त्ति का ता १८६ ५ ५ यात्रनो का है । तथा एक तरफ क अश्वतर म ६३ १७ ५ यात्रनो का अश्वतर दस्ता है । दाना तरफ क अश्वतर का प्रमाण १२ ५ ५ यात्रनो का होता है । कुछ ता (प्रमाण) और तम (अश्वतर) की जाह ३१५ ८६ यात्रनो का होती है या । अश्वतर प्रथम बीबी की परिधि (चरा) होती है । म बीबी म मूल क समस्त चरत समस्त जन्माप म प्राय मवग १८ मूर्त्तियों का ता और १२ मूर्त्तियों की राशि होता है । इस बाधा म स्थित मूल का उत्तर मोलन ताप मेरु क मध्य म उतर उदय मनुष्य के ६४ भाग तक र ता है । ऊपर का आनापक सी यात्रन और ताप का १८ यात्रन तक रहता है । यह बाधी म ६ मध्य से ४८८० यात्रनो का दूरी पर है । म बीबी म उभा या उत्तर म तरफ जावगा तब ता आवाग प्रमाण का यात्रा उत्तरातर कम होती जावगी और अक्षिण की तरफ जावगी उभा जावगी । जब जा ताप प्रथम बीबी स्थित मूल का प्रथम बीबी म बताया है व ताप भी उदय वनत उत्तर की तरफ जावगा प्रमाण का यात्राई म उदय नही बताया है किन्तु उत्तरातर पत्ता बताया है । और मोलन तरफ क आवाग प्रमाण का यात्राई म उत्तरोत्तर बढ़ता बताया है । मवग कारण ताप यह हा कि मोलन का मोड़ जौ कहा कम दूरी पर हुआ है व बीबी ताप कम फल है । और जहा जौ मोल अधिक दूरी पर हुआ है वही बीबी ताप आवाग पत्ता है ।

और जब मूल अतिम बाह्यबाधा म विचरता है तब व दाना तरफ के मूर्त्ति का ताप १२३३२५५ यात्रनो का दस्ता है । और दाना तरफ का अश्वतर १६ ६८ ५ यात्रन प्रमाण दस्ता है । प्रकारांतर म यो समन्वित प्रथम बीबी में जब मूल विचरता है तब उम प्रथम बाधी का आवाग प्रमाण बाधियों का अपना अपनी परिधियों का । भागा म म ६ भागा म ताप दस्ता है और ४ भागा म अश्वतर दस्ता है । तथा जब मूल अतिम बाह्य बाधा म विचरता है तब उदय और अय तथो बाधियों का परिधिया म १ भागा म म ६ भागा म ताप म ६ भागा म अश्वतर दस्ता है । मध्य की पाव पाविया म म मिति किसी बाधी म मूल क विचरत वनत अय तब बाधियों म ताप प्रमाण इतना है ? यात्रनो — लिख उा बाधी की परिधिया म ६० का भाग दन पर पाविया आर उगरी मूल क विचरत बाधा बीबी म स्थित क मूर्त्तियों म मुखा कन पत्ता म ताप हा उान योजनो का उनम ताप प्रमाण समगता पाविये । इतम प्रमाण पत्ता है कि ताप म बाधियों की आर जान समस्त मूल का रवभाजन हा ताप उत्तरोत्तर पत्ता जाता है और बाधियों म अश्वतर पव की आर आन समस्त ताप उगसातर पत्ता हुआ जाता है । आग बाध बाधा म मूल क विचरत पत्ता प्राय जहूँ पव म स्थितान १२ मूर्त्त का और राशि मान १८ मूर्त्त का होता है । यह तब म छाया नि और मवग म । रात—माघ माघ म होता है । तथा १८ मूर्त्त का दस्ता नि और १० मूर्त्त का छाया रात आरण माघ म होती है । बाधा और बाधियों म १५ १५ मूर्त्तों का समान्ति नि होता है । उम मम म मूल मूर्त्तों की म विचरता है । और उम मम मम बाधियों म ताप और तम का प्रमाण समान मागा म र ता है । अश्वतर का प्रथम बाधा से बाहर का अतिम बाधा म जान म मूल का १८३ नि ताप है । मवग बाधियों का म अश्वतर म आन म उगी तरफ मव की





१८३ दिन लगते हैं। उसे उत्तरायण कहते हैं। दक्षिणायन में प्रथम दिन पटना है, और उत्तरायण में प्रथम दिन बटता है। यह घटापटी ६ मूर्धन तक होती है। १८३ दिनों में ६ मूर्धन की राति-शुद्धि हो तो एक दिन में गिनती हो ऐसे तैरायिक करने से २ मूर्धन का ६१ वा भाग प्रमाण ताल की प्रतिगिन राति-शुद्धि होगी। अर्थात् ३०॥ दिन में १ मूर्धन दिन घटे बड़ेगा। यानी आयण में १८ मूर्धन का, भाद्रपद में १८ मूर्धन का और माघ मास तक प्रति माघ एक एक मूर्धन दिन घटना समझ लेता। उस प्रकार दक्षिणायन में दिनमान घटना जाता है। इसी आगे उत्तरायण चलता है। उसमें आयण मास तक प्रतिमान उसी क्रम में दिनमान घटना जाता है। चैत्रे जातुन में १३ मूर्धन का, चैत्र में १४ का इत्यादि। प्रायः ३० मूर्धन का जहोराय होता है तथा नियम है उसलिसे जब गिनता दिनमान होगा तब ही शेष मूर्धनों की राति होगी।

यहाँ हम यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि—हमारे यहाँ दिन होगा तो विदेश क्षेत्र में राति होगी और विदेश में राति होगी तो हमारे यहाँ दिन होगा, किन्तु उत्तरायण पट नहीं है कि—हमारे यहाँ सूर्यास्त होने ही विदेश में सूर्योदय होने लग जाय या वहाँ सूर्योदय होने ही यहाँ सूर्यास्त होने लग जावे। ऐसा तो सम्भव दिनों के वस्तु हो सकता है। विषय राति दिन में तो ऐसा नहीं हो सकता है। क्योंकि जब १८ मूर्धन का दिन और १० मूर्धन की राति होती है तब भरत क्षेत्र में सूर्यास्त होने के ३ मूर्धन पहिले ही पश्चिम विदेश में सूर्योदय हो जायेगा। और पूर्व विदेश में सूर्यास्त के ३ मूर्धन पूर्व ही भरत में सूर्योदय हो जायेगा। मन्त्रय कि उस क्षण भरत में जो दिन का अन्तिम ३ मूर्धनात्मक भाग है वही पश्चिम विदेश में दिन का ३ मूर्धनात्मक प्रारम्भिक भाग है। तथा पूर्व विदेश में जो दिन का अन्तिम ३ मूर्धनात्मक भाग है वही भरत में दिनका ३ मूर्धनात्मक प्रारम्भिक भाग है। और जब १८ मूर्धन का दिन होता है तब सूर्यास्त के तीन मूर्धन बाद में पश्चिम विदेश में सूर्योदय होता है। और पूर्व विदेश में सूर्यास्त के ३ मूर्धन बाद में भरत में सूर्योदय होता है। जाण कि दिनमान और राति मान में जो रात्र का अन्तर है उसमें दिनमान तितना अधिक होगा उसका आधा समय पूर्वक्षेत्र में सूर्यास्त का शेष रहने ही उत्तर (अगले) क्षेत्र में सूर्योदय हो जायेगा। तथा जितना अधिक रातिमान होगा उसका आधा समय पूर्व क्षेत्र में सूर्यास्त के बाद उत्तर क्षेत्र में सूर्योदय होगा।

शुक्ल-कृष्णपक्ष

जिन पञ्चवाटे में सूर्यास्त के बाद प्रतिगति उत्तरोत्तर बढ़ते हुए एक एक मूर्धन तब चन्द्रमा दिखाई देता है, और फिर अस्त हो जाता है वह शुक्लपक्ष कहलाता है। और जिन पञ्चवाटे में सूर्यास्त के बाद प्रतिगति उत्तरोत्तर घटते हुए एक एक मूर्धन तक चन्द्रमा का उदय नहीं होता बाद में उदय होकर नागों राति तब चन्द्रमा दिखाई देता है वह कृष्णपक्ष कहलाता है। ऐसा चन्द्रसूर्य की समानगति न होने के कारण से होता है। हमेशा चन्द्रमा सूर्य के धीमी गति चलता है। करने २ हर अमावस को चन्द्रसूर्य नाश हो जाते हैं। इसीलिसे अमावस का पर्यायनाम सूर्येन्दुनाशमो है। उस दिन दोनों साथ साथ अस्त होते हैं। दूसरे दिन शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को चन्द्रमा अपनी चाल से सूर्य में टपता पीछे रह जाता है कि उस दिन जहाँ उसे अस्त होता है वहाँ वह सूर्यास्त के १ मूर्धन बाद में पहुँचना है इसलिसे शुक्ल प्रतिपदा को सूर्यास्त के १ मूर्धन बाद तक चन्द्र दिखता रहता है। फिर अस्त हो जाता है। आगे द्वितीया को २ मूर्धन, तृतीया को ३ मूर्धन बढ़ते बढ़ते पूर्णिमा को सूर्यास्त के १५ मूर्धन बाद तक चन्द्र दर्शन होता रहता है। समगति दिन में राति १५ मूर्धन की होती है। अतः तब पूर्णिमा को मारी राति में चन्द्रमा की छावनी रहती है। उस दिन जिस वक्ता पश्चिम में सूर्यास्त होता है उसी वक्ता पूर्व दिशा में चन्द्रमा अपने उदय स्थान में जाकर उदय हो जाता है। आगे कृष्ण प्रतिपदा को चन्द्रमा चार में टपता पीछे रह जाता है कि सूर्यास्त के मूर्धन बाद में चन्द्रमा अपने उदय स्थान पर आकर उदय होता है। इसीलिसे कृष्ण प्रतिपदा को चन्द्रमा का उदय सूर्यास्त के १ मूर्धन बाद होता है। आगे द्वितीया को २ मूर्धन बाद, तृतीया को ३ मूर्धन बाद, इत्यादि प्रतिदिन एक एक मूर्धन बढ़ते २ चतुर्दशी को सूर्यास्त के १४ मूर्धन बाद चन्द्रादय होता है। आगे अमावस को सूर्यास्त के वक्ता ही चन्द्रमा भी अपने अस्त स्थान पर पहुँच कर अस्त होकर सूर्य चन्द्र दोनों साथ साथ हो जाते हैं। चूँकि चन्द्रमा की सूर्य में मन्दगति होने के कारण उस राति के अन्त में चन्द्रमा के अपने उदयस्थान पर पहुँचने के पहिले ही सूर्य आगे चरकर उदय हो जाता है इसमें अमावस की मारी राति में चन्द्रदर्शन नहीं होता है। इस प्रकार यह सूर्य के निमित्त में समझाया समय तक चन्द्रदर्शन होता जानना

चाहिये। यह कि धूम्र म चन्मा व छात्र बड़े आकार का हाना राह के निमित्त से बनाया है—यह इन दोनों कथना में खास अंतर समझना चाहिये।

भूगोल खगोल के विषय में कुछ विभिन्न बातें हमने जन विषय रत्नावली पुस्तक में भी प्रेषित की हैं—पृष्ठा २८४ पर भरतखण्ड में उद्धृत कृत्य किमथा है? नीयक निरुद्ध तथा प २६१ पर—उल्लेख जन प्रथा में “प्राणिप चक्र की व्यवस्था” नीयक विषय।

भारतीय वष नाम निबि नमत्राणि की गणना धूम्र चन्मा तारा की चान पर आधारित है जन कि अन्य मभी की चन्डर (Calander) पचास पठनि कालनिक है अतः बह श्रुत्या से भी मल नहीं खानी। प्रसंगात्त भू भ्रमण के विषय में भी यहाँ मभी तारक विचार नीय प्रस्तुत किये जाते हैं—

भू भ्रमण साधना की सदायता

जन जननर गोवाः एव रा चारु सभा के घमप्रथा (आमम रिटन वन् आईविज कुरान म्मि) में पृथ्वी को स्थिर और सूर्य का चर माना है किन्तु जय प्यानिप और गणित पद्धतियों में विज्ञात था युग आया तब इस विषय में ताकि दृष्टि से ऊँचापोह होने लगा। बरा मिहिर ब्रह्मगुप्त मीघर यह भास्वर तथा महावीर आदि प्रसिद्ध गणनाकारों में विषय में घमप्रथा की साधना के ही समय में यह पर इन बीच आयमट्ट (वि० त० ५३३) आदि कुछ गणितकारों ने पृथ्वी को चर बनाया। भारतवर्ष में वन् युग भी इस विषय के खड्ड मडन का रहा।

भू स्थिर मान्या के जोरदार तब (प्रन्त) निम्नांकित थे—

१—अगर पृथ्वी चक्र है तो पक्षी सुबह आन योगना को छात्रर नाम वहाँ बापिन बने आ जाते हैं?

२—आकाश में फर जान घाते बाण विनीत क्या नहीं हो जात? आकाश में फँकी गई वस्तु विषम गति घाल और निगलनर क्या है? हो जाता?

३—पृथ्वी की गति का मल हाना कम कारण माना जाय तो एक दिन रात में कम विलुप्त पृथ्वी का पूरा भ्रमण क्या हो जायगा?

एकदो विपरीत अगर पृथ्वी का तीव्र वेग हो घूमना मानने हो तो इससे उग पर इसकी प्रचंड घायु चलगी कि जिससे महज मरान वष पथताकि की ओटिया ध्वजाएँ आदि सब दिव्य चिह्न हो जायेंगे। जन पृथ्वी का भ्रमण किसी भी तरफ सिद्ध नहीं होता।

४—पृथ्वी समान रूप से गति करता हुआ वष भर में सूर्य का एक पूरा चक्कर लगाती है तो आनुशा का परिवर्तन क्या सम्भव है?

५—अगर पृथ्वी चलती है तो प्रवनारा उत्तर की ओर हो मल एक स्थान पर ही क्यों पड़ाई देता है? पृथ्वी का मापारण दृष्टि भ्रमण का प्रतिनिध सूर्य धूम्र में पश्चिम में जाता हुआ म्मिना रहे और पृथ्वी का दैनिक-प्रापि भ्रमण में भा प्रवनारा म्मा का रथा दिशर गह्रा रहे मल कैसे माना जाय?

इस प्रन्ता और तर्कों का कोई समुचित उत्तर भू भ्रमणवादियों का पास नरा।

इसके सिवा भू भ्रमण प्रत्यक्ष-अधिनि भी है क्योंकि सब दश काल में सब प्राणिमों का पृथ्वी का स्थिरता का ही आशय होता है। अनुमान में भी भू भ्रमण का कोई निश्चय नहीं होता क्योंकि उग प्रकार का कोई अधिनाभाव होनी नहीं दिया जाता। (विज्ञान जानन के सिद्ध—यों मल विज्ञान प्रत्यक्ष-अधिनि है)।

एक तरफ भू स्थिरता का सिद्धांत में यह बात तब भाव्य और प्रचलित रहा किन्तु पाश्चात्य देशों में तब प्रथम १६ वीं दशक में कालनिरुद्ध पृथ्वी को चर और सूर्य को स्थिर बनाया। गैलिलिओ ने भी विभिन्न प्रमाणों से



इसकी पुष्टि की किन्तु पाँच लोगों ने इसे बाइबिल का अपमान बनाया। परिणाम स्वरूप गेलिकिओ आदि को राजकीय दण्ड भोगने पड़े। फिर भी यह मान्यता नये नये मित्रातों की राजों ने उत्तरोत्तर बढ़ती गयी और पश्चिम को लाघकर यह पूर्व में भी प्रचलित हो गई एवं राज-मान्यता के साथ विद्यालयों में पाठ्य-विषय भी बन गई।

इस प्रकार भूभ्रमण का मित्रात काफी लोकप्रिय हो गया और सूर्य-भ्रमण का मित्रात प्राचीन प्रयोगों का विषय रह गया।

फिर भी बहुत से ऐसे पाश्चात्य विचारक विद्वान् भी होने लगे हैं जिन्होंने भू-स्थिरता का ही मान्य किया है। हेनरी फास्टर ने सन् १८८८ में एक लेख में लिखा है कि "विश्वप्रसिद्ध एडमन्ड ने ५० वर्षों में महान् प्रयत्न के बाद यह निर्णय प्रकट किया कि पृथ्वी थाली के समान चपटी है और उसके चारों ओर सूर्य भ्रमण करता है।"

इसी तरह जे० मेकडोनल्ड ने भी सन् १८८९ में अपने विस्तृत लेख में यह लिखा है कि सूर्य गति करता है। और जो यह मानते हैं कि—पृथ्वी अपनी धुरी पर १ हजार मील प्रति घंटे की गति में गमन करती है वह हान्यास्पद है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने अभी भू-स्थिरवादियों के पूर्वोक्त प्रश्नों का ही यथोचित समाधान नहीं हो पाया है कि—सापेक्षवाद नामने का उत्पन्न हुआ जिसके प्रस्तुतकर्ता उस २० वीं ईस्वी सदी के विश्व-प्रसिद्ध गणितज्ञ वैज्ञानिक आइन्स्टीन हैं। उन्होंने बताया है कि—“गति व स्थिति केवल सापेक्ष-धर्म हैं। ‘प्रकृति कुछ ऐसी है कि किसी भी ग्रह-पिण्ड की दान्विक गति किसी भी प्रयोग द्वारा निश्चित रूप में नहीं बताई जा सकती। पृथ्वी की अपेक्षा में सूर्य चलता है या सूर्य की अपेक्षा में पृथ्वी चलती है। दोनों मित्रात अपनी अपनी जगह ठीक हैं फिर भी पड़ला मित्रात कुछ जाटल है और दूसरा मित्रात सरल है।

इस तरह भू-भ्रमणवाद पर जो बल दिया जा रहा है वह सिर्फ सामान्य जनता की सुविधा की दृष्टि से है। अब यह सुविधावाद भी एक तरह से सापेक्षिक ही है।

आइन्स्टीन के सापेक्षवाद ने वैज्ञानिकों के एकान्ताग्रह को झञ्झोर दिया है और अब वे यह कहने को बाध्य हो गए हैं कि—

सूर्य चलता है या पृथ्वी, यह विवाद महत्वहीन और निरर्थक है। दोनों में से कुछ भी माना जा सकता है। कोई बाधा नहीं। प्रकृति अनन्त धर्मात्मन होने में अति सूक्ष्म है अब दान्विकता का साक्षात्कार करना असम्भव-ना है।

आचार प्रथमः धर्मो नृणां धनञ्जयो महातपः ॥



गुणव्रत और (३) विद्याव्रत । इनमें से अंगुव्रत के पाच, गुणव्रत के तीन और विद्याव्रत के चार भेद होते हैं ।

पठितप्रवर आशाप्र जी ने गृह्य-आचार के विषय में पूछे तो वे 'मागारवर्माव्रत' के आधार पर कहते —

सम्यक्त्वमनमनमननाग्यगुणविद्याव्रतानि मरणान्ते ।

सत्केयना च विपिना पूर्णं मागारवर्मोऽयम् ।

उल्लिखित पन्तिरों में सम्यक्त्व शब्द सर्वप्रथम है । अंगुव्रत, गुणव्रत, विद्याव्रत और अन्त में सत्केयना सहित मरण, गृह्य या धर्म या ज्ञेय्य है । सम्यक्त्व में अभिप्राय उस जीवत्व भाव की श्रद्धा प्राप्त करना है जो नष्ट या, आज है और अनागत में रहेगा । धर्म के आचारों की भाषा में परम पारिणामिक भाव पर आस्था रखना गृह्य का ज्ञेय्य है । यह गृह्य-धर्म की सर्वप्रथम वह भावभूमि है जिस पर आस्था न रखने से मुनिधर्म भी पुण्यव्यवस्था का कारण होकर उगमग निकल ना हो जाता है । सम्यक्त्वमूढ परमपारिणामिक भावानुभूति बिना जन्म जन्म जन्म स्वभाव की प्रतीति सम्भव नहीं है ।

मय व्यवहार प्रिया या ज्ञान, भयोअन्ती वार प्रदान ।

निपट पठित अपनी पहिचान, ताके पासत होन कन्पाण ॥

यह कहकर भूधरदानजी ने परमपारिणामिक भाव पाने की प्रेरणा दी ।

सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, मेवहु सम्यक ज्ञान ।

स्वपर अर्थ बहुधर्म जुन, जो प्रगटावन भान ॥

यह लिखकर दीनरामजी ने भी ज्ञानानुभूति के लिये प्रेरित किया । सम्यक्त्व या या परमपारिणामिक भावानुभूति का महत्व गृह्य व्यवस्था मुनि के लिये उतना अधिक है, जितना भी शक्य और सम्भव है ।

अहिंसा और सत्य का समर्थक

अंगुव्रत में तात्पर्य अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपवित्र, इन व्रतों का अनुष्ठान, एक देश पालन करने का है । हमारे शब्दों में हिंसा, लूट, चोरी, ब्रह्मचर्य और अपवित्र, इन पाचों पापों ने लोक-जीवन में क्यासम्भव बच कर रहने का है ।

'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोषण हिंसा'—नस्त्वर्थं भूय । प्रमादपूर्वक रूपारों के मर्याद में प्राण-पालन करना हिंसा है । चूंकि गृह्य को मासिक जीवन विनाश है, अतएव वह पूर्णतया अहिंसक जीवन व्यतीत करने में अमर्ष है । गृह्य की इस अक्षमता को ध्यान में रखते हुए भगवान् ने उसे सक्की हिंसा में पूर्णतया और आरम्भी, उद्यमी, विरोधी हिंसा में क्यासम्भव बचने की सलाह दी है । इन आधार पर कहा जा सकेगा कि उद्योग के निमित्त और शत्रु ने अपने को बचाने के लिये परिस्थिति विशेष में जीवन-यान के लिये गृह्य आरम्भी हिंसा का त्याग नहीं होना । पर गृह्य को निरदोष व्रत और स्यावर जीवों के घात में तो बचना ही है ।^१ इन हेतु वह अनावश्यक रूप में न अन्न का नष्ट करेगा और न वन का, कोयला लाव बनवाना, वन कटवाना, मद्य-मांस-मद्य का रूप विक्रय करना जैसे हिंसापूर्ण कार्य वह कदापि नहीं करेगा । अच्छा अच्छा अहिंसागुव्रती न तो असह्य वस्तु का भक्षण करेगा और न बिल्ली, कुत्ता, तीतर-मुर्गी जैसे मांसभोजी जीवों को पलेगा । वह जहाँ लोक-प्रचलित बाईस अमर्षों में बचेगा, वहाँ शराब और मद्य की बेल में बनी विदेशी दवाइया भी नहीं मेवन करेगा । उनका हा नहीं बलिक बहुत दिनों के बने अरिष्ट, आम्र, आचार-मुखा, मिष्टान्त पचान्न की भी ग्रहण नहीं करेगा ।

या वर एक ओर अपनी को दिया से बचावगा और दूसरी ओर अपने जीवन तथा स्वास्थ्य का भी रक्षा करेगा। इसीलिए मैं वर यथावश्यक साधन उपवास का पत्र व असर पर आत्मगुडि की दृष्टि में करेगा और आचार्य उपासका के गंगा में अहिंसात्मक की पात्र भावनाओं ध्यान में रखेगा। दूसरे दान में वर अधिप्राधिक अहिंसक आचरण उपासका तथा अहिंसात्मक व अतिचारा में भी अपने को सतत और उपासका।

वर बनना का साधना में प्रमाण करेगा यथानिष्ठ करेगा साथे निर्दिष्ट जमीन देवता वरगा जीवन रहित भूमि पर ही सकलता पूजन करने को रखेगा तथा स्वयं गात्र कर ही जिन में भाजन पाना प्रमाण करेगा। मनु के दान में निवाचनका मम कहकर उनके अनुसंधान अपने जीवन का दानगा।

पूर्वोक्त पात्रा साधनाओं को करने के लिये वह अहिंसक स्थान में जाये तो किसी का शत्रुता नहीं। व किसी को धन का दावा-वत मारगा नहीं। व किसी के नाक जान छेदेगा नहीं। व न ही अधीनस्थ पशुप्रा-पुत्रगा पर गतिन में अधिक भार काम लायेगा और न उनके भाजन पानों में किसी प्रकार की बाधा की प्रमाणगा।

जन प्राचर मर्यादाओं होगा। उपासक सत्य द्वि-मित्र प्रयत्न होगा। वर जप्रिय असर में बनेगा और प्राण रक्षा के निमित्त पारस्परिक विचार में जसक वाक्यर भी अहिंसात्मक का पालन करना आवश्यक करेगा। उपासक के लिये कोई छत्रिया विचारों में स्वयं प्रवृत्तता निषेध मर है या जीवन ? ता वह जीवन पक्षा में देखकर भी निरासरी उस मार में उपासक इन विचारों से पानी का मर वह पर उसकी प्राणरक्षा करने का प्रयत्न करेगा।

सत्यजन का पालन करने के लिये जन मर्यादा गांधी और राम मय और हास्य का त्याग करेगा और निष्कल होकर निर्दोष प्रवृत्त करेगा। व चमराट्ट की भाति न ता शत्रु या वज्रो वा कहगा और न जसक प्रेम का सन्तुष्ट में अंग का अप करेगा। उपासक मनन विज्ञान भाषण मुग्धता होगा।

अन सत्य अणुप्रत का बर्णन के लिये प्रत्येक स्वयं तो किसी का मित्रता उपदेशेगा और न किसी का गुन बात को प्रवृत्त ही करेगा। व न गूठे दस्तावेज बनायेगा और किसी की घरोर का अपहरण करेगा। व सचन द्वारा किसी का प्रमिप्राय जानकर भी प्रवृत्त न करेगा। दूसरे दान में वर मर्यादा प्रमाणगा और सत्य का समर्थक होगा।

अचौध और ब्रह्मचर्य का उपासक

चारी का त्याग करे लाभ प्रपाय का भय से बच करेगा का प्रवृत्त अनुसंधान करेगा। वर किसी की गिरी भक्षा रखे यस्तु को अपन लिये अंगिकार नहीं करेगा। विपुलवादी सत्ता बंधीर का दान में वह स्वयं मर नहीं रगा जावगा परन्तु दूसरा तो नहीं ठेकेगा वर स्वयं प्रवृत्त हो सगा पर दूसरा को कुछ प्रवृत्तन का विचार स्थान में भी न करेगा। व न भाव का चारी करेगा और न द्रव्य (घन वस्तु) को। व न अणुचारा होगा और न स्थितनार या स्थितनारता भी। उपासक पीवा आस्ती गा निमल और गुण सा सुवासिन होगा।

वह जहां सरिता स्थान में रहेगा वर दूसरा को भी रक्षा में राखगा नहीं। वर गास्ती का अनुरूप ही भोजन पानी प्रमाण करेगा। अपन सचमों बचका में निमवा नहीं करेगा। व सत्ताम और सत्तामना का मर केन ही होगा। अचौध अनुप्रत का उपासका करने के लिये वर न ता चार का चोर करने का प्रमाण दगा और न चुराई हुई वस्तु को दा चरीदेगा। गास्ती का जागा क विरुद्ध वह आचरण नहीं करेगा और तेन दन का प्राण न प्रवृत्त मर नहीं रखेगा। व प्रवृत्त वस्तु में अणु मर की वस्तु मित्रकर न करेगा।

१ बाह्यमनोपुत्तरी अनिक्षेपशक्ति-यानाहितपानमोक्षानि पच।

२ य धर्म-देवातिभासरोपणा-नपाननिरोध।

३ कावरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय।

आप ठगे मुल ऊप और ठगे दुल होय ॥





जैनगृहस्थ यथाशक्त ब्रह्मचर्य ही उपासना करेगा। वह अपनी स्त्री से ही मनुष्य होंगे रहेगा और अन्य स्त्रियों को छत्रपति शिवाजी जी अनुयायी अर्जुन जी गानि अपनी मा-वहिन-पुत्र-पेटी ही समझेगा। दूसरे शब्दों में वह अन्य स्त्रियाँ का विषय की दृष्टि से त्यागी होगा। 'गृहस्थ में अनेकानेक जीवों की शान्ति-स्थिति होनी है।' इस वचन का ध्यान में रखकर वह अपनी स्त्री से भी अत्यधिक राम-दानना की पूर्ति के लिये लायता नहीं बटावेगा।

ब्रह्मचर्य व्रत का सुव्यवस्थापूर्वक पालन हो सके, उसके लिये वह स्त्रियों से राग द्रोहों प्राप्ति न हो जाने करेगा-मनेगा, न चर्चित देखेगा, न अश्लील उपन्यास ही पढ़ेगा। वह न स्त्रियों को मनोंहरे अगो को देखेगा और न पिछले भोगों का स्मरण ही करेगा। काम के वेग को राग के शिर न केवल गरिष्ठ राजनी और निरुद्ध नारी भाजन का ही परिहारा करेगा अपितु शरीर की मज्जा भी ऐसी नहीं करेगा, न उसके अंगों अंगों के ब्रह्मचर्य व्रत के पालन में बाधक हो।

जिनसे भी नावक प्राप्त होये, वे प्रायः स्त्री के क्षेत्र में होंगे। उन दानों का ध्यान में रखकर वह यथाशक्त उतने वचन ही रहेगा और ब्रह्मचर्य ही जानबूझकर के लिये पटित जानवरों-जैसे। दूसरे में 'प्रायः में विषय-वस्तु नारी तजि गय जागी-वस्तु' भी रहने से नहीं चूकेगा। इस प्रकार जैन गृहस्थ ब्रह्मचर्यव्रत का मार्गानुसार पालन करेगा।

अपरिग्रह का आराधक

इच्छा असीमित है। आकाश की तरह अदन्त है। उनका पूर्ण होना सम्भव नहीं है। यह विचार कर जैन आश्रम करनेवाले इच्छाओं का यथाशक्त रूप में कम करना और स्वयं, रमता, प्रायः, चक्षु और स्पर्श-रस पाचों इन्द्रियों नववी आश्रम का बटाने वाली मनुष्यों और प्रायः का प्रतीति सीमित करेगा। इन इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने के लिये वह एक ओर भोगावसाय विषयक नामों का कम करेगा और दूसरी ओर उपर्युक्त सामग्री से अत्यधिक राग-भाव नहीं बटावेगा। राग कम करने के लिये, प्रतिदिन प्रतिक्षण नावदान रहने के लिये वह भात-पानी, वस्त्र-मुग्न, घी-तेल आदि के प्रयोगों के मन्वन्त्र में निश्चित नियम बनाकर पालन करेगा।

अपरिग्रह का आरम्भिक आराधक होने के नाते जैन गृहस्थ अपरिग्रह-परिमाण अनुव्रत का धारक बनेगा। वह सीमित परिणामी बनेगा। वह खेत और घर दुकान और व्यवसाय को सीमित रहेगा। वह न तो मर्दाना में जाने चादी-सोना-रूपया बटावेगा और न गाय-नैम, हाथी-पोंडे जैसे पशु बटावेगा तथा न गेहूँ-चना-दाले-गन्धक आदि की मात्रा बटावेगा। वह जहाँ नौकर-नौकरानी सीमित मन्त्रों में रहेगा, वहाँ वस्त्र और वस्त्रों आदि के प्रमाण का भी उल्लंघन नहीं करेगा।

यो अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को कम से कम करके जब जैन गृहस्थ अपरिग्रह ही आराधना करने लगेगा तब वह देश और काल तथा समाज को भी प्रभावित लिये बिना नहीं रहेगा। उसका यह आचरण समाज में समता लाने वाला और विषमता मिटाने वाला सिद्ध होता है।

दिग्ब्रत और देशव्रत तथा अनर्थदण्डव्रताचारी

गुणव्रत के तीन भेद हैं—(१) दिग्ब्रत (२) देशव्रत (३) अनर्थदण्ड विमण व्रत। उन्हे मत्तधरकेनरी श्रमणोपासक वस्तुवी समझेगा। वह सूक्ष्म पापों से निवृत्ति के लिये दण्डों दिशाओं में जाने-जाने का परिमाण कर लेगा और दिग्ब्रतवारी बनगा तथा जीवन-पर्यन्त अपनी मर्दाना नहीं छोड़ेगा। स्वीकृत दिग्ब्रत के क्षेत्र में नम्रता नमी करता जाएगा। घड़ी-

१ वह न तो अन्य जनों के विवाहों में उलझेगा और न व्यवहारिणी स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध ही रखेगा। वह न निश्चित अगो के सिवाय अन्य अगो से काम-मेहनत करेगा और न काम-मेहनत की अत्यधिक लासता रहेगा।

२ क्षेत्रवास्तुहिण्यस्वर्णधनपान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिरुम।

धरा निम मरीना आनि वा दृष्टि म भा नगर मु ललसत हा आववा जावेना और दण्डन का पात्रन करेगा । हम स्त्रीहृत्न मयावा वा त तो भूतना और न डमक दाह्न की वनये मयावेगा । न दण्डिना वा मेरना न मकनो शर हा ही लन वा मयागाव दूसरा पर प्रयत्न करेगा । वह प्रयाजनरहित पापवध विप्राजा वा दंगा करे अनर्थदण्ड विमग प्रतापारी बनगा अया वा न बिना वा पाप वा उपेन तथा और त र्ति वा क माघन तथा नया न दूसरा वा घुरा हा । विपारगा । न ध राग अपरध गोर दास्त पदमा और न बिना प्रयाजन शर उपर भूमगा । न निरह दन पुस्वी को माता न ज्ञ वा अस्थय परेगा । वह न ता वमा क्षिण वान करगा और न धारिण कृपा करेगा । धा न वाचा वोगा और न मन-वचन पाप को मनमाना करन देगा । व भाग उमांग व वपावी वा पतिव मयह नहीं करेगा ।

सूची में सीमा क्षति या मध्यकालीन व्यवस्था के द्वारा जनसंख्या में उभय गमन का आरंभ होगा जिसका मुख्य धर्म आचार्य प्राचीन युग-युग में वर्णन आ रहे हैं कि मध्यम वर्ग का एक पक्ष भी न होवे।

नि सायतयारी

मुनिवा ब धनों का वालन करा की प्रणाली सेन यात गिनावन ४ हैं—(१) गामायिक (२) प्रायप्रोषात (३) भागागमोपगमिमाग (४) अनियमविमाग द्य । पागं हा गाधन गना बाव है ।

[illegible]

अन महसुस प्रापय (समाधान) कम्पा उदयाग यम्मा लया प्राय मातवाग भा अपान् यम्मा न लयाग
दुसर रिग उदयाग यम्मा लामर रिग पुन लयाग भी कम्पा। प्रायमातवाग क रिग म बहु संसार क बापी म उदयाग
रहमा नीर लया उ बापि यम्मा लामर म र य। य अवन मवन लान उदयाग ल कम्पा म ज्हा य लया बा निरमा
मात्र भागि मा बा लया। य मी गामा भुमि कम्पा म लया लया कया। यमा दम्भमा भी मातवाग म रयमा
उदयाग। अथ म यम्मा हायर भी बापिगि यम्मा म उदयागि रहमा।

भा. दोर उपभाग का समझा का मया । करव उ. १ । ५५५ स्थ. ५५५ करवा पाव का स्थान देना ।
 स्थाना उ. ५५५ का स्थ. १ । ५५५ पाव का स्थान जान पाव व स्थिति वस्तु का भी भाजन व मया ।

एतद् और दूसरा व उपयोग व सि ये दाएँ मना मा मरम्भ दा बाध्य है। विधि द्वय दा और पात्र विपुल बा अदा दा व पत्र व विपुल दाणी है। यह विचार कर एन मरम्भ अतिविधि विभागा दन बा पालन करना। मना मना या या व सि एन भाजन मरम्भ दा मरम्भ भाजन करना। एक व सि बा दा म उपयोग प्रदति यो दाणी

મુનિ આચર્ય વિરિયાં ઝોન । તદ્દ ઝોગ ધનમ મુનિ ભેદે ॥

अथ एतन्मूल्यं प्रयत्नं सुगुणं चिन्ता मयविषयं वाच्यम् । तदा दृष्ट्वा सा गुरुः । उपायना म आरामा न हृति
वर्धते । मार्पकान्तो विदित्वा नास्तीति । अत्र यथा देवताया न वाच्यं आचार्यः "अथ विदे ।





समाधिमरण का इच्छुक

गृहस्थ प्राण-त्याग के समय मन्त्रेयना अथवा समाधिमरण को प्रीतिपूर्वक स्वीकार करे। वह ज्वालोक-परलोक मन्त्रधी किसी भी प्रयोजन की इच्छा न करे और कथाओं का तथा शरीर की कृमि-क्षीण करे। पर क्यों ? इसलिए कि वह अन्तिम समय में समाधिमरणपूर्वक अपने प्राणों को वैसे ही छोड़ सके, जैसे माप केंचुड़ी को छोड़ देता है अथवा हम पुराने कपड़े को छोड़ देते हैं। अन्तिम समय में समाधिपूर्वक मरण में चांगी गतियों में भ्रमण करने में वच-कर मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

अन्ते समाधिमरणं चउगइद्रुयान् निवारिई ।

इन स्वर्णसूत्र का दृष्टिपथ में रखना हुआ जैन गृहस्थ समाधि के समय न तो मन-वचन-काय की अन्यथा प्रवृत्ति हो करेगा और न समाधि दशा में अनादर रहेगा अथवा न स्मरणीय पाठों को दुखी होकर भुला ही बैठेगा। वह सरलेखना या समाधिमरण को स्वीकार करने के बाद—न जीवन की इच्छा करेगा न मृत्यु की, न मित्रों का स्मरण करेगा न अनीत के भोगों का भी ध्यान रखेगा तथा न आगे के लिये भी विषयों की इच्छा करेगा। ऐसा करने में उसके प्राण सहज स्वाभाविक रूप में छूटेंगे, वह जैनधर्म के बीजभूत वीतरागता के रहस्य को भी समझ सकेगा।

मक्षेप में जैनागमों में जो गृहस्थ के आचार का वर्णन मिलता है, वह बहुत ही उच्च कोटि का है। उसकी भाव-भूमि बड़ी ही मनोहारी है। उसमें आहार-विहार और निहार पर नियन्त्रण है, अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही दृष्टियों में त्याग की कामना है, लोक और परलोक की दृष्टियों में उसमें वैराग्य की भावना है। जैन गृहस्थ का जीवन जैनमुनि के जीवन की पूर्व भूमिका है। जैन धर्म जनधर्म है, जतएव जैनाचार प्रत्येक प्राणी का कल्याण करने में मक्षम है।

उपासक का आचार

प० जम्बू प्रसाद शास्त्री



जो सा भद्रा सम् विवर्ध और सम् आचरण रूप श्रिया करता है वहा श्रावक बह्मन का पात्र हो सकता है। आश्विनय गुण का धारण कर सबप्रथम आत्मा का अस्मिन्त्व तथा यह अस्मिन्त्व स्वभाव वाग्ग अविनाशी और अनन्त गुणा का समूह है स्वर्गो मुख गति स्मो के पास है अस्मि आत्मविषयक वाग्ग पर कृष्णान करना पुनर्ज न पर आस्था बर्मा का आगमन उनका आत्म प्रयोगो न बघ उनका रचना और उनरी निजरा तथा अतिम परिणाम मोग विरि सरह होना है अस्मि का आगमानुहुल यद्धान करवा सत्प्रदा म आता है।

विश्वेक सम्मान वा क त ह जियके प्राप्त कर न स आत्म-दयान हो जाता है। स्वानुभूत्यावरण कम का शयागम हो जन आत्म-बोध होना है तो साधन आत्मा का अनन्ति क वष पर न आता है। हिन को प्राप्ति और अस्मि का परिवार विवर्ध मे ही होना है। जम यीनक अधगार म दूबे माग को प्रगस्त करता है ठीन उमी भाति विवर्धी आत्मान्ति के माग म बढता है।

जिस प्रकार बीपथि का परिणाम मान रागी का राग मुक्त तरी कर सकना परनु उमरा संवन आवश्यक होता है इसी प्रकार आत्मब-याग क लिए स माग पर चरना भी अनिवार्य है। बह्म है—

गास्त्राण्यधोत्थापि भवति भूर्त्वा
यस्त त्रिमावान पुष्टय स विभान्।

अर्थात् गास्त्र को पठार भी बहुत से मूख हान है विभान् जो त्रिमावान है यी विभान् है। इसीगिण आचरण की प्रसूता है। यथा वारण है वि सन्तारणमस्य न श्रावक हा प्रसनीय होता है। गप कोटुम्बिक व्यवधानो म नग और शास्त्रीय आचरण न करन गान शृंस्थ श्रावक बह्मन के साथ मूही है।

सर्वत्र प की आवश्यक्ता क्या है ? न्य प्रश्न पर शास्त्र विचार करें।

प्रत्येक प्राणी मुख चाहता है और टूट मे डरता है। जे निमग्न न जीव घनन्त सग चाहें दुखते भयवन्त। वास्तव म यह उद्देश्य प्रत्येक प्राणा मान का है। जिस प्रकार उपायोग लक्षणम् जीव का लक्षण उपयोग है यह समी समारी और मुक्त जावों म भगिन होना है उमी प्रकार मछ की चान् और दुख की अन्वा य समारी प्राणी मात्र की अमिआपा है और य। जीव मान की समानता का बोध करानी है। इसी हेतु का प्राणि क िण सस्त्रम्य की आवश्यक्ता होनी है वा सदुत्तरा क धरण और सद्बिबेक की क वारिता मे मिलता है। लंकिन भयवहार म हम करते कुछ है और वास्तु मुक्त है—

पुष्टयस्य कतमिहानि पुष्टयौ-द्वानि मानवा ।
पापकल्य क ने-दति पाप भुजात यस्तत ॥



यह सर्वविदित है कि पुण्य का फल इन्द्रिय-मुख और महानता आदि तथा पाप का फल दुःख एवं निर्मुक्त अवस्था है। परन्तु यह प्राणी पुण्य के फल को चाह कर भी पुण्य नहीं करता और पाप के दुःख का फल तो न चाह कर भी यत्नपूर्वक पाप करता है। इस विपरीतता में जाना हुआ मनुष्य कैसे मुक्ति हो सकता है ?

पुण्य और पाप क्या है ? यह भी जानना है। 'मुह-अमुहभावजुता, पुण्य पाप द्वयं तत् सन्तु जीवा ।' अर्थात् शुभ और अशुभ परिणाम सहित यह जीव पुण्य और पाप रूप प्रवृत्ति वाला होता है। पाप शब्द की व्याख्या में कहा है—

'पाति रक्षति आत्मानं शुभादिनि पापम् । अर्थात् जो आत्मा को नुकसान में डूब करे वह पाप है। पाप ऐसा शत्रु है जो आत्मा के साथ छायावत् चरता है। निम्न स्थिति को आत्मा में प्रेम नहीं वही आत्मा के हित को उपेक्षा करता हुआ पापाचरण करता है। आत्मा को समझने वाला आत्मज्ञानी पाप नहीं किया करता। नगर में जितने भी दुःख देने में आ रहे हैं, वे सब पाप के फल हैं। वे पाप प्रधान हैं हिम, सूँठ, चोरी अशुचि और परिग्रह के भेद में पांच प्रकार के हैं। यद्यपि अन्न-वस्त्र, रात्रिभोजन और मत्त व्यसन पचन भी पाप हैं तथापि उन पापों का समावेश इन्हीं पांच में हो जाता है।

पुण्य की व्याख्या में कहा है कि — 'पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्' अर्थात् जो आत्मा को पवित्र करे वह पुण्य है। इसलिए जो गृहस्थ नमस्कार होता है और निम्न जिनैः भगवान् जी उपमना, जागृता, स्मृति आदि नहीं करता है और जो मुनि आदि मुनियों को दान नहीं देना है उक्त गृहस्थाश्रम भवनगर में पापाग-सौम्य के समान है जो उसे टुटकर नष्ट कर देता है।

जो मूलोत्तर गुणों में सहित पञ्च परमेष्ठियों के चरणा की नग्न वाला है, योग्यमानुसार पदकर्म जिसका प्रधान कार्य है, ऐसा ज्ञान-अमृतपिपामु श्रावक ही उत्तम है।

अहिंसाव्रत सत्याव्रत, अचीर्षाव्रत, ब्रह्मचर्याव्रत और पण्डितपरिमाणव्रत, इन पञ्च अव्रतों को धारण करता तथा मद्य, मांस एवं मद्य का त्याग, ये छह मूलगुण श्री समन्तभद्राचार्य के कथनानुसार हैं। यद्यपि कोई कोई पञ्च उदम्बर फल के त्याग के साथ तीन मकारों के त्याग को भी अष्टमूलगुण मानने हैं, लेकिन मेरी अपनी आज्ञा उपर्युक्त मूलगुणों में ही है।

जब पञ्च अव्रतों में विघ्न, देशव्रत और अनर्थव्रत के तीन गुणवत् तथा सामाजिक, पोषोपवास, भोगोपभोग—परिमाण और अतिवि-विभाग ये चार शिक्षाव्रत सम्मिलित हो जाते हैं तो श्रावक के १२ व्रत कहलाने लगते हैं। इनका पालन करते हुए अन्तिम समय निरनिवार सन्तुष्टि प्राप्त करना गृहस्थ का श्रावकाचार है। बाह्य व्रतों का समीचीन रूप में पालन करने के लिए भूमिका रूप में गृहस्थ में निम्न विशेषताएँ जल्दी हैं—

(१) स्वाय पूर्वक व्रत का कमाना—क्योंकि अन्यायपूर्वक कमाना हुआ व्रत एक तो ठहरता नहीं और दूसरे उसमें जो भोजनादि किया जाता है उसके प्रभाव में बुद्धि धार्मिक नहीं बन सकती।

(२) अपने में अधिक गुणों वाले व्यक्ति का सम्मान करना।

(३) सत्यभाषी प्रकृति वाला होना।

(४) परस्पर में विरोध रहित धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों का सेवा करना।

(५) योग्य धार्मिक कुलवधू का होना।

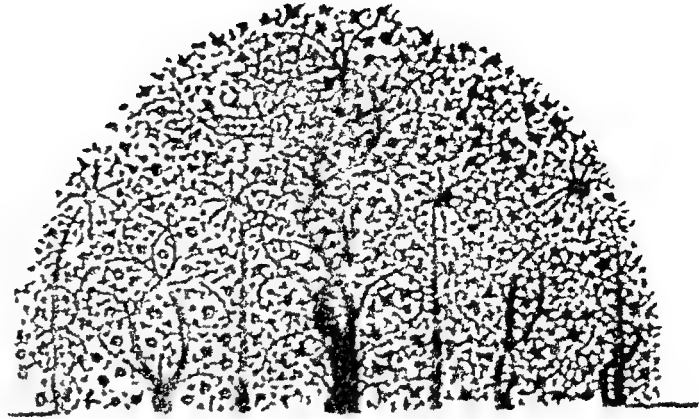
(६) योग्य स्थान (आलय) का होना।

(७) लज्जावान् होना।

(८) योग्य आहार-विहार करने वाला हो।

अतिचार-रहस्य

पं० हिरालाल सिद्धान्तशास्त्री,



देव, गुरु, मय, आत्मा आदि की तात्परी-श्रुति को निर्माद पापों का पुत्र कर्षण है। परिष्कार किया जाता है, उसे व्रत कहते हैं। पापों पापों का यदि एक देव, आर्ति या मूला त्याग किया जाता है, तो उसे अगुप्त कहते हैं और यदि नवदेव त्याग किया जाता है, तो उन महाव्रत कहते हैं। यह पाप पांच होते हैं, जिनमें त्याग रूप अगुप्त और महाव्रत भी पाँच-पाँच ही होते हैं। इन श्रवणों के अनुसार महाव्रतों का धारण मुनि और अगुप्तों के धारण आचार्य कहते हैं। पाँचों अगुप्तों आचार्य के ज्ञेय व्रतों हैं, तथा पाँचों महाव्रत श्रुतियों के ज्ञेय व्रतों के मूल आधार हैं, आचार्य उन्हें मूलव्रत या मूलगुण के नाम से भी कहा जाता है। मूलव्रतों का मूलगुणों की रक्षा के लिए जो अन्य व्रतादि धारण किये जाते हैं, उन्हें उत्तर गुण कहा जाता है। इन श्रवणों के अनुसार मूल में आचार्य के पाँच मूल गुण और मान उत्तर गुण बनाने गये हैं। कुछ आचार्यों ने उत्तर गुणों की "सीधरत" मन्त्र भी दी है। कामन्दक में आचार्य के मूलगुणों की मन्त्र पाँच में उल्लेख आठ ही गये, अर्थात् पाँचों पापों के त्याग के नाथ मय, मान और मय इन तीन मन्त्रों के ज्ञेयता। त्याग करने का आठ मूलगुण माना जाते वना। तन्मन्त्रात् पांच पापों का त्याग पाँच उदुम्बरा फलों ने के विद्या और एक नये प्रकार के आठ मूलगुण माने जाते गये। इन प्रमाणों की गणना उत्तर गुणों में की जानी गयी और मात्र के त्याग पर बाह्य उत्तर गुण या उत्तर व्रत धारणों के माने जाते लगे। किन्तु यह परिवर्तन श्वेताम्बर परम्परा में दृष्टिगोचर नहीं होता।

माधुश्री के पाँचों पापों का सर्वथा त्याग नव कोटि में जयात् मन, वचन, काय और दृष्टि, कान्ति, अनु-मोदना में होता है, अतएव उनके व्रतों में किसी प्रकार के अतिचार के लिए स्थान नहीं रहता है। पर आचार्यों के प्रथम तो सर्व पापों का सर्वथा त्याग नभय ही नहीं है। दूसरे पर एक व्यक्ति नव कोटि में मूल भी पापों का त्याग नहीं कर सकता है। तीसरे प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर का ज्ञानावरण भी भिन्न-भिन्न प्रकार का रहता है। इन सब बाह्य कारणों ने, तथा मज्जलत और नोकपायों के तीव्र उदय ने उनके व्रतों में कुछ न कुछ रूप लगना रहता है। अतएव व्रत की अपेक्षा रखते हुए भी प्रमादादि, तथा बाह्य परिस्थिति-जनित कारणों ने उहीन व्रतों में दोष लगने का, व्रत के आधिक्य से चण्डित होने का और स्वीकृत व्रत की मर्यादा के उत्तरेषण का नाम ही आचार्यकारों ने 'अति-चार' रखा है। यथा-

'सापेक्षस्य व्रते हि स्यादतिचारोऽज्ञानजनम् ।

—मागारधर्मामृत अ० ४ श्लो० १८

जब अप्रत्याभ्यासावरण कपाय का तीव्र उदय आता है, तो व्रत जड़-मूल से ही चण्डित हो जाता है। उनके लिए आचार्यों ने 'अनाचार' नाम का प्रयोग किया है। यदि किसी व्रत के लिए १०० अक्ष मान लिये जावे, तो एक से लेकर ९९ अक्ष तक का व्रत-छण्डन अतिचार की सीमा के भीतर आता है। क्योंकि व्रत-धारक की एक प्रतिशत

अपना व्रत धारण म बनी हुई है। यदि वह एत प्रतिगत व्रत साधता भी न रहे और व्रत गत प्रतिगत क्षिप्त हो जावे ता उस अनाचार बन्ने है। अनन्त आचार्यों ने स्त्री दृष्टि को लम्ब म रख करके अतिचार की व्याख्या की है। वित्त कुछ गाचार्यों ने अनिवार और अनाचार का दो के स्थान पर अनियम पतिव्रत अतिचार और अनाचार ऐसे चार विभाग किये हैं। उन्होंने मन के भीतर वन-सम्बन्धी गुद्धि का हानि को अनियम वन का रक्षा करने वाली गाल-यात्र के उपरान्त वा अनियम विषय म प्रवृत्ति करने को अतिचार और विषय भवन म अति आमन्त्रित को अनाचार कहा है। जसा कि ता अभिनवगति न कहा है—

स्तति मन गुद्धिविधेरतिव्रत पतिव्रत गोलेवतविलघनम् ।

प्रभोऽतिचार विषयेषु वतन वनस्थानावामहातिव्रतताम् ॥

— सामायिक नौव

उम प्रवस्था क अनुसार १ म नकर ३३ अग तक व व्रत भग को अतिव्रत २४ से नकर ६६ अग तक व व्रत भग का ध्यवित्तव ६७ से नकर ६६ अग तक वे व्रत भग का अनिवार और गत प्रतिगत व्रत भग को अनाचार समझना चाहिये।

पर तु प्रायश्चित्त गाम्भा के प्रणतज्ञो न उक्त चार के साथ आभोग को बढा करके व्रत भग के पाँच विभाग किये हैं। उनके मत से एक बार व्रत क्षिप्त करने भी पुन व्रत म वापिस आ जान का नाम अनाचार है और व्रत क्षिप्त होने के बाद निगच्छ होकर उरकट अभिवापा के साथ विषय मेधन करने का नाम आभोग है। किसी किसी प्रायश्चित्त गाम्भाकार ने अनाचार क स्थान पर द्वाभोग नाम दिया है।

प्रायश्चित्त गाम्भाकारी के मत से १ अग से लेकर २५ अग तक व व्रत भग को अतिव्रत २६ से लेकर ५० अग तक वे व्रत भग को ध्यवित्तव ५१ से लेकर ७५ अग तक वे व्रत भग को अतिचार ७६ से लेकर ६६ अग तक वे व्रत भग को अनाचार और गत प्रतिगत व्रत भग को आभोग समझना चाहिये।

गाम्भा के जो बारह व्रत वनस्थाने गये हैं उनम से प्रत्येक व्रत के पाँच पाँच अनिवार बतनाये गये हैं। जसा कि तत्त्वार्थप्रियमसूत्र म ७ के सू २४ से सिद्ध है—

व्रत गीतेषु पञ्च पञ्च वथावयवम् ।

एसी दशा म स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रत्येक व्रत के पाँच पाँच ही अनिवार क्या बतनाये गये हैं? तत्त्वार्थमूल की उपरान्त समस्त दिवम्बर और वेताम्बर टीगात्रा के भीतर व्रत प्रश्न का कोई उत्तर दृष्टि गाकर नहीं होता। जिन जिन श्रावकावारा म अतिचारा का निरूपण किया है उनम तथा उनकी टीकाआ म भी इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं मिलता है। पर इस प्रश्न का समाधान का करने मितना है प्रायश्चित्त विषयक प्रथा से—जहाँ परकि अतिव्रत पतिव्रत आतचार अनाचार और आभोग के रूप म व्रत भग के पाँच प्रकार बतनाये गये हैं।

कुछ वग पूज अनन्तर व तीस पद्य घडे वे गाम्भा अन्तर से जो जातवार-मुमुक्षु नामक पद्य उपरान्त हुआ है उनक अन्त म देवनाम नाम का एक प्रकरण दिया गया है। मरक भागवत भरत के प्रणता का अपभ्रंश व द्वारा उत्तर किया गया है। व १ पर प्रस्तुत अनिवारा की चर्चा इस प्रकार से की गई है—

वग-व्रत-गुण शिक्षायां पञ्च पञ्चकणो मता ।

अतिव्रतादिभेदेन पञ्चपट्टिद्वय सत्तते ॥

अर्थात् गाम्भागत पाँच अणवत तीन गुणवत और चार शिक्षावत इन तरह वना म ग प्रत्येक व्रत के अतिव्रत ध्याति व भेग म पाँच पाँच मन्त्र या दोष ज्ञात हैं अणवत सब मन्त्र की संख्या (१ × १ - १५) पण्य हा जाता है।



इसके आगे नानवे आदि दशों में अनिष्टम-व्यतिष्ठम आदि पाँचों भेदों का स्पष्ट-वैतरण करा गया है —

त्रयोदश-वृत्तेषु स्थूमांश्च शुद्धिहानि ।
 त्रयोदशातिचारान्ते त्रिदशव्यात्मनिर्गतात् ॥१०॥
 त्रयोदश-वृत्तानां स्पष्टप्रतिपक्षानिनापिषाम् ।
 त्रयोदशातिचारान्ते शुद्धपति र्वान्निर्गतात् ॥११॥
 त्रयोदश-वृत्तानां तु प्रियाऽनस्य प्रभवं ।
 त्रयोदशातिचारां स्युस्तत्त्वानिर्मलो गृही ॥१२॥
 त्रयोदश-वृत्तानां तु व्यन भग प्रितव्यम् ।
 त्रयोदशातिचारां स्यु शुद्धयन्ते योगदण्डनात् ॥१३॥
 त्रयोदश-वृत्तानां तु नाभोग-व्रतभजनात् ।
 त्रयोदशातिचारां स्पृष्टव्यं शुद्धिष्विद्वान्नात् ॥१४॥

अर्थात् उक्त नेरह वृत्तों में मानव-गुणों की हानिस्पष्ट व्यतिष्ठान न जो नेरह अतिचार लगते हैं, वे अर्थात् निन्दा में दूर हो जाते हैं । नेरह वृत्तों के स्पष्ट-प्रतिपक्ष रूप विषयों की अभिराग ने जो व्यतिष्ठान अतिचार लगते हैं, वे मन के निगह करने में शुद्ध हो जाते हैं । नेरह वृत्तों के प्रारण रूप प्रिया म सादर्य रूप में नेरह अतिचार लगते हैं, उनमें त्याग करने में गृहस्थ निर्मल या शुद्ध हो जाता है । नेरह वृत्तों के नाशान रूप व्यन भग हो करने में जो नेरह अतिचार लगते हैं, वे मन-वचन-राय रूप नाशों योगों के निगह में शुद्ध हो जाते हैं । नेरह वृत्तों के आभोग-जनित व्रत-भग में जो नेरह अतिचार उत्पन्न होते हैं, वे प्रायश्चित्त-रहित नर-मार्ग में शुद्ध होते हैं ॥१०—१४॥

इन विवेचन में मिश्र है कि प्रत्येक व्रत के पाँच-पाँच अतिचारों में दो एत-एक व्यतिष्ठान अतिष्ठम-जनित है, एक-एक व्यतिष्ठम-जनित है, एक-एक अतिचार-जनित है, एक-एक अनाचार-जनित है और एत-एक आभोग-जनित है । उक्त मन्दर्म ने दूसरी बात यह भी प्रकट होती है कि प्रत्येक अतिचार की शुद्धि या प्रसार की भिन्न-भिन्न ही है । इसमें यह निष्कर्ष निकला कि व्रत-भग के प्रकार पाँच हैं, अतः तद्वर्जित दोष या अतिचार भी पाँच ही हो सकते हैं ।

प्रायश्चित्तचूलाका के टीकाकार ने भी उक्त प्रकार में ही व्रत-व्यतिष्ठान दोषों के पाँच-पाँच भेद किये हैं । यथा—

“सर्वेऽपि व्रत दोषा पञ्चषट्छिभेदा भवन्ति । तद्यथा—अतिष्ठमो व्यतिष्ठमोऽतिचारो अनाचारो आभोग इति । एषां सर्वद्विषयमभिधीयते जरद्-गवन्वायेन । यथा—रुद्धिर् जरद्-गव महाशस्यममृद्धि-सम्पन्न क्षेत्र समवल्लोच्य तन्मोम-मनीष-प्रदेशे समवस्थितस्तत्प्रति स्मृत्वा सविधत्ते मोऽतिक्रम । पुनर्विवरोदरान्तरास्य सप्रवेश्य ग्राममेकं समाददासौग्यभिन्नापना-लुप्यमस्य व्यतिक्रम । पुनरपि तद्-वृत्ति-समुल्लघनमस्यातिचार । पुनरपि क्षेत्रमध्यमधिगम्य ग्राममेकं समादाय पुनरस्या-पसरणमनाचार । भूयोऽपि नि शक्ति क्षेत्रमध्य प्रविश्य यथेष्ट सभक्षणं क्षेत्रप्रभुणा प्रवृत्तदण्डनाडनललीकार आभोग-कार आभोग इति । एव व्रताद्विषयि योज्यम् ।

—प्रायश्चित्तचूलाका० श्रु० १८६ टीका

नाचार्य—प्रत्येक व्रत के दोष अतिक्रम आदि के भेद से पाँच प्रकार के होते हैं । इन पाँचों का अर्थ एक बूटे बेल से दृष्टान्त-द्वारा स्पष्ट किया गया है । कोई बूढ़ा बेल धान्य के हरे-भरे किसी खेत में देखकर उसके समीप बैठकर उमने खाने की मन में इच्छा करता है, यह अतिष्ठम दोष है । पुन वह बैठकर ही बाड़ के निम्नी छिद्र में भीतर मुख डालकर एक घास धान्य खाने की अभिलाषा करे तो यह व्यतिष्ठम दोष है । अपने स्थान में उठकर और खेत की बाड़ को तोड़कर भीतर घुसने या प्रयत्न करना अतिचार नाम का दोष है । पुन खेत में पहुँचकर एक घास धान्य को खाकर वापिस लौट आवे, तो यह अनाचार नाम का दोष है । किन्तु जब वह नि शक्त होकर और खेत के



| | | | | | |
|---------------|-----------------------|----------------|------------------|---------------|----------------|
| दिग्ब्रत | ऊर्ध्वव्यतिक्रम | अधोव्यतिक्रम | तिर्यग्व्यतिक्रम | अवधिविस्मरण | क्षेत्रवृद्धि |
| देगब्रत | रूपानुपात | शब्दानुपात | पुद्गलक्षेप | आनयन | प्रेष्य-प्रयोग |
| अनर्थदण्डब्रत | कन्दर्प | कौतुकव्य | मौर्व्य | असमीक्षाधिकरण | अतिप्रसाधन |
| सामायिक | मनोदु प्रणिधान | वचोदु प्रणिधान | ज्ञायदु प्रणिधान | अनादर | विस्मरण |
| प्रोपधोपवास | अदृष्टमृष्टग्रहण | अ० मृ० विसर्ग | अ० मृ० आन्तरण | अनादर | विस्मरण |
| भोगोपभोग | विषय-विषयोऽनुप्रेक्षा | अनुमृति | अतिलौल्य | अतितृपा | अतिअनुभव |
| अतिथिसविभाग | हरित-पिधान | हरित-निधान | मात्मर्य | अनादर | विस्मरण |
| सल्लेखना भय | | मित्रानुराग | जीविताद्यमा | मरणानमा | निदान |

उपर्युक्त वर्गीकरण रत्नकरण्ड-वर्णित अतिचारो को लक्ष्य में रखकर किया गया है, क्योंकि ये अतिचार नवमें अधिक युक्ति-नगत प्रतीत होते हैं। तथा भोगोपभोग व्रत के अतिचारों में जो विमगति ऊपर बताई गई है, वह भी रत्नकरण्ड के अतिचारों में नहीं रहती है।

सारे लेख का सार यह है कि सभी अतिचारों को एक मा न समझना चाहिए, किन्तु प्रत्येक व्रत के अतिचारों में व्रतभंग-सम्बन्धी तर-तमता है, उनके फल में और उनकी शुद्धि में भी तर-तमता-गत भेद है, भले ही उन्हें अतिचार, मल या दोष जैसे किसी भी सामान्य शब्द से कहा गया हो।

राम से नाम बड़ा

श्री हरिमाऊ उपाध्याय,
अध्यक्ष राजस्थान साहित्य अकादमी



यह कथन वर्षों से चला आ रहा है। इसका एक कथा भी प्रसिद्ध है। भगवान राम ने जब मुना कि मन्त्रील सभ पर पुत्र बना रहे तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और जब यह मालूम हुआ कि वह एक पत्थर पर रा और दूसरे पर 'म लिख गये हैं तो उन पत्थर सभ में तरन लगे हैं और इस तरह पुत्र बनता जा रहा है। राम की उत्सुकता बढ़ी और वे पुत्र बनने लगे। उनमें मन में हुआ कि जब मेरा नाम से पत्थर तिर जावे तो मैंने लिखे तो यह बहुत ही सरल है। उन्होंने एक पत्थर अपने हाथ में लिया था उस सभ में जाकर वा वह धम में डूब गया। अब तो राम चन्नी के बिस्मय का पार न रहा। उन्होंने उगे यह क्या बात है—मैंने छान पत्थर डाला तो दूध गया—मेरे नाम से पत्थर तर रहे हैं। सब किसी ने बताया—यह नाम का महिमा है। आपरा नाम आप से भी बड़ा है। यकिन तो गरीर रहन सब ही रहता है परन्तु नाम सदा चलाता है। यकिन का प्रभाव भीमिष्ठ है नाम के प्रभाव की कोई हद नहीं है।

मुझ सेना प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। कई बार जब घर गये थे मैं महात्माजी के नाम में छे। या तो उन्होंने अपने विचार सेना में और मने उन्हें उनकी से उतार दिया—या मने देख लिखे और उन्हें पसन्द आ गया तो वह उनकी नाम से छे। यदि उनका नीच मरा नाम लिख लिया जाता तो उनका म व गिर जाना। यह प्रभाव यकिन का नहीं व्यक्तित्व का नाम का है। यकिन के नाम के साथ उमका अन्त वतमान भविष्य उमकी सदा गतिवत्ता मारा प्रभाव पुण्य प्रसार गतिमान अन्त हुआ रहता है। अन्त यह निबिवाद है कि यकिन से उसका नाम बड़ा है।

यकिन तो हमारा सभी सदा सत्यक हो सकता है जब दर वह जीवित रहता है परन्तु उसका नाम से अन्त वतन हक हमारी सहायता करता है हमारा सारा रहता है यह प्रत्यक्ष है। इसी प्रभाव से नामस्मरण का रहस्य छिपा हुआ है।

प्रायः सभी धर्मों और गणों में नाम स्मरण की महिमा गाई गई है। नामस्मरण प्रायना उपायना का एक महत्वपूर्ण अंग है। जन साधारण प्रायना का मतलब समझने है—भगवान से कुछ मांगना। अधिकांश अधिष्ठित लोग तो समा तरह की अपनी कामना पूर्ति के लिए प्रायना करते हैं। प्रायना में मन्त्रों को मनात होकर चलाया जाता है कि कोई अपात वनन गति है। ऐसा भी माना जाता है कि व वनावाद्यन कर देवी है। कई लोग को ऐसा अनुभव भी होता है। किन्तु अधिष्ठित अनमयी और समन्वित शोध मानत और बहते हैं कि भगवान जब म छोले। अच्छी साधारण चीज मांगना जो भगवत् शक्ति से प्रयत्न से प्राप्त कर सकता है उचित नहीं है। किसी चने राजा मन्त्रालय या प्रधान मन्त्री से जाकर दा रा की मांगना 'सहायता' है कम ही यह भी है। अन्त उन्होंने यह मन्त्रों बनाई कि जो वस्तु अपने बल वृत्ति के बा र हो या हम प्रयत्न करके प्राप्त कर सकते हैं तब विशेष शक्ति या प्रभाव पाने के लिए भगवान से प्रायना करना उचित है। मीचे कोई वस्तु मांगना का अपना उग प्रायन करने की गति या साधन मांगना उचित है। मध्य कोई वनी वना वस्तु हमारे हाथ में लाकर की दाना। अन्त कोई वस्तु मांगना निश्चय और शक्ति या माधन या अवसर मांगना उत्प्रेरक भाव मानी जाना है।



जब हम मागने निकले हैं तो किसी न किसी रूप में दीनता तो आ गी जाती है। दीनता या अविमान है स्वाभिमान का हान। जीवात्मा परमात्मा का धन है, क्योंकि उसने छोटा है परन्तु चित्तगामी तो उसी की है। हाथ पकाने का अर्थ है उसचित्तगामी को मुठा देना और केवल अपने अस्वल्प ही साध रचना। यह अद्वैती चेतना है। जहाँ हम अन्य हैं वही हम चेतन-रूप भी है, यह पूर्ण बोध है। अब इस प्रार्थना की कोई ऐसी विधि नहीं हो सकती, जिसमें न अधिमान रहे, न हीनता ? ऐसे प्रश्न या जग मेरे मन में उठने रहे। अपने तो सर्वेष्ट अन्य, दीन हीन, पवित्र, पापात्मा मानने की कल्पना मेरे मन नहीं उत्पन्न की। अपनी अभियों की-दंगों की मोड़ के चित्तचित्त में मन की एक ऐसी अवस्था उत्तर आ जाती है, जब हमारे गुण-गति स्वामी दिगमों के अन्त में जाती है और केवल दोष ही बड़ी मात्रा में दिखाई देने है। चित्त-शुद्धि की अवस्था में आप ने यह चिन्ता रखा ही नहीं जाता—'मो घम कौन कुटिल 'उन कामी' या 'गरोष्ठ, पावनमोक्षम्' पारायण प्राप्त नमाय ।' परन्तु यह महत् अवस्था नहीं है। हमें आदर्श मानकर नहीं चला जा सकता। मन में सदा यह चिन्ता रहनी चाहिए कि हमारा जोई प्रभाव है ? और यदि भगवान् या परमात्मा नाम कोई अस्ति है तो इस प्रमाण स्मरण ही हमारे प्रभाव की पति के लिए नहीं है ? अच्छा निरुद्ध मा मा चिन्तयता है, उसमें बोलने चलाने की शक्ति नहीं है, तो क्या मा प्रकाश तान मूलक ही उसके प्रभाव की पूर्ति के लिए नहीं बौद्ध पड़ती ? यह उत्तर के मुझे समाधान मिला। यह चरण साध जाया— 'अन-बोद्ध मेरी दिया जानी ।'

फिर मैंने पुराने स्तुति-स्तोत्र देवता गुण लिखा—'यि देवो मत्ताचार्य ने, तुलसीदास ने भगवान् ने इस मागा है ? गुरुगुरुचर्य ने तो केवल भगवान् का भक्ति स्तोत्र में, देव-देवताओं के माध्यम में, पुण्यमान ही किया है। अलवन्ता तुलसी ने मागा है— पर हृदय में केवल गमगति हो, 'गाम् ऐहि' वस्तु किसी ने भी नहीं मागी। तुलसी ने भी जरूर की शक्ति मुझे ज्यादा नहीं मालूम हुई। तुलसी भूल गये कि मैं परमात्मा या अश हूँ, उन्होंने इतना ही याद रखा कि मैं उनका एक भक्त हूँ। जब कि गुरुगुरुचर्य के मन में यह चेतना जाग्रत नहीं दिखती है कि मैं ब्रह्म हूँ। जब उन्होंने देवी-देवताओं की स्तुतियाँ की हैं—स्तोत्र बनाये हैं तो उनमें उत्तरता या भक्ति तो या, परन्तु किसी ने कुछ मागा नहीं, केवल उनके गुणों का स्मरण किया, यह उनकी अद्वैत-धारा या प्रभाव है। भक्त और जानी में कौन बड़ा है, कौन सही है—यह कहना तो कठिन है, परन्तु उनमें कोई यह नहीं कि शक्ति भक्ति में है, ज्ञान में नहीं, परन्तु प्रकाश ज्ञान में है, भक्ति में नहीं। मनुष्य की शक्ति और प्रकाश दोनों की आवश्यकता है। भक्ति का सम्बन्ध भावना में है, जबकि प्रकाश या ज्ञान में। मानवजीवन में भावना ही मुख्य बल है, जो ज्ञान की महाप्रता में उसके दिखाये प्रकाश-पथ में दीनता हुआ अपने गन्तव्य स्थान को पहुँच जाता है। भक्ति और ज्ञान या जोड़ा मुझे 'अन्य-पणु' न्याय की तरह लगता है।

इस विवेचन में हम तनीजे पर पहुँचते हैं कि प्रार्थना में उत्तम वस्तु तो नामस्मरण है, परन्तु यदि किसी ने मागे बिना नहीं रहा जाना तो तुलसी की तरह 'गम चरण रति देह'—वही मागने योग्य है, और कुछ नहीं। और कुछ मागना पुन्यार्थ-हीनता है और कदाचित् वह मिला जाय परन्तु मनुष्य नामधारी के लिए वह कोई गौरव की वस्तु नहीं जान पड़ता।

जैनसिद्धान्त मे कारणकार्य व्यवस्था

प० अजितकुमार शास्त्री,

हिन्दी



यह पुस्तक जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है। इस पुस्तक में जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है। इस पुस्तक में जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

जैन धर्म के अन्तर्गत कारणकार्य के अर्थ और व्यवस्था के विषय में है।

पश्चात् तथा अन्धकार नष्ट हो जाने के पश्चात् भी विद्यमान रहता है। अन्धकार और प्रकाश तो उस मूल द्रव्य पुद्गल की भिन्न-भिन्न दो पर्यायों (अवस्थायै-दशाये) हैं।”^१

इस कारण जगत के सभी पदार्थ अकृत्रिम हैं, अनादि हैं और अविनश्वर या अपनी सत्ता में अनन्त (अन्त रहित अस्तित्ववाले) हैं।

मूल पदार्थ, जिसको जैनाग्रम ‘द्रव्य’ शब्द में उल्लेख करता है, उस मूल पदार्थ नव द्रव्य का लक्षण बताते हुए पञ्चान्तिकाग्र ग्रन्थ बतलाता है—

द्रव्य सत्त्ववृक्षपिय, उत्पादव्यधुवत्तसंजुतं ।

गुणपञ्जयामय वा, ज त नृणति सव्वण्ह ॥ १० ॥

अर्थ—जो सत्ता लक्षण वाग्रा है, उत्पाद व्यय त्रौच्य में नहिं है, गुणों और पर्यायों का आश्रय है उसे सर्वज्ञ द्रव्य कहते हैं।

श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने इस गाथा में क्षणिकवाद, नित्यवाद का तथा गुणों की स्वतन्त्रता या पृथक्ता बतलाने वाले बौद्ध, वैशेषिक, वेदान्त आदि दर्शनों की अपूरी गानी-एकान्तवादिनी मान्यता का निगम करते हुए द्रव्य वस्तु या पदार्थ का यथार्थ नवर्गाणि अनेकान्तमय लक्षण बतला दिया है। द्रव्य के लक्षण को सम्पूर्ण करने हुए आचार्य लिखते हैं—

पञ्जयविजुदं दव्वं, दव्वविजुत्ता य पञ्जया णत्थि ।

बोण्हं अण्णभूद, भावं समणा पत्तिवत्ति ॥ ११ ॥

अर्थ—पर्याय (परिणमन) के बिना द्रव्य नहीं होता और द्रव्य के बिना पर्याय नहीं होती। द्रव्य और उसके पर्याय दोनों अनन्यभूत हैं (एक रूप हैं भिन्न-भिन्न या अन्य-अन्य नहीं हैं)। ऐसी सत्ता (अस्तित्व) या पदार्थ श्रमण भगवान् महावीर कहते हैं।

इसी प्रकार गुण और द्रव्य की एकता के विषय में बतलाया है—

दव्वेण विणा ण गुणा, गुणेहं दव्व विणा ण संभवदि ।

अव्वदिरित्तो भावो, दव्वगुणाण हवदि तम्हा ॥ १३ ॥

अर्थ—द्रव्य के बिना गुण नहीं होते और गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता, इस कारण द्रव्य और गुणों की अभिन्नता है।

इन दो गाथाओं के अनुसृत तत्त्वार्थसूत्र के पाचवें अध्याय का सूत्र “गुणपर्यायवद् द्रव्यम्” है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि जगत का प्रत्येक पदार्थ गुणपर्यायमय है। पानी-प्रत्येक द्रव्य में अनन्त गुण होते हैं और अनन्त पर्याय होती हैं। अपने समस्त (अनन्त) गुण महावीर रूप में सदा द्रव्य के साथ रहते हैं और क्रम-क्रम में प्रतिक्षण द्रव्य की पर्याय बदलती रहती हैं।

यहां इतना और समझ लेना आवश्यक है कि पर्यायपरिवर्तन केवल द्रव्य का ही नहीं होता किन्तु उसके महावीर (सदा साथ रहने वाले) प्रत्येक गुण की भी पर्याय पलटती रहती है। इस कारण यह भी अटल स्वामाविक नियम है कि बिना पर्याय के कोई गुण नहीं होता और बिना गुण के उसकी पर्याय नहीं होती। इस तरह गुण और पर्याय का भी परस्पर अविनाशकारी (एक के बिना दूसरे का न होना) सम्बन्ध है।

द्रव्य गुण पर्याय के इस वान्मविक नियम को निम्नलिखित उदाहरणों में अवगत कर लेना चाहिये।

जैवाण पुग्गताण, गमण जाणेहि जाव घम्मत्थी ।
 रम्मत्थिकाअभावे तत्तो पन्दो ण गच्छति ॥ १८ ॥

अथ—जीवा का तथा पुद्गला का समन वही सब होता है अतः तब धर्मास्तिकाय होता है। उगते चान्द (पराकाय व चान्द) धर्म रूप न जाने स जीव पुद्गल नहीं जा सकते।

या उपास्यति आचाय न तत्वायमूत्र म चिन्ता है—

धर्मस्तिकायाभावात् । १ । यानी ताव व जागे धर्मस्थ न होने म मक्त जाव उगम ऊपर नया जात मा न । जा सकते ।

अभिप्राय यह है कि मुक्त जीवा म ताव स चान्द भी ऊर्ध्वगमन करने की शक्ति विद्यमान है परन्तु धर्मस्थ की महाशक्ति आकाशाग म न मित्र व कारण मुक्त जावा का ऊर्ध्वगमन आवश्यक स बाहर नहा हान पाना ।

तत्तरङ्ग धर्मस्थ गद तथा अगद जीवा और पुद्गल व समन म निमित्त कारण है ।

वही प्रथम पुद्गल का गद परमाणु भी जो पद्मस्थ ताव गति म एक समय म १४ राजू ता तथा अत्यन्त मन्दगति म एक समय में आकाश व एक प्रयोग से गाव वाले दूसरे प्रयोग पर समन करना है एवं मध्यम गति म अनेक प्रकार समन करना है उस म भी धर्म स्थ सहायता करना है ।

अथम द्रव्य

अथम द्रव्य का एक अवस्था अमूर्ति समस्त ताव पराव द्रव्य है। य द्रव्य अप समस्त जाव पुद्गल द्रव्य का करने अपने स्थान पर ठहरन म उपासीन रूप म सहायता करता है । ताहीं सोता स बाहर कोई भा द्रव्य स्थित नहीं है इसका मक्त कारण यही है कि व । पर अथम द्रव्य नहीं है ।

तम धर्म द्रव्य विभा का करना करन नहीं चलाना है इसी प्रकार अथम द्रव्य विभी चले हुए द्रव्य की धर्मपूजा (अवस्थान) ठ राता नहीं है । यदि ताई चलना हुआ रूप ठहरता है तो उसकी उपासीन रूप म सहायता करता है । यदि अथम द्रव्य न हा ना बिना नामति सहायता व मिलन म कोई भी गतिशील पदार्थ ठहर नहीं सकता ।

धर्म अथम द्रव्य व कारण आकाशाग और अलाकाशाग का विभाग होता है ।

आकाशाग द्रव्य

जो समस्त द्रव्य का र न का स्थान ना है व आकाशाग द्रव्य है । वम प्रत्येक पदार्थ अपने अपने प्रयोग म रहता है परन्तु उनका करने के लिए चान्द नमिति सहायता आकाशाग द्रव्य की प्राप्य होती है । आकाशाग द्रव्य न हा तो किरी प पदार्थ न रहन का स्थान म मिले ।

आकाशाग एक अप्रपञ्च मयध्यातव्य अमूर्त द्रव्य है । जिनन आकाशाग में जाव पुद्गल धर्म अथम और चाल द्रव्य रहते है । उनम ३४३ वनराज प्रमाण आकाशाग को लाकाशाग कहन हैं और उगत चान्द व अनन राजू प्रमाण आकाशाग का अलाकाशाग कहन है । अलाकाशाग म आकाशाग व सिवाय अथ को द्रव्य नहीं है । हम तरफ आकाशाग द्रव्य समस्त द्रव्यों का अवगाट (निवास) का निमित्त कारण है ।

वासद्वय

जो प्रत्येक द्रव्य की अधिक पदार्थ परिणमन म बिना उपासीन निमित्त रूप म सहायता करता है वह वायु द्रव्य अथ व वायुव अमूर्ति द्रव्य है । अलाकाशाग व पदार्थ परिणमन म जो सोकाशागवर्ती ही वायुद्वय निमित्त रूप म सहायता करता है ।

प्रत्येक द्रव्य में स्वभावतः इतिवच पदार्थाणिमन करने की उपासीनगति होता है परन्तु उम परिणमन में वायु द्रव्य का निमित्त सहायता अनिवार्य आवश्यक है । मनुसार यदि वायु द्रव्य न हा तो बिना भा द्रव्य की पदार्थ



का परिणमन न हो सके। पचान्तिनाय (गाथा १०० की टीका) में भी अमृतचन्द्र गुरु ने लिखा है—

‘जीवपुद्गलानां परिणामस्तु बहिरङ्गनिमित्तद्रव्यसालमदनापि सति मभूतस्यान् द्रव्यसालमभूत इत्यभिधीयते ।’

अर्थ—जीव-पुद्गलों का परिणमन बाह्य निमित्तकारणभूत गण्डद्रव्य के होने पर होता है, उस कारण प्रतीयमान जीव पुद्गलों का परिणमन ताल द्रव्य में होता गया जाता है।

आज यह है कि जीवों एवं पुद्गलों के परिणमन में ये द्रव्य स्वयं उपादान कारण हैं जीव तालद्रव्य उनमें निमित्त कारण है।

तत्त्वार्थसूत्र के पाँचवें अध्याय के ‘वर्तनापरिणामाणि गणवन्वापरान्ते च गणवन्’ सूत्र की व्याख्या करने हेतु श्रीपूज्यपाद आचार्य ने तत्त्वार्थनिष्ठि ग्रन्थ में लिखा है—

“धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपरिणामिर्बुद्धिं प्रति स्थान्मनेन वर्तमानानां बाह्योपगृह्यदिना तद्वन्वभावात् तत्प्रवर्तनोपलक्षित कालः ।”

अर्थात् अपनी पर्याय के परिणमन में स्वयं (उपादान शक्ति में) प्रवृत्ति करने वाले धर्म, प्रथम, आकाश पुद्गल, मुक्त, तथा सनारी जीवों का परिणमन बाह्य निमित्त कारण की सहायता के बिना नहीं हो सकता। उस परिणमन में सहायक ताल द्रव्य है।

अभिप्राय यह है कि गण्डद्रव्य प्रत्येक शुद्ध एवं अशुद्ध द्रव्य के पर्याय-परिणमन में निमित्त कारण अवश्य होता है।

इस तरह समस्त शुद्ध द्रव्य अपने प्रतिक्षण होने वाले पर्यायपरिणमन में जहाँ स्वयं उपादान कारण होते हैं, वहाँ अन्य द्रव्य उनमें उदासीन सहायक रूप में निमित्त कारण होते हैं।

पुद्गल द्रव्य

जीव, धर्म, अथर्व, आकाश, काल, ये पाँच द्रव्य रूप सम गण्य स्वयं उन चार गुणों से रहित होने के कारण अमूर्त होने हैं, अतएव वे इन्द्रियों द्वारा अगोचर होते हैं—इन्द्रियों में नहीं जाने जा सकते। इनो प्रमाण से अण्ड पदार्थ होते हैं, इनका कभी भी किसी तरह में कोई विभाग नहीं होता।

परन्तु पुद्गल द्रव्य में ये दोनों बातें नहीं हानी। पुद्गल द्रव्य में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श ये चार गुण होते हैं, अतः पुद्गल मूर्त द्रव्य है, इन्द्रियों में जानने में लाता है तथा तत्त्वार्थसूत्र के ‘अपय स्वप्नान्ध’ सूत्र के अनुसार पुद्गल द्रव्य अणु (परमाणु) तथा स्कन्ध रूप में दो प्रकार का होता है। शुद्ध पुद्गल परमाणु (मनसे छोटा टुकड़ा, जिसका और टुकड़ा न हो सके) अण्ड होता है। परन्तु दो या दो से अधिक ३-४-५ आदि मन्थान अनरपान, अनन्त परमाणु परस्पर में मिलकर जो स्कन्ध बन जाते हैं, वे अनेक तरह के (२३ प्रकार की वर्णना रूप) पुद्गल द्रव्य विभिन्न प्रकार के निमित्तों में कभी टूटते हैं, गलकर छोटे-बड़े टुकड़े बनते हैं, यहाँ उनमें और दूसरे स्कन्ध मिलकर वे बड़े हो जाते हैं, इस तरह की पूरण और गलन शक्तिवाला होने से इस मूर्त द्रव्य का नाम ‘पुद्गल’ है। इन्द्रिय भाषा में इसे (Matter) मेटर कहते हैं।

हमको जितने भी पदार्थ नेत्रों में दीख पड़ते हैं, सूँघने में आते हैं, लूने में जाते हैं, जीभ द्वारा चबने में आते हैं या कानों में सुनाई देते हैं, वे सब पुद्गल पदार्थ हैं। जीवों के रहने का घर अर्थात् जमीन भी पुद्गल स्वभाव है। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु भी स्वावर जीवों का शरीर है। उनके आश्रित जीव स्वरूप में पृथक् हैं।

शुद्ध पुद्गल परमाणु तो अनिन्द्य होने से इन्द्रिय-अगोचर होता ही है परन्तु पुद्गल स्कन्धों में भी बहुत स्कन्ध ऐसे सूक्ष्म होते हैं जो नेत्र आदि इन्द्रियों द्वारा जानने में नहीं आते और बहुत से स्कन्ध म्यूट होते हैं जो कि इन्द्रियों से जाने जाते हैं। उन इन्द्रियगोचर स्कन्धों में भी दो प्रकार हैं (१) कुछ स्कन्ध अन्तः फल आदि तो ऐसे हैं जो स्पर्शन (स्पर्श) रसना (जीभ), श्राण (नाक), नेत्र और कान, इन पाँचो इन्द्रियों द्वारा छूने, चबने, सूँघने, दिखने

मुनन में आते हैं परन्तु वायु आदि कुछ ऐसे स्वच्छ होन हैं जो आदि नदी जैसे परन्तु दूने में आते हैं। स्वच्छ रूप पुनः स्वच्छ रूप में आते हैं जो मुनन में आते हैं जिनका स्थान स्थिति पर आधारित भा होता है परन्तु आदि से आदि नदी दत्त। प्रकाश और अवधारण रूप पुनः स्वच्छ होन हैं जो आदि नदी दत्त हैं परन्तु नाव का नाव जोम इन्धन द्वारा नहीं जान जात। धूप और चोरी रूप परिणम होने का पुनः स्वच्छ होन गम रूप से दूने में तथा देखन में आन हैं परन्तु उक्तो पर्वतकर न ता स्थानांतर विद्या या मवता है न अथ इन्धन उनको जान मवता है।

यस तरह पुनः स्वच्छ रूप का प्रचार का है। पुनः स्वच्छ रूप के विविध प्रकार के परिणमन विविध प्रकार के निमित्त कारणों द्वारा हुआ करत है। आवसीजन और आद्विजन मवता के निमित्त आने से पानी का जाता है। पानी को अतिष्ठान वायु का या ऐमागिया मवता निमित्त मित्रने ग वफ वन जाती है। अग्नि की तथा मूप विरणा की गर्मी के निमित्त से पानी भाप बन जाता है भाप से वाष्प बन जाता है पारिष्वक्ता तथा सोना चोरी नाव आदि पादित घातुण अग्नि के निमित्त ग अन्तरा राज हा जाती है समस्त घातुण मित्रकर अथ आकाश प्रकारा में परिणम होती है। यम भी अग्नि निमित्त कारण होती है।

पक्षा के भीतर विभिन्न स्थान पर जो विभिन्न प्रकार के वक्क पक्ष्य मिट्टी मृच्छ कायना जोहा सोना चोरी रत्न सोना रागा तथा अग्नि बनते हैं उन भी मित्र मित्र प्रकार के निमित्त कारण होत है।

मित्र मित्र स्थान की पक्षा में विभिन्न प्रकार के वक्का के निमित्त से विभिन्न प्रकार का उपानम गतिन होना है अतः कसर सोना चोरी लाहा सल पाजा लात सप पक्ष्य आदि वक्का मव जग उपानम न हावर विगप विगप स्थानो पर ही उत्पन्न होत है।

जल के भीड़ लाने छटट सुगन्धित दुग्धित वक्का मव भाप आदि जा परिणम होत हैं उनके भी विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक निमित्त कारण हैं और मनुष्य भा वन कारण मित्रकर वक्का भाप विजरी आदि बनाने विभिन्न प्रकार से उनका उपयोग या प्रयोग करता है।

यही प्रकार विभिन्न प्रकार के निमित्त कारणों से वायु भी विभिन्न प्रकार की मवता में परिणम हो जाती है। विभिन्न निमित्त कारणों से स्वच्छ वायु भी मगन्धित दुग्धित हो जाती है।

मोटरकार पक्ष्य पारिष्वक्ता तथा टायर टयूबा में मवो हुई वायु आदि निमित्त कारणों में चलती है। टाक गिला और मव आदि पर चपान धाला आन्ध्र द्वावर रूप प्ररक निमित्त कारण का माटर के चलने में मदायक है। यदि निमित्त कारणों में ग पञ्च भी कारणों का वमी रहता तो माटर न चल सक्ता। पट्टान मदायक हो जात या टायर का हवा निवृत्त जात तो माटर का चपना मव हो जाता है।

माटरकार के निमित्त से उनका चालक अथ समय में दूर दूर का यात्रा कर जाता है। साईकिंग अपनी उपानम गतिन से मवता चल मवता है जब उसमें पक्षियों में मवता मवता हो और उसका चपने वाता वातक हा। चारक के निमित्त से साईकिल चलती है और साईकिल के निमित्त से उसका मवता मनुष्य चलता है। नाव के निमित्त से मालान में पार हो जाता है और मालान के निमित्त से नाव मवता में चलती है।

आटा रूप उपानम कारण में रोटा तभी बनता है जबकि रमोन्मा चक्का वेगन तथा अग्नि लक्ष्मी कायला आदि निमित्त कारणों का मोदना हा। यदि एक भी निमित्त कारणों की वमी होगी तो उपानम कारण आता राजा न बन सक्ता।

हवा कारण आदिमान में आधार के वक्का है -- सामग्रीअनिवृत्तकारणमक कारणम अर्थात् उपानम कारण के साथ ममस्त आधारक निमित्त कारण सामग्री। तभी वाम लोहा है मवता लक्ष्मी ही कारण में काय नग होना।

यस तरह पुनः स्वच्छ रूप के विविध प्रकार के परिणमन में विविध प्रकार के निमित्त कारण मदायक होते हैं।



जीव द्रव्य

पुद्गल द्रव्य ही तरह जीव द्रव्य के भी दो प्रकार के परिणाम होते हैं—(१) पुद्गल परिणाम तब होते हैं जब जीव है, वे अन्तर्जानी, अन्तर्गुह्यी, अजर, अमर, आत्मा होते हैं। (२) तमोदय, मरण में जन्म मरण-चक्रों द्वारा भ्रमण करने वाले नगारा जीव अशुद्ध जीव हैं।

आत्मा का स्वभाव शास्त्र निराकृत पुद्गल पुद्गल चीजों का है, आत्मा न जन्मी मरती है, न जन्म लेता है परन्तु जन्म राग द्वेष काम क्रोध आदि असुद्ध परिणामों का जन्म लेता है (मार्ग प्रकाश की प्रकाश-वृत्ति रूप प्रवृत्ति) द्वारा पौद्गलिक कार्मिक वर्णनात्मा का तब ही जन्म होता है। वे वर्णनात्मा वर्णों के आकर्षित होकर आत्मा के प्रदेसों में दूरी-तानी की तरह वे मिश्रित आत्मा के भागों में आते हैं। आत्मा भागों में तमोदय वृत्ति जाती है और वे तमोदय वर्णनात्मा, दर्शनात्मा, चेतनीय, मातृनीय, गुरु, नाम, गीत, अन्तर्यामि रूप हो जाते हैं। उन वर्णों के निमित्त में आत्मा का ज्ञान, दर्शन, निराकृतता, शास्त्र, स्वच्छ भाव विज्ञान का भाग है। यह भाग यह जन्म-मरण करता है और नरक, पशु, मनुष्य, देव गति तथा चोरागों का भागों में भ्रमण करता रहता है।

उन तरह आत्मा के भाग-द्वेष आदि भागों के निमित्त में पौद्गलिक कार्मिक वर्णनात्मा ज्ञानात्मा आदि द्रव्य-कर्म रूप बनती है और उन वर्णों के उदय निमित्त में आत्मा में अज्ञान (अज्ञान तथा ज्ञान-अनुभव में भ्रम वृत्ति), मिथ्यात्व, अवयव (राग, द्वेष, मोह, लोभ, माया मान, तामसात्मता, भय, दुःख आदि वर्णों) के विस्तार भाव होते हैं। इस तरह द्रव्यकर्म (ज्ञानात्मा मोहनीय आदि वर्णों) के कारणों में आत्मा के भाग-द्वेष अज्ञान आदि विस्तार भाव एवं जन्म-मरण होता है और उन विस्तार भाव-मरण भाव-मरण के निमित्त में द्रव्यकर्म होता है। श्रीगुरुदेव अचार्य ने समग्रभाग में लिखा है—

जीवपरिणामहेतु कम्मत्त पुग्गता परिणमत्ति ।

पुग्गलकम्मणिमत्त, तहेज जीवो वि परिणमत्त ॥८०॥

अर्थ—जीव के भाग द्वेषादि परिणामों के निमित्त में पुद्गल तमोदय परिणाम होते हैं और पौद्गलिक वर्णों के निमित्त में जीव भी भाग-द्वेष आदि विस्तार रूप परिणाम होता है।

उस तरह परस्पर निमित्त-नैमित्तिक भाव में आत्मा और वर्णों का सम्बन्ध अनादि काल में चलता रहा है।

जिन तरह शराव, जड़ पदार्थ हैं परन्तु उन जड़ पदार्थों की वैसे पर अमूर्तिक आत्मा का ज्ञान, पुद्गल-द्रव्य विगड जाती है, इसी तरह पुद्गल कर्मों के निमित्त में आत्मा के गुण विकृत हो जाते हैं।

जन्म-मरण

जैसे ज्ञानात्मा कर्म के निमित्त में आत्मा का ज्ञान बहुत हीन हो जाता है, दर्शनमोहनीय कर्म के उदय के निमित्त में आत्मा का नम्यदर्शन गुण मिथ्यात्वरूप हो जाता है, चारित्र्यमोहनीय कर्म के निमित्त में आत्मा का मन्वा-रित्र गुण अवयव या कुचारित्र बन जाता है, इसी तरह आधु कर्म के उदय के निमित्त में आत्मा का चित्ती नये शरीर में जन्म होता है उस भव में वह आधु कर्म के कारण जीता रहता है, जब आधु कर्म की समाप्ति हो जाती है तब आत्मा का उन भाव में मरण हो जाता है। नये आयुर्कर्म के निमित्त में आत्मा दूसरे शरीर में जन्म लेता है।

कोई भी जीव नरक निगोद के दुख नहीं भागना चाहता परन्तु नरक निगोद में ले जाने वाला गतिनामकर्म आत्मा को वलपूर्वक नरक निगोद में ले जाता है। इस तरह आयुर्कर्म और नामकर्म के निमित्त में मनसारी जीव का समारभ्रमण या जन्म-मरण होता रहता है।

सुख दुःख

सातावन्नीय व निमित्त भ सारा आव का द्विध सुख की सामग्री मित्रो है और जगता वन्नाय क निमित्त मे भय राग चिन्ता व्याकुलता आनि अनर तर क दुख मिलने हैं ।

पारस्परिक सुख दुःख

ससार म आत्मा राग और द्वेषभाव स किसी का (माता पिता पुत्र स्त्री भाई मित्र आदि का) अपना दित्तकारी मानकर उनस प्राप्ति करता है व भा उसमे प्रम करते हैं एक दूसरे का सुख न है । इसा तरह पशु पक्षि सबक स्वामी जाद भी राग भाव से एक दूसरे को सुख देकर परस्पर उत्तार वरने हैं । इयमाय स पिता पुत्र भाई भाई तथा अन्य व्यक्तिय भा एक दूसरे व गत जनन परस्पर म दम देने हैं । न तरत घन उपकार अनकार हाणिना आनि निमित्त कारणो से ससारी जीव राग द्वेष करते दुःख परस्पर सुख दुःख न है ।

पुरुषर कम व उ य स रता व साथ रमण करने की कामना जाग्रत होती है । स्वार्थे व उय म पुष्टय व साथ वामशील करने की भावना पण हाता है । भय कम के उय क निमित्त स आत्मा भयभीत हाता है ।

ब्रह्मविमान माया नम कपायो मे स जत्र तिस कपाय क उ य का निमित्त मिलता है ज भरम वरिण निमित्त कारण मित्र है उम समय आत्मा क परिणाम भाव आदि रण न जात है । यनि उम समय आयुषम का दध हो ता उस प्रगस्त या जगस्त कपाय क अनुसार गुम या अगुन आगु कम का दध हा जाता है ।

एन नाम भाग उभाग दाय अतगायकम व उय क निमित्त । तथा वरिण कारणो क निमित्त स आत्मा को दान करन म विविध प्रकार क लान हाते म भोग्य उपभाय वगर्बो व भाग उदमाय म और गतिन क प्रक होन म विधन बाधा उत्पन हाती है ।

कथो मेगा भा अतसर आता है कि किमा कम के उय क समय यनि वरिण निमित्त कारण न होना कम का उय अपना प्रकृति और दानिक क अनुसार आत्मा का क नो द पना । जिय तर तरत म य साता मे नीय कम का उय हा ता वती गुष्ट व वाहरी निमित्त कारण विद्यमान न हाते ग साता व नीय कम मुख प्रान नो वर नाता । वरगति मे बाहरी दुष्ट सायग्री का निमित्त न लान मे असानान्नीय कम का उय निष्कल रता है ।

कमबध हो जाने क पन्वान् भा आत्मा क अन्ते या बुर अवस्था गुष्ट भाषा क निमित्त स ब्रह्म गुण कमो की प्रकृति स्थिति अनुभाग म बद्ध हाति परिवर्तन निरिवन समय म पहन कत देने आनि का प ता घनि हा जानी है जिमे कमप्रमा म उत्तवण अवकण सन्नमण उरीणा आनि नाभो म कटा गया है । न तरत अनरण व हरण कारणो क निमित्त से वमी का छेत् भी विविध प्रकार का आत्मा व साथ न्ना करता है ।

कम मोचन

कमबद्ध भव्य जीव मन् ससारी की नगी बना रता । बह् अनुकृत मजबसर पारर ससार स मुखन हाते के लिये जा आध्यात्मिक काय रता है उसके लिये भी निमित्त कारणो की अवेगा नानी है । सत्वायभूष वा प्रथम सूत्र है—

सम्पन्नान्नान्नवारिप्राप्ति मोक्षमाय ॥१॥ (सम्पन्नान्न सम्पन्नान्न और सम्पन्नवारिप्राप्ति मोक्षमाय है । सुविन प्राप्त करन का उपाय है ।)

इस भागमन्त्रिणन व अनुसार सुविन वा भूत कारण सम्पन्नान्न (पुष्ट आरामवस्व की बद्धा र्वि अनुपनि) है । बह् सम्पन्नान्न तय नाता है यव कि सम्पन्नान्न वा उपपन्न या अहन्त मयमन का वाणी सनन वा चान्ता निमित्त भव्य जीव का मित्र (जिसको जगन्नाथि कहते हैं) तथा दानमोक्षाय कम का दाय उपाय आनि अतरण निमित्त कारण भी मित्र । नियमसार म आकुलता छायाय मे बताया है—



अर्थ—सम्प्रदर्शन उत्पन्न होने या (वर्तमान) निमित्त तात्पर्य विनयात् या पुनरावृत्ति उत्पत्ति मुक्त
वाले एक उम्मेद ज्ञाता पुरुष (आचार्य उपाध्याय नाथ या अर्थज्ञ भगवान्) है। उत्पन्न निमित्त तात्पर्य सम्प्रदर्शन प्र
काश प्रदि है।

मम्यक्चारित्र्य या निमित्तात्ता निषेधं मुनिदीक्षा तता प्रज्ञानसाधनं तया या अभिज्ञान, मुनिमय
अदि है ।

इनके निदाय मोक्ष के निमित्त जगत् समुपद्रव्य, दुःख, अज्ञान, मोक्ष, सुख, आदि के योग्य मनुष्य के जन्म, कर्मभूमि, दुःखभूमि का, ध्यान, आदि भी है। उन नाम के निमित्त जगत् का उद्धारण तथा निमित्त मोक्ष की निद्रि नहीं होती। यदि उन निमित्त जगत् में एक भी जगत् की जगत् नहीं होती तो मोक्ष भी नहीं होगा।

निम्न कारण प्रेरण, उदासीन, वक्राधारण आदि अनेक प्रकार के होते हैं। जो उदासीन रागण जो वक्राधारण अपनी प्रवृत्ति के अनुसार परिणामित हैं वे प्रेरण निम्न रागण होते हैं। जैसे भाजन बनाने में गोदया प्रेरण निम्न कारण है। वह अपनी इच्छानुसार बाँट तो गठी, दाड़ी, घूँटी-चोरी, पगमठा, हनुम आदि के रूप में परिणामित है। पानी की प्रवृत्ति बह भूतलों को, पथरों को तथा वन आदि को लवणरसनी बना ले जाती है।

धर्म, अप्रम, मात, आगम-प्रणाम आदि उदात्त तान्त्रिकों ने, जो कि उदात्त तान्त्रिकों को बन्धुत्व नहीं
परिणामित ।

जिन पदार्थों में ज्ञान होने में उपादान की जरूरत प्राप्त होता है वे कलाप्रामाण्य विभिन्न प्रकार होते हैं, जैसे लकड़े मनुष्य को चलने में सहायता देता है, नेत्रों की शक्ति ज्योति वाले मनुष्य को दृष्टि में उत्तेज (ऐनज, चमत्) चल प्रदान करता है।

उनके निम्नान्वय अन्त्य प्रमाण के अभाववात्मा निम्नित कारण भी होते हैं। जिन पदार्थों ने पदार्थ नहीं हो सकता उन पदार्थों का अभाव होना कार्य होने में आवश्यक निमित्त कारण है। जैसे कि विद्यार्थी ने पढ़ने में जग, उदरपीडा, भयानक मित्र की पीडा, नेत्र दुःखता, बुद्धि, जगद आदि अन्त्य प्रमाण के अभाव में तो अन्तः, जटिलान्वय, वाट, भूकम्प, वज्रपात, जगत् आदि अन्त्य प्राकृतिक वास्तव कारणों का अभाव होना आवश्यक है। वह जहाँ पढ़ता है वहाँ सूर्य, मित्र, भेडिया, चीन्हा, बाघ आदि हिंस्र जीवों आदि अन्त्य वास्तव कारणों का अभाव होना भी अन्त्य आवश्यक है। यदि वे वास्तव निमित्त कारण वहाँ पर हो तो कोई भी पढ़न-पाठन आदि कार्य आनिपूर्वक वहाँ पर नहीं हो सकता।

जिन समय उपादान कारण और ममत्त्व भावक्य तथा अभिप्राय रूप निमित्त कारण मिल जाते हैं, उसी समय कार्यनिष्ठ होती है।

आत्मा यद्यपि द्रव्यदृष्टि में अजर-अमर अविनाशी है परन्तु हमारे में प्रत्येक पदार्थ में उसे जीवित रहने को श्वास लेने के लिये वायु, पीने के लिये जल, भूख मिटाने के लिये भोजन, रहने के लिये म्यान, प्रकाश, अन्धकार, गर्मी आदि जीवित-उपयोगी पदार्थों का निमित्त मिलना आवश्यक है। मछली आदि जन्तु जीवों को जलाशय (तानाव नदी, समुद्र आदि) मिलना आवश्यक है। गाय, घोड़ा, कुत्ता, सिंह, हिरण आदि चलचर जीवों को अपने जीवन के लिये वृक्ष पृथ्वी का मिलना आवश्यक है, नन्तर पक्षियों के लिये मकान आकाश की अदृश्यगता है, मनुष्य को भी

साथ जल भाजा प्रकारा आशयक समी अपने जीवन के लिय अत्या आवश्यक ह । यदि पत्थरी का निमित्त ससारी जीवों को न मिय ता वे जीवित नही रह सकत ।

लघुअपराधित्व निमादिया जाव का अपराधित्वम क उन्म क निमित्त स एक ग्राम लन निना छाये मे
याद मे १८ बार जम मरण वरता पन्ता है

दृश्यमान निमित्त उपादान कारण

प्रायः सभा बन्दे उपरान्त शोभे मध्य भोजन भात आत है पर तु उनका जस जम खड़े बुरे शिक्षित जगित न दुजन सज्जन सत्पारा माता पिता भाई-बन्धिन का निमित्त मिलना है उनका गुण और स्वभाव थोड़े जात हैं। मातापिता स्मृत और काकरा। म पाने वाक विद्याविषय का जस खड़े बुने सहपाठियों का संगति वा निमित्त मिलना है उसी तरह य थ सत्पारा या दुराचारो धन आत ॥

इसका अभिप्राय यही है कि मनुष्य में अनेक प्रकार की उपादान शक्ति है उसमें सदगुणी गतिमान सत्तन बनने की भी शक्ति है और दूसरी ओर लबा-बा शक्तियाँ बण्ठा हुआ बनने की भी उपादानशक्ति है। किन्तु जन्म निमित्त कारण मित्र है उस तरफ की उसकी सम्पूर्णमयी या दुर्गममयी गतिता का विकास हुआ जाना है और वह उम्र प्रसार का बन जाता है।

बाटे मे अनज प्रकर की उदाहानावन है जिनके कारण यह रानी पूजा बची-बाली जानि बन सरता है। बला आना गरीर त मया छानन वा उत्पन भी बन सरता है। जानि म जग भा मरता है। हवा म उड़ जा मरता है। वन मिटने वाला भा बन सरता है। अन यनि प्यसका पुत्र रमोया वा पिनिन मिग्या त व आन अ ठा माजन बन मरता है। आग म वन जायेवा ता अनि क निति म रमो भा वन मरना है। आधी का निति मिल ता वह उ मरता है और धन मिटने वाला म वन जाय ता उग निति म वह धन मिटने वाला भी बन सरता है।

जन्म सन्दर्भ उपपान्त कारणों का जन्म निमित्त कारणों का सम्बन्ध गिनना है। उपपान्त उसी प्रकार परिणामित करता है।

सामग्री

इसके नियम एक बात यह भी है कि एक वायु के नियम अनन्त निमित्त कारणों की आवश्यकता होती है। उन सब निमित्त कारणों या सामग्रियों के बिना यह ठीक वायु होता है। यदि निमित्त की कमी होगी तो क्या ठीक वायु न हो पायेगा।

जैसे आग का रूप प्रकाशन कारण से भोजन-वायु हमारे वरिष्ठ सिफ रसायना रूप निमित्त कारण स ही वाम न । हा गता उनक जिये जल भी नमक प्याह आदि कुछ और भी उपान्त कारण मिश्रित पदार्थ तथा वरला नैलन तथा अनि आदि अय निमित्त कारण। की भी योजना करनी पड़ेगी तभी आ से को १ घाती पूनी हवा आदि वायु हा गवया ।

यन्मिथय निमित्त कारणं ह। अग्निं न ह तव भो राग्निं न वनयो । अग्निं रमोऽप्याग्निं निमित्त कारणं
मां ह। परन्तु तया न हो तव भो मन्त्रे वनयो राग्निं न वा मन्त्राः ।

पढ़ने व लिखने विद्यार्थी को अध्ययन पुस्तक वाचन वगैरे प्रयोग आदि अनेक निमित्त कारण मिलने चाहिये। यदि उनमें से किसी भी कारण को हमी रह्यो तो विद्यार्थी ठीक तरह में पढ़ सकेगा। हम प्रत्येक स्थिति में विद्यार्थी को लिखने वाचने तथा पुनर्निमित्त कारण-आमोषी आवश्यक जेना है।

एक निमित्त से विभिन्न प्रकार के कार्य

साधारण जनना व आवागमन व एवं स्थान पर एवं मन्त्रो मुखी मृ यज्ञान दम्न आभूषणा त समर्पित





वेश्या मरी हुई पड़ी थी। एक चोर, एक कामातुर पुत्र, एक नाटु और एक कुत्ता उसको देखने के लिये उनके पास गड़े हा गये। वेश्या को मरा हुआ देखकर चोर ने विचार किया कि इसके शरीर पर कीमती वस्त्र आभूषण है, यदि यह एकान्त स्थान में होनी तो मुझे अनायास बहुत धनप्राप्त होगा। कामातुर पुत्र ने मन में विचार किया कि यदि यह जीवित होनी तो मैं उसके साथ कामप्रीति करना। कुत्ते ने विचार किया कि वहाँ पर यदि मनुष्य न जाने तो मैं उसका मानसक्षण करके अपनी भूत ज्ञान करना। नाटु ने वेश्या को देखकर विचार किया—मनुष्यभय पाकर उसने तपस्व्याग धर्म नहीं किया। विषयभोगा में निरत रहकर उसने मनुष्यजन्म का लाभ नहीं उठाया।

यहाँ प्रश्न यह है कि एक ही निमित्त (मृतक वेश्या) ने चार उपादान प्राप्ति (उत्प्रेक्षित वस्तु जीवों) में विभिन्न प्रकार के चार कार्य का विचार क्यों हुआ? उसका उत्तर यह है कि मृतक वेश्या को देखते होते चारों जीवों के विचारों (उपादान प्राप्ति) के लिये वहाँ निमित्त चार थे। चोर के लिये निमित्त कारण वेश्या द्वारा पहने हुए मूल्यवान् वस्त्र आभूषण थे। कामातुर मनुष्य के लिये वेश्या का सुन्दर शरीर निमित्त कारण था। नाटु के शिवाङ्ग-भाव के लिये वेश्या का मनुष्य भव था। कुत्ते के लिये निमित्त कारण वेश्या का मानव शरीर था। इन तरह जीवों के लिये मृतक वेश्या-शरीर के विभिन्न चार निमित्त कारण थे।

निमित्त मिलने पर भी कार्य का न होना

भगवान् श्रुपभवाय के निमित्त ने उनका पीछा (पाना) मरीचिकुमार मिथ्यादृष्टि क्यों बना रहा? एक कामातुर रानी की अनेक प्रकार की कामोन्नेजक चेषुओं का निमित्त मिलने पर भी सुदर्शन नेत्र के मन में कामवासना जाग्रत क्यों न हुई? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि दोनों के उपादान प्राप्ति उन प्रकार की साधनविधि के योग्य न थे। तथा अन्य निमित्त कारण भी न थे। मरीचिकुमार को अन्तरंग निमित्त कारण (मिथ्यात्व कर्म का उपभोग) उपलब्ध न था अतः उसका उपादान (आत्मा) सम्यक्त्वप्राप्ति का कार्य प्राप्त न कर सका।

सुदर्शन नेत्र आत्मध्यान-निगमन था। उस समय उनके पुण्यवेद का उदय न था इस कारण वे भी अन्तरंग निमित्त कारण के अभाव में कामातुर न हुए। उनका उपादान कारण (आत्मा) कामसामानाधिकरण न था।

नारायण यह है कि कोई भी कार्य तब ही होता है जब उसके अनुकूल उपादान कारण तथा उसके लिये सब तरह के (अन्तरंग, बहिरंग, वलाद्ययक, प्रेरक आदि) निमित्त कारण मिल जायें। यदि उन कारणों में से एक भी कारण की कमी रहती है तो कार्यसिद्धि नहीं होती।





चरणानुयोग में निश्चय और व्यवहार शब्दों का अर्थ

जैन मकृति के अध्यात्म का प्रधान और अन्तिम उद्देश्य दीर्घा द्वाग मामाग्नि वस्त्रतो मे छुटारा राग आत्मस्वानुग्रह प्राप्त कर लेना ही जैनागम मे बतलाया गया है । दीर्घा द्वाग मामाग्नि वस्त्रतो मे छुटारा वा वेदे वा नाम मोक्ष है^१ और उम मोक्ष तो प्राप्त करने वा उा उताय हा मतता है उवे मानमाने जानना चाहिये । जैनागम मे मोक्ष-मार्ग को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य के रूप मे प्रतिपादित किया गया है ।^२ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य को आगम मे निश्चय और व्यवहार क भेद मे दो-दो भेद रूप बतलाया गया है ।^३ उन तरह मोक्ष-मार्ग बहा पर दो भेद रूप बतला दिया गया है—एक निश्चय मोक्ष-मार्ग और दूसरा व्यवहार मोक्ष-मार्ग ।^४ मात्र ही इनका स्पष्ट कर दिया गया है कि निश्चय मोक्ष-मार्ग तो तोज वा गदायान् राग है और व्यवहार मोक्ष-मार्ग परमरा, अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग वा काग्य होकर राग है ।^५

अद्वेय पण्डित दीनरामजी ने उह द्वाग के नीचमे दाल के प्रारम्भ मे, उन विषय को बताने ही सुन्दरता के साथ मार्गान्ति दो पद्यों द्वारा स्पष्ट रूप मे प्रतिपादित किया है । ये पद्य ये हैं—

"आत्म को हिन है मुख नो मुख जाहुन्ता भिन कहिये ।
जाहुन्ता जिव माहि न, ताने शिवमग नाखी चाहिये ॥
सम्यग्दर्शन जानचरण शिवमग नो दुषिय निचाने ।
जो मन्थान्य रूप नो निश्चय, कारण सो व्यवहारे ॥१॥
पर द्रव्यन ते भिन्न आप मे नयि सम्यक्त्व नला है ।
आप रूप को जानयनो नो सम्यग्ज्ञान क्या है ॥
आप रूप मे तीन रहे विर सम्यक् चारिनि नोई ।
अब व्यवहार मोक्षमग मुनिये हेतु निरन को होई ॥२॥

१. वस्त्रहेत्वमावतिर्जराभ्या कृन्मन्मविप्रमोक्षो मोक्ष ॥१०-२॥ (तत्त्वार्थसूत्र)

२. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्याणि मोक्षमार्ग ॥१-१॥ (तत्त्वार्थसूत्र)

मम्मत्तगणजुत चारित्त रागदोषपन्हिरणं । मोक्षन्म हवदि मणो भव्वाण सद्बुद्धीन ॥१०६॥

(पञ्चान्तिकाय)

३. धम्मादी सद्बुद्धेण मम्मत्त गाणमंगपुद्बगद । वेद्वा तय हि चरिया व्यवहारे मोक्षमगोत्ति ॥१६०॥

(पञ्चान्तिकाय मे व्यवहार मोक्ष-मार्ग)

पिच्छयपयेण भगिदो तिहि नेहि नमाहिदो हू जो ।

अप्पा ण कुण्दि किञ्चिदि अप्पा ण मुण्दि नो मोक्षमगोत्ति ॥१६१॥ (पञ्चान्तिकाय मे निश्चय मोक्ष-मार्ग)

४. निश्चयव्यवहारमोक्षकारणे नति मोक्षकार्यं सम्भवति । (पञ्चान्तिकाय गाथा १६० की टीका मे आचार्य जयमेन)

५. निश्चयव्यवहारयो नाश्रमायनभावत्वान् । (पञ्चान्तिकाय गाथा १६० की टीका मे आचार्य अमृतचन्द्र)

निश्चयमोक्षमार्गमाधनभावेन पूर्वोद्दिष्टव्यवहारमोक्षमार्गनिर्देशोऽम् ।

(पञ्चान्तिकाय गाथा १६२ की टीका मे आचार्य अमृतचन्द्र)

व्यवहारमोक्षमार्गमाधनभावेन निश्चयमोक्षमार्गोपपन्नोऽयम् ।

(पञ्चान्तिकाय गाथा १६३ की टीका मे आचार्य अमृतचन्द्र)

मात्रनो व्यवहारमोक्षमार्ग नाखी निश्चयमोक्षमार्ग (परमात्मप्रकाश टीका पृष्ठ-१४२)

एवं निश्चयव्यवहाराभ्या माध्रमायनभावेन तीर्थगुन्देवनास्वरूप ज्ञानव्यम् ।

(परमात्मप्रकाश टीका ७ की टीका)

प्रथम पद्य में पण्डितजी ने कहा है कि आत्मा का स्ति सुख है। सुख आकुलता के अभाव में उत्पन्न होता है और आकुलता का अभाव मोक्ष में है अतः जीवा को मोक्ष के मार्ग में प्रवृत्त होना चाहिये। मोक्षकामाय सम्मग्नान सम्मग्नान जीर सम्प्रकारिण रूप है। ये ताना निश्चय रूप भा होते हैं और व्यवहार रूप भी गे। अतः मा माग भा निश्चय और व्यवहार के अन्त में दो प्रकार का हा जाना है। इनमें सम्मग्नान सम्प्रकारिण और सम्प्रकारिण रूप निश्चय मोक्षमाग भा माग का सीधा कारण है तथा सम्मग्नान सम्प्रकारिण रूप व्यवहार मोक्ष माग इन निश्चय मोक्षमाग का कारणहीनर माग का कारण है अर्थात् परस्परका कारण है।

द्वितीय पद्य में पण्डितजी ने कहा है कि समस्त ज्ञान ज्ञान परमा की आत्मा में सुदृक्क अपन आत्म स्वरूप का आर जीव की अभिवृत्ति (उत्पत्ति) होना निश्चय सम्मग्नान है उसकी अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान हा जाना निश्चय सम्मग्नान है और बुद्धिपूर्वक तथा अनुबुद्धिक होन वाला कपायजय पाप और पुण्य परमस्त प्रकार की प्रसिद्धिों से निर्वर्ति पाएर उत्पन्न अपन आत्मस्वरूप में ली हो जाना निश्चय सम्प्रकारिण है।

तृतीय पद्य में अन्तिम कारण में अद्वय पण्डितजी ने कहा है कि आगे उल्लेख में निश्चय सम्मग्नानाणि रूप उत्पन्न निश्चय मोक्षमाग के कारणभूत व्यवहार सम्मग्नानाणि रूप व्यवहार मोक्षमाग का विवेचन किया जायगा। इस तरह उल्लेख में कि गये विवेचन के अनुसार व्यवहार मोक्षमाग रूप सम्मग्नान सम्मग्नान और सम्प्रकारिण का पद्य पद्य जो स्वरूप निर्धारित हुआ है उसका वचन यहाँ पर किया जाता है।

व्यवहारसम्मग्नान का स्वरूप

छद्म का नाम जीव अर्थात् आत्म स्वयं मय, निरञ्ज और मोक्ष यैसात तत्त्व के गये हैं और कहा गया है कि इनके प्रति जीवा के अज्ञान में अज्ञा अर्थान्तर स्वरूपाना का वास्तविकता के सम्बन्ध में ज्ञान की दृष्टि यानी अस्तित्व भाव पागत हा जाना वा नाम व्यवहारसम्मग्नान है। इनमें आधार पर ही जीवा को निश्चय सम्मग्नान की उपलब्धि होना है।

आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में और स्वामी सप्तमम् ने रत्नकरणश्रवणवाचर में सम्मग्नान का जो स्वरूप बतलाया है उसे व्यवहार सम्मग्नान का ही स्वरूप समझना चाहिये। आचार्य उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार उपयुक्त मान तत्त्वा के अज्ञान का नाम सम्मग्नान है। और स्वामी सप्तमम् के रत्नकरणश्रवणवाचर के अनुसार परमाथ अर्थात् बीनरागत के अज्ञान दवा परमाथ अर्थात् बीनरागत के पाप परमाथ और परमाथ अर्थात् बीनरागत के मार्ग में प्रवृत्त गन्ता के प्रति जावा के अन्त उत्पन्न अज्ञान का कारण हो जाना सम्मग्नान है।

यद्यपि तत्त्वार्थसूत्र और रत्नकरणश्रवणवाचर में निश्चय सम्मग्नान के उत्पन्न कारणों में परस्पर भेद दिया है तथा है परन्तु तत्त्व उनमें अन्तर है यद्यपि स्वामी सप्तमम् द्वारा रत्नकरणश्रवणवाचर में प्रतियोगिता ज्ञान में भी निश्चय के रूप में जावा के अज्ञान के उत्पन्न मान तत्त्वों के प्रति आश्रित भाव की जागति हा जाना हा सम्मग्नान का स्वरूप निर्धारित होना है।

व्यवहारसम्मग्नान का स्वरूप

बीनरागता के पाप अथवा मात तत्त्वा के व्यावस्थित स्वरूप के प्रतिगान्ध श्रावण का श्रवण पत्र पात्र अथवा चिन्ता मन और उत्पन्न गन्ध व्यवहारसम्मग्नान है। यह प्रकार के सम्मग्नान में जीवा का समस्त यन्त्रुभा और विचार आत्मा के स्वन निष्ठ स्वरूप का पाप होता है। जीव आत्मा का स्वन निष्ठ स्वरूप पाप पना अर्थात् गमन पनाओं को दृष्टन जानने का पाप रूप है। इस आधार पर ही आत्मा का आश्रित चिन्तन



१ तत्त्वार्थसूत्र में सम्मग्नान ॥१॥ २॥ अज्ञानोवात्स्वयं यमवनिज्जामोत्ताहय ॥१॥ ४॥

२ अज्ञान परमाथानापायमत्तपोमताम । श्रुद्धानोडमव्याप्त सम्मग्नानपरमयम ॥४॥

स्वादिन और अवण्ड (स्वप्न के साथ तादात्म्य की दृष्टि दृष्ट) स्थान अग्निन्दन मित्र होता है। आत्मा के उस स्वरूप को समझने के लिये उपर्युक्त प्रकार के आगम का श्रवण, पठन, पाठन, अभ्यास, चिन्तन, मनन और उद्देश्य महाप्रयत्न होता है।

विचार कर देखा जावे तो सम्यग्दर्शन प्राप्त होने से पूर्व ही जीवों को उन प्रकार के सम्यक् (बौतगगना के पोषक) आगमज्ञान की संप्राप्ति आवश्यक है इसलिए यद्यपि मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन के पूर्व ही सम्यग्ज्ञान को स्थान मिलना चाहिये परन्तु वही हमारे जो सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के मध्य स्थान दिया गया है उसका एक कारण तो यह है कि जीव का सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाने पर ही उनके प्रमाण के ज्ञान से सम्यग्पत्ता (मायैश्वर्य) माना जा सकता है और दूसरा कारण यह है कि उक्त ज्ञान की उपयोगिता सप्रदीपक रूप में सम्यग्दर्शन की तरह सम्यक्-चारित्र पर आच्छादन के लिये भी आवश्यक है।

व्यवहारसम्यक्चारित्र का स्वरूप

बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक होने वाली समस्त कथावस्तु पाप और पुण्यप्रवृत्तियों से निवृत्ति पाकर अपने आत्मस्वरूप में तीन होने रूप निश्चय सम्यक्चारित्र की प्राप्ति के लिये यथाशक्ति अगुप्तन, महाप्रयत्न, समिति, गुप्ति, धर्म और तप आदि क्रियाओं से जीव की प्रवृत्ति होना व्यवहारसम्यक्चारित्र है।

निश्चय सम्यक्चारित्र का अपर नाम यथाश्रयातचारित्र है। उसे बौतगग चारित्र और करणानुयोग की दृष्टि में औपगमिक तथा धार्मिक चारित्र भी कहा जाता है। इस की प्राप्ति जीवों को उद्यम श्रेणी चतुर् ११वें गुणस्थान में पहुँचने पर औपगमिक चारित्र के रूप में अवस्था धारक श्रेणी चतुर् १२वें गुणस्थान में पहुँचने पर धार्मिक चारित्र के रूप में होती है परन्तु ११ वें गुणस्थान के औपगमिक चारित्र और १२ वें गुणस्थान के धार्मिक चारित्र में इतना अन्तर है कि उद्यम श्रेणी चतुर् ११वें गुणस्थान में पहुँचने वाला जीव जन्तुमूर्त के अल्पकाल में ही पतन की ओर मुड़ जाता है। अब जहाँ उद्यम औपगमिक चारित्र नन्वाल समाप्त हो जाता है वहाँ धारक श्रेणी चतुर् १२वें गुणस्थान में पहुँचने वाले जीव का धार्मिक चारित्र स्थायी रहता है और वह जीव पतन की ओर न मुड़ कर अन्तर्मुक्ति के अल्पकाल में ही १२वें गुणस्थान से १३वें गुणस्थान में पहुँच कर सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है। इसी निश्चय चारित्र की प्राप्ति के लिये अनुयुक्त गुणस्थान का अविनमममदृष्टि जीव पाचवें गुणस्थान से अगुप्तन मार्ग करना है तथा और भी आगे बढ़ कर छठे गुणस्थान में महाप्रयत्न भी कारण करता है। उनका ही नहीं, धर्म तपश्चरण करके आगे बढ़ता हुआ वह जीव नानवें गुणस्थान में मुक्तोपयोग की भूमिका को प्राप्त हो कर आत्मपरिणामों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई यथायोग्य विनुद्धि के आधार पर उद्यम श्रेणी या तपश्च श्रेणी माडता है। इस तरह रहता चाहिये कि जब तक उस जीव को उपर्युक्त निश्चयसम्यक्चारित्र की प्राप्ति नहीं हो जाती है तब तक वह पाचवें और छठे गुणस्थानों में तो बुद्धिपूर्वक और मानवे से लेकर १० वें तक के गुणस्थानों में अबुद्धिपूर्वक उपर्युक्त व्यवहार-चारित्र की पालना में ही लगा रहता है। इन व्यवहारचारित्र का भी अपर नाम संगमचारित्र और करणानुयोग की दृष्टि में औपगमिक चारित्र है।

यद्यपि अगुप्तन और महाप्रयत्न तथा समिति, गुप्ति, धर्म, एव तपश्चरण आदि क्रियाएं पूर्वोक्त सम्यग्दर्शन में रहित बाई-कोई मिथ्यादृष्टि जीव भी करने लगते हैं। इतना ही नहीं, उन क्रियाओं को मरगगता के साथ करने से वे यथासम्भव स्वर्ग में जन्म कारण करते नवें प्रवेष्टक तक भी पहुँच जाते हैं, परन्तु यह बात ध्यान में रखते योग्य है कि इन क्रियाओं की निश्चय सम्यक्चारित्र की प्राप्ति पूर्वक मोक्षप्राप्ति रूप मायैश्वर्य सम्यग्दर्शन के आधार पर ही हुआ करती है अन्यथा नहीं, क्योंकि जीव जब तक मिथ्यादृष्टि बना रहता है तब तक उस को अप्रत्याभ्यासावर्ण और

१ चारितं खलु धम्मो धम्मो जो मो नमोस्ति णिद्धिः।

मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हि नमो ॥७॥

(प्रवचनसार)

प्रत्यक्षानुवचन कथारो का शोध्योपम माना असम्भव है अर्थात् अनुग्रह और म विन आदि रूप प्रवृत्ति सम्भवचारित्र्य यथायोग्य न कथामा हा आगम म बनलायी मयी प्राप्ति का अनुसार शोध्योपम माना नर न उल्ला माना है ।^१

यस विवचन म यन् सात रूपन् नो जाना है नि वक्ष्यानुवाय म सम्प्रमाणानि रूप नि वय और व्यवहार क भन् म दा प्रकार क मागमाय का वचन मिलना है उपरान्तानि नि वय मागमाय का गो मा हा मा माना कारण बनमाना है तथा उपरान्त माक्षमाय का माय या परपरया जयान नि वय मा मागमाय का कारण हापर कारण बनमाना है । विचार कर म्मा जाना ता यन् आगम मा माय म के माय रूप हुए निश्चय और व्यवहार म्मा स ही छ नन होना है । इसी प्रकार निश्चय मा मागमाय रूप नि वय सम्प्रमाण निश्चय सम्प्रमाण और निश्चय सम्प्रचारित्र्य को तो वाच्य तथा व्यवहार मा मागमाय रूप नि वय सम्प्रमाण व्यवहार सम्प्रमाण और व्यवहार सम्प्रचारित्र्य उभ निश्चय मा मागमाय रूप सम्प्रमाणाना का कारण रूप माना तो उभा का आगम है । यहाँ पर भी यदि विचार कर क ल्या जाव ता यह आगम भी सम्प्रमाण आदि सात्त्विक कथामा म हूनि निश्चय और व्यवहार म । स नी छविन माना है । इस तरह माना जाता है कि चरणानुवाय क प्रवृत्ति प्रकरण म मा मागमाय क साव म्मे हुए निश्चय और व्यवहार म्मा ता वम क कारण की मागमाय और परपरयापना हा व्यवहार मा तथा मागमाय सम्प्रमाण और सम्प्रचारित्र्य म । क माय रूप हूनि नि वय और व्यवहार मा क कथामा निश्चय रूप और व्यवहार रूप सम्प्रमाणाना की वाच्यता और कारणता ही अर्थ माना है । म तरह म विवचन हम् म निश्चय पर पटुता बना है नि माक्षमाय नि वय जीव का माग क सागमाय कारणमूल निश्चयसम्प्रमाण निश्चयसम्प्रमाण और निश्चयसम्प्रचारित्र्य को तथा परपरया कारणमूल व्यवहार सम्प्रमाण व्यवहारसम्प्रमाण और व्यवहारसम्प्रचारित्र्य की अनिराव आत्म्यता है । ऐसी स्थिति म जो व्यवहार नि वय मागमाय रूप नि वयसम्प्रमाणाना की प्राप्ति क बिना वचन उपरान्त मा मागमाय रूप उपरान्त सम्प्रमाणाना क मागमाय नि वय माना जाना है व यन्ता पर ह कारण कि उपरान्त विवचन क अनुसार उह अर्थ मागमाय रूप उह द म गपता मिलता असम्भव है । मा तरन् जो विवचनमा वन्त है कि उपरान्त मा मागमाय क बिना मागमाय प्राप्ति म । नी सक्ती है तो नि वय मागमाय की प्राप्ति का शोध्योपम का प्रयत्न करना चाहिये, व्यवहार मा मागमाय क ऊपर स्थान लने का कुछ भी आवश्यकता नहीं है । ना म विवचन भी यन्ता पर है यन्ता ऊपर क विवचन म यन् भी स्पष्ट हा जाता है नि जाव का व्यवहारमागमाय पर प्राप्ति क बिना निश्चय मागमाय का प्राप्ति होता असम्भव है । यह बात पूर्व म भी स्पष्ट की जा चुकी है कि मा मागमाय अवग्रह निश्चयसम्प्रचारित्र्य का प्राप्ति शीव का ओपानिध रूप म तो उपाय शोध्योपम मा मागमाय क ११ व गुणस्थान म पटुता पर ही होती है और क्षात्रिक रूप म क्षात्रिक शोध्योपम मागमाय १२ व गुणस्थान म पटुता पर ही होता है । म प्रकार कृष्ण काट्टि नि उह उह अर्थ उह उपाय मा मागमाय मागमाय ११ व अर्थमा १२ व गुणस्थान म नी पटुता जाना है पर ता अर्थमा १ व गुणस्थान तर उम क व्यवहार सम्प्रचारित्र्य जिन सारागचारित्र्य या चरणानुवाय का दृष्टि म साधारणनिश्चयित्र्य बना जाता है ही रहता करता है ।

यस म मागमाय स्थिति हा जानी है नि उपरान्तसम्प्रचारित्र्य को धारण विवचन मा हा नि वय सम्प्रचारित्र्य की उपरान्त आव का समर्थ कारण नि विवचन सम्प्रमाण जो क यथायोग्य गुणस्थान जम म बनता हुआ म । ११ व मा १२ व गुणस्थान म पटुता पर निश्चयसम्प्रचारित्र्य का उपरान्त कथामा है और म मान स्पष्ट मा जा जाता है नि १० व गुणस्थान तर उपरान्तसम्प्रचारित्र्य शोध्योपम सारागचारित्र्य या मा कट्टि नि साधारण निश्चय चारित्र्य म रूप म रहा करता है ।

१ पञ्चमहाप्रसादो सज्जनानो ण होदि चरित्त ।

पञ्चमहा होदि तवो देवचरो होदि पञ्चमहा ॥३०॥

सज्जनभोक्तृसाधारणप्रसादो सज्जमा हव अहम् ।

ममपञ्चमहादो वि व तद्वत् तु वमत्तविरदो हो ॥३१॥





उपर्युक्त कथन में एक यह मान्यता भी खण्डित हो जाती है कि "जिम जीव को निश्चयमस्यक्चारित्र की प्राप्ति हो जाती है उसके व्यवहारचात्रि हो ही जाना है।" कारण कि पूर्वोक्त प्रकार में व्यवहारमस्यक्चारित्र का अभाव हो जाने पर ही निश्चय मस्यक्चारित्र की प्राप्ति जीव को होनी है। क्या कोई व्यक्ति उस बात को स्वीकार करेगा कि धार्मिक चात्रि रूपा भगवत्चारित्र या व्यवहारचात्रि का सम्भाव रहने हुए भी जीव में औपचारिक या धार्मिक रूप ब्रतगणचात्रि, यथात्तानचात्रि या निश्चयचात्रि रह सकता है? अर्थात् कोई भी व्यक्ति इस बात का स्वीकार नहीं करेगा और यही कारण है कि आचार्य अमृतचन्द्र ने नमयमाण गाथा ३३७ की टीका में व्यवहारचारि सूत्र का उद्धरण देकर व्यवहारमस्यक्चारित्र का तब तक अमृतकुम्भ कहा है जब तक जीव को निश्चयमस्यक्चारित्र की प्राप्ति नहीं हो जाती है और भगवान् कुन्दबुन्द ने उमी व्यवहारमस्यक्चारित्र को तब विप-कुम्भ की उपमा दे दी है जब जीव का निश्चयमस्यक्चारित्र की उत्पत्ति हो जाती है।^१ इस तरह यह बात निर्णित हो जाती है कि जब तक जीव को निश्चय मस्यक्चारित्र की प्राप्ति नहीं हो जाती है तब तब मोक्षप्राप्ति के उद्देश्य में परंपर्या मोक्ष के कारणभूत व्यवहारमस्यक्चारित्र की निरम में उपयोगिता है लेकिन तभी तब व्यवहारमस्यक्चारित्र की उपयोगिता है जब तक जीव को निश्चयमस्यक्चारित्र की प्राप्ति नहीं हो जाती है, आगे नहीं।

अब आगे इस बात पर विचार किया जाता है कि आगम में निश्चय मोक्षमार्ग को जो भूतार्थ, सदभूत, वान्तविक्र या मत्सरार्थ आदि नामों में पुकारा जाता है और व्यवहार मोक्षमार्ग को जो अभूतार्थ, अनन्त, अवान्तविक्र या अनन्तार्थ आदि नामों में पुकारा जाता है तो इसमें आगम का अभिप्राय क्या है?

आगम में निश्चय मोक्षमार्ग को जो भूतार्थ आदि नामों में पुकारा जाता है इसमें आगम का अभिप्राय इतना ही तेना चाहिये कि निश्चय मोक्षमार्ग की इसमें मान्यता कारणता का बोध हो जाता है और चूंकि मोक्ष की नाक्षात् कारणता का व्यवहार मोक्षमार्ग में अभाव पाया जाता है कारण कि इसमें तो परंपर्या ही कारणता पायी जाती है अतः उसे अभूतार्थ आदि नामों में पुकारा जाता है, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं लेना चाहिये कि "व्यवहार मोक्षमार्ग की मोक्ष की प्राप्ति में कुछ भी उपयोगिता नहीं है वह तो ब्रह्म पर सर्वथा अविचिन्तक ही है", कारण कि पूर्वोक्त प्रकार में व्यवहार मोक्षमार्ग मोक्षप्राप्ति में परंपर्या कारण निरम में होता है। इस तरह व्यवहार मोक्षमार्ग में मोक्षप्राप्ति की नाक्षात् कारणता का अभाव रहने में जहां अभूतार्थता आदि धर्म निष्ठ होने हैं वहां इसमें मोक्षप्राप्ति की परंपर्या कारणता का सम्भाव रहने में भूतार्थता आदि धर्म भी निष्ठ होते हैं। इस तरह कहना चाहिये कि निश्चय-मोक्षमार्ग तो सर्वथा भूतार्थ आदि है क्योंकि इसमें मोक्ष की नाक्षात् कारणता विद्यमान है और व्यवहार मोक्षमार्ग कयचित् भूतार्थ आदि है क्योंकि इसमें मोक्ष की परंपर्या कारणता विद्यमान है और कयचित् अभूतार्थ आदि भी है क्योंकि इसमें मोक्ष की नाक्षात् कारणता का अभाव है। इस तरह इसे सर्वथा अभूतार्थ तो नहीं माना जा सकता है कारण कि जब पूर्वोक्त प्रकार में व्यवहारमस्यक्चारित्र का सम्भाव १० वें गुणस्थान तक मानना अनिवार्य है, ११ वे और १२ वे गुणस्थान में ही निश्चय मस्यक्चारित्र की उपलब्धि जीव को हो सकती है तो इसे मोक्ष का सर्वथा अकारण कैसे माना जा सकता है? जिसमें कि इसे सर्वथा अभूतार्थ आदि माना जा सके।

इस कथन का तात्पर्य यह है कि मोक्षप्राप्ति के नाक्षात् कारणभूत निश्चय मोक्षमार्ग की प्राप्ति जिनी भी जीव को व्यवहार मोक्षमार्ग को अपनाये बिना सम्भव नहीं है। अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग की प्राप्ति के लिये

१. अपटिकमण अपरिमरण अपटिहरो अधारणा चैव । अणियत्ती य अणिदाजगरहाजोहीय विसकुंभो ॥१॥

पटिकमण परिसरण परिहारो धारणा णियत्ती य । णिदा गरहा सोही अट्टविहो अमयकुंभो ॥२॥

(व्यवहाराचार सूत्र)

२. पटिकमण पटिसरण परिहारो धारणा णियत्ती य । णिदा गरहा सोही अट्टविहो होई विसकुंभो ॥३०६॥

अपटिकमण अपटिमरण अपटिहरो अधारणा चैव । अणियत्ती य अणिदाजगरहाजोही अमयकुंभो ॥३०७॥

(समयसार)

प्रत्येक जीव का हर हात्मन म व्यवहार मो तमाम का अपना ही होगा ।

तन्मा स्पष्टीकरण मा जान व बात जो यचित व्यवहार मोतमाम का समार का कारण मानत हैं व वृत्त भारी म करते हैं कारण समार व मुख्य कारण तो मा नीध कम वे उच्य म होने वान मिथ्यागत मिथ्यामान और मिथ्याचारित्र मा हैं तथा व्यवहार अर्थान साधारणमि मा तमाम म दगाती प्रवृत्ति का उच्य विद्यमान रता है व यद्यपि समार का कारण हाया है तकिन उमम (साधारणमि मा त माग म) विनता अग मवारिधि उगम या शय व रूप म तवपाती कम व उच्योभाव रूप रता करता है व वमी समार का कारण गी हाता है । मता कारण है कि दगापानी प्रवृत्ति व प्रभात स ऐसाजीव मर वर उतम गतिम ने जम लिया करता है और परराया उस दगापानी प्रवृत्ति व प्रभाव वो समाप्त करने माग भी प्राप्त कर लेता है ।

नि यय मातमाम की सवया भूतायता और व्यवहार मोतमाम की वयचित भूतायता और वयचित अमृतायता की सिद्धि म एत तक यह भी है कि निश्चय मा तमाम मवया वच का अकारण है अवाग व्यवहार मा त माग पूर्वोक्त प्रकार म वयचित वच का अकारण है और वयचित वच का कारण भी है अत मुक्ति का सवया कारण होने स निश्चय मातमाम का सवया अतया आि बहना उचित है और वयचित वच का कारण सया वयचित वध का अकारण होने म जब व्यवहार मो तमाम म वयचित समार का कारणता और वयचित मुक्ति का कारणता सिद्ध हा जानी है तो एव प्रकार म उस मक्ति की वयचित अकारणता वे आधार पर वयचित असात्विक या अमताय आि मानता तया मुक्ति की वयचित कारणता व आधार पर वयचित सगुणिक या भूताय आि मानता की उचित है । उम सवया अमृताय मानता ता विदुः अनुचित है वयचित सवया अमृतायता ता समार व सवया कारणमन या माग व सवया अकारणभूत मिथ्यादान मिथ्यामान और मिथ्याचारित्र म सिद्ध जाती है । यानि व्यवहार अर्थान साधारणमि मातमाम म सवया अमृतायता स्वीकार का जायगी तो फिर उमका मिथ्यागानाि की अप ता भूत हा क्या रहे जायगा ? अर्थात कुछ भूत म नो रता जायगा ।

करणानुयोग म निश्चय और व्यवहार नामों का अर्थ

म तय व आरम्भ म हय व आय है कि करणानुयोग व है निमम जीवा की पाव पुण्य और धन मय परिणतिया सया तने वे कारण का विवचनपण किया गया है और जाये वच वर एर स्थान पर हम य मा वृ आयें हैं कि आत्मा का स्वभाव नायकपता अर्थान विच के समस्त पन्थों को त्रुन जानने की गति रूप है । प्रवृत्त म ता कुछ विवचन किया जाता है य सय इनक आधार पर ही किया जाता है ।

उपपन्न प्रकार नायकपता आत्मा का स्वत सिद्ध स्वभाव है । मन्त्रिय त आधार पर एक तो आत्मा का स्वत और अनाि निधन अस्तित्व सिद्ध होता है दूसरे जिस प्रकार आत्मा अयो स्वत सिद्ध अवगाव स्वभाव का आधार पर विच की समूह वस्तुओं का अपने उच्य म एर साथ हमेगा समाव हए रहे रता है उसी प्रकार आत्मा का भी अपने स्वत सिद्ध नायक स्वभाव का आधार पर विच की समूह वस्तुओं का एर साथ हमगा मृते जानते र ना चाटिये परत जो जीव अनाि काल से समार परिष्मण करते हए अयो भी इसी वच म म म एर है उतन अनाि

१ येनाशन सुवर्द्धिस्तेनानास्य वधन नास्ति । येनानेन त राग तेनानेनास्य वधन भवति ॥१२॥

येनाशेन नान तनानेनास्य वधन नास्ति । येनानेन तु राग तेनानेनास्य वधन भवति ॥१३॥

येनानेन चरित्र तेनानेनास्य वधन नास्ति । येनानेन तु राग तेनानेनास्य वधन भवति ॥१४॥

(पुरुषासिद्धिप्रवृत्त)

२ धम्मेण परिणदप्पा अत्ता जदि सुद्धसपयोगेजुदो । पावदि निवाणत्त सुहोयजुदो व सम्मसह ॥११॥

अमुदोशेण आरा कुणरो तिरियो अव नरइयो । वक्कसहसहं सया अमिधरो भम अचत्त ॥१२॥

(प्रवचनसार)

३ असमप मावयो रत्तत्रयमस्ति वधनवधो य । त विव तत्तोवव मोलोपायो व वधनोपाय ॥१३॥

(पुरुषासिद्धिप्रवृत्त)





काल में अभी तक न तो कभी विश्व की गूर्ण वस्तुओं को एक साथ देखा-जाना है और न वे अभी भी उन्हें एक साथ देख-जान पा रहे हैं। इतना ही नहीं, उन समान जीवों में एक तो तरल भाव में जान की मांग अनपेक्षित पायी जाती है। हमारे जितनी मात्रा में इनमें जान पाया जाना है वह भी उन्निवादि अन्य माधनों की अधीनता में ही हुआ करता है। एक बात और है कि ये समान जीव पदार्थों को देखने-जानने के पश्चात् उन जाने हुए पदार्थों में उद्भूत या अनिष्टपने की उत्पत्ति स्पष्ट मोह किया करने है और तब वे उद्भूत उत्पत्ति के विषयमूल पदार्थों में प्रीतिरूप राग तथा अनिष्ट कलना के विषयमूल पदार्थों में अप्रीति (वृथा) रूप द्वेष मनन किया करते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उन्हें मनन उद्भूत कलना के विषयमूल पदार्थों की प्राप्ति में और अनिष्ट कलना के विषयमूल पदार्थों की अप्राप्ति में तो हर्ष हुआ करता है तथा अनिष्ट उत्पत्ति के विषयमूल पदार्थों की प्राप्ति में और उद्भूत उत्पत्ति के विषयमूल पदार्थों की अप्राप्ति में विषाद हुआ करता है। यदि किसी-किसी जीवों को उन प्रकार में हर्ष और विषाद नहीं हो, तो भी ऐसे जीव भी जब शरीर की अधीनता में ही रह रहे हैं और उनका अपना शरीर भी किसी दूसरे पदार्थों की अधीनता स्वोक्त क्रिये हुए है तो ऐसी स्थिति में शरीर के लिये उपयोगी आवश्यक पदार्थों की प्राप्ति व अप्राप्ति में प्रत्येक शरीर के लिये पीडाकारक पदार्थों की अप्राप्ति व प्राप्ति में उन्हें भी क्रम में गुप्त व दुःख का संवेदन हुआ करता है। इसके अतिरिक्त सभी समान जीव अनादि काल में अभी तक कभी देव, कभी मनुष्य, कभी निर्यक्ष और कभी नाशक भी हुए हैं। कभी ऐकेन्द्रिय, कभी द्वेन्द्रिय, कभी त्रिन्द्रिय, कभी चतुरिन्द्रिय और कभी पचेन्द्रिय भी हुए हैं। इसी तरह कभी मनमहित अमर्त्य और कभी मनमहित मर्त्य भी हुए हैं। उन्होंने सभी पृथ्वी का, सभी जल का, सभी तेज का, सभी वायु का और सभी वनस्पति का भी शरीर धारण किया है। हम यह भी देखते हैं कि एक ही श्रेणी के जीवों के शरीरों में भी परस्पर विलक्षणता पायी जाती है। साथ ही कोई जीव लोक में प्रभावशाली देखे जाते हैं और कोई जीव प्रभावहीन भी देखे जाते हैं। एक जीव में उच्चता या और एक जीव में नीचता का भी व्यवहार लोक में देखा जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव को जन्म-मरण भी धारण करना पड़ रहा है।

यह सब क्यों हो रहा है? इसका समाधान आगम-ग्रन्थों में उन प्रमाण दिया गया है कि प्रत्येक समान जीव अपने स्वतन्त्र मित्र जानने-देखने के स्वभाव को न छोड़ते हुए भी अनादि काल में स्वर्ण-पाषाण की तरह पीदगलित कर्मों के साथ सम्बद्ध (मिश्रित) यानी एकलेशवावगाही रूप में एकमेकपने का प्राप्त हो रहा है।^१ ये कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरात्मा के भेद में आठ प्रकार के आगम में बतलाये गये हैं।^२ आगम में यह भी बतलाया गया है कि ज्ञानावरण कर्म का कार्य जीव को जानने की शक्ति को आहत करना है, दर्शनावरण कर्म का कार्य जीव की देखने की शक्ति को आहत करना है, वेदनीय कर्म का कार्य जीव को पर पदार्थों के आधार पर यथायोग्य सुख और दुःख का संवेदन करना है, मोहनीय कर्म का कार्य जीव को पर-पदार्थों के आधार पर मोह, रागी और द्वेषी बना कर उचित-अनुचित के भेद में रहित प्रवृत्तियों में व्यवहन करना है, आयु कर्म का कार्य जीव को प्राप्त शरीर में सीमित काल तक रोक रखना है, नाम कर्म का कार्य जीव को मनुष्यादि स्वरूप प्राप्त कराना है, गोत्र कर्म का कार्य कुल, शरीर और आचरण आदि के आधार पर जीव में उच्चता-नीचता का व्यवहार करना है और अन्तरात्मा कर्म का कार्य जीव की स्वावलम्बन शक्ति का ध्यान करना है।^३

करणानुयोग की व्याख्या यह है कि इन सब प्रकार के कर्मों को जीव हमेशा अपने विकारी भावों (परिणामों)

१ पयसी नील सहस्रो जीवगाण अण्डा सबसो । कणयोवले मल वा ताणत्थित्त सय मिह ॥२॥

(गो० कर्मकाण्ड)

२ णाणस्त दनणस्स य आवरण वेयणीय मोहणिय । आउगणम गोदतरायमिदि अट्टपयसीओ ॥३॥

(गो० कर्मकाण्ड)

३ किस कर्म का क्या कार्य है? इसकी सामान्य जानकारी के लिये गोम्मटमार कर्मकाण्ड की गाथा १० से गाथा ३३ तक देखना चाहिये।

हारा वाचना १ है और तत्र य कम जीव क मास बध कर समय मासिन का २ त्रिय अपनी सत्ता बना लन है तथा अन्य म उच्य म आकर अर्थम जाव का अपना फलानुभव करा कर य कम सा निजनि हो जान है ३ त्विन उच फलानुभवन म प्रकाशित होकर अर्थम म उच्य विहारी भावा द्वारा व जाव दूसरे च्यो तर ४ क मनीन कर्मों से पुन बध जाना है । ये कम उच म आकर अपना फलानुभवन त्रिम रूप म जाव की वरान है वह जीव का औचित्य भाव कृताना है ५ योनि जाव वा उच रूप प्राव उच कम वा उच्य होन पर हा हुना है । अथवा न । ६ कानिन माइ जीव अर्थन म सत्ता की प्राप्ति यथायोग्य त्रिमो कम का जान पुण्याय तारा ७ म तर ८ त्रिविगिन बना देना है त्रि व कम अपनी फलानुभक्ति का पुरस्तिरुचन ९ म भी जाव को छ जतमदूत के लिय कल दन म जतमम हो जाना है कम की १० म प्रवस्था का नाम उच्यम है और एवम जाने पर जीव की जा अवस्था जाना है उच जीव ता औपगमिक भाव कृत ११ कानिन का १२ जीव अर्थन पुण्याय तारा कम वा मयसा त्रिविगिन बना देना है त्रिमम बध कम उच जाव म अगता सम्बन्ध मयसा मयू बि उन्न क वना है । कम की १३ म प्रवस्था का नाम दाय है और एवम जाने पर जाव की जा अवस्था १४ है उच जाव वा क्षायित भाव कृत हैं । इस प्रकार कानिवि का १५ आय अगता पुण्याय १६ म तरा करता है त्रि कम क कुञ्ज अग (अपाना १७) ता उच्य रूप रह कुञ्ज अग (मयधानी १८) उच्य भावा दाय रूप हो जावें और कुञ्ज अग (मयधानी १९) तन्त्रस्या रूप उच्यम वा स्थिति वा प्राप्ति हो जावें ता इयवा नाम कम वा क्षायितम अवस्था है और एवमे जान पर जाव की जा अवस्था हुना है उच जीव वा क्षायित क्षयिक भाव कृत है । क्षायितमिक् भाव का अवर नाम मित्र भाव भा है ।

म प्रकाश काना का वि वि कर्मों क यथायोग्य उच्य उच्यम मय और क्षायितम हान पर जीव की प्रवस्थाओं में प्रमत्त जो विक्षौपगमिक क्षायित और क्षायितमिक् रूप हा जाय करता है अव दनम यि कारणता की अवस्था की जाय ता कान जा कृता है जीव का २३ औचित्य २४ अवस्थाभा वा उच्यत म कम ता अपनी उच्यति अवस्थाभा के आधार पर यव तद वरान हुना है और जाव स्वय निरूप्य कारण है । जमा त्रि मयवन् की निरूप्य निमित्त माया म मय हुना है

यद्ये च योवकृद् अणो व्यवहारो य जायस्यो ।
निष्पद्यस्यो पुण जीवो भविष्ये तनु सखवरिसीहि ॥२३५॥

अर्थात् यद्ये घोर मास म अय अर्थन कम अपनी यथायोग्य उच्य उच्यम क्षय और क्षायितम रूप अवस्थाओं क आधार पर स्वय तद रूप क कारण हुना है और जीव निचय रूप क कारण होना है ।

यहाँ पर कम व्यवहार का कारण होना है इसका अर्थमाय म है त्रि कम निमित्त या मयवन् रूप म कारण होना है और जाव निचय का म कारण होना है मयसा अर्थमाय म है त्रि जीव उच्यम रूप क कारण होना है । इस प्रकार कृता का २५ त्रि उच्य माया तारा कम म जाव क बध और मास की उत्पत्ति क प्रति दया

१ जीवपरिणामदेव कर्मसत् पण्यता परिणमति । पण्यकर्ममविहित तत्त्व जीवा वि परिणमइ ॥२॥

(समयवार)

विशारोचनभव ॥२२॥ म यथातम ॥२२॥ तन्त्रम निर्दिष्ट ॥२२३॥ (तन्त्राय मय)

३ कमलामुद्रयाद स्याद भावो जीवस्य सत्तु । तन्त्रायोविशारवर्धितर कान्याधिरारयान् ॥२२४॥ (पद्यायायो)

४ कमलो प्रत्यनीकाना पारस्वोपगमादवन् । यो भाव प्राणिना म क्पावोपगमिषसत्त ॥२२५॥ (पद्यायायो)

५ यथास्व प्रत्यनीकाना कान्या सत्त स्यात् । तातो म । क्षा यरो भाव गत स्वप्रार्थितोऽस्य ॥२२६॥

(पद्या यायो)

६ यो भाव सत्ततो घातन्यप्रधान्योऽस्य । क्षायोपगमिष स क्पावद्वयान्यप्रार्थितम ॥२२७॥ (पद्यायायो)

७ तन्त्रोपगमिषो नाम भाव क्पाव क्षायितो य च । क्षायोपगमिषे तन्त्रायोऽस्य सत्तु ॥

॥२२८॥ (पद्यायायो)



योग्य उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के आधार पर निमित्त कारणता का मञ्जूषा मित्र होता है तथा जीव स्वयं में अपन उस बन्ध और मोक्ष के प्रति उपादान कारणता का मञ्जूषा मित्र होता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब कर्म की उदय, उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम रूप अवस्थाएँ होती हैं तब जीव अपनी योग्यता के अनुसार क्रमशः औद्यमिक औपशमिक, क्षायिक अथवा क्षयोपशमिक अवस्थाओं के रूप में अपनी परिणति घना लेता है। यानी जीव इन औद्यमिकादि परिणतियों के रूप में परिणत हो जाता करता है, कर्म तो अपनी उदयादि अवस्थाओं के आधार पर आत्मा की उन अवस्थाओं की उत्पत्ति में सहायक मान हुआ करता है। अर्थात् कर्म की कोई परिणति नहीं पर जीव की परिणति बन जाती हो — ऐसी बात नहीं है।

“उपादीयत अनेन” उम विग्रह के आधार पर ‘उप’ उपसर्ग पूर्वक आदानार्थक “आ” उपसर्ग विशिष्ट ‘दा’ धातु से कर्ता के अर्थ में ‘लुट्’ प्रत्यय होकर उपादान शब्द निष्पन्न हुआ है। निम्नार्थ ग्रहण होता है कि जो कार्य रूप परिणत हो उसे उपादान कहते हैं। उगी प्रकार “निमित्तानि” उम विग्रह के आधार पर ‘नि’ उपसर्ग पूर्वक स्नेहार्थक ‘मिद्’ धातु से कर्ता के अर्थ में ‘क्वत्’ प्रत्यय होकर निमित्त शब्द निष्पन्न होता है। मित्र शब्द भी इसी स्नेहार्थक ‘मिद्’ धातु से ‘क्वत्’ प्रत्यय होकर निष्पन्न हुआ है। इस तरह कहना चाहिये कि जो मित्र के समान उपादान का स्नेहन करे अर्थात् उपादान को उसकी अपनी परिणति में मित्र के समान सहयोग प्रदान करे वह निमित्त कहलाता है।

यद्यपि यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि उपादान स्वयं के कार्य रूप परिणत होने के कारण “स्वाश्रितो निश्चयः”^१ इस आगमवाक्य के अनुसार उमे कार्य का निश्चय कारण मानना उचित है और कार्यरूप परिणत न होकर उपादान तो उसकी अपनी कार्यरूप परिणति में सहयोग मात्र देने के कारण “पराश्रितो व्यवहारः”^२ इस आगम वाक्य के अनुसार निमित्त को कार्य का व्यवहारकारण मानना उचित है, परन्तु साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उपादान और निमित्त दोनों कारणों में निश्चयकारणता और व्यवहारकारणता का अन्तर रहते हुए भी कार्य की उत्पत्ति में दोनों ही कारण उपयोगी मित्र होते हैं। उनलिये जिस प्रकार उपादान कारण तो निश्चय कारण के रूप में भूतार्थ, मञ्जूषा, वास्तविक या सत्यार्थ कहा जाता है उसी प्रकार निमित्तकारण को भी व्यवहार कारण के रूप में भूतार्थ, मञ्जूषा, वास्तविक या सत्यार्थ कहा जाना अनुत्तम नहीं है क्योंकि जिस प्रकार उपादान का कार्यरूप परिणत होना वास्तविक है उसी प्रकार निमित्त का उपादान की कार्यरूप परिणति में सहायक होना भी वास्तविक है। इतनी बात अवश्य है कि चूँकि निमित्त उपादान की तरह कार्यरूप परिणत नहीं होता अतः इस दृष्टि में उत्तम यदि अभूतार्थता आदि धर्मों का मञ्जूषा माना जाय तो यह भी असंगत नहीं है। इस प्रकार कहना चाहिये कि उपादान चूँकि कार्यरूप परिणत होता है इसलिये सर्वथा भूतार्थ आदि है और निमित्त चूँकि कार्यरूप परिणत नहीं होता इसलिये तो कथञ्चित् अभूतार्थ आदि है लेकिन उपादान की कार्यरूप परिणति में सहायक होना है अतः कथञ्चित् भूतार्थ आदि भी है। अतः जो व्यक्ति निमित्त को कार्योत्पत्ति में सर्वथा अकिञ्चित्कर मानकर उसे सर्वथा अभूतार्थ आदि मान लेना चाहते हैं उनका यह प्रयास गलत ही है।

अनुभव में यह बात आती है कि उपादान की कार्यपरिणति में निमित्त के सहयोग की अनिवार्य रूप से सर्वदा अपेक्षा रहा करनी है और प्रत्यक्ष देखने में आना है कि जब तक उपादान को आवश्यकतानुसार स्वाभाविक रूप से अथवा पुरुषकृत प्रयत्न द्वारा निमित्त का सहयोग प्राप्त नहीं होता है तब तक उपादान कार्यरूप परिणत नहीं होता है। इसका अभिप्राय यह है कि निमित्त उपादान में कार्योत्पत्ति के लिये उसकी कार्योत्पत्ति न हो सकने रूप अमामर्थ्य

१. परिणममानस्य चित्तश्चिदात्मकै स्वयमपि स्वकैर्भावैः ।

भवति हि निमित्तमात्र पौद्गलिक कर्म तस्यापि ॥१३॥ (पुट्टार्थसिद्धयुपाय)

२. समयसार गाथा ८६ की टीका में आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा “य परिणमति स कर्ता ” आदि पद्यों द्वारा यही आशय व्यक्त किया गया है।

३. ४ देखो समयसार गाथा २७३ की समयसार टीका ।

का नियम से न करन जाना है। ज्ञानम भी इन बात को स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि निमित्त कार्योत्पत्ति म यत्ति उपादान की कार्योत्पत्ति न हा करने म्प अस्माभ्य वा भन न करता है ता फिर उने निमित्त कन्ना ही असत्य होगा।^१ मन्म जो मनुमाव कर्ते है कि वाय तो उपादान स्वय अपना साध्य से ही उत्पन्न कर उता है उसम उगवा निमित्त क सहयोग की विलकुल अभावा न। रहा करती है वह ता वहा पर स्वयथा अकिंचित्कर ही बना रहता है ता उनका एमा क ना गठन ही है। माय म जो यति व्यवहारविष्णु होकर एमा वल्ले है कि निमित्त अपने रूप का समान वाय म करना है ता उनका एमा रहना भी बनत है। कारण कि निमित्त यत्ति वाय म अपना रूप समर्पित करने म्प आय तो फिर निमित्त म उपादान की अपेक्षा अन्तर ही क्या रह जायगा ? अर्थात् ऐसी स्थिति म निमित्त स्वय ही उपादान बन जायगा और तब उस निमित्त कर्त्ता भी असमन होगा। वन्त और चार्वाक म्प मत्तानुसार अचित्त म चित्त का उत्पत्ति हानो है यन्तु यन्तु चित्त को अचित्त का और चार्वाक अचित्त को चित्त का उपादान कारण मानत है। अन गन मन मोना ही मायनादा का वणन करना है कारण कि अन गन का यन् सिद्धांत है कि एव द्वय वाली दूसरे म्प परिणत न। होता और न कभी एक द्वय क गुणधर्म हा किया अय द्वय म सममित होने ह।^२ ऐतिन बना न और चार्वाक को उक्त मायनादा का वणन करना हुआ भी अनगन चित्त को अचित्त की परिणति म तथा अचित्त को चित्त को परिणति म निमित्त कारण अवश्य मानता है।^३ यी कारण है कि आचार्य कुम्भ के समय सार म हत दाता जानो का विस्तार स विवेचन किया है। अथान समयसार म स्वान स्वान पर यनी बात देखन को मिन्ती है कि उसम जहा एव वस्तु म दूसरी वस्तु की उपादानकारणता क समुदाय का दृष्टता के माय निषेध किया गया है यनी उतनी ही दृष्टता क साथ एव वस्तु म दूसरी वस्तु की निमित्तकारणता का समवन भी किया गया है।^४ और यह बात हम पूव म स्पष्ट हा कर चुक हैं कि निमित्तकारणता उपादानकारणता क रूप म समुदाय अमदभूत अयास्त विक प्रौर अमर्याद भौत हुए भी स्वय अपने रूप म तो व म्प मत्त वास्तविक और सत्याय ही है। यी कारण है कि आचार्य विद्यान म सत्याय-गोवर्धनिक म तत्वायमून के प्रथम अध्याय क सूत्र ७ की व्याख्या कर्त्त हुए पार्श्व लाङ् १३ क अंतगत पट्ट ५१ पर मन्कारी (निमित्त) कारण की उपादान की वायपरिणति म सन्कारिता रूप म पार्श्वधिकता (वास्तविकता) को स्पष्ट रूप स स्वीकार किया है।^५

यहा पर उपादान कारणता और निमित्त कारणता क स्वय का उतनी क्रम म निश्चयरूपता और व्यवहाररूपता का एव जानो को अपने अपने रूप म वास्तविकता का जो प्रिनयन किया गया है उसका प्रवृत्त म उपवास यह है कि जीव की पूर्वार्ध में पिक औपनिषद ग्राह्य और साधारणमिक परिणति के प्रति वम म

१ तदस्माभ्यमरपण्डवर्दकचित्कर कि सहकारिकारण स्यात् ?

(आप्तमोक्षा वाचिका १ की अन्त्यतो टीका)

२ जो अहिं गुणे दये तो अण्णहिं दु ण सक्कमिं दये ॥ (समयसार गाथा १०३ का पूर्वार्ध)

जीवहृत परिणाम निमित्तमात्र प्रपद्य पुनर ये। स्वयमेव परिणमते पुद्गला क्यभावन ॥१२॥

परिणममानस्य चित्तविवर्तमम् स्वयमपि ह्यकर्मणि।

भवति हि निमित्तमात्र चोत्पत्तिर क्य तस्यापि ॥१३॥ (पुरुषाधिसत्त्वपुपाय)

४ जीवव रत्नामहेतु कम्मसं वृत्तता परिणमनि। पुमसहकर्मणिसत्त तदेव जीवो वि परिणमइ ॥८०॥

य कि कुब्बइ कम्मगुण जीवो कम्म तदेव जीववण। अण्णोष्णमिचित्तं दु परिणामजाण दोहू वि ॥८१॥

(समयसार)

५ क्रमबुधो पर्यायोरेकद्वयप्रत्यासत्तत्वादानोपायैत्यस्य वचनान न चर्वाधि वायकारणमात्र सिद्धादिषट्। सहकारिकारणेन वायस्य क्य तत्प्रादेकद्वयप्रत्यासत्तत्वाभावितात् ख ? कात्प्रत्यासत्तिविषेयात् तस्मिं । मदनन्तर हि यदवश्य भवति तत्तस्य कारण भिन्नरकायमिति प्रतीतम्। तेष व्यवहारान्वयसमाधयेन वायकारण भावो निष्ठ साम्य सयोग-समवायादयं प्रतीतिनिश्चयन वार्यायिह एव न पुन कान्तारोपित सवयायन पचरवा ।





जो उदयादिक के आधार पर जागृता विद्यमान है वह तो व्यवहार रूप में अर्थात् निमित्ताकार है ही और जीव स्वयं में उन औदयिकादि परिणतियों के प्रति जो जागृतावेद्यविद्यमान है वह निश्चय रूप में अर्थात् उपादान रूप में हूँ तथा साथ ही वे दोनों ही कारणात्में अन्ते-अन्ते रूप में भूतार्थ, मद्भूत, वास्तविक और नित्यार्थ ही हैं क्योंकि नि- प्रसार उक्त औदयिकादि परिणतियों के प्रति जीव स्वयं ही उपादानकारणता पूर्वोक्त प्रकार- में जागृतानेपित नहीं है इसी प्रकार जीव ही उन औदयिकादि परिणतियों के प्रति अपनी उदयादि परिणतियों का आधार पर प्रयोगी होने के कारण जर्म में विद्यमान निमित्तकारणता भी स्वतन्त्रानेपित नहीं है । उक्त अवश्य है कि वृत्ति उपादान कारण होने के मध्य जीव ही कार्यरूप परिणत होता है इनमें उपादान कारणा तो सर्वथा नग्रा है आदि है लेकिन निमित्त कारण होने के मध्य वृत्ति कम मध्य कार्यरूप परिणत नहीं होना उपरिचे तो वह मद्भूतान् उभयार्थ- नादि है फिर भी उपादान भूत जीव ही कार्यरूप औदयिकादि परिणतियों में अपनी उदयादिवर्णितियों के आधार पर मध्यगत अवश्य होता है अतः वह उपादान के की अपेक्षा कथञ्चित् भूतार्थ आदि भी है ।

यहां पर इतना अवश्य ज्ञान उक्त चाहिये कि जीव ही औदयिकादि परिणतियों के प्रति जो कम्पित निमित्तकारणता है वह उसकी उदयादि परिणतियों ही छोड़कर और कुछ नहीं है अर्थात् जर्म का उदय, उपगम, क्षय और क्षयोपगम रूप में परिणत होना ही जीव की औदयिक, औपगमिक, क्षयिक और क्षयोपगमिक परिणतियों के प्रति जर्म की जर्म निमित्तकारणता है । ऐसा नहीं समझना चाहिये कि जर्म की उदयादि परिणतियां जर्म ही और जीव की औदयिकादि परिणतियों के प्रति जर्म में (जर्म में) विद्यमान निमित्तकारणता जर्म है । इसीप्रकार यदि हम तरह में विचार किया जाय तो जर्म की उदयादि परिणतियां उसकी अपनी स्वाश्रित या स्वात्मभूत परिणतियां होने के कारण जहां “स्वाश्रितो निश्चय” उस जागृताकारण के आधार पर उनके निश्चय जर्म है वहां जर्म ही वे ही परिणतियां जीव की औदयिकादि परिणतियों के प्रति प्रयोगी रूप में निमित्तकारणता का रूप प्राप्त कर देने से “परिणतो व्यवहार” इस भाग्य वास्तव के आधार पर निमित्तकारणता के रूप में उनके व्यवहार जर्म की है । अब ऐसी हालत में भी यदि निमित्तकारणता की भूतार्थता आदि के विषय में विचार किया जाय तो वहीं निष्कर्ष निकलता है कि जीव ही औदयिकादि परिणतियों के प्रति जर्म में विद्यमान निमित्तकारणता जहां उस जर्म की उदयादि परिणतियों के रूप में भूतार्थ, मद्भूत, वास्तविक या नित्यार्थ जर्म है वहीं उसका जर्म में उदयादि परिणतियों में पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व न रहने के कारण वह जर्म का भूतार्थ, मद्भूत, वास्तविक या अनित्यार्थ जर्म भी है । इस तरह में भी जीव की औदयिकादि परिणतियों के प्रति जर्मनिष्ठ निमित्तकारणता उस जर्म का कथञ्चित् वास्तविक और कथञ्चित् अवान्तिव जर्म ही सिद्ध होती है । यदि के सींग की तरह उसे सर्वथा भूतार्थ आदि के रूप में कदापि नहीं माना जा सकता है ।

इस कथन का निचोड़ यह है कि जीव ही तो औदयिक, औपगमिक, क्षयिक और क्षयोपगमिक रूप परिणतियां हुआ करती है वे सब परिणतियां जीव ही अपनी ही परिणतियां हैं इनमें जीव इन परिणतियों का उपादान कारण या निश्चय कारण होता है । मान ही कि सभी परिणतियां जर्म जर्म के उदय, उपगम, क्षय और क्षयोपगम के होने पर ही होती हैं इसीप्रकार जर्म जीव ही इन औदयिकादि परिणतियों का अपनी उदयादिक परिणतियों के आधार पर निमित्तकारण या व्यवहार कारण होता है । वृत्ति जर्म के उदयादिक के अनाव में जीव ही वे औदयिकादि परिणतियां कदापि नहीं होती हैं अतः जर्म को जीव ही इन परिणतियों में अकिञ्चित्कर या निरूपयोगी मानना मिथ्या है और वृत्ति जर्म की कोई परिणति कदापि जीव ही परिणति नहीं होती है इसलिए जर्म को जीव की औदयिकादि परिणतियों का उपादान कारण या निश्चय कारण मानना भी मिथ्या है ।

इस प्रकार अब हम के विवेचन में यह बात अच्छी तरह समझ में आ जानी चाहिये कि चरणानुयोग के प्रकार में मोक्षकार्य की दृष्टि में जो निश्चय मोक्ष मार्ग और व्यवहार मोक्ष मार्ग का ब्यक्त किया गया है वह ब्यक्त निश्चय और व्यवहार जर्म के आधार पर जर्म निश्चय मोक्ष मार्ग में मोक्ष की नाशान् कारणता के और व्यवहार मोक्ष मार्ग में मोक्ष की परम्परा कारणता के अस्तित्व का ही बोध कराना है । इसी प्रकार वही पर जो निश्चय मध्य- मदन, निश्चय मध्यज्ञान और निश्चय मध्यकृति का तथा व्यवहार मध्यगदान, व्यवहार मध्यज्ञान, और व्यवहार

प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक वस्तु का प्रत्येक गुण परिणमनशील है। इस प्रकार सभी वस्तुओं की निम्न प्रकार स्थिति निश्चित होनी है।

“वस्तु की आकृति (प्रदेशवत्ता रूपा द्रव्यरूपता), वस्तु की प्रकृति (स्वभाववत्ता रूप गुणरूपता और वस्तु की तथा वस्तु के प्रत्येक गुण की विवृति (परिणामवत्ता रूप पर्यायरूपता)।”

इस तरह कहना चाहिये कि द्रव्यानुयोग में द्रव्यरूपता के साथ-साथ वस्तु की अनन्त द्रव्यपर्यायों तथा वस्तु के अनन्त गुणों और उन गुणों में से प्रत्येक गुण की अनन्तगुणपर्यायों के रूप में वस्तु का जैनागम में विशेषण किया गया है।^१

प्रत्येक वस्तु की अपनी-अपनी उक्त प्रकार की द्रव्यरूपता और गुणरूपता दोनों ही साध्यत (स्यायी) हैं तथा पर्यायरूपता समय, आश्रय, मुहूर्त, घटी, दिन, मघाह, पक्ष, मान और वर्ष आदि के रूप में विभक्त होकर अभावत (अस्यायी) हैं। इस तरह प्रत्येक वस्तु को जैनागम में मन् मानने हुए भी उस सत्ता को उत्पाद, व्यप और ध्रौव्य-त्मक स्वीकार किया गया है।^२ अर्थात् जैनागम में प्रत्येक वस्तु में द्रव्य पर्यायों और गुण पर्यायों के रूप में तो उत्पाद तथा व्यप और द्रव्यत्व और गुणत्व के रूप में ध्रौव्य का सद्भाव स्वीकार किया गया है।

परिणमन करते हुए भी प्रत्येक वस्तु की द्रव्यरूपता, गुणरूपता और पर्यायरूपता प्रतिनियत है। अर्थात् परिणमन में वस्तु न तो अपने अस्तित्व (सद्रूपता) को छोड़ती है और न ही एक वस्तु की अपनी द्रव्यरूपता, गुणरूपता तथा पर्यायरूपता कभी अन्य वस्तु की द्रव्यरूपता, गुणरूपता तथा पर्यायरूपता बन सकती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि परिणमन करते हुए भी वस्तु न तो कभी सर्वथा नष्ट हो सकती है और न वह कभी अन्य वस्तु रूप भी परिणमती है।

इस प्रकार जीव परिणमन करते हुए भी एक तो सभी सर्वथा नष्ट नहीं हो सकता है और न ही वह कभी अन्य द्रव्यरूप परिणत हो सकता है, वह हमेशा ने जीव ही रहा आया है, जीवही है और जीव ही रहेगा। यही व्यवस्था पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन सभी द्रव्यों में समजना चाहिये। इतना ही नहीं, एक जीव कभी दूसरे

१ वस्त्वस्ति स्वत सिद्ध यथा तथा तत्त्वतश्च परिणामि । (पंचाध्यायी १-८६ का पूर्वार्द्ध)

वस्तु यथा परिणामि तथैव परिणामिनो गुणाश्चापि । (पंचाध्यायी १-११२ पूर्वार्द्ध)

२ अथो खलु द्रव्यमयो द्रव्याणि गुणरूपताणि भण्डाणि । तेहि पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परममया ॥१॥

(प्रवचनसार ज्ञेयतत्त्वाधिकार)

इह हि किल य कश्चन परिच्छिद्यमान पदार्थः स सर्व एव विस्तारायतसाधान्यसमुदायात्मना द्रव्येणाभिनिवृत्तत्वाद् द्रव्यमयः । द्रव्याणि तु पुनरेकाग्रयविस्तरायतविशेषात्मकैर्गुणैरभिनिवृत्तत्वाद्-गुणात्मकानि । पर्यायास्तु पुनरायतविशेषात्मका उक्तलक्षणैर्द्रव्यैरपि गुणैरप्यभिनिवृत्तत्वाद् द्रव्यात्मका अपि गुणात्मका अपि ।

(प्रवचनसार ज्ञेयतत्त्वाधिकार गाथा १ की टीका में आचार्य अमृतचन्द्र)

३ सद् द्रव्यलक्षणम् ॥१५-२८॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥१५-३०॥ (तत्त्वार्थसूत्र)

वस्त्वस्ति स्वत सिद्ध यथा तथा तत्त्वतश्च परिणामि ।

तस्मादुत्पादस्थितिभगमय तत्सदेतदिह नियमात् ॥१५-८६॥

जैनानां मतमेतन्नित्यानित्यात्मकं यथा वस्तु ।

ज्ञेयास्तथा गुणा अपि नित्यानित्यात्मकास्तदेकत्वात् ॥१५-१०८॥

ज्ञान परिणमति यथा घटस्य चाकारत पटाकृत्या ।

किं ज्ञानत्व नष्टं न सृष्टमिति चेत्कथं न नित्यं स्यात् ॥१५-११०॥

वस्तु यथा परिणामि तथैव परिणामिनो गुणाश्चापि ।

तस्मादुत्पादव्ययद्वयनपि भवति हि गुणानां तु ॥१५-११२॥ (पंचाध्यायी)

की मानगति का पथ को जानने का परिणमन आत्मा को उस मानगति म विद्यमान परिणमन करने का योग्यता के आधार पर उस उस पथ का योग मिलता है ही हुआ करता है। अतः आत्म वस्तु का स्वरूपप्रत्यक्ष मुणपरिणमन है। इसी प्रकार मयन मानना चाहिये।

आत्मा की मानगति क पथ को जानने रूप परिणमन म पदार्थ तो सब वारण गता है। तः मानगति चाह गतिमानरूप म अथवा चोश्चनमान अवधिमान म पथमान या वधानानरूप में। अतः न पावा माना म म को भी मान पथ व अथवा म कतिपि पथमान रूप परिणमन न कर सकता है। यः कारण है वनतमान की गति निश्चय म विद्यमान सभा पथों स अनन्तगुणों होकर भा सब व उनके द्वारा वल उठा पदार्थ का जाता है जा। एकी संप्रता की धारण निय हुन हैं। यका अभिप्राय मी है कि बिना पथ का स योग मिल वलमान म परिणमन पथ को जानने रूप न हो सकता है। इस प्रकार वलमानगति का पथमान रूप परिणमन पथानीन में सिद्ध होता है। मतिमान और धनमान तो पथ क साथ साथ यथायोग्य पाव पीनगति सिद्धता तथा दृष्टे मन का लपना म ही उत्तर न हुआ करते हैं। म प्रकार यः मान सिद्ध हो जाता है कि आत्मा की मानगति क पदार्थ का जानने रूप परिणमन म स्वयं योग्यता क साथ साथ पथों तथा आवकमानमार सिद्धता और मन की वाग्यता भी र करता है। इतना ही न। अनिमान म प्रकाश भी यथायोग्य वारण आ करता है और धनमान म म को कारण हुआ करते हैं।

यही पर विचारणीय मान य है कि पथमानरूप परिणमन म आत्मा की मानगति म रनवाली वारणता भिन्न प्रकार का है पथों म रन वाकी वारणता भिन्न प्रकार की है तथा सिद्धता म म और प्रकाश म रनवाली वारणता भिन्न भिन्न प्रकार की है। इसा तरः धनमान म म का वारणता भा भिन्न प्रकार की है। अर्थात् आत्मा की मानगति को जा वाग्यता है व उपादानरूप है योकि व मानगति ही पथमानरूप परिणमन ली है। पथों म मन म सिद्धता म प्रकाश म और म का वारणता है व निमित्त रूप है योकि य म स्व स्वयं पथमानरूप परिणमन न करते हुन आत्मा की मानगति क पथमानरूप परिणमन म स्यायक हात हैं। इनम भी आत्मा का मानगति क पथमानरूप परिणमन म पथ अवलम्बन रूप निमित्त हात है अतः पथ जब आरम्भ होता व वारण की तरह प्रतिबिम्बित होता है तभी आत्मा की मानगति व पथमानरूप परिणमन होता है अथवा न। सिद्धता और भा वारणरूप में निमित्त हात है। प्रकाश की विद्यमानता ही निमित्त हुआ करते हैं। धनमान म सः अवलम्बन निमित्त हात है।

पूव म हम म मान का वयन कर चाये है कि पाय क प्रति पाय म अनिन वस्तु म विद्यमान उपादान वारणता स्थिति म हाये के वारण स्थिति निश्चय इस आगमवाक्य के अनुसार निश्चय रूप है और उमी पाय क प्रति पाय म भिन्न वस्तु म विद्यमान निमित्त वारणता वारणितो वरः इस आगमवाक्य क अनुसार वदः रूप है।

पूव म हम म भी वः हाये है कि जिस निश्चयरूपता र करनी है वह सब व वारणित भूतार्थ सगम या मत्वाय हुमा करता है और जिसम व्यवहाररूपता र करनी है व वयचित् वारणित आदि होता है और वयचित् वारणित गति भा होता है। इस प्रकार उपादान वारण चार निश्चय रूप वारण है इनति उने मयवा वारणित नीता र वार और यः सब व वारणित उपादान वारण म म नर सिद्ध हाती है कि वार जब तक

- १ तिष्ठि जह्णताय वण सता दत्त दिदीमादिपदं । जीवा योग्यता जाता सेमी आगात तत्पदं ॥६६॥
- धम्मधम्मामुल्लसु इममीवस्तागमसुसुता होति सणे । गुह्ममणि धुक्कपाये अवर अधिभागपिच्छेदा ॥७॥
- पवरा सत्थं सत्थो वागतापमा सरो सत्थं ॥८॥ अइमं दण्णं सुवि सत्थं विपारि पूव व ॥७९॥
- सत्थं विपारि सत्थं वयमत्त वयमत्त ॥८०॥ यः सत्थं सत्थं सत्थं सत्थं ॥८१॥

(त्रिमोक्षार संप्रवर्धमान प्रकरण)





रहता है तब तक कार्य में उपादान की अपेक्षा रहा करती है, इसलिए वह सर्वथा वास्तविक आदि है लेकिन निमित्त की अपेक्षा तभी तक रहती है जब तक कार्य उत्पन्न नहीं हो जाता। कार्य के उत्पन्न हो जाने पर निमित्त की अपेक्षा समाप्त हो जाती है अतः जब तक कार्य में उसकी अपेक्षा है तब तक निमित्त का उस अपेक्षा के रूप में वास्तविक ही कहा जायगा और कार्य के उत्पन्न होने पर चूँकि उसकी अपेक्षा समाप्त हो जाती है अतः तब उसे इस दृष्टि से अवास्तविक ही कहा जायगा। दूसरी बात यह है कि निमित्त तो कार्योत्पत्ति में महायक ही होता है अतः उस दृष्टि से तो वह वास्तविक ही होगा और चूँकि वह कार्यरूप परिणत नहीं होता अतः उस दृष्टि में वह अवास्तविक ही होगा, यह हम पूर्व में स्पष्ट कर ही चुके हैं।

इस तरह उपादान में तो सर्वथा वास्तविकता और निमित्त में क्वचित् वास्तविकता तथा क्वचित् अवान्तविकता रहने के कारण उपादान तो कार्य में निश्चयकारण होता है और निमित्त व्यवहार होता है।

इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु में जो अन्तर्गत धर्म विद्यमान है उनमें से प्रत्येक धर्म की सत्ता उस वस्तु में अपने विरोधी धर्म की अमत्ता के साथ ही रहा करती है। जैसे 'आत्मा चित् है' उसमें जिस प्रकार आत्मा में चित् स्वरूप का मद्भाव मिष्ट होता है उसी प्रकार उसमें अचिद्रूपता का अभाव भी मिष्ट होता है। अतः कहना चाहिये कि आत्मा में चिद्रूपता का मद्भाव और अचिद्रूपता का अभाव उन दोनों धर्मों में से चिद्रूपता का मद्भाव आत्मा का स्वरूपपरक धर्म होने में स्वाश्रित धर्म होने के कारण निश्चय धर्म है व अचिद्रूपता का अभाव स्वस्वरूपपरक धर्म न होने में पराश्रित धर्म होने के कारण व्यवहार धर्म है। ये दोनों ही भावात्मक और अभावात्मक धर्म आत्मा में अपनी-अपनी सत्ता जमाकर बैठे हैं। यही कारण है कि जैनागम में यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक प्रकार की सत्ता अपनी प्रतिपक्षभूत अमत्ता के साथ ही रहती है।^१ यदि ऐसा नहीं माना जायगा अर्थात् आत्मा में चिद्रूपता के मद्भाव के साथ अचिद्रूपता का अभाव नहीं माना जायगा तो फिर चिद्रूप आत्मा का अचिद्रूप पुद्गलादि द्रव्यों के साथ वास्तविक भेद मिष्ट नहीं हो सकेगा। इसलिए जिस प्रकार आत्मा में चिद्रूपता का मद्भाव वास्तविक है उसी प्रकार उसमें अचिद्रूपता का अभाव भी वास्तविक ही है। इसी बात अवश्य है कि चिद्रूपता का सद्भाव अपनी स्वाश्रयता के कारण जहाँ सर्वथा वास्तविक है वहाँ अचिद्रूपता का अभाव पराश्रयता के कारण क्वचित् वास्तविक है और क्वचित् अवास्तविक भी है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार आत्मा में चिद्रूपता का सद्भाव एक और अखण्ड धर्म है उस प्रकार अचिद्रूपता का अभाव एक और अखण्ड धर्म नहीं है, क्योंकि पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन सभी अचिद्रूप वस्तुओं की अचिद्रूपता भिन्न-भिन्न है। इसलिए इनमें से प्रत्येक की अचिद्रूपता का अभाव भी आत्मा में भिन्न-भिन्न ही होगा। इस तरह आत्मा में नाना अचिद्रूपताओं के अभाव भी नाना मिष्ट हो जाते हैं और तब अचिद्रूपता भी खण्ड व नानारूप मिष्ट हो जाती है। नानारूपता और खण्डरूपता को व्यवहार धर्म व एकरूपता और अखण्डरूपता को निश्चय धर्म इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति के आधार पर हम पूर्व में प्रतिपादित कर ही चुके हैं।

भावरूपता को निश्चय शब्द का प्रतिपाद्य और अभावरूपता को व्यवहार शब्द का प्रतिपाद्य मानने में एक कारण यह भी है कि प्रत्येक वस्तु का भावरूप धर्म अपने वैशिष्ट्य के कारण उस वस्तु की स्वतन्त्रता का निर्णायक होता है, अभावरूप धर्म नहीं। इसका कारण यह है कि अभावरूप धर्म तो नाना वस्तुओं में भी समानता लिये लिये पाये जाते हैं। जैसे जीव में पुद्गलद्रव्य-अचिद्रूपता का जैसा अभाव है वैसा ही पुद्गलद्रव्य की अचिद्रूपता का अभाव आकाशादि वस्तुओं में भी है अन्यथा आकाशादि वस्तुओं में पुद्गलद्रव्य से भेद करना असंभव हो जायगा। अथवा यो कहे कि पुद्गलादि अचिद्रूप वस्तुओं की अचिद्रूपता का जैसे अभाव एक जीव में है वैसा ही अभाव अन्य जीवों में भी है तो इस तरह नाना जीवों में परस्पर पार्यवयव मिष्ट करना असंभव हो जायगा। इसलिए मानना पड़ता है कि प्रत्येक वस्तु का भावरूप धर्म ही उस वस्तु की स्वतन्त्रता का निर्णायक होता है अभावरूप धर्म नहीं। इस तरह भावरूप धर्म को निश्चय धर्म तथा अभावरूप धर्म का व्यवहार धर्म कहना ही उचित है।

१ किं चैवभूतापि च सत्ता न स्वास्तिरुक्ता किन्तु । सप्रतिपक्षा भवति हि स्वप्रतिपक्षेण नेतरेणेह ॥१-१५॥ (पचाध्यायी)

अनन्तान्त जीवों अनन्तान्त पुण्यना सत्त्वयान वाग्व्या तथा एव धम धम अथम और मग आशान इन सबका धमना धमना पथकपथक भारतप धम ना एन मर वस्तुओं के पथकपथक अस्तित्व को मरक्षित रखे हुए है। अब यथा तावा वा जन्मना पुण्यना वा अनन्तना और वास्तव्या को अन्तर्गतता भग हुआ जायेगी। एतना ही नहीं मगूण वस्तुना म एवमर वा प्रस्थापन को कर समूष जगम अन्तता म मीन म एन जायेगा। एव वान और है। अभावा वा जन्मना म भावानर स्वभाव माना गया है भाव को अभावावर स्वभाववर्ण। इसका भी कारण यह है कि गतात्मक (आवात्मक) धम वा आधार पर ना वस्तु का स्वतन्त्रता का धान ना सत्ता है अगतात्मक (अभावात्मक) धम यन्तु को स्वतन्त्रता का धान करने म कल्पि सग्यक नो हो सकता है। य सब कारण हैं जिनके आधार पर म प्रयत्न वस्तु के भावात्मक धम वा निश्चय धम और आवात्मक धम ना व्यवहार धम हो स्वीकार करना पड़ता है। य सब निश्चय और व्यवहार को पक्षवा वस्तु के निश्चय अस्तित्व तत्त्व अनन्त अन्त भद मरर अनन्त आदि यन्तु धर्मों के विषय म भा ममय नग चाहिये। इस विषय को पचाध्यायी धर्म म अध्याय प्रथम के पाठ १। स पाठ २२ तक विस्तार से स्पष्ट किया है।

उपर के वचन म य बात स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार वस्तु के निश्चय धम को निश्चय रूप से अथान् सबका रूप म वास्तविक माना जाता है उभा प्रकार वस्तु के व्यवहारधम का व्यवहार म अथान् वचनित रूप से वास्तविक मानना ही उचित है। यथ के मीमंसे को तरह सबका अवास्तविक वचनित या मिथ्या मानना उचित नग है।

इन सब निश्चय-व्यवहार धर्मों के अन्तर्गत भी यदि निश्चय-व्यवहार धर्मों के विषय म विचार किया जाय तो कहा जा सकता है कि जहां अन्तर्भावोण को दृष्टि म उपयुक्त प्रकार म विधिधम धम और निषेधरूप धम व्यवहार धम माना जाता है वहां वस्तुतः धम की दृष्टि म निषेधरूप धम निश्चयधम और निषेधरूप धम व्यवहारधम माना जाय है। जम बुद्धि सत्ता का अभाव ना धम है उचित पराश्रितता का धमवर्ण धम होकर भा आत्मा का स्वतन्त्रता स्वधर्मना का बाधक हान स नि वध धम है तथा मगार आत्मा की पतन्त्रताएव पराश्रितता का बाधक हान के कारण भावक धम होकर भी धम है। इसी प्रकार उद्धृतता विषयवर्णता वास्तवता-व्यवहारधमना माध्यन्तता-माध्यन्तता आदि वस्तुपरिवर्तों धमवर्णना म निश्चय और यथार का व्यवस्था गठना तथा चाहिये। लपि धम उपयाम स्वभाव और विभाव धर्म और पर्याय धम और अन्वय और व्यतिरेक अन्तरण और बाह्य आदि के विवक्षा म भा पूव पूव का धम निश्चयधम और उत्तर उत्तर का धम व्यवहारधम ही होता है। जिस धम का वस्तु का निश्चयधम माना जाय और जिस धम का वस्तु का व्यवहारधम माना जाय इनका निषेध हम सब निश्चय और व्यवहार धम के ध्युत्पत्तियों के आधार पर प्रकरणानुसार ही करना चाहिये। सजिन सब इस बात का ध्यान रखना ही चाहिये कि ये तो निश्चय धम हैं ना अथा अनेक धम ग सबका वास्तविक हैं और ये ही व्यवहार धम हैं जो अनेक अनेक धम के वचनित वास्तविक और वचनित अवास्तविक हैं। उस तरफ जा भा सबका अवास्तविक धम को उभे व्यवहारधम कहना उचित मिथ्या या वस्तुनाम्ना है। मीमंसे जा व्यक्ति सबका अवास्तविक धर्मों को ही धम है य धम के रूप म समग्र वध हैं ये मगार धम के विचार ना रहे हैं। इसी तरफ जिन उभा न व्यवहारधम का भा सबका वास्तविक धम माना गया है ये भी मगार धम के विचार ना रहे हैं।

जो म भी व्यवहारधम वा वचनित वास्तविक मानना अथान् आशय्य है। जम यहदारी मर है य मान मर है यह प्र मर है य मर रवजने है य अथु गगात्र का व्यतिरेक और अथु धाम वा देग का रहने वाला है मयानि व्यवहार यदि सबका अवास्तविक ना है ता एका को और अवास्तविक ना समूष व्यवस्था। छि म मिन हो शारीरी वरा के विर ना सबका अवास्तविक फल जायेगी व अवास्तविकता का हा धामवाता हा जायेगा। विवेका धर्मों की ना अन्तना वरर रूप फलान रूप सत्ता है।

यहां पर यह भा ध्यान रखना चाहिये कि व्यवहारधम के धम धर्मों के धम पर निश्चयधम म मगना है पतन्त्र धम भी निश्चयधम ना है जो सबका निश्चय धम होकर ना रहने हैं जेधुपुण्यधमना के मिथ्या सत्ता दृष्टि मिथ्या स्वधर्मना व्यवहारधम के धम ना है मिथ्या धमवर्णना म निश्चयधमना का प्रत्य



ही लौकिक दृष्टि में भी नक्षिप्त रूप में किया है। उमलिये इसका सम्प्रत्यक्ष में विस्तार न करते अथवा उस बात पर विचार करते हैं कि जब आगम में 'निश्चयनय' और 'व्यवहारनय' धर्मों का भी सर्वत्र प्रवृत्तता में प्रयोग मिलता है तो इनका अर्थ और प्रयोजन क्या है ?

निश्चयनय और व्यवहारनय का अर्थ और प्रयोजन

नयो को ज्ञानागम में प्रमाण का अर्थ स्वीकार किया है।^१ ज्ञानागम में यह भी बताया गया है कि वस्तु-तत्त्व को समझने के लिये जो आवश्यकतम (तर्कणरूप) साधन हो उसे प्रमाण समझना चाहिये।^२ उनमें माय ही कहा पर यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि वस्तुतत्त्व का समझने का साधनतम (तर्कणरूप) साधन ज्ञान ही हो सकता है अतः ज्ञान ही को प्रमाण जानना चाहिये।^३ इस तरह तूँति वस्तुतत्त्व को समझने का साधनभूत ज्ञान ही पूर्वोक्त प्रकार में प्रमाण होता है और प्रमाण का अर्थ ही यह होता है अतः इसमें अनुमान यह निर्णय होता है कि जो वस्तुतत्त्व के अर्थ को समझने का साधनभूत ज्ञान हो उसे नय कहना चाहिये।^४

प्रमाणरूप ज्ञान ज्ञानागम में पाव प्रवृत्तियों में है —मनिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान।^५ इनमें से मनिज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान के चारों ही ज्ञान वस्तु का ज्ञान कहते हैं और इनमें से भी केवलज्ञान तो वस्तु का सर्वात्मना ज्ञान कहता है तथा मनिज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान एकदेशात्मना वस्तु का ज्ञान कराते हैं। श्रुतज्ञान को वस्तु का ज्ञान कराते की प्रतीति इन चारों ज्ञानों में निम्न प्रकार की है। अवधि श्रुतज्ञान वस्तु का यद्यपि सर्वात्मना ज्ञान कहता है, परन्तु केवलज्ञान में वस्तु का ज्ञान सर्वात्मना होता है यह युगपत् प्रत्यक्षरूप में होता है और श्रुतज्ञान में जो वस्तु का सर्वात्मना ज्ञान होता है वह क्रमशः एक एक अंश के प्रत्यक्षपूर्वक परोक्ष रूप में होता है। इस तरह कहना चाहिये कि श्रुतज्ञान द्वारा वस्तु के एक-एक अंश का क्रमशः पूर्व-पूर्व ही ग्रहण होता है उमलिये श्रुतज्ञान में नयों की व्यवस्था को अनायास न्यान प्राप्त हो जाता है और यही कारण है कि आगम से श्रुतज्ञान में ही नयों की व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है तथा मातज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान में नयव्यवस्था का निषेध किया गया है।^६

उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह है कि वस्तु के एक-एक अंश का पूर्व-पूर्व रूप में क्रमशः बोध होने का नाम नय है। ऐसा बोध श्रुतज्ञान को छोड़ कर मनिज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान में तो नभव नहीं है। श्रुतज्ञान में कैसे नभव होता है ? इसका समाधान यह है कि श्रुतज्ञान की उत्पत्ति वचन के आधार पर ही हुआ करती

१ नाप्रमाण प्रमाण वानयो ज्ञानात्मको मन । स्यात्प्रमाणकदेशस्तु सर्वथाप्यधिरोधत ॥ (तत्त्वार्थश्लो० १-६ वा० २६)

२ प्रकर्षेण सशयाद्व्यवच्छेदेन मीयते परिच्छिद्यने वस्तुतत्त्व येन तत्प्रमाणम् (प्रमेयरत्नमाला १-१ की टीका)

३ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाणम् ॥११॥

हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाण ततो ज्ञानमेव तत् ॥१-२॥ (परीक्षामुख १)

४ स्वादेकदेश निर्णोतिलक्षणो हि नय स्मृत ॥१-६॥, (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक १-६ वा० ४)

५ मतिश्रुतावधिमान पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥१-६॥, तत्प्रमाणे ॥१-२०॥, आद्ये परोक्षम् ॥१-११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१-१२॥ (तत्त्वार्थसूत्र)

६ मतेरवधितो वापि मन पर्ययतोऽपि वा । ज्ञातस्यार्थस्य नाशेऽस्ति नयाना वर्तनं ननु ॥

नि शेषदेशकालार्थागोचरत्वविन्निश्चयात् । तस्येतिभाषितं कैश्चिद्युक्तनेष्टं तथेष्टत ॥

त्रिकालगोचराशेषपदावशिष्टेषु वृत्तितः । केवलज्ञानमूलत्वमपि तेषां न युज्यते ॥

परोक्षाकारतादृक् स्पष्टत्वात्केवलस्य तु । श्रुतमूलानया सिद्धावधिरमाणा प्रमाणवत् ॥

(तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक १-६ वा० २४, २५, २६, २७)



होता है और जो वचन वक्ता या लेखक के अभिप्राय रूप वस्तुत्व में एक देश (जग) में प्रतिपादन करना है वह नव रूप होता है ।^१ इस तरह पद, यदि वाक्य में सम्बद्ध हो तो वह नवरूप होगा और पद नहीं नवरूप होगा जबकि वह वाक्य में सम्बद्ध होगा । स्वतंत्र पद प्रमाण रूप तो होगा ही नहीं लेकिन अर्थात् के भी प्रतिपादन में अममय रहने के कारण वह नवरूप भी नहीं होगा । वाक्य यदि अपनी स्वतंत्र हान् न वक्ता या श्रोता के पूर्ण अभिप्राय या प्रतिपादन करना है तो वह प्रमाण रूप होगा और यदि किसी महावाक्य या लघुवाक्य में वाक्य या वाक्य के अभिप्राय के एक देश का प्रतिपादन करना है तो वह नव रूप होगा । यही व्यंग्यवाचकता के समूह रूप महावाक्यों में और महावाक्यों के समूह रूप महावाक्यों में भी जानना चाहिये । देश विस्तार के अर्थ में यहाँ पर इन सब बातों पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा रहा है ।

जैनागम में नवों की व्यवस्था विविध प्रकार में की गयी है उनमें एक प्रकार तो नैगम, नगद, व्यंग्य, अजुम्व, नन्द, नमभिरुद और नवभूत नाम के नान नवों का है,^२ दूसरा प्रकार द्रव्याधिक और पर्यायिक नाम के दो नवों का है और तीसरा प्रकार निश्चय तथा व्यवहार नाम के दो नवों का है ।^३ नवों का इन प्रकार के अन्वादा एक प्रकार वह भी है जिनमें वचन के नवों प्रकारों का समावेश हो जाता है । इनमें हम प्राक्कमग्रहण नवों का प्रकार उल्लेख उचित समझते हैं । इस सम्बन्ध में गोमटमार कर्मण्डवी निम्नलिखित गाथा छान देने योग्य है —

जावदिया वचनपहा तावदिया चेव होति नयवादा ।

जावदिया नयवादा तावदिया चेव होति परममया ॥ ८६४ ॥

अर्थात् - जितने वचन बोलने के माग हैं उनमें ही नयवाद है और जितने नयवाद हैं उनमें ही परममय है ।

नवों के इन सब प्रकारों का विवेचन यहाँ हमें नहीं करना है । प्रयुक्त प्रयोग तो निश्चयनय और व्यवहार-नय का है अतः इन्हीं दो नवों पर ही हम यहाँ प्रकाश डाल रहे हैं ।

सर्वप्रथम यहाँ पर हम बात की समझना है कि उक्त पदादि महावाक्य पर्यन्त वचन दो प्रकार का होता है—एक तो वस्तुत्व को नव्य (यथावस्थित) रूप में प्रतिपादन करने वाला वचन और दूसरा वस्तुत्व को अमत्य (जैना नहीं है वैना) रूप में प्रतिपादित करने वाला वचन । इनमें से वस्तुत्व को नव्य रूप में प्रतिपादित करने वाला वचन सकलादेशी प्रमाण रूप होता है और वस्तुत्व के एक देश को नव्य रूप में प्रतिपादित करने वाला वचन विकलादेशी नवरूप होता है । इसी प्रकार वस्तुत्व को अमत्य रूप में प्रतिपादित करने वाला वचन प्रमाणाभास और नयाभास के भेद में दो प्रकार का होता है । जो वचन अवस्तु को वस्तुत्व में प्रतिपादित करता हो वह भी प्रमाणाभास रूप होता है तथा जो वचन वस्तु के एक अंश को अपूर्ण वस्तु रूप में प्रतिपादित करता हो, वह वचन भी प्रमाणाभास रूप होता है । इसी प्रकार जो वचन वस्तु के अंश को हमारे अंश रूप में प्रतिपादित करना हो वह वचन नयाभास रूप होता है ।

जैनागम में वस्तु को अनेकान्तात्मक माना गया है अर्थात् जैनागम में बतलाया गया है कि प्रत्येक वस्तु अनन्तवर्मात्मक है और वस्तु के वे अनन्त धर्म वस्तु में जो रह रहे हैं सो उनका वह रहना विरोधी धर्म के साथ हो रहा है । जैसे प्रत्येक वस्तु में भाव रूप अंश रह रहा है तो उसका विरोधी अभाव रूप अंश भी उसमें रह रहा

१ सकलादेश प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन इति । (सर्वार्थसिद्धि १-६)

२ नैगमसप्रहव्यवहारसुसूत्रशब्दसमभिरुद्वैवभूता नया ॥ १-३३ ॥ (तत्त्वार्थसूत्र)

३ नवो द्विविध । द्रव्याधिक पर्यायिकश्च । (सर्वार्थसिद्धि १-६)

(नय) द्वेवा द्रव्याधिक पर्यायिकश्चेति । द्रव्य सामान्यमुत्सर्ग अनुवृत्तिरित्यर्थ, तद्विषयो द्रव्याधिक । पर्यायो विशेषोपवाचो व्यावृत्तिरित्यर्थ तद्विषय, पर्यायिक । (सर्वार्थसिद्धि १-३३)

४ पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते । तादृगमूलनयो द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च । तत्र निश्चयोऽनेद्विषयो व्यवहारो नेद्विषय । (आलापपद्धति)

[illegible]

यहां प्रमाण और प्रमाणभास तथा तब और नवाभास के रूप में जितना विवेचन किया गया है वह सब यद्यत् रूप श्रुत के सम्बन्ध में किया गया है। पानरूप तब व सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जन्मे होने वाला बोध भी उस रूप में प्रमाण और प्रमाणभास तथा तब और नवाभास रूप ही हाथा। इसविषये यहाँ पर उसरा विवचन ब्रह्म में तबो किया जा रहा है।

[illegible]



रूप में प्रतिपादन करने वाला वचनरूप व्यवहारनय होना है और उसका उमी रूप में बोध कराने वाला ज्ञानरूप व्यवहारनय होना है । उस बात को लक्ष्य में रखकर ही सर्वत्र हमें वस्तु नस्व का निर्णय करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

इसका तात्पर्य यह है कि जब ऐसा आगम में दल्लया गया है कि मोक्षमार्ग दो प्रकार का है एक निश्चय-मोक्षमार्ग और दूसरा व्यवहारमोक्षमार्ग, तो दोनों ही मोक्षमार्गों की अभिव्यक्ति का तो मान कर नव प्रज्ञा ने इस बात का निर्णय करना चाहिये कि निश्चयमोक्षमार्ग तो मोक्ष का साक्षात् साधन होता है और व्यवहारमोक्षमार्ग पर-परयाकारण होता है जैसा कि पूर्व में प्रतिपादित किया गया है । उस तरह मोक्षमार्ग की स्वतन्त्र-स्वतन्त्र दो भेदभावता के प्रसंग के भय में जिनको व्यवहारमोक्षमार्ग को अनिश्चित मानने का गृह्यता लेना पड़ता है उन्हें उस गृह्यता से फिर जावश्यकता नहीं चेती पड़ेगी । उमी प्रकार आत्मा की परिणति को जड़ औदयिक, औपमयिक, क्षयिक या क्षयोपमयिक नाम में पुकारा जाता है तो न्यायमय दृष्टिकोण रखने में उसका अर्थ नहीं होता है कि आत्मा की उन्नत, औदयिकादि परिणतियों में कर्म की उदयादि परिणतियाँ निमित्त कारण हुआ गर्वी है । यदि कर्म की उदयादि-परिणतियाँ आत्मा की औदयिकादि परिणतियों में उन्नति में निमित्त कारण नहीं होने पर उन्हें आत्मा की औदयिकादि परिणतियों में निमित्तकारण कहा जाता है तो फिर यह तर्क तो असम्भव ही हो सकता है । उसका व्यवहार नय का कथन किसी भी हालत में नहीं कहा जा सकता है । उसे व्यवहार नय नहीं कहा जा सकता है जब कि कर्म की उदयादि-परिणतियों में आत्मा की औदयिकादि परिणतियों की निमित्तकारणता का सम्भाव माना जायगा और उत्पादन कारण ही कार्यरूप परिणत होता है निमित्त कारण नहीं, उद्योग उत्पादन कारण का कार्य ही कार्यरूप परिणत होता है निमित्तकारण का कार्य तो उत्पादन को कार्य रूप परिणत होने में तत्त्व महायता देने का ही रहा है इसलिए किसी को ऐसा मत रखने की आवश्यकता नहीं कि "यदि कार्य में निमित्तकारण की निमित्त कारणता को बाल-विक मान लिया जाता है तो निमित्त कारण ही कार्य बन जायेगा ।" उमी प्राप्ति सर्वत्र समझ लेना चाहिये ।

आचार्य कुन्दकुन्द ने समग्रमात्र ग्रन्थ में आत्मा को स्वतन्त्र और अनादि-निघन वस्तु निश्चय करने के लिये सर्वप्रथम उन के स्वतन्त्र ज्ञान स्वभाव का प्रतिपादन किया है लेकिन जब आत्मा अनादिवाच में अपने उक्त स्वभाव में स्थिर न रह कर विकारी बन रहा है तो इसके लिये उन्होंने आत्मा की शुद्धन कर्म के माय दृष्टता को भी स्वीकार किया है । अतः जिन प्रकार आत्मा के स्वभाव ज्ञान मात्र को आचार्य कुन्दकुन्द स्वतन्त्र निश्चय मानने हैं उन प्रकार वे आत्मा के विकार को स्वतन्त्र नहीं मानते हैं । उन बात को बताने के लिये सर्वप्रथम उन्होंने शुद्धनय और व्यवहारनय का आश्रय लिया है । इसमें आचार्य कुन्दकुन्द यह दिखलाना चाहते हैं कि यदि आत्मा को स्वतन्त्र और अनादि-निघन वस्तु के रूप में जानना है तो आत्मा के स्वतन्त्र स्वतन्त्र को बतलाने वाले शुद्धनय का अवलम्बन लेना होगा, कारण कि वस्तु के स्वतन्त्र निश्चय स्वतन्त्र का प्रतिपादन शुद्धनय है जैसा जो कहिये कि वस्तु के स्वतन्त्र स्वतन्त्र का प्रतिपादन करना ही शुद्धनय है । उमी तरह यदि आत्मा की अनादि कात में चली आ रही विकारी समार रूप अवस्था को समझना है तो उसका ज्ञान शुद्धनय में तो होगा नहीं, कारण कि वह तो वस्तु के स्वतन्त्र स्वतन्त्र का ही आपत्त होता है जबकि आत्मा की विकारी समार रूप अवस्था उस की स्वतन्त्र अवस्था न होकर कर्मादयजन्य अवस्था है इसलिए इसको समझने के लिये व्यवहार नय का ही अवलम्बन लेना होगा कारण कि वस्तु के पराश्रितस्वरूप का प्रतिपादन व्यवहार नय है जैसा जो कहिये कि वस्तु के पराश्रित धर्म का प्रतिपादन करना ही व्यवहारनय है । इस के भी अनिश्चित यदि आत्मा की समार रूप विकारी अवस्था को समाप्त कर के उत्पन्न होनेवाली मोक्ष रूप अवस्था को समझना है तो इसका भी ज्ञान शुद्धनय में नहीं होगा कारण कि यह अवस्थाही आत्मा की स्वतन्त्र स्वतन्त्र न होकर कर्म के उपजम, क्षय और क्षयोपजमजन्य अवस्था है इसलिए इसको समझने के लिये भी वस्तु के पराश्रित धर्म के प्रतिपादन व्यवहार नय का अवलम्बन लेना होगा ।

अब प्रश्न उठता है कि आत्मा की समार और मोक्ष दोनों ही प्रकार की अवस्थाएँ जब उभय कर्म के उदय से उत्पन्न और कर्म के उपजम, क्षय तथा क्षयोपजम में उत्पन्न हैं यानी आत्मा की समार रूप अवस्था में कर्म का उदय

कारण है और मोक्ष रूप अवस्था म कम का उपयोग क्षय और क्षयोपशम यथायोग्य साक्षात् और परंपरया कारण है तो क्या कम क य उच्य उपशम क्षय और क्षयोपशम आत्मा म तदुप परिणमन की योग्यता क अभाव म आत्मा की ससारी या मुक्त बना मक्त है ? म विषय मे आचार्य मुमुक्षु का कहना है कि वस्तु म स्वगुण योग्यता के अभाव म जय कोई भी कारण उस का किसी रूप परिणमन करने में असम्य हो रहा करता है । यही कारण है कि ज्ञानमय म आत्मा का ससार रूप अवस्था का कारण आत्मा की स्वतन्त्र ब्रह्माविकी गति को तथा आत्मा की मोक्षरूप अवस्था का कारण आत्मा की स्वतन्त्र भवत्व गति को भी स्वीकार किया गया है । म तरह यह बात निर्णय होती है कि यथायोग्य कम का उच्य हान पर आत्मा अपनी ब्रह्माविकी गति का आधार पर ससार बना हुआ है और कम का उपशम अवस्था गमोपशम होने हुए अत म सत्रया क्षय हो जान पर आत्मा अपनी भवत्व गति का आधार पर मोक्ष रूप अवस्था को भी प्राप्त कर गया ।

इस से य निष्कर्ष निकल आता है कि आत्मा के ससार म उसकी ब्रह्माविकी गति और कम का उच्य य दोनों कारण हैं तथा आत्मा क मोक्ष म उसकी भवत्व गति और कम का यथायोग्य उपशम क्षयोपशम और क्षय कारण हैं । जय यदि ससार के मोक्ष कारण का विषय म यह विचार किया जाय कि ससार क मोक्ष कारण म स कौन किस रूप म कारण होता है और मोक्ष के मोक्ष कारण म से कौन किस रूप म कारण होता है ? तो आत्मा क ससार म कारणभूत उसकी ब्रह्माविकी गति उससे ससार म तथा आत्मा क मोक्ष म कारणभूत उसकी भवत्व गति उससे मोक्ष म उपशम कारण है कारण कि य गतिमय ही वस्तु होकर प्रथम ससार और मोक्षरूपता का प्रत्यक्ष होनी है । इसी प्रकार आत्मा क ससार म कारणभूत कम का उच्य आत्मा क ससार म तथा आत्मा के मोक्ष म कारणभूत कम का उच्य क्षय और क्षयोपशम आत्मा क मोक्ष म निमित्त कारण है । कारण कि कम का उच्य आत्मा क ससार रूप से और कम का उच्य क्षय व क्षयोपशम आत्मा के मोक्ष रूप से ब्रह्माविकी परिणत न होने केवल आत्मा के उस परिणमन म सहयोग मात्र पिया करते हैं यद्यपि कम क उच्य का सहयोग न मिलने पर आत्मा की ब्रह्माविकी गति ससार रूप परिणत नहीं हो सकती है और कम के उच्य क्षय और क्षयोपशम का स योग न मिलने पर अवस्था भी मध्यस्थ गति भी मोक्ष रूप परिणत नहीं हो सकती है ।

इस तरह उपयुक्त निमित्त और उपादा दोनों कारणों से स उपादानकारण को तो स्वाध्याय के आधार पर निश्चय कारण कहना योग्य है और निमित्त कारण का पराध्वना के आधार पर व्यवहार कारण कहना योग्य है । य सब विषय पूरा में विचारपूर्वक रूप किया जा चुका है । जय यदि मन दास हो कारणताओं के प्रत्यक्षान्न करने या बाध करने की दृष्टि से विचार किया जाय तो कहा जा सकता है कि उपादान कारणता रूप निश्चय कारणता प्रतिपाद प्रतिपादक भाव का आधार पर निश्चय नवरूप वचन तथा पाप्म पाप का भाव का आधार पर निश्चय नय रूप गान का विषय होती है और निमित्तकारणता रूप व्यवहारकारणता प्रतिपाद प्रतिपादक भाव का आधार पर व्यवहार नय रूप वचन का तथा पाप्म पाप का भाव का आधार पर व्यवहारनय रूप गान का विषय होती है । इस तरह आचार्य मुमुक्षु ने सम्यक्साधन म गहन और व्यवहार नय का विचारों के समान निश्चय नय और व्यवहारनय का विचारों का भी समावेश किया है ।

ज्ञानमय निश्चय नय क भी गहननिश्चयनय और अगहननिश्चयनय इस तरह दो भेद कर लिये गये हैं । इनमें से आत्मा का विचाररहित धर्म स्वरूप स्वाध्यायनय की दृष्टि म गहननिश्चयनय का विषय होना है और आत्मा का विचार म गहन स्वरूप भा स्वाध्यायनय की दृष्टि म अगहननिश्चयनय का विषय होना है । आत्मा क इसी स्वरूप को परिप्राधितपत्त की दृष्टि से दया जाय ता फिर य व्यवहारनय का विषय हो जाता है । व्यवहार नय के भी ज्ञानमय म दो भेद कर लिये गये हैं—एक सम्प्रत व्यवहारनय और दूसरा भवत्पन्न व्यवहार नय । सम्प्रत व्यवहारनय भी दो प्रकार का है— एक अनुपचरित समुद्रम व्यवहारनय और दूसरा उपचरित समुद्रम व्यवहारनय । इसी प्रकार अगहन व्यवहारनय भी दो प्रकार का है—एक अनुपचरित अगहन व्यवहारनय और दूसरा उपचरित अगहन व्यवहारनय । म विषय को आचार्यपद्विनि निम्नप्रकार निबद्ध किया गया है—





“तादन्मृत्तयो द्वौ निश्चयो व्यापहारश्च । तत्र निश्चयोऽभेदविषयो व्यापारा भेदविषय । तत्र निश्चयो द्विविध — शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च । तत्र निष्पाद्यगुणगुणोर्भेदविषयः शुद्धनिश्चयः यथा क्षेत्रज्ञानादयो जीव । नोपाधिक (गुणगुणभेद) विषयोऽशुद्धनिश्चयः । यथा मर्तजानादयो जीव । व्यापहारो द्विविधः तद्भूत-व्यवहारोऽमद्भूतव्यवहारश्च । तत्रैतन्मुविषयः तद्भूतव्यवहारः, तन्मन्मुविषयोऽमद्भूतव्यवहारः । तत्र मद्भूत-व्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र मोक्षप्रिगुणगुणानोर्भेदविषय उपचरितः मद्भूतव्यवहारो यथा जीवस्य मर्तजानादयो गुणा । निष्पाद्यगुणगुणानोर्भेदविषयानुपचरितः तद्भूतव्यवहारो यथा क्षेत्रज्ञाना-दयो गुणा । अमद्भूतव्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र मध्येपचरितवानुपचरितविषय उप-चरितामद्भूतव्यवहारो यथा देवदत्तस्य धनम् । मध्येपचरितवानुपचरितविषयोऽनुपचरितामद्भूतव्यवहारो यथा-जीवस्य शरीरम् ।” उक्ता अर्थ ऊपर स्पष्ट है ।

इस तरह नयो के स्वल्प ता यथायतन प्रकार ममज्ञान की उत्पत्ति आसक्तता है कारण कि नपूर्ण वस्तु-तत्त्व को ममज्ञान का तावन अन्तर्गत प्राप्तिथो के गिने नय-व्यवस्था है ।

इस नय-व्यवस्था को लौकिक दृष्टान्त द्वारा उस तरह समझा जा सकता है कि “कुम्भकार ने दण्ड और चक्र के सहयोग ने मिट्टी में पटा बनाया” ऐसा वाक्य यदि बोझा जाना है तो उसका अभिप्राय निम्न प्रकार होता है—

यह नपूर्ण वाक्य बचना के नपूर्ण अर्थ का यदि निराकारक्षेत्र के बोधक है तो उसे अपने वर्तमान रूप में प्रमाणवचन और इसमें होने वाले बोध को प्रमाणज्ञान ही कहा जाएगा । उस वाक्य के नपूर्ण अर्थ में उक्त अर्थ गमित है—

अभेददृष्टि में मिट्टी और घट में जो अभेद का बोध होता है यह निश्चयनय है, कार्यकारण-भाव की दृष्टि में जो भेद का बोध होता है यह मद्भूतव्यवहारनय है, मिट्टी की घट रूप परिणति रूप उत्साह में मिट्टी में जो उपादान-कारणता का बोध होता है यह भी निश्चयनय है, यही पर कुम्भकार में जो निमित्तकारणता का बोध होता है यह अनुपचरित अमद्भूत व्यवहार नय है कारण कि कुम्भकार मिट्टी की घट रूप परिणति में माक्षात् निमित्त कारण है, यही पर चक्र में जो निमित्त कारणता का बोध होता है यह उपचरितअमद्भूतव्यवहारनय है क्योंकि मिट्टी की घट रूप परिणति में परपरया जयान् कुम्भकार का सहयोगी होकर ही चक्र निमित्त कारण होता है, और यही पर दण्ड में जो निमित्त कारणता का बोध होता है, यह उपचरितोपचरितअमद्भूतव्यवहारनय है क्योंकि मिट्टी की घट रूप परिणति में दण्डनिष्ठ निमित्तकारणता दो परपरयो में अनुरक्त है जयान् दण्ड चक्र का सहयोगी होता है, चक्र कुम्भकार का सहयोगी होता है और तब कुम्भकार मिट्टी का सहयोगी होता है ।

इस तरह यह बात अच्छी तरह समझ में आ जानी चाहिये कि चाहे निश्चयनय हो, अथवा चाहे व्यवहार-नय हो, इसमें भी चाहे मद्भूतव्यवहार नय हो अथवा चाहे अमद्भूत व्यवहार नय हो और इसमें भी चाहे अनुपचरितअमद्भूतव्यवहारनय हो या उपचरितअमद्भूतव्यवहारनय हो और अथवा चाहे उपचरितोपचरित-अमद्भूतव्यवहारनय हो—ये सभी नय अपने-अपने दृष्ट में मद्भूतता प्राप्त वस्तुओं को ही विषय करते हैं । इसलिये ऐसा नहीं समझना चाहिये कि निश्चयनय का विषय ही मद्भूत होता है ना ही व्यवहार नय का विषय सर्वथा अमद्भूत ही होता है । उतना अवश्य है कि निश्चयनय सर्वथा मद्भूत विषय को ग्रहण करता है लेकिन चाहे मद्भूत व्यवहारनय हो अथवा चाहे अमद्भूत व्यवहारनय हो दोनों ही कथञ्चित् मद्भूत विषय को ही ग्रहण करते हैं । कोई भी व्यवहार नय न तो सर्वथा अमद्भूत विषय को ग्रहण करता है और न सर्वथा मद्भूत विषय को ही ग्रहण करता है क्योंकि सर्वथा अमद्भूत वस्तु ग्रन्थ की सीमा की तरह सर्वथा अनावात्मक हो जाने में वह नय अथवा प्रमाण किसी का भी विषय नहीं होती है । सर्वथा मद्भूत वस्तु तो निश्चयनय का ही विषय होती है व्यवहार-नय का नहीं । अन्त में इतना ध्यान और रचना चाहिये कि व्यवहार नय का विषय भी अभेद और स्वाध्यायता की दृष्टि में निश्चयनय का विषय हो जाता है और निश्चयनय का विषय भी भेद और परावृत्तता की दृष्टि में व्यवहारनय का

विषय हो जाता है । जसा कि पचाध्याय म कहा है—

इदमत्र समाधान व्यवहारस्य च न यस्य यद्वायम
सर्वविकल्पाभावे तदेव निचयनस्य यद ? चायम ॥ ५६३ ॥

अथान जा पचर नय का विषय है वही गणुण बिल्ला का अभाव हान पर निचयनय का विषय हा जाता है ।

सात्यय यह है नि सपूण नय पत्रक पथक एक एक दष्टि है और वस्तु अतः धर्मार्थक एवं अनकात्मात्मक है अतः सभी अविच्छिन्न है ।

•



जैन-संस्कृति का प्राण-तत्त्व संयम-योग

सुरेश मुनि,
ज्ञान्त्री, साहित्यरत्न



नयम की मौलिकता

जैन-मस्कृति नयम, जड्यात्म तथा जीवन-गुद्वि की मस्कृति है । तब उनमें कुछ ऐसा गुया हुआ-मा, सिखा हुआ-मा, रमा हुआ-मा है कि यदि नयम को ऊपर ने जलग रन दिया जाय, तो जैन मस्कृति कुछ रत्नों ही नहीं है और जैन-मस्कृति ने अलग नयम का कोई मृ-य-महत्त्व नहीं । तब ने भी नयम श्रेष्ठ है । नयम नहीं, तो तब भी तब नहीं—यह जैन-मस्कृति का मूळ मन्व्य है । नयम-मूळक न हो नय है । इन दृष्टि ने नयम को जैन-मस्कृति का प्राणतत्व—आत्मा कह दिया जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

जैन-मस्कृति की मूळ परमाण के दृष्टिकोण ने नयम को धर्म का प्रधाननम अग माना गया है—जो नीचे तीर पर माक्ष का प्रमुख कारण है । जैन-मस्कृति के महान् उन्नायक ऋषभ भगवान् महावीर ने जब धर्म की व्याख्या के मन्व्य मे पूछा गया, तो उन्होंने जाने म्हाड-गम्भीर स्वर मे कहा—अहिंसा, नयम और ना-यही धर्म का स्वरूप है—

“धम्मो भगवमुपिद्धं, अहिंसा सज्जमो तरो ।”

—दशवेतालिक, १।१

कठिण-मन्व्य आचार्य हेमचन्द्र के पास एक जिज्ञानु नाथक पहुचा और बोला—आचार्यवर, क्या जैन-मस्कृति के महान् दृष्टा एव मृष्टा है । जैन-वाड्मय का कही पात्र नहीं है, और मेरी बुद्धि भी इतनी स्फीन नहीं है कि मैं डाकरी गह्गई मे पैठ कर उनके मर्म-म्यल तक पहुच सकूँ । अतः जैन-मस्कृति का मर्म जानने की कामना मन मे सजो कर ही मैं श्रीचरणों तक पहुचा हूँ । कृपया, बतलाइए—मक्षेप मे, जैन-मस्कृति का मारतत्व-निचोड क्या है ?

आचार्य हेमचन्द्र ने उन जिज्ञानु की बात को ध्यान-पूर्वक सुना और अपने अत्यन्त मृडुल-मृदुर स्वर मे कहा—वत्स ! आश्व-अनयम नमार की लवेनी गलियों मे ऋकने का कारण है और नवर—मयम, मोक्ष अर्थात् वन्धन-मुक्ति का साधन है । वम, सक्षेप मे जैन-मस्कृति का मारतत्व इतना ही है, येष नमस्त वाड्मय इमी तत्त्व-दृष्टि का विस्तार है —

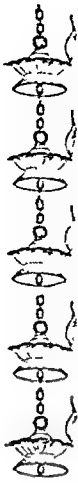
आश्वो भवहेतु स्यात्, सवरो मोक्षकारणम् ।

इतीयमार्हती दृष्टिरन्यदस्या प्रपञ्चनम् ॥

—वीतरागस्तोत्र,

मनुष्य की महत्ता क्यों और किसलिए !

भारत के महापुरुषों, तीर्थंकरों, ऋषियों और आचार्यों ने नमवेन स्वर मे मनुष्य की महत्ता-महिमा एव



कुछ, करने के लिए है, यों ही गवान, मिटाने और नष्टाने के लिए नहीं है। मनुष्य उन चिन्तामणि रत्न में, उन अनमोल जीवन में छड़े-मे-छड़े साधन—जो अन्यत्र दुर्लभ एवं दुर्प्राप्य है—प्राप्त कर सकता है, यदि वह उसे मात्र ले, परिष्कृत कर ले, नयम तथा मर्यादा के मार्ग में टान ले। जैन-मन्त्रिण मानव-मात्र में यही अपेक्षा रखती है कि, उनका जीवन मर्यादा की पवित्र भावना में रखा हो, रचा हो, नियन्त्रित हो। मर्यादा ही उस अमूल्य मर्यादा की उपलब्धि के लिए, मर्यादा-भावना की उच्च-उदात्त भावनाओं का आत्मनाम्न करने के लिए मानव-जीवन का स्वर्णिम अवसर है, एक दुर्लभ 'दान' है। अतः अत्यन्त दुर्लभ तथा विजयी की चमत् के समान चन्द्र मनुष्य-जन्म को पाकर जो व्यक्ति नयम-भावना में प्रमाद करता है, वह नाशुर्य है, नश्युर्य नहीं —

“त तह दुल्लह लभ, विजुत्ताचचल मपुम्मत्त ।

लद्धं जो पमापइ, तो कापुरिमो न मत्तुत्तमो ॥”

—प्राचार्य मन्त्रिण-

जैन-संस्कृति का महान् आघोष

मनुष्य के मन, बुद्धि, उद्भिन्न तथा शरीर के प्रवाह को नयम की दिशा में मोड़ने के लिए और निरर्तन्य की भावना जगाने के लिए एक दिन मानव की अन्तरात्मा को उत्तरोत्तरे हुए जैन-मन्त्रिण के मनीषी विचारकों ने महान् उद्घोष किया था—मानव ! तेरे जीवन पर, तेरी आत्मा पर नेरा प्रभाव नहीं है ! उन पर अस्मिता और तन्मी का है, दूसरे का है, तेरे विरोधियों तथा जन्तुओं का है ! तेरे ऊपर, तेरे चरण पर, अस्मिता जमाने वाले योग, मान, माया, लोभ, अमयम तेरे मित्र नहीं, प्रत्युत अन्तरंग शत्रु हैं ! उन अन्तरंग शत्रुओं ने ही तेरी आत्म-शक्ति को, तेरी इन्द्रियों, तेरे मन, बुद्धि और तेरे शरीर, तेरे जीवन के रज-रक्षण को चन्द्र एवं अमान्य बनाया हुआ है, बेमान कर रखा है ! उन्हीं विकारवाचनाओं एवं अमयम-मूढक भावनाओं के कूटे-कूट के नीचे ही तू दबा हुआ है तेरी आत्मा का शुद्ध स्वरूप ! उन्हीं विकार-वाचनाओं ने तो जिन की है तेरी आत्म-शक्ति, ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र्य की समस्त आत्म-निधि ! इन अमयम पापक विकारों के मूल ने ही तो विकृत-गदगा किया हुआ है स्फटिक के समान तेरे आत्म-स्वरूप को ! उन्हीं अमयम ही रामनाथों के कुहरे ने तो धुँधला बना दिया है तेरे मन-मानस के दर्पण को ! अमयम ने पराजित वह तेरी आत्मा, ज्ञान और इन्द्रिया-वही अन्तरंग शत्रु हैं तेरे ! अमयम मेरची-पची आत्मा, अपना जितना अनर्थ कर बैठती है, उतना अनर्थ निर काटने वाला शत्रु भी नहीं कर सकता —

“एगप्पा अजिए सत्त, कत्ताया इदियाणि य ॥

—उत्तरा०, २३।३८

‘न त अरी कठ्येत्ता कण्डे, ज से करे अप्पणिया दुरप्पा ॥

—उत्तरा०, २०।४८

उपर्युक्त अध्यात्म-विचारों के प्रकाश में, जैन-संस्कृति के ज्योतिर्धर-चिन्तकों ने मानव की अन्तरात्मा को आत्म-मनन, आत्म-दमन एवं आत्म-संयमन की प्रबल प्रेरणा प्रदान करते हुए एक दिन यही उद्घोष किया था—पुरुष ! यह जीवन पाकर तुझे अपने आपका दमन एवं नयमन करना चाहिए। पर अपने आप का दमन करना है अत्यन्त कठिन ! किन्तु जो, अपने आपका दमन कर लेता है, वह इस लोक तथा परलोक में-उभयव सुखी होता है —

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुहमो ।

अप्पा दतो सुही होई, अस्सि लोए परत्थ य ॥

—उत्तरा०, ६ । १५

और भी,

अप्पा हु खलु सयय रक्खियव्वो,

सच्चिद्विहं सुत्तमाहिहं ।

अरविस्तमो जाद्वह उदेद,
सुरविलसो सच-नुबलाम मुच ॥

—दशमः द्वितीय चूर्चिका गा १६

साधन से अपनी मर्यादा गतिमान इन्द्रिया के द्वारा गम्यमान सत्तन अपनी आत्मा को रक्षा करना चाहिये। अर्थात् जन जात्मा कुप पर चक्कर मसारा में भटकती है और सुरविल आत्मा प्रगल्भ पर चक्कर सब दुष्टों से मुक्त हो जाती है।

सत्य का अर्थ क्या ?

चित्रकार जब किसी भी चित्र का निर्माण करता है तो उस के लिए उस सब प्रथम रेखाएँ खींचनी होती हैं। उन रेखाओं के आधार पर ही वह चित्र का निर्माण करता है। रेखाओं के आधार पाए बिना चित्र का महीन मुद्रण एवं मुद्रित सज्ज नहीं हो सकता। ठीक यही स्थिति जीवन के सत्य घटने भी है। मानव जीवन का सत्यस्थित समस्त विज्ञानात्मक एवं साधनात्मक निर्माण करने के लिए भी उस रेखाओं पर आत्मा आवश्यक ही बना प्रतिपाद्य है। यह रेखाएँ हैं मर्यादा का सत्य की आत्मा विवेक की जन सत्कृति की साया में जन अत्यन्त मर्यादाओं तथा मामलाओं की स्वीकृति का नाम है — सत्य।

सत्य का विनाशकारक अर्थ अपने ऊपर अपने द्वारा अपना नियन्त्रण। सत्य-योग = विवेक पूर्वक अपनी आत्मा से सत्य मूलक आत्माओं तथा पारिवर्तक कामनाओं का नियन्त्रण करना। जीवन में निश्चिता आध्यात्मिकता आत्माओं आज एवं उन जन जन का नाम है सत्य। सत्य का अर्थ है कि सत्य अपने इस जीवन में निश्चित साधनाओं के द्वारा तथा आत्माओं के आधार पर सत्य पर चक्कर मसारा में भटकती है। जीवन का सत्य एवं सत्य प्रत्यक्ष सत्य है कि आज नाम का नाम निश्चिता आत्माओं जिनकी भी इन्द्रिया हैं वह सब अपना अपना रूप देने के लिए इधर उधर भटकती हैं। आत्म-सत्य जन इन्द्रिया की सत्य आत्माओं के मन के विवेक विचारों में छोड़ा जाया न फिर अपने लिए जीवन में सत्य प्रतिपाद्य है। सत्य का अर्थ है — अपने तन पर अपने मन पर अपनी इन्द्रिया पर उनकी कामनाओं-आत्माओं पर उनका सत्य जीवन एवं सत्य आत्माओं के आधार पर सत्य करना। जीवन का साधनात्मक एवं सत्यमूर्ति विराट बिना सत्य आधिपत्य के हो नहीं सकता। जन जन-सत्कृति का एक अमरगायक अपना सत्य स्वर में गा रहा है। यन्त्र सत्तन से भय छाया और साधना प्राप्ति की आशाएँ सत्य हैं तो इन्द्रियों का जीवन के लिए जन पर अपना आधिपत्य अमाने के लिए अपने प्रत्यक्ष पुण्याय को नाम मना —

विश्वेति यदि सत्तनत मोक्षप्राप्ति के वादस्तति।

सदेन्द्रियनय अनु स्फोरय स्फार पोष्यम ॥

—उपाध्याय यशोधरय पानसार इन्द्रिय त्रयाष्टक स्तोत्र १

जन सत्कृति के सत्य सत्य आत्माओं का नाम है कि ये इन्द्रिया जीवन में प्रकाश भा चंचली हैं और अपकार एवं धना भी चंचली हैं। ये जीवन में सज्जन का सत्तन भा करती हैं और विवेक का प्रकाश भी करती हैं। ये विवेक का उद्भूत भी करती हैं और सत्तन भी करती हैं। ये इन्द्रिया जीवन में सत्य का अवतरण भी करना हैं और सत्य का सत्तन भी करती हैं। सत्य एवं निश्चित इन्द्रिया सत्य का निर्माण करती हैं। जो सत्यन तथा अनिश्चित इन्द्रिया सत्य का सत्तन करती हैं —

इन्द्रियाधेश सत्य सत्य सत्यनरक्षाधुयो।

निर्णयन सत्तनत सत्य सत्य सत्यनरक्षाधुयो ॥

जीव मनुष्य के नाम है या सत्य ? मन बाधा तथा सतीर सत्य जीवन हो या साधन है उक्त पाठ जीवन का सत्य विगाह करने के लिए। यह जन जीव साधनों का सत्ययोग भी बन सकता है और सत्यन भा कर



— 53 — 0012

—252711—, 2017

—उत्तर, ३१।३

मयम-मयना जीवत ग एव भावयोग्य नव्य हृ ! मयम न अने है अन्तर्गत वदोना और मय
यक्ति का दृष्टि है-जीवत ग सुयोग्य विज्ञान प्रज्ञा ! हम सुन्दर में अन्तर्गत मयम न वदोना न वदोना का न

मुन्द रूपर सवार व गामन रत्ना है । उठो वन है कि जय बछआ चत्ता है तो अपने अग प्रत्ययी का घोल्कर चतता है । हिन्दु जहा जरा भा भय या खतरा हुना है तो तत्का यह अपने सब अंग का अन्दर सिक्को-सकोच सता है छिपा सता है । खतरा टण ता पन् भर म फिर फटा निकाल सता है बाहर अपने अंग को । य्ती प्रगर माधरा भा यपनी समय धाना व मास पर सतवता सावधानी और विवा व साथ चत्र । अब आवयय हो अपनी इन्द्रिया म मन म तन म काम मे प्रीर जहा समय विराधना का भय हो जग बाह्य जगत म बही तन मन इन्द्रिया के अन्क भयन और अन्क जान वा प्रसय या जाण बहा बल्लम की भाति अपने अंग—तन मन इन्द्रिया को आत्म जान से अन्तर म हा गापन करन रथ -

जहा बुझे सजगह, सए देहे समाहरे ।
एव पाथाइ मेहावी अमल्लेण समाहरे ॥

— शून्यतया १।८।१६

जीवन की गाड़ी चलाने की मनाही नहीं

जन सत्कृति की मूल्यमा अष्टात्म-परम्परा व अनुगर जीवन यात्रा की गाणी का चन्ना की मना । नही है । प्रत्येक यकिन को जीवन की यह गाड़ी मिली है ता उस चलान का अधिकार भी उस साथ ही मिला है । जन सत्कृति का इस सम्बन्ध मे सतम बचन चलाता है कि जीवन-यात्रा पर अग्रसर होते हुए जीवन की गाड़ी को चलान हुए वैभान अगान सया अविवेक न बनो । ना का हाल म गाड़ी को चन्नागा होने मन चलो । मन मस्तिष्क एवं विवेक-युद्ध को सप्त-मन । उबर, जाग्रत एवं विवेक-युक्त रत्ना साहि जीवन बही मन् मन गिर जाए घर उधर बिगि स टकरा न जाए कोई तुन्दरी गाणी क आग आकर कुचन न गा । जीवन का गति न लक्ष्य उ मुन्द मर्या हीन एव उच्छ यत्र हा ना बाहिर और न लक्ष्य गति नूय तथा निष्पन्न हो हानी चाह्य ।

जन सत्कृति का महान सत्कारक भयवान म त्वार व वात एवं त्रिज्ञास साप्रक पशुका । बदन किया और बिल मन् म प्ररन दिया भने । जीवन वष पर हम चल्त हैं तो भी पाप जगता है खडे होत हैं—तो भी पाप घर नना है चल्ते हैं । भी पाप बहा नना है मात हैं ता भी पाप पिड नहा छोत्ता सान हैं सब भी पाप हो जाता है । जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति एवं क्रिया पर पाप की वाता छाया घुरी तर छाये हुई है । जीवन का प्रत्येक रूपदन पाप ही मना है । जीवन का समस्त क्रियाएं काण्ड पापमय हैं । ता प्रमा ! हम कसे चले कते घा हा कसे बडे बग घोए गाए पिए और बग बागे गिन पाप हम न छू सर ? भयवन् । बया ऐसा भी उपाय ? जिसत जीवन यात्रा मे सप्त पाप मे छ बाग मिन्न स ?

‘कह सर बहु चिटठ कहमासे कह सए ।

बहु भुक्तो आसतो पाव-धम्म न भण ॥

— दण्डवर्णिता ४।७

ता भगवान् मन्सीर त अपनी धां गन्धीर मुना म उस साथ व मन कलि समाधानात्मक माग म्ना वतन हुए कहा सय । विराग मन । जोवन की ये गाणी प्रवृत्ति सया क्रिया—जिनम तुमन पाप ना पाव दगा है—उम का रूप ल मना है पाप त्रिभुक्त हा सय है यो मुम जावन का लक बला का अम्याम कर लो । उम चला व आग ही जावन का समस्त चलाए प्रवृत्ति सया उन्क-मनु-वक्त पापम-वक्त व व धार मु जातो हैं और व वना है मयम का अन्विष्ट की मन्त गावधानता का । मयम म चला समय स म्म हात्रा समय म बया मयम । मोक्ष मयम म हात्रा और मयम म बला । जीवन का प्रत्येक रूप न व मयम एवं विवेक व प्रवाग स जाड । ता पाप का अघार पीडा म आती न । सक्ता—पाप-धम्म मुहारी आरया का ल गरी सक्ता पाप का बन्त हो त । गता । बराहि पाप हित क्रिया जयरा प्रस म त रता म्मा है । पाप र ता है अमयम म प्रविष्ट म अयता म —



“जय चरे जय चिद्रे, जयमागे जय मोए ।

जय भुजनी नामतो, पावस्म न दयः ॥

—सर्वभारत, १८

जीवन के सारथि बनो

जैन-मन्युति की मूल परम्परा की भाषा में, उन्धिय, मन और शरीर को चिन्तेता जय उन्हें मानता उनके साथ व्यवहार करना नहीं, प्रत्युत उन्हें मयम एवं स्वयं के प्रशसन तय पर नज़र रख दीत उन में मानता है जो मानता उनमें मनचाहा अत्यात्म-उत्कर्ष का सर्वोच्च-सर्वोपरि गम लेता है । जैन मान्यता योंही मानता है, स्व को ठीक दग में चलाने के लिए उन्हें तैयार करना है और कि २२ में मोड़ता उनकी वागडोर अपने मजबूत हाथों में मानता था मानता है, उनमें मनचाहा गम लेता है—उनको ज़िगर चाहता है चहता है, पहा चाहता है, मोड़ता है, जैसी गति में चाहता है, वैसे ही गति में तान लेता है जो पहा गोगता लेता है दृष्ट ने वागडोर मोचकर उन्हें मोड़ लेता है, इसी प्रकार मानव शरीर भी एक स्व है । आत्मा उनका सारथि है । उन्धिया मोटे ह और मन वागडोर । जैन-माधक उन मयमो माधकर उनमें यथेच्छ माधना का गम ले, उनको अपने आगे पर चलाए—जैन-मन्युति यही मयम-माधना की कला नियलाने की प्रागचेतना प्रदान करती है । मानव अपने आप में मोठा-मोठा, विपन्न-विपन्न न रहे, विन्दु मयम-मय की ठीक दिशा में गति-प्रगति रहे, मनुष्य की जन्मरात्मा ता जैन-मन्युति यहा बोध-मन्युति पराना चाहती है । आज ज़िगर चाहे उधर न दीड मर्के, स्व रग पर न दुमा मर्के जो चाहे, वह न देव तर्के, प्रत्युत तावक जो देखना चाहे, वही जाँचे देखे जो जो वह न देवता चाहे, न देवे । तान जो मुगना चाहे, वह न मुन तर्के, माधक की अन्तरात्मा जा मुगना चाहे, वही तान मुने, जो वह न मुगना चाहे, वह न मुने । माधक जिन रग ता जन्मवादन करना चाहे, वही रमना आम्बाद परे और जो वह न चाहे, रमना उन और न जा मर्के । माधक जो चाहे, वह न मूँव मर्के प्रत्युत माधक जो चाहे वही नाक मूँवे और जा वह न चाहे, पर न मुघ तर्के, मन जो चाहे, उछतबूद न मना मर्के, जो चाहे, वह न मोच मर्के, उधर-उधर के व्यप के पत्त-विपत्तियों के भ्रम-नाल में न उलझे, प्रत्युत माधक अपने मन में जो सोचना चाहे, वही मन गोचे, और जो वह न सोचना चाहे, मन भूल कर भी उसे न सोच मर्के । शरीर ने जो भी मानना का कार्य साधक लेना चाहे, वही शरीर चेष्टा करे—अपनी मनचाही शरीर भी न कर मर्के—मयम का मूल तात्पर्य यही तो है ।

जैन-मन्युति की मूल प्रेरणा यही है कि माधक अपने मन, उन्धिय तथा शरीर का अधिपति तथा स्वामी बन कर रहे—उनका दान, नौकर अववा गुलाम बनकर नहीं । स्वामी ना वह कार्य नहीं कि वह अपने नौकरों के इशारे पर चले, उनके तवावे तावे, उनकी गुलामी करे । नौकर उधर-उधर मट-पट, गड-बड करने रहे, हुडडा मचाते रहे, तोड-फोड करते रहे, अराजकता फैलाने रहे और स्वामी दुडुर-दुडुर देखना रहे, बैठा-बैठा ग्रामू वहाता रहे यह स्वामी का स्वामित्व नहीं है । स्वामी का अर्थ है कि वह अपने नौकरों को आज्ञा दे, उन्हें अपनी आज्ञा के इशारे पर चलाए, उनमें यथेष्ट काम ले, उन्हें पूर्णतः अपने अनुशासन में रखे, अपना पूर्ण आधिपत्य रखे उन पर । ये इन्धिया, यह मन, यह शरीर भी तो नौकर ही हैं न आत्मा के । इनका स्वामी आत्मा उन्हें गलत दिशा में जान में रोके गलत काम करने में मना करे और उचित कार्य करने की प्रेरणा दे—उनमें कार्य कराए । उनका शासन बने—उनके ऊपर अपना अनुशासन चलाए, जिम्मे आये जहा जाना चाहे, न जा मर्के, तान जिधर चाहे, न दीड मर्के, जिह्वा जो चाहे न बोल मर्के, जो चाहे वह न चब मर्के । हाथ-पाव भी अपनी मनमानी करने पर न उतर आए । आत्मा के संकेत से और ही मन उन्धिय, मन और हाथ-पांव गति-मति करें । ये सब नौकर तो तभी ठीक-ठीक क्रिया करेंगे, जब माधक का उन पर कडा पहरा होगा । प्रत्येक इन्धिय पर, मन पर, शरीर पर अपना पहरा बैठा देने पर ये साधक की आत्मा जो चक्रमा न दे मर्के, घोड़े में न डाल मर्के, प्रत्युत अपनी चिर-अन्यस्त उच्छृंखलता एवं स्वच्छन्दता का परित्याग कर माधक की प्रबुद्ध आत्मा के अनुशासन में चलने के लिए विवश हो जाएंगे । मयमशील साधक अपनी आँखों पर, अपने कानों पर, अपनी रसना पर, अपनी नाक पर, अपने हाथ-पाव पर, अपने मन पर, अपने जीवन की मयम गति-विधियों पर अपना शासन चलाता है, उन पर अपने आधिपत्य तथा स्वामित्व का वर्चस्व मस्थापित करता है । शासन की वागडोर वह प्रतिक्षण अपने

पथ का सम्बल : रत्नत्रय

साध्वी उमरावकुंवरजी 'अर्चना'

जैनमिहान्ताचार्य



प्रत्येक मननशील मानव के सम्मुख एक ही मुख्य प्रश्न रहता है कि आत्मोन्नति कैसे करें ? अन्तर्दि वाह मे मानव उन उन्नति-कामना को मजोए हुए है ।

लेकिन देवता यह है कि उनके पास पर्याप्त मनोंवृत्त, निर्भयता, आशा, उत्साह, साहस, धैर्य आदि, जो आत्मोन्नति के लिए अनिवार्य हैं, ह या नहीं ? उन नायकों के बिना वह उन्नति-पथ की ओर अग्रसर हो नहीं सकता । साथ ही उसकी वृद्धि में जागरूकता, प्रगल्भता, विवेक और दूरदर्शिता होनी चाहिए । वृद्धि ही मानव का विशिष्ट गुण बल है—'प्रज्ञाना वन ह्येव निष्प्रज्ञस्य वनेन किम् ?' उन्नी दीपक ने मनुष्य को मन्दार में सब कुछ दिखाई पड़ता है—'बुद्धिर्दीपिका लोके यथा सर्वं प्रकाशते ।' अतएव वृद्धि निर्वच, निष्क्रिय और मरित होगी तो मनुष्य लक्ष्यन्तुन हो जायगा ।

मन्दबुद्धि या दुष्टबुद्धि भी कही उन्नति कर सकता है ? जिसे मूल-धर्म नहीं होती वह मतिहीन माय ही गतिहीन भी हो जाना है ।

प्रज्ञाशील पुण्डों ने आत्मोन्नति के उच्छुको को तीन स्वयं अनिवार्यरूपेण अपनाते का निर्देश किया है । तत्त्वार्थमूत्र में कहा है—

'मम्यन्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग ।' मम्यन्दर्शन, मम्यज्ञान, और मम्यक्चारित्र्य ये तीन सुक्ति पथ के परम साधन हैं । इन के सहयोग के बिना साधक की उद्देश्यपूर्ति असम्भव है ।

अग्नेजी के प्रसिद्ध कवि टेनीसन ने भी एक स्थान पर लिखा है—आत्मज्ञान, आत्मविश्वास और आत्ममग्न केवल ये तीन ही जीवन की परमव्यक्तिमपन्न बना देते हैं ।

आत्मविश्वास

आत्मविश्वास का मुख्य उद्देश्य है आत्मसुदृढता का निराकरण । आत्मविश्वास के बिना मनुष्य एक कदम भी प्रगतिपथ की ओर नहीं बढ़ सकता । आत्मविश्वास के बिना आत्मा बलवान नहीं हो सकता । एक मकन का वह मुट्ट मकल्प होना चाहिए—आत्मा ऐसी बलजालिनी बन जाए कि मन-मेरु कभी विचलित न हो । विशालकाय पर्वत श्रृंखला मेरी राह रोकें और भीम-प्रवाहिनी वेगवती नदियाँ पथ की बाधक बनें जयवा गर्जन के साथ नागर हिलोरें ते रहा हो उनके बीच में मेरी नौका उगमगा रही हो ऐसी भयानक अवस्था में भी आत्मविश्वास डिंगने न पाये ।

आत्मविश्वास के अभाव में मानव पगुवन् हो जाना है । मन के लगटे को स्वर्ग के अमर्य देव भी नहीं उठा सकते और आत्मा की अपरिमित शक्ति में विश्वास रखने वाला व्यक्ति अमर्य देवों को अपने नामने झुझ सकता

है। आत्मनिश्चयानी का भटनता नहीं बल्कि अज्ञाना नहीं पथभ्रम माना जाता है। वह अपनी उद्देश्यपूर्वकता का सिद्धांत का सम्मेलन लिए प्रतिक्षण प्रयत्नमान बना रहता है। उस अपनी आत्मा का लक्षण गतिन जीव अमरता पर पुण विराम होता है।

—स एष धर्मो विपदि स्वयं न विमर्शति

यह धर्म है जो विपत्ति में अपने स्वयं का न छोड़ता है। या निश्चय महात्म्य लिखत — नानाया हमारे साथ अंगण उत्तार करती है। वह हमारे अन्तर आह्वान भरती है और हम सब प्रकार का योग्य बनाती है। अन्तर की ओर नम उठो नो इस प्रमत्तता से नो भगा। चाहे बाह्य गिर पर गिर पड़े चाहे माल्य पवन माग रोकर छड़ा जाए चाहे मरु सामने आ जाए परन्तु फिर भी मन उठे।

मनुष्य तथा सोचना है क्या ही बत जाना है। धर्म उन तम कठोर व्यक्ति को मनुष्यता की भावनाओं का प्रवर्तन करना चाहिए।

महर्षि पुरुषोत्तम श्रीराम का मन मन्त्रा साथी मित्राय आत्मनिश्चय के बीन था ? उनके सामन किसने दिक्कत काय थे ?

‘विजयतया नका चरणतरणायो जलनिधि

विषय दौलतस्यो रणभुवि सहायान्ध कथय ।

सहाय्येको राम सज्जनमयधो जलकुल

त्रिपासिद्धि सत्त्वे भवति महता मोचकरण ।

रक्षा की जीवनता था समुद्र का पद पार करना था रावण जगा विरोधी था और उत रणभूमि में धारण हो सहायक थे। फिर भी अन्तर राम ने रागमनुष्य का सहार कर लिया। सहाय्यता की कायनिधि साधना पर नहीं उनके आत्मरक्ष पर निर्भर रहती है।

प्रायः लोग अपने दमन अथवा ही दमन रखते हैं किंतु प्रवृत्ति पर निश्चयन में विश्वास नहीं करते। यो आत्मनिश्चयता का कारण है। उस में मनुष्य का अपने जातिगत दम की अनुभूति न। इसी और उमरा मन ही परि स्थिति में स परस्पर पराधीन हो जात है। यावत्सिद्धि य का है—

मैं शत्रु नहीं हूँ इस दृष्टिकोण में मन वचन म पड़ जाता है — यह सत्य कि सहाय्यतामुद्राव धर्मोत्तम । अपने प्रति अविश्वास या मिथ्या विश्वास होने में मनुष्य में विश्वास गतिन भी पलायन कर जाता है। जागन ही भावना रहै तब को सहाय्यता ? अपने ही का स्वाधर काई क्या क्यालया

आत्मगमन करने वाला भी वहीं विजयी होता है? यात्रियों का सत्वर एक जगज गमन पार जा रहा था। दध्मि स भयानक घुसान का गया। नात्रिका ने यात्रियों की बचाव का गतिन भर प्रवृत्ति दिया भयंकर सपना। हा सवे। अन्त में जगज घुसानाप्रप्त हो गया। देखते देखते गावर कवच स्वल पर लागे लगे लगे। नात्रिक तर कर निहार पड़ गये। उस समय का हृदय अत्यन्त क्लेशजनक था। आत्मन्य रूप का यात्रा निर्भीकता में चर पर मुक्कटाट्ट लिए हाथ पर मार रूपा का और सम्यं तरकर निहार लगे का वर मात्मन्य साय प्रयत्न कर रहा था। छोड़ य व का आत्मनिश्चय और अणु सात्म्य निश्चयनी यन्त्र ऐश्वर्य देना जीव मा उद्देश्यपूर्वक क्या अर सवे निरपेक्ष क्या हैरत हो रहा है ? जब जगज व सभा वाली अमास साधर वर म सभा पर है तो मरा क्या बिनात है छात्र यात्रास्य का प्रयाप । सत्त्व न अत्यन्त दृढता म रणा—आ भवता काम करे म अना काम कर रहा है। बिना भाग सत्त्व दास क्या उचित है ? देव ने उमरा समस्तान की काणि का पर वर को अपना मा म नहीं छात्र। उनम दृष्टानुसार क्या—जब मरना ही तो मारा की चीन क्या न मर ।





बच्चे का अद्भुत माहम देख कर देव ने प्रसन्नता से बच्चे को डिट्टन स्थान पर ले जाकर छोड़ दिया। आत्म-विश्वामा के उन्नति-पथ में विकट में विकट परिस्थितियाँ भी वापक नहीं बन सकती। पत्थर की चट्टान जो कमजोरों की राह का रोड़ा होती है, शक्तिशालियों के लिये मफटना की मीठी बन जाती है। टालमटाय ने कहा है—“विश्वाम जीवन की शक्ति है।” जर्मी टेलर ने कहा—

विश्वाम माने वरदानों का आधार है। विश्वाम तूफानी सागर में हम को नेता है, पवनो को दिगा देता है, मागर लाप जाता है। विश्वाम एक कोमल पुत्र नहीं है जो मावाग्ण वायु के झोंके में कुम्हटा जाय। यह हिमाग्न के समान अडिग है। उन्नति-मदा का यह प्रथम गोपान है।

आत्मज्ञान

आत्मोन्नति का दूसरा साधन आत्मज्ञान है। अन्तर्ज्ञान या आत्मज्ञान का सग्ल अर्थ है अपने को पहचानना, अपनी आत्मशक्ति की यथार्थ जानकारी होना। जब तब मानव वस्तु के गुण-दोष की जानकारी में ज्वगत नहीं हो जाता है, वह दोषों में बच कर गुणों को अपना नहीं करता। पुरुष यदि घर में धन गाठ जाएँ और हमें पता न हो तो हम उस गुप्त धन का लाभ नहीं उठा सकते। गोधा में जा देखो तब है उन ने जगमग रहने पर भी ऐसा ही होता है। अपनी नदृष्टियों को जानने का अर्थ है, उन्हें जगा लेना, पकड़ लेना। हमें आत्मशक्ति का अनुभव और जीवन के लक्ष्य का ज्ञान होता है। जब तब हमें अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं होता है तब तब किया जाने वाला उग्र क्रियाकाण्ड नार्थक नहीं होता। आप एक कागज लेते हैं, मुन्दर अक्षरों में और मजे हुए शब्दों में अपने घनिष्ठ मित्र को लक्ष्य कर अपने हृदयगत भावों को अभिव्यक्ति करते हैं। रई प्रहार की मुन्दर उपमाएँ देकर हृदय का समस्त स्नेह उडेल देते हैं। तत्पश्चात् उसे लिफाफे में बन्द करके लैटर बॉक्स में डाल देते हैं। क्या पत्र आपके मित्र को मिल जायगा? मित्र कहा है, उसका आपको ज्ञान नहीं है तो क्या बिना पते का पत्र मित्र तक पहुँच सकेगा? इसी प्रकार यदि हम में आत्मज्ञान का अभाव है तो अपना लक्ष्य कायम नहीं कर सकेंगे और फिर निर्दिष्ट स्थान पर न पहुँच कर बीच ही में बटक जायेंगे। इसलिए सर्वप्रथम आत्मज्ञान की आवश्यकता है।

आत्मा का स्वरूप ज्ञान है। जन्मा एक अगण्ड द्रव्य है, स्वतन्त्र सत्ताधारी अरूपी चिन्मय द्रव्य है। ज्ञान-शक्ति प्रत्येक आत्मा में अगण्ड रूप से और अपने आप में परिपूर्ण रूप में परिव्याप्त है।

नैन छिन्वन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावन,
न चैन ह्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत।
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽवलेद्योऽक्षोऽप्य एव च।
नित्य सर्वगत स्याणुरचलोऽय सनातन।—गीता

आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है न इसे पानी गला सकता है। न वायु मुखा सकता है। वह आत्मा न कभी कटने वाला है, न कभी जलने वाला, न भाँगे वाला और न सूखने वाला है। वह नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचर, एव सनातन है। इस प्रकार की अनुभूति प्राप्त कर लेना ही तत्त्वज्ञान है। तत्त्व-ज्ञान में अनभिज्ञ साधक की साधना छार का लीपना है। दीपक में तेल भी है, बानी भी है, मगर जलाया नहीं तो क्या उस ज्योतिहीन दीपक में अन्धकार नष्ट हो सकेगा? कदापि नहीं।

जानाभाव में साधक का साधना रूपी शरीर ज्योतिहीन दीपक के समान है। ‘ज्ञान जगत्लोचनम्’ ज्ञान ही ऐसी आल है जो जगत में घटने वाली त्रैकालिक घटनाओं को देख सकता है।

धर्मद्रोही का मन मुर्दा, पापी का मन रोगी, लोभी व स्वार्थी का मन प्रमादशील और जानी का मन स्वस्थ होता है। मलिन दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब प्रतिभाषित नहीं हो सकता, इसी प्रकार काम, क्रोध, मद, लोभ, अज्ञान आदि मल में सने हुए अन्तःकरण में सत्य की अनुभूति नहीं हो सकती। जानी का ही हृदय स्वच्छ रह सकता है और हृदय की स्वच्छता ही सब से बड़ी स्वच्छता है, क्योंकि इस स्वच्छता में परमात्मा प्रतिबिम्बित होता है। अतएव

आत्मा व उत्थान व लिए आत्मान का परम आवश्यकता है। भजनानन्त ने ठीक ही कहा है—जम स्वप्न में बाध गय मिर का दुःख बिना जागे दूर नहीं होना इसी प्रकार सत् ससार का दुःख बिना आत्मप्राप्त हो दूर नहीं होना। आत्मसमय

आत्मोत्थान का तीसरा साधन आत्मसमय है। समय का साधन अथ है आत्मनिष्ठा। प्रवृत्ति में सब कुछ नियमबद्ध है अतएव मानव जीवन को भी नियमित करना चाहिए तभी वह स्वस्थ और चलायमान सत्ता है। अनियमित जीवन में रसाभाविक गतिविधियों की प्रगति नहीं हो सकती। मनस्य ज्ञान अपनी इच्छा को अपने अधिपति में रखता है अर्थात् जब उसका भौतिक जीवन उसके आध्यात्मिक जीवन के नियन्त्रण में रहता है तभी वह स्वास्थान और शक्तिमान् होता है।

सब से अधिकारी व्यक्ति यही है जो अपने को अपने अनुशासन में रखता है। समय सही आत्मबोध, मानसिक, आचारिक वन बढ़ाते हैं। अतएव मित्रता है मनोबल और सामाजिक का दमन होता है और चित्त को पकड़ता बढ़ती है।

समयो हि महामन्त्रस्मात्ता सवत्र रहिम् ।

जम लोक और परलोक में सबत्र प्राणियों का रक्षण करने वाला समय ही है और इमोन्गि वन् महामन्त्र कहलाता है।

आत्मसमय का बिना विवास की कल्पना करना हो निम्न है। विवास का मान प्राप्त हो पर चलने का साधन न हो तो सब व्यर्थ है। आत्मा का दमन करना हो विमुक्ति है इसका समय और आचार कहते हैं। विवास की मान में उत्तरन को मान का ज्ञान में उत्तरन का तभी विवास हो सकेगा। विवास मान और समय का विद्वत् विनयी पवित्र है। सत्ता पवित्रता की जीवन का सज्जन में रमन दो। फिर देखो मुझ क्या व और क्या हो गय। ये तीन रत्न ही आत्मा की आध्यात्मिक विभूति है।

समय का मूल स्वच्छता है और उन तीन प्रकार की है। मन की बाणी की और वम की। मन की स्वच्छता इस प्रकार रहे सकती है—

- १ प्राप न कस्या भ्रान्ति रयना
- २ मान न करना नष्टना रयना।
- ३ वपन न करना सरयना रयना।
- ४ लोभ न करना सत्ताप रयना।
- ५ विगा की नि दा व अवगात न करना।
- ६ विमो का वरा न साधना।

मन की स्वच्छता का अर्थ है—मन में किसी व प्रणि राय द्वय ईर्ष्या और वर विचार न रयना।

बाणी की पवित्रता का अर्थ बाणी का समय अवस्थान है। बाणी की पवित्रता का उपाय है—

१ वारमम २ अण भाषण ३ प्रिय एवं मरय भाषण ४ मधुर भाषण मनु एवं वामन भाषण।

साधन वमनीय है। वह कुछ न कुछ वम करता हो है। पर तु उसका वम में पवित्रता होना चाहिए। और वमन्य की पवित्रता का प्रकार यह सही है—

- १ निधाम भाव प्रवृत्त वम करना।
- २ वम का वम व प्रणि आमनि न रयना।
- ३ मूल विधि-वमन वसत्य पाप्ना।



४. विवेक पूर्वक चिन्ता करना ।

इस प्रकार साम्प्रदायिक कर्तव्य मानने वाले में ही जीवन की उत्पत्ति हो सकती है। साम्प्रदायिक के विषय में कहा जाता है—जो कर्तव्य मानते न उन्हें कोशिश करेंगे ही बनाना ही वह व्यक्ति हम उद्योग के समान है जिस में कुशल के स्थान पर अर्थ की प्राप्ति होगी हुई हो।

साम्प्रदायिक मानव का भूषण है। यह हम की उत्पत्ति का लक्षण है। उनकी सम्पत्ति का प्रमाण है। यह एक ऐसा मूल्य है जिसका सहाय्य लेते ही जीवन की सम्पूर्ण वेदना मानते हो जाती है।

साम्प्रदायिक के परिणाम बहुत नहीं होते। मानव का मानव इतिहास पुकार-पुकार कर कहता है कि साम्प्रदायिक से बड़ी असीमित असीमित असीमित, बुद्ध, ईश्वर, तथा जीवन की असीमित असीमित, पुकार-पुकार कर कहती है हमसे बड़ी। हम प्रकार जिस का जीवन साम्प्रदायिक, साम्प्रदायिक और साम्प्रदायिक से हीन है वह व्यक्ति के समान स्वयं के मान का हेतु स्वयं ही बन जाता है। इसके विपरीत, जो हम सम्प्रदायिक से सम्मान है हममें ईश्वर की असीमित और असीमित असीमित प्रकट हो जाती है।

यथा भगवान् व युग व वर्ष तावत् अस्या विष्णु तावत् करते पर भी परमसिद्धि न पा सके थे मरणपर पर अवसर नहीं हो भगवान् व धर्म जीवानां कर्म मूल स गंगा । तत् पर धर्म कृष्ण म वातव्यस्य तावत् । वा जित्वा माया है जिन्हें विष्णुस्य कर्मादौ उक्त कृष्ण गंगा ये सम्बन्धि विनाशवाहे अर्थात् भगवान् व दाँ । भी यो उल्टी तर पर



रहने वाले। इन तापमो की अनक श्रेणियाँ एवं भेदोपभेद हैं। कुछ तापम शिकाग करते थे और मानाहागी भी थे। कुछ जल पी कर, वायुमेवन कर, केवल कन्दमूल, वृक्ष की छाल, पत्र, मेवाँल, पुष्प अथवा बाँज छावर निर्वाह करते थे। इनके स्नान के भी विविध प्रकार थे। यथा कई बार गोता लगाकर स्नान करने वाले, क्षणमात्र में स्नान कर लेने वाले, मिट्टी घिसकर शरीर माफ करने वाले और बिना स्नान भोजन न करने वाले आदि। कुछ तापम मधुद्रत अथवा वृक्ष के नीचे या जङ्गल में रहने थे।

इसी श्रेणी के एक बहुचर्चित हस्तितापम के रूप में एक हाथी मारकर वर्ष भर उस पर निर्वाह करने की परम्परा थी और मुनि आर्द्रक में हुए धान्धार्य के अनुसार उन्होंने दावा किया था कि वर्ष में अपने लिए केवल एक जीव मारने के कारण वे निर्दोष हैं।

औपपातिक के अनिरुद्ध अन्य धान्धार्य में भी उस युग के कुछ तापमो का उल्लेख ज्ञाया है। जैसे चक्र धारण करने वाले, चण्डी के भक्त, माग्यमत के अनुयायी, दाटी रखने वाले, मिट्टा पर जीवन-निवाह करने वाले, पानी में ही कल्याण मानने वाले तथा मिट्टी में गूँथि करने वाले आदि-आदि।

सूत्रकृतांग में आर्द्रककुमार में विभिन्न घमाचलम्वियों के मिलने का उल्लेख है।

जैन साहित्य के समान बौद्ध साहित्य में भी विविध श्रमण-ब्राह्मणों के तप की चर्चा है, जिनमें उस युग की धार्मिक सकुलता एवं जटिलता का आभास होता है।

अन्धकार से प्रकाश की ओर

ऐसे ममत्र भगवान महावीर ने मानवता को अज्ञान के अन्धकार में हटाकर ज्ञानरूपी प्रकाश की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न किया। अज्ञान-तप का गण्डन करते हुए उन्होंने कहा कि विवेक-विचार के बिना यह निरर्थक है। विवेकरहित तापम इनी कारण योगभ्रष्ट और तपोभ्रष्ट हो जाते थे। उन्हें कुछ मिद्धिया तो प्राप्त हो जानी थी, परन्तु वे परमसत्त्व की प्राप्ति में वचित रहने थे जो तप का चरमलक्ष्य है।

दीर्घकालिक कठोर साधना के १३ वें वर्ष में शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति कर भगवान ने तप के द्वारा परमसत्त्व की प्राप्ति का आदर्श प्रस्तुत किया। इस दौरान उन्होंने ६ मास तक के अनेक तप किये तथा विविध स्थानों पर तप के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए अनेक ऐतिहासिक दृष्टान्त अपने आचरण द्वारा प्रस्तुत किये।

संकल्प

३० वर्ष की अवस्था में भगवान महावीर ने ग्रहत्याग करते हुए संकल्प किया था कि '१२ वर्ष, में जब तक मुझे केवल-ज्ञान न होगा, इस शरीर की सेवा-मुख्यता नहीं करूँगा, देव-मनुष्य या पक्षियों द्वारा आये कण्टों को नम्रभाव से सहन करूँगा तथा मन में किंचित् उद्वेग न आने दूँगा।

इस प्रतिज्ञा के साथ भगवान साधना-पथ पर आसुर हुए। वह सदा ध्यानमग्न रहते और किसी जीव को जरा-सी भी तकलीफ नहीं होने देते थे। साप्ताहिक पदार्थों के प्रति ममत्व से वह परे थे और अपने व पराये का भाव उनमें किंचित् नहीं था। सर्वप्रथम वह एक आश्रम में ठहरे, किन्तु आश्रमवासियों के व्यवहार से ऊँचकर उन्होंने उस स्थान का भी परित्याग करने का निश्चय किया। तब उन्होंने ये ५ प्रश्न किये-अप्रोत्तिकारक स्थान में कभी नहीं रहूँगा, मदा ध्यान में लीन रहूँगा, मीन रखूँगा, हाथ में भोजन करूँगा और गृहस्थों का विनय नहीं करूँगा। अपना प्रथम चातुर्मास भगवान ने १५-१५ दिनों के ८ अर्द्धमास-तप द्वारा व्यतीत किया।

प्रथम और द्वितीय वर्षावाम में भगवान को अनेक यन्त्रणाओं का सामना करना पड़ा, पर वे जरा भी विचलित न हुए। तृतीय चातुर्मास में गोगाला नामक एक समकालीन माधु भगवान की तेजस्विता में प्रभावित होकर इनके पाम शिष्य की तरह रहने लगा। कर्मों का त्याग करने में विलम्ब न हो, इस उद्देश्य में भगवान ने अपरिचित क्षेत्र की

और विहार करना अधिक उपयुक्त समझा व प्राण देग गये जा उस समय जनाय प्रणमिना जाना था। आय गे न आत देखकर जनायों ने उक्त विविध यानत्राण दा विन्त सज कणा का उक्त न स्वस्थकाय मे धनानुवर्त सन्त दिया।

छत्र तानुमाय क पूव भगवान ने जब कूयिय सनवग म वगानी का आर विहार किया ता गागाग म ननक गाय चलन रा इ नार करत हुए म वि आइ न तो मेरी रथा करत है और न आपन साथ गने म मन गुण है। ताव साध कण भी भजना पडता है तथा भाजन का विना उनी रती है। तन्वर गागाग रागम मररा की ओर गया और भगवान बाली का आर।

स्त्री शीव भगवान म अग्य रत्नर गोपाग रा अनेकान कण चलन पड। भगवान का मानन ए ६ मास पचास गागागोप म व पुन उनत आ मिना और उनक साथ रहन गया। गागाग मे भगवान ग भविया मगरी का आर विहार किया और उक्त चानुमाय की कनीन किया। व चानुमायक सप म योगासन द्वारा व निरन्तर आत्मचिन्तन में ही मगन रहते। सन नर उहान मगध भूमि का आर विहार किया जग आभिया गगरी म उहाने मानना चातमास किया। आरवा कपात्राम उनी रागम म किया तथा वही भी तप व शरा आत्मचिन्तन म निमग्न रह और अनेक प्रकार क तप अनुष्ठान किया।

कमक्षय

भगवान म अनुभव किया कि अनेक विपत्त म जमा उनम विपद हैं। उर्ध्व पुत्र अनाप दण म जाने की डानी ताकि वहा कोई परिचित ग मिने और वे कभी क पूण मय म सप हो सव। इस उर्ध्व म व राग देग की मुक्त भूमि म चय गये। उर्ध्व का स्थान न मिन्न ग कारण व वक्ष व नाथ या लण्डर म ही रत्नर साधना म सीन रहते। सन प्रकार घूमत जग उर्ध्वने नवा चानुमायन्य पूण किया। उर्ध्व अनायों स व यत्रपाए सहन पडना कित क्षमाशील भगवान क मन म तनित्र भी आवा चलन न होना। कभी का थप मत दलर उर्ध्व अनेक विपत्त का अन्तम किया और उनको महाकृति का सिमा हार सिन उठा।

६ मास तब अग्य देग म विचरण कर भगवान साय देग म लीन आये। दमवा चानुमाय आपन गारला म और ११वा बगालो म किया। इन वर्षावाम में अनेक प्रकार के तप करने क साथ उहान क योग कियाजा की तिष्ठ भी का।

सनतर कौमन्दा जानर आपने मित्र सम्बन्ध यह कठार अभिप्रह पारण किया कि मित्रा का समय स्थानी होने पर निर वे मुण्डित परा म देही पडन दामीपने को प्राप्त है निन म उपावा हमनी गोर रागी दुर् विनी राजकुमारी से उर्ध्व के शाकुन क रूप म मित्रा मित्र ता छेनाअवधान म मन्त। भयने पचात् चन्ता नामक इतिहासप्रसिद्ध मुवनी जा राजकुमारी म दामी म परिणन हो खरी थी उर्ध्व के शाकुन विवे उन गगन भगवान को प्रसन्नवन्ता निरासाई पडा और उगने भगवान मे यह ज्ञान ग्रहण करने की प्राप्ति की। अपने अभिप्रह म कभी देगवर भगवान लीन ही रने थे कि चन्ता की अग्रा म निरागा व आनू आ गये। अय भगवान ने अपना अभिपू पूण जानकर ६ मास म उर्ध्व साध रूत पर वन्ता के शवा म पारणा किया। यह चन्ता बाला नर म भगवान को प्रेम साधवी बना और पान्थिम का गान्न कर मा का प्राप्त हई।

भगवान ने १३ वा तानुमाय छम्माणिगोव क बाहर उद्यान म दयानाकुर कर दिया।

सप्तम बयलो

सन प्रकार अनेक प्रकार अभिप्रह का निर्वह करते तथा भीषण उदम मग्न करत स भगवान न कराव गाड १२ वयो की अवतरन गन्तव्य म उर्ध्व नि आनन किया और गग निन निन्न उपाय के रूप म भगवान किया।



तब तब या १३ या बर्यं बर रह या ती श्रीमहादेव के दूसरे महीने और चौथे पक्ष में वैशाख शुक्ल के १० वें दिन उज्जुवालुवा नदी के उस तीरे तट पर एक स्थान में मालदेव के तीनों गोदावरी आदि पर ४ घातियों को क्षय हो जाने पर भगवान् की केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हुई। तब अमरा भगवान् उन्हें अर्धपूजनीय ही श्री गण द्वेषविजिता सर्वज्ञ-वैश्वी बन।

उन प्राण भगवान् महामाया की तब-परम्परा शुरू हुई। इसकी प्रविष्टता पर ही तब तब उनके लिए आत्म-व्यक्ति का गायन था, गाय नहीं। उनके तबोत्पत्ति जीवन में अनेक पञ्च के उत्पन्न, प्रिय वरगामन प्रविभिन प्रोत्पत्तिओं के उत्पन्न मित्र हैं, जिनके द्वारा उन्होंने पर बुद्धि पर विविध दृष्टि का दिनाये करने का अन्वय किया था।

कोई भी नायक जब आत्मगोप्यता के लिए उत्पन्न होता है तो इस सीमा के क्षेत्र में आत्मवक्ता की प्रवृत्ति का कामना करना है। छोटे-छोटे सब चिन्तन के द्वारा ऐसी प्रतीति ही जानी है कि मैं उत्पन्न नहीं, अन्तर्गत स्वभाव है तो उनकी पूर्ण अनुभूति का साक्षात् करने और उसे पूर्ण रूप में पा जाने के लिए साक्षात् ज्ञान के द्वारा वैशिष्ट्य ही स्वीकार करना है। परन्तु भूतत्व के उत्पन्न में अन्तर्गत और वह आत्मवक्ता की समीचीन पर लम्बर देवता है तब ही तब-वैश्वामय प्रविष्टता आरम्भ की तब के साथ साक्षात् है, उन्हें वह ज्ञान तब तब के प्रकार द्वारा साक्षात् देना है।

मानागि व्यक्ति प्रायः मानते हैं कि अन्त ही प्राण है—“अन्त ही प्राण”। किन्तु आत्मदेता पुनः अन्त को छोड़ कर आत्मा की उभयता करना है तब अन्त के बिना शरीर की जड़ता आत्मा की अनुभूति हो सके। अन्त, जल, वायु और अग्नि की पराधीनता में मुक्ति भूतत्व में करने हुए ही तब-वैश्वामय की हिमा में विमान होने तथा पुनः जन्म-जन्मान्तरी में अन्तर्गत स्मरणों का क्षय करने के लिए भगवान् महावीर ने तब को सबसे अधिक महत्त्व दिया है।

उत्पादक तब में आत्मव्यक्ति के लिए तब करने का आदेश दिया है। अन्तर्गत तब में उन २० दीर्घतन्त्री महान् आत्माओं की उभयता है जिन्होंने तब के द्वारा आत्ममिष्टि प्राप्त की। ज्ञानाभूत में अमरगति अन्तर्गत की कठोर तपस्या का अर्थ दिया गया है। किन्तु, समय जैन वाङ्मय में तब को आत्मोपलब्धि के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है, अमरकाण्ड आठम्वर जड़ता प्रदर्शन के रूप में नहीं।

तप का नार्वभीम साहाय्य

तब अग्नि, मक्ति और मुक्ति तीनों का केन्द्रबिन्दु है। वह वह अग्नि है, जिसके द्वारा कोई महान् सम्भावना वास्तविक रूप आरम्भ करती है। अन्तर्गत की पराधीनता में तब का वृद्ध होना है और वह तब तब की मोहक है जब उनके द्वारा हम आत्मा के परमत्व को पा सके।

मनोर के सभी धर्मों में तब का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महात्मा जयचामर ने १२ वर्ष तक, ईसा ने १८ वर्ष तक और हजारन मूसा ने भी ४० वर्ष तब तब के साधन में मिष्टि को पाने का प्रयास किया। समूचा छोड़ वाङ्मय तब के आत्माओं में भरा पड़ा है। चीन का ताओ धर्म, ताओ के निम्ने प्रवर्तक थे, कठोर तप का पक्षपाती है। सुमराना में गोजे, यद्विजो में तपोनुष्ठान और वैदिक यम में चान्द्रायण आदि अनेक तब-परम्पराएँ आज भी विद्यमान हैं।

किन्तु भगवान् महावीर यह मानते थे कि जब तब-ज्ञानपूर्वक तब नहीं किया जायेगा, तब तक इनमें वास्तविक लाभ नहीं हो सकता। विवेक और समता में प्रेरित होकर आत्ममिष्टि के लिए निश्चित तब का पालन जिस साधक ने भी किया, उसने परममिष्टि को अवश्य प्राप्त किया है। परन्तु, जब तब तप के पीछे मानासमान की भावना, कर्मकाण्ड का आग्रह और केवल देह का कष्ट देने की आत्मा बनी रहेगी, तब तक उसमें वास्तविक लाभ नहीं हो सकता।

भगवान् महावीर तप के अन्तर्गत जोषक थे। जिस पैनी दृष्टि ने उन्होंने तप का विषय विवेचन किया है, मानवजाति उसमें लाभ उठाये, यही समझना है।

श्री सुरेशमुनि शास्त्री,
साहित्यपरत्न



जगत् म तायन है और जीवन व साथ मरु । मरु जावन व भागे है पात्र है अग-वग है वा । आर है—मया व्याप्त है । और जयन है कि म मरु व माग म वम व म वी मीन मीन मीन ।

[illegible][illegible]

जीना भी एक कला मरना भी एक कला

[illegible][illegible]

ता यह प्रारंभ तथै सूचक प्रकाश की भाँति उज्ज्वल एवं स्पष्ट है कि जब साधक जीवन की अंतिम घण्टा में अथवा किसी घास न सह्योप न अवस्था में झर उतर कर विद्यो विच्छेद भाषा ममता वधन विज्ञान एवं कर्म तात्ता में पथक होकर अपना स्वीकृत साधना आत्म मन्त्रन क प्रसन्न रूप हो जाया है और समस्त पाप नाप सत्ताप, गमय आसक्ति प्रीति स विमुक्त होकर जनान पूर्वक दं इष्टास एव शरीर के मोक्ष ममत्व का परित्याग कर देना है ता साधक जीवन की उस उच्च पुनः उत्पत्ति एवं विशद स्थिति का नाम है समाधि मरण । साधना की उस अन्त मध्य स्थिति में साधक परिवार घर वार जन्म चेतन सभी पदार्थों से आगन्तव्य आह्वयन क ध्यान पूजन विच्छिन्न कर लेता है । आत्मा मन प्राण —अपना समग्र अंगित का उस समत्वसाधना क माध एवनिष्ठ तथा एकरम कर देता है । उसे न ह्य गोक का गाँव रचना है और न ही अगती ज्ञान का प्रत्यामन आरक्षण एवं रक्षा है । मर आर स मिमटकर स तो आत्मा की विना परिणति मरण करता है । विमुक्त चरित्र आत्म भाव में आत्मा के मरण करने का नाम ही तो समाधि मरण का तात्पर्यक भव है —

अप्यास्तु तथारो ह्यहं विमुक्तचरित्तमि ।

यस्तुन उम विमुक्त आत्म स्थिति में साधक समय यात्री ममत्व-योगी ध्यान यात्री बन जाता है और उसके अन्तर्गत से यही ध्वनि निकलती है —

एगोहृत् त्व मे कोऽप्यमस्त कसद !
एवमदीनमनसो अप्याममनुमासद । !
एगो मे सासभो अप्या मागदसजसुभो ।
तेसा मे बाहिरा भावा सधे सजोगनधरणा । !
सजोगमूला ओवेण पत्ता हुबलपरपरा ।
सत्ता सजोगसय स क तिचिण्णोसिरिज ।

—समारणना

—स धन अपना आत्मा का दाता है कि प्र अग्राह्य मर को नहीं है और मैं भी किसी दूसरे का नहीं हूँ ।

जान दान चरित्र में सम्पन्न मर आत्मा की गति है सत्य सत्यन है आत्मा के अतिरिक्त अन्य सब पदार्थ संयोगमात्र से मिले हैं ।

और जीवात्मा ने आज तक जाना कि भाग्य भाग्य क सब इन पदार्थों के संयोग व वारण ही भोग हैं । अतः मैं ही सत्य सम्पन्न का मन बनने न स परित्याग करता हूँ ।

समाधि मरण का मूल दृष्टि बिन्दु

श्रद्धा के आ उपस्थित होन से पूर्व ही अपनी स्वतन्त्र आत्मा से अज्ञान अवस्था में सगार का त्याग परित्याग करने के लिए उद्यत हो जाना वस्तुतः आत्म गीत का अक्षर है । या तो त्याग और निवृत्ति जीवन में अवश्यम्भावी है । हम त्याग नहीं करने तो श्रद्धा हमसे छड़ा दगी ! हम क्या स नही हूँगे श्रद्धा हम धक्का मार कर वरे कर दगी ! मसार में ऐसा होना भाया है क्या हो रहा है क्या होता रह रहा है । किसी सराय पराय घर का सय छोड़ देने और जान पाउकर जागो जाने में क्या अन्तर न है ? परिणाम एक ही है—पर घर का त्याग सराय का छोड़ना । किन्तु इस परिणाम का अन्तर्दृष्टि का परिच्छेद-प्रच्छेद विचार परम्परा न जितना साधक मगनकारा आत्म विज्ञान एवं सुप्रसन्न बना लिया है—समाधि मरण की अवस्था साधना के द्वारा ?

और भी स्पष्ट भाषा में साहसापूर्वक साधक जानना चाहता है कि जीवन में कूच का डका मर्कट न घबराही है तो हम पचास-पाँच अथवा सत्तर अंशों तक जीवन में स्वयं बोरी जिम्मेदार बंधन में ही उद्यत रहें तयारी



करें अथवा तब तक बैठे रहें जब तक कोई हमें पसीटकर जाने फेंक न दे ? यह एक विनाशनीय प्रश्न मिला है, मानव-जीवन के चौराहे पर धीर महत्त्व सुझा होकर माग रहा है अपना नमुनिच समाधान । जो व्यक्ति उस प्रतीक्षा में बैठा रहता है कि, कोई आकर उसे बाहर धाका देकर निकाले, वह पक्के पिरे का टीठ टांगा, दुर्गमनीहागा, गटिपल हागा हुरदर्शी अथवा बुद्धिमान् तो वह कदापि नहीं होगा मानव में ।

समाधि-मरण, का समय, तप, त्याग, ता रूप देने वाले जैन-मार्ग के अविच्छिन्न विषयको ने उन तथ्य की हृदयगम तथा स्वीकार कर लिया था कि—यहाँ ने चरता तो है—आम नहीं तो तब और कल नहीं तो परतो ! जब चलना ही है, जब ठूँस की भेरी प्रजनी ही है, तब यह रहा ही बुद्धिपण्य तथा लोभन है कि, पीछे न होना ता हण्टर ही लगे, तब चले — स्वयं अपन-थाप हिजने, उठने, चरने ता गाग हा न जें ।

समाधि-मरण की स्थिति विवश होकर समाधि का स्थान परित्याग करना नहीं, प्रत्युत : जान जगता में आन-रिक पमन्न एव स्वतन्त्र उच्छा ने, जीवन का पिरो निवृत्ताम आया मानकर, समार की अमरिनि, शारीरिनि ममता, पारिवारिक मोह तथा सुप्त-भोग के जाल-जन्जाल की जड़ तो मदा मर्दा के दिग काट देता है । यह अवनीन होकर समार ने पलायन करना नहीं, प्रत्युत दृढ़ ग्राह्य, आत्म-जीव तथा स्वतन्त्र उच्छा-पूर्वक चिन्तनी की मज्जि पर चरना है, मुक्ति-पथ का यह एक स्वतन्त्र अभिमान है । पड़ाव तो घर बनाकर बैठे रहना नहीं, प्रत्युत एक पड़ाव में हमने पड़ाव को चलने के लिए प्रमन्न-भाव में पटिवद्ध होना है । जो चीज हानी ही है वह यदि हानि स्वतन्त्र उच्छा में हो, उसमें कितना आनन्द तथा उत्साह है ? जब समार उटना ही है, ना वह हमारी आनन्दिनि उच्छा में ही उताव छूटे ? यदि लाख प्रयाग करने पर कोई उस नियन्त्रण पर जमा रहता, तब ना हमने चिपटे रहने का विचार हीक भी था । किन्तु, जब यह अमम्भव—नितान्न अमम्भव है तब यही न यह कार्य स्वयं आनन्दशतक निमित्त में किया जाए । तप, चयम, शान्ति तथा समाधि के परम लाभ ने फिर वचन द्यो रहा जाए ? समाधि-मरण ही उच्च उज्ज्वल परम्परा की पृष्ठ भूमि ने यही जीवन का नयोरि दृष्टिगिन्तु अन्तर्निहित है ।

एव नाणेण चरणेण, दमणेण तपेण य ।

भावणाहि य मुद्धाहि, सम्म भावेत्तु अण्णय ॥

बहुयाणि उ वासाणि, सामण्णमणुपातिपा ।

मासिएण उ भत्तेण, सिद्धि पत्तो अणुत्तर ।

—उत्तरा०, १९।६४-६५

और, समाधि-मरण की यह उच्च स्थिति नात्कालिक एव आन्तरिक नहीं है और न यह स्थिति एतदम अधिगत की ही जा सकती है । माधक का यह दृष्टिबिन्दु नाग्रना के उपाकाल में ही प्रारम्भ हो जाता है । और साधना की परिपक्वता के माय-माय यह मनोभाव हृदय की भाव-भूमि में गहरी जड़ पकड़ता जाता है । समाधि-मरण वस्तुतः माधक के अन्तर्मन की चिर-पोषित साध की मगल-पूति अथवा पूर्णाहुति है । जीवन-पर्यन्त नाय-प्राप्त-भक्ति-भाव तथा अध्यात्म-रस में भाव-विभोर होकर प्रभु-चरणों में वह यही तो भावना-उद्भावना करता रहा है—हे त्रिलोक बन्धु जिन देव, आपकी चरण-शरण में मेरे दुःखों का क्षय, कर्मों का क्षय, समाधि-मरण तथा बोधि की प्राप्ति हो —

“दुक्खखञ्जो कम्मसओ, समाहिनरण च बोहिलाहो य ।

मम होउ तिजगवधव तव जिणवर चरणमरणेण ॥

समाधि-मरण-मृत्यु को एक महान् चुनौती

जैन-संस्कृति की मौलिक विचारपरम्परा के अनुसार “समाधि-मरण” एक जीवित-जागृत जीवन का अमर प्रतीक है । वास्तव में, साधक की जाग्रत अन्तरात्मा की मृत्यु को यह एक चुनौती है—निर्भीक ललकार है । मृत्यु

कुछ विचारकों को माननामय जीवन के प्रतीक स्वरूप इस समाधिमरण की भावना में ही आत्महत्या की वृत्ति आती है। उनकी दृष्टि में यह शरीर के प्रति अन्धग्राह्य प्रलाटकार है, आत्म-शीघ्रता तथा आत्महत्या है। हिन्दु गुरुदेवों में विचार करने पर उनका यह विचार निम्नान्न भ्रामक एवं अनाधिक ही प्रतीत होगा। जैनमन्त्रिकों के महान् उन्नायकों की तो यह स्पष्ट घोषणा है कि आत्महत्या महापाप है, एक अविचारपूर्ण एवं अव्यर्थ कर्म है। परहत्या की भाँति आत्महत्या भी कोरा अधर्म है, नरक की राह है। अत्महत्या करना जीवन में पराजय करना है, नाशना है। आत्मघाती कोरी भावनाओं के लोक में मचरण करना है। वह जीवन के यथार्थ की ओर मुली जाओ में नहीं

देखता । साधारण तो न जीवने का जाहाना करता है और न मरने का कामना करता ^१ । यह जीवन और मरण दोनों में ही कामवन्ति तथा रहता —

जीविय ना भणसे जा मरण नो वि पयए ।

કુટુંબો યિ ન સન્ને-જા જીવિએ મરણે તહા ॥

—आचार्य १।८।८।८

भग्य जीवन मरण व प्रवि निम सगृहीत वी य प्रपन्त प्रशन्न भव नि प छाया री है । वृत्त भा घमरन
म माधवम म जातम म्त्वा व विवान वम व सौम्य है । समाधिमरण व म्त्वायमि म जातम धान व व । रा न
मी मो म गोवर । हाता । निम यन्ति न गोवन म का बग्य ज रा विना । बग्य दार निम । दूम ।
वा घान विवा हो जित्तो प्रवि न तथा यन्तिव पर बाहुदाम घात उम यथा । मन्त्राभासाभाप्य मृगयान हा
ने कारण जो जावन म पूज्य निम । माग हा यथा हा वह आय हत्या रर वृत्त । निमिय म्त्वा व नि
त्यन परिणी तथा निम म्त्वा यन्ति भी आत्म धान व वग्य रर वृत्त जाव । गम स्व ना वा ज्ञानम
वागना री मुनि म हाप तथा म्त्वा व भार व न द्वा मवन व वग्य री मनुष्य जम । वा व वर आ
पडा हाता है । उनका मानसिक व ना इतनी तात्पर्य हमी है कि उनम मा व वा संभ म्त्वा वी मान नी
वना ।

[illegible]

सं ढाक ि कि समीप मरण म वापस वा उठना ता अर्थ ता है । गरीब कर्ता ता प्रन
 धाव हो प्रनाता ता हे उ म । रि न व क भी जाता वा रेट मि न वाया जावा क मृष्टम वाता -
 हृदि म म वापसया है

* दुष्यन्तस्य विभक्तिः ।

— ६१३५११११ ८

[illegible]

संजगत्कु योगो षड्वज्रमाणो 'पदोत्तम हा' ।

सह आरोग्यानि मस्त महश्चेदो व दिगम्भ ॥

—यद् वा २५७

[illegible]



मरणपडियारमूआ एसा, एव च ण मरणणिमित्ता ।

जह गडच्छेअकिरिआ, णो आयविराहणात्वा ॥

—६० औ० चि० ख० १

अब फिर, “समाधि-मरण” की साधना में अन्तर्लौन साधक तथा आत्मवाती विराधक की जीवन-पारा, भावना, दृष्टि तथा लक्ष्यबिन्दु में तो आकाश-पाताल का-मा अन्तर होता है । “समाधिमरण” की वेला में साधना की अध्यात्म-दृष्टि तथा अन्तर्भावना इनकी निर्मल एव विशुद्ध होनी है कि त्याग-तप एव विशुद्ध आत्म-परिणति के द्वारा वहा साधक की आत्मा का मैल कटता-उटता है, अन्तर्जीवन प्रति-क्षण उज्ज्वल निर्मल होने लगता है, डधर-डधर के ममस्त विकल्पो तथा ममन्त सम्बन्ध-वन्धनो में विमुक्त होता है । गहरी आत्म-समाधि की भाषा में साधक मोचता है—मैं विनुद्ध स्वत्प ही हूँ । मेप अन्य पर है, पराये हूँ । यह विशुद्ध आत्म निष्ठा मोह की जटिल ग्रन्थि को खोलनी चलती है । सच्चुच उम स्थिति में साधक जगेर, उपधि, समार, वैभव-ऐश्वर्य में पूर्णतः निर्मोह हो गया होता है । अतः “समाधिमरण” विनुद्ध आत्म-योग है, विशुद्ध-मयम-योग है, सर्वथा शुद्ध ध्यान-योग है—वीतराग परिणति की पराकाष्ठा है यह ।

उमके विपरीत, आत्म-हत्या करने वाले व्यक्ति की मन-स्थिति परिस्थिति गहरे-घने मोह की होती है । आर्त एव शैत्र परिणति के कारण वह क्रूरकर्मों का वन्धन अपने ऊपर डाल लेता है । वहा तो जीवन की, समार की, एवान्त आमन्ति ही आमन्ति है । समाधिमरण में आत्म-स्वरूप का दिव्य प्रकाश है, तो आत्म-हत्या में मोह-ममता का गहन अन्धकार है । समाधिमरण आत्म-जीवन है, मद्गति का कारण है, तो आत्मघात जीवन का विनाश है, सद्वृत्तियों का पूर्णतः हानि है, दुर्गति का विधायक है । समाधिमरण आत्म-जीवन है, तो आत्महत्या आत्म-पीटन है । समाधिमरण अमृत है तो आत्महत्या हलाहल विष है । समाधिमरण अपने बल, वीर्य, वृत्ति तथा पुरुषार्थ का मोक्ष-अभियान के लिए अधिक में अधिक सदुपयोग है, तो आत्महत्या जीवन की समस्त शक्तियों का एक माय दुरुपयोग है ।

समाधि-मरण साधनामय जीवन का एक सफल परीक्षण

सक्षेप में, ‘समाधिमरण’ धर्म-प्राण साधक के जीवन का एक सफल परीक्षण है । साधक-निह की यह अपनी देह पर विजय है, इन्द्रियों पर विजय है, मन पर विजय है, आसक्तिमूलक ममस्त विकार-वामनाओं पर विजय है । आत्मा पर विजय है, इस लोक पर विजय है, परलोक पर विजय है । साधनामय जीवन का यह एक वीरतापूर्ण मुक्ति-अभियान है । साधक की दृष्टि में यह मृत्यु नहीं मृत्यु के प्रति एक विजय-अभियान है, एक नए जीवन का आह्वान है । मृत्यु को भी जीवन के रूप में परिवर्तित करने की एक धर्म-यात्रा है । यात्री की भाषा में यह तो साधक के लिए मौत में भी जिन्दगी का पैगाम है । भाव विभोर होकर साधक का रोम-रोम गा उठता है —

“मृदारक जिन्दगी के वास्ते दुनिया को भर मिटना ।

हमें तो मौत में भी जिन्दगी मालूम देती है ॥

मौत जिसको कह रहे वो जिन्दगी का नाम है ।

मौत से डरना-डराना कायरो का काम है ॥





विभिन्नता दृष्टिगात्र होनी है अतः यह मानना कि किसी बुद्धियुक्त नर ने पञ्च महाभूतों को उत्पन्न करके इस विभिन्नता में युक्त नमर को उत्पन्न किया, नीतिशास्त्र की दृष्टि में विन्कुल निरर्थक है।^१ यदि यह कहा जाए कि आत्मा तो उदामीन है, अतः इस नमर की विभिन्नता में आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं, तो इस प्रकार के कल्पनाजन्य सिद्धान्तों में नैतिक सिद्धान्तों का मूल्य ही क्या रह जाता है ?^२ उदाहरणार्थ — प्रश्न है कि एक मनुष्य उत्तम कर्म क्यों करे ? उत्तर है पुण्य के लिए । पुण्य का प्रयोजन ही मनुष्य को उत्तम कर्म करने के लिए प्रेरित करना है । फिर प्रश्न उठता है कि पुण्य का प्रयोजन क्या है ? उत्तर मिलता है — सुख की प्राप्ति । सुख की प्राप्ति के लिए पुण्य के मन्त्राय मनुष्य उत्तम कर्म करने की तरफ प्रेरित होता है । पर यदि आत्मा का सुख या दुःख में कोई प्रयोजन ही न हो अथवा कहा जाये कि सुख दुःख दोनों में वह उदामीन है तो दुःखों में मुक्त होने का वह प्रयत्न ही क्यों करे और उस अवस्था में वह पुण्य मन्त्र के लिए उत्तम कर्मों की तरफ प्रेरित ही क्यों हो ? और तब नैतिक सिद्धान्तों का मूल्य ही क्या रह जाएगा ?

नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों पर दूसरा आक्रमण जिसने किया है, वह है भाग्यवाद । प्रश्न उठता है कि यदि यह नमर परमात्मा ने बनाया है तो वह इतना पक्षपाती क्यों है कि एक आदमी तो सुखों में लोट रहा है जब कि दूसरा जिन्दगी भर दुःखों का बोझ लादे त्रैन-केन प्रकारेण जी रहा है । इसका उत्तर भाग्यवादी देते हैं कि यह तो अपना अपना भाग्य है । पर इस भाग्यवाद में नैतिक सिद्धान्त बेकार हो जाते हैं । यदि भाग्य ही मनुष्य के सुख-दुःखों का निर्णायक है, तो मनुष्य कर्मों को करने का प्रयत्न क्यों करे ? यदि भाग्य में होगा, तो बिना कर्म किए ही सुख मिल जाएगा । भाग्य में नहीं होगा, तो हजार प्रयत्नों के बावजूद भी वह सुख मिलने वाला नहीं है, तो फिर मनुष्यों के प्रयत्नों की नैतिक दृष्टि कीमत ही क्या रही ?^३ पर नीतिशास्त्र में कर्मों का बड़ा भारी महत्व है । नीतिशास्त्र के अनुसार कोई भी मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर अपने को बना या बिगाड़ सकता है ।^४ इस विषय में डॉ० राधाकृष्णन् के विचार मननीय हैं—

The fatalist Theory (भाग्यवादी सिद्धान्त) that all things are fixed by nature, obviously leaves no room for individual effort. Ethical values require that the individual can make or unmake himself in the world and the soul has a self identity which it preserves even in the ultimate condition.^५

जैननीतिशास्त्र कर्मवादी है, भाग्यवादी नहीं । उसके अनुसार कोई भी मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर 'अहंत्' बन सकता है । मनुष्य के अन्दर योग्यता रहती है, ज्ञान रहता है, पर वह अज्ञान में डका रहता है, यही दुःखों का कारण है । अतः यदि इन दुःखों से कोई मुक्ति पाना चाहे तो उसे चाहिए कि वह प्रथम अपनी आत्मशक्ति में इन सामानिक विषयों पर विजय प्राप्त करे । जब आत्मा अपने को गिराने वाले दुर्गुणों में ऊपर उठ जाती है, तब वह उस स्थान पर पहुँच जाती है कि जहाँ मुक्तात्माएँ रहती हैं । मनुष्य की अन्तरात्मा को उत्तम मार्ग में प्रेरित करना ही मुक्ति का एकमात्र उपाय है । ये कर्म ही हैं जो मनुष्यों को उन्नत अथवा अवन्न करते हैं ।

कर्म सिद्धान्त

जैनशास्त्रों में कर्म-सिद्धान्त पर बड़े विस्तार से विवेचना की गई है । जीव अपने कर्मों के गुणदोष के आधार पर ही देव, नारक, मनुष्य या जानवर बनता है । जब मनुष्य के पिछले कर्मों का विनाश हो जाता है और

१ सूत्रकृतम्—१।१।१।७-१०, ११-१२, २।१।१६।१७

२ उपर्युक्त—१।१।१।१३

३ उपर्युक्त—१।१।२।१-५

४ उपर्युक्त—१।१।३।११

५ Indian Philosophy, I Vol P. 312



यदि चाहे तो मनिजान, बुद्धिजान, अर्थविजान, मन परीखजान और कालजान इन पांच प्रकार के मन्त्रजानों की मन्त्रावना से आन्तरिक तर्कों का निरोध कर सकता है और इन प्रकार के तर्कों से उद्विग्न चित्तों का अस्थिरता दूर करता है। श्री उमास्वामि का "मन्त्राङ्गमूत्र" में इन पांच प्रकार के ज्ञानों की विशेषता स्पष्ट करने की गई है।

यदि मनुष्य इन नामांशित दुष्टों में कुछ ज्ञान प्राप्त करता है, तो उसे चार्मिक किंवा "चित्रित" का आवरण करे। वे "चित्रित" के हैं—

- (१) सत्य तत्त्व में विद्वान्
- (२) सत्य का ज्ञान
- (३) शुद्ध चरित्र

उनो "चित्रित" को 'पञ्चान्विता' के स्वभाविक न्यायमार्ग, मन्त्रजान और मन्त्रवर्णन से मन्त्रों में प्रयत्न किया है। "पञ्चान्वित" तत्त्व की मन्त्रावना से अन्तरात्मिक ज्ञान प्राप्त होता है। चार्मिक प्रकृति का मनोवशील ज्ञान ही मन्त्रजान है और नापारिक विषयों की ओर से उदासीन होकर भेषावली में रहित होता ही मन्त्रवर्णन है।" वे तीनों चित्रित कर एक ही मार्ग को प्रकाशित करने हैं।

छान्दोग्योपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—“भूमा र्धं भुवः तान्मे भूममस्मि।” नामांशित दुष्टों में दुष्टा करारकर भूमा भुवः या स्वप्न ज्ञान का प्राप्ति करना ही उमनों का मुख्य उद्देश्य है। यही उद्देश्य ही ज्ञानियों के सामने भी था। पर इस दर्शन की विशेषता यह है कि ज्ञान अन्य दर्शनों के अन्तर्भावान्तर पर ज्यादा जोर दिया, वही जैनदर्शन में नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों पर ही उनका ही बल दिया है। जैनदर्शनित इस बात में अच्छी तरह परिचित थे कि निश्चयम् का लाभ मनुष्य के अन्तर्मुख पर ही निरूपित है। मन्त्र दर्शनों में यह स्पष्ट जा सकता है कि वह मनुष्य, जिसका इहलोक विषय दुष्टा है, निर्वाण का अधिपति नहीं हो पाता। और यह बात मदानार और मन्त्र-व्यवहार से ही सुवर सकता है। उनो कारण दर्शनों और ज्ञानियों ने आचारशास्त्र पर ज्यादा जोर दिया।

पांच महाव्रत

जैनदर्शन के अनुसार पांच महाव्रतों का चिन्ता ही मन्त्र नीतिशास्त्र का मूलधार है। वे पांच महाव्रत इस प्रकार हैं—

(१) अहिंसा—यह अहिंसा न हिंसा के रूप में केवल निरोधवात्मक ही नहीं है, उमदा एक विधेयात्मक रूप भी है और वह है—“नव प्राणियो के प्रति दया करना।”

- (२) सत्याचरण—कायेन, मनसा और वाचा कभी भी असत्याचरण न करना।
- (३) सम्मान्य व्यवहार—कभी चोरी न करना, दूसरों को कष्ट न देना आदि।
- (४) वाणी, विचार और कर्मों में अव्यभिचारिता।
- (५) ममता, मूर्च्छा, आमिष का परित्याग।

इन्हीं पांच महाव्रतों को योगदर्शन में पांच यम के नाम से कहा गया है—“तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यपरिग्रहा यमाः।” इस प्रकार मानसिक शान्ति प्राप्त कराने वाले सभी कर्म जैनदर्शन के अनुसार विधेय हैं।

जैनगम के अनुसार हिंसा सबसे बड़ा पाप है और नव प्राणियों के प्रति दयाभाव ही सबसे बड़ा पुण्य है। सबके प्रति दया करना ही परमात्मा की सच्ची भक्ति है। अश्वेज कवि कालेरिज के शब्दों में—

He prayeth well, who loveth well
Both man, bird and beast

He prayeth best who loveth best
All things, both great and small
(Coleridge)

जनधर्म का नीतिशास्त्र बौद्धधर्म का अथवा जैनधर्म का नहीं है। जनशासनिक व अनुसार मान्य ही सर्वोत्तम नियम (highest good) है और मनुष्य को प्राप्त होना चाहिये।^१ मनुष्य मनुष्य को प्राप्त करने के लिए और दुष्ट को दूर करने के लिए। वह वास्तविकताओं पर नियंत्रण रखता है और उनमें स्वतंत्र रहता है। जो मनुष्य वास्तविकताओं को अनिष्ट मानता है वह मनुष्य और दुष्ट का अनुभव करता है और अपनी आत्मा पर अपना अधिकार गंवा बैठता है। उस पर कामनाओं या लक्षणाओं का प्रभाव पड़ता है और वास्तविकता ही उसका अन्तिम व निश्चय बन जाती है।^२ मनुष्य मनुष्य को प्राप्त करने के लिए वास्तविकताओं पर नियंत्रण रखता है।

जनशासन या धर्म व्यवस्था के लिए वह अपने धर्म व प्रति हस्तगत नहीं है। वह पण्डित या कर्मियों के अनुसार व उनके द्वारा ही निर्वाण व अज्ञान को प्राप्त करता है। इसका विवरण यह बताया है कि जिसने भी पण्डित या अनुयायी नीतिशास्त्र या आचारशास्त्र का नियम या मन्त्र वाच्य करके निर्वाण का अधिकारी बन जाता है। अपने धर्म सम्प्रदाय के माध्यम से वह निर्वाण प्राप्त करता है— यही ही वह वास्तविकता है जिसमें वह जीवित है। या जिसमें भी धर्म का अनुयायी जो अपना आत्मा का शासन करता है सब प्राणियों को अपने समान समझता है वह निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

जमीन प्रकार जनधर्म पण्डितव्यवस्था का विरोध नहीं है। परन्तु पर भी वह वास्तविकता नीतिशास्त्र ही है। मनुष्य अपना ही कर्मों से प्राप्त करके धर्म का अनुयायी बनता है जो कर्मों को अनिमित्तमान ही करता है। उस ही हम वास्तविकता हैं।^३ जन परिभाषा का अनुसार वास्तविकता ही सम्प्रदाय वास्तविकता है जो एक उदात्त धर्म करनेवाले वास्तविकता को भी ही वास्तविकता है।^४ वास्तविकता वास्तविकता ही है। (मनुष्यव्यवस्था)

इस प्रकार जनशासन म नीतिशास्त्र वास्तविकता ही है और जनशासनिक न ही जन शासन का आधार माना है।

१ साधारण मनु २२ पृ ४८

२ वास्तविकता पृ १६३

३ Sacred Book of the East XIV P 140

४ Ibid XXII P XXX



जैनागमों के तीन प्रेरक प्रसंग

मुनिश्री चन्दनमलजी,
साहित्य-निकाय व्यवस्थापक



किसी भी नगर में प्रवेश पाने के जैसे पूर्व आदि दिशाओं में चार मुख्य दरवाजे रखे जाते हैं, वैसे ही द्वादशांगी रूप जिन-वाणी का आह्वान करने के लिये द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग गणितानुयोग, ग्रीर धर्मकथानुयोग, ये चार सिंहद्वार माने गये हैं। इन अनुयोगों का यथार्थ मनन करने में ही आर्हतीज्ञान-गगाहृदयागण में प्रवाहित हो सकती है। यह तो सर्वविदित है ही कि जैनागमों का निरूपण केवल अध्यात्म-तत्त्व की हृदयगम करने के लिये ही हुआ है। यहाँ धर्म को उल्लेख मगल माना है। अहिंसा को "मर्वभूत-क्षेमकरी" कह कर पुकारा है, मत्स्य को "भगवान्" शब्द में सम्बोधा है और ब्रह्मचर्य को "व्रतराज" कहकर सम्मानित किया है। प्रकाशपुञ्जमयी इन दिव्यवाणी के चारों तरफ वैराग्य की किरणें फूटती हैं। अनामकिन की रेखाये अन्ति हुई हैं और सहज शान्ति का प्रसार हुआ है, यहाँ मिलते भोगों को न चाहने वाले को त्यागी कहा गया है, मायी को 'मित्रादृष्टि' व अमायी को 'सम्यग्दृष्टि' की सज्ञा दी गई है। भोगों को 'अनर्थों की खान' तथा लोभ को 'मर्वविनाशक' कहा गया है।

अहाँ ! क्षीर-समुद्र का पानी कहीं से भी, ऊँची भी पीकर देखिये, वह तो प्रतिक्षण अनुपम मधुरिमा को लिये हुए ही है। आगमों के कुछ एक स्थल तो इतने मार्मिक और अनूठे हैं कि उनकी गरिमा का अन्दाज लगाना भी कठिन-सा प्रतीत होता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१)

भगवान् महावीर के दम एकावतारी श्रमणोपासकों में आनन्द गाथापति को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है। कोट्यधीश होते हुए भी उसने असाधारण धर्म-साधना की। वह कृशकाय होकर पोषकशाला में अन्तिम मारणात्मिक-सलेखना में सलग्न था तब उसने क्षयोपगम की विशेष उज्ज्वलता में विशिष्ट अवधिज्ञान प्राप्त किया। उसके द्वारा वह पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में, लवण समुद्र को पाँच मी योजन तक, उत्तर में लघुहिमवन्त वर्षधर पर्वत तक, उर्ध्व-लोक में सौधर्म देवलोक तक और अधोलोक में रत्नप्रभा पृथ्वी के चौरासी हजार वर्ष की स्थितिवाले "न्योलुयच्छुय" नामक नरकावास को जानता-देखता था।

इधर भगवान् महावीर वहाँ पधारे और उनके ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) छट्ठ भवन के पारणों में भिक्षा के लिये 'वाणिज' गाम में पधारे। माधुकरी लेकर जब वापिस आ रहे थे तब बहुत से लोगों के मुँह में आपने आनन्द की मारणात्मिक सलेखना की बात सुनी। कृपासागर गौतम ने उसे दर्शन देने की कृपा की। भगवान् गौतम को आते देखकर आनन्द अत्यन्त आनन्दित हुआ। वन्दन-नमस्कार करता हुआ कहने लगा—मन्ते ! मैं उदार तप के द्वारा कृण एव चलने-फिरने में अशक्त हूँ। यदि आप मेरे नमीप पधारने की कृपा करें तो मैं आपके चरणकमलों का मस्तक द्वारा अभिनन्दन कर सकूँ। गौतम स्वामी समीप गये। आनन्द ने सविधि वन्दना की और पूछा—गृहस्थाश्रम में रहते हुए क्या गृहस्थ को अवधिज्ञान प्राप्त हो सकता है ?

गौतम—हाँ ! हो सकता है।



हम विवेक भी जानते हैं और आर्य ! उसका अर्थ भी जानते हैं । आर्य ! हम व्युत्पन्न भी जानते हैं और आर्य ! उसका अर्थ भी जानते हैं ।

कालास्यवैशिक पुत्र अनगर ने कहा—यदि आर्य ! आप सामायिक और उसका अर्थ जानते हैं तो कहिये मामायिक क्या है और उसका अर्थ क्या है ?

म्यविरो ने कहा—आर्य ! हमारी आत्मा मामायिक है और हमारी आत्मा सामायिक का अर्थ है । आर्य ! हमारी आत्मा प्रत्याख्यान है और हमारी आत्मा प्रत्याख्यान का अर्थ है । आर्य ! हमारी आत्मा मयम है और हमारी आत्मा मयम का अर्थ है । आर्य ! हमारी आत्मा मवर है और हमारी आत्मा मवर का अर्थ है । आर्य ! हमारी आत्मा विवेक है और हमारी आत्मा विवेक का अर्थ है । आर्य ! हमारी आत्मा व्युत्पन्न है और हमारी आत्मा व्युत्पन्न का अर्थ है । इन प्रश्नोत्तरों की एक निष्पत्ति हुई । कालास्यवैशिक पुत्र मुनि म्यविरो के पास चार्तुयामिक धर्म की परम्परा में पञ्चयामिक धर्मपरम्परा में प्रविष्ट हो गये ।

प्रश्नकर्ता कालास्यवैशिक पुत्र मुनि—इतर सम्प्रदाय के थे । वे बड़े आवेग के साथ प्रश्न पूछने आये और स्वविर ! आप यह नहीं जानते, यह नहीं जानते, यह नहीं जानते, इन वाद्यों की भंडी लगादी और बारह प्रश्न पूछ डाले । लेकिन गम्भीर ज्ञानी भगवान् म्यविरो ने बड़ी शान्ति के साथ मामिक समाधान दिया और 'आर्य' ! ऐसा श्रुत सम्बोधन किया कि प्रश्न पूछने वाला पानी-पानी हो गया और अन्त में उसका साथी बन गया ।

उपर्युक्त वर्णन क्या जैन मुनियों को चुनौती नहीं दे रहा है ? क्या हम दूसरों के कुटिल आक्षेपों को शान्ति से समाहित करना सीखेंगे ? अहा ! उत्तर भी कितने मामिक हैं जिनमें सब कुछ आत्मा में ही अन्तर्हित कर दिया है फिर झगडा रह ही कहा जाता है ।^१

(३)

भगवान् महावीर 'कृतज्ञला' नगरी में विराजमान थे । उस नगरी के समीप ही श्रावस्ती नगरी थी । वहाँ गदमालि का गिण्य कात्यायन गोत्री स्कन्धक परिव्राजक वसता था । वह इतिहास निघट्ट सहित सागोपाग चार वेदों का ज्ञाता था ।

उसी श्रावस्ती में वैशालिक श्रावक पिगल नामक निर्ग्रन्थ विहार कर रहा था । उसने एक दिन स्कन्धक परिव्राजक के पास जाकर पूछा—मागध ।

- १ लोक स-अन्त है या अनन्त ?
- २ जीव स-अन्त है या अनन्त ?
- ३ सिद्धि स-अन्त है या अनन्त ?
- ४ सिद्ध स-अन्त है या अनन्त ?
- ५ किस मरण से मरता हुआ जीव मसार को बढ़ाता है और किस मरण में घटाता है ?

इन प्रश्नों को सुनकर स्कन्धक शकिन हुआ । उनका समाधान करने में अपने आपको असमर्थ पाता वह मौन रहा । पिगल ने फिर दूसरी-तीसरी बार पूछा लेकिन वह वैसे ही मौन रहा ।

इधर श्रावस्ती के बहुत लोग भगवान् महावीर के दर्शनार्थ जा रहे हैं । स्कन्धक ने भी भगवान् का कृतज्ञला में आगमन जानकर उन प्रश्नों के समाधान के लिये वहाँ जाने का निश्चय किया । वह त्रिदण्ड आदि वेश-भूषा सहित वहाँ से चल पड़ा । और कृतज्ञला नगरी के छत्रपलाम उद्यान के पास आ पहुँचा ।

इधर भगवान् महावीर ने गौतम से कहा—गौतम, आज तू अपने पूर्वभव के मित्र स्कन्धक को देखेगा ।

गोत्रम ? कहा—मने ? कय कने और नितनी नर म लूया ? भगवान न मय दिखल वण मनुने न कय वि व बहुत नऊनर ध्या युवा है तू उने आज हो धया । फिर गोत्रम ? पूछा—न न । क्या न छापर पास भावु उ ने म भा समय हाया ?

भगवान न कहा—न । ऐसा हुआ ।

इतने म स्वधर वहा आता नया जि आई निया । भगवान गोत्रमहाधर वर ममीय आत नखर नरता न खे हए गाध सामा गये और उमर पास आकर बहुत रणे—

स्वधर ! स्वधर है ।

स्वधर ! स्वधर है ।

स्वधर ! स्वधर है ।

स्वधर ! स्वधर है ।

हा धर ! तुमने दिगल निय न न—लोह र अत है या अनन ? नीव स इन है या अनन ? मिद्धि स अन है या अनन ? सिद्ध स अन है या अनन ? निध मरण म चरता नया नीव ससार रान नाना है और निध मरण मे घटाता है ? य प्र न पूछे ।

स्वधर—हा म ते ! पूछे ।

फिर व दानो भगवान महावीर न पास चले गये ।

अनमान धागवरण मय विचित्र ता नगन बाला प्रमाण वनी नितन सामग्री प्र लुन करता है । वन्नी बान स्वधर परिधान व न मुनि न । या अन भाषा म सम्पूर्ण नि न । या उग निधनि म उमर सामन नारर गोत्रम स्वामी का स्वधर सस्वधर करत नया उचिन था ? उने तेसा निया कय भगवान महावीर न उने क्या नही होरा ?

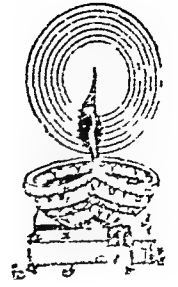
आज ये स्वधर सम्पूर्ण निया के निया यह व न आगति का विषय बन सक्ता है । निधन चरहार निधन नहा तक और नितना आवश्यक है यह नहा परामर्शीय विषय है ।

•



जैन आगपों में कल्पनिरूपण

देवेन्द्रमुनि शास्त्री,
साहित्यरत्न



कल्प की परिभाषा

कला का अर्थ है—नीति, आचार, मर्यादा, विधि अथवा समाचारी। उमास्वाति कहते हैं—“जो कार्य, ज्ञान, शीघ्र, तप का उपग्रह करता है और दोषों का निग्रह करता है वह निश्चय दृष्टि से कल्प है और श्रेष्ठ अल्प है।^१ कल्पसूत्र की टीका के अनुसार श्रमणों का आचार कला है।^२ कल्प के आगम भाष्य निर्युक्त और तूनी माहित्य में अनक भेद-प्रभेद निरूपित है। उन सभी की यहाँ चर्चा न कर केवल दस कल्पों पर ही विचार किया जा रहा है। वे दस कल्प इस प्रकार हैं—

(१) आचेलक्य, (२) श्रीद्वैजिक, (३) शय्यातर, (४) राजपिण्ड, (५) कृतिकर्म, (६) व्रत, (७) ज्येष्ठ, (८) प्रतिक्रमण, (९) मामकल्प, (१०) पर्युपणा-कल्प।^३

आचेलक्य

‘चेल’ शब्द का अर्थ वस्त्र है। न चेल-अचेल है। ‘अ’ शब्द का एक अर्थ अल्प भी है।^४ जैसे अनुदरा कन्या। आचाराग के टीकाकार ने ईपत् (अल्प) अर्थ में नञ् समान मानकर अचेल का अर्थ अल्पवस्त्र किया है।^५

१ यज्ज्ञानशीलतपसामुपग्रह, निग्रह च दोषाणाम् ।

कल्पयति निश्चये यत्तत्कल्प्यमकल्प्यमवशेषम् ॥ (प्रशमरतिप्रकरण १४३)

२ कल्पशब्देन साधूनामाचारोऽत्र प्रकथ्यते ।

—पर्युपणाकल्पसूत्रम्, केशरमुनि

३ (क) आचेलवकुद्देशिय, सिज्जायर-रायपिण्ड-किङ्कम्मे ।

वय-जेठु-पडिवक्रमणे, मास पज्जोसवणरुप्पे ॥

—आवश्यकनिर्युक्ति-मलयगिरिवृत्ति, १२१

(ख) निशीथ भाष्य, गा० ५६३३ भा० ४, पृ० १८७, सन्मतिज्ञानपीठ, आगरा

(ग) बृहत्कल्पभाष्य गाथा ६३, ६४

(घ) भगवती आरावना, पृ १८१, गा० ४०७

(ङ) कल्पसूत्र कल्पलता, समयसुन्दर गणि गाथा १, पृ० २ में उद्धृत, तथा अन्य कल्पसूत्र की टीकाओं में भी ।

४ आटेज् सस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी—भाग-१ पृष्ठ १

५ अचेल — अल्पचेल ।—आचाराग टीका पत्र २२१-२

आगमानुसार मरुधरकेसरी-अभिनन्दनग्रन्थ के भी उपरि ही दृष्टि में अनेक भेद मिले जा सकते हैं। तिनमें ही श्रमण तीन वस्त्र और एक पात्र रखते थे। तिनमें ही श्रमण को पात्र और एक वस्त्र रखते थे। और तिनमें ही श्रमण एक पात्र और एक वस्त्र रखते थे।

उपर्युक्त चर्चा का मारा यह है कि जिनके लिये ही या मरुधरकेसरी, वे राम ने तम सुप्रसिद्ध और रजोहरण के दा उपकरण तो रखते ही हैं। अतः यहाँ पर आचार्य के लिये या श्रमणों का मर्यादा अभाव नहीं किन्तु अल्प मूल्य वाले प्रमाणोंपेन जीर्ण-शीर्ण वस्त्रधारण करना है।

'कल्पसमर्थन' में कहा है कि प्रथम और अन्तिम तीर्ण का वर्म अचेल है और बाकी तीर्णों का संचेलक और अचेलक दोनों प्रकार का है।^१ उनका अर्थ यह है कि, भगवान् अष्टमदेन और महावीर के श्रमण के लिये यह विधान है कि वे ज्येष्ठ और प्रमाणोंपेन वस्त्र रखें पर बाकी तीर्णों के श्रमण के लिये प्रस्तुत विधान नहीं है।^२ वे अर्थात् विवेकनिष्ठ और जागरूक नागर थे उन समर्थाने मरुधरके अष्टम वस्त्र भी रख सकते थे किन्तु उन वस्त्रों के प्रति आशय नहीं था।

उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान् पार्श्वनाथ के श्रमण केसीकुमार और भगवान् महावीर के प्रप्रात अन्तेवासी गणधर गौतम का मरुधर मर्यादा है। केसीकुमार श्रमण ने गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की, कि भगवान् महावीर का धर्म अचेलक है और पार्श्वनाथ का संचेलक है क्या उन लिंगभेदों के लिये आप के मानन में श्रवण नहीं होती।^३ नमोप्रात

हरण पादपिण्डो गमहि नो णवविधो, जहणओ। तस्सेव एगस्सपगहणे वसतिहो। दुरुप्पगहणे एवकारसविधो।
तिरुप्पगहणे वारसविधो। पच्छद्व कठ।—वही १३६१
अहना दुग य णवर, उवकरणे, होनि दुणि तु विरुप्पा।
पाउरण वज्जित्ताण, विमुद्ध जिणकप्पियाण तु ॥

—वही गा० १३६२

जे पावरणवज्जिया ते विमुद्धजिणकप्पिया भवति। तेसि दुविध एव उवही सत्ति। दुविधो णवविधो वा।—१३६२
अविमुद्ध — जिणकप्पियाण इमो-पत्त पत्तावधो पायट्ठचण च पादनेत्तरिया।
पट्ठाइ रयत्ताण, च गोच्छओ पायपिण्डो गो ॥
तिण्णेन य पच्छागा, रयहरण चैव होति मुहोत्ती।
एसो दुवालमविधो, उवधो जिणकप्पियाण तु ॥

—निशेयसूत्र, समाप्य-चूर्णि द्वि० उ० द्वि० भा० पृ० १८८-१८९, सम्मति ज्ञानपीठ

१ आचेलुङ्को धम्मो, पुरिमम्म य पच्छिमम्म य जिणस्स।

मज्झिमगाण जिणाण होइ सचेलो अचेलो य ॥

—कल्पसमर्थन, गा० ३, पृ० १

२ (क) "अचेलत्व" श्रीआदिनाथमहावीरमाधूना वस्त्र मानप्रमाणमहित जीर्णप्राय धवल च कल्पते। श्रीअजि-
तादि २२ तीर्थंकरसाधूना तु पञ्चवर्णम्।—कल्पसूत्र-कल्पलता पृ० २११

(ख) कल्पार्थवोधिनी पृ० १

३. अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सतरत्तरो।

देसिओ वट्टमाणेण, पात्तेण य महामुणी ॥

एगकज्जपवन्नाण, विसिसे किं नु कारण।

लिंगे दुविहे मेहावी, कह विप्पच्चओ न ते ॥

—उत्तराध्ययन अ० २३, गाथा २६-३०

करते हुए गीतम में कहा—विनर । विान स जानर री धममाधना की सापा प्रानन का ग है । लोक में प्रताति व लिए ही वर्याणि उपकरण की आवश्यकता है । वस्तुतः दोनों तीर्थवरा की प्रतिपा मोक्ष व सम्भूत माधन नान दान और चारित्र्य रूप है । उसमें कोई अन्तर न है ।^१

आगमानुसार सभी तीर्थवरद्वय वस्त्र व साय प्रत्या ग्रहण करत हैं । कुछ समय तक वे वैदिक वस्त्र का रखत है । भगवान महावार ने भी एक वस्त्र का वैदिक वस्त्र की रखा था । उसका नाम व पूण अर्चना वने थे ।^२

बाकीस परीपहो में छद्मा परापह अचे है । उसका नाम अथ ^३—वस्त्रों व जीण नान पर धमन य वित्ता न कर कि मैं वस्त्र रति हा पाऊगा । अथवा य भी विचार न कर वि अच्छ हुआ वस्त्र जीण न गय है और अ में नय वस्त्रों से सचेत न जाऊगा । सचे और अचे दोन ही व्यवस्था में प्रमन पिन न ह ।^४

न ता तावेत्य वय का सोम मा य हुआ अतः प्रमाणोपन एवं वत वस्त्रधारण करन की मर्मा ।

१ कस्मिन्नेव बुधाण तु गोयसो हणमग्गो ।

विनायेण समागमम धम्मसाङ्गमिच्छिय ॥

पञ्चमस्य च सोगमस माणाविहविगप्पण ।

जसस्य गहणस्य च लोके तिगपप्रोपण ॥

अह भये पइप्पा उ मोक्खसम्मूयसाहणा ।

माण च दसण खेव चरित्त खेव निद्वए ॥

—उत्तराध्ययन २३। ३१ से ३३

२ (क) जम्बूद्वीप प्रशस्ति कल्पसूत्र

(ख) कल्पसूत्र

(ग) सहवि गहिणुवदया सवरयतिस्वीवरा सणयति ।

अभिनिवजसति तदे हम्मि सुएउत्तेतया होति ॥

—विशेषावस्य काप्य मा १५८६

(घ) सहवि एगद्वीपे निगया

(ङ) सतरिय स्थानर

(च) त्रिपल्लिनाका पुदवर्दार

३ ओ केविमेण वत्येण पिट्ठिस्सामि सास हेमते से पारए आउवहए एव सु अनुपम्मिय तसस सवधर साहिये मास
त त रिवाहस वरय भय अचवण तपो वाइ त पोत्तिअ यत्तमणपारे—आचारांग १।१।१

४ भगवनी सुत्रगतक ८ उद्गाव ८, प १६१

(ख) उत्तराध्ययन अ २

(ग) समवासाङ्ग २२

(घ) तत्वापसूत्र अ ६

५ (क) परिजुगति यथेहि होरसामि ति अवेत्तए ।

अनुवा सवेत्तए होरस इड मिक्खू न चित्तए ॥

एगया अवेत्तए होई सवेत्ते या वि एगया ।

एय धम्महिंय गच्छा नाणी गो परिदेवए ॥

—उत्तरा २।१२-१३

(ख) प्रदयनमारोद्धार वत्ति पत्र १६३



औद्देशिक

औद्देशिक कल्प का अर्थ है श्रमण को दान देने के उद्देश्य से, परिव्राजक, श्रमण, निर्ग्रन्थ आदि मनी हो उद्देश्य कर निमित्त अन्न-वसन भवन आदि ।^१ वह श्रमण के लिए अग्राह्य और अनेक्य है । यदि श्रमण को यह ज्ञात हो जाय तो वह कह दे कि यह अजनादि मुझे नहीं कल्पता ।^२ प्रथम और अन्तिम तीर्थकरो के श्रमणों के लिए यह विधान है कि एक श्रमण को उद्देश्य करके निमित्त आहार आदि न उसे ग्रहण करना कल्पता है और न अन्य श्रमणों को ही ग्रहण करना कल्पता है किन्तु बाकी तीर्थकरो के समय जिस श्रमण को उद्देश्य कर आहार आदि निमित्त किया गया हो वह उसे ग्रहण करना नहीं कल्पता, पर जेप श्रमणों के लिए वह ग्राह्य हो सकता है ।^३

दशवैकालिक,^४ प्रश्न व्याकरण,^५ सूत्रकृताङ्ग,^६ उत्तराध्ययन,^७ आचाराग^८ और भगवती,^९ आदि भागों में अनेक स्थलों पर औद्देशिक आहार आदि ग्रहण करने का निषेध है, क्योंकि औद्देशिक आहार आदि ग्रहण करने में त्रम और स्वावर जीवों की हिंसा का अनुमोदन होना है ।^{१०}

१ (क) उद्दिस्स कज्जड त उद्देशिय, साधुनिमित्त आरम्भोत्ति वुत्त भवति ।

—दशवैकालिक अगस्तसिह चूर्णि

(ख) “उद्देशिय ति उद्देशन साध्वाराश्रित्य दानारम्भस्येत्युद्देश तत्र भवसौद्देशिक ।

—दशवैकालिक-हारिभरीयावृत्ति ११६

२. असण पाणग वा वि, लाइम साइम तहा ।

ज जाणेज्ज सुणेज्ज वा, समणट्ठा पण्ड इम ॥

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।

द्वैतिय पडियाइवत्ते, न मे कप्पई तारिम ॥

—दशवै० अ० ५ उ० १ गा० ५१-५२

३ (क) सघादुद्देशेण ओघाईहि, समणाइ अहिगच्छ ।

कडमिह तत्त्वैनि चिय न कप्पई पुरिमचरिमाण ॥

मज्झिमगाण तु इम, ज कडमुद्दिस्स तस्स चेवत्ति ।

नो कप्पइ सेमाण उ कप्पइ त एस मेरत्ति ॥

—कल्पसमर्थन गा० ४-५ प० १

(ख) “औद्देशिकम्” एकस्य साधोनिमित्त कृत आहारपानीयं च आधाकर्मात्य सर्वेषा साधूनां न कल्पते । द्वाविंशतितीर्थकरसाधूनां तु यस्य साधोनिमित्त कृत भवेत्, तस्यैव साधोस्तद् आहारपानीय न कल्पते, अन्येषां तु कल्पते ।—कल्पसूत्र कल्पद्रुमकलिका

(ग) कल्पसूत्र कल्पलता, टीका—प० २।१

(घ) कल्पसूत्र-कल्पार्थदोषिनी

४ दशवैकालिक—५-१, ५५।६, ४८-४९।८, २३।१०४

५ प्रश्नव्याकरण, स्वर, द्वार १, ५,

६ सूत्रकृताङ्ग, १।६।१४

७ उत्तराध्ययन २०।४७

८ आचाराग अ० २, उद्दे० ६,

९ भगवतीशतक १, उद्दे० ६

१० जे नियार्ण ममायति, कीयमुद्देशियाहड ।

वह ते समणुजाणति, इड वुत्त महेमिणा ।—दशवैकालिक ६।४८

गव्यातर विण्ड

अथ गो गव्या (वर्गा उपानय) दक्षर समार समुत् का तरन वाला ग र गव्यातर ३ ।^१ अथा ३० गव्याति जिसके गवान म थमन ठन्ने हण ह्ये । निगारभाप्य क अभिमतानुसार स्वय म पति या डमक गारा निरिष्ट को भो । य पतिन ग पातर गना ३ ।^२ गव्यातर क्व ता ३ ? इस पर जाचार्यों क विभि न मन ३ ।^३ निगार भाप्य जोर चणि म उन मभी मना ना निर्णय किया गया ॥ तवा भाप्यकार न क्षण ता स्पष्ट मन म प्रसार किया है - अथन जिस स्यात म रात्रि र ग भाप्य हीर त्रमानयक काय कर उभवा जघिपति गव्यातर गना ३ ।^४

गव्यातर क जग पान घाघ स्वय बरन पाथ जात्र अग्राह्य है और तप रात्र पात्र बाजात्र जात्र प्राप्त है ।^५ मृनकुताङ्ग म गव्यातर के स्वात म— साधारण विण्ड किया ३ । पर गव्यात मय भी टाकातर न

१ तस्य पगहोण साहणो ढिवा ते वि सारविण्ड तरति तेण सेज्जादाणेण नवसमुत् तरति त्ति सेज्जातर ।

—निगीयमाप्य प १११

२ (क) सेज्जा बसतो स पुण सेज्जादाणेण ससार तरत सेज्जातरो सत्त भिक्खा सेज्जातरविण्ड ।

—दण्डवहाल्लि अणस्तमिह खूणि

(ख) आसयोऽभिधीयते तेण उ तस्य य याणेण साहण ससार तरतानि सेज्जातरो तस्य विणो भिक्खति कुत्त मवड—दण्डवहाल्लि जिनगल खूणि प ११३

(ग) गव्या नत तस्सया तरति ससार त्ति गव्यातर मपुवसतिदाता तदण्ण ।

—दण्डवहाल्लिहण्डवभणीया वत्ति ११७

३ सेज्जातरो पभू या मपुवविट्ठो व होति कात्तवो ।

—निगीयमाप्य गा० ११४४

४ निगीय माप्य गा ११४६—४७ खूणि

५ जय राउट्ठिा तत्थेव सुत्तऽतथेव चारमा उत्तय कय तो सेज्जातरो भवति ।

—निगीय माप्य गा ११४८ खूणि

६ दुविह चउविह चउविह अट्ठविहो होत वारसविधो वा ।

सेज्जातरत्त विण्डो तव्यतिरित्तो अपिडो उ ॥

दुविह चउविह अट्ठविह च एगगाट्ठण वक्कामेति आपारोवधि बुविधो विट्ठ अण्य पाण ओट्ठवगाहिणो । गतणावि चउरो जो उपागहे अट्ठविधो एमो ।

आहारो उवरण च गत्त इविहो । ये दुया चउरो त्ति सो इमोअण्य पाण ओह्वय उ पागहिए य एतो अट्ठविहो ।

इमो अट्ठविहा—

असणे पाो वत्थे पात्ते सुपाणिा व चउरट्ठा ।

असणादो वटादो सुपादि चउवडगा निणि ॥

असणे पाण वत्थे पादे मुत्तो आदि जेत ते सुत्तोआदिगा-मुत्तो विण्यमो गवरदो वणसोहण्य इमो वारसविहा

असणादो वत्तादि वटपाया वत्तादि मूत्तिपादिया वत्तादि एते तिणि चउवडा वारस भवति ।

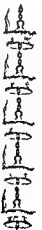
इमो पुणो अपिडो—

तण उगल द्दार भम्म स-ज-सयाधोरी सवानी

सेज्जातरविण्डो न होति सेट्ठो सामधि उ ॥

सेज्जादो आदि सदानो बुडमुहाव एमो सव्यो सेज्जातरविण्डो न भवति । जति सेज्जातरत्त पुत्ता पूया वा पत्त पावसहिता पव्वट्ठ-जा सो सेज्जातरविण्डो न भवति ।—निगीय माप्य गा ११४१ ५४ खूणि

७ साधारण च विण्ड च त विण्ड वरिजानिया । —मृनकुताङ्ग १।६।१६



शय्यान्तर पिण्ड किया है ।^१

राजपिण्ड

सर्वाभिषिक्तं अर्थान् जिनका राज्याभिषेक हुआ हो वह राजा कहलाता है उसका भोजन राजपिण्ड है ।^२ जिनदानगणि महानर के अभिमतानुसार सेनापति, अमात्य, पुत्रोहित, श्रेष्ठो, और सार्वदाह महिन जो राजा राज्य का उपभोग करना है, उनका पिण्ड ग्रहण नहीं करना चाहिये । अन्य राजाओं के लिए नियम नहीं है । यदि दोग की मभावना है तो ग्रहण नहीं करना चाहिए और निर्दोष है तो ग्रहण किया जा सकता है ।^३

राजपिण्ड का तात्पर्य राजकीय भोजन है राजकीय भोजनमरम मधुर व नादरु होता है । जिनके नेत्रन से रमलोलुपता बटने की मभावना रहती है । वह मरम आहार मर्यम मभव नहीं, रमलोलुप मुनि वही अनेपणीय आहार ग्रहण न करे अब राजपिण्ड का निषेध किया है । एषणा नृदि श्री प्रन्तुन विद्यान की आत्मा है ।^४ यदि कोई इन विद्यान को विस्मृत करके राजपिण्ड का ग्रहण करता है या राजपिण्ड का उपभोग करता है तो श्रमा को चानुमौमिक प्रायश्चित्त आता है ।^५ राजपिण्ड के निषेध के पीछे अन्य नथ्य रहे हुए हैं, जिनका उल्लेख निशीथमाप्य और चूर्णि में किया गया है । राजभवन में प्रायः सेनापति आदि का आवागमन रहता है । ननी शीघ्रनादि के कारण

१ सागारिक 'शय्यान्तरस्तस्य पिण्डम्-आहार ।

—सूत्रकृताङ्ग १।६।१६ टीका प० १=१

२ (क) मुद्राभिस्तित्तरणो निवृत्ता रायपिण्डो ।

—दशवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्णि

(ख) मुद्राभिस्तित्तरणो • पिण्ड-राजपिण्ड ।

—दशवैकालिक जिनदास चूर्णि ११२-१३

(ग) मुद्रिज्ञाङ्गुणो राजा अद्विहो तन्म होइ पिडुत्ति ।

पुरिम्भेसराण एसो वाघायाईहि पडिक्कुटो ॥

—कल्पदर्शनम् गा० ६ पृ० १

(घ) "राजपिण्ड" राजा-छत्रधर, तन्म पिड • ।

—कल्पसूत्र कल्पलता ४ पृ० २ ममयमुन्दर

(ङ) 'रायपिण्ड' न्ति राजपिण्ड, तत्र राजा-छत्रधर सेनापति-पुरोहित-श्रेष्ठ-मात्य सार्वदाहरूपं पञ्चनिल-क्षणैर्युतो मूर्ध्नाभिषिक्तस्तस्य अक्षनादिचतुर्विध आहारो वस्त्र पात्र कंचल रजोहरणं चैत्यष्टविध पिण्ड ।

—कल्पार्यवोधिनी ४ पृ० २

३ निशीथमाप्य गा० २४८७, चूर्णि

४ (क) अतो सो रायपिण्डो गेहिपडिमेहणत्यं एषणा स्वक्षणत्यं च न कप्पइ ।

—दशवैकालिक जिनदास चूर्णि पृ० ११२-६३

(ख) एषणा स्वक्षणाए एतेमि अणात्तिण्णो ।

—दशवै० अगस्त्यसिंह चूर्णि ।

५ ले भिक्खू रायपिण्डं गेहइ गेहत्त वा सात्तिज्जाति ले भिक्खू रायपिण्ड भुंजइ भुजत्त वा नात्तिज्जति ।

—निशीथ ६।१०

६ (क) निगच्छद्वागच्छत्सामन्नादिभिः स्वाध्यायस्य अपशकुनबुद्ध्या शरीरादेश्च व्याघातमम्मवान्मरवाद्यलोभ-लघुत्व-निन्दादिवहुदोषसम्भवाच्च " —कल्पार्यवोधिनी कल्प ४ पृ० २

(ख) ईमरपभिर्हि तंह, वाघाजो खटलोह वाराणं ।

वन्धन मगो गरहा, इसरेत्ति न अप्पमायाजो ॥—कन्दमनर्थन १०।१

अमण व वाङ्मयन वा जीव पायाः पूरन वा समा ना रहते है ।^१ व वाङ्मयन भी समझ मान हैं अतः वाङ्मयन
रा अनाचार माना है ।^२

सप्तावार गीर शोकप्रसन्न व श्रमणा व श्रिणी राजपूत वा विप्र है पर वागीग तापसरा व श्रमणा व श्रिणी नही है। राजपूत स चार प्रकार व छात्तर वस्त्र वात्र वस्त्र रत्न रण य त्रा वस्त्रा वस्त्र वी ग हैं और बाटा वस्त्रा मानो है।^५

षट्तिरुम्

बुनिबम वा अय है अपने स मयमाणि म पण्ड य ताम्पुणा म २८ धमणा वा १७ । १३२ ह्यम म म्मागत
वरना । उह म्मान दना । उनवी निनिगिमात्रा वो अद्दा म ननमन्वा १०२ ह्यीसार वरना ।^४

बोधयोग ही तात्पर्यवत्ता का प्रमाण अथवा सच्चाई का प्रमाण है। यह प्रमाण—नमोस्तुतः प्रमाण है। यह प्रमाण—नमोस्तुतः प्रमाण है।

१ निगोप्य भाष्य गा २५ & २५१०

२ सा नहो गिहिमा य रसविह रिमि-द्वय ।

समाहृणा वृत्तहोयणा यः संपू-दुणा वेहपतोयणा यः ॥

दण्डशालिक ३।३

३ (क) श्रीमान्निायगहाडीरसायनां न कल्पने अजितादि २२ लोपहरसायनां तु कल्पने ।

—संपन्न दीना

(ख) बरतन महलिका प २

४ अराणार्जुन चतुर्दश यत्थ तह वत्तं पापपुद्गलम् ।

निर्वाणमिह १ कल्पे परिमतिमज्जिज्जिणं तु ॥

—वरपत्तमपने गा ११ प २

५ (क) किति-गमं विधि-अभ्युत्थानं च न च । तं दृष्टिं वि इमो वि अहादह करेति इमो वि अहादह ।

अद्या कितिकम्भं सखाहि सातीहि अज्जद्विणियसस वि सज्जतरा वायव्य शे वि तुत्तमिन्दति । इमस
वि पय मत्तय्याणि । जो पम्भं पंचमहत्तयावद्धो सो जिदो सागाइय वा ठविओ ।

—निर्गोप्य पूर्णं हि० भा० पृ १८७ ८८

(स) शिद्वसम्मनि यं सविहं अम्भुद्वाणं तदेव यदण्यं ।

समणीहि समणीहि य जहारिह होन् वापय ॥

—हृदयमन्यन शा० १२ प २

(ग) कृतकम् घटणकं चन्द्रविभातरीयशरणांमपि सप्तमापुना बद्धसाधु यम्नोदो वग्दापाति देवानि ॥

—रहस्यगुप्त रहस्यरत्ना ५० २

(घ) विद्युद्गमोः । इतरेषु सपत्ना साधना वदृश्य साधो-चरणयोश्चनकानि दानव्यानि ।

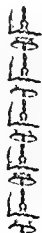
—इत्यं म कतिना टीका पा० २

(४) कपायसोपिनी टीका ।

६ गच्छाति संजईति विदुषाम् संज्ञायाम् वाच्यम् ।

पुरिमुत्तमुत्ति पद्मः सप्तजिह्वावि तिम्येसु ॥

—बलासम्पन्न गा १



३५

अतः ता अर्थ विनि है । जिनि अम् प्रवृत्ति मे होनी है । अम्, विवृति, उम् और विनि मे अम् अर्थ मे है । अतः अम् अर्थ मे प्रवृत्ति विवृति और प्रवृत्ति दोनों मे अम् मे होनी है । निम्-

[illegible][illegible]

चातुर्वर्ण्य और पञ्चमम ग की भेद है वह दहिद्विष्टि ने है न कि जन्मद्विष्टि ने । सधर्मों प्रमग परिह-
त्याग में ही चतुर्वर्ण्य का समावेश है तब ही । जन्म और जन्मा दोनों के प्रयोगों का समन्वय समझने के ।
कुछ प्राचिन चिन्ता ने लिखा है कि वे जन्मावस्था के पर डाली वह जन्मा जन्मादि है ।

ज्येष्ठ

जैनधर्म गुणप्रधान होने पर भी पुण्यन्येष्ट है । सबका दीक्षिता नाश्री भी उन्नीस अक्षरों से मन्त्रि-
भावना के लक्षण दर्शाती है ।

ग्रेण्ट-न्यू या हमारा लक्ष्य है—वाणिज्य तोयोंदों के समुद्र अमली के सामाजिक जाति ही होता है पर

१ हिनानृतन्नेयाद्रह्यपग्निहेन्यो दिग्निर्गतम् ।

—तत्त्वार्थसूत्र ७।१

२ अक्षरं निवृत्तिपरमो विरतिग्नितरान्तरम् ।

—तत्त्वार्थसूत्र ७।१ नाष्ट

३ तत्त्वार्थसूत्र ७।१ साध्य की टीका

४ दत्तराव्ययन अ० २३, गाय २३-२४

५ दत्तग० अ० २३ नाया २४-२७

६) पंचवज्रो ललु वम्मो, परिमन्न य पच्छिमन्न य जिणम्म ।

मज्झिमनिकाय जिणाग, चट्ठजो होइ विन्नेलो ॥

नौ अपरिगृह्याए, इत्योए ज्ञान होइ परिभोगो ।

ता तद्विन्दे इच्छिष्य, अत्रंनविरुद्धि पन्नाणं ॥

—कल्पमन्त्र्यनम्, गा० १४-१५ प० २

७ वरिममरदिपित्तबाह, लज्जाए अज्जदिपित्तो नाह ।

अभिगमगद्वयनम—सणेण विणायो सो पुज्जो ॥—कम्मलता टीका मे उद्धृत

प्रथम और अनिम तावकर के समय धमना १ सामायिक चारित्र व साथही क्षेत्रोपस्थापनिक चारित्र भीहाना है। उना बाधर स भी धमना नष्ट या वनिष्ट होता है। आज व युग म सामायिक चारित्र व ग्रहण की लघुगीता और क्षेत्रोपस्थापनिक चारित्र व ग्रहण का उना दी ता वनन है।

जठ बला का तीव्रता अथ है कि पिना पुन राजा मत्री मठ मुनाम माता पत्र आनि एक हा गाव प्रभया ग्रहण कर या पिना राजा मा माना आनि न प्रथम सामायिक चारित्र आनि ग्रहण कर गिया है और फिर पिना आनि व अतर्मास म प्रज्जवा गमी भावना उन्मुक्त हानी है ता चार छ मा तत्र उस क्षेत्रोपस्थापनिक चारित्र म दे। प्रथम पिता आनि का चारित्र केवर गण्ड बनाव।

प्रतिजमण

प्रतिजमण जनधम मा गानना या आवश्यक जग है। प्रतिजमण का अर है प्रमाणा गुम याग त वृत्त होवर अनुम योग मा प्राप्त करन व प चात पा गुम याग का प्राप्त करना। म वचन और तत म वृत्त चारित्र और अनुमोक्ति पातों की निवृत्ति न गि जालाचना करना प चाताप करना निग करना अनुदना या त्याग कर गदना प्राप्त करना। निमा भूत चारी मयुत और परिग्रह रण जिपाप वनों का निग्र य ममणा व लिए निवेप दिया गया है। उनका यनि सवा हा गया मो प्रतिजमण करना चाति। जिन गम बला का आचरण करना धमना व गि आचरण है यनि उनका आचरण न किया गया मा मो प्रतिजमण करना चाति। बावीम तीपबरा व गमय क साधक अनाय निवृत्ति गत जागृक ध धन व त्याग गमन पर हा प्रतिजमण करत थे।

कुछ जाचयों का अमिमन है गि ववित्र गतिव गतिर वातुमतिर और सावगतिर न पौव प्रति जमणा म म बाबाग माधकरा व समय दमिर और रात्रि ये दा हा प्रतिजमण हात व है गप नहा। जिगता गति म सार न स्पष्ट बना है कि प्रथम और गानम तीव्रता व समय नियमित रूप है उभयरात्रि प्रतिजमण करन का विधान है और साथ ही बापाग म भी ईवापय चादि व रूप म तराण प्रतिजमण का विधान है। बावीम तीप

१ (क) उषावषाह जिह्मो विप्र ओ गुरिमसिद्धमजिणाण।

ववताग उ तता मजिमगाण निरद्वयो ॥

—बह्मसिंहन गा १७ प २

(ग) ओ गान्धर्व महावीरयो साधुना दीक्षाभ्य भवति एषा सत्यो दोषा अवता वहतो दोषा भवति। सपुत्रम वनन व वट्टीशया गणतः। द्विजिगतिनीधकरसाधुनां तु दीक्षायां भवत्या सत्यामेव सपुत्रम वट्टय गणतः एव गैष्टव उच्यते। —बह्मसिंहनिका टीका प २३

२ सा प्रजिताता पितापुत्र मातापुत्रा नवमायावीनां समग्रमेव धद्वीवनिजाग्रथ्ययनयोगोद्दहनादियोग्यताप्राप्तानां स्तोत्रांतरितानां वा किञ्चिद्विलम्बेनापि विनादीनामेव गव्यगुणस्थापना विधेया।

—बह्मसिंहनिकाटीका टीका पा ७

३ देष्टिए जायपक एव जीवनवटि १ निवध टिप्पण।

४ सावद्विक्रमणो धम्मो गुरिमस्स य वच्चिद्धमस्त य गिणस्स।
मज्झिमपाण जिणाण वारणजाग धद्विक्रमण ॥

—आवयक नियुक्ति गा १२४४

५ देवतिय राइय पणिणय चडवात्तिप वच्चद्विरय माभाओ।

हुह पण धद्विक्रमणा म उभागयाण तु पदमा ॥

—सप्ततिस्थानक



करों के शान्तकाय में दाप करने ही श्रुति पर ही जाते हैं, उनका यह नियम प्रविष्टन का विधान नहीं है।

मासकल्प

श्रमण का स्थान पर स्थित हो कर न करे ।^१ बारम्बार ही तो तब अश्रम में शान्त का मासकल्प होता है ।^२ विधान की दृष्टि में तब तो दो भागों में विभाजित किया गया है ।^३ वर्षागाय और अश्रुवत्त का, वर्षागाय में श्रमण चार माह तक एक स्थान पर स्थित रह सकता है और अश्रुवत्त का में एक माह तक । वर्षागाय का समय एक स्थान पर स्थित रहने का उत्कृष्ट समय है । उन का सम्बन्ध होता है ।^४ पुनरावृत्ति में वर्षागाय का परम-प्रमाण चार माह बताया है ।^५ और वेदतान का परम-प्रमाण एक माह ।^६ जिस स्थान पर श्रमण उत्कृष्ट तान रह चुका हो, जहाँ जिस स्थान में वर्षागाय में वर्षागाय किया हो उस स्थान में ही चातुर्मास अथवा किसे दिना चतुर्मास्य न करे और जिस स्थान पर मासकल्प किया हो उस स्थान पर ही मास अन्यत्र स्थित किया न करे । यद्यपि गाथा में तृतीय बार का स्पष्ट उल्लेख नहीं है । किन्तु स्मरण अथवा स्मृति के अभिप्रायान्तर चारों के द्वारा वह प्रतिपादित है ।^७

भगवान् श्रमणदेव और महावीर के श्रमणों के लिए ही मासकल्प का विधान है । जैव वादीन तीर्थङ्करों के लिए नहीं । वे चाहें तो दीर्घावधि तक भी एक स्थान पर रह सकते हैं और चाहें तो शीघ्र ही एक स्थान में दूसरे स्थान पर प्रस्थान कर जाते हैं ।

पर्युपणाकल्प

“परि” उपसर्गपूर्वक शब्द शब्दों में “धन” प्रत्यय लगाने पर्युपणा शब्द बना है, जिसका अर्थ है आत्मा के समीप रहना । परभाव में दृढतर स्वभाव में समा रहना । आत्मसंज्ञा, आत्मरक्षण, या आत्मस्थ होना । यह

१. पुरिमपट्टिमर्गं उभयो कालं पट्टिमकमित्तरं दरियावहिवमागतोहि उच्चारणानवग-आह्वानदोष वा विवेकं काङ्क्ष, पदोमपचूमेनु, जितियानो होतु वा मा वा तदावन्म पट्टिमकमित्तरं एतेहि चेव आगेहि । मज्झिमगाय नित्ये यदि अतियारो-अतिय तो दिवसो होतु रत्तो वा, पुच्छण्हो अघण्हो मज्झण्हो, पुच्छन्तावत्तं वा अद्धरत्तो वा ताहे चेव पट्टिमकमन्ति । नतिय तो न पट्टिमकमन्ति, जेण ते शनडा पण्णावन्ता परिभाणगा न य पमादवहुता, तेण तेति एव भवति ।—आवश्यकचूर्ण, जिनदाम

२. कप्पइ निग्गयाण वा निग्गयोण वा, हेमत-गिम्हासु चारए ।

—बृहत्कल्पभाष्य का० १।३६

३. भारत पवली व चरेऽपमत्ते —उत्तराध्ययन अ० ४ गा० ६

४. सबच्छर इति कालपरिमाण । तं पुण जेह चारसमासिग सबज्जति किन्तु वरिमारत्ता चातुर्मासित्त स एव जेद्दोगहो ।—दशवैकालिक, अगस्त्यसिंह चूर्ण ।

५. बृहत्कल्पभाष्य भाग १।३६

६. बृहत्कल्पभाष्य भाग १।६।७।८

७. संवच्छर चावि परं पमाण, वीय च वासं न तहि वसेज्जा ।

सुत्तस्स मग्गेण चरेज्ज भिक्खू, सुत्तस्स अत्यो जइ आणवेइ ॥—दशवैकालिक, द्वितीयवृत्तिका गा० ११

८. वितिय च वास-वितिय ततो अणत्तर च सद्देण ततियमवि जतो नणिनं तदुगुण, दुगणेण अपरिहरित्ता ण वट्ठति ततियं च परिहरिज्जण षडत्ये होज्जा ।—दशवै० अगस्त्यसिंह चूर्ण

पुनीत पव आपाओ पूजिमा स उतरास और पचासवें दिन मनाया जाता है।' तिगे सवतरी महापद बहून हैं।

पमुपणा का न बूसरा अथ है एक स्थान पर निवास करना । वह मायवन और निरानन्दन रूप दो प्रकार का है । सालवन का अर्थ है—सचारण और निरायवन का अर्थ है विवाहाण । निरावलवन के भी जघप और उत्पष्ट रूप दो भेद हैं ।^३

पयपणा व पर्यायवाची शब्द एका प्रकारे वापरले गेले हे - (१) पर्याय व व्यवस्था (२) पञ्चममणा (३) पाण्डुरा (४) परिवर्तना (५) पञ्चमणा (६) वासावाग (७) पञ्चममममणा (८) ठवणा और (९) जट्टमगा ।

यद्यपि य तव नाम एकाग्र्य है तथापि श्रुतसिद्धि^१ व जाहार पर उक्त विहित अग्रमे भी है।^२ वयपणा व ययो^३ को गणना व जाहार से मोक्षायर्थाय वा लेप्ता ननिष्ठता विनी राना है अतएव वयपणा मोक्षायर्थाय को व्यवस्था वा वारण है।^४ यथावाय म निज प्रकार व स्वयमन्त्राल नाव सम्बन्धी नर्मायो का आचरण विद्या जाता है। इत कारण म्वा नूतन नाम गोपेयमस्या है। गन्धशास्त्रि मयो वे लिख सथा हान से यह वरुण पागइया बहुगना है।^५

१ (क) पुरिमनिमित्तस्यगण मासवर्णो ठिओ मुणेषवो ।

મન્નિશમગાળ જિજ્ઞાણ અદ્વિયઓ એસ વિનેઓ ॥

—व-पसामधनम गा १६ प २

(ख) मासकल्प श्रीआदिनायकहाधीरमाधुमि नेपत्राले अष्टमासेषु मासकल्प क्रियते । द्वाविंशतितीथकर साधुमिस्तु न मासकल्प क्रियते । - वापसत्र कल्पना दोहा

(ग) कहरगुप्त सुशोधिता टाका-पाण्यात—कहरगुप्त म बलिवा प ३१२

२ (क) समणे भगव मशबोरे वासायाम सावितराम मात विदधते सत्तरि राइदिहि वासावात पञ्चोत्तवे ।

—समवायाङ्क ७ यी समवाय

(ख) तेण बालेण तण समण समण भगव गृहा-गिरे वासाण सरोवरराग भासे विइक्कत वासवान प-नोसवेइ ।

—कल्पसूत्र २२४ ष ६६ पुण्य

३ (क) वायुमूलक वायुयोजितता टी ० प ३११

(ल) बह्वसूत्र सुयोधिनः टीका

४ (क) पञ्चोत्सवणाए अवतराह होंति उ इमाह गोष्णाह ।

परिपायजत्ययणा वज्रोसवणा य पागइता ॥३१३८

परिवसणा व-जसणा व-सोसवणा थ धारावासी थ ।

पञ्च सम्भारणं त्रिं यः कवणां जेद्वोगहेगद्वा ॥ ३१३६

पञ्चोत्तराणां तत् एतत्तत् अवयवराणि इमाणि एवाङ्गितानि गोणनानामाणि मृदु मयति । इ जहा—परिचयवत्परवचना
पञ्चोत्तराणां य परिचयवत् पञ्चसुखा वासावासा पञ्चमसगोत्तराण्यवयव जेहोमहोति एते एवाङ्गितानि ।

—निगोपमूत्र सभाष्य चर्णि ततोय वा प १२५ १२६ ज्ञानपोठ भागता

(ख) कल्पसत्र नियमित गा १।२

५ (क) एतेति इमो भयो जम्हा पञ्चोसयणादिवसे पञ्चगनापरिपायो ऋषदिप्यते-व्यवहस्याप्यते तादा- एतिया परिता मम उचन्नाविपरता त्ति सप्त्य परिप्यापञ्चवज्जण मण्णति-निपायान्न ताभायवृष्टि ३।१२५

(स) अथमुत्र निर्यसित एव क्षुणि १।२१८५ पुष्पविजयश्री तारा सम्पादिने

६ (४) जम्हा उदुभट्टिया दथ सेत-बाज भावा पञ्जाया एथ वरिमयता ओतविज्जति-परितमन्तोरेय अणे य दथविदा वरितसत्तापायोया येत आयद्विज्जति तम्हा पञ्जोत्तवणा अण्णति पाया ति सध्दलोपपत्तिद्वय पागतभिदासेण पञ्जोत्तवणा अण्णति ।—निगोसत्त सत्ताय धुत्ति ३।१२३ २६

(स) कल्पगुप्त नियमित एवं कुणि ११२६।८५





इस काल में एक स्थान पर चार गाम नष्ट निशान किया जाता है, अतएव यह कामबान वर्षागाम कहा गया है ।^१ कोई विशेष कारण न हो तो प्रायः में ही चातुर्मास ध्वनीन करने योग्य क्षेत्र में प्रवेश किया जाता है, अतएव उसे 'पटमनमोमरण' कहते हैं ।^२ ऋतुवद्धकाल की अपेक्षा उसकी मार्गसाएँ भिन्न होती हैं अतएव यह 'उवगा' है ।^३ ऋतुवद्धकाल में एक-एक गाम या क्षेत्रावग्रह होता है किन्तु वर्षाकाल में चार गाम या अतएव उसे त्रैलोक्य—जगत्-वग्रह कहते हैं ।^४

अगर माघ आषाढी पूर्णिमा तक निशान स्थान पर आ पहुँचा हो और वर्षागाम की जाहिरान्त की हो तो श्रावण कृष्णा पचमी में ही वर्षागाम आरम्भ हो जाता है । उपरान्त क्षेत्र न मिलने पर श्रावण कृष्णा दशमी का, फिर भी योग्य क्षेत्र की प्राप्ति न हो तो श्रावण माघ की पंचदशी (अमावस्या) को वर्षागाम आरम्भ करना चाहिए ।

इनमें पर भी सुयोग्य क्षेत्र न मिले तो पौन-मान या वृषादेष्टुण दशम्या भाद्रपद शुक्ला पचमी तक तो आरम्भ कर देना अनिवार्य माना गया है । उस समय तक की उपरान्त क्षेत्र प्राप्त न हुआ हो तो अन्ततः वृषादेष्टुण ही पर्युषणाकल्प करना चाहिए । पर उस निधि का किसी भी स्थिति में उत्खान नहीं करना चाहिए ।^५

पचमी, दशमी और पंचदशी उन वर्षों में ही पर्युषणा कल्प करना चाहिए, अन्य में नहीं । इस प्रकार ता नामान्य विधान होने पर भी विविध कारणों से जायँसाउक में चातुर्मास निधि में पर्युषणा की प्रवृत्ति की थी, मगर उसे

१ जम्हा एगवेत्ते चत्तारि मासा परिजसतीनि तम्हा पञ्चमणा भण्णति ।

—निशोय मभाप्य चूणि ३।१२५

(ग) कल्पसूत्र निर्युक्ति ८५

२ उडुवद्धिया वास समीवातो जम्हा पणरिमेण ओमति नद्वदिवासु पण्णिमा-परिचिन्त तम्हा पञ्जुम्मणा भण्णति पञ्जोमवणा इति गतार्य ।—निशोय मभाप्य चूणि ३।१२५-१२६

(ख) कल्पसूत्र निर्युक्ति पृ० ८५

(ग) प्रथम आय बहूण नमवातो समोसरण ते य दो ममोसरणा-एग वामासु वित्तय उडुवद्धे । जतो पञ्जोसवणा तो वरिस आटप्पति अतो पडम समोसरण भण्णति ।—निशोय, सूत्रभाप्य चूणि ३।१२६

(घ) कल्पचूणि वृ ८५

३ वासकप्पातो जम्हा अण्णा वासकप्पनेहा ठविज्जति तम्हा ठवणा भण्णति

—निशोय वही ३।१२६

४ (क) जम्हा उडुवद्धे एवक मासं सेतोग्गाहो भवति, वामावासासु चत्तारि मासा, तम्हा उडुवद्धियाओ वासे उग्गाहो जेट्ठो भवति । एया व्यजनतो नानात्थ, नत्वर्थत ।—निशोयनूत्र-मभाप्यचूणि ३।१२६

(ख) कल्पसूत्र चूणि ८५

५ (क) एत्थ तु पणम पणम कारणिय, जा सवीसतीमासो ।

सुद्धवसमीठियाण व, आसाढीपुण्णि-मोमरण ॥

कल्पसूत्र निर्युक्ति गा० १६

(ख) आसाढपुण्णिमाए ठियाणं जति तण्डगलादीणि गहियाणि पञ्जोमवणाकप्पो य कहितो तो मावण बहुलपचमीए पञ्जोमवैत्ति । असति खेत्ते सावणवहुलदसमिए असति खेत्ते सावण बहुलस्म पण्णरत्तीय, एव पच पच ओ-सारेतेण जाव असति भद्वत्तसुद्धपचमीए, अतो परेण ण वट्ठति अतिवक्रामेतु । आसाढपुण्णिमातो आढत्त गताण जाव भद्वत्त जोण्हस्स पंचमीए एत्थनरे जति ण लद्ध ताहे जति लक्खहेट्ठेठितो तो वि पञ्जोसवे-वत्त च तेषु पच्चेसु जहा लभेण पञ्जोसवेवच्च, अप्पच्चे ण वट्ठति ।

—कल्पसूत्र चूणि० पृ ८६ पुण्यविजयजी, सपा०

सामान्य नियम नही समझना चाहिए ।^१

व्यापारों में भाग विना कारणों के स्वयंसेवित्व करना है । स्थानों में पाँच कारणों का विचार किया गया है । वे कारण ये हैं—(१) ज्ञान के लिए (२) दान के लिए (३) चारित्र्य के लिए (४) आचार्य और उपाध्यायों के साथ करने पर (५) आचार्य उपाध्यायों के प्रति कर्तव्य के लिए ।^२

भाष्य में जोर दीक्षा साहित्य में कुछ अन्यथा कारणों का विचार करने में कहा है—जिस कि दुष्काल के कारण भिक्षा की उपाधि में होने से राजप्रयोग होने से राज्यादि उत्पन्न होने से जीव हत्या का आशय होने में आता है ।^३

वर्षावाम समाप्त होने पर धर्मों को विचार करना चाहिए । किन्तु यदि वर्षा का आशय नहीं वर्षा से माघ शुक्ल में दान हो गया हो कीचड़ अधिक हो धामारी आदि कोई कारण हो तो वह अधिक भी ठहर सकता है ।^४

१ क मूत्र क्षणिक व ८६

२ कृष्ण पक्षादि ठाण्डेहि निगमय निगमय पदमपाउसमि गामाजुगाम दानजतल स पाण्डुवाए हतण्डुवाए चरित्तण्डुए आयरिय उवसायाण था से विगु भेजा आयरियउव ज्ञायण था वट्ठिया वेयावचरणाए ।

—स्थानाङ्ग सूत्र ५ वा स्थान

३ (क) तस्य अपत इमे कारणान्—

राया कय सपे अगणिमलाणे य वडित्तससत्तो एएहि कारणेहि अपत हो निगमण ॥ ३१४८

राया कुट्टो सपे वा वसहि वसिद्धो कपूहि वा वसहो ससत्ता अगणिना वा वसहो इड्डा गिलाणस्त परिचरणट्टा गिलाणस्त वा भोसहहेउ चत्तिस्तस वा असत्तो एतेहि कारणेहि अपत चउपाडियए निगमण भवति । अहंवा इमे कारणान्—

काइयवृद्धो सस्वारए य सत्त वत्तमे भिक्खे ।

एएहि कारणेहि अपत होति निगमण ॥ ३१४९

काइयवृद्धो सत्त सस्वार वा सत्ता कुल्ल वा भिक्ख तात वायवरसमुत्तेहि वा दोसहि सोटोअो जाओ असि वा उप्पण एतेहि कारणेहि अपत निगमण भवति ।

—सभाष्य निजीय चूर्णित भा प १३२ १३३

(ख) कल्पमयनम गा २४ २५ व २

(ग) कल्पसूत्र कल्पना व्याख्यान १ व २ ३

४ चउपाडियए अक्कते निगमो इमेहि कारणेहि—

वास न उवरमत्तो यथा वा दुग्गमा सचिक्खत्ता ।

एएहि कारणेहि अक्कत होइ निगमण ॥ ३१५०

अक्कते वासाकावे वास भोवरमइ पयो वा दुग्गमा अक्कते सचिक्खत्तो य एवमाइएहि कारणेहि चउपाडियए अक्कते निगमण भवति । ३१५०

अहंवाइमे कारणान्—

असिउ ओमोयदिण रायकुट्टे अए य मेवण्णे ।

एतेहि कारणेहि अक्कते होय निगमण ॥ ३१५१

वाहि असि ओम वा वाहि वा रायकुट्टे बोहिगादिमय वा आमाउ अपाजकारणेण वा न निगमयति ।

एतेहि कारणेहि चउपाडियए अक्कते निगमण भवति । ३१५१

—निजीयसूत्र सभाष्य चूर्णित भा

(ख) कल्पमयनम गा २६ व २

(ग) कल्पसूत्र कल्पना प ३१ समयमुद्धर ।





वर्षावाम के लिए भी वही क्षेत्र उत्तम माना जाता है जहाँ पर तेरह गुण हों। वे गुण उन प्रकार हैं—
(१) जहाँ पर विशेषकीचट न हो (२) अधिक जीवों की उत्पत्ति न हो (३) शीघ्र स्थल-निर्दोष हो, (४) रहने का स्थान
यान्तिप्रद हो (५) गोरम की अधिकता हो। (६) जन समूह विघात और मद्र हो, (७) मुज वैद्य हो, (८) औषध
मुलम हो, (९) गृहस्थ वर्ग घन धान्यादि मे समृद्ध हो, (१०) राजा प्रामित हो, (११) श्रमण ब्राह्मण का उपमान
न हाता हो, (१२) भिक्षा मुनम हो, (१३) और जहाँ पर न्याध्याय योग्य स्थान हो।^१

भगवान् ऋषभदेव और महावीर के श्रमणों के लिए वर्षावाम-पर्युषणा का अनिवार्य विधान है, येप वार्त्ति
तीर्थंकरों के श्रमणों के लिए नहीं। वे वर्षा आदि के कारण में ठहरने भी वे और वाग्गमाभाव में विचार भी करते
थे।^२

उन दम कल्पों में (१) आचेलज्य (२) औद्देशिक (३) प्रतिक्रमण (४) राजविगड (५) मान्य (६)
पर्युषणा कल्प में छह रूप अस्मिर हैं।^३ और (२) गज्यान्तर पिण्ड (२) ननुर्थ महाव्रत रूप धर्म, (३) पुण्य जेष्ठ, (४)
और कृतिकर्म ये चार कल्प अवस्थित हैं, और चौथीन ही तीर्थंकरों के गानन में होने हैं।^४

जिज्ञासा हो सकती है कि सभी तीर्थंकरों के श्रमणों का लक्ष्य मोक्ष है तो फिर प्रथम अन्तिम और दावीम
तीर्थंकरों के श्रमणों के आचार कल्प में यह धम्मण क्यों है? अस्मिर और अवस्थित रूप क्यों है।

समाधान है—प्रथम तीर्थंकर के श्रमण जट और मरल होते थे। अजिन आदि दावीम तीर्थंकरों के श्रमण
विज्ञ और मरल होते थे। महावीर के श्रमण जट और वक्र होने हैं जन मोक्षमार्ग एक होने पर भी आचार कल्प में
अन्तर किया गया है।

- १ (क) चिक्कल पाण थडिल, वसही गोरम जणाउले विज्जे ।
ओमह निचयाऽह्विई, पासठा भिन्न नज्जाए ॥

—कल्पसमर्थनम् गा० ३६, पृ० ३

- (ख) कल्पसूत्र कल्पलता पृ० ५ में उद्धृत
(ग) कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका पृ० ५ में भी उद्धृत

- २ दोनानइ मज्झिमगा, जट्टति अ पाव पुव्वकोडीवि ।
इहरा उ न मानपि हु, एव तु विदेहजिनकप्पी ॥

—कल्पसमर्थनम् गा० २८ पृ० २

- ३ (क) थोपेपु चाचेलवपादिपु पटसु अस्थितास्तत्कल्पोऽस्थितरूप उक्त च—
ठिय अट्ठितो य कप्पो, आचेलवकाइएनु ठाणेसु ।
सत्वेसु ठिया पढमो, चउठिय छनु अट्ठिया बीओ ॥

—आवश्यक निर्युक्ति, मलयगिरि वृत्ति में १२१

- (ख) आचेलवकुट्टेनिय, पठिकमणे रायपिठ मासेसु ।
पज्जुमणाकप्पम्मि य, अट्ठियकप्पो मुणेयव्वो ॥

—कल्पसमर्थनम् गा० २६ पृ० २

- ४ (क) मेज्जायर पिडमि, चाउज्जामे य पुरित्तजेहे य ।
किइकम्मस्स य करणे चत्तारि अवट्ठिया कप्पा ॥

—आवश्यक मलयगिरि वृत्ति में उद्धृत पृ० १२१

- (ख) सिज्जायरपिडमि य, चाउज्जामे य पुरिमजिहे अ ।
किइकम्मस्स य करणे, ठियकप्पो मज्झिमाणपि ॥

—कल्पसमर्थनम् गा० ३० पृ० ३

- (ग) ^१—पद्मकलिका व्या० १ पृ० ३

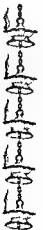
पूर्वाचार्यों ने क्या का महत्व प्राप्तपात्रन करने हुए उन्हें तत्वाय कृत्वा शोधन के समान समान के लिए हिता वह प्रतपाया है ।^१ क्या एक ऐसी आत्मान समायन है जो शोध करने पर भी और शोधमुख अवस्था में भी प्राप्य है । दोष लगा है ना गति को जानी है और दोष नहीं गया है तो आगति रहने में भूल का घन नहीं गमना ।

मल्ल भानन का श्रय की आग न जाननेवाला आध्यात्मिक उपाय है । आत्मगति का अभाव उपाय है । जीवन का निम्न बलान की एक कदा है । मरने पान स नय प्रकाश की आभा समगता मवती है और अचकार विधान ही सक्ता है ।

•

१ बाहिभवेण्ड भावे कुण्ड अभाव तप सु पठमति ।
विद्वज्जयणे न कुण्ड तप तु रसायण होइ ।
एव एतो रूपो दोसा भावे विज्ञमानो अ ।
सु दरभावाओ सजु चारितरसायण होइ ॥
एव रूपविभायो तन्दरोसहनायओ गुणेष्ववो ।
भावयञ्जओ इत्य उ सावत्पवि कारण एव ॥

—पसमयन या० ३१ से ३३ प ३



समन्तभद्र की जैनदर्शन की देन

श्री दरवारीलाल कोठिया,

एम० ए०, न्यायाचार्य, शास्त्राचार्य,
प्राध्यापक—फासी हिन्दू विज्यविद्यालय



जा० कुन्दकुन्द और गृहपिच्छ (उपास्यानि) के पश्चात् जैन वादमय में जिन मनीषी ने सर्वाधिक प्रभावित किया और यज्ञोभावन हुआ वह स्वामी समन्तभद्र हैं । ये नाद्वैत और मिश्रान्देषों में विशिष्ट सम्मान के प्रदर्शन 'स्वामी' पद में विभूषित मिलते हैं । इनका योगदान मिश्रान्देषों तथा चार्म्य के मूर्धन्य ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में बहुलतया उपलब्ध है । अवलरुदेव ने^१ ग्याह्यादमार्ग का प्रभाव और ग्याह्यादमार्ग का परिष्कार, विद्यानन्द ने^२ ग्याह्यादमार्गागामी वादिराज ने^३ मयजरा प्रदर्शन, मयगिरि ने^४ आद्यस्तुतिकार तथा मिश्रान्देषों ने^५ बीरशामन की महत्व गुणी वृद्धि करने वाला, 'शुनकेवल-पन्नानोन्नायक', 'ममस्वद्विद्यानिधि', 'आत्सवर्त्ता' एवं 'कठिनाल-गणपर' कहकर उनका कीर्तिमान किया है । प्रचार में जब तत्त्वनिर्णय ऐकान्तिक होने लगा और उसे उतना ही माना जाने लगा तथा आहृत-पम्परा कृपमानि तीर्थकारों द्वारा प्रतिपादित तत्त्वव्यवस्थापक ग्याह्यादमार्ग को भूलने लगे, तो महान् आचार्य ने उसे उज्जीवित एवं प्रभावित किया । जब ऐसे शासन-प्रभावक और तत्त्वज्ञान-प्रसारक मूर्धन्य मनीषी का विद्वानों द्वारा गुणगान हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

इनका विस्तृत परिचय और समयों का निर्णय प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता पण्डित जुगलकिशोर जी मुस्तार ने 'स्वामी समन्तभद्र' नामक इतिहास-ग्रन्थ में दिया है । वह इतना प्रमाण-पूर्ण, अधिकल और घोषात्मक है कि ४० वर्ष बाद भी उनमें संशोधन, परिवर्तन की गुंजाय प्रतीत नहीं होती, वह आज भी विल्कुल नया और चिन्तन पूर्ण है । अतएव पृष्ट समन्तभद्र के परिचयादि के सम्बन्ध में कुछ न कहकर उनकी उपलब्धियों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे ।

समन्तभद्र से पूर्व का युग

जैन अनुश्रुति के अनुसार जैनधर्म के प्रवर्तक क्रमशः काल के अन्तराल को लिए चौबीस तीर्थंकर हुए हैं । इनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव, वार्त्तिसे अग्निष्ट नेमि, तेईसवें पार्श्वनाथ और चौबीसवें वर्द्धमान-महावीर तो ऐतिहासिक

१ (क) तीर्थ सर्वपदार्थतत्त्वविषयस्याह्यादपुण्योदधेर्भग्यानामकलङ्कभाचकृतये प्राभावि काले कलौ ।

येनाचार्यसमन्तभद्रयतिना तस्मै नमः सन्ततम्

(ख) सर्वकलोकनयन परिपालयन्त

स्याह्यादवर्त्त परिजौमि समन्तभद्रम् ।

—अष्टशती आरम्भिक भगल पद्य २ तथा समाप्तिश्लोक ?

२. अष्टमहली, समाप्ति मङ्गल-पद्य १, पृ० २६५

३. पार्श्वनाथचरित १-२२

४. आवश्यक सूत्र-टीका

५. स्वामी समन्तभद्र पृ० ४६, ४७, ५० जुगलकिशोर मुस्तार



हो मरना और यदि अनन्त ही हो तो उसका उत्पाद सम्भव नहीं है जो-वृत्ति उत्पन्न होता है कि जीव मनुष्य पर्याप्त में नष्ट, वैयर्थ्य में उत्पन्न तथा जीव सामान्य में प्रवृत्त रूप में वह उत्पन्न-प्रतीत होता है। इसमें प्रतीत होता है कि कुन्दकुन्द में समय में जलवायु में दर्शन या रूप या आनि रगा या पर उभय दोनों विज्ञान नहीं हो मरना था। आ० गृहपिच्छ के नृत्यांग्मुख में कुन्दकुन्द द्वारा प्रदर्शित दर्शन के रूप में कुछ दृष्टि मिलती है। एक तो उन्होंने प्राच्य में सिद्धान्त प्रतिपादन की पद्धति को गृह्य-गद्यरूप में दृढ़ किया। इसके, उप-पत्तिपूर्वक सिद्धान्तों का निरूपण आरम्भ किया। जीवन, आगम-प्रतिपादित ज्ञान मागगायन स्यादि ज्ञानों को प्रमाण माना दी तथा उन्हें प्रत्यक्ष और परीक्षा उन दो भेदों में विभक्त किया। जीवन, दर्शनान्तर्गत में प्रत्यक्ष प्रमाण रूप में स्वीकृत स्थिति, ग्रन्थविज्ञान और अनुमान को मतिज्ञान कहकर उनका 'आगे परीक्षा' (७० सूत्र १/११) सूत्रद्वारा परीक्षा प्रमाण में ही अन्तर्भाव किया। पाचवे, नैगमादिनयों को अतीतिप्रमाण माना गया बताया। इस प्रकार उन्होंने किन्ना ही नया चिन्तन प्रारम्भ किया। उनका हॉन पर भी दर्शन में उन एतान्वयों, मयों और अनित्यता का तार्किक समाधान अभी तक नहीं आ पाया था, जो इन समय की चर्चा के विषय थे।

तत्कालीन स्थिति

विद्वत् की दूनरी-नीमरी यतावदी का समय भाग्यवर्ष के इतिहास में दागानिष्ठ गति का समय रहा है। उस समय विभिन्न दर्शनों में अनेक गान्धिकाारी विद्वान् हुए हैं। अमर और वैदिक दोनों परम्पराओं में अथर्वोप, मातृचेद, नागार्जुन, कणाद, गौतम, जैमिनि जैसे प्रतिद्वन्द्वी विद्वानों का आदिर्भाव हुआ और वे सभी दार्शनिक अपने मण्डन तथा दूसरे के उण्डन में लगे गये। मान्वाओं की वाट-नी आ गई। गृह्य-अगृह्य, शास्त्रवाद-अशास्त्रवाद, अद्वैतवाद-द्वैतवाद और अथर्ववाद-अथर्ववाद इन चारों दिगोष्ठी युगों को लेकर तत्त्व की मुख्यचर्चा होती थी और उनका चार कोटियों में विचार किया जाता था। नया वादियों का अपना उष्ट एक-एक कोटि (पक्ष) को ही मानने का आग्रह रहता था। इन खींचतान के कारण अनित्यत्व (अज्ञान) वादी मुख्य रूप से अनुयायी तत्त्व को अनिश्चित ही बतलाते थे। उपर्युक्त युगलों में लगने वाली चार कोटियाँ इस प्रकार होती थी—

१ सदसद्वाद

- १ तत्त्व सत् है।
- २ तत्त्व असत् है।
- ३ तत्त्व उभय है
- ४ तत्त्व अनुभय (अव्यव्य) है

२ शाश्वत-अशाश्वतवाद

- १ तत्त्व शाश्वत है
- २ तत्त्व अशाश्वत है
- ३ तत्त्व उभय है
- ४ तत्त्व अनुभय है

- १ सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाच्च ये नया।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितिह ते ॥

—त्वयम्भूस्तो० श्लोक १०९, समन्तभद्र

- २ दीर्घनिकोय सामञ्ज्य फलमुक्त में मज्ज का मन 'अमरा-विक्षेपवाद' के रूप में मिलता है। अमरा एक प्रकार की मछली का नाम है। उसके समान विक्षेप (अस्थिरता) का होना—मानना 'अमरा विक्षेपवाद' है।

३ द्वत अद्वतवाद

- १ तत्त्व द्वत है
- २ तत्त्व अद्वत है
- ३ तत्त्व उभय है
- ४ तत्त्व अनभय है

४ वचतव्यावचयवाद

- १ तत्त्व वचन-य है
- २ तत्त्व अवचत-य है
- ३ तत्त्व उभय है
- ४ तत्त्व अनुभव है

समतभद्र की देन

समतभद्र ने प्रतिपादन किया कि तत्त्व उल्लेख के लिए ही कोटिया में समाप्त नहीं है अपितु सात कोटिया में वह पूर्ण होता है।^१ उन्होंने बताया कि तत्त्व जनक-तत्त्व है — एकात्मक तत्त्व और अनेक-तत्त्व विरोधी दोनों धर्मों (सत् प्रकृत, नास्त्व अगाद्वन) एक-अनेक भाषा व युगल के अध्ययन से प्रकाश में आने वाले वस्तुगत सात धर्मों का समुच्चय है।^२ और ऐसे ऐसे अनन्त सत्प्रकृत समुच्चय विराट् अंतरात्मिक तत्त्व मात्र में अनन्त गहरों की तरह लहरा रहे हैं और इन्हीं में उसमें अनन्त सत्त्व नाशिया (सत्त्वमज्ञिया) धरी पड़ी हैं।^३ हाँ इन्हीं को सत्त्व और समन्वित होना चाहिए। उसमें ध्यान रहे कि वह जब तत्त्व का अन्त एक कोटि से बढ़ा या देखा जान तो यह समझ कि तत्त्व (वस्तु) में वचन धर्म नामक अनेकता रहता हुआ भी उसमें विद्यमान अथवा धर्मों का

- १ इत्यादि सवधकात्तरागात् त्रिवत्तविधिभिः ।
सत्तभङ्गनापेक्षो ह्यादेयविधिष्व ॥

—आप्तमो० का १०४ ।

- २ (अ) तत्त्व त्रिवेकात्मनैव रूपम् ।

युक्तयुग का ४६ ।

- (आ) एकात्मद्विगतिरपि तत्त्वं प्रमाणसिद्ध सवत्तस्वभावम् ।

—स्वयम्भूतो ४१ ।

- (इ) सत्त्व नास्त्वयं दृष्ट्यैकमात्रात्तर सवधियेयमन्वयम् ।

दृष्ट विमिश्र तदुपाधिभेदात् त्रिवेदि नतरपदं धरेणम् ॥

—युक्तयुगा का० २२ ।

- ३ (क) विधिनियेयोऽनमिकाप्यता च त्रिवेकस्त्रिविधः एक एव ।

प्रयो विरुद्धात्तय सत्तयाऽमी स्याद्वद्वे नैवा सत्त्वैः प्रभेदे ॥

युक्तयुग का ४३ ।

- (ख) विधय वाय धातुमपमुमय मित्रमपि तत्

विधेय प्रत्येक नियमाविषय-सापरिमित ।

सद-यो-मापेश सकलभुवन-देहगुरुणा

यथा गीत तत्त्व दृष्टमयविधिलेखरत्न-गात् ॥

—स्वयम्भूतो का ११८ ।



निषेधक नहीं है । केवल वह विवक्षावश मुख्य और अविवक्षावश अन्य धर्म गीत है ।^१ उसे ठीक तरह समझने और कहने के लिए उन्होंने प्रत्येक कोटि (भङ्ग वचन प्रकार) के साथ 'स्यात्' निषान-पद लगाने की सफाई की^२ और 'स्यात्' का अर्थ 'कथञ्चित्'—हिमी एक दृष्टि—हिमी एक अपेक्षा बनलाया ।^३ साथ ही उन्होंने प्रत्येक कोटि की निर्णयात्मकता को प्रकट करने के लिए प्रत्येक वाक्य के साथ 'एव' शब्द पद वा प्रयोग भी निर्दिष्ट किया,^४ जिससे उस कोटि की वास्तविकता—निश्चयात्मकता प्रमाणित हो, गान्तरिकता या गान्तरिकता नहीं । तत्प्रतिपादन की इन बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने एक नया नाम भी दिया । वह नाम है 'मन्त्रिणी प्रक्रिया' - मन्त्रमन्त्री अथवा मन्त्रमन्त्रन ।^५ मन्त्रमन्त्र की वह परिष्कृत मन्त्रमन्त्री इस प्रकार प्रस्तुत हुई—

मन्त्रमन्त्राद

- १ स्यात् मन्त्रमन्त्री ही तत्त्व है ।
- २ स्यात् अमन्त्रमन्त्री ही तत्त्व है ।
- ३ स्यात् उभयमन्त्र ही तत्त्व है ।
- ४ स्यात् अनुमय (अवयव) मन्त्र ही तत्त्व है ।
- ५ स्यात् मन्त्र और अवयवमन्त्र ही तत्त्व है ।
- ६ स्यात् अमन्त्र और अवयवमन्त्र ही तत्त्व है ।
- ७ स्यात् मन्त्र और अमन्त्र तथा अवयवमन्त्र ही तत्त्व है ।

इस मन्त्रमन्त्री में प्रथम भङ्ग स्वतन्त्र-क्षेत्र-पाल-भाव की अपेक्षा में, द्वितीय परस्पर-क्षेत्र-पाल-भाव की अपेक्षा में, तृतीय दोनों की सम्मिश्रित अपेक्षाओं में, चतुर्थ दोनों को एक साथ कहने की अपेक्षा में, पञ्चम प्रथम-चतुर्थके

१. (क) विधिनिषेधश्च कथञ्चिद्विष्टो
विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था ।

—स्वयम्भूतो० का० २५

(ख) विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्योगुणोऽविवक्षो न निरात्मरुस्ते ।

—वही, का० १३

(ग) वाक्येत्वेनेकान्तद्योती गम्य प्रति विशेषणम् ।

स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि ॥

—आप्तमी० का० १०३

२ (आ) तद्द्योतन स्याद् गुणतो निपात ।

—युक्त्यनु०, ४३

३. स्याद्वा सर्वथैकान्तःस्यागात् किवृत्तचिद्विधि ।

—आप्तमी० का० १०४

४ (क) यदेवकारोपहित पद तदस्वार्थत स्वार्थमवच्छिनत्ति ।

—युक्त्यनु० का० ११४

(ख) अनुक्त-तुल्य यदनेवकार व्यावृत्त्यभावान्तिथम-द्वयेऽपि ।

—वही, का० ४०

५ प्रक्रिया भङ्गिनीमेना नयैर्नयविशारद.

आप्तमी० का० २३ ।

६ सप्तभङ्गनयापेक्ष

वही, का० १०४ ।



८ वाच्य का स्वरूप ।^१

९ वाचक का स्वरूप ।^२

१० अभाव का वस्तु धर्म निरूपण एवं भावान्तर कथन ।^३

११ तत्त्व का अनजान रूप प्रतिपादन ।^४

१२ अनेकान्त का स्वरूप ।^५

१३ अनेकान्त में भी अनेकान्त की योजना ।^६

१४ जैनदर्शन में अवस्तु का स्वरूप ।^७

१५ स्यात् निपात का स्वरूप ।^८

१६ अनुमान में सर्वज्ञ की सिद्धि ।^९

१७ युक्ति पूर्वक स्वाहाद की व्याख्या ।^{१०}

१८ आप्त का तार्किक स्वरूप ।^{११}

१९ वस्तु (द्रव्य-प्रमेय) का स्वरूप ।^{१२}

जैन न्याय के इन उपकरणों का उपयोग अथवा विकास करने के कारण ही मनीषीगण ने ममन्तभद्र को जैनन्याय का आद्य-प्रवर्तक कहा है ^{१३}

कृतियाँ

ममन्तभद्र की ५ कृतियाँ उल्लेख हैं—

१. देवागम—इसे आप्तमीमांसा भी कहते हैं । इसमें दस परिच्छेद और ११४ कारिकाएँ हैं। यह समन्तनन्द की मद्रमे अधिक लोकप्रसिद्ध और प्रभावपूर्ण रचना है ।

२. न्ययम्भूस्तोत्र—इसमें चौबीस तीर्थंकरों का दार्शनिक झंझ में गुणस्तवन है और १४६ श्लोक हैं जो बह्वन गम्भीर और दुरुह हैं ।

१. वही, का० १११, ११२

२. वही, का० १०६

३. मत्स्यनाबोऽपि च वस्तुधर्म
भावान्तर भाववदहसन्ने

—युक्तयनु० वा० ५६

४. युक्तयनु० का० २३

५. आप्तमी० का० १०७, १०८

६. न्ययम्भूस्तो० का० १०३

७. आप्तमी० का० ४८, १०५

८. न्ययम्भू० का० १०२

९. आप्तमी० का० ५

१०. वही, का० ११३

११. वही, का० ४, ५, ६

१२. वही, का० १०७

१३. जैनदर्शन (मानिक)—स्वाहाद अंक वर्ष २, अंक ४-५. पृ० १७० ।

३ सुवपुनगातन—यह ६४ पद्यों की अत्यन्त सम्पन्न और जटिल दागनिक कृति है। इसमें योगजिन की स्तुति की गई है।

४ त्रिन गतिव—यह स्तुति विद्या का कहने है। इसमें ११६ पद्यों का द्वारा चौदह तीक्ष्णता का स्तुति प्रस्तुत की गई है। यह आलंकारिक प्रमुख नाट्य रचना है।

५ रत्नचरणव आचाराचार यह उपनिषद् विषयक १३ पद्यों का अत्यन्त प्राचीन और तात्पर्य प्रस्तुत की कृति है।

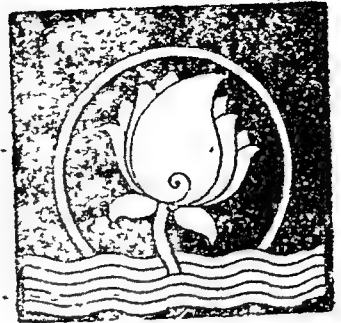
अन्य गानों का तीन गानों की चौबीसवाँ और चौबीसवाँ धर्मिक (आचार विषयक) कविता है। इनके प्रतिस्तिन भी समन्तमन्त्र की जीवितिकिती तीनों कुछ बनिषा के उत्प्रेष मिलते हैं पर वे अनुपलब्ध हैं।

इस प्रकार यह देवते हैं कि समन्तमन्त्र की गीतगाँ का अर्थ देन है। इसी में सम्भव उत्तरवर्ती प्रथम बारो गारा उन्हें सम्मान दिया गया है और उनके प्रतिष्ठापन का प्रमाणवाक्य मानकर उन्हें अपने प्रथम म उक्त शरण अर्पण करने को प्रमाणित एवं समर्थित किया है।



मुनियों व योगियों के अद्भुत अनुभव

श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'



ममग्र भारतीय अध्यात्मसाधना का चरम लक्ष्य पारमात्मिक भाव की उपलब्धि है। आर्थों की आत्मा में सम्पूर्ण आनन्दमूलक जो आस्था है, वह साधक को निरन्तर आगे बढ़ने हेतु प्रेरित करती रहती है।

आत्मपरक समस्त वाङ्मय का यह स्पष्ट उद्घोष है कि कर्म विघ्न और विकृति, ये आत्मस्वभाव नहीं है। जो आत्मस्वभाव है वह इन से परे, अनिर्वचनीय सम्पूर्ण अविनाशी आनन्द में ओतप्रोत है। वह आत्मस्वभाव अमिन्न होते हुए भी सहज-अनायाम व्यक्त नहीं होता। उसे पाने के लिये वैसाविक यत्तियों में मग्न रह कर उन्हें आत्यन्तिक रूप में समाप्त करना पड़ना है। तभी आत्मा अपने ज्ञान दर्शन नुस् और वीर्य रूप सम्पूर्ण स्वभाव वैभव को प्राप्त कर पाता है।

ऐसी ही दृढ़ मान्यताओं के आधार पर आर्य साधकों की साधनाएँ खड़ी होती हैं तथा श्रद्धा और अनुभव के सहारे आगे बढ़ती हैं। प्राचीन ऋषि महर्षि व लोकोत्तम महापुरुषों ने दीर्घ साधनाएँ करके सत्य का साक्षात्कार किया और उसकी व्याख्याएँ प्रस्तुत की जो कई धर्मों व पथों के रूप में आज विद्यमान हैं।

लक्ष्य एक होते हुए भी प्रक्रियाओं में जो भिन्नता है वह देश काल तथा अधिकारी व अनुभव की दृष्टि से समझना चाहिये।

उन विभिन्न प्रक्रियाओं को, जिनमें से कई प्रसिद्ध तथा कई गुप्त हैं, अपनाकर साधक जब साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ता है तो उसे कई तरह के अनुभव होते हैं। वे अनुभव बड़े विभिन्न तथा आश्चर्यपूर्ण हैं। सामान्यतया उनको दो भागों में बांट सकते हैं —

(१) वे अनुभव जो अध्यात्मसाधना में सहायक बनकर साधक के उत्साह को बढ़ाते हैं।

(२) वे अनुभव जो साधक को आकर्षित करके चमत्कृत कर देते हैं। अपरिपक्व साधक उन चमत्कारों में उलझ कर साधनापथ से च्युत हो जाया करते हैं।

अध्यात्मसाधना के क्षेत्र में जैनधर्मानुसार प्रत्येक साधक को अपना लक्ष्य पाने के लिए चौदह भूमिकाएँ पार करनी होती हैं। जिन्हें चौदह गुणस्थान कहते हैं।

ये तो लक्ष्य पाने तक साधक में योग्यता तथा अनुभवों की दृष्टि से अनेक परिवर्तन होते हैं किन्तु जो परिवर्तन प्रमुख तथा ग्राह्य हैं उनकी दृष्टि से ही यह विभाग है।

जैनेन्द्र (आर्हत) साधना करने वाला एक सफल साधक प्रारम्भ में अन्त तक अपने अन्तर-बाह्य परिवर्तनों को प्रत्यक्ष अनुभव करता है, कर्म प्रकृतियों के क्षय और उपजम को समझता भी है और उनकी आत्मदृष्टि विवेचना भी करता है।

इसके कई बजाहरण नास्त्यों में और अत्यन्त उपन्यास होने हैं। तीसरे अपने भोगावली (उदय में आनन्द) के भी और उनकी स्थिति का गहल हो पहचान लेते हैं। फिर भी व नमन उन्मय में आने बात वनों का भोग कर निर्माण करते हैं।

अन्तिम मिथ्यान्वय से निवृत्त होकर सम्यक्त्व में विचरण करने वाली आत्मा को अन्तः आनन्द का साक्षात् अनुभव होता है यद्यपि एव अनुभव मूल्य व अनमयवर्ग्य हैं किन्तु आत्मा से पर नहीं हैं। महान् आध्यात्मिक महर्षि आनन्दधनजी ने ऐसे ही अनुभव आनन्द का अनुभव प्रकट करते हुए कहा —

अब हम अमर भये न मरेंगे

प्राथम्य जीवन में अमरता की निर्व्यय्योति कर्मण्य परंपरा के अनुभव बिना प्रकट हो नहीं सकती।

साधक को उच्च भूमिका में जाने पर ही ऐसा अनुभव होता हो ऐसा बात नहीं साधारणतया सम्यक्त्व (सत्य) लाभ होने होते भी उसे विवर्धन अनुभव होना लगता है। श्रीमदरासवन् न कहा —

हान मोह व्यतीत पयो उपयो बोध यो

देहिमि न केवल स्वतन्त्र ज्ञान यो ।

भैरवज्ञान का प्रारम्भिक अनुभव का नवान साधक के लिये अनुभव हो जाता है।

धर्मयुक्त साधना में गतिमान होने पर अनुभवों का नया नया खजाना खुलता रहता है। एक जगह उपासक आनन्द के दृष्टान्त गीतम की बताया कि मुझे विविध अवधिज्ञान है। किन्तु श्रीमद्भूति का विवचन न हो हुआ कि एक गहल्य आवक को भी इतना उच्च ज्ञानानुभव हो सकता है। अतः ये धर्मण्य भगवन्त मन्वीर ने आनन्द की बात का समर्थन किया तब कहा योगीश्वर का साथ भिन्न।

जन्म पद त का साधक नम्र जयधि (नमस्त स्वरूपान पन्थों को जान लेना) मन पर्याप्त (मन व स्वल्प का प्रत्यक्ष लेखना) कवचान्न (भारतिका सावकाशिक समस्त अभिव्यक्तियों का सबका सा आस्वाद होना) के मन्त्र अनुभव का गता है। नम्र अनिरुक्त तेजो या (अग्निमयी दृष्टि) आहारकरीर सिद्धि (समाधान प्राप्ति का साधन विनिर्गरीर) वस्त्रिगरीर (विविध प्रकार की आकृतियाँ बनाने की क्षमता) जपाचारण विद्याचारण आदि गगनगामीनी विद्याएं आदि कई प्रकार की लक्ष्यता का भी प्राप्त कर लेता है जिनका प्रयोग समय की विराघना (समय में हासि) कर जाता है। मुनिबा के अनेक गानानुभव तथा लक्ष्यता के प्रयोगों की बातें साम्ना और करिओ में उपलब्ध होती हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने भी अपने योगसूत्र में ऐसे कई अनुभवों की बातें की हैं जो यह विविध गते हैं।

(१) पतञ्जलसूत्र^१ (युनि दृष्ट और आनुमानिक सत्यत्व से भी अधिगम्यता वाली बुद्धि)।

(२) अध्यात्मप्रसाद^२ (निर्विचार समाधि में प्राप्त होने वाला अन्तर का अनुभव)।

स्वरूपावस्थान^३ (निर्विजगमावि श्रुतमरा के सत्कारों का भी गिन जाना) जग उच्चतम आध्यात्मिक अनुभव का साधक के लिये है। किन्तु योगी योगी के अउद्यानसिद्धि अतवन्निधि मरिन्सिद्धि परागरीरप्रवेग उत्तान्ति गगनगमन अणिमा महिमा लपिमा महिमा आदि अनेकान्य एही सिद्धि या श्रुद्धि का भी प्राप्त हो जाया करनी है जो अत्यन्त आनन्दजनक हैं।

१ अतानुमानप्रज्ञायाम-विविधता विवेकायस्त्वत्त (योगसूत्र)

२ निर्विचारयगारछाप्पारमप्रसाद (योगसूत्र)

३ सत्काराणि निरीये सत्काराध्यात्मिनीज्ञ समाधि (योगसूत्र)





इसमें कोई मदेह नहीं कि महर्षि पतञ्जलि ने भी ऋद्धियो और सिद्धियो को हेय ही माना है। उन्होंने कहा कि साध्य^१ के मिद्ध होने से पूर्व कई लालच आते हैं। न तो उनमें उलझना चाहिये और न उनका अभिमान ही करना चाहिये, अन्यथा पुन महादुःख आ सकता है।

जैनेन्द्र साधना तथा योगसूत्रीय प्रक्रिया के अनुभव विचित्र अवश्य लगते हैं किन्तु रहस्यपूर्णता आध्यात्मिक अनुभवों की एक और ऐसी विशेषता है जो अत्यन्त अनिर्वचनीय तथा दुर्लभ है। रहस्यमय विचित्र अनुभव के बीज स्मृतियों में भी पाये जाते हैं। एक जगह उल्लेख है कि^२ चन्द्रमंडल में आकर एक स्त्री ने दो को खाया, तदनन्तर तीसरा पैदा होता है वह अजर-अमर होता है।

एक जगह ऐसा कहा गया-नाभिदेश^३ में एक जलता हुआ सूर्य है और तालमूल में अमृतमय चन्द्रमा नित्य स्थित है। अधोमुख चन्द्र वर्षता है और ऊर्ध्वमुख सूर्य ग्रहण करना है। वहाँ पर जिसके द्वारा अमृत पाया जा सके उस कारण को जानना चाहिये।

तनिक मोचिये उपर्युक्त अनुभवपूर्ण निर्देश के सत्य रहस्य को अनायाम कौन पा सकता है ?

रहस्यमय राजयोग और हठयोग के अनेक अनुभवों का चित्रण हमें योगियों व मतों की अनुभववाणियों में भी मिलता है। प्रसिद्ध योगी गोरखनाथ का एक पद देखिये —

देह में महादेव विराजे, गुप्त गुणेश सहलाणी ।
सिख सगति देवी हाजर बोले—पायर पूजे नर कहा जाणी ॥
पर बस फोड एक गंगा खल की चहुँ दिस पाणी पाणी ।
उस परबत पर दोय मछली बैठी जिसमें नीर घण जाणी ॥
चाच नई ज्याके पाख नई वो झूल रई जल ताणी ।
सच बचना सू चढी सिखर गढ बोले अनहद वाणी ।
मछद्रि परताप जती गोरख बोलिया छाणिया दूध ने पाणी ॥

—(गोरखवाणी)

सत कवीरदासजी ने भी ऐसे अनुभवों का कई भजनों में वर्णन किया है। एक दोहे में ही जो अकल कला का खेल बना दिया वह कम आश्चर्यपूर्ण नहीं है। वह दोहा है—

घरता गगन के अन्तरे, चंद सूर के मेल ।

जो जोगी गुरु मुख लहे तउ अकल कला का खेल ॥

ऐसे ही गोस्वामी तुलसीदासजी, पलटूदासजी, सत रेदासजी, ईसरदामजी, वालकदासजी, केसोदासजी आदि अनेक भक्तों, मतों के पदों, भजनों व वाणियों में ऐसे रहस्यमय अद्भुत अनुभवों का चमत्कारपूर्ण वर्णन पाया जाता है।

१. स्वान्धुपनिमन्त्रणे सगस्मयाऽकरण पुनरनिष्टप्रसगात् (योगसूत्र)

२. एका स्त्री भुज्यते द्वाभ्यामागता चन्द्रमंडले ।

तृतीयो य पुनस्ताभ्या, स भवेदजरामर ॥

३. नामिदेशे च सत्येको भास्करो दहनात्मक ।

अमृतात्मा स्थितो नित्य तालमूले च चन्द्रमा ।

वर्षत्यधोमुखश्चन्द्र ग्रहणात्यूर्ध्वमुखो रवि ।

ज्ञातव्य कारण तत्र येन पीयूषमाप्यते ॥

अनुभव अनभव का अपने दृष्टि से वाणी का रूप दन को एक रश्मि परम्परा रती है जो अतः विद्यमान है। विदुः साधक इम बात का है कि युग के अन्त में पवित्रता में भी इनके रहस्य में कोई कमा नहीं आता। वह उपाय का त्याग विद्यमान है।

प्रसिद्ध योगीश्वर बतुराणि जी का गुरु राजाजी गुमानसिन्हा अधिक प्राचीन नहीं है किन्तु उनके साथ भी भवन में आध्यात्मिक अनभव का जो रहस्यपूर्ण चरण है वह प्राचीन किसी योगी की वाणी से कम नहीं है।

अनुभव अनुभव का एक अविच्छिन्न परम्परा के साथ सहित जाना ही जाता है कि अध्यात्मवित्तन मनन ध्यान योग और समाधि से व्यक्त होन वाला एक ऐसा अतन्त्रित अवस्था है जिस साधारण तथा स्फूर्तपुष्टि अथवा समान ही नहीं करता।

आश्चर्यपूर्ण विविध अनभवों में परिपूर्ण उस अध्यात्मवित्तन और उसकी सिद्धांता को हम एक साथ माला निरूपित तो कह ही नहीं सकते क्योंकि यह राई में अन्तर छानवाने के बिना किसी बात के विषय में निगल देना अनधि कारक्य है।

आजका समाचारपत्रों में महर्षि मणिकी इयानसाधना की चर्चा है जिसमें पवित्र के वीर्य और कई विज्ञान प्रभावित होकर भारत में योगसाधना होना शुरू हो गई है। आध्यात्मिक क्षेत्र की यह एक और चमत्कारपूर्ण विजय है जो मित्र करती है कि योगियों का अनभव का मान कल्पना नहीं है अथवा वास्तविकता है।

हम देखते हैं कि प्रत्येक जातिगत मान्यता परम्परा के मूल में कुछ सचवां गलत होने हैं किन्तु आधार पर वह सत्यता मिलती है मात्र करुणा का दर पर खड़ी परम्पराएँ टिक नहीं पाती।

अध्यात्मगत चर्चा विज्ञान परम्परा का अब तक टिकी है तो इससे मूल में अक्षय्य गलत है। अथवा यह सत्य मानना अथवा महर्षि जा समस्त गुणगुणियों का दुःखकर समस्त मानवों की समाप्ति कर आत्मसाधन में प्रवृत्त होने हैं कमा अनव प्रलम्ब निरूपण नहीं करते।

यह तो हम सोच ही नहीं सकते कि तब तो यह भी महान् प्राप्तिवत्त करन वाले तन मनि सहामा निनात कभी-कभी तन गलत करने और बड़ान रहें। अन भूतियों व योगियों का अभ्यस अनुभव में गलती की पूरा चमत्कार है। फिर भी आज का युग विज्ञान का युग है। हर क्षेत्र में अनवधान चला रहा है। मनोविज्ञान की तरफ भी कई परीक्षण और इन्टरनेट तथ्य सामने आ रहे हैं। और भी परीक्षण के जा रहे हैं।

कदा ही जाना है आज का वैज्ञानिक दम परमान अनभव का गुण खोजने को भी अपने निगल की पात्रियों से निगल का वलन करें। यह एक सच्चा प्रगतिशील प्रवास हाथा किन्तु क्या यह सत्य प्रवास निरूपित किन्तु अध्यात्ममुष्टी दृष्टि का प्रभाव है। सच है यह सत्य प्रवास का मान्य ही मस्तिष्क में उभर रहा है।

१. प्रगट कीध क्षायक मुक्त चक्षुष सोनय प्रवण तीर लापने अनवमुक्त होतय ।
मुमांश द्वार देखत हृत्स्थ जीवको हृद्य भजो भुमत् देवदत्त गम नित सोनय ॥
अनोत्त देम आय वे प्रगत मद्रु योगय अगम्य धाम देखत प्रवह मुक्त भोगय ॥
अनड जोति है वहां गु दीध मातवो अय ।
अनेक बस आत जान पुण तीरम देरय मुपन घन बाग म वसादि भुत रहे रव ॥
विपत्ती तीर होके परत गाह बंद यं ।
मुपा लु घट पोवय हरवत् भुत यह हम सिद्ध हुकम पाय के अतक बार भोमम ॥

—(धोरा भवन)



आत्म-परमात्मवाद

प्रो० जयन्तीप्रसाद जैन

एम० ए०, शास्त्री



बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी सवाद में कहा गया है— “अरे मैत्रेयी, पत्यु कामाय प्रिया प्रिया न भवन्ति, आत्मनस्तु कामाय प्रिया प्रिया भवन्ति ।” “पुत्राणा कामाय पुत्रा प्रिया न भवन्ति, आत्मनस्तु कामाय ।” पति के सुख के लिए पत्नी को पति प्रिय नहीं होता अपितु अपने सुख के लिए होता है । पुत्र के सुख के लिए पुत्र, माता के सुख के लिए माता, लोगों के सुख के लिए लोग, देवों के सुख के लिए देव प्रिय नहीं होते किन्तु ये सब आत्म-सुख के कारण ही प्रिय होते हैं । अत आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करना चाहिए ।

वस्तुतः श्रेयोमार्ग की प्राप्त्यभिलाषा आत्मा में ही है । जैसा कि आचार्य अकलकदेव ने “राजवार्तिक” प्रथमाध्याय, प्रथमाह्निक में कहा भी है—“श्रेयोमार्गप्रपित्सात आत्म-द्रव्यप्रसिद्धे ।” अनात्म को सुख-दुःख का परिचय भी क्या ? अन उसे निजी सकल्प में व्यक्त होने वाला तत्त्व कहा गया है । यशस्तिलक चम्पूकार आचार्य सोमदेव ने उसके विशेषण दिये हैं —

“ज्ञाता वृष्टा महान् सूक्ष्म, कृतिभुवत्यो स्वय प्रभु ।
भोगायतनमात्रोय, स्वभावादूर्ध्वग पुमान् ॥”

(पण्डाश्वास, १०४ श्लोक)

आचार्य नेमिचन्द्र ने लिखा है—

“जीवो उवओगमओ, अमुक्ति कत्ता सदेह-परिमाणो ।
भोक्ता ससारत्यो सिद्धो सो विस्ससोड्डुगई ॥”

(द्रव्यसंग्रह, २ गाथा)

पचास्तिकाय में आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं—

“जीवोत्ति हवदि चेदा, उवओगविसेसिदो पहू कत्ता ।
भोक्ता य देहमत्तो, णहि मुत्तो कम्मसजुत्तो ॥२७॥”

भाव सबका एक ही है कि आत्मा चेतन, उपयोगवान, प्रभु, कर्त्ता, भोक्ता, देहमात्र, मूर्ति रहित, एवं कर्मसंयुक्त है । स्वभावात् ऊर्ध्वगामी भी है ।

गीता में इसी के लिए निम्न विशेषण दिये गये हैं—

“न जायते वा म्रियते कदाचिन्नाय भूत्वा भविता पुनश्च ।
अजोऽव्यय आक्षतोऽय पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥”

तथा

न न द्विदन्ति गह्वराणि न न बहुति पावक ।
न च न बलेदयत्पापो न शोषयति साक्षत ॥

वट अज अमर अविनाशी "नन्दत चिरन्ता" न एव सत्ता विद्यमान सत्त्व है । "गरीर के नाग म भी अ प्रपन्न है ! सत्त्व अग्नि जगत्त्व बायु को भी पट्टन म दूर है ।

"गरीरस्व एव स्वानुभूति गम्य इय आत्मा म अनेक कविता को मूर्तिमा सुप्रचरित है ! यथा—

प्रानम पतिषां सव शिषू जव शुभ हाउ विभेग ।
तन म मन म नन म साका कहा मन्ग ॥

गुलना कौजि—

आपका था म एत था विनयित कसा ?
सम्तीग कुल हू में हाइन नहो मयछने का ॥

तथा

करें हम किम का पूजा और गायें जिसको चन्त हय ।
सनम हम दर हम बुठछामा म तुत तम विरमन लय ॥

पर कसबा म अब भी नहीं कि कनिषा को बि ठुल भुला गिया जाय ।

न मो शोषम कि मज आलम जदा बाग ।
बहुर कार नि बाग बाधुन बाग ॥

अर्थात्

सर कर और दूर स
गुल छप उस गुनजार क
पर बना अपन मज का
मन को मत कि दार हार ॥

(स्वामी रामतील के उपदेशो म)

अनक दानकारा न हमका सिद्धि का प्रपास किया है । भौतिकवादिषा का समधान हुए आचार्य विद्यानाथ अपने आकाशिका मे लिखने हैं—

स्वसवेदनत सिद्ध सदात्मा वाचयजित्वा ।
तस्य क्षमादिनिवर्ता मपासयनुपपत्ति ॥१२॥

अर्थात् आत्मा को जद का परिणाम मानने पर स्वसवन्द ज्ञान सिद्ध नहीं होता । आत्मा की उगो जान स सिद्धि है । भूत घट पटादि वस्तुओं म स्वसवन्द नहीं है ।

स्वसवेदनमप्यस्त बहि करणवन्नान ।
अहकारास्पद स्पष्टमवायमनुपपत्ते ॥१३॥

बाह्य पावा इत्यादि स रहित में मैं इस निवाय प्रतीतिस्वरूप स्वसवन्द प्रत्यक्ष स आत्मा का अनुभव होता है । आचार्य दाकर ने लिखा है—

सर्वो हि आत्मास्तिस्व प्रत्येति न नाहमस्मोति ।
यदि नात्मास्वप्रसिद्धि हयात सोको नाहमस्मोति प्रतीयान ।

(ब्राह्मसूत्र भाष्य १११)





ऐसा कोई नहीं है जो चिन्त्वाम करे—“मैं नहीं हूँ। यदि आत्मा का अस्तित्व नहीं होता तो मनुष्य अपने अस्तित्व का ही मोधा जान होता। वैशेषिक दर्शनकार कहते हैं—

‘अहमिति प्रत्यगात्मनि भादान् परमाभावादर्थान्तरप्रत्यक्ष ॥१४॥

(प्र० ३, आ० २)

“मैं हूँ” इस प्रकार आत्मा में अनुभूति होना और पर पदार्थ में न होना यह आत्मा का मानसिक प्रत्यक्ष है।

न्यायसूत्रकार के मन में भी आत्मा इन्द्रियों से भिन्न है। हम एक वस्तु को अपनी आँखों से देखते हैं। चक्कर होने से उसे अपने हाथ से छूने हैं। उस प्रीति में हम वस्तु को एक ही समझते हैं। दो इन्द्रियों से माद्य उस अनुभव में यदि आत्मा इन्द्रिय रूप होता तो वस्तु कैसे पहचानी जाती कि वही है।

(न्यायसूत्र ३-१।१।३)

दाहिने हाथ से छुए गये पदार्थ को बाएँ हाथ से छूने पर उसी एतना ता ठण्ड नहीं होता। (३-१-७) एक इन्द्रिय का प्रभाव दूसरी इन्द्रिय पर पड़ता है। वृक्ष पर लटकने हुए आमों का दृश्य देखनी है पर जल में पानी टपकने लगता है। यदि आत्मा इन्द्रियात्मक होता तो यह बात न होती। उसी कारण पूर्वकाल में आम्बादित आम का स्मरण ही है।

उसने स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्रियाः स्वयं कर्ता नहीं बरन करण हैं। विभिन्न इन्द्रियों द्वारा रूप रस आदि का अनुभव करने वाला तत्त्व एक ही है और वही आत्मा है। (३-१-१०)

चक्षु इन्द्रिय के लट्ट होने पर भी पहले उसके द्वारा अनुभूत पदार्थ का स्मरण होता है। हमने भी यही निश्चिन्ता है कि जानने वाला इन्द्रियों से भिन्न आत्मा ही है।

अनेक आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् भी आत्मतत्त्व की मत्ता, आवश्यकता एवं विशेषताओं की ओर उन्मुख हो रहे हैं। पुनर्जन्मादि की शतश प्रामाणिक घटनाएँ उन ओर महायक सिद्ध हो गन्ती हैं।

प्रो० फे० स्पेर्डी के मन में ‘मैं’ एक अध्यात्म मत्ता है। एक अन्य वैज्ञानिक के अनुसार “यदि हम मनुष्य इस जीवन में ही अन्त होता है तो प्रकृति की शक्ति का व्यर्थ अपव्यय मानना चाहिए। पर यह असम्भव है।” एक कहते हैं—“परिस्थिति से उत्पन्न अनुभवों को भौतिकवादियों के यथोक्त गणितज्ञों के मापों द्वारा नापना असम्भव है। आसू एवं पानी निकलने के नियम तब तो अभी स्पष्ट नहीं है।”

पृथ्वी पर गिरने वाले तारकाओं द्वारा जीवन का बीज हमारे पाम पहुँचा-यह कैसे सम्भव है ? क्या प्रोटो-प्लाज्म में इतनी शक्ति है कि तारकाओं द्वारा पृथ्वी पर पहुँचने तक उसमें जीवन अवशिष्ट रहा होगा ? अथवा हजारों मील प्रति सैकड़ उड़ने वाले श्रुत परमाणु अपना ज्ञान दूसरे परमाणुओं में डाल सकते होंगे ? जब कि एक विद्यार्थी गुरु से बीस वर्ष पढ़ कर भी किसी बात को मूल न करता है। वस्तुतः भौतिक-विज्ञान की पहुँच के बाहर भी पदार्थों का अस्तित्व है। हैकल एवं हमले का युग अब प्रभावक नहीं रहा है। जुद्ध यात्रिक पित्राओं में व्याम, कालिदाम, होमर, हेमचन्द्र एवं रवीन्द्र का जन्म असम्भव ही है।

मस्तिष्क शास्त्र के जन्मदाता “गाल” के अनुसार देखने, सुनने, स्पर्श करने, प्रेम, विचार अथवा स्मरण करने वाली एक ही वस्तु होनी चाहिए। उसके पास भौतिक साधन अवश्य अनेक होंगे। यही तो उपनिषद्-कारों के इस वचन में भी सिद्ध हुआ है कि—

एष हि दृष्टा, स्पृष्टा श्रोता, घ्राता, रसयिता मन्ता, बोद्धा, कर्ता विज्ञानात्मा पुरुष ॥”

मृत्यु ही है रथ की गति देखकर सारथि का अनुमान होता है तो इन्द्रियों की प्रवृत्ति देखकर आत्मा का अनुमान क्यों न हो ?

प्रवर्तयानुमेयोप रथ गद्येव सारथि ।

परन्तु वह सारथि तब स्वयं रथ चलाये। वह सारथि हीन गच्छति गच्छति मत्ता है। अनिमित्त मन्थान एव चतना गुणमय है।

अरसमहवमथ अरस चेतनगुणममह ।

जाण अनिमित्तगुण जीवमनिमित्तगुण ।

(ध्या० बन्धुद समवसार जीवानीवाचिहार ४६ ।)

[२]

रथ गणित गुप्त म प्रत्याशा और बन्धुद्वारा क मन्थान स आम परव कर अन्त प्रमाण प्रत्या है। वह म प्रचार है।

प्रश्नेगी—भगवन् ! आपका मतान है कि जीव एक गरीब भिन २ है। परन्तु गुप्त धान मरी समान म मत्ता आती। ऐश्वर्य मरे दादा वने अग्रामिन थ। अपनी प्रजा का धानन पापण टीक तरह न। करत थे। आपका कथनानुसार व मर कर मरक म गये हैं। अपने दादा का मैं लाज्य पाया था। अब यदि मरे दादा मरक म आकर मुन उपदा हैं कि लखो रत्न मुम अथम कय न कम्ना म्ता तो मरी तरह मुह्मा भा मरक की धाननाम भोगनी पटना ता म समान कि परलोच है तथा जाव और गरीब भिन भिन हैं। उनिन मरे दादा अमा कर ता मरक म आय म्ती है अन गरीब का छाडकर आत्मा बाई अन्य वस्तु नहो है।

बन्धीद्वार—मयि मैं आपका एक प्रश्न पठना हू। कम्पना वासिण आदरी सुखान्ता रानी मत्ता घोषर वस्त्रासकार स मुनि कि हाफर विवि परतुमक म मत्तम मे ताय और अर उताह म्थ मे ता आप उम सुरप का क्या दण्ड देंगे ?

प्रश्नेगी—मैं उगक हाप पीक बटवा कर घाटी पर चढ़ाकर मरवा दान्ता ।

बन्धीद्वार—मयि वह गुण्य आपन क कि मद्दारा आप बाढी दर टह्ने जादय। म जरा अया विपणन म क आऊ कि तुम भी म तरक का कुचय कराम ता मुह्मा भा मरी है। अति दण्ड म यना हाता ता क्या आप उम दान भर के लिए चन जान की जाना देंगे ?

प्रश्नेगी—महो भगवन् ।

बन्धी—कदा ?

प्रश्नेगी—कदाकि वह पुरण अपराधी है।

बन्धी—वय इमी प्रकार मुह्माद बाबा मरक स आना चाहते हैं—वर कर्षी वारणों म आन म अगमय है।

[आ]

प्रश्नेगी—भगवन् ! मेरी एक दाी था। वह धमना का उरामिना और अन्त्य छविष थी। आदरे कथनानुसार मर मरकर देवनाम में गई है। वह मुन अन्त्य प्रम कम्ना था। अब यदि वह आदर मया धामिना कय करने का उा म ता मैं समर्थ कि पत्राच है।

बन्धी—कम्पना करा तम म्नानामि कर मन्त्रि जा रटे हा। मय म श्रीवालय मं यग बो म्मुय दान मर क लिए तम्ह यन्तेना क्या तम उगक पाग चन जाजाय ?

प्रश्नेगी—रत्न मत्ताराज ।

बन्धी—कदा ?

प्रश्नेगी—भगवन् ! यह गान अरविच है।



केशी—वस, इसी प्रकार तुम्हारी दादी देवलोक में इस अपवित्र स्थान में डूबने पर कई कारणों से नहीं आ सकती ।

[ड]

प्रदेशी—भगवन् ! एक दिन मैं अनेक गणनायक, दण्डनायक आदि में परिवेष्टित होकर सभा-मण्डप में बैठा था । इन्होंने मेरी नगर-रक्षक एक चोर को पकड़ कर लाये । मैंने उसे जीवित अवस्था में ही लोहे की कोठी में डालकर ऊपर में खूब जोर में ढक्कन बंद कर दिया और विश्वस्त पुरुष नियुक्त कर दिये । कोठी को स्वयं जाकर देखा । उसका ढक्कन खुलवाया । उसमें कोई छिद्र आदि न था । फिर भी चोर का जीव कोठी में बाहर कैसे निकल गया ? अतएव जीव शरीर से भिन्न नहीं है ।

केशी—कल्पना कीजिए-किसी पर्वत पर कोई भवन बना हुआ है । उसमें कहीं कोई छिद्र नहीं जिससे भीतर का शब्द बाहर जा सके । उसके द्वार भी निश्छिद्र हैं । उस भवन में बैठकर यदि कोई पुरुष भेरी वजाये तो क्या उसका शब्द बाहर जायेगा ?

प्रदेशी—जी हाँ, जायेगा ।

केशी—वस इसी तरह कोठी से चोर का जीव बाहर जा सकता है । क्योंकि वह अप्रतिहतगति है । शिला पर्वत आदि को भेद सकता है ।

[ई]

प्रदेशी—भगवन् ! एक दिन मैं अनेक गणनायक आदि के साथ सभा-मण्डप में बैठा हुआ था । इन्होंने मेरी एक चोर पकड़ कर लाया गया । मैंने उसे जीवन से वंचित करा दिया और उसे एक लोहे के मटके में डाल दिया । ऊपर ढक्कन लगा दिया । अब कुछ दिनों बाद देखता हूँ कि वह मटका कीड़ों से भर गया है । उसमें कोई छिद्र न था । अतः जीव-शरीर भिन्न नहीं है ।

केशी—क्या तुमने कभी लोहे को धौंकनी से तपाया जाता हुआ देखा है ?

प्रदेशी—भगवन्, देखा है ।

केशी—जिम प्रकार उस लोहखण्ड में अग्नि प्रविष्ट हो जाती है उसी प्रकार जीव भी अन्दर पहुँच जाते हैं । जीव की गति किसी से रोकी नहीं जा सकती ।

[उ]

प्रदेशी—मैं एक और उदाहरण देता हूँ । कोई तरुण पुरुष पाँच वाण छोड़ सकता है । परन्तु जब वह वाणक या तो उसमें इतनी शक्ति नहीं लेता । यदि तब भी इतनी ही शक्ति रहती तो दोनों को पृथक् समझा जा सकता था ।

केशी—मैं आपसे पूछता हूँ कि कोई तरुण नये धनुष और डोरी को लेकर पाँच वाण छोड़ सकता है किन्तु जीण धनुष से एक भी नहीं । ऐसा क्यों ?

प्रदेशी—भगवन् ! उसके उपकरणों-साधनों की कमी है ।

केशी—वस, इसी प्रकार बाल्यकाल में उपकरण-इन्द्रियों में पर्याप्त शक्ति नहीं है ।

[ऊ]

प्रदेशी—मैं एक अन्य दृष्टान्त देता हूँ । कोई तरुण लोहे के महान् भार को वहन कर सकता है लेकिन वह जर्जर-देह हो जाने पर नहीं । यदि दोनों अवस्थाओं में एक ही जीव होता तो बृद्धावस्था में भी उस महान् भार को

उठाने में समय होना था। अतः जीव शरीर भ्रमिन् है।

बेसी—देखिये कोई मजदूर अपनी नई बहमी से सहान भार को उठाकर ने जा सकता है और गीण से नहीं। इसी प्रकार जीण शक्ति होने पर युवावस्था की भाँति चलचूबक काय नहीं हो सकता।

[ए]

प्रदेगी—मैं एक दूसरी बात कहता हूँ। मेरे पास एक चोर लाया गया। पहले तो मैंने उस जीविन अवस्था में तोना। पश्चात् उसने अन्न प्रत्यक्ष का भय किया बिना ही जीविन से वचित करने तागा परन्तु तो मैं बाँझ अन्तर नहीं था। शरीर से जीव भिन्न होना और वह चला गया होना तो तो मैं अन्तर रहता। स्मृति में जीव और शरीर का एक ही मानता हूँ।

बेसी—क्या तुमन कभी किसी चपट की चीज को हवा से भरा है? जस घास सहित एक रहित गली की ताल में कोई छ तर्रों पत्ता उसी प्रकार जाव की विद्यमानता अविविद्यमानता से शरीर के चक्रण में अन्तर नहीं पड़ता। जीव अगुरुचक्र है।

[ए]

प्रदेगी—महाराज। यदि जीव है तो वह शिखर क्या नहीं होता? मैंने एक चोर के दो तीन चार और बहुत टुकड़े करके चारा जार से उलट पतल कर देखा मगर मभ तो की जीव शिखर नहीं मिया।

बेसी—प्रदेगी तुम शब्दों से तो भी बचकर मुक्त हो। मुझे कुछ शब्दों से जगत् में भय। साथ में उन्होंने अग्नि और अग्निपात्र की बात कही। जब वे एक निजन् स्थान में पहुँचे तो उन्होंने अपने एक मायी से कहा—तुम इस अग्निपात्र के अग्नि लेकर भाजन तयार करना। अग्नि घुस जाय तो इस बाष्प से अग्नि निकाल लेना। उनके जाने के कुछ समय पश्चात् वह भाजन बनाते जा उद्यत हुआ पर अग्नि घुस चुकी थी। अतएव उमन काष्ठ का चारा और से घमा फिरा कर देखा अग्नि बाष्प में अग्नि मिया नहीं दी। वह कटिघन बाध कर परग हाथ में लेकर तयार हो गया। काष्ठ के गी शब्द किये। चारा भार दबा पर आग कहा मयी। उसने काष्ठ खण्डों के और भी छोटे छोटे टुकड़े किये पर फिर भी आग का कार्य चिन्तन था। अन्त में घट कर उसन परग को एक और डाल मिया और कटिघ घन उना मिया। अब वह पुष्प मान पर हाथ रखकर चित्तमान हो बैठ गया। भोजन नहीं बना। साथी आये। उसने सत्र हार कह मुताया। उनमें से एक कुण्ड पुरुष बोला किता म करा म सत्र तयार कर दूंगा। उसने परग उठाया एक शर उनाया उसन अरणि का मया अग्नि उत्पन्न की और भाजन तयार कर लिया। अभिप्राय यह है कि जगत् अरणि में विद्यमान अग्नि दृष्टियोग्य नहीं होती उसी प्रकार शरीर में विद्यमान आत्मा भी दृष्टियोग्य नहीं होती।

[आ]

प्रदेगी—भगवन् आप बुगल हैं दश हैं यदि वस्तुमन्त्रवत् जीव का प्रत्यक्ष मिया सर्व ता म जानूँ कि जीव पथक यस्तु है।

(इतन में जार से हरा चगी घास तण दितने म)

बेसी—जानते हो इन घास तण आदि का जीवन दितन रहा है।

प्रदेगी—भगवन् यह हवा से हिल रहे हैं।

बेसी—क्या तुम इस हवा के रूप को देख सकते हो?

परदेगी—नहीं।

बेसी—जब तुम हवा का रूप को भी नहीं देख सकते तो मैं जीव कैसे मिया सकता हूँ। इस सवाल से आत्मा का विविध पणा पर अच्छा प्रमाण पड़ता है।

इमीलिप् आत्मयात्रीदर्शन उमको जानने का उपदेश देते हैं —
'अपने को जानो ।'

"जुस्तजूकुन, जुस्तजूकुन, जुस्तजू, दर दर खुदवी कि बेर नैस्त ओ ।" अत्यधिक गीन करो और उसे अपने भीतर देना, वह बाहर नहीं है ।

(३)

यह आत्मा अपने कालुष्यों का नाश कर शुद्ध निज-स्वरूपमय परमात्मन्य प्राप्त कर सकना है । आनार्य मोमदेव ने यशस्तिनाम के पञ्चाग्न्याम में कहा है—

"मलकलुपतायात रत्न विशुद्धयति यत्नतो—
नवति कनक तत्पापेण यथा न हृतक्रिय ॥
कुशलमतिभि कश्चिद्धर्म्यस्तयाप्तनयाश्रितं
अयमपि गलत्प्लेशानोग क्रियते पुमान् ॥"

जैसे यत्न के द्वारा रत्न विशुद्ध रूप धारण कर लेता है, वनक पापाग शुद्ध वाचन का रूप प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार कुशल पुरुष भी नवों के द्वारा आत्मा को पूर्ण सुखी एवं परम शुद्ध बना दिया करते हैं ।

कर्तृत्व न होने में अनेक ईश्वरों में विवाद का प्रश्न ही नहीं है ।

शुद्ध आत्मा ही परमात्मा है । भक्त में भगवान्, नेवक में स्वामी, उपासक में उपास्य, आत्मा में परमात्मा, अपवित्र में पवित्र, पतित में पावन एवं भूमिस्थ में निहाननामीन होना ही आत्मा का वास्तविक लक्ष्य है । एतदर्थ मोह, अज्ञान, माया, अथवा मिथ्यात्व का नाश आवश्यक है । बर्मों—नस्ति, प्राग्भूत एवं क्रियमाण, वध, उदय, नृत्ता, उत्कर्षण, अपकर्षण स्रक्मण, आदि रूपों का नाश कर स्वपरिणति प्राप्त करती है । मिथ्यात्व, अविरति, कपाय, लोभ, द्वेष, माह, काम, क्रोध, राग अथवा अविद्या, तृष्णा के क्षय बिना यह स्थिति नभव नहीं है ।

वाङ्मय की यह बात समझ में नहीं आती कि दुःख है पर कोई दुःखित नहीं है । क्रिया है पर कारक नहीं है । निवृत्ति है पर निवृत्त पुरुष नहीं है । मार्ग है पर गमक नहीं है ।

"दुःखमेव हि, न काचि दुःखितो ।
कारको न, किरिया वि विज्जति ॥
अत्यि निवृत्ति, न निवृत्ता पुमान् ।,
मगमत्यि, गमको न विज्जति ॥"

आत्मा, महात्मा, परमात्मारूप विकास की तीन स्थितियों के लिए वेदान्त एवं जैनदर्शन में प्रोक्त तीन तीन भावनाएँ विशेष महत्त्व की हैं ।

वेदान्तीय भावनाएँ निम्न प्रकार हैं—

- (१) तस्यैवाहम्
- (२) तवैवाहम्
- (३) त्वमेवाहम्

प्रथम भावना का अर्थ है—मैं उसी का हूँ । "वह-जो कोई मूलतत्त्व अभी मेरे सामने नहीं है । भक्त यह सोचता है कि मेरा यह दृश्यमान व्यक्तित्व कुछ है । बाह्य पदार्थ, सम्बन्ध, अधिकार, प्रयोजन, मेरे नहीं है । मैं उसी का हूँ जो अनन्त, अव्यय, सर्व-व्यापक, चेतन, अनादि एवं अरूप है ।" इस दशा में भक्त ब्रह्म को अपने से बहुत दूर समझ कर उसकी चर्चा अन्य पुरुषों से करता है । यह विकास की प्रथम श्रेणी है । यहाँ भक्त वहाँ से अपने को जोड़ने का प्रयत्न प्रारम्भ करता है । अपनी जीवनचर्या में उसी की अनुकूलता लाता उसी की प्रमन्नता का ध्यान रखता है । त्रुटि

होने पर प्राप्ति पत करती है। एवं भविष्य की सावधानी रखता है। अपनी कामनाएँ कम कर। ठीकी ध्यान कीतन। पद स्मरण। कथन एवं चर्चा में निरत रहता है। अपनी इच्छा। गरीर। भाव एवं भावों का उत्ती को अनरक्ति का साधन बनाता है। तथा पुष्टि एवं यामी नहीं हो सकता। व सासारिक पुष्टि में ऊँचे घरात पर रहता है। निलिप्त लोक मेव। गुण दत्त म ह्य विप्राप्ती। उसी व कृपा का विस्वामी। इसके पश्चात् दूसरी भावना आता है।

तववाहम्—म तेरा ही हूँ। यहाँ पराग स्मरण प्रत्यक्ष दान का स्थान के जाता है। आवरण हटता है। प्रगल्भता जाती है।

भावक की दृष्टि में आठा पचीसौमठ पहर बहती सामुद्र है। उगमनई स्फूर्ति निम्नमा पात्रिभयत्त चतन का धारा उगने लगती है। पट्टी भावना में उसकी गंगा उस दाल के समान थी जो विज्ञान में अपने स्वामी के व्यक्ति तन से आना प्रकट व सूचन करता था। यहाँ वह स्वामी के सामने ही खड़ा है। फिर तीसरी भावना आती है—

स्वमेवाहम्—मैं तू ही हूँ। यहाँ वहाँ साधक है जिसकी प्रिय स अर्थात् घनिष्ठता है। प्रमी एवं प्रमत्त भोतर म एव हो गये हैं। वह स्वामी के परम विस्वाम में सब व स्वाधीन विचरता है। वर म रहित। अनय। अन गंगा म साधा दण साधन अपनाएँ एवं प्रतापनाएँ उस दूधिन नदी बना पाती। पचभूत स्वाधीन हो जाते हैं। वह प्रिय स अभिन्न आ है।

जनघम म यहाँ तीन भावनाएँ निम्न प्रकार हैं।

दासीहम्—मैं तू ही हूँ। सासारिक माया प्रपंच में भविष्य पुण्य जब अनन्त प्रकार से अपने को द छो पाना है। केष्टाएँ करत रहने पर भी पच स्त्री पुत्राणि से उस तनि नही होनी भौतिक आकर्षण उस पतन कारण प्रतीत होते हैं—तय उमर अ तर म एवं विविध द्रव्यमय वेष्टा का अनुभव होता है। विद्वत् हो—प्राचीं म अक्षि पा वं भोतर पत्ने का प्रपलन करता है। वह अपनी अवस्था का निश्चय करना चाहता है। अपने को असमय अपनाएँ एवं अस्वाधीन अनुभव करता है। तब का है—दासा ० म। प्रभा। मैं तेरा दास हूँ। त पश्चात् वं एक चरण गाँगे बहना है और दासा ० स वं अपने या या यात्मा का सपर समर्थन उगता है। व ता है—अब मैं तेरा दास नहीं हूँ और इस भावना से वह गरीर गोम्य गान अनासक्त अ तरदृष्टि गम दम गीत समय स्वाध्याय एवं अनुभव गमन बन जाता है। सम्पद विपत्त गण विषय एवं रति विरति निरक्त। उसका पूर्ण पल्ल पड़ जाता है। अब द्वितीय स्थिति आता है—

साहम्—दा। यमगत हो चुका है। वही मैं हूँ जिस पूज रहा था। जो उरता चाहता था। वह सब कुछ मेरी आत्मा का ही ता निज स्वयं है। मेरे अधिपति उसी व अरावर ३। मेरी वस्तु मेरे पास है। तब मैं किम की आगा करूँ? व प्रज्ञा का प्रकाश मैं हूँ।

कोई गारिक कम तुरा या भाग को मानविक कम-पुष्टि या पात्र सुख छ नहीं सकते। यहाँ या अपवग निम्न या प्रगता मुझे म उन नी बना पवते। अपार जल हूँ मैं। निर्वाह निभय स्वाधान। मैं यहाँ हूँ—जा हूँ।

यहाँ वामी हूँ की भावना वाता पुण्य पार पड़ने की तत्पर है तो गोम ध्वला वृत्त जो नितारे गग रहा है। एक ही छत्राग म पार पचन मे है—जीवनमुक्त। आत्म साक्षात्कार का उत्तराधिकारी युवराज।

अहम्। अब स भी अर्थ हो चुका है। पट्टी आत्मा मघर एवं विद्वत् है ता दूसरी मघरत एवं विद्वत्तर और अहम् म भावना मघरतत तथा विद्वत् तम। निजान् रस छीन। अवगनीय।

३ वर का अन्तत्व—३ वर पण्य का वत्ता नहीं है। जपत स्वयसिद्ध अनाति अन न है। यगस्तिउक के वितीयोदवाग म शाखाय सोमैव वृत्ते ३— स सासार म पान अथवा दृष्टांति द्वारा इस लोभ का निर्माण करने वाता काई नहीं है। अथवा चर्चा धाति के निर्माण कारण के सार ने और ईश्वर की त्रिय स्वध्यांति के वतमान रहने से ये वस्तु सत्ता उत्पन्न होनी हुई इच्छा ३ दनी चाहिए। यदि ईश्वर परमाणवमह को समुक्त करके पच्चा आति



बनाता है तो गृह-निर्माण के लिए राज, मिन्थी, बटई आदि की क्या आवश्यकता है । (यग० १।३६)

“कर्ता न तावदिह कोऽपि प्रियेच्छया वा ।
दृष्टोऽ न्यया वट कृतादापिम प्रमग ॥
कार्यं किमत्र नदनादिषु तक्षकाद्यै—
राहत्य चेत् त्रिभुवनं पुन्य कर्णेति ॥”

यदि ईश्वर उपादान कारण है तो रचना तत्त्वह्य ही होनी थी ।

मुद्र, निर्दिक्क, निगकार एव निर्दोष । यदि प्रेरक निमित्तकारण है तो वह स्मार में होने वाले अपराधों का उत्तरदायी होने में वच नहीं भरता । उदासीन निमित्त है तो पापों की दुःख-दुःख देखना रहेगा ।

न्यायदर्शन में कर्तृत्वसाधक एव प्रसिद्ध अनुमान है । “उद्योगवन्तस्तत्त्वज्ञादिव बुद्धिमद्भेदोऽ, कार्यन्तान्, वदवत् ॥”

पृथ्वी आदि सभी पदार्थ किसी बुद्धिमान् के बनाने हुए हैं, क्योंकि वे कार्य हैं । जो जो कार्य होते हैं वे बुद्धिमान् के बनाये होते हैं जैसे घर । पर उस हेतु में कर्तृत्व निश्च नहीं होता ।

कार्यत्व के चार अर्थ हो सकते हैं —

(१) नायवद्व्य, (२) अमन् पदार्थों के नाय बनने कारणों का समवाय । (३) “विज्ञा भूता” (कृत-बुद्धि) ऐसे ज्ञान का विषय होना (४) विकारीपन । प्रथम पक्ष नायवद्व्य अर्थान् प्रदेग वाला मानने से कार्यत्व हेतु में आत्मान के नाय अनैकान्तिक दोष आता है । यों कि वह प्रदेग वाला होने पर भी कार्य नहीं है । यदि दूसरा पक्ष अपने कारणों में कार्य का समवाय सम्बन्ध माना जाय तो उस सम्बन्ध के निम्न होने में शरीर आदि अनित्य कार्य में उनकी समवायता है । यदि पृथ्वी आदि को निम्न मानकर उनमें समवाय सम्बन्ध स्वीकार भी किया जाय तो पृथ्वी आदि कार्य नहीं हो सकते । इसलिए यह हेतु असम्भव ठहरता है । तीसरे पक्ष में (कृत-बुद्धित्वका विषय) कृत आदि ब्रह्मों पर आत्मान निश्च आया इस प्रकार की बुद्धि होती है उन अनैकान्तिक दोष हैं । चौथे पक्ष विकारीपन में ईश्वर में अनित्यता का जायगी । यों कि जब वह कार्य करेगा तो उसमें परिणामन जयवा विचार अवश्य आयेगा । वन उस कार्यत्व हेतु अकिञ्चिन्क है ।

अन्वय एव अनिरेक न मिलने में ईश्वर एव सृष्टि में कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है । क्योंकि ईश्वर का सृष्टि के नाय व्यतिरेक नहीं बनता । इसके लिए किसी क्षेत्र अथवा कारण में उसका अभाव सिद्ध करना होगा । (प्रमेय-सम्बन्धार्त्तण्ड—प्रभावच्छ, आप्तपरीक्षा, विद्यानन्द)

वस्तुन जगत् सनातन है । अनादि अनन्त । छह द्रव्यों में परिपूर्ण । निश्चितता अपवा कृदन्वता में रहित है । फिर भी पुद्गल का अनन्त परमाणु समूह और उसकी पणिमन-शक्ति एकनी बनी रहती है । पौद्गलिक कर्मों में पदार्थन जीव ही स्वप्रयोजनवश पदार्थों का सञ्चालक बनता है । द्रव्यों का स्वभाव भी स्वयं पणिमन का है । द्रव्य और उसके गुण अपरिवर्तनीय हैं । जगत् ब्रह्म, कृता, जैसे और क्व बनाये प्रश्न तत्त्वमन उत्तर नहीं पाते । इन सम्बन्ध में ‘वी रिडिज आफ् दी नूनीबर्न’ में बड़ा सुन्दर वर्णन है ।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी अग्न्योपनिषद्-व्याख्या में ठीक ही लिखा है—

“कर्तास्ति कश्चिज्जगत स चैक न सर्वग स स्ववश न निम्न ।

इमा कुहेवास्वितम्बना स्युम्नेदा न येषामनुशानकस्त्वम् ॥”

श्रमण-परम्परा और गणतंत्र

डा० बद्रोप्रसाद पंचोली

एम ए बी एच डी
मदनगढ़ बिसनगढ़



गणतंत्र केवल कुछ मिट्टी का आधार बनाकर चढ़ने वाले 'राजनैतिक' संस्थान का नाम नहीं है। यह जीवन की एक उत्कृष्ट पद्धति है जो हमें प्रत्येक क्षण में अनिवार्य रूप से विरामित होती है। ऐसा न होने पर गणतंत्र मोड़ना ही जाना है। गणतंत्र ध्वनि-मंत्र का अर्थ विचार है और 'गण' सम्बंध को 'गण' का 'गण' आत्मविश्वास करने का लोका 'गण' या समूह का होता है। गणतंत्र का आधार गण नहीं तंत्र है। गण का तंत्र ही गणतंत्र है और पद्धति तत्पुत्र का रूप में प्रस्तुत इस 'गण' में समान का नियमों के अनुसार भी दूसरा 'गण' प्रदान है और प्रथम 'गण' उभरा विवेक। यह विवेक ध्वनि-मंत्र से हम नवीन प्रकार का तंत्र का पथ करता है। तंत्र क्या है? यह मान समझ 'गण' पर गणतंत्र का अभिप्राय और उभरा 'ध्वनि-मंत्र' में अन्तर्गत समझ में आ जायगा।

तंत्र का संरक्षण की ननु और यह धातु का विरामित 'गण' है। तनु धातु तन्नागिण में विस्तार अवस्था की और धातु गण में श्रद्धा एक उपकार अयगाता है। 'गण' तनु में धातु धातु धातु या रक्षा करने के अर्थ में प्रयत्न होती है। तंत्र 'गण' की 'धुलति' तनु धातु में धातु धातु 'गण' प्रत्यय जुड़ने से 'गण' होता समझ है। इस रूप में धातु 'गण' (रा या 'गण' धातु में 'गण' कर करने वाला 'गण') और धातु (धर धातु में 'गण' प्रत्यय धातु करने वाला 'गण') का 'गण' माना जा सकता है। अर्थ निगमन की 'गण' सारी 'धुलति' 'गण' समावृत्ता का आधार पर तंत्र 'गण' का अर्थ हम प्रचार सामन अर्थ है—अर्थगण विस्तार करना तनु धातु अवस्था रक्षा करना श्रद्धा सम्पन्न माना उपकार में लगना श्रद्धा उपकार 'गण' का रूप में 'गण' के माध्यम से 'गण-नतन' करता धातु। 'गण' तंत्र 'गण' का माध्यम धातु धातु और 'गण-विज्ञान' के 'गण' धातु (या 'गण-नतन' प्रयोज्य) 'गण' को 'गण' का विषय बना 'गण' उचित होगा। तंत्र 'गण' देवता सगतिरक्षण-नतन अवस्था की 'गण' का 'गण' धातु भी रक्ष 'गण' है और 'गण' ने इस 'गण' रूप में अपनी साक्षात् की 'गण' के 'गण' रक्षार दिया है।

तंत्र में तान विचार किया जाय और तनु की सीमा क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर के लिए तनुतनु 'गण' पर ध्यान 'गण' करना होगा आ धातु का धातु धातु 'गण' है। हमारा जीवन तीन स्तरों पर क्रिया रत रहता है। भौतिक स्तर पर पचतत्वा में निर्मित गरीर है जो 'गण' के उपरान्त भावना रहता है 'गण' उत्तम विचार प्रकार की सभा विद्यमान नया रहती। 'गण' प्रदान करने का 'गण' 'गण' कहा जाता है। देवराज 'गण' को धातु द्वारा दया की प्रदान करके अर्पण करने वाला कहा गया है—'गण' एक प्रथम गणतंत्र दया दया धातु गणतंत्र। 'गण' सामर्थ्य की धातु कहा जाता है। देवराज 'गण' की 'गण' में पचतत्वा में विभिन्न स्तरों पर गणतंत्र करने हैं। 'गण' प्रकार 'गण' धातु की 'गण' देवराज की गण है। 'गण' धातु रूपों में पचतत्वा का धातु का विषय बनाता है और इस 'गण' में उभरा 'गण' धातु नाम में 'गण' गते हैं। इनकी धातु 'गण' 'गण' सभा है। 'गण' और भा है 'गण' धातु धातु धातु 'गण' में पचतत्वा और 'गण' की धातु में प्रतिष्ठा-स्थापन कर रहे हैं। यह जीवन का अर्थ-गणतंत्र है। इससे धातु धातु जीवन का धातु-गणतंत्र-गण है जिसमें सक्षम जीवन धातु गणतंत्र की सीमा का धातु है। जीवन उभर धातु का नाम है जिस प्राण प्रकृति की सीमा का धातु कर अपने सक्षम रक्षण की प्राण का धातु करता है। इस

गति द्वारा शक्ति की चेतना का प्रथम विस्तार होता चलता है। इसी विस्तार को तन्त्र शब्द द्वारा नवेनित मानना चाहिए। भूत-निर्मित शरीर गति करने में अनमय है। गति करने वाले पाँच इन्द्रिय-मज्जक प्राण होते हैं। दृश्यजगत् में इनकी दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, स्पर्शन, घ्राणन आदि की सीमाएँ हैं जिन्हें छन्द कहा जाता है। आत्मा या माय छन्दों का वस्त्र तोड़कर लज्जानुगत होता है। तनन की चरमसीमा आत्मा के नाम तक है जहाँ नवी प्रकार के वस्त्र ममाप्त हो जाते हैं।

जैसे शरीर में मृतमृष्टि को देवगण प्रेरित करने गृहते हैं उसी तरह ब्रह्माण्ड में भी देवगण भूतों को अधिष्ठान बना कर कार्यरत रहते हैं। वस्तुतः शरीर ब्रह्माण्ड का सक्षिप्त सम्करणमात्र है। 'यत्तिष्ठते तद् ब्रह्माण्डं' सूत्र में इस बात की सही प्रकार समझा जा सकता है। शरीरगत प्राणों को ब्रह्माण्डीय-प्राणों में शक्ति मिलती है। इसीसे उनका विस्तार संभव है। ब्रह्माण्ड के दिव्य-प्राणों ने आत्म-तनन के लिए शरीर में शक्ति संचित करने की प्रक्रिया का नाम ही श्रम है। आश्रम और श्रमण परम्पराओं में श्रम का यही रूप स्वीकार किया गया है। तन-भावना अनिवार्य रूप से श्रम को आवार मानकर चलती है। इस प्रकार आश्रम और श्रमण दोनों प्रकार की जीवन-परम्पराओं का तनन में नाट्य-भावना सम्बन्ध है। गणतन्त्र का आधार भी यही हो सकता है जो इन श्रम-केन्द्रित व्यवस्थाओं का रहा है। इन श्रम गणतन्त्र का भी आधार है। उनका स्वल्प समझना गणतन्त्र की आधारभूमि को निर्मित करने की ओर पहला कदम माना जाना चाहिए।

अथर्ववेद के भूमिमूक्त में तप को राष्ट्र के धारक मातृत्वों में परिगणित किया गया है। वही तप श्रम का अर्थवाची है। अथर्ववेद में ही श्रम को किसी भी लौकिक या पारलौकिक मित्रि, समृद्धि या शक्ति के समान बहुमूल्य कहा गया है^१ और श्रम की गणना ऋत, मत्स्य जैसी आध्यात्मिक विभूतियों और राज्य, धर्म एवं कर्म जैसी पार्थिव शक्तियों के साथ की गई है।^२ ऋग्वेद के अनुसार श्रम के बिना देवता भी महाप्रता नहीं करते—न ऋते श्रान्तस्य मत्स्याय देवा।^३ श्रम ने देवत्व, अमरत्व और इन्द्रदेव की प्राप्ति होती है।^४ जीवन की समर्पित गति का नाम ही श्रम है। गति कभी निरुद्ध नहीं होती। ऊपर बताया जा चुका है कि जीवन की गति भौतिक सीमाओं को तोड़ कर आत्मा के अर्थात् स्वरूप या नाशकार करने की दिशा में होती है। 'स्व' अपनी छन्दित अवस्था में तनन करता हुआ परमावस्था को प्राप्त कर ले—यही जीवन की गति है। 'स्व' में 'परम' की ओर जाने वाला मार्ग 'पर' में होकर गुजरता है और इस मार्ग पर चलने वाला 'पर' शक्ति का नाशकार करता हुआ अपनी यात्रा को फलीभूत पाता है। 'स्व' क्या है? पुनः अने 'स्व' गच्छन्ता है। विपर्ययपूर्वक यह 'अमु' हो जाना है जो प्राण की एक मजा है। 'अमु' की प्रधानता के कारण 'स्व' की छन्दोवद्ध स्थिति का नाम अमुर भी है। परमावस्था की मित्रि हो जाने पर अमुर देवत्व में परिणत हो जाता है। अमुरों को देवों का विरोधी डमीलिए समझा जाता है। वतवर्षीय परमायु में व्याप्त होने में अमुरों को भी अथवा निनानवे पुरो के अविवासी कहा जाता है। इन्द्र इन पुरो को स्वयं या अन्य देवों के साथ मिल कर तोड़ देता है। अमुर अवस्था में चेतना प्रच्छन्न बनी रहती है और इसीलिए उन अवस्था को अनत्-त्वा, तमोमयी या मर्त्यप्राया कहा जाता है जिसमें छुटकारा पाने के लिए स्तौना प्रार्थना करता है—

अस्तो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मा अमृत गमय ।

प्रथम छन्दित अवस्था से सम्बद्ध होने के कारण अमुरों को देवों के अयज के रूप में स्वीकार किया गया है और प्रजापति की मन्त्रान माना जाता है।^५ जीवन ही देवामुर नग्न है। पुराणों में सदैव वर्णन किया जाना रहा है

१ अथर्ववेद ११।६।१७

२ अथर्ववेद ११।६।१७, ८, ९, ६

३ ऋग्वेद ४।३।४

४ ऋग्वेद ३।६।२, १।११।०।३, ३।६।३, १।११।०।४

५ शतपथ ब्रा० १।२।३

कि पराजित हान पर निवृत्तमाण एका व शरीर म स एर निवृत्त 'मोति निवृत्त' कर विजेता देव म प्रतिष्ठा हा जानी है। असुर अधिपति अहम म परमत्त्व म विगठन जाने से सोऽ म की अनुमति हाने लगनी है और यही स्वराज्य की स्थिति है जिससे त्रिग प्रशस्ती होन वा बात व। म वटी गई है—स्वारा ये यतम।^१ हनयता या स्व के तन का उद् य स्व त्व ममिद्धि है। स्व का पर म होकर परम की ओर चलन वाली यात्रा का नाम ही स्वतन्त्रता है। ता श्रम का जगर सजा है और श्रमका उद्देश्य स्वराज्य है—स्व का प्रतिष्ठान और परम म विनय।^२

बन्ध परम्परा का मानने वाला के लिए श्रम का अनिवार्य समावेशन आश्रम व्यवस्था म हुआ है। जब तक जीवन म श्रम की गंभीर भावना चली नी तब तक आश्रम व्यवस्था के स्थान पर कोई अ म व्यवस्था प्रवर्तित नी हुई परन्तु नी ही इस व्यवस्था म श्रम की प्रतिष्ठा समाप्त हुई तथा श्रम की ओर मानव का सहज प्रवृत्ति की ध्यान म रखते हुए नई व्यवस्था का समारंभ प्रवर्तन हुआ जिसे श्रमण व्यवस्था कहा जाता है। यद्यपि श्रमण परम्परा की निवृत्ति परक माना जाता है और आश्रम-व्यवस्था की पुण्यता प्रवृत्तिमार्गी मान कर उमस श्रमण परम्परा का निपरीत मान दिया जाता है परन्तु न तो आश्रम व्यवस्था पूर्ण तर्ह प्रवृत्तिमार्गी है और न श्रमण परम्परा परा तर्ह स निवृत्तिमार्गी। प्रवृत्ति और निवृत्ति की पक्ष पक्ष रूप म अवस्थित हो भी नती सक्त। श्रमणवा न म य रूप गया कि सत्ता श्रमण व। है जो अन श्रम का परवर्तन नाम म कर त।^३ श्रम का नाम परवर्तनीकरण त आश्रम परवस्था का उद्देश्य था। डा मयन्त्र नारत्री श्रमण और बन्ध परम्पराओं की पर दूसर का पूरक वृत्त है।^४ ऊपर बताया हुई समानता का उद्देश्य हुआ तो उन्हें पूरक करने के स्थान पर परस्पर अमान हो यन्त्रा अधिक उपयुक्त होगा। तना व्यवस्थाओं म अन्तरात्मक मनहाकर अ दृष्टि से है। वृत्त है कि बन्ध परम्परा म प्रत्यक्ष के परम्परा गृह्य आश्रम म प्रवृत्ति वृत्ताना अनिवार्य माना गया था। प्रवृत्ति मा प्रवृत्ति—यन्त्रापिदा का आ था। श्रमण परम्परा म इस सत्य निनि माना गया कि कोई चाहे ता सामाजिक शिवात्मता का दृष्टि म और सामाजिक धर्म की माधना के लिए आशात्म परवर्तनीयता की साधना कर सक्ता है और इसके लिए वृत्त गृह्य आश्रम म मनिन नन का अधिकारी है। यन्त्रा माधना का कठोर माग था और हर किसी के वग की बात नही थी। 'सर्वे साधाराण योगा के लिए अग्रतः की व्यवस्था रक्ता गई।' स वात की ओर भी ध्यान दिया गया कि महाप्रती मनिनों स अशुभ्रती साधारण साधकों का सम्य समय पर मित्व जाना रहे। इसके लिए मुनिश का गावरी वृत्ति अवनान की जिम्मेदारी सना पडा। गावरीवृत्ति ही जा और धीरे धीरे धर्मानुयायिका के आध्यात्मिक गणराज्य के रूप म सगठित होने का आधार पान हुआ है। इस वृत्ति का किसी भी गणतन्त्र की साक्षात्क आधारभूमि निनिन करने के लिए अपनाया जाना समव है।

गावरीवृत्ति के विषय में मयम श्रामाणिक जानकारी जन परम्परा म मिलनी है जिससे आ भी मनिया की गावरी के लिए गम्भीरता करने की प्रथा प्रचलित है। बोधधर्म म आर्यों के गोचर म तीन साधकों को आनन्दपूजक स्मरण किया जाता है—आर्या गावरी रता।^५ इसी तरह बन्ध परम्परा म भी धर्मानुयायी को गोचरा अपनाने के लिए कहा गया है—गोचरी नमनचरेत।^६ गावरी बन्ध परम्परा म प्रचलित गोमेध से अमान पात हाती है। वास्तविक न अश्रमवर्ग व लिए अववर्ग का प्रयोग किया है। इसी तरह गोमेध का पर्याय गावरी या गोचरी को

१ ऋग्वेद ५।६।६

२ डा मीप्रसाद पञ्चोली राष्ट्र रक्षा विचार और व्यवहार विमर्शोत्ति मास १९६६

३ डा पतर्जिह—बन्ध-समानाश्रम मे यकी कपता प २६

४ डा मगलदेव नारत्री भारतीय सस्कृति का विकास बन्ध धारा पृ १९४

५ धर्मपत्र २।२

६ धीमदभागवतपुराण १।१।२५

७ रामायण बालकांड ६।६





नमजना चाहिए। यज्ञ और मेघ वातुओ का एक अर्थ मेल करना है। अतः इनमें उत्पन्न यज्ञ और मेघ शब्द समानार्थक हैं और नामात्मिक-आचरण की व्यवस्था करते हैं। अश्वमेध, गोमेध और पुरुषमेध शब्दों में प्रयुक्त अश्व, गो और पुरुष शब्द समाज-संगठन की विशिष्ट परम्पराओं के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक मजाए हैं। पुरुषयज्ञ की समाजशास्त्रीय व्याख्या डा० फनहमिह ने अपने 'वैदिक समाजशास्त्र मूलाधार' तथा 'वैदिक-समाजशास्त्र में यज्ञ की कल्पना' नामक ग्रन्थों में की है। गोमेध पर इन पद्धतियों के लेखक न बाने अनेक लेखों में विचार प्रकट किये हैं। इन सभी यज्ञों का सम्बन्ध आचरण में है। परवर्ती काल में यज्ञ के स्थान पर आचरण के अर्थ में वर्म मजा का प्रयोग हुआ है।

ऋग्वेद में गो मूल प्रकृति का नाम है।^१ यद्यपि मृजक गो एक ही है और वह उस यज्ञ में अभिन्न है जिसे ब्रह्म कहा जाता है।^२ परन्तु मृजक की विविध प्रवृत्तियों के रूप में वह अनेक नामों में जानी जाती है। एक होने हुए भी वह अपने एक रूप में देवमाता है, दूसरे में देवस्वना और तीसरे में देवदुहिता।^३ कामधेनु, पृथ्वि, वृहती, वशा, ब्रह्मगवी, विगाज, वामवी, नौम्या ऐन्त्री, पारमेष्ठिनी, वाहंस्यत्या, स्वाग्रम्भुवी आदि नामों में गो के स्वरूप पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। अदिति, ब्रह्मगवी, वशा आदि नामों में वेदों में उल्लिखित महाबेनु ही तान्त्रिकों की महात्रिपुरसुन्दरी, शक्तियों की महाविद्या, महाऋषी अथवा महाकाली तथा वैष्णवों की उद्भव-स्थिति-महार-कारिणी श्रीदेवी (जिम्हें नीता, राधा आदि विविध रूप हैं।) जैन परम्परा में चक्रेश्वरी देवी और बौद्ध-परम्परा में तारा अथवा मजुथी, जिम्हें बहूधा पुष्पह्वय में भी चित्रित किया जाता है, भी उन्हीं आदिगन्ति या महाबेनु के रूप में ज्ञात होते हैं। इस आदिशक्ति का वात्सल्य ही इस जगत् के रूप में व्यक्त हो रहा है। इस मृजक धेनु को अन्य मृजक-शक्तियों की जननी अद्वितीय उपा कहा गया है^४ जिम्हें वत्स मूर्ति है।^५ ऋत के नदन में वह एक धेनु नृष्टि के वीज रूप अग्नि की परिचर्या करती रहती है।^६ अपने अन्य धेनु रोगों के साथ वह एक धेनु ही सबका पालन करती है।^७ वह मृजक देव की मामर्थ्य ही नहीं, वरन् उसमें अभिन्न भी है।^८ वाक्स्पृषिणी मृजकशक्ति के वात्सल्य का उल्लेख बृहदारण्यकोपनिषद् में मिलता है—

वाच धेनुमुपासीत तस्यान्वत्वार नाना स्वाहाकारो वपट्कारो हस्तकार स्वधाकारान्मया दोन्तनी देवा उपजीवन्ति स्वाहाकार वपट्कार च हस्तकारं मनुष्या स्वधाकार पितरन्मया प्राग ऋषभो मन वत्स।^९

इस कथन में स्पष्ट है कि देव, पिता तथा मनुष्यों को जन्म देकर इस महाधेनु ने अपने वात्सल्य का विषय बनाया। अनुर या प्राणों का अमृत रूप इन तीनों में पहले का है। यज्ञ रूप जगत् के द्वारा देवों ने अमृतों पर विजय प्राप्त की।^{१०} अमृत प्राणों का सत्त्व ही जगत् है। मृजक का प्रारम्भ महाधेनु के वात्सल्य-प्रदर्शन में होता है। नौम्या गो के नाम में मुजान यह शक्ति ही परम-वत्सला होने पर सबका पोषण करने वाली कामधेनु वही जानी है। डा० वामदेवधरण अग्रवाल के अनुसार यह विश्वधायिनी धेनु है जिम्हें काम ही दूध देना है और विश्व ही उससे तृप्त होने वाला वत्स है।^{११}

१ ऋग्वेद में गोतत्त्व राज० वि० विद्यालय का शोध प्रबन्ध, १९६४. पंचोली

२ एको गौरैक एक ऋषिरेक वामैकवाशिप । यज्ञ पृथिव्यामेकवृदेकतु नातिरिच्यते । अथर्ववेद ६।२६

३. माता रुद्राणां दुहिता वसूना स्वनादित्यानाममृतस्य नानि । ऋग्वेद १०।१।१५

४ गवा जनित्री—ऋ० १।१२।५, माता गवाम्-ऋ० ४।५२।२, ३

५ ऋ० ३।५८।६ तथा १।११३।२

६ ऋग्वेद ३।७।२

७ ऋ० ३।३८।७

८ इमा या गाव म जनाम इन्द्र — ऋ० ६।२८।५

९ बृहदारण्यकोपनिषद् ५।८।१

१०. ताण्ड्य महाब्राह्मण १६।२।२, ३

११ वैदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति, भूमिका, पृ० १६



शची के रूप में और सूक्ष्मतरंग मनोमयकोश में जमी के रूप में अभिव्यक्त होने वाला है।^१ शची इन्द्रपत्नी है और प्राणमयकोश से सम्बन्ध रखती है। मनोमयकोश की गति जमी में इन्द्र रूप गो का उद्भव होना है। डमी गो का वात्सल्य साधक का अनीष्ट होना है। श्रमण-परम्परा में श्रम का पर्यवसान शम में हो जाने पर साधक मिट्ट बन जाता है और उसकी सजा गो या इन्द्र हो जाती है। इन्द्र की त्राति विजेता के रूप में रही है। जैन-परम्परा में गेमे मिट्ट पुरुषों को जिनेन्द्र कहने का यही कारण ज्ञात होना है। आदि जिनको ऋषभ कहने का आधार भी यही ज्ञात होता है। ऋग्वेद में ऋषभ-सजक इन्द्र की स्तुति मिलती है। इन्द्र को मुनियों का मन्वा कहा गया है—‘‘इन्द्रो मुनीना मन्वा। साधारण गृहस्थों के लिए ऐंसे सिद्ध पुरुष वात्सल्य बन कर प्रेरणा प्रदान किया करते हैं। समाज का कर्मबल जब बल बन कर प्रजाबल के वात्सल्य की कामना करता है तो समाज जिन एकीभाव में स्थित होकर आत्मनयन के लिए प्रयत्नशील होता है, उसी की सजा गणतन्त्र है।

भारत में श्रेष्ठ पुरुष के लिए पुण्य, नरपुण्य, नरपंथ, पुरुषंथ जैसे विशेषणों का प्रयोग तो होता ही रहा है साथ ही उनके वत्म्य भाव को व्यञ्जित करने वाले भ्रातृ-वत्म्य, मित्रवत्म्य, भक्तवत्म्य, पितृवत्म्य, प्रकृतिवत्म्य आदि विशेषण भी प्रयुक्त होते रहे हैं। इसमें पता चलता है कि भारत में समाज में वात्सल्य को आधार मान कर व्यवस्थित होने की परम्परा विद्यमान रही है। इस परम्परा का वैचारिक आधार ऊपर प्रस्तुत किया है। प्रत्येक प्राणी इस सत्ता रूपी छूटे में वश हुआ वत्म है। प्रकृतिराशि ने ही वह अपनी माना आदि-प्रकृति रूपी गो से पृथक् रहा है। जब वह अपने जीवन में चेतना जगा कर दिव्य उपा का अनुभव करने लगता है तब वत्मला प्रकृति उसको अपना वात्सल्य प्रदान करती है और वह उस माता के साथ उसके प्रेरक अमीम-चैतन्य-तत्त्व की भी अनुभव का विषय बना लेता है। उसकी स्वता में जब चैतन्य की दीप्ति जागती है तो उसे स्वराज्य की नसिद्धि हो जाती है जो जीवन का चरम द्येय है। इस स्थिति को बुद्ध ने गोचरपद और जैन-आचार्यों ने शिवपद या कैवल्यपद तथा वैदिकों ने गोलोक, इल्यद, परमपद, गोणद आदि मन्त्राओं में मनोधिन किया है।^२ जिससे स्वराज्य की नसिद्धि हो जाती है उसे आविर्भूतज्योति^३ कहा जाता है। स्वराज्य-साधना की मन्त्रा गोसव भी है—अयं गोसव स्वराज्यो वा एष यज्ञ।^४ स्वराज्य परमेष्ठी प्रजापति की सजा है।^५ इस यज्ञ में ऋतदेव विष्णु की उपामना की जाती है।^६ समाज की अधिष्ठातृ-शक्ति का नाम ही विष्णु है। स्वराज्य-सिद्धि को प्राप्त करने वाले लोग समाज-चेतना से ममुपेत हो जाते हैं और इसीलिए उन्हें विष्णु का अवतार कहने की परम्परा चली आई है। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव और महात्मा बुद्ध इसीलिए विष्णु के अवतार कहे गये हैं। विष्णु के हृदय पर श्रीवत्त अंकित माना जाता है। यह वत्म के प्रति उनकी वत्मलता का सूचक है। ऋषभदेव में सम्बद्ध चक्रेश्वरीदेवी वैष्णवीशक्ति का ही नाम है। उनका गोमुख यज्ञ भी उनकी महती सिद्धि का सूचक है। परवर्ती जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की तरह वत्मवत् साधना करके और अन्त में स्वयं गोस्थानीय बनकर धर्मप्राण जनता को वात्सल्य प्रदान करते रहे हैं।

बछड़े के स्वर में मातृवियोग की पीड़ा, अभाव की माकेतिक व्यजना, पुनर्मिलन की उत्कठा, आशा, विश्वास और कारुणिकता की समुचित अभिव्यक्ति होनी है। संगीत में तो ऐसे भावों का व्यञ्जक ऋषभस्वर स्वरसप्तक में स्थान पा गया है।^१ साधक को वत्स बनने के लिए अन्तर में बछड़े जैसी वेदानुभूति और उत्कठा जगानी होगी।

१ वैदिक समाजशास्त्र में यज्ञ की कल्पना, पृ० २६

२ दिव्य आर्यभूमि — डा० पचोली, वैदिकधर्म पारडी अगस्त १९६६

३ उत्तररामचरित ४।१८ यहाँ यह विशेषण वसिष्ठ के लिए प्रयुक्त हुआ है।

४ ताण्ड्यमहाब्राह्मण १६।१३।१

५, वही १६।१३।३

६ गोसव-डा० पचोली, टकारापत्रिका वर्ष ६ अंक ७

७ शब्दकल्पद्रुम, प्र० खड, पृ० २८७ पर ऋषभस्वर को ऋषभ या चातक के सनान बताया गया है। चातक जैसी वेदना वत्स के स्वर में होती है। अतः वत्स जैसा स्वर ही ऋषभस्वर कहा गया होगा।

वस्तुन आचरण का आधार श्रद्धा है। मत्पररथ श्रद्धा ही जीवन का मन बनाना है।^१ यत्नवत साधना करके महा धेनु का बालम्ब गाने पर साधक स्वयं अथ कागा पर बालम्ब प्रकट करने का क्षणिकारी बन जाता है। साधना की मना पड़ोना में मिद्धपुरुषों की समान सम्मान लिया गया है। य मिद्ध पुरुष सामान्य लोगों का उत्तम मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने हुए वाचनिक मध्ये रहते हैं। गोस्थानीय सिद्धपुरुषों का वस्तुस्थानीय समान्य मार्गिका में मित्रिय नामक या गोमय का स्वरूप प्रस्तुत करता है। गोसव म संघ धर्म पु प्रसववयवों अथवा पुत्र-अभिषेक धातु से युक्त न है और न प्रसार गोसव का अर्थ है— गोत्र का प्रसव गोत्र का वैषय स मुक्त होना गोत्र का दाहन करना। यहा गो का अर्थ मिद्धपुरुष उन पर गोसव का अर्थ स्पष्ट हो जाना है। गोसव म सिद्धपुरुष का मा प्रसव होने पर मित्रिया (मित्र) गोमय प्रा युक्त होता है। वही ज्ञान गान का दाहन करता है और उनके साधन्य म वैषय म युक्त होता है।

विष्णु व परमपद म भूरिश्रु या गोत्र का निशान है।^२ मत्र क इस भाव का रूप-महद्वि व निग गोसव म प्रतीक रूप म १ ० योग लक्ष्य की जाती है और साधनामामित्त का बाध उनका नान कर दिया जाता है।^३ य गोम प्रति यति लक्ष्य निशान म ना जाता है। य म इनकी १ ० विन्या (गोमनाम सिद्धपुरुषों) का दृष्टान्ति प्र दित करने का निग लक्ष्य दिया जाता होगा और बाध म इनकी उद्देश्य दहर यजमान आत्मशिक्षण हो जाना था।^४ बाध युक्त की मयति का नाम करता हुआ गोम यजमान अथवा प्रजापतिव पदा आदि की मुखा कर सामाजिक बनना का साथ तात्पर्य अनुभव करने लगता है न मा उन आत्मशिक्षण की स्थिति का प्राप्ति माना जाता है। दृग निरभिमानता का पश्यन्त उय विन्यमात्र पा वास्तव्य प्राप्ति होता है। इस प्रकार विष्णु का उपासना करते हुए समाज का प्राप्ति का वास्तव्य वावर उत्कृष्ट सामाजिक संगठन म दृष्ट जाना ही गोसव का उद्देश्य पात होता है जिस पश्यती गोमय अन्तर्गत वाध म अथवा कर गणनत्र का आधारभूमि तयार की है।

सप्तम म गणन अथवाका दृष्ट और यय का पयायवाचा है।^५ और जन और जोड़ मया का यत्नि यय परक सामाजिक संगठन का युगाधारा परवर्तिन रूप मानना था। ये आध्यात्मिक गणनत्र का रूप म द्विवर्तिन हुए य और आध्यात्मिक गणनत्र व पश्यत का रूप म हा यजमान मयापीर और बुद्ध का चिन्मायिनी कांति है।^६ बुद्ध का एक नाम अथवा मा है।^७ उनकी यय मया गावरीजति अथवा म हा प्रचलित हुई है। उन आर्यों का गावर म तीन होन की बात कही है।^८ अथवा म भी साधना का उद्देश्य गावर-यय की प्राप्ति ही माना गया था।^९ अथवा म तय पुन जायत विनान वाक सिद्ध। मुनिवा और श्रद्धापरक जीवन म विन्याम करने बान व्याख्या के सम्मिलन का दृष्टव्य था।^{१०} मयागी ययण आदि पशों म एम सम्मिलन की व्यवस्था का गई है। इही का कारण जन-गमात्र समष्टि है। जन मय म साधना का उद्देश्य है रतनय की समिद्धिमान वादित्य और गान म गुणता या सम्पन्न प्राप्ति करना। या गय नमय सम्पन्न वादित्य का समानाधवाचा है।^{११}

१ ऐतरेय ब्राह्मण ३२ १० यत का आधार श्रद्धा और सत्य का विपुल माना गया है।

२ यय याव भूरिश्रुता अथवा — श्रु १।१५।६

सांख्यमहाभाष्य १६।१३।६

३ गोचरीवति-पयोसी वैदवाभी (धनारत) यय १६ अथ १२

४ बही।

५ महाधीर द्वारा प्रचारित आध्यात्मिक गणराज्य और उगरी परम्परा—पयासी मुनिवासीमयसमिति-यय

—पृ १५६ ५३

७ धम्मपद ३६ ४

८ धम्मपद २२

९ सामाधित्त ६१ ६८

१० जनमय म वात-यय—पयोसी समिति (अधपुर) १६१६



मन्यन्व के आठ अंगो-नि वाकित, नि वाजिन, निविचिकित्सा. अमृट-ष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्मन्य और प्रभावना^१ मे मे, गोवृत्ति पर विचार करते समय हमारा ध्यान वात्मन्य पर चला जाता है। इनमे प्रथम चार तो निषेधात्मक है। उग्रग्रन्थ या आत्मगोपन भी अपने धाम मे विषेप महत्त्व का नहीं है। जैनाचार्यों ने अन्तिम तीन को ही विषेप महत्त्व दिया है। इनमे मे स्थितिकरण, जिसे गीता मे स्थितप्रज्ञता कहा गया है, ही रत्नत्रय मे मे प्रथम मन्यक्-दर्शन है और तृतीय प्रभावना मन्यक्-ज्ञान से अभिन्न है। वात्मन्य मन्यक्-चारित्र का नाम है। जो व्यक्ति उन्मार्गगायी लोगो को और स्वयं को दुरे मार्ग मे हटा कर सन्मार्ग मे स्थित कर लेता है, वही मन्यक्-दर्शन को अपने जीवन का अंग बनाता है।^२ मन्यक्-दृष्टि मे युक्त होने पर व्यक्ति धर्मियो मे भक्ति रखता हुआ, प्रियवचन-पूर्वक परम श्रद्धा मे उनके आचरण का अनुसरण करता है और स्वयं को वात्मन्य का अधिकारी बना लेता है—

जो धम्मिण्णु भत्तो अनुचरणं कुण्णिदि परममद्वेष ।

प्रियवचनं जम्पन्तो दच्छल्ल तस्स भवस्स ॥^३

धर्म के दम भेदो का अनुसरण करते हुए आत्मा को ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने का नाम ही प्रभावना है।^४ तीन रत्नो या आदर्श जीवन की स्थितियों मे मे प्रथम को लक्ष्य-साधना का प्रारम्भ माना जा सकता है। द्वितीय साधना का वात्मन्य मार्ग है और तृतीय सिद्धावस्था के निकट पहुँचने की स्थिति है। स्पष्ट है कि वात्मन्य का अधिकारी बनना जैन-जीवन-साधना का प्रधान लक्ष्य है।

ऊपर वात्मन्य का अधिकारी बनने के लिए जिन बातों की ओर ध्यान दिया गया है वे मुख्य रूप से चार हैं। भक्ति, प्रियवचन, श्रद्धा और तदनुकूल आचरण। प्रियवचन को इनमे प्रथम स्थान दिया जा सकता है। वत्स गन्द की निरुक्ति—‘वदन्ति इति वत्स’ भी इस बात को प्रकट करती है कि वत्स बनने के लिए प्रियवचन प्रथम योग्यता है। स्वर्गीय जयशंकरप्रसाद के अनुसार वाक्स्यम विद्वमैत्री की पहली सीटी है।^५ मत्याणुव्रत पर विचार प्रकट करने हुए जैनाचार्यों ने मत्स्य कं: प्रियता के साथ जोड़ कर राग-द्वेष से रहित, हिंसारहित, हितकर, धर्मगर्भित वचन बोलने पर बल दिया है। मनीषी लोगो ने मौन को सर्वोत्तम भाषण माना है। उपनिषदो मे ब्रह्मज्ञानी व्यक्ति के साथ तृष्णाभाव का सम्बन्ध माना गया है। अतः मुनि का मौनव्रत मूक रहना मात्र नहीं है, वरन् प्रियवचन की साधना का एक अंग है। ऐसे व्यक्ति मूक नो किसी रहस्यात्मक आनन्द की स्थिति को व्यक्त न कर पाने के कारण रह जाते हैं। प्रियवचन मे जीव के नसार लयी बूँद से छूटने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। ऋग्वेद मे वत्स का दर्शन है कि हृदय के भाव जब बुद्धि मे प्रकाशित होने हैं तब विद्वान् श्रुत-वारा मे न्यय को समुक्त अनुभव करने लगता है।^६ जो पन्नगील तेजस्वी व्यक्ति तथा परिपक्व बुद्धि वाले मिष्टपुरुष अपनी आत्मा को सन्तुष्ट करते हैं वे वन्तुत प्रियस्त्रोत्र का ही पाठ करते हैं।^७ मन का यमन करके उसके अनुकूल वाणी का प्रयोग करना ही वत्स का वत्सत्व है।^८ मन उनके लिए वाणी (गो) मे ब्रह्मतेज और पुष्टियों का दोहन करता है।^९ इन कथनो मे एक बात को और ध्यान गये बिना नहीं रहता, वह यह है कि साधक का लक्ष्यप्राप्ति के लिए निरन्तर वत्सशील रहना ही

१ कुन्दकुन्दाचार्य—चारित्रपाट्ट ७

२ समयसार (कुन्दकुन्द) २३४

३ कार्तिकेयानुपेक्षा ४२०

४ कार्तिकेयानुपेक्षा ४२१

५ अजातशत्रु १।२

६ ऋग्वेद ८।६।८

७. ऋग्वेद ८।६।१८

८. ऋग्वेद ८।१।१७

९ ऋ० ८।१।१६

प्रियवचन माना जाता है। बिना मन्त्र के बोली हुई बात का वाय रूप में परिणत करके लिखा देना प्रियवचन उच्चारण करने का सबसे उत्तम प्रकार है। मनष्या का नहीं उसका नाम को जानना चाहिए। अर्थात् व्यक्ति अपने गुणों को अपने वाय से ही प्रकट करने है—

वायाए अवहता सुतणे धरिदेहि बहिषणा होति^१

यन् प्रियवचन का वाचरण से अविनम्य स्वयंविन हो जाता है।

गति वात्स्य य प्राप्ति का द्वारा साधन है। त्रिगुण वाय रूप वाय की जस वर्षा में उड़ि होनी है वने ही गिद्धपुरुष का भवित से जान देना और चारि। उत्पत्ति होता है।^२ दक्षिण प्रियवचन का साधना में प्रथम स्थान दिया गया है परन्तु भक्त का निवास होना है कि गति ही उस सुखर बनानी है—स्वभक्तिरे मुखरीकुने बनामान।^३ भक्त च्छेदेय क क्षमा रूप का जाहान करता है—

स्व भाव दु खिजनवसल हं शरण्य कारणपुण्यवसते क्षिणी वरेण्य।

भवत्या गते भयि मरेण दया विधाय क खाकुरीहलनतत्परता विधेहि ॥

भक्ति का अर्थ है समन और समन। जनभक्त मन्त्र दोना को भी समा। महत्त्व दिया गया है। भगवत्सवा का सबसे सरल उपाय मान्यमान है। चरित्र जगत् अविनम्य भक्ति का प्रयुक्त रूप है। साधु कुर्या का समति म रूप से और उनकी सेवा करने में बुद्धि भी प्रविष्ट हो जाता है—सुख मन्त्रात्मो विदुःक्षण प्रयो होइ।^४ सवा ऊपर मायु सत्य तार उपर ता रता का म उक्त का आश्रय भारत की अथ परम्पराओं की तरह आत्मरक्षा में भी मिल जाता है।^५ प्राचीन जल क अनुसार भारत नगर से भवनमन्त्रा से मन्त्र वात्स्य प्राप्त किया गया था।^६ वस्तु सच या मुक्त प्रमाण नही। वे वा वक्त वनन के लिए प्रयत्नरत था। यह दोना क क्षान और वात्स्यवाक्ता के साथ सचची उत्पन्नता का का प्रमाण है।

वात्स्य का तीसरा साधन अर्थात् है। भगवान् बुद्ध ने आध्यात्मिक दृष्टि के लिए अर्थात् को साज बना है— धर्मा धीज तथा बटिठ।^७ कर्म म अर्थात् का सम्पत्ति का वाय प्रादितकलायी तथा उपासना करने योग्य कहा गया है।^८ जनपरम्परा में जीवन मन्त्रात्म अर्थात् को नगर तप एव सवर को उमरी जाग क्षमा का मन्त्र पर काता वात्स्य का धन्य तथा ईश्वर समिति को उगता गरी बना कर मन्त्र से खींच कर लप रपा बाण से कमबलक का नेत्र कर मुक्त करने वाच की विजय निश्चित माना गई है।^९ आचरण के लिए किया जाना वाला उद्यम ही तप है जिसे तपक भी कहा जाता है।^{१०}

१ भगवती आराधना ५६६

२ भगवती आराधना ७५१

३ भक्तार स्तोत्र (मानतगाचार्य) ६

४ कल्याणमंदिर स्तोत्र (सिद्धसेन दिवाकर) ३६

५ भगवती आराधना ३५१

६ हेममुनि सचवाचन विधो—अन साहित्य और इतिहास—जायूराम प्रभो ५० ४५५

७ मुक्तनिपात उरणवम कतिमारद्वान् मुक्त

८ अग्नेव १।१५१

९ उत्तराध्ययनसूत्र ६।२०।२२

१० उत्तराध्ययनसूत्र १२ ४३





इस प्रकार प्रियवचन, भक्ति, श्रद्धा, शुद्धाचरण के द्वारा वत्स वनकर वात्सल्य प्राप्त करना जैन दृष्टिकोण में जीवन का परम लक्ष्य है।^१ जैनधर्म में ईश्वर (पूयक) की सत्ता नहीं मानी गयी। इसलिए प्रश्न होता है कि जैन-माधक वात्सल्य किमका चाहता है? इस विषय में यही कहना है कि जैनमत आत्मा की सिद्धावस्था को मानता है। परमभाव में स्थित पंचपरमेष्ठियों की सत्ता भी मानी गई है। इसलिए बाह्य रूप में परमेष्ठियों से और आध्यात्मिक दृष्टि में शरीरान्तर्गत प्राणादि आत्मा की दिव्यशक्तियों में वात्सल्य की कामना की जाती है। समकालीन जीवन में साधक मुनि ही वत्सल होकर मद्गृहस्थियों को वात्सल्य प्रदान करते हैं। इसीलिए उनकी जीवनचर्या का गोचरीवृत्ति आवश्यक अंग बन जाती है।

यति और मुनि परिव्राजक का जीवन वितरते हुए भी समाज के कल्याण में गोचरीवृत्ति द्वारा लीन रहते हैं। वे समाज के प्रज्ञावल के प्रतीक हैं। सामारिक विषय वासनाओं से निर्लिप्त बुद्धि व्यक्ति के विवेक को जाग्रत करने में जो कार्य करती है वही कार्य समाज में गोचर्या अपनाने वाले यति, मुनि और सन्यासियों का होता है। उनके पास माधना का बल होता है, जीवन का व्यापक अनुभव होना है और सबसे अधिक होती है लोकहित के लिए अपनी समस्त धनताओं का उपयोग करने की तीव्र लालसा। साधना के क्षेत्र में वह भी वत्सल होता है, परन्तु व्यवहार में वह स्वयं वत्सल बन कर समाज के योगक्षेम का वाहक बन जाता है। आचार्य श्रमृत्तचन्द्रों के अनुसार सद्धर्मविलासी मुनि को निरन्तर अहिंसा में, शिवमुखलक्ष्मी की प्राप्ति में सहायक धर्म में व सधर्मों बन्धुओं में वात्सल्य का अवलम्बन लेना चाहिए। और ऐसा ही करने के लिए श्रावको को प्रेरणा देनी चाहिए—

अनवरतमहिंसायां शिवमुखलक्ष्मीनिबन्धने धर्मे ।

सर्वेष्वपि च सधर्मिष्वपि परम वात्सल्यमालम्ब्यन् ॥^२

स्वामी ममन्तभद्र के अनुसार सधर्मियों के साथ निश्चल, सरल व्यवहार करना व उनका यथायोग्य उपयोग ही वात्सल्य है।^३ इन कथनों का यही तात्पर्य ज्ञात होता है कि श्रावक विनयशीलता, श्रद्धा और भक्ति के द्वारा वत्सवत् आचरण करे और सिद्धिसम्पदा के कारण मुनि सधर्मियों को धार्मिक प्रोत्साहन आदि के निमित्त धैर्य ही वात्सल्य प्रदान करे जैसे वह स्वयं आध्यात्मिक साधना के द्वारा प्राप्त करता रहा है। वीतराग होते हुए भी विनयशील श्रावको के प्रति गोचरीवृत्ति का अवलम्बन लेकर वह आध्यात्मिक-कृपि में योगदान करता हुआ मध के उत्तरदायित्व को भी निभाता है। जैन मध में व्यवस्था के अनुसार मारे भारत को कुछ क्षेत्रीय इकाइयों में बांटा गया है। मुनि ऐसे किसी क्षेत्र का गणधर भी होता है। इसीलिए उनके लिए गोचरीवृत्ति को अपनाना आवश्यक होना है। मुनि का माय आधिका-सध की माधिकाएँ भी देनी हैं। वीद्व और जैन दोनों परम्पराओं में सध को बड़ा महत्व मिलने का कारण इन दोनों के अनुयायियों का आध्यात्मिक गणराज्य के रूप में किया गया गठन है। बौद्धसध की कार्य-प्रणाली का उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। जैन-परम्परा में भी सध की कार्य-प्रक्रिया का वही रूप था। ज्ञप्ति, अनुश्रावण, और धारणा द्वारा सम्मतिग्रहण, छन्दग्रहण आदि की व्यवस्था जैनमध में भी थी। परन्तु जहाँ बौद्धमध में स्थविर और स्वविराएँ ही सम्मिलित थे वहाँ जैनसध के सदस्य मुनि और आधिकाओं के अतिरिक्त श्रावक-श्राविकाएँ भी सम्मिलित थे। इसलिए इसमें वात्सल्य के आधार पर माधनामार्ग अधिक सुकर हो गया था।

जैन-परम्परा में सध की महत्ता इसमें समझी जा सकती है कि उसे गुणों का क्रीडासदन^४ परस्फूर्ति प्रदान करने वाला तथा पापापहारी कहा गया है। प्राचीन भारत में अनेक गणराज्य स्थापित हुए थे। उनके गठन का

१ जैनधर्म में वात्सल्य—पंचोली

२ पुरुषार्थ सिद्धिचुपाय २६

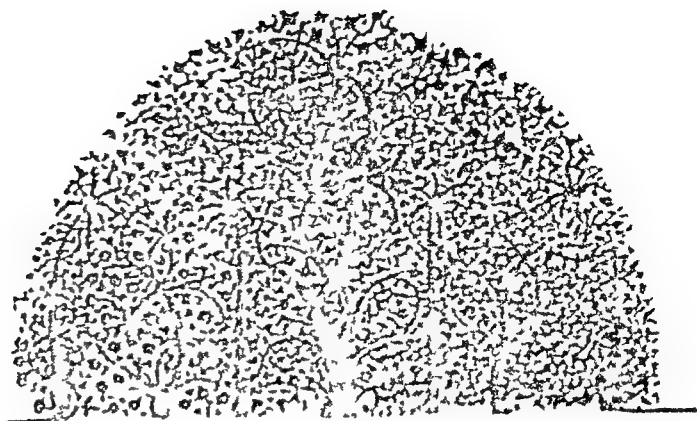
३ रत्नकरण्डकश्रावकाचार १७

४ मोमप्रभाचार्य विरचित सूक्तिमुस्तावली, श्लोक २३

५ सूक्तिमुस्तावली, श्लोक २२

गीतोक्त स्वभाव

राव नारायणसिंह मसूदा



आधुनिक भारत में गीता का अपना प्रधान प्रमाण प्रमाण ही है। चाहे हमारे पुण्यवर्त गांधीजी की प्रणाली में हो अथवा चिन्ता, ज्ञानियन एवं शक्तिवाचक की दृष्टि परम्परा के कारण। इसलिए यह भी भाव आया है कि गीताशक्ति केला में हम जीवनरस्य की महत्ता को मंगीय गीता की अन्तर्गत है। प्रत्येक धर्म-ग्रन्थ एवं दशमशान्ति जीवन के रहस्य की ओर हम अनुभूति हैं। जो प्रत्येक वैयक्तिक शक्ति का अर्थ है। अतः हम मनुष्यप्राय दशम वन पर वैयक्तिक जीवन प्रसाद के साथ चलाते हैं, परम्परागत धर्मशास्त्र एवं दशम के साथ वहीं मनुष्य हाथ पर जागृत वैयक्तिक दर्शन भी दन चलाते हैं। इस प्रकार का नवीन ही प्राचीन धर्म एवं दर्शन का बुद्धिमत्क मण्डनात्मक विवेचन एवं अनुगमन कहना होगा।

उसी प्रकार का प्रयत्न गीता के कुछ मतेषाओं में करना सर्व उचित है। उसी धर्म में हमारे सामने अठारहवें अध्याय में 'स्वभाव' शब्द का प्रयोग निम्न गीतोक्त पाठ में प्रस्तुत है —

“स्वभावनिघ्नं कर्म दुर्वर्त्तानोति किञ्चिदम्”

इस स्वभाव का अर्थ क्या है? जबकि यह कहा गया है कि स्वभाव ही ज्ञान पर चला हुआ मनुष्य बुद्धि-शील नहीं। निश्चय ही यह स्वभाव प्राकृतिक स्वभाव नहीं हो सकता क्योंकि तब तो मनुष्य 'आत्मनिद्रावर्तमान' के नाथ केवल पशु की समानता ही लेकर रह जाता है। मनुष्य में बुद्धिगम्य विवेक है और उपाय परस्पर कार्य विवेकमग्न होना आवश्यक है। जहाँ बुद्धि और विवेक का सम्बन्ध नहीं होता वहाँ वह प्राकृत-बुद्धि केन्द्र आत्मिक दोष ग्रहण करता है जिसे हम स्वभाव आदत के रूप में पहचानते हैं। यही द्वितीय अध्याय का एक कथन —

“ध्यायतो विषयान्पुनः मनस्तेषुपजायते।

संगात्सजायते काम कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥

क्रोधाद् भदति मनोह समोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥”

करने

मनन योग्य है, जिसमें यह स्पष्ट नकेत है कि केवल विषयविवेक केन्द्र आत्मन चित्त इन्द्रियो के अनु-

१ जैन-हित अविरल जीवनधारा में विशेष उल्लेख कर देना है जिसमें मानन एवं चिन्ता का मनुष्य विगड कर मुख-

२ पुरुष-कार्यगति विधुष्ट हो जाती है। गीता में ही यह नकेत भी है—“अज्ञान्तस्य कुत मुखः”। चित्तविवेक ही

३ स्तनकर-कारण बनता है। चित्तविवेक के साथ सरल स्वभाव कायम रह नहीं सकता।

४ नोमप्रभाव शब्द का जहाँ प्रयोग होता है, अधिकांश वह अच्छी-बुरी आदत में मिला दिया जाता है। इसलिए

५ सूक्तिमुक्ताकथन में जो 'स्वभाव' नाकेतिक है उसको समझने के लिए गीता के कलेवर में ही गीता लगाना पड़ेगा।

वाकी मयन क वा अनिम अष्टाय म जाकर ह्य भीनाति म म वा प्रयाग मय्य माग्यन क मय म पाया जाता है । तका अथ दू देन क लिए म उगा अष्टाय म आगे क कोर का तर्क ध्यान नेत पठमा जहा का है —

यवत्कारमाश्रित्य न यात्य इति मयत ।
मिथ्य स्वयसायस्ते प्रवृत्तिस्त्वो ऽप्योक्ष्यति ॥
स्वे स्व मम्ययिरत सतिष्ठि समते नर ।
स्वमनिरत सिद्धि पया विदति तच्छुणु ॥
धवारवधर्मो विगुण परवधस्त्वनुष्टिनात ।
स्वभावनियत वम कनान्प्रोत्त किंचिपम ॥
सज कम कीतेय सरोयमणि न त्यजेत ।
सपरिम्भा हि दोषेण धूमनामिरिवायता ॥

इने सदा म य स्व म हा जाना है कि ज षज न क स्वभाव का प्रम है उगे गुणाचारप्रति शयि स्वभाव म मय्य है और भाव का यद का उम्यिन गिस्विनि म उमहा मयम है । उमा का लवर गुण त दूस्ते ही अष्टाय म सान करना प्राम्य कर मिया है । जिवरा माराय यी है । ममारायिन् स्वभाव म परिम्यिनि जा उरान की म है उगा सारवा सायना करना ही एकी निम्तय है । का दूरा स्वाम मय्यीय अथवा और का आमशि अयस परमरायि का व ता नो क मयना । अनत प्रहति क अनुमार जिन म्यिनि म जा मनुय यडा है उगे म क धूव कम का निषय कर अनासत माय मर म्यिनप्रक वनकर क मयना है और म प्रार क मर का म इय जगती स्वभाव का प्राम्य कर मयना है । ज त क जीवनम्य त पूरा पान प्राम्य न हा जाय जगत म नात बुद्धिमाय का पूरा मयम त य जाये नर स्व स्ववम का ज जनिमिद्ध अथवा अय प्रार म सिद्ध म—आवर मया माय डालन का उगा म मनुय मयम मायिनी जत मयना है । मय मया माय यमान का ह्य म सगता नो है ना कावा माय पर कान म मी आपति नही हात वा म और मया माय यता का म मयना की डिगि म अनत साहा या नेत म मयान मयना क अनिरित कुछ नो हा मयना ।

इत मयना क भाव सात ता पा कमा कमा विनिवाहना का समयनमा जवन लगता है पर त जग जग जग म म अनत अनत प्रहति का समझकर एगे इन दू भा माता क मिया अष्टाय म

यामिमां बुद्धिमां धार प्रमय्यति ॥
यवत्कारता याव नायमस्तेय शान्ति ॥
कामास्मात् स्वयपरा नमयमयिप्रमय ॥
क्रियाविनेयत्वा मोयमययति प्रति ॥
मोयमयप्रमयताता सयापदुत्तेताता ॥
म्यमाया स्वय बुद्धि समाधी न विषयोऽ ॥
प्रमुयविषया यथा निरमुयमया मयाता ॥
निमयमयस्ते विमयमेम आत्मयान ॥

मनेन मायो अते है ना म कान हा जात है कि याता कवय म यनाय माय पर हा अधविषयम यवर यनेन का ना काना । और अय मयन स्थान पर बुद्धिपुत्र हात का यात काना है ना क मयि मय है । ना साय का मयन करती है कि परममयमय माय का ना कयन मयिनि क मयि यमना वा म मय जग पम पर अमपर हने दू म जावन का प्रयेर विचरा म म यमिन्त मयन मयिन्त मय म की आमायिन्त पर म क विचरिन्त म का का मायमया का अथ दू दूता रता है । कानमय मायन है—माय मयम कीमन ।





इस प्रकार अग्रसर होने की विधि बताकर गीता स्वभाव की नियति की ओर गये हैं और अन्तर्गतता उस स्वभाव की प्राप्ति का पूर्ण अध्यास प्रति ज्ञेयता में दर्शना हुआ एक मार्ग बताया है जहाँ कर्म की प्रवृत्ति प्रतिपादित है, दृष्टि एवं समष्टि का विवेचन है, निगूढभाव का वर्णन है, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विवेक प्रतिपादित है और अच्छी और बुरी प्रवृत्ति की ओर मोड़ है। उन सब अध्यासों की भाषा में समताशील वातावरण की छाया हो गयी है जहाँ चतुर्वर्ण व्यवस्था ऐसी ही प्रचलित शब्दों का वाच्यार्थ का प्रयोग किया गया है परन्तु अर्थ की प्रवृत्ति सुगम्य के लिए अक्षुण्ण है, उनमें कुछेक मोड़ रहस्य नहीं।

यह स्वभाव शब्द का प्रयोग एक पूर्ण जीवनसाधन-शीली, साधना और जीवनदशा की ओर संकेत करने वाला है और उस स्वभाव का जनाग्रान्ध ही पूर्ण स्वरूप आच्छादित अध्यास के क्षेत्र में मिल जाता है जहाँ प्रत्यक्ष शब्दों में—“स्वभावाऽध्यात्ममुच्यते।” स्वभाव शरीर का धर्म है, धर्म ही नहीं बुद्धि का धर्म है, मन का धर्म है, अन्तः-विहार धर्म है और यह सब प्राप्त हो जाता है तो जीवन का अन्तिम प्रवाह नागोपाग मनुज के पास चला जाता है। वह मनुज जो व्यक्ति शरीर, मन और बुद्धि में स्थापित होता है और उसके पास ही परिस्थिति प्रवृत्ति प्रतीत के अवशेषन में।

उस स्वभाव की प्राप्ति करने के लिए गीता में ज्ञान-स्थान पर “उद्दिष्टापीडिता रैव तस्य प्रजा प्रतिष्ठिता” आदि शब्द जाते हैं जिनमें उस ज्ञान का सुस्पष्ट संकेत है कि उद्दिष्टों की तृप्त्य पर समीप आकर अत्यन्तता के अनुभव बनावि करते हुए चरने में कोई बच नहीं मानता और उस प्रकार न करने हुए तोड़े विज्ञान भी हो नहीं सकता। यही व्यावहारिकता का प्रथम सूत्र है और यही इस ज्ञान का सुस्पष्ट ज्ञान है कि—“भोजन प्राण-जगत्” जहाँ स्वानादिक धर्म है वहाँ ‘भोजन स्वादाय’ मार्ग विद्वान् को स्थापित करने वाला बन जाता है।

इस प्रकार से स्वभाव का प्राप्ति करने के लिए गीता ने एक बड़ा ही व्यावहारिक ज्ञान प्रतिपादित किया है जो स्वयं एक आनन्दपीय धर्म बन जाता है। तब ही प्रवृत्ति को बताकर अपने स्वयं के अग्रसर प्रवृत्ति परिस्थिति का नामना करने का गीता में एक विनयन उपदेश है। स्वयं निगूढ भी अस्मद्वर है स्थिति स्पष्ट हो जाता हुआ परीक्षित जीवनमार्ग है और परधर्म, यशोकि परीक्षित नहीं, भयानक हो सकता है। उस उपदेश के साथ गीता ने कर्म करने का अविहार व्यक्ति का बताया है परन्तु उसके फल का चिन्तन पहले में ही बताया कर्म का दाया बहादा है। इसलिए फल की तरफ से निश्चित प्रकार स्वयं की मागी के साथ कुतूहलपूर्वक कर्म करना ही गीता का योग है—‘योग कर्मणु कौशलम्।’ उस प्रकार के कर्मयोग के लिए नश्यत ब्या दानु है जो परिस्थिति के साथ बदलती जाय और अनन्तर ब्या है, जिसे लेकर व्यक्ति काम करता जाय, उस प्रकार का मार्गोपाग उपदेश द्विः अध्याय में सन्निहित है। उसी प्रकार का कर्मयोग गीता का योग है जिनमें उत्तम विवेक और कर्मबुद्धि का स्थापित हो जाती है।

मनुलित आहार-विहार द्वारा (जैसा कि विवेचन छोड़े जगत् में कहा गया है) शरीरस्थिति में एक पूर्ण मनुज जमाने का उपदेश है कि जिसमें कर्मयोग का पूर्ण विवेक स्थापित हो। इसके बाद मनानिग्रह का उपदेश है जो अनात्मविन द्वारा, कर्मविवेक द्वारा तथा ज्ञान द्वारा स्थापित करने का है और उसके बाद बुद्धि का वह मनुज प्राप्त करने का विज्ञान है जो अविभूत, आधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत आदि के विवेक में स्थापित होने वाला है। शरीर की तन्वर भीतिज्ञता उस पर स्थापित शरीर का जीवत्व जो पुरुषभाव में स्मर स्थापित है और इन्द्रियों में विकीर्ण है (समष्टि में व्यष्टि) तथा जिसका प्रकार जीव मान में है और जो एक यजमन चक्र में अविद्यत रूप में स्थापित है (जिसका कि सकेत तृतीय अध्याय में किया गया है) इसी प्रकार की बुद्धि की स्थापिति ही गीता का बुद्धि-योग है। यहाँ यदि “अधियज्ञ” को हम वेदान का “ऋतु” कहें और बुद्धियोग लिए हुए विवेक को “अध्यात्म” का “ऋतु” कहें तो अनिग्रहोक्ति नहीं होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर मन और बुद्धि का पूर्ण मनुलन स्थापित करने का महान् उपदेश एवं उसकी विधि गीता के क्रमवार अध्यायों में चली है जिसमें वैयक्तिक शरीर मनुलित होकर पूर्ण मनुलन प्राप्त कर परिस्थिति के साथ ऐसा भेद बढाये कि जीवन की धारा सत्य एवं अविकल बहती रहे

और वह विवेक प्राप्त हुआ कि ज —

यो मा पश्यति सवनं सर्वं चमयि पश्यति इति प्रकार का च्युति में समष्टि दर्शन रहै । इस विवेक के लिए ही गाथा में व्यवहार्य धर्म के साथ अपने अन्तर में व्यवहार के पुरुष पर के लिए भक्तिभावपूर्वक समर्पण भाव प्रतिपादित किया है और आदित्य कह दिया है कि — सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं गणनाम् । यह नाम हमारा अतर्निहित जीवन सत्य है । यो गीता का पुरुष पर कहा जा सकता है । यही वह है जिसके लिए कहा है —

ईश्वरं सर्वभूतानां हृद्गोचरम् ! तिष्ठति ।

आत्मसर्वभूतानि यन्नाह्वयति सायमा ॥

इसको समझने के लिए गीता ने अनायासता को गौरव से कह दिया है जिसमें चौथे अध्याय का अवतार रहस्य छपा है तो अन्तर में अवधारणा का विराट् दर्शन भा तथा पश्ये अवधारणा का पुरुषोत्तम भाग । और यह स्पष्ट संकेत किया है कि भूमाभाव में स्थित गरीर भूमाभाव से ही प्रेरणा ले सकता है और इसीलिए सूक्ष्म तत्व का भी सत्य त्रि-मुन्दम गुणमय भूमा स्वर्ण देव उभय प्रति भक्ति और समर्पण बद्धि स्थापित कर पश्यति अपने स्वभाव का प्राप्त कर सकता है —

बलेनो धिक्तरस्तेषामप्यवतासवत्तेतताम् ।

अप्यवता हि पश्यति च हृद्गोचरं पश्यति ॥

अतः मज्हा स्वभाव पश्यति गाथा में प्रयुक्त होता है गाथा के सारे गद्य में उक्त समझन का प्रयत्न करते हुए मुझे यो समझ में आता है कि आत्मसत्त्वपूर्वक परिस्थिति के साथ पूरी तरह सन्तुष्टि होकर जो बद्धिबोध सन्नि जीवन प्रवाहित होता है वही स्वभाव का प्राप्त कर सकता है और स्वभाव को प्राप्त ही मोक्ष अवधारणा के साथ सम्पर्क की स्थापिति है । जिसमें पुरुष सत्त्व स्वस्थिति हो सकता है और जीवन का रहस्य उद्घाटित हो सकता है । यो स्वभावप्राप्ति ही ब्रह्मी स्थिति कहो जा सकती है । यही स्थितप्रज्ञ अवस्था कहो जा सकती है और सारे जीवन की साधना का फल हो सकती है ।

अतः यह भी कहें बिना नहीं रह सकता कि गाथा ने सुस्पष्ट रूप से स्थितिबलवत्ता अग्रविस्थात एव हठबोध आदि की कलावाणी से दूर रहने का बाणी संकेत दिया है । हमारे सम्मुख अब यह वाक्य आता है —

नास्मान् अवयान् अर्थात् अपने आपकी क्या कला न दिया जाय यवादि गरीर तान् स ज्ञान नहीं मिलता ।

यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि स्वभाव नियत स्वधर्म का आश्रय करने एक सरल सत्य और व्यवहार्य जीवन मनाने की पूर्ण ज्ञान और मति प्राप्त हो सकती है । गीता का ज्ञान का बहुत पारस्परिक सम्प्राप्य आत्मा नहीं धर्म तो स्वभावनियत जीवन का सुचारु वाहक स्वधर्म मात्र है ।



छद्द्वसखुवं-मूलं-टीगा

सुमित्त-मिक्खू



गाहाओ—जम्म सम्मण्णाणमि, पमेया पडिभाविवा ।
गुत्तपम्मणमाया उ, तणाए पणमेमि ह् ॥१॥
मियावायमुमिद्वन्ने, नम्मण्णाण पमाणज ।
तेण विमिद्वमामण्णा, जाणियव्वा पमेअथा ॥२॥
सव्वे पयडमिद्धा य, अयो मुट्ठु पभानड ।
मियावायम्म मन्तव्वे, नत्त वत्तुण उ ॥३॥

दव्वलक्खण—मद्वल्लङ्गणमुपायवयघोव्व जग्गइ ।
ण ठावह् हिययम्मि, जिणवाणिमणोवम ॥४॥
अणाइ अणन्ता दव्वा, लक्खणत्तिणि नजुया ।
नमगुणपज्जाएमु, मेर वारित्तु ते ठिया ॥५॥

छद्द्वणामाइ—धम्माधम्मा आगाम, काओ पुग्गलज्जन्तवो ।
एयाइ उ छद्द्वारा, नत्तावम्मि निण यिरा ॥६॥

णसत्त्व—मव्वाणत्तवकियावित्ती, नाह्उयस्वम्मि य ।
सव्वे सक्कज्ज कुव्वन्ति, कूडत्त पत्ति कपि वि ॥७॥
णत्ति अकिरिय कपि, लव्वइमाहिया किया ।
मसगुणपज्जाएमु, दव्वन्ति य णिरन्तर ॥८॥
सहभावी गुणो नम्म कममो पज्जवा गुणो ।
नियगुणपज्जवेमु च, ठिया सव्वे णिरन्तर ॥९॥

गुणलक्खण—सव्वे गुणा उ एएमु महभावी य मासया ।
तह् दव्वसिया सन्ति, णत्ति कोवि परग्गुणो ॥१०॥

सामण्णगुणा(अज्जा)—अत्तिवत्त वत्थुत्त अगुरुल्लुत्त तहेव दव्वत्त ।
पमेअपएसवत्त, सामण्णगुणा उ दुच्चन्ति ॥११॥

विसेसगुणा—जीवो णाणमस्वो य, अजीवा सेम पच वि ।
णिच्छएणवगन्तव्व, जडत्त तेमि लक्खण ॥१२॥
स्वी पुग्गल दव्व, सेसा पच अरुविणो ।
वण्णगन्धरसो फासो, एएसु च न विज्जए ॥१३॥

धर्माधर्मा आगास इति विविक्तमस्ति ।
मया तिलिपि मया मया मया मया ॥१८॥
पुनः वागवाणि च मया मया मया मया ।
नागागामयसु रयरागमय त द्या ॥१९॥

पुनश्च—अविभागी परमाण आगासस्य य जेति ।
मया मया मया मया मया मया ॥२०॥
जीवन्मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥२१॥

पुनश्च—मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥२२॥

पुनश्च—मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥२३॥
मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥२४॥

आगास—मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥२५॥
मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥२६॥
मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥२७॥

उवादागमिनिमित्तकारणमगती य उवादागमिनिमित्तकारण ।
मया मया मया मया मया मया ॥२८॥
मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥२९॥

मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥३०॥

मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥३१॥

मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥३२॥
मया मया मया मया मया मया ।
मया मया मया मया मया मया ॥३३॥

वागामद्वयुद्योगो—मव्वदव्वाणं ज पत्त, विमा७ मव्वओ वि य ।

मव्वदव्वाणमोगान, ठामेय पयच्छ ॥३०॥

पुग्गलदव्वविमेसगुणवत्तण-वग्गान्तरमग्गान्तरगुणसुग्गामेग ३ ।

एण्हि चउरि पज्जन्ति, मव्वाट पुग्गलट उ ॥३१॥

वट्टप्पाना पचरन्ता, दो गग्गा पच वट्टण्ण ।

चाग्गुव्रीम मेण्हि, जाणिज्जन्ति उ पुग्गना ॥३२॥

परिणमगावन्नाण, मग्गव्वेण मव्वहि ।

गाण विगा उ वग्गान्ता, मि पि वोन् ण पचवो ॥३३॥

मण्डव्वलज्जगुव्ववग्गान्ता विगाट्टिया ।

अस्मि ओण परमाणू, मग्गिया मव्वओ वि य ॥३४॥

उट्ठिण्हि निज्जोण्हि, मानांमनेग आउता ।

एण्हि दमपाणेहि, पत्ती मुट्ठव्वाण ३ ॥३५॥

अणोपुग्गान्ताणापदाने, वि लब्धान उप्पाने परोपर ।

चउज्जदग्गान्तामावस्सगाउ, अणनयवहारो उट्ठिगाट्टिगो ॥३६॥

विमेसो—व्विणो पुग्गला मव्वे मुत्तान्तरगुणसुग्गा ।

पच अमृत्तदव्वाट, गुणविमिट्टि पिवां जहा ॥३७॥

धम्ममि गट्ठेउत्त, अहम्मं टिट्ठेउत्तं ।

वट्ठाहंउत्तगुणो, जग्गदव्वे पहाओ ॥३८॥

अंगाहागा उ अगाणे, मुत्तव्वाण विगज्जट ।

इण मव्वण दव्वानां, अहारेण महादग्ग ॥३९॥

वव्वेमु गुणा विट्ठिया, गुणो परोवग्गया ।

नामग्गो उ गुणो वो वि, मोट होउ विमेसओ ॥४०॥

चउप्पडि-उवमहारो—ण उ अरियत्त पम्मट न्यावि,

ण य पम्महाव्वं गच्छट क्यावि ।

पग्गदव्वन्निन्नं गो गहन्ति,

पिच्छयाएण भिण्णेव सन्ति ॥

ओगागामम्मि उ पच हन्ति ।

वेत्तावगाहणे उव्वमवन्ति ॥

ठिडया पिग्गियगुणज्जव्वेमु ।

अणमि अस्मि णहि इय मुणेमु ॥४१॥

पमव्वी—फट्ठरेट्ठुपनिस्सेण भूमिनेणं तु भिक्खुणा ।

पुप्फभिक्खुमुनिस्सेण, एसो गयो विणिम्मिओ ॥४२॥

अण्णेगन्तविहारम्मि, गुग्गामम्मि मुट्ठिए ।

अन्निअमावासाण, किहम्मि बृहवामरे ॥४३॥

४ २ ० २

सुग्गा-चक्खु-व्व-दो वाने, विव्वमे वच्छरे मूहे ।

मग्गान्तामुवयान्हुं, जाव मोगो ति अच्छउ ॥



जैमि पचिन्दियजीवाण मर्णो नहिगहिप्रियागे ते नन्निणो अन्न अमन्निणो । दुनियचउर्गिदया अउणिणो विगठिदिया वि बुच्चन्ति ।

पचिन्दिया चउविहा पणत्ता, तज्जा-देवमग्गु-आग्गनिग्गिआ ।

आरिअमिन्दियभेएण मणुत्ता वि उविहा होनि । आरिआ आरिअउत्तेनु, मिनिच्छा मिनिच्छाउत्तेनु वमन्ति ।

देवा चउविहा पणत्ता, तज्जा-भुवणवानि-णो जे पायले वमन्ति । वाणमन्तरा ते दमीने पुटवीण गउ-पव्वयाट्ठु वमन्ति । जोइमिया मूरिअ-चउगण्ठपायत्ततागो । जैमि विमाणा नुमेर पव्वयन्म गध्वओ ममन्ता पग्गि-मन्ति । कप्पवामिणो जे वाग्ग देवओयणग्गवेज्जागपनगुणार्गमाणेनु गिउमन्ति ।

मत्तविहा गेरइया-एयाण पुटवीए देहा मत्ता णव्वा मन्ति । नाम्म ण्ण जीवा वमन्ति । अहोणिमि पग्गोण-मारण-मरण-पिट्ठण-नउज्जग-नारण-देवण-भेयण-अग्गमाइमहि तेनवेयान्हु पच्चणुअमाणा विउमन्ति । अम्हाग्गि मायणपाण ण लव्वट । मागरोवमउव्वण मारीरमाणमाइ इग्गट महेनि । ण तेमि गग्गमेत पि पुट्ठ लव्वट ।

निग्गिआ पचविहा-जलयर, रयर, गहयर, उरग्गिन्मप्प, भुवणग्गिन्मप्प य । ते चउ पचिवमन्ति ते जउयरा मीणमगराट । जे थहे चउन्ति ते थउयरा, जहा-ऐणमहिअग्गमाट । जे आगणे उउेति ते गग्गवरा जहा-तावोय-माम-दियाड पव्वे चैया । उग्गओ पचिउपनिज्जि उरग्गिन्मप्प, मृगापण अमिण गेउल्लमग्गयाट भुवणग्गिन्मप्प ।

ने थावरा जे उप्पज्जन्ति, उट्ठन्ति, मरन्ति, पर मग्गमेगडाणागे बीय टाण ग्ग गत्तु मारा । अत्था एग्गदिय-जीवा जैमिमेग फाग्गिदिय मग्गमेत भवट । थावरा पचविहा पणत्तात जहा-पुटविहाग्गया आउ०, नेउ०, पाउ०, वाउ०-टकाट्या ।

पुटवी एव जैमि मरीर त पुटवीनाग्गया । एव जाउ-नेउ-पाउताग्गया वि अगलव्वा । वग्गफउक्क-कुल्ल-वेत्ति-मग्ग-मत्ता एव, जैमि मरीर ते वग्गफउताग्गया जीवा बुच्चन्ति । ण पचविहा पादरा, तमग्गया व छज्जीवि-वाया बुच्चन्ति । एए नवे चैयणा-जुत्ता जहा-गहा म्हामूह(पुण्य-पाव)ग्गमाट कुणन्ति गहा-महा फारिणाम ल्हन्ति । वयाड पावकरणेण महेनि गिग्गयद्दह, ग्गयाड पुण्यपावेण भुज्जति मग्गमूह । एव तउरे जीवा अगाग्गानेण एग्गमि पचिउत्तणनीग्गमागे म्हादुह्वणउइ मग्गन्ता पचिउमन्ति, अमिन्ताग्गि य जाय चउ मोग्गोवाव वट्ठु, मग्गमुत्ता ण होन्तु ।

अजीवदव्व — जग्गि फाग्ग-ग्ग गग्ग-वग्गया एए चउगुणा होउता न पुग्गग्गवन्ति बुच्चट । इग्गिमे 'matter' उइए 'माहा' नि उहेनि ।

अट्ठविहं कामग्गुणे-उग्गआग्ग-उग्गउग्गमूमाउग्गुग्ग-णिउमी गेहे । अदित्ठमहुर-हुग्गग्गमयित्ता पच रमा । मुग्गउग्गुग्गया गग्गया । नीग्गदीपनणिग्ग-नवेया पचवग्गया ।

पुग्गलदव्वे (अउपयग्गे) उव्वत्तचउमुक्कउग्गुणा अव्वन् लव्वन्ति । जहा मयत्तमुक्क कामो म्माओ, र्गो वट्ठओ, गग्गया मुग्गया, वग्गो रत्ता ति । एवामेव पचउपुग्गगे एए चउगुणा उव्वन्ति । जन्देगो गुणो तत्थ निग्गि गुणा अव्वन् होन्ति ।

पुग्गलदव्वमग्गुग्गउग्गेण दुविह । पुग्गलमव्ववहउग्गटो जग्ग पुणो उग्गटो न होइ नो अग्गू पग्गमाणु ति वा बुच्चड । 'Atom' उर्रो ति इग्गिउग्गुग्गु । दुतिअ अणेगपरमाणुपिण्डो उव्वो ति भण्णड ।

त्रया छविहा पणत्ता, तज्जा-थूलथूले, थूले, थूलमुहुमे, पुहुमथूले, मुहुमे, मुहुममुहुमे ।

थूलथूले—पुग्गलउग्गवे जे भिण्णे ममाणे पुणो तहेव न मिलट, जहा पत्वरकट्टुमिच्चाड ।

थूलपुग्गले—जे भिण्णे वि मिलड, जहा पाणीय, दुट्ठ, तउल्ल, घग्गमिच्चाड ।

थूलमुहुमे—जे दिट्ठिपग्गमागउउ किन्तु ण गिण्हिउज्जट, जहा-छाया, थायव, चदिया ।

मुहुमथूल—जे दिट्ठिगोये न भवड किन्तु फाग्गस्तणणग्गग्गणेहि णज्जड । जहा-वाउ-महाड ।

विदेशों में शाकाहार

महेन्द्र राजा जैन

एम० ए०, डि० लि०-एल० सी०,

एफ० एल० ए० (लदन)



आज मे करीब १२ वर्ष पूर्व जब मैं लदन जाने की योजना बना रहा था तो बनारस मे मेरे अग्रिकाय मित्रो ने पुस्तको एव समाचारपत्रो मे प्राप्त अपने ज्ञान के आधार पर एंग्लैंड के विषय मे मुझे जो कुछ बताया था, उससे मेरे मन मे कुछ सय-ना समा गया था। मे सोचने लगा था कि शास्त्र मे परिस्थितियों वहा शाकाहारी न रह सकें। पर लदन मे करीब ७ वर्ष जीर अफ्रीका मे ८ वर्ष नया अमलग ३० देशो की यात्रा करने के बाद मुझे यह कहने मे जरा भी झिजक नहीं कि कोई भी शाकाहारी धार्मिक विदेशो मे बर्ती जामानो ने, जिना किसी परेशानी के रह सकता है। आवश्यकता यदि है तो केवल आत्मनियन्त्रण की।

म गुरु मे ही शाकाहारी हूँ। उनका कारण यह नहीं है कि मेरा जन्म जैन घराने मे होने के कारण मुझे वचन मे ही शाकाहारी रहना पडा। किमोरावस्या तब आने ही उन कारण मे शाकाहारी रहना पडा हो पर अब मेरे शाकाहारी बने रहने का एक मात्र कारण यह कहा जा सकता है कि मैं मान माना उचित नहीं समझता। मेरा हृदय यह स्वीकार नहीं करता कि दूसरो का जीवन मेरे आहार का साधन बने।

बम्बई मे जब ग्वाना हुआ तो पहले ही दिन जहाज पर शाकाहारी भोजन की समस्या सामने आई। इसके पूर्व मैने अभी किसी भी माग मे विदेशयात्रा नहीं की थी। अब मुझे यह पता नहीं था कि जहाज का टिकट बुक कराते समय या सीट रिजर्व कराते समय इस बात की सूचना भी दे दी जाती है कि भोजन की व्यवस्था शाकाहारी हो या मांसाहारी हो।

दुर्भाग्य मे मैं जिम कंपनी के जहाज मे सफर कर रहा था वह फ़ामीली थी। उनसे सभी अर्मचारी भी केवल फ़ामीली भाषा मे ही बातचीत करते थे। अब उन्हें समझना बहुत कठिन था कि मैं शाकाहारी हूँ। भोजन के समय जब मैं डाईनिंग हाल मे गया तो वेटर ने किसी प्रकार उधारे मे यह समझा दिया कि मैं मान नहीं जाता। वेटर ने जिम डग मे हावभाव प्रदर्शित किये, उसमे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह मेरी बात अच्छी तरह समझ गया है।

वह थोड़ी ही देर मे मेरे लिए एक प्लेट मे खाना ले आया। प्लेट मे जितनी वस्तुएं थी, उनमे से एक को छोड़कर बाकी सभी मेरे उपयुक्त थी। एक पीली-सी चीज जो देखने मे बेगन की बनी-सी जान पड़ती थी, मेरे लिए समस्या बन गई। काफी सोचने-समझने पर भी मैं यह निर्णय नहीं कर पाया कि यह क्या वस्तु हो सकती है।

इसी उलझन मे पड़े हुए मैंने प्लेट की अन्य वस्तुएं तो खा ली और उस पीली-सी वस्तु के विषय मे सोचता रहा। अंत मे यह सोचकर कि उसे पहले चख कर देख लेना चाहिए, मैंने उनका थोडा-सा अंश चम्मच मे लिया ही था कि मन मे खाल आया कि वगल मे बैठे हुए सज्जन मे इस सवध मे पूछ लेना चाहिए। मैंने जब उनमे पूछा तो उन्होंने बतलाया—आमलेट।

उन दिन पहली बार मुझे यह मालूम हुआ कि यूरोप मे अंडा शाकाहारी भोजन मे शामिल किया जाता है। इसके बाद जहाज मे ही एक और नया अनुभव हुआ।



तो बहुत खुशी हुई और मैं प्रायः प्रतिदिन उसे खाने लगा। वहाँ माने हुए मुझे लगभग तीन माह ही चुके थे और वहाँ के खाने ने मुझे कोई शिकायत नहीं थी।

एक दिन जब मैं वहाँ 'चीज-केक' खा रहा था तो उसे पाठने समय उसके ज़रूर पतली-पतली दो-तीन मीकें-सी दिनी। मैं समझ नहीं पाया कि उसके ज़रूर ये मीकें कैसे आईं तथा क्या हो सकती हैं। तब मेरा ध्यान लगभग ३ वर्ष पूर्व की एक घटना की ओर गया जब मैं बचपन में एक बार अपने एक बगानी मित्र के यहाँ गया था तथा उसके यहाँ आगमन में उसी प्रकार की छोटी-छोटी मीकें-मी देगी भी जिनके विषय में उन्होंने बाद में बताया था कि वे मछरी के काटे हैं।

मेरे हृदय को एक बसका-सा ठगा और मैं तब से पट गया। बाद में वेद्रेन ने पूछने पर पता चला कि पिछले तीन माह में जिस बस्तु को 'चीज-केक' नामकर पाना जा रहा था वह वास्तव में फिन-फेन थी।

'चाज-केक' और 'फिन-केक' में कोई विशेष अंतर नहीं होता। आहार प्रकार, स्पर्श में दोनों एक-सी ही होती हैं। पर वह तो उन्हें बनाने वाले की कुशलता थी कि एक माह तक कालेज में 'चीज-केक' और तीन माह तक रेस्टा में 'फिन-केक' खाते रहने पर भी मैं दोनों का अंतर नहीं समझ सका।

इसके बाद तो मैं खाने-पीने के मामले में और भी सतर्क हो गया, फिर भी काफी सचेत रहने में प्रायः ज़ूद कुछ ऐसे अवसर आए जब कुछ न कुछ गलती हो ही गई।

एक बार लंदन विश्वविद्यालय के 'स्कूल आफ जोरिएट एण्ड अफ्रीकन स्टडीज' के पुस्तकालय में कुछ कार्य-व्यय जाना पड़ा जहाँ निश्चित समय में कुछ अधिक देर हो गई और वही खाना खाने का समय हो गया। वहाँ पूछने पर पता चला कि कालेज में ही कैण्टीन है जहाँ कालेज कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों को मुफ्त मूल्य में अच्छा खाना मिल जाता है। चूँकि उस कालेज में भारतीय छात्र भी काफी संख्या में हैं अतः भारतीय टग के खाने का भी वहाँ प्रबंध रहता है।

कैण्टीन में पहुँचने पर पता चला कि वहाँ गैल्फ नर्विन व्यवस्था है। उबल रोटी (ब्रेड), मक्खन दूध आदि तो मैंने स्वयं ही ले लिया पर शाक के लिए वेद्रेन से कहना पड़ा कि मैं शाकाहारी हूँ। उनसे बतलाया कि उस दिन वहाँ मांस की कोई बस्तु नहीं थी अतः सभी लोगों के लिए एक शाक थी। ऐसा करने हुए उनसे एक ही गहरी प्लेट में शाक दे दी।

ट्रे में सभी सामान लेकर मैं जब टेबिल पर खाना खाने बैठा तो देखा कि शाक में बड़े-बड़े बिना कटे पूरे आलू एवं गोभी के टुकड़े थे। खाते-खाते एकाएक एक लम्बे गोल आलू पर ध्यान जटक गया। उसका आकार प्रकार सामान्यतः अन्य आलूओं से भिन्न था अतः मेरा मन उसे नुरख्त ही आलू मानने को तैयार नहीं हुआ। जब माचने-मोचते शक गया और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका तो पाम में बैठे एक व्यक्ति से उस विषय में पूछा। उसने बताया कि यह आलू नहीं बरन पूरा उबला हुआ अंडा था तथा वहाँ इस प्रकार शाक सब्जी में अंडे डालने की प्रथा है।

इंग्लैंड में २-३ वर्ष तक रहते हुए मैं वहाँ के खान-पान में बहुत कुछ परिचित हो चुका था। अब पहले जैसी मुश्किल नहीं होती थी। पर एक बार जब कान के आपरेशन के मिलमिले में दो सप्ताह तक अस्पताल में रहना पड़ा तो फिर मुश्किल पड़ी।

ब्रिटेन में 'नेशनल हेल्थ सर्विस' योजना लागू रहने के कारण अस्पतालों में सभी प्रकार की निःशुल्क व्यवस्था रहती है। खाना भी वहाँ निःशुल्क मिलता है। अतः पहले ही दिन मैंने अपने वार्ड की 'मिस्टर' को अपने शाकाहारी होने तथा मांस, मछली, अंडे में परहेज की सूचना दे दी। उसके परिणाम स्वरूप मेरे लिए कुछ चीजें अलग में पकाई

जान गया पर कुछ वस्तुएं लेया भा भी जो सभी मरवाया व लिए समान रूप से बनना भी और मैं भी उनमें से कुछ अपने लिए ले बना था ।

एनी बस्तुओं में हृदय सदन गहन मूल मित्रता का जो प्रायः विच्छेद प्रसार का जात नहीं होता व बनाया जाना है । एवं बाद जब मैं मूल को चला तो एवं माथी घरात में उल्टा उल्टा करता कि जब आप गाथाहार है गा आनन या मूल कम पा लिया । यह मूल रूप में चौड़ा पर बाद में गीत ही अपनी मूल को वापस चला गया ।

एन ई म वरुं चारों ऐसी हैं जिनका नाम जो विच्छेद जान है और मूल में गाय में उनका कोई संबंध नहीं होता । यथा घात पीन की वस्तुओं में एवं अमावसी चात्र गत हासन (Hot Dog) नामक है । जिसका सम्बन्ध होता है गरम दूध पर गरम तो क्या ठंड कुत्ता में भा उनका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

इसा प्रकार मूला में आखिर (OXTAIL) नामक एक मूल होता है जिसका सम्बन्ध में मरा उभय धारणा का । यह मूल में पड़े का कोई बांध भी बना था । पर उन दिन गाथा मरीज न बनना या कि आनन में मूल नाम मूलन गाथा है (आनन में मूल या न बल का कुछ का गाथा) क्योंकि यह एक गा थुछ ग हा बनाया जाता है ।

मूल का मामला में इसा प्रकार रा रदम (गुलद) के एवं रदम में भा मूल हा गत । वी टमाटर का बांधे का बाहर ग पर जो गत गांधी भाया उभय छोटी छोटी गांधी वसी हुई था । चपटे पर गत मूल का बांध भी कुछ मयागा गया तो पलन पर गत चला कि हाथ में टमाटर का मूल में गांधी का अन या मूल टकरे भी हाथ लेने का प्रयास है ।

आखिर (पूर्वी अक्षर) में भा इसी प्रकार गांधी का मामला में जा एक बना हुआ है मूल गांधी भुगता का मयना । उदा मूल गांधी । बांधन में गीनियर रगता की बांधी का उभय में आधाजिन एवं गांधी में भा भुगता मया । बांधन का व्यवस्थापिका में मने पलन की वत लिया था कि बांध में बांधाहारी मूल अन मर निग ने विगत व्यवस्था कर रहे । उदा यह बहुत बांधाबांध लिया कि गांधी में म मरे गांधी ही रगती और बनाया दया कि बना दया बांधों मरे उपलब्ध हैं ।

गांधी में मूलापीय दम की मय गांधी व्यवस्था की । बांधा-बांधा रगता में बांधों नामक रगता हुआ भी और लग व्यवस्था गांधी लगर अदना पल । म रगते जान था । किने भा एवं गाला में लकर बांधों रगता मुक्त की । उदना हुआ म र आनन आंधी बांधों मरे लिए उभयुत था । व्यवस्थापिका मरे गांधी हा था अन मैं और जी निगा न था । जा की वस्तु में ल रग था उहें बहुत बरे गौर में दया रग था । और गत बांधों लने का बांध किनेगांधी का लक भा निग जो दया में मित्रता गत जान गहन थे ।

मय गांधी लकर में टाइल पर भा गता और गांधी का किने गांधी हा गांधी का वस्तु टाइल मय में हागा उभय पलन हा उ गांधी गांधी लगी । उभय हा है १५ मिटर ल गांधी म कुट्टा रगता रगता का भा मय मय मय गांधी मया जिसका बांध उ । का अनुभव मय रग था । मैं गांधी मय मय गांधी मया गांधी कि उन गांधी का लक म मेरी क्या गांधी कि म विगत हा गई । बांध बांधी भा मरी हागा एवं लर जग परगांधी की । बांध म गता चला कि जिस बांध को मैं गोभी का टुकड़ा मने हुआ था वे बांध में गांधी कि हा बांध (Lobster) थे । जिसका म चपटा (छिन्ना) गांधी लिया गया था । और इसा बांध व लकन में गांधी का मूल जग मय रग था ।



निश्चयनय और व्यवहारनय

पं० कुन्दनलाल

न्यायनीयं, शान्ती



नमस्तु ममार के जीवधारियों का रात दिन का प्रयत्न एक मात्र मुत्तप्राप्ति के उद्देश्य में प्रेरित है । विद्याप्राप्ति, व्यापार-उद्योग, मनोरंजन के नाना प्रकार के मायन, भोगोपभोग के नित नये मायनों का आविष्कार आखिर क्यों ? सब का एकमात्र उद्देश्य स्यासी मुत्तप्राप्ति की इच्छा ही है । परन्तु वह स्यासी मुत्त मिलना नहीं । इसीलिये विचारशील मनीषियों ने अनेक तत्त्वमीमाणा के द्वारा स्यासी मुत्तप्राप्ति का जो लक्षण व उपाय खोजा उसे एक महान् दार्शनिक ऋषि अपनी इन चार पवित्रियों में बड़े मुन्दर टंग में बतलाते हैं—

आत्म को हित ही मुख, सो मुख आकृतता दिन कहिये ।
आकुलता शिव माहि न, ताते शिव मग साख्यो चाहिये ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित शिव-मग सो दुविध विचारो ।
जो सत्पारय रूप मुनिश्चय, कारन सो व्यवहारो ॥१॥

प्रत्येक जीवात्मा का वाञ्छित-अभिलषित-एक मात्र इष्ट मुख है । और उस की परिभाषा है आकुलता-व्याकुलता का सर्वथा अभाव । आकुलता का अभाव, आत्मा की शक्ति का नाश करने वाले, आत्मा को विकृत एवं मलीन करने वाले ज्ञानावरणादि नमस्तु शुभाशुभ कर्मों का सबर निजंग के द्वारा सर्वथा नाश रूप मोक्ष में है । इस लिये मुख चाहने वाले मुमुक्षु जीवों को मोक्षमार्ग में लगना चाहिये । वह मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्-चारित्र्य रूप है । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य रूप मोक्षमार्ग दो प्रकार का है । निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग । जो वास्तविक श्रद्धा ज्ञान आत्मरमणरूप आत्मरक्षण है वह निश्चय मोक्षमार्ग है और उस निश्चयमोक्षमार्ग की प्राप्ति में जो कारणरूप है वह श्रद्धा ज्ञान और आत्मा की ममार के विषय भोगों में विवर्तिन रूप परिणति व्यवहारमोक्षमार्ग है ।

ममार के क्षणिक ऐन्द्रिय मुत्तों के लिये लोग दिन-रात पचते हैं, अर्थोपार्जन करने हैं, और पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं किन्तु उसका फल आखिर क्या मिलता है ? क्षणिक शान्ति और उसके बाद अनन्त अशांति । पर जिस मूख को पा देने के बाद दुःख की हवा भी झू नहीं सकनी उसकी प्राप्ति के कारणभूत तत्त्वज्ञान की प्राप्ति की ओर हमारी रुचि ही नहीं । शायद तब पाने के लिए उम्ह तत्त्वज्ञान को जानना होगा । उस की कुत्री निश्चय और व्यवहारनय का ज्ञान ही है । इसलिये सबसे पहले इन नयों का ही स्वरूप समझना है । वस्तुतत्त्व को समझने के लिये नयवाद स्याद्वाद-अनेकान्तवाद रूप दृष्टि जैनधर्म की दर्शन के क्षेत्र में अर्पण देन है । महान् दार्शनिक आचार्यप्रवर अमृतचन्द्र सूरि अपने “पुरुषार्थ सिद्धयुपाय” ग्रन्थ में अनेकान्त को नमस्कार करते हुए स्तुति करते हैं—

परमागमस्य बीज निषिद्धजात्यन्य सिन्धुरविधानम् ।

नक्तनयविलसिताना विरोधमय नमाम्यनेकान्तम् ॥

[illegible]

अनेकांत गण बा अय है—एक म अधिा अन्य अर्थात् घम । अर्थात् गण म बचल एा गण-मभाा अयवा घम नभा य त ग गुण रण है । यन्तु क अनेक घम एक साथ गान क गारा जान जाते हैं । यन्तु दुम क समयान क साधन वा है और ग-म क समय म एा घम वा क नवीन गति रचना है । एक साथ मस्त गुण धर्मी क नवी गृह सजना । इग्निय उा अनेक धर्मी वा सजान वा । यद्वि क नाम स्यात् है । इगी वा दूसरा नाम सारन वा या नयवा है । स्वान क अय बिमा ओला स य है और वा क अय कहना है अयान एक घमना से एक घम की सुरक्षा कहे गमा कया गया है और दूसरी अवशा स महेन । कण आयगा क दूसरी तम क । पायगा ।

“मात्रिय नय वा तितोत्र (भागम) म यत्र गगन रिया है वि— वरना न अत्र घमोरम वामु व जिम घम की मुख्यता त मात्र वरना है उगव उगी अधिप्राय वा जावन बाल पाव वा नय वहन हैं। यद्वा माधन वा लगना है भीर व घम तथा उम घम के बावज दग वा स्थनय व है। गी वा वातिनय स्त्रामो न दम प्रचार वता है —

सोपाणं व्यवहारं धम्मविवदणाद् ओ पत्ताहेदि ।

गुदणभरता विषयो सो दि नभो तिगतभुगे ॥

प्रथम विविधा मे (बहुन बाज का बाने की दृष्टात) लात व्यवहार व गायन गित (हेतु) से ज्ञान नम
पात व विवला का नम बाज है।

જે આનિરૂદ્ધ જોડો દ્વિપદવાચકપદિદ્વારે ।

तं अनुमानं भणञ्चि तं पि णव बहुविह आण ॥

दीय वा स्तुत्य व्यापार और वापसे का शरा जानना अनुमान कह्यता है। यह अनुमान भी नष्ट है। पर्याप्त अनुमान प्रमाण का भाव अनुमान ही माना है।

शो धिय इक्ष्वो घग्मो वाचय सवरो वि तस्य धम्मस्य ।

त आनदि ज शान्त त निवि जयविसेता य ॥

यस का लक्ष्य हम उम्र हम का बालक हस्त और उम्र हम का जानने वाला जान म सीता नमः शिवाय है ।
मदयन म ही जगत् स्थिति क नही —

ॐ शाश्वत विद्यया मयमेव सा न अमरमयता ।

त इह नय वडस आनी पून तेण जार्हि ॥



पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थनिष्ठि में कहा है —

“वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविशेषेन हेत्वर्पणान् नाद्यविशेष-यायान्मप्रापणप्रवण प्रयोगो नयः ।” अर्थात् जो प्रयोग अनेकान्त स्वरूप वस्तु में अविरुद्ध हेतु अर्पणा में नाद्य विशेष की यथार्थता प्राप्त करने में समर्थ है उसको नय कहते हैं । इन सब का भाव वही है जो ऊपर लिखा जा चुका है । “जो उत्तर धर्मों की अपेक्षा महिम्न हैं वे मूल्य हैं और जो उत्तरधर्मों में निरपेक्ष हैं वे कुल्य हैं । उनमें पदार्थ की मिश्र नहीं होती ।”^१

श्रीदेवसेन स्वामी ने नयों की प्रथमा में बहुत कुछ कहा है परन्तु सब का नारायण एव गाथा में उन प्रकार है—

जे णयदिद्विविहणा, ताण ण वत्तु सहाउवलढी ।

वत्तुसहावविहणा सम्मादिठ्ठी कह होति ॥१॥

अर्थात् जो पुरुष नयदृष्टि में रहित हैं उनको वस्तु स्वभाव का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, और वस्तु स्वभाव के यथार्थ ज्ञान के बिना वे सम्प्रदृष्टि किमी प्रकार नहीं हो सकते । उन प्रकार नयज्ञान के बिना जैनागम का रहस्य नहीं जाना जा सकता ।

जैनाचार्यों ने नयवाद का विश्लेषण अत्यन्त सूक्ष्म, विषद और व्यापक रूप में किया है । विविध प्रकारों में नय के भेद-प्रभेदों का निरूपण किया गया है । मिश्रमेव दिवाकर ने अपने मन्मतिप्रसरण में कहा है—

जावइया वयणपहा तावइया चेव होति णयवाया

अर्थात् जितने वचन के मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं । इस प्रकार नयों की मर्यादा निर्धारित नहीं हो सकती । तथापि विभिन्न दृष्टिकोणों में नयों के भेदों का कथन किया गया है । यहाँ हम नयों के कांतपय भेदों पर प्रकाश डालेंगे ।

नय के मूल दो भेद हैं । एक निश्चयनय और दूसरा व्यवहारनय । व्यवहारनय का दूसरा नाम उपनय भी है । “आगम में निश्चयनय को भूतार्थ और व्यवहारनय को अभूतार्थ कहते हैं ।”^२ अर्थात् जो पदार्थ जैना हैं उसको वैसा ही जानना या कहना यह निश्चयनय है । यह पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को कहता और जानता है इसीलिए इसे भूतार्थ—वास्तविक नत्व को विषय करने वाला—कहते हैं । व्यवहारनय वस्तु के परनिमित्तक स्वरूप को कहता या जानता है इसीलिए वह अभूतार्थ है । जैसे घृत के निमित्त में किसी घट को घी का घड़ा कहना । घड़ा मिट्टी, पीतल या चादी आदि का होता है पर उसमें घी रखा होने में अन्य अनेक घड़ों में से उसे जल्दी में छूट कर नाने का व्यवहार चलाने को कहा गया कि “घी का घड़ा लाओ ।” यह व्यवहार अभूतार्थ है । अभूतार्थ का अर्थ झूठा नहीं है । किन्तु वह स्वरूप है जो स्वाभाविक मिश्र अथवा निरपेक्ष न होकर परमापेक्ष हो ।

निश्चय नय के दो भेद हैं । एक द्रव्याधिक और दूसरा पर्यायाधिक । जो विशेष स्वरूप में अविनाभावी सामान्य स्वरूप-द्रव्य को नाना युक्तियों के बल में मिश्र करना है उसे द्रव्याधिकनय कहते हैं ।^३ द्रव्य का अर्थ सामान्य है, तात्पर्य यह है कि वस्तु में सामान्य और विशेष दोनों धर्म रहते हैं । उनमें विशेष स्वरूपों को गौण करके जो सामान्य मात्र को

१ मिथ्यासमूहो मिथ्याचेन्न मिथ्यैरान्तस्तास्ति न ।

निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतोऽयं कृत ॥१०८॥

—आप्तमीमासा—स्वामी ममन्तभद्र

२ निश्चयमिह भूतार्थ व्यवहार वर्णयन्त्यभूतार्थम् ।

३ जो साहचर्य सामण्यं अविनाभूद विसेमरुवेहि ।

णाणः जुस्तिवलादो दवत्यो सो णओ होदि ॥ —स्वामी कातिकेय



(१२) जो तमोग ने उत्पन्न शीत कारणभाव न शिवाजी पदार्थ का कारण है उसे शक्ति निव्य-पर्यायिक नय कहते हैं। जैसे जीव की निद्रापर्यायिका है।

(१३) जो सत्ता को शीत करने के कारण भाव को उत्पन्न कर उसे अनित्य-शुद्धपर्यायिका नय कहते हैं।

(१४) जो पर्याय का एक तमय में उत्पन्न पर शीत शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे पर्याय एक तमय में उत्पन्न पर शीत कारण है।

(१५) जो मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(१६) जो मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

शान्तीय नय के १२ भेद

(१७) जहां मरुघर में तमय का उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(१८) जहां अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय का उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(१९) जहां तमय को उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(२०) मरुघर तमय को उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(२१) जो एक तमय विशेष को उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(२२) जो सामान्य नय विशेष को उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(२३) जो विशेष नय विशेष को उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(२४) जो एक मयवर्ती नय विशेष को उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(२५) अनेक मयवर्ती नय विशेष को उत्पन्न पर शीत कारण है। मरुघर तम को अनित्य-शुद्धपर्यायिक नय कहते हैं। जैसे मरुघरी जीव को पर्याय का उत्पन्न पर शीत कारण है।

(२६) एक पदार्थ में निम्न त्रिणादि की स्थिति को जो नहीं मानता उसे शब्दनय कहते हैं।

(२७) एक शब्द के अनेक वाच्य हैं उनमें से एक मुख्य वाच्य को किसी एक पदार्थ में देकर उसमें आदि हो, उस पदार्थ के अन्य त्रिणादि परिणत होने पर भी उस पदार्थ को अपना वाच्य मानना समझना नय का विषय है। जैसे

व्यवहार के बिना अज्ञानी प्राणी मोक्ष की सीढ़ी स्वल्प निश्चयमार्ग को पा नहीं सकता । उगलिये जब तक पूर्ण व्यवहारनिवृत्ति कर आत्मनस्त्व में लज्जलीनता न हो तब तक व्यवहार-अशुभ में निवृत्ति-शुभ प्रवृत्ति का मार्ग श्रावक को तथा मुनि को पानना श्रेयस्कर है ।

आचार्यों ने दानो नयो की आवश्यकता एक पत्र में दृष्टान्तपूर्वक यो बतलाई है—

एकेना-आकर्षणो दलयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण ।

अन्तेव जयति जैनीनीतिर्भन्याननेत्रमिव गोपी ॥

जिम प्रकार दहीजलोने वाली ग्वालिन मयानी की रस्मी को एक हाथ में खींचती है, दूसरे में ढीली कर देती है और दोनों क्रियाओं में दही में मक्खन निकाल देती है, उसी प्रकार जिस वाणी का मर्मज्ञ मन्त्रा नाथक व्यवहार-नय से या निश्चयनय ने पदार्थ को ग्रहण कर दूसरे प्रतिपक्षी नय को सर्वथा छोड़ नहीं देता, ढीला कर देता है—गोण कर देता है, तभी वह तत्त्व के पूर्ण रहस्य को प्राप्त कर परमात्मपद को प्राप्त करता है ।



वीरसद्य की किम्वदित्या राजस्थान के जैनवीर और प्रशासक

डा० कैलाशचन्द्र जैन,
एच ए० पी एच डी डी लिट
विश्वविद्यालय उज्जैन



राजस्थान में अनेक जनदार और कुशल प्रशासक हुए हैं। उन्होंने राजशाही का प्रतिगामी स्वामित्व सिद्ध किया और जनता की सेवा की। योग का समुच्च उच्च नित्य जीवन रहा। लड़ाईयां और युद्धों में अपनी गौरवशाली वाचस्पति परिवर्धन किया। राज्या में व्यवस्थित शासन प्रणाली की स्थापना की। कला और संस्कृति को समर्थन दिया। कला पूर्ण भव्य मूर्तियों का निर्माण किया और उनमें मूर्तियां की प्रतिष्ठा की। विज्ञान की प्रारम्भिक दिशाएं एवं साहित्य और गिनती की उत्पत्ति का प्रारम्भिक और विद्यार्थियों की स्थापना की। उनकी शान्ति बहुत अधिक है। संक्षिप्त निबंध में उन राजाओं की उल्लेख की जा सकता, अनेक यहाँ की राजाओं की जानकारी जिनका नाम विनाश करने पती है।

विमल — विमल^१ मयारद्वीपीयों की एक उत्तर राजधानि था। यह ज्ञानो नित्य योग्यता का कारण राजराज का राजा भाग्य का मंत्री बन गया। समयान्तरण स्वामी का नाम वंश में मयारा में मया। प्रबन्धों का अनुसार जगते पारहू मामलों का भाग रहा। यह उत्कल पौराणिक है किन्तु हमें यह अवश्य है। यह मयार राजा का सामान्य मन्त्रालय हुआ करता है। उन्होंने गौराष्ट्र का एक भाग फिर से अपने स्वामी का किया जो मुस्लिम आक्रमण का सामना करने पर तैयार हुआ। उन्होंने अपनी स्वामी भाग्य को आगे के समीप स्थानों के राजा प्रभु का हारण में मदद की। विमल की इन राजा का वंश में भीम ने उन आगे का वंश बना दिया। कुछ समय बाद विमल ने प्रभु और भीम का समझौता युगावर होने में मुक्त करा दिया। भीम ने प्रभु का उसका राज्य लौटा दिया किन्तु विमल का पति का भाग्य जगते प्रभुविषय का मयार राजा मयार। विमल धार्मिक प्रवृत्ति का भी था और उन्होंने आगे मयार धार्मिक जन मयार बनाया।

उदयन — उदयन का जन्म मयारवाट में जन्मा में हुआ था। वह धार्मिक ज्ञान का था। वह हान पर वंश जगते का वंश जगते में जगते वंश। धीरे धीरे आगे बढ़ते हुए लया और वंश मयार राजा। उदयन मयार और कीर्ति वंश लगी और जयमिन् गिद्धराज ने उदयन स्वामी का राजराज नियुक्त कर दिया। वह राजा जनमानस भी था। उदयन हमेशा धार्मिक विषयों का ध्यान करता था और धर्म का दीक्षा में का प्रवर्धन किया। जय कुमार का जगते का वंश में मयार प्रशासक के रूप में प्रभु का वंश था उदयन की ही उदयन परमेश्वर और जन मयार राजा की मयार मयार राजा का वंश में लया का राजा जयमिन् वंश वीरमति का प्रभु हुआ। मयार वंश जगते विमलवर्धन और भूमिपति मयार वंश जगते का वंश मयार किया था जयमिन् उदयन पुत्रा पति किया।^२

१ विमलवर्धन पुराण प्रबन्ध सप्तह व ८१ ८२
२ प्रबन्ध पितृवर्धन पं० ६० ६८ व १०४ १०५

वन्तुपाल — वन्तुपाल^१ नेहूवी मनाई में धवर्ष और धोला के बाहर गया बीरघर का प्रधानमंत्री था। वह एक कुशल शासक ही नहीं बल्कि राजा साहित्य का भी प्रेमी था। जबकि वह मुद्रान के राजा भीमदेव का अधिकारी था जिन् १०२० ई० में उसने आव के राजा बीरघर की सेवा में स्वीकार कर लिया।^२ उसने स्वामीय का कर्म का कर्म निरूपित किया गया रहा उतने वही कुशलता के मानन किया। उसने अष्टाचार का दूर कर लोगों का नैतिक स्वर उठा दिया।^३ वह एक योग्य नैतिक भी था। जब गज प्रदेश के राजा मन्त्र ने स्वामीय पर आक्रमण किया तो उसने उसे पराजित किया।^४ अदिप के देवगिरि के राजा मित्र और मारुत के चार राजाओं ने मित्र पर बीरघर के राज्य पर आक्रमण किया जिन् उसी अग्ने मानी और आक्रमणियों के समर्थता रखा दिया। उसने वन्तुपाली (दण्डनी, जूनागढ़) को प्रिजय किया। जब बीरघर की रानी के आता मगन और चारुते के कर देन में इनकार दिया तो उसने उन पर भी आक्रमण किया। बीरघर ने उसको कष्ट में मूर्खता के प्रविहार राजा भीमसिंह पर भी आक्रमण करने को भेजा जिन् उन के राजा में मार्य जागते। उतने पश्चात् बीरघर ने मोगरा के राजा धनुष को जीतने का भी मन्त्रण किया और उसने कि, वन्तुपाल ने अपने भाई के राजा को सेवा। उसने धनुष को जीता और उसे बंदी बनाया।^५

जब देहली के मुद्रान भीमदीन ने बीरघर पर आक्रमण किया तो वन्तुपाल ने दूरे चारुते में उसको पीछे हटने को बाध्य किया। मजदीन सामन में देहली का मुद्रान पराजित था। मुद्रान की मना की बीरघरा मर्या जाते हुए ममुदी बाकुशन गढ़ लिया जिन् वन्तुपाल ने मूर्खता हूँ वन्तुपाली मोगरा में छीन कर वापिस उसकी मना को गैरार्थ और उसके साथ बड़ी मद्रता में व्यवहार किया। मग्ना में बापिस पीछे प वह वन्तुपाल को अपने पास देहली ले गई और मुद्रान में मिरवाया।^६ मुद्रान ने वन्तुपाल को बीरघर के साथ मित्रवार करने का बाध्य किया और उस प्रकार राज्य को मनीमानि मूर्खित किया।

वन्तुपाल धार्मिक स्वभाव का भी था। उसने मरुज्य व गिरनार की तीर्थ वार तीर्थ यात्रा की। उसने म्यान-म्यान पर मंदिर, मठ, धर्मशास्त्र और औपचारिक दत्तवाये।^७ उसने द्वारा आव में दत्तवाया हुआ दृष्टमशी मंदिर प्रसिद्ध है। वह धार्मिक कामों में उदार था और मरुतों का आदर करता था। उतने का केन्द्र जैनियों का ही मौलिक नहीं थे जिन् उनके कि थे। उसने जैव मन्दिर और महा मरुत नि मन्दिर भी दत्तवाये।^८

वन्तुपाल साहित्यप्रेमी भी था और उसने धनुष धन गणि पत्र करने अग्रहि-गढ़, स्वामीय और मृगु-काच्छ म शान्दना-डाग स्थापित किये।^९ उसका स्वयं का प्रदम-डाग बड़ा मधुद का और उसमें महत्त्वपूर्ण ग्यों की प्रिया भी थी।^{१०} वह विद्वानों के प्रति बड़ा उदार था और जैन व जैनतर विद्वानों के किसी प्रमा का उत्तर नहीं करता था। वह स्वयं भी कवि था और उसने आदिनाम मोग, नेमिनाथ मोग, अविनामोग, नरनारायणनद, मुन्धिया आदि लिखी हैं। दरबार में विद्वान लोग राजा की छेक्षा उनके व्यक्तित्व में अधिक प्रभावित थे क्योंकि वही उनकी योग्यता का वास्तविक पारखी था।

१ वन्तुपाल चरित्र, १

२ नरनागयगनन्द, १४, ३५

३ कीर्ति कौमुदी, ४ १६

४ प्रवन्धकोश, पृ० १०३, १०४, १०७

५ प्रवन्ध कोश, पृ० ११६, प्रवन्ध चिन्तामणि, पृ० १०३

६ विविध तीर्थ कल्प पृ० ७८, प्रवन्ध कोश पृ० १३०

७. प्रवन्धकोश, पृ० १२६

८ वही

९ वन्तुपाल चरित्र, पृ० ८०

शमशेरमिह बहादुर —शमशेरमिह बहादुर भी मराठाना विजयमिह के सेनापति थे। उन्होंने अनेक युद्धों में भाग लिया और अपनी वीरवीरता का परिचय दिया। उस पर प्रसन्न होकर विजयमिह ने १७६० ई० में उन्हें राठ-राजा की उपाधि दी और २६००० की तारीफ दी।^१

इन्द्रराज मिश्री —जयपुर के राजा जगन्मिह ने शोहरमिह का एक बेटा विद्यापति सेना के साथ मायवाड पर आक्रमण कर दिया। बीकानेर के मराठाना मुल्कमिह, मिश्री और राजा और अन्य मराठानों ने भी आक्रमणकारी का सामा दिया। उन्होंने मागेठ, मेठना, पञ्चवर, नागीर, पाली, मोहन जाद पर अभियान कर दिया। यहाँ तक कि जोधपुर नगर पर भी उनका अभियान हो गया। जयपुर दुर्ग पर मराठाना का अभियान रहा। मेरी परिस्थिति में मिश्री इन्द्रराज दुर्ग के पुत्र मार्ग से जाने मारिचो महिष बाहर निकला। मेठना में राठर उनके नई सेना पराजित की। अपने विचारियों के सेना और यों को एक राठ राठर की स्थिति देखकर बहुत परेशान हो गया। वह सेना लेकर जयपुर पर आक्रमण करने को रवाना हुआ। जब जगन्मिह को पता चला तो उसने राठ मिश्री का नेतृत्व में जयपुर की रक्षा को सेना भेजी। अर्थात्तः श्री मिश्री इन्द्रराज ने उस सेना को हार कायी नामक स्थान पर घुसी बरहते देखा। जब जगन्मिह को उसका समाचार मिला तो उसने ऐसा कहा कि राठर और जयपुर का रवाना हो गया।

मिश्री इन्द्रराज के जयपुर छोड़ने पर शमशेर ने उसका बड़ा सम्मान किया और उसको मुख्यमंत्री बना दिया। उसके पञ्चात् मिश्री इन्द्रराज को बीकानेर पर आक्रमण करने को भेजा गया और बीकानेर मराठाना को चार लाख रुपये मरि कके देने पड़े। उसने अपने स्वामी को अर्पणों के पदार्थों में भी बनाया किन्तु अर्पणों के पदार्थों ने मिश्री का बच कर दिया। मृत्यु उपरान्त उसकी वेश्याओं ने प्रभावित होकर मराठाना ने उसके पुत्र इन्द्रराज को वीरानगी तथा २५ हजार की तारीफ दी।^२

बीकानेर के बीर-शान्त

नागराज —बीकानेर के जैनशान्तों में नागराज का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वह जैनमिह का स्वामिभक्त अधिकाारी था। जब जोधपुर के राठौर राजा मालदेव ने बीकानेर को विजय करने की कोशिश की तो जैनमिह ने नागराज को मेरणाह के पास मरायता के लिए भेजा। जैनमिह मालदेव के साथ लड़ना हुआ भाग गया और बीकानेर पर मालदेव का अधिकार हो गया। नागराज ने मेरणाह को मालदेव पर आक्रमण के लिए उकसाया। कुछ दिनों पर मालदेव दुर्ग तरह में हारा और जैनमिह के पुत्र कल्याणमिह ने परिस्थिति का लाभ उठाकर फिर ने बीकानेर पर अपना अधिकार कर लिया।

कर्मचन्द्र बच्छावन —कर्मचन्द्र बच्छावन उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ, सेनापति और धार्मिक प्रवृत्ति का पुत्र था। वह रावसिंह का मुख्यमंत्री था। जब जोधपुर के राठौर अमरमिह ने बीकानेर पर आक्रमण किया तो उसने अपने स्वामी को सधि की राय दी क्योंकि उस समय राज्य युद्ध के लिए तैयार न था। जब नागौर के मिर्जा इब्राहिम ने बीकानेर पर आक्रमण किया तो उसने उसको भगा दिया। उसने प्रयत्नों में बीकानेर राज्य की सीमा बढी।

कर्मचन्द्र बच्छावन ने जैनधर्म के उपग्रह में योगदान दिया। उसने तीर्थयात्रा-स्थल निकाले। ११५५ ई० में बड़ी धूमधाम में उसने जितकचमुरि का नगर प्रवेश बनाया। १५७३ ई० में अरावली के अक्षर पर लोगों ने मुक्त बनाकर बितर कर उनके प्राणों की रक्षा की। उसने बहुत-सी मूर्तियाँ मूल्यवानों द्वारा लपट होने में बचाई और उन्हें बीकानेर के चित्तामणि के मन्दिर में सुरक्षित रख दी। उसने प्रभाव के कारण ही एकवर के मन में जैनधर्म के प्रति

महाराजा उदयपुर हुई और १५६२ ई० में उसने जिनचन्दपुर का स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया।

जिनचन्दपुर भी था। जब उसने रायसिंह की पिछली खर्ची का कारण राय का उद्वेग छापी हाते देखा तो राजा का समानता का भी प्रयत्न किया। इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। उसके पशुपति में भी राजा के मान भर गये। रायसिंह ने जिनचन्दपुर की बंदी बनाकर धरम करने का पदग्रहण किया। किसी भी पना चलने पर वह वीराने छोड़कर नहीं चला गया जहाँ सम्राट अकबर ने उसका साथ अच्छा व्यवहार किया।^१

अमरकंटक सुराणा — अमरकंटक सुराणा सुरासिंह का समय दीवान रण और उमका सबसे महत्वपूर्ण बात था सामन्ती के विरोध का कुचलना। उसने मद्रास का मुलाना जयधवा की हत्या कर ब्रिते पर अधिकार किया। उसने ठाकुर नाहरसिंह और पूर्णसिंह पर आक्रमण कर उनका भी बर्बाद किया। १८१५ में वह ब्रह्म के राजा गिरासिंह से लड़ने भेजा गया। गिरासिंह ने आरम्भ ही करी और अमरसिंह का चूरु पर अपने स्वामी का आधिपत्य स्थापित कर लिया। महाराजा मुरतसिंह ने उनकी सहायता से प्रश्न होकर उसे विरोध सम्मान दिया। उसका नाम हमकी सहन न कर सके और उसके विरुद्ध पदग्रहण किया। महाराजा को बहकाया गया कि वह आपका खिलाफ लिखारिया का नेता अमीरों से मिल गया है।^२

उदयपुर के वीर शासक

आमागाह और मेहता बीरजी — उदयपुर राय में भी अनेक जन सन्निध स्थापित व शासक हुए हैं। उनमें आमागाह भी था जो का भलमेर का ब्रिते पर था। जब पना घाट उदयसिंह को बनवीर के पना से मुबारक आमागाह के पास रक्षा के लिए आई तो उसने उसको गिरा दी। इस बात की गुप्त रखने के लिए वह उदयसिंह को अपना भतीजा पुकारने लगा। जब उदयसिंह बड़ा हुआ तो उसने कुछ सरगरी को सहायता से उसे राज्य गद्दी पर बिठाया और रायचण का पद होने से बचाया।^३ इस समय एक अय राय का अधिकारी मेहता बीरजी ने भी स्वामिभक्ति का परिचय दिया। यद्यपि वह बनवीर के अमीर बित्तोड का ब्रिते पर था उसने दुग की सब गुप्त बात उदयसिंह को बताई थी जब उसने आक्रमण किया।^४

आमागाह — आमागाह ने भी स्वामिभक्ति का एक उच्च उदाहरण सामने रखा। जब महाराजा को सम्राट अकबर से लड़ने के लिए धन की आवश्यकता पनी तो उसने अपनी समस्त सम्पत्ति महाराजा को समर्पित कर दी। इसके द्वारा महाराजा बखरी हुई सेना एकत्रित कर सके और अकबर का साथ फिर म युद्ध चालू कर सक। इस सहायता का परिणाम स्वरूप महाराजा ने बित्तोड अकबर व मालगुन को छोड़ कर समस्त भवाद को पुन हस्तगत कर लिया।^५

सघवी दयानाथ — सघवी दयानाथ महाराजा राजसिंह का दीवान था। जब १६७६ में औरंगजेब ने मेवाड़ पर आक्रमण किया तो उसने अद्भुत वीरवीरता का परिचय दिया। वह धार्मिक प्रकृति का भी था। अपना यशस्वित्व के प्रभाव से महाराजा में आध्यात्मिक निजलाकार उसने जन मन्त्रियों व उपाध्याय का आस पास पशुहिसा को बन करवा लिया। उसने राजमर्म के समीप पहानी पर दण्ड का आकार के जन भदिर का निर्माण करवाया।^६

१ ओसवान जाति का इतिहास पृ १ १०५। जिनचन्दपुर प्रभाव और जिनचन्दपुरी की तन्त्रात्मकता।

२ सप्त डिस्टि गवर्नाट जन्म व ७१ ७४

३ ओसवान जाति का इतिहास पृ ७० ७३

४ वही पृ ७१ ७२

५ उदयपुर राय का इतिहास पृ ३४ ३५ और बीरबिनोद पृ २५१

६ वही





मेहता अण्णचन्द — ज्योत्स्नी गरी में मेहता अण्णचन्द मेवाड़ के एक मन्त्र साधनागिज्ञ हुए हैं। उस समय मेवाड़ पर मराठों के शासन आरम्भ हो चुके थे। महाराजा और मराठों के बीच मतभेद था। उसी परिस्थिति में मेहता अण्णचन्द को दीवान बनाया गया। सर्वप्रथम मेहताजी ने महाराजा और मराठों के बीच समझौता करा कर राज्य में शांति व एकता स्थापित की। जब रत्नसिंह ने निधिया और गान्धी ने मिर्जा महाराजा के विरुद्ध पट्टण किया, तब मेहता अण्णचन्द ने ही उनको दबाया। रामपुरा के चूनापत्तों के क्षण देने पर जब गान्धी के निधिया ने महाराजा पर आक्रमण किया तो मेहताजी के प्रयत्नों से ही महाराजा को पूर्ण सन्तुष्टा मिली। गान्धी के मृत्यु में उन्होंने मातुलगढ़ का शासन-प्रबन्ध भी बड़े सूचारु रूप से किया। उन्होंने नानाप्रकारों और दुर्गों की मरम्मत की।^१

मेहता देवीचन्द — महाराजा भीमसिंह के समय मेहता देवीचन्द भी दुर्ग प्रशासक हुए हैं। कुछ दबाव के कारण महाराजा भीमसिंह मातुलगढ़ का दुर्ग छात्रा जालिमसिंह को देने को तैयार हो गये थे। देवीचन्द ने महाराजा के आदेश पर दखल न देकर अपना अद्वितीय कर्तव्य निरवाया क्योंकि उसे मृत्यु का रि मातुलगढ़ गिरि दृष्टि में सन्तुष्टपूर्ण स्थान है और जालिमसिंह कुछ ही नौबतों का राजा है। देवीचन्द ने राजा पर आक्रमण करने की योजना पर भी उसकी चेतावाही की। महाराजा उस पर उससे प्रसन्न हुए।^२

जयपुर के वीर-शासक

जयपुर राज्य के इतिहास में भी जैनियों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। श्रीव पञ्चम जैनियों ने राज्य का कार्य मंत्री के रूप में किया है और राज्य की महान् सेवा की है। उनमें कुण्ड के नाम अधिष्ठान प्रसिद्ध हैं।

विमलदाम — विमलदाम महाराजा रामसिंह प्रथम (१६६८-१६८० ई०) की विजयसिंह का दीवान था। वह एक मोठा भी था और जानमोठ की लड़ाई में मारा गया था। उसकी यादगार में एक छत्री भी बनी हुई है।

रामचन्द्र — विमलदाम के पश्चात् उसका पुत्र रामचन्द्र प्रधानमंत्री हुआ और उसने विजयसिंह और उसके उत्तराधिकारी मवाई जयसिंह के अधीन कार्य किया। १७०३ ई० में मुगलसम्राट् बहादुरशाह ने आदेश पर आक्रमण किया और उस पर अपना अधिकार कर दिया। उसने नैपथ्य होने को बहावा गन्धर्व नियुक्त किया। जयसिंह ने अपने मंत्री रामचन्द्र को साथ लेकर मेवाड़ के महाराजा के बहावा गन्धर्व की। तत्पश्चात् रामचन्द्र ने सेना को भरी भाति संगठित करने आदेश पर आक्रमण किया और हुमेनवा को जख्म लोहने के लिए दाखल कर दिया। इस प्रकार से आदेश को गन्धर्व के पक्ष में सुकन किया और मवाई जयसिंह का आग्रहण कि में स्थापित किया। उस पर महाराजा मवाई जयसिंह बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने इस सेवा के बदले में उन्हें भूमि दान दी और उनका नाम निम्नो पञ्चदश दीवान रामचन्द्र' लिखा जाने लगा। रामचन्द्र न्याय के लिए भी प्रसिद्ध थे, जब जोधपुर और जयपुर के महाराजाओं में सामन्त के विभाजन के बारे में कण्ठ होने की समावना थी तो दोनों ने रामचन्द्र को मध्यस्थ नियुक्त किया और उनका निर्णय दोनों को मान्य हुआ।^३

कृपाराम और विजयाराम छावड़ा — मवाई जयसिंह के समय अन्य जो स्वामिभक्त नेवक था, वह कृपाराम था। वह देहरी में राजदूत था। मवाई जयसिंह के प्रतिद्वन्द्वी विजयसिंह ने जयानन्द के विरुद्ध मुगल सम्राट और उसके बजौर कमरेहीन को अपने पक्ष में किया और पाँच करोड़ रुपये और पाँच हजार घोड़े देने का वादा किया। राव

१ वही, पृ० १३११ और ओमवाल जानि का इतिहास पृ० ७७-८२

२ ओमवाल जानि का इतिहास, पृ० ८७-८८ और उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० १३१३-१६

३ वीरबाणी, प्रथम खण्ड, पृ० ६८-८३ और राजपूताने का इतिहास, पृ० ६१५-१६

कृपाराम का इस पत्र में वापस आना दाखला के द्वारा चला गया और उसने जमाने की सचेत कर कर लिया। इस पर व कृपाराम से बहुत प्रशंसा हुआ और उसको मनोरपुर का नाम दिया।^१ विजयराम दावडा भी सवाई जयसिंह का सखी रहा है। सवाई जयसिंह की बहन युवराजसिंह का पालन सवाई जा रही थी। विजयराम छात्रा के प्रपत्नी से उसका विवाह बनी के राजा बसिंह हाना से हुआ। बाद में उसने मंगलमग्रा व पालन और सवाई जयसिंह से समझौता हो गया था।

हरिसिंह — हरिसिंह का नाम प्रतापक था। सवाई जयसिंह या मग्रा में गेवागा के द्वारा फरार हो गए थे। इन कारण १७२६ व १७२७ में उनसे कर एकत्रित करने को हरिसिंह को मनुष्य किया। इन क्षेत्र पर ब्यामखानी गवावा का अधिकार बना था रहा था। उन्होंने कर इनमें मना कर दिया और चारा और उपवास होने लगे। हरिसिंह ने सना की सहायता से उपवास को रद्द दिया और गाजावागे में जयसिंह की सत्ता की स्थापना की।

रामचन्द्र — रामचन्द्र भी एक बहुत राजनीतिज्ञ था। कृष्णकुमार के विवाह के बाद को चकर जयपुर व जोधपुर के राजाजी में सगडा होने की मभावना थी किन्तु रामचन्द्र के प्रयत्न में वह टल गया। जब जोधपुर के राजाजी और जोधपुर ने जयपुर पर आक्रमण करने का संकल्प लिया तो रामचन्द्र को समझारी में ही सवाई और नगर की रक्षा हुआ सकी।

गिवाजीलाल — गिवाजीलाल भी एक योग्य राज्य अधिकारी था। महाराजा प्रतापसिंह के समय में वह पदस्था ठीक लग में गही थी और उसमें अनवरत नियमितताये थी। गिवाजीलाल ने प्रवेशन पासन प्रवचन स्थापित कर उनका दूर किया और आय के बन्धन से साधन जगाये। उसने नमक का प्रवचन भी ठीक ढंग में किया। महाराजा ने उनका राजी हो और गिरिया में युद्ध में लाने का भी चेला और उसने अपनी गरीबी का निवारण किया। इन उद्यम में महाराजा ने उसे विताव लिये।

धूलाराम सखी — उनीगदी सखी में सखी धूलाराम की एक प्रसिद्ध सखी हा गया है। जयपुर दरबार में उसका पता प्रभाव था कि कल टाल ने उसका भूता दरबार और बनिवार कहा है। इन टाल के विचार शक्ति पूर्ण हैं। धूलाराम के प्रभाव के कारण जयपुर में विद्रोह समझौते को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह नविव्य के परिणाम को जानता था। इन मंत्रिण पासन नसावी के ठाकुर बरीमा का अपने पत्र में पत्र किया। बरी साल और धूलाराम में आपसी पत्रता चली आ रहा थी। बाद में अगरेजा और बरीमा ने पदस्था के द्वारा नम का पतन किया।

१ एन-स एड एडविटोड आक राजस्थान प ५६२

२ रिपोर्ट आन पचापन सिधाना प ६१ । ए रिपोर्ट ओन सी लड री-योरन एन स्पेन पचापन आक सदन ठिकानेदाराम आन दो जयपुर स्टेट प ४५ ४६

३ जयपुर स्टेट ट्राइस





तृतीय खण्ड



संस्कृति • कला • इतिहास

भारतवर्ष की प्राचीनतम गहृतिषा म श्रमण-मनुक्ति का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योग्य है। विभिन्न दलों और शासकों में यह विभिन्न नामों से व्यवहृत रही है। यद्यपि इतिहास के विज्ञान तथा मनीषी तत्त्वा प्राचीनता समग्र हीन सहस्र वर्ष ही स्वीकार करते हैं किन्तु ब्रह्म नाम तब जन आत्म-मार्गहृत् तथा भाव देना का साहित्य तब परम्परा स य सत्य ही जाता है कि यद्यपि युग के पूर्व आहृत गहृतिषा का प्रसार मनीषांति इसमें म व्याप्त था। वेदा म जिस मणपरायण संस्कृति के रूप में होते हैं वह य और ब्रह्म की सत्यता घोषित करती है और ब्रह्म ही प्राप्ति मन्त्रि यमन-मम की परम पुष्पाय निम्नित करती है। परन्तु इन मायता का वेद-मार्ग म और उनके मार्ग भी भार विरोध हुआ। ब्रह्म का वह वेद से ही ब्राह्मण मन्त्रि तथा गहृतिषा विरोधी भाव तथा साधु म्नी के लाग आहृत गहृतिषा का प्रसार था। वेद-मार्ग की मन्त्रि का वसति नहीं मानते थे। इनका विश्वास था कि सन्धि प्राकृतिक नियम म बना है। प्रकृति के नियम को मनीषांति पात कर मनुष्य भाव तथा सत्ता की रचना कर सत्ता है। मनुष्य की शक्ति सत्ता स यही शक्ति है। य समस्त शक्तिषा म सत्य है। य जाता है कि साधु म सरह्वती और शिष्य व समग्र पर विज्ञान भवन स्थापित कर मूय का निर्माण किया था। उस विज्ञान भवन में बठ कर समस्त ब्रह्मण का साक्षात्कार किया था। आन्त लाग मम म विश्वास रखत थे और यही उनके शक्ति वसति ईश्वर की म मानन का मूल कारण था। आहृत लाग मुख्य रूप से शक्तिषा म राजनीति की भांति व धार्मिक प्रवृत्तियों म विधेय शक्ति रखते थे और समय पहने पर वाग विवाह म भा भाग लते थे। य अहृत के उपसर्ग व। उनका देवस्थान पक्क था और पूजा शक्ति थी। म आहृत परम्परा की पुष्टि थोमस नाथन पदमपुराण विष्णुपुराण स्कन्दपुराण और शिव पुराण आदि पौराणिक ग्रंथों से होती है। इनम जनधर्म की उत्पत्ति के मन्त्र म भी अनेक आख्यान उपन्यस होते हैं। यथाय में आहृत मम जिस परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है वी वेदों अधिपत्या जनागम तथा पुराण साहित्य के मन्त्रिचित परिवर्तन के साथ सत्य रूप से मितमितीयो हुई शक्ति होती है। निश्चय ही तीक्ष्ण भावनाय के समय तक जनधर्म व विज्ञान आहृत म ही प्रवृत्ति था। बौद्ध धार्मिक ग्रंथों म तथा अशोक के शिलालेखों म निम्नार्थ का प्रयोग मिलता है। निम्नार्थ निम्न यत् जना का पारिभाषिक म है जिसका अर्थ "—मीनरी (नाम क्रोध मोह आदि) और वाहरी परिहृत् से रहित धम्म अथवा साधु। इन्हीं प्रकाश और मीनरी की धर्मियन के समय म यह मम धम्मणम के नाम से प्रचलित था। मेगस्थनीस म मुख्य रूप से ब्राह्मण और मम मन्त्रिषा का उल्लेख किया है। विहले दो दण्डका म जनधर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध म कई प्रमाण उपलब्ध हुए हैं जिनम पना



चलता है कि वेदों के दृग में और उसके पूर्व जैनधर्म उस देश में प्रचलित था। वैदिक काल में यह “वाह्न” धर्म के नाम से प्रसिद्ध था। वाह्न लोग “अहं” के उपासक थे। वे श्वेद और ब्राह्मणों को नहीं मानते थे। वेद और ब्राह्मणों को मानने वाले तथा यज्ञ-कर्म करने वाले “वाह्न” कहे जाते थे। वाह्न “वृह्नी” के भक्त थे। वृह्नी वेद को कहते थे। वैदिक यज्ञ-कर्म को ही वे सर्वश्रेष्ठ मानते थे। वेदों में कई स्थानों पर अहं और वाह्न लोगों का उल्लेख हुआ है तथा “अहं” को विजय की रक्षा करने वाला एवं श्रेष्ठ कहा गया है।^१ जनपदब्राह्मण में अहं को आह्वान किया गया है और कई स्थानों पर उन्हें श्रेष्ठ कहा गया है।^२ यद्यपि ऋषभ और वृषभ शब्दों में वैदिक साहित्य में कई स्थानों पर उल्लेख हुआ है पर ब्राह्मण साहित्य में वे निम्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। वहीं उनका अर्थ बैल या गाँव है तो वही भेष और अग्नि तथा कहीं विश्वामित्र के पुत्र और कहीं वनदायक एवं कहीं दिव्यकों के राजा भी हैं। अधिस्तर स्यन्तों में “वृषभ” को रामनाथूरक एवं कामनाथों की वर्षा करने वाला कहा गया है। नाथों के अनुसार “वृषभ” का अर्थ काम-नाथों की वर्षा करने वाला तथा “अहं” का अर्थ योग्य है। किन्तु ऋग्वेद में दो स्थानों पर स्पष्ट रूप से “वृषभ” परमात्मा के रूप में वर्णित है। ऋग्वेद में वृषभ को कहीं-कहीं इन्द्र के तुल्य और कहीं-कहीं अग्नि के मन्दमं में वर्णित किया गया है।^३ इसी प्रकार “अरिष्टनेमि” का अर्थ हानिरहित नेमि वाश, त्रिपुङ्गवी ध्रुव, पुत्रिन्मुत और श्रीनो का पिता कहा गया है। किन्तु शतपथब्राह्मण में अरिष्ट का अर्थ अहिंसक है और “अरिष्टनेमि” का अर्थ अहिंसा की धृति अर्थात् अहिंसा के प्रवर्तक है। अहं, वृषभ और वृषभ को वैदिक साहित्य में प्रयुक्त कहा गया है। वृष को धर्मरूप ही माना गया है। जैनागमों में वृषभदेव धर्म के आदि प्रवर्तक कहे गये हैं। अन्य देव-विदेवों की मान्यताओं एवं उनकी आचार-विचार पद्धति में इनकी पुष्टि होती है। कहीं यह वृषभ “धर्मध्वज” के रूप में, कहीं कृषि-देवता के रूप में और कहीं “वृषभध्वज” के रूप में पूजे जाते हैं। कहीं यह आदिनाथ हैं तो कहीं आदि धर्मप्रवर्तक और वही परमपुरुष के रूप में वर्णित हैं। बृहस्पति की भाँति अरिष्टनेमि की भी सम्मति की गई है।^४

वैदिक युग में पणि और ब्राह्मण आहं धर्म को मानने वाले थे। पणि भारतवर्ष के आदिम व्यापारी थे। वे अत्यन्त मष्ट्र और सम्पन्न थे। धन में ही नहीं ज्ञान में भी बड़े-बड़े थे। इसलिए यज्ञपरायण मनुष्य को नहीं मानते थे। वे ब्राह्मणों को हवि, दक्षिणा-दान नहीं देने थे। देश का उगमग सभी व्यापार उनके हाथों में था। वे नारदा बना कर अरब और उत्तरी अफ्रीका को जाते थे। बाद में चीन तथा अन्य देशों में भी पणि लोगों ने व्यापारिक मवध स्थापित कर लिये थे। पणि या पणिक ही आगे चर कर वणिक् बन गये जो आज बनिया रूप में जाने जाते हैं।

ब्राह्मण धर्म तथा क्षत्रिय थे। इन्हें ब्राह्मण-क्षत्रिय कहा गया है। वे ब्रह्म-ब्राह्मण तथा यज्ञ-विद्यान आदि जो नहीं मानते थे। किन्हीं विद्वानों के अनुसार ये दक्षिण और हीनवर्ग के थे—यह ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि पञ्चविंगब्राह्मण में (१७-१ में) ब्राह्मणों के लिए यज्ञ का विधान किया गया है। वस्तुन ब्राह्मण लोग श्रमों से मानते थे। अहं-न्तो (मन्तो) की उपासना करते थे और प्राकृत बोझने थे। उनके सन्त और योद्धा ब्राह्मण सृत्रों के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय थे। अथर्ववेद में “ब्राह्मण” का अर्थ घूमने वाला माघु है। ब्राह्मणगण्ड में पूर्ण ब्रह्मचारी को “ब्राह्मण” कहा गया है। इनमें भी ब्रह्मों की पूजा करने वालों की पुष्टि होती है। अथर्ववेद में ब्राह्मण की भाँति “महावृष” भी एक जाति कही

१ ऋग्वेद २।३३।१०, २।३।१, ३, ७।१८।२२, १०।२।२, ६६ ७।

तथा—१०।८।५।४, ऐजा० ५।२।२, शा १।५।४, १८।२, २३।१, ऐ० ४।१०।

२ ३।४।१।३-६, तं० २।८।६।६, तंजा० ४।५।७, ५।४।१० आदि।

३ ऋग्वेद ४।५।८।३, ४।५।१, १०।१६।१।

४. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ —ऋग्वेद १।८।६।६

५. मेकढानल और कीय : वैदिक इण्डिकम, दूसरी जिल्द, १९५८, पृ० ३४३।

६. सूर्यकान्त : वैदिक कोश, वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६३।

मर् है। मन्त्राण्युपलक्षण आद्य जाति के यह गये हैं। जो भी हो इमम यह पना रूप जाता है नि बन्धि कान म बाह्यण विराघी जानियो भी भी जो प्राकृतिक नियमा से सन्धि का वनन प्रवतन मानता थीं। वस्तुन यह अध्यात्मवादी परम्परा थी जो आत्मा का सब रूप मानती थी और यह कन्ती थी कि जब आत्मा ही सर्वोपरि है तो अन्तर्ग स दत्ता या ईश्वर का मानने की क्या आवश्यकता रह जाती है? यद्यपि धार्मिक युग म बाह्यण जाति की प्रधानता थी पर उस समय साध्या का पूर भगवा पर पूण प्रभाव और नियन्त्रण कहा जाता है। प्राग्वन्धि साध्या को देवताही कहा जाता था। ये सत्ता की रचना प्राकृतिक नियमा से मानन थी। परन्तु प्रत्येक युग-युग में समय-समय पर सधय ७८। और उस समय का परिणाम ब्रह्मवात् का स्थापना म परिस्थित हुआ।^१ यथोक्त युग पण्टये गये तथा-तथा यह अन्तर अधिप बढ़ता गया और विभिन्न सम्प्रदाय एक धार्मिक विचार जानिया का जन्म तथा विकास हाता गया। इस प्रकार यह एक ही परम्परा विभिन्न कान म विकासशील रही है। और सामाजिक तथा राजनैतिक कारणों से इसके विविध रूप बढे जा सकत हैं। परन्तु आहून और वाटन माना ही एक परम्परा के दो प्रारम्भिक मुख्य वेन्डिड हैं जिनके चित्त मान भी परिलक्षित हात है।

भागीय धर्म और संहति क इतिहास म आहून धर्म एव अमण-संहति का महत्वपूर्ण योग रहा है। सम्म शताब्दिया म प्रचलित इस धर्म और संहति म ७९ विधेया क हात को प्रभावित किया है जिसके चित्त आज भी विविध रूप म लक्षित ७९। सहयोगियों म भारत और केवीमान ईरान एजिप्ट अफ्रीका आदि देशों म व्यावसायिक और सांस्कृतिक साधय बन हुए हैं। ७९ ७९ म धर्म और संहति का प्रचार करने वाले अधिकतर धर्मण साधु और बीड सिन थे। मग वनीज न अफ्रीकी भारतवासी के समय में ७९ प्रकार क साहित्य का उत्प्रेषण किया है। बाह्यण और अमण उस युग क प्रमुख साहित्यिक थे। उस युग म धर्मणा को बहुत आन्दोलन जाता था। बाह्यण की जन सम्म दाय पर विचार करने हुए मगस्थनीज द्वारा उत्प्रेषित अमण सम्मणी अनुदे को उद्धृत किया है और बताया है कि जिन और बुद्ध क धार्मिक सिद्धान्त का तुलना म पाचविंशती हिंदू साध्या का धर्म और संहत्या आधुनिक है। मगस्थनीज न अमणा क सम्बोधन म जो विवरण दिया है उसमें कहा गया है कि ७९ वन म रहते थे। साध्या प्रकार के ७९ सना स अमण थे। राजा ७९ उनको बहुत मानने थे और देवता की सीति उनही स्तुति एक पूजा करत थे।^२ रामायण म उत्प्रेषित धर्मणा स भी इसी धुनि हा जाती है। टीकाकार भूपण न धर्मणा को गिम्बर कहा है। सम्भव है कि उस समय गिम्बर और वनम्बर दोनों प्रकार के साधु रहने हा और वन क रूप म वस्त्रक परिधानों को धारणकरते हो जया कि मगस्थनीज ने लिखा है। बाह्यण साहित्य म भी धर्मणा का उत्प्रेषण मिलता है।^३ चित्तु इस पर अधिकतर विचार मौन हैं।

रामायण का टीका म जिन वाचकन मुनियों का उत्प्रेषण किया है वे ऋषेय म बर्णिन वातराज मुनि हो जात हाते हैं। उनका विवरण उक्त वणन स में भी साता है।^४ कन्ती मुनि भी वातराज की श्रणी के थे।^५ वातराज

१ अथर्ववेद ५.२२. ४.५ म।

२ देवदत्त शास्त्री चित्तन के मये खरण व ६७.६८।

३ वही प ६६।

४ एंगियेन्ट इण्डिया एन इतिहाइड बाय मगस्थनीज एण्ड एरियन बलकत्ता १६२६ पृ० ६७.६८।

५ टाग्लेन आय द क्रमिन्टस आय द इण्डिया बाय मेगस्थनीज बाय १८४६ पृ० १०५।

६ वही प १.१०२।

७ नाथवन्त शास्त्राचार्य इति वाचन धर्मणा विगम्बरा धर्मणा वाचकना इति नियन्त्रु। यडा चतुर्थमाधर्म प्राप्ता धर्मणा नाम से स्मता इति स्मति। — मोविन्दराजीपरामायणपूजन।

८ प १५। १५२२ तथा २७। १।

९ वातराजना वातराजस्य पुत्रा मुनयः शस्त्रीन्ध्यायशस्त्रिणो कृत्रिवाजन्निप्रभतय विगाया विगायानि कवित्तर्णानि मता मननानि वस्त्रकपाणि वागांसि वसत आण्डावदन्ति। — सायण भाष्य १.०। १.५२।

१० वही १। १.५३।





मुनि उत्कृष्ट कोटि के मुनि थे जो निर्ग्रन्थ साधु थे। ज्ञान, ध्यान और तप में वे सर्वमे वडे माने जाते थे। बाहुवर्गी ने भी इसी प्रकार की तपश्चर्या की थी। तप ही इनकी एक भाव चर्या रह गई थी। ब्राह्मण साहित्य में मुख्य रूप से तैत्तिरीय आरण्यक में इनका विस्तृत उल्लेख मिलता है। कई स्थलों पर इनकी स्तुति की गई है। इस प्रकार जैनधर्म आर्हत और श्रमण नाम से प्राचीन काल में प्रचलित रहा है। अहम् के उपासक आर्हत कहे गये हैं जो आगे चल कर जिन के अनुयायी जैन हो गये। किन्तु यह श्रमण शब्द बराबर प्रचलित रहा है। और महावीर को श्रमण कहते देख कर बुद्ध को मानने वाले गौतमबुद्ध को “महाश्रमण” कहने लगे। परन्तु जैन परम्परा में “श्रमण” शब्द अपने मूल रूप में आज तक सुरक्षित है^३। वस्तुतः ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन में यह निश्चित हो जाता है कि श्रमणों की अपनी परम्परा रही है जो पुराणकाल तक और तब से अब तक अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित है। श्री मद्भागवत में मेरुदेवी (मरुदेवी) तथा नाभि राजा के पुत्र भगवान् ऋषभदेव वातरशन श्रमणों के धर्मप्रवर्तक कहे गये हैं^४ और उन्हें “योगेश्वर” कहा गया है^५। इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी आर्हत धर्म का उल्लेख मिलता है जिसे कहीं-कहीं जैनधर्म कहा गया है। पद्म-पुराण, विष्णुपुराण, स्कन्द और शिव पुराणों से आर्हत परम्परा की पुष्टि होती है। इन पुराणों में जैनधर्म की उत्पत्ति तथा विकास के मवध में कई आख्यान भी मिलते हैं। मत्स्यपुराण में स्पष्ट रूप में उल्लिखित है कि जिनधर्म वेदवाह्य है जो वेदों को नहीं मानता^६। इसमें यह तो पता लग ही जाता है कि जिन युग में वेदों की सृष्टि हुई थी उस समय आर्हत लोग वेदविरोधी थे और तभी से वेदविरोधी धर्म के रूप में उनका स्मरण एवं उल्लेख किया जाता रहा। क्योंकि किसी वैचारिक क्रान्ति के सन्दर्भ में ही अपने आप को पुराना मानने वाले इस प्रकार का नाम देते आये हैं। किन्तु इसमें जैनधर्म की प्राचीनता पर और भी प्रकाश पड़ता है। संक्षेप में, तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय तक यह आर्हत धर्म के नाम से ही प्रचलित था। वीद्वगन्धो तथा अशोक के शिलालेखों में यह “निगठ” के नाम से प्रसिद्ध रहा और इण्डो ग्रीक तथा इण्डो-मीथियन के युग में “श्रमण” धर्म के नाम से देश-विदेशों में प्रचलित रहा। पुराण-काल में यह जिन या जैनधर्म के नाम में विस्तृत हुआ और तब से यह इसी नाम से सुप्रसिद्ध है। जैनागम तथा शास्त्रों में इसके जिनशामन, जैनतीर्थ, स्याद्वादी, स्याद्वादवादी, अनेकान्तवादी, आर्हत और जैन आदि नाम मिलते हैं। देश के विभिन्न प्रान्तों में समय-समय पर यह भिन्न नामों में प्रचलित रहा है। जिस समय दक्षिण में भक्ति-आन्दोलन जोर पकड़ रहा था उस समय वहाँ पर यह मव्यधर्म के नाम से प्रसिद्ध था। पंजाब में यह “भावादास” के नाम से प्रचलित रहा^७। तथा “सरा-वग-धर्म” के नाम से आज भी राजस्थान में प्रचलित है। गुजरात में और दक्षिण में यह अलग-अलग नामों से प्रचलित रहा है। और इस प्रकार आर्हत, वातवसन या वातरशन श्रमण से लेकर जिनधर्म और जैनधर्म तक की एक वृद्ध तथा अत्यन्त प्राचीन परम्परा प्राप्त होती है।

जैन पुरातत्त्व से भी अनेक ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं जो इस धर्म की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हैं। यद्यपि मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त मूर्तियों के सवध में अभी तक निश्चय रूप से नहीं कहा जा सका

१ तैआ० १।२।३, २३।२, २४।४, ३१।२७, १।

२ सम्बुद्धः करुणाकूर्चं सर्वदर्शी महाबलः ।

विश्वबोधो धर्मकायः सगुप्तोऽर्हन्मुनिश्चितः ॥

व्यायामो द्वादशात्यश्च वीतरागः सुभाषितः ।

सर्वार्थसिद्धस्तु महाश्रमणः कलिशासनः ॥ त्रिकाण्डशेषः, १, १०-११ ॥

३ मुमुक्षु श्रमणे यतिः ।—अभिधानचिन्तामणि, १, ७५ ।

४ “नामै प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्या धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवावततारः ।”—श्रीमद्भागवत, ५।३।२०

५ “भगवान् ऋषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया त्ववर्षमजनाभ नामाभ्यवर्षत् ।” वही, ५।४।३

६ गत्वाऽथ मोहयामास रजिपुत्रान् ब्रूहस्यति ।

जिनधर्मः समास्थाय वेदवाह्यं स वेदवित् ॥ मत्स्यपुराण, २४।४७

७ डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन • जैनिज्म द ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन, पृ० ६२ ।

है कि वह जिन है या शिव किन्तु वालायागो के उत्खनन से यह रहस्य स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में भी जनधर्म का प्रचार उत्तर-पश्चिम भारत में रहा है। उपलब्ध जनसूचियाँ ई. पू. २०० तक प्राचीन का जाती हैं। मौर्यकालीन कुछ मूर्तियाँ पटना सप्रहाल्य में सुरक्षित हैं।^१ सभी प्रकार लगभग प्रथम ई. पू. में जब चित्रकला के स्पष्ट निर्माण मिलने लगते हैं। पुरातन गिलासिनिम और नि. ८४ का सबप्राचीन सवन्मूक नक्षत्र मिला है। मयुरा का जननेत्र तो अत्यंत मन्त्रवर्ण है जिनके आधार पर डा. हमन जकावा ने जनधर्म की प्राचीनता सिद्ध की है। ससार की प्राचीन लिपि एवं कला की मूर्ति अमन सरकृति एवं कला में सुष्ठु भावा का अंकन करने के लिये प्रतीक का भी परम्परा प्रचलित रही है। मूर्तिनिर्माण में चतुर्था मादिरा का रचना में विद्यमान तथा चित्रा की रचना में यह प्रतीक का अत्यंत रहस्यमय रूप से अभिव्यक्त हुई है। यही नहीं जन साहित्य में माय परम्परा सुगम है। मणिस्तना भलाभाति अध्वनय दिया जाये तो इसका प्राचीनता का अर्थ प्रमाण की स्पष्ट रूप से मिले सरत है। गिरालदा स प्राप्त प्रमाणों का आधार पर जब तात्पर्य देमिनाय की ऐतिहासिकता की निश्चित हुई है। क्योंकि प्रमाण पट्टन का एक प्राचीन सामान्य प्राप्त हुआ है जिसका अनुवाद डा. प्राणनाथ बिद्यालवार ने किया है। उससे बताया कि राजा मन्वन्तनजर के द्वारा सौराष्ट्र के गिरिनार पर्वत पर स्थित मणिचिह्न के जीर्णोद्धार का उद्योग है। बबीलोन के राजा नेबुचदनेजर प्रथम का समय ११४ ई. पू. और ग्रीस का ६०४ ई. पू. का समय बता जाता है। उस राजा ने अपने दान का उस आय का जो उस नाविका के द्वारा प्राप्त हुआ की न जनधर्म के गिरिनार पर्वत पर स्थित अरिस्तमि की पूजा के लिए प्रमाण की थी।^२ इस प्रकार अर्थ बोधार्थिका के उल्लेखों से भी जनधर्म का प्राचीनता पर प्रमाण पड़ता है। यूनान और मिस्र के दार्शनिकों ने भी अमन सत्ता का उल्लेख किया है और उनका प्रमाण स्वीकार किया है।

जाना कि सुगम चार सिद्धान्त कह जा सकते हैं—प्राचीन आत्मा का अस्तित्व एवं पतन का धर्मनाम तथा स्थान। जिनका एक पापन तथा मरणात् सिद्धांत है। जनधर्म का यह प्रारम्भ सिद्धांत है। प्राचीन परमो धर्म यथा धर्मस्तथा अर्थ। धर्मधर्मसंस्कृति का यह प्रारम्भ है। इनमें यति जीर समाज की सत्तावली गति निहित है। वस्तुतः माय का मन्त्र धर्म अस्ति है। अहिंसा यति की भोगता गिरिगता या समाज का धर्म का परिणाम न हाकर भाग की अनामति और मन्त्रविशेष एवं भाग की राजा यतिनी गति का प्रथम जीर गति का नाम है। जिसमें करणा तथा भाग का भन्नार पता है। जीर का समाजकल्याण के लिए अमोघ गति है। यतिगति अस्ति हम धर्म और धर्मगत नों सत्ता। यह हम मोक्ष और धर्म धर्मों को जीवन के लिए अस्ति तथा उत्साहित करता है। उत्तम शास्त्रधर्म का एक एवं तेज है। जना न धर्मगत म एसा अहिंसा का सर्वथा विरोध किया है जो धर्म का धर्म धर्म या दूसरे के प्राण देने का पाठ सिद्धांत हो। जनधर्म के सभी तीव्रकर धर्मिक एवं राजधर्म। धर्मिकर तीव्रकर इवाकु धर्म का उत्पन्न हुए थे। अपने जीवन में उन ने कई युद्ध किये थे। चन्द्रगुप्त मौर्य सम्प्रति धर्मिक अमोघ धर्म धर्मिक गिरिगति तथा कल्पुरि गति और राष्ट्रवृद्धि का अर्थ राजा जन थे। चन्द्रगुप्त धर्मिकर अजातशत्रु उत्तम सहायक विद्वत्तार और अगाध का जन तथा धर्म परम्परा अपना सत्ताधर्म माननी है। जो भी हो। स्वयं स्पष्ट है कि नात अमान न जान कितने सद्गति और राजा हुए जिन्होंने युद्ध और अग्नि का शक्ति से सत्ता जन किया था।

जन धर्म का मिति का सबकी विरोधी आरम्भ और उत्तमी के चार भेद किए गए हैं। यह धर्म के स्थान में है।^३ प्रमाण मूल—प्रमाणपूर्वक पापन करता सावधानी रखना और यही आगे चलकर धर्म का धर्म भाव रूप में आता है।

१ मुनि कार्तिसागर धम्मप संस्कृति और कला १९२२ पृ. २४।

२ यही पृ. ८४।

३ देखिए अनेकात धर्म ११ किरण १ में प्रकाशित बापू जयधर्मनाम की ए. ए. ए. ए. ए. का मोक्षमोक्षो कासीन जीर आधुनिक जन संस्कृति धर्मिक लेख पृ. ४८।

४ प्रमत्तयोगाप्रणव्यपरोपण हिता—तत्त्ववस्तु ७५८।



हिंसा मुख्य रूप से दो कोटियों में विभक्त हो जाती है। आचार्य कुन्दकुन्द ने भाव पक्ष की मुख्यता को लेकर स्पष्ट रूप से कहा है कि जीव का घात हो या नहीं, यदि अभावधानी में प्रवृत्ति की गई है तो निश्चय में वह हिंसा है। और भावधानी में प्रवृत्ति करने वाले में यदि कदाचित् प्राणों का घात भी हो जाये तो उसे हिंसा के निमित्त में बन्ध नहीं होता।^१ वस्तुतः अच्छे और बुरे भावों पर जीवन की नींव टिकी हुई है। जीव को जैसा अन्न और जल मिलता है वैसा ही उसका निर्माण होता है। भाव और प्रवृत्ति जीवन में अन्न और जल की भाँति पोषक तत्व हैं जिनसे धर्म की संरचना होती है, धर्म का विग्रह जन्म लेता है।

अहिंसा का सभी धर्मों में महत्त्व वर्णित है। भारतीय मस्कृति तो मूलतः अहिंसानिष्ठ नहीं है। वाल्मीकि ने भी अपनी रामायण में अहिंसा का आचरण करने वाले मुनियों को पूज्य तथा श्रेष्ठ कहा है^२। वस्तुतः अहिंसा की उपस्कारक श्रमण-मस्कृति श्री जिनसे मूढम में मूढम अहिंसा का निरूपण एवं निर्वचन किया है और समस्त धर्मरूपों को अहिंसा की व्यापक व्याख्या में समाहित कर लिया। यदि हम विभिन्न संप्रदायों एवं धर्मों का इतिहास देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि किसी न किसी रूप में सभी हिंसा का प्रत्याख्यान करते रहे पर किसी न किसी रूप में सभी धर्म मानने वाले हिंसा को करते रहे और अपने प्रमाण में "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" तथा यह धर्म की हिंसा है—कह कर अपने को बचाते रहे। किंतु जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जिनमें किसी भी रूप में हिंसा को मान्य नहीं स्वीकार किया और उसके विभिन्न स्वरों का मार्गोपाग विवेचन किया। आज भी यह जानि अहिंसानिष्ठ एवं आचारप्रधान देखी जाती है। यथार्थ में यह तप, त्याग एवं आचारप्रधान मस्कृति है जो अनेक आघातों को सह कर भी आज ज्यों की त्यों स्थिर है।

जैनधर्म आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है। यह शुद्धरूप में आत्मा को शुद्ध, वृद्ध तथा निरजन मानता है। परन्तु अनेक जन्मों के कर्मों से आवृद्ध होने के कारण आत्मा अशुद्ध एवं मैली होने में सत्तार के परावर्तनों में सटक रही है। यद्यपि हममें अनंत शक्ति और गुण विद्यमान हैं और इतनी क्षमता है कि अपनी निवृत्तिप्रधान क्रिया से स्वयं मुक्त हो सकती है किन्तु कर्मों के तिमिर-जाल में उलझी होने में मुक्त होने में समर्थ नहीं हो रही है। इसलिए कर्म-बन्धन से मुक्त होने का नाम ही मुक्ति है। इसके लिए किसी परमात्मा के आने की आवश्यकता नहीं है कि वह अपने त्याग से नीचे उतर कर हमारी सहायता करने के लिए यहाँ आए, बल्कि आत्मा में वह परम शक्ति विद्यमान है कि वह तब से नारायण, आत्मा में परमात्मा बन सकती है। यदि उनमें यह शक्ति विद्यमान नहीं है तो मनार की कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो उसे ईश्वरत्व प्रदान कर सके। उसमें स्वयं शक्ति का वह प्रकाश है। तभी तो वह अपनी ज्योति को ऊर्ध्वगामी बना सकती है। इसी रूप में जैनधर्म आत्मा को स्वीकार करता है। और यह तो सद्वाद का सिद्धान्त है कि जो विद्यमान है, जिसका अस्तित्व है वह कभी अभावरूप नहीं हो सकता और मद्भाव का कभी विनाश नहीं होता। इसलिये कर्म-बन्धनों को काटने का अर्थ है उनमें अलग हो जाना, जड़त्व को सर्वथा छोड़कर आत्मा के यथार्थ को, पूर्ण चेतन रूप को प्राप्त कर लेना।

अहिंसा की भाँति कर्मवाद और स्याद्वाद भी जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्त हैं। जैनधर्म के अनुसार कर्म एक स्वतंत्र द्रव्य है। आत्मा के साथ मिल कर चलनशील होने पर यह विभिन्न भावों की सृष्टि करता है। यह अपनी

१ मरुदु य जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।

पयटस्स णत्थि वन्वो हिंसामत्तेण समिदस्स ॥ प्रवचनसार, ३।१७

२ धर्मो रता. सत्पुरुषं समेतास्तेजस्विनो दानगुणप्रधाना ।

अहिंसका वीतमलाच्च लोके भवन्ति पूज्या मुनय प्रधाना ॥ वाल्मीकि-रामायण, १०।६।३६

तथा—अहिंसान्त्यमस्त्यै शौचमिन्द्रियनिग्रह ।

एतत् सामासिक धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु ॥

यन्मृतमस्या गतिं मित्रस्य याया पया ।

अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सच्चिरे ॥ ऋग्वेद, ५।६।४।३

प्रियाया से जीव को संवत्त करके रखता है और पूरी तरह से उस पर छा जाता है। इसलिए आत्मा व प्रेमा म जा परिवर्तन होता है उसम कामसु वगणाया का योग रहता है। अतएव पुनज म की प्रियाया वमी के अनुसार सम्पन्नित हानी रहनी है। शीतम यद्ध भी कर्मानसा पुनज म का स्वीकार करते हैं। कम धनत परमाणुआ का स्क्व कहा जाता है। यह समूचे 'आ' में व्याप्त रहता है। जिस प्रकार बाज के दम्य हो जाने पर फिर वक्ष उत्पन्न नहीं होता उसा प्रकार जन्म देने वाला कम सत्ता का बीज है और उसका आवर्तक क्षय या दम्य हो जाने पर फिर पुनजन्म नहीं होता। कम से ही आत्मा म विकृति उत्पन्न होती है। इस विकृति को दूर करने के लिए जिनपासत म पान ध्यान और तप का आचरण मुख्य वत जाया है। तीक्ष्ण यहावीर न भी अहिंसा को मध्य प्रवर्त गतिन का समय कहा है। मयम एक आन्तरिक साधना है आ भीतरी गुडि पर अधिब बल देनी है और भागडि को प्रवृत्त करती है।

विद्या की प्राप्ति कम का भी अपना पान विद्यान है जिसके अनुसार यह कम स्वयं रूप (परमाणुम) हान पर भी श्रुतिपात्र नहीं होता। परन्तु रज के समुत्पन्न वषा के समान समुत्पन्न नैव म व्याप्त रहता है। और इसलिए कमवाद म स्वर का बाई स्थान नहीं है। कम ही स्वर व स्थान पर माना जा सकता है। यद्यपि सगार व काय विमी म किमी कारण से उत्पन्न होते हैं पर जिनका कारण प्रतीत नहीं होता जो विभिन्न विषयमात्रा का जनक हैं और जिनका स्पष्ट अनुभव होता है वे सब किसी अतीविक गतिन से उत्पन्न न होकर वमी से उत्पन्न होते हैं। सत्ता की विभिन्न विषयमात्रा का कारण कम है। कम ही मूलभूत विषयमात्रा का मूल है। कम जन्म जन्मान्तरा के रूप के रूप म विभिन्न मानसिक प्रक्रियाया की सृष्टि करता रहता है। और इस प्रकार जनपन्न का वमना ईश्वर का स्थान ग्रहण कर लेता है। जनपन्न म वमी के विभिन्न भेदा तथा विविध अवस्थाया का गणित के आधार पर विभक्त एवं सूक्ष्म विवेचन मिलता है। और वमी से अलग होने का उपाय तप कया गया है। जिस समय म जिस प्रकार का तप सम्पादित हो जाता है वह अगद तथा विकृत भाव उत्पन्न हो जाता है। इसे ही पारिभाषिक गणित म विनारा कहते हैं। और 'हा न इन्द्रियां न उपसग (मिन्ने माला वृष्ट) है न मोह है न आचय न निग न व्याम और न भज हा है वहां निर्वाण होता है'। पारस्य म निर्वाण यही स्थिति है जिसम मृद दुःख की अनुभूति नहीं होती वन्म अनि र्थ निराशा अतीविक आनन्द प्राप्त होता है।

साधना जना का दार्शनिक सिद्धांत है। इसम विभिन्न दृष्टिमात्रा से पण्य की सत्यता का व्याख्यान किया जाता है। वस्तुतः जब और धनत सभी म अनेक धर्म विद्यमान हैं। उन सब का एक साथ वचन न। जिहा जा सकता। विवक्षा व अनुसार एक समय म किसी एक की मुख्यता स्वर वचन किया जाता है। उमर। दार्शनिक साधनाका म वचनित —अपेक्षा से कहा जाता है जिसका दूसरा नाम अपेक्षावान् भा है। अपेक्षावान् का यह सिद्धांत दार्शनिक मतवादा का आग्रह का गिबिल करता है और जीवन का यथाय दृष्टिकोण भिन्न भिन्न रूप म हमारे सामने प्रस्तुत करता है। अपेक्षाका के आधार पर विद्या जान साधन वचन विही दृष्टिकोणा (वया) की अपेक्षा रहता है। ज्ञानमा म सान दृष्टिकोणा को सान प्रसिमाया का साथ प्रस्तुत किया गया है। जो वन दृष्टि जाया का समने बिना स्या त् की सममने का प्रयत्न करते हैं उन्हें यह साधना पान पडता है। यथाय व स्यात् साधना म होकर समवयवा कहा जा सकता है जिसम विभिन्न धर्मों की दृष्टि को वचनित रूप म विद्या अपेक्षा म व्यन्तर म दा निरचय में सत्य स्वीकार किया गया है। स्वय तीक्ष्ण वमवार म्माभी वर विरोध का हिमा मानन ये। वे सत्य को सत्य के रूप में हा प्रेम्णा और कहना चाहते थे। इसलिए उन्होंने वस्यों का स्याय विद्या मनुष्य की वास्तविक अवस्था प्राप्त कर साधनात्मिक उत्पत्ति की और सब म सधनाभाव का प्रचार किया। यह वर विशिष्टमूक समवयवानि।

१ जह कायेण तवेण म भुत्तरस वम्मपुणस वेण ।

सावेण सत्तवि वेया तत्तत्तण वेवि निज्जरुत दुत्तिह ॥ इत्थमग्रह ३६

२ एवि इविज्जवत्तमा एवि मोहो विट्ठियो ए जिह्वा य ।

ए म तिह्वा येव भूता तस्येव ए होइ विव्वाण ॥—निमयसार ३८





वह दृष्टि थी जो अनेक केन्द्रविन्दुओं पर एक वस्तु का विचार कर उसकी वास्तविकता को परखती थी। क्योंकि सत्य अखण्ड होता है। शब्दों के सीमित घेरे में उसके अनन्त गुणों की व्याख्या संभव नहीं है। किन्तु उसके केन्द्र में व्याप्त मुख्य विन्दुओं को अलग अलग तथा समाहार रूप में समझ कर उसकी अखण्डता का बोध किया जा सकता है। जब तक वस्तु के अनन्त तथा विभिन्न अवयवों का एवं उसके रूपों का ज्ञान नहीं होता तब तक न तो विश्लेषण ही किया जा सकता है और न उसका सामासिक कथन ही किया जा सकता है। इस प्रकार स्याद्वाद मरत्य तक पहुँचने की वह पद्धति है जो जीवन को आत्मा के आन्तरिक व्यापारों से जोड़ती है और जिसमें बाहरी तथा भीतरी जीवन की एक प्रणाली समाहित है जो विविध दृष्टियों को एक केन्द्र में स्थापित कर वस्तु की सत्यता का निर्वचन करती है। सच यह कि वस्तु को किसी धर्म विशेष के माथ मानना ऐकान्तिक है। और इस एकान्त का परिहार अनेकान्त के बिना संभव नहीं जान पड़ता। विभिन्न नयों एवं दृष्टिकोणों से एक ही वस्तु को समझने पर उसकी सचाई समझ में आती है। आचार्य समन्तभद्र ने 'आत्म-मीमांसा' में यहाँ तक कह दिया है कि निरपेक्ष नय मिथ्या होते हैं और सापेक्ष नय वस्तु को सिद्ध करने वाले होते हैं। जीवन का यह दृष्टिकोण सापेक्षिक एकान्तवाद या अनेकान्तवाद में प्राप्त हो सकता है जो जैनधर्म के मूलभूत रहस्य को प्रकट करता है।

तीर्थंकर महावीर के लिए स्याद्वाद कोई नया मिद्वान्त नहीं था। यह तो बहुत पहले से ही चला आ रहा था। वैदिक युग में विभिन्न दार्शनिक मतवाद थे। ऋग्वेद में पता लगता है कि माध्यों का मूल मिद्वान्त मद्वाद, अमद्वाद, सदसद्वाद, व्योमवाद, अपरवाद, रजोवाद, अभिवाद, आदर्शवाद, अहोरात्रवाद और मज्ज्यवाद इन दस मिद्वान्तों पर आधारित था^१। सदमद्वाद का मिद्वान्त बहुत ही व्यापक रहा है। दार्शनिक जगत् में किसी ने सन् और किसी ने अमत् पक्ष को ग्रहण कर विविधवादों को जन्म दिया। किन्तु जिनमत उन सभीवादों का विचार अनेकान्त तथा स्याद्वाद के सिद्धान्त की व्यावहारिक एवं पारमार्थिक कसौटी पर करता है। समन्वय की यह पद्धति मैद्वान्तिक रूप में विश्व के किसी भी धर्म एवं दर्शन में अभिलक्षित नहीं होती। वस्तुतः यह मिद्वान्त प्राग्वैदिक युग से आज तक अप्रतिहत रूप में अवस्थित है। यद्यपि पिछली कई शताब्दियों में इसका डट कर विरोध किया गया पर इस वैज्ञानिक युग में आकर यह फिर से सुस्थिर हो गया है। यथार्थ में समय, काल, गति और परिमाण आदि के लिए सापेक्ष दृष्टिकोण को अपनाना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। वस्तु के विविध रूपों, गुणों तथा कार्यों को समझने के लिए किसी एक को मुख्य तथा गौण रूप में देखना ही पड़ता है। फिर, वस्तु की सभी कोटियों का एक-मात्र निर्वचन हो नहीं सकता। इस प्रकार श्रमण-संस्कृति के साथ इस देश में जिन धर्म और दर्शनों का शत सहस्राब्दियों से प्रचलन होता आ रहा है वह जिनधर्म या जैनधर्म है। और हजारों ही नहीं लाखों तथा करोड़ों वर्षों के जीवन में कदाचित् ही किसी युग में इस सनातन आचार-विचार पद्धति में यत्किंचित् अन्तर आया हो। इसी से इसकी गौरव-गरिमा स्वयमेव सिद्ध है और भविष्य में भी इसके उज्ज्वल रूप में कुछ अन्तर नहीं आ सकेगा।





धर्म" के स्वरो मे गूँजी तो पश्चिम से आवाज आई—“जीओ और जीने दो।”

जैन-संस्कृति के इस अहिंसा-सुधाकर की एक कला को ही अगीकृत कर विश्ववद्य बापू ने महान् शक्तिशाली अंग्रेजी साम्राज्य से सफल टक्कर ले इतिहास के पृष्ठों में एक नई महत्त्वपूर्ण, शानदार कहानी अंकित की।

लोकमान्य तिलक भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के अमर सेनानी की यह उक्ति क्या कम उल्लेखनीय होगी—
“जैन धर्म ने अहिंसा का सर्वोच्च उदाहरण प्रस्तुत किया”।

जैन-संस्कृति की इस उच्च अहिंसा के ये कुछ चित्र कितने भव्य होंगे।

भगवान् नेमिनाथ २२वें तीर्थंकर निर्दोष, निरीह, मृक पशुओं के करुण चीत्कार में द्रवित हो तोरण से मुह मोड़ गये। शृङ्गार क्षेत्र से विमुख हो धर्म-जगत् में प्रवेश करना युवक नेमिनाथ के जीवन की एक कितनी महान् क्रान्तिकारी घटना है।

२३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ ने तो बाल-वय में कमठ को प्रेम से समझाया कि इस तपस्या में क्या है ? देखो, काष्ठ में सर्प-सर्पिणी जल रहे हैं। उन्होंने जलता नाग बचाया।

और चरम तीर्थंकर महावीर ने अहिंसा के बल से विष को अमृत में बदल दिया था। चडकोशिक की कथा अहिंसा के चमत्कार की बोलती गाथा है।

मुनि मेतार्य ने मुर्गे की रक्षा में अपनी जान की बलि दे दी। कितने शुभ रूप हैं ये अहिंसा के। पर जैनधर्म की अहिंसा कायरो का शस्त्र नहीं, प्रत्युत वीरो का भूषण रही है। डरपोक होकर अन्याय व अत्याचार सहन करना हिंसा ही है। शान्ति का विगुल बजाते भी यदि जबरदस्ती हम पर युद्ध थोपा जाय तो उसका डटकर मुकाबला किया गया है। चेडा-कोणिक का युद्ध, वरुण नाग नटुआ का युद्ध-जौहर आज भी जैनागमों के पृष्ठों पर चमक रहे हैं।

“सर्वे भवन्तु सुखिन” की मंगल-भावना को अपने में सजोये विश्वशान्तिदायिनी यह अहिंसा जैनधर्म की एक वह अमूल्य देन है जो आज के युद्ध-जर्जर, भयाक्रान्त, विषुब्ध विश्व में शान्ति व आनन्द सरसा सकती है।

(२) दूसरी पखुडी—मानव का अनन्य महत्त्व

“विहग सुन्दर, सुमन सुन्दर, पर मानव तुम हो सुन्दरतम।”

जैन-संस्कृति मानव के अनन्य महत्त्व को प्रदर्शित करती है। मनुष्य इस विश्व की सर्वश्रेष्ठ कृति है। वह अनंत शक्ति का पुत्र है। अतुलित आनन्द का स्रोत है। चराचर जगत् का सम्राट् है। उसकी मृट्टी में हीरा है, पर उसे भान नहीं, अतः वह अपने को कगाल माने बैठा है। अनंत ज्ञान का सूर्य कर्म-बादलों से आच्छादित है। नर-नाहर का वच्चा भटक कर भ्रुण्ड में चला गया है। मानव वेभान हो प्रकृति, देवशक्ति, तत्र-मन्त्र, जादू-टोना आदि के चक्र में उलझ जाता है।

जैन-संस्कृति ने समझाया —

अरे मानव ! तू सर्वशक्तिमान् है। तेरी आत्मा अपने सत्कृत्यों से आश्रय को रोक, सवर व निर्जरा की साधना कर, मोक्ष-पद को प्राप्त कर, जीव से शिव, नर से नारायण, आत्मा से परमात्मा बनने में सर्वथा सक्षम है।” मानव की इस महान् शक्ति की स्थापना जैन-संस्कृति की एक नितात क्रान्तिकारी देन है।

पर मानव का महत्त्व अपने सदाचार से है। लिङ्ग, वय, जाति या जन्म में नहीं। साधना के क्षेत्र में हर आत्मा समान है। मानव की महत्ता का मापदण्ड जाति-कुल नहीं, पर सद्धर्म है। जातिवाद तो एक ढकोसला है। ब्राह्मण, शूद्र, वैश्य आदि वर्ण या जाति से नहीं होता है। वर्ण-भेद जन्म से नहीं होता। जो जैसा अच्छा या बुरा कर्म करता है वह वैसा ही ऊँचा-नीचा हो जाता है।

“जाति पाति पूछे नहि कोई, हरि को भजे सो हरि का होई” यह ४००-५०० वर्ष पूर्व की ही उक्ति है। और

निक स न्हि को जाना छूआहुन को छाँगे यह तो अभी की ही पुकार है। पर जन संस्कृति का यह वज्र प्राधोप सो गता निया पव ना है

कम्मुणा बमयो होन् कम्मुणा होइ सत्तियो ।

यन्तो कम्मुणा होइ सुदो हवद कम्मुणा ॥”

नितना निया साम्यवान है या ? मानव मानव म नाई परव नहीं ।

मानव मानव म नया परक ? फिर वह नर हा या नारी । नारी या वहन को सग पूज रही है । मत्र नाथ हनु पूजते रमत तत्र देवता — पर वास्तव म नारी अवला ही रही है । धार्मिक जगत म ता उसका प्रवेग निषिद्ध । कोई नाई तो नारी का नरक का जगता तब नहते हैं— नार किमव नरकस्य ? नारी ।

पर जन संस्कृति—साम्यवान की गुप्त्र ध्वजा लहराने वाली संस्कृति न नारी का महत्त्व प्रतिष्ठित किया । सायनाक्षर म सबका समान अधिकार है । यहाँ नर व नारी का महत्त्व नही पर राग-द्वेष विजय का महत्त्व है । गुणवती नारा भी सबधत्ता पन् को प्राप्त कर सकता है । उमका नाम अग्रिम पवित म सबसे ऊपर अंकित रहता है ।

नारी का म य स्वस्व दक्षिणे

जयतो राजकुमारिका के भगवान महावीर स सविनय निमय निद्रा भाव स पूछे गये नान विमान से भरे प्रश्न आज भी भगवनी सूत्र म चमकते हैं ।

दागकालिक सूत्र म राजीमती म पद्मभद्र वन रघुनाथ को कितनी आश्चर्याविष स समझाकर पुन पतन से उत्थान की आर माता ? नारी को कौन अवला कहेंगा ?

भगवान श्रद्धमन्त्र की दो पुत्रियाँ बाह्यी और सुबरी ने अपने गवित भार्वाहावलि को किस प्रकार प्रम स सम झाया है ? भ्रारा घोरत गज घरी कतरो गज बडिया केवल न होय की मधर उकिन म भगिनी का सलीना स्नेह नारी का प्रम व कलव्य तत्र रहता है ।

उत्तराध्ययन क १४वें अध्याय म उल्लेख है—कमलायती रानी ने राजा को समया-बुला कर सत्यमाग पर आन किया है । नारी वास्तव म अद्वैतिनी होती है ।

अतहतानाग सूत्र म मगधसम्राट नृपति की महारानियाँ महाबली सुबाली आदि के प्रचण्ड विवट तपक्रम का वाचन आज भी पसू पण पव म किया जाता है । यह बताता है कि फून् से कोमल राजरानी भी साधना के क्षेत्र मे वज्र की मुट्ठा बन सकती है । नारी कामल भी है और कठोर भी ।

ये उाकरण सुस्पष्ट करते हैं कि जन संस्कृति न नारी के शौर्य का मंडित कर यह स्पष्ट सिद्ध किया है कि नारी तुम केवल धडा हो ।

और जन संस्कृति ने समाज के निरस्तृत क्षीन हीन घृणित गुणा को भी नया रूप दिया । उनके लिये भी यहाँ द्वार धता था । घम नरनार म नया उच्च नीच ? यहाँ तो साधना का महत्त्व है । श्री हरिकेशी धुनि नेताय स्वामी व उाहरण यह स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि नीचड में कमन होते हैं । साधारण भी अपनी गति प्रमाण कर असा धारण बन सकता है । मुट्ठी के गज भी बहुमूल्य हात है । वय जुमुम भी सुवास फनायेगा ही । कस्तूरी काली व कुरुप नया न हा पर काट म जुगमी ।

तो जन संस्कृति ने विश्व को दिया कि मानव जगण्य व जपय नहीं है । हर मानव म साम्य है । प्रत्येक प्राणी अपने सलुरपाय स सर्वोच्च पन् भी प्राप्त कर सकता है ।

सतीय पल्लुडी—बाहर सहीं अदर की ओर

विमान तुम्हारे मठ है सच्चा है केवन आत्मगान । बाहरी चमक-लमक भौतिक चकाचौंध म अपने अने मानव का जन राश्ट्रनि ने सब महत्त्वगुण बात बताई बाहर नहीं अदर की ओर क्षाना । शरीर तक ही अटक कर न





रह जाओ। यह क्षणिक है। नश्वर है। इनके अन्दर विराजमान आत्मदेव को पहचानो। अरे मानव, तू कहाँ मुख नमस्कृत है? इस कार, बगला, सोना, चादी, पुत्र-कलत्र में मुख नहीं पर मुखानाम है। इनका स्वाद मधुनिप्लुत खड्ग की भाँति है। प्रारम्भिक क्षणिक सुख की समाप्ति सर्वनाश में होगी। सुख की खोज बाहर व्यर्थ है। कस्तूरी के मृग की खुशबू वन की झाड़ियों में न होकर उसकी नाभि में ही है। वैसे ही मुख का अक्षय अंत अन्तरतम में प्रवाहित होता है। “वहिर्मुखी प्रवृत्ति में विलग हो अंतर का अवलोकन” जैन सस्कृति की एक जवरदम्त देन है।

कौन हमारे मित्र व कौन हमारे शत्रु? हम बाहर समझ बैठे हैं। यही तो भ्रम है, भूल है। हम ही मव-कुछ है। जैन सस्कृति की स्वर-लहरी कितनी उद्बोधक है

“अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।

अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिअ सुपट्ठिओ ॥”

यह आत्मा ही मुख-दुःख का कर्ता व भोक्ता है। मित्र भी और शत्रु भी। यही तो वैतरणी नदी व कूट-गालमलि वृक्ष है। और यही स्वर्ग की कामधेनु तथा नदन वन है।

बाह्य शत्रु क्या अर्थ रखते हैं? इन हजार शत्रुओं को जीतना भी व्यर्थ है यदि आत्मा को बस नहीं किया। अपने आभ्यन्तर कपायादि शत्रुओं को ही हमें जीतना चाहिए। देखिये, श्रेष्ठ विजय कौनसी है।

“जो सहस्सं सहस्माण सगामे दुज्जए जिणे।

एग जिणेज्ज अप्पाण, एम से परमो जओ ॥”

आत्मविजय ही तो वीर की कसीटी है। इस एक को जीतना अर्थात् सबको जीतना है। इस विजय के पश्चात् क्या ग्रेप रह जाता है? यह विजय मोक्ष का राजमार्ग है। इस विजय के माधन-गस्त्र है—नम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य।

“सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गं ।”

सच्ची श्रद्धा, विश्वास और उसमें उत्पन्न विमल निर्मल सद्ज्ञान वीर फिर “ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष” के अनुसार अहिंसादि पंच महाव्रतों का सम्यक् पालन अर्थात् सम्यक् चारित्र्य-व्रत, ये तीनों मिलकर ही तो बनते हैं मोक्षधाम की सीढ़ी मडक। और इसपर वेधडक हो चलकर हम मोक्ष मजिल को पहुँचकर अरिहत निष्ठ बनकर सर्वश्रेष्ठ विजेता बन सकते हैं।

इस विजय का मलक्ष्य जैन धर्म की अनुपम और अनन्य देन है।

चतुर्थ पंखुड़ी—कर्मवाद

“दोओगे जैसा बीज, तब वैसा लहरायेगा ।”

मानव जब दुःखी अवस्था में अत्यन्त निराश व हताश हो जाता है तब इस महान् अमा के घनीभूत अधकार में आया व उल्लाम की एक नई रोगनी बन आती है जैन-सस्कृति। उसका यह उद्घोष कितना आशाप्रद है।

“जैसी करणी वैसी मरणी”। “जो जस करड सो तम फल चाखा”। मनुष्य को अपने गुणाशुभ कर्म अवश्य ही भोग्य होते हैं। दुःख या सुख, जो कुछ भी हमें प्राप्त होता है, यह हमारी ही करणी है।

यह कर्मवाद मानव के स्वयं के महत्त्व का सूचक है। इस आत्मा को ईश्वर या परमात्मा नाम की कोई अदृश्य शक्ति नियंत्रित नहीं करती है, बल्कि मानव स्वयं ही अपने भाग्य का प्रेरक, उद्बोधक है। वही अपनी जीवन-नैया का केवट है। झुबना या तिरना उसके अपने हाथ में ही है। अपना मन ही वधन या मोक्ष का कारण है।

जैन-सस्कृति का यह अटल विधान है कि कृतकर्म भोगे विना छुटकारा सम्भव नहीं। कर्म किमी को नहीं छोटता—चाहे राजा हो या रक। इसकी शक्ति अप्रतिहन है। अनियंत्रित है, सर्वशक्तिमान् सर्वोच्च पदधारी तीर्थंकर तक



आनन्द आदि श्रावक ऐश्वर्य के मागर में लीन होते भी ममत्वहीन थे । संपत्ति का अर्जन लाभ या लोभ के लिये नहीं करते, पर बहुजनहिताय—विश्वकल्याण का सलक्ष्य था उनका । जीवन की उत्तर अवस्था में वे बिल्कुल निर्मोही हो जाते थे ।

तृगिवापुरी नगरी के श्रावकों के विषय में शान्तीय उल्लेख है

“उत्तिहफतिहा, अवगुयदुवारा”—उनके द्वार अतिथियों के स्वागत-सत्कार के लिए प्रतिपल खुले रहते थे ।

अहिंसा के मूलमंत्र में अभिप्रेत, हृदय की उदार भावना ने परिपूरित, यह शुभ मंगलमय अग्रग्निरह कितना भव्य है । शायद आज के इस आणविक होड एवं उद्‌ग्न वम के युग में विश्वशान्ति की एकमात्र यही मुराह है । आवश्यकता है जैन-संस्कृति की, इस मंगलमय स्वरलहरी को नमस्जने की व तदनुसार आचरण करने की । यथार्थ ही है

He is richest who has the least

अब यह स्पष्ट है कि यदि मनुष्य, मानवता और ससार की सुरक्षा एवं उन्नति का कोई मार्ग है तो उसका दर्शन हमें यह शुभ जैन-संस्कृति ही करवानी है । कई एक विधिष्ठनाओं को अपने में समाहित किये इस अद्भुत जैन-संस्कृति को अनन्य कहना एक निर्विवाद सुस्पष्ट तथ्य है ।

अतः मैं इस मंगल आशा के साथ विराम लेता हूँ कि जैन-संस्कृति की अमर-धवल ज्योत्स्ना विश्व को आनन्द-अमृत-मिथु में नहलायेगी ।



श्रमण-संस्कृति और लोकतन्त्र

रामावतार शर्मा

राजनीति विभाग

धर्मजीवी काली (विद्यापीठ)

उदयपुर ।



भारतीय संस्कृति का प्रभाव एन बिनाल नगी की भांति है जो राह की छाया मानी गयी। जो जनन से समांतर—मात्र नवी राहुन में जा मिलती है। भारत अनादि का—ने हा संस्कृति व क्षेत्र में विद्यमान रहा है। इसका आचरण में विभिन्न संस्कृतियों का नाम और विवास हुआ है। न पद बलि धर्म संस्कृतियों विशेष उल्लेखनीय है। यहाँ हम केवल धर्म संस्कृति में ऐतद्देशी जाका व विभिन्न तत्वों का अध्ययन करते हैं। यदि धर्म सामाजिक जीवन का नियमन करता है तो संस्कृति उस पर नियंत्रण करती है। धर्म संस्कृति का विकास ऐतिहासिक व मनानुसार भारत में सम्पूर्ण रूप से कि इसके पूर्व बलि धर्म में हिंसापूर्ण यथा का प्रारंभ हुआ गया था। हिंसापरक बलि धर्म और बद्ध तथा महावीर की अहिंसा—दो मूल धर्म संस्कृति में स्रोत माने जाते हैं।

हिंसा तथा वन-यथस्था का विरोध

भारत में जितनी प्रकार की संस्कृतियाँ का विकास हुआ है उनमें अहिंसारण्य व उनका मूल विचार भी नहीं दिया जिनका कि धर्म संस्कृति में और विचारण नानधर्म में दिया गया है। धुआँ से कोई लाल हो पद पूर्व हम जन तीक्ष्ण में पावनता को अहिंसा का विचार उपलब्ध गुणान पाते हैं। पावनता व उपलब्ध को चातुर्वर्ण्य तत्त्व मवाँ कहते थे। य चातुर्वर्ण्य सार थे—

१ हिंसा का त्याग २ अस्वयं का त्याग ३ स्तेन का त्याग और ४ परिग्रह का त्याग। उत्तराधनीय यान यह है कि पावनता के पूर्व अहिंसा केवल तपस्विता व आचरण का क्षेत्र माना जाती थी किन्तु मनी पावनता में उक्त मूल्य अस्तेय और अपरिग्रह के साथ ओष्ठकर सन्नसधारण के आचरण का उचित उपाय बना दिया। पावनता में मनुष्य की स्थापना की और संपा के द्वारा जनता में अहिंसा का प्रचार करना आरंभ कर दिया।

इतिहास में एक ऐसा भी समय आता है जब कि हिंसा और अहिंसा में संघर्ष चलता है। ब्राह्मणों ने हिंसा का पक्ष लिया। सम्भवतः समान में उनका स्थान यहाँ का बजह से अशुण्य बना हुआ था और यहाँ का कि आचार्य ब्राह्मणों ने वन परत्या में निरोध में समया। परंतु धर्म संस्कृति ने वनव्यवस्था का भी स्थापना नहीं किया। यह धर्मा भी सनत आदिमा ही रहा हांगी कि बौद्ध और जनधर्म के प्रवर्तन क्षयित चने थे य उद्देश्य ब्राह्मणवाद को बंद आलोचना की यथाकि धर्म को साधन मात्र पुरोहिता का वन अपने मुख का बौद्ध कर रहा था और ताता पर उल्टे रीति भी मानता था। परिणामस्वरूप धर्म संस्कृति की मूल बही लन पा भी है कि समाज में कार्य भी वन व्यवस्था स्वीकार न का जाये। सभी प्राणिमान समान हैं। समानता को यह धन ही स्थापित का मूल आधार है।

लोकतन्त्र की व्याख्या करते हुए पाश्चात्य विद्वान् लार्ड आक्स ने कहा है कि लोकतन्त्र केवल मात्र शासन-पद्धति ही नहीं है। समाज और धर्म का भी रूप है—यथाकि आत्म लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है कि समाज में ऊपरी-नीच का



भाव न हो और भीमत् स्तर का नागरिक जना समझदार हो कि वह अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक हो, समाज का सगठन और मिश्रान्त दोनों ही की दृष्टि से विशालहृदयी होना चाहिए। यह ध्रुव मत्त्व है कि कितना ही जननश्र-वादी राज्य क्यों न हो यदि समाज में समानता, सहिष्णुता, और सज्जनता नहीं है तो वह अन्तर्नाशरता अनकट हो होगा। किसी भी प्रकार की मदान्वना, उद्वृत्ता और हिंसा की प्रवृत्ति लोकतन्त्र की जड़ों का खोखला कर देगी।

बौद्धिक अहिंसा

बौद्धिक अहिंसा पर जोर जैनमन ने स्याद्वाद के द्वारा दिया है। मृनिनों की वाणी में हम सर्वत्र एक तरह की चीकमी और नतर्कता देखने हैं कि जब वह किसी मन का उठन करते हैं तब भी उनके तब हिंसा में भीने नहीं होते हैं। उनमें वह निर्ममता नहीं हानी जा हठी विद्वान् का लक्षण मानी जाती है।

मत्त्व किने मिलता है और किने नहीं, यह विवाद का विषय है, मगर एक बात व्यावहारिक मानूम पड़ती है कि जो जादमी मत्त्व की राह पर चलता है वह हठ नहीं करता, किमी बात की जिद नहीं पकड़ता और दूसरों को चुप करने के लिए जोर-जोर में बोलन नहीं लगता है। कभी-कभी ऐसा समझ दिया जाता है कि त्रितय व्यक्ति नम्रवादी है। किन्तु वह नम्रवादी नहीं होता। विरोधी मत के विषय में वह नाथ नेत्र जस्त्र चलता है कि क्या आश्चर्य, मत्त्व का एक पहलू उसे भा दियाई पड़ा हो। और यही बात विरोधी मत के बारे में उसे अहिंसक बना देती है। वर्तमान युग में स्याद्वाद का अंत हाना जा रहा है। यह गुण लोकतन्त्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है। लोकतन्त्र के लिए यह आवश्यक तत्त्व भी है।

लोकतन्त्र की बुनियाद स्याद्वाद पर ही आधारित है। लोकतान्त्रिक जीवन की ज़ारी इस घटना में प्राप्त हो सकती है कि एक बार मऊरी अरब का शाह इंगलैण्ड गया। इंगलैण्ड की सम्राज्ञी ने परम्परागत पद्धति में शाह का स्वागत करते हुए प्रणामनी में परिचय कराया और उसके तुरन्त बाद ही अपने वाम-अंग पर बायीन विरोधी दल के नेता का परिचय कराया। शाह ने मरल ढंग से उत्तर दिया कि महारानी, यह आपकी ही उदारता है कि वफादार प्रधानमन्त्री के साथ ही आप विरोधी दल के नेता को भी सम्मान देती है। हमारे यहाँ सरकारविरोधी नेता के लिए केवल कारागार और फासी के तख्ते हैं। बात में कितना दल है, यह लोकतन्त्र के जीवन की विशेषता पर बल देता है कि स्याद्वाद लोकतन्त्र का अभिन्न अंग है।

जैन धर्म में उदारता

जैन सुदूर प्राचीन काल से जिन तरह त्यागीमध में जाति, लिंग आदि के भेद की अपेक्षा न करके सबको स्थान देते आये हैं, उसी तरह वे मदा अपने धर्मस्थानों में जन्म में जैन नहीं ऐसे व्यक्तियों को समझाकर अथवा परिचय बढ़ाकर तथा अन्य शिष्ट रीति से ले जाने में गौरव मानते हैं। कोई भी विदेशी हो या विधर्मी, और चाहे जिस वर्ग का पुरुष हो या नारी, कोई सत्ताधारी हो या वैभवशाली, चाहे पारसी हो या मुसलमान, कोई सामकहो या ठाकुर या मील या अन्य कोई, पर जो भी मत्ता, सम्पत्ति और विद्या में उच्च नमजा जाता हो उसे अपने धर्मस्थानों में किसी भी प्रकार ले जाने में जैन लोग जैनधर्म की प्रभावना मानते हैं और यदि ऐसा व्यक्ति स्वयं ही जैन स्थानों पर जाने की इच्छा प्रदर्शित करता है तब जैन गृहस्थों और व्यक्तियों की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता, और यह स्थिति अभी तक सामान्य रूप से चली आ रही है। ऐसे समय में कोई त्यागी या गृहस्थ जैन यह नहीं समझता कि मंदिर और उपाश्रय में आने वाला व्यक्ति राम का उपासक है या कृष्ण का, या खुदा अथवा अन्य किसी देवी देवता का। उसके मन में तो केवल यही होता है कि मले ही वह किसी पय का मानने वाला हो, चाहे वह याममशी हो या मद्यपान करने वाला, यदि वह स्वयं या अन्य की प्रेरणा से जैन धर्मस्थानों में एक बार भी आता है तो कुछ न कुछ प्रेरणा और बोध ग्रहण ही करेगा, कुछ न कुछ सीखेगा ही। यह उदारता चाहे ज्ञानमूलक हो या निर्वलतामूलक, पर इसका पोषण और उत्तेजन करना हर तरह से उचित समझा जाता है। यही चारित्र्य श्रमण-संस्कृति की देन है। उदारता लोकतन्त्र का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

अमण-संस्कृति में प्रिरलन

सम्यक् दान सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य यद्यपि हिंदुओं के अभिनयोपेक्षित ज्ञानपात्र और वसमपात्र स हा मिलत जुलत हैं किन्तु प्राश भेद अवश्य है। हिंदु धर्म में ज्ञान वम और सविन म म कोई भी ०५ मास मुनि के लिए यद्येष्ट रामपा जाता है किन्तु धर्म-सद्वृत्ति में साधारण्य के लिए सम्यक् दान सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य—तीनों का आवश्यक माना जाता है।

विरल म पटना स्थान सम्पन्नता का आडा है जिसके लिए यह आधार है कि मनुष्य तीन प्रकार की मूकताएँ और आठ प्रकार के अहंकार का बिल्कुल छाह है। तीन प्रकार की मूकताएँ हैं। एक मूकता दब मूकता और पाछा मूकता। नियाँ म स्नान करने से विषयज्ञाना देवी देवताओं म विवाह और एक सभी अप विवाह धर्म सत्तुति म स्थाप्य हैं। इन विरलता का प्रभाव लक्ष्मण के लिए वास्तव म बहुत महत्त्वपूर्ण है। जो मनुष्य विवाहपूर्ण भाग धरो अर्थात् शास्त्र और सभी मूकताओं से ऊपर उठकर मुक्त मार्गिक बन सकेगा। अर्थात् वास्तव मनुष्य भेद की मानि बना गया है जो कि लक्ष्मण का वही बन अपना आदाम का पुनर्जन्म है। ऐसे व्यवस्था से बाह्य लक्ष्मण के लिए धनरा है क्योंकि तानाशाही के लिए ऐसा मनुष्य बन उपदेशा जाता है।

प्रत्यक्ष जन गन्धर्व का पंचव्रत तत्वे पटल है—जिनका नाम है—अग्निा सत्य अन्त्य ब्रह्मचर्य और अरिषडह। गृहस्था बं विष्णु जा जन परिमिन रक्षय गये हैं अथवा परब ही व्रत धरतय बढागना म लागू किये जाते है बवावि उठें छू की सावधबढाती है। उठें प्राणाण स इन व्रता बं गुण पातन वा प्रयास करनया बाँट। अथन-गम्हनि ब पंचव्रत कोहतामि बं पावन बं गृहस्वगुण और अविच्छिन भग मान जा सनत हैं।

राजतन्त्रं च प्रजातन्त्रं

उपानुवन वन्यतम म समनगराणि च जातवन् न विना तस्यै पर प्रसादाच्छान्तिं यया है। अथ प्राचीन साहित्य
का आधार पर प्रजापत्य के व्यवहार तथा परमा विचारविनिमय करने सुविधसंगत होगा। प्राचीन ग्रंथों में राजा राज्य के
स्थूलत्व का सम्बन्ध निर्माण किया गया है। वेदों में समाप्ति पाया है कि प्रजा रज्जन करता उस समयिगाल बनार प्रसा
करता ही राजा का मन्द बल्लभ था। कश्चित्काल में मा द्रुष्यम स द्रुषु क णि यहा भाव व्यक्त किया है। प्राचीन
भारत के राजा अपने कृत्या का पालन म बाईवान टडा ग रखते थे। लाहल्लास के लिए राम ने अपना प्रिय पत्नी
सीता को भी त्याग दिया था। प्राचात्र साहित्य में जडवदन म पात्र हाता है कि समाज में अराधनता का दूर कर लया
मुच सम्पत्ति एव गात्रिणूण जीवन्त क णि राजा का नियन्त्रण स्वीकार किया। परन्तु राजा निरहुता नहीं बन गयता
था। यह प्रजा का रक्षण करने क णि नियुक्त किया जाता था और उस हस राय क णिए कणि का आम्मीन का
छत्रा है। तथा गोवा व्यापार का आम ती का मन्त्री भाग बना के रूप में लिया जाता था। उग्र धारा बन्ध्य न
निभा पर पञ्चमा दा किया जा सकता था।

दो प्रकार के राजा

[illegible]

यसि वान वल्गायु भा रात्रा म बुवाय का सिद्धांत वाचस्पत्यस्य मतानुजानायाः। अत्रात्र-यसो मी रात्रा रात्रा
मिमेव व वसत वा पश्य म बुवाय व सिद्धांत उ वा वना म्य ज्ञाना है। इय वत्र म मृमिन् व व स्याद पोत्र ज्ञा म मे
मे ज्ञाना म। मनु स्या पोत्रात्रा इत्यस्य मृमिन्ना मी व व नमो व वामा व प्रवर्तिनः इत्येव मय्य म्या वत्र। मे।





वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकांड में पता चलता है कि राम को राजनिलय करने में पूर्व राजा दशरथ को पौरजान-पद की सम्मति लेनी पड़ी थी । राजा दशरथ की मृत्यु के बाद नये राजा के चुनाव के लिए पौरजानपद की बैठक हुई थी ।

इन प्रमाणों में स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में राजा के चुनने का मिद्वान्त भी वर्तमान या और तत्पश्चात् पौरजानपद द्वारा होने लगा । इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि आधुनिक काठ में भाग्य के राष्ट्रपति या अमेरिका के प्रेसिडेंट के समान ही राजा का चुनाव होना था नया उस पद के लिए दो-तीन प्रतिस्पर्धी रहा करते थे, जिनमें से बहुमत प्राप्त करने वाला विजयी कहलाता था । आजकल प्रजातंत्र के नाम पर चन्देवाली राजनैतिक दलबन्दी प्राचीन भारत में नहीं थी । राजा के चुनाव में तो उसका कोई सम्बन्ध नहीं था । माधारगत राजा वशरुमागन ही रहता था । उनके उत्तरदायित्व व कर्तव्यों का स्पष्टीकरण कर दिया जाता था । जो राजा अपने उत्तरदायित्व व कर्तव्यों का पालन नहीं करता था वह नमिति या पौरजानपद के द्वारा राजपद में च्युत किया जाता था तथा अन्य योग्य व्यक्ति राजा बनाया जाता था, जो कि माधारगत राजकुटुम्ब ही होता था । उनके अनिश्चित प्रत्येक राजा को अपने पुत्र का राज्याभिषेक करते समय नमिति, पौरजानपद आदि ने स्वीकृति प्राप्त कर लेनी पड़ती थी । इस प्रकार राजपद का कार्य मुचाग रूप में चलता था ।

स्थानीय शासन

आधुनिक लोकतंत्र के मिद्वान्त में स्थानीय शासन पर अत्यधिक बल दिया गया है । प्राचीन भारत में स्थानीय शासन का प्रारम्भ ग्रामों में होता था । ग्राम के शासन-संचालन में सरकारी व गैर-सरकारी ऐसे दो प्रकार के कर्मचारियों का हाथ रहता था । गांव में पटेल व व्यापारी सरकार की ओर से रहते थे और ग्रामपंचायत जनता की ओर से रहती थी । गदाचित् उन दोनों सरकारी कर्मचारियों को भी पंचायत में रहना पड़ता था । गांव का मुखिया ग्रामीण कहलाता था । मन्त्र-चण, कुलावक जातक, जस्मर जातक, उमेनोभट्टजातक आदि में ग्रामीण का उल्लेख है, जिनके अनुसार वह कर वसूल करता था तथा चोर तथा दुष्चरित्र व्यक्तियों को गिरफ्तार करता था । उसे ग्राम सम्बन्धी देख-रेख करनी पड़ती थी ।

ग्राम-पंचायत

भारत की ग्रामपंचायत मन्था भी बहुत प्राचीन है । अंग्रेजी साम्राज्य के प्रारम्भ में पूर्व तक यह एक जीवित मन्था थी । इस मन्था के ऊपर अंग्रेजी शासनकाल में प्रमाणिक अधिकार समाप्त हो जाने पर भी अग्रिकाग सामाजिक व पारिवारिक झगडों के निबटारे के लिए बराबर पंचायतों का योगदान रहा है । ग्राम के वयोवृद्ध व अनुभवी लोग उसके सदस्य रहते थे । ग्राम सम्बन्धी नव बातें उन्हीं में तय कर ली जाती थी । उनको न्याय करने का अधिकार भी प्राप्त था । श्रमण-माहित्य में जितने ही स्थलों पर ग्रामपंचायत का उल्लेख आता है । ग्राम-नेत्रों में उसके सर्वोपरि कर्मचारियों को ग्रामाधिप, ग्रामणी, ग्रामकूट, ग्रामपति, पट्टलिक आदि कहा गया है । जातक माहित्य में उसे ग्रामभोजक नाम से उल्लिखित किया गया है । उसकी सहायता के लिए दो-तीन सदस्यों की एक छोटी-सी उपमिति रहती थी, जिने बड़ी पंचायत के नामने जवाबदेह होना पड़ता था । अधिकार के स्थान पर माधारणतया वशरुमागन थे । कमी-कमी एक ने अधिक भी उपममितिया रहती थी ।

पंचायत की भावना

प्राचीन जीवन के—सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन के विकास में पंचायतभावना का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान था । इसीलिए प्राचीन भारत का सार्वजनिक जीवन सुखी था । पंचायत की भावना समाज में इतनी प्रबल हो गई थी कि सार्वजनिक जीवन का प्रत्येक पहलू उसा के द्वारा संचालित होता था । हर प्रकार के सार्वजनिक कार्य के संचालन के लिए पंचायती प्रथा थी । आजकल भी इस प्रथा का विगडा हुआ स्वरूप जानि पंचायतों के रूप में

रिखाई देता है। ऊँच से ऊँच और नीचे से नीचे व्यक्ति का सामाजिक जीवन आदि-पंचायती द्वारा ही संचालित होता है।

वर्तमान भारत का संविधान निर्माता भारत भूमि की परम्पराओं में गहरी बटी हुई पंचायत भावना को अवहलना नहीं कर सके फलस्वरूप संविधान में पंचायती का मकल की व्यवस्था हो गई और आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण सान्तरण की इकाई का पुनर्गठन किया गया।

सागरिक जीवन

समाज के आर्थिक जीवन का संचालन अभी पूरा निगम आदि संस्थाओं द्वारा होता था। इसमें भिन्न भिन्न 'यागार' व उपाय प्रथा को करने वाला क संगठित जीवन था पता लगता है। ये संस्थाएँ बहुत प्राचीन थी। बौद्ध साहित्य रामायण स्मृतियों से उनके अस्तित्व का पता लगता है। इन्हें बहुत से अधिकार भी प्राप्त थे। इस सम्बन्ध में मनु याज्ञवल्क्य बभ्रुस्पति आदि स्मृतियों से तथा मार्क्स जुनार आदि के प्राचीन गिला-लेखों से बहुत कुछ मालूम होता है। ये संस्थाएँ न केवल आर्थिक जीवन को संगठित करती थीं अपितु राजनैतिक दृष्टि से स्वतन्त्रता का कातावरण निमित्त करके समाज की संस्कृति का भाग में भी अग्रसर करती थीं। इन सब संस्थाओं के अपने-आपमें ही होते थे जिनमें साधारणतः जमीन जायदाद आदि का दोबानी संपद रूप होते थे। बड़े-बड़े मालाओं के बाद में दोबानी पर ही अपना अधिकार जमाना शुरू कर लिया फलतः अभी पूरा सामंजस्य आदि के अधिकारों में कुछ कदा अवसर आती जाती गईं।

बौद्ध साहित्य में सध

बौद्ध साहित्य में सधों का उल्लेख है यहाँ उल्लेख किया गया है। अवलोकित (२१०६) में वचन आता है कि मध्यप्रदेश से कुछ बौद्ध दक्षिण में गये और वहाँ के राजा से मिले। राजा ने उनसे पूछा कि तुम्हारे यहाँ शासन क्या होता है? इसपर उन्होंने कहा कि हे देव! कुछ देग गणायीन है व कुछ राजायीन है। चातुय बौलिय निगुबो विदेह मल्ल मेरिय बुलिय जग आदि सधों का भी बौद्ध साहित्य में उल्लेख है। इन सधों की एक सभा रहती थी जिसकी सभा एक बड़े भवन में होती थी। इस भवन की सभागार कहते थे। इसी में राजा का चुनाव होता था। उसने हाथ में सब शासनसूत्र रहते थे। वह राजा उन सधों का प्रधान रहता था जिसका चुनाव कर्माचिन् प्रतिवप हुआ करता था। राजा का पदवी मात्र का सूचक था। बौद्ध साहित्य में सधों का अर्थ समन्वयिता का भी उल्लेख आया है जग उपराजा सनापति भाषागारिक प्राणि। इन सधों की सभा का मूलरूप निम्नवत् पुस्तक रूप में सुरक्षित रखे जाते थे। 'याग' का कार्य करने का लिए विनिर्वाचन यथाभावे बौद्धिक मूलधार अष्टकुल आदि 'यागधी' थे।

उपयुक्त वचन से मिलता है कि धम्म-संस्कृति और साहित्य में लोकतान्त्रिक सिद्धांत की मही प्रसार गीचा है। संस्कृति के नैतिक सिद्धान्त सारतन्त्र की नींव का मुद्रण करते हुए दिखाई देते हैं तथा प्राचीन भारत में लोकतन्त्र की गामनप्रणाली को पर्याप्त माना जा विकसित होने लगा है। जनसाधारण में पर्याप्त राजनीतिक विचारों की जाग्रति का प्रमाण धम्म-साहित्य में पूरी तरह से उल्लेख है। जो राजनीतिक सिद्धांत आधुनिक समय में आते हैं तथा जिन पर यूनान इंग्लैंड फ्रांस और अमेरिका की छाप लगी हुई है जिनके प्रवर्तन होमर 'नीच' रमा इत्यादि माने जाते हैं वे सब प्राचीन भारत को पाठ्य थे। राजा का निर्वाचन सामाजिक व पौरजनिक संविधान रूप गामन आदि के बारे में जो कुछ भी प्राचीन साहित्य उल्लेख है उससे भारत में विकसित लोकतन्त्र का समसामयिक आदर्श प्रमाण विचार होता जान होता है।



संदर्भ ग्रन्थ—

- १ भारतीय सस्कृति—लेखक श्री गौरीशंकर भट्ट ।
- २ सस्कृति के चार अध्याय—श्री दिनकर ।
- ३ भारतीय सस्कृति का इतिहास—श्रीशचन्द्र भास्कराज ।
- ४ भारतीय सस्कृति—शिवदत्त ज्ञानी ।
- ५ भारत का सांस्कृतिक इतिहास—हरिदत्त वेदालाकार ।
- ६ रामायण—वाल्मीकि—कृत, अयोध्याकाण्ड ।
- ७ महाभारत (अंग्रेजी)—श्री राजगोपाध्याय ।
- ८ कार्पोरेट लाउक इन एशियन इण्डिया—डा० रमेशचन्द्र मजूमदार ।
- ९ ए हिन्दू आफ इण्डियन पोलिटिकल जाउटियाज—डा० वृ० एन० घोषाणे ।
- १० हिन्दु पोलिटी—डा० जायसवान ।
- ११ भारतीय सस्यता तथा सस्कृति का विकास—बी० एच० लूनिगा ।
- १२ माउन डेमोक्रेसीज—गार्ट ब्राउन ।
- १३ महावीर जयन्ती स्मारिका—वापिक (१९६४) नयपुर ।
- १४ सुधर्मा—मासिक विभिन्न अंक ।
- १५ ज्ञानोदय—विभिन्न अंक ।
- १६ ग्रामर आफ पोलिटिक्स (अंग्रेजी)—नाम्की ।
- १७ पोलिटिकल साइन्स (अंग्रेजी)—गेट्टे ।
- १८ राजनीति सार (हिन्दी)—अप्पादुर्गई ।
- १९ रघुवम (हिन्दी अनुवाद)—कालिदास ।
२०. मोडर्न इण्डियन पोलिटिकल थॉट—डा० बी० पी० ब्रमा ।
- २१ अमणोपासक—विभिन्न अंक ।



भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की एक कड़ी • श्रमणसंस्कृति

वैद्यरत्न प० सुन्दरलाल जैन
तिलक कामेसी इटारसी

भारतवर्ष में अनेक संस्कृतियाँ प्रचलित हैं निन्तु विविधता हाते हुए भी उनमें भारतीयत्व की गहरी छाप है। अतः भारतीयता के नाते समस्त संस्कृतियाँ एक हैं। भारतीय संस्कृति का जन्म का उद्धारण करने से भारत की समस्त संस्कृतियाँ उत्तम अन्तर्भूत हो जाती हैं। फिर भी प्रत्येक संस्कृति का अपना ध्येय-मूक अस्तित्व एवं महत्त्व है। भारत वर्ष में प्रचलित समस्त संस्कृतियाँ का स्वतन्त्र-विकास साक्ष्य के दा रूप से दिया जा सकता है—सामाजिक एवं धार्मिक। संस्कृति का सामाजिक रूप वह है जो विविध कलाओं विधान अनुष्ठान एवं आचरणों से निर्धारित परिपुष्ट एवं समृद्ध होता रहता है। इससे ही न संस्कृति का धार्मिक स्वरूप तोर-याग की भावना से परिपूर्ण एवं लोकोत्तर सुखापन के साधन होना है। संस्कृति का सामाजिक पक्ष का सकारण है—श्रमण संस्कृति जिसमें अद्वैतिक भौतिक व क्षणिक सुख के लिये न कोई स्थान है और न कोई मायता। श्रमण संस्कृति नियति प्रधान है निन्तु उसका उद्देश्य प्रवृत्ति मात्र की नियन्त्रण करना नहीं। संस्कृति में वही प्रवृत्ति है जो आसक्ति व विना कभी सम्भव हो नहीं। यथा कामवासना व्यक्तित्व परिग्रह लाभ मोह आदि। इस प्रकार व वामाचार आदि अनतिक्रम्य समान में दूषित आचारधर्म की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं और समाज व प्रवृत्ति स्वरूप का बिह्वल कर देते हैं। अतः एतत्स्थिति सुपथ से बचने के लिए यह संस्कृति मानवता की रक्षा और अस्वार्थ के लिये निर्धारित प्रवृत्ति एवं धर्मपर रहती है। श्रमण-संस्कृति का क्षेत्र सर्व व्यापक रहा है। रक्षित मानवताओं एवं परम्पराओं का इसमें जगमान भी स्थान नहीं है। प्राणिमात्र की आत्मरक्षा अभिमुख प्रवृत्ति ही हमका मुख्य उद्देश्य रहा है।

आत्मरक्षा में सबही ठोस सिद्धान्तों का न केवल प्रमाणित अपितु उच्च विद्यात्मक स्वरूप प्रदान करना ही श्रमण-संस्कृति की मूल परम्परा रही है ताकि उच्च जीवन में उत्तारक आत्मरक्षा का साधन बनाया जा सके।

आध्यात्मिक एवं आत्मवर्णी होने के कारण श्रमण-संस्कृति ने भारतीय जन जात को अमूर्त देन दी है। निन्दित परक उद्देश्य व लिये तथा इस परिवर्तनशील समार से आत्मा की मुक्ति के लिये जितना उच्च श्रमण-संस्कृति ने दिया उतना अन्य किसी संस्कृति में नहीं दिया। श्रमण के लिये आत्म-मुक्ति प्रधान लक्ष्य है अन्य काय गौण हैं। अतः श्रमण संस्कृति में आत्मतत्त्व एवं माधनतत्त्व सर्व मुख्य विचारणीय विषय रहे हैं। वस्तुतः ये दोनों ही तत्त्व एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। मा १ की सिद्धि आत्मतत्त्व के अस्तित्व में है। आत्मा का मुख्य अर्थ—मोक्षप्राप्ति। तत्त्व आत्मा का माणाभिमुख प्रवृत्ति बनना आवश्यक है। अतः इसके लिये आरम्भ से ही दो धर्मियाँ चली आ रही हैं—कर्म का परिष्कार कर मोक्ष प्राप्ति और सरल कर्म-वस्तु आत्मसुद्धिपूर्वक मोक्ष प्राप्ति। ये दोनों ही श्रमणों में प्रवृत्ति एवं प्रवृत्तिभूत है। दोनों का उद्देश्य एक ही है—निष्कर्म बन जाना। अतः है केवल अनुष्ठान या प्रवृत्ति में। प्रथम अनुष्ठान है कर्म का पूर्णतः परित्याग और द्वितीय अनुष्ठान है वामाचनपूर्वक उसका क्षय। वामपरित्याग (संयाम) अनुष्ठान नव्याभिमुख दुर्तगामी है और वाम-योग लक्ष्याभिमुख मानवतिपूर्वक होता है।

जब धर्म और श्रमण संस्कृति व सम्बन्ध का जहाँ तक प्रश्न है वह निम्न है। दो वस्तुओं का पारस्परिक सम्बन्ध केवल वही होता है जहाँ दोनों वस्तुएं मिलें हैं। यहाँ श्रमण-संस्कृति जब धर्म से कोई भिन्न वस्तु नहीं है



अपितु उसका ही विशेष अंग है। श्रमण-मस्कृति को जैन धर्म में पृथक् नहीं किया जा सकता, जैन धर्म के कारण ही उसे इतना महत्त्व एवं गौरव प्राप्त है।

श्रमण-धर्म किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र-विशेष की सम्पत्ति नहीं है। प्राणिमात्र उनके नैदान्तिक एवं नित्रात्मक पक्ष की समाराधना का अधिकारी है। आत्म-साधन ही श्रमण-धर्म का मूलोद्देश्य है, जिसके लिये प्रवृत्ति के अमत् अंग का त्याग और मत् अंग के साधन का अवलम्बन जैना तथा धमना व वैराग्य-वृत्ति के अनुरूप निवृत्ति की ओर अग्रसर रहना चाहिये।^१ अभिप्राय यह है कि प्रवृत्ति की भी निवृत्ति में ही आत्यन्तिक परिणति कर अन्त में मोक्षाभिमुख होना श्रमणधर्म का प्रमुख लक्ष्य है। इस प्रकार श्रमणधर्म मूलरूपेण निवृत्तिपरक ही सिद्ध होता है। यह निवृत्तिक धर्म व्यक्तिगामी है और वह आत्म-साक्षात्कार की उत्कृष्ट वृत्ति में नै उत्पन्न होने के कारण मुमुक्षु एवं जिज्ञासु को आत्मतत्त्व के चिन्तन के लिये अनेक जिज्ञासाओं से परिपूर्ण बना देता है। आत्मतत्त्व के विषय में एतद्विषय जिज्ञासाएँ एकान्तचिन्तन, ध्यान, तप और अमगनापूर्ण, नित्यमय जीवन के अभाव में समाधान-योग्य नहीं हैं।

एतद्विषय वास्तविकतापूर्ण, नित्यमय जीवन विधिष्ठ व्यक्तियों के लिये ही सम्भावित है। उन व्यक्तियों के लिये भौतिक सुख नगण्य एवं तुच्छ प्रतीत होते हैं, सामान्य आकर्षण उन्हें सत्तार में बाँधने में असमर्थ रहते हैं और वे गृहस्थश्रम के बन्धन में मुक्त रहते हैं। श्रमणधर्म के अनुगार मुमुक्षु व्यक्तियों के लिये मुख्य वर्तक्य एका ही रहता है और वह है—आत्मसाक्षात्कार-हेतु आत्मशुद्धि एवं धर्मनिर्जरा में प्रतिगन्ध या साव्य उत्पन्न करने वाली इच्छाओं के समूल विनाश के लिये सतत प्रयत्नशील रहकर लक्ष्य की प्राप्ति करना।^२

जैसा कि उपर्युक्त प्रकरण में स्पष्ट किया जा चुका है, श्रमण-मस्कृति ने आत्मा और मोक्ष उन दो तत्त्वों के विषय में मुख्य दृष्टिकोण अपनाया है। यही कारण है कि वह नर्दव आत्मदर्शी रहती है। शरीर के भरण-पोषण एवं रक्षण की उपेक्षा यद्यपि सम्भव नहीं है, किन्तु उनका दृष्टिकोण मात्र देहलक्ष्यी नहीं रहा है। वस्तुतः देखा जाय तो आत्म-साधन के समक्ष शरीर-साधन अत्यन्त निकृष्ट एवं महत्त्वहीन है। जैन धर्म ने सदैव ऐसी सिद्धांतों का प्रतिपादन एवं पोषण किया है जो आत्मा को ऊँचा उठाने में सहायक है। आत्मतत्त्व, मोक्षतत्त्व एव उनसे सम्बन्धित अन्यविषयों में जैन दर्शन का जितना व्यापक दृष्टिकोण रहा है, उतना किसी भी अन्य धर्म या दर्शन का नहीं है।

श्रमण का श्रामण्य भी उन्हीं में निहित है कि वह प्रथम आत्मदर्शी बने।^३ इसके अभाव में उनका श्रमणधर्म ही खण्डित हो जाता है। एक व्यक्ति जब तक श्रमणधर्म के मूल तत्त्वों को अपने जीवन में पूर्णरूपेण नहीं उतार नेता तब तक न तो उसमें श्रामण्य ही रहेगा और न वह श्रमण कहलाने का अधिकारी है।^४

“श्रमणस्य भाव श्रामण्यम्” नमर के प्रति मोह या ममत्वभाव का त्याग अथवा सत्तार में पूर्णतः नश्यन ग्रहण करना ही श्रामण्य कहलाता है। एतद्विषय श्रामण्य से युक्त व्यक्ति ही श्रमण कहलाता है। श्रमण पचमहाव्रतों का पालक एवं सात्त्विक वृत्तियों का परित्याग करने वाला होता है। वह निष्कर्म भाव की साधना से पूर्ण एवं एकाग्रचित्तेन आत्म-साधना (चिन्तन) में लीन होता है। आडम्बरपूर्ण व्यावहारिकता के लिये उसके जीवन में कोई स्थान नहीं रहता। बाह्य जगत् उसके लिये अधकाराच्छन्न हो जाता है। किन्तु उसका अतस्तल आत्म-ज्योतिषुज से ज्योतिमान रहता है, जिससे वह सत्तार के समस्त भावों को अविच्छिन्न रूप से देख सकता है। केवलज्ञान उसकी समस्त सीमाओं को तोड़कर उसे त्रिकालदर्शी बना देता है। यही उसके श्रामण्य की चरम सीमा है। तदनन्तर उसकी अभीष्ट-प्राप्ति के लिए कोई व्यवधान की समुपस्थिति सम्भाव्य नहीं।

१. असुहादो विणिबित्ती सुहे पविस्ती य जाण चारित्त—आचार्य नेमिचन्द्र।

२. कामे कमाहो कमिय खु दुक्ख—दशवकालिकसूत्र।

३. पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिनिगिज्ज, एव दुक्खा पमोक्खति—आचारागसूत्र।

४. गुणेहि साह् अगुणेहिस्साह्, गिण्हाहि साह्गुण मुचस्साह्।

अमण की जीवन में समय एक तपश्चरण का अधिक महत्त्व है।^१ समयमग्न जीवन उसे सामारिक वस्तुता की ओर अभिमुख हान से रोकता है और तपश्चरण उसकी कमनित्रता में सहायक आता है। समय का अभाव में व तपश्चरण की ओर अभिमुख नहीं हो सकता और तपश्चरण के बिना कमवचन में उमगी मुक्ति अमममाविन है। ऐसी स्थिति में उमता मागम्राणि देनु आरम साधना का ध्यय अपुण ही रह जाता है। अब यह मुनिश्चिन है कि समयम तपश्चरण का पूरक है। आनिराधम्यन तपकी इस परिभाषा में यह तथ्य स्वत ही उद्गासित आ जाता है कि समय और तप परम्पर-सम्बद्ध है। इन्द्राया का निरोध करना ही समय है और तस्मात्तध्मन विहित विवाविाप ही तपश्चरण है। गमार में समस्त इन्द्राए-वामाएँ इन्द्रमन्नित हाती हैं। ये इन्द्राएँ तप वामनाएँ भौतिक व सामागिक क्षणिक मुग्धा की प्राप्ति के लिये अभिन्धवन हाती हैं। इन इन्द्रायाएँ वामनाया का रोककर मसार व प्रति विमुक्ता इन्द्रिया की अपन आधीन करना एक चितवति की एवाग्रता ही समय है।^२ एतद्विषय समय का चरम विकास मुनिस्वयान में सम्भावित है। धमण-परम्परा व अनुगार आर्पाक दृष्टि से यद्यपि गृहस्थ का निम्न एवं अमण का उच्च स्थान प्राप्त है किन्तु साधना व क्षेत्र में निम्नाच्च का वचन को प्रथम नहीं दिया गया है। वही समय की ही प्रधानता है। इन विषय में उत्तराध्मयन में भगवान् महावार के वचन स्पष्ट हैं—वर्ग्युत्तमागी भिन्नुआ की अपना कुछ गृहस्थ का समय और उनको अगेना साधनागीन समयी मुनिषा का समय प्रधान है।^३ अमण-परम्परा वारे वचनपरिवर्तन का महत्त्व नहीं होती है। जिनन भाग ता इन्द्राया आरावित नहीं छोड़ी व न भोगी है न त्यागी है। भागी मन्त्रिय नहा है कि भाग नहीं भागना त्यागी इसन्धिये नहीं कि वह आरविन का त्याग नहीं कर मचा। पराधीन हाकर भोग-त्याग करने वाला व्यक्ति त्यागी मा धमण नहीं है। त्यागी या अमण वह है जो स्वाधीन भावनापूर्वक भाग में दूर रहता है।^४

अनेन विगिन्द्यचरण एक स्वाध्यायनाम के कारण अमण सदव गृहस्थ वर अपना उच्च माना गया है। अनि चारदहति ब्राह्म का पात्र ही उमता वगिण्ड्य है। मनसा वाचा कर्मणा पाँच महाव्रत का पात्र ही उमकी आरमा की युद्धि एवं निमचना का परिचायक होता है जिसगे आरमा सामारिक कमवचन में रहित हाकर निरन्तर मुक्ति की आर अग्रसर हाती है। यही आरमण है एक अमण संस्कृति का मूल है। जन धम का अनिरिक्त मन्त्री अवन्धि नहीं है। अतः अय संस्कृति का इन संस्कृति का स्वनाम अस्तिरक एक महत्त्व है। जन धम का अपन मूलमूल निद्राता एवं संस्कृतिपर विवेकताओं व कारण ही अमण संस्कृति का भारतीय संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान बनाने में समय हुआ सका है।

॥

१ यम्मी मगतमुचिदठ अहिमा सज्जो तयो—अणववातिन।

२ आत च द्दवं च विणिच्च धीरे—आचारगम्युत्त।

३ तति एगेहि भिरभूहि गारत्या सज्जमुत्तर।

४ अयमपगतवार इयोमी समयणि य।

अण्वरा मे म भुजति न ते चादित बुक्कड।

मे य कते निए भोए सज्ज वि विगिदुक्कड।

साहीमे अयद भोगे ते द्द चादित बुक्कड।।



प्राग् ऐतिहासिक भारतीय संस्कृति और वैदिक संस्कृति का समन्वय

रिषभदास रॉका



भारतीय प्राचीन मस्कृति अत्यन्त गौरवमयी और उन्नत होने हुए भी उसका मन्थन पन्थिय पाने में उत्तम कठिनाट्या है । भारत में व्यवस्थित इतिहास लिखने की प्राचीन काल में प्रथा नहीं थी । प्रारम्भ में तो लिखने का विचार ही नहीं था इनलिये प्राचीनकाल में माहित्य पाठान्तर के रूप में पाया जाता है । यह प्राचीन माहित्य जा वेद के रूप में मिलता है उसका निर्माण भी बहुत बाद में हुआ था और लेखन उसमें भी बहुत बाद में ।

प्रारम्भ में तो ऋचाएँ ऋषि-मुनि अपने गिणों को मुखाद्गत करके थे और उनका पठन होता था । उनलिये प्रारम्भ में भारतीय मस्कृति को अन्य प्राचीन मस्कृतियों में प्राचीन समझा जाता था । उनमें यह भी कारण रहा हो कि प्राचीन इतिहास की खोज का काम प्रारम्भ में अधिकतर विदेशियों ने ही किया था, जिनकी भावनाओं के प्रति उपेक्षा थी । वे प्राचीन भारतीयों की मस्कृति का प्रारम्भ वेदकाल के बाद में मानने थे क्योंकि प्राचीन माहित्य में वेद की गणना में इन्कार नहीं किया जा सकता था । पर कुछ वर्ष पहले प्रायः सभी इतिहासज्ञ भारतीय मस्कृति का प्रारम्भ आर्यों के आगमन के बाद और वेदों के निर्माण के बाद ही मानने थे । पर मोहनजोदड़ो, हटप्पा तथा अन्य स्थानों की खुदाई ने इतिहासज्ञों को पुनर्विचार करने को बाध्य किया और अब यह माना जाने लगा है कि आर्यों के आगमन के पहले भारत में विकसित और सुमस्कृत लोग बसने थे ।

वेदपूर्व भारतीय मस्कृति

आर्यों के भारत में आगमन के पहले जो मस्कृति थी उसकी खोज होने लगी है और अनेक विद्वान् इस बात को मानने लगे हैं कि वह श्रमण या ब्राह्मण मस्कृति होनी चाहिये जो यज्ञपरायण वैदिक मस्कृति में भिन्न थी । डा० रामवार्गमिह दिनकर ने 'मस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है कि "यह मानना युक्ति-युक्त है कि श्रमणमन्था भारत में आर्यों के आगमन में पूर्व विद्यमान थी और ब्राह्मण इन मन्था को ही नमस्ते थे । यह श्रमण-ब्राह्मण मर्षण बौद्धों के पूर्व भी था । ज्योतिषाणिनि ने, जिनका समय ईसा में मान सौ वर्ष पूर्व माना जाता है श्रमण-ब्राह्मण मर्षण का उल्लेख 'जाग्वत्तिक विरोध' के उदाहरण के रूप में किया है । वे आगे चलकर लिखते हैं,— 'पौराणिक हिन्दु-धर्म निगम और आगम दोनों पर आधारित माना जाता है । निगम वैदिकप्रधान आगम है । प्राग्वैदिक काल में आनी हुई वैदिकेतर धार्मिक परम्परा का वाचक है । 'जैनियों के प्रमुख धार्मिक ग्रन्थों का आज भी आगम नाम में ही उल्लेख किया जाता है । बौद्ध धर्म की स्थापना भगवान् बुद्ध ने की, जिनका काल आज में पच्चीस सौ वर्ष पूर्व माना जाता है । इनलििये बौद्धों के पहले भारत में श्रमणमस्कृति थी और उसके जैन होने की सम्भावना ही अधिक है । बौद्धधर्म के २५० वर्ष पहले जैनियों के तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए थे । उनका तथा उससे भी प्राचीन काल में जिनका उल्लेख मिलता है, वे अरिष्टनेमि तथा ऋषभदेव जैनियों के उपास्य देव तीर्थंकर थे । इसलिये अधिक गम्भव यही लगता है कि प्राग् ऐतिहासिक काल में यहाँ जो श्रमण-मस्कृति हो वह जैन मस्कृति में मिलती-जुलती या जैन-मस्कृति ही रही हो । जो जैनियों की अनुश्रुतियों में भी

संकेत मिलता है कि उनका धर्म अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। उत्खनन में मिली वस्तुओं का अतिरिक्त मानव वंशाणुस भाषा धार्मिक विचार साहित्य और उपास्य देव आदि सामानों का भी ग्राहक। ने उपयोग किया जिसमें गोधनता इस निम्न पर पत्र भये हैं कि धार्मिक संस्कृति के ध्वज धर्म जो आर्य और आर्यानीय ज्ञानी धर्म उनके धार्मिक रीति रिवाज और विचार सुसंस्कृत थे और उनका रचना-सूत्र और बताव सम्पूर्ण था। आर्यता की भाँति देव सम्पत्ति था। उनके मकान सभी सुव्यवस्थाओं से युक्त थे। श्रुतिनिर्माण तथा व्यापक कला में उनकी जल्दी प्रगति थी।

प्रागैतिक और धार्मिक संस्कृति में

अब हम यह देखना होगा कि इस समय की धार्मिक संस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति में किन-किन बातों में भेद था? वेना में जिस यज्ञप्रधान संस्कृति के रूप में होते हैं उसमें वेना और ब्रह्म की सर्वोच्च धोषित करती है और ब्रह्मशास्त्र के नियम यज्ञकर्म को परम पुण्यार्थ निर्धारित करती है। यज्ञप्रधान धार्मिक संस्कृति का बर्णन तथा उसके पूर्व की विशेषता बताई है। दास्य और दास्य लोग आहुत संस्कृति का माननेवाले थे। वे ईश्वर का सन्निवर्तन मानते थे। उनका विश्वास था कि सन्निवर्तन प्राकृतिक नियमों से बंधी हुई है। प्राकृति के नियमों के ज्ञान से मनुष्य अपने सत्कार की रचना कर सकता है। मानव की गति ही सबसे बड़ी गति है और वह समस्त गतिधर्म में प्रकट कहा जाता है। श्री देवदत्त शास्त्री ने चिन्तन के नये चरण में लिखा है कि साध्या ने सरस्वती और सिंधु ने समय पर विज्ञान भवन स्थापित कर धूम का निर्माण किया था। विना भवन में बैठकर समस्त ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार किया था। डा० बेन्टलर ने लिखा है कि आहुत का क्रम में विश्वास होने से ईश्वर का सन्निवर्तन नहीं मानने का कारण था। वे आहुत मुख्य रूप से दास्य थे। राजनीति के साथ साथ धार्मिक कामों में भी उनकी रुचि थी। समय आने पर वे धार्मिक बाध विना। म की भाग लेते थे। वे अन्त में उपासक थे। उनके देव स्थान द्वयक थे और पूजा अवधि थी। आहुत परम्परा की पुष्टि श्रीमद्भागवत बुद्धपरमाणु विष्णुपराण स्कन्दपुराण और निवपराण आदि पौराणिक ग्रंथों से होती है। हमें ज्ञान धर्म की उत्पत्ति व विषय में भी अनेक आख्यान उपलब्ध हैं। यद्यपि वे आहुत धर्म जिस परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है वही वेना उपनिषद् जनागम महाभारत और पुराण साहित्य में कुछ परिवर्तन के साथ स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। तीर्थकर पाश्चात्य धर्म समय तक ज्ञान धर्म के निष्कर्ष में ही प्रकटित था।

यस जनशास्त्र में भी ऐसा उल्लेख मिलता है कि धर्म का हरेक तीर्थकर के तीर्थ में वेना बाल परिस्थिति व अनुरूप परिवर्तन पाया जाता है। जहाँ कि तीर्थकर पाश्चात्य धर्म के समय के चार मान माना धर्म था। उसे भगवान महावीर ने पंचवर्ग में विकसित किया। मूलरूप में अहम-संस्कृति अहिंसा समता प्रधान तथा धर्म प्रधान थी जब कि आय भौतिक सुखों को प्राप्त कर वर्तमान जीवन का सुख बनाने वाले प्रवृत्तिमूलक विचारों के तथा वेना के उपासक थे। उनपर निर्जितपरायण और अहिंसक संस्कृति का प्रभाव पड़ा और श्रमण संस्कृति में भी धार्मिक संस्कृति में कई बातें प्रकट कीं। यना में पशु हिंसा व हाकर दोना संस्कृतियों का समय हुआ। वेना हम उपनिषद तथा महाभारत काल में देखने को मिलता है। मध्य संस्कृति धर्म में भी मानती थी और वेना व्याख्यात्मकता प्रधान थी।

आहुतों के उपास्य ऋषयों का आर्यो ने अपने यहाँ पूज्य पुरुषों में स्थान दिया। वेना में उसका उल्लेख मिलता है पर जब दोना संस्कृतियों का समय हुआ तब तो उन्होंने ब्राह्मणों के २४ अवतारों में स्थान पा लिया। ऋषयों धर्मों का संस्कृत ब्राह्मणों में भी पूज्य और आदरणीय बने। यज्ञ ऋषयों के आगमन के वन पर्वण्त हुए हा एता लगता है। क्योंकि साहजिक ही वेना नायकता मुक्त म जो ध्यानप्रणियों मिली हैं उनमें वेना का चिह्न पाया जाता है। ऋषयों के संस्कृत धर्म का प्रतीक चिह्न भी वेना ही है। दोना ही साधना में योग का प्राधान्य देनेवाले थे। स्त्रीधर्म के अभाव में दोनों की तुलना कर उन्हें एक बनाने का प्रयत्न किया है। वेना एक ही था या भिन्न पर निश्चित प्रधान और योग का प्राधान्य देनेवाला थे। अद्यावत् साध्यों मध्य पर्वण्त की माननेवाले तथा पशुधर्म के विरोधक थे। डा० मध्यम शास्त्री ने भारतीय संस्कृति की दोना विचारधारा का धर्म बताया है। वेना है—





“भारतीय समाज में एक दृष्टि तो कर्म और मन्त्रों को लेकर है, दूसरी प्रवृत्ति और निवृत्ति को मध्य लेकर है और तीसरी स्वर्ग और नरक की कल्पनाओं को लेकर। अत्यन्त प्राचीन काल में भारत की मानसिकता दो धाराओं में विभक्त रही है। एक धारा कहती है कि जीवन मृत्यु है और हमारा कर्तव्य है कि हम बाधाओं पर विजय प्राप्त करके जीवन में जयदान करें एवं मानव-वस्तुओं का उपकार करने हुए यज्ञादि में देवताओं को भी प्रसन्न करें, जिससे हम उस और उस, दोनों लोकों में सुख और आनन्द प्राप्त कर सकें। किन्तु दूसरी धारा की गिजा यह है कि जीवन नाशवान् है। हम जो भी करें किन्तु, हमें रोग और शोक में छुटकारा नहीं मिल सकता, न मृत्यु में हम भाग सकते हैं। हमारे आनन्द की स्थिति वह थी, जब हमने जन्म लिया था। जन्म के कारण ही वासनाओं की जड़ों में पड़े हैं। अतएव, हमारा श्रेष्ठ धर्म यह है कि हम उन सुखों को पीठ दे दें जो हमें यत्नात्मक समाज में बाँये हैं। उन धारा के अनुसार मनुष्य को पञ्च-वाग छोड़कर मन्त्रों में लेना चाहिये — और देह-दहनपूर्वक वह मार्ग पकड़ना चाहिये जिसमें आवागमन छूट जाय।

अनुमान यह है कि कर्म और मन्त्रों में से कर्म तथा प्रवृत्ति और निवृत्ति में से प्रवृत्ति के सिद्धान्त, प्रसुप्त रूप में वैदिक हैं तथा मन्त्रों और निवृत्ति के सिद्धान्त अधिकांश में प्राग्वैदिक मान्यताओं में पृष्ठ हुए होंगे। किन्तु भारतीय अध्यात्मज्ञान और दर्शन पर जितना प्रभाव मन्त्रों और निवृत्ति का है, उतना प्रभाव कर्म और प्रवृत्ति के सिद्धान्तों का नहीं है। इनमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। आर्य के आचार पर यह मानता बुद्धिमान है कि आर्य पराक्रमी मनुष्य थे। पराक्रमी मनुष्य मन्त्रों की अपेक्षा कर्म को अधिक महत्त्व देता है, दुश्मनों में भाग नष्ट होने के बदले वह डटकर उनका सामना करता है। आर्यों का यह स्वभाव नई दशाओं में बिलकुल अक्षुण्ण रह गया है। विरोधों और संशयों में उनकी पराक्रमशीलता पर अधिक जाँच नहीं आई। किन्तु नई देशों की स्थानीय मन्त्रों और परिस्थितियों ने आर्यों के भीतर पन्नी जान दी एवं उनके मन को निवृत्ति-प्रेमी बना दिया। भारत की प्राग्वैदिक मन्त्रों ने आर्यों की वैदिक मन्त्रों के चारों ओर अपना विशाल जाल फैला दिया, उसे देखते हुए यह सूक्ति काफी मनोनील लगती है कि “भारतीय मन्त्रों के बीच वैदिक मन्त्रों में समुद्र में टापू के समान है।”

वैदिकों की प्रार्थनाओं में भी यह बात स्पष्ट होती है। वे मानते थे कि “मारी मृष्टि किसी एक ही प्रच्छन्न शक्ति में चालित और ठहरी हुई है। उस शक्ति की आराधना कर मनुष्य जो भी चाहे प्राप्त कर सकता है। उनकी प्रार्थनाएँ लम्बी वायु, स्वस्थ शरीर, विजय, आनन्द और समृद्धि के निशानों की जगती थी। कुछ हम यहाँ देते हैं।

हम भी वर्ष तक जियें।

हम भी वर्ष तक अपने ज्ञान को बढ़ाते रहें।

हम भी वर्ष तक पुष्टि और दृढ़ता को प्राप्त करें।

हम भी वर्ष तक आनन्दमय जीवन व्यतीत करें।

हम भी वर्ष तक अशोक होकर रहें।

जो स्वयं उद्योग करता है, इन्द्र उसकी सहायता करते हैं।

जो श्रम नहीं करता है, देवता उसके माय मित्रता नहीं करते।

भगवन् ! जीवन-यात्रा में हमें समुन्नत कीजिये।

हम सदा प्रमत्तचित्त रहते हुए उदीयमान सूर्य को देखें।

ओं मेरे आराध्य देव !

आप तेजस्वरूप हैं, मुझ में तेज को धारण कीजिये।

आप दीर्घरूप हैं, मुझे दीर्घवान् कीजिये।

आप वनरूप हैं, मुझे वनवान् बनाइये।

आप ओजस्वरूप हैं, मुझे ओजस्वी बनाइये।



ऋषभ शब्द की तरह ऋग्वेद में वातरचना शब्द का भी उल्लेख आता है और दोनों का मन्त्र भी है।

मुनयो वातरचनाः पिशागा वसन्ते मना ॥
वातस्यानु ध्राजि यन्ति यहेवानो अरिश्मन् ॥
जन्मदिना मौनयेन वाता आतिग्निम वयम् ॥
शरीरे दम्भाक मर्ता मो अभि पश्य ॥

वेदों की गाथाओं के विषय में विद्वानों के अनेक प्रयत्न करने पर भी निम्नदेह अर्थात् धैर्यवाना मन्त्र नहीं पाया है न राशि मायण-भाष्य की महायन्त्रा ने उन ऋचा का उ० हीराज्ञान जैन ने यह अर्थ दिया है — 'ज्योतिषाग्निर्दग्धो वातरचना मुनि मन धारण करने हैं, जिसमें पिशाचों दिवागी देते हैं। जब वे वायु की गति से प्राणोपामना द्वारा धारण कर लेते हैं, अर्थात् गेह लेते हैं तब वे अपने तन की महिमा में देखीयमान होकर देवता-स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। मावर्गीकन व्यसहार जो जोगर हम मौनरुनि न उपातम् उच्छ्रित आनन्द महिन् वायु भाव जो — जगरीगी ध्यान वृत्ति को प्राप्त हो जाते हैं। और तुम माधारण मनुष्य हमारे वाता शरीर मात्र से देव पाने हा। हमारे मन्त्रे आन्यतर न्यन्त्र को नहीं।' ऐसा वातरचना मुनि प्रवृत्त करने हैं। वेद की उक्त ऋचाओं के माय ज्योति' की मृत्ति की गयी है।

देश्यग्नि देशी त्रिष देशी विभक्ति रोदनी ।
देशी विषय स्वर्ग्यो दे शीद ज्योतिरव्यते ॥

ऋग्वेद, १० । १३६ । १

देशी, अग्नि, स्वर्ग और पृथ्वी प्राण करना है। देशी मन्त्र त्रिष के मन्त्रों के दर्शन करता है। देशी ही प्रकाशमान 'जान' -ज्योति, 'अव्ययानी' रहस्यता है।

देशी की यह मृत्ति उक्त वातरचना मुनि के वर्णन आदि में सी गयी है जिसमें प्रतीत होता है कि देशी वातरचना मुनिया में प्रधान है। ऐसा उ० हीराज्ञान जैन ने अनुमान निकाला है। वह उचित ही लगता है।

दोनों मन्त्रनियों के सम्बन्ध ऋषभदेव

उमने ऋग्वेद के वातरचना मुनि और भागवत में उल्लिखित वातरचना धर्मा ऋषि जी महज में यह तुलना की जा सकती है। उनके अतिनायक ऋषभदेवचरित का जैन साहित्य में जैना वर्णन मिलता है लगभग वैसा ही भागवत में मिलता है। इससे कई विद्वानों ने यह अनुमान निकाला है कि जैन समाज में ऋषभ की जटे गहरी जमाने के बाद जैन कथानक को भागवत में अपनाया गया हो। पर प्रजाचक्षु १० गुणज्ञानजी का अभिमान उन विषय में भिन्न है। वे कहते हैं कि ऋषभदेव की मान्यता, पूजा, उपासना की यशोगाथा जैन परम्परा की तरह जैनतर परम्परा में भी कम या अधिक मात्रा में एकया दूसरी तरह अवश्य चातू थी। इसलिए वह भी मान्य है कि जिन मन्त्रन प्राचिन पुर्गाओं में ऋषभदेव के सम्बन्ध में भी कुछ न कुछ अवश्य लिखा हुआ होगा, जो वर्तमान भागवत में लिया गया है। सारी आर्य जाति में समान रूप में ऋषभदेव की न्यूनाधिक मान्यता अति प्राचीन काल में चली आयी है। ऋषभ नारी आर्य प्रजा के देव हैं, उस विषय में मुझे ऐनमान भी आता नहीं है।

भगवान् ऋषभदेव के कुटिल देशों की परम्परा जो वेद ऋचाओं में देशी नाम में वातरचना मुनियों का वर्णन तथा भागवत में वर्णन है, उसमें मिलती हुई है। क्योंकि जैन परम्परा में ऋषभदेव की मूर्तियों पर कुटिल देशों की परम्परा प्राचीन काल में चली आयी है और आज भी अबुण्ड है। सभी तीर्थंकरों की मूर्तियों में निर्फ ऋषभदेव की मूर्ति पर ही कुटिल देशों का रूप दिखाया जाता है और वह उनका विशेष लक्षण है। केसरियानाथ यह ऋषभ देव का नामान्तर है। केसर, केस और जटा एक ही अर्थ के वाचक हैं। सिंह भी अपने देशों के कारण केसरी कहलाता है। केसरियानाथ पर केसर चढ़ाने की प्रथा प्रचलित हुई हो पर ऋषभदेव का केसरियानाथ यह नाम उनके

वेणी के कारण प्रचलित आता है यह अधिक सुविमलमान मान्य होता है। वेणिया की पूजा हिन्दू तथा आदिवासियों भी बानिया बाबा के नाम से करते हैं।

जिनिया व साहित्य में श्रद्धाभाव की जटाझा का वृणन मिलता है। उस प्रकार श्रद्धा के व वेणी और बानराना मुनि भागवत व श्रद्धा और बानराना श्रमण कवि एवं वेणारियाना श्रद्धा लोचक और उनका निरूपण सप्रमाण एक ही मिट्टा होता है क्योंकि श्रद्धा और वेणी का एक स्थान पर बन्नि श्रद्धा व उन्नत आया है। जिसमें यह अनुमान निकलता है कि बानराना मुनिया व निरुध साधुओं तथा मुनिया के नायक वेणी मुनि श्रद्धाभाव हैं। इनसे जनधर्म की प्राचीन परम्परा पर महत्वपूर्ण प्रमाण पड़ता है।

कई विद्वान वेणी का रचनाकाल ईसा से पूर्व पांच हजार वर्ष से भी अधिक मानते हैं ता कुछ का कहना है कि वतमान वेणी रचना ईसा से १५ सार्ध वर्ष पूर्व हुई। इसमें यह मानना पड़ता है कि जनधर्म इनमें प्राचीन है। क्योंकि वेणी रचना में पूर्व श्रद्धाभाव रूप ही उसी उनका उद्भव समझ मिलता है।

साहा जा मुन्नी की सुनाई में उपयुक्त प्राचीनता के विषय में और भी अधिक समर्थन मिला है। वहा जा बायोलेसगुप्त ध्यानस्थ भूतिता मिता है और यह व चित्र मुने रूप मिलते हैं उसमें प्राचीनता की कमी बहा तब कुछ मजबूती है। उनका योगी होना हम बात से भी सिद्ध होता है कि अवधूत पथ में वगल प्राप्त के कुछ लाभ हैं जिनकी शब्दा अधिक तथा है पर व श्रद्धा के एक अवधूत परम त्यागी मानकर उनकी उपासना करते हैं और उनके द्वारा प्रतिपादित कठिन कला का पालन करते हैं। उनके पथ में आये बहुत हूँ साधक श्रद्धाभाव का आत्म मानकर उनके जीवन का अनुकरण करते हैं। यह आत्म गरीर के विषय में निर्मोहिता सिद्ध करता है। यहा तब कि गरीर में कीर्ण बना जाय ता साधक उसे पंक्तता से बचि कीड का गरीर अर्पण करने में उसे विनाश प्रसन्नता का अनुभव होता है।

श्रद्धाभाव केवल भारतीय जन बन्नि हिन्दू या पाग परम्परा का उत्पत्ति दब ही नहीं है पर भारत के बाहर भी उसका प्रमाण होता बादिसे उसा साधक से हुई सुनाई में श्रद्धाभाव की जा वात्स्य भूति मिली उसमें पना चरता है। रिचमन्ट वनन बिन्हाइ ने एणियाटिक रिक्सेज बायुम से म लिता है कि भारत और इजिप्त के साथ प्राचीन काठ में सम्पर्क था। उन्हां नई शोधों की पाश्चात्त्य में हिन्दू का भी भौतिक विज्ञान की जाच की अत्यन्त आवश्यकता बन गई है। उनका कहना हीन था बायानि साधक की प्राचीन सुदाई में भी श्रद्धाभाव का वात्स्य भूति मिली है।

और भी गावा में पना चरता है कि इजिप्त गुपगिन आदि संस्कृतिया में अथवा संस्कृति का प्रभाव था और उन प्राचीन संस्कृतियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि व कुछ आत्म जिनिया में मिलनी जाना रहा है।

प्राचीन जन संस्कृति का स्वरूप

किर पना यह मझा होता है कि जन धर्म का आज का रूप है क्या ही प्राचीन काल में था या आज के जन धर्म से कुछ अन्तर था ? भारत या पाग पटोम पर जिस संस्कृति का प्रभाव पडा था उस संस्कृति का रूप क्या था ? भारतवर्ष में प्रचलित प्राचीन धर्म दो विभागों में बंट सकते हैं। एक था विभक्तिपर दूसरे प्रवृत्तिपर। प्रवृत्तिधर्म में चार आश्रम थे और विभक्तिधर्म एक आश्रम पर अधिक भार देता है। उसमें आत्मकल्याण के नियम बचन शायाम का ही प्राधान्य दिया है। उसमें बहुल्य और शुद्ध स्वभाव का स्थान न हा एगा महा पर विभक्तिधर्म में जानि आयु का विभाग विचार में बर चाह जिस जानि और चाह जिस उन्नत व स्त्री गुण व नियममान रूप में त्याग और सत्याग का उपदेश दिया जाता है। यदि कार्य शुद्धता में करना पड़ता है तो विभक्तिधर्म व अनुसार साधारण ही मानी जानी है। पर प्रवृत्तिधर्म व अनुसार आश्रम के प्रेम से प्रवृत्ति और निवृत्ति का स्वीकार दिया जाना इष्ट समझा जाता है। प्रवृत्तिधर्म में सीधा व पागप्रदेश प्रवृत्तिधर्म में बचन समझा जाता है। जिन विभक्तिपर धर्म में कार्य मान या कुमार अवस्था में भी सत्याग से तो बह धर्म समझा जाएगा।

जन समझ का दो तीन हजार वर्ष की परम्परा जन साहित्य, तथा जन मानव का अध्यापन करने पर



मालूम होगा कि धर्म निवृत्तिप्रधान ही है। लेकिन पंडित सुखलालजी का मानना है कि जैन धर्म के मूल उद्गम में निवृत्तिप्रधान स्वरूप को नहीं पर प्रवृत्तिप्रधान स्वरूप को ही स्थान था।

सारी जैन परम्परा ऋषभदेव को वर्तमान युग के निर्माता आदिपुरुष के रूप में जानती है। उनको मार्गदर्शक, कर्मयोगी, और पूर्ण पुरुष के रूप में मानती है, पूजती है। उनका चरित्र जैन परम्परा की तरह ब्राह्मण परम्परा में भी मिलता है। जैन परम्परा की मान्यता ब्राह्मण परम्परा की पुष्टि करती है। ऋषभदेव के जीवन की जैनो के द्वारा वर्णित अनेकानेक घटनाओं से अनुमान होता है कि प्राचीनकाल में जैन धर्म का रूप प्रवृत्तिमूलक होना चाहिये और यही कारण है कि प्रवृत्तिप्रधान वैदिक परम्परा ने उस परम्परा को अपनाया। वैदिक सस्कृति में जो विचार थे उसमें अध्यात्म, सयम, योग, पुनर्जन्म, कैवल्य आदि बातों का प्रभाव श्रमण सस्कृति ने डाला और उनकी यज्ञ तथा इहलोक के सुखों पर जोर देनेवाली सस्कृति ने श्रमणसस्कृति के विचारों को अपनाया हो। और ऋषभदेव भी उनके पूज्य और आदरणीय बने हों। प्राचीन श्रमण सस्कृति और वैदिक सस्कृति के समन्वयकाल की यह घटना होनी चाहिये। उपनिषत्काल में वैदिक और श्रमणसस्कृति का समन्वय दिखाई देता है।

इस समन्वयात्मक सस्कृति में आगे चलकर आयी हुई विकृति को दूर करने का काम पार्श्व, महावीर, बुद्ध आदि ने किया और जैनधर्म प्रमुख रूप में निवृत्तिप्रधान बनकर दोनों धाराएँ विलकुल अलग अलग चली। इसका विश्लेषण करना आवश्यक होने पर भी वह समयक्रम के अनुसार आगे का विषय है। लेकिन प्रागैतिहासिक काल में श्रमणसस्कृति और उस सस्कृति के नायक ऋषभदेव ने वैदिक सस्कृति पर प्रभाव डाला था और वैदिक धर्म और श्रमणसस्कृति के समन्वय से उपनिषद्, भारत, भागवत आदि ग्रंथों की रचना हुई। उनमें इस समन्वय के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को जो उपदेश दिया था वह श्रीमद् भागवत में इस प्रकार है —

हे पुत्रो ! जो दुखदायी विषयभोग, विषा खानेवाले कुत्ते, सूअर आदि प्राणियों को मिलते रहते हैं, उन विषयभोगों के लिए ससार में यह मनुष्यदेह धारण करने योग्य नहीं है। इस मानवदेह से तो अन्तःकरण की शुद्धि करके अनन्त महासुख की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। विद्वान् कहते हैं कि सर्वत्र मम चित्त वाले, शान्त, क्रोधरहित और सदाचारी महापुरुष की सेवा मोक्ष का द्वार है। परम पुरुष रूप परमात्मा में परम प्रेम ही जिसका व्यय है, जितनी अपने शरीर के निर्वाह के लिए आवश्यक हो उतनी प्राप्ति का प्रयास करे उसे ही महापुरुष समझना चाहिए।

हे पुत्रो ! मनुष्य इन्द्रियों को मुख पहचाने हेतु जब कोई कर्म करता है तब वह प्रमादी होकर अवश्य ही पापकर्म करता है। जब तक अज्ञान के कारण मन की हार हुई होती है और देहादि के अहंभाव से कर्म करने में ही वृत्ति रहती है, वहाँ तक मनुष्य आत्मतत्त्व जानने की इच्छा नहीं रखता। भविष्य में आत्मस्वरूप ढक जाने से जो कर्म मन को बंध में करता है, और फिर से कर्म करने के लिए आसक्त करता है। इसलिए जहाँ तक आत्मस्वरूप में उसकी प्रीति नहीं होती, वहाँ तक पुरुष देह के सबंध से मुक्त नहीं होता।

हे पुत्रो ! मनुष्य चाहे जितना विद्वान् हो या विवेकी हो, पर जहाँ तक वह प्रमादवश इन्द्रियों के आधीन होकर उनका अनुसरण करता है, वहाँ तक मैथुनसुख जिसमें प्रधान है, ऐसे गृहमस्कार में फँसकर, वह त्रिविध ताप भोगता रहता है। विद्वान् कहते हैं—जब स्त्री-पुरुष दाम्पत्यभाव को लेकर मिलते हैं, तब उनको बड़ दपतीभाव दूसरी हृदय-ग्रथि के रूप में बन जाता है। उसका घर, क्षेत्र, पुत्र, धन आदि में “मैं मेरा” भाव उत्पन्न हो जाता है। अतः हृदय की यह ग्रथि जिन-जिन कर्मों से बधी हुई या दृढ़ हुई उन कर्मों को जितल किया जाय तभी दपतीभाव से निवृत्ति होकर सभी बन्धनों के कारणभूत अहंकार को त्यागकर मुक्त हुआ जा सकता है।

हे पुत्रो ! इस अहंकार का त्याग निम्न पञ्चीस साधनों के द्वारा हो सकता है विवेकी गुरु तथा परमात्मा के विषय में भक्ति और तत्परता। तृष्णा का त्याग। मुख-नुख आदि द्वन्द्वों को सहन करना। इस लोक में तथा इसी प्रकार परलोक में सर्वत्र दुःख ही है, ऐसा ज्ञान। तत्त्व और अतत्त्व की जिज्ञासा। तप, काम्यकर्म का त्याग। ईश्वर में कर्मों का समर्पण। भगवत्कथा। भक्तों का नित्य संग। भगवान् के गुणों का कीर्तन। प्राणिमात्र के प्रति वैरबुद्धि का परि-

त्याग । सबत्र समभाव । बाह्य और आभ्यन्तर इन्द्रिया का जय । शरीर तथा शून्य पर अहमत्व का त्याग । अध्यात्म याग । अध्यात्म गारवा का अग्रमाप्त । एकाग्र प्रदण का सबल । प्राण-स्थि-मन का जय । श्रद्धा ब्रह्मचर्य । नित्य अग्रमाप्त । वस्तु-या का अत्याग । नाश-सत्य । सबत्र परमात्मा की भावनायुक्त अनुभवज्ञान और धर्मपूजक प्रयत्न विवेक पूजक योग-समाधि ।

हे पत्नी ! इस प्रकार के अग्रमापन से बन्नी ये निवासस्थान रूप तथा अविद्या से प्राप्त हुई हृदय की मातृ रूपी गाठ के बंधन को गारवा के आग्नेयानुसार तप्त करने का वात् उन उपायों से विराम लेना चाहिए । पिता गुण राजा अपने पुत्रों को दिया तथा प्रजा का प्रायस्त्रिंशत्काल ही उपदेश देना चाहिए । कारण कि लोक-व्यवहार में पशु राजा मनुष्य स्वतः अपने वस्त्राण माधन से रहित होकर कामयोग की अत्यन्त अभिलाषा रखता हुआ विषय की श्रद्धा रखकर काम्य-बन्नी में निपट रहता है । उसे कम बन्धन के नियम उपदेश का आवश्यकता नहीं होती । कमनिय उसे काम्य-बन्नी को करने का उपदेश देकर ससार के शून्य में डाकू बना परपाय सिद्ध होगा ? जो शून्यरूप भी ससार में फँस मनुष्यों को नहीं छोड़ा सकता वह गुरु होकर भी गुरु नहीं है । स्वजन होकर भी स्वजन नहीं है । यह पिता माता स्व या पति भी नहीं है ।

ह पुत्री ! तुम मेरे गुरु सत्वगुणमय हृदय में उत्पन्न हुए हो । उनसे तुम अपने स्वयं भाई भ्रातृ की निष्कपट भाव में सेवा करना । ऐसा करने से तुम्हें परमात्मा की सेवा करने का और प्रजा का पालन सम्भवा जाएगा । तुम ईश्वर अस्मर रहित पवित्र होकर सब इष्टावर जगत् प्राणियों को मेरा निवास रूप मानकर जगत् क्षण में उड़ आकर दत्ता ब्याक्ति प्राणिमात्र का इसी भाति सम्मान लेना ही परमात्मा का पूजन है । मन बाणी इन्द्रिया जय मन्त्री इन्द्रिया व्यापारा का परम फल यही है कि उन सबसे परमात्मा की आराधना की जा सकती है । इस प्रकार सभी प्रवृत्तियों को परमात्मा में अग्रण करनेवाला गुरु आराधना के बिना माहर्षी कावयाग से मुक्त होन में समर्थ नहीं होता ।

जिस अहिंसा पर जगत् या अहत् सस्कृति में अत्यधिक जार दिया उस अहिंसा के विषय में महाभारत में जो श्लोक मिलते हैं उनमें से कुछ ये हैं —

अभय सबभूतेभ्यो दत्वा यश्चरते मनि ।
न तस्य सबभूतेभ्यो भयमपद्यते बबचित् ॥

जो मुनि सबभूता का अभय देकर विचरता है उस किसी भी प्राणी से नहीं भी भय नहीं उत्पन्न होता ।

यथा नागपदे-यानि पदानि पदगतमिनाम् ।
सर्वाण्येवापिधीयते पदागतानि कीदरे ॥
एव सर्वमहिंसायां धर्मायपिधीयते ।
अमृतं स नित्यं वसति यो हिंसां न प्रपद्यते ॥

जगत् मानाग होयों के पद-विह्वल में पदों से चपनवाट अथ सब प्राणियों के पद-विह्वल समा जान हैं उसी प्रकार सब धर्म और अर्थ का भी—अहिंसा—निष्कपट है । जो गुरु प्राणीहिंसा नहीं करता वह नित्य अमृत होकर निवास करता है—जगत् शून्य के बचन से मुक्त हो जाता है ।

सर्वानि भूतानि सुखे रमत
सर्वानि तु सुखे शुभा व्रतन्ते ।
तेषां भयोत्पादनं तत्तत्
कुर्यान् सर्वानि हि ब्रह्मान् ॥

यद्यपि प्राणी सुख में आनन्दित होन हैं । सब प्राणी तुम से अनि व्रत होन हैं । अन् प्राणियों को भय उत्पन्न करने में सेना का अनभव करता हुआ शत्रुानु गुरु भयापानक काम न कर ।



दानं हि भूताभयदक्षिणाया
सर्वाणि दानान्यधितिष्ठनीह ।
तीक्ष्णां तनु य प्रथमं जहाति
सोऽन्यन्तमाप्नोत्यभयं प्रजाम्भ ॥

मनार में प्राणियों को अभय की दक्षिणा का दान देना मर दानों में बढ़कर है । जो पहले ही हिंसा का त्याग कर देता है, वह सब प्राणियों में अभय होकर मोक्ष प्राप्त करता है ।

यदन्यविहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पुरुषः ।
न तत् परेषु कुर्वीत जानन्नप्रयमात्मनः ॥

जिन अन्यकृत व्यवहार को मनुष्य अपने लिए नहीं चाहता वह व्यवहार, वह दूसरों के प्रति भी न करे । वह जाने कि जो व्यवहार अपने को अप्रिय है, वह दूसरों को प्रिय कैसे होगा ।

जीवितं यः स्वयं चेच्छेत्तं कथं सोऽन्यं प्रधातयेत् ।
यद् यदात्मनि चेच्छेत्तं तत् परस्यापि चिन्तयेत् ॥

जो स्वयं जीना चाहता है, वह दूसरों की घात कैसे कर सकता है ? मनुष्य अपने लिए जो चाहे वही दूसरे के लिए भी सोचे ।

योऽभयं सर्वभूतानां स प्राप्नोत्यभयं पदम् ।

जो सर्व भूतों को अभय देनेवाला होता है, वह अभय-पद को प्राप्त कर लेता है ।

यस्मादुद्विजते लोकः सर्वो मृत्युमुखादिव ।
वाक्कूरः दण्डकूरः स प्राप्नोति महद् भयम् ॥

जो वाक्कूर, दण्डकूर होता है और जिनमें सर्वलोक वैशेष ही उद्वेग को प्राप्त होने हैं जैसे मृत्यु के मुख में, वह पुरुष महान् भय को प्राप्त होता है ।

यस्मान्नोद्विजते भूतं जातु किञ्चित् कथञ्चन ।
अभयं सर्वभूतेभ्यः स प्राप्नोति सदा मुने ॥

जिनमें कोई भी भूत किसी प्रकार किञ्चित् भी उद्वेग को प्राप्त नहीं होता वह सदा सर्व भूतों से अभय प्राप्त कर लेता है ।

अव्यवस्थितमयादिविमुहैर्नास्तिकैर्नरे ।
सशयात्मभिरव्यवर्तहिंसा समनुवर्णिता ॥

जो पुरुष मर्यादा में अनवस्थित है, विमूढ़ है, नास्तिक हैं, जिनकी आत्मा में सगय है एवं जिनकी कहीं प्रसिद्धि नहीं है, ऐसे लोगों द्वारा ही हिंसा अनुमोदित है ।

अहिंसा सर्वभूतानामेतत् कृत्यतमं मतम् ।
एतत् पदमनुद्विग्नं वरिष्ठम् धर्मलक्षणम् ॥

मर प्राणियों की अहिंसा ही सर्वोत्तम कर्तव्य है — जानियों ने ऐसा माना है । यह पद उद्वेग रहित, वरिष्ठ और धर्म का लक्षण है ।

शरण्यं सर्वभूतानां विश्वास्यं सर्वजन्तुषु ।
अनुद्वेगकरो लोके न चाप्युद्विजते सदा ॥

अहिंसक सर्व प्राणियों का शरणभूत होता है । वह सबका विश्वासपात्र होता है । वह लोक में प्राणियों को उद्वेजित नहीं करता और न कभी किसी में उद्विग्न होता है ।

न हि प्राणात् प्रियतरं लोके किञ्चन विद्यते ।
सत्त्वादं दया नरं कुर्याद यथाश्रमं तथा परे ॥

लोक में प्राणा से बड़ा प्रिय वस्तु दूसरा नहीं है । अतः मनुष्य जैसे अपने ऊपर दया चाहता है उसी तरह दूसरा पर भी दया करे ।

प्राणदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ।
न ह्यारमन् प्रियतरं किञ्चिदस्तीह निश्चितम् ॥

प्राण-दान से बड़ा वर दूसरा कोई मन में हुआ है और न होगा । यह निश्चित है कि प्राणा में प्रत्येक वस्तु दूसरी भाँति नहीं है ।

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो धर्मः ।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥

अहिंसा ही परम धर्म है अहिंसा ही परम तप है अहिंसा ही परम दान है और अहिंसा ही परम तप है ।

अहिंसा परमो यत्तस्तथाहिंसा परं धर्मः ।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥

अहिंसा ही परम धर्म है अहिंसा ही परम धर्म है । अहिंसा ही परम मित्र है और अहिंसा ही परम सुख है ।

हम समय की दृष्टि से महाभारत का पाठ समझ सकते हैं जिसका मैं जना के होनहार नेमिनाथ हुए थे और हिन्दुओं के अवतार श्रीकृष्ण । नेमिनाथ ने अहिंसा में द्रवित हाकर ससार त्याग किया था । जो पावनो में उन्हें श्री कृष्ण का गुरु बनाया गया है । बौद्ध विज्ञान धर्मनाथ नेमिनाथ का आग्रह बताते हैं जो श्रीकृष्ण के गुरु थे । इसमें तो सन्देह है ही नहीं कि अरिष्टनेमि यात्रावतुर के प और श्रीकृष्ण का निवृत्त सम्बन्धी । श्रीकृष्ण का भले ही बन्धु या ब्राह्मण संस्कृति ने वात्सल्य में अपनी संस्कृति का गहन पुरस्कार माना था पर वह बन्धु का दान दान के उपासक नहीं थे बल्कि ब्रह्म पूजा का विरोधी थे । यह सब हाल हम भी श्रीकृष्ण के समय का अपनाया था । अस्तित्व के भी दाना संस्कृति में जागरणीय बने । ब्राह्मण या हिन्दु संस्कृति ने उन्हें अवतार माना है और धर्म संस्कृति उन्हें अपना भावी साधक कहती है ।

यस प्रकार भारतीय प्राग ऐतिहासिक संस्कृति और बौद्ध संस्कृति का समय हुआ ।



श्रमण-संस्कृति का केन्द्र : श्रावस्ती

डा० हरीन्द्रभूषण-जैन,
एम ए, पी-एच डी साहित्याचार्य,
विक्रमविश्वविद्यालय, उज्जैन



परिचय तथा इतिहास—

उत्तर प्रदेश में उत्तर-पूर्वी रेलवे की गोडा-गोरखपुर लाइन पर स्थित बलरामपुर नगर में पश्चिम की ओर ११ मील की दूरी पर कुछ खण्डहरो के टेर हैं। यह स्थान आजकल 'सहेठ-महेठ' नाम से जाना जाता है। १८८३ ईस्वी में श्री कनिंघम महोदय ने उस स्थान की खोजकर यह सिद्ध किया कि यह स्थान ही जैन और बौद्ध धर्मों में श्रद्धा और आदर के साथ स्मरण की जाने वाली 'श्रावस्ती' है। तब से लेकर इस स्थान के भ्रम में अनेक खोजें हुईं और अब थोड़ा-सा भी भ्रम नहीं रहा कि वर्तमान 'सहेठ-महेठ' ही प्राचीन श्रावस्ती है। 'महेठ-महेठ' का कुछ भाग उत्तर प्रदेश के गोडा जिले में तथा कुछ भाग बहराइच जिले में है। बलरामपुर में बहराइच जाने वाली मुख्य सड़क 'सहेठ-महेठ' होकर जाती है। इस सड़क पर चलने वाली गवर्नमेंट-रोडवेज की बसों द्वारा सरलता से श्रावस्ती पहुँचा जा सकता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में इस नगरी के अनेक नाम उपलब्ध होते हैं—श्रावस्ती, श्रावन्ति, शरावती, धर्मपत्तन, धर्मपुरी, चम्पकपुरी, चन्द्रिकापुरी कुणाल आदि। इसका सबसे प्रमुख एवं प्राचीन नाम श्रावस्ती है। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार राम ने भरत को राज्य देकर वन जाने की इच्छा प्रकट की किन्तु भरत ने राज्य की निन्दा करते हुए राम से निवेदन किया कि वे अयोध्या का राज्य लव और कुश को प्रदान करें। तदनुसार कुश को दक्षिण-कोशल का और लव को उत्तर-कोशल का राज्य दिया गया। इनके पश्चात् लव ने जिस नगरी को राजधानी के निमित्त बनाया उसका नाम 'श्रावस्ती' प्रसिद्ध हुआ।

‘कोशलेषु कुश वीरमुत्तरेषु तथा लवम् । अभिषिच्य महान्मानाबुधौ राम कुशीलवौ ।

— वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, १०७-१७

“श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य ह ।”

— वही

उत्तरका० १०८-५

कालिदास ने रघुवंश में इसी घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि राम ने, अपने मधुर वचनों से सज्जनों की आँखों से आँसू की धार बहाने वाले लव को 'शरावती' का राजा बनाया।

‘स निवेद्य कुशावत्यां रिपुनागाङ्कुश कुशम् । शरावत्यां सतां सूतैर्जन्ताश्रुलवं लवम् ।

— रघुवंश, १५-१७

शरावती, श्रावन्ती का ही अपभ्रंश प्रतीत होता है। भव है कालिदास के समय में यह नगरी शरावती कहलाती हो। 'धर्मपत्तन' और 'धर्मपुरी' इन दो नामों की सूचना वही० एम० व्याप्ते के 'संस्कृत-अंग्रेजी-शब्दकोष' में प्राप्त होती है। 'चम्पकपुरी' और 'चन्द्रिकापुरी' श्रावन्ती के ये दो प्राचीन नाम, आर्क्योलॉजी विभाग, इण्डिया द्वारा प्रकाशित 'श्रावन्ती' नामक पुस्तिका (पृ० २) में प्राप्त है।

जैनगम पन्थवणा (प्रज्ञापना) में आर्य क्षेत्र के रूप में जिन २५ देशों का वर्णन है उनमें श्रावन्ती का कुणाल नाम से उल्लेख किया गया है (प्राकृत साहित्य का इतिहास, डा० जगदीशचन्द्र जैन, पृ० ११४ फुट नोट)

जैनागमों में यत्र-तत्र श्रावस्ती के उल्लेख प्राप्त होते हैं। वहाँ इसे श्रावस्ती और श्रावस्ति दोनों रूपों में उल्लिखित किया गया है। मगधाज्ज के दशवें अध्याय में जिन दस राजधानियों के नाम गिनाये गये हैं उनमें श्रावस्ती भी एक है। इसका यह अर्थ हुआ कि यहाँ पर अवश्य शक्तिशाली जैन राजाओं का राज्य रहा होगा।

भावतीसूत्र में, श्रावस्ती के वैशाखिक अमग (महावीर के आवक) विगत और स्कंदक परिव्राजक के बीच लोक आदि के मन्त्र में प्रयोजित होने का उल्लेख है। (वही-पृ० ६७)

प्रथम छेसूत्र निर्माह (निर्णीय) के अनुसार श्रावस्ती उन १० अभिषिक्त राजधानियों में से एक थी जहाँ राजाओं का अभिषेक किया जाता था। (वही पृ० १४१)

पत्तवगा (पतापता) नाम के उपाङ्ग में आर्य क्षेत्र के जिन २५^१/_२ देशों का उल्लेख है उनमें श्रावस्ती का कुगाल नाम से उल्लेख किया गया है। (वही-पृ० ११४-उत्तोट)

आवश्यक ऋषि में महावीर के जन्मज्ञान होने के १३ वर्ष पश्चात् श्रावस्ती में मत्तकर वाट आने का उल्लेख है। (वही-पृ० २५८)

जैन पुराणों में भी अनेक स्थानों पर श्रावस्ती के उल्लेख मिलते हैं। यह सब इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन काल में श्रावस्ती जैन मन्त्रिण का समृद्ध केन्द्र रही है।

तीर्थङ्कर संनवनाथ की जन्म-भूमि होने के कारण यहाँ, प्राचीन काल से शोभनाथ मन्दिर है। शोभनाथ यह संनवन, संनवनाथ का ही परिवर्तित रूप है। तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ की जन्मभूमि होने के कारण किसी जैन राजा ने उसे चन्द्रिकापुरी नाम दिया होगा।

‘जैमिनी भारत’ नाम की एक मध्यकालीन रचना में ‘ध्वज’ अन्त वाले ऐसे अनेक राजाओं का वर्णन है जिनकी राजधानी चन्द्रिकापुरी थी। इनमें सबसे अन्तिम राजा का नाम मुहूद्दध्वज’ था जिसके विषय में माना जाता है कि उसने मुलतान महमूद गज़नी और उसके भेनापति माल्यार समूद के साथ ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में युद्ध किया था। उसने तथा उसके परिवार के लोगों ने श्रावस्ती में जैनधर्म की अवशेष उन्नति एवं प्रभावना की थी। शोभनाथ मन्दिर के ध्वनावेषों में उपलब्ध जैन तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ अधिकतर इसी काल की हैं।

(श्रावस्ती, आर्कैलाजी विभाग, इण्डिया, पृष्ठ ११)

‘महेठ-महेठ’ यह नाम, श्रावस्ती में स्थित खड्डहरो के दो ढेरों के लिए संयुक्त रूप में प्रयुक्त हुआ है। प्रथम खण्डहरो का ढेर महेठ है जो बौद्ध साहित्य में सुप्रसिद्ध विहार ‘जैतवन’ के नाम से वर्णित है। इस स्थान से लगभग आधा मील दूर, दूसरा खड्डहरो का ढेर महेठ है। यही प्राचीन श्रावस्ती है। इसका क्षेत्रफल सहेठ की अपेक्षा बड़ा है। यह अचिरावती नदी (राप्ती) के दाहिनी ओर स्थित है। अचिरावती यहाँ से कुछ फर्लंग दूर पर बहती है। इस नगर के चारों ओर मिट्टी का मुट्ठा प्रकार था जिसके ऊपर ईंटों की दीवाल थी जो अभी भी ध्वस्त अवस्था में विद्यमान है। इस प्रकार का पूरा घेर मवा तीन मील का है और इसमें भीतर प्रवेश करने के लिए चार मुख्य दरवाजे हैं।

शोभनाथ दरवाजे में प्रवेश करने के पश्चात् नामने जो इमारत दिखाई पड़ती है वह शोभनाथ का मन्दिर है। यह एक ऊँचे टीले पर स्थित है। उस स्थान को लोग जैन तीर्थङ्कर संनवनाथ का जन्मस्थान मानकर पूजते हैं। मध्यकाल में मुसलमान शासकों ने इस स्थान को अपनी सत्कृति के अनुकूल रूप देने का प्रयास किया और उस पर कुछ गुम्बज जैसा आकार भी बनाया।

इसके छोटे नीचे की ओर एक और जैन मन्दिर है जो पर्याप्त ध्वस्त अवस्था में है। इसमें अनेक काल की बनावटें स्पष्ट प्रतीत होती हैं। इसके पूर्व की ओर एक आयताकार पक्का बराण्डा है जिसका क्षेत्रफल ५६ फीट

(पूर्व पश्चिम) + ६६ की० (उत्तर-दिश) और जा० की दायाल स धरा है। इसमें पीछे की ओर का शीवाङ्ग अनेक आले हैं जिनमें अनेक तीक्ष्णता की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित थी जिनमें कछ नीच पड़ी हुई प्राप्त हुई हैं। इस वराण्य में उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम भागों की आर दो आसनाकार कमरा अ अवगण पड़े हैं जिनका भूमिभाग वराण्य के समान ही पक्का है। वराण्य में प्रवेश करने के लिए पूर की ओर साढ़िया हैं।

वराण्य के उत्तर पश्चिम कोने की ओर बाज कमरे से प्रथम तीक्ष्ण भगवान् श्रमणत्व की अत्यन्त मनोप्रीति प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा अत्यन्त प्रगाढ़त पश्चात्त मुग्ध म स्थित है। यह एक छोटा आसन पर बठी हुई है जिसकी दोनों ओर दा तेरे हुए सिंह हैं और जिनके बीच में प्रथम तीक्ष्ण का चिह्न यः अति मनोप्रीति स्थित म बठा है। दो मित्रों के बीच म छोटा स निमग्न बज की मधुर मूर्ति माना यह बहोती थी प्रतीत होती है कि भगवान् श्रमणत्व के साधन म प्राणिमान् अनेक स्नामाधिक्य कर को भी भूतकर पुण अहिंसा धर्म का पालन करते हैं। तिहा की मुग्ध और आसन दानीय है। सिंह जस िस पुरु को एक बहोती भूमि म स्नकर तथा दूसरे हाथ की ठोडी स लगाए हुए विश्राम म म चित्रित किया है। सिंहा की ऐसी विवर्णन प्रगल्भ मुग्ध अत्यन्त दुःख है।

भूमि के पूरे सिर पर बालों का गुच्छ ि दिखाई देता है कि जितनी दो ाँ दोनों दायाल का शरीर लम्बर कथे तक छात्र आई है। मूर्ति के दोनों ओर दा दून् चकर डार रहे हैं। मूर्ति के ऊपर तीन द्युन हैं जिनके दायाल ओर दा हाथी हैं। दोनों हाथियों के ऊपर तीक्ष्ण तथा बगल म पीरिस तीक्ष्णता की छोटी छोटी मूर्तियाँ हैं जिनमें मूर्ति के बाह्य ओर के ऊपर कोने से एक मूर्ति दून् गई है। मूर्ति के आगे निजले हुए अंग प्राय धिस गए हैं।

महेठ के प्राकार के भातर बागमाय मन्दिर के अतिरिक्त पक्कीकुटी और बच्चो बटी नाम स दा दील और हैं जिनके मध्य म अभी तक दण्ड म स कछ का निधन नहीं हो पाया है कि ये स्थान बारम्बार म क्या हैं? इतिहास महेठ पक्कीकुटी का अनुमानित या स्मृत होने का अनुमान करते हैं कि हैं चीनी यात्रिया (हुएन-सांग तथा फाह्यान) ने देखा था। हाए महेठ (Hoc) इसे राजा प्रगल्भित द्वारा मन्ताया बुद्ध के निवास एवं उपदेश के लिए बाबाये मण भवन (Hall of law) के रूप म सजने है। कथा बटी को अनापतिधर्म स्मृत के रूप म अनुमान लिया जाता है।

इस मध्य म मरा निवेदन है कि महेठ न। स चीना कथियाँ जन मन्दिर ही होने चाहिए जो गुरदा के अभाव म धस्त होकर आज हाले के रूप म दिखाई पड़ रहे हैं। आवस्ती जन और बौद्ध दोनों संहति का के रूप री है। बौद्धम एक संहति का प्रत्यक्ष समग्र जेतवन स है जो आवस्ती स लक्षण धारा पीछे दूरी पर स्थित है। यह सम्पूर्ण स्थान मान बौद्ध स्मारक। मे भरा पडा है। जिस प्रकार जेतवन बौद्ध संहति का रूप था और समग्र जिन प्रकार अनेक बौद्ध स्मृति विहार और मन्दिर स्थित थे उन्ही प्रकार आवस्ती जन संहति का के रूप होना चाहिए और हम जिनने भी ध्वस्ततायेण पाए जान हैं वे सभी जासंहति के लक्षण होने चाहिए। यदि आवस्ती (महेठ) के समग्र म और मुगई तथा अनुगवा रिये जाय तो मेरा विचार है कि पूरा आवस्ती म और जनसंहति स्थान उपाय हागे। भगवान् महावीर के समय से तेकर जनसंहति से प्रगाढ़ रूप म संबंधित आवस्ती म मान एक ही प्राधान जन मन्दिर हो मेरा समग्र नहीं है।

जेतवन म एक मधुकुटी नाम का स्थान है। कहा जाता है कि इसे अनापतिधर्म के मन्ताया बुद्ध के व्यक्तिगत उपयोग के लिए बनवाया था। मधुकुटी यह सम् जासंहति के धर्मित समग्र रखा है। पापका के उपाय के समग्र जेतवा लोग मधुकुटी का निर्माण करते हैं। बौद्ध संहति म सम् सम् निम्न आरंभित एवं अन्तर्गत है। मेरा विचार है कि भगवान् महावीर के आगमन पर आवस्ती म जिन मधुकुटी का निर्माण हुआ उम स्थान का परमाणु बुद्ध का एक एक वही रहा होगी। पश्चात् उक्त स्थान के आवस्ती मे नन् प्रष्ट हो जान स अपवा अय किसी कारण से पट सम् जेतवन म महात्मा बुद्ध स संबंधित किसी स्थान के लिए प्रयुक्त होने लगा होगा या आज भी प्रयुक्त होता क्या था रहा है।





ऊपर कहा जा चुका है कि चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने सम्राट् अशोक द्वारा स्थापित दो स्तंभों पर यहाँ देखे थे जिनमें एक स्तंभ पर धर्मचक्र तथा दूसरे पर वैल की मूर्ति स्थापित थी। जैनगान्धर्वों में अशोक की जैनधर्म का अनुयायी रहा गया है। राजाशोक की यह नीति प्रायः रही है कि वे सभी धर्मों का आदर करने थे। मुझे ऐसी प्रतीति होती है कि एक स्तंभ पर धर्मचक्र वीर्यधर्म का तथा दूसरे स्तंभ पर वैल जैनधर्म का प्रतीक हो, क्योंकि वैल प्रथम तीर्थंकर का चिह्न है। शोभनाथ के जैनमन्दिर में जो ऋषभदेव की मूर्ति प्राप्त हुई है उस पर वैल का मुद्रा चिह्न है।

‘श्रावस्ती’ यह नाम भी हमें जैनत्व की ओर मनेत करना है। समभव है यह ‘श्रमगवमति’ अथवा ‘श्रावगवमति’ शब्द का अपभ्रंश हो। श्रमण अर्थात् जैनमाधु तथा श्रावक अर्थात् जैन गृहस्थ है। वमति का अर्थ है निवास-स्थान। दक्षिण में बैज भी ‘वसति’ शब्द का प्रयोग जैनमन्दिर के अर्थ में होता है, जैसे चन्द्रगुप्तवमति अर्थात् सम्राट् चन्द्रगुप्त के द्वारा निर्मित जैनमन्दिर।

बौद्ध-संस्कृति का केन्द्र—

श्रावस्ती का जेतवन (सहेठ) ही बौद्धसंस्कृति का केन्द्र था। यह प्राचीन नगर की नीमा में बाहर स्थित है। इसका क्षेत्रफल १५०० फीट × ५०० फीट के लगभग है। यहाँ अनेक बौद्ध स्मारक ध्वस्त अवस्था में पड़े हैं जिनमें विगाखा द्वारा निर्मित पूर्वाराम, गंधकुटी, कौनम्बकुटी, बोधिबूझ, अनेक स्तूप, चैत्य एवं विहार मुख्य हैं।

बौद्ध मार्तिय में जेतवन-विहार के निर्माण की बड़ी मनोरंजक कथा उपलब्ध है। बुद्ध के समय में श्रावस्ती में सुद्ध नाम का एक धनी एवं उदार व्यापारी था। अपनी उदारता के कारण वह ‘अनायपिण्डिक’ के नाम से प्रसिद्ध था। अनायपिण्डिक का अर्थ अनार्यों को भोजन देने वाला। सुद्ध सवेने पहले राजगृह में महात्मा बुद्ध से मिला और उनका अनुयायी बन गया। उसने बुद्ध को श्रावस्ती आने का निमन्त्रण दिया किन्तु उस समय श्रावस्ती में बौद्ध नाधुओं के ठहरने योग्य किसी विहार के न होने में बुद्ध ने उस निमन्त्रण को अन्वीकार कर दिया। सुद्ध ने इसी समय श्रावस्ती में एक विहार बनवाने का सकल किया। बुद्ध का शिष्य सारिपुत्र, विहारनिर्माण के कार्य में सहायता देने के लिए सुद्ध के साथ श्रावस्ती आया। उन समय श्रावस्ती में विहार-निर्माण के योग्य स्थान, राजा प्रसेनजित के पुत्र राजकुमार जेत का उपवन था जो ‘जेतवन’ के नाम से प्रसिद्ध था। सारिपुत्र ने कुमार जेत से जब अपनी उपवन बौद्ध-विहार बनाने के लिए मागा तो उसने उसके मूल्य के रूप में उतनी सुवर्ण-मुद्रायें माँगी जितनी कि जेतवन में बिछाई जा सकती थी। सुद्ध ने पूरे जेतवन को सुवर्ण-मुद्राओं में ढकना प्रारम्भ किया। जब थोड़ा भी जगह छोड़कर पूरे उपवन में सुवर्ण-मुद्रायें बिछ गई तो कुमार जेत ने सुद्ध की उम्र स्थान पर मुद्रायें बिछाने में मना किया और उपवन में बिछी हुई समस्त मुद्राओं के वन में उस विनामुद्रा-वाले स्थान पर एक मन्दिर का निर्माण कर उसे बुद्ध को समर्पित कर दिया। सुद्ध ने पुनः और अठारह करोड़ सुवर्ण-मुद्राओं के धन में जेतवन में विहार के योग्य अनेक स्थानों का निर्माण कराया। कहा जाता है कि जो सुवर्ण-मुद्रायें जेतवन में बिछी गई थीं, उनकी संख्या भी अठारह करोड़ थी। श्रावस्ती की इस घटना का सुन्दर चित्रण, द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व के एक भरहुत के प्रस्तर-खण्ड में अंकित है जिसमें राजकुमार जेत, अनायपिण्डिक, बैलागाडी में सुवर्ण-मुद्रायें तथा जमीन पर सुवर्ण-मुद्राओं का बिछाया जाना आदि बड़ी मन्दर रीति से दिखाये गए हैं। इन प्रकीर्ण का एक चित्रण बोधगया के एक अन्य प्रस्तरखण्ड में भी अंकित है। भरहुत के प्रस्तरखण्ड में नीचे यह अंकित है—अनायपिण्डिक, करोड़ों सुवर्ण-मुद्राओं द्वारा खरीदे गए जेतवन का दान कर रहे हैं।

महर्षि बुद्ध ने बुद्धत्वप्राप्ति के पश्चात् तृतीय वर्षाकाल के चार महीनों (वर्षावान) को जेतवन में बिताया और इसमें बौद्धों ने प्रायः यहाँ आने-जाने लगे। बौद्ध-मार्तिय में प्राप्ति उल्लेख के अनुसार बुद्ध ने जेतवन में चौबीस वर्षाकाल बिताये। बुद्धवन की अट्ठकथा के अनुसार बुद्ध स्थायी रूप से श्रावस्ती में रहने लगे थे। वे कभी जेतवन-विहार में और कभी पूर्वाराम-विहार में ठहरते थे। (हिन्दू सभ्यता, राधाकुमुद मुकर्जी, पृ० २४६)

थावस्ती में मरणा बुद्ध ने जीवन में संचयित अनन्त आश्चर्यकारी घटनाओं का दिनमें अगुलिमाल हाथ में हस्तपरिवर्तन की वधा मुरप है। यह घटना बुद्ध ने थावस्ती में वाग्वै वपावास की है। अगुलिमाल डाकू विल पकटना था। उसकी श्रुतिस्वासी माला अनन्तर पहिनती था जिससे उनका मर्द नाम पडा। बुद्ध प्रसाध-धित और सज्जाल उसका द्विज स्वभाव में परिवर्तन कर लिया। वह भिक्षु हो गया। राजा प्रमनजिन जब बुद्ध ने पाग आए तब वह वही बठा था। राजा प्रमनजिन कि अगुलिमाल डाकू वही है, अगुली हो गण। तब बुद्ध ने उन्हें आगस्त किया। राजा ने वचन प्रमनजिन, बुद्ध और वय वस्तुन हनी चाहों पर अगुलिमाल ने कहा - वस हे राजन मेरे पास अपने तीन चीवर हैं (अही पयोंक हैं)। (मज्झिमनिकाय २ ६८ धम्मपद अटठकथा ३१ ६६)

२. महासुब्ब की अनन्त आश्चर्यजनक घटनाओं ने कारण थावस्ती आठ प्रगस्त बौद्ध तीर्थों में से एक माना जाता है। दीपनिकाय ने महापरिनिर्वाणमुत्त में प्रावस्ती के पाँच मरुत्तारों में से एक बताया गया है।

प्राचीन भारत में अज्ञातपक्ष की अनेक प्राचार्यों की जिनमें से अनेक अज्ञात और अज्ञात-धर्म से दो गाथायें प्रचलित हो गई हैं। प्राचीन समावर्ण वृद्ध होना धर्मों की प्रवृत्ति का अन्त री है।

स्वतंत्र भारत में धम्मपसंस्कृति का एक प्राचीन वेद का विकास किया जा रहा है। बुद्ध मरीचकन कृपा बौद्ध मज्झिमा की स्थापना की गई है। यात्रियों की सविद्या का लिए जन तथा बौद्ध धर्मगाथायें भी वही स्थित हैं। हम चाहते हैं कि धारण और समाज थावस्ती का धम्मपसंस्कृति का चित्र का रूप में ऐसा विचार करे जिसमें कि बहुत अपने प्राचीन गौरव का पुनः स्थापित कर सके।



भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिक विचार-पद्धति

डा० मंगलदेव शास्त्री

एम ए, डी फिल (आवसत)

भू० पू० उपकुलपति संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी



भारतीय संस्कृति के स्वरूप, परम्परा और विकास के प्रश्न पर जिन विद्वानों ने गम्भीर विचार किया है वे इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि भारतीय संस्कृति की समष्टि-दृष्टिमूलक तथा सहानुभूतिपूर्ण विचार-धारा के आधार पर ही भारतीय समाज की परम्परागत सकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं में ऐसी क्रान्ति लायी जा सकती है, जिससे विग्रह, विघटन, सांप्रदायिकता, विचार-सकीर्णता, पश्चाद्गतिता तथा अन्धवैद्विवाद के स्थान में क्रमशः सग्रह, सघटन, असांप्रदायिकता, विचार-औदार्य आदर्शवादिता तथा प्रगतिवाद की भावनाओं को देश में स्थापित किया जा सकता है।

इस लेख में हम मुख्य रूप से उस नवीन वैज्ञानिक प्रक्रिया के स्वरूप को दिखाना चाहते हैं, जिसके द्वारा ही भारतीय परम्परा से प्राप्त और विभिन्न संप्रदायों तथा वर्गों से सम्बद्ध विस्तृत साहित्य और लम्बे इतिहास का एक धारावाहिक जीवित परम्परा के रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

उक्त वैज्ञानिक प्रक्रिया के स्वरूप और महत्त्व को स्पष्टतया समझने के लिए आवश्यक है कि पहले हम उस परम्परागत सांप्रदायिक विचार-पद्धति को समझ लें, जो चिरकाल से भारतवर्ष के विद्वानों में प्रायेण चली आ रही है, और जिसके प्रभाव के कारण ही अब भी हमको देश और राष्ट्र की गम्भीर समस्याओं के विषय में खुले हृदय में विचार करने में कठिनाई प्रतीत होती है।

सांप्रदायिक विचार-पद्धति

सांप्रदायिक विचार-पद्धति का मौलिक आधार एकमात्र शब्द-प्रमाण की प्रधानता ही है।

शब्द-प्रमाण अपनी उचित सीमा के अन्दर सब को मानना पड़ता है। हमारे प्रतिदिन के जीवन में शब्द-प्रमाण का, अपने-अपने विषयों के विशेषज्ञ वैद्य, डाक्टर आदि की बात का कितना महत्त्व है, यह किससे छिपा है? अनुभवी विशिष्ट विद्वानों या लेखकों की बातों या शब्दों में अपने विचारों की पुष्टि या समर्थन पाकर हम कितने प्रसन्न होते हैं! ऐसे ही विशेषज्ञों को, जिन्होंने अपने अनुभव और परीक्षण से किसी तत्त्व को साक्षात् किया है, प्राचीन शास्त्रों की परिभाषा में आप्त^१ कहा जाता था, और उनके ही कथन को वास्तव में शब्द-प्रमाण^२ कहना और मानना चाहिये।

परन्तु ज्योंही शब्द-प्रमाण अपनी सीमा के बाहर चला जाता है, प्रत्यक्ष अनुभव और परीक्षण के मौलिक आधार से विच्युत हो कर जब केवल मान्यता और अन्ध-विश्वास पर स्थित हो जाता है, तो वह ऐसी विचार-पद्धति का जनक होता है, जो प्रायेण न केवल अपने ही को धोखा देती है, किन्तु ससार को भी व्यामोह में डालने वाली होती है।

१ अनुभवेन वस्तुतत्त्वस्य कात्स्न्येन याथावर्थज्ञानवान् आप्तः ।

२ देखिये "आप्तोपदेशः शब्दः" (न्यायसूत्र १।१।७) ।

धार्मिक क्षेत्र में एक बार बुद्धिमान प्रत्यक्षानुभव तथा अथ प्रमाण से विरोध का प्रमाण व मान लेने पर लोग म सांप्रदायिकता के नवीण भावों का आ जाना अनिवार्य हो जाता है। भारतवर्ष की सांप्रदायिक परम्परा में मूर्खी दृष्टि का शास्त्रप्रमाणवादिता का चिरव्याप से साक्षात् स्पष्ट है। शास्त्रप्रमाणवादी व्यवस्था के लिए तत्समाक प्रमाण (अर्थात् हम तो स्वयं शास्त्र का प्रमाण मानने वाले हैं। हमारे लिए तो जो शास्त्र में लिखा है वही प्रमाण है) व्याकरण महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार शास्त्र के अनुसार ही प्रायः हमारे सांप्रदायिक विचार चरितार्थ में चल आ रहे हैं।

‘मनुष्या वा अधिभूतकामस्तु देवानस्ततः नो न अधिमविष्यतीति।’

तेभ्य एतं तत्त्वमि प्रायच्छा। (निषवत परिणष्ट)

(अर्थात् सर्व या धर्म की वस्तुतः वान अध्रिया के बाल व ममत्ता इन पर मनुष्या ने देवी त पूछा कि अब हमारा अध्रि या मागवक कौन होगा ? तब देवा ने मनुष्या की तक रुची अध्रि का दिया।) इस प्रकार निष्कर्ष ज्ञान के विषयक मनुष्य के अथ द्वारा तक या परीक्षण का सत्यावपण म प्रमुख स्थान देने पर भी शास्त्रमूर्खों का यही कहना है कि तक का कार्य ठीकाना नहीं है शास्त्र प्रमाण व पीछे पीछे ही तक को चला चाहिए। ‘धर्मशास्त्र’ में भी वही मान पर बल दिया गया है कि अपनी अपनी मायना के शास्त्रों के विरोध से ही तक द्वारा मनुष्याधान करना चाहिए।

अपने व्यक्तित्व तद का पुत्रकथा के माग से यवान के लिए ऊपर के सिद्धांत के मानन म भारतवर्ष में कोई भाषति नहीं की जा सकती। परंतु जब कुछ लोग स्वाय या अध्रिवादि के कारण अपने सम्प्रदाय का माय पुत्रता व मानव तत्वाण की दृष्टि से मौलिक अध्रिवाद को न समझ कर उनके चलने को ही पक्का करने हैं जन्मी समय से सांप्रदायिक सहिष्णुता के स्थान म सांप्रदायिक असहिष्णुता स्वीकृति और दुर्ग्रह का स्वरूप मानना म करने लगता है।

ऐसे ही कारणों से मनीष सांप्रदायिक भावनाओं का प्रसार ज्ञान व विचारण से बचा आ रहा है। मनुष्य अथ द्वारा दृष्टि म निम्ने गये हैं। हमारे धर्मशास्त्र पुराण म तब ही दार्शनिक अथ भी मनीष सांप्रदायिक भावना म अस्पष्ट रहा है। सांप्रदायिक विचार-व्यवस्था का शास्त्रव्य विरोधिक सर्व के अवपण म इतना भी ना मिलता कि अपनी मायताओं की (अथवा माय पुत्रता की) दृष्टि म या दूसरे सम्प्रदाय का चर्चा म होता है। यी इस पद्धति का सारन बड़ा दोष है।

शास्त्रप्रमाणवादिता मूलक सांप्रदायिक विचार-व्यवस्था मूल म बहुत कुछ निर्वैयर्थ्य माना जा सकता है। सत्यमात्रातिता और सत्यावपण की प्रवृत्ति से दृष्टे दृष्टे प्रायेण अनुद्धिपूर्वक किताबी दूर बनी जाना है यी हम लोग सिखाना चाहते हैं।

भारतवर्ष म उपर्युक्त सांप्रदायिक विचार-व्यवस्था व दृष्टिद्वारा और विचारण पर स्थान देने से प्रतीत होगा कि उससे उत्पन्न विचार प्रवृत्तियों की स्वरूप रूप से हम नीचे रूपों में दिखा सकते हैं—(१) स्वभावप्रदाय या ममत्ता की प्रवृत्ति (२) अध्रिवाद या व्याख्यात्मक की प्रवृत्ति और (३) प्रणिष्टवाद की प्रवृत्ति। इनको हम माय रूप में करेंगे।

१ तर्कप्रतिष्ठापना (वेदान्तसूत्र २।१।११)।

२ आर्य समाजियों के वेदान्तवादिवादियों का मतवैयर्थ्य के अथ वेद वेद (मनु १२ १०९)





एकवाक्यता या समन्वय की प्रवृत्ति

मिद्धान्त-रूप में मृत्यु की रक्षा करते हुए, परस्पर सहिष्णुता के आधार पर, विरोध में अविरोध की स्थापना के लिए प्रयुक्त एकवाक्यता या समन्वय की प्रवृत्ति की उपयोगिता या उदादिष्टता की कौन स्वीकार नहीं करेगा? भारतीय मस्कृति की विचारधारा स्वयं इसी प्रवृत्ति का एक उत्कृष्ट निदर्शन है।

परन्तु सांप्रदायिक विचार-पद्धति से समुद्भूत जिन एकवाक्यता या समन्वय की प्रवृत्ति ने यहां हमारा अभिप्राय है, वह उक्त प्रकार की प्रवृत्ति में बहुत-कुछ भिन्न है। यहां हमारा अभिप्राय प्रायेण सीमाना-पद्धति-मूलक उस एकवाक्यता या समन्वय की प्रवृत्ति से है, जिसका उपयोग भारतवर्ष में अपने-अपने सम्प्रदाय-संबद्ध साहित्य में पाये जाने वाले परस्पर-विरुद्ध या विरुद्ध रूप में प्रतीत होने वाले मतों में, किसी प्रकार के सकोच या विस्तार के द्वारा अविरोध, एकवाक्यता या समन्वय को स्थापित करने के लिए किया जाता रहा है।

प्रायेण सांप्रदायिक मधर्प के वातावरण में ही उस प्रवृत्ति का उदय नहीं तो विस्तार तो अवश्य ही हुआ था।

सांप्रदायिक मधर्प के दिनों में विरोधियों के आक्षेपों के कारण प्रायः इनका प्रयत्न किया जाता है कि अपने-अपने सम्प्रदाय में ही जो अवान्तर विरुद्ध मन पाये जाते हैं, उनमें किसी प्रकार अविरोध स्थापित किया जाए।

अपनी सीमा के अन्दर यह प्रवृत्ति सर्वथा समुचित हो सकती है। किसी भी बुद्धिमान् व्यक्ति के लेशो या कथनों में जो विरोध दिखाई देता है, वह प्रायेण आपाततः ही होता है और उनमें अविरोध स्थापित करना समुचित माना जा सकता है।

परन्तु काल के भेद में या व्यक्तियों के भेद में पाये जाने वाले विचारों के भेद में आवश्यक रूप में आग्रह-पूर्वक एकवाक्यता या समन्वय के स्थापित करने का प्रयत्न करना स्पष्टतः उपर्युक्त प्रवृत्ति की उचित सीमा का अतिक्रमण माना जाएगा।

भारतवर्ष में इस प्रकार औचित्य के अतिक्रमण की कहीं तत्तु चेष्टा की जाती रही है, इसको हम दो-चार निदर्शनों द्वारा दिखाना चाहते हैं।

विभिन्न कालों में और विभिन्न विचारकों द्वारा प्रतिपादित मतों के संग्रह-रूप उपनिषदों में यह स्वभावतः संभव है कि विश्व के मूल-तत्त्व के विषय में मुनियों के विचारों में परस्पर थोड़ी-बहुन विभिन्नता पायी जाए। इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि एक जगह उस मूलतत्त्व को ब्रह्म के रूप में, अन्यत्र प्राण या आकाशादि के रूप में वर्णन किया गया है। इस प्रकार का दार्शनिक मतभेद समार में सब जगह और सब कालों में पाया जाता है। ऐसा होने पर भी, वेदान्त-सूत्र (उत्तर मीमाम्सा) की रचना का मुख्य उद्देश्य यही है कि किसी प्रकार उपनिषदों के अन्तर्गत विभिन्न मतों में एकवाक्यता दिखायी जा सके।

इसी प्रकार धर्मशास्त्रों और कर्मकाण्डों में पाये जाने वाले परस्पर विरोधों या विभिन्नताओं का समाधान, बालभेद से होने वाली स्वाभाविक परिवर्तनशीलता के आधार पर न मान कर, प्रायेण उक्त प्रवृत्ति के द्वारा ही दिखाने का प्रयत्न किया जाता रहा है।

तथाकथित आधुनिक दर्शनों में जो परस्पर विरोध पाया जाता है, उसका समाधान भी प्रायेण उक्त प्रवृत्ति के द्वारा ही किया जाता है।

अपने-अपने सम्प्रदायों में शब्द-प्रमाण के रूप में अभ्युपगत सिद्धान्तों की दृष्टि से प्राचीन साहित्य में पायी जाने वाली तद्विरुद्ध बातों के समाधान के लिये सांप्रदायिकों का यही सबसे पहला उपाय है। इतिहास में उनके अपने

सिद्धांतों का विरोध घटनाएँ हुई हैं इसकी तात्पर्यात्मकता के मानने की नहीं। कालक्रम से विचारों में परिवर्तन होता रहता है क्योंकि भी प्रायः नहीं मान सकते। इन्होंने कारणों से विदेशी जातियों के ज्ञान का सत्यापन इतिहास प्रसिद्ध भारतीयकरण को अथवा इतिहास से सिद्ध दूर दृष्टान्तों के लिए भारतीयों की समुदायों को हमारे साम्प्रदायिक धर्म शास्त्री काई मूल्य नहीं देते। प्रचलित धर्मशास्त्रों के सिद्धांतों के विरोध विधवा विवाह, अश्विनी का संन्यास प्रहण, ब्रह्म विधोपयोग या वधपरिवर्तन जैसी बातें यदि प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित मिल जाती हैं तो उसका समाधान भी ये साम्प्रदायिक विद्वान किसी प्रकार उपयुक्त समझेंगे या नहीं प्रवृत्ति के द्वारा ही करते हैं।

ऐतिहासिक बुद्धि का प्रभाव और विचार स्वतंत्रता के सिद्धान्त को न मानने के साथ साथ एक एकात्मता या समन्वय की प्रवृत्ति का एक बड़ा दोष यह भी है कि वह प्रायः अपने-अपने सम्प्रदाय में ही सीमित रहता है। यदि साम्प्रदायिक भावना में रहित होकर इस प्रवृत्ति का उपयोग विभिन्न सम्प्रदायों के परस्पर समन्वय के लिए किया गया होता तो यह कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होनी और भारतीय संस्कृति के पास हमें यह सत्ता मिलती। परन्तु सङ्कुचित उपयोग के कारण इससे साम्प्रदायिकता को ही बल मिलता रहा है।

जमा हम अगर कहें कि भारतीय संस्कृति की विचार धारा भी एकात्मता या समन्वय की प्रवृत्ति को मानती है। परन्तु उसका दृष्टिकोण सङ्कुचित न हो कर परम उच्च है। इसका कारण उसकी अनन्त विचार पद्धति ही है जिसका निर्माण हम आगे देखेंगे।

एकात्मता या समन्वय की प्रवृत्ति से साम्प्रदायिकता का सब कुछ काम नहीं चलता इसीलिए विचारों को उच्च अर्थोत्तर या व्याख्या के की प्रवृत्ति का आश्रय लेना पड़ता है। उन्नी के स्वरूप को हम नीचे लिखते हैं।

अर्थोत्तर या व्याख्या भेद की प्रवृत्ति

एकात्मता या समन्वय की प्रवृत्ति के साथ साथ साम्प्रदायिक विचार-पद्धति की दूसरी प्रवृत्ति ज्ञान वाक्या या सम्पूर्ण ग्रंथों के ही अर्थोत्तर या व्याख्या कर देने की है। भारतवर्ष में यह प्रवृत्ति भी पराधातु तक पहुँची हुई मिलती है।

इस प्रवृत्ति का आरम्भ हम ब्राह्मण ग्रंथों के बीच से ही मिलता है। उपनिषद् में भी यह प्रवृत्ति दिखायी देती है। किसी भी मन्त्र या श्रुति का व्याख्या कई प्रकारों से का जा सकती है और इस प्रकार उनमें अनेक अतिप्राय या मन की पुष्टि की जा सकती है प्रायः ऐसा मानकर ही अनेक मन्त्रों या श्रुतियों का उद्धरण इन ग्रंथों में मिले पाते हैं।

यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे बढ़ती गयी। अंत में तो पूरे पूरे ग्रंथों की अपने-अपने मन के अनुसार व्याख्या करने का रिवाज सा हो गया। अनेक सवने अनेक विद्वानों (उपनिषद् वेदान्तगुरु और भगवद्गीता) की विभिन्न साम्प्रदायिक व्याख्याएँ हैं। शंकर, रामानुज, मध्व आदि साम्प्रदायिक आचार्यों को इन ग्रंथों पर व्याख्याएँ तो प्रसिद्ध ही हैं। इधर नवीन साम्प्रदायिक विद्वानों ने अपनी-अपनी व्याख्याएँ लिखी हैं।

अनेक अनेक सिद्धांतों को साम्प्रदायिक दृष्टि से सिद्ध करने के लिए साम्प्रदायिक विद्वानों का बराबर यही प्रयत्न रहा है कि किसी न किसी प्रकार अपने पांडित्य के बल पर प्रामाणिक ग्रंथों की अपा अनुसार व्याख्या करने अनेक सिद्धान्तों की पुष्टि की जाए।

आजकल तो यह प्रवृत्ति उग्ररूप की सीमा तक पहुँच गयी है। वह के मन्त्रों को बालमूत्र मान कर उनमें से अपने-अपने अर्थोत्तर अथवा निरालने की चेष्टा की जाता है। आधुनिक ज्ञान का कोई विज्ञान या आविष्कार ऐसा न होगा जिसका वे से सिद्ध करने का प्रयत्न न किया जाता। रत्न और तार का ताँबे से निरालना साधारण की बात है। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि दूसरों द्वारा आविष्कृत विज्ञानों की पुष्टि में ही ऐसा किया जाता है। ये वैज्ञानिक विद्वान स्वोच्च रूप में कार्यरत विज्ञान या आविष्कार वे से नहीं निराल पाते।





इन साम्प्रदायिक विद्वानों की कृपा से वेद भानमती का पिटाया बन गया है। हाथ डालते ही मनचाही वस्तु उममें से निकाली जा सकती है। वेद के अनेक स्थलों से जहाँ एक पक्ष मृतक-श्राद्ध, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, यज्ञों में पशुबलि, वेद में इतिहास आदि की पुष्टि करता है, वहाँ दूसरा पक्ष उन्हीं स्थलों से तद्विपरीत अर्थ निकालने का प्रयत्न करता है। एक पक्ष में स्वीकृत 'देवों को' जिनके मानने पर सारा वैदिक कर्मकाण्ड निर्भर है, दूसरा पक्ष 'विद्वानों' के अर्थ में लेता है। इस दृष्टि में वेद और वैदिक साहित्य में 'देव' 'पितर,' 'मास' जैसे शब्दों का भी अर्थ अनिश्चित हो रह जाता है। यदि वास्तव में ऐसा ही है, तब तो प्रश्न किया जा सकता है कि वेदों का महत्त्व ही क्या रह जाता है?

एकवार सन् १९४० केलगभग वेदों के एक प्रसिद्ध विद्वान ने हमारे सभापतित्व में दिये गये भाषण में 'माटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिफार्म' के अनुसार जो धारामभाए आदि भारतवर्ष में चलाई गयी थी उनके स्वरूप को वेदों के प्रमाणों से मिट्ट करके दिखला दिया था। हमारा विश्वास है कि वही विद्वान् वर्तमान भारतीय सविधान को अथवा किसी अन्य सविधान को भी उसी सरलता से वेदों के आधार पर सिद्ध कर सकेगे।

हम नहीं कह सकते कि इस प्रकार, वर्तमान को प्राचीन काल में आरोपित करने की प्रवृत्ति पर निर्भर, माने अर्थ मान्य ग्रन्थों पर लादने से हम उनका मान बढ़ाते हैं या उनको उपहासास्पद बनाते हैं।

कुछ भी हो, यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकों की उपर्युक्त अर्थान्तर करने की उपहासास्पद प्रवृत्ति का मूल न तो इतना शब्द-प्रमाणवादिता में या सत्यान्वेष्ट की भावना में होता है, जितना कि "घट भित्त्वा पट छित्त्वा" के अनुसार सत्यार्थ की बलि भी दे कर अपने पक्ष की पुष्टि में होता है।

परन्तु अर्थान्तर करने की भी सीमा है। अनेक स्थलों में अर्थान्तर करने से भी साम्प्रदायिकों का काम नहीं चलता। वहाँ उन्हें प्रक्षिप्तवाद का आश्रय लेना पड़ता है। उसी का स्पष्टीकरण हम नीचे देते हैं —

प्रक्षिप्तवाद की प्रवृत्ति

मुख्य रूप से शब्द-प्रमाण को ही मान कर चलने वाले साम्प्रदायिक लोग, जब अपनी मान्यता को कोटि के ग्रन्थों में ऐसे स्थल पाते हैं, जिनकी न तो अपने सिद्धान्तों से एकवाक्यता दिखायी जा सकती है, और न व्याख्यानान्तर ही किया जा सकता है, उस दशा में वे उन स्थलों को विना किसी सकोच के आसानी से, प्रक्षिप्त (पीछे से मिलाया गया) कह देते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि ग्रन्थों में, विशेषतः प्राचीन ग्रन्थों में, वास्तविक रूप में भी प्रक्षेपों का होना सम्भव है। परन्तु इनका क्षेत्र तथा प्रकार भी परिमित ही होता है। वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर अनेक प्रकार के साक्ष्य से ही ऐसे वास्तविक प्रक्षेपों का निर्णय किया जा सकता है। केवल अपने सिद्धान्त के विरोध के कारण ही किसी स्थल को प्रक्षिप्त कह देना, सत्य की हत्या के साथ-साथ, दुस्साहस भी है। प्रक्षिप्तवाद की प्रवृत्ति के विशेष उदाहरणों के देने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी दो-चार उदाहरण देना यहाँ अनुचित न होगा।

मृतक-श्राद्ध, अवतारवाद, देवमंदिरों में मूर्तिपूजा, वैदिक कर्मकाण्ड में पशु-बलि आदि को न मानने वाले साम्प्रदायिक लोग जब मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों में मृतक-श्राद्ध, भगवद्गीता में अवतारवाद, वाल्मीकि रामायण में देवमन्दिरों में मूर्तिपूजा या इसी प्रकार की अन्य पौराणिक धर्म की बातें, तथा श्रौतसूत्रों और ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ में पशु-बलि के प्रतिपादक स्पष्ट स्थलों को पाते हैं, तब उनको प्रक्षिप्त कह कर ही किसी प्रकार विरोधियों से अपने प्राणों की रक्षा करते हैं। ये लोग कभी-कभी ऐसे ग्रन्थों के, तथाकथित प्रक्षिप्तांशों से रहित, 'विशुद्ध' संस्करणों के प्रकाशन का भी साहस करते हैं।

उपर्युक्त प्रक्षिप्तवाद से मिलती-जुलती ही साम्प्रदायिक विचार-पद्धति की कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ भी हैं, जिनका संक्षेप से निर्देशन करना यहाँ अनुचित न होगा।

साम्प्रदायिक विचार पद्धति की अन्य प्रयत्तियाँ

साम्प्रदायिक विचार धारा का प्रमाण के प्रायासों पर निर्भर है यह हम ऊपर बता चुके हैं। इसी कारण साम्प्रदायिक लोग ऐसा पद परम्परा से प्राप्त धार्मिक साहित्य में या तो प्रामाणिकता की दृष्टि से तरन्म भाव का अभाव बताते हैं या उसका अप्रामाणिक हो कहते हैं।

उदाहरण के तुराण उपपुराण का बड़ा बिलत साहित्य भारतीय परम्परा से बना आया है। वनमा पौरुष विषय हिन्दू धर्म के स्वरूप और विचारों की समझ के लिए उनको एक अथवा एक धार्मिक विचारों का सूत्र हैं। एतिहासिक सामग्री का दृष्टि से भी उनका अद्वितीय महत्व है। देश और विचार के विचारों से उनका महत्व का मुक्त बचत से स्वीकार करने लगे हैं।

ऐसा होना पर भी कुछ साम्प्रदायिक दृष्टि के नाम उनका निन्दा करने हुए नहीं करते उनका साथ ही प्रोत्साहित हैं।

इस प्रकार धार्मिक साहित्य में स्वयं प्रमाण और परत प्रमाण की कहानी भी एक प्रमाणवादी साम्प्रदायिकों का अनिर्हासिक मनोवृत्ति का ही परिणाम है।

१. साम्प्रदायिक साम्प्रदायिक निन्दा के आधार पर किसी एक विषय में परिवर्तन और धर्म की प्रामाणिकता दूसरी बात है। यह हमें नया प्रमाणों की ही कहानी है। परन्तु उसी धर्म के आदेश के कारण परम्परा से प्राप्त विचार विस्तृत साहित्य के प्रति विरोध और असन्तुष्टि का भावना किसी प्रकार धर्म नहीं कटो जा सकती।

सभी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति की एक दूसरी असन्तुष्टि का प्रवृत्ति और भी अधिक असम्भव होती है। इसका निम्नलिखित हमारे नवीन यथार्थ पद्धति और उससे प्रवृत्ति विचारों और आविष्कारों के प्रति उनकी स्पष्ट या अस्पष्ट असन्तुष्टि का प्रमाण है।

जहाँ तक भौतिक विज्ञान या आविष्कार का सम्बन्ध है यह प्रवृत्ति दो रूपों में प्रकट होती है। यदि उनका विषय में गुण १ और दोष २ होना हो सकते हैं। तब ही उनके दोषों पर ही बल दिया जाता है। जब गुण २ के हान पर गुण १ के लक्षण यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है कि उन विचारों या आविष्कारों का उत्पन्न हमारे प्राचीन धर्म में भी पाया जाता है।

परन्तु जो नूतन विचार और आविष्कार भौतिक नहीं हैं उनके विषय में तो साम्प्रदायिकों का प्रायः यही कहना होता है कि वे सामाजिकता के आधार से ही उत्पन्न हैं। १६वीं और १७वीं सताब्दियों में आया विज्ञान मानव ज्ञान विज्ञान पुरातन विज्ञान पुरातन विज्ञान मनोविज्ञान आदि अनेक नवीन विज्ञानों का जन्म दिया है। इन विज्ञानों का अनेक प्राचीन धारणाओं की चर्चा लगी है। प्रायः इनके प्रति साम्प्रदायिकों में तीव्र विरोध पावना पायी जाती है। ऐसे साम्प्रदायिक विज्ञानों की कमी नहीं है जो साम्प्रदायिकों के पक्ष पर जहाँ धर्म-मन्त्रों का ही उल्लेख होना चाहिये। इन नवीन विज्ञानों की हकीकतों को ही उनका गण्यन करते हैं। कभी-कभी वे यह भी कहने लगे जाते हैं कि इन प्राचीन विज्ञानों के चर्चा में प्राचीन विज्ञानों का एक अवलोकन प्रमाण है जिसका अन्तर्निहित नेत्रों के देश के प्राचीन विचारों और धारणाओं का चर्चा बहुधा ही है।

मानव में मशीन साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के लिए बहुत बड़ा बाधा की है। इसी अनुसार मानव मानवता स्थापित हो जाता है।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट हो गया कि साम्प्रदायिक दृष्टि के माध्यम से और अनुभव तथा की जाने वाली निरीक्षण का प्रमाण का ही प्रमाण है। ये साम्प्रदायिक विचार-पद्धति सामाजिकता के रूप में उभरे



अनर्थ की संपादिका बन जाती है। उससे एक ओर सत्य की हत्या का और दूसरी ओर विचार-म्व्रातय के सर्वथा प्रतिपेध का भय उपस्थित हो जाता है।

उसका एक बड़ा दोष यह भी है कि वह अपनी दृष्टि सदा अपने ही संप्रदाय के ग्रन्थों में परिमित या बद्ध रखनी हुई, न केवल आने से भिन्न संप्रदाय के ग्रन्थों के विषय में किन्तु देश की लम्बी परम्परा के विभिन्न स्तरों से सबद्ध विशाल साहित्य आदि के विषय में भी प्रायः उपेक्षा ही दिखाती है।

ऐसे ही कारणों से भारतीय सस्कृति की विचार-धारा के लिए, जिसका सम्बन्ध भारत के समस्त साहित्य और इतिहास से ही है, सकुचित सांप्रदायिक विचार-पद्धति को छोड़ कर, वैज्ञानिक विचार-पद्धति का ही अवलम्बन आवश्यक हो जाता है। उसी के स्वरूप और महत्त्व को हम संक्षेप में नीचे दिखाना चाहते हैं।

वैज्ञानिक विचार-पद्धति

वैज्ञानिक पद्धति का मुख्य आधार उसकी तुलनात्मक और ऐतिहासिक प्रक्रिया है। किसी विषय के स्वरूप को उपपत्ति और युक्ति के सहित समझने के लिए हमें उसके इतिहास और विकास के साथ-साथ उसकी वर्तमान आपेक्षिक परिस्थिति को भी ठीक-ठीक जानना आवश्यक होता है।

इसलिए व्यापक दृष्टि से भारतीय सस्कृति के स्वरूप, स्वभाव और विकास को, उसकी अत्यंत प्राचीन काल से आने वाली धारावाहिक जीवित परम्परा को, ठीक-ठीक समझने के लिए उसके इतिहास को जानने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए सत्य के अन्वेषण में तत्पर, किसी प्रकार के पूर्वाग्रह तथा पक्षपात से रहित, विवेचनात्मक व्यापक ऐतिहासिक बुद्धि की आवश्यकता है। इस ऐतिहासिक बुद्धि के परिपाक के लिए अन्य प्राचीन परम्परागत सस्कृतियों के परिविज्ञान के साथ-साथ भाषाज्ञान, मानवजातिविज्ञान, पुराणविज्ञान आदि नवीन विज्ञानों के सिद्धान्तों को भी जानने की अपेक्षा होती है।

भारतीय सस्कृति की कोई ऐतिहासिक विकासात्मक परम्परा है, यह दिखाने के लिए हमें अनिवार्य रूप से उसकी प्रगतिशीलता के सिद्धान्त को मानना आवश्यक हो जाता है। प्रगतिशीलता के सिद्धान्त को मान लेने पर ऐतिहासिक शोध में सांप्रदायिक विचार-पद्धति और उसकी पूर्वोक्त प्रवृत्तियों के लिए कोई स्थान ही नहीं रहता। सत्यान्वेषण की भावना से प्रवृत्त ऐतिहासिक का कर्तव्य है कि वह सब प्रकार के पूर्वाग्रह और पक्षपात से रहित हो कर भारतीय सस्कृति के विभिन्न कालों की वस्तु-स्थिति का निरूपण करे। इसलिए उसको प्रयत्न करना पड़ता है कि उसकी विवेचना पर किसी सांप्रदायिक भुकाव का, किसी प्रकार का अनुचित प्रभाव न पड़े और वह प्रत्येक काल के साथ न्याय कर सके। ऐसी अवस्था में न तो उसे बलात् कृत्रिम एकवाक्यता या समन्वय की, और न प्रक्षिप्तवाद के आश्रयण की अपेक्षा होती है। वह किसी भी वस्तु-स्थिति को अच्छे या बुरे रूपान्तर में दिखाना अपनी न्याय-बुद्धि के विपरीत ही समझता है।

एक काल को दूसरे काल में अध्ययन या आरोप करने की प्रवृत्ति अबुद्धि-पूर्वक सांप्रदायिकों के अतिरिक्त अन्य लोगों में भी देखी जाती है। उदाहरणार्थ, वेदमन्त्रों की व्याख्या में आजकल यह प्रवृत्ति प्रायः देखी जाती है। सच्चे ऐतिहासिक को उस प्रवृत्ति की ओर से अपने को सदा सचेत रखना पड़ता है।

भारतवर्ष में हम लोगों की प्रायेण यही प्रवृत्ति रही है कि हम बड़े बड़े धार्मिक आन्दोलनों को, अवतारी महापुरुषों को और बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक घटनाओं को पूर्वापर परिस्थितियों से असंबद्ध तथा असंपृक्त अथवा आकस्मिक घटना के रूप में ही देखते हैं। उदाहरणार्थ, भगवान् कृष्ण के अवतार के विषय में हमें इतने से ही सन्तोष हो जाता है कि कस आदि पापियों के सहार के लिए ही वह अवतार हुआ था। देश की धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि पूर्ववर्ती परिस्थिति में उस अवतार की आवश्यकता को हम नहीं ढूँढते। न यह जानना चाहते हैं कि देश की

परवर्ती परिस्थितियाँ पर उभरा चिरस्थायी अथवा अचिरस्थायी क्या प्रभाव पड़ा। परन्तु वस्तुनिष्ठ पद्धति का अनुसरण मैं हम इन सब चीजों का उत्तर देना आवश्यक नहीं जाना है।

जब भीतर जेहन में घापी का जाने में पड़ना बाधुमन्त्र की एवं विचार अस्तित्व हानी है और घापी भी उगी अवस्था का कारण हो जाता है। साथ ही आधी राज्य सम्पत्ति हो जान पर बाधु मन्त्र में अपने विचार प्रभाव का छाड़ जानी है। इसी प्रकार मृत्यु आत्मात्मा और अचानकी मृत्युगुणों की भूतवर्ती और परवर्ती परिस्थितियों में बाध कारण भाव की परम्परा रहनी है। वस्तुनिष्ठ पद्धति का वन्य है कि यह दूसरा पत्र लगाए और दूसरा निष्कर्ष पण करे।

वास्तव में किसी भी इतिहास का समान ही भारतीय संस्कृति का इतिहास भी लगा प्रकार की बाधकारण भाव की परम्पराओं का निमित्त है। इसका वन्य है कि हम वस्तुनिष्ठ पद्धति के अनुसरण में हम परम्परा की धारा का अध्ययन करें।

भारतीय संस्कृति का अन्तर् इतिहास में बाधकें का जो विभिन्न स्तर पाए जाते हैं हमारा वन्य है कि हम उन बाधकों को परस्पर सम्बन्ध का जो किन्तु प्रत्यक्ष स्तर की भूवाक्या और अन्तर्भावना का उन उन स्थितियों का जिनका कारण एवं स्तर के पदार्थ अन्तर् स्तर का आभा आवश्यक होता गया पत्र लगाएँ और इन प्रकार धारा बाह्य भाविन परम्परा के रूप में भारतीय संस्कृति का हम समझें। उद्युक्त प्रकार का अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय संस्कृति का विभिन्न बाधों के साथ हमारा एक केवल समन्वय की या सामान्य की ही भावना हो किन्तु सहानुभूति भी हो।

•



पालि वाङ्मय में निगण्ठ और निगण्ठ नातपुत्त

अणुव्रतपरामर्शक मुनिश्री नगराजजी



आगमों में जहां बुद्ध के नामोल्लेख की भी अल्पता है, वहाँ त्रिपिटकों में महावीर-सम्बन्धी घटना-प्रसंगों की बहुलता है। वहाँ उन्हें 'निगण्ठ नातपुत्त'^१ कहा गया है। 'निगण्ठ' शब्द सामान्यतः जैन भिक्षु का सूचक है। 'नातपुत्त' शब्द भगवान् महावीर के लिए आगम-साहित्य में भी प्रयुक्त है।^२ वे घटना-प्रसंग कहीं तक यथार्थ हैं, इन चिन्तन में यदि हम न जायें तो निम्नान्वेह कहा जा सकता है कि वे बहुत ही मरम, रोचक और प्रेरक हैं। दोनों धर्म-संघों के पारस्परिक सम्बन्धों, सिद्धान्तों व धारणाओं पर वे पूरा प्रकाश डालते हैं।

महावीर और बुद्ध का एक-दूसरे में कभी साक्षात् हुआ, ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता। एक समय में एक ही नगर के विभिन्न उद्यानों में वे रहे, ऐसे अनेक उल्लेख अवश्य मिलते हैं। गृहपति उपालि के चर्चा-प्रसंग व अमिबधक पुत्र ग्रामणी के चर्चा-प्रसंग पर दोनों धर्मनायक नालन्दा में थे। मिह्र सेनापति के चर्चा-प्रसंग पर दोनों वैशाली में थे। अमय राजकुमार की चर्चा में दोनों के राजगृह में होने का उल्लेख है। महामकुलुदायी मुत्तन्त में तो सातों धर्मनायकों का एक ही वर्षावाम राजगृह में होने का उल्लेख है। 'दिव्यशक्ति-प्रदर्शन' के घटना-प्रसंग पर सातों धर्मनायकों के एक साथ राजगृह में होने का उल्लेख है।^३

साम्प्रदायिक संकीर्णता (Odium Theologicum)

त्रिपिटकों में आये सभी समुल्लेख भाव-भाषा में बुद्ध की श्रेष्ठता और महावीर की स्थूना व्यवहृत करते हैं। जातरुट्ठकथा,^४ धम्मपद-अट्ठकथा^५ के कुछ प्रसंग इस साम्प्रदायिक संकीर्णता (Odium theologicum) के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। एक प्रसंग ऐसा भी है, जो सामान्य अवलोकन में बहुत निम्न श्रेणी का लगता है पर मूलतः वह वैसा नहीं है। महावीर के निर्वाण-संवाद को लेकर पहुंचने वाले भिक्षु चुन्द ममणुद्देश को बुद्ध के पास ले जाते हुए आनन्द कहते हैं—“अतिय खो इदं, आवुसो चुन्द, कयापामत भगवन्तं दत्तनाय” अर्थात्, आवुस चुन्द ! भगवान् के दर्शन में यह संवाद कयाप्राप्त (उपहार) होगा। सामान्यतः यह लगता ही है कि महावीर का निबन्धन-संवाद पाकर आनन्द को कितना हर्ष हुआ है और उमने उने उपहार-रूप माना है। मैंने अपने एक प्राक्कन निबन्ध में उसकी तथारूप आलोचना भी

१ कहीं-कहीं निगण्ठ नायपुत्त और निगण्ठ नाटपुत्त भी है।

२ दशवैकालिक सूत्र, ६, २०।

३ देखें इसी निबन्ध में क्रमशः प्रसंग संख्या २, ६, १, ३, १३, और १७।

४ इस निबन्ध में प्रसंग संख्या ३४, ३५, ३६।

५ इस निबन्ध में प्रसंग संख्या १७, १८, ४०।

की है।^१ पर साहित्यिक व सत्य सत्ता का चरम भी वी चुन आन के पास आता है वहाँ पर भी आन करने है—
अतः जो आनुम पुत्र कथाभात दस्तनाय।^२ इस प्रमाणित होता है कि वह बोट-गरमरा की या उस युग की
वर्तित मात्र है। इसने वृत्ता अभिव्यक्त नहीं होती।

प्रसंगों की समप्रती

प्रस्तुत नय म त्रिपिटक-साहित्य व उन समुत्पत्ति का परिचय दिया गया है जिनमें किसी न किसी रूप म मन्त्राचार
का सम्बन्ध आता है। साथ साथ में संस्कृतों भी दे लिये गये हैं जो निम्न-व-सम्प्रदाय के संबंध में हैं। डॉ० मन्त्र जर्जोवी
की 'मन्त्र भूतों का भूमिका' म त्रिपिटकों में आये महावीर व निर्धर्म-सर्वेच्छी समुत्पत्तियों की सभी सामक शक्यता प्रस्तुत
किया है। वे समुत्पत्त ११ हैं। डॉ० जर्जोवी की धारणा में सब सब की प्रमाणित सामग्री का व मन्त्र सत्ता है।
प्रस्तुत प्रकरण में वे समुत्पत्त ११ की श्रमिता ३१ हो गये हैं। इन मन्त्र प्रसंगों में से कुछ उन प्रयोगों का हो सकते हैं जो
जो मन्त्र समग्र तत्त्व प्रमाणित न हुए हैं पर कुछ समुत्पत्त म भी हैं जो डॉ० जर्जोवी की निगण्ड से बच रहे थे। निगण्ड
एक ही रूप के कुछ समुत्पत्त डॉ० जर्जोवी के संशोधन में आये हैं और कुछ नहीं। डॉ० मन्त्राचार्य में भी निगण्ड
नातुत का पर जो सत्ता आवलिन किये हैं व भी परिपूर्ण नहीं हैं।

प्रस्तुत सर्वेच्छी सर्वेच्छी विषय का समग्र सर्वेच्छी है। यह वह दोनों की वृत्ति होगी पर इन प्रयोग में
मन्त्राचार्यता अवश्य बरना गई है कि निगण्डों म से बोध भी प्रमाणित न रह जाये। मन्त्राचार्यों के मन्त्र प्रयोगों
का प्रमाण भी यथामन्त्र इन सर्वेच्छी म दे लिये गये हैं। कहा जा सकता है प्रस्तुत लघु बोट साहित्य म निगण्ड नाम
पुत्र विषयक प्रमाण का मन्त्र पूरा और प्रामाणिक आवलन बन गया है जो मन्त्राचार्य विषय के पाठकों व गवयका के
लिए महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध होगा।

संशोधन

प्रमाण में के म प्रयोग हैं। प्रस्तुत आलोचना में उन्हें सारे विभागों में बांटा गया है। १. प्रमाण प्रमाण
के घटना प्रमाण है। उद्देश्य प्रमाण है। प्रमाणों की संख्या १३ व और ३४ है। यह प्रमाण प्रमाणों के समग्र में
साक्षित पक्षिय दिये गये हैं तथा मन्त्राचार्य सौम्य सौम्य भी की गई है।

चचा प्रसंग

१ सिंह सेनापति

यह प्रकरण निगण्डिका का है। निगण्ड नामपुत्र का आवक व लिच्छविया का सेनापति सिंह वृद्ध से बैठा।
म चर्चा करता है व उनका अनुयायी बन जाता है।

१ भिक्षुसूत्रिण पाली वाङ्मय म मन्त्राचार्य महावीर 'नील' सित धी अनं श्रेयान्तर सौम्यो महागनी कलकत्ता
१९९० सप्त २ पृ० ६ से १०।

२ समग्र निगण्ड पुत्र पुत्र ४५.२३

३ BI vol XLV Introduction pp XIV XXIII

४ Dictionary of Pali proper Names vol II pp 61 65

५ निगण्डिका, महागनी मन्त्राचार्य सप्त ६४ व आवलन पर।



समीक्षा

मिह मेनापति और नयाप्रकार के उद्बन्ध का आगम-माहित्य में वही आश्रय नहीं मिलता। महावीर के किसी अनुयायी का बुद्ध की शरण में आ जाना और बुद्ध के किसी अनुयायी का महावीर की शरण में आ जाना, कोई अद्भुत व असम्भव बात नहीं है, पर जैन परम्परा में इस घटना या यन्त्रिचिन् भी समुल्लेखिता तो वह पूर्णतया ही ऐतिहासिक रूप ले लेती। अथर्व की कोटि में मानने या तो अब भी कोई आधार नहीं है।

गुजराती साहित्यकार श्री जयभिनय ने अपने उपन्यास 'नरदेवरी' में मिह मेनापति को महावीर के प्रथम अनुयायी चेतक होने की गवाहना व्यक्त की है, पर वह यथार्थ नहीं है। बौद्ध परम्परा में चेतक का वही नामोल्लेख नहीं है, न उस प्रकार के किसी अन्य जीवनवृत्त की भी ज्ञाती बता मिलती है। जैन परम्परा के अनुसार यह वैशाली गणतन्त्र का अधिपति (राजा) था और उसके अग्रिम ६ मन्त्री ६ शिष्यों, काशी-कोशाल के १८ गणराजा थे।^१ जैन मिह मेनापति के रूप में उसे देखने का कोई आधार नहीं मिलता। डॉ० ज्योतिप्रसाद का यहना है— "महाराजा चेतक के दया पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र मिह अथवा मिहभद्र वज्जीगण के प्रसिद्ध मेनापति थे।"^२

मिह मेनापति का विस्तृत वर्णन बौद्ध साहित्य में भी नहीं मिलता। इस घटना-प्रसंग के अनिश्चित दृश्या नामोल्लेख अगुत्तरनिकाय^३ में बुद्ध ने की गई दान-सम्पत्ति चर्चा में आता है या धेनीगावा^४ में मिह निरगुणी के विमूढ के रूप में आता है।

उक्त प्रकरण में महावीर को द्विप्रावादी व्यक्त किया गया है। द्विप्रावाद मगध उस समय में बहुत व्याप्त श्रम का वाची रहा है। द्विप्रावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद और जिनप्राद के ३६३ भेद जैन परम्परा में माने गये हैं।^५ पर क्रियावाद और अक्रियावाद के इन भेदों में महावीर का अभिमत नहीं है। वे सब पर-मत की चर्चाएँ हैं। महावीर को जो त्रिप्रावादी कहा गया है, अपेक्षा-भेद में यह भी व्यर्थ माना जा सकता है। उसका आधार सूत्रकृताग में मिलता है। वहाँ बताया गया है कि जो आत्मा को जानता है, जो लोग को जानता है, जो गति और अन्तर्गति को जानता है, जो नित्य-अनित्य, जन्म-मरण और प्राणियों के गति-श्रम को जानता है, जो तत्त्वों की वेदना का जानता है, जो आश्रय और सवर को जानता है, जो दुःख को तथा निर्जरा को जानता है, वही द्विप्रावाद को यथार्थ रूप में कह सकते हैं।^६ जो इन तत्त्वों को जानता है अर्थात् स्वीकार करता है, वही द्विप्रावादी है।^६

१ पृ० २३४।

२ वेसालिए नयरीए चेडगस्य रज्जो-निरयावलिकामुत्र, १६-२।

३ नवमल्लई नवलेच्छई कासी कोसलगा अट्ठारस चि गणरायाणो।

—निरयावलिकामुत्र, प्र० आगमोदय समिति, पत्र १७-२।

४ भारतीय इतिहास—एक दृष्टि पृ० ५६।

५ अगुत्तर निकाय, ३-३८, ४-६६।

६ गाथा ७७-८१।

७ सूत्रकृताग सूत्र श्रु० १, गा० १, निर्युक्ति गाथा ११६-१२१

८ अत्ताण जो जाणति जो य लोग, गइ च जो जाणइ णागइ च।

जो सासयं जाण असासय च, जाति च मरण च जणोववाय।

अहो चि सत्ताण विउट्ठण च, जो आसय जाणति सवर च।

दुक्ख च जो जाणति निज्जर च, सो भासिउमरिहई किरियवाद ॥

—सूत्रकृताग सूत्र, श्रु० १, अ० १२, गा० २०-२१।

९ 'यश्चेतान् पदार्थान् 'जानाति' अभ्युपगच्छति स परमार्थतः क्रियावाद जानाति।'।

—सूत्रकृताग वृत्ति, श्रु० १, अ० १२, गा० २१

बन्तु तो म और अनेकात्तवाणी थे। उनका ज्ञान तो आहुतु विचारण पमोस्य^१ की उक्ति में व्यक्त होता है। जिसका हृद है नार और क्रिया की युगपत् स्थिति में ही मोक्ष की सम्भावना है।

उक्त प्रसंग में बुद्ध ने भी तो मन्त्रोद्बुद्धित मन-मुचरित आदि व अपेक्षा के^२ से स्वयं को क्रियावादी और अभियावादी श्रेणी हो बताने का प्रयत्न किया है।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां व लिंग संसाधार का स्पष्ट विधान इसी घटना प्रसंग में बना है। अष्टष्ट अभ्युत व अपरिणिजित माग का बुद्ध ने ग्राह्य कहा है। निगण्डों ने यहाँ उद्दिष्ट माग का विरोध किया है। आन्धकमार प्रकरण^३ में भी उद्दिष्ट माग को ग्राह्य कहा है।

२ गृहपति उपालि

मज्झिमनिकाय^४ क इस प्रसंग में निगण्ड नातपुत्र का साथ दीप सम्म्वी निग्रय व आथक गृहपति उपालि नाम का बुद्ध से बर्चा करते हैं। अन्य व गृहपति उपालि बुद्ध का परमाणुत उपासक बन जाता है।

समीक्षा

उपाति नामक कोई बरिष्ठ उपासक महावीर का था ऐसा आगम साहित्य में नहीं मही मिलता है। जन भिक्षु इनर मित्रा के प्रति बगान प्रकट करे एगी भी परम्परा नहीं है। दीप तपस्वी निग्रय और बुद्ध व दीप हुए बार्ताग्य और सम्बोधन आदि से यह भी प्रतिबिम्बित होता है कि बुद्ध युवा हैं और दीप तपस्वी निग्रय बयोवृद्ध। इसमें महावीर का चैष्ट हाना और बुद्ध का छोटा होना भी पुष्ट होता है।

दण और वस की बचा म दोनों ही गान्धर्व दूतों के पर्यायवाची हैं। दण धान का उपयोग आगमों में भी इसी अर्थ में मिल जाता है।^५ मन-वस आदि का जन परम्परा में कोई विरोध नहीं है। महावीर के मन को एका त रूप से कायिन वम प्रमाण बनलाना यथाय नहीं है। पाप पण्य के विचार में जन पद्धति के अनुसार मन वचन और काय—इन तीनों की ही सापक्षता है। मन-वस की मायता व पापक अनेक आधार जन परम्परा में प्रसिद्ध हैं। प्रवन्तवद राजपि वर मनान्द सन्तुन मल्लय की मानसिक स्थिति इन्द्र मुनि कर करने प्रमाण में बाधर (व विगय) का छोला आदि इसने चलत उपाहरण हैं।

हा० जकावी ने उपालि के घटना प्रसंग पर समीक्षा करत हुए लिखा है—‘महावीर का कायिक पाप का बड़ा यताना आगम-सम्मत ही है। मूलकताग २ ४ तथा २ ६ में इस अधिमत की पट्टि मिलती है।^६ हा० जकावी की यह समीक्षा यथाय नहीं है कि बर्चा बहाँ जो कहा गया है उसका हान इतना अधिक नहीं है। पाप-दण्ड भा एष पाप वय का निमित्त है और उपागम मन्त्राण्ड की एकात्तवाणि का किया गया है। इस प्रसंग में निग्रय को तीन जल का परिस्वागी व उज्ज्वलमयी बताया है जो जन सामुद्रा की त्रिया से गुमयन ही है।

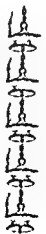
१ मूलकताग मूल ध १ अ १२ गा० ११।

२ मूल उपास इह मारियाण उद्दिष्टमत्त व वगण्यता। मूलकताग मूल ध २ उ० ६ गा० १७।

३ मज्झिमनिकाय उपालि मुत्तत २ १ ६।

४ उपालोप रपा० ३ म १२६ आवश्यक मूल वचन व्यर्थवचन।

५ S.B.E. vol XLV Introduction p XVII



३ अभय राजकुमार

मज्झिमनिकाय^१ के इस प्रसंग में निगण्ठ नातपुत्त के आदेशानुसार अभय राजकुमार बुद्ध ने राजगृह में चर्चा करता है और बुद्ध का शरणागत उपामक बन जाना है।

समीक्षा

अभय राजकुमार का वर्णन दोनों ही परम्पराओं में विपक्ष रूप में मिलता है। बौद्ध परम्परा जहाँ मानती है कि वह जैन-से बौद्ध बना, जैन परम्परा के अनुसार तो महावीर के मघ में दीक्षित हुआ और वहीं भिक्षु पर्याय में उसका निधन हुआ।

‘अपदान’ में भी अभय और महावीर के उन्नी पटना-प्रसंग का उल्लेख हुआ है।^२ वहाँ अभय राजकुमार अपने अतीत जीवन की गाथा में महावीर ने विलग होकर बुद्ध की शरण में जाने की बात कहता है। उल्लेखनीय यह है कि बुद्ध की स्तुति में भी वह वहाँ ‘कित्तिपित्वा जिनवर, कित्तितो होमि सच्चदा’ ही कहता है।

४ निर्ग्रन्थो का तप

मज्झिमनिकाय^३ के इस प्रसंग में बुद्ध ने निगण्ठों के साथ तपश्चर्या के विषय में हुए अपने वार्तालाप को महा-नाम श्राव्य को सुनाया है।

समीक्षा

यहाँ सर्वज्ञता और कठोर तपश्चर्या का जो दिग्दर्शन कराया गया है, वह जैन मान्यता ने प्रतिकूल नहीं है। अन्य वितर्क तो साम्प्रदायिक पद्धति के हैं ही।

५ कर्म-चर्चा

यह प्रकरण ‘भी मज्झिम निकाय’ का है। इसमें निगण्ठों के साथ ‘कर्म-निन्दान्त’ के विषय में हुई बुद्ध की चर्चा का, विस्तृत विवेचन है।

समीक्षा

उक्त प्रकरण में सर्वज्ञता और कठोर तपश्चर्या का वर्णन तो लगभग वैसा ही है, वैसा चुल्लुदुवखल्लन्ध सुत्त में किया गया है। इस प्रसंग की नवीन चर्चा वेदनीय श्रवेदनीय कर्म की है। सभी प्रश्नों का उत्तर निगण्ठों ने निषेध की भाषा में दिलाया गया है। वस्तुस्थिति यह है कि जैन कर्मवाद में निकाचित कर्माभ्यास की अपेक्षा में तो उक्त निषेध अर्थार्थ माने जा सकते हैं, किन्तु अन्य उद्वर्तन, अवर्तन, उदीरण, सक्रमण आदि कर्माभ्यासों की अपेक्षाओं में अधिकांश निषेध अर्थार्थ प्रमाणित होते हैं।^४

६ असिबन्धकपुत्र ग्रामणी-

यह प्रसंग सयुत्तनिकाय^५ का है। इसमें निगण्ठ नातपुत्त का श्रावक असिबन्धकपुत्र ग्रामणी के साथ बुद्ध चर्चा करते हैं और अन्त में उसे अपना उपामक बना लेते हैं।

१ मज्झिमनिकाय, अभयरजकुमार सुत्तन्त, २-१-८।

२ अपदान, ५४-४-२१६ से २२१।

३ मज्झिमनिकाय, चुल्लुदुवखल्लन्ध सुत्तन्त, १-२-४।

४ मज्झिमनिकाय, देवदह सुत्तन्त, ३-१-१।

५ देखें कर्माभ्यास के भेद-प्रभेद, स्थानाग सूत्र, स्था० ४।

६ सयुत्तनिकाय, सखसुत्त, ४०-८।

समीक्षा

आगम साहित्य में अविचर्यपत्र ग्रामणी नाम का कोई व्यक्ति नहीं मिलता। त्रिविध साहित्य में भी ग्रामणसंयुक्त के अतिरिक्त और कहीं किसी चर्चा विधान नहीं मिलती। ग्राम का अनुशा इस अर्थ में हर ग्रामणी कहा गया है।

अहिंसा सत्य आदि चार यमा की चर्चा यहाँ की गई है। बुद्ध ने इनका स्मरण किया है पर यथाथम वाच्य वाच्य से अधिक वह कुछ नहीं। वस्तुतः तो बुद्ध स्वयं अहिंसा सत्य आदि का इसी प्रकार में उपास्य बनाने में। पञ्चमीन में भी चार नील चतुर्थीय धर्म रूप ही तो हैं। प्रस्तुत प्रकार में मंत्री बहणा आदि चार भावनाओं का समुद्र लेख हुआ है जो पातञ्जल योगशास्त्र में तथा उन परम्परा में भी अभिहित है।

७ नाल दा में दुर्भिक्ष

यह प्रसंग भी संयुक्तनिर्णय का है। इसमें निगण्ट नातपुत्त का सारा संक्षिप्तवचन ग्रामणी बुद्ध के साथ चर्चा करते हैं। यह चर्चा नातदा में सब होती है जब वहाँ बात बना दुर्भिक्ष था।

समीक्षा

आगम साहित्य में नातदा की दुर्भिक्ष स्थिति का कोई उल्लेख नहीं है।

प्रस्तुत प्रकार से दुर्भिक्ष को स्पष्ट बताया है कि महावीर और बुद्ध एक ही बात में अपना अपनी भिक्षु परिषद सहित नातदा में थे।

८ चित्र गृहपति

संयुक्तनिर्णय के इस प्रसंग में बुद्ध का उपासक विषय चित्र गृहपति निगण्ट नातपुत्त से कुछ प्रश्नोत्तर करता है।

समीक्षा

अविवेक अविवार समाधि का उल्लेख गुरुत्व ध्यान के द्वितीय चरण के रूप में जन दान में मारा है। चित्र गृहपति मन्त्रिणासल ग्राम का निवासी व वापाध्यय था।^१ धर्म कथा में वह बहुत कुशल था। अपने भद्र कामभू नात अनेक काश्यप आदि अनेक जाति से चर्चा की थी।^२ बुद्ध ने उस धर्मनिराग में अग्रगण्य कहा।^३

१ यो पाण नातिपातेति धुसावा न भासति सोऽ अदिन नादिपनि परदार न गच्छति।

सुरामेरयपान च यो गरी नानुपुञ्जति पहाय पञ्च वेराणि सोत्तवा इति बुद्धेति।

—अनुत्तरनिवाय, पञ्चनिपात १। १८। १७६।

२ समाधिपा १। ३३।

३ नातमुपास्य भावना १३ से १६।

४ संयुक्तनिकाय कुलमुत्त ४ १६।

५ संयुक्तनिकाय निगण्टमुत्त ३६ ८।

६ जनसिद्धांत शीपिका ५। ३४।

७ Dictionary of Pali Proper Names vol I. p 805

८ संयुक्तनिर्णय नातयत्तन मुत्त चित्तसंयुत्त।

९ अनुत्तरनिवाय एतद्वगवणा मुत्त।



६ कुतूहलशाला सुत्त

यह प्रसंग भी सयुक्त निकाय^१ का है। बल-गोत्र परिग्रान्तक बुद्ध ने मृत श्रावकों की गति के विषय में प्रश्न उपस्थित करता है और बताता है कि निगठ नातपुत्र प्रभृति छहों धर्मानायक अपने मृत श्रावकों के विषय में किये गये प्रश्न का सही उत्तर देते थे।

समीक्षा

जैन धारणा के अनुसार मृत की गति को जान लेना बहुत नाधारण बात है। महावीर तो कैवल्य-सम्पन्न थे। मृत की गति तो अवधिज्ञान ने भी जानी जा सकती है।

१० अभय लिच्छवी

यह प्रसंग अंगुत्तरनिकाय^२ का है। वैशाली में अभय लिच्छवी व पण्डित कुमार लिच्छवी बुद्ध के भिन्न आयु-प्मान् आनन्द के पाम खाते हैं। अभय लिच्छवी के अनुसार निगठ नातपुत्र सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, और तपस्या ने कर्म-निर्जरा व दुःख-क्षय का निरूपण करने हैं। इस विषय में वह बुद्ध का अभिमत पूछता है।

समीक्षा

अभय लिच्छवी का उल्लेख प्रस्तुत प्रकरण के अनिग्विण्ण साल्ह सुत्त^३ में भी आता है। वहाँ भी वह साल्ह लिच्छवी के साथ बुद्ध ने चर्चा करने के लिये प्रस्तुत होता है। यहाँ यह स्वयं प्रश्न करता है, वहाँ उसका महवर्ती साल्ह लिच्छवी। अंगुत्तरनिकाय के अग्नेजी अनुवाद में डा० बुद्धवर्द ने अभय लिच्छवी और अभय राजकुमार को एक ही मान लिया है।^४ पर वस्तुतः ये दोनों ही व्यक्ति पृथक्-पृथक् हैं। अभय राजकुमार राजगृह का निवासी तथा राजा विम्बिसार का पुत्र है जबकि अभय लिच्छवी वैशाली का कोई क्षत्रिय कुमार है।

प्रस्तुत प्रकरण में तप-विषयक जो चर्चा की है, वह जैन धारणा के सर्वथा अनुकूल ही है। 'निर्जरा' शब्द का उपयोग बहुत यथार्थ है।

११ लोक सान्त-अनन्त

अंगुत्तर निकाय^५ के इस प्रसंग में बुद्ध के पाम आकर दो ब्राह्मण पूरणकाश्यप व निगठ नातपुत्र के लोक की सान्तता-अनन्तता विषयक मिद्धान्तों की चर्चा करते हैं।

समीक्षा

उक्त प्रकरण में दो लोकायतिक पूरण काश्यप और निगठ नातपुत्र के लोकमिद्धान्त की चर्चा करते हैं। इस चर्चा में मान्यता और अनन्तता का मतभेद भी स्पष्ट होता है, पर उक्त प्रकरण में एक मौलिक अमंगति यह है कि लोक सम्बन्धी धारणा में दोनों का मतभेद भी बताया जाता है और दोनों की धारणा समान रूप से अनन्त भी बताई जाती है। दोनों की धारणाओं में लोक अनन्त है, तो मतभेद कैसा? इसी प्रकरण के अग्नेजी अनुवाद में ई० एम०

१ सयुक्तनिकाय, कुतूहलशाला सुत्त, ४२-६।

२ अंगुत्तरनिकाय, तिरुनिपात, ७४ (हिन्दी अनुवाद) पृ० २२७-२२८।

३ अंगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात, महावग्ग, साल्ह सुत्त ४-२०-१६६।

४ The Book of Gradual Sayings, vol I p 200

५ सुत्तपिटके, अंगुत्तर निकाय पालि, नवक-निपातो, महावग्गो, लोकायतिक सुत्त, ६-४-७।



बुद्ध के विपुल या निरन्ध-धर्म में होना महावीर की ज्येष्ठता और निरन्ध-धर्म की व्यापकता का भी परिचायक है। बुद्ध के विचारों में निरन्ध-धर्म का यद्विचित् प्रभाव होने का भी यह एक निमित्त हो सकता है।

१३ सकुल-उदायी

मज्झिमनिकाय^१ में वर्णित उन प्रसंग में मनुज-उदायी परिव्राजक बुद्ध के साथ निगठ नातपुत्त श्री मरवेत्ता की चर्चा करना है।

समीक्षा

इन प्रसंग में 'धर्म-चर्चा' प्रकरण की तरह मरवेत्ता की ही कुछ प्रकारभेद में चर्चा है।

घटना-प्रसंग

१४ निर्वाण-सवाद (१)

मज्झिमनिकाय^२ के इस प्रसंग में निगठ नातपुत्त के पावा में निर्वाण प्राप्त होने के सम्बन्ध को चुन्द ममगु-हेन नामगाम में बुद्ध के पास पहुँचाता है।

१५ निर्वाण-सवाद (२)

दीघनिकाय^३ के इस प्रसंग में भी वैसे ही निगठ नातपुत्त के निर्वाण का सम्वाद चुन्द बुद्ध के पास पहुँचाता है।

१६ निर्वाण-चर्चा

दीघनिकाय^४ के ही इस प्रसंग में निगठ नातपुत्त के निर्वाण की चर्चा पावा में जाने पर आसुप्पान् मोरि-पुत्त अपने उपदेश में करते हैं।

समीक्षा

उक्त तीनों प्रकरणों की व्याप्ति एक है और उनके ऊपर का टाका कुछ भिन्न है। प्रथम प्रकरण में बुद्ध इस सवाद-श्रवण के बाद आनन्द को उपदेश करते हैं और दूसरे में चुन्द को; दोनों उपदेशों का शब्दविन्यास कुछ भिन्न है, पर भुक्ताव एक ही है। पहले और दूसरे में यह सवाद बुद्ध नामगाम में सुनते हैं और वहीं उपदेश करते हैं। तीसरे प्रकरण में मारिपुत्त पावा में भिक्षुओं को महावीर-निर्वाण की बात कह कर उपदेश करते हैं। कुछ एक देखकों ने माना है कि इन प्रकरणों में विरोधाभास है, अतः ये प्रामाणिक नहीं होने चाहिए। वस्तुस्थिति यह है—इतिहास में भी आश्व के समुत्प्रेष को अक्षरानुमान नहीं करना। किसी भी समुत्प्रेष का मूल हार्द यदि समदिग्ध है तो इतिहास ले लेता है। सच बात तो यह है कि तीनों प्रकरणों के अन्तर परस्पर विरोधी हैं, ऐसी बात भी नहीं है। पहले प्रकरण में उपदेश-पात्र आनन्द को और दूसरे प्रकरण में चुन्द को जो बताया गया है, उनके अनेक बुद्धि-गम्य कारण हैं।

१. मज्झिम निकाय, चूलमुकुलदायि मुत्तन्त, २-३-६।

२. मज्झिम निकाय, मामगाम मुत्तन्त, ३-१-४।

३. दीघनिकाय, पामादिक मुत्त ३।६।

४. दीघनिकाय, सगीनि-पर्याय-मुत्त, ३।१८।

सबत है । हा सक्ता है दाना न वट उपन्य न्न ताव ही थरन जिया हो और मक्कनहारों ने अपनी-अपनी बुद्धि म
मक्कनहारों का म दव ने गिया है । हा सक्ता है य किमिन् कान्मन्तर स बुद्ध न दाना को पुष्प-नयन जग निया
हा । तीव्र प्रकरण अन जग म मक्कनहार है ही सक्ता यह स मक्कनहार प्रकरण का जो बुद्धि-नयन न दाना है ।
पाषा में यट घन्ता घन्ता दृष्ट की अन पाषा में आ । पर मक्कनहार का उप घन्ता का पाषा करना निता न रसाभावि
ही हा सक्ता है ।

भगवान् म तार य निर्वान प्रगय पर धनुषाधिया म म न भन् की चर्चा तीनों ही प्रश्नोत्तरों में का गई है। ज्ञा परम्परा इत बात की चाई स्पष्ट सांगी नों दता। हा मचना है मयवान महावीर म उत्तराधिकारिय क विषय म परम्परा तितन चला हो। इन्धुति (गौतम स्वामी) प्रथम गणधर थे। गामाभयना उत्तराधिकार उहें मिलना चाहिये था। पर वह पंचम गणधर मुष्मा स्वासा का यन् वन् पर मिन्नि कि वचना मोषधरो क उत्तराधिकारा नही बनत। गम्भव है यह तिनन भा उग निक्षय म निर्याता हो। मन् भी केनभवता न। गाभा आ मचना कि गौतम स्वासा क अनुयायी साधुआ और मुष्मा स्वासा क अनुयायी माधुओं म यो विषय पर दतिनिन्नि प्रमाण न हुआ है। इसी तनिन्निता फल ह म दग बात स यो मिलना है कि उताम्बर परम्पराज म भगवान् म तार का प्रथम गृधर मुष्मा स्वामी को माना जाता है ज कि शिम्बर परम्पराज म गौतम स्वासा का भगवान् म तार का प्रथम गृधर माना जाता है। बोद्ध प्रकरणों म ज्ञा उतवस्छारा गन् आशा है यन् भी यथन और गन् गन्धिया के तपस का दगित करता है। हो सक्ता है बोद्ध म उतन तीनों प्रश्नों का जन्म बडाया दहिया है। तन् गम्प्रनाय की तनिन्निता घनता की प्रमाणित सप्रमाण य गौतम अतरतिन करण हा बहुधा ध्वष्य करत है। भा घनान् बीताम्भा के जन् आगम म बर्जित गामाश्व क युनयामुनय ध्वन को यन् ही अतिरतिन माना है।

समीक्षा

यह सारा उदन्त अतिशयोक्ति मरा है। पिण्डोल भागद्वज का चन्दन पात्र के लिए ऋद्धि-प्रातिहार्य का दिन-लाना बुद्ध के द्वारा गृह्य बताया गया है। यह कल्पना भी कैसे की जा सकती है कि निगण्ड नातपुत्र उस चन्दन पात्र को लेने के लिए ललचाये होंगे और इस कौतुक में प्रयत्नशील हुए होंगे? जैन परम्परा^१ में तो किसी भी ऋद्धि-प्रदर्शन का सर्वथा वर्जन है। लगता है, पिण्डको में जहाँ भी इतर तीर्थिकों की न्यूनता व्यक्त करने का प्रसंग होता है, वही निगण्ड नातपुत्र, पूरणकादयप आदि मारे नाम बुद्धरा दिये जाते हैं।

१६ छः बुद्ध

सयुत्तनिकाय अट्ठकथा^२ के इस घटना-प्रसंग में श्रावस्ती के राजा द्वारा निगण्ड नातपुत्र आदि छहों धर्माचार्यों के बुद्धत्व की परीक्षा करने का तथा उनका तिरस्कार करने का उल्लेख है।

समीक्षा

एक अतिरिजित कथा के अतिरिक्त उस अट्ठकथा का कोई महत्त्व नहीं लगता।

२० मृगार श्रेष्ठी

धम्मपद-अट्ठकथा^३ में आये हुए इस प्रसंग में निगण्डों के ध्रावक मृगार श्रेष्ठी का उमरी पुत्रवधू विमाना द्वारा बुद्ध का उपासक बनाने की कथा है।

समीक्षा

यह सारा प्रसंग धम्मपद-अट्ठकथा का है, अतः अतिरिजित होना तो सहज है ही। आगमों में किसी भी मृगार नामक गृहपति के निगण्ड होने का उल्लेख नहीं मिलता। मूल त्रिपिटकों में भी उक्त घटना-प्रसंग का कोई विवरण नहीं है।

२१ गरुहदिन्न और सिरीगुत्त

धम्मपद-अट्ठकथा^४ के इस प्रसंग में निगण्ड नातपुत्र के ध्रावक गरुहदिन्न और बुद्ध के ध्रावक सिरीगुत्त की कथा है।

समीक्षा

लगता है, साम्प्रदायिक मनोभावों से अनेक कथाएँ गढ़ी जाती रही हैं। उनमें से एक यह भी है। ठीक इसी प्रकार की एक कथा^५ जैन-परंपरा में भी प्रचलित है।

अन्य धर्मों के सन्ध से भी इस प्रकार के अनेकों कथानक दोनों परंपराओं में मिलते हैं तथा इन दोनों परंपराओं के सन्ध में इतर धर्मों में भी ऐसे ही कथानक मिलते हैं। लगता है, कोई युग ही आया था, जिसमें ऐसे कथानक गढ़ने की होड़ लगी थी।

१ प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध, गोशालाधिकार, पृ० १६०।

२ सयुत्तनिकाय अट्ठकथा, ३-१-१।

३ धम्मपद-अट्ठकथा, ४-४।

४ धम्मपद-अट्ठकथा, ४-१-२।

५ राजा श्रेणिक और रानी चेलणा की कथा।

मिच्छा प्रदान म कथा गया है—परदिन के घर बुद्ध के धर्मोपदेश करते समय ८५००० लोगो का छोटा पक्षिक मिला ।^१ यह भी प्रस्तुत कथानक की अवधारणा का एक प्रमाण है ।

उल्लेख प्रसंग

२२ आमण्यफल

दीपनिकाय^२ के इस प्रसंग म मगधराज अजातशत्रु राजगृह म गौतम बुद्ध के दशनाथ जाता है । बद्ध से आमण्य कठ पूछता है । यह पूछे जाने पर कि क्या यह प्रश्न औरों को पूछा गया था अजातशत्रु निगण्ठ नातपुत्त प्रभृति छ धर्माचार्यों का उल्लेख करता है ।

समीक्षा

इस सारे प्रकरण का अभिप्राय अथ सारे धर्म नायकों को 'यूनता' बतलाकर गौतम बुद्ध की श्रद्धा बतलाना है । महावीर को आनुयाम धर्म का निरूपण दत्तगता इस ध्यान की ओर सचेत करता है कि बौद्ध भिक्षु पाशवनाथ की परंपरा से साधुवन रह रहे हैं और महावीर के धर्म को भी उन्होंने उसी रूप म देखा है जवनि वह पक्षिणात्मक था ।^३

चार धाम जो यहाँ बताये गये हैं वे यथाय नो हैं । तत्ताप्रकार की जन परिचयना और भी किसी नाम का जन परंपरा म नहीं मिलती । इतना अवश्य कहा जा सकता है कि 'गौतम'क वजन आदि के रूप म यन् चार निधेय जन परंपरा से बिच्छ नहीं हैं ।

बुल्लसुल्लव्यादि सत्त^४ म और धामणी-मयुत्त^५ म प्राणातिपात अदत्तागम धामेमुमि-छाचार व सुसावा^६ से निवेत्त हान का उल्लेख है पर वहाँ अनुयामि गान का प्रयोग नहीं है ।

महावीर का नाम अजातशत्रु को जिस मंत्री म सलाया वह उक्त प्रसंग म नहीं है । पर महायान परंपरा का सामञ्जस्य सत्त^७ अनुसार उक्त सवाल अभयकुमार ने दिया था ।

यहाँ अथ सभी धर्म-नायकों की निर प्रवृत्ति और यथोक्तान्त कहा गया है पर बद्ध के लिए ओवक ने इन विगणना का प्रमाण नहीं दिया है । इससे सूचित होता है इन सबकी अपेक्षा म बुद्ध तरण थे ।

२३ छट्ठ धर्माचार्यों म कथिष्ठ

यह प्रसंग सायुत्तनिकाय^८ का है । यावस्ती का राजा प्रसन्नजिन् कोणल बद्ध से प्रश्न करता है कि निगण्ठ नातपुत्त प्रभृति छ^९ धर्माचार्यों की अपेक्षा अलासवरा और सद्य प्रवृत्ति होने पर भी वे सम्यक् संबोधि प्राप्ति का दावा कैसे करते हैं ? बुद्ध ने अनुसार भिक्षु का छाटा समग्र कर उगड़ी अवका नहा करनी चाहिए ।

१ मिच्छिद प्रश्न ३५ ।

२ दीपनिकाय सामञ्जसल सुत्त १२ ।

३ आउज्जयो म ओ धम्मो ओ इमो पवसिबिहो । दमिओ बद्धभाणेण पातेण य महामुणो ॥

—उत्तराध्यायन सूत्र अ० २३ पा २३ ।

४ मज्झिम निकाय ७६ तथा प्रकरण म सम्बन्धित प्रसंगमन्था १३ ।

५ इमो प्रकरण में सम्बन्धित मन्था ६ ।

६ सायुत्तनिकाय द्वागुत्त ५११ ।



समीक्षा

मव धर्म-नायको मे बुद्ध की कनिष्ठता वा यह एव ज्वरन्त प्रमाण है। महावीर और बुद्ध की समसाम-यिकता के निर्णय मे डा० जेकोबी आदि ने उम प्रमग को ठूँसा तक नहीं है। यह उन्हे मुद्रम हुआ होना, नो संभवत वे भी महावीर की ज्येष्ठता निर्विवाद सिद्ध करने।

२४ सभिय परित्राजक

यह प्रमग मुत्तनिपात^१ का है। सभिय परित्राजक निगठ नानपुत्त आदि छहो धर्माचार्यों को प्रश्न करना है। वे वयस्क और चिर-प्रव्रजित होने पर भी उनके प्रश्न का उत्तर नहीं देते। गौतम बुद्ध ने उनकी अपेक्षा आयु मे कनिष्ठ और प्रव्रज्या मे नवीन होने पर भी उन्को प्रश्नों का उत्तर दिया। वह बुद्ध के पाम प्रव्रजित हो गये हुआ।

समीक्षा

उन प्रमग महावीर की ज्येष्ठता का अनन्य प्रमाण है। यहाँ बुद्ध की अपेक्षा सभी धर्म-नायकों को 'जिन्हा, बुड्ढा, महल्लका, अद्धगता, वयो अनुपत्ता, येरा, रत्तज्ज चिर पव्वजिता' अर्थात् 'जीर्ण, वृद्ध, वयस्क, चिरजीवी, अवस्था-प्राप्त, स्थविर, अनुभवो, चिर प्रव्रजित' कहा गया है। यह समुत्क्रेय मुत्तनिपात का है, उम दृष्टि मे भी अधिक प्राचीन और अधिक प्रामाणिक है।

२५ सुभद्रा परित्राजक

दीघनिकाय^२ के इस प्रमग मे परिनिर्वाण के दिन सुभद्रा परित्राजक बुद्ध के पाम जाना है और निगठ नानपुत्त आदि छ धर्माचार्यों के विषय मे प्रश्न उपस्थित करना है।

समीक्षा

यहाँ बुद्ध की अन्तिम अवस्था तक महावीर के वर्तमान होने की बात निराश्रय है, पर यह यथार्थ नहीं है, क्योंकि ऐसे प्रश्न बहुत बार ठर्रे के रूप मे भी हुआ करते हैं और यह प्रश्न तो छहो नाम साथ बोल देने के डररे रूप ही हुआ है, यहा तक कि राजा मिलिन्द के माधानकार के मन्त्र मे भी इन्ही छ नामों का उल्लेख हुआ है,^३ जब कि राजा मिलिन्द का बुद्ध-निर्वाण के ५०० वर्ष पश्चात् होना बताया गया है।^४ यह इनमे भी स्पष्ट है कि उन नामों मे मन्त्राली गोजालक और पूरणकाश्यप के नाम भी आये हैं, जो कि मयंमम्मन रूप मे बुद्ध मे पूर्व ही निधन-प्राप्त हो चुके थे। इन प्रकार उक्त प्रमग बुद्ध की ज्येष्ठता का निर्णायक प्रमाण नहीं बन सकता।

२६ राजगृह मे सातो धर्मनायक

मज्झिमनिकाय^५ के इस प्रमग मे राजगृह मे मकुल उदायी परित्राजक के साथ बुद्ध का वार्तालाप होता है। निगठ नानपुत्त आदि छ धर्मनायकों की न्यूनता बताई गई है।

समीक्षा

इस उदन्त मे उल्लेखनीय अभिव्यक्ति यही है कि सातो धर्मनायकों का एक साथ राजगृह मे वर्णवान बताया गया है।

१ मुत्तनिपात, महावग्ग, सभिय मुत्त।

२ दीघनिकाय, महापरिनिव्वान मुत्त, २-३।

३ मिलिन्द-पञ्चो।

४ वही।

५ मज्झिम निकाय, महासकुलदायि मुत्तन्त, २-३-७।

२७ निगण्ड उपोसथ

यह प्रसंग अगुत्तरनिवाय^१ का है। बुद्ध की प्रमुख उपानिवा विनाया घृणार माना थावस्ती म बद्ध म उपोसथ^२ के विषय म प्रश्नात्तर करती है। बुद्ध तीन प्रकार के उपोसथा का वर्णन करते हैं—गोपाल उपोसथ निग्रय उपोसथ और आय उपोसथ।

समीक्षा

जनधावा के बारह दान म ग्यारहवा पोषपदन है। प्रस्तुत प्रकरण म उसका विवृण ही विवण क्त्रा है ओर विवृण ही समीक्षा हुई है। पुन परिचय आनि निगाया म १० वाकन उतरात पाप न करना छुटे विवरनि प्रन का सूचक है। इसम कुछ की हिसा ओर कुछ का दया का पाप दानान अवधार है। यथावय विमरण का नय कुछ जीवा की हिमा न कुछ जीवों की दया नहीं होता।

पोषप-जन म असत्य और चोय का गेय भी बनाया गया पर यह बाग विरोध मात्र है। यथाय म पोषय का अभिप्राय है—एक अरात्र के लिए निग्रय जीवन जीना। उसम भी हतना विनाय कि न्द अहाराय आवक निज्जल ओर निराहार विनाय। बद्ध न स्वय किम तोसरी कोटि क उपोसथ का प्रपण किया है उसकी भावना म और निग्रय उपोसथ का भावना म मुख्यत आई अन्तर प्रतीक नहीं होता। उहान आय उपोसथ म एकाहारी रहन की बात कही है और निग्रय उपोसथ म निराहारी रहने की बात है। बद्ध न भी तो उपोसथ की भावना यही मानी है कि उपा सन गव अहाराय के लिए अन्त जीवन जीण। उसमें हिंसा अमत्य अन्त आनि क अहारायिक त्याग वन्याये हैं। यनि जन उपोसथ में हिंसा अमत्य अन्त आनि क दाप आयन ता फिर बोद्ध उपोसथ म क्या नहीं आयेंगे? बोद्ध उपोसथ भी तो अहाराय के पचात माना की माता और पिता नापिता मलना है तथा अपने धन आनि का उपभाग परिभाग आनि करना है। जब कि अहाराय के लिए अन्त जीवन जीते समय उस सन यन्त्र का वजन हो गया था।

२८ छ अभिजातियों म निग्रय

अगुत्तरनिवाय^३ के इस प्रकरण म पूरणका यण द्वारा प्रतिपादिन छ अभिजातिया क विषय म आयुष्मान् जानन् बद्ध स वातालाप करते हैं। निग्रया का लोडिन अभिजाति म रखा गया है।

समीक्षा

छ अभिजातिया यहा पूरणकायण क नाम म बताई गई हैं पर मनन ये भागान्त्र द्वारा निरूपित है। नीयनिवाय क सामञ्जस्य सल म समुत्तनिवाय के खणवण म और मज्झिम निवाय क सत्तक सुत्त म सत्त भागान्त्र द्वारा हा निरूपित बनाया गया है। पूरण कायण के नाम म उनका प्रस्तुत प्रकरण क अनिश्चित ओर कहीं नहीं बनाया गया है। ता समुत्तज्ज जय समान रूप से मिलते है ता इस चतुष समुत्तल क मन्त्रय म यथायता यी लगनी है कि याम्मन्-सक्कयिनाओ की भूल ही स एसा हुआ है।

२९ सचवक निगण्ड पुत्र

मज्झिम निवाय^४ क इस प्रकरण म बगाली म बद्ध क साथ हुई सचवक निगण्डपुत्र की चर्चा का वर्णन है।



१ अगुत्तरनिवाय निजनिवात ७०।

२ अगुत्तरनिवाय ६६५७।

३ मज्झिमनिवाय अट्ठकपा १५५।

समीक्षा

जैन परम्परा में इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं मिलता । बुद्ध ने इसे सम्बोधन में सर्वत्र ही 'अग्निवैश्यायन' कहा है । यह इसका गोत्र था । महावीर को भी पिटक साहित्य में कुटुम्बक व्यक्तियों पर 'अग्निवैश्यायन' कहा गया है ।^१

हो सकता है, पिटको के मरुलन-काल में निगठपुत्र के अग्निवैश्यायन नाम का विपर्याय महावीर के साथ हो गया हो । डा० जेकोबी का कहना है, सुअर्पा के अग्निवैश्यायन होने के कारण यह विपर्याय हुआ है ।^२ 'निगठ नातपुत्र' और 'निगठपुत्र' के नाम साम्य में इस विपर्याय की अविक सभ्यता लगती है ।

३० अनाश्वसिक ब्रह्मचर्य-व्रत

यह प्रकरण मज्झिम निकाय^३ का है । इसमें बुद्ध के शिष्य आयुष्मान् आनन्द सन्दक परिव्राजक के साथ चार अत्रह्मचर्यवाम और चार अनाश्वसिक ब्रह्मचर्यवास के विषय में चर्चा करता है । निगठ नातपुत्र का उल्लेख सर्वज्ञ, सर्वदर्शी शास्ता के रूप में किया गया है ।

समीक्षा

यहाँ अजितकेशकम्बल आदि चार को अत्रह्मचर्यवाम में माना है । अत्रह्मचर्यवाम का अर्थप्राय है — अनन्याम, महावीर को अनाश्वसिक ब्रह्मचर्यवाम में माना है अर्थात् वह सन्यास तो है, पर निर्वाण का आश्वामन देने वाला नहीं, कुल मिलाकर यह तो कहा ही जा सकता है, बुद्ध की दृष्टि में निगठ नातपुत्र अन्य धर्मनायकों की अपेक्षा तो श्रेष्ठ ही थे ।

३१ विभिन्न मतों के देव

सयुत्तनिकाय^४ के प्रस्तुत प्रकरण में छ देवपुत्र राजगृह में बुद्ध के पास आकर निगठ नाथपुत्र प्रभृति छ धर्माचार्यों की स्तुति करते हैं ।

समीक्षा

देवों के धर्म-चर्चा में नम लेने का उल्लेख आगमों में भी यत्र-तत्र मिलता है । कुण्डकोलिक से चर्चा करने वाला देव गोशालक की धर्म-प्रज्ञप्ति को मानने वाला था, जब कि कुण्डकोलिक महावीर की धर्म-प्रज्ञप्ति में विश्वास करता था । शकडालपुत्र को सन्देश देने वाला देव महावीर का अनुयायी प्रतीत होता है, जबकि तब तक शकडालपुत्र गोशालक का अनुयायी था ।^५

३२ पिगलकोच्छ ब्राह्मण

मज्झिम निकाय^६ के इस प्रसंग में श्रावस्ती में बुद्ध के पास आकर पिगल-कोच्छ ब्राह्मण निगठ नातपुत्र आदि छ तीर्थंकरों के सन्ध में प्रश्न पूछता है ।

१ दीघनिकाय, सामञ्जसल सुत्त ।

२ SBE vol, XIV, Introduction, p XXI

३ मज्झिमनिकाय, सन्दक सुत्तन्त, २-३-६ ।

४ सयुत्तनिकाय, नाना तित्थिय सुत्त, २-३-१० ।

५ उपासकदशंग सूत्र, अ० ७ ।

६ मज्झिमनिकाय, चूल सारोपम सुत्तन्त, १-३-१० ।

समीक्षा

यह बुद्ध की अपनी विषय धारा रही है कि उत्पन्न मर प्राना का व वडा वनुरता म टाग मने थे । धनेव स्थला पर उहोन एगा दिया है ।

३३ जटिल सुत

यह प्रकरण गमुतनिवाय^१ का है । आवस्था का राजा प्रभवजित कागन का गुलवर जटिल निगड परिवात्रा आनि की वयमूया म बुद्ध का पास मे गुजरते हैं और इनके विषय में राजा बड मे प्रान पुछता है ।

समीक्षा

यह प्रमग सारवालिज राज-म्यवस्था का बहुत ही गुड परिचय देता है । गुलवर विभिन्न मना का माध का कर गुलवरता करते थे एक अदम्य मो बात है ।

३४ धम्मिक उपासक

मुत्तनिगा^२ के इस प्रकरण म पांच सौ उपासका सट्टिन धम्मिक उपासक बड की स्तुति करते हुए कहता है— जिनने भा वाी तपिन आजीवक और निग्रय हैं व सब प्रता म आगवा वग हा नहीं पा मवन जम कि भीप्र चलने वान की लडा रहने वाला ।

समीक्षा

य । बुद्ध का प्रयाग म दिगठो का उत्तम मान दिया गया है । मुत्तनिगा घट्टकया का अनुसार ये पांच सौ बीड उपासक आराग्यामिनी विद्या के धारक थे व अवागमा मे ।

३५ महाबोधिवृक्षार

जाग-अठ्ठाया^३ के इस प्रकरण म निगड नातुत आनि पांच धमनावका का वृक्षम म वारासगा का राजा वनुरता का पांच विषयाट्टि अवागमा के रूप म होन का उल्लेख है ।

समीक्षा

यह महाबोधि वानक तथा इस प्रकार का अय वधानक सही धर्मिष्यवन करने है कि बीडों म अगन प्रनि पशिओं की होन व मुचउ प्रमाणित करने का लिए अनेका अनगड वधानक रूप हैं ।

३६ मयूर और काव

जाग-अठ्ठाया^४ का इस वधानक म बड और निगड नातुत का वृक्षम म वयग मयूर और काव बताया गया है ।

समीक्षा

कया निगड आगेवामक और गार्मि-मुचर है तथा परिचय साध्याविक मनामावा म लड़ी हुई है । पर कया मूल विवरणों का मया है हमलिय हमका कथित महेश्व नहीं है । मूक जाग म आ गुना का वयमानगा म अव

१ संमुत्तनिवाय जटिल सुत ३२१ ।

२ मत्तनिवाय (सिखी अनुवाद) वृक्षम धम्मिक लस थ ७४ ७७ ।

३ जाग-अठ्ठाया महाबोधि जागक ५२८ (सिखी अनुवाद) पृ० ३१२ व ३३० ।

४ जाग-अठ्ठाया वावक जागक ३३६ (सिखी अनुवाद) भा ३ व २८६ ते २८७ ।



गुणी की पूजा का उल्लेख है। यह उदन्त जातक-श्रवणया ना है, उमालग भी कान्पनिक कथानक ने अधिक इसका कोई महत्व नहीं दीख पड़ता।

३७ मामाहार-चर्चा

यह भी जातक अट्ठकथा^१ का प्रसंग है। मिह मेनापति द्वारा बुद्ध को मामाहार करने पर जब निगठ नात-पुत्र ने बुद्ध की आलोचना की,^२ तब बुद्ध ने पूर्वजन्म के कथानक द्वारा बताया कि पूर्वजन्म में भी निगठ नातपुत्र मेरा आलोचक था।

समीक्षा

विनयपिटक और अगुत्तरनिकाय में जहाँ मिह मेनापति की इस घटना का उल्लेख है, वहाँ जीराहों पर मामाहार की निन्दा करने के प्रसंग में निगठ नातपुत्र का नाम न होकर केवल निगठों का ही नामोल्लेख है। लगना है, अट्ठकथाकार ने जातक गाथाओं के साथ पूर्वजन्म की पटना का जोड़ने के लिए निगठ नातपुत्र को ही नगर-चर्चा का पात्र बना दिया है। अन्य अट्ठकथाओं का तर्क इस अट्ठकथा का भी गान्धर्व कथानक ने अधिक महत्व नहीं लगता।

३८ चार प्रकार के लोग

अगुत्तरनिकाय^३ के इस प्रकरण में 'अपने को तपाने वाले व दूसरों को वृष्टि देने वाले' के आधार पर चार प्रकार के लोगों का प्रतिपादन किया गया है। 'अपने को तपाने वाले' लोगों के अन्तर्गत निर्ग्रन्थों की आचार-ग्रन्थों का विवेचन किया गया है।

समीक्षा

इस प्रसंग में नामग्राह निर्ग्रन्थों का उल्लेख नहीं है, पर आचार बहुत कुछ निर्ग्रन्थों का ही बताया गया है। कुछ एक आचार तो दशवैकालिक सूत्र में जन्म मिलते हैं। इस प्रसंग में निर्ग्रन्थों के अतिरिक्त आजीवक तथा पूरणकाश्यप के अनुयायियों के भी कुछ नियम बताये गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है। "न वह माम खाता है, न वह मछली खाता है, न वह मुरा पीता है, न वह मेरय पीता है"—यह आचार भी निर्ग्रन्थ आचार के मलग ही बताया गया है। जैन साधुओं के मामाहार के विषय में यह एक अच्छा प्रमाण बन सकता है।

३९ निर्ग्रन्थों के पाच दोष

अगुत्तरनिकाय^४ के इस प्रकरण में बुद्ध ने निर्ग्रन्थों के पाच दोष बताये हैं—जीव-हिंसा, चोरी, असत्य, अव्रह्मचर्य व मुरा-पान।

समीक्षा

यह उल्लेख 'उपमम्पदावर्ग' का है। इनमें आजीवक, जटिलक, परिव्राजक आदि के लिए भी ये ही पाच बातें कही गई हैं।

१ जातक, तेलोवाद जातक, स० २४६।

२ देखें, प्रसंग सट्या १।

३ अगुत्तर निकाय (हिन्दी अनुवाद) भा० २, पृ० १६७ से १६९।

४ अगुत्तरनिकाय (हिन्दी अनुवाद) भा० २, पृ० ४५२।

४० वस्त्रधारी निग्रन्ध

यह प्रथम धम्मपद अट्ठकथा^१ का है। इसमें वस्त्रधारी निग्रन्ध का अर्चना भिक्षु की अपेक्षा बौद्ध भिक्षुओं द्वारा अर्चना माना गया है तथा बुद्ध के साथ इस विषय में वार्तालाप होता है।

समीक्षा

इस घटना प्रथम में निगठा का वस्त्र धारण का चर्चा है पर यह स्पष्ट नहीं होता कि किस प्रकार का वस्त्र वे धारण करते थे और उसका क्या प्रयोजन था ? पर इससे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि बौद्ध परंपरा को सचेष्ट और अचूक होना ही प्रकार के निगठा का परिचय है।

४१ मीढगल्यायन का वध

धम्मपद अट्ठकथा^१ का इस प्रथम में धादुप्पान् मीढगल्यायन का वध करने वाल पांच सौ सविकों (निगठा) को राजा अजातशत्रु नाम में ओषिण गहवा देता है।

समीक्षा

यह कृतान्त को स्थाना में उपलब्ध है—जातकट्ठकथा और धम्मपद अट्ठकथा। जातकट्ठकथा में मीढ गल्यायन के वध प्रथम में निगठों का उल्लेख है और धम्मपद अट्ठकथा में सविकों का। यथाय दोनों ही ग्राह्य होते हैं। निगठा का सविका का गहिन करने का ही सारा उपक्रम उभयता है।

डा० मलालाणकर ने Dictionary of pali proper names^२ में तथा एच० जी० ए० बान मेयट ने Encyclopaedia of buddhism^३ में लिखा है— अजातशत्रु ने ५ निगठों का वध करवाया कृत्स्न ही निगठा का अभिप्राय अजातशत्रु के प्रति अर्थात् नहीं रहा। यह लिपना यथाय नही है। वस्तुस्थिति तो यह है कि बौद्ध परंपरा अजातशत्रु की बहाने स्थान पर उभे जा करती है जब कि जन परंपरा मुख्यतया उस साम्प्रदायिक स्थान देता है। अजातशत्रु निगठा का वध कराये यह उभे भी समझ में आता है।

४२ मिलिन्दप्रश्न

यह प्रकरण मिलिन्दप्रश्न का है। मागधनगर के राजा मिलिन्द को उनका अमृत्य निग्रन्ध नामपुत्र आदि छ सविकों से वार्तालाप करने का निवेदन करते हैं।

समीक्षा

राजा मिलिन्द बद्ध निर्वाण के रूप परचान हवा ऐसा बताया गया है। यही भी बद्ध के अतिरिक्त छ सविकों का नाम बताया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध साहित्य में ऐसा एक प्रथा हो रहा है कि निगठ आजीवन प्रसन्न प्रियता के संबंध में भी बद्ध बहना हो ता उनका प्रवर्तन निग्रन्ध नामपुत्र मकल्लि गागात्तक

१ धम्मपद-अट्ठकथा २२८।

२ धम्मपद-अट्ठकथा १०। ७।

३ vol I p ३५

४ p 320

५ मिलिन्द प्रश्न अनु मिश्र जगदीश काश्यप पृ० ४ से ६।

६ मिनांदर (Minander) इबोघीक सम्राट् हो राजा मिलिन्द का जिसकी राजधानी सागल (बनमान स्थान कोट) थी ऐसा विद्वानों का अभिमत है। देखें मिलिन्द प्रश्न (हिंदी अनुवाद) पृ० ४।

७ मिलिन्द प्रश्न अनु मिश्र जगदीश काश्यप पृ० ४।





के नाम में ही कह दिया जाये। निगठ नातपुत्र की वर्तमानता में भी जहा-जहा उनका नाम आया है, अनेक स्थलों पर घटना का सन्ध निगठ भिक्षुओं से ही हो सकता है। इसी घटना-प्रसंग पर भिक्षु जगदीश काश्यप का कहना है—“मालूम होता है, इन (छह तीर्थंकरों) की अपनी-अपनी गद्दिया जूही नामों में चलती होंगी। जैसे भारतवर्ष में ‘शकराचार्य’ की गद्दी अभी तक बनी है। किन्तु इन गद्दियों का कब आरम्भ हुआ और कब अंत — इसका पता नहीं।”^१ शकराचार्य की तरह एक ही नाम में इन सबकी गद्दिया चलती हों, इसका तो कोई आधार नहीं है, पर उन मनो के सन्ध में यह एक कहने की पद्धति— Stock-Phrase रही है, ऐसा अवश्य लगता है।

४३ लंका में निर्ग्रन्थ

यह प्रकरण महावश^२ का है। लंका के राजा पाण्डुकाभय ने अपने नगर में जोनिय निगठ, गिरि निगठ, कुम्भण्ड निगठ आदि के लिए घर, देवालय आदि बनवाये।

समीक्षा

इस समुल्लेख से यह झलक मिलती है कि निर्ग्रन्थ-धर्म समुद्र पार विदेशों में भी गया था। पाण्डुकाभय (ई० पू० ३७०-३००) राजा सम्राट् अशोक ने भी लगभग १०० वर्ष पूर्व होता है। महेन्द्र और मघमित्रा से बहुत पूर्व की यह घटना है। जैन साहित्य में इन निगठों की कोई चर्चा नहीं है। उपर घटना-प्रसंग में यह भी स्पष्ट नहीं होता कि ये निगठ गृही थे या भिक्षुक। जोतिय निगठ को महावश टीका में नगरवर्धक कहा गया है।

४४ वैशाली में महामारी

यह प्रकरण महावस्तु^३ का है। एक बार जब वैशाली में यक्षों द्वारा महामारी फैलायी गई, तब उन्होंने पूरण-काश्यप, निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र आदि छहों को एक-एक करके वैशाली में बुलाया। तब भी महामारी शान्त न हुई। अन्त में बुद्ध को वैशाली में बुलाने पर महामारी शान्त हुई।

समीक्षा

क्या मारी की सारी बुद्ध की श्लाघा में गयी गई है। जहा बुद्ध रहते हैं, वहा महामारी आदि रोग नहीं रहते, इस विषय में जैन परम्परा की मान्यता है—जहा जिन रहते हैं, वहा चारों दिशाओं में पञ्चीम-पञ्चीम योजन तथा ऊर्ध्व और अधो दिशा में साठे बारह योजन तक ईति, महामारी, स्वचक्र-भय, परचक्र-भय, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्मिक्ष, उत्पात आदि नहीं होते।^४

४५ नमो बुद्धस्स, नमो अरहन्तानं

यह कथा-प्रसंग धम्मपद-अट्ठकथा^५ का है। गुल्ली-डण्डा खेलते समय ‘नमो बुद्धस्स’ और नमो अरहन्तानं’ बोलने वाले दो बालकों की कथा है।

समीक्षा

नमो बुद्धस्स और नमो अरहन्तानं का शब्द-प्रयोग तुलनात्मक अध्ययन के लिए बहुत ही रोचक हो जाता है। दोनों परम्पराओं का वन्दन-सूचन बहुत ही समान शैली में प्रसूत हुआ है। ‘सम्यग्-दृष्टि’ और ‘मिव्या-दृष्टि’ के शब्द-

१ वही, बोधिनी, पृ० ६।

२ महावश, परिच्छेद १०, श्लो० ७७-७९ व ९१ से १०२

३ महावस्तु, 253-301, Mahavastu, Tr by J J Jones, vol 1, pp 208 to 249

४ समेवायाग सूत्र, समवाय ३४।

५. धम्मपद अट्ठकथा, २१। ५।

प्रयोग भी दोनो परम्पराओं की समान धारणाओं के सूचक है। जन परम्परा भी उक्त अभिप्राय में सम्मग-दृष्टि और निष्कल-दृष्टि का प्रयोग करती है।

प्रस्तुत घटना प्रसंग का गेय महत्त्व एवं दत्त कथा के रूप में ही रह जाता है।

४६ निग्र-यो की दान

धम्मपद अट्ठकथा^१ के इस प्रकरण के अनुसार सारिपुत्र का मामा प्रतिमास एक सहस्र मुग्गाएँ दान कर निग्र-यो का दान करता था।

समीक्षा

धम्मपद अट्ठकथा में उल्लिखित धम्मपद की प्रत्येक भाषा पर कोई एक कथा लिख दान आवश्यक ही समझा है ऐसा लगता है। बल्कि धम्मपद है इस हेतु उक्त बहूत सारी कथाएँ अपनी ओर से ही गठ देनी पड़ी हों। निग्र-य अपने लिए पकाया था अपने लिए खरीना अन वस्त्र आदि ग्रहण नहीं करते। इस स्थिति में यह कथा-वस्तु संनिष्ठ ही रह जाती है।

सारिपुत्र के मामा को यही निग्र-य उपासक माना गया है। बुद्ध के चाचा निग्र-य उपासक थे ही। इससे इतना सा प्रतीत होता है कि निग्र-य धर्म और बौद्ध धर्म अनेक परिवारों में घुले मिश्र हो चले थे।

नगता है दोनों परम्पराओं की दान विषयक धारणा बहुत कुछ समान रही है। अपने-अपने भिक्षुओं का दिया गया दान ही दोनों परम्पराओं में सुपात्र-दान माना है। फिर भी निग्र-यो का दान स ब्रह्मलोक हो मिले ऐसा कोई विशेष उल्लेख निग्र-य परम्परा में नहीं मिलता।

४७ नालक परित्राजक

महावस्तु^२ के इस प्रसंग में नालक परित्राजक एवं एक कर निग्र-य सारिपुत्र आदि छह धर्माचार्यों के पास जाकर सत्त्व चर्चा करता है और अंत में बुद्ध से अपनी जिज्ञासा का समाधान पाता है।

समीक्षा

यह प्रसंग महायान परम्परा का है। हीमयान परम्परा में भी नालकसुत्त^३ में यही कथा प्रसंग उपलब्ध होता है तथा बुद्ध के अतिरिक्त अन्य धर्मनामकों का उल्लेख नहीं है।

४८ जिन-आवकों के साथ

यह प्रसंग भी महावस्तु^४ का है। प्रकटित होने के पश्चात् बद्ध कमल आराधना तथा और उक्त रामपुत्र के पास गया। मैं अपने जिन-आवकों का त्याग करी त्याग करी का उपदेश देने में।

समीक्षा

यहाँ जिन-आवक शब्द का प्रयोग आराधना नाम उक्त रामपुत्र व उनके अनुयायियों का निगण्ट धर्मों होना सूचित करता है। यह प्रकरण महावस्तु ग्रन्थ का है जो महायान का प्रमुख ग्रन्थ है। पालि त्रिपिटक में जिन



१ धम्मपद-अट्ठकथा प ५

२ Mahavastu Tr by J J Jones vol III pp 379 388

३ सुत्तनिपात ७

४ Mahavastu Tr by J J Jones vol II pp 114 117

अग्निप्राय मे 'निगण्ठ' शब्द जाता है, उसी अर्थ मे मन्दुन त्रिपिटको मे 'जिन-धावका' शब्द आता है ।^१

इस प्रसंग मे यह तो विशेष रूप मे स्पष्ट होता ही है कि बुद्ध ने 'जिन-प्रावको' के भाव रहकर बहुत कुछ सीखा व पाया ।

४६ भद्रा कुण्डलकेशा

धम्मपद-अट्ठकथा^२ तथा थेरीगाथा-अट्ठकथा^३, दोनों मे यह प्रसंग मिलता है । राजगृह के श्रेष्ठी की कन्या भद्रा नृत्युक चोर को प्राण-दण्ड देने मे वचान्तर उसके साथ विवाह करती है । एक बार चोर पति के द्वारा लुटे जाने की स्थिति होने पर उसे पर्वत मे नीचे गिराने भद्रा स्वयं श्वेतवस्त्रधारी निगण्ठो के मध्य मे प्रव्रजित हो जाती है और बाद मे नारिपुत्र द्वारा वाद-विवाद मे हार जाने पर बुद्ध की शिष्या हो जाती है ।

समीक्षा

प्रसंग बहुत ही सरस व घटनात्मक है । बुद्ध की प्रमुख शिष्या का पहले निगण्ठ-मध्य मे दीक्षित होना, एक विशेष बात है । केश-मुचन व श्वेतवस्त्रधारी निगण्ठो का उल्लेख ऐतिहासिक महत्त्व का है ।

५० ज्योतिर्विद् निगंठ

चीनी धम्मपद-अट्ठकथा^४ के इस प्रकरण मे गंगा-तट पर रहने वाले ब्रह्मचारी ज्योतिर्विद् निगंठ और उनके पाँच सौ अनुयायियों का मध्य बोधि-प्राप्त बुद्ध के पास प्रव्रजित होने का उल्लेख है ।

समीक्षा

जैन कथा-साहित्य मे इस प्रकार के घटना-प्रसंग का कोई उल्लेख नहीं है । यह घटना इतना अवगम्य व्यक्त करती है कि बुद्ध के बोधि-लाभ मे पूर्व भी निगण्ठ लोक बड़े-बड़े समुदायो मे विद्यमान थे । जैन कथा-साहित्य मे ऐसे प्रसंग बहुत अल्प हैं, जिनमे बौद्ध-भिक्षु निगण्ठ-गामन मे प्रवेश करते हैं, जबकि बौद्ध कथा-साहित्य मे प्रस्तुत प्रकार के कथाप्रसंगो की बहुलता है । इसने निगण्ठो की पूर्ववर्तिता स्पष्टतः व्यक्त होनी है । बुद्ध ने महावीर के ज्येष्ठ होने का भी यह एक स्पष्ट आधार बनता है ।

५१ धूलि-धूसरित निगंठ

चीनी धम्मपद-अट्ठकथा^५ के इस प्रकरण मे पाँच सौ ब्राह्मणो का गंगा के किनारे रहने वाले एक धूलि-धूसरित निगण्ठ के पास ज्ञान-प्राप्ति के लिए जाते समय यज्ञ द्वारा प्रेरित होकर बुद्ध के पास श्रमण बनने का उल्लेख है ।

१. cf Mahavastu, Tr by J. J. Jones, vol II, p 114

२. धम्मपद-अट्ठकथा पृ. ३

३. थेरीगाथा-अट्ठकथा, पृ. ६६

४. चीनी धम्मपद अट्ठकथा के आधार पर S Beal 'Dhammapada (tr from Chinese)', Susil Gupta (India) Ltd Calcutta, 1952, pp 103-4

५. वही, पृ. ५४

५. जन शिखी भा० १३ अ० १२ में डा० के पी जायसवाल और डा व बी पाटनर सेल मा रा० प्रमो अनसहाय्य और इतिहास प्र० तं० प० ८ १६ २ २१।

इस प्रकार राजस्थान के दो-तिहाई से अधिक भाग पर इन नृपस धर्मविध्वंसक विधर्मी शासकों का शासन था जो उस काल में उम देश के गैरमुस्लिमों, हिन्दुओं और जैनों के विरुद्ध एक अविच्छिन्न हिंसक जहाद था। किन्तु प्रजा का अधिकांश भाग उन्हीं गैरमुस्लिमों का था, उन्हीं पर अनेक रूपों एवं अशो में इन मुस्लिम शासकों को निर्भर रहना पड़ता था और उनके सामूहिक विद्रोह में स्वयं अपनी सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है, यह भय भी बराबर बना रहता था। यह कारण ही ऐसे थे जो मुसलमान शासकों के अत्याचारों को किसी हद तक सीमाबद्ध रखते थे। देश के शेष भाग में दक्षिण के विजयनगर साम्राज्य में तथा राजस्थान, उत्तरीय पहाड़ी प्रदेशों, ग्वालियर आदि के राजपूत राज्यों में अवश्य ही स्थिति भिन्न थी, किन्तु उन प्रायः सभी राज्यों को इन पड़ोसी मुसलमानों के साथ निरन्तर युद्धों में व्यस्त रहना पड़ रहा था। युद्धजनित सकट को उनकी प्रजाओं को भी भोगना पड़ रहा था। ऐसी परिस्थिति में धर्म और सस्कृति की ओर ध्यान देने का किसे अवकाश था? कतिपय धर्मप्राण गृहस्थ सन्त और साधु, भट्टारक और यति, विद्वान और कलाकार जितना उनमें बनता, यत्र-तत्र जैसे-तैसे धर्म की रक्षा करते और सस्कृति का संरक्षण करते।

ऐसे अशान्त अरक्षित एवं अत्यन्त विरोधी वातावरण में विभिन्न प्रकार की आचार-विचार सवदी विकृतियों, शिथिलाचारों, कृपमङ्गलताओं, रुढ़िवादों एवं अवविश्वासों का समाज में पनपते रहना स्वाभाविक ही था। सामान्य-तया सम्पूर्ण गैरमुस्लिम भारतीय समाज की यही दशा थी। जैन जगत् उम का अपवाद नहीं था। दक्षिणापथ तो रामानुजाचार्य के श्रीवैष्णव और वासव के लिंगायतों (वीरशैवों) के तीव्र साम्प्रदायिक विद्वेष का आखेट बनकर विगत दो शताब्दियों में अपनी शक्ति, मस्या और प्रभाव की भारी क्षति उठा चुका था। १४ वीं शती के उत्तरार्ध और १५ वीं के पूर्वार्ध में विजयनगर-मराठों के सहिष्णु शासन में उसने कुछ समय के लिए कथंचित् सुखशान्ति की साँस ली थी किन्तु १५ वीं शती के उत्तरार्ध में कई कारणों से विजयनगर में भी प्रतिकूल परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा था। उत्तरापथ में मुसलमानों के ही अत्याचार पर्याप्त थे। दिगम्बर परम्परा में इस काल में भट्टारकीय प्रथा रूढ़ हो चुकी थी। भट्टारक वस्त्रधारी वन मंदिरों और मठों में रहते थे, सम्पत्ति का दान लेते थे और संरक्षण करते थे। अपने अपने प्रभावक्षेत्रों में श्रावकों पर मनमाना शासन करते थे। मुनिमार्ग विकृत हो गया था—सच्चे निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि दृष्टि-गोचर ही नहीं होते थे। अपने साथ साथ श्रावकों के आचार-विचार को शिथिल बनाने में भी ये भट्टारक स्वरचित साहित्य तथा अपने उपदेशों-आदेशों द्वारा प्रयत्नशील थे। पूजा, प्रतिष्ठा आदि में आडम्बर बढ़ता जाता था, व्रतानुष्ठानों का जोर बढ़ता जा रहा था और व्रतसमापन के रूप में बड़े-बड़े खर्चों से उद्यापन कराए जाने लगे थे जिनका अधिकांश लाभ भट्टारकों या उनकी मस्याओं को ही प्राप्त होना था। एक ओर मुसलमान सुल्तान और उनके सूबेदार, फौजदार, जागीरदार, मेनानायक आदि मंदिरों और मूर्तियों को तोड़ने की या भ्रष्ट करने की, और नवमंदिर एवं मूर्ति-निर्माण पर प्रतिवध लगाने की होड़ लगाए हुए थे तो दूसरी ओर भट्टारक लोग नवीन मंदिरों और मूर्तियों के निर्माण करने की होड़ लगाए हुए थे। अकेले दिल्ली पट्टाधीन भट्टारक जिनचन्द्र (१४५०-१५२४ ई०) ने राजस्थानान्तर्गत मुंडासा नगर के सेठ जीवराज पापडीवाल से मूर्तिभजक सुल्तान सिकन्दर लोदी के शासनकाल में ही (विशेषकर १४९१ ई० में) असंख्य जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई थी जिन्हें छत्रों में भर-भर कर उत्तर और मध्य भारत के अनगिनत स्थानों में वितरित किया गया। जन साधारण श्रावक श्राविकाओं में अशिक्षा की वृद्धि थी। जातिपाती के भेद और अनेक अन्धविश्वास एवं कुरीतियाँ रूढ़ होती जा रही थीं। पड़ोसी हिन्दु सम्प्रदायों का भी प्रभाव अत्यधिक पड़ रहा था। जैन धर्म की सहज मादगी, आध्यात्मिकता, परीक्षाप्रधानता, सदाचारप्रवणता—वस्तुतः उसकी मौलिकता ही नष्ट होती जा रही थी और प्रायः बहुत कुछ ऐसी ही दशा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के साधु एवं श्रावक समाज की थी। उसमें भी अनेक साधु मठावीश बनने, विहित मार्ग के विपरीत आचरण करने, पूजादिक के आडम्बर का पोषण करने और आचार विचार के शैथिल्य एवं विकृति को प्रश्रय देने में दिगम्बर भट्टारकों से भी बाजी मार ले गये थे। श्रीपूज्यों और कुलगुरुओं की सख्या तो इस दिशा में अतिरिक्त को प्राप्त कर गई थी।^१ श्वेताम्बर श्रावक-श्राविकाओं के आगमादि प्राचीन धर्मशास्त्रों के पठन-पाठन पर भी कड़ा प्रतिबन्ध यतियों ने लगाया हुआ था^२। मुनि कल्याणविजयजी तो उस

१ पट्टावलीपरागसंग्रह (प० कल्याणविजयगणीकृत) पृ० ३८०-३८२।

२ वही पृ० ३८७।

बाब में चन निधियाचार क निरहुण बेग का उल्लेख करते हुए यन्त्र कहते हैं कि 'उम समय बलिपग यति हो निधियाचारी' तभी हुए थे अतः सारा जन समुदाय ही विमल हुआ था—अधिकारी यतिवग का स्थिति यही एक विमल चुरा भी कि किसीद्वारा क विना विपुल जन श्रमसमाग का अन्तिम उल्लास मुक्ति का' उम बाब में यति कोई निधियाचार था' किमी यति में विनयपूर्वक भा कोई गवा करना अथवा माघमा के आध्यात्मिकीय आचरण पर कोई आदेश कर देना था यति मगाराज में बुझे तरह पत्रकार जाना और जाना अथवा मुनता । यतिपग में एक प्रकार का धर्मोपदेश चन पना थी । धर्म क नाम पर उनका मुनतागरी चन रहा था और थावक उनका विवग आगामी मान था । राजनयिक आर्थिक एवं अन्य मामलिक लोचिक परिस्थितिया में यन्त्र उम बाब का गरीब आध्यात्मसुभाग एक प्रकार में आन धर्मगुरुओं क अत्याचारों का भी निवारक बना हुआ था ।

मक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उपपन्न विभिन्न एवं विविध सामाजिकबिबाधी प्रगति अवरोधक एवं सामर्थ्य की अहर्ता जनता गतिपया क रूप में हा १२वां पानी है । मिथिल बलिपग प्रश्न हुआ था । उसी 'च बा' में निधियानता का हलक कहा और क्या प्रमाण होता ? और उक्त कि रूढ़ि परिस्थितियुग में स हा बलिपुत्र के पमशाय का उल्लेख जाता था जो १६वां पानी में स्थापित । न बाक मुरी एवं लक्षणर मुनतागन क हा में राजनयिक क्षेत्र में तथा मध्यावर आनानता और बचानिक या धार्मिक जातिपया क रूप में सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में हुआ हो । हल प्रकार की विचारमार्गिक क स्थिति वह युग गवया उपपुक्त था । गुराए आदि के उन्मेष और रिवाजमान की बात पत्र कह जात है । भारतवर्ष में अनेक जगत् में सामान्य और बलभावाय कबीर और मानक सांस्कृतिक और दाहू पान कर नामनेय और पुनरात्म विद्यापति और चतुर्थ जगत् हा रूप पना । का राग बरत है अथवा लगे आगगायन हुए । इनका विचारकाल और मध्यावर आनानता क पुरस्कर्ता य और मृष्ट किच क धर्मोपदेश पत्र का प्रतिनिधित्व करत थे । जो जगत में भा य चरित हुआ हो था । उक्त मिथिलान्तक बल में भी दांती की सम्प्रदाय में कतिपय विद्वान् एवं प्रभावक आचार्य तथा कई विद्वान् पुनः मध्यावर एवं साहित्यकार उत्पन्न हुए और 'चौहानाह' कटुवागा' सारण स्वाभाव प्रभुति क मन्त्र जातिबारी भा प्रश्न हुए जिनका द्वारा स्थापित नवीन सम्प्रदाय और धार्मिक आन पत्र चन आन है ।

यन्त्र है वह विशिष्ट एवं बलिपुत्र युगमूर्ति किमि परिवर्तन में अन जगत के मिथिल बलि क हल धर्ममक्षक धर्ममध्यावर पानी 'चौहानाह' कटुवागा' एवं सारणस्वाभाव का तथा उसका द्वारा की गई विचारमार्गिक का मुनतागन करत था ।

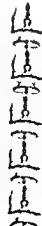
चौहानाह का पति विचारक प्रमाण यह कि 'चिन्तु' उनका आवन में सचपित बलिपग तथ्या में कृत्रिम गतमे है । गुरी धार्मिक एवं प्रमाणिकता क साथ उनका जागरणिक अभा स्थित गया हो पाया है । उनका अम एवं धार्मिक आगगा' रूप में आया था । निहा का नाम हमार और माता का नाम था किन्तु लर अम सोन में हरिनाम और मंग काई मुनिन लिखा गया है । 'च' गथाय क । गीराष्ट्र का लक्ष्मी धाम क नामक लक्षणों एवं हल कह । अष्टबाहा और क की अमलाना यनाय है । चौहानाह का प्रमाणिक १८५६ ई. बनाई जाया है । वि । सागा में १८ ई. बनाई गई है । गवा प्रमाण मन्त्रलि भा १८७२ १८७६ और १८७७ ई. क रूप में चिन लिखा बनाई जायो है । निहा और माता का मन्त्र हा जान क कारण १६ वष की आय क लयमय चौहानाह गवराय का सारणाना

१ विषय लयप प २२४ २२५ पत्राक्षरीराममंथन प ४६७ ४६८ ४८१ ४८२ भी हल गवय में कृष्टम् है ।

२ वरी प ६ ।

हल मनमेरी क निराकरक क निरामपरकगरी मुनिमी मिथीमनत्री य की वषवीर चौहानाह' पुनक कृष्टम् है । उक्त कतिपय भा हल प्रकार है—(गमपत्र)

मिरोही गहर प ८० कोम उत्तर निहा में अष्टबाहा नाम का एक गाँव था । वह मिरोही सारण का एक बड़ा गाँव था । नामा प्रकार क धात्र और व्यावहारिक लक्षणों का यहाँ सदाय गवरा और सरोर-करोर पोन क कारण गवय हलक नाम अष्टबाहा कृष्टम्—अमलाना य एवं दागना गाँव मध्यावर नाम के यहाँ





अहमदावाद में आ बसे। कोई कहता है कि वह एक बड़े माहूकार थे, तो कोई कहता है कि वह अहमदावाद में नाणावट का व्यापार करते थे। कुछ अन्य उन्हें एक राजकर्मचारी प्रदर्शित करते हैं तो कुछ मात्र एक माधारण लहिया (शाम्श-लिपिक) ही। उन्होंने विवाह किया या नहीं और उनके कोई मन्तान हुई या नहीं, इस विषय में अनुयुनिया मौन हैं। हममें प्रायः मतव्य है कि वह एक धर्मात्मा व्यक्ति थे, गृहस्थ यावक का आचारविचार निष्ठापूर्वक पालने थे, माय ही भारी जिज्ञानु थे और आगममाहित्य का अव्ययन करके धर्म का वास्तविक स्वरूप जानने के लिए बड़े उत्सुक थे। किन्तु यतियों द्वारा यावको के स्वाध्याय पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया हुआ था, इसी से विवश थे। मयोग ने ज्ञानचक्र सूरि नामक एक यति ने उनके लेखन की स्वच्छता एवं सुन्दरता में प्रभावित होकर उन्हें शाम्शो की प्रतिलिपिया बनाने का कार्य सौंप दिया। लौकाशाह ने इस मयोग का पूरा लाभ उठाया और प्रायः सभी उपलब्ध आगमों तथा तत्संबन्धित बहुत से माहित्य का अव्ययन कर लिया और अनेक सूत्रग्रन्थों की एक-एक प्रतिलिपि अपने उपयोग के लिए भी बनाकर रखली। वे विचारशील थे ही और बुद्धि भी प्रबल थी, अब आगमिक माहित्य के निरन्तर विवेकपूर्ण पठन-चिन्तन में शाम्शमर्मज्ञ भी बन गये। आगमों में वर्णित धर्म के तथा यतियों के आचार-विचार के स्वरूप में और उस काल के यतियों के आचार-विचार, शिथिलाचार, मूर्तिपूजा के नाम में वृद्धिगत आडम्बर, समाज में प्रविष्ट अनेक विकृतिओं एवं कुरीतियों में उन्हें आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई दिया। यतियों के सम्मुख वह अपनी गंकाए रखने लगे किन्तु प्रत्युत्तर में प्रायः नदैव उक्त यतियों द्वारा फटकारे गये, हनोत्साहित किये गये। उनके कोप के भाजन बने। अतएव १४५१ ई० के लगभग वह यतियों का खुला विरोध और आंदोलन करने लगे जिसके लिए उन्हें अधिक लाञ्छित, अपमानित, निरस्कृत एवं वहिष्कृत होना पड़ा, यहां तक कि उन्हें अहमदावाद छोड़कर लीबडी जाना पड़ा। वहां उनके फुफेरे भाई अथवा मित्र लखममी एक सम्मान एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और राज्य की ओर में कामदार के पद पर नियुक्त थे। लौकाशाह के विचारों को मुनकर लखममी शीघ्र ही उनके पक्ष में आगये और फिर अन्त तक उनके मतके प्रचार में उत्साह के साथ अपना मद्योग देने लगे। मैं मैं अनेक व्यक्ति लौकाशाह के मन में आगये। इस विषय में भी मतभेद है कि लौकाशाह अन्त तक गृहस्थ अवस्था में ही रहे अथवा कि जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने माधुवेप ग्रहण कर लिया था? उनका निधन हुआ उसी वर्ष उन्होंने भाणजी को अपना शिष्य बनाया और उत्तराधिकारी नियुक्त किया। भाणजी ऋषि ने माधु वेप ग्रहण किया और उन्हीं में लौकागच्छ की माधुपरपरा एवं पट्टपरपरा चली। लौकाशाह ने मदिरों के निर्माण और मूर्तिपूजा का निषेध किया। ज्वे० यतियों की चर्चा में भिन्न एक पृथक् माधुमार्ग की स्थापना की, उपलब्ध आगमसूत्रों में ने केवल ३२ को ही मान्य किया, शेष को अमान्य। उनके देवलोकगमन के पश्चात् उनके मत का प्रसार द्रुतवेग से होता गया। आगे चलकर एक माधु ने उनके और सब मन्तव्य तो मान्य रखे किन्तु मूर्तिपूजा का विरोध नहीं किया अतएव लौकागच्छीय मूर्तिपूजक यतियों की परपरा चली।

रह गया है।—वहा ज्ञाति में अग्रसर चौधरी (नगरसेठ) हेमाभाई नाम के एक गृहस्थ रहते थे। गगावाई उनकी गृहिणी थी जो पतिव्रतपरायणा धर्ममक्त थी। काल पाकर हेमाभाई को पुत्रजन्म के समाचार मिले। हमारे चरित-नायक लोकचन्द्र का जन्म स० १४७२ में कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को हुआ था।

लोकचन्द्र छोटी उम्र के होने पर भी व्यापारकला में कुशल होने के कारण आसपास के स्थानों में व्यापार के लिए जाया करते थे। मिरोही तो उन्हें बार-बार जाना पड़ता था। एक दिन सिरोही के रईस ओसवाल कुलभूषण ओधवजी शाह ने उन्हें एक जीहरी की दुकान पर मोती की परीक्षा करते देखा।—

हमारे दिन अरहटवाडे आए और हेमाशाह के घर उतरे। ओधवजी ने अपनी हार्दिक आकांक्षा प्रकट करते हुए कहा—चौधरीजी, मैं अपनी एकमात्र कन्या सुदर्शना का विवाह-सम्बन्ध आप के पुत्र के साथ करने के लिए आया हूँ।—माघ सुदी पचमी स० १४८७ को लौकाशाह का विवाह सुदर्शना देवी के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ।—धर्मवीर लौकाशाह पृ ११-१५

शाहजी अपने उद्देश्य की पूर्ति होती देख परम हर्षित हो स्वयं भी वि० स० १५३८ सगमर सुदी ५ को ज्ञानजी ऋषिजी महाराज के शिष्य सोमसेनजी के पास दीक्षित होगए। ३५ व्यक्ति आपके साथ और भी शिष्य रूप में दीक्षित हुए।—वही, पृ० ५६

निगियाजी भी कहते हैं। इस पथ के अनुयायियों का वही परम तीर्थस्थान है। तारणस्वामी के ग्रन्थ यहा विराजमान हैं। इनकी कोई पट्टपरपरा नहीं चली किन्तु गृहस्थ त्प्राणी ब्रह्मचारियों के रूप में शिष्यपरपरा चलती रही ह।

इस प्रकार इन तीनों ही मन्तों ने द्वितीय कलियुग अर्थात् १५वीं शती में जन्म लिया और उनके उत्तरार्ध में विभिन्न क्षेत्रों में अपने क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार किया, धर्ममस्या का मथोवन करने का प्रयत्न किया, यतियों और भट्टारकों के शिथिलाचार और अनाचार का तीव्र विरोध किया, पूजापाठादि के आडम्बर का अनीचित्य प्रदर्शित किया, लोकमग्न—जनसम्पर्क द्वारा सामान्यातिमामान्य जनता को मान्त्वना दी और धर्ममार्ग में लगाये रखने का प्रयत्न किया। इन मन्तों द्वारा पुरस्कृत क्रान्ति का महत्त्व इनी बात ने स्पष्ट है कि वह मात्र सामयिक नहीं थी वरन् नवीन पथों के रूप में फैल जाने और सैकड़ों वर्षों पर्यन्त बने रहने की क्षमता ने युक्त थी।

- १ पुरातात्विक वस्तुएं (Archeological Finds)
२ रिवाजों और अनुष्ठानियां (Traditions)
३ लोककथाएं और पौराणिक कथाएं (Myths and Legends)

- ४ रीति रिवाज (Customs and usages).
- ५ धार्मिक प्रथाएँ और दार्शनिक मिद्धान्त (Religious Beliefs & Practices).
- ६ वैदिक, पौराणिक, जैन और बौद्ध साहित्य (Literature)
- ७ गिलालिय और टिकडे, ताम्रपत्र और सिक्के ।

इस स्थल पर यह कहना अनावश्यक न होगा कि भारत का इतिहास बनाने के लिए जहाँ इसकी उपर्युक्त सामग्री बड़ी महत्त्वशाली है वहाँ ईरान, अमीरिया, बेबीलोन, फिलस्तीन, अरब, मिस्र और चीन आदि देशों की ऐतिहासिक गवेषणाएँ, जिनके साथ कि इसका घनिष्ठ सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्ध रहा है, अथवा मैगस्थनीज, हेरोडोटस, स्ट्रेबो, फाहियान, हुआनसांग, इतिमग, अलबरूनी, इब्नेबतूता प्रभृति विदेशी यात्रियों के उल्लेख, जो भारत के सम्बन्ध में लिखे गए हैं, कम महत्त्व की चीज नहीं हैं ।

भारतीय इतिहास के साथ ग्रन्थाग्र

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, भारत की प्राचीन सस्कृति अपनी सत्ता और स्थिरता, अपनी गहराई और विभूति, अपने विकास और उत्थान के लिए दो प्रभावों की ऋणी है—श्रमण और ब्राह्मण । इनमें श्रमण-प्रभावों के प्रतिनिधि आज ज्यादातर जैन, शाक्य, जैन और बौद्ध लोग हैं, और ब्राह्मणिक प्रभावों के प्रतिनिधि आज ज्यादातर वैदिकधर्म-अनुयायी हैं । इसलिए भारत की सस्कृतिके और इसके इतिहासको समझने के लिए जरूरी है कि इन पाँचों ही वर्गों के साहित्य और कलाका सिलसिलेवार परीक्षण किया जाय, और पाँचों की ही अनुश्रुतियों, पौराणिक कथाओं, मान्यताओं और प्रथाओं का समन्वय और एकीकरण किया जाय । इनमें से किसी एक को छोड़कर भारतीय इतिहासको बनाना इतिहासके साथ अन्याय करना है । ऐसा इतिहास भारतीय इतिहास कहलानेका अधिकारी नहीं हो सकता । वह भारत का केवल एकजातीय व साम्प्रदायिक इतिहास ही कहा जा सकता है । ऐसे इतिहास में हम भारत का सर्वांग दर्शन नहीं कर सकते । वह एकांगी वृत्त है, एक अधूरी कहानी है ।

परन्तु खेद है कि भारतीय इतिहास बनानेके लिए आजतक जितना साहित्य और कलाका परीक्षण हुआ है, वह अधिकतर ब्राह्मणिक कृतियों का ही हुआ है, और उन ही के आधारों से प्राप्त भारत की प्राचीन अनुश्रुतियों और पौराणिक उपाख्यानो का संग्रह किया गया है । ब्राह्मणोत्तर धर्मों के साहित्य और अनुश्रुतियों का, जैन आदि उपर्युक्त वर्गों की अपनी पुरानी स्थितिपालकता (Conservatism) के कारण—कि हमारेको अपने तथ्य बताना, अपने ग्रन्थ दिखाना पाप है—प्रथम तो कोई परीक्षण ही न हुआ, और यदि इधर-उधर से सामग्री प्राप्त करके इनका कोई परीक्षण हुआ भी है, तो वह अव्यवस्थित होने के कारण बहुत अधूरा हुआ है । इसमें भी विद्वानों को पुरानी ब्राह्मणिक धारणाएँ मढ़ा आड़े आती रही हैं । इसका यह दुष्परिणाम हुआ है कि भारत के पुराने धर्मों की सत्ता से ही इन्कार कर दिया गया है । उन्हें केवल वैदिक धर्मकी ही शाखा मान लिया गया है । भारतीय इतिहास का आरम्भ वैदिक आर्यों से किया गया है, और भारतीय सस्कृति, भाषा, भूषा, वस्त्राभरण, अस्त्र-शस्त्र, वाहन, व्यसन, व्यवसाय, नगर, ग्राम आदिका मूलाधार ब्राह्मणिक सस्कृति को ठहरा दिया गया है ।

३. ब्राह्मणोत्तर साहित्य का इतिहास में स्थान

इस इतिहास का अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो वैदिक आर्यों से पहले भारतवर्ष की न कोई अपनी वस्ती थी, न अपनी कोई सस्कृति । यदि कोई वस्ती व सस्कृति थी तो वह जगली भील लोगो अथवा असम्य क्रूरकर्मा द्रविड लोगो की थी । परन्तु अब ज्यो-ज्यो जैन, शाक्य, जैन और बौद्ध साहित्य का प्रकाशन होने लगा है, और साथ साथ में पुरातत्व की नित्य नई खोजों का भी पता लगने लगा है, ब्राह्मणिक साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से मन्थन होने लगा है, त्यो-त्यो मव ही इतिहासज्ञ अपनी पुरानी धारणा को छोड़कर एक स्वर से कहने लगे हैं कि भारतीय इतिहास का उपर्युक्त निष्कर्ष नितान्त श्रमत्य है । ऐसा निष्कर्ष न केवल ब्राह्मणोत्तर अनुश्रुतियों के विरुद्ध है बल्कि स्वयं ब्राह्मणिक अनुश्रुतियों के भी विरुद्ध है ।

इस सच्चाई का पता लगाने के लिए जितना प्रोत्साहन भारत के विगत साहित्य में मिला है उसमें भी अधिक मित्र कीर्ति के मोहनजोदड़ो और पञ्चांगमें रावी कीड़े के छुड़ना के प्राचीन ध्वजावली में प्राप्त परात के साथी स मिला है।

४ जन साहित्य की विशेषता

हिन्दू साहित्य और कला में इन ब्राह्मण और श्रमण प्रभावा का ऐसा सम्मिश्रण हुआ है कि उन्हें आज पथक पथक करना और इनके मूल्य का सत्य अलग-अलग जानना बहुत मुश्किल है परन्तु जनों का साहित्य और कला के प्राचीन में ब्राह्मणिक प्रभावा का छाप पड़ने पर भी बराबर प्राचीन श्रमण सभ्यता के अभाव में भी विभिन्न रूप में कायम रहने लगा है। अतः भारतीय इतिहास में श्रमण जीवन के आचार विचार के प्रभु और मूल के अभाव के लिए यह अधिक सत्य है।

१ महावीरसंस्कृत के सारे साहित्य में श्रमण संस्कृतियों का प्रभाव के छाप का कागज के रंग के रंग है। यह उगता उगता भी गया है। यह बहुत प्राचीन है। उसमें हमें उस एक मीन का पता दिया गया है। उगता माया हमें एक अजनबीना सा तबूत दिया गया है। उनके प्रति हमारा अज्ञानकारी और अचम्भ का भाव प्रगट किया गया है। उसमें माया प्रगट है कि श्रमण संस्कृति ब्राह्मण की चीज नहीं है। श्रमण ज्ञानकारी के लिए ब्राह्मणिक साहित्य का टोलाना ऐसा ही है। तब कि हिन्दू देवालय में जिन प्रतिमाओं का अंश है। हमें मालूम के पाछे के साहित्य में अथवा मालूम के बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। जिसके कारण मध्यकालीन हिन्दू साहित्य श्रमण संस्कृति के प्रभावों में आनमोत है।

२ ब्राह्मणों की दृष्टि में श्रमणिक रंग है। अतः उनका साहित्य और कला का दृष्टि का सारा मालूम निकलती रही है। श्रमण सभ्यता की धार्मिक इतिहास को सारा कला का रंग हुआ। मानविक स्थिति रूप में जादू किया गया है। हमने विपरीत धर्मों की दृष्टि सारा अध्यात्मिक रंग है। मानविक रंग है। इसी बातें उनके साहित्य और कला की दृष्टि की वास्तविक (Reality) बनती रही है। यही कारण है कि उनके साहित्य और कला में सब का धार्मिक इतिहास को ऐतिहासिक अवस्थिति के लिए हमें मानविक रूप में प्रगट दिया गया है। निम्न वक्तव्य सुन लें।

३ जन साहित्य के समस्त श्रमण अपने जीवन-वास्तव प्राप्त उगा रूप के आरंभ में। उनमें पीछे में किसी तरह की बदोहरी और अज्ञानी नहीं की गई है। इसलिए यह साहित्य अनिवार्य रूप से अति प्रामाणिक है।

४ हिन्दू साहित्य ने उन्हें संपूर्ण बनवाया है। जिन्होंने ब्राह्मणों के प्रति बौद्धिक मर्यादा सामाजिक व्यवस्था राष्ट्रीय संगठन का बनाने के लिए और कायम रहने के अर्थ में जीवन और पुनर्वास किया। अपने विष

- १ (क) Hitherto it has been commonly supposed that the pre-Aryan peoples of India were on an altogether lower plane of civilisation than their conquerors. Mentally, physically, socially and religiously their inferiority to their conquerors was taken for granted and little or no credit was given them for the achievement of Indian civilisation. That the Indus people of the 4th and 3rd millennia B.C. were in possession of a highly developed culture in which no vestige of Indo-Aryan influence is to be found. Sir John Marshall, Mohenjodaro and Indus Civilisation Vol I 1931—preface pp V-X
- (ख) R B Ram Pershad Chanda—Memories of the Archeological Survey of India No 41—1924 pp 25-33
- (ग) A P Banerji Shastri—The Asura India Patna 1920 pp 1 xviii



रीन जैन साहित्य के महापुरुष वे हैं जिन्होंने मनुष्यको अपने प्रचारबल से सर्वोच्च आदर्श दिया है, अपने ज्ञानबल से सबमे बड़ा सत्य दिया है और अपने आचार-बलसे अक्षय्य मुखका मार्ग दिया है ।

५ इतिहास को मथन करके यदि कोई तत्व जीवनोपयोगी निकाला जा सकता है तो वह है म्यादवाद, जैन साहित्यकी अपूर्व देन । विना आदर्शके विधान निष्फल हैं और विना विधानके आदर्श कल्पना है । दोनों एक दूसरे के सहयोगी हैं । विना निश्चय सकल व्यवहार निरर्थक भवभ्रमण है और विना व्यवहार सकल निश्चय निरा एक खाल है । विना आदर्श सकल विधान एक निरर्थक गार है और विना विधान सकल आदर्श निरा एक स्वप्न है । इन दोनों में सहयोग होना नितान्त आवश्यक है । जब कभी किसी जाति और सम्प्रदाय ने एकान्त में काम लिया है, एक को छोड़ दूसरे को अपनाया है, तब ही उस जाति और सम्प्रदाय ने अपने को भूलो में डाला है, मुसीबतों में फँसाया है, दुखों में अपना अन्त किया है । इसलिए 'एकान्त सर्वत्र वर्जयेत्' भारतीय संस्कृति का निचोड़ है । यह तत्व ही ज्ञातृपुत्र भगवान् महावीर के म्यादवाददर्शन की आधारशिला है । वीर-दर्शन क्या है, गोया भारतीय संस्कृति का सार है, भारतीय विचार-धाराओं का मगम है, भारतीय मान्यताओं की व्यवस्था है । जो विचार भारतमें विकसित हुआ है, उसमें जरूर वीर-दर्शन में स्थान पाया है । जिनमें वीर-दर्शन में स्थान नहीं पाया है, वह भारत का विचार भी नहीं है । इसलिए भारतीय विचारधाराओंका स्थान जानने के लिए जैन साहित्य का जानना बहुत जरूरी है । वैदिक साहित्य के आध्यात्मिक और पौराणिक प्रकरणों को ठीक-ठीक समझने के लिए जैन साहित्यकी अनुश्रुतियों और मान्यताओं से परिचित होना बहुत जरूरी है ।

६ जैन साहित्यमें देवताओं से अधिक महत्व मनुष्यत्व को दिया गया है । वह तप के प्रभावसे ऋद्धि-सिद्धिकी प्राप्ति कर सकता है । देवता मनुष्योंका कुछ भी नहीं करते बल्कि मनुष्य ही अपने व्रत तपके प्रभावसे देवताओंको कुछ भी करनेके लिए बाधित कर देते हैं । देवता जन धर्मोपदेस सुननेके लिए तरसते हैं तथा तीर्थंकरोंकी परिपद में आते हैं । वे योगियों के अनुचर हैं ।

७ जैन साहित्य में देव, ग्रास्त्र, गुरु व धर्म के जिन आध्यात्मिक आदर्शों को उनके लक्षणों के रूपमें ग्रहण किया गया है, वह इसकी ही एक विशेषता है, क्योंकि अन्य किसी भी साहित्य में उनको इस रूपमें नहीं माना गया है ।

८ जैन साहित्यमें कर्मगण्डकी अपेक्षा सदाचारको महत्ता दी गई है । स्वकृत अच्छे बुरे कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है । कोई भी शक्ति इस फल को टालने में समर्थ नहीं । इसलिए ब्राह्मण-मान्य हिंसात्मक यज्ञोंका कड़ा विरोध किया गया है और अहिंसाको ही जीवनका आदर्श माना है ।

९ जैन साहित्यके अनुसार यह जगत् अकृत्रिम तथा अनादिनिघ्न है । यह पुरुषाकार है । यह मागर है, दुःखमय है तथा महा विस्तीर्ण है । यह परिवर्तनशील है, इसलिए समय समय पर स्वयं प्रलय व सृष्टि को प्राप्त होता रहता है । इसमें भोगभूमि व कर्मभूमि रूप दो रचनाएँ होती हैं । पहिले भोगभूमि रहती है, पीछे कर्मभूमि आती है । भोगभूमि में अराजकता रहनेसे वह विराट होती है पीछे आवश्यकता पड़ने पर राज्य शासनव्यवस्था की जाती है । वही ब्रह्मा की सृष्टि कही गई है । ब्राह्मणों की भांति जगत् के निर्माण को सृष्टि नहीं माना गया है ।

१० जैन साहित्यमें ब्राह्मणमान्य वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया गया है । इसकी वर्ण-व्यवस्था जन्मानुसार न होकर गुण कर्मके अनुसार होती है । इसमें पहले तीन ही वर्णोंकी व्यवस्था की गई थी । पीछेमें धर्मानुरागी विवेकवान् व्यक्तियों के लिये ब्राह्मण वर्ण की व्यवस्था भी कर दी गई थी ।

११ ताक्ष्य, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ नागवशी थे । वैदिक साहित्यमें जिन ब्राह्मण व यति जनो का उल्लेख निन्दापूर्ण किया गया है, वे जैन साहित्यकी विभूति हैं । व्रती होने से ब्राह्मण और मोक्षमार्गमें यत्नशील होनेसे यति, इस प्रकार जैन नाबुओंकी ही ये सजाए हैं, जिनका अधिकतर वाम पश्चिमी व पूर्वी मागर पर रहता था । बिहार देश में रैवत पर्वत व पार्श्वनाथ हिल इसी कारणसे प्रसिद्ध है ।



जैन साहित्य मौलिक कृत्यों के अतिरिक्त टीका, वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और वार्तिकोमें भी भरपूर है। इनमें गाथा, श्लोक, सूत्र, सब ही भारतीय लेखनपद्धतियोंको अपनाया गया है।

जहां जैन धर्म विश्वका कल्याणकारी और प्राणी मात्रका उद्धारक रहा है, वहां इनके प्रवचन और लेखनकी भाषा भी विश्वव्यापिनी रही है। इसने कभी किसी विशेष भाषामें मोह नहीं किया। यह सदा जाम जनताकी बोलचाल की भाषाओंमें अपने सन्देशका माध्यम बनाता रहा। यह जिन जिन देशोंमें गया, जिन जिन कालोंमें से गुजरा, उन्हें उन्हीं की प्रचलित बोलियोंमें ज्ञान देना चला गया। इसीलिए इसका साहित्य प्राकृत, मगध, मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, तामिल, तेलगू, कन्नड़ आदि भारतके उत्तर और दक्षिणकी, पूर्व और पश्चिमकी सब ही पुरानी और नई भाषाओंमें लिखा गया है।

जहां जैन धर्म वर्ण और जातिके भेदभाव रहित सब ही को अपनी शरणमें लाता रहा है, सब ही को अपनी शिक्षा-दीक्षा देता रहा है, सब ही को अपने श्रावक श्राविका मुनि आर्या के चतुर्विध सघमें दाखिल करता रहा है, वहां इसके लेखक और कलाकार भी सब ही जातियों, सब ही वर्णों, सब ही आश्रमों वाले बने रहे हैं। यति, मुनि, भट्टारक, श्रावक, राजा, मन्त्री, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब ही इसके साहित्य का उद्धार करते रहे हैं।

जैसा कि जैन इतिहासमें प्रगट है, जैन धर्म सदा क्षत्रिय कुलोंका धर्म बना रहा है। यह सदा राजघरानों में उगता रहा और राजघरानोंमें पलता रहा है। प्रागैतिहासिक काल के मिवाय भगवान् महावीरके कालमें भी इसे पूर्वी और मध्य भारत के मगध, अवन्ती, मिथु, कौशल, मथुरा, काशी आदि देशोंके सब ही प्रमुख राजवंश, अमात्यवर्ग और श्रेष्ठजनका आश्रय पाने का गौरव प्राप्त रहा है। वीर-उपरान्त कालमें भी इसे मगध, उड़ीसा, गुजरात, राजस्थान और दक्षिणके सब ही—शिशुनाग, नन्द, मौर्य, ऐर, खारवेल, राठौर, परमार, चौहान, गङ्गा, कदम्ब, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होयसल आदि प्रमुख राजवंशों, अमात्यवर्ग और श्रेष्ठ जनकोंका आश्रय प्राप्त रहा है। यह सदा बलवत्सहित वीर तपस्वियोंके परिभ्रमण द्वारा सब ही दिशाओंके दूर दूर देशों, दूर दूर नगरों और ग्रामोंमें फैलता रहा है। वीर-उपरान्त कालमें भी यह दिगम्बर और श्वेताम्बर श्रमणोंके अनेकों सघ, गण और गच्छों की अध्यक्षतामें भारतके कोने कोनेमें फैला है। इसी लिए आज जैन साहित्य और कलाकी अगणित कृतिया तारा-राशिकी तरह भारतके सभी भागोंमें फैली हुई हैं।

मुगल सम्राट् और जैनधर्म

શ્રી દિગમ્બરદાસ જૈન

एडवोकेट सहायनपुर

[illegible]

बाबर दान यज्ञदान था। ॥ यज्ञदानों को अपना लेना यज्ञों में दानकर शिव का शीघ्र पर लौट लगाना करता था। वह बड़ा उदार स्वभाव का था। भयगर्षिया ॥ गङ्गी स्नानकर बरन पर काम कर देता था। बर्ना घमिला और अस्मात्रनी था। उगता पुत्र हमायू बागार हो गया अनक उपाय करने पर था अज्ञात हुआ ता उसन हमायू का पलंग का बै यबकर बागार परमात्मा न प्राप्तिनी की शिरा पुत्र स्रष्टा का नाम मेरा जोवन ममान्य हो जाण। बाबर की मृत्यु हो गई और ममान्य यज्ञ हो गया।

सावर स्वयं विमान था। उसने सावरनामा तपस्रवा और मुर्खों विमान आनि अनज घाय निष्ट। वह विमान का क्षात्र करता था। सावर अविना तथा अय धमबाग। का विनना सत्कार करता था उसरी कमिषन स भागूम होता है जो हमायू का नाम पर है। जगन लिखा है - म मर पुत्र। भारत म अनर धर्मो का गग रूत है। मय धर्म का मत्कार करता मुद्रु जाजिम है। गोवध का समस्त करी वपाति नगर बरर तुम भारतवासिया का हृदय का नदी जीन करता। मया करी म मैन क रण सुम्नर उपकार रहे। १

महाभक्तों का बहुत बड़ा जल कवि गिरधर ने समझा हुआ । गिरधर इनका बड़ा सम्मान करता था । इन्होंने 'महाभक्त' नाम के साठवें भाग पर आपातिनाथ भगवान् पर ५५ हजार ३० अक्षर प्रमाण ग्रन्थ की रचना की । आज भी यमपुरा के जैन मन्दिर में सुरक्षित है ।

साहू सायाप्रसाद गङ्ग जैन ठीक जिनका बाहर पर बहुत प्रभाव था । इ हान बाहर की भाषा में एक निम्नरज मी र बनेवाया ।

१ उद् मिनाए नर्द देहनी २ ८ ६७ ४ १२

२ तम बेहनी ३१ ५ ६७ ४ ५

६४ वेहाली जन ३१ रेवन्ती प ८

सेठ नेमीवास सेठ तोमड राय के ज्येष्ठ पुत्र थे। उन्होंने बाबर के राज्य में सोने, हीरे, मूंगे की मृपमदेव, शीतलनाथ, विमलनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ और पार्व्वनाथ आदि जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बनवा कर जैन मन्दिरों में स्थापित की। पञ्चकृत्याणक उत्सव और पूजाएँ कराई, बाजारों में विशाल श्रवोत्सव निकालवाए।

यशकीर्ति एक बहुत बड़े जैन त्यागी हुए जिन्होंने बाबर के गवर्नर मुन्वरक याहू के जैन मन्त्री हेमराज के अनुरोध पर पाण्डवपुराण और हरिवंशपुराण रचे।^१

राणा सागा पर जैनाचार्य धर्मरत्न सूरि का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनका हाथी-घोड़ी, गाजेवाजों ने स्वागत करता था। उनके उपदेश में राजा ने मद के लिये माम-मदिग का त्याग कर दिया था। जैन मन्दिरों को बड़े-बड़े दान दिये। यह बहुत बलवान् योद्धा राणा था। अनेक घमामान युद्ध जीते। युद्धों में छाती पर अस्मी घाव लगे। एक हाथ कट गया, एक आँख चली गई, फिर भी जब बाबर ने उसके देश पर आक्रमण किया तो स्वयं युद्ध के लिये तलवार उठाई और इतनी मारकाट की कि मुगल सेना के छक्के टूट गये। राणा सागा मामत्यागी और अहिंसाधर्मी था फिर भी देशमेवा के लिये सदा उसकी तलवार म्यान से बाहर रहती थी। इसने कई बार बाबर को हराया। तातारी मेना इसके नाम से कापती थी। एक बार इसने बाबर को एक तम रास्ते में रोक लिया,^२ यह चाहता तो बाबर को जान में मार देता। परन्तु उसकी देवमी को देखकर वीर राजपूत ने उसकी मेना को तो मार भगाया परन्तु बाबर को छोड़ दिया। बाबर ने अपनी फौज को इकट्ठा करके बेगवरी में धोखे में आक्रमण कर दिया जिसके कारण राणा सागा को फिर उसमें लोहा लेना पड़ा। राणा सागा की मेना के कुछ आदमी बाबर में मिल गये। ऐसा विश्वासपात देखकर भी अहिंसाधर्मी राणा घबराया नहीं। इसके मन्त्री उन समय लड़ना उचित नहीं समझते थे। राणा सागा को रजामन्द न देखकर दुर्गचारी मन्त्रियों ने राणा को विष दे दिया।^३ इस प्रकार मुगल राज्य की स्थापना भारत में हो गई।

तारण स्वामी के पिता देहनी के मन्नाट बहलोलखा लोदी के ऊँचे अधिकारी थे। इन्होंने अनेक जैन धार्मिक ग्रंथ रचे और बाबर के राज्य में जैनधर्म का खूब प्रचार किया। लाखों हिन्दू और मुसलमान जैन बन गये।^४

गुरु नानकदेव बाबर के ही समय हुए, जो मिकियों के प्रथम गुरु हुए हैं। ये अहिंसा के बड़े प्रचारक हुए हैं, इन्होंने कहा —

जे रत लगे कपडे, जाम हो पलीत ।

जो रत पीवे मानुपातिन क्या नगल चित्त ॥

—बाबा नानक चार मास माँझ महरला १ पृ० १४०

गुरुजी ने यहाँ तक कहा है कि ६८ तीर्थों की यात्रा से भी वह फल प्राप्त नहीं होता जो अहिंसा और दया पालने से होता है —

अडसठ तीरथ सफल पुन, जीवन दया प्रधान ।

जिसनू देवे दया कर, सोई पुरुष सुजान ॥

—माझ महरला ५ बारामाह (माघ माह)

गुरु नानक देव ने पशुओं को अपने पुत्र के समान प्रिय बताते हुये कहा कि पशुओं में भी मनुष्यों के समान जान और आत्मा है इसलिये उनको मारना और कष्ट देना उचित नहीं—

किया बकरी किया गाये, किया अपना जाया ।

सबका लहू एक है, गुरु नानक ने फरमाया ॥^५

१ प्रशस्तिसंग्रह (शोलापुर) भाग द्वितीय प्रस्तावना पृ० १७।

२-३ साप्ताहिक 'हिन्दू' जानघर बलिदान अंक २३ जून १९६३ पृ० ४७।

४ विस्तार के लिये Jain Antiquary भाग १२ पृ० ५६-६१

५ विस्तार के लिये हमारा 'शान्ति के अग्रदूत श्री वर्धमान महावीर' पृ० ६७-६८

पन नियुक्त थे। राजा टोडरमल जैन था, अहिंसा धर्म प्रली प्रकार पालना था, उसको मालगुजारी दी तथा एक मेना का सेनापति बना रखा था।

इसके राज्य में जैनधर्म ब्रह्म-फला था।^१ मूरि राज के समय श्रीचन्द्र, माणिकचन्द्र, देवाचार्य, क्षेमकीर्ति आदि अनेक प्रसिद्ध विगम्बर, त्यागी और सन्त हुए जिनका राज्य में सम्मान था। इसी समय फ्रेंच यात्री Bernier तथा Tavernier ने भारत-भ्रमण किया। उन्होंने जैन नाम माधुओं को बिना किसी रोकटोक के बड़े बड़े गहरे और बाजारों में चलते-फिरते पाया।^२ जैन नाम माधुओं के दर्शन न केवल पुण्य बल्कि नवयुवक तथा सुन्दर ने सुन्दर स्त्रियाँ तक जो दृष्टि श्रद्धा एवं भक्ति में भरती थी। जैन मुनियों ने अपने मन और इन्द्रियों पर इतनी विजय प्राप्त कर रखी थी कि उनमें वातचीन करके उनके हृदय में कोई विकार उत्पन्न न होता था।^३ स्वयं जेरजाह के ऊँचे अधिकांश मन्त्रिज मोहम्मद जायसी ने अपने पद्मावत (१६०) नामक ग्रन्थ में जैन मुनियों को दूसरे माधुओं में अधिस्तकाद्योग्य बताया। मन्नाट सिखन्दरमूरि (Sikandar Suri) ने जैन गुरु विशालकीर्तिजी का सम्मान किया।^४ मार्कोपोलो (Marco Polo) का कहना है कुछ योगी बिल्कुल नग्न रहते थे। कारण यह बताया कि वह इस मनार में नग्न उत्पन्न हुए और मनारों वस्तुएँ वह ग्रहण करना नहीं चाहते।^५

जेरजाह मूरि ने फरमान जारी कर रखा था कि जनता की बहुत अधिक सन्ध्या के धर्म का आदर करना राज्य का कर्तव्य है। इसलिए गोवध बन्द किया जाता है। जो ऐसा नहीं करेगा उसको कठोर दण्ड दिया जायगा।^६

अकबर (१५५६-१६०५ ई०) जेरजाह की जक्ति के नामसे एक बार हुमायूँ को भी भागना पड़ा। उसने जोधपुर के राजा मालदेव ने महायना मागी परन्तु जेरजाह मूरि के मय ने उसने इन्कार कर दिया। हुमायूँ की वेगम हमीदा खानुम गर्भवती थी। हुमायूँ ने कई राजाओं को अपनी वेगम के बच्चा होने के समय तक शरण देने को कहा लेकिन कोई तैयार नहीं हुआ। आखिर हुमायूँ वेगम सहित अमरकोट (मिथ प्रांत) पहुँचा। वहाँ का राजा जैन था। मिथ में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव के समय में जैनधर्म मन्नाटों और जैन धर्म का प्रभाव था। मोहम्मद बिन कानिम के आक्रमणों के समय मिथ का राजा ताहरमेन था। हुमायूँ ने अमरकोट के राजा को कहा। एक जैन राजा शरण में बाधे हुए जो कैसे इनकार कर सकता है? उसने हमीदा खानुम को अपने महलों में रख लिया। अहिंसाधर्म, सामत्यागी, शुद्ध आचार-विचारों का प्रभाव वेगम पर पड़ा। माता के सम्कारों का प्रभाव गर्भ में ही बच्चे पर पड़ना आरम्भ हो जाता है। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह भेदने की विद्या जब अर्जुन अपनी स्त्री को दत्ता रहा था, गर्भ में ही मीख ली थी। इन्हीं गर्भ के सम्कारों के कारण अकबर का जैन गुरुओं और अहिंसा सिद्धान्तों पर गहरा और अटल विश्वास रहा। उसने सदा के लिये मांस का त्याग कर दिया। नाक में लगभग छ. महीने जैनियों के पवित्र पर्वों और त्योहारों के समय अपने समस्त राज्य में जीव-वध बन्द कर दिया था और इस कानून के न पालने वालों को बड़ा कठोर दण्ड दिया जाता था।^७

हीरविजय मूरि उस समय के एक बहुत बड़े मन्त थे। प्रो० राम स्वामी आयगर के अनुसार अकबर जैनधर्म में श्रद्धा रखता था। उसे जब हीरविजय मूरि की मान्यता ज्ञात हुई तो उसने गुजरात के सूबेदार साहबमिहको उन्हें बुलाने को लिखा। मुनिराज अनेक प्रकार की सवारियों का राज्य की ओर में प्रवन्ध होने पर भी गुजरात में आगरा पैदल आये। क्योंकि जैन मुनि स्त्री प्रचार की सवारी का प्रयोग नहीं करते। अकबर ने शाही शान में उनका स्वागत किया और उनके

१-२ 'बीर' देहली (१-३-१६३२ ई०) पृ० १५५

३ Dr Bernier's Travels in Mugal Empire, p. 317.

४ Siletor, Karnatak Historical Review IV p 78-81

५ Yiel s Marcopolo, Vol II p 566

६ ईतिहास उर्दू 'मिल्लत' देहली, (१४-१२-१६६६) पृ० ३।

७ विस्तार के लिये हमारा 'वर्द्धमान महावीर' पृ० ४६० में ४६३ तक।

उपने से जनधर्मों का गया था ।^१ अकबर ने इनको 'गण' शुरू की पन्थों का था ।^२

गान्धिवंश जन मुनि का अकबर पर बड़ा प्रभाव था । ईसा १५६१ ई. में अकबर ने बंगाल— आज में यहाँ से आरम्भ । अकबर ने कारण पछा । मिराजिन बहादुरि कृत य । हजारा न । राजा जावा का बध हाया । फिर 'होने कुरान' गाराफ की आयनें लिखा कि कुरबानी का माम छान को न । पृथ्वी वीक परहृत्तगां पृथ्वी है ।^३ रानी और सजी गां स हा राजा स्वीकार ने जाना है । अकबर ने गौरीबा स पूछा । उनका मनुजिनक उत्तर न पाकर अकबर ने अपने राज्य म मुना की बरा की कि ईसा १५६३ ई. में गान्धिवंशी का आयनें सा बन् करने का करमान लिया ।^४

भानुपद ज्ञा आचार्य पर अकबर की बड़ा प्रभाव था । एक दिन अकबर ने बंगाल था । अकबर उपाय करने पर भी पाराम न हुआ तो उसका भानुपद को बुलाया और 'एक' करने की बन् । आचार्य महाराज ने बन्— म बाई बन् या इकाम नहा हू । अकबर ने नहा— आप सत्यवादी ह । आपका गन्धू न । हा सकता । बन् इतना बन्— दू पाता रहे । अकबर की आचार्य ने बन्— आपका दू अवश्य जाना पन्था । अकबर की पन्थ नडा और भानुपद की क चरित्र क प्रभाव म अकबर का दू मिट गया ।^५ इस खुशी म दरबारिया न ५ गाँवें बध करी ना समझा ह । अकबर को पता चला तो क बा— मेरा कल दूर ने और दूसरा की जान निकल यह बन् का पाय है ? कुरत सब गाथा की अमरमान लिया ।^६

विजयसिंह मूरि ही अकबर ने 'गौरी बुलाया और उनका २६३ विपत्ति ने दग विषय पर धाद विवाह करायो कि अकबर की हर्षा न ही है और अकबर बुद्धिमत्त तन मे प्रभावित हारर नन्हा सवाई की पन्था प्रान की ।^७

अबुल फजल म केवल अरबों और फारसी का निपान था वह सत्त्व और हिंसा का भी अन्त निपान था । उसने जन धर्मों का इलाक़ाफ और जन सत्ता का मनन निग महत्ता सन्धिया गारा अनुमान उसका निपदी पुस्तक आग्या ऐ अकबरी स आसानी से ग जाता है जिसम उनगे गभग ५ पद आधम क सिद्धांता और उाके मन्त्व तथा आवस्यकता पर लिख । और बतलाया कि अकबर पर गिगम्बर जन मन मुनियों का अधिक प्रभाव था ।^८ उसका पहला है कि अकबर ने राजाना द्वारा काफ़ीर की भीतो से मछलिया का गिहार करना बन् कर दिया था । जन तीर्थों से यात्रा कर लेना बन् कर दिया था । प्रत्येक जन पत्र स सहाण अठाई बांनि सदा हर पक्षमी अफमी चनु बन् आनि जन स्वीकार मन् मिताकर सानि म छह माम जीव निया कानून गारा बन् कर दो थी ।^९ अकबर ने पात भक्षण त्याग लिया था और जनता को कहता था—

यह उचित नहीं कि मनुष्य अपने उदार का पशुओं की बर बनावे । बसाई आनि जीवाँ सा करनेवाणे

१ Bhandarkar Commemoration Vol I P 26

२ अकबर और जनधर्म (धोआमानन्द जन टुंठ सोसायटी अम्बाला शहर) पृ ८१ ।

३ कुरान शरीफ पारा १६ हज मुरा हक ५ आयत ३८ ।

४ मुरोव्वर और सम्राट पृ १४४ ।

५ अकबर और जनधर्म पृ ५ ।

६ ७ मुरोव्वर और सम्राट पृ १४६ ।

८ अकबर और जनधर्म पृ १० ।

९ अनुवाद हिंदी जन सदेग गोपीक १ १० ६३ १० २१८ २३३ ।

१० Ayna i Akbari Vol III (Lucknow) P 519

११ SN Binarj's Religion of Akbar P 81



यहू मे बाहर रहते है तो मामभधियों को आवादी मे रहने ना वश अधिकार है ? जा मान नहीं त्याग करने रहे मेरे शरीर का माम ग्रा लिया करें, मेरा शरीर इतना बड़ा हो जाए । भ स्वयं माम का त्याग करना है ।^१

टोडरमल का जन्म उत्तरप्रदेश के जिआ सीतापुर के ग्राम लहरपुर मे हुआ था । वे बड़े धर्मात्मा और अहिंसाधर्म का पाठन करने हुए भी तलवार के धनी थे । भूमिकर (मागधुजागी) के उन्होंने ऐसे निवस बनाये जिनको मुगलों एवं अंग्रेजों ने उपयोग मे लिया था तथा उनकी ठाण आज तक मौजूद है । वह भगवान् श्री पूजा किये बिना कोई काम तथा भोजन भी नहीं करते थे । डा० कम्पराण्ड कामशीला तथा ५० अनुपचन्द न्यायनीय के शब्दों मे टोडरमल जैन-धर्मानुयायी थे ।^२ उनका पुत्र राजीदास भी जैन था । श्री मरावीर अतिशय श्रेष्ठ ने प्रकाशित राजमान के जैन शास्त्रभट्टारों की सूची के चौथे भाग में भूमिका मे दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्रभट्टार मे नवावना कृत ज्ञानराशि टीका की प्रशस्ति मे लिखा है कि यह टीका मुगलमराट् जयजन् के राजमन्त्री टोडरमल के पुत्र राजी-दाम के पठनार्थ लिखी गई । जिनमे मित्र होना है कि राजा टोडरमलजी के नमान उत्तरा पुत्र भी जैनधर्मी था ।^३

टोडरमल जैन कवि राजमल के बड़े महारथ थे ।^४

वीरवत तितना बुद्धिमान और हाजिरजवाब था, यह अक्षर वीरवत के मुँहसे एवं स्त्रीको ने भली प्रकार मित्र है । वीरवत बुडिया तहमील जगधरी वा रहने वाला था । वह भी जैनी था । उनके बुडिया ने महार के पण्डित आज तक मौजूद है जो आज भी रामहन् के नाम से प्रसिद्ध है, जिसको हमने स्वयं देखा है । उनमें कट्टी और लोहा नहीं लगा फिर भी बहुत गुदर और मजबूत है ।

भारमल साँगर के राजा थे । वे जैनधर्मी थे । उन्होंने रागो स्वर्णमुद्राओं का दान किया और जैनधर्म की प्रभावना मे कगोठो रुपये खर्च किये । उनकी अर्न्ती टाकाल थी । अक्षर का मुकुटधारी राजकुमार मलीम उनके दरबार मे मिलने जाया करता था और सूचना मेजर इस बात की प्रतीक्षा में रहता था कि वह उनकी मिलने के लिये बुलावे । राजा भारमल का सम्मान अकबर के नमान था । उसी प्रत्येक दिन की आय एवं लाज स्वर्णमुद्राओं ने अधिक थी । पचास हजार स्वर्णमुद्राएँ तो प्रतिदिन यह अक्षर के खजाने मे जमा कराया करता था । अकबर पर उसका बड़ा प्रभाव था । इन स्वयं और अक्षर ने जैनधर्म की प्रभावनाओं के अनेक काम कराये ।^५

राजमल एक जैन महाकवि थे, जिन्होंने अक्षर के लिये अनेक साध्यात्मिक ग्रन्थ लिखे । उनके प्रभाव ने अकबर का जीवन ही बदल गया और वह जैन मित्रान्नों का आचरण करने लगा ।

५० बनारसीदास भी अक्षर के दरबार के महाकवि थे । रामबनार नाटक जैसे महान् उपयोगी ग्रन्थ रचे । पगडी बेचने का काम करते थे । उनकी प्रतिज्ञा थी कि एक आना रुपये ने अधिक लाभ नहीं लेंगे और १ रुपये ने अधिक एक दिन मे नहीं कमायेंगे । अकबर ने उनके व्रत की परीक्षा करने के हेतु आज्ञा दी कि कौ मेरे दरबार मे सब पगडी बांध कर आवें । पडितजी जितेन्द्र भगवान् की पूजा आदि ने निवट कर १० बजे दूकान पर जाने और चार बजे दूकान बंद कर देते थे । इसलिये सुबह मे ही उनकी दूकान पर भीड़ लग गई परन्तु वह समय पर आये और (१६) मोलह पगडी बेचकर दूकान बंद करने लगे । लोगों ने कहा—“चाहे जो दाम ले लो, पगडी दे दो । कौ दरबार मे बिना पगडी नहीं जाया जा सकता ।” तब उन्होंने वाकी पगडिया बिना लाभ के बेच दी । अगले दिन हजारों पगडिया देखकर अक-

१ Ayn-i-Akbari Vol III p. 330

२ सम्मति सन्देश, देहली (फरवरी १९६३) पृ० २३-२४ ।

३ सम्मति सन्देश, देहली (फरवरी १९६३) पृ० २४-२५ ।

४ Todarmal under the imperial service of Akbar was Digambar Jain He patronised Jain poet Rajmal—Jambu Swamicharit (Bombay) P 7-8

५ For details Jain Antiquary Vol XII, P 57

व न कथा— १ बनारसागम न बड़ा गम उठाया गया। कामा न बनारस कि १६ पगलिया बेचन न बाद उ ०ने विना नया गिय पगलिया उवा ता बह पगलिया क परिष परिमाण बन और सतोप का दखन चरित रह गया। अकबर न नरगम न बविममन्त न हुआ करन थ। एत बार बनिना की समझा था— ता आस बरी स अकबर का। पडितजा न अपनी यह बनिना था—

जिया बहुत बेग धरे जग म छवि माग आन विगम्बर की।
जय चितामणि घर म प्रकटो तब कौन अकबर अकबर की॥
जिन तारण तरण सेय सियो परवाह नहीं मुनवर की।
जिन आस नहीं परमेवर की तो आस करे मु अकबर की॥

अनिय कथा मन्त ही सारे दरबार म हनन मच गई। सबसे विचार था कि पण्डित जी को गठोर दण्ड दिया जायगा। परन्तु अकबर पण्डित जी का सन्तान्ध और निमग्नता म बन्ता प्रसन्न था और कहा—मांगो क्या मांगते हो? पण्डित जी न कथा—मांगे पाप हैं मैं उमी स गनुछ हू। अकबर न बहुत जोर दिया तो पण्डित जी ने कहा—कृपा कर नगर म जान मे मुझे मुक्ति दें। अकबर ने कथा—मरे दरबार म जाने का तो वन्त था—अच्छे आत्मी इच्छुक हैं। पण्डित जी ने कहा—यह इन्दिमख चाहते हैं आर मुझे आध्यात्मिक सत्य म ध्यान आना है जिसम यहा आने का कारण बाधा पड जाती है। अकबर गौर सत्कार द्वारा पण्डित जी के सप याग म चरित हो गय। अकबर ने कहा—आप न पाप उठा आना है परन्तु फिर भी जय जय रामधर्म मिन अवश्य आते रहना।

सद गतिवाय अमन्तनगर क मगरसेय थ। इ १० अकबर की आगा म अवक बन मन्त्रि करोडा सपया की लागन स बनवाय। इनका अकबर पर बड़ा प्रभाव था। बाजारी न रव उत्तम निमग्नवाये।

गाइबामी मुनसीबात गि रासमयन के प्रसिद्ध लख थ। यहिन बनारसीगत का आध्यात्मिक प्रभाव मुन कर गाइबामाया थ नी स मन्त्र नय नीर अपनी रासमयन की लव प्रति उ ह भेंट की। प बनारसागम न न बनारस का स्तुति का प्रति गा बाबा जा का भेंट की जिसका उनपर बड़ा प्रभाव पडा। यह प० बनारसीगत क आरम्भल का प्रभाव कि गाइबामाजी ने जन मिदानी का आन करत हू अहिंसा (दया) का धम को जग कहा—

दया धम का भूल है पाप भूल अभिमान।
मुनसी दया न छोड़िये जब तक घट म प्राण ॥

जन कमजोरमयी भी प्रताप करते हुए गोइबामी ने कहा—

सकल पदार्थ हैं जग मांही कमहीन मर पावत मांही।

रहीम भी एन म कनि था। अरवा फारसी क समान गी और सस्वत बा भी विमान था। प बना रमी तब न नगर भी इनका अधिक प्रभाव था कि अनेक आध्यात्मिक सिद्धान्त पर बाहे लिख।

प नगर भी अकबर के समग्र हू। बड़े प्रसन्न बनि थे। जनवर्मी थे।

कबीर साहब भी इसी समय हू। जन मिदानी का इनपर बिनना प्रभाव था यह इनके बोहो से सिद्ध है।

(१) दबन को न सताये जाकी मोटी हाथ।
मुन खाल को स्वास स सोट नरम हो जाय ॥ (अहिंसा)





(२) कविरा तेरी शोपड़ी है गठकों के पाम ।

जैसा करें वैसा भरें, तू क्यों हुआ उदाम ॥ (कर्मसिद्धांत)

सहारन-वीर अकबर के छाजाची थे । यह जैन थे । उनकी सेवा एवं ईमानदारी से प्रभावित होकर अकबर ने उनको जागीर में बहुत-सी भूमि दी जिसमें उन्होंने नगर बसाया जा उनके नाम पर महारनपुर कहनाया है ।^१ महारनवीर जिनेंद्र भगवान् के भक्त थे । यही कारण है कि महारनपुर में १२ जैन-मन्दिर ? ।

तानसेन महार का एक बड़ा प्रसिद्ध मगीनज था, जिसके गान में जादू का अमर था । अकबर के दरबार का सर्वोत्तम गवैया था ।

ब्रह्मगुलाल जैनधर्मी था । स्वाग करने में मगध महार में केवल एक ही था । एक बार चन्द्रवार के राजा कीर्तिसिन्धु ने उसे घर का स्वाग दिखाने को कहा । उसने कहा—‘इस भेष में मनुष्य तक की प्राणहत्या होने का भय है ।’ उन्होंने तीन नून माफ कर दिये । ब्रह्मगुलाल ने ऐसा उत्तम भेष बनाया कि सब उसे उमली घर मगधर भागने लगे । राजकुमार ने कहा—‘यह घर कहाँ ? किसी को जाता तो है नहीं, यह घर नहीं, गीदड़ है ।’ जबान का घाव तलवार के घाव से अधिक दुखदाई होता है । उसने राजकुमार पर ऐसा अपट्टा मारा कि राजकुमार मर गया । राजा को बड़ा दुख हुआ, परन्तु बचन दे रखा था, चुप रहा । दूसरी बार उसे दि० नग्न मुनि का भेष धारण करने को कहा गया, उन्होंने ऐसा भेष बनाया कि उसके वैराग्य और उपदेश का सब पर बहुत प्रभाव पड़ा । वह जगत् में जाने लगे तो लोगो ने कहा कि यह तो स्वाग है, समाप्त हो गया । ब्रह्मगुलाल ने कहा—‘मुनिभेष ऐसा भेष नहीं जो एक बार धारण करके छोड़ दिया जाय । उसको सदा के लिये घग्घार छोड़ते देव राजा को भी वैराग्य आ गया । वह भी जैनमुनि हो गया और ब्रह्मगुलाल के समान तप करने लगा ।

पन्ना घाय जिनने महाराणा उदयसिंह की जान बचाने के लिये अपने प्रिय उकलीने पुत्र को बलिदान किया जैनधर्मी थी ।

आशाशाह जिन्होंने अपनी जान जोखिम में डालकर महाराणा उदयसिंह को शरण दी और वनवीर जैने बलवान् तथा क्रूर मन्नाट से भयानक युद्ध करके, विजय प्राप्त कर उदयसिंह को मिहामनासुड किया, जैनधर्मी था ।

भामाशाह अहिंसा धर्म का अनुयायी जैनधर्मी कितना योद्धा था । महाराणा प्रताप जैने महायोद्धा वीर ने उसे अपना सेनापति बना रखा था । इस जैन देशभक्त ने अपनी अपार सम्पत्ति देशरक्षा के लिये महाराणा प्रताप को भेंट दी । इन सबके विस्तार के लिये हमारा लिखा ‘वर्द्धमान महावीर’ पृ० ४८१-४८५ देखो ।

महाराणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप आदि-आदि इतने जैनधर्मप्रेमी अकबर के समय हुए हैं कि चार-चार लाइन भी एक-एक के सम्बन्ध में लिखे तो हजार पृष्ठों में भी न आवें । हम श्रीऋषभदेव ने लेकर आजनक का मन्त्रिण इतिहास लिख रहे हैं उसमें अधिक वर्णन करेंगे । यहाँ केवल एक मत्त्यवादी को क्या देते हैं ।

रघुपतिसिंह महाराणा प्रताप का वीर मरदार था । अकबर की सेना की इतनी मारकाट की कि अकबर को उसके मारने या पकड़ लाने के लिये बहुत बड़ा पुरस्कार घोषित करना पड़ा । रघुपति का इकलौता पुत्र सख्त बीमार हो गया । स्त्री ने खबर भेजी पुत्र का मुह देखना हो तो तुरन्त आ जाओ । रघुपति के घर पर पहरा था

१ The City of Saharanpur was founded by a Digamber Jain Shri Saharanbir Singha who got the locality in Jagir from Akbar His son Gulabrai migrated to Delhi, when he built a Jain temple in Kucha Sukhanand—C F. No 280 in the list of Muhammadan and Hindu Manuments quoted in Ratandeep Kiran II (Rajeshwarbhawan Green Park) Vol I, P 50

जीवहिंसा न करने के आदेशों निवाले ।^१ इस लक्ष्य के लक्ष्य में नों निरन्तर इस दिन तक सम्मिलित रूप में इस प्रकार की हिंसा बंद करनी थी ।^२ जैन राजाओं और पवित्र आश्रमियों में इसका बंद रहने का एक अत्यन्त उदाहरण ने १६०८ ई० में प० ब्रिजेन्द्रजी के दिया था ।^३ जहांगीर बड़ा दयालु और अहिंसाप्रिय था । अस्वत्थ ने जितने दिन गधु-बप न होने के बजाये थे, जहांगीर ने उन दिनों में बटोवगी कर दी थी ।

प० ब्रजानन्ददास जैन आचार्यजी कहते हैं । उनके विरुद्ध एक उदाहरण न जहांगीर ने अहिंसा के बंधन जितने भगवान् के सिवाय और किसी को नमस्कार नहीं करने । जहांगीर ने अपनी नमस्कार करने को कहा तो उन्होंने कहा—

जाके परमाव जागे भागे परमाव सब
नगर नवन मुन मागर जो मोम है ।
मंथन का रूप प्रगं, माथे धार-गह गेमो,
जानी पावशाह तासो मेरो मनमोम है ।

यह दोहा सुनकर जहांगीर बहुत प्रसन्न हुए और उसने कहा—“आपका मुझे नमस्कार, बदला या सम्मान करने की आवश्यकता नहीं ।”

भगवतीदास जैनजगत् के सुविद्वान् अक्षिण जहांगीर के ही समग्र हूँ । यह बुद्धिमान जिला इम्बारा के निवासी थे और देहली के महाराज श्री महेंद्रसेन के शिष्य थे । उन्होंने जहांगीर के समय सम्पूर्ण और हिन्दी में उनके श्रवणों की रचना की ।

हीरानन्द देहली के निकट जहांगीरवाद के जैन विद्वान् थे । उन्होंने जहांगीर के राज्य में पञ्चाभिन्नाय-दीक्षा लिखी और सम्मन्वयान्ताय, द्रव्यमय और अर्थमात्रता आदि अनेक रचनाएँ की ।

मैठ शान्तिदान ने शत्रु शत्रुओं में शान्तिदाय कीर्त्य कर एक विषाद मन्दिर बनवाया ।^४ अहिंसावाद अस्वत्थ के अनुसार शान्तिदाय का यह मन्दिर गतिहासिक है ।

अर्जुनदेव लिखते हैं पाचवें गुरु जहांगीर के समय में हुए । उन्होंने ‘श्री सुखमती माहव’ एक बड़ा उपयोगी ग्रन्थ रचा जिसके आरम्भ में उन्होंने लिखा ‘एक अज्ञान मन्त्र गुरु प्रसाद’ जिसका अर्थ देहली के प्रसिद्ध हिन्दूधर्मोपनिषद् पवित्रा “मार्गन्द” ने मार्च १६६३ के पृ० २ पर यह किया—“ओम् भगवान् का नाम है जो सबके गुरु की उपासना से प्राप्त होता है । जो जन्म-मरण और आवागमन के दुःखों में दूबने हैं उन्हें सबके मायु की शरण लेना चाहिये ।” गुरु महाशय गुरुद्वेष त्याग कर दक्ष (आत्मिक) ज्ञानप्राप्ति की शिक्षा देते हुए कहते हैं—

“ब्रह्मज्ञानी महा निलेप । जैसे जन मांही कमल अलेप ॥

1. Jahangir forbidden hunting, fishing and other slaughtering of animals during the ten days of Parushan in his reign—Alfred Master I.C.S., Virnirvanday in London (W.J.M.) P 4

२-३-४. ‘कन्याण’ गोरखपुर १६४५ पृ० २०४, २२५, २२६ ।

५. ‘सम्पत्तिमंदेश, जनवरी १६६७, पृ० ३२ ।

६. देहली जैन आडरेक्टरी पृ० १० ।

७. विस्तार के लिये सम्पत्तिमंदेश (मई १६६६) पृ० २६ ।

८. Epigraphica India Vol. II

९. According to Ahmedabad Gazetteer Vol. III 1879, this Jain temple of Shantidas is Historical one most beautiful and worthseeing—Bombay Prant Ke Jain Smarak P. 43.



बदल दिया तो जैनियों ने शाहजहा को शिकायत की तो वह औरंगजेब ने नाराज हुआ और उसके उस कार्य की निन्दा करते हुए फिर मे पहले के समान आकर्षक मन्दिर बनाने की आज्ञा दी और उसके बनवाने का सब खर्च गाही खजाने में किया गया और उसमें पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्ति अपनी आज्ञा में विराजमान कराई।^१

शाहजहा को हीरो की बड़ी परम्प थी। बटिया ने बटिया हीरे, जवाहरात, माती-पत्ते उसके खजाने में थे। उसने मात मन बटिया हीरे, जवाहरात, लाल, जपुरद, मोती और ४० मन मोने में एक तन्त ५२ फीट लम्बाई के मर्वात्तम कलाकारी द्वारा रात-दिन परिश्रम करता कर नात नात में मोर की शाल के समान बनवाया। मोर को फारसी में ताजम कहते हैं। इसलिए उस मोर के समान शरद वाले तन्त का तन्त-ऐ-नाजम कहने है।^२

राजा जुझारसिंह शाहजहा के समय बुन्देलखण्ड का राजा था जो जैनधर्म और बड़ा वीर था। उसकी वीरता से खुश होकर शाहजहा ने उसे दक्षिण का सामक बना दिया था और लिखत भी प्रदान की थी। "नका विश्वास था कि न्याय वह है जिसको प्रजा न्याय कहे। इसलिए वह सदा प्रजा को गुन गुना था।"^३

लोगों का अनुमान है कि आगरा का रोजा ताजमहल शाहजहा का बनवाया हुआ है परन्तु अनेक विद्वानों की नई खोजों में यह विश्वास हो गया है कि वह एक राजपूत राजा का महल था। जापकी जानकारी के लिये हम केवल श्री पी० एन० ओक के लेख का उद्धरण देते हैं। उनके अपने शब्दों में—

"New direct three fold evidence is available to prove conclusively that the famous Taj Mahal is infact nothing more and nothing less than a Hindu palace —

(i) Shahjahan's "Badshah Nama"—a court chronicle, written at his own command, Mulla Abdul Hamid Laheri unambiguously admit on Page 403 of its Vol I Mansingh's Manzil (Palace) was chosen for Mumtaz's burial"

(II) Mr Narul Hasan Siddiqui's book "The City Of Taj" says on page 31 that it was Man Singh's Palace which Jai Singh was made to hand over for Mumtaz's Burial in exchange of which, says the book, he was given a lofty edifice by Shahjahan

(III) French "Tavernier" who was a visitor to Shahjahan's Court has recorded on Page 14 of his Travels in India translated by Dr V. Ball, Published by Macmillan & Co London (1889) the cost of the scaffolding was more of the entire work (of mansoleum) Had Shahjahan built the edifice, the cost of Scaffolding would have formed an infinitesimal part of entire expenditure But since he took over a ready lofty Palace all he had to do was to erect a costly scaffolding *

औरंगजेब (१६५८-१७०७ ई०) यह सत्य है कि वह बहुत मुतासिब (कट्टर) था। ऐसा करने से उसने इस्लाम की सच्ची सेवा करने के स्थान पर अपने राज्य को कमजोर बना लिया परन्तु अपनी सच्चाई, ईमानदारी और

१ Bombay Prant Ke Smarak P 6

२. दैनिक 'उर्दू मिलाप' देहली (१२-६-६५) पृ० ३।

३. नौनिधि (श्रीमचन्द्र) सरस्वती प्रेस, वाराणसी, पृ० ३।

* For details see Organiser, Delhi, June 11, 1967 P 6



लाललिले के गामने आल जैन मंदिर के नीवनगान मे प्रनिदिन नगाडा बजा करता था । शाहजहां को तो उसमे कोई आपत्ति न थी लेकिन औरंगजेब सुतान था । उसने यह कहकर कि हमके शोर मे मरुधर के काम में बाधा होती है नगाडा बन्द करने की आज्ञा दे दी । उसकी आज्ञा के अनुसार नगाडा नहीं बजाया गया तो भी नगाडों बराबर बजता रहा । पना चलने पर औरंगजेब स्वयं जैन मन्दिर मे आए और स्वयं अपनी आँखों ने बिना बलाये अपने आगे नगाडा बजते देखकर चकित रह गये । नुरग्न अपना पट्टा हटायें बापिन लेकर मरुधर के दिने जैन मंदिर मे नगाडा बजाने की आज्ञा दे दी ।^१

गुरु अर्जुनदेव ने प्रथम साहज की रचना उसी समय की । इनको मुगलमान बनने का कहा । इनके टंकार पर इनके नगे शरीर पर भटभूजे की भट्टी मे गर्म रेत डरवा कर अत्यन्त भारी कण्ट दिया । अन्य है इस वीर को, दो दिन के जीवन की लालमा मे धर्म नहीं छोटा ।

गुरु तेग बहादुर ने कश्मीर के ब्राह्मणों ने फरियाद की कि शेर अफगान गाँ जवरदस्ती हमें मुसलमान बनाना चाहता है । उन्होंने कहा कि समय एक महापुरुष की वणि चाहता है । उनसे पुत्र गाविन्दसिंह ने कहा कि आप मे अविश्व महापुरुष उस समय कौन है ? गुरुजी ने कहा "उमे कह दो कि गुरुजी मुसलमान हो जायेंगे तो हम सब हो जायेंगे ।" औरंगजेब ने गुरुजी को देखी चुनाया । वीर नेगवहादुर मृत्युदण्ड भुगतने को तैयार हो गये मगर धर्म न छोडा । इसकी याद मे ही चादने चौक देहली का गुरुद्वारा आज तक शीवगज बहलाना है । उसने मरुधर के तवाँव द्वारा गुरु गाविन्दसिंह के दो पुत्र फतेहसिंह और जोरावरसिंह को जीविन दीवान मे चुनवा दिया परन्तु वे वीर बावन अपना पिता और पितामह के समान धर्म पर मुदृष्ट रहे । मियालखोट के वीर बादक हकीरत राय का सर काट दिया परन्तु वह धर्म पर स्थिर रहा । यह अत्याचार और महापुरुषों का बलिदान तब जानी जा सकता है ? परिणाम यह हुआ कि जनता मे उनके विरुद्ध नफरत पैदा हो गई और मुगल साम्राज्य नमाल-मा हो हो गया ।

बहादुरशाह (१७०७ मे १७१२ ई०) के समय अनेक जैन मंदिर बने, रचयाना उत्सव निकले । जैनियों की धार्मिक कार्यों मे कोई बाधा नहीं आई । इसके बाद एक माह जहाँदार शाह ने १७१२-१७१३ ई० तक राज्य किया ।

फरख बहादुर (१७१३ मे १७१८ ई०) के शाही खजाची धामीराम जैन थे, जिन्होंने देहली मे ब्रजा धानी-राम बसाया । उन्होंने जैनधर्म की प्रभावना की । रामचन्द्र छाबडा ने जैनमंदिर बनवाया । १७८६ ई० मे श्वेताम्बर जैनमंदिर का निर्माण हुआ ।

मोहम्मद शाह (१७१६ मे १७४८ ई०) अहिंसाधर्मी था और जैनियों को बडा आदर करता था । इसके राज्यकाल मे १७४६ मे जैन विद्वान प० रामचन्द्र ने आदि—(ऋषभदेव) पुराण की प्रतिलिपि निखी जो आज भी धर्म-पुरा देहली के पचायती दि० जैनमन्दिर मे सुरक्षित है । मोहम्मद शाह के शाही खजाची हिनार (पजाव) के राजा हरमुखराय ने धर्मपुरा मे एक बडा सुन्दर जैनमन्दिर बनवाया जिसकी वेदी के सममुख सिंहमुगल की पच्चीकारी का काम आगरे के ताजमहल मे भी अविश्व वारीक और उत्तम है । मिहों की मूठों के बाल अलग-अलग पन्थों से अंकित करने का कार्य तो नि मदेह ही उत्तम है । राजा हरमुखराय और उनके पुत्र मेठ गुगनचन्द्र ने अनेक स्थानों पर १७ जैनमन्दिर बनवाये ।^२

महारनपुर मे मोहम्मदशाह का स्थानीय नवाब—मोहल्ला सध्यान मे मसजिद बनवा रहा था और मना करने पर भी न माना । मोहल्ले के लोग बादशाह मे मिले । उसने आज्ञा दी कि मसजिद के स्थान पर पाश्चात्य का दि०

१ नवभारत टाइम्स देहली, ता० १०-८-१९५६ पृ० ३ ।

२ विस्तार के लिये 'अनेकान्त' अप्रैल, १९३६ ।

जनमरि र सरकारा खल पर बनगा । बुनावे माह-रा मध्यान वा मन्दिर ऐतिहासिक मन्दिर है और मुगल सम्राट के खल पर बना आज भी लक्ष्य योग्य है ।^१

छत्रमाल बुद-य-व-न-न जनधर्मो ध । बड यादवा और अमात्रमा ध । उनका ६५ मास का बुद्धि जानकर मोक्ष-मा ने उनकर आश्रयण कर लिया । औरना म जनसम्राट बब पाछे रज मजना था ? व मास तथा बूढ़े हान पर भा मना न स्वयं रणभूमि म पञ्च और नव वाग्ना म लगे कि सम्राट का मनापति मुम्म छी मजान छानकर भागा । और छत्रमाल न उधारा पाछा करके धर लिया यह विचार लियकर कि फिर आपके देश पर आक्रमण नहीं करूंगा जनसम्राट म लज्जित करनी पना ।^२

अहमदशाह (१७४८-१७५४) क समय मना जनमन्दिर बने रधयात्रा उत्सव देखी आनि अनेक स्थाना पर हुए ।^३ १६५१ म अयपुरनरन व मन्त्रा रामचन्द्र छविदा न जनमरि व बाधा ।

आलमगीर नितोप १७५४ स १७५७ के गामनवाक म मजान क बरानपनि यथागीरमन्त्र ठुठा (सिध)आए । ठुठा म उकी की जन मनि न मजान-न म ई जिन वारिज और उधारे म प्रभावित हाकर वन बराडा की मजानि मरीवा । म बरकर जनधमायुवायो १ मय । जो गारना न स्वाध्याय करन म उर मय का पना व मया और समस्त मसारा वस्तुन त्यागकर मल नि जन माध न मय । आलमगीर न वन कि मुम जनम त्यागकर कि मजान स्विकार कर ली बरना मजहरी जीविन ही मजान विनवा ली जायगा । मरम न वन मरीर तो एक मनि मनु होना ही है । फिर हसन मोन क्या ? जनापि पाक म मरार हा मरीर मिये रहे है । इन मानना म कि वन मनि आके म ज म मरण और मरीरिज पराजितना म मुवन हाऊ मैन जनधम प्राप्त है । फिर मरार का मान ? मय पवित्र और बलिगात्रा मुख क द्वार का वन डाड ड ? आलमगीर न त्राध म बाह्य जामिनी उमक मरार का खाल मीवत की आना ली । धन्य है इन अमा मीर त्याग का ताकी मुनि का कि मजान उमक जीविन मरार की मजान उमर रहता था परन्तु मजान क वन पर मुकुटार मी ।

अमममज जनानाव की बाणा म वन गा था कि बडों अमन उमक उधारे म प्रभावित हाकर जन हो मय । यह उमके ली उधारे का पन था कि एक विन्गी महुन अपनी आत्मा का धरित का मरार म भिन जानकर बराडा की सम्पत्ति और हर मरार की मासालिज भागमाममी प्राप्त हान पर भी स्वयं इच्छा से त्यागकर माध हा मये और मतनी हन श्रद्धा प्राप्त की कि जावन बलिगा कर लिया परन्तु जनधम न हाडा । जीविन मरार की खाल धीक जात पर मो तक नी का । दुख तो अमन मन है । जिन विन्काम हा मया यह वस्तु मरी मना उम उमक मल हान का क्या दुख ? मनी निज-पर का मे मजान-न के विनकी प्राप्ति क विना मा न अममम है ।

धरुन ही मजान म अनक मन्त्र-पुन मजाना मज मजान म मजान न करन पर भी मज लम्बा हो मया । जितक मज हन पाठना म मजामावना करन है ।



- १ विस्तार के लिये सामन्तिगदेन मई १६६९ ।
- २ मममुग (मजहरी) १८ अमस १६६२ व ५ ।
- ३ देहली रय मजान ।
- ४ मी विद्वन्मन्त्राव पाक मजान-न विद्वन्मन्त्राव म मज मजान (अमस १६६९ ई) म ५ ।

मालव भूमि के दो आचार्य : कालिदास और वात्स्यायन

पद्मभूषण डा० सूर्यनारायण व्यास

उज्जैन



संस्कृत साहित्य-रमिकों के लिए कामगान्ध के अप्रतिम विद्वान् आचार्य वात्स्यायन का नाम सुविदिन ही है। उनका ग्रन्थ कामसूत्र अपने विषय का सर्वश्रेष्ठ एवं मार्मिक है। उसकी नमता की कोई अन्य रचना कामगान्ध पर नहीं हुई है। यह रचना वैज्ञानिक है। मानव-मनोविज्ञान का जिस सूक्ष्मता और गहराई में लेखक ने अध्ययन किया है और सूत्रों में उसका जैसा निचोड़ प्रस्तुत किया है वह सर्वथा अप्रतिम ही है। वात्स्यायन ने और ग्रन्थ भी निमित्त किए हैं। किन्तु उसकी महत्त्वपूर्ण तथा अमरकृति कामसूत्र ही है। वैसे कामसूत्र के पूर्व भी उक्त विषय पर ग्रन्थ लिखे गये हैं। कामसूत्र में उनका उल्लेख भी किया गया है, पर आज वे ग्रन्थ या तो अप्राप्य हैं या लुप्त हो गये हैं। वात्स्यायन कहा का निवासी था, उसका कार्यक्षेत्र कहा था, यह विद्वानों में विवाद का विषय बना हुआ है। कुछ समय पूर्व बिहार के एक विद्वान ने लिखा था, सम्भवतः यह पश्चिम भारत का निवासी था। उसे अवती की राजनगरी उज्जैन का निवासी मतलाया था।

अवश्य ही कुछ शुग-विक्रम काल गुप्त एवं परमार प्रभुत्व में अवती विद्या एवं वैभव की दृष्टि में सर्वाधिक समृद्ध रही है। ज्ञान-विज्ञान की प्रचण्ड-धारा वहाँ प्रवाहित होती रही है। अनेक विषयों का अवती में प्रणयन हुआ है। भारतीय-साहित्य-संस्कृति को अवन्ती की अमर देन रही है।

वेदविद्या और उत्तर-पश्चिम भारत से मगध वडे वन्दरगाह भृगुकच्छ तक जाने वाले व्यापार के समस्त राजमार्ग उज्जैन से होकर ही निकलते थे। इस कारण उज्जैन उत्तरी भारत के प्रसिद्ध नगरों से सम्बन्धित रहा है। इस कारण भी उसकी सम्पन्नता और समुन्नति स्वाभाविक थी। ऐसे ऐश्वर्य-सम्पन्न नगर में विलासोपभोग, रमिकता का रहना स्वाभाविक ही है। वात्स्यायन ने जिन लोगों का अपने ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन किया है, वह तत्कालीन उज्जैन के अनुकूल ही है। अवश्य ही उज्जैन का जनजीवन रम-विलासितामय रहा है। विलासोन्माद में उसने कभी कभी अपने शौर्य और पौरुष को भी एकान्त में टकेल दिया था, यह युद्ध के नाटक से प्रतीत होता है कि उसमें जिन राज्यक्रान्ति का मकेत दिया है उसकी पृष्ठभूमि में विलासिता ही रही है। बाण, कालिदास तथा जैन-साहित्य की कालक कथा ने भी इसका समर्थन होता है। कालिदास के काव्य के निम्न उद्धरणों में भी यही ध्वनित होता है.—

य. पण्यस्त्रीरतिपरिमलगोरिभिर्नागराणाम् ।

सुरतग्लानिमगानुकूल

शिप्रावात ॥

तथा

दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानि,

आदि ।

अवन्ती की परम सुन्दरी वसन्तमेना तो साहित्य में भी अमर बनी हुई है, यद्यपि वह वेश्या थी, किन्तु उसका कला के अतिरिक्त पण्य-स्त्री का रूप नहीं है। वह राज के जैसे सम्पन्न का शिकार न बन दरिद्र-चारुदत्त के चरणों में न्योछावर हो गई और एक राज्यक्रान्ति का कारण बन जाती है, इसी प्रकार पद्म प्राकृतक और पाद जैसे

भाषा व भी यहाँ की विद्यामिता का चित्र खिंची देता है। वात्स्यायन ने मालव प्रयोग की मनोवृत्ति रचन सृजन वेध भूषा का जो चित्र अंकित किया है उसमें विविध हाता है कि वर प्रयोग के अनुरूप से सुपरिचित था।

वात्स्यायन ने कालिदास की चरित्रा भी है और नवि मुक्तु न वात्स्यायन का उल्लेख किया है। "सर्वाण्य कालिदास सवय पुनर्वर्ती हैं स्पष्ट। "नितोय च" पुनर्वर्ती के य पुनर्वर्ती हैं। कुछ विज्ञान वात्स्यायन के कामभूषण का रचना की दूसरा। गतो व मध्य की रचना मानते हैं। कामभूषण म जिन सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है व भी यहाँ प्रमाणित करता है। इसी आचार्य का "पायभूषण" बाध्य भी है। एक अर्थ स्वयं म पुनर्वर्ती-सामुक्तिक प्रयोग विमिन करने का भी उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन तथा ह्यच = न वात्स्यायन का पणिल स्वामी नाम से भी पापित किया है मवर्णन मप्रष्ट म भी यहाँ नाम बतलाया है।

वात्स्यायन ने पानजलि और वीर्यव क उद्धरण किया है इसमें साक्षर गनी का प्रतीत होता है।

पणिल स्वामी नाम के कारण कुछ लोग न "विश्व" ममभन की सम्पादना मानी है। "मिडा क आगर विहार की भी कामभूषण म चचा " है किन्तु वात्स्यायन ने मनी प्राप्ता के मानव स्वभाव का रचन सृजन का वर्णन किया है प्रयोग साक्षात्कार विषय का वर्णन करते कर सक्ता था।

वात्स्यायन ने जिन प्रकार के मानव और सत्ताओं का वर्णन किया है उसमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह मात्र गणराज्य का निवासी होता चाहिए। उसने जनसंघ के महत्व का प्रतिपादन किया है। जिन प्रकार वात्स्यायन के विद्याना पर वीर्यव का अत्यधिक प्रभाव परिणामित होता है उसी प्रकार पानजलि के मन्त्रवाच्य क उद्धरण का उप योग करने के कारण यह प्रतीत होता है कि "न" पुनर्वर्ती १५० वय के परवत निवर्तवर्ती का म रचना है। दूसरे भास के नाट्य में जिन तरह के ममग का चित्र अंकित हुआ है वात्स्यायन ने मा वसे ही मिलता है। वात्स्यायन ने अवि भास की चचा का उल्लेख किया है। उसमें भास के परवर्ती का म होना चाहिए। कालिदास ने भी स्पष्ट ही भास का उल्लेख किया है। एक स्थान पर वात्स्यायन ने यह कहा है कि "गुणनता की तरफ अथ कुमारिकाओं का ध्यान वह कर अपनी पसलगी के अनुपम किन प्रकार मुक्ति वन चकी आति।

(कथाय आदिसमानत्रातोया कथा) "गुणतत्त्वाया स्वबुध्या
मर्तार प्राप्य सप्रवचना मोक्षतेऽस्य नास्वात्मा निदग्धयेत (प २७८)

इसमें विमिन होता है कि जिन प्रकार अविभासक प्रणता भास का वय परिचित है उसी प्रकार साकनल निर्माता कालिदास ने भी वय परिचित है। "गुणतत्त्वा का वल महाभागन म प्रसिद्ध है किन्तु अविभासक का भी उसी प्रकार है। परन्तु दोनों का नामक रूप म जनप्रिय अनवर प्रभावक छविध बने हैं।

कालिदास और वात्स्यायन का अवयव ही अधिा सम्बन्ध हुआ चाँकि कालिदास ने रघुवज म कामसकन अनिवय की विद्यामिता का जमा वर्णन किया है ठाँव वसा हो व्याख्या कामभूषण म प्राप्त होती है। यही तनी चर प्रयोग म भी साम्य है। गोपहर्ष "का में ववि न जिन मध्याम " का प्रयोग किया है उसी का विषय प्रतिमध्याम (कामभूषण २७) तथा उसी अर्थ में प्रयोग वात्स्यायन ने किया है और उसी संग म ३१वें पद्या में भी "मिडा—

मिप्रकृत्यमपदिन्य पावन ।

प्रसिधर्त तमनवस्थित प्रिया । (१६३१ पद्य)

वात्स्यायन ने भी अपने प्रयोग का जो विवरण बतलाया है जिन प्रकार पन्थावा जाव उगता उग्य करते हुए लिखा है—

मिप्रकृत्यमपदिन्य अग्यत्र गते । (३२३)



इसी प्रकार अज और इन्दुमति के विवाह का वर्णन करते हुए कालिदाम ने कहा है—

आसीद्वर कटक्विप्रकोष्ठ ।
स्विन्नागुलि सववृत्ते कुमारी ।

अर्थात् जब अज ने इन्दुमति का पाणिग्रहण किया तब अज के हाथों में रोमांच हो उठा, और इन्दुमति की अगुलिया पसीनों में भर गयी थी ।

वात्स्यायन ने ऐसे ही प्रसंग पर वही शब्द प्रयुक्त किये हैं—

कन्या तु प्रथमममागमे स्विन्नागुलिवन्त मुषी च भवति पुरुषस्तु रोमाचितो भवति

दूसरी जगह कालिदाम ने इसी बात को थोड़ा पलट कर कहा है—

रोमोद्गम प्रादुर्भूदुमाया ।
स्विन्नागुलि पुगवकेतुरासीत् ॥ (कुमार समव)

कामसूत्र निर्माता ने महाकवि के न्वाभाविक-मनोवैज्ञानिक वर्णन को सामने रख कर ही अपनी व्याख्या वर्णित की होगी । यदि कवि ने वात्स्यायन की व्याख्या को लक्ष्य में रख कर यह प्रयोग किया होता तो रजुवग और कुमारसमव में विभिन्नता नहीं करता । इमने यही स्पष्ट होता है कि वात्स्यायन ही पर महाकवि का प्रभाव है ।

और भी देखिए—कालिदाम की शकुन्तला का यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है—

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियतलोर्वृत्ति सपत्नीजने ।
भर्तृविप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपगम ॥

शकुन्तल के इन श्लोक के प्रथम, तृतीय और चतुर्थ चरण की सूचनाओं का वात्स्यायन ने अपने सूत्रों में स्पष्ट उपयोग किया है, जो सर्वथा नमानार्थक है । श्लोक के प्रथम दो चरणों का भाव ग्रहण किया है और तीसरे चरण का तो शब्दशः उपयोग किया है । वात्स्यायन का वह सूत्र इस प्रकार है—

श्वश्रूश्वगुरपरिचर्या तत्पारतर्प्यमनुत्तरवादिता
भोगेष्वनुत्तेक, परिजने दाक्षिण्यं । (कामसूत्र पृ० २३०)

तीसरे प्रकरण के भाषाधिकरण स्तम्भ में कामसूत्रकार ने सपत्नी के सम्बन्ध में लिखा है—

नायकापचारेषु किञ्चित् क्लृप्तिता नात्यर्थं निर्वदेत् । साधिक्षेपवचनत्वेन ।
मित्रजनमध्यस्थमेकाकिनं वाप्युपालनेत नच भूलकारिकास्यात् । (पृ० २२७)

शकुन्तल के पञ्चम अंक में एक स्थान पर दुष्यन्त ने कहा है—

नागरिकवृत्त्या नज्ञापयैनाम् ।

ठीक उसी प्रकार और इसी अर्थ में कामसूत्र में 'नागरकवृत्तम्' विवरण प्रस्तुत किया है ।

शकुन्तल के प्रथम अंक की कुछ बातों का वात्स्यायन के 'कन्याविम्बम प्रकरण' में बहुत अधिक साम्य है ।

"जिम समय किसी तरुणी को यह पता चल जाये कि कोई युवक उसका प्रणय प्राप्त करने को उत्सुक है, तब वह दोनों ओर की परिचिता नस्त्रियों द्वारा मदेश व्यवहार आरम्भ करे । उस समय निम्न-मुखी वन मदस्मित करे, मन्वी हागे अनिययोक्ति करने पर रोष प्रकट करे, झगड पडे, तब मन्वी कहे कि 'उम्मी ने तो कहा था ।' और जब



वात्स्यायन ने नागरिक जीवन का वैभव-विलासितापूर्ण, सुखी, एवं कलामय जीवन अंकित किया है, भास-अश्वघोष कालिदाम में भी ऐसा ही चित्र मिलना है, सुधावीत-धवल-प्रासाद, रम्य-चित्र-कलाकित दीवारें, कलापूर्ण स्तम्भ, धरणी तल, कलाकण, मनोरम उद्यान, लताकुज, सुरभित मुमन, सुन्दर स्नानगृह, शीन-समीर के लिए स-चन्दनाम्बु-व्यजन, विश्राम गृह, रहस्यमय-विलास स्थान अन्त पुर की रचना का वर्णन वासवदत्ता, चारुदत्त अश्वघोष, कालिदास की मालविका और मेघदूत ऋतुसंहार से इतना साम्य रखता है कि समकालीन वर्णन हो, तथा तत्कालीन सुखी-समाज का प्रत्यक्ष अनुभव कर उन्होंने साहित्यरचना की है। नागरिकों की दिनचर्या का वर्णन देखकर चारुदत्त का ही चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है। भ्रान्तिमित्र और मेघदूत के विलासी यक्ष के साथ तुलना कर सकते हैं, शरीर प्रसाधन, सुरभित लेपन, केश-संस्कार, धूप, सुरभित सुमनमाला, नयनों में कज्जल, पेंरो में अलङ्कृत, अद्वारों पर अरुण-राग-रजन, करागुलीय, आदि का साम्य चारुदत्त, यक्ष, नन्द के प्रासाद के अन्त पुर में रूप-रमणियों के प्रसाधन रस-विलास से सहज की जा सकती है। कुंकुम-केशर-चर्चिन-कलेवर कालिदाम के लग्न कुंकुम केशराश के समान ही प्रतीत होता है। वात्स्यायन की तरह ही प्रथम-शती में विरचित 'ललित-विस्तर' में भी सुरभित-साधनों के प्रयोग, अनुलेपन, स्नानीय-सुरभित द्रव्य, फेनिल पदार्थों का प्रयोग, नख, स्तन, अद्वारों की रगानुरजित करने की विधियों का जैसा वर्णन भास, वात्स्यायन, ललित-विस्तर में हुआ है, वह विशेष मनोहारिता के माध्यम कालिदास के साहित्य में सुलभ होता है। पशु-पक्षियों के पालने की प्रवृत्ति, नृत्य, मगीत, वादन, नाट्य अभिनय, गोष्ठी आदि भी ठीक उसी प्रकार हैं, जैसे कालिदास ने वर्णित की है। शिलालेखों से प्रमाणित होता है कि वात्स्यायन के समय सु-संस्कृत-समाज की व्यवहार भाषा संस्कृत रही है, और जनसाधारण की प्राकृत, यह शाकुतल एवं मालविका के पात्रों के प्रयोग से प्रमाणित है।

वात्स्यायन ने उस समय के समाज में गोष्ठी-प्रथा का प्रचलन बतलाया है, भास के आदिनाटक और दूसरे नाटकों में भी ऐसे वर्णन हुए हैं। कालिदास के साहित्य में यह स्थिति सहज देखी जा सकती है। कालिदाम ने मनोरंजन के लिए कथा कहानियों को महत्त्व दिया है, 'उदयन कथा कोविद ग्रामवृद्धाण' 'पात्र गोष्ठि' आदि यही बतलाती हैं। इसी तरह उद्यान-भोज, वन परम्परा, मदनोत्सव, वसंतोत्सव, अशोकोत्सव, कौमुदी महोत्सव, आदि की चर्चा समानरूप से भास, कालिदास, वात्स्यायन में प्राप्त होती है। नागरिक जीवन के इन वर्णनों में सुखी समाज, वैभव विलासिता का जो रूप वर्णित है, वह प्रमाणित करता है कि तत्कालीन साहित्य-सृष्टि-वर्ष भारत के अतीत काल और स्थान विशेष की प्रवृत्ति में प्रभावित है। 'प्रिय शिष्या ललिते कलाविद्यौ' का रूप मालविका में स्पष्ट है। वात्स्यायन की सुन्दरी लावण्यवती सुसज्जित-शृंगारित-सालकृत-नारी का रूप यक्षपत्नी और मालविका में दिखाई देता है। पति के प्रवास विरहकाल में पाल के व्यवहारों का वर्णन—भास और वैदिक—परम्परा में प्राप्त है वही वात्स्यायन में मिलता है, और यक्षिणी की स्थिति को कालिदाम द्वारा उद्धृत अलका में भी अनुभव कर सकते हैं और हमारे समक्ष एक सरीखा चित्र प्रस्तुत हो जाता है।

वात्स्यायन के समय में भी जनसाधारण में प्रायः एक पत्नी की प्रथा रही है। 'एक चरित्र' शब्द से यही लक्षित है। वात्स्यायन के धनिक-जन प्रायः बहुदारप्रिय रहे हैं। राजाओं की भी यही स्थिति रही थी। ललितविस्तर के शुद्धोधन की भी कई पत्नियाँ थीं, उनमें श्रेष्ठ मायादेवी थी। कालिदास के 'बहुवल्लभा राजान' से इसका साम्य है। यद्यपि वात्स्यायन ने प्रणय के लिए 'परदार-प्रणय' का प्रसंग प्रस्तुत किया है किन्तु वात्स्यायन नागरिकों के पतन का पुरस्कर्ता नहीं है। वह शील और मर्यादा का उपदेशक भी है। निरकुशता को उसने तिरस्करणीय बतलाया है। कालिदाम के 'अनिर्वचनीय परकलत्रम्' से वह सहमत है।

वात्स्यायन ने नारी के कलाशिक्षण को महत्त्व दिया है, जिस प्रकार गणदास से मालविका कला-शिक्षा लेती है। कुलीन् कलाकारों को सत्परिवारों में, राज्य के अन्त पुरों में प्रवेश मिलता था।

काममूत्रप्रणेत्या ने जिन स्त्रियों को तापसी, साध्वी के रूप में रहने की सूचना की है, उनमें बुधू, श्रमण, क्षण, और ब्राह्मण-साध्वी का उल्लेख है और इन्हें नागरिक नारियों में कम सम्बन्ध रखने की सूचना है। वात्स्यायन

ने इसका कारण यह उपाय है कि इन भिक्षुणियां व द्वारा प्रणय सदा-व्यवहार होता था । मातृविकाग्निमित्र की कौटिल्या इगवा प्रमाण है । मालाभोगाश्रय व तो बहुत स्पष्ट रूप में माला स्थिति है । वात्स्यायन और फाडिनाम इस स्थिति से पूर्णतः परिचित थे ।

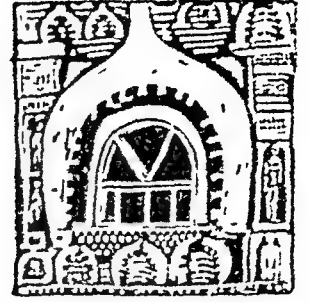
वात्स्यायन के समय चित्रकला वा चित्रकला वृत्ति हो गया था। नीमर पर पण्डितजी पर चित्रकला होता था। चित्रकलाएँ ब्रह्मिणी की जाती थी। जन्म दाम के घर पर चित्रकला के गुणवत्तों में यह पण्डितजी का दान किया था। मुन्नासाल में वृत्ति ब्रह्म है। रमणें कुमारिका को देने का उत्सव है। चित्रकला वृत्ति में रमण रमण गति चित्रों की चर्चा है। वात्स्यायन ने रमण और चित्रा की चर्चा के विषय में रमण भाग्य की मुन्नासाल की है। मालिनीस का चित्रकला और चित्रकला है। राजभवन के चित्रासन का चित्रकला तथा मालिनीस का चित्र रूप का मुन्नासाल वृत्ति है। प्रतिकृति रचनाओं से स्पष्ट चित्रित होता है कि चित्रों और मुन्नासालों के चित्रों का विवाह से पूर्व राज परिवारों में ध्यान प्रदान होता था। रमण प्रचार चित्रकला और वात्स्यायन ने मुन्नासाल रमण है। दानों ही समान वानावरण और स्थिति से अनुप्राणित प्रतिकृति प्रभावित हैं। वात्स्यायन भाग्य और मालिनीस भूमि ही सम्पत्ति हैं। यह उनको अनुप्राणित भूमि और वात्स्यायन रहा है। इसमें मतभेद का अवसर नहीं है। सभी अवस्था में वात्स्यायन में जो प्रत्यक्ष पण्डित का सम चित्रा चित्रा है। देवी है। यह चित्रा प्रत्यक्ष में उमर अमिताभ का समय बरने वाली है। अनुप्राणित का प्रमाण प्रभावित है। वात्स्यायन के रमण चित्रा वृत्ति का जो प्रत्यक्ष चित्रकला का वानावरण में जीवन प्राप्त था वह प्रमाणित करता है कि वात्स्यायन का कामचक्र प्रणयन के लिए इसमें मुन्नासाल रमण का मतभेद एक प्रकार का वानावरण कायम मिलना मुन्नासाल हो सकता था।



आचार्य सोमदेव

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

आचार्य, स्याद्वाद जैन महाविद्यालय, वाराणसी



सोमदेव के दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं—यशस्तिलक^१ और नीतिवाग्गामृत^२।^३ प्रथम का 'यशोवर्ममहाराजचरित' भी कहते हैं। इनके आठ अध्यायों में, जिन्हें आठवां भाग कहा गया है, गद्य तथा पद्य में महाराज यशोवर्म की कृष्ण कथा वर्णित है। दूसरा ग्रन्थ राजनीति में सम्बद्ध है। उसमें ३२ अध्याय हैं तथा सूत्रों द्वारा विविध विषयों की चर्चा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि नीतिवाग्गामृत यशस्तिलक के पञ्चान् रचा गया है।

सोमदेव ने यशस्तिलक के जन्म में अपने सम्बन्ध में स्पष्ट सूचना दी है। वह देवमन्त्र अनुयायी थे और यशोदेव के प्रसिद्ध तथा नेमिदेव के शिष्य थे। नीतिवाग्गामृत की प्रशस्ति बनलानी है कि सोमदेव महेंद्र देव के छोटे भाई थे और 'स्याद्वादाचलमिह' 'नामिकचन्द्रनी' 'वादीमपञ्चानन' 'वासकल्लोत्पत्तीनिधि' और 'कविकुलगज' उनकी उपाधियाँ थीं। तथा सोमदेव ने 'यशोवर्ममहाराजचरित' 'पण्यवतिप्रकरण' 'महेंद्र-मातली महत्' और 'युक्तिचिन्तामणिमूल' नामक ग्रन्थों की रचना की थी। इनमें से अन्तिम ग्रन्थ के नाम के सम्बन्ध में कुछ संदेह है क्योंकि पाटन के जैन भण्डार में, सन् १२६० में लिखी हुई नीतिवाग्गामृत की एक प्रति में उसका नाम 'युक्तिचिन्तामणिमूल' दिया है।

सोमदेव आगे कहते हैं कि गुरु सम्बत् ८८१ में (६५६ ई०) सिद्धार्थमवलम्बर में चैत्र मास की मदन त्रयोदशी के दिन यशस्तिलक रचा गया। उस समय कृष्णराजदेव, पाटन, मिहल, चोत्र, चेर आदि राजाओं को जीतकर मेल्पाटी में अपना राज्य फैला रहा था। सोमदेव का यह कथन ऐतिहासिक सत्य की दृष्टि में उल्लेखनीय है क्योंकि महान् राष्ट्र-कूटमन्त्राद् कृष्णराज तृतीय के करहाड दानपत्रादि ने इसका समर्थन होता है। यह दानपत्र सोमदेव के यशस्तिलक की समाप्ति से कुछ ही मन्त्राह पूर्व ६५६ ईस्वी की ६ मार्च को मेल्पाटी में जारी किया गया था। सोमदेव की तरह इस शिलालेख में भी कृष्णराज तृतीय को चोत्र, चेर, पाटन, मिहल तथा अन्य देशों का विजेता लिखा है तथा यह भी लिखा है कि उसने रामेश्वर में एक विजयमन्मथ स्थापित किया।

यह लिखना मनोरंजक होगा कि पुष्पदन्त ने भी अपने अपभ्रंश भाषा के महान् काव्य महापुराण में कृष्णराज तृतीय के मेल्पाटीशिविर का उल्लेख किया है। जिस वर्ष में (६५६ ई०) सोमदेव का यशस्तिलक पूर्ण हुआ, उसी वर्ष में महापुराण का आरम्भ हुआ। और ६६५ ई० में वह पूर्ण हुआ।

१ प्रो० कृष्णकान्त हन्दिक्वी के 'यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर' के आधार पर लिखित—'लेखक'

२ निर्णयसागर प्रेस बम्बई में मुद्रित।

३ नामिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से प्रकाशित।

४ 'श्रीमानस्ति सदेवसधतिलको देवो यश पूर्वक, शिष्यस्तस्य वभूव सद्गुणनिधि श्री नेमिदेवाह्वय । तस्याश्चर्यतप स्थितेस्त्रिनवतेर्जैतुर्महावादिना, शिष्योऽमूदिह सोमदेव इति यस्तस्यैव काव्यक्रम' ॥

५ 'शकनृपकालातीतसवत्सरशतेष्वब्दस्वेकाशीत्यधिवेषु गतेषु (अकत ८८१)

सिद्धार्थसवत्सरान्तर्गतचैत्रमासमदनत्रयोदश्या—मेल्पाटी प्रवर्धमान राज्यप्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे सति'।

उक्त उल्लेख से यह स्पष्ट है कि ६६ ई० में गोमदेव गुप्तगाम जिनालय के अधिकारी थे और शान्तिपूर्वक अपने साहित्यिक कार्य में मगलन थे । जैसा कि शिलालेख में उन्हें यशोधरचरित के साथ साथ एक अत्र तक अनजान ग्रन्थ स्याद्वादापनिपद् का कर्ता लिखन में प्रतीत होता है । यह भी लिखा है कि गमकालीन विद्वान् गोमदेव का बहुत सन्मान करते थे और राजा तथा सामन्त उनके चरणों में आदरपूर्वक मिर भुगतने थे ।

किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात उत्प्रेषणीय है शिलालेख में कम से कम दो बातें ऐसी हैं जो भ्रम पैदा करती हैं । प्रथम तो गोमदेव के दादा गुरु यशोदेव को गौड मघ या अनुयायी बतलाया है । किन्तु ऊपर हम लिख आये हैं कि गोमदेव ने स्वयं यशोदेव को देवसय का अनुयायी बतलाया है । दूसरे, अश्विमिन् चतुर्थ की राजधानी (ले) बुलपाटक बतलाई है, जिसके विषय में निश्चिन रीति में कुछ भी ज्ञात नहीं है । यद्यपि यह पुराने हैदराबाद राज्य में किसी जगह हो सकती है ।

यह विचारणीय है कि जब तक हमें जोला प्रदेश पर शासन करने वाले तीन चालुक्य सामन्तों की राजधानी के नाम ज्ञात हो सके हैं । प्रसिद्ध कन्नड कवि पम्प का आश्रयदाता अरिकेमरी द्वितीय पुर्लीगेरे में राज्य करता था । गोमदेव के लेपानुसार वाड्यग गगगारा में राज्य करता था । और उसका पुत्र अरिकेमरी चतुर्थ कहता है कि (ले) बुलपाटक उसकी राजधानी थी । यह भी उल्लेखनीय है कि जैसे गोमदेव ने वाड्यग के पिता अरिकेमरी का कृष्णराज का करदाता बतलाया है वैसे ही प्रस्तुत शिलालेख वाड्यग के पुत्र अरिकेमरी को बिल्कुल उसी रूप में उसी प्रदेश का करदाता बतलाया है ।

जब कि गोमदेव कृष्णराज तृतीय और वाड्यग के समकालीन थे, यह स्पष्ट नहीं होता कि उन दोनों में से कोई एक उनका आश्रयदाता था या नहीं । सम्भवतः गोमदेव का कोई आश्रयदाता नहीं था । गोमदेव एक जैनाचार्य थे । उन्होंने बड़े आदर के साथ अपने गुरु का उल्लेख किया है । उनके मित्राव बड़ एक राजनीतिक विचारक थे और अपने नीतिवाक्यामृत में उन्होंने राज्य को नमस्कार किया है किसी राजा को नहीं । फिर भी यह निश्चिन है कि वह राज-दरबार के जीवन में सुपरिचित थे और उन्होंने राष्ट्रकूटों की राजधानी में कुछ समय बिताया होगा । उन्होंने यमस्मि-लक के तीसरे आश्रयदाता में राजमभा का जिम वागेरी में वर्णन किया है, गगधारा जैसे प्रदेश के कुछ जागीरदार से उसका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता । वह तो किसी ऐसे साम्राज्य के लिए ही उपयुक्त हो सकता है, जो दूसरे देशों के राजदूतों का स्वागत तथा दुराग्रही राजाओं के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करता है तथा अपनी उच्छानुसार हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों में सैन्यदल बुला सकता है । नीतिवाक्यामृत के रचयिता गोमदेव राष्ट्रकूट साम्राज्य के एक स्वदेशामि-मानी नागरिक थे । उन्होंने राज्यकार्यपद्धति के सिद्धान्तों और राज्यहित पर बहुत ध्यान दिया है । तथा अपनी महान् कृति में युद्ध और शान्ति पर प्रभाव डालनेवाली शानकीय समस्याओं पर प्रकाश डालने के मित्राव राजमभा का अच्छा चित्र खींचा है ।

पूर्ववर्ती शताब्दियों की तरह दसवीं शती का समय मस्कृत, प्राकृत और कन्नड जैन-साहित्य की उन्नति का काल था । यदि हम गोमदेव के काल की सीमा वाचना चाहें तो बिना किसी बाधा के कृष्णराज तृतीय के राज्यकाल ६३६ में ६६२ ई० तक के साथ उसकी अवधि बँटाई जा सकती है । इस काल के विद्वत्ता और साहित्य के इतिवृत्त में हमें अनेक विशिष्ट नामों का परिचय मिलता है । ६४१ ई० में प्रसिद्ध कन्नड कवि पम्प ने दो काव्य लिखे — एक आदिपुराण, जिसमें प्रथम जैन तीर्थंकर का इतिवृत्त वर्णित है, और दूसरा विरुमारुनविजय, जिसमें महाभारत की अथवा वस्तुतः अर्जुन की कथा है । ई० ६५० के लगभग इस शताब्दी के दूसरे महान कन्नड कवि पोन्न ने कृष्णराज तृतीय के मरण में 'शान्ति पुराण' लिखा जिसमें सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ का पौराणिक इतिवृत्त वर्णित है । कृष्णराज ने कवि पोन्न को उसकी कन्नड और मस्कृत दोनों भाषाओं में प्रवीणता के लिए 'उभयभाषाकविचक्रवर्ती' की प्रतिष्ठामूक उपाधि प्रदान की थी । कृष्णराज तृतीय के राज्य के ठीक आरम्भकाल में इन्द्रनन्दि ने मस्कृत में ज्वालामालिनीकल्प नामक ग्रन्थ लिखा था । यह ग्रन्थ ६३६ ई० में मान्यखेट में रचा गया था और इसमें कृष्णराज का उल्लेख है । गोमदेव के अति निकट

समकालीनता में से हमारी भेंट दी विविध व्यक्तियों से होती है। उनमें एक हैं पण्डित और दमर हैं मजायवादी घण्ट भट्ट । इनमें हम पण्डित का उल्लेख कर चुके हैं। पण्डित ने ई. १९१६ में कृष्णराज तृतीय के मंत्राभरत की सरिता में अपना मन्त्राभरत आरम्भ किया था और अन्त में पुनः तथा उत्तराधिकारी नाम की सरिता में जो मन्त्राभरत—एक जय चरित्र जिसमें सामन्तों के वास्तविक की तरह व्यापार की कथा है और दूसरा नायकमन्त्राभरत अथवा नायकमन्त्र की कथा है।

पण्डित ने अथवा मन्त्राभरत है। अब तब की खोज के फलस्वरूप यह अथवा भाषा में सब से प्रमुख जन नविया में से है। उसका मन्त्राभरत मन्त्राभरत नाम की गीत में अथवा साहित्य का अमूर्त दान का साधन है। ई. १९०६ ई. में हरिपण ने अथवा भाषा में अपनी धर्मपरीक्षा लिखी है उसमें उसने अथवा भाषा के तीन विविध कविता का उल्लेख किया है—पुष्पक स्वयम् और चतुर्मुख । तथा पण्डित स्वयम् की महापुराण (१६) में स्वयम् और चतुर्मुख का उल्लेख करता है। स्वयम् का रचनाएँ—पञ्चमन्त्र और रिटनेमिचरिउ उपर्युक्त हैं। उसका पञ्चमन्त्र स्वयम् की कविता और उसमें अपने पिता की कविता की पूरा किया है। स्वयम् का समय भावों अथवा गोपी गानों के स्थिर किया जा सकता है क्योंकि उसने अपने पञ्चमन्त्र में पञ्चमन्त्र के चरित्रों की रचना (३३) की का उल्लेख किया है और पण्डित ने स्वयम् का उल्लेख किया है। चतुर्मुख स्वयम् से प्राचीन है क्योंकि स्वयम् ने अपने रिटनेमिचरिउ में तथा स्वयम् का चतुर्मुख का निर्माण किया है। यह मान भी उल्लेखनीय है कि स्वयम् ने अपने स्वयम् छन्द नामक छन्दों की एक अथवा पुस्तक में अथवा भाषा के अथवा अनेक कविता का उल्लेख का एक न उपस्थित किया है। इससे स्पष्ट है कि सामन्त का समय में और उसमें पहले अथवा भाषा की एक सुव्यवस्थित साहित्यिक परम्परा थी। और यह निष्कर्ष है कि अथवा का पद का एक प्रवाह का प्रभाव से सामन्तों के प्रभावित थे क्योंकि उन्होंने अपने वास्तविक का कुछ कथा में अथवा भाषा में लिखित है। का उपयोग वही चतुर्मुख से किया है। एक गीत लक्ष्य का मन्त्र जिसमें मुख्य और बाण की गीत में उल्लेख काटि की साहित्यिक संहिता में उनका उपक्रम किया है संहिता कविता में अथवा छन्द का उपयोग करता एक नवीन प्रयोग है। किन्तु यह बतलाना है कि सामन्तों के साहित्य साधना की परिधि विस्तृत थी और नवजातों के भाषा का साहित्य में उनकी अभिरुचि थी।

सामन्त और पण्डित का रचनाई में विभिन्नता हात में भी कभी कभी व दोनों एक ही साहित्यिक सामग्री का उपयोग करते हुए प्रतीत होते हैं। इसका उल्लेख यथापार का कथा स्वयम् है। तथा जब कि सामन्त ने जमाने और दी कविता की कथा का चतुर्मुख और मन्त्र की कथा का वास्तविक के छंद और सातवें आवास में स्वयम् का रूप में लिया है पण्डित का महापुराण में कथाएँ वास्तविक और पौराणिक इन कथाओं का एक विस्तृत याज्ञान का भाग हैं।

मजायवादी घण्ट भट्ट का परिचय हम मन्त्राभरत (१६३ ई.) के कृष्णराज तृतीय से मिलता है। मन्त्राभरत कृष्णराज तृतीय का एक सामन्त था। उसने वाणी घण्ट भट्ट का एक साव दान में लिया था। उसका दान पत्र में उल्लेख है। स्वयम् का पण्डित और वाग्मना का वचन है। वह वाग्मना साधक और खोद दान में तथा वाग्मनाधर में दक्ष था तथा उन सिद्धांतों का मन्त्र और एक श्रद्धा कवि था। मन्त्राभरत वृद्धि द्वितीय कृष्णराज तृतीय और रायचन्द्र का राजधानी से उनका पण्डित सम्बन्ध था। साहित्यिक में उनकी निम्न व्यवस्था निम्नता की दायर गया माधव राज (क) उसका पित्र्य वंश था। वाग्मनाधर की राजधानी की विधानों में उनकी राजनीति विद्या में प्रभावित होकर उनका मन्त्राभरत किया था। यह वाग्मनाधर कृष्णराज तृतीय की प्रतीत होता है क्योंकि कृष्णराज तृतीय ने उन वाग्मनाधर लिखा है और पण्डित के प्रयोग में वाग्मनाधर और वाग्मनाधर लिखा है। उक्त उद्यम में कृष्णराज का स्वयम् वचन है। लिखा है कि कृष्णराज ने अपने सामन्तों के साथ वाग्मनाधर भट्ट का सामान किया क्योंकि उसने भट्ट की सहाय पर चल कर मन्त्राभरत की जाता था।



उसने यह प्रकट होता है कि जब कि सोमदेव राजनीति के सिद्धान्तों में ही लीन था तब बाड़ी वल्लभ गुरु व्याख्यात्मक राजनीतिज्ञ या और तादृश नम्राद के राजनीतिज्ञ सम्मिलित होने में यत्न करता था। अन्तः,

जहाँ जाता है कि जो प्रमाण हैं कि बादिगज और बादीमिह सोमदेव के (साथ) हैं। प्रमाणित करने के प्रमाणित की टीका में एक बाड़ी उद्धृत किया है जिसमें बादिगज के द्वारा यह कहा गया है कि बादीमिह की सेवा किया है और बादिगज की सेवा किया है। किन्तु सोमदेव के दोनों उपाध्यक्षों में यह बात नहीं बताई जा सकती कि बादिगज और न बादीमिह ही अपने किसी रूप में यह विवक्षित है कि सोमदेव हमारे साथ हैं। बादिगजचरित के अन्त में बादिगज कहते हैं कि मैंने गुप्त मन्त्रिणा है। उसने मित्राद बादिगज-विद्वान् के दो उदाहरण सोमदेव के साथ के हैं। उसी तरह बादीमिह ने राजवैजयन्ति के राजा के साथ गुप्त राजा के प्रति अपने प्रस्ताव प्रकट की है। किन्तु बादिगज के अनुसार बादिगज और बादीमिह का सम्बन्ध के सिद्ध होता प्रथम नहीं है। बादिगज ने स्वयं पश्चिमोक्त बालक नरेश जयसिंह द्वितीय के राजा के साथ सम्बन्ध १०३५ (१०३५ ई०) में अपने राजवैजयन्ति की रचना का निर्देश किया है। अब यह बादीमिह, या जयसिंह द्वितीय के १०३५ ई० के क्षेत्राध्यक्ष-पद के बादीमिह और बादिगज दोनों का निर्देश है। तथा बादीमिह के छत्रवृष्टामणि नाम-ग्रन्थ के अन्त में 'राजगज' लिखत का निर्देश है। यह निर्देश प्रथम ही महान् राजा महेंद्र राजराज का है जिसने १०३५ में १०१६ तक राज्य किया है। इस तरह में यह सिद्ध है कि बादिगज और बादीमिह राजवैजयन्ति की प्रमाण रचना के हैं। अब यदि प्रमाणों के अन्त ही सब मान लिया जाए तो कहना होगा कि वे दोनों प्रमाणों में प्रमाणों के सिद्ध रहे हैं। किन्तु कि भी यह बात विचित्र है कि वे दोनों अपने प्रमाणों सोमदेव के विषय में प्रमाण चुन रहे हैं।

युगनिर्माता सोमदेव

सोमदेव एक युगनिर्माता थे। उनके बाद भारत के विभिन्न भागों में जितना संत-साहित्य रचा गया उसमें प्रायः उनका अनुपम पाया जाता है। सोमदेव के पूर्वजों में, तीर्थी शर्मा के राजा के लेकर राजा की स्त्री के पूर्व भाग तक हमें जा उल्लेखनीय नाम मिलते हैं, वे हैं—

बैजयन्त (प्रवरा और जयप्रवरा टीका के रचयिता) जिन्होंने (जयप्रवरा जो पूर्व करने वाले और बादिगज बादि ग्रन्थों के रचयिता) सुम्भर (उत्तरपुत्रा और सम्मानुमान के रचयिता), जैन वैजयन्त राजदामन चित्रकूट (अटमहवीं शताब्दी के शक्तिवर्धन के रचयिता) मित्रादि (उत्तमि विमलराजचरित के रचयिता), नीलेश्वर (वृहत्परा राम के रचयिता) तथा अन्य। सोमदेव के निम्नलिखित उत्तराधिकारियों में शर्मा शर्मा के जन्मकाल में लेकर राजा की स्त्री के प्रथम वंश तक हमें जिन उत्तराधिकारियों के मिलते हैं वे हैं—सम्भर शर्मा—जैसे बालकृष्ण (जिन्होंने 'य' के नाम पर राजा किया), रत्न (जिन्होंने जयसिंह और राजा पुत्रिया) और राजा शर्मा (राजा की जयप्रवरा के रत्न की पुत्री-बादि) जैसा कि ग्रन्थ शर्मा जैसा कि निम्नलिखित सिद्धान्तकारों (जिन्होंने प्रमाण में सोमदेव का प्रथम पात्र तथा अन्य ग्रन्थ लिखे), दार्शनिक साहित्य के रचयिता—जैसे व्यासमुद्र चन्द्र और प्रमेय-सामान्य के रचयिता प्रभावतः तथा बादि और विद्वान् जैसे बादिगज (जिन्होंने राजवैजयन्ति, बाहुल्य चरित और राजा-चरित लिखा, बादीमिह (राजवैजयन्ति की अष्टवृष्टामणि के रचयिता) धनराज (निलकण्ठ के रचयिता) प्रमितावति (मुनिपत-नन्दोद्धार धर्मपरीक्षा बादि के रचयिता), शम्भु (वर्धमानचरित के रचयिता) महादेव (प्रथमचरित के रचयिता) वीरचन्द्र (चन्द्रप्रमन्त्र के रचयिता), और सम्भवतः जयकामर (जिन्होंने जयप्रवरा में राजा चरित लिखा) तथा अन्य ग्रन्थकार जैसे—वैजयन्त व्यापार (नमिदि का लेखक और बादिगज का समकार्य)।

१. 'बादि निमिहीति मदीयशिष्य, श्रीवादि राजाऽपि मदीयशिष्य' इत्युक्तत्वाच्च ।

२. राजा राजगजोऽपि राजगजो महोदय ।

३. जैना बालक शूर अष्टवृष्टामणिर्गुण ।

४. बादिगज दार्शनिक भी थे। अर्जुन के न्यायसिद्धि पर इन्होंने टीका लिखी है जो मुद्रित हो चुकी है—कै० ।



हे पिशाचनी कविने ! तू मित्रा को दूर भगा देती है। जान्त्रों के रमाभ्यादन की गोरनी है, दम्त्रियों को दुर्वल कर देती है और मन की भ्रम में डालती है। फिर भी जिम पर तेरी कृपा हो जाती है वह मनुष्य भाग्यजानी है।

नरक और कविता का संयोग जैसा कि मोमदेव में पाया जाता है, भास्त्रों, नास्त्रों के उन्निहाम के लिए कोई एवदम अद्भुत घटना नहीं है। उस प्रकार ही प्रवृत्ति का अत्युत्तम उदाहरण नैपथ्यचरित और गुणसमष्टिवाच्य का रचयिता कवि श्रीहर्ष है। अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध कवियों में भी यदायदा उस प्रकार की प्रवृत्ति देखी जाती है। उदाहरण के लिये हम त्रैलोक्य को उन्मियत कर सकते हैं। त्रैलोक्य कवि वाग्देवी धनी के पूर्वाङ्ग में तस्मीर में उन्मात्रा। मखर ने श्रीरघुचरित में उसका उन्नेत्र करने हुए तुनातिन अथवा कुमारील से उसकी तुटना ली है और उसे उन्-काठिन्य में दृष्ट तथा कविता में प्रौढ बननाया है।

बिना किसी वाद्य के उस वात की तन माना जा सकता है कि प्रमन्त्रिण की मोमदेव ने उस समय रचा है जब उसकी श्रित्वशक्ति पूर्ण रूप में परित्यक्त हो चुकी थी। मोमदेव ने अपनी उस अपूर्व कृति के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें कही हैं जिनकी मूल्य छानबीन होना आवश्यक है।

प्रथम, वह लिखता है—

‘अनहायमनादर्शं ग्लान् रत्नाकरादिव । सत्त फान्प्रमिद जान सता हृदयमग्नम् ।

अर्थात् जैसे समुद्र ने ग्लान् उत्पन्न होता है वैसे ही बिना किसी की महापना के और बिना किसी आदर्श को सामने रखने हुए मैंने उस राज्य को जन्म दिया है।

यहां यह बतना देना अनूचित न होगा कि अपनी कृति की मीलिट्ना का वादा मोमदेव के इस विचार के अनुरूप है कि कवि का केवल अपने प्रयत्नों का ही भरोसा रखना चाहिये और न तो दूसरों की सफल करनी चाहिये और न कुछ दूसरों से उधारही लेना चाहिये। वह ठिकना है—

कृत्वा कृती पूर्वकृता पुरस्तात् प्रत्यादरता. पुनरीक्षमाणा ।

तथैव जन्वेद्य योऽन्यया वा स काव्यचोरोऽस्य न पानकी च ॥ (१-१३)

अर्थात् जो कवि अपने नामने अपने पूर्ववर्ती रचयिताओं की कृतियों को रखकर वाग-दार उनका अवलोकन करता है, वह उसी रूप में अपनी रचना करे अथवा उनमें भिन्न रूप में करे, वह नाव्यचोर जी-पायी है।

किन्तु जो कवि दूसरों की कृतियों को नहीं देखता, उसकी उक्तिया यदि स्थाचिन् अन्य कवियों की उक्तियों के समान होती है तो हमसे उसके कविन्व में कोई हीनता नहीं आती।

कृति परेषामविलोकमानन्तदुक्त्विनवतापि कश्चिन् हीनः । (१-१२)

हमसे मन्दह नहीं है कि मोमदेव का यह मिद्वान कि ‘कवि को केवल आत्मनिर्भर होना चाहिए’ थोड़ा अत्युक्तिपूर्ण है किन्तु इतना निश्चित है कि हमने अपनी इस विश्वकोप रूप कृति की रचना केवल अपने ही प्रयत्नों में की है। अन्तु,

दूसरे, मोमदेव कहता है कि जिसे इस ग्रन्थ को पढ़ने की उत्सुकता है वह यदि इसे पढ़ेगा तो उसे कवित्वमय उक्तियाँ, अवसर के योग्य सूक्तिवा और समस्त जान्त्रों की युक्तिया मिलेंगी। यथा—

उचय कविताकान्ता नूतनयोऽवनरोचिता ।

युक्तय सर्वशान्त्रान्तास्तम्य यस्यात्र कौतुकम् ॥ (१-१५)

उक्त कथन कारा अह्वार नहीं है। कविता सम्बन्धी विशेषताओं को अलग रखकर भी यदि देखा जावे तो

वास्तव में वे ही कवि होते हैं, जिनके वचन प्रसिद्ध को अप्रसिद्ध और अप्रसिद्ध को प्रसिद्ध बनाते हैं ।
मोमदेव और भी कहते हैं—

ता एव मुञ्चेर्वावन्मिन्नामपि वा श्रुता ।
मदग्यानन्दनिप्रदानदगेमाञ्चहेतुः ॥ (१-२६)

अर्थात् मुक्तविद्या के वचन सुनकर पशु-पक्षी भी वानन्द में रोमाञ्चित हो जाते हैं ।

मोमदेव ने कवियों की दृष्टि में मिलने ही पदा में कविता के गुण-दोषों का विचार किया है । वह लिखते हैं—

उद्युपेक्षुतिपुनिते कवीनामुल्बो महान् ।
गुणा हि न सुबान्ध व्यग्रन्ते निरूपणे ॥ (१-२७)

कवि गुण होने के लिये वाक्य परम प्रसन्न होते हैं जो विद्वान् न होते हुए भी उक्ति में रहस्य को समझना है । हमने जहाँ से कविता के गुण-ग्रहण के लिए विद्वान् का ज्ञान आवश्यक नहीं है । उदाहरण के लिये, मुक्तों के गुण क्या कहीं पर व्यग्र नहीं होते ?

सवचनापि स्य लोक वान वाच्यपरीक्षक ।
रमयादाननिर्गोपि भोक्ता वेति न हि रमन् ॥ (१-२८)

जो लोग कवि नहीं हैं वे भी वाक्य के परीक्षक हो सकते हैं । क्या मिष्ठान्त को खाने वाला मिष्ठान्त बनाना न जानने पर भी मिष्ठान्त के स्वाद को नहीं जान लेता ?

दृष्ट्वा वचनं श्रम सर्वो निश्चिचारे नरेन्दरे ।
प्राज्ञमोक्षविधिं क म्यान्ताम्बादिनि देहिनि ॥ (१-३०)

विचाररहित गता के मामले कवि का समस्त श्रम व्यर्थ होता है । ध्यान खानेवाले पशु के मामले उत्तमोत्तम भोजन खाने में क्या श्रम है ।

अनादवद् गिरी गण्डा प्राप्तेरान्यपत्तिग्रहान् ।
स्वयं विचारयन्तो हि प्रसिद्धाया जयते जन ॥ (१-३२)

जैसे स्त्री के मोन्दन का नती आदर होता है, वैसे ही उमता पाणि-ग्रहण पर लेता है, वैसे ही कवि की वाणी का वाक्य भी लोग नती करने हैं जब हमने उनका आदर करने हैं । क्योंकि विचाररहित उमता प्रसिद्धि में ही अनुरक्त होती है ।

वाक्यकथानु त एव हि कर्तव्या नास्तिप नमुद्रमना ।
गुणगणमन्तर्निदधति दोषमलं ये दहिश्च कुर्वन्ति ॥ (१-३६)

अर्थात् जैसे समुद्र रत्नों को अपने भीतर रखता है और दूदा-कंकट बाहर फेंक देता है वैसे ही जो गुणमूह को ग्रहण करते हैं वे लोग को बाहर ही छोड़ देते हैं, ऐसे समुद्र के समान सज्जनों को ही वाक्यचर्चाओं में निर्गन्ध बनाना चाहिये ।

गुणेषु ये दोषमनीषान्धा दोषान् गुणीकर्तुमयेयते वा ।
श्रोतुं कवीनां वचनं न तेषां नरस्त्वतीक्ष्णीषु कोधिकार ॥ (१-३८)

जो बुद्धिदोष के कारण गुणों के विषय में अन्धे हैं और दोषों को गुण प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं वे कवियों के वचन सुनने के योग्य नहीं हैं, क्योंकि जो नरस्त्वती के शत्रु हैं उन्हें उनके अक्षयन का क्या अधिकार है ?



इस पद्य में सोमदेव ने स्पष्ट रूप में उन अग्रगण्य गद्य और शान्तीय पाश्चात्तिक सम्प्रदायों का उल्लेख किया है, जिनका उन्होंने अपने काव्य में उपयोग किया है। यथार्थ में, और मुख्यतः से उत्तर भाग में यह काव्य साहित्य का एक लक्षण था। किन्तु इस दृष्टि में भी सोमदेव अपने समय के अन्य किसी भी ग्रन्थकार ने आगे बढ़ गये हैं।

भवभूति की तरह सोमदेव भी कभी-कभी अपनी गाम्भीर्य पर अत्यधिक आत्मविश्वास प्रदर्शित करने हैं और ऐसा दावा करते हैं मानो कवित्व पर उनका एकाधिकार है। यथा —

“मया वागर्थसम्भारे भुक्ते सारस्वते रने ।
कवयोऽन्ये नविष्यन्ति नूनमुच्छिष्टभोजना ॥”

एक अन्य स्थान पर वह कहते हैं कि यदि कवित्व और नामाग्नि ज्ञान में पचीन मायु पुष्प हैं तो वे सोमदेव कवि की सूक्तियों का सम्यक् रूप में अन्यास करें। पद्य उग प्रकार है—

“लोकवित्त्वे कवित्वे वा यदि चातुर्यञ्चय ।
सोमदेवकवे स्रवती समभ्यस्यन्तु माधव ॥” (३, ५१२)

यह पद्य बतलाता है कि सोमदेव स्वयं एक निष्णात कवि और लोकज्ञ थे और वह जान उनके यशस्विता से प्रकट है। सोमदेव को कवि और लोकविद् मानना उनका सर्वोत्कृष्ट अभिनन्दन है, क्योंकि आदिपुराण के रचयिता जिनसेन के समय में भी किसी को कवि और लोकविद् कहना उत्कृष्ट अभिनन्दन माना जाता था, और वह हम बात से स्पष्ट है कि जिनसेन ने अपने आदिपुराण के प्रारम्भ में घण्टा टीका के सम्माननीय रचयिता अपने गुरु दोरसेन को कवि और लोकविद् कहा है—यथा --

“लोकवित्त्वे कवित्वे च स्थित भट्टारके द्वयम् ।
वाग्मिता वाग्मिनो यस्य वाचा वाचस्पतेरपि ॥” (१-५६)

यशस्विलक की रचना में लगनग आधी घाताब्दी पूर्व मिद्विपि ने अपने महान् स्वतन्त्र कथाग्रन्थ उपनिषद्-प्रपञ्च कथा की रचना की थी।

किन्तु यह उल्लेखनीय है कि यशस्विलक के आरम्भिक पद्य में सोमदेव ने अपने ग्रन्थ के विषय में अनिविन्न निवेदन किया है। वह कहते हैं कि वर्तमान में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे सर्वज्ञान्य पुरातन कवियों ने न देखा हो। फिर भी जब कोई आधुनिक कुशाग्रबुद्धि भी कवि उनके मद्दश कथन करता है तो यह एक आश्चर्य ही है। अपने काव्य के विषय में वह लिखते हैं कि यह काव्य दुर्जनो के लिये विनोदकारक होगा और विद्वानों के लिये बुद्धिदायक होगा। किन्तु मध्यस्थ लोग इसके विषय में चुप नहीं रह सकेंगे। उन्हें आया है कि जैसे मिष्ठ रस का अत्यधिक सेवन करने वालों को नीम की पत्तियाँ आनन्ददायक लगती हैं वैसे ही सुकवियों के माधुर्यपूर्ण प्रशंसकों के अत्यधिक सेवन से जिनकी जड़ता अत्यधिक वृद्धिगत हो गई है उनकी रचि मेरे महान् कवियों की उक्तियों की ओर होगी।^१

एक ग्रन्थकार के रूप में सोमदेव का सर्वत्र प्रभाव होते हुए भी, जैन धार्मिक साहित्य की परिधि में बाहर विचारधारा के किसी भी विभाग पर उसका प्रभाव क्वचित् ही प्रतीत होता है। जैन विद्वानों ने पूरी तरह से उनकी

- १ सर्वज्ञकल्पे क्वचिन् पुरातनैरधीक्षित वस्तु किमस्ति सप्रति ।
ऐदधुगीनस्तु कुशाग्रधीरपि प्रवक्षित यत् तत्सदृश स विस्मय ॥१.२॥
- २ दुर्जनाना विनोदाय बुधाना मतिजन्मने ।
मध्यस्थाना न मौनाय मन्ये काव्यमिद भवेत् ॥
सुकविकथामाधुर्यप्रवन्धसेवातिबृद्धजाड्यानाम् ।
पिचुमन्वकन्दलीपिव्व भवतु रचिर्मद्विधेवितपु बुधानाम् ॥

उपमा की है। और आधुनिक पाठकों से उनका और आकृष्ट होना के कारण ही उनका साहित्यिक पुनर्गन्धित का परिचय मिल गया है। उनके योगस्तिरक के लिए एक अनन्यसाधारण मूर्ति का टीकाकार मित्रा जिनकी १६वीं पुताली में अपना टीका बनाई। उनका नाटिकाभ्यासपर एक बिना नाम का टीका है जिसका समय भी ज्ञात नहीं है। फिर भी यह टीका प्राचीन रसनिबारा और नीतिबारा का उद्धरण से भरी हुई है। उसका रचयिता कोई अज्ञात या क्वाचित् उसका टीका का प्रारम्भ से परि का नमस्कार किया।

धामिनीय त्पान और साम्प्रदायिक मराणता के द्वारा एक प्रतिभागम्यन प्रचारा की मगान् कृति का प्रति कभी उपमा करनी का सनता है इन पर सामान्य का साहित्य भाग्य एक दुःखपूर्ण भाष्य है। कित जगा कि हम दृष्टि सामने स्वयं एक प्रकार का एक मर एक थे और उ ह्वठिनता से हो यह आगा होगी कि मर सह्यमिया के नापरे के चार मेरी कृति का भवनाया जायगा। जहा तक एक मिद्विस्त के वणन का मसला है सामने सत् एक आधुना के नयन का रूप में स्वीकार किया गए है। और यह बात उल्लेखनीय है कि प्रतिभागमर मूर्ति का कदकु के भाव का क का टीका में का कतिपय एक उद्धृत किया है उनमें सामने के गणा जनम का महान् गुदमा में की गई है।

नियमदार पर मन्मथ का टीका अनगारधर्मित पर आगाय की टीका यागीकु देव का परमात्मप्रकाश पर ब्रह्म के का टीका और कुन्तु के प्रारम्भ पर प्रतिभागमर मूर्ति की टीका आदि उत्तमकाचान जने साहित्य में योग स्तिरक के पद्य उद्धरण का रूप में प्राप्त पाये जाते हैं। योगस्तिरक का नीचे उद्धृत पद्य था कि स पात्र के का साय निवकाति की कालमात्रा में पाया जाता है। प्राधान निवकाति में य निवकाति मिल है। यह पद्य इन प्रकार है—

सद्य एव हि जनानां प्रमाण नीलको विधि ।

यद्य सत्यमस्तुतिर्यत्र न सत्यवृणम ॥ (८ १४)

योगस्तिरक का नाच वाच मीन का गुणक का मानाणक में पाये जाते हैं—

ज्ञानहीने विद्या पुष्टि पर मारभने कलम ।

सरोद्धामेय कि लब्धा सत्यधीनष्टवर्तिनि ॥

ज्ञान सगी किया चाये नि यद्ध नायकृष्ट द्वयम ।

सतो ज्ञान क्रिया रद्धा प्रय सत्यवृणम ॥

हृत ज्ञान क्रियामुय हृता चाज्ञानि विद्या ।

धावनन्यधरो नष्ट पञ्चलवि च वसत ॥ (९ १)

यही यत् वनना देना आवश्यक है कि तावरा स्था मोमक का मनी है। किन्तु उपन के कर उद्धृत है। योगस्तिरक का एक और स्त्री का मानाणक में उनका एक पद्यान्तरे का उद्धृत है। स्था म प्रकार है—

मूडप्रय भद्रवापटी सधानायतनामि वट ।

अपटी गकारयवेति दुन्दीया पञ्चविंशति ॥ (९ २१)

गामक का अंग का पद्य सत्पात्रासमुच्चय का एक दान साल परिदेन में बिना बिना नाम का उद्धृत है

१ भक्तसरो मग्रायत सोमदेवी विदावर । प्रभाशो नमिबन्ध इत्यादि मुनिगतम ।

यथात्रय र धन मून सेवारेवमग्य । दिसय रचित भव प्रमाण साधवि इकुम ॥



वर्त्ता न तावदिह कोऽपि प्रियेच्छया वा ।
दृष्टोऽन्यथा षट्कृतावपि न प्रमा ।
तार्यं किमत्र मन्नादितु नक्षत्रार्थ-
राहस्य चेत् त्रिभुवनं पृथग् करोति ॥ (२,१३६)

एक गोक जो यजुस्मिन्त्र के पाचवें आख्यान के अन्त में पृष्ठ २१३ पर पाया जाता है, परीक्षासूत्र पर अनन्तवीर्य की टीका में नीचे लिखे रूप में उद्धृत है—

तया चोक्तम्—
तद्वर्जंमनेहातो रसोदृष्टेर्भवंमूने ।
भूतानन्वयनान् मिद्व. प्रकृतिन मनानन ॥ इति

मी० पी० और वरार के मन्त्र और ग्राह्य ग्रन्थों की सम्मिलित प्रतियों की सूची में श्रीहरीरामानन्द ने लिखा है कि 'स्योदयनुष्ठानटीका में विद्यानन्द ने सोमदेव वृत्ति के 'प्रधानपद्य' में उद्धृत गीतों में 'और' बरवा उभय मिद्वेन किया है। सम्भवतः यह उनकी गैर उचित रचना है।' किन्तु यह भी मान्य है कि यह प्रधानपद्य जिसे 'अन्य ग्रन्थ' न हो और प्रामाणिक के आदर्श आख्यान में जो प्रधानविधि बतायी है उसी ने यह रूप ले लिया हो।

एक कवि के रूप में, गद्यसाहित्य की सोमदेव का दान, गद्य कवि या योग्य उत्तराधिकारी होने के उनके दावे को ग्राह्य उद्गमों के लिए कानि ठोस है। सोमदेव की कविता की महम परीक्षा अन्तर्गत की जायगी और यह देखा जायेगा कि सोमदेव केवल गद्य में प्रयुक्त विषयों का ही व्यवहार नहीं करते किन्तु काव्यसाहित्य में साधारणतया व्यवहृत न होनेवाले विषयों का ही व्यवहार उनके मन्त्र कविता के मन्त्र गीतों में वृद्धि भी करते हैं। वह गद्यरस्यार के सुपरिचित विविध चित्र अंकित करते हैं जो अन्तर्गत नहीं पाये जाते, और उनकी व्यंग्यता का स्पष्ट ज्ञान यह है कि वे व्यक्तिगत निरीक्षा और अनुभव के आधार पर, चित्रित गये हैं। उन्होंने जीवन के अन्तर्गत जो भी सुन्दर चित्रण किया है और वास्तविक, समझानेवाली और देखी जासकती या वर्णन करनेवाली सब उनके सर्वोत्तम उल्लेखनीय पद्यों में सम्मिलित किये जा सकते हैं।

पद्यों के प्रति सोमदेव की दृष्टि बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण है। और पद्यजीवन पर उनके कुछ पद्य मन्त्रसाहित्य में अनुमत्त हैं। उन्होंने जैनधर्म के मिथ्यात्वों का वर्णन गद्यसाहित्य जैसी में किया है और बारह अनुप्रेक्षा सम्बन्धी उनके पद्य साहित्य की उनकी बहुमूल्य देन है। मन्त्र पद्यों में प्रयुक्त भाषा के छन्दों का उपयोग भी एक उल्लेखनीय प्रयोग है। और इस सम्बन्ध में सोमदेव ने पद्यों को गद्य के योग्य बनाने का प्रयत्न किया है। पूर्ववर्ती होने के कारण मान्य है यह प्रयत्न जयदेव के गीतगोविन्द की रचना में प्रेरणा हुआ है।

सम्भवतः यजुस्मिन्त्र का वह पद्यमाग महम अक्षिप्तानन्ददास है, जिसमें गद्यमित्रों के दोषों का वर्णन है। और प्रस्तुत भाग मन्त्र कविता में 'तत्त्वैतिक अक्षेयान्तर कवितानिर्माण' के लिए अवश्य रूप में किया गया प्रथम प्रयत्न है। उसे देखकर अक्षेय की इसी प्रकार की कविता का स्मरण हो जाता है। अक्षेय ने अपनी समझा में काव्य अथवा काव्यी की दृष्टि में कान करनेवाली जाति की जल्दी उबर ली है। अक्षेय की लेखनी प्रशंसनीय है किन्तु उनकी रचना ठोस वर्णनों में परिपूर्ण है और सोमदेव के प्रस्तुत पद्यों की अपेक्षा उसका क्षेत्र विस्तृत है। अक्षेय की कविता का उद्देश्य मन-वहाव की अपेक्षा गद्य ज्ञानोन्नति है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों ही ग्रन्थकारों का निरूपण महत्त्वपूर्ण है क्योंकि दोनों ने ही अपने समय की कुछ बुराइयों पर प्रकाश डाला है। उनकी अपेक्षा यह कहा जा सकता है कि सोमदेव ने मन्त्र कविता में एक नये विषय को समाविष्ट किया, जिसे बाद में अक्षेय ने विस्तृत कान के साथ पुष्ट किया।

सोमदेव कोई बड़े भारी वैसी कवि नहीं है, कहीं-कहीं वह कृत्रिम हो जाते हैं और वाक्यप्रपञ्च में अन्वय विचारों की पुनरुक्ति करते हैं। किन्तु उनकी कविता समझायेगी जीवन के प्रवाह में प्रायः स्थिति है। और काव्य-

अभय जैनग्रन्थालय में सुरक्षित राजस्थानी भाषा के प्राचीन पट्टे, परवाने और पत्र

अगरचन्द्र नाहटा

वीराने



जैनधर्म का प्रचार राजस्थान में २-२॥ हजार वर्षों से प्रथम चलता चला आ रहा है। जैन राजाओं, विद्वानों ने राजस्थान के गांव-गांव में पुस्तक भाषान् महावीर की वाणी का प्रचार किया। राजाओं ने लेकर एक एक मसी वग के लोग जैनधर्म में प्रति जाग्रपित हुये और यहां तक प्रभावित हुये कि लाखों व्यक्तियों ने हमें के लिये जैनधर्म स्वीकार कर दिया। अमरावती, श्रीमाल, पोरवाट, खडेलवाल, अजवाट आदि धर्म के ज्ञानों की स्थापना हुई और एक-एक ज्ञान के अनेक गांव हो गये। इसी तरह जैन मुनियों के अनेक मय, गच्छ और शाखायें राजस्थान के ग्राम-नगरों के नामों में प्रसिद्ध हुई। अनेक राजाओं ने भी जैनधर्म स्वीकार किया। उन्होंने जैनमन्दिर बनवाये और आचार्यों को अपना गुरु माना। राजाओं के अधिकांश मंत्री, कोषाध्यक्ष आदि जैन ही थे। समय-समय पर उनके द्वारा बहुत बड़ी धर्म-प्रभावता हुई। आचार्यों एवं मुनियों को राजाओं ने बड़ा सम्मान मिला। उन्हें कई गांवों की जागीरें मिलीं। राजाओं के दिये हुये पट्टे, परवानों की मन्त्रा बहुत बड़ी है। अनेक गच्छ राजस्थान में हैं। उनके श्रीपूज्यों एवं यतियों आदि जो राजाओं ने समय-समय पर भक्तिपूर्वक पत्र भी लिखे। वे पट्टे, परवाने एवं पत्र अधिकांश जैन उपाधियों श्रीपूज्यों के दिशानों और जैन-ज्ञान-मार्गों में मिलते हैं। अब वे अधिकांश काम के नहीं रहे इसलिए पहले तो जिनके पास ऐसे कागजान थे उन्हें बड़ा मुश्किल रखा जाता था और जिनी को दिखलाया भी नहीं जाता था किन्तु अब वे जो ही नष्ट कर दिये गये या वहीं में बेच दिये गये, इस कारण वे पुराने कागजान अब प्राप्त नहीं होते। जहां जहाँ वे पड़े हैं उनकी खोज, मरम्मत एवं संरक्षण का भी प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में थोड़े दिनों में ही वे सब समाप्त हो जायेंगे।

वर्ष ३३ वर्ष पूर्व हमने प्राचीन मंडारों का जल्लोक्षण करने के साथ-साथ हस्तलिखित प्रतियों आदि मामलों के मरम्मत का कार्य प्रारम्भ किया तो १९३१ में लेकर २०वीं शताब्दी तक के हजारों पत्र जो निक्कले समस्त रूढ़ि-धर्म के डाल दिये गये थे, हमें मिले और वे हमारे अभय जैनग्रन्थालय की सम्पत्ति निधि हैं। अब समय पर उनमें से कुछ पत्रों की तत्काल प्रतियों एवं लेखों में हम प्रकाशित भी करने रहे हैं। कई पत्र मस्कृत में हैं और कई राजस्थानी भाषा में। उनमें से यहाँ राजस्थानी भाषा के पत्रों को ही प्रकाशित किया जा रहा है।

हमारे मरम्मत के पत्र अनेक प्रकार के हैं। अनेक व्यक्तियों के लिखे हुये हैं। कई पट्टे परवानों के रूप में हैं और कई आपसी पत्र-व्यवहार के रूप में। नवमे पहा पत्र मवत् १९०४ के आमपान का खतरगच्छ के आचार्य जिनमालिक्यमूर्तिजी की वीराने में वगैरह आदि का लिखा हुआ है। यह पत्र मस्कृत में बिल्लूत नमावालों से परिपूर्ण है। प्रारम्भ का अर्थ बहुत कुछ नष्ट हो गया है। इसे 'गजस्थान भारती' में प्रकाशित किया जा चुका है। ऐसे मस्कृत-पत्र १३वीं शताब्दी से मिलने लगते हैं। पाटण के जैनमंडार में ताड़पत्र पर लिखे हुये ऐसे ही कुछ पत्रों के क्या मुनि जिनविजयजी जो मिले थे। विजय-प्रेमी नामक ग्रन्थ की मूर्ति ने मुनिजी ने उनका उल्लेख किया है। गद्य और पद्यमय मस्कृत में लिखे हुये ऐसे मंडार पत्र साहित्य और इतिहास इन दोनों दृष्टियों में मुख्यवान् ह। १४वीं



पावौ हो जिण मुजव पाया जायोगा । आप समुद्र नें छोडी ने नाडा भाय कु जाय विराजिया छे । आप चूडावता रा ठिकाणा सूं पार नही पाडोगा । सोई वरम जाता मारा ठिकाणा सूं पार पाडोगा चूडावता रा ठिकाणा मूं पार नही पाडोगा । आप कोई वान गी मन मे चिंता फिकर राखो मती । आप बीच ने म्हा बीच श्रीमुरलीधरजी छै, श्री माताजी छै । आपरो हुकम मायै छै और गुरुदेव ती वडा छै म्हा रा ठिकाणा माहे आज दिन मुधी गुरुदेव रोप्रताप छै । और मारै गुरु माईन छी सेवक ऊपरै कृपा महरवानगी करे ने वेगा पवारसी और घणे काई लिखूं थोडी लिखिया जादा जाणमी । आपने मे रोटीक दीधी सो सावन छै । म्हारी राजी खुजी मूं म्हारी अकल हुमीयारी तूं दोनुई वाप वेटा मीली ने छातरी रो पटो तीन मोरासाही कर दीधी सो मावत छै । मारै गुराजी गी रोटी माहै जो कोई मारा वस रो वसी जो कोई मारा गुरुदेवारी री रोटी माहै कमर पाडोगा नही । जो कोई मारी कर दीधी रोटी माह मारा वस रो वसीज कोईकसरपाडेगा जीने गौ मारीया की हत्या लागमै । जी ने गधायन गाल लागसै कोई कामेती फौजदार कोटवाल जो कई लोपमी, जीने श्री मुरलीधरजी पूगमे, जीने श्री माताजी पूगमे । म्हरो वस ने गुराजी रो वश रैवै जा मुधी पाट्या जासेज । कोई ओपटो तु थापन करेस, जीणरी मा वैन ऊपर गधो चढमी । हीडु ने गड, मुमलमान कु मूरर मारीया पाप लागमे । मूरज चन्द्रमा तपै जा सूधी पाल्या जावमी । राजा अजितमिघ रो ऊपरलो लिखियो सही छै सवत् १७६७ ना वरपे मीगसर सुद ११ सुकर दमकत कुंवर अभैमिघ रा छै । आ खोतरी खुद जोघपुर गढ नी छै मुकाम कोट हुवै श्रीमुख ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥

×

×

×

×

स्वन्ति श्री सिध श्रीजोवपुर महाराजाधिराज महाराजा श्रीविजैसिधजी देवेषु गुराजी साहेव श्री वेणीदामजी चेलाजी महाराज श्रीमयाचद देवगढ णेलागण मालम वेसी । अत्ता रा ममाचार भला है । आपरा मदा सर्वदा आरोग्य चाहौजै । तो छोरु नें परमसुख होय अठा सूं मूर्यमल भडारी ने मीयानो लेई ने मेलीयो है मो गुरुदेव सेवक ऊपरै कृपा करि ने मीयाना मे विराज के अठे म्हारो सरीर आराम नही है मो गुरुदेव जाणसी । प्रथम तोमने ताव घणो आवै छै दूसरो उकासो सास घणो चढै है ती हे जजाल गणा आवै है । मुं घणो दुखी छुं । गुरुदेव आराम करै तो ठीक है । नही तर तो मारी जीवारी आम है नही । आगै ही आप उप पाच मात वखत कागद मेलिया सो गुरुदेव पदारिया नही, डमी तो कुममानो गुरुदेव रो सेवक ऊपर जाण्यो नही । आप पेल पने मुं सोजत पवारिया सो जदी सेवक गुरुदेव ने पचमुञ्जी हड्ढमान जव के वान्ते अरज कीधी सो हाल तक सेवक रे आयो नही, सो डमी भूल तो गुरुदेव ने चावे नही । गुरुदेव रे तो मा जित्या सेवक घणा छै पण एक सेवक तो मुज छु । आप आपने राजा अजीतमिघजी महर वड उया आपने पटो करो ने वकम्या सो पटो सावत छै । आपरी लाग मारा ठिकाणा मे परपरा मूं चली आवै सो सावत छै । फेर म्हारी तरफ सूं दादा साहेव रो वगीचो मडोहर मे जमी भेट कर देमूं । आप चूडावत (का ठि) काणा सूं पार नही पडेगा । आपनै वारखवर नही पडै है, पिण पाछे जातों आप पिछतावाला और घणी काई लिखूं वो गुरुदेव ने पूगै है पण मानणो तो गुरुदेव रै हाथ है बोलवां तो मोर के हाते है वरमवो तो इन्द्र के हाते हैं । इतरी वात मे गुरु(सा)री समज लेमी, मारे तो गुरुदेव रो ढाल रा जीतरो जोर छै । मारे ठेकाणा मे है आछो पुन्य प्रताप गुरुदेव रौ छै । मारे हुकराण रे पीण मेली रो चालो छै । घणा उपाय कीधा पण कण-रोई उपाय लागो नही । पाच सात हजार रुपयाई कुलवान हुया देव सारी सजाई लेता पधारसी, भूल राखमी नही । मने सजाई री मालम पडे नही मो जाणसी और आप रावत जस ने दो चार वखन कागद भेजा सोई आपर पुछडे कागद को समाचार लखा नही सो आपरे लखा थी इणा ने कोई समाचार सो इणा ने रीम लागी, जीणी मु अमारा सु द्वेप राखे सो मारो काई करै गुरुदेव राजी तो सगलाई राजी । सवत् १८४६ चैत्र सुदि १३ बुधे । द० लखमीचन्द पोकरणा ना छै । मुकाम जोजावरडवे श्रीमुख चेलाजी महाजने लेना पधारमी । दख ओछव मारा हाथ सु वेमी । गुरुदेव पर भरोसो छै । मेता मुलतानमल रो पगे लागणो मालम वेसी । आछा रेमी ने वे सी ॥ श्री ॥ श्री ॥

\

×

×

+

+

श्री दीवान वचनात श्री बीकानेर रे माहाजन खरतरगछ आप्रठकोय छै । जिके जती उपासर माहे आगे छै सु माम १ माटे बिहार करमी पछै रहण पावे नही पडावु जती आमी सु दिन ७ रहमी पछै बिहार करमी वखण

पचमण गछ री रीन वरमी नञो जती चौमास आमा म सरच हुन पछे आइमी न तनी समनमेर विनेमर रो सपाडो चैत
मणि १ ताइ रहसी बीडा रण पाये नहि ।

म १६६६ ममेर सदि १० म स हा मनिपावटगछ री हुन छ त भगरण आचारन री हुन छ त वरती
उजर वरण पाये मी ।

×

×

×

×

थोरामोजयति

सही

स्वमि श्री माराजाधिराज महाराज श्री वरनसिंहजी वचनात् भटारकाये अचारजीया
वरतरगछ बि बाप्ता म भेग बीया छ यो आग भला हाता तिव हाथ्य न महाजन आप माहे एव हुवा छ न
तीया री आगरछ छ माम १६ ताई भटारकीया अचारजाया भाग माह सरचा करन श्री बीजानेर माहे आन्य कणस आप
म सरच रही ता मास माला पछ त्रिको बाकानेर आस तनु मागजन मानमी दिवा म भेग हुई नै वैड उपातर
सगला न म जिन पहला आस्य न पछ त्रिन १ मगजन मगन ही भा उपातर तास्य ता पछ वड उपातर
क्यो आग ताई भेग हुवना तिव हुस्यठार करण पाव नही री वान रा को उपा वर स हवीया २१) ईवबीस
स रावला मी । आपर न बीजानेर र मगजन सगला ही भेग हुई न पायी छ । समय १६६६ मीमर मुनि १०
गामवार मुकाम सई । कया महे र भटारकाय आज ताई जो ह्व न रहसी ताय रहस्य ।

सही—

स्वमि श्री महाराजाधिराज श्री वरनसिंहजी वचनात् भटारकाये अचारजीया आप (स) म अतरको
थो भटारकी महाराज न छ स भटारकीय चीन छ गु छाह को महाराज भटारका नु सग म छ समय १७ ५
बसाछ बड ५ मु श्री अचरगावा ।

×

×

×

×

स्वमि श्री महाराजाधिराज महाराज श्री वरनसिंहजी वचनात् भटारकाये अचारजीया आप (स) म अतरको
हुना गु आचजियो महान पाव आयो हा गु इये जिनम परवानो चि दी हो छ—

दर बाबासठ सानप कीज—म्य जिनम का सार ।

| | | |
|--------|----|----------------------|
| १ मानघ | ५॥ | भटारकीया निहय |
| मानघ | २॥ | अचरकीय वरिस्य |
| १ मोनघ | १ | भाप्ता सदि १ रा वरमी |
| १ ताप | १ | |
| १ सोप | १ | थोघरा ये वरती |

×

×

×

×

थो परमेवरको शाय छ

स्वम्य श्री महाराजाधिराज महाराज श्री रायसिंहजी वचनात् मा भागमिष हर की मगन मने मगगाव बापज
भटारका गमावार भला छ था हा रा दे जो जराय ॥ भटारक जिणर सरी रायनी उपातरा ममन बिने पदत
एनगमा हजुर आग गिरा गान वरा नु माल मर १ रहन न उपातरा मगन थोघरी मीया म आर्य मा नु परवानो
मोहर मथो निवाय मयो थो मु म ममल न मीयो मु बीग बागन ही बीजा कोई उपातरा सब रायो छ नु ईया र हवाने





की जो फेर हजुर फरीयाद नावै सु कीजौ सरावक या नु माने सु या नु मान जो वानु मानै सुवा नु मान जो या रा उपासरा मै औरो वारा उपासरा वैर है और कोई आयस मै जोरे ज्याजती करण नु पावै मीती काती सुद ७ सवत १७१६ दुवै । श्री मुख मु काम जा हा ना वाद—

रजुदफत्र

रजुद फत्र पा महासिंघ

इस पत्र मे उल्लिखित महाराजाधिराज रायसिंह कौन थे ? यह विचारणीय है । क्योंकि इसमे जो सवत १७१६ मुकाम जहानावाद का उल्लेख है उस समय बीकानेर महाराजा रायसिंह तो विद्यमान थे ही नहीं । अन्य किसी रायसिंह को महाराजाधिराज का पद भी उस समय प्राप्त था या नहीं, विचारणीय है । पत्र उसी समय का लिखा हुआ है । उसके पीछे की ओर 'रजुदफत्र, और 'पा महासिंघ' लिखा हुआ है ।

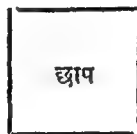
भटारक जिनचन्द्रसूरिजी बीकानेर गद्दी के श्री पूज्यजी उस समय विद्यमान थे । और भी खरतरगच्छ की किसी शाखा मे अन्य जिनचन्द्रसूरि भी हो सकते हैं ।

×

×

×

×



स्वास्त श्री महाराजाधिराज महाराजा श्री अनूपसिंहजी वचना महाजन खरतरा धोतवाल जोग्य सुप्रसाद चाचजोजी तथा श्रीपूज्यजी श्री बीकानेर चौमासे छै सो धे घणी सेवा भगत करजो, काण कुरव राखजो ।

स० १७५२ आपाढ सुदि १ मुकाम गढ सागर ।

महाराजा अनूपसिंहजी के एक परवाने की नकल मैने 'राजस्थान भारती' मे प्रकाशित की है । वह परवाना नाजर आणदराम को दिया गया है । उससे तत्कालीन शासन-व्यवस्था आदि के सवन्ध मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है, महाराजा ने इसे स० १७४६ मिंगसर वदी १३ को आदूणी मुकाम से लिखाकर भेजा है ।

महाराजा अनूपसिंहजी के लिखे हुये दो सस्कृतपत्र और जिनचन्द्रसूरिजी के महाराजा को दिये हुये तीन सस्कृत पत्र भी हमारे संग्रह मे हैं ।

नाजर आणदराम के दिये हुये सस्कृत और राजस्थानी भाषा के पत्र भी हमारे संग्रह मे हैं ।

×

×

×

×

श्री बीकानेर रा माडईया लिखावतु रिणी रा माडईया जोग तथा पुज्य श्री जिनसुखसूरजी री छतडी पादका रे पूजा नु टका १५ । अखरे पन्हरै चलु थितीया देज्यो भे थानु मुकाते मा मुजर भर देसा । स १७८३ मगमर सुद ४ हुता चलु देजाइ ।

उपासरै भटारका रै देजो ।

महाराजा सुजानसिंहजी के दिये हुये जिनसुखसूरिजी के २ पत्रों की नकल 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' जैन सिद्धान्त भास्कर, और 'धर्मवन्दन ग्रन्थावली' आदि मे छप चुके हैं ।

नाजर आणदराम ने स० १७७६ मिंगसर सुदि १ बुधवार को जिनमुखसूरिजी को पत्र दिया था । उममे सस्कृत के साथ-साथ राजस्थानी भाषा मे भी निम्नोक्त समाचार लिखे हुए हैं—

उपराच उपाध्याय श्री भागचन्दजी ने साहजहनावाद रो आदेश छै सु हिडो कै साल आदेश श्री बीकानेर रो

दस्यो जा जा महारवानगी म्हा ऊपर करद्यों जी अर जती नणसीजी आप खन छ म एक बार उहान अठ म्हाइस्योजी ।

सवन १८ व फागुन बदि १ वो नाजर बाणराम न जिनमनिन सूरिजी का पत्र दिया है । वह उस समय की वाली म लिखा हुआ है ।

श्री परमेश्वरजी सत्य छ

स्वस्ति श्रीमज्जनवर गुप्तस्थान पूजि परम पूजि सरव ओषमा विराजमान सतविषा सावधान जगम युगप्रधान पूजि भट्टारकजी श्री १ ५ श्री जिनलामसूरजासि सरान चरण कमलान नागधी सत्ता सेवग आगामारी सिधवी फत्तव न्निचित बनाया पग मणयो अवधारयोजी । अठारा समाचार श्रीपूजजी कृपा म भग्य छ । आपरा सत्ता शारीर्य चाहो जजी । आप बना छो पूजि छी । सवग स सत्ता कृपा भाव त राखो छी । तिण थी विगप रतावजाओ । मवग गायक वाम बावरी हाय मो कृपाकर लिखाया करावयोजी । अपरव वणारय श्रीनथसीमा आपर हजूर आया छ स जरज करसी—श्रीराजाधिराजजी पुरमाय छ नणसीजी न उपाध्याय पन्ना दिखवाया मु आप कृपा करनै इणान उपाध्याय पन्नी न साख निराववाओ । नणसीजी सारी बात राख छ । पन्ति छ । स आप कृपा करमावस्या हीजजी । बाहन्ता कायद कृपा भाव कर लाराया कराववा ।

सवत १८ ४ रा फागुन बदि ५ ।

पूजि भट्टारकजी श्री १ ५ श्री जिनलाम सूरिजी चरण कमलान

×

×

×

×

श्री परमेश्वरजी सत्य छ

स्वस्ति श्री भट्टारक मिरी पूज श्री जिनलामसूरिजी जोय राजाधिराज श्री वसन्तमिधजी लिखाव त नमस्कार वाचओ । सदा वणारत नणसीजी राज बन आया छ री माहा जोय छ पन्ति छ इणान उपाध्याय पन् विरायन साव निरायो मवत १८ ४ रा फागुन बदि १३ ।

×

×

×

×

इस पत्र क अन्त म एक महत्वपूर्ण निर्देश है कि आप भरे वा जो पत्र लिखावै वह पावरी भाषा म हो लिखावै सहेत म नी । इतिहास पत्र की मकत नीचे दी जा रही है ।

स्वस्ति श्रीमरव आपमान लायव परमस्वर्गायक सब गरुडा सिर वायव सेवका मन्त्रायक । अनेक ओषमा विराजमान पूष श्री पूषजा श्री श्री श्री श्री जिनमनिनसूरिजी चरण कुमला नू आगामारी सत्ता सेवग नाजर बाणर रीम निखत आगे वनगा धन माय अवधारयोजी । अठारा समाचार श्री पूषजी री कृपा म भग्य छ । श्रीपूजजी सत्ता शारीर्य चाहो ज । अग्रव श्री पूषजी बडा छी म्हा र थीपू यजी उपात और कई बात न छ सवग आपरी जाण सदा कृपाभाव राखो छी तिण स विगप राखयोजी । अग्रव कृपा पत्र १ आपरा माहा सन्ति १३ री मिनि री आयो । वाचीया म आप दरमण बीमा री सी मख हूबोजी । अग्र व आप लिखियो जु जण जाण समरण वेग सहे वानू वाग कर छ म आप आपरी सवग जाण म । म कृपा राखो छी म आप बडा छी । आपनू आहिज चाहोनेओ । और अवर क चौमासे रा आप जिगी नड री विचार राखो छी त री ध्योरी लिख मेन्नी ज्यू म्हाई खबर पत्र अ म्हा ने तो आप सत्ता आपरी सदा होज म जाण तारख्योजी । अठ सरीखी वाय काज हूव मु पणो निखता रहियो और म्हा नू आप वाग पत्र लिखावो म पावरी भाषा हीज म । खाया करयो सहेत म मती निखावयोजी । छान्ता ता वाग सत्ता देयोजी । सवत् १८० वर्ष मितो फागुन बदि १ नि ।

छतरगच्छ वै आचार्यो न राजाओ को जो पत्र निख उनम मे एक पत्र वा आवश्यक अग नीच निया जा



रहा है। यह पत्र नवहर मे म० जिनमुखभूरिजी ने बीकानेर के महाराजा मुजानमिह को दिया था। इसके अन्त के दुहे में महाराजा की विजय का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है—

अपरच श्री महाराजजी रो प्रीति पत्र आयो। बाची मन राची भाची प्रीति जाणि सुख पायो। श्रीमहाराजा जी नै गुम आशीर्वचन करता मदा सर्वदा श्री महाराजजी रो चटती प्रताप उदै अभ्युदय चाहा छ। आप पिण पूर्व प्रतीति प्रीति रीति धरो छी तिण श्री विशेषे धरवी मोटा धरणीध्वर छड

बोहा—बंरो साधि बलाई वित, फने करो इक फान।

महाराज आए महल, चुनि हम नए खुत्याल।।

छाप

महाराजाधिराज महाराज श्री जोरावरमिहजी वचनात् राठीड भीयामिहजी कुयामिहजी मृता रघुनाथ योग्य मुप्रमाद वाचजो तिथा मरनै मे जती अमरमीजी छै मु थानै काम बाज कहै मु कर दीज्ये ऊपर धणी राखजी।
फागुण सुदि ४ म० १७९६।

×

×

×

×

श्रीलक्ष्मीनारायण
जीभगतराज
राजेश्वर महारा
जा शिरोमण माहा
राजाधिराज मा
हाराज कुचार श्री
राजमिह स्य मुद्रका

श्रीरामजी

स्वन्ति श्रीजगम जुगप्रधान भट्टारक श्री जिणचंद भूरिजी सूरेश्वरान महाराजाधिराज महाराज महाराज कुवार श्री राजमिहजी लिखावनु नीमस्कार वाचजो अठारा ममाचार श्रीजे रे तेज प्रताप कर भला छै थाहरा सदा भला चाहिजै अप्रच ये म्हारे पूज्य छी या मवाय और कोई वान न छै मदा म्हां कृपा राखी छी जिण मु विमैय रखाजी। और ये चौमामे ठनरीया मताव बीकानेर आव जो म्हां नुं थानुं भीलण रो चाहा छै अठारी हकीकत सारी गुरुजी तेजमान् नाहट मनमुख रै कागद मु जाणजो। मवत् १८४० मिनी कानी वद १ सुक्राम गाव।

देमणोक—S—S—S—S—S—S—

१ जगमे जुगप्रभ

जिणचंद सूरजी सूरेश्वरान

×

×

×

×

स्वन्ति श्रीराजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा शिरोमणि महाराजा श्री सूरतमिहजी महाराज कुंवर श्री रत्नमिहजी वचनात् खरतरा रे उपामरे रो नीव म पञ्चदीनी बाजो वाजवण रो परवाणो बहदुरमिहजी रो अरज सु कर दीयो थो तै ऊपर खरतरा कवला श्री दरवार मे अरज कीवी यां रो गाजी बाजी जागे वदे ही बाज्यो नही हमार बै

નવી રાત કરા છ ત ડાર રી દરવાર સ આ પુરવાહી આમ મના મન મરજાન ચની આવ છ તે રીત જગી વરવાળી
વાવવનીયા નુ વહાનસિયગી અરજ મુ મિતી પોતુ વન ૨ રા નર નિયો છ સ ડ વરવાળી હમ રન છ આમ મ સતા વાવ
વ િમા લીના સરનાર વચના રી સીર મ માત્રા સલ માનર વચાવળ વાવ નહી અર વરવાળી છન ન્ગ હો ખાન વચન
ગચ્છ ન વર નિયો છ સવન ૧૮૬ મિતી પોતુ વન ૧૨ ૬ મુકામ વાવ તપન ધી માત્રાનેર વોટ દાખલ ૬

× × × ×

ધી સરરાજ સ
હાવ મહારાજાધિરા
આ મહારાવત્તમી ધી
ગરસિય ધી વચ્ચ
મુકિયા

સિદ્ધ ધી માત્રાજાધિરાજ મહારાવત્તમી ધી ગરસિયગી વચનાનુ મુકા સનાવચ્છા મિતી વ વાવાનગી તથા
જ્વાલત મારી પ્રાન્ત સવારામ ના પુરમાય મનો છ મા વહે સ અટ વાર હેવ આવા તા વા રા મુરવ વાવના ડઠે ધર્મ
રદેગા વર હના રે ભરીયા મેના જ્વાલત મારી સવારામ વહે સ સવનુ ૧૮૮૪ રા મિતી મેવર મન ૬

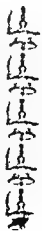
× × × ×

દસજત સાત

ધી વુજગી મુ મના નમસ્વાર વચના વાવના ડારવ મ્હાર વરવાળા મ આ વામ વિયો છ ત વર ના ન્ગી
વિરાજના વરમાન ૨ રીવુજગી વચ રસ્તે ન મુલાતાં વચ મ વમર ન ગાળમી વચ મહારાજગી વચી નિયો નિયો છ ત
મુજવ જા મરજાન રસ્તી હવ મ વમર ન વચગી મ્હારા વચન છ વે ડ માત્રા વચવિત્ત છ વાવના મે લગાય ધી મવાય
ભીર ન છ ૬ ચિનામગજા મનાવીરની મનાઇન—મવાઇ મે સનાવન આ વાવ છ ત મુકેવ વાવગી ન્ગી વિરાજના વમર ન
વચની મ ૧૮૮૬ મિતી મેવર મન ૨ ૬

× × × ×

દસજત સાત મુ ફીનમન લીમી મવાય (૬)વચ અવચ ડાવર વીરાવાન નદગવાન મ મવા વચ ૧૮ ૧
ગરજગા રે નમન ન મયો ગારા ડાહુર ન છ ર હાયો ર મુવામી મ વાના મા ના વન રોથન મયો ન રે વલ માગત મવા
ડાહુર ૧ અમરાવતી ન રાગી માત્રા વર વિન વિવા માટ જ્વાર નાવા વાવા મ વો ડ વારી મ ૬ દુવા ૧ માત્રા
ગી ર વચ્છ મ વન મેવ વચ વીયા હૈ મુલમાન ર મન દુવ છ મ માત્રા વાવા અમરાવત રા જાવ માત્રા માત્રા ગાવ
રા ના અમરાવતી માલો ન્ગા મન વર વિન જ્વા માત્રા ન ગાય વચ્છ સાવા વન તથ તથ ન જાડના મવા દના વના
મવા જ્જૂર દેગા વરે છ વાં મેં છના વચમા વ વના મારવોટ રીછામા નાન મારવચ છ ન વા દાવા વચ માત્રા રામીય
ઠારાગ રો ડવ દુવા વી ડ વા દાવા વાન મ વાર માત્રા ગાગ ડીવ વચમા મ વાવર ૨ ૬ જમ મુગા મવા છ ૬ મુગ
વાનો જમમર મવા છ મ હમ દુવ મ ડીવ વચમા દેવ દેગા મા ડાહુર વચ વચમા રા રાવન વચમા તથ ૬ ૧ મા રી વચ
મારી રા દવા વી છ હીમ તા ન્ગા છ ૬ દુવા સમાવર માત્રા મ વચ ૧૧ મનવા માત્રાગમ રાવાવિમન ર વાવના
મેં ગાળમી મુવરના ૨ વાવર છમાન વીફી રા વાવર છમાન છમાવ ૧૧ મનવા માત્રાગમ રાવાવિમન ર વાવના
સવનુ ૧૮૮૭ માત્રા માગા મન ૬ માત્રા મન દુવ ન દવા માત્રા ૧૧





नौ थारै ममाचार आया जाव करमा पुगल रो कम ती पैली करमा जेज रो काम न छै थारी चाकरी छै । मजो तो पेल को बदली लीयो सुं छै । १ रु को खा म ।

श्री दीवान वचनात् वडे उपामरै रे श्रीपूजजी श्री १०८ श्री मोभागसूरजी ने गुरु पदवी देय दीवी छै सु वडे उपामरे गी पीटी मुं मरनाद रा परवाणा वा छाप रा कागद मीव रावा सामग्री रा धरणे रा कर दिया छै तिके परवाणा मुन्न मही छै और नया मरजाद मो बाघ दिवी छै । वडे उपामरे री माघ माघवी मे चुक पड जावे उव रो दुममण मा न अरज कगे ते मुणे नही श्रीपूज श्री उवा नै दड प्रायच्छित देर मुघ कर लेमी । कदाय श्रीपूजजी री इग्या नही मानमी आप मरदा वेमना फेर उवा नै परम्पर समझामी समझया लागमी नही तो उव दम्वार मुं अरज करामी व माघ साधवी म्हारो इग्या मे नही चालै छै आप मुराद वेवै छै तारा दम्वार मुं वानै वढाय सिजा देमी तारवा श्रीपूजजी नै क्वामी अम आपरी इग्या उलगा नही ओलगा तो जिन इग्यागे लोपी हुवा तारा अरज कर छोटासी और साध साधवी महर मे भगान रो मीदर करामी व गाव मे करामी तारै श्रीदरवार रो हुकम छै फेर अरज करावण रो काम नही मान १३ शुचनण केमर धूप दीप रो दीया जासी जिके दिन मुं मिदर कराया जिके दिन दिन सुं लेखो कर दिराय देजी और वडे उपामरे री मीरणी री मरजाद बाघ दीवी छै सो राज गीदा मवारी वा० लणयन मुं डरनो वा ओर ओर गुन वालो मुमदी महुवार और दीकोड दुजी उपासरे शरण जाय वैठमी ते नै श्रीदरवार सुं वा० लणायन न उठामी, उठामी ते नै दरवार मिजा देमी और श्री वीकानेर रो वसीवान सहकार वा० दुजी पटवा श्रीपूज कीया छै तेन न मानमी जो कोई मानमी वारा श्रीदरवार और किमी नै वी पुरो मानणी मावित हुय जामी तो वाने मिजा दी जासी इयै मरजाद भेटण री कोई चाकर अरज करमी तो परम हरामखोर हुमी इयै मे कमर नही पडमी म्हागी वचन छै । द० मुहतो लीलाधर स० १८६७ मीती माघ मद्र १३ ।

×

×

×

×

स्वस्मि श्रीमहाराजाधिराज राज राजेश्वर नरेन्द्र गिरोमणि श्री मिरदारमिहजी वचनात् श्री वीकानेर रा साहूकार परदेम मे छै, तिका सममुता दिसी मुप्रमाद वचे अपरच भट्टारक श्रीपूजजी पूजजी श्री जिनहम सूरिजी नै भट्टारक श्री पूजजी श्री जिनमुगत सूरिजी रा श्राव मान्या हुव ती ये इया नै मानजो नही तो कुंही मानण रो मुहो नही सवन् १९१२ मिति काती वद १४ मुफाम पाय तखत श्री वीकानेर कोट दारना —

महाराजाओ के स्वय के लिखे हुये कई खाम रुके हमारे सग्रह मे हैं जिनमे मे ज्ञानमारजी को महाराजा सूरत-मिहजी के लिखे हुये कुछ पत्रो की नकलें हमारे 'ज्ञानमार ग्रन्थावली' मे दी गई हैं । ऐसे महत्त्वपूर्ण पत्र बहुत से हैं और इनमे तत्कालीन राजकीय स्थिति का इतना महत्त्वपूर्ण पता चलता है जो अन्य किसी साधन से नहीं चल सकता । आपसी पत्र-व्यवहार मे दिल खोलकर वास्तविक समाचार लिखे जाते हैं इसलिये ऐतिहासिक दृष्टि से उनका सर्वाधिक मूल्य है । जैनाचार्य अपने आज्ञानुवर्ती मुनियो-यतियो को आदेशपत्र भेजते थे कि अमुक जगह चौपासा करने के लिये पहुचो और उन यतियो के आचार्यों एव वडे-छोटे मुनियो श्रावको के लिखे हुये समाचार पत्र भी वडे महत्त्व के हैं, जो मैकडो की मरया मे हमारे सग्रह मे हैं ।

- गोपाचल भारतीय सङ्कलित एवं साहित्य का प्रमुख केंद्र रहा है। जनसङ्घात साहित्य एवं कला का दृष्टि से भी उसका गौरव अतीत में स्वयंश्रित है। किन्तु उसका मध्यकाल और विघटन १५-१६ वीं सदी का विघटन महत्त्वपूर्ण रहा है। इस युग में कर्ण विपाक एवं उत्तम जन धर्म र अभिवृत्त जन मर्मिता तथा अनन्य स्वाध्याय गालाग बनी तथा विनाल मोहित एक टीका साहित्य का सज्जन हुआ। प्राचीन ग्रंथों का पुनर्द्वार उनका प्रतिनिधि था तथा उनके सरगल की दृष्टि से यह वाक्य अग्रपुत्र ही कहा जा सकता है। गोपाचल के नगराठों ने भात और अन्य राज्यों की आर्थिक समर्थि में अपना मजान बाधनन किया। यहाँ राजनीति के क्षेत्र में भी युगांतरांतरा अन्तरा सहयोग दिया। तत्कालीन नरेश अपने अपने मजिमन्त्र में जना का महत्त्वपूर्ण स्थान दे रहे। इस वाक्य माय का जन साहित्य साहित्यकारों एवं कलाकारों को अपने यहाँ प्रथम दर्जर जन नगरभाषा में जो अनुभव काय विय तब गोपाचल का साधनस्वरूप बना दिया। गोपाचल (गोपाचल) का कर्ण-कण आज भी उनके प्रत वरनी वृत्तवध का भाव प्रान्तिन करता हुआ प्रतीत होता है। किन्तु यहाँ जन समाज तथा भी कर्ण। सम्भव नहीं क्याकि व एष विपाक प्रथम का साहित्य से सङ्कलित है। जत मात साहित्य प्रथमन सज्जन मरणन तथा प्रमगवना जन कर्ण सम्बंधी कुछ पावों की ही यहाँ सिद्धि कला का जा रही है।

महाकवि नयचन्द्र सूरि अपने समय के प्रमुख कवि एवं मट्टककार थे। उनकी दो कृतियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं—‘हम्मीर महाकाव्य’ एवं ‘रम्भामजरी’ सट्टक। हम्मीर ‘महाकाव्य’ वीररस प्रधान महाकाव्य है जिसमें १४ सर्ग एवं विविध प्रकार के छन्दो, अलंकारों एवं रसों से समन्वित १५७२ श्लोक हैं। इसकी भाषा संस्कृत है। इसके प्रणयन में राजा विक्रमदेव की प्रेरणा ही प्रमुख कारण है। नयचन्द्र सूरि की कवि-प्रतिभा को उकसाने के हेतु उन्होंने एक बार भरे दरवार में कहा—“पूर्व कवियों के समान काव्यों की रचना आजकल संभव नहीं।”^३ विक्रम की यह बात महाकवि को लग गई, अतः कवि ने ‘हम्मीर महाकाव्य’ का प्रणयन किया। कवि ने स्वयं लिखा है—“विक्रम की बात सुनकर मैं शृंगार, वीर एवं अद्भुत रस में युक्त प्रस्तुत काव्य लिख रहा हूँ।”^४

‘हम्मीर महाकाव्य’ राजा हम्मीरदेव के रणशौय एवं और वीरमृत्यु की तेजस्विनी काव्यरूपा है जिसे पढ़कर आज भी वाहुएँ फड़क उठती हैं। जिस समय यह काव्य लिखा गया था वह युद्धों का काल था। सर्वत्र छोटी-बड़ी वानों अथवा कामिनी, काचन या राज्यलिप्सा को लेकर आपस में कलह ठन जाती थी। विक्रम के राज्य की शान्ति एवं समृद्धि की ओर भी दिल्ली एवं मालवा के मुहम्मदशाह के सेनापति इकबाल खा एवं खिज्मखा की आँखें गड़ी रहती थी। अवसर पाकर वे हमले चोल दिया करने में जिम्मे शान्तिप्रेमी विक्रम को तलवार उठाकर अपना पुष्यार्थ दिखाना पड़ता था। यद्यपि विजय उगी के हाथ में रहती थी किन्तु कभी-कभी उसके मन में विजयप्राप्ति के प्रति आशंका होने लगती थी। नर्प एवं निराशा की उन घड़ियों में सम्मनन ‘हम्मीर महाकाव्य’ ही उसे प्रेरणा, उत्साह एवं स्फूर्ति प्रदान करता रहा हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। नयचन्द्र सूरि एवं राजा विक्रम का यह घनिष्ठ सम्बन्ध कालिदास एवं विक्रमादित्य, भामाशाह एवं महाराणा प्रताप तथा चन्द्रवरदाई एवं पृथ्वीराज चौहान के युग का स्मरण कराता है।

नयचन्द्र सूरि की दूसरी रचना ‘रम्भामजरी’ सट्टक है। इसमें प्राप्त कथानक के अनुसार राजा जैत्रचन्द्र की सात रानियाँ थी। उनके अतिरिक्त उसका प्रेम लाटनरेज देवराज की पुत्री रम्भा से हो गया जो आगे चलकर विवाह के रूप में परिणत हो गया।

महान् मट्टककार राजगोखर (६-१० वी सदी) के अनुसार “सट्टक में अक, प्रवेशक एवं विष्कम्भक नहीं होते^५। इनके अनिरिक्त सट्टक नाटिका का अनुकरण करती है। हाँ, सट्टक आद्यन्त प्राकृत भाषानिवद्ध होती है।” इनके अतिरिक्त सट्टक की अन्य विशेषताओं में से इसका नायक राजा होता है जो स्वभावतः स्वैर होता है। वह लुक्-छिप कर नायिका में प्रेमव्यापार करता है और पटुरानी को धोखा देकर उसके साथ विवाह कर लेता है। इसमें शृंगाररस प्रधान होता है। समस्त कथानक चार जवनिकान्तरो में विभक्त होता है।^६

मट्टक की उक्त सभी विशेषताएँ ‘रम्भामजरी’ में उपलब्ध नहीं होती। चार जवनिकान्तरो में से प्रस्तुत रचना में कुल तीन जवनिकान्तर ही उपलब्ध हैं। प्रथम में राजा जैत्रचन्द्र का रम्भा के साथ विवाह एवं दूसरी तथा तीसरी जवनिका में उनके प्रेमव्यापार का वर्णन है। इन तीनों जवनिकाओं में नाटक के फल का वर्णन एवं भरतवाक्य अनुपलब्ध है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तिम जव हो गई।

निर्णयसागर० चम्बई

से प्रकाशित

१० चम्बई

काठ



विक्रमदेव स्वयं तो साहित्य-रसिक था ही। उसके मन्त्रिमण्डल का एक प्रमुख मन्त्रिय कुशराज जैन^१ भी कवि-साहित्य-रसिक न था। उसका कलाप्रेम इसीमें जाना जा सकता था कि उसने गोपाचल में एक विशाल उत्तुचन्द्रप्रभ जिनालय^२ का निर्माण कराया था। यद्यपि वह स्वयं साहित्यकार न था, किन्तु साहित्यकारों के प्रति हार्दिक आस्थावान्, श्रद्धालु, भक्त एवं उनका आश्रयदाता था। उसके आश्रय में रहकर पद्मनाभ कायस्थ ने संस्कृत-भाषा-निबन्ध 'यशोधरचरित' नामक एक काव्य लिखा था। महाराज यशोधर का चरित जैन-साहित्य में अहिंसा-संस्कृति का प्रतीक एक आदर्श उज्ज्वल चरित माना जाता है जिस पर लगभग १०० छोटी-बड़ी रचनाएँ विविध भारतीय भाषाओं में विविध कालों में लिखी गईं। उन्हीं में से एक उक्त 'यशोधरचरित' भी है।

पद्मनाभ कायस्थ कृत यशोधरचरित का दूसरा नाम 'दयामुन्दर काव्य' है। इसमें ६ सर्ग एवं कुल १४६ श्लोक हैं (यथा-सर्ग १ श्लोक १४९, २-७९, ३-१५३, ४-२३४, ५-१७९, ६-१८०, ७-१७४, ८-१९१, ९-१०९, १०-१०९, ११-१०९, १२-१०९, १३-१०९, १४-१०९, १५-१०९, १६-१०९, १७-१०९, १८-१०९, १९-१०९, २०-१०९, २१-१०९, २२-१०९, २३-१०९, २४-१०९, २५-१०९, २६-१०९, २७-१०९, २८-१०९, २९-१०९, ३०-१०९, ३१-१०९, ३२-१०९, ३३-१०९, ३४-१०९, ३५-१०९, ३६-१०९, ३७-१०९, ३८-१०९, ३९-१०९, ४०-१०९, ४१-१०९, ४२-१०९, ४३-१०९, ४४-१०९, ४५-१०९, ४६-१०९, ४७-१०९, ४८-१०९, ४९-१०९, ५०-१०९, ५१-१०९, ५२-१०९, ५३-१०९, ५४-१०९, ५५-१०९, ५६-१०९, ५७-१०९, ५८-१०९, ५९-१०९, ६०-१०९, ६१-१०९, ६२-१०९, ६३-१०९, ६४-१०९, ६५-१०९, ६६-१०९, ६७-१०९, ६८-१०९, ६९-१०९, ७०-१०९, ७१-१०९, ७२-१०९, ७३-१०९, ७४-१०९, ७५-१०९, ७६-१०९, ७७-१०९, ७८-१०९, ७९-१०९, ८०-१०९, ८१-१०९, ८२-१०९, ८३-१०९, ८४-१०९, ८५-१०९, ८६-१०९, ८७-१०९, ८८-१०९, ८९-१०९, ९०-१०९, ९१-१०९, ९२-१०९, ९३-१०९, ९४-१०९, ९५-१०९, ९६-१०९, ९७-१०९, ९८-१०९, ९९-१०९, १००-१०९)। अन्त्य प्रशस्तिखण्ड के दस पद्यों में कुशराज का विस्तृत परिचय दिया गया है।

ग्रन्थकार स्वयं कायस्थ था किन्तु उसके गुरु जैन भट्टारक गुणकीर्ति (वि० म० १४६८-७३) थे। उन्हीं के उपदेश से उसने उक्त ग्रन्थ लिखा था।^३ कई भक्तों ने उसकी मुक्तावली से प्रशंसा भी की थी।^४

भट्टारक गुणकीर्ति एक माधक तपस्वी विद्वान् थे। उनकी स्वतन्त्र रचनाओं का तो पता नहीं चल सकता किन्तु अन्य प्रमाणों के आधार पर यह सुनिश्चित है कि उनके अनुज एवं शिष्य भट्टारक गुणकीर्ति, महाकवि रङ्गप्रभृति द्वारा रचित विशाल साहित्य उन्हीं की प्रत्यक्ष अवयवा परीक्षा प्रेरणा का सफल है। सन् १४१६ ई० में उन्हीं ने एक जैन मूर्ति^५ की स्थापना भी कराई थी।

क्षत्रिय (विक्रम) जैन (नयचन्द्र एवं कुशराज) एवं कायस्थ (पद्मनाभ) यह जातियों एवं सम्प्रदायों का अद्भुत समन्वय है। सुदूर पश्चिम एवं दक्षिण में ऐसे उदाहरण अवश्य मिलते थे लेकिन उत्तर-भारत में ग्वालियर का तोमरवंश सम्भवतः प्रथम राजवंश था, जिसने धर्मनिरपेक्षबुद्धि में राज्यशासन किया तथा व्यक्ति की शक्ति, प्रतिभा एवं बुद्धिगुण के आधार पर सभी की शक्ति का यथोचित सम्मान एवं सदुपयोग किया। तोमरवंश में सर्वधर्म-समन्वय

- १ ज्ञाता श्रीकुशराज एव सकलक्षमापालचूडामणि ।
- श्रीमत्तोमरवीरमस्य विदितो विश्वासपात्र महान् ॥
- मन्त्री मन्त्रविचक्षण क्षणमय क्षीणारिपक्ष क्षणात् ।
- क्षोण्यामीक्षण-रक्षण-क्षममति-जैनैन्द्र-पूजारत ॥
- येनैतत्समकालमेव रुचिर भव्य च काव्यं तथा ।
- साधु श्रीकुशराजकेन सुधिया कीर्तिरिचरस्थापकम् ।

(दयामुन्दराभिधान काव्य अन्त्यप्रशस्ति श्लोक ६)

(यह ग्रन्थ अप्रकाशित है और जैन मिथ्यान्त भवन आरा में सुरक्षित है) दे० पृ० ५३ ख

- २ स्वर्णहस्तिसमृद्धिकोऽतिविमलचैत्यालय कारितो ।
- लोकाणां हृदयगमोवहुधनैश्चन्द्र प्रभस्य प्रभो ॥ वही० अन्त्यप्रशस्ति श्लोक ८
- ३ उपदेशेन ग्रन्थोऽयं गुणकीर्तिसहामुने ।
- कायस्थपद्मनाभेन रचित पूर्वसूत्रत ॥ वही० अन्त्यप्रशस्ति श्लोक १३
- ४ संतोष जैसवालिन सतुष्टेन प्रमोदिता ।
- अतिश्लाघितो ग्रन्थोऽयमर्थसंग्रहकारिणा ॥ वही० ६१०८
- साधोविजयसिंहस्य जैसवालान्वयस्य च ।
- मुतेन पृथ्वीराजेन ग्रन्थोऽयमनुमोदित ॥ वही० ६१०९
५. दे० भट्टारक सम्प्रदाय (शोलापुर, १९५८) लेखांक ५५६ ।

वा प्रारम्भ विषय ने किया जा उत्तरोत्तर उद्दिष्ट होता रहा। यदि उसमें समय में राजनैतिक उथल-पुथल न होती तो क्या एक माँ 'य' व क्षेत्र में 'या' का होना वगैरह अनुपपन्न होता।

यह सा हूँ। मीना साँत्य का गीत परिलक्ष्य। 'य' व 'या' का विषयगत म प्राचीन जौन गीन प्रयोग की सुरक्षा एवं प्रतिष्ठिति का महत्त्वपूर्ण वाक्य भी होता है। उस प्रयोग में छन्दमोक्ष तत्त्वगोपिका एवं पञ्चास्तिनाय प्रमथ है।

छन्दमोक्ष (पटवर्णन) अपभ्रंश की एक मन्दवर्णन रचना है जिसमें १४ सन्धिवा हैं जिनमें देवपूजा गद्यउपमात्वा स्वाध्याय समय ती एक दान—इन छन्द नित्यकर्मों का हटाने का प्रयोग कृतान्तिया गति सुन्दर उपदेश है।

उक्त रचना का प्रथम अक्षरकोटि न उसका रचना वि म १२४७ मगुरुदात का मनीषाठा प्रयोग का मोदकप (गाम्ना) पदम म की थी। यदि मगुरुदात का विषय और गणपति नामक माना जाता है। परवर्ती का म के मायुरस्य म मुनि का मय ध जिसकी परम्परा उ जाने अमिन्गति स लक्ष्य वसित का है। अपन प्राता अनाप्रमा की प्रणम स उ जाने का परचना का थी। अक्षरकोटि का वि स १४४ म नमिनाय चरित की भी रचना की थी। छन्दमोक्ष की प्राम्नि क अनुसार हूँ। न मनीषाचरित मगुरुचरित क्षमचरितमिन्ग गुणापिनरत्नमिधि धर्मोत्पन्नमणि एवं ध्यानप्रदाय आदि शब्द लिखे थे।^१

उक्त छन्दमोक्ष की प्राम्नि का काय वि म १४७६ आचार्य मुनी ५ बुधवार का किसी पणिम रामधन ने सम्पन्न किया था।

इसी प्रकार आचार्य कृदकुन्दन मचनमार पर अक्षरकोषाचार्य द्वारा लिखित तत्त्वगोपिका टीका की प्राम्नि का काय वि स १४६६ म एवं अक्षरकोष गणकोटि का प्रणम स एवं अक्षरकोष साध्वी देवदी ने अक्षरकोष कृत पञ्चास्तिनाय की एक प्राम्नि का कराई थी।

प्राम्नि काय का साथ साथ विषयगत म टीका साम्नि की लिखा गया जिसमें आचार्य दत्तनन्दन तत्त्वसार टीका पर प कर्मनकीर्ति द्वारा लिखित एक नवीन टीका प्रमुख है।

विषय के साथ गोपाल की राजगद्दा पर गणपतिपत्र राजा हूवरमिह आसीन हुए तथा उनके बाद उनके पुत्र राजा कीर्तिनिह। न होना का राज्यकाय मम १४८१ १४१ एवं १४१ १४३५ वि स के ममम माना जाता है। म का गणपतिपत्र का स्वयंकाय का वस्तुतः भोजनका था। य दोना विषय मममम सस्कृति एवं साहित्य के परम ममम मक्त थे। मका एक उक्तत प्रमाण यह है कि इन नाम का राज्यकाय म ममम ३३ वर्षों तक गोपाल मम म अनमूर्तिया का निरन्तर निर्माण होता रहा।^२ यदि निम्नलिखित गोपाल का मध्यकालीन इतिहास लिखा जाय तो उम्मा प्रायः अधिकांश भाग जनमम ममात्र साहित्य एवं सस्कृति का इतिहास होगा।

हूवरमिह^३ अब राजगद्दा पर बड़ा सब सम्भवतः उसमें प्रथम बार यह अनुभव किया था कि राजमिहान गुप्तान का पुत्रों का ममा मदी^४। उनके ममम म ममा ने चमन् आक्रमण जारी कर दिया। मानवा के हंगमगह



१ ना प्र० पत्रिका ५। ४।

२ प्राम्नि सप्रह (अपुनर १६५) पृ १७३४।

अनप्रथम प्राम्नि सप्रह भा० १ (दिल्ली १६५४) पृ ५५५।

४ भट्टारक सम्प्रदाय सलाह ५५६।

५ Archaeology of Gwalior (1934) Page 17

६ हूवरमिह पर मरा विस्तृत गोप निवन्ध मध्यप्रदेश स देण (१६६६ ई) म पृ ६५।

एव दिल्ली के मल्लू इकवाल ने उमे चैन से मास नहीं लेने दी। किन्तु डूंगरसिंह ने अपने शीर्ष, पराक्रम एव कुशल सूक्ष्म से सभी जगहों के छक्के छुड़ा दिये थे। इंग्लैंड की महारानी एलिजानेथ के राजमुकुट में आजकल जो बहुमूल्य कोहिनूर हीरा लगा है उमे महाराज डूंगरसिंह ने उक्त हुशगशाह, जिनके पाम हीरा, मोती, माणिक आदि का अमूल्य संग्रह था, में छीनकर अपने खजाने में सुरक्षित किया था जो दुर्भाग्य में तोमरवश के अन्तिम राजा विक्रमादित्य के हाथों छिनकर हुमायूँ के राजमुकुट में जा लगा और कालक्रम में मात ममुद्र पार जा पहुँचा। अस्तु, इस प्रकार उमने राज्य की सीमाएँ सुरक्षित कर आन्तरिक शान्ति के लिये जो कुछ किया तथा सम्प्रना, संस्कृति एवं साहित्य के निर्माण-विकास में जो योगदान दिया, उमे देखकर सम्राट् अशोक एव चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल का स्मरण हो आता है। इन सम्राटों के “बहुजनहिताय बहुजनमुखाय” किय गये कार्यों की परम्परा डूंगरसिंह के राज्यकाल में स्पष्ट देखी जा सकती है। उसे भारतीय इतिहास एव संस्कृति का अच्छा ज्ञान था। राजा बीमलदेव, महामात्य वस्तुपाल एव तेजपाल एव सारंग साहू के कार्यों के प्रति वह नतमस्तक था। ‘नरवर’ के मुप्रसिद्ध दुर्ग में तोमर वशावली के इतिहास की सुरक्षा के हेतु निर्मित ‘जयस्तम्भ’ भी इसका एक उवलन्त प्रमाण है।

महाराज डूंगरसिंह की कवि-प्रतिभा के सम्बन्ध में सागोवाग जानकारी प्राप्त करने के साधन अनुपलब्ध हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि उमने साहित्यकारों को मुकुट का मणि माना था। उमके समय में भट्टारक यश कीर्ति, महाकवि रङ्घू, विबुध श्रीधर, थलू कायस्थ प्रभृति विद्वान् हुए जिनका उसने जी खोलकर सम्मान किया। महाकवि रङ्घू के प्रति उमकी अगाध श्रद्धा थी, अतः उन्हे अपने राजमहल में रहकर ही साहित्य-साधना करने की सविनय प्रार्थना की थी। कवि ने उसे स्वीकार भी कर लिया था।^१ यही कारण है कि कवि ने २५ से भी अधिक मौलिक प्रबन्ध एव खण्डकाव्यों की रचनाएँ कीं। उमी की प्रेरणा में गोपाचल दुर्ग में अगणित छोटी-बड़ी कलापूर्ण जैन मूर्तियों का निर्माण हुआ।^२ एक विशाल आदिनाथ की मूर्ति पर उनके द्वारा प्रतिष्ठा कराये जाने का उल्लेख भी प्राप्त हुआ है।^३ कवि ने अपने सभी ग्रन्थों में राजा डूंगरसिंह एव उनके पुत्र कीर्तिसिंह के सुन्दर कार्यों का मूल्यांकन किया है जिससे जैनकला एव संस्कृति के साथ-साथ गोपाचल के तोमरकालीन इतिहास पर कई प्रामाणिक तथ्य प्राप्त होते हैं।

भट्टारक यश कीर्ति इस युग के महान् आध्यात्मिक सन्त एव प्रेरक तथा सर्जक साहित्यकार थे। ये भट्टारक गुणकीर्ति के शिष्य एव अनुज भ्राता थे।^४ साहित्य के क्षेत्र में गोपाचल में यश कीर्ति का वही स्थान था जो हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु वावा हरिश्चन्द्र का, जो स्वयं तो साहित्य प्रणयन करते ही थे साथ ही उदीयमान प्रतिभाओं को हर प्रकार की सहायता प्रदान करके उन्हे साहित्य-लेखन में प्रशिक्षित करते थे।

यश कीर्ति ने अपने जीवनकाल में पाण्डवपुराण, हरिवंशपुराण, आदित्यवार कथा (अपर नाम रविव्रत कथा), जिनरात्रि कथा नामक ग्रन्थों की रचना की थी। पाण्डवपुराण की रचना वि० स० १४९७-९८ के लगभग की थी, जिसे उन्होंने सम्भवतः दिल्ली के मुलतान मुबारिकशाह के राजस्वमन्त्री एव बील्हासाहू के पुत्र श्री हेमराज अग्रवाल के लिये लिखा था। यह ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में है जिसमें ३४ सन्धियाँ हैं। इसकी समाप्ति कवि ने कार्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार वि० स० १४९७ में की थी।^५

१ रङ्घू ग्रन्थावली भा० प्र० १।३६

२ गोपाचल-दुर्ग में निर्मित जैन-मूर्तियों के इतिहास के सम्बन्ध में मेरा विस्तृत शोध-निबन्ध महावीर जैन विशालय वर्म्हर्ष के स्वर्णजयन्ती स्मारक ग्रन्थ (१९६६-६७) में पढ़ें।

३ Journal of Asiatic Society of Bengal XXXI P 404

४ कीर्तिसिंह (अपरनाम करणसिंह) पर मेरा शोध-निबन्ध ‘मध्यप्रदेश-सन्देश’ (१९६७) में देखिए।

५ रङ्घू ग्रन्थावली भाग ५ भूमिका।

६ जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह भाग २ (सपा० प० परमानन्द जी) दिल्ली, १९६३ सूचना पृ० ८१-८२।

उनको दूसरी रचना का नाम 'रिवंगपुराण' है जिसमें उन्होंने योगिनोपुरी का चित्रण मात्र का किया बनाया था। इस ग्रंथ की रचना भी मात का पुत्र का कदाचित् युष्कार वि सं १७०० में जगल्लखी का राय म स्थित छत्तपुर नामक नगर में सम्पादित हुई थी। इस रचना में १२ सर्गों का एवं २६५ श्लोक हैं। इसमें पद्मिन्या-छन्द का मात मात हटा जमागिया वस्तुवध एवं खड्य प्रमति छ। का विविधता गाना है। प्रत्येक सर्ग का प्रारम्भ में मंगलार्थक संस्कृत भाषा में उपस्था है जिसमें अनुप्रास वगैरह निराला गाना विविधता प्राप्त प्रमुख हैं।

विवि की तीसरी रचना रजित कथा है जिसका अपर नाम का अत्यन्त कथा है। इसमें रजिताराम वन का मनुष्य का प्रकाश दाता गया है।^१

यह कालिका चरित्रचरित नामक एक ग्रंथ की चर्चा जाती है किन्तु उसका कृति विवादास्पद है।^२

यह तीसरी नरलेखन के साधना-प्राचीन गीत गीत कथा का पत्राङ्क मन्व भी काय भाविय। उन्नीस गोपाल का निकटवर्ती कुमार नामक जिनाम में गङ्गा मटाकवि स्वयम्भू (कवी सती) कृत ज्ञान गान एवं चरित्र पत्रमचरित एवं हरिवंशपराण का प्राचीनतम प्रति का प्रमाणित कर उनका उद्धार किया था।^३ इन ग्रंथों में पत्रमचरित का प्रकाश हा हुआ है। महापण्डित राहुल साह्यायन का मत है कि शास्त्राधीन पुनर्मीशमन्त्र राम चरितमानस में उन पत्रमचरित का प्रकाश हा नहीं करी कही जावे अपभ्रंश का अनुवाद भी प्राप्त है।^४ महाकवि पुष्पान्त (दमया गौरी) का मंगपुराण एवं जगहचरित का वाराणसी सम्पादन यही उक्त समय प्रारम्भ हुआ था।

५० विभुष आधर^५ इस काव्य की तीसरी प्रकाश वि इन के विह्वल मन्त्र प्राहुत एवं अपभ्रंश पर समानाधिकार था। उन्होंने संस्कृत भाषा में भविष्यत्तचरित एवं जगभ्रम म मनुमानचरित नामक ग्रंथों का रचना की थी। भविष्यत्तचरित का माध्यम स कवि ने मध्यकालीन मनुष्याना एवं यापारिक सामग्रियों के आयात निर्यात पर गून्तर प्रकाश गला है। उक्त ग्रंथ में यह कालिका प्रकाश ही मन्त्र वास्तव था।

एक अन्य कवि श्री भूमिचन्द्र भी इसी समय हुए जिन्होंने गित धान काव्य पर एक सत्तर दीक्षा ग्रंथ लिखा था। उनका कुछ प्रतिनिधियों भी उस समय की गङ्गा का प्रचार की दृष्टि में अन्य नगरों के शास्त्राचार में प्रसिद्ध था।^६

राजा दुर्गरसिंह के समय में ही एक और प्रगल्भीय कवि राजा जो मोन साधर था और जो मन्त्र प्राहुत अपभ्रंश एवं हिंदी का ज्ञाता जात था। उसका नाम था यल्लु कापस्य। उसकी स्वतन्त्र रचना का लेखन में ही का सती कित एसा प्रतीत होता है कि उनमें कुछ लिखा अवश्य था। वह विभुष आधर का साहित्यिक सहायक (Literary Assitt) स्वयं एवं प्रतिनिधित्व था। इस दृष्टि में भी साहित्य सेवा में उनका कम योगदान नहीं।

राजा दुर्गरसिंह का काल जनसाहित्य एवं जनकला का चरम विवर्धन का काळ था है ही इनके समय में

१ सरस्वती भट्टा जनम। वर दुर्गो की हस्तलिखित प्राचीन प्रति का आधार पर।

२ जन पत्र सं भाग २५ पृ ८२ भूमिका।

३ अपभ्रंश साहित्य (विंती प्र० पृ०) पृ २३८-३६।

४ भारती (अग १६५५) में प्रकाशित राहुल साह्यायन का लेख देख तथा भट्टाचार्य सम्प्रदाय लेखक ५५८-५५९।

५ हिंदी काव्यधारा (सप्त राहुल साह्यायन) भूमिका।

६ मध्यप्रदेशीय भाषा पृ० १४।

७ राजस्थान के जनसाहित्यकारों की सूची (चतुर्थ भाग) पृ १७२।





नई भट्टारकीय गद्दियों की स्थापनाएँ भी की गईं। खालियर में ही भट्टारक पट्ट की स्थापना की गई थी जिस अवसर पर भट्टारक सकलकीर्ति ने “पुण्याहवाचना” नामक मंत्रग्रन्थ का समारोहपूर्वक आद्यन्त पाठ किया था।^१

इसी समय मुवर्णाचल (मोनागिर) में भी एक भट्टारकीय गद्दी की स्थापना भ० कमलकीर्ति (वि० स० १५०६-१०) के जिय भट्टारक गुप्तचन्द्र (वि० स० १५३०) ने की थी।

इंगर्मिह के उत्तराधिकारी पुत्र कीर्तिमिह की चर्चा पूर्व में ही हो चुकी है। उसके कार्यों का वर्गीकरण कुछ जटिल है। वस्तुतः इनके कार्य अपने पिता इंगर्मिह के अधूरे कार्यों के पूरक ही रहे हैं। महाकवि रङ्ग ने इनके समय में ‘मावयचरित’^३ एवं मम्मदन ‘पुण्णामवकहा’^४ की रचना की थी। उनके पूर्वलिखित ‘मिरिवाल चरित’^५ एवं हेमचन्द्राचार्यकृत ‘शब्दानुशासन की वृत्ति’^६ की प्रतिलिपि (वि० स० १५२७ के लगभग) भी इनो के राज्यकाल में सम्पन्न हुई। इसी प्रकार वि० स० १५२१ आपाट नुदि ६ सोमवार के दिन भट्टारक गुप्तचन्द्र के आम्नाय में ‘ज्ञानार्णव’^७ (गुप्तचन्द्र) की एवं मुनिराज नेत्रनन्दि को समर्पित करने हेतु वि० स० १५२१ ज्येष्ठ शुक्ल १० बुधवार को ‘पञ्चमचरित’^८ नामक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ कराई गईं। जैनमूर्तियाँ तो इस काल में अगणित बनी ही, जिनका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

राजा कीर्तिमिह के बाद जैन-साहित्य एवं कला के विकास की दृष्टि से राजा मानमिह तोमर का काल (वि० स० १५४३-१५७६) महत्त्वपूर्ण है। यह संगीतज्ञ तथा साहित्यकार तो था ही, भवन-निर्माण कला का भी बड़ा प्रेमी था। इनके द्वारा निर्मित मानमन्दिर, गूजरीमहल एवं मोतीझील गोपाचल की भवन-निर्माण कला के श्रद्भुत नमूने हैं। संगीत के क्षेत्र में उन्हीं कई राग एवं रागिनियों का जनक माना जाता है। इस विषय पर उसके द्वारा लिखित ‘मानकुतूहल’ नामक संगीतग्रन्थ विश्व के श्रद्भुत ग्रन्थों में से एक माना जाता है जिसका अनुवाद फारसी आदि कई विदेशी भाषाओं में हो चुका है।

मानमिह तोमर के काल में जो मौलिक साहित्य का प्रणयन हुआ वह प्रायः हिन्दी में है। ऐसे ग्रन्थों में कवि परिमलकृत श्रीपालचरित^९, एवं चतुर्मुलकृत नेमीश्वरगीत प्रमुख हैं। श्रीपालचरित जैन-साहित्य का अत्यन्त लोकप्रिय आख्यान है, जो विभिन्न कालों में विविध भाषाओं में लिखा जाता रहा। परिमल का श्रीपालचरित महाकवि रङ्ग के ‘मिरिवालचरित’ में पूर्णतया प्रभावित है। कही-कही तो रङ्ग के कई पद्यों का हिन्दी अनुवाद भी कर लिया गया है।
उदाहरणार्थ —

रङ्ग^{१०}—जहि साहमु तहि निद्रि ।

परिमल^{११}—जहँ माहम तहँ सिद्रि ।

रङ्ग—तहु कच्चर मुमिट्ठु ।

परिमल—तमु काचरा सुमिठ ।

१ राजस्थान के जैनशास्त्रभंडारों की ग्रन्थ सूची भाग २, पृ० ३६ ।

२ रङ्ग ग्रन्थावली भा० १ (भूमिका) ।

३-५ रङ्ग ग्रन्थावली भाग ५ भूमिका ।

६ राजस्थान के जैनशास्त्रभंडारों की ग्रन्थसूची भाग ४ पृ० २६५ ।

७ भट्टारक सम्प्रदाय लेखाक-५६७ ।

८ भट्टारक सम्प्रदाय लेखाक-२५५ ।

९ वि० जैन पुस्तकालय सूरत (१९५६) से प्रकाशित ।

१० रङ्ग-ग्रन्थावली भाग २ ।

११ श्रीपालचरित पद्य-१६६३-१७०१ ।

रदधू—नाम पिवावड धोर ।
परिम—नास पिवाड गार ।
रदधू सा मद् बहू न णिठ ।
परिमज—सा मी व न णी ।
रदधू सा लहि वाइ करेइ ।
परिमज—मो लम नाप करय ।

सोप म यह कहा जा सकता है कि जयल्ल परिवर्तना व अनिखिब परिम व गणनरित का प्रमन रदधू के निरिवालचरिड व साच म हो टाला गया है ।

उक्त नेमीचर्या की रचना वि स १२७१ म हुई था आ जभा गर प्रप्रकाशित है ।

छिता रित इस समय की समझि गराया माना जाता है । उनका लक्ष्य नारायण (अंतर) पात्रित बाच म हो उतवी असु हा जाने म उतके उत्तराय वी समानि मिघई लयच वी प्रणम द व मन लवच न का थी । ये लयच जन ध तथा महाकवि रणच व साहित्य व यके प्रमा मन्तो म म लक थ । गरा गिना चारन लयच मरि कृत म्मारवा य स पूगलया प्रभावित है ।

मानसिह तोमर व रायचान म सम्पन्न म प्राचीन कथा मन्व की प्रतिष्ठि वार्यो म म ववि अमरकालि कृत छवकम्पावगम (वि स १५५० लय मने १ सोमवार लया नगम) वि स १५५० ना गु १२ का भागवमार पचमी (लवक—?) लया वि स १५५१ म म कवि रणचरन पउमचरिड की प्रतिष्ठिपिया की मद् ।

जनमसिया का निर्माण इस गाम म जविक म्हा हा । हौ वि स १५५० बगाम म पचमा की म गुणमद् व आम्नाय म एक बीसीसी मूर्ति की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी ।

य सो हुआ तोमरवागीन गोपाचल की नम मायि म ग वरा साधना । गव वाम भी व यि य राय परम्परा चरनी री । यद्यपि क्षामरवग का समानि के बाट वहाँ की राजनलिक स्थिति कापी अक्षिह हा म् अल साहित्य मजन लय मूर्ति निर्माण की गति म् व म् । पिर भी लु लु साहित्य यमन का बाय चलना रहा और अग १४ सी वार्यो म जा कुछ बाय हुआ उयम ब्रह्मगलाहन यमन क्रिया (िनी रि० म १६९१) गाम्जीनय अहनिमजिचर्यामयुना (िन्दो वि स० १८७०) नाणि प्रमिद्ध हैं । इस प्रकार प्रतिष्ठि व वार्यो म नमनकृत निरिवालचरिड (अपम) वि स १५२३ ब्रह्मगम्भोर मावर द्वारा लिखित हरिवग पुराण (जिनमन विरचित) लय पचवत्पण विधान (मुदं मूयणकृत) रविन्न कथा (िनी मरन्गीतिहृत) म पचमनि पचविगतिहा प्रमुम है ।

य प्रकार गाथाच म मध्यकाल जन साहित्य एव वला के रिथे विममन् तोमर व गाम उयवाम अमरसि लव कीलसिह व काउ मध्यकाल (अथवा यौनरात्र) म राजा मानरि का बाट अलवाच माना जासकता है । इन १७४ (वि स १४२ १५७६) वार्यो के रायवाच म गाथाच म जो बायवगम ल सोप म उन व कु नमूने माच ही मरी प्रस्तुत रिण गग हैं । उला व आछार पर म् हाच जाना ना सगता है कि गाथाच मध्यकालीन जनमानस मायना का प्रमुम व य एव गाथाच व क्रिय महाकवि रदधू द्वारा प्रमुक बाय उगिह लव ग व गिगण उपायुत हा थ ।



कुवलयमाला में वर्णित ७२ कलाएं : एक अध्ययन

प्रेमसुमन जैन,
एम० ए०, शास्त्री,
शोध-रत्नातक—हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी ।



उद्योतनसूरिकृत कुवलयमाला कदा नवी शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण रचना है । कथा और साहित्यिक दृष्टि ने वह जितनी महत्त्व की है, उममें अधिक भाषा-विज्ञान तथा सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से महत्त्व की है । सामुद्रिक यात्रा, वाणिज्य एवं व्यापार, ललितकला और शिक्षा-विज्ञान, शिक्षा एवं साहित्य तथा इतिहास आदि सांस्कृतिक विधाओं की इसमें पुष्टि ही नहीं होनी, बल्कि प्राचीन भारतीय सभ्यता के अध्याय में कुवलयमाला की विविध सामग्री बहुत कुछ अपना सम्बन्ध जोड़ती भी है ।

प्रस्तुत निबन्ध में यद्यपि कुवलयमाला में वर्णित शिक्षा और साहित्य-विषयक समग्र सामग्री को प्रस्तुत करने का विचार था, किन्तु वह अपने आप में इतनी विस्तृत और विविध है कि उसका वर्गीकरण करना ही उचित लगा । और इसलिए यहाँ, अध्ययनीय विषय के अन्तर्गत जिन ७२ कलाओं का उल्लेख है, उनकी समीक्षा ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । दृष्टव्य है, स्वयं रचयिता ने इन कलाओं का व्यावहारिक जीवन में कितना उपयोग कराया है ।

प्राचीन भारत में अध्ययनीय विषयों के अन्तर्गत उन्हीं बातों को सिखाया जाता था जिनका दैनिक जीवन एवं मानसिक विकास के उत्थान में उपयोग होता था । उन सब बातों को कला के नाम में अभिहित किया गया है ।

कर्म-मुक्तता ही कला है । कला और मनुष्य का सम्बन्ध अविभाज्य है । मानव के द्वारा कला की प्रतिष्ठा हुई है और कला के द्वारा मानव ने आत्मचैतन्य एवं आत्मगौरव प्राप्त किया है । कला के द्वारा ही मानव-जीवन में माधुर्य और सौन्दर्य भावना का जन्म हुआ । कर्त्तव्य-कर्म सुन्दर और मधुर बना ।

भारतीय साहित्य में कलाएं

अध्ययनीय विषयों के अन्तर्गत पुरुषों एवं स्त्रियों के लिए कलाओं के परिज्ञान का उल्लेख प्रायः प्रत्येक भारतीय साहित्य में मिलता है । 'कला' शब्द का प्रयोग शायद सबसे पहले भरत के नाट्यशास्त्र में ही मिलता है ।^१ पीछे कामसूत्र और शुकनीति आदि में इसका वर्णन किया गया है ।^२

प्रमुखतः १ रामायण २ महाभारत (१४-८६-३) ३ शुकनीति ४ वाक्यप्रदीप ५ कलाविलाम-अभेन्द्र ६ दशकुमार-चरित्र ७ ब्रह्माण्डपुराण ८ भागवतपुराण की टीका ९ महिम्नस्तोत्र टीका १० शृङ्गारप्रकाश ११ काव्यादर्श १२ जीवननय १३ सप्तशती टीका १४ सौभाग्यभास्कर आदि हिन्दू ग्रन्थों में कला के उल्लेख प्राप्त होते हैं । प्रायः

१ हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १६६ ।

२ 'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला-नाट्यशास्त्र, प्र० अ० श्लोक ११६ ।

३ हिन्दी विश्वकोश, खण्ड २, पृ० ३७८ ।

मभा म ६४ काण्ड हा वर्णित है। कवच लेखन का विस्तार म कला के अन्तर्गत की चर्चा का है और उसकी सख्या १ मभा अधिप गितायी है।^१

वीरप्रथा म अन्तिमचिह्न (पं ११६) म प्रष्टुय रूप स विविध कलाओं का वर्णन है। इसम कलाओं की सख्या ८६ गिनाया गई है। नि पावनान म (प १८ १० एवं १८१) भा कलाओं के उल्लेख हैं।

अन साहित्य में जन्म की भा अध्ययनाय विषयो की चर्चा है वहाँ पर कलाओं का वर्णन विस्तार से हुआ है। १ नावायमयथा २ समवायामयूय ३ वीरपाणिन मूत्र ४ राजप्रणीय मूत्र ५ कवचमूत्र ६ विषाकमूत्र ७ अग्रास्तत्र म पदवीय चरित ८ समवायिचरिता ९ कुवलयमाला ११ प्रवचका १० प्राक्तरमूत्ररत्नमाला^२ आदि प्रथा म ७२ कलाओं एवं जम्बू दीपप्रनति आदि म ६४ कलाओं का उल्लेख मिलता है। हरिमन्मूर्ति ने यद्यपि ८६ कलाएँ गिनाया है परन्तु अन्तिमार्थ म मामा य रूप म बुद्ध्या के लिए ७२ वास्तविकतापन्ध्यादि पुरिमा एवं प्रिया का लिए ६४ कलाओं का विधान किया गया है। नायकुमारचरित एवं यगतिवचस्पू आदि कुछ प्रथा म यद्यपि कलाओं की संख्या नहीं गिनायी गयी किन्तु भी प्राय सभी कलाओं का प्रयोगांतर म वर्णन किया गया है।

कुवलयमाला की ७२ कलाएँ

प्राय हर जन्म कलाओं का वर्णन नायकुमार का विद्याभ्यास के समय किया गया है। उद्योतनमूर्ति ने भी इसी मकसद को उद्दिष्ट बना है। कुवलयमाला म ७२ कुवलयच आना अध्ययन समाप्त कर आचार्य का भाष्य राजधानी वापिस लौटने है ता उनका पिता महाशय अध्ययन आचार्य स पूछने हैं—उद्योतना कि अतिशयोक्ता कला-कलाया कुमारण का।^३

प्रथम ता नाभाय नयन कवचर कि कुमार ने एक भा कला का वर्णन महाविद्या राजा की विस्मय म डाल दिया। किन्तु बाद म स्वयंवरा कलाओं ने स्वयं कुमार को प्रणय कर लिया है बहुकर राजा को प्रिय कर दिया और उनका पुत्र लूकने पर रिम्न ७० कलाओं का आचार्य न परिचय दिया —

१ आनक (आनक) २ गट्ट (गट्ट) ३ जाम (ज्याति) ४ गोपय (गोपय) ५ गुणा य रमणान (रत्नपराणा) ६ भागवत (भागवत) ७ वदमु (वेद) ८ मधय (मधय) ९ गद्य जुती (गद्य-जुति) १० सय (साय) ११ जागी (जागी) १२ वरिमगुणा (वरा या वरा का परिचय) १३ हारा १४ हनमत्त (याय मास्त्र) १५ छत्र (छत्र) १६ चरित (चरित) १७ गिरुत (गिरुत) १८ गुमिणय गत्य (स्वर्णमास्त्र) १९ सज्जन (सज्जन) २० आन-गान २१ सुरगान (सुरगान) २२ हृषीक लक्ष्मण (गजगण) २३ वरय (रत्नपराणा) २४ वट्टा (वट्टा) २५ गड्ड (गड्ड) २६ गणय (गणय) २७ इन्नाल (इन्नाल) २८ दनय (दानी) २९ तवय (तवय) ३० तवय (तवय) ३१ विविगण (विविगण) ३२ वय (वय) ३३ तत (तत) ३४ वट्टा (वट्टा) ३५ वट्टा (वट्टा) ३६ वट्टा (वट्टा) ३७ वट्टा (वट्टा) ३८ वट्टा (वट्टा) ३९ वट्टा (वट्टा) ४० वट्टा (वट्टा) ४१ वट्टा (वट्टा) ४२ वट्टा (वट्टा) ४३ वट्टा (वट्टा) ४४ वट्टा (वट्टा) ४५ वट्टा (वट्टा) ४६ वट्टा (वट्टा) ४७ वट्टा (वट्टा) ४८ वट्टा (वट्टा) ४९ वट्टा (वट्टा) ५० वट्टा (वट्टा) ५१ वट्टा (वट्टा) ५२ वट्टा (वट्टा) ५३ वट्टा (वट्टा) ५४ वट्टा (वट्टा) ५५ वट्टा (वट्टा) ५६ वट्टा (वट्टा) ५७ वट्टा (वट्टा) ५८ वट्टा (वट्टा) ५९ वट्टा (वट्टा) ६० वट्टा (वट्टा) ६१ वट्टा (वट्टा) ६२ वट्टा (वट्टा) ६३ वट्टा (वट्टा) ६४ वट्टा (वट्टा) ६५ वट्टा (वट्टा) ६६ वट्टा (वट्टा) ६७ वट्टा (वट्टा) ६८ वट्टा (वट्टा) ६९ वट्टा (वट्टा) ७० वट्टा (वट्टा) ७१ वट्टा (वट्टा) ७२ वट्टा (वट्टा)

१ भारत कोण भाग ३ - सुरेणव - घोषाभाष्य।

२ जन भागमगाह्य म भारतीय समाज पृ २६६।

३ पाण्यसहस्रणव पृ २३०।

४ नायकुमारचरित यास्तितदधमपू।

५ कुवलयमाला पृ २१ प ४।

६ वही २१ २६।





४५ कालायसकम्म (कृष्ण-लोहकर्म) ४६ सुवण्णकम्म (सुवर्णकर्म) ४७ चित्तकला-जुत्तीओ (चित्रकला) ४८ जूय (धूत) ४९ जत्तप्पओगो (यन्त्रप्रयोग) ५० वाणिज्ज (व्यापार) ५१ मालाइत्तण (माली) ५२ वत्थकम्म (वस्त्र बनाने की कला) ५३ आलकारियकम्म (आभूषणकला) ५४ उयणिमय (मुगटनी कला) ५५ पण्णयर-तत (प्रश्नोत्तर तन्त्र) ५६ सव्वेणाडय (सर्वनाटक) ५७ जोगा (योग) ५८ कहा-णिवध (कथा-निबन्ध) ५९ धग्गुव्वेओ (धनुर्वेद) ६० देसीओ ६१ सूव-सत्थ (पाकशास्त्र) ६२ आरुहिय (आरोहण) ६३ लोगवत्ता (लोकवार्ता) ६४ ओमोवणि (अवस्वापिनी निद्रा) ६५ तालुग्घाडणी ६६ मायाओ (मायाकपट) ६७ मूलकम्म (मूलकर्म) ६८ लावय-कुम्कुड-जुद्ध ६९ सयण (शयन) ७० आसनो (आसन) ७१ कालेदाण दक्खिणया एव ७२ मउयत्तण मरुहरा (मधुर बोलने की कला) ।^१

वर्गीकरण

उपर्युक्त ७२ कलाओ का वर्गीकरण प्राकृत कुवलयमाला के गुजराती अनुवादक आचार्य हेमसागर मूरि ने अपनी सुविधानुसार किया है। किन्तु इनमें से कुछ कलाएँ ऐसी हैं जिनका भेदकर उन्हें अलग-अलग किया जाना चाहिए और कुछ कलाओ को एक कला के अन्तर्गत ही समाहित होना चाहिए था।

उक्त वर्गीकरण में न० २४ 'वट्टा' एव न० २५ 'खेड्ड' को दो भिन्न कलाएँ माना गया है किन्तु वट्टा-खेड्ड एक ही कला का नाम है, जिसका अर्थ है वस्त्रकीड़ा अर्थात् सूती, ऊनी, रेशमी और तसर वस्त्रों की कलात्मक जानकारी अथवा वस्त्रों द्वारा नाना प्रकार की क्रीड़ा करने की कला। आचार्य हरिभद्र ने कलाओ के प्रसंग में ८१ वें न० पर 'वत्थखेड्ड' नामक कला का उल्लेख किया है।^२

इसी तरह ३९ 'पुप्फ' एव ४० 'सकडी' इन दोनों कलाओ को भी 'पुष्पशकटी' (पुष्पशकटी) नाम से एक कला ही मानना चाहिए। इसका अर्थ है—पुष्पों द्वारा गाडी को सजाना या पुष्पों से गाडी बनाना। भागवत पुराण की व्याख्या में उल्लिखित कलाओ के अन्तर्गत ४९वें न० पर 'पुष्पशकटिका-निमित्तविज्ञानम्' नाम से इसका उल्लेख हुआ है और फिर अन्यत्र कही 'पुष्प' और 'शकटी' के अलग-अलग उल्लेख भी तो नहीं मिलते।

इसी प्रकार ११ 'जोग' एव ५७ जोगा नाम से योग का ग्रथ में दो बार प्रयोग जरूर है, किन्तु किसी एक 'जोग' का ही 'योग-दर्शन' अर्थ किया जा सकता है। अच्छा यही होगा कि ५६ 'सव्वे णाडयजोगा' को एक ही कला माना जाय।

उक्त छहों कलाओ का तीन में अन्तर्भाव कर देने में ७२ कलाओ में ३ कलाओ की कमी का प्रश्न उठ सकता है, किन्तु अन्य तीन कलाओ को जोड़ देने से उक्त मस्या पूरी हो जाती है। वे कलाएँ इसी प्रसंग में हैं।

४५ 'कालायसकम्म' के बाद और ४६ 'सुवण्णकम्म' के पूर्व 'सेवकणिण्णओ' शब्द का प्रयोग हुआ है।^३ यह शब्द किसी कलाविशेष का नाम ही होना चाहिए। यद्यपि 'सेवक' का काफी प्रयत्न के बाद भी अर्थनिर्णय नहीं हो सका फिर भी शीघ्र निर्णय ले लेने की दक्षता अथवा सीके आद बनाने की कला में इसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। बगाल में सीके बनाने की कला आज भी मशहूर है। उद्योतनमूरि ने 'सेवक' शब्द सम्भवतः नया प्रयुक्त किया है।

इसी प्रकार ५१ मालाइत्तण के बाद एव ५२ वत्थकम्म के पूर्व 'खारो' शब्द का प्रयोग ग्रन्थ में हुआ है।^४ इसका भी सम्बन्ध किसी कला से हो सकता है। 'खार' का अर्थ डाह शब्द के साथ धार बनाने की भट्टी एव तत

१ 'आलेख णट्ट जोइस—कुमारम्म ॥'—कुवलयमाला पृ० १-१०।

२ सम्राडच्चकहा अण्डम भव, पृ० ७३३।

३ कालायसकम्म सेवकणिण्णओ तह सुवण्णकम्म च। कुव० २२-६।

४ वाणिज्ज मालाइत्तण च खारो य वत्थकम्मं च। वही २२-७।

एक राय वाजीकरण औपमि या न की बिद्या दिया गया है। अतः साहचर्या नाम का बला का यह उपाय हुआ था।

६८ गतय कुवलय बुद्ध का नाम ललाटा म विमलत दिया जा सकता है—लावण-जड़ (गंगा मुक्त) लय कुवलय जड़ (कुवलय-मुक्त)। लय प्रयास म भी इसके द्वी प्रसार उत्पन्न है।

विशिष्ट कलाओं का परिचय

७२ कलाओं का उक्त वर्गीकरण म अधिकांश कलाओं का अर्थ स्पष्ट है। किन्तु कुछ कलाएँ ऐसी हैं जिनका अर्थ पूर्णतया समझ म नहीं आता। और बहुत तब तक नहीं आ सकता जब तक तत्त्वज्ञान परिक्रम का ध्यान म स्थापित न माया जाय। ललाटा का अर्थ निश्चय म कुछ मनन भी है। गहरता है बहुत गहनता भी। निम्नरत्नाओं का वर्णन स्पष्ट है।

२ आयु-जाने हमारा आयुध्यान का बाध हो सकता है किन्तु हमका सांस्कृतिक सम्प्राप्य है आध्यात्मिक। अर्थात् विविध बाधा का पान समीपवर्ती।

चार प्रकार का बाध मानिष का आनीय काल है अनविद्यमि बाधवाञ्छितानामवयम्।

२३ अर्थ अर्थ अर्थ विज्ञान अनुमान न समझती है। विद्या परत सम्पत्ति का हमका सम्पन्न होना चाहिए। क्याही कलाओं का हम वनन म अर्थवत्नी साधकता का उत्पन्न नहीं है जयति ७२ कलाओं म बहु महान प्रयुक्त कला मानी गया है। अगस्त्य लय समस्तान्तिवत्ता म वनन अर्थवत्तिना लय वस्तुमात्र है का उत्पन्न हुआ है जिनका अर्थ है—अनुमान को जानने लय वनन का वनन। अतः उक्त वस्तु को क्यावत्तवत्ता म ही सम्पन्न होना चाहिए।

२४ अर्थवत्त हाथी त की कला। किन्तु दन्तरजन का बला भी हमका अर्थ हो सकता है। क्याही लय पूर मागवत्तुराण की अर्थवत्ता म लय का बला का रूप म उत्पन्न हुआ है।

३१ विनिमोह उद्योगनमूर्ति न कला के लय म हम का लय प्रयास दिया है। प्राचीन भारत म प्रचलित विद्या प्रयास तो लय सम्पन्न न हो सकता। विनिमोह का अर्थ उपाय का पान दिया गया है। सम्पन्न लय विनिमोह प्रकार का जान रखने की कला है। किन्तु हमका उद्योगन हमका अर्थ प्रयास-लय वरता चाहिए। क्याही विनिमोह का अर्थ—आपका हमका अर्थ भी मिलता है। विनिमित्त वरता अर्थ भा प्रयासन लय सम्पन्न रखता है।

३५ अर्थवत्त अर्थ का साहित्य अर्थ कागदकार न अर्थ दिया है जिनका अर्थ नि या निमित्त भा हुआ है। हमका हमका अर्थ वत्तवत्ता की कला का भी अर्थ वत्तवत्ता कर सकते हैं। अनुमान न माया द्वी अर्थ

१ पादमगदमगदमगदो पृ० २७५।

२ समस्तान्तिवत्ता अगस्त्य आदि।

३ अर्थवत्त १५।

४ अगस्त्य पृ०

५ समस्तान्तिवत्ता अर्थवत्त पृ० ७३५।

६ भागवत्पुराण।

७ अर्थवत्त की लय भाग १, पृ० ५३२।

८ अर्थवत्त की लय भाग २ पृ० ६३६।

९ पादमगदमगदमगद पृ० ७५।



प्रायः मे इसका अर्थ 'नमस्कार' की तथा किया है किन्तु यदि 'जट्ट' या अन्य 'आर्द्र' किया जाय तो महत् ही उत्तम क्या मित्रनरमं मे मन्त्रित्व हो जाती है। ३४-पुष्पविधि तथा के बाद इसका उल्लेख भी 'मित्रनरमं' का ही समर्थन करता है।

३७ अरुसाइया इसका अर्थ, आश्रायिता के अर्थ मे रहानी विद्युते या मन्त्रे की तथा किया जा सकता है। अन्य ग्रन्थो मे भी इसका वही अर्थ है। अनुनादक न जाना मेरुने ही किया' इसका अर्थ किया है।

४५ कालायमकर्म कृष्ण बोहे को लाग मे मयारर करने मन्त्र आदि बनाय की तथा। बाज्य-चोहार दिन चार्म जो करने है।

५१ मालाइत्तण पुष्पों के हार आदि करने की तथा। माली का काम।

५४ उषणिमय इसका अर्थ उपनिषद् हो जाता है किन्तु उपनिषदा अर्थ करना श्रमगत है। उपनिषद् विद्या का अर्थ रहस्यविद्या है। ऐसी विद्या, जिसे गुप्त अपने विशिष्ट मन्त्रों को ही पढ़ाने मे और त्रिमूर्ति गोपन करने की मन्त्रों को पढ़ाना करना पड़ती थी। अनुनादक ने इसका अर्थ 'मुग्धनी तथा' किया है।

६४ ओमोचणि - अवस्थापिनी विद्या, जिसके प्रभाव मे दूसरे को साष्ट निद्रा-धीन किया जा सके ऐसी विद्या। देवान्दा ब्राह्मणी को अवस्थापिनी विद्या मे मुलाकर हरिगेमनी ने महावीर का गर्भरत्न किया था। अनुनादक ने 'अवस्थापिनी निद्रा' इसका अर्थ किया है। निद्रा की जगह विद्या रहना बर्णित नग्न है।

६७ मूलकर्म प्राथमिक उपचार का ज्ञान। समरादिपदवा मे एक पायल व्यक्ति का औपनिषद मे उपचार करने को 'मूलकर्म' कहा गया है।

उस तरह उक्त विवेचन के बाद भी ये सारा अर्थ भी अधिक गवेषणा की अपेक्षा रहती है।

अन्तर्भाव

उद्योतनमूरि ने जिन पूर्वोक्त ७० उपायों का उल्लेख किया है उनमे बहुत कुछ ऐसी कलाओं के भी नाम हैं, जो बृहत्तर और सीमन्त तथा त्रिभिन्न द्वारा प्रणीत ८६ कलाओं के अन्तर्गत भी नहीं आते। और जिन नामों का अन्य ग्रन्थो मे वर्णित कलाओं मे साम्य है, उनके अन्तर्गत उद्योतनमूरि ने समस्त कलाओं का समावेश करने की प्रयत्न कोशिश की है। इसने एक और प्रयत्न करने जहाँ परम्परा का निर्वाह किया है, वहाँ दूसरी और शान्ति मोक्षिता का विस्तृत करने का क्षेत्र भी तैयार किया है।

कुवलयमाला मे नृत्य के अन्तर्गत—गीत, वादिन, स्वरगन, पुष्करगन और नमनाल का रत्नपरीक्षा के अन्तर्गत—मणिमिश्र, हिरण्यवाद, सुवर्णवाद, मणिवाद का, ज्योतिष के अन्तर्गत चन्द्रचरित, सूर्यचरित, राहुचरित, ग्रहचरित कलाओं का, छन्द के अन्तर्गत—आर्या, प्रहेलिका, गाथा, गीति और श्लोक का, गज और अश्वकला के अन्तर्गत गी, कवकुट और मेघलक्षण कलाओं का, वस्तुपरीक्षा या वास्तुज्ञान के अन्तर्गत—चक्र, छन्द, दण्ड, अग्नि और मणिग्रन्थ का, अथवा नगरमान, वास्तुज्ञान, मन्त्राचार-निवेदन, नगर-निवेदन, वास्तुनिवेदन आदि कलाओं का^१, देवीभाषा ज्ञान है। वगैरे प्राकृत, मन्त्र, पैशाचिक एवं अपभ्रंश भाषा के ज्ञान की कलाओं का^२, लक्ष्मणकुण्ड वुद्ध कला के अन्तर्गत मुद्रकला के अनिर्विकृत बाहु, दण्ड, मुष्टि एवं अन्य-युद्ध कलाओं का भी अन्तर्भाव किया गया है।^४

इसका भी र

२, २७ पृ० ४४ अ। ज्ञातृवर्मकथा १६, पृ० १८६।

१. 'आलेख' क्या, छठा भव।

२. समराइच्छा की ८६ कलाओं मे से।

३. कालायमकर्म ३२ कलाओं मे से।

४. वाणिज्य माला अ० भ० पृ० ७३४।



ज्योतिष उम विषयक तो अपार सामग्री गयारा न प्रस्तुत की है। नक्षत्र विद्या, राशिकल,^१ जन्मोत्पन्नमयविचार, विवाह का लग्न विचार^२ आदि सबका विस्तृत वर्णन है। उदात्तरणार्थ 'मयच्छ्रेण गणित, देव, नृपणवेमि त्ति, निमुगेमु मयच्छ्रेण, एम आणरी, उदूमरज-गमखी, मामो कत्तिथो, निरी विनया, वारी वुहम्म, णवघ्न हत्थो, रामी कण्णो, मुकम्मो जोगो, मोम-गगट निगिनिउय लग्ग, उन्न-ट्टाणट्टिया मय्वे वि गग।'^३

व्याकरण मठों में व्याकरण पढ़ाने का अलग विभाग था। जहाँ 'पयउ-पन्नय-नोरागम-उण विचारारोम-ममानावमग-मगणाणिउण वागण वगणाणिउत्ति।'^४

ग्रन्थकार ने उस प्रसंग में माह्य, योनादि जनी दर्शनो के मन्तव्य की सम्पूर्ण चर्चा की है।

तुरगलक्षण अश्वों के विषय में जो जानकारी उद्योतनमूर्ति ने प्रस्तुत की है अन्यत्र कहीं एक जगह नहीं मिलती। कुवलयमाला में १८ प्रकार के घोड़ों की जातियों का वर्णन है 'पुरयाण ताव अट्टारम जाट्ठो'।^५

धातुवाद कुवलयमाला में धातुवाद का विस्तृत वर्णन है।^६ प्राचीन भारत में धातुवार द्वारा स्पर्ण मिट्टी किया जाता था। यह एक रासायनिक प्रक्रिया थी। धन कमाने के लिए लोग उसकी सीखने के 'धाउव्वाय उमिनात्ति तेण ते कि पि मिदिउविवा'।^७ किन्तु सभी को उसमें सफलता नहीं मिलती थी।

चित्रकला वस्त्रचित्रों एवं चित्रचित्रों का पुटकर तो उल्लेख ग्रन्थकार ने किया ही है,^८ किन्तु एक जगह जितना विस्तृत चित्रों का वर्णन किया है, उतना अन्यत्र कहीं एक स्थान पर देखने को नहीं मिलता। कुवलयचन्द्र को समार-चक्र का ज्ञान कराने के लिए एक उपाध्याय स्वचित्रित चित्रपट को दिखाता है। 'कुमार, मए चित्तवटो लिहिओ, त ता पेच्छह कि मुन्दरो कि या ण व।'^९ कुमार को अन्त में चित्रपट देखकर कहना पड़ता है—

'दिट्ठ च मए त पुहइए णत्थि ज तत्थ ण तिहिय।

ज च तत्थ णत्थि तं णत्थि पुहइए पि ॥'^{१०}

वाणिज्य कुवलयमाला का सम्पूर्ण कथानक वाणिज्य के उपकरणों द्वारा ही गतिशील हुआ है। वाणिज्य के विविध अंगों—८८ प्रकार के बाजार^{११} व्यापारियों की मण्टिया, उनकी व्यवस्था,^{१२} सामुद्रिक यात्राएँ,^{१३} देश-विदेशों में वस्तुविनिमय,^{१४} धनार्जन के विविध उपाय^{१५} आदि का विस्तृत वर्णन ग्रन्थ में हुआ है।

१ वही पृ० १६-१३।

२ वही, १७०, ५-१५।

३ वही, १६, ४-६।

४ वही, १५०, २६।

५ कुवलयमाला, २३-२२।

६ वही, १६५, पूरा पृ०।

७ वही, १६१ २४।

८ वही, २३३, ६-२३।

९ वही, १८५, १५।

१० कुवलयमाला, पृ० ८।

११ वही, १५२-५३।

१२ वही, ६७ आदि।

१३ वही ६६।

१४ वही, १६१-१-१३।

देशीभाषापरिज्ञान इस कला का उद्देश्य कर उद्योगनमूरि न अपने भाषा विषयक विस्तृत ज्ञान को प्रस्तुत करने का क्षेत्र बना लिया है। मस्तिष्क प्राकृत अरु अग और पगाली भाषाओं का उत्प्रेषण उद्घाटन किया है।^१ ग्रामीणा का बोधिया^२ गवरा की भाषा^३ एवं १८ देशी बोधिया का भाषितन वगन उद्घाटन प्रस्तुत किया है।^४ इस विषय में डा० ए० एन उगाधे का मन्त्रवृण निबन्ध हृद्य है।

इस प्रकार उक्त कुछ कलाओं का सम्मेलन और उनके वास्तविक उपयोग का गिद्ध करते हैं दूसरी ओर हमें यह भाव स्पष्ट होता है कि कवलयमाला न केवल अपने समय का बलि मण्डप भारतीय भाषा में सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से अपना एक विनिष्ट स्थान रखती है।

७२ कलाओं का इस अध्ययन का कवलयमाला जल विगाल एवं सप्रत्यय का सम्मेलन एवं नगण्य या प्रयत्न ही कहा जायेगा। फिर भी हमने चिन्ता सा स्पष्ट है कि उद्योगनमूरि न केवल कलाओं में ज्ञान का समीक्षण का प्रयत्न विस्तार किया है और उह अवस्था भी प्रगति की है।

•



१ कवलयमाला ७१ १८।

२ कुव० ६३ १२४।

३ वही १२० ११८।

४ वही १५२ ५३।

३ प्राचीन कला सबसे अधिक संग्रहालय । इस तरह की कला में जादूई तत्वों की व अनोखी कल्पना की अधिकता होती है ।

वागा एव स्फूर्त। मिलेरोकी स्वन व दार्ष्टान्तीयल पल प्रीका गोया आदि कलाकारों से प्रेरणा ला है। जॉर्जो^१ व अर्यानाल^२ में बनाया गाला व चहरे तथा उन त्रासों के चहुँदे जो कासा के नन्हा पर चढ़ते मरणासन थे सब नम कला की योग्यता में आते हैं।

१९ वां शती के मध्यम यूरोप में प्रभाववाला आन्दोलन ने कला की दृष्टि को विस्तृत करना शुरू कर दिया था। कलाकार पीछे पर परीक्षण कर अभिव्यक्ति का एक नया माप ढूँढ़ रहे थे। फास्त्रववा प्रथम में १९ वां शती के प्रभाववाला (Neo Impressionism) मध्यप्रवाला (Synthetism) नबीवाद^३ (Nabism) फाविम (Fauvism)^४ आदि कई कलाधाराएँ बढ़ उठीं। २ वां शती के आरम्भ होते ही हर देश का मध्यम ने प्रतिफलित हो गया। पिशाचों व त्रासों के उबर मस्तिष्क में घनवाला (Cubism) की उत्पत्ति हुई जिससे कला में एक नई हो जाति उत्पन्न हो गई अभिव्यक्ति का एक नया माध्यम खल गया परम्परा के सबन टूट गये और कलाकार मुक्त पड़ी सा खुले आकाश में उड़ान भरने के स्वप्न देखन लगा। नवी समय का प्रेम में आन्दोलन के रूप में अभिव्यञ्जनवाला के भी बीज प्रकटित होना लग।

घनवाला व अभिव्यञ्जनवाला न बीज का भ्रम केवल दृष्टि में धारणा है। फाविम की उत्पत्ति प्रथम में हुई पर जिस कलाकार में इसके तत्त्व मौजूद थे वह बान गोग था—डच कलाकार। उसमें सब मध्यम विद्यमान थे—तन्वी से ब्रज चलाता यथावयव पीतना इत्यादि का स्वन वृत्तावकला साक्षी क्राइम बनाता तथा चरित्र व धुमाकड़ आदि। प्रति ज्ञान दृष्टाना आति। अभिव्यञ्जनवाली चित्र की दृष्टि पर भौतिक प्रतिक्रिया हानी जाती है। फावी (Fauve) का यदि हम मित्रि स्फूर्त मिलें तो अभिव्यञ्जनवाला का भी उसी धनी में रहना होगा।

यदि घनवाला से उद्भव नवीन उत्तम विधि हमारे सम्मुख न आती व फावीवाला (Fauvism) के रंग नही आते तो अभिव्यञ्जनवाला कलाकृति एक प्रकार का प्रतीकवाद हो रह जाता। इस दृष्टि से घनवाला व फावीवाला व अभिव्यञ्जनवाला एक समान ही हैं। नोवा तथा दमिरी मगर की प्रतिमाओं का फावी व घनवाला शानों पर ही गहटा बसर पना था। १९ २ म ही हैनरी मातिम अभिव्यक्ति स्वरूप रंगा में चित्रण कर रहा था। मच^५ व बुआ^६ इसने भी धूम्र रंगों के रचना कर चुके थे—पॉल गिन्ने^७ म भी यी बात देखन का मिलती है खन इसके निर्माण में कई धारणा का मिश्रण है। जमन कलाकारों ने फास के नेदिया में प्रेरणा ली और इस धारी का विनाश अपने यहाँ उलाने अपने ही दृष्ट से किया—मयावक लकी से उग्रता लिये द्रष्टे एवं अ इ क्षान्तिवासी के समान। इसद्व (जमनी) के अभिव्यञ्जन वाली फावी के ही समान थे। उहाने रंगा की म्य पर नाटकीय दृष्टि का जार दिया। गिनन ही नम प्रकृति में वे धुमकत गम उतनी ही दन्ताक म्य निम्न विवृति (Distortion) उनकी आकृतियाँ (Forms) की शोनी गद। मगर फाति म म। प्रकृति पिशाचों के ड्यूग्राफिण तथा मोटेलासी कला आति के विनाश में भी गिरा हैनी है। बान गोग के म दार्ष्टान्तीयल व गाल वीत रंग म घनवाली वादना को अभिव्यक्त करना चाहता हूँ। अभिव्यञ्जनवाली कला का आशय माने जा सकते हैं। इसका बान रंग आकृति पर आश्रित न। रह। वस्तु में दूर उनका अना हो निरूप्य हो गया। बिना द यातम रूप व ही भावाभिव्यक्ति समक हो उनी। इस समय में पिशाच का यह दृष्टिकोण कि कला में मानविक



१ फ्रांस का रोमांटिक शली का कलाकार।

२ कला में दार्ष्टान्तिता का आरोप देकर उपेक्षित देखेवाले कलाकारों की विशेष धारा।

३ हैनरी मातिम द्वारा प्रतिपादित धारा जिसके कलाकारों को शुरू में जंगली पशु कहा गया था।

४ (Munch) जमन का अभिव्यञ्जनवाद का आरम्भ होने से पूर्व का कलाकार।

५ (Vullard) नेवी कलाधारा का कलाकार (फ्रांस)।

६ (Paul signac) नवी प्रभाववाद का फ्रांस का कलाकार।

७ यथाय रचों का कला में सग म विवरण व मान सके कला के अनुसार मंतर होना चला आया है। कला में distortion इसी का प्रतिरूप है।

वाक्य की अधिक प्रतीति है बनिश्चय मौलिक धार्मिक के' गिनना मन्त्र है । गीता ने प्रभावशाली सा दाप करने हुए जब अपने विचार प्रस्तुत किए तो उनमें भी यही ध्वनि सुनाई दी । उम्मे रहा 'प्रभावशाली ने वैभव दृष्टान्त के त्रयी की गात्र की, विचारों का रहस्यात्मक केन्द्र उनकी परिभाषा में प्रकट हो रहा । मनीष के समान चित्ररत्न में भी तत्त्वमस्य के वक्ष्य मन्त्रात्मकता द्वारा बहुत कुछ दर्शाया जा सकता है । उपर्युक्त के मातृमार्ग प्रभावशाली का नाशिते विद्वान्मन्त्र जगत् को अदृष्टात्मक रूपों में प्रस्तुत करेंगे । विचार व रचना पूर्णतया मौलिक, स्वेच्छाकारी व अनुसंधानपूर्ण होंगी नाशिते जिनमें किसी प्रकार के नीच-नरीसों की स्थापना न आवे । इसी रचना में ज्ञानार्थ का अतिरिक्त व आनन्दितता उत्पन्न । इन विचारों का अभिव्यक्तनवाद पर धेद्वर प्रकाश पड़ा । चाहे दृश्य चित्र हो अथवा अविश्विष या अस्तुविष (Still Life) अभिव्यक्तनवादी चित्र में रचनाकार का उत्पादन स्वयं बोधगोष्ठ में प्रकट हो जाती है ।

अभिव्यक्तनवादी द्वारा में उनके तकनीक (Technique) दिखाई देने हैं जिसने कि चित्रों में । यद्यपि इन चित्रकारों के अन्तर्गत के कोई समान नियम नहीं है कि भी जगत् है कि ज्ञानार्थ दृष्टि में वे सभी एक मूल में प्रकट हैं । स्वभावजन्य आवेश व्यक्त अन्य आंतरिक अभिव्यक्तनवाद पर उनकी प्रभाव पड़ा है । वे रचनाकार गहरे अध्ये में जैसे अन्तर् की वेदना में छटपटा रहे हों । उनके स्वरूप के उद्घाटन की प्रतिष्ठा उनकी कृति का फलस्वरूप रहती है । अन्तर् के उद्घाटन में उन्हें प्रकृति व जीवन पर भुक्तान देनेवाला साधन सा दिखाता है । रचनाकार उसी अभिव्यक्तनवादी में रचना करने हैं जिसने ज्ञान वाक्य रूपों के अन्तर्गत उनकी रचना नहीं हो पाती । रचनाकार है जैसे रचनाकार तन्त्र में गीता है जो उनकी कला, जो आंतरिक उत्पीड़न की उत्पत्ति का प्रतीक है ज्ञान माध्यम बन गई है ।

अभिव्यक्तनवादी कला-मूलन के चरम आवेग में ज्ञान की उत्पत्ति हो गई है । मौलिक रचना करने-करने भी अभिव्यक्तनवादी रचनाकार अन्तर् में हृदय-नरगों में जाते रहता है । चाहे वे किसी छुट्टी पर न हो उनकी रचना में उनके आंतरिक भावों की मामिला अवश्य होती है ।

उनकी रचना फायी में अधिक चंचल व भावानुसारी होती है । वे स्ट व कंडोर हो सकती हैं — गालियन का अनियमित, घान व आनन्दपूर्ण, पर उनमें एक प्रकार की तीव्रता, अव्यक्तता एवं दीन अवस्था होती है । रंग रत्नाकार की मानसिक स्थिति में पैदा होने हैं । चित्र अवतर गहरे जाने व भूरे के आरम्भ होते हैं फिर एकाग्र वेनवाच की उत्तमभीष्ट धुआँ पृष्ठभूमि का आवरण फोट, आठ, पीले, बजनी, हरे, नीले रंग उभर पड़ते हैं । उन रंगों का प्रयोग ऐसा दिखता है मानो ब्रह्म वेग में मन की पुमटन के तार-माय विता गया हो । गहरे चमकीले रंगों में खूब विरोधाभास होता है ।

२० वीं सदी में एक साथ ही कई स्थानों में अभिव्यक्तनवादी प्रवृत्ति उभर पड़ी । जर्मनी, फ्रान्स, स्विट्जरलैंड, पेरु, आस्ट्रिया, हावैड व एमिवा में यह आन्दोलन प्रकटित हुआ और एक विशेष धौली का उभरने दर्शन कराया । पूरे उत्तर व मध्य यूरोप में शीघ्र ही यह धौली फैल गई । फिर मेक्सिको के गडवेरा, ओरोस्को, टॉमिषो, मिक्विगे स्टेट के वेन, टिकुनिंग आदि रत्नाकारों में उसके लक्षण दिखने लगे । बाजीज के पारिनारी व मेगाल आदि में भी इसका प्रभाव फैल गया । भारत की लोककला में एक आरम्भिक गजस्थानी कला में भी यही नस्व देखने को मिलने है । २०वीं सदी में अमृत मेरगिल धौलेन मुर्जो, प्राणनाथ नागो, गुजगल, रामकुमार आदि के चित्रों में यत्र-तत्र ऐसे लक्षण देखने का मिलने है ।

अभिव्यक्तनवाद में नाटिक की कथा, स्त्रोत्र की रहस्यात्मकता, पेरमिज की मान्यता, जूटन का उत्पीड़न एवं जर्मनी की हर प्रकार की स्थूलता की भटक मिश्रित है । इन जावोहन की उत्पत्ति व प्रसार में जर्मनी का गहरा हाथ है । इसकी मस्कृति के प्रति नास्तिजता, भेदाभेद की कमी एवं सर्वत्र व्याप्त मोदय के निश्चित मानों पर प्रहार करने की वृत्ति के कारण कुछ चेतन मूल के कलाकार इस आंदोलन में अग्रद्वारा स्थित थे । उनमें पिकासो व कक्षा आदि मुख्य हैं । उनमें विघटन, धार्मिक अनिश्चय व जनात्मीयता के होने पर भी अभिव्यक्तनवाद ने कलाक्षेत्र में अनुपम उदाहरण पैदा किए हैं । प्रकृति व समाज के बीच अभिव्यक्तनवादी कलाकार प्रागैतिहासिक व आदि मागव मा निर्दोष व भोलाभाला दिखाई देता है ।

जमनी के वक्तामन का छहवरा अभिव्यञ्जनवाद का वास्तविक प्रतिभा नो * चित्रकर हार्ल गिम्बट रोड
 "कृष्ण गुरुते मुने" के साथ सब कविद्विस्तार आदि गानासारा मन्त्रिनी है। इन कलाकारों ने एक राजाप्रसन्नता को
 अधिक विषयवाचक बनाया। शुद्ध जाति (pure form) की जगहा न कर्ष वसति सलिया उत्पन्न कर दी। इनका
 मान अभिव्यञ्जनवाद का गालाविषय कला उचित गढ़ो जचना। देखा गया है कि कविद्विस्तार चित्रकर तथा जाम्नी
 आदि की कला में साहित्य अन्तर न होने पर भी अवनसिद्धि में आगामीन भिन्ना है। उस समय बहुत से कलाकार
 अभिव्यञ्जनवादी थे पर तुम्हारे सम्पूर्ण कलाकारों का प्रवृत्ति यन्त्रनिरपेक्षता (abstraction) की ओर अपि
 होन लगी।^१ इसी स्थानता १९३३ में हा मर्फी थी। अभी मैं यन्त्र निरपेक्ष अभिव्यञ्जनवाद (Abstract Expressionism)
 की "मुद्राति" हुई। कविद्विस्तारों का स्वयम्भू अमूर्त आकृतिया का तथा पालन कला की वास्तविक एव कलात्मिक
 धारी का अभिव्यञ्जनवाद पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि आज भी कलाकारों के बीच इसकी बीज विद्यमान है।

पेरिंग हिमडन व यन्त्रिक का कला में रचनात्मकता अति उत्तम है। कुछ समय बाद इसका अमूर्तवादी चित्र
 कला व अवधारण कला का सार पान बन गया।

पहले महापुरुष के पुत्र जमनी में फीस के कई प्रसिद्ध कलाकार प्रस्थान कर अपना प्रभाव जमाने का पर कात
 हुए थे। जमनकला में इनका पाकी जाति आ गई थी। अभिव्यञ्जनवाद की देन चन्दा य अनिवार्यता (Surrealism)
 ने किमी भाति कम नहीं है। मानवस्वभावता में भी जमन कलाकारों ने काफी हाथ बढ़ाया है। मर्फी का
 का १९१४ १९१६ में पण्डित गण्डु में मर गया। फीस में भी यन्त्रम बिली घाति युद्ध के कारण १९१८ व २५ में
 मार गया। जमन में राष्ट्रीय नीति के कारण जमनकला का धारण धानि पड़ गई। जमन अभिव्यञ्जनवादीनों के
 भिन्न दावारा त उमाह कर गया। उन्हे मर्फी कर दिया गया। चित्रकारों ने रचना करने की छोट दी। उनसे प्रथम बंद
 कर दिये गए। मोहरे व राजलक का चित्र बनाने का निषेध कर दिया गया। स्पष्टिक्रम पर तात टाक दिये गये। १९३७
 की प्रस्थानी में अन्य अभिव्यञ्जनवादी चन्दा नगी रकसी गई। १९३८ में क्लामिफ कला विद्यालय में क्लॉक व स्पष्टिक्रम
 में सक्तीत चित्र चित्रन की सारकार न बागीलगी थी। एक प्रयत्न अभिव्यञ्जनवादीनों का पार चन्दावनी थी। चित्रकर सचि
 उम समय मिया में मर गति था फिर भी उन्हे सलिरण पर इनका इनता भय छाया कि उनमें सारमहारा करनी।
 चित्रन का बन्द कर दिया गया। दूसरे कालकर जमनी छह भान। पॉल एरी रिक्कडरलण्ड नीट आया। कविद्विस्तारों
 फीस चन्दा गया। फीस में ने लम्पटलण्ड में गल्ले ली। काउन्स कागसर इन्फेड आ पड़ गया। बंद का का कूड़ा
 निम्न कला तथा कानों सुनिवार मरीची के भूय में तदवन्तकार मर गये। कई जमन व आन्वित्यन कलाकार आरिक्क
 मूर्तवा का रण करत गल्ले मर गया। जमन अरेक्क व विन्स आदि फीस का प्रिय कला १९३६ व फीस वद मर्फी
 कर दिये गये। जमनी व कलाकार आ जा मर्फी गये थे। गम व भारे छि लिये फिर रहे थे। उनसे विरोधी का मरीची
 बन कर लो गई था। बिना व कलाकार भी भान मर थे। सान्त्वन भी विवक मर थे। पॉल मर्फीम सलिरण कला
 गया था। बन्द आन्वित्यन जमने गाम सार्वक या अन्नी अन्वित्यन पांड नगी में बूब मर। १९३७ मर्फीम सान्त्व
 ने माफो के लिये रिडा लिया पर किमी ग नगी जाना कि बंद गया था मर्फी।

दूसरे महापुरुष में जमन की कला मर्फी हुई। अग्रिकर कलाकारों व क्लामिफ सल ने सलिरण हा गये।
 मर्फीम सलिया का गामपी गल्ले हा गई फिर भी जमन अभिव्यञ्जनवादीने जमन अन्नी आन्वित्यन मर्फी मरी। क्लामि
 व अभिव्यञ्जनवादियों का गतिवाला वीस मर। चित्रकला व साथ था सल क्लॉक दिया गया।

मुद्रा की प्रतिविम्बता में भी इनका जलन कर दिया पर फीस मर्फी प्रवृत्ति मानवचरित्र है
 भाति प्रवृत्ति है हमलिये मर्फी हा मरी। अभिव्यञ्जनवाद हर काल में हर देश में जिना चला। यह एक अनन

१ जमन में अभिव्यञ्जनवाद का पण्डित आन्वीयन हि बज गया व साथ पर तथा दूसरे आन्वीयन हि इन सार्वक व
 माय पर चला।

२ कवि नगी की व अभिव्यञ्जनवाद में सलिरणलण्ड अन्वित्यन अमूर्तवाद मान का भय है।



राष्ट्रीय आंदोलन है। वस्तु-रूपात्मकता व निरपेक्षता के बीच का झीना पर्दा हमने उठा दिया। जेम्सन, पोलक, गोर्गी, गोड्लिन, न्यूमेन, क्लाडव, डिकूनिंग, द्वास्काड, माम, फेमिस आदि कलाकार युद्ध के बाद भी हमको जीवित रत्न में सलग्न रहे। इजराइल के कलाकार अरिखा, जायानी कलाकार सुगाई, के मानो, किनो, इमाड व जावो-यू-की की कृतियों में भी यही भावना भरी है। आस्ट्रिया के हण्डर्टनामर जर्मन के वूनिंग, इटली के दोवा व भुरी, स्पेन के टपिक्स व सूर्या आदि की कला में जैली-विभिन्नता होने पर भी अभिव्यजना की पराकाष्ठा दिखाई देती है। इनकी रचि अमूर्त भावाभिव्यक्ति की ओर अधिक है। आद्रे मेसन के भ्रान्तक युद्ध के चित्र भी इसी सीमा में आते हैं। अभिव्यजनवादी कलाकार वस्तु में मार देखने का यत्न करता है। एक अमरीकी कलाकार ने इस कला पर इस प्रकार अपने विचार प्रस्तुत किये हैं—“यदि चित्र में भावनाएँ व्यक्त करने की क्षमता न हो तो उसके विधान की कोई कीमत नहीं है। चित्र रेखाओं, रंगों व आकृतियों का सन्तुलित संयोजन मात्र है, यह कह देना नीरस बात है। अभिव्यजनवाद क्या है—एक तरह की स्वच्छदना, लुब्ध के प्रति विद्रोह। हमारी मौदर्यात्मक भावनाओं को हममें गति व स्वतंत्रता मिलती है अभिव्यजनवाद भौतिक जगत् की कमियों को दूर करता है तथा आदमी को ऊँच विज्ञेय में छुटकारा दिलाता है।”

अभिव्यजनवाद में आत्मिक अनुभूति की मुख्यता रहती है, भौतिक मौदर्य की अभिव्यक्ति गौण। इस कला में आकस्मिकता या निराशा का प्रभाव नहीं पड़ता। यह प्राचीन कला, आदिवासीयों की कला व ग्रामीण कला की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है।

अभिव्यजनवाद जर्मन व बेल्जियम में मूलतः उत्पन्न हुआ था पर विश्वकला के रूप में यह अब भी विद्यमान है। जो स्वप्निल जगत् में घूमना चाहते हैं, जो स्वतः चलित दुनिया में लड़ना चाहते हैं, जो आजादी चाहते हैं उनके लिये अभिव्यजनवाद एक नया सत्कार पैदा करता है।

[illegible]



मानव का स्थितिकरण

पुराण और इतिहास ग्रंथ कहते हैं कि इस अवमर्षिणी (ह्याम) तारु के अतिप्राचीन प्रारम्भिक विभाग की प्रमिद्धि 'भागयुग' के नाम से थी। इसको इतिहासकारों के ग्रन्थों में पाषाणयुग से भी पूर्व का युग कहा जा सकता है। इस युग में मानव, वस्त्राग-भोजनाग आदि दश प्रकार के कल्पत्रयों के द्वारा विविध जीवगोणदोगी वस्तुओं को प्राप्त कर मुख्यान्तिपूर्ण स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करता था। भागयुग समाप्त हो जाने पर उत्पन्न भी लुप्त हो गये थे। तत्पश्चात् तमयुग के प्रारम्भकाल में मानवों का जीवन अमशाय, अव्यवस्थित तथा मरुटमय हो गया। इन विविध परिस्थिति में कमजोर अवनरित प्रतिभुनि आदि चौदह मनु (कुत्तर) मशानुगों ने आवश्यक चामिक तथा नौतिक कन-व्यों का निर्देश कर मानवों के जीवन को व्यवस्थित, शान्त और निर्व्यायोग बनाया। उस समय जब मानवों का सबसे प्रथम भूख-पान के रोगों से ग्रस्त था तब निरन्तरविषम मानव दुग्धिन होने हुए श्रीकृष्णभनाय के निकट गये। उन्होंने स्वयं उत्पन्न इक्षु (गन्ना) के रसपान द्वारा सर्वप्रथम भूख-प्यास को शान्त करने का समाधान दिया। पश्चात् सेर, अनार आदि फलों का अन्वेषण कर शाकाहार द्वारा क्षुधा शान्त करने का आदेश दिया। प्रेमपूर्वक व्यवहार, रहन-सहन भूषा और भाषा का प्रयोग दर्शाया। यह स्थितिकरण आज तक परम्परया चला जा रहा है।

वशों की स्थापना

मानव का जीवन व्यवस्थित और शान्त हो जाने के पश्चात् विवाह की प्रथा या श्रीगणेश हुआ। जब मानव की सम्मान बढ़ने लगी तब श्रीकृष्णभदेव ने व्यक्तियों के संगठन को कुटुम्ब या वंश के नाम से स्थापित किया। सर्वप्रथम श्रीकृष्णभदेव के वंश की प्रमिद्धि 'उड्वाकुवश' के नाम से हुई थी, क्योंकि श्रीकृष्णभनाय ने सर्वप्रथम जनता के कण्ठों को दूर करने के लिये इक्षु-रसपान का अन्वेषण किया था, अतः श्रीकृष्णभदेव का स्मरण इक्ष्वाकु नाम से किया गया और उनका वंश 'उड्वाकुवश' नाम से प्रसिद्ध हुआ। धर्मग्रंथों में प्रमाण है कि "इक्षु उति शब्द अकनीति अयथा इक्षुमारुतीति इक्ष्वाकु" (अहिमावाणी ऋषि पृ० पृ० ३०)। उस वंश का दूसरा नाम सूर्यवंश भी प्रसिद्ध हुआ था। पश्चात् श्रीकृष्णभदेव ने कुटुम्ब की स्थापना कर राजा सोमप्रभ को उत्तरा नायक बनाया। हरिचन्द्र का नायक राजा हरि को, नायवश का नायक राजा अकम्भन को, और उपवश का नायक राजा काश्यप को घोषित किया। इन प्रधान-वंशों की शाखा-प्रशाखाएँ अन्य वंश भी समयानुसार स्थापित होते रहे हैं। उनकी परम्परा आज भी प्रचलित है।

सर्वोदय समाज की स्थापना

वशों की वृद्धि हो जाने में मानवों की समीचीन व्यवस्था सम्पन्न करने के लिये समाज का निर्माण होता है। सर्वप्रथम तीर्थंकर कृष्णभनाय ने वशों का संगठन कर सर्वोदय समाज की स्थापना की। समाज के प्रत्येक सदस्य को मैत्रीभाव, सहयोग और समान व्यवहार करने का उपदेश दिया। मानवों की संस्था में उत्तरोत्तर वृद्धि होने से तत्काल उपस्थित अनेक जटिल समस्याओं का समाधान किया गया। जैसे भोजननिर्माणविधि, वनस्पति का उपयोग, पशुपालन, वर्तननिर्माण, गृहनिर्माण, जलाशयनिर्माण आदि लौकिक मय्यता तथा स्वस्वता, नागरिक कर्तव्य, कुलाचार, संस्कृति आदि धर्मतत्त्वों के उपदेश में मानव-जीवन की यात्रा को सरल, शान्त तथा पवित्र बनाया गया। अतएव कृतज्ञ जनता ने श्रीकृष्णभदेव को "प्रजापति" पद से विभूषित किया।

मानवजीवन को शुद्ध, सुसंस्कृत और सुशिक्षित बनाने के लिये विविध सकारों की रचना की गई और समाज में उनको प्रचलित किया गया। इसके अतिरिक्त समयोपयोगी अन्य आवश्यक साधनों एवं क्रियाओं का निर्माण किया गया जिसमें कि समाज का सर्वांगीण विकास हुआ था। अनेक शताब्दियों के व्यतीत होने पर वह समाज विकृत हो गया है। अब इस युग में पुनः सर्वोदय समाज की आवश्यकता है। राष्ट्र के नेता इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

राष्ट्रों की स्थापना

समाज की रचना होते ही राष्ट्र की आवश्यकता होती है अतः प्राचीन काल में श्रीकृष्णभदेव ने वृद्धिग

समाज का संगठन कर राष्ट्र की स्थापना की। मानवसमाज का राष्ट्र एक बड़ा संगठन है। समाज में समाज का सभा गतिविधि का तथा समाजियों का एकिकरण किया जाता है। राष्ट्र का पूर्ण उत्थान के लिए प्रत्येक नागरिक में राष्ट्रियता का विकास जाना आवश्यक है।

राष्ट्र की परिभाषा

पशुयाग्रहिरण्यसम्पदा राजते इति राष्ट्रेषु ।

(नातिवाचयामत जनपदममुह्यमूत्र-१)

अथानन्तु अतः तथा सुखम् आसीत् समस्तवासिनामापमानं क्षेत्रं वा रक्ष्यं कृतम् । अतः उदाहरणार्थं
 नितीति क्षेत्रं (नीति जन० मू० २) अथान्ता वा क्षेत्रं रक्षाम्ये वा सत्यं और वाग्वी कृतिः अन्ता ३ उदाहरणम्
 कृतम् ।

“नस्य वर्याश्रमस्यस्य” “यातसर्वा प” स्थानमिति उपाद (वीति जन्म मू. १) अर्वा-ना स्थान
 श्रित्य आनि यो म और श्रुत्य आनि वार आश्रमा म विद्यमान मानवा का निवासस्थान, तथा धन का उत्पत्ति
 स्थान हो उरा जनपद बहुत है। य राष् का समव्याप्तम उपाद है। इस राष् का धार्मिक तथा राष्ट्रीय तत्वा ग
 परिपूर्ण मानवी का निवासस्थान कहा गया है।

अयोध्यानगरी का निर्माण

[illegible]

एतीयमान उक्त वामपुत्र म मानवः क निवाससूत्रं गि शा आदि सहाय्य क्यस्याया वा सम्पन्न करत के निवे श्रीकृष्णमेव ते अय्यो न म नगर तेन मव रात । को उपवर्त्ता को । उनम मप्रथम भारत मा त्रिपदा मामहर्षे स्वदीप ज्येष्ठा पुत्र भरत चक्षुर्नो के नाम मे दिया गया ।

तन्नाम्ना भारत वषमिति ह्यासीज्जनास्पन्म ।

हिमाद्ररासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्षुभतामिन्म् ॥१५६॥ आदिपुराण पृष्ठ १५

सर्था-आश्चर्यमय वे ज्येष्ठ पुत्र प्रथम वस्त्री धरन् व नाम ग आयागे व रश्मे वा स्थान पर भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ है जो निमालय से उन्नत दाम्पत्यि जिआमा म तावा आर सपु से वटि न है । यन् यन्धनियः वा क्षेत्र है ।

अन्तोऽप्रसूनोर्नामस्तु ऋषयः प्रसूतोऽपि ।

शुभभावे भरता जग धीर पुत्रगतादर ॥३६॥

श्रीमाह्व दक्षिण वय भरताय पिता ददौ ।

तामात् भारत वर्षे तस्य नाम्ना महाम्भन ॥४१॥—माह्वदपुराण अ ५०

[illegible]

नामे पुत्रश्च ऋषभ, ऋषभाद् भर्तोऽभवत् ।

तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं, भाग्न चेति कीर्त्यते ॥१७॥

—विष्णुपुराण द्वि० अं० अ० १

नव्यज्वात् श्रीऋषभदेव ने अनेक देशों की स्थापना की । जिनमें कुछ प्रसिद्ध नाम उल्लेखनीय हैं—सुग्रीवर, कृत्वागार, उग, वग पुट्ट, उट्ट, उश्मर, न्ययक, कुर, गगी, कर्णिग, ममुद्रर, गधमीर उद्योतर आवन, वल पञ्चाड, मालव, दगारा, मल्ल, मगध विदर्भ, उरहाट महाराष्ट्र मृगाष्ट, आभीर, गोकुण, उन्नाम, आन्ध्र उगीट, गीशर चीन, रेगल, दार, अम्बिका, मौवीर, नृमेन, अरारान् विदर्भ मिन्दु, गान्धार, उवन, वेदि, पल्लव, कम्बोज, आर्य, वाग्मीर, तुलक, शक, मन् केर्य इत्यादि । अहिमावागी ऋषभ षि० पृ० १०

नगरी या नगरी के कुछ नाम - मयुरा नारा नगी राज्जी आक्की गोमाग्दी वागानी चन्द्रगुनी कान्दी-पुन मद्रिदपुन मिद्रपुन चम्पापुन मन्त्रिगपुनी मन्त्रपुन हन्त्रिगपुन नागपुर मिथिला राजगृही मीरपुर कुडलपुर नाग पुग्मिनालपुर इत्यादि ।

मन्त्र की गति के अनुसार इस आरंभ में अनेकों देशों, नगरों तथा ग्रामों की रचना होनी रही और प्राचीन देशों नगरी आदि या विध्वंस भी होना गया । इन इस विश्व की दशा परिवर्तनशील है । वर्तमान में वे देश-नगर आदि परिवर्तित रूप में हैं, और अनेकों का अस्तित्व भी नहीं पाया जाता है । इन में से कुछ के नाम वही हैं, कुछ परिवर्तित हैं और कुछ विनष्ट हो गये हैं ।

राष्ट्रों की राष्ट्रीयता

राष्ट्रों की स्थापना होने पर उनमें राष्ट्रीयता का होना भी राष्ट्र की सत्ता, उन्नति और शान्तिपूर्ण व्यवस्था के लिये अत्यावश्यक है । यह राष्ट्रीयता राष्ट्र का प्राण है । नीतिवाक्यामृत में कहा गया है—“सन्तोष्यरक्षक खराकरद्वयनाश्रनवान् नानिष्टद्वन्निहीनग्रामो धृत्वारविचित्रद्वान्निष्पण्योत्तरेदेवमानक पशुमनुष्यहित श्रेणिसूत्रकपञ्चप्राय इति जनपदस्य गुणा ” (जनपदमसुहेग—सू०८)

अर्थात्—राष्ट्र के गुण (राष्ट्रीयता) इस प्रकार हैं (१) राजा देश का रक्षक और देश राजा का रक्षक हो । (२) सुवर्ण आदि धातुओं की तथा गन्धक, नमक आदि द्रव्यों की खानों में युक्त हो । (३) रक्षा आदि वन तथा झर्रा आदि पशुओं में परिपूर्ण हो । (४) न अन्वयिक और न अति कम जनसंख्यापूर्ण ग्रामों तथा नगरों में घोषित हो । (५) उत्तम पदार्थ, अन्न-सुवर्ण और व्यापार योग्य वस्तुओं में परिपूर्ण हो । (६) मेघजल की अपेक्षाहीन कृषिवाला हो अर्थात् रूढ़, विद्युत्तम्प आदि पशुओं में कृषिकार्य वाता हो, (७) मानव तथा पशुओं को मृदुदायक हो । (८) कलाकार, कानीगर, धर्मिक, कृषक और विद्वान् व्यक्तियों में घोषित हो ।

राज्य की परिभाषा

राष्ट्र की एकता, व्यवस्था, रक्षा और उन्नति का न्यायनीतिपूर्ण राज्य एक प्रबल आधार है । राज्य सर्व-भीम होता है । “राज पृथ्वीपालनोच्चिन्तनं कर्म राज्यम्” (नीतिवा पृ० ६३ सू०४)

अर्थात्—राज्य के पृथ्वी की सुरक्षा एवं उन्नति के योग्य कर्म (सन्धि विग्रह या न आनन मन्त्रय द्वैधीभाव) को राज्य कहते हैं । श्रीऋषभनाथ ने राज्य का आविष्कार करते हुए स्वयं राष्ट्र का शासन बनकर सर्वप्रथम न्यायपूर्ण राज्य का आदर्श उपस्थित किया था । उन्होंने अपने राज्य में सुरक्षा शान्ति न्यायविवि (कानून), स्वास्थ्य, शिक्षा, उद्योग, आवागमन, व्यापार, समाजकल्याण, पशुपालन, वनस्पतिविज्ञान आदि के आविष्कार द्वारा हनदुग का वातावरण प्रारम्भ कर दिया था । इनके अतिरिक्त उन्होंने समाज में शासन करने योग्य मानवों को अधिवर्ग, अध्विद्या एवं कृषिकला में प्रवीण मानवों को वैश्यवर्ग और धर्म तथा शिल्पकला में प्रवीण मानवों को प्रजावर्ग के नाम से विभाजित कर उनको अपने कर्तव्यों पर नियुक्त कर दिया था । अपना राज्यकाल

३ कृषिविज्ञान

हल आदि कृषि के साधनों का प्रयोग, क्षेत्र की सुरक्षा, बैल आदि पशुओं का उपयोग, बीज का वपन, अन्न का उत्पादन, इक्षु का उत्पादन, फल शाक आदि वनस्पतियों का उत्पादन, उद्यानों का निर्माण, वृक्ष तथा जलाशयों का निर्माण, लतागृह इत्यादि ।

४ विद्या (कला) का आविष्कार

पुस्तक की वह उत्तर कलाओं का पुस्तकमाला में प्रचार एवं प्रसार होने में राष्ट्र की उन्नति होती है । लेखन, गणित आदि से लेकर अनुकूलित पर्यन्त वह उत्तर कलाएँ हैं ।

श्रीआदिनाथपुराण के अनुसार कुमारी ब्राह्मी और सुन्दरी ने अपने पिता ऋषभदेव में नारियों की चौमठ-कलाओं का शिक्षण प्राप्त कर महिला समाज में उनका प्रचार किया था । वर्तमान युग में भी नारियों को सुशिक्षित बनाना आवश्यक है यत नारीसमाज, मानवसमाज का प्रमुख अंग एवं नमभाग है ।

५ वाणिज्यकर्म

राष्ट्र तथा समाज की उन्नति के लिए और मानव के जीवननिर्वाह के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है तथा अर्थ की पूर्ति या आर्थिक उन्नति प्रायः वाणिज्य एवं व्यापार में होती है । अतः गृहस्थ को न्याय-पूर्वक व्यापार तथा वाणिज्य करना चाहिये । राजकीय मुद्रा (निका) व्यापार का एक सरल माध्यम है, मापतौल के साधन भी माध्यम हैं । अतः शासन के अनुकूल उनका उचित व्यवहार और प्रयोग करना आवश्यक है ।

६ शिल्पकर्म

राष्ट्र की उचित व्यवस्था और मानवसमाज के जीवनव्यवहार के लिए शिल्पकर्म की आवश्यकता है । शिल्पकला अनेक प्रकार की होती है, जैसे कुम्हार की कला, लोहार की कला, रथकारकला, चित्रकला, वस्त्रकला, नाई की कला, गृहनिर्माणकला, मूर्तिकला, कुटीर उद्योग इत्यादि । वर्तमान में वैज्ञानिक कला, तथा यन्त्रों का भी आश्चर्यजनक आविष्कार हुआ है जो प्राचीन शिल्पकला का ही विकास है । इसमें राष्ट्र तथा समाज की उन्नति होती है ।

धार्मिकता के विकास के साधन

कर्मयुग में जिस प्रकार राष्ट्रीय लौकिक उन्नति के लिए असि भस्मि आदि छह कर्म कहे गये हैं उसी प्रकार आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी भ० ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों द्वारा छह साधन—पट्कर्म दर्शाये गये हैं । वे इस प्रकार हैं—

देवपूजा गुरुपारित न्वाध्याय संयमस्तप ।

दान चेति गृहस्थानां पट्कर्माणि दिने दिने ॥

अर्थात्—(१) जीवन्मुक्त आत्मा (अरिहन्त) एवं परमात्मा (मिद्ध) के गुणों का ध्यापूर्वक स्मरण करना । (२) मच्चरित्र आचार्य, उपाध्याय, माधु तथा विद्वान् गुरुओं की सगति में रहकर शिक्षा और सदाचार प्राप्त करना । (३) न्वाध्याय (शिक्षाप्रद ग्रंथों का अध्ययन) करना तथा लेख कविता पुस्तक आदि के रूप में साहित्य का निर्माण करना । (४) मयम अर्थात् इन्द्रियों तथा मन पर विजय प्राप्त करने का अभ्यास करना और समस्त प्राणियों की सुरक्षा का यथा-शक्ति प्रयत्न करना । (५) तप-ब्रोध, मद, छल, वृष्णा इन चार विकारों को त्यागकर ब्रह्मती हुई इच्छाओं को रोकने के लिए अन्नघन एकाग्र रसत्याग आदि नियमों की साधना करना । (६) दान या त्याग-द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार आवश्यक खाद्य वस्त्र, ज्ञानप्राप्ति के साधन ग्रंथ आदि, रोगविनाश के साधन औषध आदि, प्राणिरक्षा के साधन गृह

धर्म-तत्त्वों का त्याग करना) परोपकार करना सेवा करना आत्मन-याग का यह धार्मिक तत्त्वों का पालन करना ।

धार्मिक तत्त्वों के साथ राष्ट्रीय तत्त्वों का समन्वय

राष्ट्र में राज्य का संचालन राजा या शासक होता है । राजा वह है जो धार्मिक एवं राष्ट्रीय भावों का निर्विरोध समीकरण कर मानवसमाज एवं प्राणिमात्र को निम्न-मुक्तों सात और व्यवस्थित कर दे अपने राज्य का सायबुद्ध रामराज बनाए । राजा का उद्देश्य इस प्रकार बना गया है—

प्रतिपत्तप्रयमानम परे ब्रह्मणि निष्पातमतिरुपासितगुरुकस सम्यग्विद्यायामपीतो कीमारवपीलवृचन
सत्रपुत्रो मय त दद्या — नीतिवाचसामत

अर्थात्—ब्रह्मचर्याधमप्रविष्ट स्वरभक्त ब्रह्मचारी गुरुकुल का उपामक सबलराजविद्याभ्यास गुरुराज श्रिययुक्त राजा ब्रह्मा के समान गौरवपाणी का जाता है । यदि शासक का आत्मा में धर्म सत्त्व और राष्ट्रीय तत्त्वों का समीकरण रूप भावना है तो प्रजा के भाग्य की सहस्रपुत्र भावना रहती है जिससे राज्य में और अन्तर्राष्ट्र में शांति तथा धर्म का शासन जीवित रहता है । धर्ममूलक शासन ही रामराज के नाम से प्रसिद्ध है । वर्तमान में राज्य के नेताओं को इधर ध्यान देना चाहिए ।

प्रथम तीर्थकर श्रुपभवेद वसयुत न प्रथम समन्वयकांशो धामवध । इस विषय में महर्षि समतमशाचाय का वचन है—

प्रजापतिय प्रथम जिब्रीषिषु गणास कृष्यादपु वसमु प्रजा ।

प्रमुदतरस पुनरभुतोदयो धमरक्तो निविचरे विदावर ॥२॥

—यहस्ययम्भूतोत्र श्लोक ९

अर्थात्—प्राणिजीवन के संरक्षक जिन ऋषयः ने प्रजा के त्रिषु विषु आदि पदकर्म का उपदेश दिया पश्चात् विवाहपुत्रि में विचरे व तत्त्वों का परिपालन प्राप्त कर क्षणिक भवसे मोक्ष का त्याग कर दिया था ।

साल्त्वे तीर्थकर ध्यागतिताय का समन्वयवाद इस भाँति है—

चक्रण य शत्रमयकरीष जित्वा तप सधनरेद्वचकम ।

समाधिचक्रण पुनर्जिगाय महोदयो दुजयमोहवचम ॥७७॥

—यहस्ययम्भूतोत्र श्लोक ७७

सारान्-भगवान् प्राणितानां न गज्जा को भयदद शासनचक्रं स विराडो राजसमूह को जानना का पञ्च आत्मध्यान रूपी चक्र में साधारण जना के लिये अवयव मोहक चक्र का ज्ञान दिया था ।

इस प्रकार चौबीसा तीर्थकरों के जीवन में धर्मनस्त्व और राष्ट्रीय तत्त्व का जीवन और मुक्ति का सा प्रतिष्ठ और निर्मल का समन्वय समतापत्र सिद्ध होता है ।

जो शास्त्रिय मग मय के लिए जो मन्त्रवाचना या शांतिप्राप्त करना आवश्यक कहा गया है उनके कुछ दशांग पर दृष्टिमान काजिय—

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां धनीद्रव्यामायतपोयमानाम् ।

देहस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राम करोतु धान्ति नमवान् जिनेन्द्र ॥६॥

—शांतिपाठ श्लोक ६

अर्थात्—परमात्मा के सांगत्य का नानासा धामना कर रहा का आचार एवं साधुजन को जीवन में शांति प्राप्त हो तथा राष्ट्र में समर को एवं दान के राजा को समर्पण का प्राप्ति हो ।





क्षेम सर्वप्रजानां प्रभवन्तु बलवान्धार्मिको नृमिपालः

काले काले च सम्यक् विकिरतु मधवा व्याधयो यान्तु नाशम् ।

दुर्भिक्ष चौरमारी क्षणमपि जगता मास्म भूज्जीवलोके

जैनेन्द्र धर्मचक्रं प्रभवतु सतत सर्वसौख्यप्रदायि ॥७॥ शा० पा०

जिनेन्द्र अर्चा के प्रभाव में विश्व के मानवों का कल्याण हो, धामध्वर्ग न्यायी, धार्मिक एवं प्रबल हो, मम पर उचित जलवृष्टि हो, रोगों का नाश हो, राष्ट्रीय में दुर्भिक्ष चोरी डकैती कभी न हो, मक्रामक रोग प्लेग, कालरा आदि का प्रसार न हो और विश्व में शान्तिप्रद अहिंसा मत्त आदि मिद्वान्तों का चक्र भदैव चलता रहे ।

प्रध्वस्तधातिकर्माण केवलज्ञानभास्करा ।

कुर्वन्तु जगत शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वरा ॥८॥ शा० पा०

अर्थान्—कर्ममलरहित, केवलज्ञान में तेजस्वी, ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकर विश्व को शान्ति प्रदान करें ।

धार्मिकता और राष्ट्रीयता के नामजस्य के विषय में वैदिकग्रन्थों का समर्थन निम्न प्रकार है—

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्ट पुष्ट सुधार्मिक । निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षनयवर्जित ॥

नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च । नित्यं प्रमुदिता नवै यया कृतयुगे तथा ॥

—मूलरामायण श्लो० ६०-६३

भाराम—श्रीरामचन्द्र के राज्य में मानव हृष्ट-पुष्ट मनुष्य धर्मात्मा मानसिक तथा शारीरिक रोगों में रहित और अकाल के भय से रहित थे । ग्राम, नगर और राष्ट्र धनधान्य आदि में परिपूर्ण थे । मध प्राणी मत्तयुग के समान त्रेतायुग में भी आनन्दित थे ।

शीलेन हि त्रयो लोका शक्या जेतु न संशय ।

न हि किञ्चिदसाध्यं वै, लोके शीलवतां भवेत् ॥१५॥

एकरात्रेण मान्वाता, त्र्यहेण जनमेजय ।

सप्तरात्रेण नाभाग पृथिवीं प्रतिपेदिरे ॥१६॥

एते हि पार्थिवास्तर्षे, शीलवन्तो दयान्विता ।

अस्तेषां गुणक्रीता, वसुधा स्वयममानता ॥१७॥

—महाभारत-शीलनिरूपणाध्याय

भावार्थ—शील (श्रेष्ठ स्वभाव, अहिंसा, आदि) में तीन लोक के राज्य पर भी विजय प्राप्त हो सकती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है । शीलवान् पुरुषों को लोक में कोई वस्तु या कार्य असाध्य नहीं है । राजा मान्वाता ने एक दिन में, जनमेजय राजा ने तीन दिन में और नाभाग नृप ने सात दिन में पृथिवी का राज्य प्राप्त कर लिया था । ये सब राजा शीलवान् और दयालु थे इसलिये अपने गुणों के द्वारा उन्होंने पृथिवी का राज्य विजेष प्रयत्न के बिना ही प्राप्त कर लिया था ।

प्रजानां विनयावानाद् रक्षणाद् भरणादपि । स पिता पितरस्ताता, केवल जन्महेतव ॥

स्थित्यैर्दण्डयतो दण्ड्यान् परिणेतु प्रसूतये । अप्यर्थकामी तस्यास्ता धर्म एव मनीषिण ॥

—रघुवंश प्र० म० श्लो० २४-२५

अर्थात्—प्रजा को नम्रता मदाचार आदि की शिक्षा देने में, आपत्तियों में रक्षा करने में और जन्म-जन्म आदि के द्वारा पालन करने में राजा दिलीप ही वास्तव में प्रजा का पिता था । प्रजा के पिता तो केवल जन्मदाता ही थे ।

चालुख्यवशी - कीर्ति वर्मा, विजयादित्य आदि १६ महाराजा । राठौरवशी—मन्नाट्—अमोघवर्ष, साहमतुग, कृष्ण-राज आदि ६ नृप । मोलकी वीर—भीम, कर्ण, सिद्धराज, कुमारपाल आदि । परिहारवशी—राजा भोज, तोमर कीर्ति-मिह ग्वालियर । परमारवशी—राजा भोज, शुभचन्द्र, यशोवर्मा । वुन्देल वीर—महाराज छत्रमाल आदि । ब्रह्मक्षत्रवशी महाराज चामुण्डराय आदि । राजस्थान के वीर—दानवीर भामाशाह, विमलशाह तोलाशाह, कर्माशाह, आशाशाह, दयालदास, करमचन्द्र आदि । (वीर-जैनवीराक, वर्ष ११)

आधुनिक समस्याओं का समन्वय-आत्मक समाधान

वर्तमान राष्ट्रो के समक्ष आज कुछ जटिल समस्याएँ हैं जिनका पूर्ण समाधान करने में सभी राष्ट्र उलझे हुए हैं । अभी तक उनका कोई समुचित समाधान नहीं प्राप्त हो रहा है । विषय की और विशेषतया भारतीय समस्याओं का समाधान धर्म-नस्त्वों और राष्ट्रीय तत्त्वों के उचित समन्वय से ही सम्भव है । किन्तु इस तथ्य को भुलाया जा रहा है । आधुनिक लोग विज्ञान को वरदान मानकर उन्नी के सहारे इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु जिस विज्ञान ने समस्याओं को उलझाया है वही कैसे सुलझा सकता है ? हम यहाँ कुछ समस्याएँ और उनका समन्वय-आत्मक समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे हमारा आशय अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है—

| क्रम | राष्ट्रीय समस्याएँ | समन्वय-आत्मक समाधान |
|------|---------------------------|--|
| १, | जनसंख्यावृद्धिनिरोध | ब्रह्मचर्यव्रत, सयम, श्रृंगारत्याग, परिवारनियोजन । |
| २ | अन्नोत्पादन | शाकाहार, शुद्धाहार, एकाशन, उपवास, कृषिकला, यन्त्रप्रयोग, वनस्पति उत्पादन, पशुरक्षण आदि । |
| ३ | देशरक्षा | पराक्रम, मैत्रीभाव, पचशील, शान्तिसेना, मैनिकशिक्षा । |
| ४ | मुवर्णनियन्त्रण | परिग्रहपरिमाण, सन्तोष, आभूषणश्रृंगारत्यागादि । |
| ५ | विष्वमुद्वशान्ति | अहिंसा, सत्य, नि शस्त्रीकरण, मदलोभत्याग, आदि । |
| ६ | साम्प्रदायिकतानिरोध | अनेकान्तवाद, स्याद्वाद, समता, क्षमा, सहयोग । |
| ७ | समाजमुधार | साम्यभाव, सर्वोदय, धार्मिकशिक्षा, मित्रता, सेवा । |
| ८ | दहेजप्रथानिरोध | आदर्श धार्मिक विवाह, सामूहिक विवाह सहयोगादि । |
| ९ | चोरी डकैतीनिरोध | अचौर्याणुव्रत, शिक्षा, उद्योग, सन्तोष, समाजवाद । |
| १० | भ्रष्टाचार, धूमखोरी निरोध | सदाचार, सत्य सन्तोष, मेवा, अनुशासन, न्यायादि । |
| ११ | मुण्डाशाही निरोध | सदाचार, मूलगुणसेवा, व्यसनत्याग, दया, शासनसहयोग । |
| १२ | मामाहार-मद्यनिषेध | शाकाहार, मूलगुणसेवा, व्यसनत्याग, उच्चविचार, दया । |
| १३ | बेकारी, गरीबी निरोध | अर्थशिक्षण, कुटीरउद्योग, हस्तकला, क्राफ्ट, समयोपयोग, मितव्ययिता । |

उपसंहार

कला बहत्तर पुरुष की तामे दो सरदार ।

एक जीव की जीविका दूजे जीव उद्धार ॥१॥ —कविवर छानतराय

आत्मा की उन्नति धार्मिक तत्त्वों से और जीवन की उन्नति राष्ट्रीय तत्त्वों से होती है । ये दोनों विद्याएँ मन्त्र कलाओं में श्रेष्ठ हैं । धार्मिकता और राष्ट्रीयता की उन्नति एकांगी पुरुषार्थ से सम्भव नहीं है । उक्त दोनों तत्त्वों का समन्वय-रूप पौरुष ही उन्नति का प्रबल साधन है । उसी की जीवन में आवश्यकता है । वह सर्वांगीण पुरुषार्थ ही व्यक्ति, समाज और विश्व के विकास, तथा उत्कर्ष का नेता है ।



किन्तु यदि दोनों एक-दूसरे की आवश्यकता एवं सुखसुख या ध्यान करने हैं तो वह प्रेम का रूप ले लेता है। ऐसी स्थिति में दोनों की दृष्टि अपने-अपने अधिपति या छोड़कर तत्त्व पर रहने लगती है। उहाँ स्त्री और पति, छोटे और बड़े की भावना समाप्तप्राय हो जाती है।

नीमरा प्रसार प्रेममूलक सम्बन्धता है। उनमें व्यक्ति या ध्यान अपने तत्त्व की दृष्टि पर निर्दिष्ट रहता है। वह व्यक्ति ने अधिक देना चाहता है, किन्तु बंदने में कुछ नहीं मागता। प्रेमपात्र का सुख ही उसका सुख हो जाता है और प्रेमपात्र की प्रसन्नता उसकी प्रसन्नता बन जाती है। पिता एवं विनिमयमूलक पदार्थों में पद-पद पर कदुना एवं समस्याएँ पड़ी होती रहती हैं। किन्तु यहाँ वे अपने-आप समाधान योग्य होती हैं। इसका ही नहीं कष्ट भी सुख देने लगते हैं। उद्देश्य मनोज्ञ बन जाती है और मर्म हीनता का रूप ले लेता है।

जब हमारा आदर्श व्यक्ति के प्रति होता है तो उसे प्रेम कहा जाता है। और जब दूसरे की आवश्यकता, नकट या ज्ञान को ध्यान में रखकर कुछ किया जाता है तो उसे परोपकार कहते हैं। प्रेमपात्र का सहाय प्रवृत्ति लगता है। अधिपति प्रयत्न इसी रूप से उद्यम में व्यस्त रह जाते हैं, किन्तु परोपकार में वह दृष्टि भी नहीं रहती।

बोधो की महाप्राप्ति याता में परोपकार के स्थान पर अपना शब्द आया है। उहाँ इसकी तीन श्रेणियाँ बताई गई हैं।

(१) स्वार्थमूला—जहाँ प्रेम या महाप्राप्ति का आधार सामाजिक या समाजिक स्वार्थपूर्ण होता है, उसे स्वार्थ-मूला कहा जाता है। माता-पिता पालन का पालन उन आमा से करते हैं कि वह उन्हें भविष्य में सुख देगी। पति-पत्नी यदि का संबंध भी प्राण में इसी प्रकार का होता है।

(२) महत्तुली—उसका अर्थ है वैयक्तिक स्वार्थ न होने पर भी दूसरे की हानि में देखकर उसकी महाप्राप्ति करना। हम किसी व्यक्ति को रोग, श्वाभय या अन्य कष्ट के कारण दुःखी देखने में आता है। उसका नाशान्तर हमारी चेतना में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न कर देता है और उस धैर्यहीन को दूर करने के लिए हम उसकी सहायक महाप्राप्ति करते हैं। हम यह अनुभव करते हैं कि हमारा प्रयत्न किसी के कष्ट को दूर या न्यून करने में सहायक सिद्ध हुआ। यह अनुभूति मार्मिक सुख प्रसार करती है। उस दशा या उत्साहपूर्णता का जन्म दूसरे के कष्ट में होता है। इसीलिए इसे महत्तुली कहा जाता है।

(३) अहेतुकी—जहाँ परोपकार का आधार न कोई स्वार्थ होता है और न दूसरे का कष्ट, उसे अहेतुकी कृपा कहा जाता है। उसकी उपमा वाद्यों में दी जाती है। वे मर्मय वरमते हैं। उन ध्यान का विवेक नहीं करते कि यह मुझी सम्भूमि है, हरा-हरा बन या समुद्र। वरमना उनका स्वभाव होता है। भगवान् बुद्ध की कृपा इसी प्रकार की बताई गई है। दूसरे के उद्धार के लिए प्रयत्न करना उनका स्वभाव होता है। इसके लिए वे पात्रापात्र का विवेक नहीं करते।

बौद्ध साधना में इस पारमिताएँ बताई गई हैं। पारमिता का अर्थ है उत्कृष्टता। बोधिमत्त्व अर्थात् वह व्यक्ति जिसके मन में बुद्ध बनने की भावना जाग उठी है, अपने जीवन में गुणों का संचय करता है। प्रत्येक गुण अपनी चरम अवस्था में पहुँचकर पारमिता बन जाता है। सबसे पहली दानपारमिता है। उसकी तीन शर्तें हैं—

(१) बोधिमत्त्व अपना सर्वस्व दूसरे के हित में लगा देता है, अपने लिए कुछ नहीं रखता। धनसंपत्ति ही नहीं अपने शरीर एवं मुख को भी दूसरों का कष्ट मिटाने के लिए अर्पित कर देता है। बुद्ध के लिए कहा जाता है कि बोधि प्राप्त कर लेने पर उनमें साधारण दुःखों से हृष्टकारा प्राप्त करने की योग्यता आ जाती है। निर्वाणद्वारा वे समस्त वधनों से मुक्त हो सकते हैं। फिर भी उस निष्क्रिय अवस्था को स्वीकार नहीं करते। उनके मन में यह भावना जागृत होती है कि जब तक दूसरे प्राणी दुःख भोग रहे हैं, मैं मुझी कैसे हो सकता हूँ। दूसरे के दुःख को ही वे अपना दुःख मान लेते हैं और उनके लिए निर्वाण हो स्थगित कर देते हैं और जानबूझकर जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं।

(२) दान पारमिता का दूसरी गति है स्वयं से कुछ न चाहना । वहाँ ऐसा ही स्वाय बन जाता है ।

(३) तीसरी गति है शेष की समीक्षा । बाधित स्वयं अपना सर्वस्व अर्पित करने समर्थ होन की मर्यादा नहीं करता । प्रत्येक प्राणी स्वयं ज्ञान का अधिकारी होता है ।

दानपारमिता का इसा स्वयं का पूरा माधना कहा जाता है । अर्थात् माधन अपने आपको पूरा से मिता देना है । वास्तव में मनी तथ्य दूसरे माधन से उत्पन्न किया जाता है । वहाँ स्वयं इतना विस्तृत हो जाता है कि परस्पर नहीं रहता । स्वयं और परस्पर का भेद समाप्त हो जाता है । सभी स्थिति में अर्थ का भेद ही नहीं रहता । बल्कि इतना ही अर्थ है कि समस्त प्रवृत्तियों का वर्णन एक ही होकर सबकुछ स्वयं हो जाता है ।

भक्त हरि न मनुष्या को पार काटिवा म विभक्त किया है—

१ सत्पुरुष—वे माधन जो स्वाय छोड़कर दूसरे का प्रतिमाधन करता है ।

२ सामान्यजन—जो स्वाय का शक्ति न पटुवान हूँ परहित-माधन करता है ।

३ मानव राजा—जो स्वाय का शक्ति दूसरे का हानि पटुवाने है ।

४ पशु राजा—जो निज स्वाय का दूसरे का शक्ति पटुवान है ।

भक्त हरि न चौकी काटि का शक्ति काई नाम नहीं दिया । एवम्यत्तियों का शक्ति का न जानीमह बलवान् छाड़ दिया है ।

उपरांत पार काटिवा म न प्रथम दो परोपकार में आता है और सतिम दो स्वाय या परस्पर में । इनका साथ एक शक्ति और चौकी का सफाई है और वह उन लोगों की है जो स्वयं हानि उत्पन्न भी दूसरे को हानि पटुवाना चाहते हैं उन्हें उचित शासन कहा जायेगा ।

अहिंसा की दृष्टि से परोपकार की भूमिकाएँ

अहिंसा या शिवा के आधार पर भी परस्परकार का वर्णन किया जा सकता है । शिवा के तीन आधार हैं—

(क) स्वायशक्ति—जिसे स्वाय से प्रेरित पार दूसरे का हानि पटुवाना ।

(ख) क्रूरता—स्वाय न होने पर भी दूसरे का हानि पटुवाना ।

(ग) अवशय—हिंसा का अवशय या निरवशय होना ।

(१) शिवा का दृष्टि से निम्नतम भूमिका उन व्यक्तियों का है जो स्वयं हानि उत्पन्न भी दूसरे का हानि पटुवाना चाहते हैं । उनका वास्तविक ज्ञान ही नहीं है कि दूसरे का शक्ति म दायकर आनन्द पालता है । अतः निज स्वाय का न होने पर भी दूसरे को हानि पटुवाना चाहते हैं । इनका ही नहीं उग्र शक्ति हानि उत्पन्न की भी तयार रहते हैं । यह या दृष्टि उनका ज्ञान का अविभाज्य बन लेता है । ऐसी स्थिति का निमित्त या उचित कहा जायेगा । उनकी चिकित्सात्मक मर्यादा सुप्त हो जाता है । दूसरे को हानि तो दूर रही वे अपना शक्ति भी नष्ट कर देते ।

(२) दूसरी शक्ति उन व्यक्तियों का है जो प्रयोजन के हानि पर भी दूसरे का हानि पटुवाना चाहते हैं किन्तु ज्ञान शक्ति स्वयं हानि उत्पन्न का तयार नहीं है । एवम्यत्तियों का शक्ति हानि पर भी ज्ञान का मर्यादा नहीं होता । दूसरे का शक्ति दायक उनका मर्यादा होता है कि तु इसका शक्ति स्वयं शक्ति नहीं उत्पन्न पालता ।

(३) तीसरी शक्ति उन व्यक्तियों का है जो दूसरे को निज स्वाय शक्ति नहीं पटुवान किन्तु स्वाय का शक्ति निरवशय हो पर भी हानि पटुवान में नहीं शक्ति । एवम्यत्तियों का शक्ति ज्ञान ही है । उनकी चिकित्सात्मक मर्यादा नहीं है । शक्ति प्रवृत्ति में उग्र भी प्रवृत्ति रहती है ।





(४) चौथी कोटि उन व्यक्तियों की है जो स्वार्थ या प्रयोजन होन पर भी निरपराध को हानि नहीं पहुंचाते किन्तु अपराध का बदला लेना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। जैन दृष्टि में यह भूमिदा श्रावक की है जो मध्य नागरिक होता है।

(५) पाचवी कोटि उन व्यक्तियों की है जो अपराधी को भी धमा कर देने हैं।

(६) छठी कोटि उनकी है जो अपराधी के कल्याण की कामना करते हैं किन्तु उनके लिए स्वयं हानि उठाने को या स्वार्थ छोड़ने को तैयार नहीं होते।

(७) सातवी कोटि उनकी है जो स्वयं हानि उठाकर भी दूसरे का कल्याण करना चाहते हैं।

स्वार्थ एवं परोपकार तथा उनके तारतम्य का निर्णय नीचे दिये चार तत्वों में होता है

(१) क्षेत्र की व्यापकता

(२) त्याग-वृत्ति

(३) उद्देश्य की परिश्रिता

(४) परिणाम की मंगलमयता

१. क्षेत्र की व्यापकता

पर-हित का क्षेत्र जितना व्यापक होगा परोपकार में उतनी ही उत्कृष्टता आती जायगी। जब वही क्षेत्र बढ़ते-बढ़ते अखिल विश्व तक पहुंच जाता है, तो परमार्थ बन जाता है। उनका प्रारम्भ कुटुम्ब में होता है, प्रथम व्यक्ति जब निजी सुख-दुःख एवं इच्छाओं को भूल कर उन्हें अपने परिवार के सुख-दुःख के साथ मिला देता है, परिवार के मुख में सुखी तथा उसके दुःख में दुःखी होने लगता है, वह परार्थ की ओर पहला कदम है। मानवशान्त्रियों का कथन है कि मनुष्य में इनकी भी परोपकार वृत्ति न होती तो वह कभी का नष्ट हो गया होता। उसने वह पाठ जीवन एवं अस्तित्व के रक्षण के लिए मघपं करने हुए सीखा है। अतः त्यागवृत्ति के न्याय पर स्वार्थ की भावना अधिक है।

परिवार ने आगे बढ़कर मनुष्य वंश या कुल तक जाता है। पुरानी अनभ्य जातियों में अपने वंश या कुल तक तो परम्पर परोपकार एवं महानुभूति की भावना रहती थी, परन्तु उस परिधि में बाहर उल्टीउन की। परिणाम-स्वरूप विभिन्न कुलों में परम्पर युद्ध होने लगे थे और विजेता कुल विजित कुल को समाप्त कर देता था। इस प्रकार का परोपकार कुल-धर्म होने पर भी आध्यात्मिक धर्म या पुण्य की कोटि में नहीं आता, क्योंकि वह क्षेत्र की दृष्टि में सकुचित तथा परिणाम की दृष्टि में अमंगल है।

कुलों में आगे बढ़कर मनुष्य ने जाति, धर्म, राष्ट्र या ऐसी अन्य परिधियों तक परोपकारी और उनके बाहर स्वार्थी बनकर रहना सीखा। यहूदी धर्म में पाप और पुण्य की परिभाषा भी इसी प्रकार है। एक यहूदी यदि दूसरे यहूदी पर अत्याचार करता है, तो वह पाप है, किन्तु उस परिधि के बाहर किसी को लूटना-मारना, स्त्रियों पर बलात्कार करना या अन्य किसी प्रकार अत्याचार करना पाप नहीं है। ईसाई तथा मुसलमान धर्मों ने मिथ्यान्त रूप में तो विश्व-व्युत्पत्ति को आदर्श माना, किन्तु व्यवहार में अपने-अपने धर्म की परिधि से बाहर अत्याचार करने में पाप नहीं माना। आर्यों ने भी प्रारम्भ में भारत के आदिवासियों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया। भारत में धर्म की परिधि का प्रभाव अभी तक विद्यमान है। राष्ट्रीय परिधियों का प्रभाव तो सारे विश्व को घेरे हुए है और वही विभिन्न राष्ट्रों में गुटबंदी, परम्पर भय एवं युद्ध की विभीषिका का कारण बना हुआ है।

क्षेत्र की दृष्टि में परोपकार का सर्वोत्कृष्ट रूप विश्व-मैत्री है। उपनिषदों ने समस्त चराचर-जगत का आधार-भूत एक तत्त्व बताया और प्रत्येक व्यक्ति ने कहा—तू वही है (तत्त्वमसि)। इस प्रकार मार्बनीय एकता का संदेश दिया। बौद्ध एवं जैन-परंपरा ने उसी तत्त्व को विश्व-मैत्री के रूप में उपस्थित किया। ईशानापीठ का जो संदेश पर्वतीय प्रवचन

(Sermon on the mount) में मिला है वह भी इसी काटि का है। बुद्ध मन्वीर ईशमसीह आदि कुछ विरहे पुण्यों ने उस महान् आत्म का जीवन में कर भी बनाया।

धर्मविशालके साथपरंपरा १८ तथा उपासना होता जाता है। किन्तु स्वाध्याय विमल गन्धर्व होता जाता है। प्राचीन समय में तमूल्गण आदिगणों के अति बल से जाततामिसा में वापन रूप से पुनर्मात्र का और विश्व के लिए अमंगल बने। जब यक्षित की पाण्डित्य हृष्टि ता धर्म का समर्थनमिष्ट जाता है तो वह और भी कुरहा जाती है। यम मुद्र के नाम में मसार में जो अत्याचार हुए हैं वे इगका उदाहरण हैं। यहाँ स्वाध्याय का आभ्यास जानने की आवश्यकता है। जो तब भौतिक आवश्यकताओं या साधारण आकांक्षाओं की पूर्ति का प्रश्न है उह स्वाध्याय कहा जा सकता है। किन्तु अब यक्षित का उद्देश्य किन्ता सब सीमाओं का पार कर अनन्त बन जाता है जब वह कंचन अपना आत्म जमान दूसरा पर प्रभुत्व स्थापित करने दूसरा के आधारित अधिपार को छीनने के लिए अत्याचार करता है तो वह स्वाध्याय की सीमा में नष्ट रहता और मल हरि द्वारा प्रणिपन्नित चौरी काटि में आता है। अमरीका ने हिरोनिमा तथा नागामाका पर अणु बम गिराकर जो लाखों निर्दोष ब्रह्मियों को मराने का इच्छा की थी इसी काटि में रखा जायेगा। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मत है कि जापान उससे बचना हो पराजय स्वीकार कर चुका था किन्तु अमरीकी बला निव और रानोनिज अपने गए आदिपार का प्रयोग करना चाहते थे इससे किन्तु उहाने एक पराजित राष्ट्र का पुना जिसका जीवन का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य न था।

ह्यामवति

परोपकार का दूसरा तत्त्व 'याग' हृष्टि है। अपने मुख तथा स्वाध्याय को छोड़ने की मानना जितनी प्रबल होगी परोपकार उतना ही उच्च कोटि का माना जायेगा। विभिन्न धर्मों में त्याग का उपदेश दिया गया है। साथ ही बल का प्रयोग भी। इस जन्म में दान करने से अगल जन्म में सबको गुनाघन प्राप्त होगा। अतः जन्म में दान योग्य का ह्याग करने से ह्याग में अन्तराए मिलेंगे। अन्तरा में बसाया गया है—एक जन्म में सन्निवापन न करने से बर्हि मिलेगा जन्मों पराव का निया बहुत दूर है। परोपकार में स प्रकार के त्याग को बलिदान कहा है। यह एक प्रकार का 'यापार' है जहाँ बाँधी पूँजी गणक अधिप पूँजी प्राप्त करने की आशा की जाती है। परोपकार में ह्याग के लिए ह्याग दिया जाता है। य अर्धे-अर्ध में गुप्त है। उभय सांत्विक आनन्द की हृष्टि होना है। मनुष्य दूसर के लिए ह्याग करते-करते जब चरम सीमा पर पहुँच जाता है तब सब कुछ त्याग देता सब कुछ पर हो जाता है। इना को मूर्खी परपरा में साकपदस्ता वैश्व में ब्रह्मण्य छोड़ दान में गूँ बलिदान तथा अन दान में साहसाग कहा गया है।

इसके विपरीत व्यवहित मुख का आचन क्रिष्ठा उह हाथी स्वाध्याय उतना ही निम्नकोटि का माना जायेगा। दम उग्रता का वह माग है।

जो व्यक्ति सामाजिक राजकीय तथा धार्मिक सभी प्रकार के प्रतिपक्षों को पार कर स्वार्थ माधन करना है अर्थात् जो सामाजिक दृष्टि से दुराचारी राजकीय विधि में अनुसार अचरणी तथा धर्मगान्ध के अनुसार पापी का है वह निम्नतम काटि पर है। बहुत से ध्वजित राजनाय नियमा का तो नही पावत किन्तु सामाजिक एवं धार्मिक कसब्या का भग करते हैं। राजकीय कानून का समर्थन प्राप्त होने का कारण वे अपने का अपराधों नष्ट मानने फिर भा दरा पारी एक पापी तो हैं ही। दूसरा और एक ध्वजित अचरणी जिन पर भी अत्याचार एक पाप का दृष्टि में अपेक्षाहीन उत्तर पर होते हैं। चरित्र का दृष्टि में राजनाय एवं सामाजिक विधान का अपेक्षा धर्म का अधिक सम्भव है। जो व्यक्ति धर्म का गान्धन नियमा का उपास करता है वह निम्नतम काटि पर है। किन्तु यों वे समझ लता कांति धार्मिक नियमा का अन्तर्गामिक नियम गे है। सामाजिक नियमा का निर्माण मनुष्य अपा मगदने के लिए स्वयं करता है और धार्मिक नियम गान्धन होते हैं। सामाजिक का उपास देन काल एवं परिस्थिति की परिधि में परे गावभोग्य बना गया है। सामाजिक सर्वोच्च मुख्यतया सामाजिक नियमों का काटि में माना है।

सामाजिक तथा राजकीय नियम का उपास का अचरित्रताम का दृष्टि से हय है। किन्तु उनमें निर्णायक तद्वत उपास है। अन्त में सामाजिक नियम का या न माना में उपयथा हान पर भा धार धार निर्दिष्ट हो जाती





हैं और विकास में बाधाएं उपस्थित करने लगती हैं। बहुत से राजकीय नियम भी इसी प्रकार के होते हैं। ऐसे नियमों का उल्लंघन पाप के स्थान पर धर्म हो सकता है। अतः नामाजिन या राजकीय नियमों का पालन मापेक्ष है। अर्थात् उनका पालन करते समय उन्हें स्वमगल तथा परमगल की कमीटी पर पर्यवेक्षण की आवश्यकता है। यदि वे उनमें सहायक हो तो स्वीकार करने योग्य हैं, अन्यथा हेय। इसके विपरीत धार्मिक नियम शाश्वत हैं। उनका आधार तात्कालिक स्वार्थ नहीं होता।

३ लक्ष्य-शुद्धि

परोपकार का तीसरा तत्त्व लक्ष्य-शुद्धि है। अर्थात् दूसरे तो भलाई करते समय लक्ष्य जितना पवित्र और आध्यात्मिक होगा, परोपकार उतना ही उच्च कोटि का माना जायगा। धन-प्राप्ति, वामनापूर्ति या अन्य प्रकारकी भौतिक कामना के लिए दूसरे की सहायता करना परोपकार की कोटि में नहीं आता। ये सब स्वार्थ के अन्तर्गत हैं। उनमें भी लक्ष्य जितना हिंसा, वामना या अन्य पापवृत्तियों वाला होगा, उतना ही स्वार्थ निम्न कोटि का होगा। व्यक्ति जब भौतिक कामनाओं में ऊपर उठकर, केवल मात्त्विक इच्छाओं में प्रेरित होकर पर-हित करना है वही परोपकारप्रारम्भ होता है।

व्यक्ति को परोपकार एवं परमार्थ की ओर प्रेरित करने के लिए धर्ममन्त्रों ने विविध प्रकार के प्रयत्न दिए हैं। इसी प्रकार स्वार्थवृत्ति को दूर करने के लिए भय बताया है। कहा गया है—जो तपस्या द्वारा कामभोगों पर नियंत्रण करता है, उसे चक्रवर्ती का राज्य या स्वर्ग का ऐश्वर्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार हिंसा, भूठ, चोरी तथा दुराचार आदि के कारण इस जन्म में विविध प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं तथा दूसरे जन्म में नरक एवं पशुयोनि के कष्ट भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार भय या नामना-पूर्ति के लक्ष्य में प्रेरित होकर जो पर-हित या धर्म-साधन किया जाता है, वह लक्ष्यशुद्धि की दृष्टि में निम्नकोटि का ही माना जायगा।

४. परिणाम की मंगलमयता

परोपकार का चौथा तत्त्व परिणाम की मंगलमयता है। इस दृष्टि से सर्वोत्तम रूप वह होगा जो सभी के लिए मंगलमय है। जो आदि में मंगल है, मध्य में मंगल है और अन्त में मंगल है—ऐसा परोपकार परमार्थ हो जाता है।

इस तत्त्व में क्षेत्र, भावना या लक्ष्य की अपेक्षा समझ या विवेक की अधिक आवश्यकता होती है। पिछली तीनों बातों के होने पर भी यदि करने वाले में विवेक नहीं है, तो उसका कार्य परोपकार के स्थान पर पर-पीडन बन जाता है। धार्मिक एवं सामाजिक संगठनों में इस प्रकार का अविवेक सर्वत्र पाया जाता है। धर्म के नाम पर विविध प्रकार के आडम्बर किए जाते हैं और समझा जाता है कि उनमें धर्म का उत्कर्ष होगा। किन्तु उन्हीं आडम्बरो के कारण धर्म की आत्मा घुट कर मर जाती है। उसके अन्दर रहा हुआ 'जिव' समाप्त हो जाता है और केवल शव बाकी रहता है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि हमारी दृष्टि इस लक्ष्य में न हटने पाये कि धर्म मंगलमय है। पुराने मन्त्रों और अहंकार, अस्मिता, मोह आदि विकारों के कारण वह दृष्टि में ओझल न हो।

महाकवि रवीन्द्र ने गीताजलि में प्रश्नोत्तर के रूप में कहा है—'दीपक क्यों बुझ गया ?

मैंने उसे अपनी चादर में ढँक दिया और वह बुझ गया।'

वास्तव में हम धर्म के दीप पर अस्मिता की चादर डाल देते हैं और प्रकाश का स्रोत समाप्त हो जाता है।

गीताजलि में दूसरा प्रश्न किया गया है—

'फूल क्यों मुरझा गया ?

मैंने उसे तोड़कर अपनी छँती में चिपका लिया, अतः फूल मुरझा गया।'

महापुरुषों की तपस्या एवं साधना रूपी धाम प्राप्त करने का धर्म ही पण निश्चित है और चारा आर सुगंध फलान गता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम स्वयं और तपस्या का बल का दान को सींचते हैं पूत्र अपने आप छिपा रहा। कुछ दिन समग्र पत्रावर उसकी पत्रादिया भूमि पर जाणगी और नई अकुरा को ज म गेगी। उस प्रकार सारा प्रदम पुष्पा से भर जायेगा और उनकी मगध दूर दूर तक फलन लगेगी। निम्न जगत् का मिथ्या जमिनि वेगा स प्रति होकर स्वामी मानव इस सोहवर अपनी छाती से बिपका जाता है। न स्वयं मगध लेता है न दूसरा का न लेता है। मायक व प्रकाश और बूल की समग्र पर एकाधिपत्य का भावना मगलमय सिद्ध नहीं हुई। यदि धामिन् मगठना का उद्देश्य एता को सींचना है तो उनकी उपपाधिता समग्र व आ सक्ती है किन्तु यदि पूत्र का ताहन का प्रयत्न करते हैं तो धम रक्षक के स्थान पर धम भान बन जाते हैं।

परिणाम की समग्रमयना का एक और रूप भी धामिन् इतिहास में मिला है। सहस्राब्दों में एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय का अपना अनुयायी बनाने का निष्ठ प्रयत्न करता जा रहा है। इसके निष्ठ पदमय मनिक् आत्ममग प्रलाभन धामिन् समस्त उपाया का माध्यम बना रहा है। प्रत्येक मगठन का यह दावा होता है कि वह मिथ्यात्व नास्तिक बना व माय पर चलने वाला का धम व माय पर ला रहा है और इस प्रकार परोपकार के माय पर चल रहा है। निम्न दूसरे को धम पय पर लाना भी दूर रहा स्वयं पादमय पर चल पत्ता है। दूसरा की माय और स्वयं का मुख बना चाहता है और इसके लिए वह इस ताक के सत्ता से सम्पूषक बचन कर देता है। वास्तव में धम की आसकर उद्गम आकार मया पूर इतिहास को पुष्टि की जाता है। यह अविवेक व कारण होता है और परिणाम मगल मय नहीं है।

बौद्ध परंपरा में भगवान् बुद्ध ने तीन काय अर्थात् त्रयी माने गए हैं। सर्वप्रथम सभोगकाय है जिसका धम है स्कूल गंगर जिसमें द्वारा वे छाता पीना उठना उठना आदि किया करते हैं। दूसरा धमकाय है। जिसका अर्थ है वह मगठन जिसके द्वारा वे धमप्रचार करते हैं। त्रिमुसस तथा शास्त्र म बाटि में आते हैं। तीसरा निर्माणकाय है। इसका अर्थ है वस्तु जिसे न विनष्ट म प्रकाश व रूप म छा जाता है। तपसापारण यह भूत जाता है कि उनका प्रतिपादन कौन था तथा उनका जिम परंपरा के साथ संबंध है। वेचल उनका प्रकाश प्राप्त करने अपने पथ का निश्चय करता है। वे उस मृगय के समान होते हैं जिसके लिए हम मनुष्य जानते कि निष्ठ उद्यम से आ रहा है धमवा जिस पूत्र की है। परोपकार की दृष्टि से धममस्या का उद्यम रूप तृतीय काय में मिलता है।

परमाय के दो रूप

ऊपर मुख्य रूप से स्वाय एवं परोपकार की भेदा की गई है। यथास्थान यह भी बताया गया है कि परोपकार ही अपनी धरम सीमा को प्राप्त करने पर परमाय बन जाता है। उपनिषदों में ईश्वर का चिराट व रूप में बयन किया गया है जो विश्व का नामांतर है। विश्व की सेवा ही परमाय का सेवा है। बुद्ध ने कहा है— माता जिम प्रकार अपने इन्तोन पुत्र का प्रेम करती है इसी प्रकार उत्कट प्रेम समस्त जिव म कला दो। जन्ममग्न म भी राग और द्वेष को जीनकर विचमनी पर चल दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी धर्मों में परोपकार ही ममल परिधिओं की पार कर केन पर परमाय बन जाता है।

दोनों की मशामानपरम्परा में साधना का लक्ष्य अशुभ वासना का क्षय और शुभवासना का विकास बताया गया है। परिणामस्वरूप प्रवृत्तिमात्र का निराध नहीं होता। निम्न जगत् प्रवृत्ति रोक्कर जगत् प्रवृत्ति का विकास किया जाता है। विविध प्रवृत्तियों की पराकाष्ठा के रूप में दस पारमिताएँ बताई गई हैं जिनका अभ्यास बाधिसत्क करते हैं। ईसाई परंपरा भी इसी माय का समर्थन करती है। भगवद्गीता में निश्चिन्ता माय साक्ष्य अर्थात् ज्ञान याग की अपेक्षा से है और प्रवृत्ति माय कम योग एवं अभिन्न योग की अपेक्षा से। दोनों माय उचित को मनोवृत्ति पर अवलंबित है। जिसकी विधर अभिन्नता है वह वह अपना सक्ती है। दोनों ही परम मगलमय माय हैं। माय ही यह भी कहा गया है— तपस्तपु कमस दासात्कमयोगो विनिष्कल अर्थात् निश्चिन्ता की अपना प्रवृत्ति पृष्ठ है। वल्लव परम्परा



मे कहा गया है— परमात्मा की भक्ति मुक्ति मे भी बड़ी है। (भक्तिमुक्तेर्गरीयसी)। तुलसीदास का वचन है मिथ्या-राममय सब जग जानी, करहु प्रणाम जोरि जुगपानी' अर्थात् मे ममस्त विश्व को सीता और राम के रूप मे देखता हूँ और प्रत्येक व्यक्ति को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। इसमे प्रतीत होता है कि भक्ति-मार्ग विश्व को भगवान् मे भिन्न नहीं मानता। जनता को ही जनार्दन मानकर भक्ति का मदेश देता है।

जैनपरम्परा उन तथ्य को अहिंसा व्यवसा जीवरक्षा के रूप मे उपस्थित करती है। उनका ज्ञान है कि मनुष्य जो नहीं पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु तथा वनस्पतियों मे भी जीव है। उन्हें किसी प्रकार का आघात पहुंचाना हिंसा या पाप है। अहिंसा के लिए उन सबके प्रति प्रेम एवं मित्रता आवश्यक है। जैनधर्म उन्हे चरित्र की उच्च भूमिका के रूप मे प्रस्तुत करता है। महा परोपकार के विधिपक्ष को छोड़कर निषेधपक्ष पर बल दिया गया है। बौद्धों की हीन-यान शाखा मे भी प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति पर अधिक बल है। अद्वैत वेदान्त तथा नाग्यदर्शन मे भी दुःखाभाव को सुख बताया गया है।

न्याय-दर्शन मे मोक्ष का द्रम बताते हुए कहा है—तत्त्वज्ञान मे मिथ्याज्ञान का नाश होता है, मिथ्याज्ञान के नाश मे दोष का नाश, दोष के नाश से प्रवृत्ति का नाश, प्रवृत्ति के नाश मे जन्म या नाश और जन्म के नाश से दुःख का नाश और दुःख का नाश ही 'मोक्ष' है।

उपर्युक्त परम्पराओं मे प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति पर अधिक बल है। हम इसकी विस्तृत चर्चा मे न जाकर इतना ही कहना चाहते हैं कि परोपकार का नैश्नयिक रूप निवृत्ति ही है। किन्तु उमने पहले प्रवृत्ति की माधना आवश्यक है। जो व्यक्ति अपने लिए ममस्त प्रवृत्तियाँ करता है और दूसरे का प्रश्न आने पर निवृत्ति का उपदेश देता है वह मर्त्य मे दूर चला जाता है। जैनधर्म मे समता को नैतिकता का आधार माना गया है। उसका अर्थ है हम अपने लिए जिस व्यवहार या वस्तु को आवश्यक मानते हैं, दूसरे के लिए भी उस आवश्यकता की अनुमति करें। जो व्यक्ति उच्चतम माधना द्वारा अपने शरीर का मोह छोड़ चुका है उमने यह आशा नहीं की जाती कि वह दूसरे की प्राणरक्षा करे। किन्तु जो अपने लिए सब कुछ करता है और दूसरे का प्रश्न आने पर निवृत्ति का उपदेश देने लगता है वह वैषम्य का पोषक होने के कारण धर्म मे दूर चला जाता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों परोपकार की भूमिकाएँ हैं। साधक को किस समय किसका आश्रय लेना चाहिए यह उनकी जीवनस्थिति पर निर्भर है।

धर्म-निरपेक्षता

डा० सुशीलचन्द्र दिवाकर,

एम ए बी काम, एन एन बी पी एच डी

प्रोफेसर बारीली जबलपुर (म० प्र)



इस मोक्षवाणी युग में मानव न अंधात्म वा छोटकर सर्वांगीण प्रगति का बोझ उठाया है। धर्म को दुर्गा देकर जनता को गुमराह करने वाला का घर चुनोती भी आ रही है। उनकी पारसीलाभा का जल हात आया है। किन्तु उनकी कृतियाँ को देखकर हमने भ्रमवाँ धर्म को ही ठाछन लगाया। धर्म के नाम पर किए गए उन कृत्यों का कारण ही धर्म का तिरस्कार को दृष्टि से दखा गाने लगा। मध्ययुग का इतिहास धर्म की ओर से किए गए युद्ध और हत्या कानों में तो भरा पड़ा है ही किन्तु आधुनिक युग में भी हमने क्या और क्या प्रमाणन ही सना है कि धर्म की तुलना देकर आर्थात् के दो टुकड़े कर दिया गये ? इसीलिए तो धर्म से ही बहुत हाकर मानव और नृमन न जगत् विनाश बगावन कर दी और विश्व का धर्महीन साम्यवाद प्रदान किया। श्री प्लूट मिलर ने इस पर लिखा है —

Religion to the master Marx had been the opium of the people and to Lenin it was a kind and spiritual cocaine in which the slaves of capital draw their human perception and their demands for any life worthy of a human being

किन्तु क्या यह उचित होगा कि कुछ स्वामी प्रतिष्ठा की अमुक्ति के कारण हम धर्म का परित्याग कर दें ? भारत में जनता धर्मों का जगत् हुआ और यह धर्मभूमि कहलाता है। श्री राम ने कहा था म धर्म का त्याग भारत में असम्भव है। क्या कि तो धर्म का धून हमारा पीना करेगा। सर्वप्रथम हम धर्म का अर्थ और वाक्य में समझ लेंगे। तब ही धर्म के प्रति हमारी दृष्टि आस्य हो सकती है और हम धर्म का उपयोग मानवीय धर्म के धर्म उन्नति में कर सकते हैं। एक विद्वान श्रीगुणस ने कहा है कि धर्म सुख का कारण है कारण अपन धर्म का विनाशक मनु होता। अनर्थ आत्म के विनाश के भय से हमें धर्म से विमुख नहीं होना चाहिये। समाजशास्त्री राम क युग में धर्म का धर्म जनता में सुखप्रसार करना है। यदि धर्म भी सुख देता है तो वह समाज के बहुत ही सार बन सकता है। आज एवेवेरी के धर्म धर्म पर प्रकाश डालते हैं—

Religion was intended to living peace on earth and good will towards man whatever tends to hatred and persecution however correct in the letter must be utterly wrong in the spirit

देवयामि समीचीन धर्म कमनिबहन्म ।

ससारदं सत् सत्तवान् यो धर्मस्तु मे सुखे ॥

भावार्थ यह है कि जो सत्तार के दुष्टों में बचाकर जीव का उत्तम सुख प्राप्त करावे वह धर्म है। जो राधा कृष्ण के अनुसार सत्य तथा धर्म की उपलब्धि को तथा हिंसा के परित्याग का धर्म कहना चाहिये। ईसाई धर्म के दस आंग (Ten commandments) और मनुस्मृति एवं श्रौता धर्म धर्मों में सत्ता वाता वा भाषण किया है। एक धर्म आचार्य उमास्वामी ने अपना प्रख्यात कृति सत्याग्रह में धर्म का विवेचन करते हुए धर्म धर्मों के नाम इस प्रकार

मिनाये हैं—उत्तम क्षमा, मादय, आर्जय, नरय, शीन, नयम, नय, न्याय, आर्तिनय, और यज्ञनय । अत यदि 'यम' इमे उत्तम क्षमा, मानहीनता, मरुधरा आर्तिग्रह, नयम आदि ती मीन देने दृष्टे पवित्र जीवन स्वीकृत करने के लिये आदेश और प्रेरणा देना है तो क्यों उमे पुनः करना चाहिये ? क्या जिन और उन दम धर्मों के विरोधी नरय मे उन्नति हो सकती है ? यदि नहीं तो यम ता निरन्तर करना व्यावहारिक मूल्यवाना ही है । भारतीय संस्कृति मे सभी वाय मे धर्म का ही आधारभूत माना है । लेकिन यहा प्रश्न यह उठता है कि धर्मपाठन क्या होता चाहिये ? भारतीय संस्कृति मे धर्मनित्यता को प्रधानता देने समय कुछ कारणों पर विचार कर लिया है । प्रत्येक धर्मात्मा और प्राणी मे आत्मा का मन्त्र-भाव है और उसी उन्नति के लिये धर्मपाठन अनिवार्य है । अधर्म मे कुछ समय के लिये प्रगति, 'यम और वैभव मे वृद्धि हो सकती है, किन्तु आत्मा का तदापि उत्कर्ष नहीं हो सकता । जब आत्मा का उत्कर्ष होता है, तब व्यक्ति का आन्तरिक उत्कर्ष और व्यक्ति-समुदायी समाज का उत्कर्ष अनिवार्य रूप मे होता है । अत 'यमपालन मे व्यक्तिगत और सामाजिक उत्कर्ष को सुना क्षेत्र दिया गया है । उन्निहाय नाशी है कि चम्पुत धार्मिक मानवो मे समान सुखी वा । और धर्म, अर्थ काम और मोक्ष ती मिश्रित महज ही दुआ करती थी । 'रामराज्य' के बारे मे यह वचन है कि, 'अयोध्या मे कोई लामो पुष्प न था, न कजूर न अनपल, न निर्दयी और न कोई नास्तिता था । आज के जट्टादी युग मे ऐसी बात पर विश्वास नहीं होना और यह उपहासास्पद प्रतीत होती है । किन्तु यह अपने संसार ही बात है, अथवा राजा और प्रजा के धार्मिक रहने पर यह भगवत्सत्य स्थिति स्वाभाविक हो थी ।

तो फिर धार्मिकता के फलस्वरूप क्या उन्निहाय के अनुसार अमानव विनाश और कष्ट हो या बाजारगर्भ हुआ ? फाम इटली भारत और चीन आदि सभी राष्ट्रों का उन्निहाय का बात की माथी दे रहा है । यदि हम प्रतीतिरात्मक तर्कों का आश्रय न लेकर प्रहारात्मक तर्कों मे ताम ल तो महज ही यह प्रश्न उठा सकता है कि धर्महीन विज्ञान के फल-स्वरूप हिरोशिमा में एटम बम ने भी तो लाखों निर्गोरी ती हत्या हुई है और दो महायुद्धों की आशा की जाने लगी है । धार्मिकता के नाम मे किए गये पतन मे यह पतन लाखों गुणा बड़ा है । फिर यो धर्म ही दुर्गति ही जानी चाहिये ? लेकिन उमने क्या धम पतन और कलहकारी मिश्र होता है ? यह धर्म का तो तदापि धर्म और रूप नहीं है । क्या चन्द्रकिरणों मे भी ताप हो सकता है और शीतल जल मे भी कोई जल नाहता है ? अवश्य ही धर्म के बदले किसी अन्य चीज ने ऐसा खेल खेला है कि जिसमे आज हमारे हृदय मे अनन्य धर्म से ही घृणा हो उठी है । अपने मायारण जीवन मे ही हम अपने सर्वोच्च हितों मे भ्रमण घृणा और विद्वेष करने लगते हैं । यह तो हम देख ही चुके हैं कि यथार्थ रूप मे धर्म मानव की सुगति और सुख देने का कार्य करता है । लेकिन यदि उमने कुछ दिखाई देना है तो निश्चय ही मूल मे भूत विद्यमान है । आज हमने धर्म की आत्मा को ही नहीं पहिचाना है । हम उसके चांगे मे अपनी गलतियों द्वारा ही उलझ गए । हमने तत्त्व को विस्मरण कर दिया और अपने-अपने धर्म के अधमन बन बैठे । धर्म के मर्म को न जान हमने अपना पतन प्रारम्भ कर दिया । मनीष्युक्त नर हमारे नामने मे मदा बहता रहा है और हमने उसमें अपवित्रता डालने के अनिश्चित उमका कुछ भी उपयोग न किया । इसमे धर्म और धर्मदाता महावीर राम आदि का क्या दोष ? दोष तो हमारा है जो धर्म को न जानकर धर्मविरोधी ईर्ष्या कलह हिंसा परिग्रह मे उलझने लगे । धर्म तो कभी भी विद्वेष करना नहीं सिखाता । और यदि हम विद्वेष करते हैं तो निश्चय ही यह धर्म के बदले अधर्म का ही कार्य है, जो पाप है, पतनकारी है । ऐसे ही भ्रम मे बेचारा औरगजेव पड गया था । उमने सोचा कि जो धर्म वह मानता था वही एक मात्र मान्य सिद्धान्त था अन्य सब मिथ्या, त्याज्य और घृणास्पद था । औरगजेव मे धर्म के स्थान पर अधर्म ने प्रवेश किया जिसके फलस्वरूप इतिहासप्रसिद्ध हिन्दुविध्वंस हुआ था । ऐसे ही जब धर्म के स्थान पर अधर्म ने प्रवेश किया तब कुछ धर्म के ठेकेदारों के आदेशानुसार तत्कालीन राजाओं ने परधर्मियों के प्रति हत्याकाण्ड का नरन तांडव मचा दिया । उच्च तोटि का साहित्य इसी विद्वेष (अधर्म) के फलस्वरूप अग्निसात् कर दिया गया । एक विद्वान् श्री प्रो० आर० ताताचार्य एम० एल० टी० का जैनधर्म के वन्द्य साहित्य के विनाश का यह उद्धरण इस विषय पर प्रकाश डालता है ।

“Religious persecution, intolerance bigotry, conservatism and the like have done much to put keep from the public all that is valuable in Kannada Jain

literature. Thousands of books have been destroyed and the libraries set on fire. Several thousands palm-leaf manuscripts have been thrown into Kaveri or Tungabhadra and the havoc of worms has been equally destructive of the vast treasures of learning.

न कवल यह न किन्तु जिनका का विभाग भी मने हो किया गया। बुद्ध धर्म का अपना ज म म्रिम भारत से सप्तम ज्ञान म यही विन्प बापकारी रहा जाया है और भारत म विभाजन न ता म विन्प क मरि पर कलगाष्टन है। वर किया है। यूरोप म प्रोटेस्ट और कषालिका का विराध विन्पात है। अमरिका म मरिज क नाम पर पत भोज द्वारा किए गए अत्याचार भी म रोमाञ्चित कर दते हैं। अरुई विताय क नाम पर वित्तन की मुम्मान बाणागे का भारत म अत्याय अपौरय ग्रन्थ के नाम पर छोड़ा और जनो क प्रति तिरस्कार आव आनि क परिणामस्वरूप मरि सपाकषित धम स आज क बुद्धिमान न थवकर यह कह्वा कि We have just enough religion to make us hate but not enough to make us love one another ? ता बाई अथावा मरि बा न नही कह्वा है। यी विचार क मरि सो क यह बाव मयी प्रकार क तथा प म आचारित ता सव हा एन धम को प्रमाण है—

Religion has reduced Spain to a Guitar Italy to a hand organ and Ireland to exile

यह कि तब यदि आज भारत को स्वतंत्रता ता उन्नीसवीं शताब्दी में and India into भी जाइ ला ।

यन् सव निराग्र धम की देखी आराधना वा दुपनिष्ठा है । तब प व ही व पुव ^३ वि भगन मयाधम म धम वा कमी ध काम न । ^३ धम कमी प्रकृति वा विराज व । करवा । उसकी आत् म जा पागविस्मता वा परि कय श्रिया गया है उमर बुद्धिमत्ता को बन्नी भारी बनाया । है ।

[illegible]

यही धर्मनिरपेक्ष धामन है। परन्तु वह धर्मविरोधी नदापि नहीं है। स्वयं धामन द्वारा प्रकृति के पवित्र नियमों को ध्यान में रख मानवोन्नति के लिए नीति की सभी विधाओं का प्रचार किया जा सकता है। जिन धामन में एक धर्म के प्रति अप्रत्यक्ष रूप से अन्य अल्पमानवत्वस्वभावों पर अत्याचार के पदों टाँके जाते हैं वह कभी भी उपयुक्त धामन नहीं रह जा सकता। और उनका अन्त (नैतिक अन्त) ही हृषा सम्पन्नता काटिये। ऐंग धामन को अवेरशाही के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है—वह कोई धामन-व्यवस्था ही नहीं है। ऐसे धामन में अन्य धर्म वालों के प्रति पूजा और विद्वेप की भावनाओं को जागृत किया जा सकता है। और ये वेदार्थ सर्वत्र अन्त हो सिंह की गुफा में हिरण मद्भय पाते हैं। उनके जीवन, धन, माँ और बहनों की रक्षा (?) धामन द्वारा आचर्यमान धर्मोन्नतिवादी की कृपा-बढाव पर ही आधारित रहती है। “कलमे का पानी या तलवार के नीचे गर्दन” यही न्याय हृषा करता है। और एक प्रकार की पाशविकता या अनन्यता का बड़ा नम्र नाट्य होता रहता है। यहाँ इस बात को बिल्कुल भुला दिया जाता है कि साधारण मनुष्य अपने जन्मजात सम्कारों एवं धर्म को अपने प्राण में भी प्रिय समझता है। लेकिन अवेरशाही दुनिया में किसी हृदय में यह चमक सकता है कि कुछ क्षण के लिए भी इन मनोभावना का सूक्ष्मता में विचार करें।

नहीं है। वह हमारे मन में मालिन्य बटाता है और मनोभावनाओं में गड़बड़ पैदा करता है। यह भी वाछनीय नहीं कि हम दूसरों पर व्यर्थ ही सन्देह करते रहे कि कहीं वह आक्रमण न कर बैठे। यदि हम अपनी व्यवस्था ठीक बनाये रखने के लिये, अपने महापुरुषों के सन्देशों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये एवं आत्मोन्नति करने के लिये अपने समाज या सम्प्रदाय को मजबूत बनाने का प्रयत्न करते हैं तो यह कभी भी अवाञ्छनीय नहीं कहा जा सकता। साथ ही जिन प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संपत्ति और जीवन की सुरक्षा का अधिकार है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक सम्प्रदाय को अवाञ्छनीय आक्रमणों में भी अपनी रक्षा करने का अधिकार है। परन्तु प्रारम्भ में ही इसी हनन-नष्ट-उपार्ज और कलह पर अपने साम्प्रदायिक कार्यों को आधारित कर दे ? इनसे तो ध्येय और भी दूर होना जाता है। क्योंकि विरोधात्मक कार्यों में विरोधात्मक कार्यों की अपेक्षा सदा ही अधिक शक्ति का अवश्य होना है और हम केवल इसी में अपना ध्येय सीमित कर बैठते हैं। तथा वास्तविक बातों की ओर मन को न भुलाकर उपनिषद् में ही जीवन को समाप्त कर देने हैं।

साम्प्रदायिकता पर अभी तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इसका अभिप्राय तो केवल यही बताने का है कि धर्म-निरपेक्ष शासन में साम्प्रदायिकता को तनिक भी स्थान नहीं होता। लेकिन उनका कार्यरूप में परिणत नहीं हो पाया है। अपने धार्मिक समर्थकों के फलस्वरूप ही मजबूत है कि राष्ट्र का सर्वोच्च अधिकारी अपने धर्म को ही सुरक्षा देना चाहें। उदाहरणार्थ भारत में, धर्म-निरपेक्ष शासन की उपयुक्त घोषणा की गई है, तो भी अभी सामान्य के मन्दिर में अनुल्लासि का व्यग्र अन्य धर्मावलम्बियों के लिये घटकन की चीज बन जाता है। यदि केवल प्रधान धर्मों या राजनैतिक प्रावृत्तियों वाले धर्मों के सन्तोष के लिए यह हो तो ऐसी नीति तो कौन बुरा कहने का प्रयत्न न करेगा ? जैनधर्म मद्द्ग भारत के अत्यन्त प्राचीन धर्म के प्रति उपेक्षा का भाव रखा जाता है। जैन धर्मावलम्बियों द्वारा दिये गये सम्मान की देहली में राष्ट्रपति बड़े हिचकिचाते हुए स्वीकार करते दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर अन्य धर्म के लिये कितनी उदारता और सहृदयता दिखाई जाती है। जानना का ध्यान रखना चाहिये कि राष्ट्र के एक छोटे में अंग की उपेक्षा एक बड़ा रूप धारण कर सकती है और उम्मे जो अगन्तोष फैल सकता है वह बड़ा अप्रिय होता है। इसी प्रसंग में ध्यान देने योग्य बात यह कि जब जामात अपने राष्ट्र को "धर्मनिरपेक्ष" बनाने का कार्य करे तब किसी भी प्रकार ऐसी तानाशाही न मचा दे कि राष्ट्र के धर्मों पर उनकी परम्परा और प्रचलित रीतियों एवं भाग की पूर्ण रूप में उपेक्षा कर मनचाहा परिवर्तन किया जाये। किसी भी धर्म के मामले में शासन को बहुत मोक्ष विचार कर दस्तदाजी करना चाहिये। उसके धर्माचार्यों का आदरपूर्वक सहयोग और समर्थन प्राप्त करना चाहिये। शासन का यह मोक्षना बड़ा भारी भ्रम होगा कि उसके द्वारा इच्छित परिवर्तन के अभाव में देश का नाश हो जायगा। राष्ट्र की जिदगी दो चार वर्ष की नहीं होती, वह हजारों वर्ष के जीवन वाता होता है। क्या गारंटी है कि राजनीति के पारगण विद्वान् धार्मिक विषयों के भी पारगण होते हों, जब राजनैतिक विषयों पर उनके निष्कर्ष व सत्य मिथ्या और अलाभकारी मित्र हो जाते हैं, तो फिर धर्म के नवीन विषयों में भी उनका एकांगी कार्य हानिप्रद मित्र हो सकता है। बहुधा धर्माचार्य और धर्म के पोषक राजनीति में भाग लेकर व्यवस्थापक मन्त्रा में पहुँचना पसन्द नहीं करते। परन्तु सर्वतोमूर्त जनतन्त्रीय शासन में ऐसे महान् साधकों की उपेक्षा करना पापपूर्ण कार्य ही समझना चाहिये। समाज के विचारक और साधक यदि राजनीति में नहीं पड़ते तो राजनेताओं को स्वयं उनके पास पहुँचकर पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना चाहिये। चन्द्रगुप्त का भद्रबाहु और चाणक्य के पास पहुँचना, अशोक का वौद्ध साधुओं के समीप पहुँचना, राम का वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचना, इसी तथ्य के परिचायक हैं।

२ ओम्गा उदयपुर राज्य का इतिहास भाग २ पृ० ६६२ ।



था। वे दोनों अपनी माता हाड़ी करमेनी के साथ बंटी रहा करने थे।^१ बाघर ने अपनी जयनी तुजके बावरी में लिखा है कि मागा की मृत्यु के पश्चात् उस रानी ने चित्तौड़ के राज्य का प्राप्त करने में उसकी सहायता नहीं की एवं रण-यमोर उसे देने का वचन भी दिया था किन्तु गंगा मागा का ज्येष्ठ पुत्र एवं उत्तराधिकारी रत्नसिंह मीनप्र ही मार डाला गया एवं हाड़ी करमेनी का पुत्र विक्रमादित्य स्वयं चित्तौड़ का स्वामी हो गया। उनका होने हुए भी रणयमोर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। अमेर-गात्रभट्टार म उस राजा की जियो कुछ वरदों की प्रतिष्ठा उपरान्त है जिनमें स्यानीय जानक का नाम विख्यात दिया हुआ है।^२ अतएव प्रतीत होता है कि इस राजनैतिक परिवर्तन के अमर पर यह परिवार भी रणयमोर ने चित्तौड़ काया आया हो नो कोई आश्चर्य नहीं। तबोति उन समय हाड़ी करमेनी के पुत्रों का ही राज्य चित्तौड़ में था। यह घटना वि० स० १७६०-६७ के मध्य सम्पन्न हुई होगी।

भामाशाह की सेवाएँ

भामाशाह का जन्म चित्तौड़ में आषाढ शुक्ला १० वि० स० १६०४ (२८ जून १७४७ ई०) को हुआ था।^३ लूकागण्टीय पट्टावली ने प्रतीत होता है कि यह परिवार वि० स० १६१६ के पूर्व अवश्यमेव चित्तौड़ में बस चुका था और किसी रक्षणी घेरा को कृपा में उस परिवार के पास कंगेठों वप्यों की सम्पत्ति हो गई थी। मूल वंशन देवायन मुनि के वर्णन के साथ आता है जो परिशिष्ट के स्य में दिया गया है।

हन्दीघाटी के युद्ध और उसके पश्चात् निरन्तर युद्धों में व्यस्त रहने के कारण प्रताप की लगभग सभी सम्पत्ति विनष्ट हो गई। आजादी का दीवाना प्रताप देव की स्वाधीनता के लिये चरणों की जात जानना फिर रहा था। इन भयकर विपत्तियों के समय भी वह अपने दृढ़ निश्चय पर अटिग रहा था। किन्तु घनाभाव में दुर्मी हासर वह सदैव के लिये मेवाड छोड़कर जा रहा था। ऐसे समय में भामाशाह ने अपनी सभी सम्पत्ति लाकर के उसने मंगुल रख दी। जर्मल टाड के द्वारा दिये गये वर्णन के अनुसार यह सम्पत्ति उनकी अपित भी कि प्रताप २७ हजार सैनिकों को १२ वर्ष तक निर्वाह करा सकता था।^४ सम्पत्ति देने के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद नहीं है। श्रीगीरीशचन्द्र हीराचन्द घोषालिखते हैं कि भामाशाह महाराणा का विधवास्वाय प्रदान होने के कारण उसी की मरणाह के अनुसार मेवाड राज्य का राजा माना मुरखित स्यानी पर रखा जाना था जिसका व्योम वह एक वही में रहता था और आवश्यकता पड़ने पर इन स्यानी ने द्रव्य निकालकर लडाई का चर्च चलाया जाता था। यह मत मुझे सत्य नहीं लगता है। बहादुरशाह के मेवाड पर दो दान आक्रमण हुए और एक बार घेरशाह का आक्रमण हुआ। इसके बाद अरुवर के साथ उदयसिंह का भयकर युद्ध हुआ। इन युद्धों में मेवाड का राजकोष खाली-ना हो चुका था।^५ बहादुरशाह की मागा द्वारा होने हुए मालव के मुल्तान के बहुसंख्य जेवर,

१ ट्यातो में लिखा है कि करमेनी पर राणा मागा का विशेष प्रेम था। एक दिन करमेनी ने निवेदन किया कि आप अपने जीवनकाल में ही अपने २ पुत्रों को, जो रतनसिंह ने छोटे हैं, रणयमोर की जागीर दिला दें और सूरज-मल हाडा को नियुक्त कर दें तो अधिक अच्छा रहे। मागा ने ऐसा ही कर दिया। किन्तु उसके मरने के बाद रतनसिंह और सूरजमल में विद्वेष घना रहा और दोनों इसी मामले को लेकर आपस में मन-मुटाव रखने लगे। इसके परिणामस्वरूप दोनों ने एक-दूसरे पर घातक आक्रमण कर अपनी अपनी जान से हाथ धोया।

२ तुजके बावरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ० ६१२-६१३

३ राजस्थान के जैन भट्टारों की सूची, भाग ३, पृ० ७३

४ वीर विनोद, भाग २, पृ० २५१। ओमवाल जाति का इतिहास, पृ० ७४

५ ओसवाल जाति का इतिहास, पृ० ७३

६ ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २ पृ० ६६१-६६२

७ ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० ४६३-६५। इसमें महाराणा अमरसिंह के समय की सम्पत्ति का उल्लेख किया गया है। जहागीर को दिये गये रत्नों का उल्लेख भी है किन्तु प्रताप ने अपने अन्तिम वर्षों में मेवाड में फिर से समृद्धि और शांति ला दी थी अतएव उस सम्पत्ति से प्रताप के सरुद के समय की सम्पत्ति से तुलना नहीं हो सकती है।

जहाज मुकट सोने की कमरपैनी आदि तब दन पड़े थे । अतएव उस समय जो राशि मामागाह में दी थी वह स्वयं उसका परिवार की ही थी । लूकाच-गीम पट्टावली के वणन के अनुसार इस परिवार के पास करांडा की सम्पत्ति थी । इस सम्पत्ति के प्रतिरिक्त महाराणा ने मायागाह और उसके छात्र भाई ताराचन के मायागाह में सम्पत्ति भूत कर लाया की भेजा । राजा भाइया १२०० भां रें लूक करव ला कर महाराणा का प्रस्तुत की । अकरन के मायागाह का राजा ने पीछा किया और लूक लाने बमा ग्राम के पास ताराचन पावत हुआ गया । तब बगल में स्वामी मायागाह उगरी उठाकर देगवा और उपचार का समुचित व्यवस्था कराई ।

इस प्रकार विगाह सम्पत्ति के मिलजान में प्रताप ने अपनी खादहूँ भूमि का वापस प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली । मवाद में चित्ती कमरपैनी के मूल्यपूत्र दुर्गों का छात्रकर पाप सार भाग पर उसका अधिकार हो गया था ।

मामागाह और ताराचन दोनों कुल गनिन भाषा । इस पानी के कुल में राजा सत्यनारायण के थे । मामागाह द्वारा जारी नियम के अनुसार भी मित्र है । ये मायागाह प्रताप के नामनारायण के हैं और ये मा १६३३ से लेकर १६४१ तक के मित्र हैं । ताराचन उस समय गौडराज के नामनारायण का प्रतिनिधि था । इसन इस नगर की सत्ता मुन्दर व्यवस्था की थी और गौडराज का नाम अधिकांश नहीं करने दिया था । नामनारायण की सत्ता में

१ डा० गोपीनाथ गर्मा मेवाड़ छण्ड मुगल एम्परर

२ बीर बिनी मा २, प० १५१ । शोभा उदयगर राज्य का इतिहास भाग १ प ४३२

३ महाराणा प्रताप के समय के कुल साक्ष्यत्र जिनपर मामागाह का नाम प्रयाण के रूप में अंकन है इस सम्बन्ध में उल्लेख है —

(१) वि स १६४४ का दिगम्बर जन मविर कपमदेव का ।

(२) वि० स० १६३३ का कल्पवृक्ष का साक्ष्यत्र— महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापमीश आदेगाव शाचाय वाचाजी या जितनहास ब्रह्मन् कश्यप ग्राम १ गोपालो गया कीचो उदरे प्रादात् दत्ता कमलदेव मध्ये सवन १६३३ वर्षे मादवा सुनी ५ रवी नीपुत्र प्रति हवम दो दो रायजीसाहनामी पहला पत्तर ले गया लुप्तो गया सु गोबे कर गया कीचो —(मेवाड़ छण्ड मुगल एम्परर प २८)

इस साक्ष्यत्र में स्पष्ट है कि इस सवन तक अग्रपदेव यह मेवाड़ का प्रधान हो चुका था ।

(३) वि स० १ ६५ का साक्ष्यत्र जहाजपर का

सिध जी महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापमीश आदेगाव तिवारो हाटल मापन सवन कागा गोपाल टोला घरनी उदर आग राणाजी श्री जी हा रा पत्र कराव दोधो को प्रमण जानपुर रा ग्राम पदरमट्ट हल घरती बागा गावा करे दाधो चीपुत्र हुवम हुआ । साह भागा । सवन १६४५ कातो सुनी १५ ।

(४) वि स १६५ का साक्ष्यत्र—

महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिध आदेगाव घोषरी राहितास कश्यप ग्राम मय कीचो ग्राम टईलाणा घडा माहे घेत ४ बरमातो रा उर स० १६५१ वर्ष माघीन सुद १५ वज चीमल चीमान सा० नामा ।

इस उपरोक्त विवरणों से उक्त वर्षों में उक्त बराबर प्रधान रहने की बात सिद्ध होगी है ।

५ गौडराज का बराबर न्त क्षेत्र में लड़ रहा था । रामपुरा मजबूत की ला धरो में सुरसित तारीफ प्रचारी जो हाजी मोहम्मद आदिल कछारी ने लिखी है इस सम्बन्ध में स्पष्ट है । "मय वि० स० १६३३ में ही राजा ने गौडराज की इस क्षेत्र में सत्ता दिया था । जसमेर अशर प भोजविरन की हस्तलिखित प्रति संप्रोत है जिसमें वि स १६४५ की प्रगति दी है जिसमें कमलपुत्र के पिने निष्ठा है— कमलपुत्र कुल विपरीत निजयो मयनि लय यहाँ अकरव का राज्य भी उल्लिखित किया है आदि । गौडराज की पुन विजय वि स १६३५ में मिली थी । उस समय भी घोने और घातकी से । कछारी ने सिधराज और फेदरादा गौड प्रमुख किये हैं । इस प्रकार निरंतर दो वर्षों तक गौडराज की इस क्षेत्र में बराबर सत्ता रहा था ।



वादशाह की ओर ने आश्रमण होते रहते थे । उनका उमने मकलनापूर्वक सुगवला निग था ।^१

वीर-विनोद ने दिये गये वृत्तान्त के अनुसार भामाशाह^२ को अष्टुरहीम गानमाना ने महाराणा को जवहर की अधीनता में लाने के लिये बहुत समझाया था और हर तरह से उसे योग दिया गया था किन्तु त्यागमूर्ति भामाशाह ने उसे नकारात्मक उत्तर दे दिया ।

लू कागच्छ की सेवायें

भामाशाह-परिवार लूकागच्छ का मानने वाला था । उस पट्टाचार्य में दिये गये वृत्तान्त के अनुसार शीष्टर आदि मेराठ के कई गांवों में लूकागच्छ के फैलाव के लिये हमने बड़ी मशरूफा दी थी । कई दिग्गवर परिवारों तक को हमने दीक्षित कराया था । लोगों को लामों रुपये की धन ने भी मशरूफा दी थी । ताराचद ने भी मोटवाट में हम कार्य को किया था । मोहनलाल दलीचद देसाई लिखते^३ हैं कि भामाशाह के भाई ताराचद को मोटवाट की शक्तिमी मिलते ही वह मादडी में रहने वाले लूकागच्छीय माधुओं का पग देने लगा । हमने मूर्तिपूजा दन्द तो नहीं तर्गई किन्तु पुष्पाणि वस्तुमें हमने लिये प्रजिन कगदी । इसके प्रभाव ने कारण कई लोग लूकागच्छ में आ गये । हमने मूर्तिपूजकों पर कई अत्याचार किये । श्री देसाई ने अत्याचार का उक्त कवन श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गाटवाट और मादडी लूकागच्छियों के मनभेद का दिग्दर्शन नामक पुस्तक के आधार पर लिखा है जो तथ्य तक नहीं है कहा नहीं जा सकता ।

कलाप्रेमी ताराचद

ताराचद बड़ा कलाप्रेमी था । हमने भारडी में त्रिशाठ बावडी बनवाई थी और उस पर एक झिलालेख भी लगवाया था । यह बावडी हमने मरने के बाद उनके पुत्र ने पूरी की थी । उनका झिलालेख जर्मा जीर्णोद्धार के समय वहाँ से हटा लिया गया प्रतीत होता है । मैंने कुछ वर्ष पूर्व उनकी टाप ली थी और उसे पतागि भी तगवा था ।^४ यह बावडी म्यापत्यनला का एक उत्कृष्ट नमूना है । ताराचद के यहाँ कई नगीनज भी थे । मादडी में उनकी छत्री के समीप उनकी चार स्त्रियों की मूर्तियाँ हैं । इनके अतिरिक्त एक खवान, ६ गात्रिकाएँ, एक गवैया और एक गवैया की स्त्री की मूर्तिया भी खुदी हुई हैं । इन पर प्रि० म० १६८८ बैमान बरि ६ के लेख है । हमने प्रतीत होता है कि कलाओं का वह बड़ा मरदक था । बावडी में हमने बैठने का स्थान दगनीय है । वह साहित्यप्रेमी भी था । हेमरतन ने प्रसिद्ध गारा-बादल चौमाई^५ उनके पान रहकर के ही लिखी थी । उनकी प्रशस्ति ने प्रताप के अन्तिम दिनों में उन परिवार की स्थिति का पता चला है ।

१ वीर विनोद, भाग २, पृ० २५७

२ उक्त पृ० १५६ । जोश-उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४४६

३ जैन साहित्यको सक्षिप्त इतिहास, पृ० ५६६

४ मरु भारती अंक ३, पृष्ठ २ से १०

५ सवत् सोलहमइ पणयाल ।

श्रावण सुदी पचमी सुविसाल ॥

पुहवी पीठि धनु पर गही ।

सवल पुरी सोहइ सादडी ॥

पृथ्वी परगट राग प्रताप ।

प्रतपउ दिन दिन अघिक प्रताप ॥

तस मत्रीसर बुद्धिनिधान ।

कावेडिया कुल तिलक निधान ॥

सामिधरमी धुरी भामुसाह ।

वयरी धम विधुपण राह ॥

(पुरातत्वमंदिर जोधपुर की एक प्रति से) यहाँ 'सामिधरमी' शब्द विशेष उल्लेखनीय है ।

भामाशाह के वंशज

भामाशाह की मृत्यु मि. स. १६७६ में हुई थी।^१ महाराणा प्रताप ने बाद में पुनः जमरनिंग के समय में भी वहाँ पर विद्यमान रखा था। उगरी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जीवाशाह मवा^२ का प्रधान बनाया गया। कर्णामि^३ के साथ भविष्य के समय वंश प्रसारण बादशाह के पाग गया था।^४ उनकी मृत्यु के पश्चात् इसका पुत्र अग्रज राज मवा^५ का प्रधान बना था। इसका वंश संभजन अन्य राजाओं की वंश अधिकार प्राप्त नहीं हो सका। किन्तु इनका मैं माने यथावत बना रहा। महाराणा स्वर्णपतिजी के समय एक विज्ञान उन् खड़ा हुआ कि ओमवालो की यान में प्रथम तिब्बत किनका किया जावे? इस पर महाराणा ने वि० स. १६१२-१६१३ में बखवार का एक पट्टा लिखकर भामाशाह के परिवार वालों को प्रेषित बनाये रखने और उनको प्रथम तिब्बत करने का आदेश दिया।^६

जब प्रहार भामाशाह की सवाओ में मवा^७ का ही रखा नहीं है अतः समस्त निम्न जाति का महान् उपहार हुआ। अगर यथासमय उन की रक्षाका भामाशाह परिवार नहीं देना था संभवतः प्रताप मवा^८ छोड़कर चले जाते। यहाँ का विज्ञान कुछ और है। प्रताप की रक्षा यज्ञान और अग्रज साहम की रक्षा के साथ साथ भामाशाह की स्वामित्व की रक्षा के लिए भी था।

सावडी का गिनतिलेख

माननी का उन तारा बाकी का गिनतिलेख में आशा अथर्वसिंह के नामनका के प्रारम्भिक वर्षों का है। जमम भामाशाह के विना भारमल के बावना ही नहीं है। इसमें कुल २२ परिवार हैं। लेख मि. स. १६५४ में लिखा है। ताराका उस समय स्वयंसेवक हुआ था। उसका पुत्र सुरक्षाण ने इसका प्रतिष्ठा कराई थी। लेख में भामाशाह की भाषा कर्णामि की का उल्लेख है। यह तल्लेख भी में दर्शाता है कि महाराणा प्रताप के अन्तिम निवास में जम क्षेत्र का मुक्तमाना से पुनः जम में स्थान करा दिया था। इस बात की पुष्टि मि. स. १६५१ के डकाना (गोवा) नामनका से होती है। यह तल्लेख भामाशाह के महाराजा से जाग किया गया था।

परिनिष्ट १

नागपुरीय लुकगच्छीय पट्टावली में भामाशाह का वर्णन

तल्लेख में दाखल सवरी अथर्वसिंह वरीक्षक बाबावा बाबाविधिपदनी नामा जमम मनपती जननी नामागपुरी बाबाविधि पदनीपदनी नामा जमम । तबन १६१६ दिवसुत मंगुतुं बाबाविधिपदनी नामा जमम ।

१ ओशा-ज मपुर राज्य का इतिहास भाग २ पृ० ६६२-६३

२ उक्त भाग २ पृष्ठ ६६३

३ उक्त

४ स्वस्ति श्री उद्योग सुमनुमान महाराजाधिराज महाराणा श्री स्वर्णपतिजी आदेशानु बावड्या जचर कनन वीरवद हस्य अग्रज बाबा बडा बासा भागो बावड्या ही राजपुत्रे सागम बागु काम बाबाकी बरी जिबो मरजाद ठम्न दिया है—महाराणा की जातपुत्रे बाबाकी बा बाबा की ओयम बा साग पजा हावे ओम्ने यह सप पहली तनक बावे हो तो हो तो अपना जमर सेठ बैभोदाय बासो कर्षो अर बैवर्षाजिन तलक बावे मही करवा बीबी अबाद भारी सातवीं बीबी सी नम बरी अर बास म्ने हवसर माजुन हुई मो अब तनक गावक इतर के ये बाबी बराय जमी भाग सु बास हवसर कर बीबी हो तो पनी तलक बावे होवेगा। प्रधानकी मत्ता सेरसीय सवत १६१२ ज्येष्ठ सुबो १५ बुधो ॥





गणियोऽभूत् । तेन देपागरमूरीणामभिवान शुद्धत्रियाधारकत्वं च श्रुतम् । तदादित एव तद्गुणगञ्जितचेतस्कोऽवदन्
श्लोक —

धन्यो देपागरस्वामी प्रदीपो जैनशामने ।

एष एव गुरुर्मोऽस्ति धन्योऽहं तन्निवेशकृत् ॥

इति भावनया युद्धात्माऽभूद् भारमल । तस्मिन्लवमरे तनत्यो भामा नामो नाहटोऽस्मि । तद्गृहेषूप्यत्रोपाद्
दक्षिणवर्त्तं गच्छ प्रादुरभूत् तत्मानिध्याद् गृहेष्ठादशकोटयो धनस्य प्रवटी भवन्ति एकदा तत्र बलान्चर्मण्ड-
पाद्यो धर्मध्यानं विदधत् नाद्युगुणग्रामाभिगम श्रीदेपागरस्वामी शुद्ध तत्रोद्यमे भारमल्लेन दृष्टो विदिवद् वन्दितश्च ।
शुद्धधर्मोपदेशामृत पीत श्रवणाभ्याम् । अति प्रमत्नेन भारमल्लेन विमृष्टमहो । महान् भाग्योदयो मे प्रकटितो प्रदीपगुण-
गौरवो दृष्ट । सर्वेऽर्थो मे नेत्यन्ति । तदा भारमल्लान्वये च बहव श्रावणाजाता नागोरी लूटकगणीया । जय भारम-
ल्लस्य भामानामकनुतोऽजनि । महान् महं कृत । नर्वन दानादिनार्जयजनमनोरथा पूरिता । अन्येपि ताराचन्द्राश्च पुनः
अभूवन् । तत्र भामाशाहताराचन्द्रो विद्युतो जानी । स्वगच्छरागेण बहवो जना स्वगणे समानीता । पुनः श्री राणाजी-
तोऽस्मात् पदं लप्त्वा बलिनी जानी । ताराचन्द्रेण सादडी नाम नगरं स्थापितम् । नवत्र पीपध शास्त्रादिकानि स्थानानि
कारतानि । स्थाने स्थाने पुरे पुरे ग्रामे ग्रामे बहुजनेभ्यो धनं दाय दायं स्व गणीया कृता । श्री नागोरी नुकाटगोऽतिरया-
तिमाप । पुनः भामाशाहेन दिगम्बरमतगा नरमिषपीरा स्वगणे समानीता । बहु स्व दत्त्वा १७०० गृहाणि तेषामान्मो-
यानि कृतानि । मिण्डरकादि पुरेषु तदा च जात श्रावणगृहाणा चतुरगुणितमहत्वाधिकं उदमेकम् ।

(द्विविधगच्छीय पट्टावली मे)

परिशिष्ट २

सादड़ी का तारावावड़ी का शिलालेख

मूल शिलालेख

- (१) ॐ ॥ श्री गणेशाय नमः । श्री ब्राह्मणेन नमः ।
- (२) (श्री) लक्ष्मीनारायणाय नमः ॥ श्री उग्रमहे—
- (३) स्वराय [राभ्या] नमः ॥ अथ श्री नृपविश्वमार्कं नमय (या)
- (४) त् ॥ सवत् १६५४ वर्षे शके १५२० प्रवर्तमाने
- (५) महामागल्यप्रदवैशाख (१) मे कृष्णपक्षे द्वि-
- (६) तीयाया तिथौ बृहस्पति (ति) वामरे श्रीमादडी
- (७) नगर ॥ महाजाधिराज महाराणा श्री श्री
- (८) अमरगुप्तजी विजयराज (ज्ये) उमवाली जाती
- (९) य कावेडीय गोत्र श्रावणवरद विराजमान
- (१०) साह श्री मारमल्लतद्धार्या शीलानकारघा-
- (११) रणी अनेकतुल्य पुरुषाद (पेन्थ) महापुण्यकार-
- (१२) णी नादेचा गोत्रगायि (य) श्रीगगाजल-निर्मला
- (१३) माइ श्री कर्पूरनाम्नि तयम (तस्या) पुत्रस्य

- १४) तारचदस्य एकागमतासहित (३) सपुयथ (पुण्याथ)
 १५) नयाथ श्रीताराबाविनामक तीस कारित
 १६) तत्पुत्रण साह सरताण (पुरत्राण) जोनाम वेन प्रत (ति)
 १७) पत्यमान विजोयोना (विजयाना) [म] शुभ भवतु । ठ
 १८) यावत भूम्यशता घरा विजयते यावदभजया
 १९) यिप पाताले पवमानपूरिततनुधाववि
 २०) चद्र मा । तावसिप्यनु तोषमतमदल बा
 २१) यी महामदया साह श्री मुरनाणवेन वि
 २२) हित मागत्यपुष्टिप्रद ॥ श्रीरस्तु । श्री ॥





चतुर्थ खण्ड



• साहित्य

मज्झिमनिकाय मे उपलब्ध जैन शब्दावली एव उसका तुलनात्मक विवेचन

डॉ० परमेश्वरीदास जैन

गाथी एम०ए० बी०टी० पी०एच०डी० आचार्य गुरुकुल गुरदासपुर (म०प्र०)



जिसी भी धर्म का स्वरूप उमर साहित्य में मिलता है। साहित्य के द्वारा हम न केवल धर्म का सम्बन्ध में जानना प्राप्त होता है बल्कि समाज तथा समय के अनुसार धर्म की व्याख्या में क्या-कैसे परिवर्तन परिचयन या संश्लेषण हुए हैं एवं कब कबाना की जानकारी मिलता है। हमें विधायक समावाजीय अथवा समावाजीय का साहित्य में भी अथवा धर्म का सम्बन्धित धर्म-जन्म मामलों विषयी पता चलता है।

अधिकांश जन तो रक्षा की परम्परा पौराणिक है परन्तु वर्तमान में प्राप्त जन साहित्य का प्रारम्भिक स्तर जग साहित्य धर्म का समान पुराना नहीं है। फिर भी उस बौद्ध विद्वत् का समकालीन माना जाता है। जन एवं बौद्ध विद्वत् का तब नाम हमें 'याज्ञिक' की साधना पर अधिक जोर दिया है। उन्होंने हिंसा जाति धार जन्मकारी प्रवृत्तियों का उन्मूलन करने का अर्थ और साधन प्रयास किया है। समय और परिस्थिति के अनुसार जन और बौद्ध प्रचारण की नौ प्रकार में एक में प्रयास का और धुनना पड़ा।

(१) तराणीय बौद्ध विचारधारा न अपने बौद्ध का अर्थव्यवस्था तथा नित्य बना था। भारतीय जन की हमें श्रद्धा की भाव को मिलता था। उनकी प्रामाणिकता में शक्ति का धारण होता था। वे भी भक्ति धर्म की श्रद्धा में प्रबल विरोध करने उद्यत स्थान पर अतिशय सखी के आत्म साम्यपरक सिद्धांतों का प्रचार करना था।

(२) दूसरी बात है जना और बौद्ध का एक ही स्थान और एक ही समय पर अपने अपने सिद्धांतों का प्रचार करना था। बाद में जन और परिस्थिति का साहित्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है। महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर में विद्वत् में अन्तर नहीं है। वे भी उद्योग कायदेश्वर रहते हैं। एक दूसरे का सम्पर्क परस्पर में मिलने के लिये है। एक धर्म का मानने वाला दूसरे धर्म में भी दाखिल किए गए। ऐसे महात्मा बुद्ध ने बुद्ध धर्म तथा आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न में कई धर्मों की साधना की।

हम जाना का प्रभाव यह हुआ कि हम दोनों जगण ससृष्टियाँ एवं उनके साहित्य में न केवल बने सामान नियात्रा आचरण तथा गीतों का उल्लेख पाया जाता है बल्कि उनकी व्याख्या या विवेचन भी सामान्यता प्राप्त हुए हैं।

मज्झिमनिकाय का बौद्ध साहित्य में एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें स्थान-स्थान पर जगणान् महावीर तथा उनकी सिद्धांतों का सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। जिस समय जगणान् महावीर की निवाण पावा में हुआ था उस समय भगवान् गाथक सामग्रीय में विचार करने थे। जगणान् के विमानन हात का उद्देश्य भी यही मिलता है।

जगणान् में प्रमुख हातवाला गणवन्नि मज्झिमनिकाय में प्राप्त होता है। इन गीतों में न केवल

का नाम मात्र उल्लेख पाया जाता है जबकि कई गद्यों की विस्तृत व्याख्या भी मिलती है। जो गद्वर इस ग्रन्थ में उपलब्ध हैं, वे निम्न प्रकार में दिये जाते हैं —

ज्ञान, ध्यान, मोह, द्वेष, श्रेय, मार्ग, श्रमण, मुनि, जिन, अचेतन, ज्ञान, प्रज्ञा, लक्ष्य, पुण्य, पाप, निदान, ऋद्धि, निर्वाण, ब्रह्मचर्य, तृणा, वेदना, मजा, नील, समायि, नदाचार, उन्मिदय, मयम, व्याग, मर्यज, अहन्, नग्न, स्वर्ग, चन्द्रवर्ती, अपरिग्रह, गन्ध, दुग्ध, आत्मवाद, अनात्मवाद, वस, आनन्द, मय, मोदना, मीदर, वित्त, निगन्ध, सम्यग्दृष्टि, योनि, अटल, औपपत्तिक, जगद्युक्त, मातृ, उर्या, केवली, गति, गुणि, पुद्गल, विमुक्ति, गद्यकुटी, देव-निजाय, मन्धान इत्यादि ।

इन गद्यों में से निम्नलिखित गद्यों का विशेषण मिलता है —

- (१) सम्यग्दृष्टि
- (२) भावना
- (३) निर्वाण
- (४) योनि
- (५) जल्प
- (६) उन्मिदय
- (७) स्वर्ग-नग्न
- (८) आनन्द
- (९) गति

(१०) जिन, अहन्, मुनि, केवली, जैश्व ।

सम्यग्दृष्टि —

मज्झिमनिकाय (१-१-६) में सम्मादिट्ठि मुत्तान् नामक सूत्र है। इसमें सम्यग्दृष्टि का वर्णन किया गया है। आर्य आचर सम्यग्दृष्टि होता है। उसकी दृष्टि नीची, वह धर्म में अत्यन्त श्रद्धावान् और इन नद्वर्ग को प्राप्त होता है। आर्य आचर अकुण्डल को जानता है। अकुण्डल-मूल को जानता है। कुण्डल को जानता है और कुण्डल-मूल को जानता है। इतने में आहुसो ! आर्य आचर सम्यग्दृष्टि होता है।”

इस ग्रन्थ में अकुण्डल की गणना १० तथा अकुण्डलमूल की गणना ३ में बताई गई है।

(१) प्राणानिपात (हिमा) (२) जदत्तादान (चोरी) (३) काम (स्त्रीमर्ग) में मिव्याचार (४) मृपावाद (भूत बोलना) (५) पिण्ड वचन (चुगली) (६) पण्य वचन (कठोर भाषण) (७) मप्रलाप (बकवाद) (८) अभिध्या (नालच) (९) व्यागद (प्रतिहिता) (१०) मिव्यादृष्टि (भूठी वारणा)। यह आहुसो अकुण्डल कहा जाता है।

(१) लोभ (२) द्वेष (३) मोह अकुण्डलमूल है। इसके विपरीत कुण्डल और कुण्डलमूल का विवेचन इन सूत्र में किया गया है।

जैनदर्शन के अनुसार सम्मन्दर्शन साधना का मूल है। भावना में बाधा डालने वाला मोहधर्म है। मोहधर्म मूल रहने के कारण ही व्यक्ति अपनी साधना करने में असमर्थ रहता है। मोह में राग और द्वेष भी सम्मिलित रहते हैं अर्थात् राग द्वेष और मोह ही व्यक्ति की साधना में अत्यधिक बाधक हैं। इसी प्रकार मज्झिमनिकाय में कुण्डलों की जड़ लोभ, द्वेष, और मोह बताया गया है।

मज्झिमनिकाय (१५३) में एक उल्लोत्तर मिलता है। सम्यग्दृष्टि के गृहण में किनने प्रत्यय है ? दो प्रत्यय हैं (१) दूसरो में घोष (उपदेश श्रवण) और (२) योनिश समस्कार (मूल पर विचार करना)।

इसी प्रकार जैनधर्म में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के दो कारण बतलाए गए हैं। आचार्य उमास्वाति ने लिखा

है कि सम्प्रदायन की उत्पत्ति म दो कारण हात हैं (१) अविगम और (२) निष्ठम । इनका तात्पर्य वही है जो महिमामनिकाय म बताया गया है ।

अब हम यह दखना है कि महिमामनिकाय म जिन कुलन धर्मों का विनाश है (११६) उनम जनमतानुसार वर्जित महाप्रता म कमे सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है ?

साधना की पांच भूमियाएँ हानी हैं उनम सबप्रथम सम्प्रदायन की ही स्थापना किया गया है । इनके द्वारा विरति का स्थान भिन्न है । प्रत्येक पांच हात हैं—

(१) आह्ला (२) मत्प (३) अचाप (४) ब्रह्मचर्य (५) अपरिग्रह ।

हम दखन है कि सम्प्रदायिनि सुतत म जिन १० कुलन धर्मों का उल्लंघन आया है वे सब ५ महाप्रता म अनुप्राप्त ही बढत हैं ।

| महाप्रता | कुलन धर्म |
|----------------|--------------------------------------|
| (१) आह्ला | (१) प्राणातिपात (२) स्थापान स विरति |
| (२) मत्प | (४) स्थापान (५) पितावचन (६) पश्य वचन |
| (३) अचाप | (७) सप्रज्ञा से विरति |
| (४) ब्रह्मचर्य | (२) अन्तर्ज्ञान स विरति |
| (५) अपरिग्रह | (३) काम म मिश्याचार से विरति |
| | (८) अभिष्या म विरति |

उन सभी का मूल (१) मिश्यापटि स विरति ही है इसलिए कुलन धर्मों म इसे भी जाड़ किया गया है । जनधर्म म भी इन कारण करी क मूल मिश्यापटि स रहित होने के लिए कहा गया है । इनका इनका अधिक महत्त्व प्रदर्शित किया गया है कि सम्प्रदायन क अभाव म सच्चा चारित्र्य ही नहीं बनता ।

भावना

सम्प्रदायन क साथ ही भावना का वर्णन आता है । भावना निरंतर चिंतन करने योग्य है । महायमक कर्म के अंतर्गत मूल अस्वपुर सुतन्त्र म भावना का वर्णन आता है ।

मन्त्री कहना मुश्किल उपमा की भावना करने वाला आध्यात्मिक गति प्राप्त कर सकता है । भिक्षुओं । भिक्षु धर्मण सामीची प्रतिपत् (मच्छा दमन बनाने का माग) पर बन आरुह हो सकता है ? भिक्षुओं । जिस जिस अभिध्यानु भिक्षु का अभिध्या (नाम) नष्ट होती है मिश्यापटि नष्ट होती है (बहु) उन धर्मण मन्त्री क विनाश स धर्मण सामीची प्रतिपत् पर मागारुह करता है । (फिर) वह उन सभी पापक धर्मों से अपने का विगड दगता है अपने का विमुक्त बनता है । (फिर) उन सभी पापक धर्मों से अपने को विमुक्त विमुक्त देवन वाल उन (धर्म) का प्रमो उत्पन्न होता है । प्रीतिमान की भाषा स्थिर होती है । स्थिर गतीर सुख अनुभव करता है । सुखित का चित्त समाहित (एकाग्र) होता है । क मनीयुक्त चित्त मे एक गिना का प्भावित कर विरता है और दूसरी गिना और तीसरी और चौथी सभी प्रकाश ऊपर नाथ निरखे सबकी च्छा स सबक अथ सभी साव का विपुल महान अग्रमाण जबर दपरहित मन्त्राणु चित्त म प्भावित कर विहरता है ।

तत्त्वाध्याय मूल ने सप्तम अध्याय म धना का भावना का वर्णन है । उनक अंतर्गत निरंतर चिंतन करने योग्य चार भागनाएँ आता हैं । मन्त्री प्रमो वाक्य और माध्यम्य भावनाका का चिंतन करना चाहिए । इस मूल

१ तत्त्वाध्यायमूल—सत्तिसर्गादधिकारमूल १३

२ महिमामनिकाय १४१

३ मन्त्रीप्रमोहास्यमाध्यस्थानि च सच्चगुणाधिकविलम्बमानाद्विनिधय स सु ७११





मे यह स्पष्ट किया गया है कि निनके साथ कैसी भावना करना चाहिए । प्राणी मात्र मे भिन्नता की भावना रखना, अधिकगुणों के धारी जीवों को देखकर आन्तरिक प्रसन्नता प्रकट करना, दुर्गी जीवों को देखकर उनके प्रति उपकार करने की भावना रखना तथा विरोधियों के प्रति मान्यमन्य भाव रखना ये ४ भावनाएँ ह । इन भावनाओं को १० जुगलकिशोर मुस्तार ने मेरी भावना मे सुन्दर ढंग मे रखा है—

मैत्री भाव जगत् मे मेरा सब जीवों मे मिल्य रहे ।
 दोन दुर्गी जीवों पर मेरे उर मे रक्षा-मन्योत रहे ॥
 दुर्जन दूर कुमार्ग-गन्तो पर धीम नही मुझ्गे आवे ।
 साम्यभाव रखूँ मैं उन पर ऐसी पणिनि हो जावे ॥
 गुणी जनों को देव हृदय मे मेरे घेमे उनउ आवे ॥

दोनों धर्मों मे उल्लिखित चार भावनाओं का समान वर्णन उपर्युक्त होता है । मिर्क प्रमोद के निम्न मुद्रिता तथा माध्यस्थ्य के लिए उपेक्षा शब्द का प्रयोग किया गया है किन्तु अर्थ मे कोई भिन्नता नहीं है ।

निर्वाण

आरोग्य परम लाभ है । निर्वाण परम सुख है ।^१ जो वह तृणकाष्ठों के उपादान को लेकर जमी, उसके पर्यादान के और अन्य (तृण काष्ठ) के अनुपहार ने आहार बिना बुझ गई (निर्वाण प्राण) वही नाम होता है ।^२

जिम रूप ने (उन्हें) जलवाया जाता, वह रूप (ही) तयागत का प्रहीण (नष्ट) हो गया, उच्छिन्न मूल, शिरकटे ताड़ जैसा, अभाव प्राप्त, भविष्य मे उत्पन्न न होने लायक हो गया ।^३

पाँच अवर भागीय मयाजनों के धय मे औपपानिक (देव) हो उन देवश्रेष्ठ मे निर्वाण प्राप्त करने वाला, उन लोक ने लौटकर न आने वाला हो ।^४

मज्झिमनिकाय (१-३-८) मे निर्वाणमार्ग का पूरा वर्णन मिलता है । इसके अनुसार बताया गया है कि शीलविशुद्धि तभी तक है जब तक कि पुण्य चित्तविशुद्धि को प्राप्त नहीं होता, चित्तविशुद्धि तभी तक है जबतक कि दृष्टिविशुद्धि को प्राप्त नहीं होता, दृष्टिविशुद्धि तभी तक है जबतक कि व्याख्या वितरण विशुद्धि को प्राप्त नहीं होता । काया वितरण विशुद्धि तबतक है जबतक मार्गमार्ग ज्ञान दर्शन विशुद्धि को प्राप्त नहीं होता । मार्गमार्ग ज्ञानदर्शन विशुद्धि तबतक है जबतक कि प्रतिपद ज्ञान दर्शन विशुद्धि को प्राप्त नहीं होता । प्रतिपद ज्ञानदर्शन विशुद्धि तबतक है जबतक कि ज्ञानदर्शन विशुद्धि को प्राप्त नहीं होता । ज्ञानदर्शन विशुद्धि तभीतक है जबतक कि उपादान रहित परि-निर्वाण को प्राप्त नहीं होता ।^५

अजात (जन्म रहित) अनुत्तर (नवोत्तम) योगक्षेम (मग्नमय) निर्वाण की पर्येषणा करना है ।^६

आत्मवादी का परम या चरम माध्य मोक्ष है । इसलिए जैनदर्शन के विवेचन का मुख्य उद्देश्य आत्म-विक्रम है । आत्मविक्रम का अर्थ है आत्मा की स्वाधीनता अर्थात् उसका कर्म की परतन्त्रता मे छुटकारा । यह तीन रूप से होता है —

(१) गरीरमुक्ति

१ मज्झिमनिकाय २।३।५

२ वही २।३।२

३ वही २।३।२

४ वही २।३।३

५ वही १।३।४

६ वही १।३।६

(२) चपनमुक्ति

(+) शिवामुक्ति

पाप का प्रत्याख्यान शक्ति समोन्नत शरीर समय बाकी समय मानमाया परिहार श्रद्धा रस और मुख प मोरव का शराग उपाय अहिंसा अचोय सय अहंकार अपरिग्रह धर्मा ध्यान योग और वाय-व्युत्सग—ये अष्टमयीय हैं। पणित इनका शराग मास का परिदायक बनता है।^१

तत्वायुय म माय या निवाण का माय भूय रूप म सम्यग्गान सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एवता बनलाई गई है।

शक्ति का शब्द का नाम नश मुक्त आत्मा की निर्वीण है। व ताकाय म रहनी है। इमतिग उपचार हटि म उग भी निवाण का ज्ञान है। मुक्त जीव अनाय से प्रतिष्ठित हैं। ताकाय म प्रतिष्ठित हैं। मनुष्यगत म मोरीर मुक्त जीर सिद्धि क दोष म व मिद्ध हूण हैं।^२

मुक्त जीव आशीरीर जाने हैं। मुक्ति शक्ति म आत्मा का शिमी दूसरी शक्ति मे विद्युत नही होता। मुक्त पाप का शिवाय की शक्ति म भन नही होता। उनरी सता स्वतन्त्र होती है। सता का स्वाभाविक मास की शक्ति का बाधन होता है।

मुक्त शक्ति म आत्मा सत्य सभाविक औपाधिक विपताका मे विरहित हो जाती है। मुक्त हान पर पुनरागत न होता।

मन्त्रि शक्ति शक्ति म शक्ति निर्वीण क विवेचन पर दृष्टिगत किया जाय तो जहा माय की एकरूपता दृष्टिगत होती है। वना निवाण क सम्बन्ध म सत्यता प्रतिष्ठित दृष्टिगत रखा गया है। निर्वीण के माय म सत्त्वा विन्वास पाप और आचार विचार को बोना म प्रधानता दी है परन्तु जहा बोद्धमयानुसार द्रव्य सत्ता का अभाव ही निर्वीण है वग जनमान आत्मा का गुड अवस्था को निर्वीण करता है। सत्ता के परिभ्रमण का अभाव उतम हो ही जाता है अथवा मुक्तजीव सत्ता म उत्तम हान गायक नहीं रहता। इस दृष्टि से उतम अभाव प्राप्त मानने में कोई हानि नही है परन्तु शक्ति का ही ताप मानने में व अक्षय उत्पन्न हो जायेगी जिसका शक्ति व्यवस्था ही सग हो जायेगी।

धोनि

मन्त्रिमन्त्रिकाय म शक्ति का चार भेद बहे हैं।^३

(१) अहं शक्ति—जो प्राणी अहं क शक्ति का वादवर उत्पन्न होते हैं वह अहं शक्ति नहीं जानी है।

(२) जरायु शक्ति—जो प्राणी शक्तिशाली (जरायु) को छोड़कर उत्पन्न होते हैं।

(३) स्वतन्त्र शक्ति—जो प्राणी शक्ति शक्ति मुक्त शक्ति का शक्ति (गच्छे) ओव गिल्ल (गच्छे) म उत्पन्न होते हैं।

(४) औपाधिक शक्ति—शक्ति नरक के जीव कोई-कोई मनुष्य और कोई-कोई विनिपातिक (नीचे गिरने वाला) म औपाधिक शक्ति का जाती है।

जनमान म योनिवा के भेद अल्प म गिनता है।^४ परन्तु जन्म के भेद म जो वचन आया है वह बोद्ध दान के योनिभेद से भिन्ना जुता है। सम्मूह्यन म और उपपाय के भेद स जन्म तीन प्रकार का होता है।^५

१ सूत्रहस्तांग १। ८। १६

२ सम्यग्ज्ञान ज्ञान चारित्र्याणि शोभमाय १। १

३ औपाधिक सूत्र

४ म नि० १। २। २

५ तत्वायुय २। ३०

६ वही २। ३१





गर्भ जन्म मे जरायुज, अण्डज और पोतज इन तीन भेदों का समावेश किया गया है।^१ उस प्रकार जडज और जरायुज गर्भ जन्म के अन्तर्गत आते हैं। सम्मूर्द्धन जन्म और स्वेदज का वर्णन विलुप्त एकमात्र है। औपपत्तिक और उपपाद मे अन्तर नहीं है। सिर्फ एक बात पर ध्यान देना है। मज्झिम-निकाय मे देव और नारकी को उपपाद योनि वात्ता बताया है। साथ ही कोई-कोई मनुष्य और कोई-कोई विनिपातिक भी उपपाद योनि वात्ता बताया गया है। जैनदर्शन मे कई देवता मध्यलोक मे निवास करते हैं और कई देव रत्नप्रभा पृथ्वी (पहना नगर) के रत्न भाग तथा परभाग मे जन्म लेते हैं। मालूम पड़ता है कि इन्हीं बातों को प्रकट करने के लिए ऐसा कहा गया है।

प्राणियों के वर्णन मे उनके भेद विस्तार मे बताये गये हैं।^२ प्राणी दो प्रकार के होते हैं—चर और अचर। अचर प्राणी पाच प्रकार के होते हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय। चर प्राणियों के आठ भेद होते हैं—

(१) अण्डज—अण्डों से उत्पन्न होनेवाले प्राणी अण्डज कहलाते हैं। जैसे—माप, कंचुआ, मच्छ, कव्बतर, काक आदि।

(२) पोतज—जो जीव गुले अंग मे उत्पन्न होते हैं, वे पोतज कहलाते हैं। जैसे हाथी, नटुंग, बूहा, बगुली आदि।

(३) जरायुज—जरायु एक तरह का जाल जैसा रान एवं मांस मे लपड़ा हुआ आवरण होता है और जन्म के समय वह वच्चे के शरीर पर लिपटा हुआ रहता है। ऐसे जन्मवाले प्राणी जरायुज कहलाते हैं। जैसे—मनुष्य, गौ, भैंस, ऊँट, घोड़ा आदि।

(४) रमज—मद्य आदि मे जो कृमि उत्पन्न होते हैं, वे रमज कहलाते हैं।

(५) सस्वेदज—स्वेद (पसीने) मे उत्पन्न होने वाले सस्वेदज कहलाते हैं।

(६) सम्मूर्द्धिम—किमी संयोग की प्रधानतया अपेक्षा नहीं रखते हुए यत्र-कुत्र जो उत्पन्न हो जाते हैं, वे सम्मूर्द्धिम कहलाते हैं। जैसे—चींटी, मक्खी, आदि।

(७) उद्भिद्—भूमि को भेदकर निकलने वाले प्राणी उद्भिद् कहलाते हैं। जैसे—टिट्ठी आदि।

(८) उपपातज—गैय्या एवं कुम्भी मे उत्पन्न होने वाले उपपातज हैं। जैसे—देवता, नारकी आदि।

शल्य^३

यहाँ यह अर्थ है—घ्राण (घाव) यह ६ आध्यात्मिक (शरीर सम्बन्धी) आयतनों का नाम है। विषदोष यह अविद्या का नाम है। शल्य यह तृष्णा का नाम है। एषणा यह स्मृति का नाम है। शम्भ यह आर्यप्रज्ञा का नाम है। शल्यकर्ताभिषक् यह तयागत अर्हत् सम्यक् समुद्र का नाम है।

सुनखत्त, जो भिक्षु ६ स्पर्शयित्तो (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन के विषयों) मे सम्यगी है। उपाधि (विषय संग्रह) दुःख का मूल है—इसे जान उपाधि मे रहित हो उपाधि के क्षय मे मुक्त हो गया है, वह उपाधि मे काया को लगावेगा या चित्त देगा, यह संभव नहीं।

तत्त्वार्थमूत्र^४ मे जहाँ व्रतों का वर्णन आया है, वहाँ बताया गया है कि व्रतधारण करने वाले व्यक्ति को शल्य-रहित होना चाहिए। जो आत्मा को काटे की तरह दुःख दे उसे शल्य कहते हैं। उसके तीन भेद हैं—१ माया शल्य (छल-कपट करना) २ मिथ्यात्व शल्य (तत्त्वों का श्रद्धान न हाना) ३ निदान शल्य (आगामीकाल मे विषयों की वाञ्छा करना)।

१ वही २। ३३

२ जैनदर्शन के मौलिक तत्व पृ० ८५। ८६

३ म० नि० ३। १। ५

४ त० सू० ७। १८

बोद्ध प्रयानुसार पाँच इन्द्रिया के विषया म मयम रखने के लिए कहा गया है ।

इन्द्रिय^१

पाँच इन्द्रिया हैं—चक्षु रीति घ्राण जिह्वा वाय । न पाँच इन्द्रिया का प्रतिपन्न मन है । मन मनक विषय का अनुभव करता है ।

पाँच काम गुण हैं ।^१ (१) चक्षु म विषय रूप (२) श्रोत्रविषय शब्द (३) घ्राणविषय गन्ध (४) जिह्वाविषय रस (५) वायविषय स्पर्श ।

अचारण मूत्र व शस्त्रपरिण अश्वयन म का इन्द्रिया का वर्णन आया है । मिम कहा गया है कि रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श घनानिया के लिए आवृत्त रूप हैं ऐसा समझकर विवेकी को इनमें मूर्छित न होना चाहिए । मन्म प्रमाण के कारण पद इनकी ओर झुकाव रहा हा वा ऐसा निश्चय करना चाहिए कि अब मैं जनक शब्दों— इनम नही फसूँगा—पूर्ववत् आचरण न होना चहिये ।

स्वयन्तर

मन्ममनिकाय^२ म स्वयन्तर जाने क कारण वर्णन मण है । अधर्माचरण क कारण बो प्राणी बाधा छाड़कर मरने के बाद नरक म उत्पन्न होते हैं । धर्माचरण क कारण गृहनिधियों । बो प्राणी सुगति स्वर्गलोक म उत्पन्न होते हैं ।

[कायिक ३] क्लृप्त अस्मितामी (चार) कामा म मिथ्याचार्य [कायिक ४] मिथ्यावादी कुललार मरुप्रभा प्रतीति [मानसिक ५] अविध्यानु याप नक्षित मिथ्यावृत्ति म नरक म जाने है ।

इनके विपरीत कार्यों के करने म प्राणी मरकर स्वयन्तर म उत्पन्न होते हैं ।

‘मायाप्रसूति म गतिपा म उत्पन्न होने का बिना विवरण मितता है । उनम कहा गया है कि जन समय कील तप जाति कारण स यह नीक मरकर स्वर्गनि म उत्पन्न होता है । दवगति म उत्पन्न होने क कारण म समानता अधिक है विपक्षता कम है ।

आस्रव

आस्रव को रोकने म उपायो म मन बचन काय की बिया का ठीक करने के लिए कहा गया है ।^३ उनम से जा कह यति अमररहित होता है उस ठीक स जानता है उसने जाना हागी कि वह म निमित्त को मन म न करेगा गुभ निमित्त का मन म न करने स राग उसने वित्त म न चिन्ता म प्रहार चट रागम मोह मे रहित अमररहित एवं निमनचित रह मयु का प्राप्त होगा ।

तत्वायमून के ६वें अध्याय म आस्रव तत्व का वर्णन आया है । उमका प्रथम सूत्र है— कायवाद्रसन कम योग और दूसरा सूत्र है— म बाधय अर्थात् बाध बचन और मन की बिया को बाध करने हैं और वह योग ही आस्रव कहा जाता है । म प्रवार दोना मता म आस्रव का वर्णन है ।

गति^४

गतिपा पाँच होती हैं । नरक तिय प्रत्यनिषय मनुष्य दवता । न गतिपा म अनन्तन के अनुसार

१ म नि १।५।३

२ वही १।२।४

३ म नि १।५।१

४ म नि १।१।२

५ वही १।२।२



प्रेत्यविषय और देवता एक ही कोटि के माने गए हैं। भले ही निवास की दृष्टि में दो भेदकार दिए जावे परन्तु यही व गति आदि की दृष्टि से एक ही है। जैनदर्शन में ४ गनियों का वर्णन मिलता है।^१

जिन, अर्हत्, केवली, मुनि, शैक्ष्य

मेरे मेरे ही मन्त्र जिन होने हैं, जिनके कि जाग्रत (वैश मन) नष्ट हो गए। मेने पाप धर्मों को जीत लिया है इसलिए हे उपर। मैं जिन हूँ।^२ अर्हत् क्षीणायत (राग आदि से मुक्त) ब्रह्मचर्यवान् नमोत्तम कर चुका, कृत-करणीय व अश्रितभार (भार को फेंक चुका) मन्त्रे पदार्थों को पा चला, मन्त्रान को काट चुका, यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो चुका।^३ जो यह अर्हत् क्षीण जाग्रत (ब्रह्मचर्य) वाम नमोत्तम, कृतकृत्य, भारमुक्त, मत्पदार्थों को प्राप्त, मन्त्रधन रहित, मन्त्रज्ञान द्वारा मुक्त है, वह मार की धारा में निरटे वादस्वस्मिन्मर पार जावेगा।^४ जो भिक्षु अर्हत् (मुक्त) है, वह उन पाच बातों में अमर्य है (१) जानकर प्राण नहीं मार पाना (२) चोरी नहीं कर नकना (३) मैथुनसेवन नहीं कर नकना (४) जानकर भूट नहीं बोध पाना (५) क्षीणायत भिक्षु पञ्चित्तर काम-भोगों को भोग करने के अयोग्य है जैसे कि पहरे गृही होने भोगना या। जो रागों में विस्तृत मुक्त विस्तृत चित्त को जानता है, जन्म मरण जिनका नष्ट हो गया, ब्रह्मचर्य (पूरा हो गया वह) केवली है। जो पूर्वजन्म को जानता है, वर्गनरक को जानता है और (जो) जन्म के क्षय को प्राप्त अभिजा तत्पर (है, वह) मुनि है। जिम्मा अभी नीयना बाकी है, पहुँचे हुए मन वाला नहीं है, भवोन्मत्त योग क्षेम की चाह में विह्वल है।

जैनदर्शन के अनुसार जिन अर्हत् और केवली में कोई अन्तर नहीं है। वे नानान्तर ही हैं। केवलज्ञान की उत्पत्ति में कारण प्रदर्शित करते हुए उमास्वाति ने लिखा है कि मोहनीय तम का क्षय होने में जन्ममुहूर्त्त पर्यन्त क्षीण कपाय नामक १२वा गुणस्वान्ता पारुष बाद में एक मास जानावस्था, दर्शनावस्था और अन्तर्गम्य काम का क्षय होने में केवलज्ञान उत्पन्न होता है। स्पष्ट है कि जिन, अर्हत् या केवली के राग-द्वेष मोह का सर्वथा क्षय हो जाता है। जन्म-मरण के चक्र में भी छुटकारा मिल जाता है और उगरी अत्म-नाशना (ब्रह्मचर्य) भी पूरी हो जाती है। मुनि, नाद्यु, श्रमण, माधक, शैक्ष्य आदि मुनियों का नाम है। शैक्ष्य मुनि वह कहलाता है जो शास्त्र के अध्ययन में तत्पर हो।

इस प्रकार जैन शब्दावलि पर विवेचन प्रस्तुत किया गया। बौद्धधर्म के नमन्त्र ग्रन्थों का आलोडन करने के उपरान्त जैनधर्म के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर विवेचन प्रस्तुत करना लाभकारी सिद्ध हो सकता है। आशा है, विद्वज्जन इस ओर ध्यान देगे।

प्राकृतकथा-साहित्य और उसकी विशेषताएँ

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

श्रीललिताप्रसाद एम ए पी एच०डी० डी लिट०



उत्पत्ति

सूक्ष्मरूप में कथामाहित्य दो वर्गों में विभक्त किया गया है—'प्राकृतकथा साहित्य' और 'अभिजात्यकथा साहित्य'। 'प्राकृतकथा' में लाजमालवी की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति रहती है। कथाकार जो कुछ कहना चाहता है उस समूह की भागी बनकर और समूह में पुनर्गमन कर। य कथाएँ साक्षित स साधे उत्पन्न होकर सब साधारण का आत्मोक्ति चर्चा और प्रभावित करती हैं और जनता की व नी में मिली जाती हैं। इन कथाओं में मानवजाति की आन्तरिक परम्परा का प्रकाश और उनका विभिन्न प्रकार के विधास का समझा पाया जाता है। वृत्त आदिको सम्मान करीक्षण भाव 'अनुपम' रोग 'अप' रूप के साधन प्रसार सामाजिक प्रकाश जाति की 'प्राकृतकथा' का स्वरूप है। अभिजात्यकथा में विभिन्न सम्मान एवं सुखसुविधा समाज के विनाश वधन परम्परा रीति रिवाज एवं आचार विचार का निरूपण रहता है। अभिजात्य कथाएँ गमल समाज की नहीं अभिजात्य वर्ग की होती हैं। इन प्रकार की कथाएँ जनता की योगी में नहीं मिली जाती बल्कि विना सामाजिक परिदृष्टि भाषा में निबद्ध की जाती हैं। सत्य भाषा में किसी कथी कथा भाषा और सामाजिक व्यवस्था का विमर्श होने में अभिजात्यकथा की है। इनमें विभिन्न समाज और संस्कृति उत्पन्न की है जनसाधारण का विमर्श इन कथाओं में नहीं है।

प्राकृतकथा और उसके सामाजिक भेद

प्राकृत कथाएँ 'प्राकृतकथाओं' का संस्करण का रूप में मानी जा सकती हैं। इनमें निम्न और उत्तम दोनों प्रकार का समाज का चित्रण पाया जाता है। प्राकृत भाषा की जनता की भाषा थी जबकि संस्कृत भाषा अभिजात्यवर्ग की। अतः भाषा की दृष्टि से भी इन कथाओं का 'प्राकृतकथा' का निकट मानना युक्तिमूलक है। एसा प्रमाण होता है कि प्राकृतकथाकारों ने 'प्राकृतकथा' को धार्मिक कथा का साधन माना था प्रत्यक्ष चित्रण है जिससे हम 'प्राकृतकथा' का पूर्ण प्रतिफल उपलब्ध है। प्राकृत कथाओं का लक्ष्य मूलतः कथकन प्रत्यक्ष आत्ममुक्ति प्रस्तापना एवं उपसर्जन शब्द मानव के भावनात्मक जीवन का सत्य दर्शन है। आत्मसाधना किसी एक अवस्था में सम्पन्न नहीं होती इसमें निम्न वर्ग जन्म जन्मान्तर में प्रयास करना पड़ता है। जो व्यक्ति किसी का साथ रहता मित्रता या अन्य किसी प्रकार का भाव रखता है उस भाव की निम्न किसी एक अवस्था में सम्पन्न नहीं होती। बर निम्न अवस्था में तब तक रहता है जिसमें व्यक्ति का मुक्ति का निम्न अवस्था में तब तक साधना की आवश्यकता रहती है। कथकन प्रत्यक्ष प्रवृत्ति है जिसमें प्रेम राग पद मगना मोक्ष प्रकाश-वर्ण आदि का भाषा की समाप्ति किसी एक जन्म में सम्पन्न नहीं है अथवा जन्म तब तक सम्पन्न की परम्परा चलती जाती है। पुनर्जन्म का उद्घाटन जन्म और कथकन का भाषा नायक नायिका का 'प्राकृतकथा' का सम्मान में 'प्राकृतकथा' का अनेक रूप प्राप्त होने हैं।

प्राकृतकथाओं का विषय पात्र की दृष्टि से भी प्रत्यक्ष चित्रण का है। विषय की दृष्टि से



अर्थकथा, कामकथा, धम्मकथा और मिथिनकथा ये चार भेद किये गये हैं।^१ पाशों के प्रतापों के आधार पर दिव्य, मानुष और दिव्यमानुष ये तीन भेद किये हैं। जिनमें दिव्यलोक के व्यक्तियों के प्रियास्वाप में स्थानक और यथा-वस्तु का निर्माण होता है, वे कथाएँ दिव्य कहानी हैं। मानुष कथा में पाप मनुष्यलोक के ही रहते हैं, उनके चरित्र में पूर्ण मानवता मन्त्रिबिन्दु रहती है। कथा व पाप मनीव और प्रियापीन होने हैं। दिव्यमानुषीकथा बहुत सुन्दर मानी गयी है। उन छोटी-सी कथा का क्राजाठ मयन और कानामय होता है। चरित्र और पटना, विभिन्न परि-स्थितियों के विजय और मामिक चित्रण, हाम्य-व्यय का सम्मिश्रण एवं मोन्दय के विभिन्न रूप उस कथा में समवेत रहते हैं।^२

शैली के आधार पर मरुतकथा, मण्डकथा, उन्नापकथा, परिशमकथा और मनीशकथा ये पांच भेद किये गये हैं।^३ मरुतकथा में चारों पुरुषाय, नवरत्न, आदय चरित्र एवं जन्म-जन्मान्तर के सन्तान प्रणिन रहते हैं।^४ प्राकृत भाषा में लिखा गया कथानाहित्य गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। लेखकों ने उनमें जनजीवन का पूणतया चित्रण कर साहित्य को अत्यन्त निम्न प्रशान की है।

प्राकृत-कथानाहित्य का सर्वेक्षण

प्राकृतकथा-साहित्य के बीज आगम ग्रन्थों में उपन्यस्त होते हैं। निर्गमि, भाष्य, पूर्णि प्रभृति व्याख्या-ग्रन्थों में छोटी-बड़ी सभी प्रकार की कहानियाँ प्राप्त हैं। आगम-साहित्य में धार्मिक आचार, व्याख्यात्मक तत्त्व-चिन्तन तथा नीति-नैतिकार का प्रणयन कथाओं के माध्यम से किया गया है। मित्रान्तरिपण, तत्त्वनिर्णय एवं दर्शन की गूढ़ समस्याओं को कथा के माध्यम में सुलभता का प्रयत्न आगमग्रन्थों में उपन्यस्त है। अग और उपाग साहित्य में ऐसे मवेदनशील जनेज धाम्यान्त आयें हैं, जो ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं की प्रतीति के साथ वयंरता की निमम घाटी पर निर्माण मुदरनी मानवता को नैतिक और आध्यात्मिक भाव-भूमि पर ला मानव को महान् और नैतिक अधिष्ठान बनाने में सक्षम हैं। प्राकृत कथाकारों ने समाज और व्यक्ति के जीवन की विविधियों पर जितना प्रहार किया है, उनका अन्य भाषा के कथाकारों ने नहीं।

यह सत्य है कि आगम-साहित्य में प्रयुक्त कथाओं में घटनाविहीनता, मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता एवं जीवनित्-पण के लिए आवश्यक वातावरण और कथनोपकरण की कमी है, पर धार्मिकता का समाहार रहने में जीवन को उनके समस्त विस्तार में देखने की प्रवृत्ति वर्तमान है, जिसमें उन कथाओं में न्यायत्व की दृष्टि से विचयना नहीं है। उनमें पूरा चरित्र, कोई पूरा व्रत, कोई वर्जना, कोई आचार तथा मनीव धर्मवृत्तता वर्तमान है। जानीय सम्मृति के आधार पर चरित्रों के व्यक्तित्व का संगठन, उनका नियमन इस विधिष्ठिता में उन कथाओं में हुआ है कि चरित्र का निश्चया-

१ अत्यकथा कामकथा धम्मकथा चैव मीमिया य कथा ।

एत्तो एक्केककायि य जेगविहा होइ नायव्वा ॥ —दशवैकालिक, हरिभद्रोपवृत्ति गा० १३८ पृ० २१२

एत्य सामघ्नओ चत्तारि कहाओ हवति । त जहा—अत्यकथा कामकथा धम्मकथा सकिण्णकथा य—

—समराइच्चकथा, याकोवी सम्करण पृ० २

२ दिव्व, दिव्मावणुस, माणुस च । तत्य दिव्व नाम जत्य केवलमेव देवचरिअ वणिज्जइ ।

—समराइच्चकथा याकोवी सम्करण पृ० २

त जह दिव्व-माणुमी माणुसी तहच्चेय । —लीलावई गा० ३५

एमेय मुद्वजुयई—मणोहर पाययाए नासाए ।

पविरत्तदेसि-सुलख कहनु कह दिव्वमाणुसिय ॥ —लीलावई गा० ४१ पृ० ११

३ ताओ पुण पचकहाओ । त जहा—सयलकहा खडकहा उल्लावकहा परिहासकहा तहावरा कहिय त्ति सकिण्ण कहति ।

—कुवलयमाला पृ० ४, अनुच्छेद ७

४ समस्तफलान्तेति वृत्तवर्णना समरादित्यवत् सकलकथा । —हैम-काव्यनुशासन ५।६ पृ० ४६५

सब प्रभाव अत्यन्त पतनीय है। आगमकारीन कथाकारों की यह विचारणा है कि उन्होंने उपमात्रा और दृष्टाता का अन्तरमन्त्र ग्रहण कर जनता का धर्म मिटाना की ओर अधिक आकृष्ट किया है। उन कथाओं की उत्पत्ति उपमात्रा रूपक और प्रतीकात्मक आधार पर हुई है।

आगमकारीन कथाओं ने पश्चात् प्राकृतकथा साहित्य का दूसरा युग टीकायुग है। आगम कथाओं वषण्डा द्वारा अभिज्ञात था। कथा या अन्य किसी नाम से जाना जाता है। समस्त वषण्डा का अवगत कर देने की ओर सक्त किया जाता था। पर टीकाओं में यह प्रवृत्ति न रही और कथाओं में माता विषय मरम वषण्डा जाने। दूसरी विचारणा यह आयी कि कथारूपता के स्थान पर विविधता और नवानुता का प्रयोग होने लगा। नवीनता की दृष्टि में पात्र विषय प्रवृत्ति वातावरण उद्भव रूपगठन एवं नीतिसमूह आदि सभी में आगमिक कथाओं की अपेक्षा टीका कथाओं में अधिक नवीनता पायी जाती है। इस युग की कथाओं के परिधान पदान्तिरिक्त हैं। वस्तुतः कथा का रूप या स्थापत्य ही माना पर निर्धार करता है—प्रथम यह कि कथा जिस वातावरण में घटित हो रही है उसका विस्तार सीमा और निषाधक तत्त्व कौन-कौन से हैं? विषय के साथ पात्रों के उद्भव किस प्रकार घटित किये गये? कथाओं की स्वाकृति का प्रभावित करनेवाला विचारक तत्त्व की उद्भव के प्रति किसी सजगता है और प्रभाव घोटाना करने में उसका किन्ती क्षमता है?

कथा का रूपगठन का निर्धारित करनेवाली दूसरी वस्तु है उसका आवश्यकता। जीवा की किस आवश्यकता की पूर्ति के लिए कथा लिखी गयी है? उसका प्रतिपादन का उद्भव क्या है तथा उस उद्भव की अभिव्यक्तता किस प्रकार सम्पन्न की है? यह भी कथासाहित्य का आवश्यकता में सम्मिलित है। टीकायुगीन कथाओं की स्पष्ट आवश्यकता थाप्य या धारणा के मिलनिके में नीति या किसी नव्य की पूर्ति के रूप में ही प्राप्ति है। आगमकारीन कथाएँ सामाजिक धार्मिकता में अधिक तथ्यात्मक। उनमें शरीररक्षण और कुतूहल का प्रायः अभाव था। वस्तुतः कुछ घटनाओं का उद्भव ही किसी चरित्र या चरित्रों का एक प्रस्तुत करने का किन्तु टीकायुग की प्राकृतकथाओं में कथारम भी समाविष्ट है। जाकार प्रकार भी साहित्य हो गया है तथा विभिन्न विषयों से सम्बद्ध माने के कारण उनमें अन्तररूपता है। ऐतिहासिक अथवा ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रवृत्तियों का उद्घाटन भी किया गया है।

विशाल कथासाहित्य का आरम्भ तरगवती^१ से माना जा सकता है। पारम्परिक सूत्र ने इस कथाप्रचलन की रचना विश्वमन्त्र की तीसरी गति में की है। तरगवती का दूसरा नाम तरगवती भी है। तरगवती के सक्षिप्तवर्त्ता मेमिचन्द्र गणिता नाम नाम का उल्लेख किया है। यह प्रमद्वय है इका अन्तिम परिणति विरक्ति में घटित होती है। तरगवती की गम्भीर गरीब के रूपमें प्रवृत्ति की पत्नी भी। वस्तुतः की प्रायः का वस्तुतः नाम होने के कारण नाम का समानता रखा गया था। वास्तविकता में समस्त हृदयविषय का नाम से उन पूर्ववर्त्ता का स्मरण हो गया था। कथा में बताया गया है कि गम्य की काठ पर चढ़ता चक्की विवाम करते थे। उन दिन एक गिराव आया। उसने जगता हुआ जो मारने के लिए बाण चलाया पर व बाण शून्य चरित्रों का गम्य। चक्का की शून्य दलकर चक्की घट्टन दली हुई। गिरावों का भी चक्का का शून्य से पश्चात्ताप हुआ और उसने स्वयं ही एकाग्रित कर उम चक्का का दाम्भक्य का समाप्त किया। चक्की प्रमत्ता उसी बिना में जलकर भस्म हो गयी। उसी चक्की का जीव तरगवती का रूप में उद्भव हुआ। तरगवती ने अपने प्रिय का प्राणि का प्रवर्ण किया और जन्म में उसका विवाह स्वयं के जात्र पक्षेय में सम्पन्न हो गया।

१ प्रसन्नवर्गाम्भीयरथाङ्ग-मिथुना गथा ।

पुण्या मुनाति गङ्गा व या तरगवती कथा ॥ —सक्षिप्त तरगवती प्रस्तावना पृ १७ ।

को न गणा हरितित्रा तरगवद्वचनर सुगुणः ।

इये पक्षधतिषु वषाव्या जोए मुशरं ॥

—मुषातनाहचरिय वाराणसी पुष्पभय प गा० ६

तीस कहिय न पुष्ट जमस्त गात्रतय हरतस्त । जस्त मुष्ट नमस्तभी तरगवतीनामद्वय ॥

—प्र च वि० प्र प २६





समस्त कथा उत्तमपुष्प मे वर्णित है । कृष्ण, शृ गार और धान्न रम की विशेषी समस्त कथा मे प्रकाशित है । प्राकृत भाषा की उम मसृष्ट कथाकृति के अवलोकन मे यह अनुमान नष्ट मे लगाया जा सकता है कि प्राकृत भाषा मे वाद्युनिक उपन्यास के रूप मे दृष्टकथाओं का निर्माण गुणसाध के पत्रों ही हो चुका था । यद्यपि विद्वत्-कथा की यह प्रणाली आठवीं शती के पूर्व चरितात्मक गद्य-ग्रन्थ के रूप मे प्रचलित नहीं है तो भी चरितग्रन्थों मे सहकारी कथाओं के रूप मे निबद्ध कथाएँ अपने मौनिक रूप मे उपन्यास है ।

चरितात्मक कथाग्रन्थ के रूप मे वसुदेवविष्टी का नाम धाना है । उम ग्रन्थ के दो भाग हैं, प्रथम गण्ट के कर्ता सधदास गणिवानक और द्वितीय गण्ट के रत्ता धमगेन गणि है । प्रथम गण्ट मे २६ लभत धार द्वितीय मे ७१ लम्भक है । यह ग्रन्थ 'दृष्टकथा' के समान कथाओं का संग्रह है । वसुदेव के भ्रमण के माय तीर्थों पर अन्य शश-कापुरुषों के जीवनवृत्त भी वर्णित हैं । वेण्या, गुजारी प्रयुति ध्यातियों के चरित्र निम्न करने के हेतु कई मनोरञ्जक कथाएँ निबद्ध की गयी हैं । उममे वान्तनिचका या वान्तनेना गणिका का आश्रय प्राप्त है, जो अपने मे कथासाहित्य मे बहुत पिय रहा है । मन्दरुदिक नाटक की कथायन्तु का श्रोत भी वसुदेव विष्टी का उक्त आश्रय पत्नी होता है । जिस प्रकार मन्दरुद वाङ्मय मे उपजाव्यतात्व के रूप मे दृष्टकथा, महाभारत और रामायण को माना गया है, उसी प्रकार प्राकृतकाव्य और कथा मे विज्ञान एवं नान के रूप मे वसुदेवविष्टी को उपजीव्य माना जा सकता है ।

चरितग्रन्थों मे विमानमूर्ति का पउमचरित्र और दण्डिमचरित्र जीवाराचार्य का चन्द्रपल्लमहापुष्पचरित्र गुणपाल मुनि का जवूचरित्र, 'नेध्वर' का मुस्तुन्दरीचरित्र, नेमिचन्द्र का रत्तापूउगपचरित्र, गुणचन्द्र गणि का पागनाह-चरित्र और महावीरचरित्र, देवेन्द्रमूरि का मुदमणनचरित्र और तण्डचरित्र, मानतुग मूरि का जयन्तीप्रकरण, चन्द्रप्रभ महत्तरि का चन्द्रकेवलीचरित्र, देवचन्द्रमूरि का गतिनाहचरित्र, धान्तिमूरि का पुटवीनदचरित्र, महावीरहेमचन्द्र का नेमि-नाहचरित्र, श्रीचन्द्र का मुणिसुव्ययमामिचरित्र, देवेन्द्रमूरि के शिष्य श्रीनन्दमूरि का नण्डगुणरचरित्र, मीमप्रभमूरि का सुमतिनाहचरित्र, नेमिचन्द्रमूरि का अनन्तनाहचरित्र एवं रत्तप्रभा का नेमिनाहचरित्र प्रसिद्ध चरितात्मक कथा ग्रन्थ हैं । इनमे कथा और आख्यानों का अपूर्व सम्मिश्रण है । कथायन्तुओं मे बुद्धिमाहान्तर, नीतिक आचार-व्यवहार, सामाजिक प्रथाएँ एवं राजनैतिक परिस्थितियों का सजीव चित्रण किया गया है । परन्तु इतना सत्य है कि उक्त रचनाओं मे 'कथारस' की अपेक्षा 'चरित' की प्रधानता है । इन इन्हे विस्तृत तथाट्टनिर्णय मे परिगणित नहीं किया जा सकता है ।

तरंगवती या तरंगलोका के पश्चान् विजुट तथासाहित्य की सप्रति हरिभद्र की 'समराञ्चकहा' मे होती है । इन कथाग्रन्थों का आधारभूत प्रवृत्ति प्रतिशोध भाषा है । यह भावना विभिन्न रूपों मे अभिव्यक्त हुई है । अग्निशर्मा गुणनेन के प्रति अन्यन्त तीव्र घृणा के कारण निदान वाद्यता है । यह घृणा ज्यों की त्यों अगने भवों मे दिव-लायी पड़ती है । कथा नौ भवों तक चलती है, तथा इन भवों मे नायक धुम परिणति को द्रुत परिणति के रूप मे परिवर्तित कर नाश्वत सुख प्राप्त करना है और प्रतिनायक या यत्नायक अनन्त सन्सार का पात्र बनता है । आचार्य हरिभद्र का समय ईस्वी सन् ७३८-८३० है ।^१

धूर्ताख्यान हरिभद्रमूरि की व्यंग्यप्रधान रचना है । उममे पुराणों मे वर्णित अनभव और अविश्वसनीय बातों का प्रत्याख्यान पाँच धूर्तों की कथाओं के द्वारा किया गया है । भारतीय कथासाहित्य मे इस ग्रन्थ का जैनी की दृष्टि से मूर्धन्य स्थान है । लाक्षणिक शैली मे इस प्रकार की अन्य रचना दिखलायी नहीं पड़ती है । इन दो कथाग्रन्थों के अतिरिक्त दशवैकालिक टीका मे २० महत्त्वपूर्ण लघुकथाएँ और उपदेशपद मे लगभग ७० लघुकथाएँ आयी हैं । हरिभद्र मूरि की इन प्राकृत लघुकथाओं मे मनोरञ्जक शैली मे वामनाओं का उदात्तीकरण किया गया है ।

धर्मकथा साहित्य मे समराञ्चकहा का जो स्थान है, वही 'प्रेमारायणक आख्यायिका' के रूप मे कौतूहल कवि की कथाकृति 'लीलावर्द्ध' का । दोनों कथाकृतियाँ अपने-अपने क्षेत्र मे बेजोड और सरन हैं । दोनों का स्थापत्य

एक होने पर भी दाना की निशानें दो हैं। इस वृत्ति में प्रतिष्ठान के राजा सातगहन और मिहान्दीप की राजकुमारी गीतावती की प्रसन्नता दर्शाया है। अतएव कथा विधान के पंचाङ्ग प्रधान कथा का प्रवेश होता है। मिहान् राज की पुत्री गीतावती का जन्म वसन्तवास की कल्प निवासरी गारदशी में हुआ था। एक दिन गीतावती प्रतिष्ठान के राजा मानवान्न के चित्र को देखकर मोहित हुई गयी। राजा ने उसने उस स्वप्न में भी दर्शा। माना पिता की आज्ञा न कर वह अपने प्रिय को खोजने निकल पड़ी। उसका हृदय भाग में गीतावती-सद पर आकर ठहरा वहाँ उस अपना भोगी की पुत्रा महानुमती मिली। महानुमती कुतूहल की और सीतावती सीता ही विरहनिर्मा एव साथ रहने लगी। अपने स्वामी विजयान्न द्वारा गीतावती के तट पर निवास करनेवाली गीतावती का समाचार जान कर सात वाहन वही उपस्थित होता है। सातवाहन गीतावती के वचनानुसार माधवानि और भीषणास का उद्धार करता है और सीता रात्रुमारिया का विवाह अपने अपन प्रिया से सम्पन्न हो जाता है। इस पद्य की रचना भि० स० क० सगमय है।

गीतावती रत्न के पदाल कुवन्ममाता का नाम जाता है। इस कथावृत्ति के रचयिता हरिमन् गूरि के निम्न उद्योग गूरि हैं। यह धर्मकथा होते हुए भी प्रमत्त है। इसमें शेष मात्र माया नाम और मातृ मन पक्षों विचारों का परिणाम प्रमाणित करने के लिए अनेक अवतार कथाओं का गुच्छन किया गया है। कल्पों के समान कथाओं संचित हैं। कथानक का जितना विस्तार है उतम वही अधिक वस्तुओं का बाहुल्य है। कथारम क साथ बाध्यात्मकता भी विद्यमान है। आरम्भ में ही वाच्यत्व के तत्त्व उपाय होने लगते हैं। तब से कुमार महेन्द्र का प्राप्त होता राजा हन्मन् तो पुत्रप्राप्ति का संचय करता है। कथावस्तु के विधान में कथानक की चमत्कारपूर्ण घटना की गयी है। मनोरञ्जक उपपन्न कुतूहल और सत्यता के साथ सन्दर्भित पाया जाता है। कथा और चमत्कार में ही गुण एवं साथ ही वृत्ति में समाविष्ट है। सचारा की प्रभावशाली वस्तु और अलङ्कृतपदा की सौन्दर्यता वृत्ति की विषयता है। इस वृत्ति का प्रणयवाक्य एक सन् ३० में एक दिन कम बनाया है।

जितेन्द्र गूरि की विधानगीतावती कथा प्राकृतकथा में निष्पी गयी है। भूत वृत्ति अभी तक उपलब्ध नहीं है पर इसका सारल्य सङ्ग्रहमाया में जितेन्द्र गूरि वृत्त प्राप्त है। कथा मान आदि विचारों के साथ हिंसा भूत बागी अभिचार एवं प्रहस्य चित्र पायो का पत्र जम जमाने तब भागना पड़ता है। इस सत्य की अभिव्यक्ति कथा द्वारा की गयी है। कथा उत्तमगुरुप में वर्णित है और समरमन आचार्य ने अपना आत्मकथा कहकर सिद्धा और राजा गीतावती का सन्तुष्ट किया है। इस वृत्ति में कथानक की अनेक उपपन्नत्व की प्रधानता है। रचनावान वि० स० १८२५ ई५ में मध्य है।

कथाका प्रकरण के रचयिता जिन वर गूरि हैं। ग्रीष्म में कथाएँ हैं और वसन्त में मुख्य कथाएँ हैं और अवतार कथाएँ ४५ हैं। यह कथाकाव्य की समस्त कथाएँ जिनपूजा जिनस्तुति कथाएँ दान धर्मोत्साह की प्रेरणा प्रदान किया की अभिव्यक्ति करने हैं। कथाओं का कथानक क्रमसद्वारा के ताने-बाने से बुना गया है। कथारत्न के चमत्कार और पुत्ररत्न का पलायन रचने के लिए प्रसन्नताओं की अपवाय है। धार्मिक कथाएँ होने पर भी गहरा और गीत का मधुर समावेश दिया है। यह कथाकाव्य की समाप्ति वि० स० ११८ भाग्यीय वृत्ति पञ्चमी रविवार का हुई है।

अमरपन्न की प्राप्ति में जिन वर गूरि के निम्न जिनचन् ने गवेष रम्यता नामक रूपक कथा की रचना की है। गवेषमाय का निर्माण करने के लिए इस वृत्ति में अनेक कथाओं का गुच्छन किया गया है। गुच्छरप से महा मेन राजपि की कथा वर्णित है। राजा गमार त्यागकर मुनिनी का धारण करना था ता है पर राजा अपने तर्कों पर राजा का घर में ही रहना चाहती है। वह तत्पश्चात् उपमय और परीपह का आनन्द चिन्तनी है। आराधना के स्वीकरण के लिए मधुराजी गीतमणि वरपूत ब्रह्मवाच भगु धर्माज नमिराजी वसुन्मा रचयिता कुवन्





और वज्रमित्र के कथानक आये हैं। उन कथाकृति के पात्र पौराणिक हैं, उनमें चरित्र या विचार मनोवैज्ञानिक दृष्टि के बीच नहीं हा पाया है। कथाग्रन्थ में मरुतता का अभाव है, कथाओं में मनोवैज्ञानिक परिधि की स्थापना भी नहीं हो पायी है। उगता रचनाग्रन्थ वि० सं० ११२५ है।

‘नाणवन्मी कथा’ की रचना महेन्द्र मूरि ने की है। इस कृति में अन्तर्दामी उन का साहस्य प्रतीपादित करने के लिए दस कथाएँ मरुतित हैं। प्रथम कथा ‘अमोघ कथा’ है। उसमें सारी की सारा है, केदा ही एक विचार का अच्छा निष्पन्न हुआ है। कथाग्रन्थों की दृष्टि में भी इसे महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। दूसरी कथा ‘मन्द कथा’ में मन्द का बीच-उत्तर पाठकों का गुण सिद्ध किया नहीं रह गया। तीसरी ‘मन्दाग्रा’ रोचक अवश्य है पर चरित्रों का विकास नहीं हो पाया। चौराहा और मरुतता के साहित्यिक दृष्टि हैं, पर कथा की गति मरुतता के रूप में पतित हुई है, जिसका विज्ञापन और उत्पन्न नहीं रह पायी। ‘गुणगुणम कथा’ का आदम कथा है, नैतिक और आध्यात्मिक गुणों के प्रति आकर्षण माना जा सकता है। किन्तु अर्थ में उदात्ता, दया, प्रतिष्ठा आदि गुणों की कमी है, पर व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी नहीं हो सकता है। विचार और मरुतताओं में कथा का प्रवाह बहुत तीव्र है। ‘गणितयत्त कथा’ सुन्दर कथा है, इस कथा के (दोनों मोनों का गुण पर आक्रमण माना में धनपाल तब से मरुतता केन्द्रावाचक लिखा है। इस कथाकृति में मरुतता और मरुतता का अन्तर्दाम तथा मरुतता और नागवन्मी विचारों प्रवृत्तियों के पुष्प मय स्वरूपों के सुगम हैं। कथाग्रन्थों में नागवन्मी में मरुतताईयों का और कमजोरी में दया-ममता का सुन्दर विचार पाया है। मरुतताग्रन्थ अतः नैतिक नैतिक मरुतता में मरुतता करता है, उसका मरुतता करना चाहता है, पर मरुतता मरुतता मरुतता में उत्प्रेषण होता है। कथाग्रन्थ में मानव-स्वभाव का अच्छा परिचय प्रस्तुत किया है।

इस कथाकृति में अलौकिक मरुतता एक शक्तिशाली का मरुतता परमेश्वर लिखा गया है। कथानकों का गठन पौराणिक पृष्ठों में किया है। मानव के अन्तर्दाम और उत्प्रेषण के विचार के तब उसमें मरुतता की प्रिय विद्युत् गयी है। इस कथाकृति का रचनाकाल विष्णु मरुतता ११०६ है। कथा का मोन पौराणिक है किन्तु प्रचार-प्रसार निरन्तर होता रहा है।

देवरा मूरि या गुणचन्द्र ने ‘मरुतताग्रन्थ’ की रचना वि० सं० ११५८ में की है। इस कृति में कुल ५० कथाएँ हैं। ग्रन्थ में दो शक्तियाँ हैं—प्रथम में ३३ कथाएँ और द्वितीय में १७ कथाएँ लिखी हैं। इन कृति की सभी कथाएँ रोचक हैं। उपवन, वृद्ध, शक्ति, युद्ध, धर्मज्ञान, राजप्रासाद मरुतता आदि के मरुतता वर्णनों द्वारा कथाकार ने कथा-प्रवाह को गतिशील बनाया है। जातिवाद का मरुतता कर मानवतावाद की प्रतिष्ठा इन सभी कथाओं में मिलती है। इन कथाओं में आदर्श गार्हस्थिक जीवन-यापन करने की ओर मनेन किया गया है। भौतिकवाद के घेरे में निरालकर आध्यात्मिक क्षेत्र में उत्प्रेषण करने का प्रयास किया है। नम्रता, व्रत और नयम के धृष्ट उपदेशों की कथा के माध्यम में पर्याप्त मरुतता बताया है। मुदत्त और नागवन्मी की कथाएँ पर्याप्त रोचक हैं, नाम, वृद्ध, मन्द और वन्मी के स्वाभाविक चित्रण में कथाकार ने पूरी कुशलता परदर्शन की है। गुणमयेष्टि और उससे पुत्रों की कथा में बातमनो-विज्ञान तत्त्व विद्यमान है। धनपाल और बालचन्द्र की कथा में वृद्ध बिलामिनी बेग्या का चरित्र बहुत सुन्दर चित्रित हुआ है।

नेमिचन्द्र मूरि ने ‘आनन्दानमणिकोश’ की रचना की है। इस ग्रन्थ पर आनन्देय मूरि ने ई० सं० ११३८ में टीका लिखी है। यह ग्रन्थ प्राकृत पद्यों में लिखा गया है। इस कृति में ४१ अधिकांश हैं और १२७ आनन्दान। आनन्दानों में प्राकृत भाषा के साथ मरुतता और अपभ्रंश का भी प्रयोग पाया जाता है। इन आनन्दानों में अमर्यादनाक में बताया गया है कि चण्डप्रद्योत नृपति अपनी पुत्री वामवदत्ता को संगीत-शिक्षा देने के लिए उदयन को नियत करता है। आनन्दान भास कवि के नाटक ‘प्रतिज्ञा योगन्धरायण’ की कथावस्तु में समता रखता है। कथानक में नायिका को कानी और नायक को कोठी बताया गया है। गुरु और शिष्या एक-दूसरे के मुखदर्शन से आमनत न हो जायें, अतएव पर्दा लगाकर शिक्षा का प्रारम्भ होता है। पर्दा हटाकर वे आपस में देख न सकें, अतएव विकलांग होने की बात कही जाती है। अन्त में भेद खुल जाता है और वे दोनों आपस में प्रेम करने लगते हैं। तथा उनका विवाह भी हो जाता है।

सोमप्रभभूति द्वारा विरचित 'कुमारपाल प्रतिबोध' भी प्राकृतकथाओं का सुन्दर जोड़ा है। इसमें १४ कथाएँ हैं। मृतदेव की कथा अधिक रोचक और मर्म है। कुमारपाल को प्रतिबुद्ध करने के लिए श्रीरामा मत्त आदि प्रान्तों में सम्बद्ध कथाएँ लिखी गयी हैं। नर-रामावती का कथानक कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। जीतवती की कथा मनोज्ञ और चित्ताकर्षक है। जीतवती एक दिन अश्वमेध के समय पड़ा लेजर पर से बाहर गयी और बहुत विस्मय कर गयी। इसमें उसके स्वमुर को जीतवती के चरित्र पर आधका हो गयी, जब वह उसे रथ में मँदाएँ तब उसने विरुद्ध पहुँचाने के लिए कहा। मार्ग में एक नदी आयी, जीतवती के स्वमुर ने कहा—'वह जूते उतार कर नदी पार करा'। पर उसने जूते नहीं उतारे। स्वमुर ने सोचा यह उद्भट है। थले चलने पर एक मौन का पत मिना। स्वमुर ने कहा, 'देखो यह जेत कितना अच्छा फल रहा है? जेत का स्वामी उस पत का उपयोग करेगा'। जीतवती ने उत्तर दिया—'बान टीक है, यदि यह साया न जाय तो'। स्वमुर ने सोचा यह व्यय ही उद-पटांग बोलती है। आगे चलने पर दोनों एक नगर में पहुँच गये। वहाँ के लोगो को अभिनन्दन देकर स्वमुर ने कहा—'यह नगर कितना सुन्दर है'। जीतवती—'बान टीक है, पर जोरि उसे उजाड देनो करा होगा?' कुछ दूर चलने पर एक कुतपुन मिना। स्वमुर—'यह कितना धूर्वीर है'। जीतवती ने उत्तर दिया—'यदि पीठ गिरा जाय या लोग हो जाय तो क्या स्थिति होगी?'

कुछ दूर चलने के उपरान्त जीतवती का स्वमुर एक वटवृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठ गया। जीतवती दूर ही बैठी रही। स्वमुर ने विचार किया कि वह क्यों उदा उदा करती है। बोली दूर चलने पर जीतवती के सामा का गाँव आया। भोजन के पश्चात् स्वमुर रथ में उठकर बैठ गया। जीतवती रथ की छाया में बैठी रही। उसने मे बटून के पेड पर बैठे चोरे को बाज-बाज ताँव-ताँव करने देखा, उसने कहा—'सो नग करने हो, एक बार तुम लागो तो बोली मुनकर ताय करने के तो घर में चित्तना पड रहा है, अब दूसरी गजती करने पर तो प्रियतम में मिलन भी नहीं हो सकेगा।

स्वमुर द्वारा पूछे जाने पर उसने अपना सप्लीकरण दिया कि मैं पशु-पक्षियों की बोली को समझती हूँ। उस दिन अश्वमेध के समय गीदड का नन्द मुनकर मैंने जाना कि नदी में बहुतसे आभूषण पड़े हुए मुझी वह रहा है। मैं वहाँ गयी और आभूषण लेकर लौट आयी। वहाँ यह लोगो कह रहा है कि उस वटवृक्ष के टूट के नीचे स्वर्ण गटा है। जीतवती का स्वमुर अधिक प्रसन्न हुआ और उसने गटा हुआ सोना निकाल लिया। जीतवती ने स्वमुर के अन्य प्रश्नों का भी तर्कपूर्ण उत्तर दिया जिससे उनका स्वमुर बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपनी वह को बहुत ही बुद्धिमत्ती समझा और पर ने ध्याता।

कुछ दिनों के पश्चात् जीतवती का पति अजितमेन राजा का प्रघानमन्त्री बन गया। राजा ने जीतवती के शील की परीक्षा के लिए अपने चरमियों को भेजा, जिन्हें जीतवती ने अपने वहाँ कैद कर लिया। वहाँ यह ज्ञान्यान कथामग्निमान (१-८) में मिलना-जुलना है।

इस प्रतिबोध की अन्य कथाएँ भी अत्यन्त नरम और मनोरंजक हैं। चरित्र का उत्थान अनेक परिवेशों में दिव्यगता गया है। कदारम नभी आन्यातों में पाया जाता है। पात्र नभी वर्गों में ग्रहण किये हैं। पञ्चम प्रस्ताव की 'जीवमन कण्ठमनापकथा' एक स्वक काव्य है, इसमें जीव, मन और उद्विग्न का वार्तालाप सुन्दर रूप में निबद्ध किया गया है। वेह नामक नगरी लावण्यरञ्जनी का निवास स्थान है, नगरी के चारों ओर आयुर्कर्म का प्राकार है, जिसमें मुन, दुख, खुश, तुरा आदि अनेक मार्ग हैं। इस नगरी का 'आत्मा' राजा है, यह बुद्धि नामक महादेवी के साथ रहता है। मन इसका प्रघानमन्त्री और पाँच उन्धियाँ प्रघान पुरुष हैं। ऊदाकार ने इनका सरस मवाद अर्पित किया है। यह कथा अत्रय श भाषा में लिखी गयी है। इसके साथ ऐतिहासिक तथ्य भी उपलब्ध होते हैं। नन्दराज, म्यूनभद्र एवं सोशा आदि के कथानक भी प्रवाहपूर्ण हैं। इस कथाग्रंथ का रचनाकाल विष्णु मवन् १२८१ है।

'प्राकृतकथामग्रह' वाग्वह प्राकृतकथाओं का एक संग्रह ग्रन्थ है। इस कथाग्रंथ की एक पाण्डुलिपि विष्णु मवन् १३२८ की उपलब्ध है। जन्म इसका रचनाकाल वि० स० की १४ वीं शती के पूर्व है। ग्रन्थ में रचयिता और रचना-काल के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती। इन कथाओं में दान के महत्त्व को प्रकट करने के लिए

राज्यदम्पट और मतिमागर जैसे विश्वासभाजन आज भी विद्यमान हैं। राजकुमारी मरामजरी का त्याग और मानसिक द्वन्द्व किसी भी काव्य के लिए उत्कृष्ट बन सकते हैं। पात्रों की चार्गिष्ठ दुर्वृत्तताओं का चित्रण व्यापक रूप में अंकित हुआ है।

इस कथाकृति में भावुकता को उभारने की पूरी यत्ति वर्तमान है। दुष्मन्हे श्रीपान का अपने चाचा के अत्याचारों और जातको ने नष्ट हो मा के साथ जंगल में चला जाना और वहाँ कुछ रोगियों के मरण में रहने में उम्बर कुष्ठ विषेण में पीड़ित होना प्रत्येक पाठक को द्रवित करने में समर्थ है। दूसरी ओर अपनी मुन्दरी और गुणवती कन्या की स्पष्टवादिता ने रुठे हो कोटी ने उसे व्याह देना भी हृदयहीनता का परिचायक है। जीवनरमण को लेखक ने अपनी इस कथाकृति में समझाने का पूरा यत्न किया है। परिवार का स्वार्थ के कारण विघटन होना है और यह विघटित परिवार मक्ष के लिए दुःखी हो जाता है। अतः सामाजिक सम्बन्धों को स्थिर करने के हेतु समाज के सभी घटकों और उनकी प्रतिक्रियाओं को उदारभाव से ध्यान देना होगा। प्रेम सेवा, सहयोग, सहिष्णुता, अनुग्रह और आज्ञापालन आदि गुणों के अभाव में स्वस्थ और सफल समाज का गठन नहीं हो सकता है।

‘रमणनेहरनिघन्हा’ (रत्नदेवचरित्रकथा) के रचयिता जिनहर्ष भूषि हैं। इसका रचनाकाल विष्णु सन् १४८७ है। यह जायसीकृत पद्मावन की रथा का मूलनान है। पर्यं के दिनों में धर्मसाधन करने का सामान्य वनताया गया है। रत्नदेवचरित्र रत्नपुरनगर का रहनेवाला था, उसके प्रधानमन्त्री का नाम मतिमागर था। राजा वसन्त-त्रिहार के समय किन्नरदम्पती के वार्ताचार में रत्नवती की प्रशंसा सुनता है और उसे प्राप्त करने के लिए ब्याकुल हो जाता है। मतिमागर जोगिनी का रूप धारण कर मिहलद्वीप की राजकुमारी रत्नवती ने पाम पच्छता है। रत्नवती अपनी वर-प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रश्न करती है और जोगिनी वेपथरी मन्त्री उत्तर देता है—‘जो कामदेव के मन्दिर में घूँतनीडा करता हुआ वहा तुम्हारा प्रवेश रोकेगा वही तुम्हारा पनि होगा।’

मन्त्री लीटकर राजा को समाचार सुनाना है, राजा रत्नदेवचरित्र मिहलद्वीप को प्रस्थान कर देता है और वहा कामदेव के मन्दिर में पहुँचकर मन्त्री के साथ घूँतनीडा करने लगता है। रत्नवती अपनी मन्त्रियों के साथ कामदेव की पूजा करने आती है। दोनों का मात्सर्य हो जाता है। युद्ध के पश्चात् विवाह सम्पन्न हो जाता है। पर्यं के दिनों में राजा अपने शीलव्रत का पालन करता है जिसमें उसे परम शान्ति प्राप्त होती है।

यह एक सुन्दर प्रेमकथा है। लेखक ने प्रेम के मौलिक रूप का सार्वभौमिक विवेचन किया है। इन्द्रियों के व्यापारों और वामनात्मक प्रवृत्तियों के विष्णुपण द्वारा कथाकार पाठकों के हृदय में आनन्द का विकास करता हुआ विषय-वामना के पक्ष में निकालकर उन्मुक्त भावलेख में उन्हे ले गया है। राग का उदानीकरण विराग के रूप में हुआ है। पायविक्र वामना परिष्कृत हो आध्यात्मिक भावभूमि को प्राप्त होती है।

इस कृति में उपन्यास के समस्त तत्त्व वर्तमान हैं। कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण और उद्देश्य की दृष्टि में यह सफल है। घटनाओं और पात्रों के अनुसार वातावरण तथा परिस्थितियों का निर्माण सुन्दर रूप में किया गया है। समस्त तत्त्वों के सामग्र्य ने कथा के शिल्प-विधान को पर्याप्त गतिशील बनाया है। मूल-कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं का ताता लगा है। दैवी चमत्कारों और अतिमानवीय तत्त्वों का बाहुल्य भी निहित है। व्रत परीक्षा के सदर्भ में घटित घटनाएँ नरम और प्रभावोत्पादक हैं।

‘महिवालकहा (महीपालकथा) के रचयिता वीरदेव गणि हैं। यह परी-कथा और निजन्धरी इन दोनों का मिश्रित रूप है। इसका रचनाकाल ११वीं सदी है। कथा में बताया गया है कि उज्जयिनी नगरी के राजा नरमिह के यहा कनाविचक्षण महीपाल नाम का राजपुत्र रहता था। राजा ने रुठ होकर महीपाल को अपने राज्य से निकाल दिया। वह अपनी पत्नी के साथ भड़ोच आया और वहा से जहाज में सवार होकर कटाह द्वीप की ओर चला। रास्ते में जहाज जलमग्न हो गया और बड़ी कठिनाई से वह किसी प्रकार तट पर पहुँचा। कटाह द्वीप केरलपुर नगर में पहुँचकर उसने राजकुमारी चन्द्रलेखा से विवाह किया। अब वह अपनी प्रथम पत्नी मोमथी को ढूँढने चला। राजा ने साथ में अथर्वण मन्त्री को भी भेज दिया। महीपाल का जलयान समुद्र में चला जा रहा था, कि अथर्वण मन्त्री के मन में लोभ

प्रविष्ट हुआ। उसने राजकुमारी चन्दासा जीर घन व ताब स मनीषान का समुद्र म गिरा दिया। राजकुमारी इस दुघटना से बचने होकर चन्द्रवरी देवी की उपासना में लगने लगी। मनीषान समुद्र पार कर जिनगुनु राजा के यहाँ पहुँचा राजा ने प्रभावित हो अपनी बच्ची धर्मप्रसा व साथ उसका विवाह कर दिया। य। उस तीन वस्तु उपलब्ध हुई—विचित्रलकुट छटवा और सबकासद विद्या। इन तीनों वस्तुओं व ब्रह्म ने यह रत्नचक्रपुर नगर म गया जीर यन् चन्द्रवरी व मन्दिर म उस तीना स्त्रिया प्राण ली गयी। इस नगर व राजा ने अपनी पुत्री चन्द्रा के साथ मनीषान का विवाह सम्पन्न किया। मनीषान अपनी चारों पत्नियों के साथ चन्द्रा की चला आया और यहाँ नरसिंह राजा के यहाँ रहने लगा। धर्मप्राप्त मुनि से उपरान्त मुनिराज उमर मन म विरक्ति उत्पन्न हुई और जमनाना प्रदण वर तारधरण किया।

यह कथा साहित्य कथा है। मनीषान व रत्नचक्र और प्रदण व अनुसार ही सारी घटनाएँ घटित हुई हैं। चन्दासा का प्रत्यक्ष जन्मतिर और अपनी गिरावट व निण उसका वषट्क इसी के स्वर है जो मानव जीवन म एक नयी स्त्रिया और स्फूर्ति प्रदान करने है। इस कथा का मूलजान प्राचीन है 'पञ्च' के पौराणिक आख्याना म कथापरम्परा का तत्त्व एक नयी कथा का प्रगटन किया है। अन्ततः कथाओं म 'पञ्च' के रूप का निष्पन्न करने व हेतु त्रिवी गयी नन्द मठ की कथा बहुत सुन्दर है। इस कथा व्यापार की सीमा निम्नित है।

इन प्रमुख कथाकृतियाँ व अनिर्विकल मयनिक सूरि न आराममाह्वय पञ्चमयनिकता पुष्कलवहा आराममाह्वय रोहमुलकता व अल्पमयनिकता सुन्दरता भीमकुमारवहा मल्लभाईवहा मन्दाहुवहा पापिता चारित्र्यवहा मिहसेनविवाहवहा मायसवहा कामिनीवहा मन्दायमुषिकता द्रव्यसवहा पञ्चमहवहा मयाम सूरवहा चन्दासा व एक नरमुद्रवहा का प्रगटन किया है। देवचन्द्रमूर्ति का चारित्र्याचार्यकथानक और अनन्तनामधारी वरि की मन्दायमुद्रा कथा भी सुन्दर रचनाएँ हैं।

उपरान्त कथाओं म घटनाएँ मणि की उपरान्तता हरिप्रद सूरि का उपरान्त जयति सूरि की धर्मप्राप्तता जयतीति की मानोपपत्तिका विजयति सूरि की भुवनेश्वरी मन्दायरी केवच सूरि की उपरान्त माना माह्वय की विवेकमन्त्री मुनि सुन्दरसूरि का उपरान्तताकार मयनिक मणि की कथामान्यता एव सोमविमल की चन्द्रावतीगीता आदि रचनाएँ भी मन्दायरी हैं। इस रचनाओं म कथा का गवर्णीय विषय प्रमुख नहीं है। किन्तु मयम गीत का तब तब और बराबर ही मान्यता का विषय मुख्य रूप में लिखनी पड़ता है। कथानका उदाहरणों आख्याओं एव रचनाओं का मयोजन इन नयी की समस्त रचनाओं म पाया जाता है। जलवा व मनारजक तत्वा का भी समावेश किया है। उपरान्त कथाओं म नगर वन सरावर एव शीतला का चित्रण हुआ है पर उदात्त स्वर उपरान्त का ही है। सन्तान वित्त और गीत का निष्पन्न वन्दन वर होता सदा मन्दा है। मुनिना भी कथाओं भी इस वय का साहित्य म निबद्ध की गयी है।

प्राकृत कथासाहित्य की विशेषताएँ और उपलब्धियाँ

हिन्दी और अपभ्रंश क प्रमात्यन कथाओं का विषय प्राकृत कथाओं से हुआ है। यत प्राकृत-कथाकारों ने घनकथाओं म शृंगार रस म पूर्ण प्रमात्यता का समावेश कर कथाओं का जोशपूर्ण बनाया है। मन्दा महोत्सव वसन शीत प्रेमपत्र साहित्य रचनाओं प्रमो प्रमिताओं का विभिन्न मानविक दण्ड प्रमानुराग प्रमानाव हास्य विनाश आदि का पूरवया समावेश किया है। रचयिताओं की दृष्टि से प्राकृत-कथाएँ बीजधर्म हैं। कथावीज में एक विषय वटवण उत्पन्न होता है और अनन्त अवान्तर प्रामाणिक कथागालाव निबन्धनी हैं जो सभी धार्मिक अन्तर्ध्वनता म प्रगटन व प्रदण करती हैं।

प्राकृत कथाओं म विवेक कचोत्प्रेरक हिन्दी पाया जाता है। प्याज के धिन्दी के समान अथवा केर के स्तम्भ की परत व ममान जन्म एक कथा म दूसरी कथा और दूसरी कथा में तीसरी कथा निम्नली जाय तथा वट के प्रारोह के समान दासा पर दासा चून्नी जाये वन् इस निम्न की माना जाता है। इस रचनाएँ का प्रयोग समस्त प्राकृत कथाओं म विद्यमान है। मनारजन व साथ वननागी की सन्त बनाया गया है। त्रिष प्रकार वट की बर्दी आग म विभाजित किया जाता है और उन आग की पूर्ण परिधि व वट की सपप्रदा प्रदण ही जानी है उसी प्रकार





कथोत्थप्ररोह के आधार पर इतिवृत्त की समस्त गतिविधि प्रकट हो जाती है। वास्तव में वटप्ररोह के समान उपस्थित कथाओं में सकेतात्मकता और प्रतीकात्मकता की योजना सुन्दर हुई है। परिवेद्यो या पर्विवेद्यमण्डलो का नियोजन भी जीवन और जगत् के विस्तार को नायक और प्रतिनायक के चरित्रगठन के रूप में समेटे हुए है। रचना में सम्पूर्ण इतिवृत्त को इस प्रकार सुविचारित ढंग में चिभक्त किया गया है, कि प्रत्येक गण्ड अथवा परिच्छेद अपने पर्विवेद्य में प्रायः पूर्णसा प्रतीत होता है और कथा की समष्टि-योजना प्रभाव को उत्कर्षोन्मुख करती है।

साहित्य में चम्पूविधा का विकास शिवानन्द और प्रशस्तियों की अपेक्षा गद्य-पद्य मिश्रित प्राकृत कथाओं में मानना अधिक तर्कमग्न है। यत प्राकृत में कथाओं को रोचक बनाने के लिए गद्य-पद्य दोनों का ही प्रयोग किया गया है। पद्य भावना का प्रतीक है और गद्य विचार का। प्रथम का सम्बन्ध हृदय में है और द्वितीय का मस्तिष्क में। अतएव प्राकृत कथाकारों ने अपने कथन की पुष्टि, कथानक के विकास, धर्मापदेश, मिथ्यात-निरूपण एवं कथाओं में प्रभावोत्पादकता लाने के लिए गद्य में पद्य की छोक और पद्य में गद्य की छोक लगायी है। ममगाडचक्रहा और कुवलयमाला की यह गद्य-पद्यमयी विशेषता चम्पूविधा की उत्पत्ति के लिए कारण हो सकती है। मन्कृत में त्रिविक्रम भट्ट के मदालमाचम्पू और नलचम्पू में पहले कोई चम्पू ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। दंडी ने चम्पू की परिभाषा दी है, पर प्राकृत म दण्डी के पहले की गद्य-पद्य मिश्रित शैली में लिखी गयी कथाएँ रही हैं। अतः हमारी दृष्टि में मन्कृत की चम्पूविधा का मूलस्रोत प्राकृत कथाएँ हैं।

प्राकृत कथाएँ लोककथा का आदिमरूप हैं। वसुदेवहिण्डी में लोककथाओं का मूलस्रोत सुगलित है। गुणादय की बृहत्कथाओं कि पैदाची प्राकृत में लिखी गयी थी लोककथाओं का विद्वत्कोप है। अतः प्राकृत कथाओं का लोककथा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। जातीय गौरव, वीरपूजा, जीवन की नवीन व्याख्या एवं मकेन विशेष की उपलब्धि प्राकृत कथाओं में पायी जाती है। विविष्ट तथ्यों, सामाजिक और राजनैतिक वातावरण का यथानिष्ठ चित्रण एवं गहन समस्याओं के समाधान प्राकृत कथाओं में निहित हैं। कथाओं का ढाँचा लोककथा का है, प्राकृत लेखकों ने इनी घरातल पर धार्मिक कथाओं का निर्माण किया है। साधारणतः प्राकृत कथाओं का स्वरूप पालिकथाओं के समान प्रतीत होगा, किन्तु अन्तर यह दिखलायी पड़ेगा कि पालिकथा-साहित्य में पूर्वजन्म कथा का मुख्य भाग रहता है, जबकि प्राकृतकथाओं में यह केवल उपसंहार का कार्य करता है। पालिकथाओं में बोधिमत्त्व या भविष्य बुद्ध ही मुख्यपात्र रहते हैं और कथा की चरम परिणति उपदेशकथा के रूप में हो जाती है। ममस्त जातक कथाएँ एक ही पिटी-पिटडी शैली में लिखी गयी हैं। पर प्राकृतकथाएँ भूत नहीं, वर्तमान की होती हैं। प्राकृत कथाकार जन्म-जन्मान्तरो का सम्बन्ध वर्तमान के साथ ही जोड़ देता है। सिद्धांत की प्रतिष्ठा भी सीधे-साधे रूप में नहीं की जाती है, बल्कि पात्रों के कथोपकथन और शीलनिरूपण आदि के द्वारा उसकी आम व्यञ्जना की जाती है। प्राकृतकथाकार अपने पात्रों को सीधे नैतिक नहीं दिखलाते। चरित्र के विकास के लिए ये किसी प्रेम-कथा अथवा अन्य किसी लोककथा के द्वारा उनके जीवन की विकृतियों को उपस्थित करते हैं। लम्बे मधर्ष के पश्चात् पात्र किसी जाचार्य या केवली को प्राप्त करता है और उनके सम्पर्क में उसके जीवन में नैतिकता आती है। इसी स्थल पर सिद्धांत की स्थापना भी इतिवृत्त के सहारे होनी जाती है। कथानक और घटनाओं का विकास मनोरञ्जक शैली में होता है।

प्रो० हट्टेल प्राकृतकथाओं की विशेषता में अत्यन्त आकृष्ट हैं। उन्होंने बताया है—‘कहानी कहने की कला की विविष्टता प्राकृतकथाओं में पायी जाती है। ये कहानियाँ भारत के भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों के रस्म-रिवाज को पूर्ण सचाई के साथ अभिव्यक्त करती हैं। ये कथाएँ जनमाधारण की शिक्षा का उद्गम-स्थान ही नहीं हैं, वरन् भारतीय सभ्यता का इतिहास भी हैं।’¹

इसमें मन्देह नहीं कि भारतीय नस्कुति और सभ्यता का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्राकृत कथा-साहित्य बहुत उपयोगी है। जनमाधारण ने लेकर राजा-महाराजाओं तक के चरित्र की जितने विस्तार और सूक्ष्मता के साथ प्राकृतकथाओं ने चित्रित किया है, उतना अन्य भाषा के कथाकारों ने नहीं। निम्नश्रेणी के व्यक्तियों का

और पुरोहितों का जीवन ही उस कथानाहित्य में चित्रित नहीं है, जसिन्तु साधारण व्यक्तियों का जीवन भी अस्ति है।”

बन्तुन प्राकृतकथाओं के पात्र वगन्मय दृष्टि में किसी नमस्सा को लेकर उपस्थित होते हैं। वे कथा के प्रारम्भ में लेकर उपसंहार तक अपने जीवन की अनन्त पीड़ाओं के साथ उस नमस्सा की टोंते चढ़ते हैं। उनिन्होंने ज अधिक जमघट रहने पर भी कथाप्रवाह में कोई रुकी नहीं जाने पायी है। कथानकों के मोड़ रोचकता उत्पन्न करने में सहायक हैं। मुख्य कथा का सिद्धान्त ज्वानर गथाओं द्वारा स्पष्ट किया गया है। प्राकृत की लघुकथाओं में घटना और उद्देश्य ये दोनों तत्त्व उपलब्ध होते हैं। नृत्ति और नोत्तिनों द्वारा लघु-कथाओं का मनोवृत्त बनाया गया है।

प्राकृतकथाओं से व्यवहृत प्रमुख कथानक-रूढ़िशां

कथाओं में बार-बार व्यवहृत होनेवाला एक-दूसरी घटनाओं अथवा एक-दूसरे विचारों की कथानक-रूढ़ि की मजा दी गयी है। यह मध्य अंग्रेजी के फिक्शन मोडिफ का प्रयोग है। आचार्य जनारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—
“हमारे देश के साहित्य में कथानक की गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय बहुत दीर्घकाल में व्यवहृत होते आये हैं, जो बहुत दूर तक यथाय होते हैं, और जो आगे चलकर कथानक-रूढ़ि में बदल गए हैं।” कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग कर मस्कृति के साथ कथानकत्वों की भी योजना करना है। सामान्यतः कथानक-रूढ़ियों द्वारा निम्नलिखित गुणों का समवाय किया जाता है—

- (१) कथानकों में गतिमत्त्व-कर्म की निष्पत्ति।
- (२) कथानकों और घटनाओं में नया मोड़ उत्पन्न करना।
- (३) कथा में विन्नार का सम्पादन।
- (४) नकेनो द्वारा नयोद्देश्य का स्पष्टीकरण।
- (५) प्रक्षेपको द्वारा कथानकों का अध्याहार करना।
- (६) भावी घटनाओं का समुच्चय।
- (७) पुरातन मस्कृति और प्रणियों का संयोजन।
- (८) घटनाओं में आवृत्ति द्वारा उत्पन्न नीरमता का निराकरण।

प्राकृतकथा-साहित्य में प्रयुक्त नमस्त कथानक-रूढ़ियों का विश्लेषण करना इस लघुकाय निबन्ध में सम्भव नहीं है, अतएव उहाँ कतिपय प्रमुख कथानक-रूढ़ियों की नालिका प्रस्तुत की जाती है।

१ घोट्टे का बाखेट के समय निर्जन-वन में पहुँच जाना, मार्ग भूलना, समुद्रयात्रा करने समय वान का भग हो जाना और काष्ठफलक के सहारे नायक-नायिका की प्राणरक्षा, जैसी घटनात्मक रूढ़ियाँ इस कोटि के अन्तर्गत हैं।

२ स्वप्न में किसी पुरुष या किसी स्त्री को देखकर उस पर मोहित होना अथवा अभिगम, यन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना के बल से रूप-परिवर्तन करना आदि विचार या विश्वासों का समवाय।

३ महान् शक्तिशाली व्यक्ति के जन्म के पूर्व स्वप्नदर्शन का होना एवं भविष्यसूचक शुभशकुनों का प्रकट होना।

४ भविष्यवाणी और आकाशवाणी की योजना। नायक-नायिका को रहस्यमयी घटनाओं की सूचना देने हेतु उक्त वाणियों का प्रयोग, उनको कर्त्तव्य की सूचना एवं भावी-फलफल।

५ राजस और व्यन्तरी के वार्तालाप, व्यन्तरी की प्रेमयाचना और रूपान्तर द्वारा नायक को धोखा देना एवं विद्याधरो द्वारा नायक के कार्यों में सहयोग देना।

१ ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग दो, पृ० ५४५।

२ हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पटना, प्रथम संस्करण पृ० ७४।

जैन-कथा-साहित्य और उसका श्रेय

गरेशप्रसाद जैन, वाराणसी



भारतीय-साहित्य का बहुभाग प्रायः कथानाहित्य है जिसमें विभिन्न काव्य-विधाओं में रचे गए एक ने एक सुन्दर गद्य उपलब्ध होने हैं। इन रचनाओं में जज्ञा लोक-संस्कृति की भव्य मिल्ती है वहीं उस युग में बोली जाने वाली भाषा का यथार्थ रस भी मिलता है। इन रचनाओं के पठन में व्यायाम की आवश्यकता नहीं पड़ती।

विश्व के सम्पूर्ण साहित्य का बहुभाग एवं सर्वाधिक जन-प्रिय अथ किमी न किमी रूप में कथात्मक-साहित्य में ही पाया जाता है। लौकिक साहित्य-क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि धार्मिक साहित्य-क्षेत्र में भी यही स्थिति है। जैन-साहित्य का भी लोकदृष्टि ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचक एवं जन-प्रिय अथ उसका कथानाहित्य ही है।

जैनधर्म को प्रसारित व प्रचारित करने के लिए जैनाचार्यों ने अतुर्व प्रेरणाप्रद और प्राज्ञ नैतिक-कथाओं की मारगभिन परम्परा का उद्घाटन किया है। भारतीय लोक-कथानाहित्य में जैनकथाओं का विशिष्ट स्थान है। सदा भी उनकी पर्याप्त है। विषय-विवेचन में एक मौलिकता है, समार के समस्त अनुभवों को अपने आचल में छिपाये हुए, इन कथाओं ने विरक्ति और नराचार को विशेषतः प्रतिफलित किया है।

कहानियों के माध्यम में जिस उपदेश की द्वारा विस्तृत होती है, वह मानव पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव छोड़ जाती है और मानव वैसा आचरण करने को आनुर हो जाता। घटनाओं के क्रमिक उत्थान व पतन का मयोग इस प्रकार होता है कि पाठकों की उत्सुकता सदैव जीवित रहती है, और आनन्द की समयी द्वारा का उद्रेक होता रहता है। सरल, सुबोध और सुगम वर्णात्मक जैली कथाओं में चार चाद लगाती है, और उस उपदेशात्मकता को विशेष प्रेरणाप्रद बनाती है।

जैनधर्म के कथाग्रन्थों में ऐसे अनेक चिरगूढ मवेदनशील आन्यान उपलब्ध हैं, जो ऐतिहासिक तथ्यों की प्रतीति कराने के साथ ब्रह्मरता की निर्भय घाटी पर निरुपाय लुटकती मानवता को नैतिक एवं आध्यात्मिक भावभूमि पर महान् और नैतिकता का अधिष्ठाता बनाने में सक्षम है। ये कथाग्रन्थ संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश भाषा में होने के कारण जन-साधारण में प्रसारित नहीं हो सके। यदि कुछ राजस्थानी बोली और पुरानी हिन्दी के माध्यम में आये भी हैं तो उनसे पर्याप्त मात्रा में लाभ नहीं पहुँच सका है।

यथार्थवाद के घरातल पर निर्मित इनकी रूपरेखाओं में आदर्शवाद का ही रंग गहरा है। इन्होंने एक बार नहीं, हजारों बार बतलाया है कि मानव का लक्ष्य मोक्षप्राप्ति है, उसमें सफल होने के लिए विरक्त होना ही पड़ेगा। यद्यपि पुण्य सुखकर है और पाप की तुलना में इसकी उपलब्धि श्रेयस्कर है, फिर भी पुण्य की कामना का परित्याग एक विशेष परिस्थिति में आत्म-शुद्धि के लिए आवश्यक है।

कर्म-मिद्धात के निरूपण में इन कथाओं में पाप-पुण्य की विगद व्याख्या हुई है। प्रत्येक जीव को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है, इस अटल मिद्धात की परिधि के बाहर न देवता जा सकते हैं और न नरपति। ऋषि-मुनियों को भी अपने कृत्यों के शुभाशुभ परिणामों का अनुभव करना पड़ता है।

जैन धर्म पुनर्जन्म के सिद्धांत में भी पूर्ण आस्थावान है। इसीलए कमजान की अभिव्यक्ति अधिक प्रभाव गाली वन जाती है। किसी कारणवश स यति जीव अपने वतमान जन्म में अपने बर्मा का कर्म की भांग पाया तो उसे दूसरे जन्म में अवश्य सांगना पड़गा।

जावन में ब्रजा की आवश्यकता उनक प्रयोग उनकी उपयोगिता आदि पर अनन्त कथनिया हैं जिन उन्नत जीवन को समुचित करने में मलम् हैं। इन कथनियों के मतत चिन्तन और मनन में एक प्रकार का प्रेरणा पारर मानस आध्यात्मिकता और तबित्रता को आरम्भसर हाता है।

ममलन प्राणिया की चिन्ता करने धान जनधर्म के सिद्धांत में सबभरहितान की भांगना मन्त्र सम्पाति २० है। मग भेन अथवा जानि भेन की कल्पना के लिए सहा स्थान है ना नहीं। पशु पक्षी स्वभाव राशर रक और श्वपक को भी मगान रूप में धर्मोपन शुनकर जमुनिया न अपनी उन्नतरता का परिचय दिया है। जनधर्म के सिद्धांत को समझने के लिए जिन कथाओं का सहारा दिया है, वे काल्पनिक नहीं हैं बरन उनकी कथा-वस्तु में धर्माधता है तथा गान्धारा की पुष्टि में उनका अवसान हुआ है। इस प्रकार से भारतीय जैन कथा-साहित्य में जैन कथा साहित्य का सिद्धि स्थान है।

कथा-वस्तु की विषयनाश के उदाहरणरवन् हम जैन कथा-ना का उपस्थित कर मरते हैं। भारतीय जनता के प्रत्येक रग के आराग विचारों एवं व्यवहारों के विषय का उनका यथाय एक निश्चिन्त परिचय प्राप्त होता है। जन-कथा साहित्य का भारतीय सभ्यता के सङ्कति के इतिहास क्षेत्र में भी अत्यन्त सम्बन्धपूर्ण स्थान है। जन-कथा साहित्य की मूलवस्तु नृत को वतमान से सम्बन्धित रहती है अथन मित्रता का बोधा उपन नहीं दती उसक कथानक ही प्रायः अग्रस्थ रूप में मगना उद्भव प्रकट करने रहते हैं।

जैन कथाओं में वणनामक गली का ही सबभ निर्वाह है किन्तु भी उन्म भावनाओं का उत्थान वनन जीवन का क्रमिक विकास एवं मानवता का उच्च सङ्केत विद्यमान है। जैन कथा साहित्य का शृङ्खला का निमाण धार्मिक और नाक कथाओं के क्षेत्र में उद्घटित होता है।

जनकथासाहित्य अत्यन्त विमान व्यापक विभिन्न साधामय एवं विविध है। जैन कथाओं दन्तकथाओं नृत्तिक आध्यात्मिकता प्रमाथ्यान साहित्यिक कथनिया गुणगली की कथनिया अगानदी स्वभावनाओं से सम्बन्धित कथनियों उपयाम नाक कथा धर्म्य दान (दूना) डान राग रूपक प्रतीकात्मक आध्यान इत्यादि समय-समय पर एवं प्रत्येक प्रमाण अथवा विविध भाषाओं में प्रचलित विभिन्न कथनिया एवं रूपों में जनकथा-साहित्य उपलब्ध है। स्वतन्त्र कथाओं के बहुता है पर अनेक कथाओं को परस्पर सम्बद्ध शृङ्खलाएँ भी हैं। कुछ छोटी कथनियाँ हैं जो अनक कथा-कथाओं में भी उपलब्ध होती हैं।

कथाओं के विविध प्रकारों में से दो मुख्य हैं एक लौकिक कथा दूसरा धार्मिक। धार्मिक कथाओं में आध्यात्मिकता का पूरा पूरा पुट ना रहता ही है आनरिज जीवन सन्नाश से भी उनका चलिष्ठ सम्बन्ध रहता है। उनमें कर्तों का सन्तुष्टान करनेवाले भय धावना की धार्मिक धर्मांग के साथ नृत्तिक जीवनधरा का भी अन्ग विभण पाया जाता है। गाय हो मन्त्र के मयम मुन्त्र रहकर विजय प्राप्त करने का वनन भी स्पष्ट रहता है। मस्तुर्या के उच्चतर जीवन के विकास और नृत्तिक चरित्र से अनेक चरित्र में विराग सम्भव है।

जनकथाएँ प्रायः लौकिक हैं कुछ मन्त्रादर आदि जनेवर प्रपा में भी प्रकट की गई हैं। अनेक लौकिक प्रचलित लार कथाओं का भी उनमें समाविण हो गया है, किन्तु ये मन्त्र जनधर्म के लौकिक मन्त्रर र प्रमाण हैं।

जैन साधारण में अपने सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए जैन साधु कथाओं को सत्र गुनत्र में प्रमात्रगामी साधन मानने में और अनेक दली हति में मसी भाषाओं में मन्त्र-मन्त्र में इन कथनाङ्गों का धर्म मोमा में पढ़ाया गया है। उनकी कथाएँ नृत्तिक जीवन की मरन में मरन माथा में हाता थी। काँच कथनों को कवन एक ही साधारण कथा हुआ करती थी पर अनेकों कथाओं में बहुत ना लौकिक-कथा कथा रहती हैं जिन पद्यमन्त्र।





डा० मयकेतु (एम०ए०, पी०-एच०डी०) ने जैन लोककथाओं पर विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि "जैन-साहित्य में तो बौद्धों ने भी अधिक साहित्यों का भण्डार मिनवा है। वे कहानियाँ कुछ तो धर्म-सिद्धान्त ग्रंथों में आती हैं। वे बहुधा तीर्थस्त्रोतों तथा उनके धर्मग्रन्थ अनुयायियों तथा श्रमण-पुरुषों की जीवन-मूल्यवृत्तियों के रूप में जहाँ-तहाँ मिलती हैं।"

डा० याकोबी इनके उद्भव का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि कथानक-साहित्य का उद्भव ईसा के एक शताब्दी बाद के उत्तरार्द्ध में माना जाना चाहिए।

मुद्रमित्र जूगोपितन विद्वान् श्री सी० एच० टान ने अपने ग्रंथ "ट्रजरी ऑफ म्प्रीज" की भूमिका में स्वीकार किया है कि जैनो के कथा-कोष में मगधीय कथाओं व यूरोपीय कथाओं में अत्यन्त निकट साम्य है।

प्रो० मैक्समूलर ने तथा राईज ईविन्स ने अपने ग्रंथों में इस बात का सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण दिये हैं कि भारतीय बौद्ध-कथाएँ लाकण्डो के माध्यम से परमिया ने यूरोप गये हैं।

पूर्वमध्य-काल में ही जनेक जैनकथाएँ भारत के पश्चिमी तट में अरब पहुँचीं जहाँ से ईरान, और ईरान से यूरोप। जनेक जैनकथाओं को निब्वन, हिन्द-एशिया, रूस, दूनान, मिनरी और इटली के तथा यूरेशियों के साहित्य में पहचानकर खोज निम्ना गया है। इसी कारण जैन-कथा साहित्यको अखिल भारतीय-मस्कृति का प्रतीक माना जाना चाहिए और यथार्थ है भी यही।

श्री टाने, हर्टन, ब्लू, लुमेन, नेगिनौरि, चैकोबी आदि जनेक यूरोपीय प्राच्यविदों ने जैन-कथा साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण गवेषणाएँ की हैं।

विदेशी लोक-कथाओं के परिशीलन में ज्ञान होता है कि अनेकों जैनकथाएँ मागर पार कर वहाँ गईं, और वहाँ की मान्यताओं की वेष-भूषा में अलङ्कृत हो गयीं, किन्तु उनकी मूलभूत आत्मा ज्यों की त्यों सुरक्षित रही।

जैन-कथाकार अपनी उन्मुक्त स्वतन्त्रता के कारण जीवन की प्रायः प्रत्येक भौतिक, मानसिक, दैनिक जयवा भावनात्मक परिस्थितियों को अपनी कथा में आत्ममान् कर लेता है, जिसमें जैन-कथायें जन-जीवन के प्रायः प्रत्येक अंग का स्पर्श करती हैं, और वह आवाज-वृद्ध, स्त्री-पुरुष जन-साधारण का स्वस्थ मनोरंजन करती हुई नाट्यक, दार्शनिक, सैद्धान्तिक तथा नैतिक तथ्यों की छान डाल देती हैं, जिसमें जीवन श्रेयम्-उन्मुक्त होने लगता है।

जैन-कथायें अवाधगति में अग्रसर होती रहती हैं। कोई कथानक या पात्र हो, कोई भी घटना-क्रम जयवा स्थिति का चित्रण हो, उसे जैन-कथाकार अपने सच में टाँककर, अपना मन्तव्य रोचक और वस्तुपरक ढंग में कहकर समर्थन प्राप्त करता है। कथाकार कहानी के जल में दार्शनिकता व पुण्य-पाप के मुफ्त निष्कर्ष की बड़ी ही गभीरता-पूर्वक उपस्थित करता है, जिसमें पाठको अथवा श्रोताओं पर धार्मिक श्रद्धा की छाप पड़ जाती है।

जैन-माधुओं का कथा कहने का ढंग भी अन्यो की अपेक्षा कुछ विशेषतापूर्ण है। कथा के प्रारम्भ में वे अपने किसी प्रसिद्ध धर्म-वाक्य या पद्यांश द्वारा मंगलाचरण कहते हैं और पश्चात् कथा कहना प्रारम्भ करते हैं। कथा की नम्रवाई-छोट्टाई पर वह कभी भी ध्यान नहीं देते। उनकी कथायें घटनापूर्ण होती हैं। कथा के प्रारम्भिक भाग में प्रमुख पात्र अथवा पात्रों का परिचय व निवास-स्थान आदि की चर्चा की जाती है। कथा के अन्त में कथा-श्रोताओं अथवा पाठकों में सम्बन्धित पात्रों को सम्मार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं। कथा-पात्र अहिंसक भगवान् ने समार के दुःखों ने छुटकारा प्राप्त करने का उपाय पूछता है, प्रत्युत्तर में केवली भगवान् जैन-धर्म के मुख्य-मुख्य तत्त्वों का निरूपण करते हैं। वे वनलाते हैं कि प्राणी को पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप ही सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। अपने कथन के उदाहरण में वह जहाँ-तहाँ के पात्रों के जीवन में घटित घटनाओं के वर्णन द्वारा उसे स्पष्ट रूप में समझाते हैं।

जैनतर विद्वानों ने लोक-भाषाओं को गौण मानकर जहाँ मस्कृत आदि अन्य भाषाओं में कथा-साहित्य की सृष्टि की है, वही जैन विद्वानों ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों ही भाषाओं में कथा-साहित्य का भण्डार परिपूर्ण किया है। इन प्रकार की रचनायें कथा, चरित और पुराण-ग्रंथों के रूप में हमें उपलब्ध हैं। इतना ही नहीं बल्कि

भारतीय विविध प्रांतीय भाषाओं मराठी गुजराती हिंदी आदि में संज्ञित रचाये गए कथा-साहित्य भण्डार की अपूर्य निधि हैं।

प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण इन कथा श्रृंखला में 'रिपण का व्रत' कथा-वाच प्रभावशाली और नेपोलियन आदि का आराधना कथा कोष जिनसेवर सूरि एवं अन्य वर सूरि की कथावस्तुओं 'रामचन्द्र' का पुण्यायक कथा कोष इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

स्वतंत्र कथाओं में तरंगवती कथा ममराइच कथा धूम्राण्यन कुवलयमाता उपमितिभवप्रपञ्चकथा धर्म परोपकार सम्पन्न कथामुनी नित्यकमवरी धर्मसूत, 'गुणमपत्ति रत्नचूड़ की कथा आदि विद्यमान महत्त्वपूर्ण हैं।

जनकथा-साहित्य के प्रधान स्रोत स्थान पदान्तरों का तथा निवास की भववती-आराधना का माना जाता है। गुणादय की प्रसिद्ध श्रृंखला का आधार वाणभूति द्वारा मनभाषा में रचित जिस कथे को माना जाता है वह अन्य विद्वान्-वाण भिक्षु का प्राकृत-कथा ग्रंथ प्रतीत होता है। स्वतन्त्र आगम-मूल और निगम-पौराणिक साहित्य में भी अनेक जनकथाओं का उद्गम होता है।



जैन-कथासाहित्य : एक अनुदृष्टि

प्रोफेसर श्रीचन्द्र जैन

एम० ए०, उज्जैन



कहानी साहित्य की एक प्रमुख विधा है जिसे सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। विश्व के सर्वोत्कृष्ट काव्य की जननी कहानी ही है। कथा के प्रति मानव मान का महत्त्व आकर्षण है। फलतः जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें कहानी की समृद्धि अभिव्यक्ति न हुई हो। मनुष्य तो यह है कि मानव अपने जन्म के साथ कथा को लाया है और वह अपनी जिन्दगी की कहानी कहना दृष्टा समान्य करना है। कहने और सुनने की उत्कण्ठा मार्वनीन है। मानव-विकास की गाथा में एक ऐसा भी चरण था जब मनुष्य जाननी में ही रहकर पशु-पक्षियों के साहचर्य में अपनी नीरस जीवनयात्रा को मरम बनाता था। उस समय हरे-भरे पेड़ उसे छाया देने दे, गगनचारी विहंगम धुर गीत सुनाकर उसकी थकावट मिटाने थे और पशु अपनी उत्काममयी जीडालों में उसका मनोरञ्जन करते थे। इसी स्थिति में मानव का पशु-पक्षियों का मित्र बनाया है और बड़े दुर्गों के बीच जाने पर भी छाज का इमान उन्हें भूल नहीं पाया है। सुमन्तुन होने पर मानव ने अपने इस स्नेह को कहानियों के माध्यम में विकसित किया। परिणामतः कथा के आकर्षण को मरम बनाने के लिए प्राकृतिक सुषमा कहानी-साहित्य में एक विशिष्ट उपकरण के रूप में मान्य है।

हमारे प्राचीनतम साहित्य में कथा के तत्त्व जीवित हैं। ऋग्वेद में, जो मरम का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है, स्तुतियों के रूप में कहानी के सन्तत्व पाये जाते हैं। ऋग्वेद के मंत्र १ सूक्त २१।२५, मंत्र ३० (दोनों में मिताकर) में ऋषि धुन गेय का वर प्रमित्र आश्रय है जिसमें उन्होंने 'वन्ग' की प्रार्थना की है, उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। जयन्त-धामिनी के आदरगं नागचक्रि ऋग्वेद में आते हैं। ब्राह्मणग्रन्थों में भी हमें जनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। जनयथ ग्रन्थ की पुरुषा और उर्वशी की कथा का जिन को जान नहीं है ?

ये कहानियाँ उपनिषत्काल में पूर्व की हैं। उपनिषत्काल में आकर उन्हें कुछ नया रूप मिला है। गार्गी-याज्ञवल्क्य महाद तथा मन्त्रात्म-जाबाल आदि की कहानियाँ उपनिषद्-युग की प्रमित्रकहानियाँ हैं। छान्दोग्य उपनिषद् ४।१।३ में जनयुति के पुत्र राजा जानयुति की कथा का चित्रण मिलता है। पुराणों में कहानी बहुत बड़ी है जिसमें वेद के गूढार्थ का प्रतिपादन होता है। यह कहना कि पुराणों में वेद की व्याख्या है, निराधार नहीं है। पुराण वेदाध्ययन की वृत्ति है। वेदों की मूलभूत कहानियाँ पुराणों की कथाओं में पत्रवित प्रस्तुति हुई हैं। पुराण कथा-कहानियों का अनुल मंडार है।

रामायण और महाभारत में भी बहुत ने आश्रय जुड़े हैं। रामायण की अपेक्षा महाभारत में यह वृत्ति अधिक है। एक प्रमाण में देखा जाय तो महाभारत कहानियों का कोष है।^१

उस प्रकार कथामहित्य की एक प्राचीन परम्परा है जिसमें पंचतंत्र, हिनोपदेन, वेताल पंचविशतिका मिहामनद्वात्रिंशिका, शुक्रमप्ति, वृद्धकथामजरी, कथामरित्नागर आख्यानयामिनी जानक कथाएँ आदि विशेषतः उल्लेख्य हैं।

कथा-साहित्य-मरिता की बहुमुखी धारा के वेग को अप्रगामी बनाने में जैन कथाओं का योगदान उल्लेख-

के द्वारा यह समझाया गया है कि विषयभोग का त्यागी साधु राजा महाराजा आदि का समार मे उद्धार कर देता है ।

इस प्राचीन कथामाहित्य से, जिसका ऊपर वर्णन हुआ है, तत्त्व ग्रहण कर आगे के लेखको ने मस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश मे अनेक कहानिया रखी ह । अपभ्रंश के पञ्चचरित्र (पञ्चचरित्र) एव भविष्यत्तत्त्वा (भविष्य-दत्तकथा) नामक गन्ध कहानी माहित्य की अमूल निधि ह । इनमे अनेक उपदेशप्रद कहानियाँ उपलब्ध होती है । अधिक क्या कहा जाए, कथाओं के समूह के समूह जैन आचार्यों ने रच डाले हैं जिनके द्वारा जैनधर्म का प्रचार भी हुआ है और धार्मिक मिथ्यान्तो को बल भी मिला है ।^{११}

इस कथासाहित्य के कथानक वडे ही मर्मस्पर्शी हैं और साथ ही साथ व्यापक हैं । जीवन के शाश्वत तत्त्वों का इनमे निरूपण हुआ ह । तथा पात्रों का चरित्र स्वाभाविक रूप मे होने के कारण मर्मग्राह्य बन गया है ।

कथनोपकथन पात्रानुकूल है । वातावरण इन कथाओं की भाव-भूमि को मनोरम बनाता है तथा पात्रों की विचारधारा मे वैशिष्ट्य समुत्पन्न करता है । देश काल से सम्बन्धित कथा-सूत्र तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एव ऐतिहासिक तथ्यों को प्रदर्शित करते हैं और पाठकों के सम्मुख विविध चित्रावलियों को प्रस्तुत कर अपनी सार्थकता का परिचय देते हैं ।^{१२} शैली मे सरलता है, सरसता है तथा एक विशिष्ट परम्परा का अवलम्बन है । उद्देश्य के सन्ध मे यही कहना पर्याप्त है कि जैन लेखकों ने कथाओं के द्वारा आध्यात्मिक पक्ष की प्रतीति को ही प्रधानता दी है । स्वप्निल आकाशों से दूर रहकर ही मानव अपने ग्रापको पहिचान सकता है । यही सिद्धान्त मर्मत्रय ध्वनित हुआ है । मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी प्रथम —“सचित्र जैन कहानियाँ” नामक पुस्तक के दूसरे भाग की भूमिका मे लिखते हैं — ‘परिस्थितियाँ ही मनुष्य को बनाती या विगाडती हैं, यह स्थूल सत्य है । इसमे तत्त्व की उपलब्धि नहीं होती । वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य ही अपना ब्रह्मा-ल्लप्ता, विष्णु-मरक्षक व महेश-सहाराक है । उसकी सावधानी या असावधानी पर उसका सारा भावी जीवन अवलम्बित होता है । वह अपनी घरोहर की खोता है,^{१३} सुरक्षित रखता है या सुसज्जित करता है । यह उसके कर्तव्य पर आधारित है । प्रस्तुत जैन कहानियाँ पाठक के समक्ष यही नवनीत प्रस्तुत करती हैं । इन कहानियों मे नायक के पूरे जीवन-चित्र प्रस्तुत नहीं हैं अपितु वे ही हैं जिनमे वह अपने कर्तव्य

१ हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य, पृ० ३४६ ।

२ विचारों के प्रकट करने के ढंग को हम शैली कह सकते हैं । साधारणतः लिखने और कहने की गति को यदि शैली कहा जाय तो ठीक ही है । “प्रसिद्ध यूनानी विचारक अफलातून या प्लेटो का मत है — जब विचार को तात्त्विक रूपाकार दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है । — बर्नार्ड शा का विचार है कि प्रभावपूर्ण व्यक्ति ही शैली का अर्थ और इति है । हमारी समझ मे शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एव प्रभावपूर्ण बनाते हैं । शैली अंग्रेजी ‘स्टाइल’ का अनुवाद है ।”

— हिन्दीसाहित्य कोश — भाग २ पृ० ३८७ ।

जैन कथाओं की शैली एक परम्परा को अपनाए हुए है जिसमे भावों को सहज रूप मे अभिव्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है । कहावतों, मुहावरों एव सूक्तियों का समावेश होने से यह शैली बड़ी सरस बन गई है । प्रत्येक कहानी के प्रारम्भ मे मंगलाचरण-स्वरूप जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति-परक कुछ पंक्तियाँ होती हैं तथा कथा की समाप्ति मे भी भगवत्भक्ति की कामना की जाती है — “ससार का हित करने वाले जिनेन्द्र भगवान् को प्रसन्नतापूर्वक नमस्कार कर शुभ नाम के राजा की कथा लिखी जाती है ।” कथा की परिसमाप्ति पर लेखक की कामना इस प्रकार अभिव्यक्त होती है — ‘जिनके वचन पापों के नाश करने वाले हैं, सर्वोत्तम हैं, और ससार का भ्रमण मिटानेवाले हैं, वे देवों द्वारा पूजे जाने वाले जिन भगवान् मुझे तब तक अपने चरणों की सेवा का अधिकार दें, जब तक कि मैं कर्मों का नाशकर मुक्ति प्राप्त न कर सकूँ ।’

अराधनाकथाकोश-तीसरा भाग पृष्ठ ६१ । पद्यात्मक कथाओं की शैली कुछ पृथक् होती है । उम्पू शैली मे लिखी हुई कथाओं की शैली अधिक प्रभावोत्पादक मानी गई है ।

से या तो बन्त अधिक निलर उठा है या वह काजा स्यान् हा गया है। जीवन का प्वाध या परिचमाध यत्र नष्ट आया भी है तो वह एक सयोरक प्रवृत्ता के रूप में ही उपस्थित हुआ है। इन कहानियां में एक ओर त्याग मापना व वगाय की प्रचुरता है तो साथ ही माध जीवन व सावहारिक पन्मुखा का छूने वान भी अनेक प्रवर्ण है जिनमें व्याघ्यात्मिकता और मोनिकता का समवेत स्वर है।

कहानियां में कथोरकथन व माध्यम से कथन बिना ही नगी हाता जपितु उत्तम जावन की सरत अनु भूनिया क साथ संस्कृति सम्पना दान व धम का निचाड भी होना है। सामांयता लान में ताजिक उत्तम धम में आचरणीय पद्लुओ की विविपता तथा संस्कृति व सम्पना में प्राचीनता व अजाचावता का विवाह हाता है। जिनामु यकिन उत्तम गहरे विवेचन का पन्ना है पर उसमें से उत्तम हस्तधन वन्त पागा होना है। कई बार हा ११ बार दुव किया जगाने पर भी ध्यक्ति का वापी हाया सोचना पडता है। कुछ हने गिन यकिन ही गेन हात हैं जा उन विवेचन में मुक्ता या गतत है। विन्तु संस्कृति दान व धम मुछ एक यविपता को ही घरोर नही हाती। वे ता प्रत्येक यकिन को पावित्र निधि होत हैं गिनवे बिना एक वन्त चनना भी असभव हाता है। एसी स्थिति में उत्तम सारन माग कान्नीगान्ति ही हाता है। इस माग से दान क दुरुह प्ररन संस्कृति का गन्ना चिन्तन व धम व विविध पद्लु सरता से ह्मयगम किया व कटाव जा सकते हैं। इसमें उन सब की शान्ती ह्म जासा हाती है। मित्रममन व वातासम्मत उपन्ना भी एसी माध्यम से प्राप्त हाता है जा यति में मधुर आचरण में सुपर व ह्मय को छूने वाता हाता है।

मुनि की का य वचन प्राय समस्त जन कथाओं के सम्पन्ध में सांय वन्त जा सरता है। सासारिक वधव निवास से विरक्ति उत्पन्न करने के लिये जन कथाएं अधिक प्रयोजनवली सिद्ध ह्म हैं। एम जिन मुनिकथा का समाविष्ट किया गया है व भी ह्म प्रमुव माग्य का सायक वताती हैं।

जनकथाओं का वर्गीकरण

आत्मयाजा का एक विगान भाण्डार है जिन निश्चित रूपा में विम्वन करना सरन नही है। फिर भी विद्वाना ने कथानका पात्रा गय जेह्दया के अनुसार कथाओं का वर्गीकरण किया है। कथा-साहित्य विगारण ने अभिप्राया व आधार गर लिये विमाजिन करने का प्रयत्न किया है। दीपनिवाय व ब्रह्मजावगान में गय स्थान पर कथाओं का अनेक श्रेणिये हैं जे इस प्रकार हैं—(१) राजकथा (२) वोरकथा (३) महासायकथा (४) मन कथा (५) भयकथा (६) मुद्रकथा (७) अनकथा (८) गावकथा (९) वस्त्रकथा (१०) गयनकथा (११) माना कथा (१२) गयकथा (१३) गातिकथा (१४) यानकथा (१५) ग्रासकथा (१६) निगमकथा (१७) नगरकथा (१८) जनपकथा (१९) स्त्रीकथा (२०) गुरकथा (२१) गुरकथा (२२) विगिताकथा (वाजाण गले) (२३) कु भस्मानकथा (पनपट की कहानियां) (२४) धुवप्रत कथा (धुवरा का कथानियां) (२५) रिग्यकथा (२६) नाशकथायिना (२७) गधुनकथायिना (दीप निवाय १।८)।

साधारणत आ कथाओं का निम्ननिविन चार भागा में विभवन किया जा सरता है —

- (१) धम सम्पन्धी कथाएं।
- (२) अय सम्पन्धी कथाएं।
- (३) काम सम्पन्धी कथाएं।
- (४) मा १ सम्पन्धी कथाएं।

ह्म वर्गीकरण में भी मा विविपक भावना सबध विद्यमान है। एम अनगत विरक्ति रयाग लपण्या पुनर आनि धामिग रिगन गय वृण्ड स्वय ही सन्निधि हैं कथानि जन कथाओं का लय जा धम की मी मा का वताना तथा जनपग प्रतिपादिन आधार का प्रचार करना है।



प्रकारान्तर से जैन-कथाओं को इस प्रकार भी—वर्गीकृत किया जा सकता है (१) धार्मिक (२) ऐति-
हासिक (३) सामाजिक (४) उपदेशात्मक (५) मनोरंजनात्मक (६) अलौकिक (७) नैतिक (८) पशु-पक्षी मन्थवी
(९) गाथाएँ (१०) शाप-वरदान विषयक (११) व्यवसाय मन्थवी (१२) विविध (१३) यात्रामन्थवी (१४)
गुरु शिष्य मन्थवी (१५) देवीदेवता मन्थवी (१६) गङ्गानाथगङ्गा मन्थवी (१७) मन्त्र-तन्त्रादि मन्थवी (१८)
बुद्धिपरीक्षण मन्थवी (१९) विविध जाति-वर्ग मन्थवी (२०) विशिष्ट न्याय विषयक (२१) काल्पनिक कथाएँ,
एव (२२) प्रकीर्णक ।

कतिपय कथाकोशों का संक्षिप्त परिचय

(१) कथाकोश (कथानककोश अथवा कथाकोश प्रकरणम्)—उसके रचयिता श्रीवर्धमानसूरि के शिष्य
जिनेश्वरसूरि हैं। प्राकृत के इस ग्रन्थ में २३६ गाथाएँ हैं। इस ग्रन्थ की मस्कृतटीका में गद्य-पद्य दोनों का प्रयोग
किया गया है। यत्र-तत्र किं गत् संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के उद्धरणों से यह कृति विशेष आकर्षक बन
गई है।

(२) कथाकोश—इसके रचयिता का नाम अज्ञान है। १७ कथाएँ इसमें संगृहीत हैं। इन कहानियों में लोक-
कथातत्त्व विशेषतः दृष्टव्य हैं। संस्कृत में लिखित इस कृति में प्राकृत गाथाओं का भी समावेश है।

(३) कथाकोश (कथारत्नकोश) सन् ११५८ में लिखित कृति के रचयिता श्रीप्रमन्नचन्द्र के शिष्य श्री देवभद्र
हैं। मुक्तिमार्ग के विवेचन के लिए आदर्श कथाओं को प्राकृत में लिखा गया है तथा यत्र-तत्र संस्कृत के पद्यों को भी
उद्धृत करके कथा-कोशकार ने बड़ी निपुणता से गृह्य के कर्तव्यों को प्रतिपादित किया है।

(४) कथाकोश (भारतेश्वर बाहुवली-वृत्ति)—प्राचीन जैन-साहित्य में निर्दिष्ट धार्मिक महापुरुषों की जीवन-
कथाओं को प्राकृत में लिखकर लेखक ने अपनी कथाप्रणयन अभिरुचि का सुन्दर परिचय दिया है। प्राकृत की इस
रचना में संस्कृत का भी प्रयोग हुआ है। यह कृति सन् १५०६ में निर्मित हुई थी।

(५) कथाकोश (व्रतकथाकोश)—संस्कृत की इस रचना के प्रणेता श्रीश्रुतमागर हैं। व्रतों में मन्थव्य
कथाएँ इसमें संगृहीत हैं तथा विक्रम संवत् की १६ वीं शताब्दी की यह कृति है। इस कृति के रचयिता के गुरु
विद्यानदि थे।

(६) कथाकोश—उसमें प्राकृत में लिखित १४० गाथाएँ हैं। कृति के लेखक श्रीविजयचन्द्र हैं।

(७) कथामणि-कोश (अत्यायनमणि-कोश)—प्राकृत में रचित इस पद्यात्मक ग्रन्थ के रचयिता कवि श्री-
देवेन्द्रमणि हैं जिन्हें नेमिचन्द्र भी कहा गया है। श्री देवेन्द्र अपनी सरल शैली के लिए प्रसिद्ध हैं। यह ग्रन्थ ४१
अध्यायों में समाप्त हुआ है। इस कोश की मस्कृतटीका के लेखक श्रीजिनचन्द्र के शिष्य श्रीअमरदेव हैं। टीका सन्
११६० में लिखी गई थी।

(८) कथामहोदधि (रूपप्रकर अथवा सूक्तावली)—१७६ छन्दों में लिखा गया यह ग्रन्थ धार्मिक तथा
नैतिक सिद्धान्तों की विवेचना करने में पूर्णरूपेण मक्ष्य माना गया है। प्रत्येक छन्द में एक अथवा दो कथाओं का उल्लेख
हुआ है। इसके रचयिता श्रीवज्रसेन के शिष्य श्रीहरिप्रेम हैं।

(९) कथारत्नमागर—उसमें १५ तरंग हैं। श्रीदेवभद्र सूरि के शिष्य नरचन्द्र सूरि इस 'सागर' के निर्माता
हैं।

(१०) कथारत्नाकर—संस्कृत की इस रचना के प्रणेता श्रीउत्तमपि हैं।

(११) कथारत्नाकर—सन् १६५७ में रचित इस ग्रन्थ के रचयिता श्रीकमलविजय के शिष्य हेमविजय
गणि हैं। इसमें संगृहीत कथाओं में से कुछ तो सुनी हुई कथाएँ हैं और कुछ काल्पनिक हैं। इस तरंगों में २५८ कथाओं
की विस्तृत चर्चा हुई है। सरल संस्कृत में लिखी गई यह कृति बड़ी सरस एवं नैतिकता की शिक्षिका है। संस्कृत,
प्राकृत, अपभ्रंश, पुरातन हिन्दी एवं प्राचीन गुजराती के उद्धरणों को पर्याप्त मात्रा में अपनाया गया है।

(११) कथाणव—(ई सन् की १३ की गता) म निमित्त)। प्राहुत की रचना के कवि धर्मपाव है।
जा तपस्वी बारा की कथाया व साध-माध अय उत्पन्न कथाओं का भी हमम उचित स्थान मिला है।

(१२) कथावली—प्राहुत गन म विविध म रहस्य श्रव व लयन तीमन्तर । मम ६ गताया
गुण्या व कृताओं व साध अय महारमाया व चरित्रा वा कथात्मक रूप म उत्पन्न हुआ है।

(१३) कथामास (उपलब्ध मास) —ममे लख म जिनमद है। मम ममनीन कथाय प्राहुत म है
जिनका मय मानवा की निशिताया की आर आवयित करता है।

(१४) कथा सग्रह—(कथाकोण) ममे रचयिता की रावगमर ममपा की (भी नितकगूरि के गिय्य) है।

मकी मरम कथाय सुगम एव मानाय सगुनय म निमी म हैं। कथाया व मय म गगुन प्राहुत एव
अपम म के छ। को उग्या दिया गया है। ससातिन रातुव व माय साकतिन के प्राराय मय ने इन कथाया
को दिया है। विषयवितन म कानिया म परिनिन है। एव मने कथा व अनयत नय कथाया का भी उ नय
ने स म अनरकथाया म कथा गया है।

म कथाकोण के अनिरिख सव म वधमान कथोनि मिह गूरि सफरकीन पमनम तथा रामच
विनिन कथाकोण का भी वसिपय विगना ने उत्पन्न किया है।

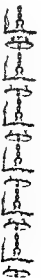
जिनरताकोण म जन कथासग्रह। का और भी उत्पन्न हया है जिनम के वसिपय के हैं —

हमाचाय का कथामग्रह जानगुनर का कथायाय एव मवगुनर का कथामग्रह। इनके तावा कथा
कथोनिनी कथासचम कथाममुचय आनि कथामग्रह का भी मय तय उत्पन्न मया है। मीष विगारा को हा
प्रयो के सभम म अनयन करता था के। यनि विविध नय मय मभारा व मय की तातिन तवार की जाय
तथा पुन धम के माय कथामग्रह। का अनुगीन दिया जाय तो जन कथामाहृत्य ममपी अनेक तय्य प्रकाय म आ
सकते हैं। म म मय म मय एव मय म तीना की मयविन सव म सादगीय है।

जन कथाओं का देशादन

मानवा के आनामन तथा यातायात की सुविषाण साहित्य व परिभमण म सहायक बनती हैं। उत्पन्न
अव एक प्रात म आये व कर दूगय प्राता म वग्याय जाये है तव उनके म माध्यम म उनका कथमय साहिप
उनव देगा की घन्ती का मय करता है तथा माना-मय मुनर इन अपनी विचार साय व अनुगार विविध रमा म
रजिन करत है। प्रात व विभिन्न प्रा म व अनिरिख जन कथाए वाचतय दया म भी गद और वृत्त के निवासिवा
म इनका मय स्वागा दिया। या जन जन कथाया म परिचनन आया तथा विगिण घारा की साधुनिक कथा म
मह प्रभावित किया। पाया के नाम वगय मय स्वागा व नामों म भी परिचनन हया वग भूया परिगित म विग
मुन अधिप्राय यों का रमा म। मयन रूप म यने मुनयगपी कथा की मीन कथा अगीन है। हा हागागात
जन एम ए डा म मयानि कर म मय मय रूप म प्रस्तुत किया है। नि म मयानि ने इन कथा व
अपम म गगुन मुजराती मरानी एव हिना-मया की भी पाटन व सायन रमा है। परिगिण म मयमया की
कथा (महाभारत म) तागया मुदुमानिना कथा (साधायमरहाभा म) आर गता कथाय (सायमन वि टोरा
म) तथा लमामनी कथानव (विगय पुगण म) का भी मया गया है। म मय मयानि मयय म पाव हो
सकता है वि मय की कथा म विग प्रकार परिचनन हाने रने है एव स्वागाय मायानि विग मय कथा की मुन
भावना का प्रभावित करती है। मी दूगयगपी कथा का उपनयि (साधारण परिचनन व माय) मय और मयन
कथा-साहित्य म है। इनम प्रम हाना है वि कथाया की भी याकाए मये मये हानो हैं। मागिण का म

१ विगेय अपयन के निग देखिओ श्रीहस्तिनावापहत कथनकथाकोण की हा उपाये निमित्त अपमो म
भूमिका।





देखाटन बताता है कि मभवत पूराप ग्रीक भाषा के बीच उन कथानक (मुगधदशमी कथा की कथावस्तु) का आदान-प्रदान हुआ है। मौलमूखर व हेट्टर आदि अनेक विद्वानों ने यह मिट कर दिखाया है कि भारतीय तथाओ का यह अद्वैत प्रवाह अति प्राचीन काल में पश्चिम की ओर प्रवाहित होता रहा है जिसके परम्पर्यन्त वेदकालीन, ज्ञानर मन्व-जी तथा पचतय त्रितोपदेश व कथानकित्तागर आदि भारतीय आश्रयन-साहित्य में निरन्तर अनेक नाक कथाएँ पाश्चात्य देशों में जाकर वहाँ के ज्ञानावरण के अनुकूल हेर-फेर सहित प्रचलित हुई हैं। उक्त यूरोपीय कथा के मूल में प्राचीन लेखक चातु परोल्ड का जीवनात्मक मन् १६२८ में १७०३ तक माना गया है। उनमें पृथक् उन कथानक के यूरोप में प्रचलित होने का कोई प्रमाण हमारे सम्मुख नहीं है। उगरी तुलना में भारत की मुगधदशमी कथा की परम्परा अति प्राचीन है। उमता मराठी अनुवाद चित्तमागर द्वारा मन् १७२८ के दशमम, मरुत अनुवाद श्रुतमागर द्वारा व गुजराती अनुवाद जिनदान द्वारा मन् १८५० के दशमम, एवं अपभ्रंश की मूल रचना मन् १९५० ई० के लगभग हुई पाई जाती है। उन कोई पाश्चात्य नहीं जो अन्य भारतीय कथाओं के मूल में उन कथा का भी देशान्तर-गमन हुआ हो, जिसका प्रचार-प्रम वैश्ववर्णीय है।

अथ-पूर्वक यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो हजारों ऐसी जैनकथाएँ उपलब्ध होगी जो सामान्य परिवर्तनों के साथ पाश्चात्य कथानाहित्य में गुम्फित हैं।

जैन-कथा-साहित्य का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन

भाषा-विज्ञान की दृष्टि में जैनकथाओं का कम महत्त्व नहीं है। यदि प्राकृत, मगध, अपभ्रंश आदि भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तथा अनिपय कथाओं के विविध अनुवादों को सामने रखा जाय तो पाठक को ज्ञात होगा कि किन प्रकार शब्दों के रूपपरिवर्तन होने हैं तथा प्राकृत का एक शब्द संस्कृत में आकर किस रूप में उच्चारित हुआ है तथा वही शब्द अपभ्रंश आदि भाषाओं में प्रयुक्त होकर कौनसी विधि की परिधि में व्याप्त होता है। लेकिन इस प्रकार भाषावैज्ञानिक अध्ययन उन अध्येताओं को ही प्रिय लगेगा जो बहुभाषाविद् हैं तथा जिनकी भाषाविज्ञान में विशेष अभिरुचि है। शब्दों के अर्थ-परिवर्तन को समझने के लिए ये कथाएँ बड़ी उपयोगी निद्र हो सकती हैं।

जैन-कथाओं के अनुशीलन में हमें हजारों ऐसे शब्द प्राप्त होते हैं जिनमें जैनों की मान्यतात्मक भावना अभिव्यजित है। उन प्रकार के शब्द उन युग की चेतना को भी ध्वनित करते हैं जब कि जैनों की समृद्धि एवं त्याग-प्रवृत्ति चरम-सीमा को छू रही थी।

यहाँ कुछ ऐसे विशेष शब्द दिये जाते हैं, जो हिन्दी जैन-कथाओं में प्रयुक्त हुए हैं तथा इनका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

१ न्योता (निमग्न) २ कोहवर (कीतुकगृह) ३ मडवा (मण्डप) ४ करन (करुण) ५ मिन्होरे (मिन्दूर-दानी) ६ पितरनवेनी (पितृनिमग्न) ७ बदरिया (वह्निका) ८ पोखर (पुष्कर) ९ गौरा (गौर), १० कौआप (काक-पक्षी) आदि।

जैन-ग्रंथों में आए हुए निम्न कुछ ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ जैनान्माय के अनुकूल ही मान्य होगा। यह विशिष्ट अर्थ शब्दों की अभिव्यञ्जना-शक्ति का चोत्तक है —

- १ लोक—पुत्र।
- २ दरवल्ल—ग्राम-प्रधान अथवा प्रासाद।
- ३ गवाशान—जाति-बहिष्कृत।
- ४ प्रतिमा—त्याग की एक सीमा।
- ५ लेश्या—भावना।



पाप-पुण्य एवं धर्म-अधर्म का शास्त्र नैषध ? । उन घ-याचार तथा अत्याचार के विषय में महाचार और मानवता मकलमनोन्वय मिद्ध हुई है । फिर भी लुट्टी का अभाव होने का शायी है । क्यामता न रह तो धर्मत्व आकषणहीन बन जाता है । उसी प्रकार दुर्गन्धत्व मज्जनता के प्रभुत्व में अभिवृत्ति रहता है । ऐसी स्थिति में इन तथाओं की क्यावस्तु दानों को ठेकर जाने बहती है, अतः परिणामाति पर दुःखता प्रभावहीन अन्तर मय नाट्य है । और मौन्य दिनकर की भाति प्रकाशित होता है । आजीविका के अनेक माधन ? फिर भी व्यापार तथा पेनी की प्रधानता प्राचीनता में उत्पन्न ? । नीचरी के प्रति जनता का अति आकर्षण न था । धन समाकर मानव दा के प्रति उत्सुक रहता था, पर धार्मिक कृत्यों में जो मोचन न्यय करता था । महोपायी भी मायता वैगम्य की पुण्य न होने देती थी । मम्य धर्मों के प्रति अनुगम होने पर भी जनता मयाय धर्म-मायता में मज्ज रहती थी । समाज सुगठित था, तथा विरोधी-मन्यो का दमन सामाजिक रूप में दृष्टा करता था । इन मम्यता में अंगगता-मया-मोप, भाग-१-२, जैन-कृतानिया, मोक्षमार्ग की कृतानिया, पर दुष्साधन मया-मोप दृष्टा है । माना प्रार के कुमनो में भी कुछ लोग मम्य रहने के चेतित उनकी मया अण्य थी । महाचार तो मुनिजन मय के लिए मानवा के मम्य धीन की गरिमा प्रभुत्व की जाती थी । परिणामात्यय मुक्त एक-मयावती तथा मुनिवा स्वपति पयाय थी । (देविने शीतलनी मुदधन एवं मीठी मीर जजना मती ही कयाये) । नारी का प्राचीन युग में विशेष सम्मान था तथा समाज इन्हे समय-मय पर आदर दकर आदर उभयित रहता था । (मनी मोता की कया उन मय में विशेष उल्लेख है) । पुनियाँ मय धर्म-पयाय थी और अपन पति को भी पामित धनाने में पूर्ण सहयोग देती थी । (देविने भावदेव जीर नागता धीरक रहानी) । अति पया प्रवृत्ति अण्य थी, अतः जैन-मया साहित्य के अण्यन में प्रकट हाता है कि जैनो ने उनका मदैव विमय रिया है । (देविने जमने पया की कया अण्यता मया-मोप नीचरा भाग) ।

यद्यपि वैवाहिक वरानों में उभयता प्रशंसित की जाती थी फिर भी जैन-मयनों का विवाह मम्य प्राय वजित था । नीली की कया, अंगगता-मया मोप दुगरा भाग) । मय-मति पर जनता का प्राचीन काल में अति विधवाय था । तपस्वी मयों की मायता में महाचार बन जाने के तथा धार्मिक व्यापियों को भी शात कर देने थे । (पारायण मुनि की कया, आ० १० कोश भाग २) । इत्यादि अण्य में दोषों को प्राणदण्ड की मजा दी जाती थी । (मुकुमाल मुनि की कया आ० १० कोश भाग दूसरा) । वृत्पत्नी-पया का भी प्रचलन था । (मुदधन मुनि की कया आ० १० कोश भाग दूसरा) । मम्य धर्म पुनी के विवाह के समय दामाद को दहेज में बहुत कुछ धन मयात दिया करते थे । (मुदधन धीवर की कया आ० १० कोश भाग दूसरा) । वृत्पत्नी-मोप की कयाये ११-१३६, १३-३१, २८-३० ७५-८७ बताती हैं कि अपराधी को मये पर वैठान मीर-मय में घुमाया जाता था तथा उसकी सम्पत्ति को राज्याधिकार में कर रिया जाता था । काने वरों तथा काने वैलों को पुरस्कार में देना अपमानजनक समझा जाता था । वृत्पत्नी-कोश कया-मया १७०-१०) ।

भक्तामर-कयाओं के अनुशीलन में स्पष्ट है कि भगवान् जिनेन्द्रदेव के परम श्रद्धालु जैन विपत्तिया में छुटकारा पाने के लिए तथा सामारिक वैभव की प्राप्ति के हेतु मयों की मिद्धि करने हैं तथा विजया, प्रभावती, अजिता, ब्राह्मी, जलदेवी, महिदेवी, वनदेवी, महादेवी, रोहिणी देवी, धृतरात्री, पयावती देवी आदि अनेक देवियों की प्रमन्नता प्राप्त कर मकल मनोरथ होने हैं । इन कयाओं के अनुशीलन में यह भी ज्ञात होता है कि पुरातन काल में लोक-जीवन विशेष समृद्ध एवं सुखमय था । कृषि में कृषकों को पर्याप्त आय होती थी तथा मय पदार्थ अत्यल्प मूल्य में प्राप्त हो जाते थे । मय और समृद्धि परिलक्षित होती थी । धनिक हीरा-पन्ना मोती आदि के सुन्दर आभूषण पहनते थे तथा महिलाएँ भी विविध मोने-चादी के अलंकारों में अपने मनोरम शरीर को ममलकृत किया करती थी । अनेक प्रकार के मुरभित लेपों के प्रयोग में इन रमणियों का सौन्दर्य मदैव माकर्षक बना रहता था । घी दूध की कमी न थी तथा माधारण ग्रामवासी भी मँकड़ों गायों को रखता था । उपामकदशाग मूत्र में वसुध आनन्द आदि श्रावकों के यहा हजारों गायें थी । दूध, दही, घी, जकर विविध दालें, सुगन्धित चावल, आचार, मिठाइया आदि भोजन के प्रमुख सत्व थे । रगीन वरों के प्रति कामिनियों की अधिक रुचि थी । बालक बालिकाएँ भी अलंकारों में सुमज्जित रहते थे । रेशमी वस्त्र मनुष्य अधिक पहनते थे । सुन्दर गृहों में रहकर मम्यन वाकि अपने मनीषवर्ती मित्रों को भी

मुखा वसान का प्रयत्न करने से तथा आविर्भावना पठन पर धन अन्न वस्त्रादि से उतड़ी सम्पत्ति करने से । मनाविनाशक यह प्रकार के सेन आखेने जाने थे । चौतह छत आदि का भी प्रचलन था । इस प्रकार कथाशा म विशिष्ट भाव महसूस की मुखावली उभता है ।

जन कथा से की प्रकटिया

कथाशा के निमाण में प्रकटिया का विचार महत्व है । जिस प्रकार मृत के आहार का स्मृत रूप से न के लिए यह पक्षर घुमा था । आदि की आविर्भावना पानी है उसी प्रकार कथा के स्वरूप में स्थिरता लाने के लिए उस विचार सार्वजनिक बनाने के लिए तथा उसमें समाज का अभिप्रेत व हनु प्रकटिया का प्रयोग अत्यावश्यक माना गया है । प्रकटि की आविर्भावना करते हैं । इसे जनकी में मान्दिक नाम से अभिहित किया जाता है । डाँठ दानावत्तन से इस अभिप्राय का कथा का मूल भाव माना है । डाँठ जलप्रसात निवृत्ति में कथानक की रूप में स्वीकृत करते हैं । जलनि वृत्तान्त में गुप्त से इस अभिप्राय का कथानक का मुख्य चरण बना है । डाँठ का दाना माना महान् मान्दिक के लिए प्रकटि का जो अन्तर्गत रूप अन्तर्गत है— प्रकटि का अन्तर्गत और गति दोनों का भाव एक साथ पाया जाता है अन्तर्गत मान्दिक के रूप में प्रकटि पक्ष अन्तर्गत जा सकता है ।^१

कथानिका के लिए अभिप्राय का कथा भी महत्व है जगा हिमी अन्न के लिए यह गार का जववा निती मरि के लिए माना आदि में उक्त रूप नितावृत्ति का ।^२

कथानक की—माभावनाय रुद्धि और अभिप्राय का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप में किया जाता है । अभिप्राय जिस अर्थ की मान्दिक कहते हैं उसका अर्थ जववा राव में देते हुए उस विचार का चर्चा है जो समान परिस्थितियों में अपना समान मन स्थिति और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किसी एक ही अर्थवा एक ही जानि का विभिन्न कथितों में गार कर आता है । विभिन्न कथाओं में अन्न जववा अन्न अभिप्राय होते हैं । विश्वनाथ में अभिप्राय का अर्थ होता है— बाई कनया गवन मन्त्रीय या निर्वाह प्राकृतिक जववा कान्तिव वत्त निमरी अन्तर्गत एक अतिरिक्त आन्तर्गत मुख्यतः मन्त्रीय के लिए किसी कथाकृति में बनाई जाय । प्रत्यक्ष है कि मान्दिक में भी अनुकरण तथा जववा प्रयोग के कारण बुद्धिमानों में यह भी मान्दिक बन जायी है और यादिराग में उसका प्रयोग मान्दिक में हान भगना है इस सभी मान्दिक का गति स्थित अभिप्राय करते हैं ।

भारतीय मान्दिक में कथाप्रयोग निगमितन पशुपति की बात थी हिमी बाह्य वस्तु में प्राणा का भगना अन्ति निती ही अभिप्राय है । म सभी कथानक कटिया प्रमाणनया में प्रकार की है—एक जोरविधान पर आधारित दूसरी कथितिपद । ती माहिय में मगव कथा हजारीप्रमाण निवृत्ति के निम्नी मान्दिक का मान्दिक में उन मान्दिक अभिप्राय की आर हान आकति विधा ।^३

ये प्रकटिया कथाप्रस्तुत में मगव था । का जम दना है और कथानक का अधि आविर्भाव बनाती है । इनके माध्यम से पात्र की मायनाया एक विचारा का भी निरूपण किया जा सकता है ।

इन अभिप्रायों में कथा की व्यापकता सिद्ध होती है तथा विविध रूपों में फैलता है । मान्दिक का एक रूपनया का परिमाण में प्रकटिया में ही महत्व में हो जाता है । कथा की रोचकता में अभिप्रेत करने वान अभिप्राय निर गद वृत्त रूप में है ।

जन कथाशा में कुछ ऐसे विधि अभिप्राय उपलब्ध होते हैं जो जनमरुत के मूल तत्त्वों का अन्तर्गत करने का एक ठेगी प्राचीन परम्परा की आर सतेन करते हैं जो कई युगों में भारतीय जीवन का प्रमाणित कर रही

१ लोक कथाओं की कुछ प्रकटियाँ उपक्रम

२ लोक कथा अर्थ—आन्तर्गत मई १९२४ पृष्ठ ११

३ हिन्दी साहित्य की भाषा १ पृष्ठ २ ५



है। उन नदमें से निम्नलिखित कुछ अभिप्राय उल्लेख्य हैं --

- १ विनीत होते हुए मंत्र वा, श्रेष्ठ केश लो, मंत्र लो, पिच्छों की चमक लो, दूध लो, वृक्ष लो की वेष्टा लो सृष्टु लो वा लोटी लो देकर विगत होता।
- २ अत्रि ज्ञानी मुनि के द्वारा आतु की प्रमाणित जातकर मुनिगीला ग्रहण करना।
- ३ जैनमुनि के दर्शन या धर्मापदेश से वैभव वा परिश्रम कर साधक बनना।
- ४ जैन-मुनि से पूर्वभाव प्रत्यया प्रस्ता अत्रिष्य मुनिकर विगत होता।
- ५ स्वामी पापों की आलोचना करते हुए विरगो बनना।
- ६ दान्त्र-प्रवण ने नामागि भोगों से विरगि बनना।
- ७ मनो के द्वारा मय-रस वा समन होता।
- ८ मनो की मित्रि ने विपुत्र धन की उपाधि।
- ९ मद्रि पादुका ने आराग से उरगा।
- १० दमनान में पुत्र-जन्म।
- ११ दुःसाध्य कार्यों की पूर्णता से बुद्धि-परीक्षा।
- १२ भाग्यपरीक्षा।
- १३ राजकुमार के नृनाय में शायी द्वारा मान्यता।
- १४ उन से परिपूर्ण ज्ञान वा दूषण।
- १५ जगदेवी द्वारा आशीर्वाद।
- १६ अगारो लो दृकर निर्दोषिता प्रमाणित करना।
- १७ अग्नि-कुण्ड में बूदकर निर्दोषिता निद्र करना।
- १८ नानेली माना के दुर्वाचहार से गृह-परिश्रम।
- १९ निशु को मूक से बन्द करके जन से प्रसाहित करना।
- २० चन्द्र-ग्रहण काळ में मय-मिद्रि।
- २१ प्रहेलिताएँ पूत्र वर बुद्धि की परीक्षा करना।
- २२ मुनि के आशीर्वाद से रोग का समन होता।
- २३ गन्धक से कुष्ठ-रोग की समाप्ति।
- २४ पद प्रक्षालन से पति की पहचान।
- २५ पद-स्पर्श से कपाटी का खुलना और उन प्रकार गन्धर्विता लो प्रमाणित करना।
- २६ पूर्व जन्म के पाप-पुण्य को अग्नि जन्म में भोगना।
- २७ अपनी वात मनवाने के लिए स्त्री का हठ करना।
- २८ पुण्य-फल के रूप में समस्त कर्माओं की क्षीप्र प्राप्ति।
- २९ मरणान्त पशु-पक्षी का प्रमोकार मय मुनकर स्वर्ग में जाना।
- ३० अमृत फल खाकर अमर बनना। जतिशयशाली जैन मुनि के प्रभाव से मुष्क वृक्ष का पुष्पित होना वा छ क्रतुओं का एक साथ आविर्भाव।
- ३१ कुपित निह का मय के प्रभाव से नमस्कृत होना, युद्ध में विजय प्राप्त होना, क्षुध्य नागर का शान होना, अक्षय भंडार होना।
- ३२ स्तोत्र के पाठ से अनाद्य रोग से मुक्ति, नर्प-विष का नाश, कागार से मुक्ति एवं वन्यजो का विच्छिन्न होना।
- ३३ भव्य पशु-पक्षियों द्वारा जैन मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर मान का परित्याग।
- ३४ जादू-टोना से असाध्य कार्यों का माध्य होना।
- ३५ पुण्य के प्रभाव से अग्नि का जल के रूप में परिवर्तित हो जाना।

- (१५) विबुद्ध शृंगार वा विषय एवं अतीत शृंगार का पूर्ण अभाव ।
- (१६) विविध विषयो (गणित, ज्योतिष, ज्योति, गजनीति, व्याकरण, इतिहास, दर्शन आदि की चर्चा का समावेश ।
- (१७) पाप पुण्य की राक्षस व्याख्या ।
- (१८) प्रकृति का रमणीय चित्रण ।
- (१९) भारत के प्राचीन वैभव की अनुसम अभिव्यञ्जना ।
- (२०) ऐतिहासिक तथ्यों की निष्पक्ष एवं समुचित व्याख्या ।
- (२१) वर्णन की स्वाभाविकता ।
- (२२) स्त्रोतों की सुप्रद परिमलात्मिका ।
- (२३) नाट्यिक दृष्टि से आत्म-चित्रण का प्राचुर्य ।
- (२४) नृपतिशो के प्रयोग ।
- (२५) कल्पना का उचित उपयोग ।
- (२६) रूपको एवं प्रतीको का विभिन्न रूपों में प्रयोग ।
- (२७) लोक-प्रचलित उदाहरणों के माध्यम से सैद्धान्तिक गहन विषयों का सुगम निरूपण ।
- (२८) विभिन्न भाषाओं एवं शब्दों की शब्दावली का उदात्तापूर्वक प्रयोग ।
- (२९) जैनधर्म की उदारता को प्रमाणित करने के हेतु नाति-प्रत्यय के धैर्य का चित्रण ।
- (३०) पशु-पक्षियों का मानवीकरण ।
- (३१) जैन-तपस्वियों की महत्तमता एवं महानता का उत्तमोत्तम अर्थ ।
- (३२) परम्पराओं उत्तमों एवं महत्तम जाचारा तथा शब्दावली का महत्तम उत्तम और विवरण ।
- (३३) वर्ण विषय के नाट्यिक चित्रण के माध्यम-माध्यम विधान सन्धिति की सुदृढी अभिव्यञ्जना ।
- (३४) यथावसर विभिन्न कथाओं का स्वाभाविक वर्णन ।
- (३५) समस्यशी भावाभिव्यञ्जना एवं गत्यम्, शिवम् मुदग्म् की सूक्त अभिव्यञ्जितियाँ ।
- (३६) समस्यानुवर्तिनी सन्धिता का नतिशील वर्णन ।
- (३७) मानवीय नैतिक प्रकृतियों का नीमावद्ध चित्रण ।
- (३८) स्त्रीयता का पुट ।
- (३९) समस्त वातावरण की अभिव्यक्ति ।
- (४०) अतीत काल के माध्यम वर्तमान की अभिव्यक्ति की सामता ।
- (४१) दृष्टिमता का पूर्ण अभाव आदि ।

अभिप्राय यह है कि जैनकथामाहित्य चित्रमाहित्य के विशाल भंडार की एक बहुमूल्य निधि है । जिसकी अपनी विशेषतायें हैं, मौलिकता है । इन माहित्य का विशेष प्रचार और प्रसार होने पर ही पूरी तरह मूल्यांकन किया जा सकता है ।

[illegible]

करने हुए उनके पास जा पहुँचे। जब भगवान् ध्यान करने थे, वे हाथ में तलवार लेकर उठतीं। मेवा में खड़े रहते। एक बार रूपभदेव को वन्दन करने के लिए नागराज धन्य अर्थात् परमेश्वर आये और उन्होंने नमि-विनिमि को मेवा में उपस्थित देखकर पूछा कि तुम लोग भगवान् की मेवा किस उद्देश्य से कर रहे हो? उन्होंने कहा— प्रभु ने सब पुत्रों को अपनी भूमि व सम्पत्ति बाँट दी, हम उस समय हुए थे, इसलिए अब मेवा में आये हैं। प्रभु कृपा करके हमें भी प्रयोजित देंगे। नागराज ने हमसे कहा—अरे भाई, वे सब कुछ त्याग चुके हैं। उन्होंने गंग और मन्दाकिनी को ग्रहण कर लिया है। अब इनके पास क्या है जो तुम्हें देंगे? वे, तुमने लम्बे समय तक भगवान् की उपासना की है, उम्मा फल तो तुम्हें मिलना ही चाहिए। मैं तुम्हारी मेवा में प्रसन्न होकर वैनाट्य पर्वत के दोनों ओर की दो श्रेणियाँ और विद्या देता हूँ। तुम दोनों वहाँ जाकर बस्ती बनाओ और आनन्द में रहो। वैनाट्य पर्वत बहुत दूर है, वहाँ पहुँचने के लिए आकाश-गामिनी आदि विद्याएँ देना है। उन्होंने दूरी विनम्रता में उन विद्याओं को ग्रहण किया। नागराज ने महा-रोहिणी, प्रज्जि, गौरी विद्युन्मुखी, महाज्वाला, निम्बगणी, वृहत्पा आदि गन्धर्वों और पन्नगों की ८८ हजार विद्याएँ उन्हें दी। उन्होंने नागराज की कृपा में वैनाट्य की उत्तरव दक्षिण श्रेणी में क्रमशः विनिमि ने गगनवल्लभ आदि ६० नगर बसाये और नमि ने गन्धुपुर चक्रवात आदि ५० नगर बसाये। विद्याओं के धारण होने के कारण के विद्याधर कहलाये। उन विद्याधरों की कुछ विद्याओं और नामों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि गौरी विद्या में गौर्वि, मनु में मनु-पूर्वक, गान्धारी में गांधार, मानवी में मानव, केशिका में तैजिकपूर्वक, भूमि तुष्टा विद्या के अधिपति भूमि-तुष्टक, मूलवीर्या में मूलवीर्य, शक्रका में शक्र, पाँचवी में पाँच, जालिनी में अतिशय, मानसी में मानस, पार्वती में गवनेय, वज्रलता में वज्रलता, पानुमूनिता में पानुमूनि, वृक्षमूनिता में वृक्षमूलक, कानिका में कानिकेश, इन प्रकार १६ निकाय (वर्ग) हुए। नमि और विनिमि ने ८८ निकाय ग्रहण किये। उन प्रकार मनुष्य होते हुए भी विद्याधर में उन्होंने देव के समान भोग भोगे और सुख प्राप्त किया। अपने नगरी के सम्मानार्थों में भगवान् रूपभदेव की स्थापना की और अपने अपने निकाय में उन निकाय की विद्या के अधिपति देवता की भी स्थापना की गई। वहाँ विद्या शब्द का अर्थ मन्त्र-तन्त्र ही अभिप्रेत है। पञ्चमूर्ति जैनसाहित्य में भी यह शब्द प्रायः इसी अर्थ में प्रयुक्ता में प्रयुक्त होता रहा है। १४ पूर्व श्रवों में एक विद्यानुवाद पूर्व भी है जिसमें प्रमुखा में विद्याओं अर्थात् तन्त्र-मन्त्र का ही स्थान था। दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार इसमें मानसी अल्प विद्याओं, रोहिणी आदि ५०० महाविद्याओं एवं उन्हें मापन करने की विधि और मित्र-विद्याओं के फल व अनेक विद्यानिर्णयों का वर्णन था। श्वेताम्बर आगम समवाया के अनुसार विद्यानुवाद में १५ वर्णों थी। जौदह पूर्वों का समावेश दृष्टिवाद नामक अगमूत्र में होता है और वह अगमूत्र विच्छेद हो चुका है, इसलिए हम जैन मन्त्र-तन्त्रवाद के बहुत बड़े साहित्य में वचन हो गये हैं। इतना ही नहीं, इन विषय के कई प्राचीन ग्रन्थ जो जैनाचार्यों ने बनाए थे, वे भी अब नहीं मिलते। जैन ग्रन्थों के अनुसार विद्याधरों की संख्या बहुत विपन्न थी और चिरञ्जाल तक उनकी परम्परा चलती रही है। जैनाचार्यों के ४ कुलों में एक विद्याधर कुल भी था, उन कुल की परम्परा में भी अनेकों विद्याओं के ज्ञान और उनके प्रयोग में साम्प्रदायिक मित्रि प्राप्त आचार्य हो गये हैं। जैनआगमों में श्रद्धि अर्थात् विज्ञेय प्रकाश की साम्प्रदायिक शक्तिवाले मनुष्यों के छ भेद बताये हैं। १ अग्रिहूत २ चक्रवर्ती ३ बलदेव ४ कामुदेव ५ चारण—त्रया-चारण विद्याचारण नाथु, ६ विद्याधर अर्थात् विद्याधरों का एक वर्ग विज्ञेय था जो मन्त्र-तन्त्रादि में निपुण होते थे। अपनी विद्याओं के वन में वे विमानों द्वारा आकाश में यात्रा करने थे और अनेक साम्प्रदायिक मित्रियाँ उन्हें प्राप्त थीं। चारण मुनियों में विद्याचारण को अलग स्थान दिया गया है। वे किसी मन्त्राक्षर का उच्चारण करते ही आकाश मार्ग में उठकर इच्छित स्थान में पहुँच जाते थे। ऐसे आकाशगामिनी विद्यावाले अनेक मुनियों के उल्लेख जैनग्रन्थों में प्राप्त हैं। तप-विज्ञेय के द्वारा भी अलौकिक मित्रियाँ प्राप्त की जाती थी, जिनकी सजा 'लब्धि' पाई जाती है। ये लब्धियाँ अनेक प्रकार की होती थी, इनका विनोद वर्णन भी जैनागमों में मिलता है।

विद्यानुवाद पूर्व के अनिर्दिष्ट दशवें अगमूत्र प्रवृत्त्याकरण में भी मन्त्रविद्या और विद्यातिशयो का वर्णन था। वेद है कि वह अगमूत्र भी लुप्त होगया। आज उसके बदले में उसी नाम का जो सूत्र प्रसिद्ध है वह मूलग्रन्थ में सर्वथा भिन्न है।

पञ्चमूर्ति श्रवों में श्री-देवताविष्ठित को विद्या और पुरुष देवताविष्ठित को मन्त्र माना गया है। अथवा पाठ करने मात्र में जो कार्य में साधक हो उसे मन्त्र व जप होम आदि विविधाध्य हो उसे विद्या कहा जाता है। वमुदेव हिण्डी

म जो मान्टु निकाय बनलाय है उनमे घाग चलकर कुछ परिवर्तन हुआ मानुस दता है। इसमिण वादे व प्रथा म विद्यामी की अधिष्ठात्री १६ दक्षिण व नाम इग प्रकार मिलने हैं—

१ रोहिणी २ प्रमति ३ पश्यन्तु मला ४ असाकुणी ५ अग्रनिचवा ६ पुष्पवृता ७ वाणी ८ महाराणी ९ गौरा १० गायत्री ११ महावता १२ मानवी १३ अरुणा १४ अरुणा १५ मानवी १६ महामानवी ।

निरवाला नामक उपाङ्ग के पुष्पवृता नामक चतुष वष व १ अध्ययना म निम्नोक्त १ दक्षिण व पूव भवा वा वणन पाया जाता है। इनमे से कुछ के नाम ता मन्त्रा ग्रा म वन्त ही प्रसिद्ध हैं मन्त्रिए इन दक्षिण व पूव भवो व वणनवाता यह पुष्पवृता जग विषय महत्व का है। चतुष वष के दस अध्ययना म १ दक्षिण व नाम दस प्रकार हैं —

१ श्री २ ह्री ३ धूमि ४ वीरि ५ वुडि ६ सानी ७ ह्वापेवी ८ भुरापेवी ९ रम्पवी १० गम्पवी ।

प्राचीन जनागमा म तो तीयद्वयो व साथ यर और यांणी वा वां सम्बन्ध नहा पाया जाता। पर निर्वाण मन्त्रिा निलोपपन्नमि आनि प्रथा म चौशेन तीयवरा म से प्रत्येक वा रोवत एव नेव नीर एक दवी जाना घनताया गया है। इहें शामनक आर गाननेवी कहा गया है। यदि जनधम व अनुसार साथकर ता मिद्ध बुद्ध और मुक्त हा। शय मन व न ता रिनी पर प्रमस हाये हैं और न वष्ट ही। आह उहे को मान या न मान हाग उनका को सम्बन्ध नहीं। ह्मनिए यह साधता प्रचरित हुई कि जो साथकर की भक्ति वरन हैं उन भक्ता व मनोरथ उन साथकरा के सफल व और मन्त्रिणी पूज करने हैं। २४ तीयवरा व यग और मन्त्रिणी मन्त्रप्रार हैं —

१ गोमुख २ महाय ३ त्रिमुख ४ यननामा ५ तवद ६ कुमुम ७ माधव ८ त्रिषय ९ अजित १ अज्ञा ११ अश्वरा १२ कुमार १३ पद्मसुत १४ पाताल १५ रिप्रर १६ गरुड १७ वायव्य १८ यगगा १९ कुनर २० वरुण २१ अहुदि २२ गोमेय ३ पावव २४ ब्रह्मागति ।

मन्त्रिणी—१ अग्रनिचवा (चतुश्चरी) २ अग्रिनरवा () इरिमागि ४ वाचिका ५ महाराणी ६ दयामा ७ वाता ८ अहुदि (आत्मामालिनी) ९ गुतारका १ अगारा ११ मावी (श्रीरंगा) १२ प्रवण्डा (वणा) १३ विन्दिना (विजिया) १४ अरुणा १५ वदपी (प्रमति) १६ निरुणी १७ वता (अस्युनरमा) १८ धारिणी १९ पणव प्रिया २० वरुता (अरुणा) २१ मापानी २२ ब्रह्माण्डा (धम्बिना) २३ वपावती २४ निदधिरा ।

न यग—यगियाय के वाहन वज भद्राभा अम्भा आनि वा वर्णन निर्वाणमन्त्रिा तथा शम्भुनार आनि प्रथा म पाया जाता है। इनमे त चक्रभरा आत्मामालिना अम्बिना और वपावती दक्षिण व उपावता विषेपर ग प्रचरित है।

इनके अनिरुद्ध शरस्वती देवी की उपासना भी जनयमान म पयात प्राचीनताव म प्रचलित रही है। भारग म मगम प्राचीन शरस्वती के मूर्ति मधुरा व जनपुरागरव म ही मिली है। अध्ययनावन घनर मध्य और सुन्दर जन शरस्वती वा मूर्तिमि प्राप्त है जिनमे एन्तु म प्राप्त दो प्रमियाए गा अनी उचकृ वना व वरण विश्वविज्ञान है। समय समय पर कई अनाचार्यो व मुनिव न शरस्वती देवी की आरापना करक बरन हा। मन्त्रना प्राप्त वा वो। रात्र म्यान व अज्ञारा गाव की शरस्वती मूर्ति बहुत ही वषरात्री मानी जाती है। उपर्यक्त अध्ययनय और देविा की मूर्तिया मयिप्यायक और मयिप्यात्री के रूप म प्रायः सभी जनमन्त्रिा म पायी जाती हैं। मयान्त्रिजग तीयवरा की मूर्ति मूलाग्रत व रूप म त्रिग मन्त्रि म स्थापित हावी है उगा तीयवरा व वषरात्री की मूर्ति उग मन्त्रि म अगम धात वा दहरा म प्रतिष्ठित की जाती है। धम्बिना वपावती आत्मामालिनी वराग्वर वषरात्री आनि व वषरात्र मन्त्रि या दनदुर्गिवाए कई स्थाना म है। इन देविा के म्यान स्तुति वय आनि प्रभुगामिमाय म उपजग हैं। अना व मन्त्रिणि





जैनेतर भी इन्हे मानने-पूजते हैं। पार्श्वनाथ के स्तुति, स्तोत्र, मन्त्र आदि अताधिक मिलते हैं। अम्बिका परवर्त्ती माह्विय मे तो नेमिनाथ की शासनदेवी के रूप मे प्रसिद्ध है पर प्राचीन तीर्थंकर-भूतियों को देखने मे विदित होता है कि अम्बिका का सम्बन्ध केवल नेमिनाथ मे ही नहीं, अन्य तीर्थंकरों के साथ भी माना जाता रहा है। जैन मान्यता के अनुसार ये यक्ष और यक्षिणियाँ मनुष्यों मे मे ही मरुधर देवरूप मे उत्पन्न होने के पश्चात् प्रसिद्धि पाती हैं। इसलिये अम्बिका आदि कई देवियों के पूर्वजन्म की कथाएँ भी जैनग्रन्थों मे प्राप्ता हैं। प्रभावचरित मे वैगोदया के पूर्वजन्म की कथा पायी जाती है। ज्वालामालिनी देवी की आराधना दिगम्बर समाज मे अधिक की जाती है।

उपर्युक्त देवी-देवताओं के अनिर्गुण कुछ जैनेतर और बौद्ध देवी-देवताओं की पूजा भी जैन-समाज मे प्राग्भ हो गई जिनका उल्लेख कर देना आवश्यक है। पार्श्वनाथ परम्परा के उपनेया गच्छीय रत्नप्रभसूत्रि ने ओमियाँ की चामुण्डा देवी को अपने वज्र मे रुके ओमवालों की कुलदेवी रूप मे मान्य बना दिया। जो गच्छाधिया के नाम मे प्रसिद्ध है। यो दिगम्बर, श्वेताम्बर दोनों मे बहुत सी जानियाँ प्राय किमी न किमी देवी को अपनी कुलदेवी मानकर उनकी पूजा-उपामना करती हैं। घण्टाकर्ण सभयत बौद्ध-मान्य देव या, दिव के गणों मे भी उमे माना गया है, जैनों ने उमे अपना लिया। घण्टाकर्ण कल्प नामक एक रचना भी मिलती है। बीजापुर, बम्बई के महावीर जिनालय आदि मे तो घण्टाकर्ण की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई हैं और वे काफी चमत्कारी मानी जानी हैं। उनी तरह तपागच्छ मे माणिभद्र यक्ष की अधिक मान्यता है और परगुण गच्छ मे प्रसिद्ध चार दादा गुरुदेवों के भक्त के रूप मे काले और गोरे भैरवों की। जैन लोग इसी प्रकार स्थानीय देवी-देवताओं को मानने लगे। यति लोग कर्णपिशाचिनी आदि देवियों की उपामनाकर चमत्कारी सिद्धियाँ प्रदर्शित करने लगे। सम्मेलनियरजी महातीर्थ के भोमिया जी, नापोडा पार्श्वनाथ के भैरवजी आदि भी बड़े चमत्कारी माने जाते हैं। इस प्रकार अनेक देवी देवताओं की मान्यता जैन समाज मे प्रचलित है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि जैनसमाज मे शाक्त तथ्यों की भाँति पञ्च-मकारादि की कतई स्थान नहीं दिया गया है। जैन मुनियों का आचार-विचार इतना कठोर है कि तत्रोक्त उपामना उनके लिए किसी भी प्रकार अनुकूल नहीं थी। इसलिए उन्होंने तथ की अपेक्षा मन्त्र और यज्ञ की ही अधिक महत्त्व दिया। उच्चकोटि के आचार-विचारवाले ब्रह्मचारी और सात्त्विक जैनमुनियों की देवी देवताओं की आराधना कभी भी दास, मास आदि कुतिसत वस्तुओं द्वारा नहीं करनी पड़ी। मन्त्र-जाप आदि द्वारा देवी देवता स्वयं उनके भक्त बन गये। भगवान् महावीर ने जैन मुनियों के लिए मन्त्र-यज्ञ आदि करने का सर्वथा निषेध किया है। उत्तराध्ययन सूत्र के पन्द्रहवें अध्यायन मे अन्य अनेक बातों के साथ मन्त्रादि से दूर रहनेवाले मुनि को ही सत्त्वा भिक्षु बनलाया गया है।

सतमूल विविह वेज्जचित्त वमण-विरेयण धूमणोत्तसित्तण।

आउरे सरण तिमिच्छिय च त परिज्जाय परिच्चए जे त भिक्खू ॥

पर जैन शासन की उन्नति के लिए आचार्य आदि को मन्त्रादि विद्या सम्पन्न होना आवश्यक भी माना है और आठ प्रकार के प्रभावको मे विद्यावान और सिद्ध को भी प्रभावक माना गया है। ऐसे प्रभावको के चरित्र विषयक कई ग्रंथ प्राप्ता हैं। स० १३३४ मे प्रभाचन्द्रसूत्रि द्वारा रचित प्रभावकचरित्र मे विद्यासनन वज्रस्वामी, पादलिप्तसूत्रि, मान-देवसूत्रि, वीरगणि, वीरसूत्रि और सिद्ध प्रभावक के रूप मे आर्य मगु, कालिकसूत्रि, विजयसिंह सूत्रि, जीवदेवसूत्रि, मानतुग सूत्रि आदि आचार्यों के चरित्र दिए हुए हैं। प्राप्त जैन साहित्य से ध्वनित होता है कि व्यक्तिगत स्वार्थ और इहलौकिक कामना से भ्रष्ट-तत्रादि साधना जैनमुनियों के लिए निषिद्ध है। अयोग्य व्यक्ति विद्याओं का दुरुपयोग न कर बैठे, इसलिए बहुत सावधानी रखी गई। परिणामतः अनेक महत्त्वपूर्ण विद्याओं से सम्बन्धित ग्रंथ लुप्त भी हो गए। इन ग्रन्थों मे सबसे प्राचीन चौदह पूर्वों मे विद्यानुप्रवाद पूर्व था। इसके बाद सिद्धप्राभृत, योनिप्राभृत निमित्तप्राभृत और विद्याप्राभृत ग्रन्थों का उपयोग जैनआचार्य करते रहे, वे भी अब लुप्त प्राय हैं। योनिप्राभृत का कुछ अंश ही प्राप्त है। इन ग्रन्थों मे कया-कया चमत्कार दिखाये गये और कौन-कौन आचार्य इनके विशेष जानकार थे ? इसका विवरण मुनि कल्याणविजय जी द्वारा लिखित 'आपणा प्राभृतो' नामक गुजराती लेख मे दिखाया गया है, जो जैन श्वेताम्बर कान्फेस, बम्बई की



वर्षों में दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्मान में उस सिद्धिचक्र यज्ञ विधान और उगमना या बहुत ही प्रचार रहा है। इसकी आराधना की महिमा जो बतानेवाले श्रीसायबख्ति सम्बन्धी ६० अन्य प्राचिन, मन्त्र, अष्टांग, त्रिदी, गन्ध्यानी, गुजराती और कन्नड भाषाओं में प्राप्त है। उनका चित्रण 'अनेकान्त' में प्रकाशित करने की चेष्टा में दिया जा चुका है। वर्ष में दो बार हजारों व्यक्ति उस सिद्धिचक्र या नवपद की आराधना करते भक्तिभाव में लगते हैं। उभय मन्त्रवादी में आराधनाविधि आदि में अन्तर होनेपर भी उनका प्रचार मान ल्य में है। मन्दिरों में सिद्धिचक्र विधान या नवपद मन्त्र की चन्ना की जाती है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में आचार्य के लिए भूमिचक्र मन्त्र की आराधना आन्तर्य मानी जाती है। उनके नाम के पीछे जो मुनि निवेशित रहना है वह उनकी भूमि मन्त्र की आराधना का सूचक है। भूमिचक्रचल्य उड़ी उतावड़ी में लगे पन्द्रहवीं शताब्दी तक के अनेक मिसने हैं जिसका एक स्पष्ट उदाहरण मणिनाथ नवाय ने 'भूमिचक्र चलादि' के नाम में प्रकाशित किया था और पश्चात्काल रूप में तीन बार स्पष्ट मुद्रित हो चुके हैं। अभी भी भूमिचक्र मन्त्र की प्रकाशित की है जिन्हें सम्पादन कर प्रकाशित करने का प्रयत्न जैनसाहित्य निगम मण्डल की ओर में चल रहा है।

नवग्रह मन्त्र की भांति योगम् (चतुर्विंशति मन्त्र), पञ्चगुप्त (यागमन्त्र), उदयगृह मन्त्र, निजपदहन, भक्ताम्बर, वागगमन्त्र, श्रुतिपञ्चन आदि स्तोत्रों के मन्त्र व कल्प भी प्राप्त हैं जिनमें में श्रुतिपञ्चन मन्त्र व कल्प का विशेष प्रचार है। दिगम्बर व श्वेताम्बर उभय सम्प्रदाय में मान्य होते हैं और दोनों के ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। भक्ताम्बर व श्वेताम्बरमन्दिर स्तोत्र भी उभय सम्प्रदायमान्य हैं और मन्त्र, मन्त्र गणित ये दोनों स्तोत्र बड़े प्रभावशाली माने जाते हैं। नागार्जुन ने नन्दमन्त्र, भक्ताम्बर, कल्याणमन्त्र तथा अन्य स्तोत्रों के मन्त्र और माहिम्य भी प्रकाशित किया है। बर्द्धमान विद्या एव हीनामन्त्र का मायावीर्यमन्त्र या भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय में अच्छा प्रचार है। आचार्य के भूमिचक्र की तरह उदाहार के निम्ने बर्द्धमान विद्या या आराधना की आराधना माना गया है। श्री श्रीगजानन टोकरजी शाह विविध 'मन्त्र साधन, वैदिक मन्त्र, मन्त्रों के नाण्य, उदयगृह मन्त्र आदि ग्रन्थ जैन मन्त्र, यज्ञ, नव सम्बन्धी अच्छी जानकारी देते हैं।

अब दिगम्बर जैन मन्त्र-मन्त्र सम्बन्धी कुछ ग्रन्थों की जानकारी दी जा रही है। श्री ज्ञाननिधौ की मुन्ता ने श्री जैनमन्त्र शास्त्र और ज्वालाभास्त्रिनी मन्त्र नामक ग्रन्थ में सबसे पहला ग्रन्थ उन्नतन्दि योगेन्द्र का 'ज्वालिनी मन्त्र' बतनाया है। यह ग्रन्थ शक सन् ८६१ अक्षयतृतीया को मान्दवेट में रचा गया है और इसकी मन्था ५०० है। मणाल-चरण व अन्य रचना की प्रतिष्ठा के इनोत्रो के अन्तर्गत इनमें ज्वालिनी देवी का स्वरूप बतलाने हुए निम्ना है —

"दक्षिण भाग्न के अन्तर्गत मन्त्रदेव के हेम ग्राम में (जिसे टिप्पणी में कर्णाटक भाषा का होलूर ग्राम बतनाया है) दक्षिण के अधीश्वर का श्रीमान् मुनि महात्मा रहते थे। जिसका नाम 'हेमाचार्य' (टिप्पणी में उन्हें गन्नाचार्य रूप में भी उल्लिखित किया है) था। कमनयी आपसी शिष्या थी, जो सम्पूर्ण शास्त्रों की जाननेवाली मानो अनुदेवी ही थी। कर्मयोग ने वह ब्रह्माक्षम नाम के किसी गैर ग्रह के द्वारा ग्रन्थ हुई। उसलिए मन्था के समय वह कभी हाहाकार करने लगी थी, कभी अट्टहास करने लगी थी, कभी उप करने लगती थी, कभी वेदों को पढ़ने लगती और फिर रह-रह कर लगी हस पड़ती थी, कभी गर्व के साथ कहने लगती थी कि ऐसा कोई मन्त्रवादी है जो अपनी मन्त्रांगि में मुझे छुड़ाए, और कभी विद्या भाव को लिए जभाई देने लगी थी। उसे इन प्रकार अति दुष्टग्रह में परिणीत देवकर और उनके प्रत्युपाय के विषय में किञ्चित्त्व्यविमूढ होकर वे मुनि महाशय बहुत ही आकुलचित हुए। अन्त में उन्होंने कमनयी का ग्रह छुड़ाने के लिए उन ग्राम (होलूर) के निकट नीलगिरि पर्वत के शिखर पर विविधपूर्वक ज्वालाभास्त्रिनी देवी की साधना की।

नाथ दिन की साधना के बाद वह देवी प्रत्यक्ष होकर मुनिमहाराज के नामने खड़ी हो गई और बोली—हे

आय । वहिष आयाय क्या काम है ? अगर हतायाय माने जाय । मैं काम आया रिता नीतिर पत्रगिद्धि प
निर तुम्हें धरपट्ट नहा दिया है—नहा गया है—निन्तु बमराय का यह छुआर व निर खारा है अतः यह व छुआरा
निन्तु । इनका ही मेरा काम है । आयाय श्री व यवन का मुनार देवा न कहा—यह बीमगा बहा मान है ? आया
मन में जरा भा मन् न कीजिय और मन मय मे मन् का मानन वाजिय यन् बहुर मुदुर आयय पत्र पर मय को
निखर उत मुनिबो का ३ निरा । उन मय का विधि का न जानते हुए मुनिबा न फिर देवी म वन्—मैं इन मन की
बावन कुछ भा नही जानता हूँ अतः स्पष्ट करके मन्त्रायापन मय को बतलाय । तब उन वापामाजिनी दबो १ एता
बायबो का मन का मार्ग रहस्य व्याख्या करके मयभाया और फिर उनका भक्ति व दग वह मन उन्ने बनीर गिद्ध
विद्या के २ निरा एव माय ही यह बह निरा नि आष हाम जग व निरा भा जिम निगी को मापन सिधि म यह मन
दोने बह भा गिद्ध विद्य हो जायगा । आर यदि नहा शोमे ता जा गिद्ध करना चाह वह रमणीर उद्यान-वन म जिन
मन्त्रि म नगा व विनार पुनित पर भिरिगवर पर धयवा अन्य निमा निरनुत्त स्वाय पर पिप होरर म्प मनम
अपिठित भाव मन व नगा एव म्पप्रमाण मय का जाय करके और दग हमार तस्या प्रमाण होम करके निद्धि को
प्राप्त करे एता कहुर बह हवी अपन ध्यान का बनी म ।

गतायाय म तत्र यही बह हुए उन मुद्र ब्रह्मगणन को दहापरा के द्वारा दहापरा पिलवा करके शो
चिल्लात हुए निरान बाहर दिया । एक हो भूत-दूत-स्वरूप मन्त्र मन्त्र बागागर वा ध्यान करके जय यह निधारित
हा जाना है ता गेप दगनिपहा व निर तमा बीमगा बह है जा म्पाय हा ? काई भी नही । अतः देवी व आयाय म
उन मुनि महाराज म तत्र “वाजिनी मन” नाम व म्पाय का रचना की । वह गायन उन्ने गिद्ध गाह्मुनि का प्राप्त
हुआ । फिर मन्त्र नीतिर बीमगायन आया धातिर-गवा और गुणव विषयको को उन्नी प्राप्ति हुई । म्प मुद्र
परिपा १ १ वन् मन्त्रि एत मन्त्राय व हाम चना आयो आर तत्र उगवा पान वन्त्रपाया का हमा । उन्ने अपने
पुत्र ममान गगनदि मुनि का उपेग मन्त्रि “वाजिनी मन” की ध्याया की । हा दोता मुनिबा (वन्त्रपाया और
गगनदी) व पाम म हन्त्रि मुनि न उग गायन हा मूत्र रूप तथा अय रूप से मन्त्रिये म्पायन दिया । प्रातः गायन
निपट रूप है तमा विचारकर उन्नी हन्त्रि मुनि न गति कादति हा तथा योगाणि छान म इग मय की रचना की
है । इमम हतायाय का महा हुआ घट हो अय द्वारा बतन (गन्धर्व परिवहन) के द्वारा निद्धि हुआ है । यह मय
मयन जान का म्प्रेय विमययतन तथा जगमूद्र व निर हिनवारी है अतः गायो मुना । इन बयन व निधन दो पद्य
म प्रचार हैं —

विषयप्रवृत्तान्तात्र तदिति स चेति निपाय ।
तेनेन निरमुनिता सतितापीवतगीताद्य ॥२६॥
हेतायापीताद्य अतःपरावतनन रचितमिदम् ।
गयनगपदेव विमययतन जनहितकर इत्युत ॥२७॥

इन परिषद म यन् स्पष्ट जाना जाता है कि य गायन आर भा यमि प्राचीन है और नीचे प्रथम गृहि
हतायाय व गायन हूँ है किन्ते हतायाय भी बतन है । हन्त्रि न मन्त्र जायाणि धयवा मन्त्र मन्त्रि व यमि । हा
हाम उने मुद्र गायन बतानर यत्तूता मन्त्रयण उपविष्ट रिदा है । द्नीय मय की मय म रिदा म मय का निन्तु
हतायाय प्रगोप निपा है किमता एव नगुता दगप्रकार है —

इन हेतायायप्रगीताये धीमदिद्वितीयोद्विधिवितप्रमयदर्थे बवानिनी-मने मन्त्रियतननिन्तुना
विचार प्रथम ॥

इन मय गायन म १ मन्त्री २ ब्रह्म ३ मुनि ४ मदन ५ बन्त्री ६ मययन ७ गायन ८ गायननि ।
९ नीरागनविधि १० गायनविधि नामक दग अविचार है जिनम जमग विषय का बन्त्री निपा रचा है । इमम ग गृह का



परिचय 'अनेकान्त' की अगली किरण में दिया जायगा और उसमें पाठनों को निम्नी ही नई जाने मालूम होगी और यह समझ में आ सकेगा कि मन्त्र-साधन करनेवाला मन्त्री क्या होना चाहिए ? कौन उस मन्त्र का पात्र तथा कौन अपात्र है ? ग्रहों के कितने भेद हैं ? कैसे पुरुष-स्त्रियों को ग्रह लगने हैं ? और किस ग्रह के लगने से क्या चेष्टा होती है ? इत्यादि ।"

उन्मन्दि के बाद सबसे बड़े दिग्मन्त्र मन्त्रिन् और घुग्मन्त्र विद्वान् मन्त्रिण ग्यारहवीं शताब्दी में हुए हैं । मन्त्रात्मन् का सबसे बड़ा ग्रन्थ विद्यानुशासन उन्हीं के द्वारा रचित बननाया गया है, जिसमें २४ अधिभाग और पांच हजार मन्त्र होने का उल्लेख श्री जुगलकिशोरजी मुन्तार ने किया है । भैरवपञ्चावली तन्त्र के अनिरुक्त उनके रचित मन्त्रस्वतीमन्त्र-कल्प और ज्वालनीकल्प भी प्राप्त हैं । भैरवपञ्चावली तन्त्र के उपर्युक्त नागभाई तन्त्रावली के अनिरुक्त एक और सम्पूर्ण दि० जैनपुस्तकालय, मूल्य में ५० चन्द्रधेनु नाम्नी की हिन्दी भाषा टीका नहीं छपा है । तन्त्र के अन्त में ४६ यन्त्र भी दिये गये हैं । यद्यपि नागभाई के सम्पूर्ण में भी ४७ यन्त्र हैं पर दोनों यन्त्रों में पार्यन्त है । नागभाई वाले सम्पूर्ण में सम्पूर्ण टीका और गुजरानी अनुवाद तो दिया ही है, पर परिशिष्ट में और भी बहुतसी महत्वपूर्ण सामग्री दे दी गई है । जिनमें से श्वे० श्रीवद्रमूरि द्वारा अनुवाद पञ्चावलीतन्त्र, उन्मन्दि विरचित पञ्चावलीपूजनम्, अज्ञान-कर्तृक रक्त-पञ्चावलीकल्प, पद्मावली स्तोत्रावली, पद्मावली स्तोत्र, पद्मावली यन्त्रात्मन्त्रावली विधि, महत्त्वनाम स्तोत्र, स्तुति, चौपाई आदि केवल पञ्चावली सम्बन्धी रचनाएँ ही नहीं, पर मन्त्रिणविशेषरचित मन्त्रस्वती मन्त्रकल्प, वृषभविशेषरचित सरस्वतीकल्प, अम्बिका, चक्रेश्वरी, चौमठ योगिनी, ज्ञानामात्रिणी मन्त्रात्मन्त्र आदि रचनाओं के साथ भद्रगुप्त विरचित अनुभव निम्न मन्त्र द्वाविशतिका, मानदेवसूत्रित त्रयशक्ति वृत्ति भी दे दी गई है । दिग्मन्त्र मन्त्र यन्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में विद्यानुशासन भी बड़ा ग्रन्थ है । जयपुर के ज्ञानभण्डारी ने उनकी प्रतियाँ मिलती हैं । यह एक तरह का मन्त्रग्रन्थ है जिसके मन्त्राह्वर सुमुमारमेनमुनि हैं । ५० चन्द्रधेनु नाम्नी ने किया है कि इस विद्यानुशासन में बननाया गया है कि २४ तीर्थंकरों की २४ शासन देवियों के सभी चौबीसों तन्त्र उपस्थित थे । मुमुमारमेन ने भैरवपञ्चावली कल्प, ज्वालना-मालिनी कल्प, अम्बिका कल्प और चक्रेश्वरी कल्प देने थे । श्री जुगलकिशोरजी मुन्तार ने इनके अनिरुक्त भारतीयकल्प, कामचन्द्रावली कल्प, श्री देवताकल्प, नमस्कार मन्त्रकल्प, ऋषिमण्डन यन्त्र पूजा, गणधरकल्प कल्प, वीजकोष, हनुमत पताकाविधि और कई स्तोत्रादि का उल्लेख किया है । जयपुर के दिग्मन्त्र भण्डारी ने विद्यानुशासन, मन्त्रात्मन्त्र रचित चिन्तामणियन्त्र, विजययन्त्र विधान, यक्षिणीकल्प, प्रभावलीकल्प, माया वीजविधि, प्रत्यगिगानिद्ध मन्त्रोद्धार, भक्तामर नृदि मन्त्र, महामृत्युञ्जय मन्त्र, नमोकारकल्प (निघनदि) आदि की प्रतियाँ भी हैं । इनमें से मन्त्रात्मन्त्र विद्यानुशासन मन्त्रों सहित संग्रह्य है जिसकी १७८ पन्नों की प्रति सन् १४३२ की लिखी हुई है । दिग्मन्त्राचार्य श्री शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव में पदस्थ ध्यान के प्रसंग में कई जैनमन्त्रों की अच्छी जानकारी दी गई है । और भी कई जैनग्रन्थों में प्रसंगवश मन्त्रों सम्बन्धी जानकारी है ।

श्वेताम्बर विद्वानों के लिखे गए मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र सम्बन्धी नमस्कार छोटी-बड़ी रचनाओं की संख्या श्री धीरजलाल टोकरमी शाह ने ५०० के लगभग होने का उल्लेख किया है । जिनमें से 'तन्त्रो नु तारण' नामक ग्रन्थ में उन्होंने १४८ रचनाओं की सूची दी है—

१ नमस्कार मन्त्र कल्प, २ पञ्च नमस्कार कल्प, ३ पञ्च परमेष्ठि महामन्त्र, यन्त्र, तन्त्र वृहत्कल्प, ४ मयूरवाहिनी विद्या, ५ चन्द्रप्रभ विद्या, ६ चन्द्रपद्मति मन्त्र साधना, ७ ओंकार कल्प, ८ ह्रींकार कल्प, ९ उदयगङ्गाहर कल्प, १० शान्तिकर स्तवन आत्मनाय, ११ तिजय पद्म स्तोत्र आत्मनाय, १२ सत्तरिन्त्र यन्त्रविधि, १३ नमिऊण कल्प, १४ भक्तामर कल्प, १५ कल्याणमन्दिर कल्प, १६ लोगस्त कल्प, १७ शक्रस्तव (णमोत्पुण) कल्प, १८ चिन्तामणि कल्प, १९ चिन्तामणि कल्प सार, २० चिन्तामणि सम्प्रदाय, २१ चिन्तामणि मन्त्रात्मनाय, २२ चिन्तामणि

(त्रिभुवन विजय पताका यन्त्र) मन्त्र पदवि २ मन्त्राधिगणक यन्त्र २४ मन्त्र मन्त्र २४ परलो २४ स्तव यन्त्र २६ वनिपुत्र यन्त्र मन्त्र यन्त्र २७ वनिपुत्र धाराघना २८ श्री पावननाथ नवम मन्त्रागमाय २९ गोत्र साम्प्रति कर पावननाथ मन्त्र पावननाथ मन्त्राराधना ३१ जीराजला पावन मन्त्र यन्त्र ३२ पावन स्तम्भनी विद्या ३ वनयन्त्र गोदा गांधारी पावन यन्त्र ४ उदयमहूर पावन यन्त्र ५ विद्यापट्टांग पावन यन्त्र ३६ पुनरकर पावन यन्त्र ७ मय वाय कर जगद्धलम पावन यन्त्र ८ मनिवर पावन यन्त्र ३६ बाद विजयकर पावन यन्त्र ४० पावन वज्र मन्त्र ४१ त्रयम चक्र मन्त्र ४२ मरिचि नमि चक्र मन्त्र ४ वद्धमान चक्र मन्त्र ४४ सीमधर मन्त्र ४५ परलो ३५ मीरर मन्त्र ४६ परलो ४६ पट्टापहार मन्त्र ४७ रक्त पद्यावती वल्य ८८ रक्त पद्यावती मृदू पूजन विधि ४८ पावागमात् पद्यावती पूजन रक्त पद्यावती हृद्य पद्यावती मरुत्स्वनी पद्यावती मवरी पद्यावती १० कामेश्वरी पद्यावती मन्त्र साधना ११ भरवी पद्यावती मन्त्र साधना १२ त्रिपुरा पद्यावती मन्त्र साधना १३ नित्य पद्यावती मन्त्र साधना १४ पद्यावती दायावतार १५ पद्यावती कज्जलावतार १६ महासावित्री पद्यावती विद्या १७ पुनरकर पद्यावती मन्त्र १८ पद्यावती स्तम्भ वल्य १९ पद्यावती स्वप्न मन्त्र साधन २ पद्यावती वल्य २० पद्यावती वल्य २१ पद्यावती मन्त्र वल्य (मिस्तुन एव दूग्गा व) २२ गनु मय सावित्री पावन विद्या २३ परविद्या विद्या २४ मुरि मन्त्र वल्य २५ वद्धमान विद्या वल्य २६ गांधारी विद्या वल्य २७ चतुर्विंशति तीर्थकर विद्या २८ विद्यानुगामन २९ मुत्पाणि वसपाणि मन्त्र ३ चरन्वरी (मन्त्राविद्या) वल्य ३१ धर्मिका (कुम्पाणी) वल्य ३२ चान्द्रामाजिनी (चान्द्रा) वल्य ३३ गिद्धाया (कामचान्द्रा) वल्य ३४ कुम्भकुला मन्त्र साधन ३५ पचागुत्तिका वल्य ३६ प्रत्यगिरा वल्य ३७ उच्छिष्ट पाण्डित्यो मन्त्र साधन ८८ वण गिगाजिनी मन्त्र साधन ३९ चरन्वरी स्वप्न मन्त्र साधन ४० स्वप्नावती मन्त्र साधन ४१ धर्मिका मन्त्र स्वप्न साधन ४२ धर्मिका घट घट दाण जन दीपावतार ४३ अक्षवता घनवतार ४४ नाथ देवी मन्त्र ४५ श्री प्रलय विद्या ४६ श्री गान्ध्याय विद्या ४७ गान्धि हवता मन्त्र साधन ४८ पाणना मन्त्र ४९ अपराजिता महाविद्या ५० रंगापहा रिणी विद्या ५१ वायुपुत्र धाम्नाय ५२ धाम्नाय मन्त्र ५३ ब्रह्माग्नि मन्त्र ५४ गज मुर दश मन्त्र ५५ योजन विद्या दवी मन्त्र ५६ भागी वल्य ५७ वाग्वारिनी वल्य ५८ मारुतन महा विद्या ५९ अन्तर्बला विद्या ६० अक्षराजि विद्या ६१ श्री लोच यन्त्र ६२ लोच मन्त्र ६३ महालोच मन्त्र ६४ योगिनी मन्त्र साधन ६५ योगिनी मन्त्र साधन ६६ तिष्ठचक्र वल्य ६७ श्री मन्त्र वल्य ६८ श्री विद्या वल्य ६९ वल्य विद्या वल्य ६९ मणिमन्त्र वल्य ६९१ पद्यावत वल्य ६९२ उग्र विद्या यन्त्र ६९३ लोच देवता मन्त्र साधन ६९४ कज्जलायोजनपाल मन्त्र साधन ६९५ लोचिया क्षेत्रपाल मन्त्र साधना ६९६ भरव मन्त्र साधन ६९७ वटु भरव मन्त्र साधन ६९८ स्वनाथपण भरव मन्त्र साधन ६९९ चतुर्पट्टि योगिनी मन्त्र ७० गौतम स्वामी मन्त्र ७१ श्री वल्य स्वामी मन्त्र साधन ७२ श्री जिनस्त मुरि मन्त्र साधन ७३ श्री जिनकुल मुरि मन्त्र साधन ७४ श्री जिनचक्र मुरि मन्त्र साधन ७५ श्री जिनचक्राभा वृत्त मन्त्र ७६ पञ्चरी साधन ७७ नागपञ्च मन्त्र ७८ बीगा वल्य ७९ पञ्चिका वल्य ८० उदयमहूर गोत्र या विविध मुरिमा ८१ स्वनाथकर चतुर्विंशति मन्त्र ८२ पञ्चिका यन्त्र ८३ वल्य विद्या वल्य ८४ उदयमहूर यन्त्र वल्य ८५ विजयपताका यन्त्र ८६ जनपताका वल्य ८७ धनुषपताका वल्य ८८ लुगमा पताका वल्य ८९ त्रयोप विजय यन्त्र ९० पञ्चगता यन्त्र ९१ यन्त्र पत्र महायन्त्र वल्य ९२ यन्त्र पत्र रागापना ९३ मृदुपुञ्ज साधन ९४ यन्त्र यन्त्र (जपन पट्टाका) ९५ यन्त्र यन्त्र ९६ योयवि यन्त्र (स्वता) यन्त्र या मन्त्राजिना यन्त्र मयूर गिमा ग्लो गियाय ग्लो माजारी ९७ मन्त्रावती ९८ मन्त्रावती यन्त्र ।



अन हन प्रराणि साहित्य का गणिन परिचय दे रह हैं । अता हि पूव म कहा गया है जन समाज का मयम प्राचीन और सदापि नरदपुण प्रमिद्ध कामन नदरार मन्त्र है । दा तो प्राचीनपाल म ही हमर प्रति वडा यडा और मनि निर्मा लेनी है पर अभी कुछ वयो मता मन्त्रा मय "चार हमा है । निम्नाम प्रय ना मय मयप म विविध दृष्टिपाल मे कियो गए मन्त्राणि हैं—

१ मन्त्रराज गुण वल्य महोदधि—प जयन्तामजी गर्मा बीरानर मे मह यय मयत् १९७६ म "गान्धि

किया है। इसमें जिनकीर्ति सूरिकृत पञ्च परमेष्ठिनमस्कार स्तोत्र व्याख्या, गुणरत्न कृत णमो अरिहताण के ११० अर्थ एवं ग्रन्थ अनेक विषयो का संग्रह है।

२ नवकार मंत्र या पञ्च परमेष्ठि—प० सुखलाल जी प्र० चन्दूलाल गोकलदास साह स० १९८३ अहमदाबाद

३ नवकार मंत्र संग्रह, फलदायक विधि सहित—मास्टर नानालाल मगनलाल, स० १९६९ अहमदाबाद

४ नवकार महामन्त्र कल्प—चन्दनमल नागोरी, छोटी सादडी (स० १९६० से २०१७ तक इस ग्रन्थ की चार आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं।

५ नमस्कार महामन्त्र माहात्म्य—चन्दनमल नागोरी, छोटी सादडी।

६ श्री नमस्कार महामन्त्र माहात्म्य—(हिन्दी अनुवाद सहित) स० भद्रकरविजयजी म०, प्र० शंकरलाल मुणोत, व्यावर।

७ श्रीनमस्कार महामन्त्र—ले० भद्रकरविजय, प्र० केशरवाई जैन ज्ञान-मन्दिर, पाटण (गुजरात) पृ ३८६ स्तोत्र, गीत आदि संग्रह ग्रन्थ।

८ नमस्कार महामन्त्र—ले० श्री हरिसत्य भट्टाचार्य, प्र० श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर। मूल अग्रंजी में प्रकाशक कलकत्ता विश्वविद्यालय। गु० अनुवाद प्रो० जयन्तीलाल।

९ महामन्त्र नी आराधना—स० अभयसागर जैन, श्वेताम्बर सघ पेडी इन्दौर (गुजराती में)।

१० श्री पञ्च परमेष्ठि महामन्त्र—चरणविजय, प्र० केशरवाईजैन, ज्ञान-मन्दिर, पाटण। (गुजराती) पृ ६०८।

११ नवकार स्वरूप—हर्ष विमल, पृ ६४, स० १९५९।

१२ नमोकार मन्त्र माहात्म्य—उमा स्वामी, प्र० धरणेन्दुप्रसाद जैन, वाराणसी।

१३ श्री नमस्कार महामन्त्र—पूर्णानन्द विजय, प्र० नथमल टीकमचन्द जैन शिवपुरी, स० २०११।

१४ श्री नमस्कार महामन्त्र मीत्तिकमाला—सुशील विजय, प्र० ज्ञानोपासक समिति वोटाद स० २०१७।

१५ नमस्कार महिमा—कीर्तिविजय, प्र० धीरजलाल शाह, वम्बई पृ १०८।

१६ महामन्त्र नवकार—अमरमुनिजी, प्र० सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा पृ १०४।

१७ महामन्त्रनी साधना—कुन्दकुन्द विजय।

१८ श्री नमस्कार महामन्त्र नु दर्शन—कान्तिलाल मोहनलाल पारेख।

१९ " " विज्ञान— " " प्र० श्री जैन साहित्य सभा, वम्बई।

२० श्री नवकार साधना—मफतलाल सघवी, रिसाला बाजार डीसा।

२१ विश्वप्राण श्री नवकार— " " " "

२२ अपूर्व नमस्कार— " " " " श्री मफतलाल सघवी द्वारा संपादित

श्री गाराभाई नवाब के मन्त्र-तंत्र सम्बन्धी—(१) महाप्रभाजित नव ममरण (२) भगवत्पद्मावती-कल्प (३) श्री सूरिमन्त्र-कल्प-मणोह का उत्तम ऊपर किया जा चुका है। अन्य अनिष्ट (४) श्री जन-यन्त्रावली (५) श्री मन्त्राधिराज चिन्तामणि (६) महाचमत्कारिक बीजा-मन्त्र-कल्प (७) श्री घण्टाकरण मणिमन्त्र मन्त्र-सन्त्र-कल्पादि सग्रह तथा मणिकल्पदि ग्रन्थ और श्री अनन्तचन्द्रावली भा प्रकाशित हुए हैं।

श्रीनिर्वाणकनिका का उत्तरव पहने किया जा चुका है। प्रणिष्ठा-कल्पादि ग्रन्थों में भा नवग्रह दम निगपान पूजादि म साधन प्रभाव पाया जाता है। ऐसे प्रणिष्ठा कल्प कई हैं जिनमें सन्त्र-चन्द्र का प्रणिष्ठा-कल्प अधिक प्रसिद्ध है। वसुधाधार निम्न के तीनों भाग में श्री प्रणिष्ठा विधि दी गई है। श्री सिद्धचक्र यन्त्रांग श्राद्धि भय रचना भी प्रकाशित है।

साहित्य के अनिष्टिक यन्त्रपट्ट पर लिखे हुए अनेक प्रकार के मन्त्र जन भण्डारा में प्राप्त होते हैं। १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ का एक पाश्चात्य चिन्तामणि यन्त्र का चित्रपट्ट हमारे नाट्य कलाभवन में है। १५वां शती उत्तरार्द्ध का एक विलुप्त विजय यन्त्र के पट्ट का चोटी भी नाट्य कलाभवन में है। वरु भूत यन्त्रपट्ट वास्तु म स्तुतिदम म प्रयोग है। यद्यमान विद्या का भी एक प्राचीन यन्त्रपट्ट हमारे सग्रह में है तथा और भी अनेक यन्त्रपट्ट वरु श्री नागज पर लिखे हुए हमारे कला भवन तथा बीकानेर के बड़े पान भंडार में सुरक्षित हैं। कई यन्त्रपट्ट प्रकाशित भी हो चुके हैं। जिनमें स सिद्धचक्र और श्राद्धिमण्डल के यन्त्र विशेष उल्लेखनीय हैं। सूरि मन्त्र श्राद्धि के भी यन्त्र पट्टों के साक्ष्य प्रया में छप चुके हैं। श्री गाराभाई द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों तथा निम्नर समाज की और से प्रकाशित कई ग्रन्थों में यन्त्रों का उल्लेख है। श्री बीरजलाल गाहू के 'वेदसाध यन्त्र' नामक पुस्तक में पत्थरिया बीता सोनिया बीबीया चालीसा पैलटिया और साधिया यन्त्र लिखे गए हैं। जन यदि लोग यन्त्रों का काफी प्रयोग करते थे अतः अनेक प्रकार के मन्त्र जन भण्डारा में मिले हुए मिलते हैं। इसी तरह कुन्वर हजारा मन्त्रों की प्रतियाँ प्राप्त हैं। अग्रकाशित साहित्य प्रकाशित साहित्य की अपेक्षा कई गुना है। ये अग्रकाशित जन जयपुर के सग्रह में (१) सूरि मन्त्र-कल्प मानदेव सूरि (२) धर्मपाप सूरि (३) जिनमन्त्र सूरि हृत तथा (४) पञ्चाशुनि कल्प (५) मन्त्राधिराज कल्प-सागरवन्त्र सूरि हृत श्राद्धि कई अग्रकाशित रचनाएँ हैं।

हमारे सग्रह में उक्तमण्डल स्नात्र मन्त्र यन्त्र कल्प शकम्भक कल्प नरवार कल्प निजय पट्टल कल्प नागस्म कल्प प्रकामर मन्त्र कल्प विजय मन्त्र विधि चिन्तामणि-कल्प (धर्म धोप सूरि) घटावण कल्प शरद्वनी कल्प श्राद्धि कई कल्प और विविध विधान सग्रहों की प्रतियाँ हैं। इसी तरह अन्य भण्डारा में भी अनेक प्रतियाँ खोजने पर मिलेंगी।

दक्षिण भारत के भण्डारा में शणघर-कल्प, शणघर कल्प यन्त्र शणघर कल्प यन्त्र जय विधि पाश्चात्य मन्त्राण्ड (इन्वन्ति रविन) पञ्च नमस्कार-कल्प गृहह शान्ति विधा, काम यन्त्राधिराज कल्प (मल्लिपण) क्षेत्राधिराज-कल्प विद्यानु-साधना सम्प्रदाय-कल्प (विजयवीरि) श्री देवना-कल्प (श्रीरामाणि) पञ्च नमस्कार कल्प आनन्द चित्रितया यन्त्र मन्त्र सग्रह श्राद्धि ग्रन्थ प्राइम सम्पुत्त वा ब्रजह भाषा और त्रिभि म पाय जाते हैं।

जिस तरह नागज और वरुन पर अनेक मन्त्र लिखे मिलते हैं उसी तरह सावा पीतल और चाँदी के भी अनेक यन्त्र नत मन्दिरों में पूजे जाते हैं। बीकानेर के मन्दिरों में सिद्धचक्र मन्त्र यन्त्र सर्वोन्म यन्त्र चन्द्रशेखर निधान यन्त्र कलिकुण्ड-यन्त्र ह्रींशर यन्त्र श्राद्धि तावे और पीतल के हैं। नि मन्दिरों में योगेश्वर यन्त्र सम्पुत्त-यन्त्र दण्ड धर्म यन्त्र सम्यन् चरित्र यन्त्र चिन्तामणि यन्त्र सम्यन् पान यन्त्र सिद्ध परमेष्ठि यन्त्र कलिकुण्ड यन्त्र पञ्च परमेष्ठि और बीरम तीयार यन्त्र शणघर कल्प यन्त्र शास्त्रिनाथ यन्त्र नवग्रहा का यन्त्र चानोर यन्त्र कपिमण्डल यन्त्र महालक्ष्मी यन्त्र सिद्धचक्र यन्त्र अन्त यन्त्र सिद्ध यन्त्र सिद्धि यन्त्र नवग्रह यन्त्र श्राद्धि पाय जाते हैं।

सिद्धचक्र विधान की तरह अनेक प्रकार के विधान निम्नर समाज में प्रचलित हैं। ऐसे कई विधान सम्बन्धी



ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। विधि-विधानों के अनेकों ग्रन्थों में तांत्रिक प्रभाव दिखाई देता है। मन्त्रों का प्रयोग तो है ही।

जैन विद्वानों की दो विशेषताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक तो उन्होंने मन्त्र के आदि अक्षरों का सम्बन्ध जैन महापुरुषों से जोड़ दिया है। जैसे अकार जैन मान्यता के अनुसार पंच परमेष्ठि के ५ अक्षरों में बना है। अरहन्त या अग्निहन्त का अ, मिद्ध अक्षरीर होने में अ, आचार्य का आ, उपाध्याय का उ, और मुनि का मू, इन अ × अ × अ × अ × अ × मू से ओ शब्द बना है। इस तरह ह्रीकार की ह्री में २४ तीर्थंकरों का समावेश किया जाता है। ओंकार ह्रीकार के एमें कई चित्रपट्ट, जिनमें पंच परमेष्ठि और २४ तीर्थंकरों के चित्र प्रस्थापित किये गये हैं, प्रमाणित भी हो चुके हैं।

दूसरी विशेषता, उदार दृष्टिकोण है। जैनतंत्र देवी-देवताओं और रचनाओं को भी उन्होंने अपनाया, पर उनमें जो हिमात्मक विधान थे उन्हें नहीं अपनाया। जैसे ओनियाँ (गजस्थान) की चामुण्डा देवी को ओमवानों की कुल देवी मान्य रखी पर देवी के आगे जो पशुओं का वलिदान होता था उसे बन्द करके मेवा-मिष्टान्न, फल-फूल, धूप, दीपक आदि से देवी की पूजा प्रचलित की। इसी तरह भैरवी को भी उन्होंने अपनाया, किन्तु उनके आगे जो मान-मदिरा चढ़ाने की पद्धति थी उसे नहीं अपनाया। अर्थात् जैनधर्म के मूल-भूत विधि-विधानों एवं तत्त्वों में किसी तरह की आपत्ति हो ऐसा नहीं किया। घटावर्ण आदि कई देवी-देवता मूलतः जैनमान्य नहीं थे, पर आज उनकी नात्त्विक पूजा जैन-समाज में प्रचलित है। बौद्धों के धारणियों आदि को भी जैनो ने अपनाई। विशेषतः वसुधाया वारिणी नामक बौद्ध कृति का प्रचार गत ५०० वर्षों में जैन समाज में काफी रहा है। हमारे मगध में सवत् १५४८ की गिरी हुई वसुधारा की प्रति है। इसके बाद की तो एक दर्जन से अधिक प्रतियाँ हैं। बौद्धों में प्रचलित वसुधारा में कहाँ क्या परिवर्तन किया है, यह तो मिलान करने पर ही मालूम हो सकता है। धूरु की मुराणा लायब्रेरी में बौद्ध वसुधारा की प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त हैं। बौद्ध वसुधारा काफी विस्तृत है। जैन विद्वानों ने उन्ना नक्षिप रूप अपनाया प्रतीत होता है। इसी तरह अन्य जैन मन्त्र तंत्र सम्बन्धी ग्रन्थों का जैनतंत्र ग्रन्थों में तुलनात्मक अध्ययन करने पर नये तथ्य प्रकाश में आवेंगे।

जैसा कि पहले कहा गया है, प्राचीन काल से जैनाचार्य और मुनियों ने मन्त्र एवं विद्याओं का समय-समय पर प्रयोग करके बहुत चमत्कार दिखाया है, पर उनका उद्देश्य जैन-शान्त-गन्ता, मन्त्र की विपत्ति निवारण, जैन धर्म की उन्नति व प्रभाव स्थापित करना रहा है और ऐसे कामों में ही इन साधनों का अधिक उपयोग किया है। जैन विद्वान् सदा से लोक-सम्पर्क में अधिक रहे हैं। वैसे बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को भी उन्होंने प्रभावित कर शासन प्रभावना की है। साधारणतया लोग चमत्कार को नमस्कार करते हैं, इसलिये उन्हें जब जैना अवसर आया जनता या अधिकारियों को धर्मानुरागी बनाने के लिए चमत्कार भी दिखलाये। ऐसे अनेक प्रसंग जैनाचार्यों के चरित्र में प्राप्त हैं। उदाहरणार्थ—रत्नप्रभसूरि, जिनदत्तसूरि आदि ने लाखों अर्जनों को जैन बनाया, चमत्कार दिखाकर ही। कई बार शास्त्रार्थ में भी मन्त्रादि विद्याओं का प्रयोग आवश्यक हो जाता था।

मन्त्र, यंत्र, तंत्र का परम्पर में घनिष्ठ सम्बन्ध है। तांत्रिक साहित्य को आगम कहा जाता है और प्राचीन जैन ग्रन्थों को भी आगम की संज्ञा प्राप्त है। जिस प्रकार शिव और शक्ति के कहे हुए ग्रन्थ शैवागम कहे जाते हैं उसी तरह जिनेश्वर के कहे हुए वचनों का संग्रह जिस ग्रन्थ में हो उसे जैनागम कहा जाता है। वैदिक धर्म, कर्म-काण्ड, यज्ञ-पूजा आदि प्रवृत्तियों को अधिक महत्त्व देता है। जैनधर्म अहिंसा, त्याग, तपस्या आदि निवृत्ति मार्ग को प्रधानता देता है। इसलिए जैनो में पंच मकार आदिक तांत्रिक विधि-विधान कभी स्वीकृत नहीं हुए। यद्यपि भैरव-पद्मावती कल्प आदि में कहीं-कहीं जैनधर्म को मान्य न होने वाले विधान भी देखने को मिलते हैं। दस दिग्पाल आदि की पूजा में वलि का विधान भी है पर वहाँ पशु-वलि नहीं, अन्य खाद्य पदार्थों की वलि दी जाती है। इस तरह जैन धर्म में तांत्रिक प्रभाव बहुत कुछ स्वधर्मसम्मत आदर्शों के लिए हुए है और तंत्र की अपेक्षा मन्त्र और यंत्र को अधिक अपनाया गया है।

जैनसाहित्य में रामकथा

प० शोकुलचन्द्र जैन

एम० ए० साहित्याचार्य



मर्यादा पुष्पाक्षय राम का पावन करिण पुष्पयन्त्रिला आगारपी की निम्न पाद के समान आदि बलि या 'मीरि' की गुणवर्षिणी 'नवनी' से प्रयतिन हो कर तादा सीप बनाता हुआ निरन्तर विराम को प्राप्त हुआ है। 'बलि' जल और बौद्ध धारामों के अनेक मर्यादी साहित्यकारों ने मयवान् राम व करिण का निरिबद्ध करने करना अनामान माना और इस विवेकी-भगवत व पावन सीप में मन्त्रन करने अथवा महानुष्ठा ने प्ररणा पायी ।

विदुषा ने विष्णु का अवनार मान कर राम की पूजा की । जनों ने योगापी महापुरुष मान कर सीमरकों के समान धारण किया और बौद्ध ने उन्हें बुद्ध का अवतार मान कर अपना धारण्य बनाया । इन प्रकार भारत का सम्पूर्ण जन-मानस प्राचीन काल से राम की पूजना क्या आया ।

रामकथा को साहित्यकारों ने और सोरहपाया व मन्त्राद्वय मोह दिया । यहाँ तक कि अपनी अपनी विचारपाय और मान्यता के अनुसार क्या के पात्रों को हिन्दू जन और बौद्ध भी बना दिया । कुछ मन्त्रन लोगों ने तो गारी क्या को अद्भुत ही बना दिया जो वास्तव में अद्भुत रामायण के ही नाम से प्रसिद्ध हो गयी । ज्ञाना होने पर भी यज्ञा बहु दि राम का करिण उगडन ने उगडनवर और उगडनवर होडा गया । हीरे को उगडना मान कर ज्ञाना उगडा का विरगडा गया । राम मानव से ऊँचे उगडन मयवान की कोटि में पहुँच गये ।

मयवान की उपासना जिते जिन रूप में अगदी तयो उगने उगी रूप में जगदी धारण्यता की । जिनो ने गीता में गा कर जिनो ने जगल में ध्याकर तो जिनो ने अपने मन मन्त्रि में रिंग कर । मन्त्रमन्त्र मयवान को भक्तों के अनुकूल बनाया गया । अपने जिनो को भी उनकी अमिर्षि व अनुसार माह देना पडा । हिन्दू का राम हिन्दू के इमनिव उन्हें हिन्दू का सीप पडुनता पडा और क्या की मने अनुकूल बनाया गया । बौद्धों ने राम बद्ध के अन्तर्गत व इमनिव उगडन धारण्यमी मन्त्रन देना पडा और माता की धारण्य और भारत को धारण्य बनाया पडा । जनों के राम हा जन महा प्रमन्त्र क्या के ममा पाव अनयम के मन्त्र अनुपापी थे । यहाँ तक कि रावण भी आत्म का बहुर अडानु था ।

ऐसे माता में अब रामकथा निरिबद्ध होना शुरू हुई उस समय तक क्या के बर्ण रूप पाव पडा थे । बाष्पीरि रामायण व अमिर्षि धारण्य अद्भुत रामायण तथा बौद्ध का अन्त्य भारत भी निरिबद्ध हो गया था । यही कारण है कि उपरानुगत था । क्या का आनन्द-राम अद्भुत रामायण के रूप का है । और कारण को रामायण का राजा बनाया बौद्ध अन्त्य के अनुकूल है ।



रामकथा सम्बन्धी जैन-साहित्य

उपलब्ध जैन साहित्य में रामकथा का वर्णन करने वाला सबसे पहला ग्रन्थ विमलसूरि का पद्म-चरिय मिलता है। विद्वानों ने इसे चौथी शती की रचना माना है। कुछ लोग इसे उसमें भी पूर्व का मानते हैं। विमलसूरि के उल्लेख के अनुसार रामकथा का अवतरण जैन साहित्य में उनसे पूर्व ही हो चुका था। उन्होंने पद्म-चरिय में लिखा है कि—मैं नामवली में निबद्ध और आचार्यारम्भ से प्राप्त समस्त पद्मचरिण (रामायण) आनुपूर्वी के अनुसार सक्षेप में कहूँगा।

तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ में जिन त्रेषठ शलाकापुराणों की गणना है उनमें राम की भी गणना की गयी है। बाद के ग्रन्थकारों में स्वयम्भूदेव का पद्म-चरिउ (अपभ्रंश), गुणभद्र का उत्तरपुराण और रविपेणाचार्य का पद्मचरित या पद्मपुराण विशेष उल्लेखनीय हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने भी अपने त्रिपण्डितशलाकापुराणचरित नामक ग्रन्थ में रामकथा को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। जिनदास कृत रामपुराण (१५ वीं शती), पद्मदेव विजयगणिकृत रामचरित (१६ वीं शती) तथा सोममेन कृत रामचरित (१६वीं शती) भी रामकथा का वर्णन करने वाले स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त अनेक जैनकथा ग्रन्थों में राम की कथा आयी है। भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में भी जैन साहित्यकारों ने भगवान राम के उज्ज्वल चरित का अंकन किया है।

जैन रामायण के दो रूप

उपर्युक्त समस्त जैन साहित्य में रामकथा का विकास दो धाराओं में हुआ है। पहली धारा विमलसूरि के पद्म-चरिय को आधार मान कर चली है और दूसरी गुणभद्र के उत्तरपुराण को।

विमलसूरि की परम्परा और पद्म-चरिय की कथावस्तु

पद्म-चरिय की कथा राक्षस तथा वानर वंश के वर्णन के साथ प्रारम्भ होती है। राजा सेणिय (श्रेणिक) ने भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य गोयम (गौतम) गणधर से रामकथा को जानने की इच्छा प्रकट की। इन पर गोयम पद्म-चरिय सुनाता है। कथा-वस्तु इस प्रकार है—

राक्षस वंशीय राजा रत्नश्रवा तथा कंकसी के चार सन्तान थीं। रावण, कुम्भकर्ण, चन्द्रनखा और विभीषण। जब रत्नश्रवा ने पहले-पहल अपने पुत्र रावण को देखा तब शिशु माला पहने हुए था। इस माला में पिता को रावण के दस सिर दिखाई दिये, इस कारण शिशु का नाम दशानन या दशग्रीव रखा गया। अपने मौनेरे भाई का विभव देखकर रावण आदि भाई बड़े होने पर तप करने के लिए चले गये और तप के द्वारा अनेक विद्याएँ प्राप्त कीं। इसके बाद रावण ने मन्दोदरी आदि ६००० कन्याओं के साथ विवाह किया और दिग्विजय में बहुत से राजाओं को परास्त किया। इसी विजय यात्रा में रावण ने नलकूबर की पत्नी का प्रेम-प्रस्ताव ठुकरा दिया तथा किसी केवली का उपदेश सुनकर धर्म-प्रतिज्ञा की कि 'मैं विरक्त परनारी का भोग नहीं करूँगा।'

इसके बाद बालि, सुग्रीव, हनुमान आदि का वर्णन है।

२१वें पर्व से मूल कथा आरम्भ होती है। जनक तथा दशरथ की वंशावली के बाद दशरथ की तीन पत्नियों का उल्लेख है। कौशल्या, सुमित्रा तथा सुप्रभा ये तीन रानी थीं। एक दिन नारद ने रावण से कहा कि आपकी मृत्यु जनक की पुत्री के कारण दशरथ के पुत्र द्वारा होगी। इस पर रावण ने अपने भाई विभीषण को इन दोनों को मार डालने के लिए भेजा। वहाँ नारद ने जनक और दशरथ को रावण के इस समाचार से पहले ही सावधान कर दिया

था। दोनों अपने अपने रूप का एक एक पुत्रला अपने अपने महल में रख कर सुप्त रूप में परलोक चले गए। विभाषण ने इन दोनों शूर्पाया को ही वास्तविक जनक और दारण्य समझकर जनक गिर काट कर समुद्र में फेंक दिया। परलोक में दारण्य ककयी के स्वयम्बर में पहुँचे और ककयी ने दारण्य के शत्रु में माना डाली। इस पर क्रोध राजा विगद राह हुए। फलस्वरूप उनसे राजा दारण्य का युद्ध हुआ। ककयी चारागना भी मर्तिन उसने स्वयं दारण्य का रूप बनाया। राजा दारण्य अपने पराक्रम और उनकी चतुराई से युद्ध में विजयी हुए और अयोध्या वापस आकर राज्य करने लगे। ककयी की चतुराई में मर्तिन आकर दारण्य ने उस मनवाहा पर मानन को कहा। ककयी ने यह कहकर कि 'मर्तिन वर मर्तिन में रहे जब आबस्यता होगी तब माँग लूँगी' वर को सुरक्षित करा दिया।

ककयी मर्तिन राजा के चार रानियाँ हो गया। मर्तिन चार पुत्र उत्पन्न हुए। कौल्या से राम जिनका दूसरा नाम पद्म था सुमित्रा से लक्ष्मण ककयी से भरत और सुग्रहा से शत्रुघ्न।

राजा जनक के विवाह नामक रानी से एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई। पुत्र का नाम मागधन तथा पुत्री का नाम सीता रखा गया। बचपन में सीता का स्वयंवर हुआ। स्वयंवर में राम ने धनुष चलाया तथा सीता के साथ विवाह हो गया। सबसे बड़ा राजा दारण्य राम की राज्य देकर तपस्या के लिए जान की मोचन तथा सभी ककयी ने राज्यमण्डार में सुरक्षित धनदा वरमान कर भरत की राज्य मागा। यह सुन कर राम लक्ष्मण और सीता मर्तिन की ओर चले गए। ककयी और भरत ने वन में जाकर राम से शीत वला का अनुरोध किया पर सब न्यस्त हुआ। राम अयोध्या नहीं लौटे।

सबसे बड़ा वनप्रमग का विस्तार का साथ वनन है। वन में राम और लक्ष्मण के अच्छे राजाओं से जनक युद्ध हुए। कई विपत्तिप्रस्त रोगों की राम ने सहायता भी की। जटायु से भेंट हान के बाद राम लक्ष्मण वन में रहने लगे।

इसके बाद सीताहरण और उनकी खोज का वनन है। बचपन तथा स्वयंवर के पुत्र रामूक न सूर्यहास लक्ष्मण की प्राप्ति के लिए और तपस्या की जिसके फलस्वरूप वहाँ सूर्यहास प्रकट हुआ। लक्ष्मण समाप्त में वहाँ पहुँच और रामूक लक्ष्मण ने इसने पूरा ही उद्धार उठे उठा लिया। लक्ष्मण की परीक्षा के लिए उन्होंने वही पास के एक बास रामूक पर उभरे प्रकट किया। उसी वामसमूह में बड़ा रामूक तपस्या कर रहा था। इसलिए लक्ष्मण के इन प्रयोग से वामन का साथ उभरती सीतें बट गया। बचपन में आकर जब अपने मृत पुत्र को दत्ता तो बच बहूत विनाश करने लगे और वामन आन पर अपने पति से सारा समाचार कह सुनाया। स्वयंवर के साथ लक्ष्मण का भयंकर युद्ध हुआ। इसी समय स्वयंवर के आह्वान पर रावण उसकी सहायता के लिए आया और सीता को दत्तकर उस पर मोहित हो गया। रावण सीता के अपहरण का उपाय सोचने लगा। उसने अपनी विद्या के वन से जाना कि राम को सहायताय दुर्वास के लिए लक्ष्मण ने गिहना का खेन बताया है इसलिए वह प्रपञ्च विह्वल करता है जिससे राम लक्ष्मण की सहायता के लिए सीता का धनवी छाड़ कर चल जाते हैं। सभी समय रावण सीता का भरोला पा कर हर न जाता है।

सीताहरण के बाद राम बहुत दुखी होते हैं। सबसे बाद सपीव का साथ राम की भर्ती का वनन है। साहमगति ने मुदीव का रूप धारण कर मुदीव की परती का अपहरण कर लिया था। राम ने उसे मार कर मुदीव को उनकी पत्नी प्राप्त करा ली। मुदीव की आत्मा में विद्यावर सीता की ग्रीव करने हैं। कुछ ही समय में ग्लान्ती नामक विद्यावर धर कर बताया है कि सीता का हरण रावण ने किया है। रावण एक महान वनगाती राजा था मर्तिन विद्यावरा ने उनसे साथ युद्ध करने से इंकार कर दिया किन्तु जब उन्हें धनन्तरीय ककयी का यह वचन याद आया कि जो व्यक्ति काटि गिला को उठाया वही रावण को मारेगा तो सबसे कोटिगिला उगने की परीक्षा की। लक्ष्मण ने गिला उठा दी। विद्यावर धन भी रावण से डरते हैं और हनुमान को सारा भेजने की सलाह देते हैं। हनुमान





लका जाते हैं और वहाँ पर अनेक तरह का विनाश करके सीता का मन्देश लेकर राम के भ्रम लौट आते हैं।

इसके बाद युद्ध का वर्णन है। सुग्रीव आदि विद्याधरो के साथ राम लका के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में वानर वगी विद्याधरो की सेना को समुद्र नामक राजा रोकता है जिससे युद्ध होता है। अन्त में समुद्र की पराजय होती है। राम कृपा करके उसका राज्य उसे वापस लौटा देते हैं। मेना लका पहुँचती है। वहाँ रावण के साथ भयकर युद्ध होता है। अन्त में रावण लक्ष्मण पर चक्र चलाता है, किन्तु वह चक्र लक्ष्मण को लगने के बदन में उनकी प्रदक्षिणा देकर हाथ में आ जाता है। लक्ष्मण उसी चक्र में रावण का वध करते हैं।

तदनन्तर राम अयोध्या लौट कर राज्य करने लगते हैं। भरत विरक्त हो दीक्षा ले लेते हैं। लोकापवाद के भय से राम सीता को वन में छुड़वा देते हैं। सीता वज्रजघ के आश्रम में रहती है। वही उनके लवण और अकुरु दो पुत्र होते हैं।

बड़े होने पर लवण और अकुरु का राम और लक्ष्मण के साथ युद्ध होता है। बाद में नारद के द्वारा पारस्परिक परिचय होने पर पिता-पुत्रों में मिलाप होता है। हनुमान, सुग्रीव, विभीषण आदि के कहने पर राम सीता को बुला लेते हैं। सीता अग्नि-परीक्षा देती है और उनमें सफल होने के बाद आर्यिका (जैन माध्वी) हो जाती है।

किसी दिन दो देव राम और लक्ष्मण के स्नेह की परीक्षा करने के लिए आते हैं और लक्ष्मण को अत्यन्त राम की मृत्यु का समाचार सुनाते हैं। लक्ष्मण अपने भाई की मृत्यु के समाचार सुनते ही अपने प्राण त्याग देते हैं। अब राम को लक्ष्मण की मृत्यु का समाचार मिलता है तो वे अत्यन्त दुःखी होते हैं और विक्षिप्त में हो जाते हैं। अन्त में लक्ष्मण की अत्येष्टिक्रिया करने के बाद राम मुनि हो जाते हैं और माघना करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

यहाँ पञ्चम-चरित की कथा समाप्त होती है।

गुणभद्र की परम्परा और उत्तरपुराण की कथावस्तु

उत्तरपुराण की कथा बौद्ध साहित्य के दशरथ जातक की तरह प्रारम्भ होती है। कथा का संक्षेप इस प्रकार है—

वाराणसी में दशरथ नाम के राजा राज्य करते थे। उनके चार पुत्र थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। राम मवाला के गर्भ से, लक्ष्मण कैंकेयी के गर्भ से तथा साकेतपुर में राजधानी स्थापित होने के बाद भरत और शत्रुघ्न किसी दूसरी रानी के गर्भ से (जिसका नाम नहीं दिया) उत्पन्न हुए थे। दशानन (रावण) विनम्र विद्याधर वंश के पुलस्त्य का पुत्र था। किसी दिन उसने अमितवेग की पुत्री मणिमती को तपस्या करते देखा और उस पर मोहित होकर उसकी साधना में विघ्न डालन लगा। मणिमती ने निदान किया कि “मैं तेरी ही पुत्री होकर तेरा नाश करूँगी।” मृत्यु के बाद वह रावण की रानी मन्दोदरी के गर्भ में आयी। उसके जन्म के बाद ज्योतिषियों ने रावण को बताया कि यह तुम्हारा नाश करेगी। अतः रावण ने भयभीत होकर मारीच को आज्ञा दी कि वह उसे कहीं छोड़ आए। एक रत्नमञ्जूपा में रख कर मारीच उस कन्या को मिथिला देश में गाड़ आया। हल जोतते समय वह रत्नमञ्जूपा दिखाई पड़ी और लोग उसे लेकर राजा जनक के पास ले गये। जनक ने खोलकर देखा तो उसमें से एक सुन्दर कन्या निकली। जनक ने उसका नाम सीता रखा और पुत्री की तरह उसका लालन-पालन करने लगे।

बहुत समय के बाद राजा जनक ने राम और लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए बुलाया। यज्ञ समाप्त होने के बाद राम का सीता के साथ विवाह हो गया और वे दशरथ से आज्ञा लेकर वाराणसी में रहने लगे।

मारु न रावण क सामन सीता ने सौंदर्य का वणन किया जिसमें रावण ने सीता को हर जाने का संकल्प लिया और अपनी बहिन सूरपक्षा को सीता का मन की परीक्षा करने के लिए भेजा। सूरपक्षा ने लौट कर बताया कि सीता का मन को चलावमान करना असम्भव है।

एक दिन जिस समय राम और सीता वाराणसी में निकट चित्रकूट जाँका में विहार कर रहे थे उस समय माराच स्वर्ण मृग का रूप धारण करके राम को दूर ले गया। इतने में रावण राम का रूप बना कर धाया और सीता से कहने लगा कि मैंने मृग का महल भेंट दिया है। वह सीता को पालकी पर चढ़ाने की आज्ञा देता है। यह पालकी वास्तव में पुष्पक विमान है जो सीता को ले जाता है। रावण अपनी आकाशमानी विद्या मत् होने के डर से पतिव्रता सीता का स्वर्ण नहीं करता।

द्वारक को स्वप्न द्वारा यह पता चला कि रावण ने सीता का हरण किया है। उन्होंने यह समाचार राम के पास भेज दिया। इसी मोके पर सुग्रीव और हनुमान वाली का विरह सहायता मागने राम का पास पहुँचे। हनुमान की लडा भेजा गया और वे सीता को साखवा देकर वहाँ से लौट आये। इसके बाद नक्षत्र न वाली का वध किया और सुग्रीव को उनके राज्य का अधिकार दिनाया।

इसके बाद बानरों और राम की सेना के लिए प्रस्थान किया। लवा ने भयंकर युद्ध हुआ और अंत में नक्षत्र ने चक्र से रावण का सिर काट लिया। निम्नलिखित के बाद सब राट आये। सीता का घाट पुन उत्पन्न हुए। सीता ने त्याग का यहाँ कोई जगजगत् मिला। नक्षत्र को एक असाध्य रोग से मृत्यु हो गयी है और राम नक्षत्र के पुत्र वृक्षीन्द्र की राजपुत्र पर लवा सीता के पुत्र अनिसजरा को सुवराज्य पर अभिषिक्त करने मुनि दीक्षा ल गते हैं और तप करक अंत में भाग गये हैं। सीता भी अनेक रात्रियों का साथ दीक्षा ल गयी है और तप करक स्वर्ग प्राप्त करती है। यह तरह कथा समाप्त होती है।

जन साहित्य में रामकथा की इन धाराओं का पर्याप्त विश्वास नहीं है। पहली धारा का आधार तब तक जिन कथा की रचना हुई उनके निम्नलिखित मुख्य हैं—

१—निमलसूरि का पञ्चशतिका (तीसरी चौथी शती) संहृत

२—रविपण का पञ्चशतिका (६६ ई) संहृत

—स्वयम्भूत का पञ्चमचरित (७० ई) शकप्रग

४—हेमचन्द्र का जन रामायण (१२वीं शती) यह निरुद्धालावापुस्तकचित्त में मिलता है अतः स भी छप गया है। संहृत।

५—जिनानस का रामपुराण (१५ वां शती) संहृत

६—रघुदेव विजयगणि का रामचरित (१६ वां शती) संहृत

७—धोमसेन का रामचरित (१६वीं शती) संहृत

इन रचनाओं के अनिश्चित अनेक कथाकोषों में भी रामचरित की सामग्री मिलती है। उदाहरण के तौर पर हरिपण का कथाकोष रामचन्द्र मुमुक्षु का पुष्पाश्रवकथाकोष तथा जिनरत्नकथाकोष आदि में रामचरित की पर्याप्त सामग्री मिलती है।



दूनरी परम्परा के ग्रन्थों में निम्नलिखित मुख्य हैं—

- १—गुणभद्र का उत्तरपुराण (९वीं शती) संस्कृत
- २—कृष्ण कवि का पुण्यचन्द्रोदयपुराण (१६वीं शती) संस्कृत
- ३—गुणदत्त का तिनट्टी महापुरिमगुणालकार (१०वीं शती) अपभ्रंश
- ४—त्रामुण्डराय का त्रिपट्टिगलाकापुरुषपुराण (१०वीं शती) कन्नड
- ५—बन्धु वर्मा का जीवन मन्वोद्यन (१२वीं शती) कन्नड
- ६—नागराज का पुण्याश्रवकयामार (१३३१ ई०)

इनमें पुण्यचन्द्रोदय को छोड़ कर बाकी ग्रन्थों में अन्य ६३ महापुरुषों के चरित भी मिलते हैं।

इनके अतिरिक्त भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में भी जितना रामकथा मन्वन्वी साहित्य जैन साहित्यकारों द्वारा लिखा गया है वह उपर्युक्त दोनों परम्पराओं में से ही निम्नी एक को आधार मान कर निबद्ध हुआ है।

जैन साहित्यकारों द्वारा निर्मित रामकथा मन्वन्वी इस विशाल साहित्य को देख कर रामकथा में जैन समाज की प्रगाढ़ अभिरुचि का पता चलता है। वर्तमान में भी जैन समाज में रामकथा मन्वन्वी साहित्य का तुलसीदास की रामायण की तरह बड़े चाव से पठन-पाठन होता है।

कथावस्तु की दृष्टि से वैदिक, जैन और बौद्ध साहित्य में उपलब्ध रामकथा में बहुत-सी समानताएँ और असमानताएँ पायी जाती हैं। यहाँ तक कि वैदिक साहित्य में भी रामकथा का एक रूप नहीं मिलता। उदाहरण के लिए सीता की उत्पत्ति के प्रश्न को ही ले लिया जाए—महाभारत की सीता जनक की पुत्री हैं तो वाल्मीकि रामायण की सीता पृथ्वी की। वही सीता विष्णुपुराण और भागवतपुराण में रावण की पुत्री हो गयी। इसी तरह दशवतार की सीता कमल से उत्पन्न होती है और आनन्दरामायण की अग्नि से।

इस तरह की नाना विप्रतिपत्तियों के होते हुए भी रामकथा का प्रचार अत्यधिक मात्रा में हुआ है। मूल रामचरित की कथावस्तु क्या थी अथवा क्या होना चाहिए आदि के पछड़े में न पड़कर यदि हम वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों धाराओं के रामकथा मन्वन्वी साहित्य को उठा कर देखें तो ज्ञात होगा कि क्या-वस्तु में पाये जाने वाले अन्तर के बावजूद रामकथा के पात्रों का चरित्र क्रमशः निखरता ही गया है। केवल राम को ही नहीं रामकथा के अन्य सभी पात्रों को एक नयी ध्वनिमा, एक नया रूप, एक नयी चेतना और एक नया विकास आगे-आगे के साहित्य में मिलता है।

हिन्दू रामायण में राम ने केवल रावण का ही वध नहीं किया बल्कि बालि, शम्बूक तथा अनेक राक्षसों का भी काम तमाम किया। बर्हिमा की मूल भित्ति पर प्रतिष्ठित होने वाला जैनधर्म यह बात कैसे बरदाश्त कर सकता था कि राम जैसा महापुरुष जिसे इसी जीवन में मोक्ष प्राप्त करना है, एक वध नहीं बनेको मनुष्यों की हत्या का पाप करे। भले ही वह राक्षस रावण हो या शूद्र शम्बूक। इसी कारण राम के चरित्र को वेदांग रखने के लिए जैन रामायणकारों ने रावण, बालि और यहाँ तक कि शम्बूक का नाश भी लक्ष्मण के हाथ से कराया और राम को नर-हत्या जन्म पाप के पक से अदृता बचा लिया।

बौद्ध साहित्य के राम जब साक्षात् दया के अवतार बुद्ध ही मान लिए गये तो यह कैसे सम्भव था कि दया-

सिंधु राम नर-नटार करें। इसी कारण बौद्ध साहित्य में उपलब्ध होन बागी रामकथा में बर्णित वध का जिन तक नहीं आया।

हिंदू रामायणकारों ने हनुमान और सुग्रीव के चरित्र को उनका रखत हुए भी धाँवर उह वन्दर बना ही लिया। जन रामायणकार चरित्र चित्रण की दृष्टि से यहाँ भी घात रहे। उन्होंने हनुमान और सुग्रीव को केवल मनुष्य ही नहीं बनाया प्रत्युत उन्हें विद्याधर बहकर आवागमिना आदि अनेक विद्याप्राप्त युद्ध मिद्ध किया।

रावण का चरित्र हिंदू रामायण में जिन रूप में प्रस्तुत हुआ है उसमें किसी भी व्यक्ति के मन में उसके प्रति महान् घृणा उत्पन्न हो सकती है पर जन दृष्टि किसी भी व्यक्ति का चारित्रिक दृष्टि से गिरा हुआ स्वीकार नहीं कर सकती। इसलिए उसने रावण को भी नीचे नहीं धिरने दिया। रावण में नाख बुराईयाँ या फिर भी उसकी एक छोटी सी प्रतिभा के आधार पर जन रामायणकारों ने उसे उपर उठा लिया। जो स्त्री स्वेच्छा से मुक्त भोगीकार नहीं करेगी उसके साथ में वलात भोग नहीं करेगा। रावण ने यह प्रतिभा दम दम की थी कि क्या दुनिया में ऐसी भी कोई स्त्री होगी जो मुक्त जल गतिशाली और प्रभुतासम्पन्न सम्राट को स्वीकार न करना चाह। सीता एक ऐसी महान् मारी थी जिसने अन्त तक रावण को नहीं छोड़ा और विजना महान् या रावण भी कि उसका मन तक अपनी प्रतिभा की रक्षा की।

राम के उर्वल चरित्र से रामकथा के सभी पात्रों के पाप धुन गये। रामचरित्र की सुधा धारा में नहा कर सभी पवित्र हो गये। राम सत्ता के लिए समर हो गये राम के साथ रावण भी समर हुआ गया। हनुमान समर हो गया सुग्रीव समर हो गया और समर हो गया गम्भूज जसा लुब्ध व्यक्ति भी। रामचरित्र को गाने वाला का बल्बान् हुआ सुनने वाला का उद्धार हुआ और राम सत्ता के लिए जन-जन के भगवान् बन गये।

रहे राम तुम मर स मायापण हाके ही।



कन्नड़ में जिनभक्ति-साहित्य

प्रो० गुरुनाथ जोशी,

एम० ए० जे० एस० एम० कालेज, धारवाड



कर्नाटक में जैनधर्म

कर्नाटक अनेक दया-धर्मों का नगम एव आश्रय न्याय है। परधर्ममहिष्णुता उनकी नम-नस में नचारित है। इन कथन के सत्रल समर्थक कर्नाटक में उपलब्ध मिलानेख हैं। नन् ११५१ के एक मिलानेख में यह श्लोक आया है।

जयति यस्यावदतोपि भारती—
विभूतयस्तीर्थंछतेपि नैहिते (?)
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे
जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ॥

शिव, ब्रह्म, सुगत (बुद्ध), विष्णु और जिन इनमें अनेक को बताने वाला यह श्लोक यह भी बताता है कि कर्नाटक में शैव, बौद्ध, वैष्णव और जैन बहुत समय से रहते आ रहे हैं।

कर्नाटक में जैनधर्म एक प्रबल धर्म के रूप में रहा है। प्राचीन कर्नाटक में तो वह एक अत्यन्त प्रबल धर्म था। उसका सार इस प्रकार संग्रह किया जा सकता है

“आत्मा अपनी स्वाभाविक शुद्धता पाकर केवल-ज्ञान को पावे, यही जीवन का ध्येय है। वह एक अलौकिक स्थिति है। तब आत्मा को समस्त पूर्णताएँ प्राप्त रहनी हैं। उपनिषदों के उपदेशों की भाँति इनमें भी मोक्ष का अर्थ है परम और पुण्य के परे हो जाना। इस स्थिति को पाने के लिए ‘त्रिरत्न’ अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की साधना के साथ-साथ योग की साधना भी आवश्यक मानी गई है। इस साधना से मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है, यदि यह जानना चाहें तो ध्यान में रखना होगा कि जीव और अजीव में समन्वय करने वाला धर्म ही है। धर्म अर्थात् नूतन जडवस्तु है। आत्मा अपनी अलौकिक स्थिति में ऐसी जडवस्तु से व्याप्त होती है। अजीव के प्रभेद इस धर्म से मुक्ति पाना ही उनका प्रधान लक्ष्य है। कर्मबन्धन और उनसे मुक्ति के विषयों का प्रतिपादन इस प्रकार किया गया है। पहली बात यह है कि कर्म अन्दर बहकर आता है (आन्तरिक), दूसरी बात यह है कि इनके कारण बन्धन होता है (बन्धन), शुभाशुभ क्रियाओं के फलस्वरूप कर्म आत्मा में बहकर आता ही रहता है, उससे मुक्ति ही नहीं। परन्तु एक आशा-किरण यह है कि इस प्रकार बहकर आने वाले कर्म को रोका जा सकता है। इसीलिए जैनधर्म में ‘त्रिरत्न’ का विधान है। बहकर आने वाले कर्म को रोकना (संवर) आवश्यक है और पहले सचित्त कर्म का नाश करना (निर्जरा)

भी जल्दी है मोक्ष प्राप्ति के लिए । धरत और निजरा से कम का मय हुआ जाने धर (धात्मा) जीव को मोक्ष देने का मिल जाता है । तब वह बाह्य से धुन्धारा पाये हुए धूम के चर्च की तरह अपनी मूल स्थिति को पाता है और अवतमान धनवर्णन अनन्तवीध धनतत्त्व से विराजमान होता है ।

‘मोक्ष एक परिपूर्ण स्थिति है । मन्त्र यह कि जनधम न एक परमात्मा के अस्तित्व को यद्यपि नहीं माना है तथापि परिपूर्णता के रूप में स्थित्यर्थ की भावना को देखा गया है । यथाच कर्म प्रवाह (धायव) उसने धधन (वध), उसको रोहना (धर) उदका कन्ना (निजरा) और धुन्धारा (मोक्ष) के साथ जीव और धजीव को मित्राकर कुल सात तब जनधम में माने गये हैं । यथा तब सम्मगन्तान में समाविष्ट हैं ।

त्रिरत्नसाधना का त्रितीय रत्न है सम्मगन्तान । त्रितीय मध्य विषय के त्रिना जीवाणि तत्त्वा की निज स्थिति को जानना ही सम्मगन्तान है । वह भी मनि अथ अन्विध मनधध और बन्ध इस तरह पाँच प्रकार का है ।

त्रिरत्नसाधना का तृतीय रत्न सम्मकचारिण है । समार के त्याग के लिए त्याग करने का सम्मगन्तान से प्ररित मध्य जीव की बाह्य और भीतरी त्रिना निरुत्ति सम्मकचारिण है । यह भी पाँच प्रकार का है—जते सामाविध धुन्धेपस्थापना परिहारविगुद्धि शून्य सपराय और यथास्थान ।

मुद्धिपूषक अष्टा भक्तिपूषक भाव त्रियानिध आचार यही इस धम के मूल लक्षण हैं । आचार परमो धम इस धम की विशेषता है । आचार्यों के लिए कहे गये ३६ गुणा में इस धम के परमोच आचारणा य हैं

- १ पचाचार जानाचार दानाचार तपाचार चारिदाचार और बीयाचार ।
- २ बाह्य धम ६ अनगन धनमोक्ष धृतिरतिस्तस्यान रस परियाग विविक्त गम्यासन बाधवना ।
- ३ अतरत तप ६ प्रावदिधत विनय वैदावरय स्वाध्याय उत्तय ध्यान ।
- ४ पठावयक समज्ञ स्तवन वक्ता प्रतिक्रमण प्रत्यास्थान धारोत्तम ।
- ५ दानधम उत्तम धामा उत्तम मानव उत्तमाजव उत्तम गौध उत्तम सत्य उत्तम सयम उत्तम तप उत्तम त्याग उत्तम धार्मिक्य उत्तम ब्रह्मचर्य ।
- ६ त्रिमन्त्रिया धनोमुत्ति, वाग्मुत्ति धायमुत्ति ।

संगम में जनधम महिमा सत्य अस्मय ब्रह्मचर्य तथा नि परिग्रह नामक पांच वना से युक्त है । जहाँ को पचागीत के नाम से मन्त्राचार की माना में प्रिरीकर मयवान बद्ध के उपर्येग किया है । महात्मा धापोजी ने इन पाँच वनों के साथ और छ वनों की मित्राकर ग्याह वनों का उपर्येग किया है । यहाँ यह स्मरणोय है ।

जनधम भी दो प्रधान सम्प्रदायों में विभक्त हो गया स्वताम्बर और त्रिगम्बर । आज्ञात उत्तर भारत में त्रिगम्बर सम्प्रदाय और दक्षिण भारत में त्रिगम्बर सम्प्रदाय त्रिगोच प्रचार में है । प्राचीन धर्माच म जन त्रिगम्बर सम्प्रदाय ही प्रधान रूप में था । पाँचवी सदी के मन्त्र नरेश के राजक लाभपदों में दनपट महाधर्मण मध और निग्रय महाधर्मण मध का उल्लेख मिलता है । तबत त्रिनि होता है कि कनाच में स्वताम्बर जन भी थे । परन्तु उपाध प्रभाव अधिग नहीं था ।

स्वतावर और त्रिगम्बर सम्प्रदायों के बीच में मानो समन्वय स्थापित करने के लिए और एक सम्प्रदाय का



उदय हो गया था जो 'वापनीय' संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इस संप्रदाय का प्रचार विशेष रूप से उत्तर कर्नाटक में रहा है। कुछ विद्वानों ने इसे सुवाग्वादी संप्रदाय कहा है, क्योंकि उन संप्रदाय ने दिगंबर संप्रदाय के कठोर नियमों में कुछ परिमर्तन सुभाये और उनके प्रधान नृत्य तीन हैं—(१) पर्यागन्ते मोक्ष (अन्य मन्त्रावलम्बियों को भी मोक्ष है।), संप्रदाया मोक्ष (मत्स्यी लोगों को भी मोक्ष है), (२) स्त्रीणा तद्भवे मोक्ष (स्त्रियों को भी इसी जीवन में मोक्ष प्राप्ति हो सकती है)। ये तत्त्व धर्मोत्तम संप्रदाय के भी हैं, पण्डित उन वापनीय संप्रदाय के मुनि दिगंबर ही रहे हैं। इस संप्रदाय के केन्द्र कर्नाटक में गुनवर्गा जिले के आर्यी, नेड, और वेलगाव जिले के हलगी तथा धानवाड जिले के दोणि, नन्नगुद आदि भागों में थे। इस संप्रदाय के गुनियों को वदम राजाओं का प्रोत्साहन भी प्राप्त था।

पहले ही कहा जा चुका है कि कर्नाटक में दिगंबर जैनसंप्रदाय ही प्रचल रहा है। इसी मन् के पूर्व ही भद्रबाहु के नेतृत्व में दिगंबर जैन संप्रदायवाले कर्नाटक आये और विशेषतः तपानुत्त एव भान वानावरग के स्थान कोप्पन और श्रवणबेलगोल में बस गये।

कर्नाटक में जैनधर्म कदम, गग, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होयसल राजाओं के आश्रय और प्रोत्साहन से बारहवीं सदी तक उन्नतावस्था में था। वैदिक संप्रदाय के होने हुए भी अन्य राजाओं ने जैनधर्म को आश्रय दिया था। उनके कान के एक ताम्रपत्र में जो वाक्य पाए जाते हैं उनका हिन्दी स्वरूप यों है—

“जिन देश में जिनैन्द्र की पूजा होती है डा देश की उन्नति होती है, नगर निर्भय हो जाते हैं और उन देश के राजा की तस्करी होती है।”

कन्नड साहित्य के ग्रन्थों में तथा शिलालेखों में जैनधर्म के तत्वों और गायों आदि का उल्लेख, कई जैन मुनियों के कठोर तप का वर्णन, मुनियों और जैन सन्यासिणियों अर्थात् कनियों की विद्वत्ता की भूरि प्रशंसा का वर्णन, कर्नाटक में विद्यमान श्रमणसंघों तथा जैन मन्दिरों का वर्णन, अनायास उनके नमोऽमरता, निषीदिका, स्तौहार, यक्ष-यक्षी की आराधना का वर्णन भी हम पाते हैं। इन सब वर्णनों के आधार पर हम उन नतीजों पर पहुँचते हैं कि जैनधर्म का प्रभाव कर्नाटक में काफी रहा है। पर क्या जैनधर्म वैदिकधर्म ने अद्वैता ही रह गया था? उपलब्ध साहित्य और शिलालेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैनधर्म पर वैदिकधर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा था। इन बारे में डा० एम० चिदानन्दमूर्ति कहते हैं

“वसदियों में (जैन मंदिरों में) कुछ पक्कड़ के और कुछ चिकूट के थे। उनका भीतरी भाग सुगन्धमयित काले अण्ड-धूप के धूम में महकता रहता था। बाहरी भाग ध्वज, मकर, तोरण, मानन्तभ में अलङ्कृत थे। तीर्थंकर दिव्यत्वप्राप्त मानव थे। तो भी ईश्वरी के प्रारम्भ में ही उनको देवता पुरुष मानकर जैनो ने उनकी पूजा की। क्योंकि उनका विश्वास था कि ऐसी पूजाओं से कर्म का क्षय होता है, पुण्य की वृद्धि होती है, लौकिक ऐश्वर्य विनवादि में वृद्धि होती है। केवल-ज्ञान प्राप्त तीर्थंकर सिद्धगिला में विराजे रहते हैं, उनकी मन्त्र के प्रति अनामवि रहती है, अतः अर्चना तथा स्तोत्र उनको पहुँच नहीं पाते। उनमें नीचे व्यक्ति के कर्मनाम में कोई सहायता नहीं होती। ‘भगवत्कृपा या कृणा’ (Divine Grace) को जैनधर्म में कोई स्थान नहीं है।

“(इन दृष्टि से जैनधर्म ने पुरुष-प्रयत्न को जो ऊँचा स्थान दिया है वह अन्य धर्मों में नहीं दिया गया है। व्यक्ति को अपने प्रयत्नों से ही कर्मों का क्षय कर लेना चाहिये।)

“तीर्थंकरों की पूजा लौकिक ऐश्वर्यादि की प्राप्ति के लिए करना जैनधर्म के तत्वों के विरुद्ध है। तो भी जैन हिन्दुओं के प्रभाव के कारण जैन मंदिरों में अष्टविचारार्चन करने लगे और पूजादि में विस्तार आ गया। जैन मंदिरों में देवदासियों के नृत्य भी होने लगे। शायद वैदिकधर्म के प्रभाव से जैन मंदिरों में होमादि भी होने लगे। (कहने की



है। आत्मा उसी रस का अनुभव करके अपने परम प्रान्तव्य को पा जाता है। यह जो चेला-चेतियों का टाट टाट है, पोथियों का ढूँढ़ है, उनके चाकर में पड़ा हुआ जीव निमग्न होना है, परन्तु यह मोह है, परम पद या अन्तर्गत है। जो ज्ञानी है वह इनमें लज्जित होना है —

चेला चेती पुत्तियर्थाह,

नृपद मृडु पिनतु ।

एवह लज्जद पाणियद,

घघइ हेउ मुणतु ॥

व्या ८-६वीं सदी के इन जैनधर्मों में जो उठने के विचारों और तत्वों ने कर्नाटक के जैन साधु और कवि प्रभावित नहीं हुए होंगे? इन जैन मत के भाव के सम्बन्ध में हमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलते। परन्तु कर्नाटक के गिना-लेखों, ताम्रपत्रों तथा कन्नड के जैन कवियों के साहित्य के अन्तर्गत में ऐसा लगता है कि वे जो उठने के ही व्याख्या धर्मावलंबी साधुओं और सत्तों के विचारों ने भी प्रभावित हुए हैं। उनकी कृतियों में भक्ति-मार्ग की सभी बातों का पुट लक्षित होता है। अब हम देखें कि कन्नड के कविपत्र प्रतिनिधि जैन कवियों की रचनाओं में भक्ति भागी-धर्मों का क्या स्थान है।

पप (६४१) के पूर्वज वन्म गोत्र के ग्राहण थे। पर पप के पिता जैन बने तो पप वैदिक मतावलंबी साधुव्य नरेश अरिकेसरी का दरबारी कवि बना। राजा का अग्रिय तेज और पप कवि का ग्राहण स्वतः मिल गये, फलस्वरूप वेदव्यास का 'महाभारत' पप का 'विन्मार्जुनविजय' बन गया। अपने आश्रयदाता अरिकेसरी की कीर्ति के लिए 'विन्मार्जुनविजय' लिखने के उपरान्त पप ने महर्षियों के कल्याणार्थ एव आत्मकल्याणार्थ 'आदि पुराण' लिखा।

'विन्मार्जुन विजय' में व्यास 'भट्टारक' के प्रति भक्ति तथा विनय प्रदर्शित करके पप ने 'आदिपुराण' में अपने परम श्रद्धेय गुरु देवेन्द्र मुनि का भक्ति में नामस्मरण किया है।

पप की कृति 'विन्मार्जुनविजय' की अपेक्षा नामान्वय जनता का मन 'आदिपुराण' की ओर ही झुक जाता है, क्योंकि उसमें तीर्थंकर के चरित में जन्मावली की व्याख्या और जैनधर्म की प्रशंसाएँ भरी हैं। अलावा इसके इन 'आदिपुराण' में पप की धर्म श्रद्धा, भक्ति-ज्ञान-वैराग्य की भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं।

पप ने अपनी भक्ति के प्रदर्शन के लिए सर्वप्रथम तीर्थंकर पुनर्देव को ही 'आदिपुराण' के लिए धर्मनायक के रूप में चुन लिया और प्रथम चक्रवर्ती उनके पुत्र भरत को वीर-नायक के रूप में। इस काव्य के प्रारम्भ में कवि ने प्रार्थना की है—“जगत् के स्वामी, अगाधबोध निलय, दुर्वारमसार-विच्छेदोपाय नियुक्त नूति आदिब्रह्म हमें मुक्ति-श्री मुग्धावाप्ति देने की कृपा करे।” तदुपरान्त कवि ने इन पुराण की विशेषता बताई है और उनका सार स्वर्गीय कन्नड के मुप्रसिद्ध श्रद्धेय साहित्यकार वी० ए० श्रीकृष्णा ने इस प्रकार सारा किया है

“प्रधानतः अर्थ कामों की तृष्णा में फिसे गए शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप तिर्यक्, मनुष्य, नारक, देव नामक चार गतियों के समार में तडपने वाला जीव जिनधर्म में श्रद्धा रखकर, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चरित्र, सम्यग्ज्ञान नामक रत्नत्रय से परिशुद्ध होकर, दानधर्म, वैराग्य और तपादि में उत्तम जन्म पाते हुए, भवावली के शिखर पर अर्हमिद वन के लोक में रहकर, परिशुद्धात्मा बनकर मनुष्य लोक में आकर चरमदेही होकर वैराग्य से समस्त को त्याग कर, तप करके कर्मक्षय कर तीर्थंकर वनके जैनधर्म का उपदेश लोक को देकर निर्वाण पद पाता है। यही तीर्थंकर के पुराण (आदिपुराण) का मार्ग है।”

कन्नड-कविकुलतिलक, आदिकवि पप की इन कृतियों में भक्तिभावना से भरे कुछ प्रसंग हैं। 'विन्मार्जुन-



पुद्गितोऽपि पर्वत

पद्मलेमगोमे तटेयदहं वन ।

... ..
.. ..

अमरेंद्रोन्नति खेचरेन्द्र विभव भोगोन्द्र भोग महें
द्र महैश्वर्यनिचेरत्तम ध्रुवमिव बेन्पतु येन तेन तेन
त्तमदीक्षा विधिपुं नमाधिमरण कर्मक्षय बोधिला
भममोघ दोरेदोन्पुदवकेमगे मुक्ति श्रीमनोवल्लभा ।

भावार्थ—स्वर्ग के उद्ग के मुकुट मणियों की ताल दीप्ति ने मानो भरे, चमकने वाले अमरेंद्र ने मानो भरे अर्हन् के चरण हमे शीघ्र अर्हन् पद दें ।

भुवनेश्वर ! तुम्हारे रूप का स्तोत्र, पदार्थ का स्तोत्र, गुणों का स्तोत्र अमरेंद्र वामुनि (भोगोन्द्र) यदि बड़े-बड़े लोग ही नहीं कर पाते हैं तो क्या मैं कर पाता हूँ ।

अर्हन् ! ममन्त वस्तुएँ मापी जा सकती हैं, तीनी जा सकती हैं, गिनी जा सकती हैं । लेकिन तुम्हारे गुण-समूह उन लोक के जनो ने न मापे जा सकते हैं, न गिने जा सकते हैं, न गिने जा सकते हैं ।

अर्हन् जहाँ रहता है वह स्थान मेरु का जितना ऊँचा है, वह जहाँ रहता है वह स्थान नागर के समान गम्भीर है, वह जहाँ रहता है वह स्थान आकाश के जितना विस्तृत है । मग्न जगन्मुन, तुम्हारे गुणों की उन्नति भुवनों के अन्तर में भी व्याप्त है ।

अनाहुत स्थान की खोज करके, आशुल होकर ही प्रमा-फिरा । तीनों लोकों में ऐसा स्थान न पाया । तुम जिन स्थान में रहते हो वही सर्वोच्च शाश्वत स्थान है । उनी का मुझे देने का अनुरोध करो अर्हन्त ।

भवमयन ! भवरूपी शृं जलाएँ तोड़ दो । भवनागर के पार पहुँचाओ । भव की महत्तर पीड़ा का नाश करो । शीघ्र मे शीघ्र भवार्तक भवन (समार का नाश करने वाले जिनका घर—मुक्ति स्थान) पर मुझे ले जाओ ।

मरण और जनम की बेड़ी जो लगी है उसके छूटने तक हे जिन, तुम्हारा स्मरण करना अपौरुषेय व्यक्ति-क्रमण मात्र भी क्या भूल जाऊँगा ?

मकल भक्तों के तिलक (जिन) को भक्तों को वग में कर लेना आवश्यक है ? जब जनता भीतरों रहस्य नहीं जानती । हे जगत्तिलक जिन, तुम्हारे पादरूपी चन्दन का तिलक तो जरूर तीनों लोकों को वग में कर लेने वाला होगा ।

अमरेंद्र की उन्नति, खेचरेन्द्र का विभव, भोगोन्द्र का भोग, महेंद्र का ऐश्वर्य ये सभी अद्भुत हैं । इनको मागने वाला मूर्ख मैं नहीं हूँ । हे मुक्तिरूपी श्री के मनोवल्लभ अर्हन्त, उत्तम दीक्षाविधि, नमाधिमरण, कर्मक्षय, बोधिलाभ जरूर हमें प्राप्त हो ।

महाकवि पंथ के ये भक्ति भरे पद भारत के किसी पहुँचे भक्त कवि के पदों से किसी हानत में कम दर्ज के नहीं हैं ।

पौन—(६४५ मे ६५) सामल राजा क दरबार म था छोर वह सरहजुन तथा बंगलूरु में बसिना रचता था मन उम 'उभय बवि बचवनी' उपाधि मिली थी। वह अन्याय का महापक्षिण था छोर यति की भाँति जीवा विनाश था। 'मने विनाशर भाता नामक पुस्तक' म ६ पद्या में जिन की स्तुति की है। 'म' छोटी-सी रचना म बवि की उक्त जिनभक्ति प्रस्तुति हुई है। हमी मे रचित 'गानिपुराण' म तीथवर गानिनाथ का चरित है छोर उम म भी भक्ति के रूप पाव पाते है।

चाउ इराय—(६७८) गरजन ग्राह्य छोर बगल का प्रसिद्ध पंडित था। गगराज राजमाल का मनी छोर नेमिचन्द्र मिश्रा का पिता था। वह कई सदाशय म जीवर प्रसिद्ध भी हो गया था। उमा 'उ' अवलोकनगोन क गोमटेश्वर के विपक्ष की स्थापना करता कर एक अन मरि बनवा। उमने विपक्षि सगल महापुराण भी गिरा था 'चाउ इराय पुराण' के नाम म प्रसिद्ध है। उमने प्रारम्भ म तीथवर की स्तुति की म है कहन की जरूरत नहीं कि वह भक्तिपरक पद्य है।

रन (६६३) भी बंगलूरु का एक 'रन' बवि है। वह मुघोल में पना हुआ दण्डि जावर अवलोकनगोन म 'नाशन कर' चाउ इराय के प्रारम्भ म आवर रहन लगा। उमा गोमटेश्वर की पूजा की छोर 'प्रतिपुराण' तथा 'ग्राह्य भीम विजय धर्मान' गानुद्ध नामक रचना की रचना की। उमने सगल 'प्रतिपुराण' म 'प्रति तीथवर' का चरित लिया छोर 'नाम' 'गानि' ज्ञान बराय का पावन विषय कर' अपनी अद्भुत काव्यरचना प्रसिद्धा किया है।

नागबन्धु (प्रतिभय पद—११) अपने दुन का सायाय था। 'रन' बवि था। उमना ६१ प्रथा रचनाएं हैं—(१) 'मनिताय पुराण' (२) 'गामन' 'रक्ति पुराण'। ६१ दोना म दक्षिण तजगू छोर बीररल की धर्पणा भक्ति बराय का विषय हा अधि है। 'पटाउ पर के' 'भ' 'नाथ' म 'जिन' 'गुति' म 'अभिनय' पद म जा 'जिन' 'गुति' की है उम उमना सामगार ही है। कहलर था 'ए' 'भी' 'र' 'नाथ' ने 'अभिनय' वर की मुणवागा की है।

दो-तीन भक्ति पद का नमूना देखिए—

जय जितरजिन जितेश्वर
दयानदी पतिन राजहूत भवानी
विष तद्विषयेषदितेय
मदमिनेव प्रयागवायदिनहू।

जिनग रसभीह धातये
जिन र मनमा रसिगुविषोत्तमवप
हनुमिषु मिषर रसम
कनसिनोत्त मेनेयनु साहेनगहू।

नित्य मुक्तमाम क
रिय मुक्त कोहृपमेव विषक
सत्य वरुप यदरोल
मयतानमव विमयमबेनहू।





भाषार्थ—हे अर्हत, तुम दुःखों को जीतने वाले जिनेश्वर हो, तुम्हारी जय हो । दयानदी-पुतिन-राजहम, मुझे सीध से सीध उस भवनागर के किनारे लगाओ ।

हे अर्हत, एक गान्तरम ही तुमको अभीष्ट है । मेरा मन आतरम स्त्री अश्रुति में ही अवगाहन करे । उस रम को छोड़ कर दूसरे रम का स्मरण स्वप्न में भी मुझे न हो, ऐसी कृपा करो ।

हे अर्हत, नित्य सुख आत्मरूप है । अनित्य सुख मोहरूप है, यह विवेक ठीक है, पर, तुम्हारी कृपा हो कि उनमें भी मत्परस्पर के अनुभव का विभव ही मुझे प्राप्य हो ।

अलावा इनके 'रामचन्द्रचरित्र पुराण' राम की जिनम्नुति और जनक की जिनम्नुति में भक्तिरस का सुन्दर चित्रण मिलता है ।

एक कति अश्रुति जैन मत्प्राप्ति अभिनन्दन पद के समय में थी । उनके और अभिनन्दन पद के बीच में जो मवाद हुआ है उसमें समस्यापूर्ति की बातें हैं । अभिनन्दन पद कति की एक समस्या देकर उनकी पूर्ति करने के लिए कहता है । कति पद्य में समस्यापूर्ति करती है । उसके समस्यापूर्ति के पद्यों में भक्ति की पावन स्मृति है । कति कवि का सुनाती है—

धनमतिप्रियनूदय दोल

धिनयदि फलपृथ्वेरति भक्तिय भरदि ।

मनश्रुद्विषेदु परम जि—

ननिगे नमस्कार माटे कैवल्य सुख ॥

भाषार्थ—नडके उठकर धिनय में फल-पुष्प महित, भक्ति में, शुद्ध मन में जिन की नमस्कार करने में कैवल्य सुख मिलता है ।

कति के ऐसे पद काफी मिलते हैं जिनमें भक्तिरस के पावन करने का मजबूत नाद सुनाई पड़ता है ।

अमल (११८६) के 'चन्द्रप्रभपुराण' और 'वर्धमानपुराण' में पाद्वं पङ्क्ति (१२०५) के 'पार्वन्नाथपुराण' में, जन्म (१२०६) के 'अनन्ताथपुराण' में जिन भक्ति के सुन्दर पद मिलते हैं ।

जिनभक्ति परंपरा का गीत अंशगत के प्रभाव से कुछ क्षीण होने पर भी सूझा नहीं । पन्द्रहवीं सदी के प्रारम्भ में भास्कर नामक कवि ने मूल मन्त्र 'जीवधर चरित' के आधार पर कन्नड में जीवधरचरित लिखा है । उसने अपने 'जीवधरचरित' में कुछ परिवर्तन किये हैं और उभर कर दिखाई पड़ने लगे परिवर्तन में ऐसे जिनम्नुतिपद पद्य मिलते हैं कि उनमें उपनिषद और भक्तिमार्ग के निचार और विशेषण पाये जाते हैं । उदाहरणार्थ—'भक्तवत्सल लयविहीन महेश भायातीत', 'नवंगत नवंग नवभजन नवमय सर्वलोकेश्वर सर्वभूतात्मक', एव 'दोष रहितनु नीने, कृपावाप्त नीने, महेश नीने, सुरेशनु नीनेदु नन्नुतिमिदनु निनपतिय' अर्थात् 'तुम ही दोषरहित हो, तुम ही कृपावान हो, तुम ही महेश हो, तुम ही सुरेश से न्युति हो, कहकर जिनपति की अच्छी तरह ने न्युति की।' इन पतियों का उद्धरण करके डा० मुगली जी कहते हैं कि भास्कर कवि पर भागवत तत्त्वज्ञान और उपनिषद् का प्रभाव पड़ा होगा ।

चन्द्रम (१६४६) कवि के मार्कल के 'गोम्मटेश्वर चरित्र' में गोम्मटेश्वर के सुन्दर स्तुतिपद्य मिलते हैं जिनमें भक्ति का उज्ज्वल पुट है । एक दो नमूने लीजिये

आदि जिनेशन सुकुमारगणनो, ल् कादि नेलिद वलु धोर ।

मेदिनो जनके मदार नमस्तु कायो, आदरदि गुन्देश ॥

+

+

+

यत्त ईशरिय नीनगलनेबुद्ध सो तुतिरे दिव्य देह ।

बलिह गुम्फट रथामि नि तय पाद पद्मपद्मपरगुप्त ।।

भाषाय धार्मि जिनका क मुद्रमार बद्ध नाई । समान उद्ध करन विनया यन बद्ध धीर गुप्त रूप भूमण्डल के लोग के लिए मन्दर स्वरूप योगेश्वर हमारी रक्षा करे ।

गुम्हाग नि अगरीर क रह्य है कि मय मय म गुप्त बद्ध हो । उपाय गुम्फट रथामि गुम्फटे पाद पद्मपाद यो में भगम्मार करेगा ।

कर्म क अन विनया के साक्षिय म निमग्नित कर्मग विगुप्त गुप्त रह्य है । म क ना म कर्म मर चरी आ रही है । इनका प्रत्यक्ष अनुभव तक जाय कर बाई । यथावतान धीर कर्मग जाय मयम्मार की गुता मरी शान जागोम यो करेगा ।

कर्म क ना कर्मग म हा नहीं किन्तु ना विनया म भी निमग्नित के कर्मग पाद जने हैं । जा हो बद्ध ऐसे भी विनया हैं जो बद्ध मयमने हैं कि जगम म भविष्य क विन गुता ग ही नहीं है । कर्मग क कर्म क अन कर्मग क साक्षिय का धीर विनया का गुप्त कर्मग मर करेगा । उपाय निमग्नित की करन पादन गया बहरी मर कर आयगी ।

प्रधान सदभ प्रय

- १ कर्मग मयमनय साक्षिय धार्मिक
- २ कर्म कर्मग (गुप्त २)
- ३ कर्म साक्षिय धार्मिक
- ४ नी कर्मग
- ५ कर्मग कर्मग
- ६ कर्मग कर्मग

- १ कर्मग मय मय विनया धार्मिक ।
- २ कर्मग मय मय मय मय ।
- ३ कर्मग मय मय मय मय
- ४ कर्मग मय मय मय मय
- ५ कर्मग मय मय मय मय
- ६ कर्मग मय मय मय मय



मध्यकालीन जैन हिन्दी काव्य में शान्त भक्ति

डा० प्रेमसागर जैन,
एम० ए०, पी०एच० डी०



पहले के आचार्यों ने 'शान्ति' को साहित्य में अनिवर्चनीय आनन्द का विधायक नहीं माना था, किन्तु पण्डितराज के अकाध्य तर्कों ने उसे भी रस के पद पर प्रतिष्ठित किया। तब से अभी तक उनकी गणना रसों में होती चली आ रही है। उसे मिलाकर नौ रस माने जाते हैं। जैन आचार्यों ने भी इन्हीं नौ रसों को स्वीकार किया है किन्तु उन्होंने 'शृङ्गार' के स्थान पर 'शान्त' को रमराज माना है। उनका कथन है कि अनिवर्चनीय आनन्द की मच्ची अनुभूति, राग-द्वेष नामक मनोविकार का उपशम हो जाने पर ही होती है। राग-द्वेष में सम्यग्चिन्तन अन्य आठ रसों के स्थायी भावों से उत्पन्न हुए आनन्द में वह गहरापन नहीं होता, जो 'शान्त' में पाया जाता है। स्थायी आनन्द की दृष्टि में तो शान्त ही एकमात्र रस है। कवि बनारसीदास ने 'नवमो शान्त रसनि की नायक' माना है। उन्होंने तो आठ रसों का अन्तर्भाव भी 'शान्तरस' में ही किया है। डॉ० भगवानदास ने भी अपने 'रसमीमांसा' नाम के निबन्ध में अनेकानेक मस्कृत उदाहरणों के साथ, 'शान्त' को रमराज सिद्ध किया है।

जहाँ तक भक्ति का सम्बन्ध है, जैन और अर्जुन सभी ने 'शान्त' को ही प्रधानता दी है। यदि शाण्डिल्य के मतानुसार 'परानुरक्तिरीश्वर' ही भक्ति है, तो यह भी ठीक है कि ईश्वर में 'परानुरक्ति' तभी हो सकती है, जब 'अपर' की अनुरक्ति ममाप्त हो। अर्थात् जीव की मन प्रवृत्ति सनाग के अन्य पदार्थों में अनुराग-हीन होकर, ईश्वर में अनुराग करने लगे, तभी वह भक्ति है, अन्यथा नहीं। और ससार को अमार, अनित्य तथा दुःखमय मानकर मन का आत्मा अथवा परमात्मा में केन्द्रित हो जाना ही शान्ति है। इस भाँति ईश्वर में 'परानुभक्ति' का अर्थ भी शान्ति ही हुआ। स्वामी सनातनदेव जी ने अपने 'भावभक्ति की भूमिकाएँ' नामक निबन्ध में लिखा है, "भगवदनुराग बटने में अन्य वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति मन में वैराग्य हो जाना भी स्वाभाविक ही है। 'भक्ति-शास्त्र' में भगवत्प्रेम की इस प्रारम्भिक

- १ "प्रथम सिंगार वीर द्विती रस, तीजरी रस करुना सुखदायक ।
हास्य चतुर्थ रुद्र रस पचम, छटुम रस वीभच्छ विभायक ॥
सप्तम भय अटुम रस अद्भुत, नवमो शान्त रसनि की नायक ।
ए नव रस एई नव नाटक, जो जहँ मगन सोई तिहि लायक ॥"

—बनारसीदास । नाटकसमयसार, प० दुद्धिलाल श्रावक की टीका सहित, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई,
१०१३३, पृ ३६१।



जैनाचार्यों ने भी अन्य साहित्य-शास्त्रियों की भाँति ही 'शम' को शान्तरत्न का स्थायीभाव माना है। भगवज्जिनसेना ने 'अलंकारचिन्तामणि' में 'शम' को विषय करते हुए लिखा है—“विगमत्वादिना निर्विकारमनस्त्व शम” अर्थात् विगति आदि के द्वारा मन का निर्विकार होना शम है।^१ यद्यपि आचार्य मम्मट ने 'निर्वेद' को 'शान्तरत्न' का स्थायीभाव माना है, किन्तु उन्होंने 'तत्त्वज्ञानजन्यनिर्वेदस्य शमस्त्वत्वात्' लिखकर 'निर्वेद' को शम रूप ही स्वीकार किया है।^२ आचार्य विश्वनाथ ने 'शम' और 'निर्वेद' में भिन्नता मानी है और उन्होंने पहले की स्थायीभाव में तथा दूसरे की संचारीभाव में गणना की है।^३ जैनाचार्यों ने वैराग्योत्पत्ति के दो कारण माने हैं—तत्त्वज्ञान, इष्टवियोग-अनिष्ट संयोग। इसमें पहले में उत्पन्न हुआ वैराग्य स्थायीभाव है और दूसरा संचारी। इस भाँति उनका अभिमत भी आचार्य मम्मट में ही मिलवा-जुलता है। इसके साथ-साथ उन्होंने मम्मट तथा विश्वनाथ की भाँति ही अनित्य जगत को आलम्बन, जैनमन्दिर, जैन तीर्थक्षेत्र, जैनमूर्ति और जैनमायु को उद्दीप्त, धृत्वादिकों को संचारी तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह के अभाव अर्थात् 'सर्वममत्त्व' को अनुभाव माना है।

शान्ति का अर्थ है निराकुलता। आकुलता राग में उत्पन्न होती है। रत होना राग है। इसी को आमक्ति कहते हैं। आसक्ति ही अशान्ति का मूल कारण है। सामारिक द्रव्यों का अर्जन और उपभोग बुरा नहीं है, किन्तु उसमें आसक्ति होना ही दुःखदायी है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि जैसे अरतिभाव में पी गई मदिरा नशा उत्पन्न नहीं करती, वैसे ही अनासक्त भाव में द्रव्यों का उपभोग कर्मों का बन्ध नहीं करता।^४ कर्मों का बन्ध अशान्ति ही है। आचार्य पूज्यपाद का कथन है कि यह बन्ध जिनेन्द्र के चरणों की स्तुति में स्वतः उपशान्त हो जाता है, जैसे कि मन्त्रों के उच्चारण में सर्प का दुर्जय विष शान्त हो जाता है।^५ जैसे ग्रीष्म के प्रखर सूर्य में सतप्त हुए जीव को जल और छाया से शान्ति मिलती है, वैसे ही समार के दुःखों से वैचैन प्राणी भगवान के चरण-रुमलों में शान्ति पाना है।^६ मुनि शोभन शास्वत

१. भगवज्जिनसेनाचार्य, अलंकारचिन्तामणि, तीसरा अध्याय।

२. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ १६४।

३. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, लखनऊ, ३।२४५-२४६, पृ० १६६।

४. जह मज्ज पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो।

दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्जदि तहेव ॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, श्री पाटणी दि० जैन ग्रन्थमाला, मारोठ, मारवाड, १६५३ ई०, १६६वें गायक, पृ २६६।

५. श्रुद्धाशीविषदष्टदुर्जयविषज्वालावली विक्रमो,

विद्याभेषजमत्रतोयहवनंर्याति प्रशान्ति यथा।

तद्वत्ते चरणाभ्युज्युगस्तोत्रोन्मुक्ताना नृणाम्,

विघ्ना कायविनाशकाश्च सहसा वामन्त्यहो विस्मय ॥

—आचार्य पूज्यपाद, संस्कृत शान्तिभक्ति, 'दशभक्ति', शोलापुर, १६२१ ई०, दूसरा श्लोक, पृ ३३५।

६. न स्नेहाच्छरण प्रयान्ति भगवन्पादद्वय ते प्रजा,

हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचय ससारघोरार्णव।

अत्यन्त स्फुरदुगरदिमनिकरव्याकीर्णभूमण्डलो,

ग्रैष्म कारयतीन्दुपादसलिलच्छायापुराण रवि ॥

—आचार्य पूज्यपाद, संस्कृत शान्तिभक्ति, दशभक्त्यादिसंग्रह, सलाल, सावरकाठा, गुजरात, पहला श्लोक, पृ १७४।

गान्ति चाहते हैं। उनका विश्वास है कि भगवान की वाणी का ध्वज बन मात्र में वह उपलब्ध हो सकती है।^१ आचार्य गोमटेव निम्न-मुक्त रूप से वाणी गान्ति चाहते हैं। वही भवभूतियों धर्म पर ध्यातु का वषा कर सकती है। वह गान्ति भगवान गान्तिनाथ प्राप्त कर सकते हैं।

भवतु गान्तागान्तिपदमिदं त्वयज्जितजनगान्ति ।
निवर्तमानि गान्ति गान्तिकर इति जिन गान्ति ॥^२

जैन ग्रंथों में अनेक भगवाचरण ग्रंथ गान्ति की याचना में ही समाप्त होत हैं। गान्ति भा वचन ध्वज निर नही सध आचार्य माधु धर्मवचन धीर गान्ति का निर भी। आचार्य पूज्यगान्ति का—

समुज्ज्वलती प्रणिपालकाया अतीवसामायतनोपनानाम ।
देवस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञे चरोतु गान्ति भगवान् जिते ॥

गनी का ध्यान है। व श्री मेधावा व धर्मग्रन्थवाचकाचार का भगवाचरण भी समाप्त है। उन्नि भी राजा प्रजा धीर मुनि सभी का निर गान्ति चाहती है।

गान्ति का प्रकार भी हीनो है—‘गान्ति धीर क्षणिक’। पन्ना का सम्बन्ध मात्र है धीर दूमरी का भीति समार म। भवजन धीर का निर याचना वरन रह है। जिन की धनुष्या से उह पाना की प्राप्ति भा हुई है। इस गान्ति का जन मन्त्रा का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। जना का प्राचीन मन्त्र जमाकार मन्त्र है। इस वच परमदा का नमस्कार किया गया है। पूरा मन्त्र है—गमा धरिहृन्नाय गमा सिद्धाय गमा धारियाय गमा उवभायाय गमा नाए सन साहूय। मन्त्रा ध्य है—धनुषा की नमस्कार हो निद्रो व। नमस्कार हो आचार्यों की नमस्कार हो उपाध्याया की नमस्कार हो धीर जोर व। गवमाधुया का नमस्कार हो। जन आचार्यों का मन्त्र म धनुषगान्ति स्वीकार की है। आचार्य धनुषगान्ति का विवरण है—

‘धरहा सिद्धायिया उवभाया साहूय धनुषमेधु ।
एते वच जयोपारा भवे भवे मम मुद्र दिनु ॥’

१ गान्ति चतुर्गुणमिधोऽनुगमनाद्यन्ममसाध नय
इति भ जन हेतुना उतिमरोदीर्घागन्ता कृतम् ।
तत्पुण्यजननी जिन प्रवचन ध्वजमुखाद्यायो
इति भ जनहेतुना उतिमरो दीर्घाया आलङ्कृतम् ॥

—मुनि गोमन चतुर्विंशतिनरुनि धार्यमाला सप्तम गुच्छ निगणसार प्रत अष्टम तीसरा गीत वृ १३३।

२ K K Handique Yasasthax and Indian Culture Sholapur, 1949 P 311

३ धर्मगान्तिपदम् १५वां धर्मो वृ १८१।

४ गान्ति इति जिनगान्तिरयं मुनिना गान्तिन वाणी सदा
मुप्रजालतयोमरभता गान्तिमनीना सदा ।
धोनुना चरिताहता प्रवचनस्यान्यादृशाना पुन
गान्ति गान्तिरपानिनीयामुय धी सज्जनमापि य ॥

—पण्डित भी मेधावी धर्मसंग्रहभाष्यवाचर अतिथि प्रार्थन प्रगात सदा जयपुर १९५० ई० ३२वां गीत वृ २४।

५ धनुषगान्ति धनुषगान्ति गीतापुर १९२१ ई० ७वां गीत वृ ३५८।



अर्थात् अहंन्त, मिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और नाथु के लिए लिए गए नमस्कार मुझे भव-भव में सुख दें। आचार्य पूज्यपाद का कथन है कि यह 'पञ्चमन्त्र' मन्त्र स्व पापों को नष्ट करने वाला है और जीवों का कल्याण करने में नवमे ऊपर है।^१ मुनि वादिगज ने 'एकीभाव स्तोत्र' में लिखा है, "जब पापाचारी कृता भी गमोकार मन्त्र को सुनकर देव हो गया, तब यह निश्चित है कि उस मन्त्र का जाप करने में यह जीव उन्हीं की लक्ष्मी को पा सकता है।" श्री जिनप्रभसूरि ने 'विविधतीर्थकल्प' के 'पञ्चपरमेष्ठिनमन्त्रा कल्प' में स्वीकार किया है, "इस मन्त्र की आराधना करने वाले योगीजन, त्रिलोक के उत्तम पद को प्राप्त कर लेते हैं। यही नहीं, जित्नु नन्हो पापों का नष्टादन करने वाले और सैकड़ों जन्तुओं की हत्या करने वाले तिर्यञ्च भी इस मन्त्र की भक्ति में स्वर्ग में पहुँच जाते हैं।" जैनाचार्यों ने 'गमोकार मन्त्र' की शक्ति को देवता जहा है। उनमें आध्यात्मिक, आधिर्भौतिक और आधिदैविक तीनों ही प्रकार की शक्तियाँ निहित हैं। वह मोहके दुर्गमन को गोकने में पूर्ण रूप में नमर्च है।^२ जैन परम्परा में यह मन्त्र अनादि निरान माना जाता है। वैम भगवान ने अपने गणधरो को उनकी विद्या प्रदान की थी।^३ विद्यानुवाद नाम के पूर्व का प्रारम्भ गमोकार मन्त्र ने ही हुआ था। विद्यानुवाद मन्त्र-विद्या का अपूर्व ग्रन्थ था।^४ श्री मोहनलाल नगवानदान भवेरी ने जैनमन्त्र शान्त्र का प्रारम्भ ईसा में ८४० वर्ष पूर्व, अर्थात् तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय में स्वीकार किया है।^५ हो सकता है कि पार्श्वनाथ के समय में भी '१४ पूर्व', 'पहले में आठ हई विद्या' के रूप में प्रतिष्ठित रहे हों। उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री के आधार पर 'गमोकार मन्त्र' का प्राचीनतम उल्लेख हाथी गुफा के शिलालेख में प्राप्त होता है, जिसके निर्माता मन्नाद् गार्गवेन ईसा में १३० वर्ष पूर्व हुए हैं।^६

१. एष पञ्चमन्त्रकार सर्वपापप्रणाशन ।

मंगलाना च सर्वेषां प्रथमं मंगलं भवेत् ॥

—देगिए चही, मातवा श्लोक, पृ० ३५३

२. प्रायद्देव तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टं पापाचारी मरणममये सारमेयोऽपि सौख्यं ।

क सदेहो यदुपलभत वात्सवश्री प्रभुत्वं जलपञ्चाप्यर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारं चरु ॥

—एकीभावस्तोत्र, काव्यमाना, सप्तमं गुच्छक, निर्णयसागर प्रेम वम्बई, १०वां श्लोक, पृ० १६ ।

३. एनमेव महामन्त्रं समाराध्यैह योगिनः ।

त्रिलोकयाऽपि महीयन्तेऽविगता परमं पदम् ।

छत्वा पापमहत्त्राणि हत्वा जन्तुशतानि च

अमुं मन्त्रं समाराध्य तिर्यञ्चोऽपि दिव गता ॥

—जिनप्रभसूरि, पंचपरमेष्ठिन नमस्कार कल्प, विविधतीर्थकल्प, मुनि जिनविजय सम्पादित, शान्ति-निकेतन,

१६३४ ई०, प्रथम भाग, ५-६ श्लोक, पृ० १०८ ।

४. स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहन ।

पायात्पञ्चनमास्त्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥

—धर्मध्यानदीपक, कलकत्ता, ३ श्लोक, पृ० २ ।

५. The original doctrine was contained in the fourteen Purvas—old texts, which Mahavira himself has taught to his Ganadharas."

'Life in ancient India as depicted in Jain Conons', Dr J. C Jain, New Book Company Ltd, Bombay, 1947, P 32

६. कहा जाता है मुनि सुकुमारसेन (७वीं शताब्दी ईस्वी) के विद्यानुशासन में विद्यानुवाद की विहारी सामग्री का संकलन हुआ है। विद्यानुशासन की हस्तलिखित प्रति जयपुर और अजमेर के शास्त्रमण्डलों में मौजूद है।

७. Dr A S Altekar, 'Mantra Shastra and Jainism' Jain Cultural Research Society Banaras Hindu University, Banaras, P 9

८. V A. Smith, Early History of India, Oxford, 1908, P 38, No 1

‘‘गान्धि का प्राधान्य बढते गयामान मात्र हा नहीं है। अथ घनत्र मात्र भा है। यत्र सर्वत्र उत्तम सम्भव नही है। व एक पुष्प निवय का रिपय है। मात्र-सोत्र म यत्र। की भा गणना ह्योती है। उनम एव ‘‘गान्धि यत्र भी है। गान्धि म इसकी स्थापना की जाती है और उसकी पूजा कथा ह्योती है। मन्त्राधिपत्र कल्प नाम व श्रम म ‘‘गान्धियत्र का पूजा की हुई है। ‘‘मन्त्र यथयिता सागवन्मन्त्रिय व। उनका समय १३वीं गताी माना जाता है। उहाने एक स्थान पर ‘‘गान्धि यत्र की सत्ता वे मन्त्रय म निता है। ‘‘मन्त्रयनितुरितभ्रमि दमययिमन्त्रान्ति मन्त्रमयी। पुष्पाति भाग्यनियय मुष्पाति व्यापिमन्त्राधाम् ॥ ‘‘ तापय है—‘‘गान्धियत्र की पूजा स राग पाप गुत्र और व्यापिपा उपगान्ति हो जाती है और मोभाय का उत्र होला है। गान्धि व निर ‘‘गान्धिया भी रिप जात है। व मात्र मन्त्रि होन हैं। घनत्र निर विधिवन उनका पाठ हला है। मात्र भी उनका प्रचवन है। प्रनि यथ घनत्र स्थाना पर उनक पाठ का प्राधान्य दिया जाता है। इन मात्र-यत्रा म ऋषीविक गान्धि वो घमाप घान्ति मानी ग है। त्रिन्नु उनका मुन्य उत्रय पात्रोक्ति प्रावन घान्ति ही है। उनका मूनस्वर ‘‘प्राप्यामित्र है ‘‘भीतिव नही। यही कारण है नि उनम बयथायी तात्रिक सत्रन्त्रय की भाति व्यभिचार मन्त्रि और माय वात्री वाच नही पनप सवी। जद दविषा मन्त्र की शक्ति-प्रा था। उत्र मात्र व बल पर ही माधा जा सता है। त्रिन्नु मेगा बभी नही हुषा नि उन मात्रा व भाप नोबबुतापन कथाप्रा व घानवन की बात बनो हा। ऐगा भी नहा हुषा नि ‘‘भापन की घमावन की राग म एक नो मोनह कुशारी मुन्त्री कथाप्रा की बनि स व यनिन्त्रिन्त्र का प्रमल हुई हा। व बराला यो त्रिन्नु उनको बरालता व्यभिचार या मन्त्रि-माय स तृप्त नही होनी थी। मन्त्रयो का प्रमन्त्र ही उहें गन्तुय बना सता था। इसी भाति उन साधु मन्त्र विद्या व पारगन विन्नु हावे वे त्रिन्नु उन्को राग-बद व पन्थो म उनका बभी उपपाय नही दिया। ज सथ गामार्ति बयव क देने म मायम्यवान होन हुष भी बीनरागी बने रहे। बालरागता ही गान्ति है। उनका जगा गान्त्रि समयन जन मात्र वर गव सत्र नही।

[illegible]

१ श्री ध्यागणेशमूर्ति, भद्राधिराजश्च जनस्तोत्रगदोह भाग २ मुनिचतुर्विधस्य सम्पादित अहमदाबाद सन १९३६
३३वीं श्लोक पृ २७७।

२ पादाप्रतिष्ठतया मुक्तं स्वनभरणानीतया नष्टनां
 दास्यो हापुहलोचनप्रययथ यात्या तदाशयने ।

ह्रीमत्पद्मं गिरसीहिनं सप्तसहस्रवेदोदगमोत्सवम्पद्मं
विनिगम्य बुधुमाञ्जलिगिरिजया तिष्ठोन्तरे पातु ॥





है, "इत्रवि भगवान् के मंगलाचरण भी वामना के केनरे में लींचि जा रहे थे नमीध्वर और गजुल में मम्भग्नि मागनिक पद दिव्यानुभूतियों के प्रतीक बन ही रहे। उन्होंने अपनी पावनता का परिचायक अभी नहीं किया।" जित-पदमसुरि के 'धुनिमहफागु' में जोगा के मादक मौल्य और कामुक विनाम चेट्टाओं का चित्र नीचा गया है। युवा मुनि स्युमद्र के मयम को टिगाने के लिए मुन्दरी जोगा ने अपने विनाम-मवन में अधिग्रहीत प्रदान किया, किन्तु वृत्तव्य न हुई। रवि जो जोगा की मादकता निम्न रगना अभीष्ट था, उन उसके रति-रूप और कामुक भावों का अवन ठीक ही हुआ। तप की हटना अभी है, जब वह उत्तम में उत्तम मौल्य के आगे भी दृढ़ बना रहे। जोगा जग-न्याना नहीं, बेग्या थी। बेग्या भी ऐसी वैसी नहीं, पाटनियुव की प्रसिद्ध बेग्या। यदि जितपदमसुरि उनके मौल्य को उन्मुक्त भाव में प्रतिबन्धन न करने तो अस्याभाविता रह जाती। उन्में एक मुनि का मयम मुहट प्रमाणित हुआ। इसमें उही अशीलता नहीं है। मच तो यह है कि दाम्पत्य रति के स्वरूप को स्पष्ट ही रहना चाहिए था, किन्तु जब उसमें स्वस्त्व तो रहा नहीं, रति ही प्रमुख हो गई तो फिर अशीलता का उभरना भी ठीक ही था। जैन कवि और काव्य इसमें बचे रहे। इसी कारण उनकी शालिसरचना भी बची रही।

हिन्दी के जैन भक्त कवियों ने मन्थन-प्राप्तन की शालिवाग का अनुगमन किया। बनारसीदास ने तो 'नाटक मम्भगार' में 'नवमो मान रमति जो नापक' स्पष्ट रूप में स्वीकार किया। उनकी रचनायें उनकी प्रतीक हैं आगे के कवि उनमें प्रभावित हैं। हिन्दी के जैन भक्त कवियों का मन्थ, यन्त्र और शालिपाठों की रचना में मन न लगा। इनमें मम्भग्नि हिन्दी काव्य मन्थन-प्राप्तन ग्रन्थों के अनुवाद-भर हैं। देवी पदमावनी, अम्बिका आदि मन्थविष्ठा की देवियों की स्तुति भी पूर्व काव्यों की छाया ही है। इनका मन लगा समार की आकृति और गगन-द्वेषों के चित्राकृत में। उन्होंने पुन-पुन मन को वीतरगता की ओर आर्षण किया। उस दिशा में उनका पद-काव्य अनुपम है। मानव की मूलवृत्तियों के समन्वय ने उसे भावभीता बना दिया है। वे साहित्यिक छनिया हैं। उनमें उपदेश की रचना तो शिथिलमात्र भी नहीं है। कोई भी बात, चाहे उपदेश-भर ही क्यों न हो, भावों के माँचों में हम कर साहित्य बन जाती है। जैन हिन्दी के प्रबन्ध और नाट्य काव्यों का भी मूल स्वर शान्तरम ही है। अन्य रम भी है, किन्तु उन्का समाधान शान्तरम में ही हुआ है। ऐसा करने में उही भी सीखना नहीं है, सब कुछ प्रागैकिक और स्वाभाविक है।

जैन हिन्दी के भक्ति-काव्यों में यदि एक ओर नानागिक गगन-द्वेषों में विरक्ति है, तो दूसरी ओर भगवान् ने चम शालि की याचना। उनको शालि तो चाहिए किन्तु अस्यायी नहीं। वे उस शान्ति के उपान्त हैं जो जनी नमान न हो। जब तक मन की दुविधा न मिटेगी, वह शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता। और यह दुविधा जितनाय निरञ्जन निर्विकार के मुमिन्न करने में ही दूर हो सकती है। कवि बनारसीदास अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहते हैं, "न-जाने अब हमारे नेत्र चानक अक्षय-पदरूपी घन की वृद्धे चंच नकेंगे, तभी उनको निराकुल शान्ति मिलेगी। और न-जाने वह घड़ी कब आयेगी जब हृदय में समताभाव जगेगा। हृदय के अन्दर जब तक सुगुन के वक्त्रों के प्रति दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न नहीं होगी, परमार्थ सुख नहीं मिल सकता। उसके लिए एक ऐसी शान्ति का उत्पन्न होना भी अनिवार्य है, जिसमें घर छोड़ कर वन में जाने का भाव उदित हुआ हो।"

कवि बनारसीदास ने 'शान्तरम' को आत्मिक रम कहा है। उसका आनन्द करने में परम आनन्द मिलता है। वह आनन्द कामधेनु, चित्रावलि और पञ्चामृत भोजन के समान समझना चाहिए।^१ इस आनन्द को मात्रात् करने

१. देखिए मेरा ग्रन्थ 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि', प्रथम अध्याय, पृ० ४।

२. 'धुनिमहफागु', प्राचीन गुर्जर ग्रन्थमाला ३, नं० २०११, पृ० ३-७ पर प्रकाशित हो चुका है।

३. बनारसीदत्तास, जयपुर, १९५४, अध्यात्मपदपरिचि, १३वां पद, पृ० १३१-३२।

४. अनुभो को केनि यहँ कानधेनु चित्रावेलि,

अनुभो को स्वाद पंच अमृत को वीर है ॥

—बनारसीदास, नाटकसम्प्रसार, बम्बई, उत्पानिका, १९वां पद्य, पृ० १७-१८।

बाला चेतन त्रिगुण धर्म में विराजता है उम त्रिनाराज का बनागुणानाम न बनना को है ।^१

यन् जीव सगार क बीच में जटवता विराज है विन्तु उम गान्ति नहा मिनता । वह धरने छपटाया दाया म प्रपाहित है और आधुनाता उम गनानी हा रहता है । भया भगवतीनाम का बचन है ह जाय । इम सगार क प्रमत्त को नि सागर का पार भी नू प्याया हो है और दम सगार क दोषा म त्रिनता धन भरा है उमको सागर भी नू भूया हो है । यह सब कुछ छटाया दाया क कारण है । क तभा जीन जा सकने है जब तू भगवान त्रिनद्र का ध्यान करे और उमी पथ का अनुसरण करे जिस पर ये स्वय चने थ ।^२ भया की हृष्टि म छपटाया दोष हो भगान्ति के कारण^३ और ये भगवान त्रिन क ध्यान म जीन जा सकने है । तभा यह जीव उम गान्ति का अनुभव करण जो भगवान त्रिन म सागात हो हो उठी था । भया का स्पष्ट अभिमत है कि राग-द्वेष क कारण ही यन् जीव धन परमात्मा स्वल्प क गान का आनन्द नहीं न पाता । अर्थात् वह विगान्ति क मुक्त से दूर हो रहता । राग-द्वेष का मुक्त कारण है माह इगतिग माह क विद्या मे राग-द्वेष स्वय मष्ट हो जायेंगे और राग-द्वेष क टनन म मोह का मलिनित्व भी न र पावया । कम को उपाधि को मयाप्त करने का भी यही एक उपाय है । जन्म क उपाय पावन स मना कृण कम टनन मचना है ? और किन ता उमन दाव-पात पद पूर भी बुझता जायेंगे । तभी विगान्ति का प्रमाण हांग और यन् जीव सिद्धावस्था म अदन्त मुक्त विनन मरगा ।

श्रोत्र के निघारे राग-द्वेष ह निघारे जाहि
राग-द्वेष टारें मोह मेकहू न पाइए ।
कम को उपाधि के निघारिने को पेंच यह
जह के उत्तार बस बसे टहराइए ।
बार-बार का कूल सब बुझसम जाय
कमन क बलन को ऐस क नसाए ।
तब होय बिदावद प्रगट प्रमाण एव
विनत अनत मुक्त गिह में बहाए ॥^४

अनन्त मुक्त हा परम गान्ति है । भया न एक गुण-मय पन्म अन मन को गान्तिरत का मन कहा है । शान्ति की बात करने काय ही लानी है अथवा सब अज्ञान ही कन्म जायेंगे ।

भूषणमन्त्रा के स्वामी की गरण तो इगतिग शक्ती है कि क मनष और मन्मूष गान्ति प्रदायन गुणा स मुक्त है । भूषणदान को उपाय बहुत बन भरीगा है । उहाने मन्मन्त्रा शान्ति बरिया का जीन दिया है और मन्मन्त्र की

- १ राग-मद्वेष सदा जिहू क
प्रगटपी अवदात निष्पात निबद्धन ।
सावसा जिहू की पहिचानि
कर कर जोरि बनारसि पवन ॥

—बही छटा पद्य पृ ७

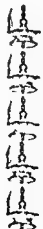
- २ भया भगवतीनाम ब्रह्मविगात अनप-बरलावर कायविज हम्बई १६-६ ई० दातप्रतोसरी १६वां कादिय
पृ २२ ।

- ३ ब्रह्मविगात निष्पातविम्वित म अनुगो चरि बरित पृ १२१

- ४ गान्तिरतबारे बही मत को निघारे रहे ।

म ई प्राणप्यारे रहे और सब वारे हैं ॥

—ब्रह्मविगात ई-वरनिगपकबीतो ६टा बरित पृ० २५३





देव में छुटकारा पा गये हैं। उनमें भूधरदास अजर और अमर बनने की प्रार्थना करते हैं। क्योंकि जब तक यह मनुष्य जन्म-मरण से छुटकारा नहीं पायेगा, शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। जैन परम्परा में देवों की अमर नहीं कहते। यहाँ अमरता का अर्थ है मुक्तदशा, जहाँ किसी प्रकार की आशुता नहीं होती। ऐसी शान्ति वह दे सकता है, जिसने स्वयं प्राप्त कर ली है। वे मगानी 'गाह्वि', जो बारम्बार जन्मते हैं, मरते हैं, और जो स्वयं भिगानी हैं, हमारे या द्राष्टव्य कैसे हो सकते हैं।^१

भगवान 'शान्तिजिनन्द', जो स्वयं शान्ति के प्रतीक हैं, महज में ही अपने भक्तों के भय-द्वन्द्वों को हर करने हैं। भूधरदास उन्हीं से ऐसा करने की याचना भी करते हैं। यह जीव सामाजिक ग्रन्थों के करने में तो बहुत ही उतावला रहता है, किन्तु भगवान के सुमर्न में नीरा हो जाता है। जैसे कम करता है, वैसे कम मिलने है। कम करता है अशान्ति और आशुलता के, किन्तु कम में शान्ति और निराशुलता चार्ता है, जो नि पूर्णतया अगम्य है। आरु बोधेगा, आम कैसे मिलेगा, नग हीरा नहीं हो सकता। जैसे यह जीव विषयों के बिना एत क्षण भी नहीं रह सकता, वैसे ही यदि प्रभु को निरन्तर जपे तो सामाजिक अशान्ति को पार कर निश्चय शान्ति पा सकता है।^१

शान्तभाव को स्पष्ट करने के लिए भूधरदास ने एक पृथक् ही रंग अपनाया है। वे सामाजिक वैभवों की क्षणिकता को दिखाकर और तज्जन्म बेचैनी को उद्घोषित कर पुष्ट हो जाते हैं और उसमें से शान्ति की ध्वनि, मगीन की झकार की तरह, में फूटती ही रहती है। धन और यौवन के मद में उन्मत्त जीवों को सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहा, "ए निपट गवार नर ! तुम्हें धमण्ड नहीं करना चाहिए। मनुष्य ही यह काया और माया झूठी है, अर्थात् क्षणिक है। यह सुहाग और यौवन कितने समय का है, और कितने दिन उस ममार में जीवित रहना है। हे नर ! तू शीघ्र ही चेत जा और विलम्ब छोड़ दे। क्षण-क्षण पर तेरे अध बटने जायगे, और तेरा पल-पल ऐसा भारी हो जायगा, जैसे भीगने पर काली कमरी।"^२ भूधरदास ने एक दूसरे पद में पविर्ननगीलता का सुन्दर दृश्य अतिन किया है। उन्होंने कहा, "उन समार में एक अजब तमाशा हो गता है। जिनका अस्तित्व-ज्ञान स्वप्न की भांति है, अर्थात् यह तमाशा स्वप्न की तरह शीघ्र ही समाप्त भी हो जायगा। एक के घर में मन की आशा के पूर्ण हो जाने से मगल-गीत होते हैं, और दूसरे घर में विनी के वियोग के कारण नैन निराशा में भर-भर कर रोते हैं। जो लोग तुरगो पर चढ़कर चलते थे, और खाना तथा मयमल पहनते थे, वही दूसरे क्षण नग होकर फिरने हैं, और उनको दिलासा देने वाला भी कोई दिखाई नहीं देता। प्रात ही जो गजतन पर बैठा हुआ प्रमन्न-वदन था, ठीक दोपहर के समय उसे ही उदास होकर वन में जानर निवास करना पडा। तन और धन अत्यधिक अग्निर हैं। जैसे पानी का बतारा। भूधरदासजी कहते हैं कि इनका जो गर्व करना है उनके जन्म को धिक्कार है।"^३ यह मनुष्य मूर्ख है, देखते हुए भी अन्धा बनता है। उसने भरे यौवन में पुत्र का वियोग देखा वैसे ही अपनी नागी को काल के मार्ग में जाते हुए निरखा और इसने उन पुण्यवानों को, जो मर्दव यान पर चढ़े ही दिखाई देते थे, रक होकर बिना पनही के मार्ग में पैदल चलते हुए देखा, फिर भी इसका धन और जीवन में राग नहीं घटा। भूधरदास का कथन है कि ऐसी भूने की अवेरी के राज-राग का कोई इलाज नहीं है।

१ भूधरदास, भूधरविलास, कलकत्ता, ५३वा पद, पृ० ३०।

२ भूधरविलास, ३४वा पद, पृष्ठ १६।

३ वही, २२वा पद, पृष्ठ १३।

४ वही, ११वा पद, पृष्ठ ७।

५ वही, ६वा पद, पृष्ठ ६।

देखी भर जोवन म पुन की वियोग छायो
तसैं ही निहारी निज नारी काल मग मे ।
जे जे पुण्यवान जीव दीसत हैं यान ही प
रक भए फिर तेऊ पनही न भग मे ॥
ऐसे प अभाये धन जोतव सौ घर राम
होय न विराम जान रहगो अलम में ।
आखिन बिभेकि धस सुते की अघेरी
कर ऐसे राखरोग को इजान बड़ा जग मे ॥

एक बड़पुरुष की हृष्टि पर गर्व है तन की छवि पर न पुनी है गति बर हा गई है और बगर भुक्त गई है ।
उमरी घरवानी भी ऊँच धुरी है और बड़ धर्मधिन रव होकर पनप म लग गया है । उसकी मार (गन्त) बाप रही
है और मुहूत लार बू रही है । उसका गव धन-उपाय पुरान हा गया है किन्तु हृष्टि म तप्या ने और भा नवीन रूप
धारण किया है । जब मनुष्य की मोन धानी है तो उनमें सगार म रच-पच व जा कुछ बिचा है सब कुछ महा ही
प । रह जाना है । भूषणमजो १ कहा है 'सीतामासी सुरग सुन्दर ग्या तो रगे हुए रच ऊच-ऊच मत्त मनग दास
और लराम गगनपुष्पी अट्टाविकाए और करा । की सम्पत्ति म भरे हुए बाप इन मन्त्रा यह नर धत्त म छोकर
चना जाना है । प्रासाद खडे कन्ध ही रह जाते हैं काम यग ही पड़े रहत है धन-सम्पत्ति भी यहा ही चली रहती है
और घर भी यहा ही घर रह जाते हैं ।

तेज सुरग सुरग भये रच मत्त भतग उत्तग खरे ही ।
दास लबास अयास अटा धन और करीरन कोन भरे ही ।
ऐसे बड़ तो कहा भयो हे नर छोदि क्ये उठि धत्त छरे ही ।
धाम खरे रहे काम परे रहे दास खरे रहे ठाम धरे ही ॥

श्री ध्यानदास न भी भगवान् जिनद्र का धानिप्रणयक ही माना है । वे उनकी धारण म 'सलिये
गय हैं नि' धानि उपनयन हा मनेगी । उन्होंने कहा 'हम ता नमिओ की गरण म जात हैं । क्यानि उन्हें छोड़व'
और कही हमारा मन भी ता नहीं उगता । व सवार के पाश की जलन की उपवास करने व निरुद्धाव व समान हैं ।
उनका विरु भी तारन-तगन है । धन कणी और च भी उनका ध्यान बरत हैं । उनको सुन मिनता है और दुग
दूर हो जाना है । यहा धान्य म करने वाली गानलना परम धानि ही है । धानि की ही मुग कहते हैं और यह

१ भूपरदास जनगतक कचकता ३५वीं पद पृष्ठ ११ ।

२ 'हृष्टि घटी पलनी तन की छवि बर अ गति सब गई है ।

कस रही परनी धरनी भक्ति एक भयो परिचय लई है ॥

बापत मार बहे मुख तार महामति लगनि छारि गर्व है ।

धग उपन पुराये धरे तिसना उर और नवीन भई है ॥

—जनगतक कसकता १८वीं संख्या पृष्ठ १२ ।

३ यही ३१ वा पद पृष्ठ ११ ।

४ 'अब हम नमि' की की गरण ।

और और न मन गगत है छाड़ि शम क गरण ॥१॥

सब न भवि प्रथ-दहन आदि विरव तावन-तरन ।

इद च पनिय ध्याव पाप मुन दुख हरन ॥२॥

—धानत-पद सप्रह वसकता पृष्ठा पर पृष्ठ १ ।





भगवान् नेमिताय के सेवकों को प्राप्त होती है। ज्ञानतगय की दृष्टि में भी गगन-द्वीप ही अज्ञानि है और उनके मिट जाने में ही 'जिवन मुन पावैगा' अर्थात् उपायों ज्ञानि मिलेगी। अरहन्त या गम्यण करने में राग-द्वेष विहीन हो जाने है, अतः उनका स्मरण ही सर्वोत्तम है। ज्ञानतगय भी अपने वाक्यों में मन को सम्बोधित करने हुए कहते हैं, हे वाक्ये मन ! अरहन्त का गम्यण कर । ग्याति, लाभ और पूजा को छोड़कर अपने अन्तर में प्रभु की ही सेवा । नृ-नर-भव प्राप्ति करने भी उसे व्यर्थ में ही सो रहा है और विषय-भोगों को प्राणा दे-देकर बना रहा है । प्राणों ने जाने पर है मनुष्य । वृ पछतावेगा । तेरी आयु क्षण-क्षण कम हो रही है । युवती के शरीर, धन, सुत, मित्र, परिजन, गज, तुरंग और नर में तेरा जो चाव है, वह छीक नहीं है । ये नागाग्नि पदार्थ स्वप्न की माया की भाँति हैं, और आग मीचने-मीचने समाप्त हो जाते हैं । अभी समय है, नू भावान् का ध्यान कर ते और भगवन्-गीत गा ले । और अधिक रहा तब रहा जाये फिर उपाय करने पर भी नय नहीं मनेगा ।"

गुरुनन्द्यान में निरत तीर्थंकर ज्ञानि के प्रतीक होते हैं। उनमें ने सभी प्रमाणों की वैचरिन्या निरत चुकी होती है। उन्हें जन्म में ही पूर्वमन्कार के रूप में वीतरागता मिलती है। उसी स्वर में वे पढ़ते, बढते, भोग-भोगते और दीक्षा लेते हैं। कभी विनामों में तेरते-उतारते, कभी गन्धों या मन्त्रावन करने और कभी शत्रुओं को पराजित करने, जित्नु वह स्वर नदैव पवन की भाँति प्राणों में गिरा रहता। अवनर प्राण ही वह उन्हें बन्धन पर ले छोड़ता। चित्तापे स्वतः पीछे नह जाती। वीतरागता गुरुनन्द्यान के रूप में पूरा उठती। नासिका के अग्र भाग पर टिकी दृष्टि 'चिन्ताभिनेष' को स्पष्ट कहती। वह एकाग्रता की बात कहती ही रहती। और फिर मुन पर आनन्द का अतवर्ग प्रकाश छिड़क उठता। अनुभव रत्न अपनी परमात्मता में प्रगट हो जाता। उसी क्षण में तीर्थंकर या मोन्दर्य अतीविरूप को जन्म देता, जिसे देव, मन्त्र, सूर्य और चन्द्र जैसे रूपमन्त्रों का सर्व विगन्ति हो बह जाता। यह नय है कि उन परमज्ञानि का अनुभव करते तीर्थंकर के दर्शन में 'अमुभ' नामधारी कोई कर्म टिक नहीं सकता था। फिर यदि उनके स्मरण में अनन्द वाजा बज उठता हो तो गलत क्या है। जगन्मन ने लिखा है—

"निरति मन मूर्ति कौनो राजें ।

तीर्थंकर यह ध्यान करत हैं, परमानम पद काजें ॥

नासा अग्र दृष्टि कौं धारें, मुन मुलनि मानी माजें ।

अनुभो रस मनन मानी, ऐना आसत मुद्ध विराजें ॥

श्रद्धभूत रूप अनूपम महिमा, तीन लोक में छाजें ।

जाकी छवि देखत इन्द्रादिक, चन्द्र सूर्य गण लाजें ॥

धरि अनुराग विनोक्त जाकी, अमुभ कर्म तजि भाजें ।

जो जगराम बन सुमरत तो, अनहद वाजा वाजें ॥"

१ अरहन्त सुमर मन वाक्ये ।

रयाति लाभ पूजा तजि भाई, मन्तर प्रभु लो लावरे ॥१॥

नर भव पाय अकारय लोवें, विषय-भोग जु बजावरे ।

प्राण गये पछित हैं मनुष्य, छिन-छिन छीज आवरे ॥२॥

युवती तन धन सुत मित परिजन, गज तुरंग रय चावरे ।

यह तत्तार सुपन की माया, आँख मीच दिखराव रे ॥३॥

ध्याय-आय रे अह है दाव रे, नाहीं भगल गाव रे ।

जानत बहुत कहा लो कहिये, फेर न कछु उपाय रे ॥४॥

—आनन्दपदसंग्रह, ७०वा पद, पृष्ठ २६-३० ।

२ पदसंग्रह स० ४८२, पत्र ७६, वपीचन्दजी का मन्दिर, जयपुर ।

ससार क दुःख म अस्त यह जीव गाति चाहता है। यन् गाति का अर्थ गान्तरि पाति न है। अर्थात् ब्रह्म और निधनता दोनों ही म उन्म पाति नही मिलती। अथवा यन् मार्गारि ब्रह्मवा स उत्पन्न मुख विनाम को गान्ति नन्म मानता। राग चान् गम्पति स सम्प्रिया हा या पुत्र-पौत्रान्ति स सन्ध दाहकारी हो जाता है। समयन चान् कमन्वाय क गद्दा पर पड लागे का भी धनना म तडफन दया गया है। दूसरी ओर मरीची ता नागिन जमी जन्गीनी होनी भी है। भूतरदास की यह पवित्र बहू न मुख मसार म सब जग देशों छान देन-कान म परे एक विरम्भन तथ्य है। इहलोकि क आनुलता म सतय यह जीव भयवान की गरण म पटुपता है और ज्ञा गाति मित्रनी है वन् मानो सुधाधार का बरमना ही है चिन्तामणिरत्न और नवनिधि का प्राप्ति करना ही है। उन्म गमा प्रवीक हाता है यन् घ्राग वाननर दया हुआ है। उमरी अभिलाषाय पूष हा जानी हैं। अभिलाषाया व पूष हात का अर्थ है कि सम्पत्ति राग और मन्ताप सन्त-मन्त व निष् उपाम हा जान है। फिर वह त्रिम मुख का अनुभव करना है वह कभी धाग नही होगा और उन्म अनुम्यून गाति भी कभी घन्ती-व्यदनी नही। वनि कुमुदचन् की यह विनयी गान्तरम को प्रताक है—

प्रभ पाय लागीं कर सेव पारी
तुम मुन सो धरज थी जिनराज हमारी।
घणी कष्ट करि देव जिनराज पाय्यो
हृद सत्र तसारेनो दुख बाय्यो।
जय श्री जिनराजनी रज दण्ड्यो
जब नोचना पुष सुधाधार बरह्यो ॥
सहया रतनचिन्ता मयनिधि पाई,
मानी धागण कल्पतर आजि धायो।
मनबासित दान जिनराज पायो
गयो रोग सताप मोहि सरव पायो ॥ १

समार की परिवर्तनायन बना क सवन म जन कवि अनुपम हैं। परिवर्तन-गिरता का अर्थ है—धगिवता जिन-वर्ता। समार का यन् स्वभाव है। अन् यदि यगी सयाग विन्नन पर वान् धानन्-मगर और विद्या हात पर हन सजन होता है ता वन् अगानी है। यन् नी जन्म मरण सम्पति गिरति मुख-दुर विरम्भहवर हैं। समार म यन् जाव माना प्रकार म विविध अन्त्याया को भोगता हुआ चक्कर उमारा है। वन् नन् की भाति माना कय और रूप धारण कन् मत्य करता ह। मत्य करन की बात सूत्रान्म न भी अर्थ है गाया बटुन गुपान गाएक वन् म भली भांति स्पष्ट का है। यन् मत्य का अर्थ है कि जीव का भमार क चक्कर म फमा और तज्जय मुख मुख भागना। वन् यन् नव आवागमन क चक्कर म फमा है उस भावना पन्मा। यदि वह रूप और गाव का समान समभकर मन्म रूप म उन्म उन्मादीन हा जान ता वह जानी बहलाय धार गाति व क अनुभव करे। गीता का यन् वादन मुख-ध सम हृत्वा जनगागन म पूष रूप म प्रतिष्ठित है। वनि त्रिमुदचन् (१७वी गान्ती) न उमवा गून्तर निरूपण किया है—

जहां है सयोग तहां होन है वियोग सहो
जहां है जनम यहां मरण की बात है।
सम्पति विपति वीर एक हो भयनदासी
जहां मस मुष वहां दुष को बितास है ॥
जगन मे बार-बार फिर जाना परकार
बरम अथवा भूटो चिरता की बात है।
नट कसे मेघ और वष होहि बात
हरप न सोग ग्याना सट्ज उदास है ॥ १

१ देखिए मुद्रा न० १३१ लेखनकाल वि० स० १७७६ मन्दिर गैलियन जयपुर।

२ अनिययवागत (पाण्डित्यि) लेखनकाल वि० स० १६५२ मुद्रा न ३५ सूपरर जो का मन्दिर जयपुर



‘भैया’ भगवतीदास ने ‘ब्रह्मविलास’ में भगवद्नाम की महिमा का नाना प्रकार में विवेचन किया है। उनकी मान्यता है कि “भगवान का नाम कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि और पारम के समान है। उसमें उस जीव की उच्छाये भरती है, कामनाये पूर्ण होती है। चिन्ता दूर हो जाती है और दारिद्र्य दूर जाता है। नाम एक प्रकार का अमृत है, जिसके पीने में जरा रोग नष्ट हो जाता है। अर्थान् मृत्यु की आशंका नहीं रह जाती। यह जीव भूत में अमृत ही ओत जाता है। मोन का भय ही दूर है। उसके दूर होने पर सुख स्वा प्राप्त हो जाता है। ऐसा सुख जो धीन नहीं होता। इसे ही आनन्द आनन्द कहते हैं। किन्तु वीतराग का नाम वह ही लेना है जो स्वयं वीतरागता की ओर बढ़ रहा है।’ ऐसी शर्त तुलसी ने ‘ज्ञान-भक्ति-विवेचन’ में भी लगायी है। उनकी दृष्टि में हर कोई भगवान का नाम नहीं ले सकता। पहले उसमें नाम लेने की पात्रता चाहिए। उन्मा अर्थ यह भी है कि पहले मन का भगवान की ओर उन्मुख होना आवश्यक है। ऐसा हुए बिना नाम लेने की बात नहीं उठती। उनके लिए एक जैन पारिभाषिक शब्द है ‘भव्य’। उसका तात्पर्य है—भवसागर में नग्ने की तावत। जिसमें वह नहीं उस पर भगवान की कृपा नहीं होती। भव्यत्व उपाजित करना अनिवार्य है। यदि भगवान के नाम को कोई भव्यजीव लेना है तो उसके भवसागर नग्ने में कोई कमी नहीं रहती। इस भव्यत्व को वैष्णव और जैन दोनों ही कवियों ने स्वीकार किया है।

भारतीय भक्ति परम्परा का एक प्रवृत्ति रही है कि अपने आराध्य की महत्ता दिखाने के लिए अन्य देवों को छोटा दिमाया जाये। तुलसी के राम और मूर के कृष्ण की ब्रह्मा, शिव, नन्द, नन्दन आदि सभी देव आराधना करने हैं। तुलसी ने यहाँ तक गया कि जो स्वयं भीम मांगते हैं वे भक्तों की मनोकामनाओं को कैसे पूरा करेंगे। मूरदास ने अन्य देवों में भिक्षा मागने को रमना का व्यय प्रमाण कहा है। तुलसी का ज्ञान है कि अन्य देव माया से विवश हैं। उनकी शरण में जाना व्यय है। तुलसी की दृष्टि में राम ही धीन, भक्ति और मोन्द्य के चरम अधिष्ठाता हैं। कृष्ण भी वैसे नहीं हो सकते। मूर का समूचा ‘अमर गीत’ निर्गुण ब्रह्म के गण्डन में ही न्यान्ना प्रतीत होता है। जैन कवियों ने भी सिवा जिनेंद्र के अन्य किसी को आराध्य नहीं माना। मैंने अपने ग्रन्थ ‘जैन हिन्दी भक्ति काव्य और कवि’ में भक्ति-धारा की इस प्रवृत्ति का समर्थन किया है। मेरा तर्क है कि भक्त कवियों ने यह काम आराध्य में एतद्भिन्न भाव जगाने के लिए ही किया होगा। किन्तु माय ही मैंने यह भी स्वीकार किया है कि उन ‘एतद्भिन्नता’ की ओर वे वैष्णव और जैन दोनों ही कटवाहट नहीं रोक सके। दोनों ने शालीनता का उत्प्रेषण किया। फिर भी अपेक्षाकृत जैन कवि अधिक उदार

- १ “तेरो नाम कल्पवृक्ष इच्छा को न राखे उर,
तेरो नाम कामधेनु कामना हरत है।
तेरो नाम चिन्तामन चिन्ता को न राखे पास,
तेरो नाम पारस सो दारिद्र्य दूरत है ॥
तेरो नाम अमृत पिये तँ जरा रोग जाय,
तेरो नाम सुखमूल दुख को दूरत है।
तेरो नाम वीतराग धरँ उर वीतरागो,
भव्य तोहि पाय भवसागर तरत हैं ॥

—सुपथ कुपथ पच्चीसिका, ब्रह्मविलास, भैया भगवतीदास, पृ० १८०।

- २ “भाव सहित खोजइ जो प्रानो। पाव भगति मति सब सुख खानो ॥”

—देखिए रामचरितमानस, ज्ञानभक्ति विवेचन।

- ३ “जाचक पै जाचक कह जाचँ। जो जाचँ तो रसना हारी ॥”

—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, ३४वा पद, पृ० ३०।

- ४ “देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया-विवश विचारे।

तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपुनपो हारे ॥”

—विनय-पत्रिका, पूर्वार्ध, १०१ वां पद, पृ० १६२।

रहे। उनमें अनेक न तो पूज उठारता करते। यह इतिहासप्रसिद्ध बात है कि प्रभासपट्टन के भोमनाथ के मन्दिर के उद्धार में संप्रदाय कुमारपात्र को आचार्य हेमचन्द्र का पूज आशीर्वाद प्राप्त था। "मधुचन्द्र ने विद्या तरंगमाला के उस देव को नमस्कार किया जिसका रागात्मिक रूप क्षय को प्राप्त हो गये हैं। फिर वह ऐसे ब्रह्मा विष्णु हर या जिन नाई भी हो। उनका कहना है—

भववीजोक्तुरजनना रागाद्या क्षयमुपायता यम्य।
ब्रह्मा या विष्णुर्वा हरे जिनो या नमस्तस्म ॥—
यस्य तस्य समय यथा तथा योऽस्ति सोऽप्यभिपया यथा तथा।
वीनदोषवत्तु स चेद्भवानेव एव भगवन्मोक्षतु ते ॥ १

भो भक्ति एक अर्थ जन भक्त यदि देवा पदमावती की आराधना करने को उद्यत हुआ तो अथ देविया की निन्दा न कर सके। उसने कहा कि देवी पदमावती ही सुयोगम में तारा नागम में गौरी बौद्धिकपासन में ब्रह्मा और साम्यागम में प्रकृति ब्रह्माती है। उनमें कोई अन्तर नहीं है। कोई छोटी-सी नहीं है। कोई महान् उच्च नहीं है। सब समान हैं। सबकी गतिया समान हैं। उस में भारतो से समस्त विश्व व्याप्त है। ऐसा आराधक ही मात्रा भक्त है। जिससे दूसरा के प्रति निन्दा और बहना का भाव आ गया वह सात्विकता की बात नहीं कर सकता। उसका भाव दूषित है। जिसने भक्ति का क्षेत्र में भी पार्टीबन्दी की बात की वह भक्त नहीं और चाह कुछ है। ऐसा व्यक्ति भक्ति का हामी नहीं हो सकता। उनका नाम व्यर्थ होगा और आराधना निष्फल। बीनरागियों की भक्ति पूज रूप से अहितक होनी चाहिए थी यदि नहीं हुआ तो वह भक्त का भाव को बिड़ल हो जानती पड़ती। किन्तु उस क्षय में बहुत हद तक अहिंसा की प्रशय मिला वह निष्काम नहीं है। उपयुक्त श्लोक है—

तारा एव सुपायमे भगवती गौरीति नागने।
ब्रह्मा बौद्धिकपासने जिनयते पदमावती विप्रता ॥
गायत्री अतिपासनी प्रकृतिरिपुस्तर्हि साक्ष्यायमे।
सातभरति कि प्रभूत भक्ति व्याप्त समस्त त्वया ॥ १

यह पावनता जन हिंदी ब्रह्म में भी पनपी। उनसे वाक्य में अपने आराध्य की भृता है। अथ देवों को बुराई भी। किन्तु अनेक स्थान तरंगमाला में उपर उठे हैं या उठ नचाकर विरक्त गये हैं। महात्मा आनन्दमन का ब्रह्म अक्षय मय था। अक्षय मय कह है जो अविरती भी है अर्थात् उसमें विरोध भी दृष्टि से विरोध की सम्भावना न हो। कोई धर्म या आदम जिसका दूसरे धर्मों में विरोध हो अपने को अक्षय मय नहीं कह सकते। वे लक्ष्मण से शत्रु हो सकते हैं। आनन्दमन का ब्रह्म राम रही भृते ब्रह्मा और पारमार्थिक सब कुछ था। उनमें आपन में कोई विरोध नहीं था। व सब एक था। न उनमें तरंगमाला का और न उनके रूप में भय था। महात्माजी का कथन था कि जिस प्रकार निरी एव होकर भी पात्र भेद में अन्तर नामा में पुकारी जाती है उसी प्रकार एक अक्षय रूप आत्मा में विभिन्न रङ्गनामा का कारण अनेक नामा की पचना कर ही जानी है। उनकी दृष्टि में निरूप म निरूप म अपने पात्रा राम है रहम करने वाला रहमान है सभी का वपण करने वाला वृष्ण है निर्वाण का वाला महात्मा है अपने रूप का रङ्ग का वाला पारम है ब्रह्म का पहचाने वाला ब्रह्म है। व इस जीवन के निष्पन्न चला को ब्रह्म कहते हैं। उनका कथन है—

- १ आचार्य हेमचन्द्र का श्लोक बेलिग मेरा अर्थ हिंदी जन भक्तिवाक्य और जहाँ पटना अध्याय पृ० १२।
- २ पदमावती श्लोक २ का श्लोक अथ पदमावती का अर्थमहात्मा परिचय पृ० २८।





“राम कहो, रहमान कहो कोऊ, कान कही महादेव री ।
 पारसनाथ कहो, कोई ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री ॥
 भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री ।
 तैसे लण्ड कल्पना रोपित, आप अलण्ड स्वरूप री ॥
 निज पद रमै राम सो कहिए, रहिम करे रहमान री ।
 कर्मे करम कान सो कहिए, महादेव निर्वाण री ॥
 परसे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चिन्ह सो ब्रह्म री ।
 इह विधि सावो आनन्दधन, चेतनमय निष्कर्म री ॥”

इस प्रकार की उदार परम्पराओं ने जैन काव्यों में शान्ताभक्ति के रूप को शालीनता के साथ पुष्ट किया था । इसी सन्दर्भ में माया की बात भी का जाती है । माया, मोह और जैतान पर्यायवाची हैं । मन्त, वैष्णव और जैन तीनों ही कवियों ने शान्ति के लिए उसके निरसन को अनिवार्य माना । वह अज्ञान की प्रतीक है । उसके कारण ही यह जीव ससार के आवागमन में फँसा रहता है । यदि वह हट जाय तो समस्त विश्व ब्रह्मरूप प्रतिभासित हो उठे । वह दो प्रकार से हट सकती है—ज्ञान से और भक्ति से । सांख्यकारिका में एक अत्यधिक मनोरञ्जक दृष्टान्त आया है । प्रकृति सुन्दरी है और पुरुष को लुभाने में निपुण है, किन्तु जब पुरुष उसे ठीक में पहचान जाता है, तो वह लज्जा से अपना वदन ढँक दूर हो जाती है । ठीक से पहचानने का अर्थ है कि जब पुरुष को ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वह प्रकृति के मूल रूप को समझ जाता है तो वह (प्रकृति=माया) पलायन कर जाती है ।^१ जैन सिद्धान्त में ज्ञान ही आत्मा है । यहाँ आत्मा का अर्थ है विशुद्ध आत्मा । अर्थात् जब जीवात्मा में विशुद्धता आ जाती है तो मोह स्वतः ही हटता जाता है । जैन आचार्यों ने आठ कर्मों में मोहनीय को प्रबलतम माना है । ‘स्व’ को सही रूप में पहचानने में वह ही सबसे बड़ा बाधक है । उसकी जड़ को निर्मूल करने में ज्ञानी आत्मा ही समर्थ है । बनारसीदास का कथन है, “माया वेली जेती तेती रेतें में धारेती सेवी, फदा ही को कदा खोदे खेती को सो जोधा है ।”^२ सांख्य-की-सी बात भैया भगवतीदास ने ‘ब्रह्म विलास’ में कही है । उन्होंने लिखा कि कार्यारूपी नगरी में चिदानन्द रूपी राजा राज्य करता है । वह मायारूपी रानी में मग्न रहता है । जब उसका सत्यार्थ की ओर ध्यान गया, तो ज्ञान उपलब्ध हो गया और माया की विभोरता दूर हो गई, “काया सी जु नगरी में चिदानन्द राज करै, माया-मी जु रानी में मग्न बहु भयो है । ऐसी राजधानी में अपन गुण भूलि रह्यो, सुधि जब आई तब ज्ञान आप गहचो है ।”^३ कबीरदास ने भी जब उसका भेद पा लिया तो वह बाहर जा पड़ी । उनका भेद पाना ज्ञान प्राप्त करना ही है । ज्ञान के बिना माया मजबूत चिपकन के साथ समारी जीव को पकड़े रहती है ।

१. महात्मा आनन्दधन, आनन्दधनपदसङ्ग्रह, अध्यात्मज्ञान प्रसारक मण्डल, बम्बई, ६७वा पद ।

२. प्रकृते सुकुमारतर न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति ।

या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ॥”

—सांख्यकारिका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, प्रथम संस्करण, वि० सं० १९६७, ६१वा श्लोक ।

३. नाटक समयसार, मोक्षद्वार, तीसरा पद्य ।

४. शत अष्टोत्तरी, २८वा सर्वया, ब्रह्मविलास, पृष्ठ १४ ।

मुक्तगीतास ने भक्ति के रिता माया वा दूर होना असम्भव माना है। इस सम्बन्ध में रघुपति की दया ही मुख्य है। वह भक्ति से प्राप्त होती है। सुनसी ने विनयपत्रिका में लिखा मायव भक्त मुग्धहृदि यह माया करि उपाय पवि मरिय तदिय नहि जब लगि करहु न दाया।^१ जनकवि भूषणदास ने माहृदिपात्र की मष्ट बरन के लिए भगवन्त भजन पर बर दिया। उसको भूतने पर तो माहृत्त काई दृष्टकारा नहीं पा सकता। उन्होंने लिखा है मोह विगाच छल्यो मति मार निज कर कथ बसूला दे। भज श्री राजमतीवर भूषण दा दुरमति मिर धूला दे ॥ भगवन्त भजन क्यों भूला दे ॥ कबीर की दृष्टि में माया से सुत्कारा प्राप्त करने के लिए सतगुरु की कृपा भावपूर्ण है। कबीर ने सतगुरु को गोविन्द से बड़ा माना है। उनका कथन है कि यदि गुरु की कृपा न हानी तो वह इस जीव को मष्ट कर हानती क्योंकि वह माठी गव्वर की भाँति गीरती होती है।^२ जायसी ने भी माया वा लोभ करने के लिए सतगुरु की कृपा को मष्टवपूर्ण समझा था। उन्होंने लिखा कि जब तब बोई गुरु को नहीं पहचानता उसके धीरे परमात्मा के मध्य भक्तपान बना ही रहता है। जब पहचान लेता है तो जाव धीरे बड़ा एव हो जाते हैं। उनका मध्यान्तर मित जाता है। जायसी की मायता है कि यह भन्तर माया जय ही है। भय्या भगवतीदास का पूरा विश्वास है कि सतगुरु के पचना से मोह विनीत हो जाता है और आत्मरस प्राप्त होता है।^३ कवि बनारसीदास ने गुरु को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। माहृत्त जय बचनी दूर होने का एतमान उपाय गुरु का उपदेश है। यदि आत्मा भजन अथय निधि भूटना चाहती है तो उस गुरु की सन्वाणी से सामान्य होना ही चाहिए। उनका कथन है गुरु उपदेश सहज उदयागति माहृत्त विचलना छूट। बहुत बनारसी ह्व कन्दारनि अलख अलखनिधि भूट ॥^४ इस घट में मुधा-मरोवर भरा है जिससे सब दुख विनीत हो जाते हैं। उस सरोवर का पना दगना आदर्यक है। वह सतगुरु से जय सचता है। सतगुरु भक्ति से प्रसन्न होन हैं। उन पर मन बेदिन करना पड़ता है। कवि विनयविजय ने लिखा है—

मुधा सरोवर है या घट में भिन्नमें सब कुछ जाय ।
विनय कहै गुरद्वेष विस्तार जो लह दित ठाय ॥
ध्याये काहे कू लवचाय ॥

आत्मरस ही सच्ची गान्ति है। वही अलख अलखनिधि है। वह अनुभूति के बिना नहीं होता। ब्रह्म की भगवान की या परमात्मा की अनुभूति ही आत्मरस है। अनुभूति के बिना गान्ती-बरोन्नी भवों में जप-जप भी निरर्थक है। एक स्वाम की अनुभूति जितना काम करती है भव भव की तपस्या और साधना नहीं। चानतराय ने लिखा है साय बोदि भव तपस्या करत जे तो बम तेरो जर र। स्वात उस्वात माहि मा नास जब अनुभव नित पर र।^५

१ विनयपत्रिका पुराण ११६ वाँ पद ।

२ भूषण विलास कसफला १६ वाँ पद प ११ ।

३ कबीर माया मोहनी जसी मोठी लाह ।

सतगुरु की कृपा नहीं तो करती भाड़ ॥

माया की भग ७वाँ साक्षी कबीर ध यावलो बागी चतुस सरकरण प ३३ ।

४ जब लगि गुरु की ग्रहा न बो हा । कोटि आतरपट कोहि बो हा ॥

जब घ हा सब धीरे न कोई । तब मन बिज जीवन सब सोई ॥

—बेलिए जायसी कृत पद्यावत ।

५ सतगुरु बचन धारिते भवने जाते मोह विस्तार ।

तब प्रगट आत्मरस भया सो निरवध टहराय ॥

भया भगवतीदास परमाय पदपठित २५ वाँ पद ब्रह्मविलास प ११८ ।

६ बनारसीदास अष्टपदी मन्हार ८ वाँ पद बनारसीविलास जयगुर प २३६ ।

७ विनयविजय ध्याये काहे कू लवचाय लोचक पर अष्टाष्टम पद्यावली बागी प २२१ ।

८ चानतराय संग्रह कसकला पद ७३ वाँ प ३१ ।



बराबर बनी हुई है।^१ 'णायकुमारचरित्र' की भूमिका में डॉ० हीरालाल जैन ने उसे उत्तमकोटि का प्रबन्धकाव्य प्रमाणित किया है।^२ मधार के 'प्रद्युम्नचरित्र' के प्राक्कथन में डॉ० भावाप्रसाद गुप्त ने उसे एक उज्ज्वल तथा मूल्यवान् रत्न माना है।^३ भूवरदाम के पाश्र्वपुराण को प्रसिद्ध प० नाथूराम प्रेमी ने मौलिकता, सौन्दर्य तथा प्रमादगुण से युक्त कहा है।^४ लालचन्द्र लघोदय के पद्मिनीचरित्र और रायचन्द्र के नीताचरित्र को, पाण्डुलिपियों के रूप में मैंने पढ़ा है और मैं उन्हें इस युग के किसी प्रबन्धकाव्य से निम्नकोटि का नहीं मानता। इनके अतिरिक्त अपभ्रंश और हिन्दी के नेमीनाथ तथा राजुल से सन्वित खण्डकाव्य हैं। उनका काव्य-सौन्दर्य अनूठा है। मैंने अपने ग्रन्थ 'जैन हिन्दी भक्तिकाव्य और कवि' में यथा-स्थान उनका विवेचन किया है।

इन विविध काव्यों में युद्ध है, प्रेम है, भक्ति है प्रकृति के सजीव और स्वाभाविक चित्र हैं। सवाद-सौष्ठव की अनुपम छटा है। भाषा में लोच और भावों में अनुभूति की गहराई है। वही छिछलापन नहीं, वही उद्दाम वामनाशों का नग्न नृत्य नहीं। केवल शान्तरस के प्रमुखरस होने से क्या हुआ। प्रबन्धकाव्य में कोई-न-कोई रस तो मुख्य रस होगा ही। उसकी पृष्ठभूमि में समूचा मानव-जीवन गतिशील रहता है, यह प्रबन्ध काव्यों की मूलविधा के जानकारों ने छिपा नहीं है। प्रबन्धकाव्य की कसौटी पर खरे उतरते हुए भी शान्तरस का सुनिर्वाह जैनकाव्यों की अपनी विशेषता है और वह वीतरागी परिप्रेक्ष्य में ही ठीक से समझी जा सकती है। ऐसा होने पर ही उनका आकलन भी ठीक हो सकता है।

१ एम० विन्टरनिस्स, ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, १९३३ ई०, खंड २, पृष्ठ ५३२।

२ देखिए णायकुमारचरित्र, भूमिका भाग, डा० हीरालाल जैन लिखित।

३ मधार, प्रद्युम्नचरित्र, प० चैनमुखदास संपादित, महावीर भवन, सवाई मानसिंह हाईवे, जयपुर, प्राक्कथन, डा० माताप्रसाद गुप्त लिखित, पृ० ५।

४ प० नाथूराम प्रेमी, हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीरादाग, बम्बई, जनवरी १९१७, पृ० ५६।

आयुर्वेद को जैनाचार्यों की देन

राजकुमार गोयल,

रिक्त स्कालर जामनगर



भारतवर्ष के अधिकांश धार्मिक ग्राहिय म भी आयुर्वेद का कुछ-न-कुछ उत्तर म् अवश्य मितता है । प्राचीन काल म् ऋषिमा ने जहाँ तात्कालिक जनता को प्रारमा का उद्धार करने काय भाषण लिए, वहाँ उन्होंने 'गरीरमाय' म्नु धम-साधनम्' का ध्यान म् करने हुए धममाधन क् मूत्र घरीर को स्वस्थ एव म् आयुसमया म् आरोग्य प्रप्त करन क् लिए म्कन स्वाधुमून तथा प्रयोगाहन उपायों प्रयोग का माय भी दर्शाया था ।

आयुर्वेद कैम उत्पन्न हुआ यह कहना क्तिन है किर भी हम 'गोत स—

स तीपमाधमविषय विमलप्रमूर्त्ति
सामाहिहायविमवादिपरीतमूर्त्तिम् ।
समप्रदा विवरणोद्भूतप्रभासा
पत्रमुरित्पमर्त्तिर्लभरतेकरासा ॥

ओ प्रमाण मितता है हमने यह निष्क हाता है कि जब म्गार म् तपस्वर्ष उपवास आधयन ब्रह्मचय इन प्रमृति उत्तमोत्तम कायों म् जीवन माधन करने काय सुदयों म् भी माला प्रवार के विपत्ति को वीन करी काते रोगों का म्नुत्रास हुआ तब म्गन क्कनवीं काति भव्या ने भगवान् कातिनाय को सेवा म् जाकर सखिय वत्ता की घोर स्वास्थ रना क् तिल माय उपाय पूछा । भगवान् ने जो उत्तर लिए वही म् आयुर्वेद का धारम हुआ ।

जैनाचार्यों ने रोगाधिष्ठान को बताया है—'गरीर घोर मन । घरीर का रोगवरन होता प्रत्य गिगाई देना है । का का म्पाधिष्ठान होना सन्ता के आधार पर धनुमान म्ता विविध छिपा जाता है । त्रिन रार्ग का प्रभाव प्रथम गरीर पर पडता है उन्हें घारीरिघ घोर त्रिनवा प्रथम मन पर प्रभाव पडता है—'मानसिक रोग करने है । घारीरिघ रोग क्या —'अर घनिमगर घटना का काय स्वाय प्रयेह कुछ काय रोगार्ग । मानसिक रोग क्या —'काय काय मोह मोह ईर्ष्या माय लोष भवार्ग । कुछ रोग ऐसे भी हात हैं त्रिनवा अधिष्ठान कोनों—'गरीर घोर मन होने है ॥१॥—मूर्च्छा उन्मा' अरामार काति । जनाचार्यों ने रोगों के चिकित्साय त्रिन त्रिन रार्ग का धारना—'घोर त्रिन त्रिन घोरधिपा पर उन्हें क्कनवा म्गन हुई उन्होंने उन कोलधिर्ग का क्कनवा म्गन विविध किया । इन विषय म् जनाचार्यों ('गिगबर्ग' एव सन्तामगा) की म्गान् देन रहा है ।

महिमा-कायों म् आयुर्वेद को सचकच का उररीं माना क्या है । जय वम्परा म् हारणां कायों म् हनि

वाद नाम का जो १२ वाँ अंग है, उसके ५ भेदों में से एक भेद पूर्वगत है। इसके भी चौदह विभाग हैं। इन विभागों में जो 'प्राणवाद' नामक पूर्वगत शास्त्र है, उसमें विस्तार के साथ अष्टांगायुर्वेद—(१) काय-चिकित्सा (२) शल्यचिकित्सा (३) शालाक्यचिकित्सा (४) भूतविद्या (५) कौमार भृत्य (६) अगदतन्त्र (७) रसायनतन्त्र (८) वाजीकरण का कथन मिलता है, यही मूल आयुर्वेदशास्त्र अथवा मूलवेद है।

रोगशमन के लिए प्राचीन काल में तरह-तरह के होम यज्ञादि हुआ करते थे, रोगविशेषों में बलि का भी विधान था। किन्तु जैनाचार्यों ने 'अहिंसा परमो धर्म' को ध्यान में रखते हुए, अपने ग्रन्थों में औषधप्रयोग के बिना मद्य, मांस, मधु, यज्ञादि का उपयोग नहीं बताया जैसा कि कन्नड भाषा के इस श्लोक से ज्ञात होता है —

सुकर तानेन पूज्यपाद मुनिगल् मुपेत्तु कल्याणका-
रकम वाहट सिद्धसार चरकाद्युत्कृष्टम सद्गुणा-
धिकम वर्जित मद्यमांसमधुक कणादिकं लोकर-
क्षकमा चित्रवदागे चित्रकवि सोम पेत्तुर्दनि ततितयि ॥

विपत्तिकाल में भी अहिंसा का इतना प्रबल उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता। इसका मुख्य कारण यह है कि जैनाचार्य व्यक्तियों को पारमार्थिक स्वास्थ्य की ओर ले जाना चाहते थे जो अतीन्द्रिय मोक्ष सुख रूप है।

जैनाचार्यों ने जहाँ अध्यात्म, दर्शन, काव्य, न्याय, आदि विषयों पर अद्भुत प्रकाश डाला है, वहाँ उनसे ज्योतिष एवं आयुर्वेद विषय भी अज्ञात नहीं रहा। उन्होंने आयुर्वेद पर सँकड़ो ग्रन्थ लिखे जिनमें से बहुत-से अब लुप्त-प्राय हैं। फिर भी अन्य ग्रन्थों में उनके उद्धरणों में उनके अस्तित्व का पता चलता है।

"वसवराजीय" एक सग्रह-ग्रन्थ में "सिन्दूरदर्पण तद्वत्पूज्यपादीयमेव च" इत्यादि रूप से उल्लेख मिलता है। पूज्यपादजी ने अपने ग्रन्थों में जैन प्रक्रिया का ही अनुसरण किया था। जैन प्रक्रिया कुछ भिन्न रही है यथा — "सूत केसरी गन्धक मृगनवासार द्रुमम् ।" यह रससिन्दूर तैयार करने का पाठ है। इसमें 'केसरी' महावीर का चिह्न है, जो २४ वे तीर्थंकर हैं। अतः केसरी शब्द से २४ सत्वा ममभूनी चाहिए। मृग १६ वे तीर्थंकर का चिह्न है, अतः मृग से १६ सत्वा लेना चाहिए। आगम यह है कि पारद २४ भाग और गन्धक १६ भाग लेना चाहिए।

इसके अतिरिक्त 'वसवराजीय' सग्रहग्रन्थ में पूज्यपाद के अनेक योगों का वर्णन मिलता है। यथा —

- (१) "नाम्नाय चण्डभानु सकलगदहरो भाषित पूज्यपादै ।—नित्यनाथीये
- (२) 'रसकालाग्निरुद्रोऽय पूज्यपादविनिर्मित ।—वसवराजीय, प्र० पृ० १३
- (३) 'पूज्यपादकृतो योगो नराणा हितकाम्यया ।—त्रिकुटनस्य—प० प्र० व० रा० पृ० १११
- (४) 'शोकमुद्गरनाम्नाय पूज्यपादेन निर्मित । आदि

जैनाचार्य कोप लिखने में भी किसी से पीछे नहीं रहे, किन्तु उनकी शैली औरों में भिन्न थी। यथा — आचार्य अमृतनन्दी का कोप, जिसमें २२ हजार शब्द हैं, महत्वपूर्ण है। इसमें वनस्पतियों के नाम जैन पारिभाषिक रूप में आये हैं, जैसे—अभव्य—हमपादी। अहिंसा-वृश्चिकाली। अनन्त-सुवर्ण। ऋषभ—पावठे की लता। ऋषभा—आमलक। वर्धमाना—मधुर मातुलुग। वीतराग—ग्राम। आदि।

इसके अलावा अन्य ग्रन्थों और ग्रन्थकारों का भी उल्लेख मिलता है, यथा—

| ग्रन्थ नाम | वक्ता |
|-------------------|--|
| (१) रमावतार | भाषितयच |
| (२) रमावनप्रकरण | येदनुग नाम व जन मुनि ने १३८७ म बनाया । |
| (३) हिनोपदेश | जनाचार्य श्रीकृष्ण गूरि |
| (४) मागदत्तावर | जन नारायणेश्वर ने १ ७६ म किया । |
| (५) जीवन् तन्त्र | गुमवद्व |
| (६) यद्यमारम ग्रह | गगानस गूरि |
| (७) सम्मनप्रकाश | श्रीवर गूरि के पुत्र हमानिने १५ ८ म लिया । |
| (८) ब्रह्मण्यकारक | उद्गादित्य |
| (९) योगरत्नाकर | नयनगिरि कृत (१६८७ ईसवी) |

इनके अतिरिक्त (१) रनिगन (२) कुमारसन (३) वीरसन (४) पात्रवेशरी (५) मिदलन (६) मयना (७) मिहना (८) समलभद्र (९) जनाचार्य धामि आचार्यों के नाम भी धायुर्वेदोंवा व लिए गिनाये उल्लेखनीय हैं ।

आचार्य उद्गादित्य ने अपने ब्रह्मण्यकारक ग्रन्थ में जो कि आज भी उपलब्ध है उपयुक्त आचार्यों का उल्लेख किया है । उन्होंने लिखा है—

पूज्यपा आचार्य ने शास्त्रावयनत्र लिखा था जिसमें जन्म के ऊपर मुक्त नासा गिर, दण और वन गत राग का वर्णन किया था ।

पात्रवेशरी ने नाता प्रकार व लृप्त बाष्प धापाण धुनि चोह, मान नल पूष दूषित वन अल गन्ध गन्धाय धामि की निवारण व लिए तथा वन गन्ध क्षार धमि व प्रयोगाथ एव वनवित्तव्याथ गन्धायन किया था ।

आचार्य मिहना ने रसायन (यज्ञराव्याधिविष्वसी भेषज तन् रसायनम् भयात् जिस मोषधि व द्वारा जरा व्याधि नष्ट होकर युवावस्था प्राप्ति होती है उसे रसायन कहते हैं) का वर्णन किया था । असा जि हस्त दत्ता त भानुम होता है —

शास्त्राय पूज्यपादप्रवृत्तिमधिरं गत्यत्र च पात्र ।

स्यामिप्रोक्त विषोदग्रहणमनसि सिद्धस्य प्रसिद्ध ॥

वाये या सा विविरता वारचधुवमिषयात गिगुनी ।

वरा वल्य च दिव्यामतधवि वचित सिहनादमु गोत्र ॥

मर्षि समनम पूज्यपा त पूष हाम हैं । आप जहाँ वायमान व धर्मिनीय विगान्ध वहाँ धायुर्वेद म भी निष्पात थ । धायुर्वेद म उनका ऊँचा स्थान था । आपने मिद्वान्तरगायनान्त्य नामक ग्रन्थ किया था जिसमें १८ हजार श्लोक थ । यह ग्रन्थ आज गम्भीर महा मित्रता गिगु ह्जार ग्नाथ वन तत्र दमन को मिलत है ।

गुम्फ दन मुनि—आने मंदरुग नामक वद्व ग्रन्थ लिखा था ।

मिद्वान्तरगायन—यह पूज्यपा व मानव थ । इहाँ नास्तुनवन्ध नास्तुन वगुन धामि वपा था निर्माण किया था ।



हर्षकीर्ति मूरि —इन्होंने 'योगचिन्तामणि' नामक महत्त्वपूर्ण संस्कृत भाषा में गद्य-पद्यात्मक लिखा था।
ये नागपुरीय तपागच्छीय साधु थे।

जैनाचार्यों ने आयुर्वेद जैसी लौकिक विद्या के विषय में अपनी जो कलम चलाई, उसके पीछे अनेक हेतु थे।
उनमें एक माम मदिग्रा जैसी अमूल्य और हानिकारक वस्तुओं के सेवन का निषेध करके अहिंसा भावना को व्यापक बनाना था। प्राचीन काल में अनेक चिकित्सक इन वस्तुओं का प्रयोग करते थे। जैनाचार्य आयुर्वेद को हिंसा में मुक्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। निम्नलिखित श्लोक से यह तथ्य प्रमाणित होता है—

रघातश्रीनृपतुंगवल्लभमहाराजाधिराजस्थित,
प्रोद्यद्भूरिसमान्तरं बहुविधप्ररघातविद्वज्जने।
मासाशिप्रकरेन्द्रतखिलनिषग् विद्याविदामग्रत,
मामे निष्फलतां निरूप्य नितरां जैनेन्द्र वद्यस्थितम् (?)

इसमें विल्कुल स्पष्ट है कि नृपतुंग वल्लभ महाराजाधिराज के दरबार में जहाँ शान्ति का नमस्कार करने वाले अनेक विद्वान् थे, उनके सामने माम की निष्फलता सिद्ध करने वाले श्री जैनेन्द्र भी वहाँ उपस्थित थे। नृपतुंग अमोघवर्ष प्रथम का नाम है, और अमोघ वर्ष को ही वल्लभ और महाराजाधिराज की उपाधि थी। नृपतुंग भी उसकी उपाधि थी।

इस प्रकार आयुर्वेद का सूत्रपात करने का श्रेय जहाँ भगवान् आदिनाथ को है, वहाँ उसे प्रस्तुत करने का श्रेय जैन आचार्यों को भी है। इस विषय में यदि गहरी छानबीन की जाय तो ऐसे तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं जिनकी कल्पना आज विज्ञानों को भी नहीं है।

कर्नाटक विश्वविद्यालय पारवाड (मसूर)



२. चम्पू काव्यो का वास्त—यद्यप्य मन्त्रिन महाराज्या की प्रीति करणी सत्य परंतु इस काव्य गायत्री व यदि निबिडम मत्त कृत नचम्पू एव सामन्त्रेव सुविष्ट याम्निन चम्पू य उपवम्प हारी है। श्री नर्त्तिकास्त्री याम्नि ने नचम्पू व उपाध्याय म लिखा है कि गंगा वि ता की राय है कि य नचम्पू गद्यप्रम चम्पू-काव्य है। हो हरिवं का जावपर चम्पू की एव प्रीति जन चम्पू काव्य है। पर बिगा की राय है कि यह काव्य ई मन्त्रवमी गायत्री के वा का है। पर श्रीमती तब यह निबि नग हो मरा कि हरिवं का वास्त नवरा याम्नी व वा वच व

है। यद्यपि इस समय रामायण चम्पू, भारत चम्पू आदि कई चम्पूग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, पर वे सभी ग्रन्थ दशवी शताब्दी के बाद के हैं। उपलब्ध चम्पूकाव्यों में हमें दशवी शताब्दी के पूर्व का कोई चम्पूकाव्य दृष्टिगोचर नहीं होता है।

अब आप कन्नड-चम्पू काव्यों की ओर आइये। उपलब्ध कन्नड साहित्य में भी हमें दशवी शताब्दी के चम्पू-काव्य ही प्राप्त होते हैं। ये चम्पूकाव्य सुप्रसिद्ध जैन कवि पप, पोन्न और रन्न के हैं। यद्यपि अदिकांश विद्वानों का मत है कि 'पप-भारत' ही कन्नड का सर्वप्रथम महाकाव्य है। इसे जो नहीं मानते हैं, वे पप के आदिपुराण अथवा पोन्न के शांतिपुराण को प्रथम स्थान में रख सकते हैं। खैर, यह विषयांतर है। यहाँ पर वास्तविक विषय यह है कि सुदृढ प्रमाणों से मालूम होता है कि कन्नड में चम्पूकाव्य दशवी शताब्दी से पूर्व ही रचे गये थे।

'कविचरिते' में नववी शताब्दी के कवि प्रथम गुणवर्म का उल्लेख मिलता है। इसने 'शूद्रक' और 'हरिवंश' नामक दो ग्रन्थों की रचना की है। यद्यपि ये दोनों ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुए हैं, परन्तु इन ग्रन्थों से उद्धृत पद्य हमें व्याकरण और मकलन-ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। अभिनववादी विद्यानन्द ने अपने 'काव्यसार' नामक सकलन-ग्रन्थ में गुणवर्म के 'शूद्रक' ग्रन्थ से नामनिर्देश के साथ अनेक संस्कृत वृत्त, कद, और एक गद्य भाग को उद्धृत किया है। इसी में 'हरिवंश' की अवतरणिका भी दी गयी है। यद्यपि 'काव्यसार' १६वी शताब्दी का ग्रन्थ है, फिर भी कतिपय पद्यों के सिवा इसमें उद्धृत सभी उद्धरण चम्पूकाव्यों के हैं। गुणवर्म के 'शूद्रक' और 'हरिवंश' से उद्धृत पद्य उपलब्ध चम्पू-काव्यों के पद्यों से विल्कुल मिलते-जुलते हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि गुणवर्म के ये दोनों ग्रन्थ चम्पूकाव्य थे।

गुणवर्म के पूर्व भी कन्नड में चम्पूग्रन्थ रचे गये थे, इस बात का समर्थन करने के लिए यद्यपि हमारे पास सुदृढ प्रमाण मौजूद नहीं है, फिर भी इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें अवश्य विचारणीय हैं। १६वी शताब्दी के कवि मगरस एव दोड्डय्य के उल्लेखों को आधार मानकर, 'कविचरिते' के मान्य लेखक आर० नरसिंहाचार्य का कहना है कि उपर्युक्त उभय कवियों के द्वारा निर्दिष्ट श्रीविजय का 'चन्द्रप्रभचरितचम्पू' 'कविराजमार्ग' में प्रतिपादित कवि श्रीविजय के द्वारा ही रचा गया होगा। विद्वानों का मत है कि श्रीविजय का काल ८वी शताब्दी या नौवी शताब्दी का पूर्वार्ध होना चाहिए। इस हिसाब से कन्नड में चम्पूकाव्यों का काल श्रीविजय तक चला जाता है। अर्थात् श्रीविजय के काल में कन्नड भाषा में चम्पूकाव्यों का प्रचार अवश्य रहा।

इन समय उपलब्ध संस्कृत एव कन्नड चम्पूग्रन्थ दशवी शताब्दी के हैं। किन्तु उपलब्ध न होने पर भी निश्चित आधारों से कन्नड चम्पूग्रन्थों में ८वी ९वी शताब्दियों में ही जन्म लिया था, यो मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। हाँ, इससे पूर्व भी कन्नड में चम्पूग्रन्थ मौजूद थे, इस बात को मनवाने के लिए सुदृढ प्रमाणों की आवश्यकता है। इस विषय में सिर्फ अनुमान ही कार्यकारी नहीं होगा। इस परिस्थिति में संस्कृत से पूर्व जन्म पाने वाला चम्पू रूप संस्कृत साहित्य तथा काव्यों के प्रभाव से यथेष्ट प्रभावित होने पर भी, स्वतंत्र है और वास्तव में यह चम्पू रूप संस्कृत साहित्य को कन्नड भाषा के द्वारा प्रदत्त एक असूत्य देन है, यो मानने में विद्वानों को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

३ चम्पूकाव्यों का उद्गम स्थान—चम्पूकाव्यों का उद्गम स्थान कर्णाटक ही है। इसके लिए निम्नलिखित पक्तियाँ अवश्य द्रष्टव्य हैं। कन्नड के आदि कवि पप का आश्रयदाता राष्ट्रकूटशासक तृतीय कृष्ण का सामंत अरिकेसरी था। संस्कृत महाकवि सोमदेवसूरि का आश्रयदाता भी यही अरिकेसरी रहा। जब पप ने अपने 'भारतचम्पू' को अरिकेसरी के चरित्र सूचक इतिहास रूप में रचा, तब उसी अरिकेसरी के आश्रय में रहने वाले महाकवि सोमदेवसूरि ने अपने 'यशस्तिलक' को भी रचा। पप ने अपने द्वितीय ग्रन्थ 'आदिपुराण' को ई० सन् ९४१ में समाप्त किया। इसी प्रकार सोमदेव सूरि ने अपने ग्रन्थ 'यशस्तिलक' को ई० सन् ९५९ में पूर्ण किया। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि पप के बाद ही सोमदेव सूरि का 'यशस्तिलक चम्पू' रचा गया है। हाँ, 'नलचम्पू' इससे पूर्व रचा गया होगा। पर उसका समाप्तिकाल मालूम नहीं हुआ है।

इस नलचम्पू को त्रिविध भट्ट ने राष्ट्रकूटशासक तृतीय इन्द्र (ई. सन ६१४-६६) के आश्रय में रचा। पूर्वोक्त राष्ट्रकूटशासक तृतीय कृष्ण से संबंधित त्रयोविध की उपाधि पान करते महाकवि पोत ने दाकी गठानों में ही 'अग्निपुराण' की रचना की थी। इन बातों पर विचार करने पर मान्य होता है कि प्रारम्भिक सङ्कृत चम्पूय वर्णाटक राजाओं के आश्रय में वर्णाटक में ही रचें गये और उन सङ्कृतकवियों को कन्नड कवि एवं पण्डित ही आत्मा रहे। इस निष्पत्ति पर पहचाने पर यह बात सिद्ध हो जाती है कि प्रारम्भिक सभी कन्नड कवि जन रहे और उन्होंने ही कन्नड चम्पूकृत को जन्म दिया। बाद में सङ्कृतकवि सोमदेवपुरि और त्रिविध भट्ट इन दोनों में पूर्वोक्त कन्नड कवियों का ही अनुसरण किया। हाँ यहाँ पर इस निष्पत्ति की बाधाओं पर भी विचार करना आवश्यक है।

'अग्निपुराण' और दक्षिण काव्यात्मा में चम्पू का उल्लेख तथा लगाने की भाषा है वह पूर्वोक्त निष्पत्ति में बाधक माना जा सकता है। अब इन प्रश्नों में से अग्निपुराण का पहलें लीजिये। पहले यह अग्निपुराण एक अति प्राचीन ग्रंथ माना गया था अथवा पर इधर के संप्रोषण से यह ग्रंथ ई० सन सातवीं शताब्दी का माना गया है और उसमें भी भ्रम का अनुहार भाग है सन ६वीं शताब्दी का। इसी परिस्थिति में पूर्वोक्त निष्पत्ति के लिये अग्निपुराण बाधक नहीं हो सकता।

तृतीय काव्यात्मा को लीजिए। यह पता नहीं लगता है कि १ वीं शताब्दी के पूर्व का दक्षिण परिचित सङ्कृतचम्पू ग्रंथ कौन सा है? हरिचन्द्र का ओषधचम्पू नहीं हो सकता। हाँ इस सन्दर्भ में सहना यह विचार उठ सकता है कि महाकवि दक्षिण परिचित चम्पूय तमिल एवं कन्नड के क्या नहीं हो सकते? क्योंकि विन्मवासी दक्षिण में कवि के पालना के आश्रय में बना गया था। एसी दशा में दक्षिण का तमिल एवं कन्नड चम्पूकृतियाँ संभवित होना आसान और स्वाभाविक है।

४ चम्पू काव्यों के अन्तर्गत — उपयुक्त आधारों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि वर्णाटक वासी शिवाय जन कन्नड कवि ही चम्पूका पात्र के जन्मदाता हैं। श्रीमान् बद्र का निष्पत्ति मत है कि त्रिविध अग्नि कन्नड जन कविता में ही चम्पूकाव्या की बुनियाद पड़ी। वस्तुतः कन्नड जन कविता में ही कन्नड चम्पूपरम्परा का प्रारम्भ कर कन्नडसाहित्य की सर्वाधिक गति पर पहुँचाया। निःसन्देह इन चम्पूकाव्यों की गति बहुत ही प्रगति है। सङ्कृतभाषा के परिभाषा के बिना इन काव्यों को जानना आसान नहीं है। इस बात को विविवाद रूप से मानना होगा कि विपत्त चम्पूकाव्यों ने जन पुराण एवं तौलिक काव्यों में जो अविष्टत हासिल किया है वह सङ्कृत साहित्य के लिए नवीन है।

सङ्कृत अथवा कन्नड तमिल अग्नि किसी भी भारतीय भाषा का जन बाध्य हो वह उनमें महाकाव्य का सभी लक्षणों से युक्त हार भी सिर्फ इस में श्रुतिग्राहि रसों का विषय स्थान में देकर गतिरस को ही प्रपन्नता है। क्योंकि जनपद निहित प्रधान धर्म है। इसका अतिवृत्त एक मात्र मुक्ति है। इसीलिए इसमें गतिरस को स्थान देना सचवा स्वाभाविक ही है। पर पाठक इस असाधारण गुण को जन कृतियों में ही पायेंगे। जन काव्य में मततत्त्व नीति तथा आदि आवश्यक सभी विषय समाविष्ट हैं अथवा फिर भी पाठकों को इन काव्यों में आनन्द प्राप्त का गुण ही मिलेगा। इसका अनुभव एक सुतर्कभी ही कर सकता है।

५ चम्पूकाव्यों में सर्वप्रथम किस भाषा में जन्म लिया — इसका उत्तर ऊपर आ चुका है। फिर यहाँ पर भी उसे दुहराया जाता है। वस्तुतः चम्पूकाव्या ने कन्नड एवं तमिल भाषाओं में जन्म पाकर बाद में सङ्कृत भाषा में प्रवेश किया क्योंकि चम्पू का सङ्कृत का नहीं है। यह कन्नड का है। यह बात उपर स्पष्ट कर दी गयी है। धन इन विषय में और लिखना केवल विष्टेपण होगा। इस विषय पर अन्य संप्रोषक विद्वान् भी अवश्य प्रकाश देंगे।

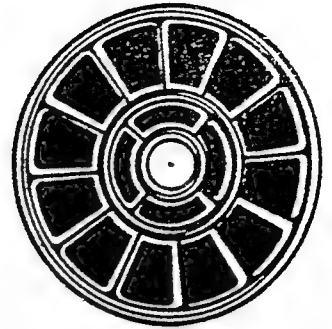


कन्नड़-साहित्य में जैन-काव्यों की लौकिक परंपरा

(१० वीं से १२ वीं सदी ई० तक)

सु० रामचन्द्र

प्राध्यापक हिन्दी विभाग, कर्नाटक कालेज, धारवाड़



आचार्य विनोबाजी ने साहित्यिको से चर्चा करते समय एक स्थान पर संकेत किया है कि 'श्रष्टनम साहित्य का निर्माण या तो पूर्ण विरक्त द्वारा या सृष्टि के उपामक भक्त द्वारा सम्भव होता है। जो पूर्ण विरक्त नहीं है या नृष्टि का उपासक नहीं है, वह स्फूर्तिदायक आश्रय में अपनी प्रतिभा का विकास करने में समर्थ होता है।' कन्नड़ का यह नुयोग ही माना जाना चाहिए कि उमें आरम्भ से ही ऐसे साधकों का स्नेहदान मिला जो विरक्त थे, नृष्टि के उपासक भक्त थे और स्फूर्तिदायक राजाश्रय में सम्मानित भी थे। राजदरबारों में गृहकर इन कवियों ने 'प्राकृत जन गुनगान' में ही अपनी मौलिक प्रतिभा का अपव्यय न होने दिया। ये कवि कभी आश्रित नहीं रहे। आश्रयदाता ही इन मुक्तियों की उपस्थिति से निज को गौरवान्वित मानने लगे थे।

इन युग की दूसरी विशेषता साहित्य का संप्रदायातीत होना है। ये साहित्यिक अपने-अपने संप्रदाय का समा-दर करते हुए सभी पक्षों संप्रदायों में भिन्न तथा परे दिखाई देते हैं। यही कारण है कि ये समसिद्ध कविस्वर चिन्तन साहित्य-निर्माताओं की श्रेणी में आते हैं और युग-जीवन के यथार्थ को युग-वाणी में चरितार्थ होने देते हैं। अविच्छिन्न कवि जैनधर्म के अनुयायी थे। आदिकवि पद्म 'जिनसमयदीपक' की उपाधि में विभूषित थे ही। पर इन उदात्तता महानुभावों ने जैनपर राजदरबारों में अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया और आजीवन जैनदर्शन के आलोक में सत्स्वती की आराधनाओं में लगे रहे। वाणी की यह उपासना प्रेम-श्रेय की समन्वित नायना में गरिमायुक्त रही। सत्कृत की महती परम्परा में पोषित इस साधना में जीवनदर्शन तथा अभिव्यज्जना शैली की नवीनता काव्यक्षेत्र में गोचर होने लगी। युगीन आदर्शों के अनुरूप परम्परागत आल्यानों-पात्रों की अवतारणा होने लगी। चरु काव्य-शैली में तत्सम तथा देवज पद-विन्यास का चमत्कार लक्षित होने लगा। कवियों ने एक ओर रामायण, महाभारत जैसे आकर ग्रन्थों से कथानक तथा पात्र अपनाये और दूसरी ओर जैन पुण्यों के आदर्श पर तीर्थंकरों की काव्यात्मक जीवनीया प्रस्तुत की। पहली श्रेणी की कृतियाँ लौकिक और दूसरी 'आगमिक' रचनाएँ मानी गईं। प्रत्येक कवि ने इन द्विविध काव्यविधाओं में अपनी अद्भुत रचना पट्टना का परिचय दिया। कलात्मक नौदर्य का उत्कर्ष तथा सद्बिचार के प्रतिपादन का महोन्नत आदर्श दोनों शैलियों में लक्षित हुए। इस लेख में जैनकाव्यों की लौकिक परम्परा का विश्लेषण प्रस्तुत करना हमारा अभिष्ट है।

आरम्भिक युग में कन्नड़ साहित्य के 'रत्नत्रय' के नाम में विख्यात पद्म, पोन्न और रत्न हैं। इनमें आदिकवि पद्म द्वारा प्रवर्तित साहित्यिक संप्रदाय ही परवर्ती कवियों के लिए राजपथ सिद्ध हुआ। 'विक्रमाजुनविजय' महाकाव्य के प्रणेता 'कवितागुणार्णव' पद्म (८४१ ई०) 'भुदविजनननोमानसोत्त सइस' ही नहीं, 'नरस्वति मणिहार' भी माने गये। जैन ही नहीं,



जननर कविता न भी हूँ वाचनचर्चा कविबुलगावभीम मुक्तवठ से थापित किया। नमग स्पष्ट है कि कल्लड साहित्य में आन्विषि पद सत्तग्य अपूव रस भाव-व्यञ्जना के अनुपम प्ररणा स्रोत थ।

जन कालों की लौकिक परम्परा में आन्विषि गुण की प्रपातता है उगाह की अन्धुत यजना है चरितनायक व पोदप-व्यजन म अपने आश्रयता व पराक्रम को सन्निहित करने का चमत्कारपूर्ण दश विधान है परंपरागत पात्रों के मनोभावा का निरूपण करने म मनोविज्ञान-सम्पन्न यथावधान मानवीय दृष्टिकोण जन तथा चरित्र सङ्गठितया व सार सत्य का समन्वित मूल्योक्त एव आत्मप्रतीति के साथ उसका स्पष्ट प्रतिपादन है। अविरोधी मानवीय जीवनाङ्गों व प्रति आम्बावान य कवि काव्य कला को चरम उत्थप पर पहुँचा म समय हुए हैं। इस परंपरा म विनमातु नविजय (१४१ ई.) साहसमीमविजय (१८२ ई०) तथा रामचरित पुराण (लगभग ११०५ ई०) तीन अनुपम आम्बापानकाव्य हैं जिनम ऊर्ध्व गणित सारी विगपताए सट्टन ही लिखाई देती हैं। अथ नम म इनका परिचय नीचे किया जा रहा है।

‘विक्रमाजु नविजय’ या ‘पद्मभारत’

यह महाकाव्य चालुष्यवर्ग के नरेग अरिंसरी व पराक्रम से सवद्ध रचना है। चालुष्य की राजधानी पुत्रिनेरे—धारवाड जित का नरमेस्वर—थी। अरिंसरी गुणाथव नाम म विख्यात था। सोमदेव व अरिंसरि (१५६ ई.) का म भी इसकी गूरना-बीरता का उल्लेख है। आन्विषि पद न अरिंसरी की महिमा का गुणगान करने व लिए महामारत के बीरवती अनुत न का विषय किया है। कवि ने महर्षि व्यास रचित महाभारत का ही अनुसरण किया है। अपन उद्देश्य की पूर्ति व लिए उसम निम्नलिखित परिवर्तन कर लिए हैं

यहाँ का प्रधान पात्र अनुत न है। द्रौपदी पाँच पाँडवों की नहीं बलत अनुत न की जीवनतगिनी है। हस्तिनापुर म मजन तथ। मुमद्रा के सिंहासनाहूड हाते ही कथा सभाज हा जाती है।

महाकाव्य के आवास या साग व लिए कोई विगिष्ट लीव न रहा है। पर कवि न सग व प्रल म सवन्न किया है कि यह विक्रमाजु नविजय कवितागुणाविरचित है। कवि प्रसन्न वमगीर-वचन रचना चतुर है। यह विविध विनुपजन विनुत जितपदीभीज वर प्रसादोपन है। कवि न गणित प्रमुख घटनाक्रम का सार शव्य दे दिया है और यह दावा किया है कि मैं न कोई प्रसंग छोड न हूँ। सभी घटनाए यहाँ समाविष्ट मिल जायगी। राजधानी पुत्रिनेरे की परिकृत कल्लड म रचित यह चतुर्थाव्य वचना लोकप्रिय हुआ कि इनके सामने पूर्ववर्ती काव्य कीरे पड गय और परवर्ती काव्य वमका अनुकरण मात्र रह गय।

धीनहु आरवागा म प्रगीत इस चतुर्थाव्य व भारतम म चरितनायक का परिचय कराया गया है—‘चालुष्य के म मुदमल नाम का अवीरवर था। सपान्दल प्रेग पर बहु घामन करता था। इसका कुमार अरिंसरी था जिनन निरूपमय के राज्य पर आक्रमण किया। अरिंसरी व नरसिंह तथा अन्धे दा सडन थ। दुष्यमन्त नरसिंह का भवने वडा नडका हुआ। वडगा दुष्यमन्त का लेख्युत था। बहु गा न डर नडादशो गने और भीम को पराजित किया। बहु वडा उगार था। दुष्यमन्त और नरसिंह नम स बहु गा व पुत्र और पौर हुए। नम नहुष पुष अगीरध धार्मि स भा नरसिंह प्रजापी था। सान उसम पराजित हुए गुजर खेता उसम हार गई और महीमान व पर उसम मासन उगड गय। जलध्व नरसिंह की रानी थी। अरिंसरी इनका सपन था। गात्र म ही दमको घूला सवर्जित थी। घरा पूर्वज म सवर्जित धार्मि सपन होन व कारण कवि न उगे घरात चरितनायक चुना है अथ न मे उसकी ममा मना गिमाई है और काव्य रचना आरभ की है।

इसम पहन जा ममनाचरण है बहु भी कवि व उगाह दृष्टिकोण का परिचायक है। कवि उगाहतामय की वचना व बाँ उगार मदेनर प्रवर्ण हाराड महज मनोक सरस्वति दुर्गात्री और विनायक का उगडा बट्टे है।

कवि की दर्प-दीप्त मनोवृत्ति का आभास हमें इस कथन से मिल जाता है कि कविता गुणार्णव ही कवियों में सर्व-श्रेष्ठ है और चरितानाटक गुणार्णव ही राजाओं का राजा है। मैं महर्षि व्यास का अनुगमन करता हूँ, पर उस स्तर पर मैं अमिनन्दन का पात्र नहीं हूँ। गुणार्णव की महिमा का परिचय कराना मेरा ध्येय है और गुणार्णव ही अर्जुन में बरावरी का दावा कर सकते हैं।

इतनी भूमिका बाँधने के बाद कवि महाभारत का आगम्य आरम्भ करते हैं। तीसरे आश्रवास में अर्जुन से द्रौपदी स्वयंवर का वर्णन है। तेरहवें आश्रवास में दुर्योधन का विनाश भागिकता से वर्णित है। कर्ण के वध पर दुर्योधन अधीर हो उठा है। धृतराष्ट्र और गांधारी के परामर्श के बाद भी दुर्योधन पांडवों से मुलह करने को तैयार नहीं है। शल्य के नेतृत्व में युद्ध जारी रखा जाता है। धर्मराज से जूझते शल्य का प्राणांत होता है। उद्विग्न दुर्योधन रणक्षेत्र में अकेले ही क्रोध पडना चाहता है। सजय इस दुस्माहम में उसे मना करता है। भीष्म से विचार-विनिमय का मुभाव देता है। पितामह से मिलने जाने समय मैदान में द्रोण, कर्ण, वृषभेन, दुःशामन तथा अन्य मुहूर्ध्व वीरों के मृतक शरीर देख दुर्योधन मर्माहत हो जाता है। पितामह में मिलकर उनकी सलाह माँगता है तो वे भी शांति की अनिवार्यता का स्मरण दिलाते हैं। दुर्योधन को यह बात रुचती नहीं। उसका रुख पहचानते हुए पितामह यह उपाय बताने हैं कि शाम को बलराम के लौट आने तक दुर्योधन चुप रह ले और उनकी सहायता पाकर मघर्ष जारी रहे। पितामह दुर्योधन को जलमय की दीक्षा देते हैं और वैशंपायन मरोवर में छिपे रहने की सलाह देते हैं। दुर्योधन को रणक्षेत्र से लापता देख पांडव चकित हो जाते हैं। भीम बड़ी चतुराई से उनकी चाल का पता लगा लेता है। वह सरोवर के समीप पहुँच कर चुम्बनी हुई वाणी से दुर्योधन को ललकारता है। वीरवर स्वाभिमानी दुर्योधन इस ताने से आग-बबुला हो जाता है और पानी में बाहर निकल कर गदा फेंकने लगता है। भीम के गदा-प्रहार से दुर्योधन की जाय दूट जाती है और उसके प्राण पत्थर उड़ जाते हैं। अर्जुन राज्य का सर्वाधिकारी हो जाता है। यहाँ विन्तार ने इस आश्रवास का विवरण देने का आग्रह यही है कि परवर्ति कवि रत्न ने इसके आश्रार पर 'नाहनभीमविजय' या 'गदायुद्ध' महाकाव्य रचा है।

चौदवें आश्रवास में हस्तिनापुर में अर्जुन तथा सुभद्रा का राज्याभिषेक—सिंहामनारोहण—वर्णित है। यहाँ कवि के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाले वृत्त का भी उल्लेख मिलता है। कवि कहता है कि 'वेणिमटल प्रदेश में वेणियलु नाम का सुन्दर नगर है। कोट्टूरु, निडगु दि, विक्रमपुर नाम की वस्तियाँ इनसे लगी हुई हैं। विक्रमपुर में वत्स गोत्री माधव सोमयाजी निवास करते थे। अभिमानचन्द्र, कुमारय्या, अभिरामदेवराय क्रम से इनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र थे। अभिरामदेवराय जैन धर्मावलम्बी हुए। कविता गुणार्णव पप इनके सपूत थे। अरिकेमरी के दरबार में पप सम्मानित थे और उनकी इच्छा रखने हेतु यह महाकाव्य रचा गया है।

कवि ने अपनी अनाधारण प्रचक्षपटुता का परिचय इन शब्दों में दिया है—'पुलिगेरे की परिष्कृत कन्नड में पप सफल काव्य-रचना करते हैं। 'पञ्चभारत' तथा 'आदिपुराण' पूर्ववर्ती समस्त कृतियों को फीका बनाने में समर्थ रचनाएँ हैं। कवि ने केवल छ माह में 'भारत' और तीन माह में 'आदिपुराण' समाप्त किया है। महर्षि व्यास की परम्परा में कवि पप 'पुराणकवि' होने का गौरव पा चुके हैं। इसमें वर्णित महापुराणों की महिमा का प्रताप है कि यह भारत सर्वत्र सम्मानित है।'

इस लम्बे उदाहरण में यह स्पष्ट है कि पप कवि के पूर्वज ब्राह्मण थे, उनके पिताजी जैनधर्म में दीक्षित हुए और प्रतिभामय कवि ने जैनदर्शन के आलोक में लौकिक 'आगमिक' काव्य-विधाएँ प्रवर्तित कीं। पर इस धर्म-परिवर्तन के आवेश में कहीं भी कटुता या प्रतिस्पर्धी मनोभाव व्यक्त नहीं हैं जो आज भी धर्मान्तर प्रेमियों के लिए अनुकरणीय आदर्श है।

पप कवि की वर्णन-शैली में कालीदास, वाण, भारवी आदि महाकवियों की शिल्पचातुरी तथा रामायण, महाभारत

की धमनु रचना प्रविषा की छाप दिग्दाई दती है। यहा सखुत की स्वर माधुरा प्राहृत की ध्वनि लहरी बनड कस्तूरी का मोरम बढाने में सहायक हुई हैं। यहा महाकाव्योचित धनु-व्यापार बणन तो हैं ही रघातुभूति में सहायक भाव व्यञ्जना अनुभाव विधान तथा धनवार योजना भी है। पात्रों का स्वभाव संचित करने में कवि की सवन्नीलिता का उत्कण्ठ दिग्दाई दता है। अनेक चरित्रात्मक का गुणगान तो प्रत्येक कवि करता है पर धपने घाण्ण नायक के प्रति स्पर्धा की बडाई विरन हो देखने को मिलती है। पपभारत में अजन क वीराचित "गाण्णरो का "गोरेवार बणन है ही साथ ही कण की त्यागशीलता का प्रसादपूर्ण चित्रण भी है। अनुन की वीरगाथा का कणरसायन की सजीवता के समन्वित विकास में पर भारत के रचयिता की बडी सफरता प्रा है हुई है। बनड के कविवर पूय बेंद्रजी में ठीक ही कहा है कि अनुन की महिमा भारत का हृदय रसायन है जो कण की कीर्तिगाथा उत्तका कण रसायन हैं। कण का स्मरण हो आते हो कवि का कर्पाकलित अत करण वरग पडता है और का "अन न म गननायका के प्रति समवदना बाने की मई परवरा अल पडती है।

मृष्टि के उपासन भक्त कवि पप का प्रहृति प्रम रविता का आनयन के है। यहाँ का प्रहृति प्रम निमल हृदय का प्रतीक भावधार का प्रयास हो है। महाकवि के ल गाम निमित्त प्राहृति रूप व्यापार का उ वल भी हुआ है। पर आननन रूप में प्रहृति चित्रण में कवि की तमयता व्यनन हुई है। ऐसे स्थला में कवि की सहज सौन्दर्यानुभूति का उमेय आनयन गणना है अलहून "गो का बौनुर मोन हो जाता है। यदि वनवासी की प्राहृति विमूढिया पर विनीय धनुस्त्र है और वहाँ के वन प्रानर की यहुविध भगिषामा का पन वल परिपतिन प्रहृति-व्या ध्वित किया है।

शृंगार के प्रहरण में प्रहृति का उद्घावन चित्रण में अधिक हुआ है। प्रहृति के रूप व्यापार में प्रमानुभूति के पीयूष तम का विस्तृत समावर्ण पठकनु-व्यनन में दिग्दाई दता है। आन बरा इन दाना पर ला कवि विनीय मुग्न है। कवि की दृष्टि में ये दोना सत्तार सार सवरव का हैं। वप भर प्रवर परिमाण में ये दोना मिन जाए तो क्या बहना है। वमन का विलास आन में तथा बसत और कामदव का प्रभुत्व विस्तार वेला में अनुभव करने को मिलते हैं। अगणित पाप्मा-मुष्या का भी उल्लेख हुआ है पर आन तथा वेला पर कवि तन-मन विधावर वर चुका है। प्रयत्न अनु का सन्निध चित्रण भी कवि की मूल निरीक्षण क्षमता का परिचायक है। मेघावन नम में हृदय का द्रव्यजन घनोत्पा वरदान है। गरत का आनयन लगता है मानो सवार न घाँसे पा गया हो। गधि रवि के उष्य का दुःसाजन भी मनोरम है। इन चित्रण विधान में अयप्रहृण का कुहूह कम रिम्बप्रहृण की वननामकृत धनुभूति की तीव्रता अधिक है। यदि ते इस महाकाव्य में सखुत के वणवत्ता के साथ बनड के तिजी छप्पा का भा प्रयाण किया है।

इस प्रकार हम यह सफुडे हैं कि विनमानुनविजय आने गुण के सम-वपायक जीवन-व्यनन का प्रतिनिधि काव्य है।

‘साहस भीम विजय’ या ‘गदायुद्ध’

यह भी एक प्रसिद्ध चपूकाव्य है और प्राञ्चल बनड की अनुम रचना है। रचयिता कवि रन में अयन आनयनता तनव तीय के राजकुमार इरिवरहग का वीरता का गुणगान करन हनु गमका प्रणयन किया है। इस

१ मसर राय में उत्तर कर्नाटक के शिरसी नगर स १- अक्ष पर स्थित ऐतिहासिक प्रदेय है। कहा जाता है कि ईसवी ४वी के आरम में यही अति परवरा में प्राञ्चल वल्लभ आनयन के मूल छत्र परली धार निविष्ट हुए। आनयन भुनवत आरती जो की इस सुवमा के लिए अंजनदा वरा आभारी ह।



काव्य मे परमभट्टारक सत्याश्रम (इरिववेडग) के रण क्रीडल का भीम के अमृतु पराक्रम के रूप मे उन्माहवर्धक चित्रण हुया है। अत इमका नाम 'साहयभीमविजय' पडा है।

काव्य का वर्ण्य विषय गदायुद्ध है। दुर्योधन-भीम के हस्मन्लाघव के वर्णन द्वारा कवि ने चरितनायक इरिववेडग की अनन्य शक्ति-सामर्थ्य का महाकाव्योचित उद्घाटन किया है। यह आदिकवि पप के 'विक्रमार्जुनविजय' के तेरह्वे आश्वास पर आधारित अनुपम कलाकृति है। उद्देश्य-निष्ठ के लिए कवि ने मूल नथानक मे आवश्यक परिवर्तन कर लिया है। महाभारत का दुर्योधन स्वभाव मे ही दुष्ट है, अत अनिष्ट का उपभोग करने को विवश है। यहा का दुर्योधन बडा तेजस्वी है, श्रेष्ठ-गुण सम्पन्न है, वीरो जी परपरा मे गौरवान्वित होने योग्य है, पर नियति की निष्ठुराई के कारण अभाग्यग्रस्त होता है और मक्की महानुभूति का पात्र बन जाता है। कर्ण एवं अभिमन्यु के वध पर दुर्योधन के विलाप मे करुणा का नया स्रोत ही उमडा दिखाई देता है। धर्मराज के चरित्र-चित्रण मे नई उद्भावनाओं के द्वारा कवि ने उदात्तता व्यक्त होने दी है। महाभारत की भाँति गदायुद्ध त्रासद (Tragedy) नहीं है। यह सुखान बन गया है और आदि, मध्य एवं अंत मे लोक मंगल की ध्वनि व्यक्त हुई है। पूर्ववर्ती 'विक्रमार्जुनविजय' ही इसका आदर्श है। इधर-उधर कवि पप की उक्तिया भी ज्यो-के-त्यो उद्धत कर दी गई हैं। कोई कोई इसे 'विक्रमार्जुनविजय' की प्रतिच्छाया भी कहते है। जो भी हो, इतना अवश्य सही है कि महायुद्ध के प्रणयन मे पपभारत मे कवि विशेष प्रभावित है। रत्न कवि की मौलिक प्रतिभा का पता इतने से लगाया जा सकना है कि कवि ने एक सीमित वृत्त को विस्तृत पटल पर बहुरंगी ताने-बाने से सुशोभित किया है और दम आश्वासो मे एक आश्वास की क्या का वितान ताना है।

गदायुद्ध दम आश्वासो-मर्गो मे वर्णित महाकाव्य है। प्रथम नर्ग भीममेन की प्रतिज्ञा का प्रकरण है। प्रथारम मे कवि ने विष्णु, शिव, ब्रह्म, सूर्य आदि की वदना की है। मयूरवाहिनी यक्षिणी मे चालुस्य वध की विजय की याचना की है। चालुक्य नरेश का मन्मथ के अनुरूप न्युतिगान किया है। वाणी से अनुग्रह की आकांक्षा व्यक्त की है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, वाण आदि कविपुत्रों का अभिवादन किया है। अत मे गद्यधारण उपाधि से विभूषित राजकुमार इरिववेडग—सत्याश्रम—की वीरता का स्तवन किया है।

कवि सत्याश्रम को इस चपूकाव्य का चरितनायक घोषित करता है। उसका पराक्रम अंकित करने के लिए भीम का शौर्य निरूपित करने का स कल्प घोषित होता है। पीछे अपना परिचय देते कवि कहता है कि—'मैं कवि रत्न हूँ। सामंतो से सम्मानित, मङ्गलेश्वर से गौरवान्वित तथा चक्रवर्ती मे पुरस्कृत हूँ। ससार मे यश ही अमर है। घन अशाश्वत है। सपत्नी के मोहजाल मे फसते क्यों है? आनन्दानुभूति हो, परपरा से परिचित हो, जनभाषा से अभिरुचि हो तो काव्य निर्माण द्वारा जोवन सार्यक बनाया जा सकता है। मैं तैलप चक्रवर्ती के साम्राज्य का कवि मन्त्राट हूँ। पूर्ववर्ती कवियों मे से किमी ने अपनी प्रतिभा से वाग्देवी के भांडार की मुहर तोड़ी नहीं। रम-भाव के मौलिक स्वरूप-भेद को पहचानते हुए अनुकूल वर्ण-विन्यास द्वारा उसे काव्य-रूप देने मे मैं चतुर्मुख के समान हूँ। गगमडलेश की कृपा से मैं अनर्घ्य रत्न हूँ। वसुधाधिपति की सेना मे स्वर्ण-विजडित रत्न के समान 'महारत्न' नाम से विश्रुत हूँ। मेरी कन्नड प्रांजल कन्नड है, सस्कृत मधु-रस्योत्पन्न है। मैं अमय कविता-विशान्द हूँ, गुणाढ्य हूँ। मेरा काव्य 'कृतिरत्न' है। इसे परखने का पराक्रम है किसमे? इसमे सिंहावलोकन क्रम से समूना भारत चित्रित किया है। पूर्ववर्ती महाकाव्यों की तुलना मे रत्नी भर भी यह चम्पू घटिया नहीं है। काव्य मे सहज ही गोचर गुण-दोष की आलोचना करने वाला दोषी नहीं माना जाता। सपन्न को उदार होना है, वाक्सपन्न को अमत्सर होना चाहिए। ऐसी दशा मे कवि भी कृतार्थ हो सकते हैं। सरस्वति के वर के अनुपात मे स्वर सधान मे लीन होने वाला कवि पुण्यात्मा है। दण्डनायक केशि ने इसका अवलोकन किया है, अत यह कृति 'यश श्री-वनिता की अलकृति' हो गई है।'

इम आत्मपरिचय मे कवि ने अपनी बडाई के अलावा काव्य के स्वरूप तथा प्रयोजन पर अपना विचार भी व्यक्त किया है। लगता है कि आवेश मे पडकर कवि ने अपने प्रेरणा-स्रोत पप कवि का कही भी नाम लिया नहीं है। भट्टनारायण की कृति 'विणीसहार' का भी उल्लेख नहीं किया है जिस पर यह चपूकाव्य कुछ हद तक आधारित है।

यह निर्विषय है कि गद्ययुद्ध एक अनमोल इतिहास है। इसका ज्ञान अनुकरणीय है। प्रसंग के अनुसार। गीतों का उच्च स्तर की विषयता है। मनासस्थिति का महान दृष्टा न्यायिता मार्मिक विवरण समर्थ है उतना यही समर्थ होता है। रत्नवि मानव हृदय का पारस्वी है। बार बार दोना का प्रभावगामी विषय यही हमारे है। उत्तम रचित की भाँति गीत की भी वैज्ञानिक व्यक्तता है। भीम के पीछे के वचन में भीम पीपी के स्वरूपित दृष्टि पात में तथा दुर्घोषन के विचार में हमारा प्रमाण लगा जा सकता है। भाता गिता का विनामह स विना मागन वाले दुर्घोषन का विषय मय पर आधारित करने वाला है। युद्ध का हस्तक्षेप के वचन में वचन की पत्नी दृष्टि विमय जगने वाली है। यद्यपि वचन की मुख्यगोचर प्रतिभा का ज्ञान गीत होता है गीत की गीत प्रति योजना का भाव है।

यही कारण है कि गद्ययुद्ध का प्रतिस्पर्धा में सुस्पष्टता है। यहाँ का पात्र महीन है। बीरपापा युग के सत्तन प्रतिनिधि हैं। म कवि के हाथ बटुलनियों का है। कवि प्रत्यक्ष पात्र के भाषा साहित्य स्थापित करना है और पाठक को उनके अनुकूल प्रतिज्ञा पाठक के अनुकूल नियम की गूँथ में वेता है। इन पात्र अपनी सबलता दुर्बलता के साथ ईमानदारी के साथ पाठक के सामने पेश हो जाते हैं और अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखते हैं। इसलिए यह रचना वाच्यता का ही नाम एक समूह के युग की मधुरिणी का प्रतिनिधित्व करने वाली मानी गई है। कवि की प्रतिभा की आप सबल मक्ति मिलती है। सरल से सरल तथा जटिल से जटिल प्रयोग के वचन म कवि की वैपिनी और मस्ती साफ जाहिर होती है।

प्रसंगोक्ति सूत्रिया—सदृश प्राज्ञ वचन सीमा की—जाताकिता के प्रयोग में गीत में अपनी भा गई। उचितोक्ति अदृष्टि अलक्षित रत्न की गीत की सूत्रांतर याम्बा है। सूत्र रूप में जीवन का मय के उद्घाटन करने में कवि का मकल हुआ है। अनापना ही अनुकूल हृदय में विमल विचारों से तथा सज्जन कल्पना से घाँटरी की धाराधना में तालमेल रचने वाला ही कलात्मक बन रहित है। समस्त सूत्र रचनाओं व्यक्तता के अनुकूल पद्योक्ति रत्न कवि की मकल बनी देत है। बिन्दु में बिन्दु की गमगति करने की गमाहक गति भी नाम सम्पन्न है। रत्ना स्थान में ही रत्न की पत्ति के साथ साथ दिया जा सकता है अनुवाद में गता।

गद्ययुद्ध में गीतों का गल निष्पन्न मात्रावली का वचन विचार सूत्रित करता है। अनापना म । Dramatic poem का तात्पर्यवत्ता भी माना है। कथानक का विचार पात्रों के स्वभाव तथा चरित्र आधारित होता जाता है। रत्ना गता है कि कवि ने दुर्घटनाप्राप्त जीवन का निराह म अध्य बाध्य में करने का महत्त्व दिया है। यहाँ का गीत पात्र परचरगत छाँटों के बीच में एक एक है। फिर भी कवि ने मानस दृष्टिकोण से ही इनके स्वरूप का वर्णन दिया है। भीम और दुर्घोषन का काव्य और प्रतिभा है। सज्जन तथा पापी का स्थान भी कम महत्वपूर्ण मता है।

भीम धारम से ही प्रचरगरी रीत का गताव प्रक्रिया है। उद्यम जोड़ प्रचारण भी रहा है। दुर्घोषन में धर्मार्थित निरुद्ध और पाठित पाठकों में प्रतिभा की ज्ञाना में युवा हृदय जीव प्रचरवा भीम है। भीम का नाम है कि गीतों के धर्मार्थ का कथा रचन का विचार ज्ञान मय का जीना वचन माना जाय। गीतों की निरुद्धि जग धीम ना उद्यम कर देती है। दुर्घोषन रचना म साधना है। अज्ञा भीम उद्यम गता म लय गता है। गीत की व्यक्तता का प्रतिभा अनुकूल धर्मार्थ कवि का गता निरुद्ध दिया है। धर्म ज्ञान ही बनता है। रत्नास्थान भाव मने गता म सम्पन्न ज्ञान है। धर्मना सीमा भीम का व्यक्त करता है। धर्म म जीव का धर्म गता नहीं गता गता नहीं गता। धर्म गीत हृदय हाक है। धर्म का निरुद्ध धर्म गता गता भा है। गता मय म गता गता मने का गता गता। धर्म ज्ञान म। म दुर्घोषन का धर्म गता का ही नाम गता। भीम की निरुद्ध मना का जीना ज्ञाना विरत यहाँ उद्यम पाया है।





यहाँ में भीम गावारी के नामने जाना है। माता के सामने उसके प्रिय मुत के वप का नक्क्य दुहराता है। यहाँ उनके रोप की पराकाष्ठा अ किन है, माय ही उसके उद्धत स्वभाव का बोध होता है। अन्त में वैश्यायन सरोवर के पाम पहुँचकर वह जल में छिपे दुर्घोषन को जो नलराग्ना है, वह रोष या चम्म उन्मर्ष ही है। गिन-गिन कर गदा का जो प्रहार वह करता जाना है और प्रति प्रहार में माय जो दृष्टा भग्ने चगता है, वह भीम के स्वभाव के अनुरूप ही है। भीम दुर्घोषन का मुकुट गिरा देता है और उसकी जाँच तोड़ देता है। द्रोपदी का वेणी-महार करने के बाद भीम धरती पर गिरे दुर्घोषन पर लान जमा देता है। ये रोषावेग, भयकर गजंन, शौद्धय भीम के लिए कोटि असह्य नहीं प्रतीत होते। इनके विपरीत प्रतिनाया दुर्घोषन के चित्रण में नवि की मौलिकता अधिक निम्बर उठी है।

विश्व साहित्य के महोन्नत पात्रों की श्रेणी में कविग्रन्थ के दुर्घोषन की गिनती होती है। ब्रम्ह साहित्य-प्रेमियों में तो रत्न का दुर्घोषन घरेलू चर्चा का विषय है। गदाबुद्ध को यह खूबी है कि यहाँ नायक भीम की अपेक्षा प्रतिनायक दुर्घोषन महदय का रजन करने वाला बन गया है। काव्य के दूसरे आश्वाम ने छठे आश्वाम के आगे भाग तक दुर्घोषन की ही चर्चा है। हमें अर्थान् अंतिम आश्वाम में दुर्घोषन भीम की वरावरी का पात्र अ किन मिलता है। काव्य में वर्णित प्रसंग ही ऐसा है कि दुर्घोषन की नीचना ओम्भन-नी हो जाती है और उसकी महानता उभरती जाती है। पाँडवों के साथ हुए अत्याचार का विस्मृत वर्णन यहाँ भी होता, तो दुर्घोषन हमारी महानुमति का अधिकारी न न होना। भीम की उक्तियों में इसकी स्मृति क्षणभर के लिए जागृत होती है। अन्यथा काव्य में दुर्घोषन मानवीय घरातल पर आचरण करने वाला अनाधारण वीर पुरुष ही अ किन मिलता है।

दुर्घोषन के व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी तत्वों का समावेश हुआ है। गुण-दोष के नाना में निमित्त इन जटिल स्वभाव के व्यक्तित्व का भव्य विश्लेषण यहाँ मिलता है। दुर्घोषन में राग-द्वेष, दम-दर्प, छलकपट, स्वजनप्रेम-मित्रप्रेम, आत्मप्रशंसा-परनिंदा, धीर्य-मात्सर्य, स्वैर्य-श्रीदर्य आदि वेमेन चित्तवृत्तियों का योग हुआ है। अतः उनके सकल अवसाद पर नभी की आँखें गीली हो जाती हैं। काव्य के आरम्भ से पूर्व द्रोण, कर्ण, जनार्दन, दुःशामन आदि महारथी कालकवलित हो गये हैं। 'ममरपीर, महाधूर, छनी, नक्कमोगनक्षीनति, अभिमानघन' दुर्घोषन एकाकी रह गया है। मजय के माय यह उरावने लडाई के मैदान में जा रहा है। सजय पाँडवों की बहाई करता है और उनसे समझौता करने को दुर्घोषन ने अनुरोध करना है। दुर्घोषन के रोम-रोम में रोष प्रवृत्त होता है। वह पाँडवों को पीन डालने का प्रण करता है। दुर्घोषन मजय की निष्ठा, नेवापरायणता और प्रामाणिकता से आश्चर्य है। इसलिए उनके मुँह में पाँडवों की प्रशंसा सुनने का आदी हो गया है। वह निमी भी मूरत से समझौते के लिए तैयार नहीं है। छन में लिया गया राज्य लौटाने को भी प्रस्तुत नहीं है। इस विषय पर धृतराष्ट्र-गावारी की नेक नलाह मानना भी उसे पसन्द नहीं है। उनकी मीठी बात भी इस नपुत के लिए कड़वी घूँट प्रतीत होती है। उसे अपनी कुटिलता पर नकोच नहीं उल्टे गर्व होता है। शोकनागर में गोने खाने वाला यह वीर अपने को 'वज्रमन' वाला मानता है। रणक्षेत्र में स्वजनो-मित्रों की निर्जीव देह देख महसा वह द्रवित हो जाना है। लक्ष्मणकुमार, भाई दुःशासन, मायीकर्ण इनकी याद में तडपने वाला दुर्घोषन दमनीय हो उठता है। दूसरे ही क्षण उनके प्रतिशोध में यह शोक दब जाना है।

भीष्म पितामह ने मिलने पर पल भर के लिए दुर्घोषन अपने पाप-कर्म पर पछताता है। लेकिन पितामह के आदेशानुसार गाँति स्वीकार करने को तैयार नहीं होता। हाँ, उनकी डच्छा रखने के लिए वैश्यायन सरोवर में छिपने को राजी हो जाता है। पाँडव इस सरोवर के नमीष आकर उस पर व्यगोक्तियाँ बरमाते हैं। भीम की ललकार मुनते ही 'उबलते रोप के माय पानी में पनीने से लयपय दुर्घोषन नाहमगर्वालिङ्गृत' हो बाहर निकलता है। भीषण मधर्प छिड़ जाता है। भीम एक बार मूर्च्छा खाकर गिर जाता है। बेहोशी की हालत में दुर्घोषन उस पर कोई हमला नहीं करता। वीरोचित्त-उदारता का, आदर्श रणनीति का कैसा मुन्दर नमूना है। होय में आते ही भीम दुःपुने वेग से उस पर दूटना है, वेदत पाकर उसकी जाँच तोड़ देता है। भीम की प्रतिज्ञा सफल होती है। दुर्घोषन का जीवन सार्थक हो जाता है। उनका अन्त मर्मभेदी अवश्य हुआ है।

वस्तुविधान और चरित्रविद्या की दृष्टि से यह रामायण विलक्षण है। यह रामकथा विमुलाचल से गौतम ने मगध नगर में कही है। गुरुवर्षा में विद्युत् उस कथा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

इस कथा में जित-मुनियों ने कृत्यों को जन्मान्तर का भर्म नमन्नाया है। इह के जीवन से उन्हें छुटकारा बिना जैनधर्म में दीक्षित किया है।

इसका नायक राम नहीं, लक्ष्मण है। राम के केवल तीन तथा लक्ष्मण के अनेक विवाह यहाँ वर्णित हैं।

उन्में पुत्रकामेष्टिदाय की कथा नहीं है। राम की सत्ता का नाम अमराजिता है। लक्ष्मण मुनिया का एम्मान मुन है। अनुष्म नृपति का सृष्ट है।

राम लक्ष्मण बलाच्युत हैं, कागापुण्य हैं। लक्ष्मण के उदर नाम हैं—अष्टम केसव, उदंभ, बालुदेव, वृष्ण, नागाया, उदमीधर, पुरुषोत्तम, जगदीश आदि। लक्ष्मण नायक है। लक्ष्मण श्यामवर्ण हैं, राम गौरवर्ण हैं।

विश्वामित्रजी का कहीं उल्लेख नहीं है। नागदजी सीताजी पर अनुष्म हो गये हैं।

प्रमान्डल वैचरनगेन इदुगति का पारित पुरु है, सीताजी का वर नाई है। नारद-निर्मित सीता के विष पर वह नुब हो जाता है। अनजान में हुए इस अपचार में अन्त में क्षित होता है, पञ्चापाप प्रकट करता है।

वैचरनगेन इदुगति के पाम कथावर्त, सागरावर्त नामक दो वन्य थे। जनक के दोनों वन्य मिश्रिलानगरी ने आये। पहला वन्य राम ने और दूसरा वन्य लक्ष्मण ने तोड़ा। अन्त में सीता और चन्द्रध्वज की दुःख दुःखियों से दोनों का विवाह हुआ।

राम लक्ष्मण की विमलमपदा लड़ भग्न विषाद में मग्न हुए, विग्न हुए। केकटी के पान्थों पर जनक के अनुज वनक की प्रिया से विवाह किया।

विजय नागा के दीक्षान में लक्ष्मण के कई विवाह मग्न हुए।

एक प्रतीकनधानी राम के साथ मुगीव की कथा, उदिसुवनगर की गजकुमारी, रत्नपुगदीय की कुमारी, इनके विवाह मग्न हुए।

यहाँ वनक-वृद्धिगवारी मारीच राम के अनुष्म पर अतंताड नहीं करता, रावण के वन में रही अबलौ-जिनी विद्या लक्ष्मण के अनुष्म पर मिहताड करती है।

मुगीव तथा उसके अनुष्मानी अपिचर हैं।

मुगीव की छोटी बहिन श्रीप्रमा रावण से आही गई थी।

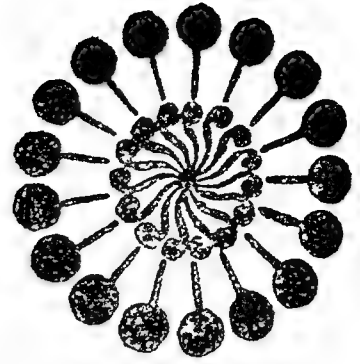
बाली कैलाश पर तपस्या में लीन था। रावण वह पर्वत उठाते गया। बाली ने अंगुठे से पर्वत टका दिया। रावण दब गया और चीखने लगा। इस चीख के कारण 'रावण' उसका नाम पड़ा।

कान्तवीर्यजुंन—महत्वाह—यहाँ रावण को बली नहीं बनाता, स्वयं रावण उसे बन्दी बना लेता है।

रावण की छोटी बहिन चन्द्रमुखी की कथा अनंगपुष्पा हनुमान से आही गई थी। वहेज में रावण ने हनुमान को काष्ठ डगुर नगर दिया था। रावण ने उसकी मैत्री थी। सीताहरण के समय में वह रावण का विरोधी हो गया और राम की ओर से उसके साथ लड़ाई लाने ली।

भारतीय गौरव-ग्रन्थ भरतेशवैभव और महाकवि रत्नाकर

वर्धमान पो० शास्त्री,
विद्यावाचस्पति, विद्यालकार, न्यायकाव्यतीर्थ
समाजरत्न, धर्मालकार



साहित्य-ससार में कर्नाटकसाहित्यकारों का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। महाकवि पद्म, रत्न, जन्त, पोन्न, आदि उद्दाम साहित्यमर्जको ने साहित्यजगत् परिचित है ही, परन्तु मध्ययुगीन काल में अपनी कृतियों ने विश्व को चमत्कृत करने वाले महाकवि रत्नाकर का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसीलिए भारतीय साहित्य अकेडेमी ने उसके द्वारा रचित 'भरतेशवैभव' की भारतीय गौरव-ग्रन्थों में गणना की है। विशेष वया, इस राष्ट्र का जो नामाभिधान बहुत प्राचीन काल में 'भारत' हुआ है, उसके लिए इस ग्रन्थ का प्रमेय ही कारण है। जिस आदि सम्राट् भरतेश्वर के समग्र वैभव का इसमें कथन किया है, उसी के कारण ने इस देश का नाम भारत पड़ा, इस विषय को श्रव इतिहासवेत्ता मान्य करने लगे हैं, ऐसे ग्रन्थ व गन्यकर्ता के सम्बन्ध में भारतीय नागरिकों को परिचित होना आवश्यक है। इसलिए यह प्रयास है।

ग्रन्थ-परिचय

इस ग्रन्थ का नाम भरतेशवैभव है। ग्रन्थ में ८४ सर्ग (अध्याय) और करीब १०००० श्लोक हैं, कर्नाटकसाहित्य के सागत्य छंदों से निर्मित है। मुख्यतः ग्रन्थ को पाँच विभागों में विभक्त किया है, (१) भोगविजय (२) दिग्विजय (३) योगविजय (४) मोक्षविजय और (५) अर्ककीर्तिविजय। इन्हे पंच बल्याणों के नाम से कवि ने उल्लेख किया है। ग्रन्थ की महत्ता के नम्वध में संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि महाकवि ने काव्य को अत्यन्त सरस, सुन्दर व मधुर शैली में प्रस्तुत किया है। हाथ में लेने के बाद पढ़ते ही जाइये, नीचे रखने की इच्छा नहीं होती है। यह इसकी विशेषता है। दस हजार श्लोकों के चारों ही चरणों में अनुप्रास साधने का गुरतर कार्य कवि ने अनायास साध्य किया है। कवि पर सरस्वती का वरद हस्त था, इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है।

ग्रन्थ के सम्बन्ध में स्वाभिमान के साथ कवि स्वयं ही कहता है—

अय्यय्या चन्नादु देने फन्नडिगरु ।

अय्या मचिदि येने तेलुगा ।

अय्यय्य येच पोलडिडु त्तुवरु ।

मेय्युद्वि फेल वेक ०० ॥

(भरतेशवैभव १-७)

कवि ने इस श्लोक में यह अभिप्राय व्यक्त किया है कि मेरा काव्य सर्वप्रिय होगा, सर्वभाषाभाषी इसे बड़ी



कर रहे हैं, फिर अधीनता के लिए आह्वान करने वाला यह कौन ? चलो ! पिताजी से ही न्याय करावेंगे । तत्काल समवसरण में पहुँचते हैं । पिता से सर्व घटना निवेदन करते हैं । प्रभु का आदेश होता है कि भरत को चक्रवर्ती होने का नियोग है । वह पुण्य आप लोगों को नहीं है । यदि राज्य चाहिए तो उसकी आधीनता मजूर करो । यदि वह मजूर न हो तो आत्मराज्य पाने के लिए मेरे पास रहो । सबने प्रभु के पास रहना स्वीकार किया । बाहुवली वीर, कामदेव और स्वाभिमानी था । वह सीधा जाना नहीं चाहता था । युद्ध में अपने बाहुवल का परिचय देकर ही जाना उसे इष्ट था, अतः युद्धमग्न होकर आया । भरत ने अपने छोटे भाई के साथ युद्ध न करके वचन—चातुर्य से ही उसे जीत लिया, जिता भी दिया । बाहुवलि अपनी कृति के लिए दुःखी हुआ, पश्चात्ताप से दग्ध होकर दीक्षित हुआ । जिन योगी वना, भरतेश्वर ने आनन्द के साथ नगरप्रवेश किया । (३३ अध्याय)

विवेचनचातुर्य व सामंजस्य

भरत और बाहुवलि, दोनों सहोदर जिस समय नमरभूमि में आकर युद्ध के लिए खड़े हुए तब उभय पक्ष के प्रमुख नेता चिंतित हुए । दोनों सहोदर तद्भवमोक्षगामी, अव्याघाती, तीर्थनायक के पुत्र, व समान बल वाले हैं, इनका कुछ भी विगडने वाला नहीं है, व्यर्थ ही सेनाओं की हानि होगी । अतः सेनाएँ परस्पर न लटकर दोनों व्यक्तिगत युद्ध करे । अश्वयुं जनो की सलाह दोनों का मान्य हुई, दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध, ये तीनों युद्ध निर्णीत हुए । तीनों युद्धों के लिए दोनों सहोदर आमने-सामने खड़े हैं । भरतेश ने सोचा कि करोड़ों सैनिकों के सामने सहोदर का यह विरोध प्रदर्शनीय नहीं, इसलिए अनुज को एक बार समझाकर देखें, अगर समझ में आया तो वह कट्टर प्रसंग टल जावेगा । इसी हेतु से भाई को बोधित किया—

भ्रात बाहुवलि ! आज तुम और मुझ में दुर्भाव से युद्ध हो रहा है, इसका क्या कारण है ? अकारण तो कोई प्रवृत्ति नहीं करते हैं, तुम्हारी संपत्ति मैंने नहीं छीनी, मेरी संपत्ति तुमने नहीं छीनी, पहिले से पिताजी ने मुझे राजा, तुम्हें युवराज बनाया है ।

भाई-भाई में भी द्वेष होता है परन्तु उनके लिए कोई कारण होना चाहिए । मैंने भाई को केवल देखने की इच्छा से बुलाया तो इतना क्रोध क्यों ? क्या मैं नेरा जन्म हूँ ? यदि प्रभु के पुत्रों में ऐसा विचार हो तो सामान्य लोगों की बात क्या होगी ?

कदाचित् तुम सोचोगे कि युद्ध से टरकर बातों में लगाया है । परन्तु ऐसी बात नहीं । युद्ध तो कल्ला ही, पहले अपने मन की बात कहकर दोष टाल रहा हूँ, दूसरा कोई मेरे सामने होता तो क्षण भर में भगाता, भाई ! सोचो, सहोदरों के युद्ध को लोक पसन्द नहीं करेगा । हम दोनों खिलाडी हैं, ये लोग दर्शक हैं । कितनी शर्म की बात है । तुम मुझे जीतोगे तो क्या तुम्हें कीर्ति मिलेगी ? या तुम्हें मैं जीतू तो मुझे यश मिल सकेगा ? अपने इन बालिश व्यवहार को देखकर नरसुर-नागलोक के सज्जन छि धूँ कहे बिना नहीं रहेंगे । तुम युद्ध के लिए आये हो न ? युद्ध में जीत की इच्छा सबकी रहती है । साधारण लोगों के समान लड़ने की क्या जरूरत है ? तुम जीत गये, मैं हार गया । जाओ अब तो प्रसन्न हो न ?

भरतेश्वर के वचन को सुनकर मंत्री, मित्र, राजा, महाराज आदि सभी ने कान में उगली देकर कहा कि हाय ! यह क्या कहते हैं । आपकी कभी हार है ? सम्राट् ने कहा कि आप लोग क्या कहते हैं ? कामदेव से कौन नहीं हारते हैं ? मेरे भाई की जीत सो मेरी जीत है । बाहुवलि ! उपचार के लिए मैंने तुम्हारी जीत का उल्लेख नहीं किया । अच्छी तरह सुनो, मेरी सेना भी सुने, स्पष्ट कहता हूँ—

दृष्टियुद्ध में तुम्हारी जीत है, क्योंकि तुम मुझसे २५ धनुष अधिक ऊँचे हो, इसलिए मुझे सरलता से देख सकते हो, मुझे तुम्हें ऊर्ध्व दृष्टि कर देखना पड़ेगा, मुझे कण्ट होगा, तुम जीते, मैं हारा ।

भरतेवर के उस वचन को सुनकर मंत्री मित्रो ने कहा—जो अपने महल की छत पर बैठकर सूर्यकिरण पर स्थित अक्रुशिम जिन प्रतिमाभा का दर्शन करता है उसे २५ धनुष ऊँच देखन में क्या कष्ट होगा ? यह वचन भाई को समझाने के लिए कह रहे हैं ।

भरतेग ने पुन कहा—भाई ! जनशुद्ध भी तुम्हारी जित है । तुम ऊँचे हो तुम मुझ पानी में डुबा सकते हो मैं तुम्हारी छाती तक पानी फेंक सकता हूँ । अब मैं भी तुम्हारी जित हो जाऊँ ।

मंत्री मित्र कहने लगे—सम्राट यह क्या कह रहे हैं ? जो अनेक अश्विन महत्कार रूप बनारस प्राचाग पर पानी फेंकने की शक्ति रखत है उनके लिए २५ धनुष की बात क्या है ? यह भाई को पता करने की बात है ।

भरतेवर ने पुन कहा—भाई ! जनशुद्ध की तो शक्ति ही क्या है ? पिताजी ने तुम्हारा नाम ही बाहुबलि रखा है । वह शक्त कि प्रकार हो सकती है ? भुजबल में तुम प्रबल हो मुझ गठन उठा सकते हो । पिताजी ने मेरा नाम भरत रखा है । भरत भूमि का अधिपति हुआ । तुम्हारा नाम भुजबलि रखा है । तो भुजबल में तुम मुझ उन्मोह हो इसमें भी मैं हार मानूँ करता हूँ ।

मंत्री मित्रो ने कहा—कमान है सम्राट । नाम के समान कोई पराक्रम भी दुनिया में होता है ? कभी नहीं । छोटी-सी जंगली से परमा सारी सेना को उठाया । बड़ बड़ पड़ता को जो सुने पता के समान उठा सकता है वह क्या कामसेब को नहीं उठा सकता है ? यह भाई को समझाने की बात है ।

अधिकांश के अनुसार का देखकर बुद्धि और सकलागति दम रू जाती है । अनेक अधिकांश ने प्रत्यक्ष युद्ध करार करवर्ती का पराक्रम कहा है । यहाँ अनेक चरित्रनाथ के अवध में स्थित भी युद्धा मन्त्रिकों को जानी नहीं थी । इन उक्त लोक की दृष्टि से जितना और स्वयं के मुख से हार स्वीकार कराकर कहाया । जितना विवरपूर्ण चरण है ।

जब एक सम्राट कामसेब से हार गया तो दण्ड दियाया । अधिकांश छा गया । अधिकांश के बिना धूम निरुद्ध सेना ध्वजा गङ्गा बाहुबलि के मन में भी विवेक जागत हुआ कि मैंने मरना नहीं किया । अब भाई की ओर सीधा देनन का भी धन रहा । भरतेवर को भी उस घटना से कुछ उपरनिर्देश हो गए । पुन संधिपति करने लगे—

भाई मुझे ! मैंने उस चक्रवर्ती की अभिप्राया नहीं की थी । प्रायुषात्मा में वह अपने प्राय उचित हुआ और सारे दण्ड में समाप्त गया । व्यर्थ ही तुम लोग के हृदय में वेदात्त बहूषाई । मैं इन संपत्तियों का प्रत्यक्ष का बन जाऊँ कर उन्मोह भाव से भोगता हूँ । मुझे विष्णु के इस कामचिन्ता नहीं तुम इनको स्वीकार करो यह राय तुम्हारा है । तुम्हारे लिए मैं पण्डित को बसा कर भाषा हूँ । अब उम्मे तुम भी रायों को स्वीकार करो अयोध्या में मुख में राय करो मुझे एक छात्र का राय को मैं रहा कर रहा हूँ । मुझे प्रगट करने के लिए रहा बाव रहा हूँ । निरजन सिद्ध ही मैंम सानी हूँ । आज मैंसे अधिकांश दोनने की दृष्टि नहीं है स्वीकार कर मैं राय को । अधिकांश परिचाग करो । गात हो ।

बाहुबलि धरत धरत ही शक्ति हो रहा था । अब भीषा सत् होकर वेदों प्राचा स दोनने की हिम्मत नहीं है । सरोच लज्जा और वेदों का मन व्याकुल है ।

भरतेवर मैंम समय उस उपरल को बुलाने हैं—हूँ चक्रवर्ती । अब जाओ अंग तुम्हारी मुझ जलनन न । है । तुम्हारा अधिपति यह बाहुबलि है मेरा भाई है उनका पास जाओ ।

इस प्रकार भरतेवर की आज्ञा होन कर भी चक्रवर्ती अधिकांश नहीं बड़ रहा है कारण चक्रवर्ती की धारण कर



का भाग्य कामदेव को नहीं है। चक्रवर्त्त से वंचित होने पर वा हीनपुत्र भग्नेश्वर भी नहीं हुआ है। इसलिए तदस्त नामने आकर गया हुआ।

भग्नेश्वर को श्रेष्ठ आगया—अरे चक्रपिशाच ! भाई के पास जाने के लिए रहना ? तू मुनता नहीं। तेरे ही कारण ने भाई-भाई में भयंर हुआ। मुझे तेरी जन्म नहीं, भाई के पास जा।

फिर भी चक्रवर्त्त वही था रहा तो भग्नेश्वर ने जबरनगी प्रस्ता दे दिया। यद्यपि बाटुबनि में उनकी प्राप्ति के योग्य नानिगय पुत्र न होने से तथा भग्नेश्वर के उमे सोने योग्य हीन पुत्र न होने से वह पशोपम में पटा, वह आगे जाकर बीच में गया रहा।

लोगों ने कल्पना की—भाई को मारने के लिए चक्रवर्त्त का प्रयोग किया। क्या मोक्षनामी जीव अपने भाई को हत्या करने की भी भावना कर सकते हैं ? तीर्थं तर के पुत्र तदभवमोक्षनामी शीशो में गोरी निग चंष्टा हो सकती है ? कभी नहीं, महाकवि ने प्रमग के नामजग्य को वरन ही उचित उग ने प्रैठाकर मन्त्रादुग्गों के जीवन की महानता का समीचीन दर्शन कराया।

वाटुबली तो तन्धान वैराग्य उत्पन्न होता है। समग्रभूमि में ही धर्म भूमि की ओर प्रवृत्त करता है। भग्नेश्वर विगन भाव से तगर-प्रवेश करता है।

दिग्विजय

घोर तपश्चर्या करने पर भी वाटुबली तो आत्मनिद्रा नहीं हुई, वह समाना गुनकर भग्नेश्वर प्रभु के समप्रमग्य में पहुँचता है। बता जाा होता है कि वाटुबली योगी के मन में एक विचल्य है कि अभी तक मैं भग्न की भूमि पर गया हूँ। जब तक भग्न-भू पर गया रहूँगा तब तक आहार नहीं लूँगा। इस विचल्य के कारण निर्वि-क्लक समाप्ति नहीं हो रही है। उनी समय भग्नेश्वर उन तपोवन में पहुँचने हैं और उन विचल्य को दूर करने हैं। तन्धान ध्यान की निद्रा होकर त्रेवन ध्यान की प्राप्ति होती है। भग्नेश्वर की माना वरावली भी अनन्तवीर्य वैवली से दीक्षित होती है। कैलाशपर्वत पर जो जिनभरती ग निमग्न भग्नेश्वर ने बताया उताला प्रतिष्ठानमारभ भी इसी अवसर पर पूर्ण कराया जाता है। एवं धर्म की श्रूय प्रभावना होती है। (अध्याय ६)

योगविजय

भग्नेश्वर के नी पुत्र विद्याध्यासा कर रहे थे। अन्तमात् एक दिन उनकी समाचार मिला कि मैवेश दीक्षा लेकर चला गया है। उन्हें भी समान से वैराग्य हुआ। सीधे ही समप्रमग्य में चले गये। इस प्रमग में महाकवि ने उनका वैराग्य समप्रमग्य, तत्वोपदेश, दिव्यवनि, आदि का जागृत वणन किया है। पुत्री ने दीक्षा ली, वृत्त जानकर चक्रवर्त्त को दुःख हुआ, तन्धान के समप्रमग्य में पहुँचने हैं। वहाँ पर अब पुत्र नहीं, पूज्य परिराज हैं। उन्हें देखकर वन्दना की। तीर्थनाथ की वडें वैभन ने पूजा की, दूसरे दिन भगवान आदि प्रभु को निर्विण पद की प्राप्ति हुई।

मन्नाद् ने पुन अयोध्या में पहुँचकर कुछ काल राज्य किया। एक दिन दपण में सुत्र देवने हुए एक श्वेत वेश को देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ। तन्धान अर्ककीर्ति का पट्टाभिषेक किया, तदनन्तर स्वय ही गुरु होकर दीक्षा ले ली। गुरुओं के पास पहुँचने तक का समय नहीं था। निश्चय ध्यान के वन में केवल अतमुहंत में कैवल्य की प्राप्ति किया। (१६ अध्याय)

मोक्षविजय

अर्ककीर्ति भी राज्य में उदास रहने लगा। पिता के पुत्र में प्राप्त सर्व वैभव धीरे-धीरे श्रद्धय होने लगे। राज्यवैभव से मोह का परित्याग कर अपने छोटे भाई आदिराज के साथ जिनदीक्षा ले ली व क्रमशः मूलोत्तर गुणों का

पानन करत हुए कुछ समय के बाद निदरा व्यान के वन से धामभिदि का प्राप्ति किया। (२ अध्याय)

अककोतिविजय

इस प्रकार ८४ अध्याय में गणि विज्ञान बचावस्तु का यह संपादन है, जिसमें सात है। यथाय आनन्द
मूल ग्रन्थ के प्रकरणों में संशोधन से ही मिल सकता है।

महाकवि परिचय

महाकवि का जन्म गुप्तकाल में हुआ। मन्त्रा या गृहा ध्यान भक्षण प्रजापति देवाय तथा धर्मोक्ति
निदानप्रदायी मूल प्रतियाँ विद्यमान हैं। अनेक अन्य ग्रन्थों की प्रतिप्रियाओं की गुप्तकाल में ही इन कविरत्न
रत्नाकर का जन्म हुआ। यह मूलग्रन्थ के अन्तर्गत ज्ञात था। माना जाता है कि रत्नाकर नामाकरण किया।

यह बाल्यकाल से ही कुशाग्रबुद्धि अनेकशास्त्रप्रवीण एवं विद्वान् था। यह काव्यान्तर्गत-संशोधनशास्त्र में
प्रवीण सगीन सचुर मन्त्रशास्त्र में निष्णात संसार में कुशाग्र शास्त्र में दक्ष प्रसिद्ध था। इनमें गुप्त वाक्कांति
यागी थे। जब जगह में ही कीति या दत्त कीति या भी जाना है, हाँ सचता है कि प्रसंगिक महाकवि को दो गुत्ता का
सालिष्य मिला हो क्योंकि वि की जीवन घटनाओं ऐसी विविध स्थितियों का दान करता है। महाकवि का जीवन के
सबसे बड़े साहित्यिक ऐतिहासिक ग्रन्थ राजावरी बचप में दक्षतर न निम्ननिम्न जाना किया है—

महाकवि रत्नाकर भरत राजा के दरबार में आस्थान कवि था। उस समय उस देखकर राजकुमारी महिष
हूँ। महाकवि भी उस पर अत्यंत प्रभाव हुआ। उनमें मित्र के रूप में वास्तविक प्रयोग से दण्डाधुना को बना कर
मन्त्र का विष्णु की दत्त ५८ वर्ष राजकुमारी से प्रसादात् बना था। क्योंकि वह योगात्मक में भी प्रसिद्ध था। यह
धीरे धीरे राजा को पान हुआ तब उसी राज को मन्त्रकीति धुन में अनुष्ठान दा त तब ध्यानात्मक में निरत हुआ।
अनन्तर विजयकान्ति अष्टावक के पित्र्य विजयकान्ति राजा रचित राजकुमार ग्रन्थ को हाथ में लेकर विराजमान कर
कुतूहल निकाला कि रहा था तब रत्नाकर के ध्यान द्वारा रचित भरतगवसव को भी हाथों में लेकर विराजमान करता
आणि इस प्रकार निरत किया। किन्तु कारणवश अष्टावकजी ने यह स्वीकार नहीं किया। बावजूब ध्यान में विराज
मान। रत्नाकर का उस समय बड़ा प्रभाव था। महाकवि का अष्टावकजी से निरन्तर वरदान आश्रय के घर में
उस वाद आनन्द न के प्रकार का कला आनि दिला। तब वह धन्य महिष के घर में ही निरत करता था
परन्तु उस बहुत बचप्यार से जानता था कि उनमें अत्यंत का न विराजमान थे। वह योगात्त मनाधुना बना बना भी
अनन्तर प्रदायी रचना की अनन्तर विद्वत् ज्ञान हान पर पुनः तबधम में धार्मिक धामन्याय किया।

महाकवि के मरण में एक बड़ा गम देना भी प्रसिद्ध है। उसका भी उल्लेख करता अतिवाचक है।
महाकवि वाचनान्तर में ही वाक्कीर्ति योगी के दाहिने तार वाक्कात्त में निरत होता था। प्रायः प्रायः ही अनन्तर
गिप्पा को जब अनुयायियों को उपदेश दत्त की उसकी परिपक्वता की। प्रतिनिधि गिप्पा का समुदाय बना जा रहा था।
इसकी तानप्रिया को दत्त पर कुछ स्वीकृति का हृदय में इष्टानि धन्य उगी इतिहास किन्ती भी तब ही अनन्तर निरत
हो अनन्तर प्रत्यन करने लग। एक दिन प्रातःकाल होने के पहिले ही गवि के नाष्ठान्तर (चात) के नीचे एक बच्चा
का जागा ने ठिपाना रखा। उसका गिप्पा बढ़ने लगा। तब वे तब तब बच्चा के बचप की भावना की।
विरोधिया ने जा उसी समुदाय में मुद्रितुरस्मर धने थे उसी समय उग बच्चा को बाहर निकाला। महाकवि का धर्मभान
किया। तबधन परितः अनन्तर कुपुष्टा को जाना। वहाँ से उठा विराजत कुछ भी न सोचकर चलने लगा नगर से बाहर
गया नीलो न बनत राहा रहा नया। मुक्त मन हुआ ही सर्वांगी को आश्रयता ही न। मैं जाना हूँ मुक्त मन धम
को ही अनन्तर नया यह कहकर एक पहाड़ पर चला गया। वहाँ पर एक गावधम का हाथी पर कुतूहल निरत
रहा था। महाकवि ने उस ग्रन्थ की दत्ता। राजा ने कहा कि यह ग्रन्थ का आश्रय विराजता नहीं गम न। निर
रगत इतना समाप्त क्या? राजा ने कहा—मैं तो महाकवि गमभार उपाय समाप्त किया। परन्तु गुप्त कहाँ हो



हृदीना जलनाइने हुरहरा श्रीदेन मोमेइया ॥

कालपरिचय

महाकवि की इतर रचनाएं

भक्तैर्गर्वमिव महानाट्य के अलावा कवि ने जनकत्रय नामक सुन्दर ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ रत्नाकरगतक अपराजितजनक और त्रिलोकगतक के नाम से प्रसिद्ध है। पहिले रत्नाकरगतक में विगेपतया वैराग्यबोधक तत्वोप-

दण वा दण्डा है। क्षत्ररात्रिगतार म भक्ति व दण्डा वा गुण उपर है। यह श्रोता इतिहास व वि. यी-१६ इतिहास वा दण्डा गता है। निम्न छ। स क्षत्र उद्धारण। गुण विषयविषयन से ग्रन्थाग्रमिमा वा वि. यी-१६ क्षत्राग्रमिमा हाता है। क्षीमरे विरोधगतार म क्षीमरमरमो वणन है। य. जन भूपाद वा मयभन वे वि. यी-१६ क्षत्राग्रमिमा है।

जान अन्तर्गत बर्ष १९७०-७१ में भी अधिन अध्यात्ममार्ग की रचना है जिममें स. स. न. १०१
अभी उपलब्ध है। उनमें स. स. न. १०१ प्रकाशित या हो चुका है। उन अध्यात्ममार्ग की रचना में भी बर्ष का
अध्यात्मप्रियता शीतप्रति है।

ष-नड साहित्य का गौरव

प्रभुन विपयविचित्रन व प्रमय म वन्दह मास्तिवकाग। यः परम्परा म सवय म मास्ति उल्लस परना
 अनुविन नरो ह्याय। वनात्मा मास्ति यः परम्परा यन लचीन हान पर भो उमरी मृदवगुण नृनिदी साधारणत पय
 व मास्तिवकाग। । उपर य नाग है। वराय । वें पलमान म महाववि यय ने आत्ति गुणय य भारग यी रवाग यी।
 एष धामिन् गुणय व दूगग मोविद पराण। एष प्रार मोविन् य धामिन् दोनों परम्परा य ररिग। यः मन्दाविन ने
 उपराय विवा। हनः सात् प्रमिद वविश। यः सात्ति वः प्राय कुट परम्परा तय अनुवरण विवा। यय वः सात्ति
 न मास्तिवकाग गुणय धीन नुवववगगमागुय यी रवाग। हनम भी एष धामिन् दूगग लीविन् वाय्य है। एष
 लीवरा यय विवागगमाग। एष वनः रवाग वविन धनितनमपगुण (धामिन्) य सात्तिन मविजय (लीविन्)
 यी रवाग यी। एतयः परगुणमवतिन यय मास्ति य दो लीनियं धमी अनुगन ए है। यय वा त मोर रन य उग
 दूग य वरिखलमग यः सात्ति है।

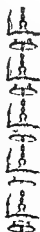
[illegible]

भारतीय साहित्य का गौरव

इस प्रकार भारतीय साहित्य व गौरव को बचाने में ब्राह्मण-जनसाधारणों ने भी बहुत बड़ा योगदान दिया है। वे बहुतों के साहित्य की रक्षा में जो कुछ किया उन वस्तुओं में। विरजित है। प्रायः विषयविद्वानों के पत्रपत्र में भी जो कुछ किया वह निरुद्धि वस्तु रक्षण के साथ ही जाती है। यह एक साहित्य भारतीय साहित्य रक्षण के लिए ही तथा रक्षण के लिए ही गौरव का विषय है।

महावि श्वनाथ ने मुग़ल शासक को स्वीकार करने हुए अपनी रचना जारी रखी। मानवता का पक्ष लेना शुरुवात से ही था। 'मग़ल शासन' का विरोध ही ध्यान देने लायक साहित्य सांख्यिक हस्त लिखित साहित्य के अंग में सर्वोपरि उपाय गाथा लिखी है।

आज जनतापान्त क युग भ गुरुवर्द्धितय रचित साहित्य क विप आधार का स्थान प्राप्त होना अनिवार्य
एक मांगिनी है। अतः महाविद्यालय क माता अति अग्रगण्य को भारतीय गौरव प्रद का स्थान प्राप्त
साहित्य विभाग न दिया है क मर्यादा धीरे-धीरे उल्लंघन होकर है।

[illegible]

अज्ञात आयुर्वेदिक साहित्य मुनि कान्तिसागरजी



भारत की पुरातन विद्याओं में स्वास्थ्यविद्या का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है, उसे आयुर्वेद भी कहा में अभिहित किया गया है। उनका तात्पर्य, प्राण, स्वास्थ्य और दीर्घायु में है। विषय का प्रत्येक प्राणी स्वास्थ्यगामी है, यहाँ तक कि पशु भी स्वस्थ जीवन की कामना करने हैं। वे अपनी भावी प्रजा के प्रति पूज्यता मान रहे हैं, मनुष्य बुद्धि-जीवी प्राणी होने के साथ सामानिक भी है, यहाँ उसे अपने समाज तथा भावी पीढ़ी के लिए स्वास्थ्य दृष्टि से स्वभाव ही मानवान् रहना पड़ता है। निर्गोत्री जीवन केवल वैयक्तिक समस्या न होकर सम्प्रदायगत है, सुदृढ़ और गंभीर रहित मानव ही स्वास्थ्य और पैरक समाज की रचना कर पाता है। मानव का मानसिक तथा चिन्तन और विज्ञान भी उत्कृष्ट स्वास्थ्य पर अवलम्बित है, अहं की सम्मनन आवश्यकता नहीं कि मानव-संस्कृति के विज्ञान में पशुओं का योग भी कम नहीं रहा है, यहाँ धन, लता और गिरि-तटगाएँ अनुपेक्षणीय हैं। हमारी नैतिकता का विज्ञान ऐसे ही प्राकृतिक वायुमण्डल में हुआ है। आयुर्वेद प्राणिकता के प्रोत्साहक ऋषि-मुनियों ने स्वास्थ्य का विचार करने समय जिन व्यापकता का परिचय दिया है वह आज के प्रगतिशील युग में भी विस्मयजनक है। परवायुर्वेद और वृद्धायुर्वेद विषयक रचनाएँ इन कथन के समर्थन में उदाहरण की जा सकती हैं, इतिहास के पन्ना में आयुर्वेद की वास्तविकता, अन्य शास्त्रों की अपेक्षा अधिक उन्नती हुई है। ऐसी कोई प्रामाणिक और आलोचनात्मक कृति भी उपलब्ध नहीं कि इनके क्रमिक विकास पर मार्मिक प्रकाश डाल सके। वेद और नत्वरम्पगनुयायी साहित्यानुशीलन में चिन्तित होता है कि वेद-पूर्व काल में भी आयुर्वेद का अस्तित्व था, कारण कि वेदों में ऐसी अनेक श्रुतियाँ मिलती हैं जिनमें आयुर्वेद ने मनुष्य विविध विषयों का सकल एवं निर्देश-पूर्ण, वेदों में दीर्घायु के सद्य में मुख्यतः विषयों की व्याख्या की गई है। प्राण-तन्त्र की प्राप्ति ही वैदिक आयुर्वेद का लक्ष्य था। प्रकृति के रहस्य को आत्मना कर स्वास्थ्यमूलक नियमों का परिपालन ही चिन्तित का उद्देश्य था। दीर्घायु का ही अपर नाम अमृत है, प्राण ही अमृत है—‘अमृत वे प्राणाः।’ वैदिक साहित्य इसी प्राण-विषयक समालोचना से परिपूर्ण है।

मुश्रुत और काश्यपादि महिनाकारों के अभिमत में भूतल पर मानवोत्पत्ति के पूर्व आयुर्वेद का प्रणयन हो चुका था, यथा —

इह खल्वायुर्वेदं नाम यदुपागमयर्वेदस्यानुत्वादर्पय प्रजा कृतवान् स्वयम्भू ।—मुश्रुत

अथर्ववेदोपनिषत्सु प्रागुत्पन्नः स्वयम्भूश्चाह प्रजा सिद्धं प्रजाता परिपालनायमायुर्वेदमेवाग्रेऽमृजत् सर्ववित् ।

—काश्यपसंहिता

सरकार प्रजापति को ही आयुर्वेद का उद्भावर मानते हैं —

ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्षतनायुर्वेद प्रजापति ।

अप्राह निमित्तेनावावशिष्यो तु पुनस्तत ।

परक० सूत्र० प्र० १४

निम्नी भी शक्ति महिमा म पठ ध्यातु की धनुषपत्तिका ही इस बात की श्रार गहन करती है कि उन निम्नी अथवा थोर मनन वा ही महत्त्व वा छान्दोग्योपनिषद् श्रार गीता म दोना वा विविष्ट महत्त्व प्रतिपादिन है। धन्यपन धन्यपन उस बात म प्रबचन श्रार ही सम्पन निय तात थ। सामुर्वे क मून प्रया से भी यही धनित हाता है। उक्त हरवाथ सुप्रनमयिता म सुधत पृच्छव है श्रार शिवाश्रम उत्तरदाता। यह पठेनि सवन थी। तत्तागम मादिथ भी गगन अपवात् नशा है।

बौद्धिक क्षाणता प्रसार और युन बी रिंग व बारण मगमनीयिषो न भावयन् को विविष्ट किया। अनन्तर प्रत्यक्ष लायिष का चरक और मगमनुन का विविष्ट। भाग प्रसारितार हुआ। प्रसारितार म गतिष तय्य का विस्तार प्रत्यक्ष प्रतिनिष्ठन का स प्रीचन म्हा। जाणमो की बायना व मगम प्राययन की परिणाम व मायम स भी समय-समय पर परिचयन होता गया। का-अन्तर में पूर्ववर्ति त तदातिन विविष्ट पर म्मन प्रत्यक्ष अनुमेवा शरत म्हायिष न स्वतन्त्र प्रताप की। इस प्रसार लायुको गतिष। कै अनुमेव व म्मन परिष्ठुत हाता गया। म विविष्ट म भी एम ही प्रताप का परिणाम प्रसारि णा रहा है।

[illegible][illegible]

1 With regard to the intrinsic value of the works of the old Indian writers on medicine the opinion of competent Judges who have hitherto examined them is not favourable. Nor is it likely that the Indian mind, since it never showed any aptitude for natural science, should have accomplished anything great in this direction. Probably the only valuable contribution to surgery to which India can lay claim is the art of forming artificial noses.



उपर्युक्त वाक्यावली में पूर्वग्रह का स्पष्ट प्रदर्शन है। एक जर्मन विद्वान् हास ने तो यहाँ तक कह डाला कि हिन्दुओं की वैद्यक विद्या का विकास १० से १६ शती तक का ही है कितना हास्यास्पद विश्लेषण है। परन्तु परवर्ती विद्वान् जोली ने इन मतों का निरसन हिस्ट्री आफ इडियन मेडिसीन में भली-भाँति कर दिया है।

अर्द्धाजीवी मानम कभी-कभी भावुकतावश कह बैठता है कि पूर्णतया आध्यात्मिक जीवनयापन करने वाले मुनियों का आयुर्वेद जैसे भौतिक विषय से क्या संबंध ? इन स्वरो में प्राणीमात्र को सुख पहुँचाने की प्रवृत्ति घूमिल हो जाती है। वे अहिंसा की व्यापकता एवं मूढमता से परिचित होने और सर्वथा दया का वास्तविक मर्म आत्मसात् किये होते तो संभवतः यह विचार ही उनके मस्तिष्क पटल पर अंकित न होता। इतना ही नहीं प्राचीन जैन वैदिक साहित्यानुशीलन से अवगत होता है कि आयुर्वेद की समस्त शाखाओं के विकास में किशोरी आचार्यों का प्रधान सहयोग रहा है। प्रभावक आचार्यों को सर्व विषयों में निष्णात होना आवश्यक माना गया है। रसायन शास्त्रों के परम विद्वान् नागार्जुन के गुरु आचार्य पाललिप्पमूरिजी को यदि चिकित्सा का ज्ञान और अनुभव न होता तो पाटलीपुत्र के मुण्ड राजा के मस्तक रोग का निवारण संभव न था। कालिकाचार्य रसायनशास्त्र के न केवल मैट्रान्त्रिक विद्वान् ही थे अपितु इसका उन्हें सत्य ज्ञान भी था। तात्पर्य है कि न केवल मुनियों ने स्वतन्त्र आयुर्वेद के प्रामाणिक और महत्वपूर्ण ग्रन्थों का ही प्रणयन किया, अपितु, एतद्विषयक दुर्बोध कृतियों पर विस्तृत एवं आलोचनात्मक टीका टिप्पणी लिखकर सर्वाधिक लोक भोग्य भी बनाया। सम्स्कृतानभिज्ञ प्रेमियों के लिये कई रचनाओं पर स्तवक-टिप्पणी और बालावबोध या अनुवाद कर उन्हें सुरक्षित रखा। जो सेवा आयुर्वेद जगत की की ह वह आज के वैज्ञानिक व बोध के युग में भी अभिनन्दनीय ही नहीं, अपितु अनुकरणीय है। नागार्जुन रचित योगरत्नमाला जैसे कतिपय ऐसे ग्रन्थ हैं जिन पर जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत सूत्रोद्धृति ही समुपलब्ध है। ऐसी रचनाएँ उन दिनों की हैं जिन दिनों स्वल्प गतिग्रन्थ भी समाज की दृष्टि में अक्षम्य अपराध माना जाता था। अपने पारम्परिक आचार और शास्त्रीय नियमों का पूर्णतया दैनिक जीवन व्यवहार में साकार करने वाले परम निस्पृह मुनि ही इस काम के अधिकारी हो सकते थे। वे अपनी माधना और अनुभवों को छिपाने की अपेक्षा जनकल्याणार्थ सार्वजनिक प्रदर्शन करने में तनिक भी मकोच नहीं करते थे। प्रयोग छिपाने से हमारी चिकित्सा के क्षेत्र में कितनी हानि हुई है यह बताने की आवश्यकता नहीं। यहाँ जैनो द्वारा रचित आयुर्वेद की समस्त शाखाओं को परिपुष्ट करने वाले साहित्य की न तो नमीशा करनी है और न क्रमवद्ध इतिहास ही उपस्थित करना है, पर यह कहने का लोभ भी सख्त नहीं कर सकता कि आज ६ दर्जन से अधिक एतद्विषयक रचनाएँ प्राप्त हैं। हमारे शब्दों में कहा जाय तो जहाँ तक राजस्थान का प्रश्न है, विनुद्ध आयुर्वेदीय परम्परा को सुरक्षित रखने और अधिकाधिक लोकभोग्य बनाने में सर्वाधिक सक्रिययोग जैन यति-मुनियों का ही रहा है। यह एक ऐसा ऐतिहासिक सत्य है जिसकी गवाही में अताधिक मौलिक और सकलित कृतियाँ समुपस्थित की जा सकती हैं।

सकलनों से मेरा सकेत आम्नाय ग्रन्थों की ओर है। सम्पूर्ण भारत में इस प्रकार की अनुभूत प्रयोगों की अता-विक पोधिया उपलब्ध हैं, पर राजस्थान के जैन भडारों में तो इनका इतना बाहुल्य है कि यदि सबका सामूहिक प्रकाशन किया जाय तो कई जिल्दे सरलता से तैयार हो जाती हैं। पुन-पुन प्रयुक्त शास्त्रीय प्रयोगों की छाप तो ऐसे सकलनों पर होती ही है पर प्रारम्भिक अनुभवमूलक योग भी हजारों की संख्या में पाये जाते हैं, जो तत्काल अपना मूल्यवान् प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। ऐसे योग केवल काण्डादिक औषधों से ही संबद्ध नहीं रहते अपितु रासायनिक-धातु परिवर्तन और विषोपविषो से संबद्ध रखने वाले योग भी मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ मिश्रण ही ले, शास्त्रीय दृष्टि से इसे गौ या महिषी के पय में खरलकर सात बार नीवू के रस में घोड़कर शुद्धि की पद्धति पचलित है, पर पुराने अनुभवमूलक पत्रों में इसे प्लाण्डु, घृत और प्लाण्डु रस संयुक्त, नागरवेल के पान के साथ, वच्छनाग के घूर्ण में रखकर या उत्तम मद्ययोग से शुद्ध करने की कई प्रक्रियाएँ मिलती हैं। भल्लातक के हिंगुल मिश्रित कई प्रयोग विभिन्न रोगों पर इन पन्तियों के लेखक ने शताधिक बार अनुभव किया है, पूर्ण सफलता प्राप्त हुई, रासायनिक प्रयोग अव्यर्थ प्रमाणित हुए। जिन विशिष्ट रोगों को दूर करने के लिए जिन धातुओं का वर्णन शास्त्रीय कृतियों में आया है उन-उन रोग निवारणार्थ सबद्ध काण्डादिक दनिस्पतियों के रस में यदि इन्हें प्रभावित कर काम में लाया जाय तो कोई कारण नहीं कि चिकित्सक को असफलता या अयश का सामना

गङ्गाक्षीपत्र कल्क तु 'पिवेत्तत्रेण वा शिन् ।

कृति के अन्तर्गत पीछा में विदित होता है कि लेखक को आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त था। अपनी चिकित्साप्रवृत्ति को प्रमाणभूत बनाने के निम्ने गवेष कृत कुशाग्रतन्त्र या न्याय-न्याय पर उल्लेख किया है। विशेष कर स्त्री चिकित्सा वाले प्रकरणों में तो वृद्धवर्गी का पूरा उपयोग परिलक्षित होता है। कौतूहल प्रयोग कहा है कि, यद्यप्यन्य मन्त्रे स्पष्ट हैं। दोनों विभागों में लेखक ने अनेक न्याय पर मंत्र और यंत्रों द्वारा भी योग निवारण का उपदेश दिया है। प्राचीन अथ एतद्विषयक कृतियों में इन प्रकार की परम्परा पाई जाती है। विद्वत्परिच्छयां कृति का आदि भाग उद्धृत है—

अगस्तिर्गोत्रो यन्तिस्म्य तत्र, त वैद्यपूज्यो हि भवानीदासः ॥३॥

गुणरत्नमाला ने उनका नवीन ज्ञानव्य अवश्य प्रकाश में आया कि गुप्तसिद्ध विद्वान् भावमित्र के पिता का नाम लटकन मिश्र था ।

रसायनसार और सुखीजीवन प्रकाश

उदयपुर के निवासी गुप्तवान विप्र की ये दोनों कृतियाँ हैं । ये अष्टावलि प्रकाशित हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में अनुतिष्ठित कवि हैं । आयुर्वेद के इतिहास में भी उनका नाम नहीं मिलता है । उन कृतियों का अन्तः अपना महत्व है । दोनों का मध्य रसायन नाम है किन्तु उद्देश्य प्रातुनरिवर्तन विद्या में है । इन कृतियों का उद्घाटन कवाडियों ने किया गया है ।

आयुर्वेद में रसायन की उपयोगिता सर्वविदित है । एक प्रातु की रसायन द्रव्य में परिवर्तन कर देना भारतीयों का ही गोप्य है । साधारण उन विषय के आचार्य माने जाते रहे हैं । अतः उन कृतियों पर वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाले महानुभाव बहुत ही स्थूल विज्ञान करते हैं, पर जिनकी रचि इन ग्रन्थों में हैं और वर्षों में जो परिश्रम करते रहे हैं वे सफल हो गए हैं । चिकित्सा के क्षेत्र में भी रसायन का महत्ता बहुत ही ऊँचा स्थान है । रसचिकित्सा नीचे फलदायिनी होती है । रस का तात्पर्य पाद मिश्रित औषध में भी है ।

कवि की प्रथम कृति 'रसायनसार' है जिसमें रसायन निर्माण की ३० प्रक्रियाओं का विस्तृत विवेचन है । द्रव्य रचना में वातुओं की युद्धि और कृत्रिम रसायनों का विधान दिया गया है । नावरा की व्यवस्था कर मासिक के रस में कैसे परिवर्तित किया जाता है और अहिम्ने आदि का निर्माण कैसे होना है, रसों पर पानी कैसे चढ़ाया जाता है आदि कई उपादेय विषयों पर कवि ने अनुसंगमूलक प्रमाण ठाढ़ा है । उन आश्चर्योत्पादक प्रयोगों पर सामाजिक विज्ञान होता उठित ही है, अतः कवि ने बार-बार जनता के आग्रह किया है कि मैंने जो कुछ भी लिखा है, अनुभव और गुप्तान के आधार में ही लिखा है, अविज्ञान करने का जोई कारण नहीं है । इन पंक्तियों के लेखक की दृष्टि में और भी इस विषय की रचनाएँ और स्पष्ट प्रयोग देखने में आये हैं । नहीं कहा जा सकता है इस में कितना व्यर्थान है । कृत्रिम मोती के लिए तो आज के युग में प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं रहती ।

कवि ने कृति में जो रचनामय दिया है उस में पता चलता है कि वह सं० १७०० में विद्यमान था । "राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज" नाम एक में इनकी एक और कृति "मनुज सबल-तार" उल्लिखित है । इसका रचना काल मेनाग्रियाने सं० १७६० दिया है जो विचारणीय है कारण कि रसायनसार में अग्नि ने आत्मवृत्त देते हुए इसका प्रणयन समय सं० १७०० बादरुद युक्ता ५-विचार बताया है । श्री मोतीलाल मेनाग्रिया ने इसी हृदयानन्द जोशी को महाराणा मरामनिह द्वितीय (जन्म काल सं० १७६५-१७६०) का आश्रित बताया है पर अपने इस कथन के समर्थन में एक भी सम-मानयिक तथ्य कवि द्वारा स्वीकृत ऐसा कोई अकाट्य प्रमाण उपस्थित नहीं किया है । मेनाग्रिया स्वयं उदयपुर के निवासी और कविन अन्वेषक भी माने जाते हैं । कहीं ऐसा तो नहीं है कि उनसे अपनी ही रिपोर्ट में प्रदत्त "नेलवै" शब्द को नहीं मान कर महाराणा आश्रित रहने की कल्पना कर डाली हो ? रसायनसार में "मवन् नवह नइकरै" स्पष्ट अंकित है ।

कवि का लघुनाम 'नन्द' था । ये भाग्यी गुनाई के परम भक्त थे । कृति में बार-बार भारतीयों की याद किया है और इन रचना का पूरा श्रेय भी उही को दिया है । यह कहने की यहाँ आवश्यकता प्रतीत होती है कि उदयपुर के राजघराने से गुनाईयों का बहुत प्राचीन सम्बन्ध रहा है । १२वीं शताब्दी के जैन विद्वान्तिष्ठों में और उदयपुर के तात्कालिक ऐतिहासिक वर्णनों में उनका बर्णन वर्णित है । साधुवास के गुनाई प्रसिद्ध है ।

यहाँ पर स्पष्टता वांछनीय है कि यदि कवि महाराणा मरामनिह द्वितीय का आश्रित होता तो कम-से-कम आश्रयदाता का नामोल्लेख तो करता ही जैसा कि राज्याश्रित कवि प्रधान में आश्रयदाता की ही कृति बता दिया करते

य वरि इन् विरान मनारिया न या उदरन मिया है उनन ता वरि बा उदरु का हना गर प्रमानि नह।
हाना। बाब भा उदरु म इय जानि क पयाल पर हैं। विन्वविचाय हानि क बाबि और यत भाग क उदरन
प्रमनु हैं—

बवि न रसायनमार का नाम रसरज बापप्रदान भा मविउ विना है—

रसरजबोध प्रकाश

भावि—

श्री गणेशाय नमः

अथगुमाई भारयोको बन रसायन य व सिन्धो

दोहा

प्रनम गुह इह भारती मिन घट बियो उमास ।
और धनेर गुगिरव गुह बचने बचन प्रजात ॥१॥
मिनन वस्तु मतो मिले सोई सनगुह जान ।
मनु मुता द गौड की तो बसप बचन ॥२॥

चन्द्रमने

सवन घात उप घात मनुखल जानीय ।
इनमें सब हो दयाल विसार बचानीय ॥
उतपति है बछ विसारी सब कहै ।
हरि हों बसी गुरपय होय तो लखी बिष लहे ॥१॥
घात हि घात बछ करो उपघात धों ।
बहो धान उपधान बाबि मनु जानियो ॥
उतपति सब दयाल विसारी धों कहै ।
विरता बछ बसक बयो पहचानिये ॥२॥

मन्त भाग—

सवन सत्रह सत्रह बाबों उमल पन ।
तिथि धीबम रविबार मनु रचना रको मु बन ॥
निषिवास नि में सोमनी जोसी हुरपानद ।
बापिन मोत्र बापुका रिन मनु साराबद ॥
नगर उदरु क बिष कवि नद की बाग ।
साय रसायन दय को बच में बरयो प्रजात ॥

हिन्दी भाषा मनु विरान शीरे हुरपानद विरिचि रसायनको प्रकाश य व बापुखल विचारनीय

मनाल ॥



मुख सजीवन प्रकाश

आदि—

गुलमजीवन प्रकाश भाषा जोनी हृदयानन्द वृत्त लिखने ।

वांहा

कहे नन्द नर जोरिके नृनि दगनामी राय ।
गुलमजीवनप्रकाश की मनगुल वचा नृनाय ॥१॥
जो मनि नृनि जोधी विदुन, नित प्रनि चपन उपाय ।
दिनि-विनि वस्तु श्रनेक 'जिहा', पगाधोन दुप पाय ॥२॥
जो सब विद्या जगत में जिनमें पोटा न होय ।
कै हँ दृष्टानुं भारची सुप नुं जीव उपाय ॥३॥

अन्त—

पल इक हीग हीग नुं सुद्ध मगाइयै ।
दुगुनी नागरमोय मध्य मनाइयै ॥
लपन कुनी इक पोन नुं प्यार पल जा हियै ।
हरि हा अष्ट निधीरो मीग सु पानी सराहोयै ॥
उठब मुंग फी पिट सुकीरम जानियै ।
दीलागिरक वत्तोत परपन ठानियै ।
हरि हां टांक एक अफिम मसाला मानियै ।
गाढर दूध मनाय र दस्त घमाइयै ॥
अति मूद्यम जब होई पीठ घंघाइयै ।
आले गढं के चर्म ताहि मगाइयै ॥
इति हीग पंचम विधि सम्पूर्ण

गुलमजीवन प्रकाश जोसी हृदयानन्द वृत्त भाषा वाटनली विधि नमान ।

लंघनपथ्य निर्णय

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में पथ्य और लघन का अमुक रोगों में विशिष्ट महत्व है। वस्तुतः पथ्य स्वास्थ के लिए आवश्यक तत्त्व है। रोग निवारण में दोनों की उपयोगिता अनविश्व है। इस विषय पर मनीषियों ने गम्भीरता पूर्वक विचार किया है। वह वैद्यक का ऐसा अंग है जिन पर ध्यान देना परमावश्यक है। स्वास्थ्य को प्रवृत्ति बनाए रखने के लिए भी माह में एकाधवार लघन करना समुचित ही है। जिस रचना पर यहाँ विचार किया जा रहा है वह भूचिन् परिचर्या का एक अंग ही है। किन्तु रोग, मे जिनने दिनों तक अनाहार रहा जाम और जिन-जिन रोगों में क्या पथ्य ग्रहा किया जाय आदि बातों का मुन्दर विवेचन प्रस्तुत है। यह बनाने की शायद ही आवश्यकता प्रतीत होती हो कि पथ्य भी देगज होते हैं। इस में विशेषतः मारु और जागलादि राजस्थान के जलवायु को ध्यान में रखते हुए रोगी के पथ्य की व्यवस्था है। औषधि के परम सहयोगी तत्व पर आश्चर्य-चिकित्सकों ने सम्बन्ध बनाया नहीं दिया है।

इस कृति का प्रणेतृ हैं परस्पर छाया आकाश श्रीजिनवत्ससूरिजी का पागम्परिज मुनि सम्मोनाय वाचक जो दयातिनक के गिण्य थे। सम्मोनाय वाचक दयातिनक स्वयं बर्ष और समयी मृत थे। इनकी श्रम रचनाएँ १६वीं शती के दूसरे चरण की मित्रनी हैं। वाचक सम्मोनाय ने सद्यनपथ्य निषेध का प्रणयन महाराजा जयसिंह के राज्य में उद्गा के पाननगर जयपुर में स. १७६२ माघ पुर्णिमा प्रतिष्ठा वार्षिकप्रतिवार को किया। इसमें विहित होता है कि उनका मस्त्रुत भाषा पर अधिरार था। अथन अनुभवमूलक विचारों को वस्तु ही सरन और सुवीध भाषा में उपस्थित कर सामान्य या स्वल्प-शुद्धि वारा के लिए मन्त्रुथवार किया है।

‘जन गिद्वान्त भारवर भाग ५ विरण २ पष्ठ ११५ पर लघनपथ्य विचार नामक कृति का उल्लेख है। इसका प्रणयन समय स. १७६२ ही है पर वहाँ प्रणेतृ का नाम वीरचन्द्र दिया है।

कृति का श्राप्ति और ध्यान भाग इस प्रकार है—

श्राप्ति—

धीस्यक्त नमस्कृत्य त्रयतापनिवारक ।
 अतुपतिप्रहर्ता च सबसौख्यप्रदायक ॥१॥
 परमारदायक योति चिदानन्दमय मह ।
 अजान-चात मष्टस्य कवलज्ञानदायक ॥२॥
 सुखेया च मनोना च मुक्ताभरणभूषिता ।
 हस्तचालिनी या सा गारवा चरदास्तु मे ॥३॥
 गणनाथ नमस्कृत्य किञ्चिन्मन्त्रिणम् ।
 मंगल ध्यकर्ता च गोर्मातुत्र नमोस्तु ते ॥४॥
 यन्त्रतरि नमस्कृत्य सबरोगापहरक ।
 सायनवदस्य वक्ता च आयुर्दाता यन्त्र प्रद ॥५॥
 महामहोपाध्याय श्रीवृषदयातिसक सद्गुणम् ॥
 लक्ष्मण प्रणम्यादौ भया श्रय विरक्ष्यते ॥६॥
 पक्षता नमस्कृत्य पक्षते विघ्नवारक ।
 पक्षते अवकर्ता च पक्षते च यन्त्र प्रद ॥७॥

ध्यान भाग—

विद्वज्जनाय सप्रणय नमस्कृत्य गुरु प्रति ।
 सायनारवि सवीर्य आरम्भबुद्धयानुसारत ॥१॥
 दिनदमुनिभूषण्य माते च भाग सज्जे ।
 गुरुते प्रतिपदायां च वासते भगुसज्जे ॥२॥
 सन्ध्या क्रियते यच्च निषयपथ्यसधनम् ।
 श्रीजयपुरे महारथ्ये राधे जयतिहृषीकेश ॥३॥
 पूज्यस्य मनोज्ञस्य यत्नानां च हितार्थम् ।
 मुखाधीन कर्तो येन विना मध्ये तु शोभते ॥४॥
 कपोल कलित चास्ति पूर्वाधार्यानुसारत ।
 दक्षक सबोधायैव एवञ्चोक्त तत्ताम्रत ॥५॥



बसि का विनाश दृष्ट तानन के निष्ठ श्वस्तोय साहित्य का प्रपक्व रचना बाहिए जो भाग्य विदव विनाश म प्रभावित है ।

विन्द्यनिचयाय वृत्ति का आनि और धन भाग इस प्रकार है—

आनि भाग—

श्री गणेशाय नमः

अथराम वृत्त यद्यथाय ग्रंथ आया निम्नले—प्रथम भागशायी नू भगवत्प्रकरण वदत है—

छप्प

एक रदन मत्र ददन सारस तत्वारण भ्यामी ।
जोग युवित अहनिनि भास हृद चद प्रदासी ॥
पाटवर धनि पोति इदि बरसो हृष दिय ।
भन बरण मो फाति ताव भुवताह सतदिय ।
अखराम गनपति सुविर बुद्धि अरुव यत होजिये ।
सरस उरुति इदा तणी मोवत प्रणम सुव होजिये ॥१॥

मुनदेवता नू स्तुति वरत है—

दोहा

विग भवर द्विज पुत्र है ध्यामी अतार अभव ।
तोह सोन में गति सदा जय नय श्रीमुखदेव ॥२॥

बहुरि हरिदेवता नू स्तुति वरत है—

दोहा

ज ज श्री हरिदेवता नू देवन के देव ।
सम सेवक पातक मल लहे अमरपुर भेव ॥३॥
निराकार आकार हरि अगम अगोचर देव ।
हई रूप निह रूप हो कोरिय न पाये भव ॥४॥
गुन विरगा जानी धरो हरि बिन और न कोय ।
मिर घर कीट पात में व्याप रह्यो हरि सोय ॥५॥

बहुरि वरनानी नू स्तुति वरत है—

दोहा

अरुणात सतगुरु तणी अरण नमू नित होत ।
अनिप विवत बुर हर निचय जान अनात ॥६॥

बहुरि जीवानी नू स्तुति वरत है—

दोहा

गुरु जीनी गुन आगरे दया ब दृष्ट अनिमर ।
साहि बया बरि कीजिय गीत ग्रंथ शिरतार ॥७॥





गुरु छीनां किरपा करी नह संजन की भेद ।
 बुद्धि बुद्धिमोहि शीजिये अधिनामी गुह्येय ॥८॥
 गुरु छीना पर्याप्त नृ तम अज्ञान नयाय ।
 गुप्त बान परगट नहै आनन्द नाहि समाय ॥९॥
 अमरराम के स्वगुरु गुरु छीना मुन नद ।
 चित्ता दारन नै टहन भेटन सब गुन दंड ॥१०॥
 तुच्छ बुद्धि मग मत्तप है प्रय कर्मन की बाध ।
 जेने विगत पुण्य की गिरि बन्धो जी बाध ॥११॥
 भक्तिराम तो दीवनी गुरु ईश्वर मुनि नेह ।
 बुद्धि बुद्धि मुन घाम के नो हिरदे मुन देह ॥१२॥
 बार बार पन्नाम दन दन जोहु मरि नाय ।
 न्तगुन तुम्हरी मरन हो नब नदेह मिटाय ॥१३॥

अन्त—

चीपाई

बंधबोध यह नाम बगान्यो बहुत प्रय की भेद नु जान्यो ।
 नम मति अन्तर कहा उनमाना अन्य अपार अधि नम जाना ॥
 गुरु किरपा तं ज्ञान लह्यो है बंधबोध यह प्रय कह्यो है ।
 पुनि वन देति चिदिन्मा कीजै युक्ता-पुन विचार नु दीजै ॥
 देन ज्ञान हर दन्ति विचारो व्याधि औषधि सब चित्त पारी ।
 इह विज्ञान फार दीजै सोई अमरराम भाषिन इह होई ॥

अथ ग्रन्थ वचन—

तैज नीर मियो नु फरेई इनसे शिक्षा करि तुम नेई ।
 तियन पय तै रिखा कीज्यो नूठ बोध को कर मति दीज्यो ॥

छप्पे

स-मर-नाम तुम जानि रूप धरि सदात कहिये ।
 माघ नाम मुनि नाम पक्ष प्रथमा मुल सहिये ॥
 पुनि चिरचि तिथि जानि सूर्य सुतदार बलानू ।
 ता दिन प्रय समाप्ति होत अति हर्षित जानी ॥
 धी नवाई जयनगर मे प्रय पूर्णता जानिये ।
 गुरु प्रसाद तै इह नही बंधबोध बलानिये ॥

इति श्री अमरराम उक्त बंधबोध नापाया बान खन उदम्यभन ग्राम बान परिषाम सुन सन उवाचूर्न हदोग
 मूत्रकृच्छ्रादि प्रमेह—।

इन पक्तियों के लेखक ने उनके अतिप्रय प्रयोगों को—पक्षाघात, नयुमेह, श्वान, आँव आदि आदि—कई बार
 अजमाया है, पर असफलता न मिली ।

लक्ष्मी प्रकाश

इसके प्रणताप सम्पीचन जन हैं । स १६ उ म म्से पूष किया । उस रचना की विगपता यह है कि इसमें प्रयुक्त नगमग सभी रोग स्वानुभवपूर्ण हैं । कृतिवान् न स्थान स्थान पर इसकी सूचना दी है । दूसरी विगपता यह है कि इसमें सबप्रथम रोग का निदान और पूर्व लक्षण विस्तार से लिए हैं तत्पश्चात् रोगोपचय चित्रित का वर्णन है । जिन जिन सञ्ज्ञा से लक्षण का याग प्राप्त हुए उनके नामों का भी बर्णन कृतज्ञान का साथ उल्लेख किया है । आगमद माधवनिदान भावप्रकाश योगवितामणि आदि ग्रन्थों की सहायता भी गई है—

इसका आदि और अन्त भाग इस प्रकार है—

प्रथम हि जिनहूँ सुमरिये दुःखी सारदा माय ।
ज्ञानी गन वाधे सदा ध्यानी घर जु ध्याय ॥१॥
सब हि बिटन निवारिक पक्षरमेष्टी सार ।
सदा काल तिनको मनी भक्षदधि पार उतार ॥
वध धरतरि को नमो नमू आगमद सार ।
संस्कृत अनुसार भय कहै ज भाषा सार ॥२॥

अन्त भाग—

रोगा रोग निदान करि बीछे औषध देय ।
याको निकई आनिक साको विधि करय ॥
जाति चिह्नित्ता रोग की बात पित कक बाधि ।
उत्पटि सपटि करि लानिय सब रोग को लाये ॥
लक्ष्मी प्रकाश ग्रन्थ है पूष ग्रन्थ की सास ।
मायब पय निदान कत भावप्रकाश की सास ॥
योगवितामणि उपाय करि घरक आगमद जान ।
आरोग्यपर दूर्यादि सब एही उपाय खान ॥
साको प्रठारा में बहो उपरि दोष बधाय ।
सा दिन में ग्रो ग्रय है इह चिनि कही जिताय ॥
सबत उगणीस ग्रन्थि वष ऊपरि सतीस ।
वधि रोगास एकावनी बुध दिन करि प्रपटोस ।
सिध लग में पूष हैं लक्ष्मी ग्रन्थ प्रकाश ।
ग्रन्थ बढ़ि करि कोजिये ग्रन्थ घरण को भाव ॥
शहर पछारी नाम बसो जनि जन को बात ।
सा विध मंदिर जन को समस्त को निज बात ॥
निज सेवक हैं अतस्तन वध कृपास भय बध ।
सा कुल को करमान है साक गिप्य जनबन्ध ॥
साक गिप्य मोतीरम है साके गिप्य धोसास ।
साक गिप्य सम्पीचक है साके गिप्य महिमास ॥
सध ल मोचक कोजिये ग्रन्थ पदवी नहीं बध ।
सा गन वधन कारये हित मित करि आनन्द ॥





साधु मत दयाल को कृपा भई हित फल ।
 बाल घृष्टि के पारण प्रगट करि जो विचार ॥
 पृथ प्रथ की मान्य करि प्रत्य बुद्धि अनुसार ।
 अज्ञा मुद्र जो होय करि ब्य जन लेहु सुधार ॥
 घृजन लक्ष्मीचंद दृष्ट आत्म हित के राज ।
 तुच्छ वृद्धि करि कौञ्जिये पूरण प्रथ मनाज ॥
 दोहा सर्वथा जोपई दृष्य सोरठा जान ।
 एक सहस्र श्रम मातनै उपरि घीम बचाण ॥
 ॥ इति श्रीलक्ष्मीप्रकाश प्रथ संपूर्ण ॥

मिनि वैशाख कृष्ण २० म० १८४५ का निषिद्ध श्राद्धण रामनाथन नापूणि मन्त्रे निनेत्र ॥ पठनार्थ
 वावाजी श्री श्री १०८ जगज्जो के ताई ॥

निघंटु

जिमी भी देश की चित्रित्तापद्धति में द्रव्य-गुणविज्ञान का स्वरूप सर्वोपरि होता है। जब तक इन तत्व का समुचित ज्ञान नहीं होता तबतक वैय चिन्तिना अधिगर्ग नहीं माना जाता। प्राचीन भारतीयों ने इन पर बहुत ध्यान दिया है। चरक काल पर दृष्टि केन्द्रित करने में विदित होता है कि उन समय वैद्यों का इन पर ध्यान आकृष्ट हुआ था। चरक के अनुपातविधि (सू अ २७) अध्याय में मात्र यस्तुओं की विवेचना करते हुए प्रत्येक के गुण दोषों पर वैद्य प्रकाश डाला गया है। नृन म्यान के ३८वें अध्याय में ३० द्रव्यगुणों की परिगणना है—जो वैद्यकीय प्रगति की परिचायिका है। वाग्भट भी इसी का अनुसरण करते हैं। यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि में विचार करने के पूर्व हम बात का स्पष्टीकरण वाछनीय है कि द्रव्यगुण विज्ञान के बीज चरक में होने के बावजूद भी इसके पृथक् विवेचन का गुण वृद्धि के बाद का है। प्राप्त निघंटुओं में सर्वप्राचीन पन्थति निघंटु का माना जाता है, पर वनस्पतिगान्ध के पर्यालोचन से उसकी प्राचीनता अनदिग्ध नहीं है। ४वीं शती के मुनिन्द्र चिद्वान् और योगदार अमरसिंह ने भी वनस्पतियों के नाम दिये हैं, पर उनका दृष्टिकोण भिन्न था, वैद्यकीय नहीं था। मालवपति मुज के समकालिक कवि हस्तायुष की अभिधान रत्नमाला और चक्रवर्त्त के द्रव्यगुणग्रह को प्राचीन निघंटु मानने में आपत्ति नहीं है। दोनों कृतिकार चरक में परिचित थे। घन्वतर्ग का प्रभाव भी इन पर नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। उन की कृति को द्रव्यावलि की मजा में अभिषिक्त किया गया है। बाह्वी शती के गुजराती विद्वान् शोटेन को हम विस्मृत नहीं कर सकते जिनने वनस्पतियों का प्रत्यक्ष अनुभव कर अपने विचारों को विस्तार से उत्पत्ति किया। भेद प्रभेदों पर प्रकाश डाला। यह पहला व्यक्ति है जिनने न अपने रसनिग्रह में अहिफेन का उल्लेख किया है। वैद्य देशव प्रणीत सिद्धमन्त्र भी अनुपेक्षणीय नहीं। अनि प्रमिद्धि प्राप्त यदि कोई निघंटु है तो वह मदनपाल निघंटु है जिस की रचना १४ वें शतक में होना प्रमाणित है। डा० राजेन्द्रनाथ मिश्र और महामहोपाध्याय श्री विश्वेश्वरनाथजी रेञ्जी ने इसे कनौज का गहरवार वसीय माना है, पर प्रकाशित निघंटु की प्रगति में स्वतः सिद्ध है कि ये जमानादौय काच्छ देशीय नरेश थे जिनकी अवस्थिति दिल्ली से उत्तर की ओर रही है। मदनपाल ने अपने निघंटु की रचना करने समय एतद्विषयक अन्य नामों का भी पर्याप्त अध्ययन किया था। उन समय और निघंटु रहे होंगे। अभिधानचूडामणि भी एक मूल्यवान् कृति है जो मदनपाल, अभिधानरत्नमाला, विद्वत्प्रकाश, अमरकोश आदि के निरीक्षण के पश्चात् निम्नो गइ है। आयुर्वेदीय औषधि शास्त्र के क्रमिक विकास की दृष्टि में इस कृति का विशेष महत्व है। विस्मृत वनस्पतियों के नाम भी इन में विद्यमान हैं। सापेक्षत यह औषधों के अधिक नाम देता है। यहाँ क्षेम शर्मा के “क्षेम कुतूहल” को विस्मृत नहीं कर सकते

जिनकी रचना स० १६५ में हुई है। एतद्वाक्य वा विना विवेचन इमी म प्राप्ता होता है। वदि ने आत्मवत् न्ने हुए सूचित किया है कि मरे प्रतिमाह ने तिला व सुखतात की सेवा कर ११ ग्राम प्राप्त किया। वदि ने स्वयं भी विप्रमसेन राजा की सेवा कर कुछ ग्राम पाय। पर वह वहाँ का नरख था बहना बठिन है। इसमें उस समय व प्रचलित अन्य प्रथा का उल्लेख किया है पर व आज अज्ञाप्य हैं। न्ने अनिरिक्त राजवत्तन वृत्त व पुण्यसग्रह (रचना काल स० १७६ ई) माधव वृत्त द्वारावलि आदि नई निषिद्ध सजक रचनाएं प्राप्त हैं।

सूचित निषिद्धा में राज निषिद्ध के बाद सर्वोत्कृष्ट ओ सुखता देन बाना निषिद्ध उपक्रम है वह है भावप्रकाश जिसकी रचना भावमित्र द्वारा हुई और उसकी एतद् पंक्त एक और रचना गुणरत्नमाना है जिसका अर्थ इसी प्रत्यक्ष में ऊपर की पंक्तियां में लिया जा चुका है।

ज्यों "यों समय बीतता गया वानस्पतिक शास्त्र का विकास होता गया। यद्यो न निय इसका प्रत्यक्ष ज्ञान निराला आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। बिना परिचय के भण्ड बहना असमय है। पर आज बहुत कम ऐसे चिन्तितक हैं जिन्हें वनस्पतियों का प्रत्यक्ष ज्ञान है। परास्त्रियों पर निर्भर रह कर सफ चिन्तितक नहीं बना जा सकता है। ऊपर की पंक्तियों में निषिद्धा का विस्तृत ध्वनितान इसलिये बताया कि मरे सग्रह में एक ऐसा निषिद्ध है जिसका परिचय यहाँ दिया जा रहा है। यद्यपि यह कृति सज्जन है पर फिर भी इसका मूल्य कम नहीं होता। रचनाकाल और रचयिता अज्ञात है। इसका मूल्य इसलिये भी है कि यह प्राचीन निषिद्धा की अतिम बहना है। सम्भव है १६१६ की गती की रचना हो। इसमें प्राचीन वनस्पत का अनुकरण करत हुए प्रत्यक्ष वनस्पति का नाम गुण और वित्त प्रमाण म अधिक प्राप्त होनी है तथा वहाँ उसका वरा ग्रामीण नाम है तत्संस्थित जनता उसे जिस नाम म विधानया साती है आदि भवेत् सूचकान् सूचनाओं का नाम उपक्रम्य सग्रह किया गया है। "सम सन्ने" नहीं कि इसकी रचना भावप्रकाश में बा" की है कारण कि जहाँ वदि ने वनस्पतियों का वर्णन किया है वहाँ यह भी संकेत किया है कि प्रमुख वनस्पति के भावप्रकाश ने इनके विषय नाम दिय हैं और कय देव तथा वनवल्कि ने इनमें दिये हैं। प्रमाणरूप गुणरत्नमाना का भी ६ स्थान पर उल्लेख है। अथकार अमरकोश और इन्डोना के नाम भी देता है। इसकी दूसरी विशेषता है आयुर्वेद म प्रचलित औषध गुणानि म क्या स्थान रखते हैं और उनका गुणों में वे क्या अन्तर बताते हैं। साथ ही गुणानि औषध पाषाणानि का पूरा परिचय देकर दोनों पद्धतियों का सुलभात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर क्या समाज पर भट्ठपवार किया है। इसमें व प्रांतीय नूतन वनस्पतियों का भी संविस्तृत वर्णन है जिसका उल्लेख अद्यतन निषिद्धा में नहीं मिलता। जो औषध प्राचीनज्ञान म विज्ञानों से आते थे उनकी सूची पुष्प के रखी है। प्रांतीय औषध जसे साहबान बूनाचन म प्राप्त होता है अमीरा काल स रोषा जिसका तल बनवा है, शुरहानपुर प्रान्त म अधिक मिलता है। अन्य परीक्षण से ऐसा प्रतीत होता है कि इन्ना विस्तृत वर्णन तो भावप्रकाश म उपलब्ध नहीं। परन्तु साहित्य म विकसित तथ्या का समाविष्ट होना स्वाभाविक है।

यहाँ कुछ उद्धरण देना आवश्यक है—

जल भिलासा—मलानक मजा भिलासी इति तिलजदेश प्रसिद्ध बहुधा तत्र भोजनार्थ प्रचार।

म गमारी—मातवे व प्रसिद्ध पुष्पविषय नाम क्वचित्पाषाण भटवास इति प्रसिद्ध। भास्त्रय वाञ्छितवा (भटा) भेटसह मुजायते तिल निजरा हस्तयो चमान पत्राणि ताम्बूलसन्गाणि—॥

सोय—अजमइने तल्लाउत्स दतयावन नुव लि जना।

भाण बह—वग्ने मानकछरि प्रसिद्ध।

माई—भावप्रकाश पदिकमें मोई आर्ति सोने प्रसिद्ध इति वरा विषय।

माह पसद—स्यात स्याह पसद स लना भेद एवं हि पवन प्रान्त तद्वान्त्रदेगपि सुदुरागत जायते सदमणपुर (नलनऊ) प्राप्ते तज्जमाकण।



सुरवाली—इद्रप्रस्थेन प्रगिद्धा, ब्रजदेशे मिलतीति प्रगिद्धा वर्णराले अवापितैवलोत्रे जायते नत्पत्र ननिका-
याश्च शाकं गुग्गुनि जना । तद्ग्रीजानि तूष्माणि ऋणवर्णानि कातियुतानि भवन्ति ॥ निपट्टादी-
गुनिषण गितवारं एति नाम्ना विख्यात । मदन विनोदे तु गुनिषण गितवारो पृथक् निगिनी
अन्य निघटेपु भावप्रसाध कैयदेव प्रभृतिषु पृथक् निगिन ॥

कपूर—अथ चीनरोपि अग्योत्रभेद लोके चीनिया एति प्रमिन्न तस्य नामगुणा
चीनकञ्चीनकपूर ? कृत्रिममोघवन पटु ।

मेघसारस्तुपारस्तु दोषकपूरजस्मत् ।

चीनक कटु तित्तोष्ण इषत्पीतकफाम् ॥

कठदोष हरोमेघ्य पाचनक्रिमिनाशन ।

पित्त प्रशमन प्रोषत कृष्टकृति नाशम् ।

छदि प्रणाशन सधंघ्याधिजनैककारणम्

तदुत्पत्तिविशेष लक्षणम्

शिरोमध्यतलश्चेति कपूरस्त्रिषधस्मृत ।

शिरस्तनाग्र सजात मन्थपणेतलेतल ॥

पुलकभावविशदशिरोजात तु मध्यमे ।

सामान्यपुलकं स्वल्प तलेचूर्णं तु गौरय ॥

न्तनगभन्धित श्रेष्ठ न्तनग्राह्ये च मध्य ।

स्त्रच्छमीपद्हरिद्राभ शुभत मध्यज स्मृतं ॥

श्रद्धष्टशुभ रक्षत पुलकयाहज स्मृत ।

स्वच्छ भृगानपत्र तपुतर विशद तोलनेतिषतरु च ।

सादेष्टव्य सुहृद्य बहुलपरिमल मोदसोरभदायो ॥

निम्नेह दार्ढ्यपत्र शुभतगृमृतिचेद्राज्य योग्य प्रशस्त

कपूर चान्यथाचेद्वहतरमशने स्फोटदायिग्राम ॥

अपर च भीमसेनी कपूर इति लोके विख्यात तस्य नेत्रगेनेषु विनोपन प्रचार जयपुरे दक्षिणदेशेचात्यत्रानि
निघट्टवादी तदुत्पत्तिर्लक्षणं न दृश्यते परन्तु वृद्ध पुरपेम्प एव श्रूयते पुगकिन्नमद्रदेने लाहोरनामकनगरे भीमसेनानामा-
वणिगजनोन्यवमत् न च नानाविधोपधीनाक्राविन्नय व्यवहारार्थं बहुमग्रहं वृत्तवान् तत्र कपूरस्यापि आधिक्यं भववत्
पुनश्चैवदैवयोगेन कदाचिदग्निनातदग्रहे दाहेजाते सर्वाधिनानामपि दाहोजानस्तत्रकपूरस्तुनानाविधोपधि नवधेन-
उड्डीयतद्गृहस्योर्व्वस्थितकाष्ठा दीमलग्न सच तमालोक्त्यनिशुभमुत्तुगधगुणवत्तर च भवतं नगृहीतवान् पुनश्चयस्य-
कस्यापि जनस्यनेत्रं व्ययायातर प्रयोगं प्रयोजितवान् तेनारोग्यमभवत् सच त भीममन कपूरमिदमित्यभिधायस्यापिबान्
इति सचाधुनावहकालेनोच्छिन्न एवानोत् आधुकास्तु सामान्यकपूरकस्तूरीनेशरादिनाना सुगन्धिद्रव्यं सयुक्तं बन्धिनाउडो-
नविधाय भीममेनकपूरस्याने सएवावमिनिव्यवहरति यन्ततयग्रोपध्यादि मयोपि प्रयोजयति ॥

नही कहा जा सकता भीमसेनी कपूर की उत्पत्ति की किवदन्ती में कितना मत्याश है । पर क्या को रोचक
खूब बनाया गया है । सूचित कपूर कृत्रिम है यह तो सही है ही ।

आगे चल कर चाय मावुन और सोडे का भी ऐसा ही रोचक इतिहास और उसकी प्रयोग विधि बताई है,
पर स्थान सीमित होने में उसे उपेक्षणीय रखना पड़ रहा है ।

इसकी रचनाशैली बहुत सुन्दर और आकर्षक है । भाषा सरल और बोधगम्य होने के साथ वस्तु तत्त्वका
बोझाटन कर देती है । इसमें वर्गों का विभाजन वस्तुपरक न होकर अकारादि क्रमानुसार है, उदाहरणार्थ जैसे कका-
रादि वर्ग लिया तो कादि सूचक सभी वस्तुएँ इसमें आ गई हैं, चाहे वह लता हो, वृक्ष हो, या अन्न हो ।

क्या ही भ्रष्टा होना हमारी पृथ प्रति समुपलब्ध हो जाती ।

इन रचनाओं व धर्मातिथि सप्रहृणी विविस्ता पठति हसराज तुन भिषक चक्रविनीतस्य शान्ति वर वृत्तिपा ह जिनका वयस्य दास्य म श्राना मन्त्र है पर उन सबकी विवाद चर्चा वा यह स्थान नहीं है।

यहाँ गुविच करना अनिवार्य है कि जिस प्रकार निष्ठुषा म वनस्पतिया का चिक्चन मतिवृष्टि है उसी प्रकार भीषविवरणा। न क सप्रह प्राप्ता हों हैं किम एक ही भीषविवना माविव महत्व प्रशंगित रहता है धीर साय हा रोमनिवारणाया भी प्रयोग मगहीन रहते हैं। जिस प्रकार मय गमिन स्तुनिया रही जानी या उसी प्रकार भीषविव गमिन रहनाए भी विमिन दृष्टा करती है। इस प्रकार की रचनाओं के विकास का थम अन कनाकारा की है। आचाय भी अमयवेवगुर्विजी का मेमा एक मभीषविव गमिन प्राप्ती भी है।

प्रकीर्णक श्राम्नाय सकलन

एक ओर जहाँ प्राचीन पद्धति का अनुसरण करने वाले भौतिक ग्रन्थ हैं वहीं दूसरी ओर गुरुपरम्परा प्राप्त ध्यानात्मकग्रन्थों को भी बमो नहा है। 'तत्त्व'ियों से प्रयुक्त योगों का उपास्य सहज लसी हा रचनाभा म गुरा रन रहता है। रोगनिवारणाय इतनी उपयोगिता विमो भौतिक ओर 'मस्त्रीय कृति स वन नहा है। सद्यः पत्रात्मक न स प्रकार का साहित्य ही आज प्रायुर्वेदिक जगत् म सवाधिक उपेक्षणीय रहा है। राजस्थान के 'नातागारा म सन्निभ ओर मने म जिनता भी एकापियन सहज है उसना पत्तरीलन शनिबाय है। एक समय का जब हि स्वास्थ्य ओर गिता का उत्तरदायिनी भूतार्य य यतियों के मुकुट का परल नगर गुह का भासन यो ही मुगोभिन नरो दिया जा सक्त था एनी विधि म सभ सम्पन्नयोग क धार्मिक स्थान न्य प्रकार के साहित्य य परिरुष्ट रहे हा नो क्या भाष्य है ? बह ए सक्कन मने भेये * जिनम चारित्रधान साधायो की ध्यानायें उहा के नाम से उल्लिखित हैं।

ब्राह्मणों की एसी इतिहासी भावधाय भाषा बिना और भाषा तोन के प्रमिद बिज्ञान और प्रसार पर भी भाषिक प्रजाग गालनी हैं। जनभाषा का बाह्यविषय स्वरूप ननने उपरय हो जाना है और बिम बिम प्रदान म नीन कीन सा भाषा प्रचलित बा और बिनत बाता। का सर बहो प्रचलित बा बालि भवे। मूयभासु तस्या की जानकारी गहून ही स बचनारमर पदवाभा स मिल गानी है। कूा कूा तो मुभाभा तन पा उनेल हाता है उगादगाय म १९३५ का एक ब्राह्मण का गुका गरे स प्रह म हैं ओ जयपुर क निजटवर्ती नान जोरनेर म प्रनि तिमिल है। एतम जितने बा भीम हैं सभा सरभाही मुभा म है। मम भाषा जाहिर है कि उन नि। ओ टाता के बिचने राजस्थान म प्रचलित बा। और दिविष प्राणीय मुभाभा की ओ टाते हैं निजवा भषना महारा मम नही हैं।

सूचनात्मक अनुपत्ति

प्राचीय भाषाभाषा में देशीय सापुर्वेक रचनाएँ पर्वानि यात्रा में प्राप्त हैं उनका संगोपन अनिवार्य है। प्रचलित रचनाभाषा में पुरानी प्रतियाँ पर ध्यान देना भी आवश्यक है। एक जितना ऐसे कर्म श्रेय है जितना प्रशासन होने के बाद भी पुनः मसाले मसाले रतन हैं। मेरे सन्दर्भ में १५५५ सालों में एक रचनाकर्ता वनियय पत्र में जिनमें पारल्लभ के विवरण व साथ सन्धिपत्र विविध यत्र स्थित शब्द हैं।

साज साव-पटना हूँ साधुबुद्धि विरलू नित्यमयी वराधि साज तत् स्वरू नित्या के धनिका विना
 धोर घालाचनामय हनित्र तयार नय हूँ। युगत्र प्रयाग के अन्दर धोर नित्यामयता पर यदि चिन्ति मय मन्दा न
 प्यात पिया नो नय नय बाय हा रायता। य प्रयाग भी वास्तव हाता हि साधुबुद्धि कृतिगयी नयन बोध
 करवाई जाय धोर उतरा साधुबुद्धि नित्या भी प्रयाग हा। बिसय नय ता चय हि नय विषय वा जिनन नयन
 सामयी हूँ ते पान मुक्ति न।। बगानिध युग म भारतीय चित्तिस्वात्मनय वा जातिन रयता है तय सायनय पदधि
 स टनर नयी है सा नय मय हूँ। यय नयानय वा प्रसाहन नित्या हा साधुबुद्धि अयय अयि मुक्तिगयी नय नय
 दने साय ता पान भिन्नि घगनय हूँ है।

१ निम्नलिखित मन्त्रों की मूल हस्तलिखित प्रतियाँ ग्रेफ़ के संग्रह में संरक्षित हैं।



आचार्य माणिक्यनन्दी और उनका परीक्षामुख

श्री गोपीलाल अमर

एम ए, शान्त्री, पाठ्यनिर्य, ना रत्न
पुरातत्त्व विभाग, नागर विश्वविद्यालय, नागर (म प्र)



आचार्य माणिक्यनन्दी

व्यक्तिगत परिचय

भारतीय न्यायशास्त्र के महान् सप्रमाणों में आचार्य माणिक्यनन्दी का स्थान उल्लेखनीय है। ये नन्दिनय के एक गुणमान्य आचार्य थे, यह उनके नाम से तो ज्ञान होना ही है, विष्णुगिरि की सिद्धगुप्तों के एक स्तम्भनेत्र से भी सिद्ध होता है। यह स्तम्भनेत्र एक म० १३०० (१३६८ ई०) का है। इनमें नन्दिनय के आठ आचार्यों की नामावली दी गई है। और उनमें आठवाँ नाम आचार्य माणिक्यनन्दी का है। वि० म० ११०० (१०६३ ई०) के एक अपभ्रंश काव्य मुदसणचरित्र ने आचार्यजी की गुणपरम्परा का ज्ञान होना है। उन राज्य के प्रणेता मुनि नयनन्दी आचार्यश्री के निष्पत्ति थे। यह गुणपरम्परा इस प्रकार है आचार्य कुन्दकुन्द की आम्नाय में प्रथम पद्यनन्दी, वृषभनन्दी (नमस्त चतुर्मुखदेव), रामनन्दी, माणिक्यनन्दी, नयनन्दी। मुदसणचरित्र की एक अन्य प्रति में गुणपरम्परा ऐसी है, आचार्य कुन्दकुन्द की आम्नाय में प्रथम पद्यनन्दी, विष्णुनन्दी, नन्दनन्दी, विष्णुनन्दी, वृषभनन्दी, रामनन्दी, प्रज्ञोक्तनन्दी, नयनन्दी। इन दोनों परम्पराओं में कोई मौनिक अन्तर नहीं है और उसमें निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आचार्य माणिक्यनन्दी के दो गुरु थे, रामनन्दी और प्रज्ञोक्तनन्दी। उनकी निष्पत्ति निकाशा जा सकता है कि आचार्य माणिक्यनन्दी के अनिरुद्ध प्रभाकर जैसे समय आचार्य भी थे।

आचार्य माणिक्यनन्दी धारानरेश भोज के समकालीन और उनके दरबार में सम्मान प्राप्त विद्वानों में से थे।^१

१ मुदसणचरित्र की इन दोनों प्रतियों के परिचय के लिए देखिए प० दरबारीलाल कोठिया . आप्तपरीक्षा, प्रस्तावना, पृ० ३०, ३३।

२ जैसा कि पूर्वोक्त दोनों गुणपरम्पराओं से ज्ञान होता है।

३ जैसा कि आगे सप्रमाण कहा जाने वाला है।

४ विस्तार के लिए देखें, आप्तपरीक्षा, प्रस्ता०, पृ० ३१।

समय

य नीमा नमवा गवा र मध्य बभा विद्यमान रह । आचार्य विद्यावता नव पूत्रवर्ती प्रजापति है । त्रि-का समय ७७१ ग म ८८० २ क मध्य शताब्दी है ।^१ आचार्य माणिक्यधनदी का जन्म गिन्ध और शाहजोर प्रभात का समय ८८१ ६२५ १ गना गया है ।^२ धन प्रभुत आचार्यकी जन्मसमय ८८६ से ८९६ इ क मध्य बभा होना चाहिए ।^३ गग नमवा अवधि १६ वर्ष का मनुष्य बनने के लिए अभी पर्याप्त प्रमाण नहीं प्राप्त हो सका है ।

वृत्तित्व और व्यक्तित्व

आचार्यका वै वृत्तित्व और व्यक्तित्व पर प्रमाण साक्षात् क लिए स्वतंत्र प्रत्यक्ष की आवश्यकता है । परीणामुप ही इनका एकमात्र वृत्ति है । आचार्य अथर्ववेद और आचार्य विद्यानन्दी की भाँति कह न तो अविज्ञ विस्तार प्रभात का और न विस्तार का महत्ता धन म प्रकाश बनता प्रिय था । इनकी अभिप्राय और विवरणपूर्ण दृष्टि ही इनका महत्ता म माधुर्य है । युवा की सत्ता गगनरता म ह्रा धनन मन-मत्तानन का सतत बनने का उनका यत्न करने अपने मन की स्थापना और भग्न कर लेना और समस्त ह्रास लपेटे ही प्रतिपक्षी का गठरा मजान उठा लेता गद्ग की विपत्ति है ।

परीणामुप आचार्य माणिक्यधनदी की भग्न उपनय है । व समयोगयोगी ती है ही निशान नवीन भी है । यद्यपि अथर्ववेद के जनप्रत्यक्ष की स्थापना कर चुके थे और कारिकाव्यय अनेक महत्त्वपूर्ण माधुर्यपूर्ण स्फुट प्रकरण भी लिख चुके थे परन्तु मोनन के माधुर्य के माधुर्य माधुर्य माधुर्य माधुर्य की तरह जनमाधुर्य की मधुर्य करने वाला जन्माधुर्य का जन्म परम्परा म अन्त मन् नया बन पाया था । गगो बभी की पूर्ण सबप्रथम आचार्य माणिक्यधनदी ने अपना परीणामुपवृत्त विज्ञ कर की जान गम्भी है । उनकी यह मधुर्य धमर रचना आगताय माधुर्यका म अपना विविध स्थान गगना है ।

परीणामुप के तुलनात्मक अध्ययन म हम स्पष्ट अनुभव करते हैं कि आचार्य माणिक्यधनदी का अध्ययन विज्ञान विज्ञान एक गम्भीर था । अथर्ववेदका व मधुर्य म उन्हीं माधुर्यविद्यामून विज्ञान था य तो मिष्ट है हा^४ जनाचार्य विद्यानन्दी का और बीडाचार्य विज्ञान और धमकीर्ति का विज्ञान से भी उन्हीं विज्ञान सामग्री उपाजित की थी । उनका वृत्ति म आचार्य का विज्ञान प्रमाणनयवाला जन्मा आचार्य जगत्प्रकार न प्रमाणयोगीमाग का विज्ञान प्राप्त का की उपनयिता का हा है गतिग गरीर का वन्त कुछ उगी व बनकर से निर्मित किया है ।

अन्यत्र व भग्न विज्ञान और मधुर्य आचार्य प्रभात ने आचार्य माणिक्यधनदी का अध्ययन आचार्यधनदी म नयमाधुर्य किया है । उनका वृत्त गतिग विज्ञान विज्ञान गति म स्वीकार किया है । उनके अनुगत आचार्य श्री

- १ यही पृ २७ ।
- २ जन डा मोकुमव साधमासतपरीणा प्रस्ता म २६ ।
- ३ माधुर्यमाधुर्य ५० गद्गकुमार प्रमेयधममानन्द प्रस्ता म ६७ ।
- ४ इस साधुर्य म कुट सभाबनाए म परमावद गगती ने प्रकाश ली है । प शुभ घोडालदाम चरदा समतिप्रथ म ४६६ ।
- ५ कोटिया प दरवारीताल गगनपरीणा प्रस्ता म पृ २७ ।
- ६ आचार्य धनकीर्ति प्रमेयधनमाना साधुर्य न २ ।
साधुर्य कोटिम धमप्रकारावधोयो माणिक्यधनदिपदपदुद्धरत्यसादात ।
अथ न कि स्फुटविज्ञान प्रवृत्त लघोयावोक्तस्य अनुसरविस्तुरिता मधान ॥

—प्रमेयधममानाधुर्य आधुर्य म २ ।





सज्जनों के आह्लादक तो ये ही, एकान्तवादरूपी मानिन्य के सगोत्रक भी ये और ये वे सर्वोपरि जैनमत के माधात् समुद्र ।' मुनियनन्दी ने आचार्यश्री को अपने गुदगणचरित्र में महापण्डित कह कर स्मरण किया है । उन्होंने अपने सकल विधिविधान में उन्हें महापण्डित तो कहा ही है प्रत्यक्ष-परोक्षप्रमाण रूपी जल में परिपूर्ण नयरूपी तरंगों में गभीर और उत्तम सत्तभङ्गरूपी कल्लोलों में उच्छलित जिन आगनरूपी महागगनार में अवगाहन करने वाला भी निम्ना है ।' प्रमेयरत्नमानाकार आचार्य अनन्तवीर्य ने उन्हें अनन्तन्यायरूपी समुद्र में पनीक्षामुगरूपी अमृत का उद्धार करने वाला लिखा है । प्रमेयरत्नमाला के टीकाकार आचार्य अजितमेन उनका सादर स्मरण करते हैं ।' वे कहते हैं कि गुरु की भक्ति से ही मैं अपना काय सम्पन्न कर माग हूँ ।' स्वयं पण्डिताचार्य नाम्नीनि अपार श्रद्धा और भक्ति से कामना करते हैं कि गुरुमाणिक्यनन्दी उन्हें हृदय बनावें ।' उनके नम्र वे अपनी अत्यन्त तुच्छता प्रकट करते हैं ।' प्रत्येक परिच्छेद के और ग्रन्थ के अन्त में वे अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषण देकर उनके प्रति अपनी प्रगाढ़ आस्था व्यक्त करते हैं ।

इसमें सदेह नहीं कि माणिक्यनन्दी अपनी धौली के अद्वितीय आचार्य हुए हैं ।

१. गभीर निलिलाथंगोचरमल शिष्यप्रबोधप्रद

यद् व्यक्त पदमद्वितीयमजिल माणिक्यनन्दिप्रभो ।
तद् ध्याप्यातमदो यथायगमत किञ्चिमया लेशत
स्थेयाच्छुद्धधिया मनोरतिगृहे चन्द्रकतारावधि ॥१॥
मोहध्वान्तविनाशिनो निलिलतोविज्ञानद्युद्धिप्रद
मेघानन्तनभोवितर्पणपटुर्वस्तुक्तिभाभासुर ।
शिष्याब्जप्रतिबोधन. समुदितो योऽरे परीक्षामुलात्
जोयात् सोऽत्र निबन्ध एष सुचिर मार्तण्डवुत्पयोऽमल ॥२॥
गुरु श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जन ।
नन्दताद् दुरितैकान्तरजा जैनमतार्णव ॥३॥
श्रीपद्मनन्दिसेद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालय ।
प्रभाचन्द्रश्चिर जोयात् रत्ननन्दिपदे रत ॥४॥

—यही, अन्तिमपद्य न० १-४ ।

२ पञ्चवक्त्रपरोक्षप्रमाणगीर णयतरलतरगावलिगह्वीर ।

वरमत्तभगिक्लोलमाल जिणसासनसरणिम्मलसुसाल ॥
पांड्यचूडामणि विबुहचदु माणिक्यकणदि उष्पण्णु कदु ।

—जैनग्रन्थप्रशस्ति संग्रह, भाग १, पृ० २६ ।

३ श्रीवर्धमानमकलङ्कमनन्तवीर्य माणिक्यनन्दिबिभुभाषितशाम्भ्रवृत्तिम् ।

भवत्वा प्रमेन्दुरचिता लघुवृत्तिदृष्ट्या नत्वा यथाविधि वृणोमि लघुप्रपञ्चम् ॥

न्यायमणिदीपिका (जैन सि भवन, आरा की पाण्डुलिपि), पद्य १ पार्श्व १ ।

४ त्रकलङ्कुरत्ननन्दि प्रमेन्दुसदनन्तवीर्यगुणभवत्वा ।

एतद्विधा दातो निरुद्धवानेष कि न गुरभवत्वा ।

— वही पत्र १६६, पार्श्व २ ।

५. यत्सूत्रज्ञचन्द्रिकारसभर नित्य सगात्वादयन्

भव्योत्तसमुधीचकोरविकर सर्वोपि समोदते ।

सोय सार्वपथीनधीबुधमन मौघागकेलीजुको

हर्षं दर्पतु तन्त- हृदि गुरुमाणिक्यनन्दी मम ॥ प्रमेयरत्नालङ्कार, (जैन सि० भवन आरा की पाण्डुलिपि), आदिपद्य

६ माणिक्यनन्दिनचित्तं क्व नु सूत्रद्वन्द्वं द्वालीयसी मम मतिस्तु तदीयभवत्वा ।

तादृक्प्रमेन्दुवचसा परिशीलनेन कुर्वे प्रबन्धमधुना बुधहर्षकन्दम् । वही ।

परीक्षामुल

स्वरूप

परीक्षामुल आचार्य माणिक्यनन्दी की एकमात्र कृति है। यह समुद्रगा और दा गौ तम सूत्रों के माध्यम में इन ग्रन्थों में सम्पूर्ण प्रमाणगान्ध का अद्भुत एवं अद्भुत समावेश किया गया है। ग्रन्थ 'आदि' और अन्त में एक एक 'नान' भी है। जन 'याप' का यह प्रथम सूत्र ग्रन्थ है।

सूत्र के सभी आवरण सभ्य परीक्षामुल के सूत्रों में घटित हैं। महर्षि पाणिनि और आचार्य उमास्वामी के सूत्रों के मुराबदे आचार्य माणिक्यनन्दी के सूत्र तनिक भी पीछे नहीं रहते। यथा कारण है कि इस एक ही ग्रन्थ का प्रणयन करने आचार्य माणिक्यनन्दी अपनी स्थान भारतीय 'याप'वारी में सर्वोपरि बना गए हैं।

नामकरण

नामकरण की दृष्टि से भी परीक्षामुल का विशेष महत्व है। इस नाम में दो शब्द हैं परीक्षा और मुल। होना गान्ध के चपन का ऐतिहासिक कारण प्रतीत होता है। आचार्य माणिक्यनन्दी के समक्ष एक अनेक 'याप'ग्रन्थ थे जिनमें अन्त में परीक्षा गान्ध का प्रयोग है उस निम्नाप के आसम्भनपरीक्षा और त्रिवालपरीक्षा धमकीति का सम्बन्ध परीक्षा धमकीति का प्रमाणपरीक्षा और विद्यानन्दी के धानपरीक्षा पत्रपरीक्षा प्रमाणपरीक्षा और सत्यवासनपरीक्षा। इसी तरह कुछ ऐसे भी ग्रन्थ उनके समक्ष थे जिनके अन्त में मुल गान्ध का प्रयोग है जैसे हनुमुल और 'याप'मुल आदि। बदाकिन्हीं इन्हीं बहुप्रचलित परीक्षा और 'मुल' शब्दों से प्रेरणा पाकर ही आचार्य माणिक्यनन्दी ने अपनी कृति को परीक्षामुल का नाम दिया होगा।

यदि इन नाम की अपनी निजी साधकता भी है। परम्पर विरुद्ध अनेक उत्तिषा की प्रवृत्ति और निबलता के निर्धार के लिए किया जाने वाला विचार परीक्षा कहलाता है और यहाँ परीक्षा से तात्पर्य है 'याप'गान्ध या प्रमाणगान्ध से। मुल का अर्थ है प्रवृत्ति। जो प्रमाणगान्ध का प्रवृत्तिार हा उसे परीक्षामुल नाम देना ही साधक है।

उद्गम और प्रभाव

परीक्षामुल का अन्तिमनिर्माण करने में ज्ञात जाता है कि इसका उद्गम अनेक ग्रन्थों से विवेचन अनेकद्वेष न ग्रन्थों में हुआ है जो अनेक ग्रन्थों का विधान वादिक्यमूर्ति के प्रमाणनयत्त्ववाचक तथा आचार्य हमक्य का प्रमाणमीमासा का उद्गम इस ग्रन्थ में हुआ है। यह उद्गम भी है कि आचार्य माणिक्यनन्दी ने प्रमाणस्वरूप आदि में

१ आचार्यमहाविद्यालय सारथ्य विश्वतोमुखल।

अस्तोभमनवय घ सूत्र सूत्रविदो विदुः॥

२ विरुद्धनानासुक्तिप्रावपदीवत्मावधारणाय प्रवृत्तमानो विचार परीक्षा।

—आचार्य धर्मवृत्तयति 'याप'विका प २ प० १६।

३ प दरबारीलातजी कोटिया द्वारा परीक्षामुल की अनेक धर्मों से की गयी सुचना के लिए देवें अनेकाल यय ५ किरण ३४ प० ११६ १२८।



शब्दावली का प्रयोग, अपने पूर्वाचार्यों की परम्परा में जग हटकर जैनतर आचार्यों की परम्परा में अनुत्पन्न किया है।

भाषा और शैली

उन ग्रन्थ की भाषा सरल किन्तु सघन मस्तुत है। सूत्रमय होकर भी यह ग्रन्थ त्रिदण्ड या दुर्वोध नहीं है। शब्दों के चयन में परीक्षामुखकार के समक्ष अनेक समस्याएँ थी। उन्हें अपने पूर्वाचार्यों की परम्परा का निर्वाह तो करना ही था, एक सूत्रग्रन्थ की मर्यादा की रक्षा भी करनी थी। उन्हें जहाँ आचार्य अकलङ्क के ग्रन्थ-समुद्र को मयकर सूत्रामृत निकालना था वहाँ उस सूत्रामृत पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप भी छोड़नी थी। उन्हें सूत्र जैसे सक्षिप्तनम माध्यम में न्यायशास्त्र के सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने ही थे, तात्कालिक मन-मनान्तर्गो का स्पष्टन-मण्डन भी करना था। इन तमाम समस्याओं के रहने भी, हम पाते हैं कि परीक्षामुख अपनी भाषा की दृष्टि में, न्यायशास्त्र के प्राथमिक जिज्ञासुओं को भी कठिन नहीं, बहुत सरल है।

सूत्रकार की शैली भी, भाषा की भाँति सरल वन पड़ी है, विषय को स्पष्ट एवं सुबोध बनाने के लिए स्यान्-स्यान् पर दिये गये उदाहरण इस ध्यान के प्रमाण हैं। शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ में सिद्धान्तों का कोण प्रस्नाव न रहकर परमत-निर्गकरण और स्वमत स्थापन की प्रक्रिया स्पष्टन आ गई है। यही कारण है कि इस ग्रन्थ पर अनेक, विन्तुत एवं गम्भीर टीकाएँ लिखी जा सकी हैं।

विषयवस्तु

जैसा कि कहा जा चुका है, सम्पूर्ण ग्रन्थ को छह समुद्देशों में विभक्त किया गया है। प्रथम समुद्देश में प्रमाण नामान्य का स्वरूप, द्वितीय में प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वरूप, तृतीय में परीक्ष का स्वरूप, चतुर्थ में प्रमाण का विषय, पञ्चम में प्रमाण का फल और षष्ठ में प्रमाण के आभासों का विन्तुत विवेचन है।

विभाजन

परीक्षामुख की लघुतम इकाई है सूत्र और उनमें तीन से नानावे सूत्रों तक के छह अध्याय हैं जिन्हें परिच्छेद नाम दिया गया है। प्रमेयमलमार्तण्ड और प्रमेयगन्तालङ्कार में यही नाम स्वीकृत है जब कि प्रमेयगन्तमाना में समुद्देश।

परिच्छेदों के विभाजन में प्रमेयगन्तमाला और प्रमेयगन्तालङ्कार एकमत हैं और वैज्ञानिक भी। परन्तु प्रमेयकमलमार्तण्ड में, कह नहीं सकते किम उद्देश्य में आचार्य प्रभाचन्द्र ने पञ्चम परिच्छेद के तीनों सूत्रों को चतुर्थ परिच्छेद में सम्मिलित किया है और षष्ठ परिच्छेद को उमका अन्तिम सूत्र छोड़कर पञ्चम परिच्छेद माना है तथा षष्ठ परिच्छेद के केवल अन्तिम सूत्र को षष्ठ परिच्छेद के अन्तर्गत रखा है। इस विभाजन में कोई विरोधता तो नहीं ही है, कुछ अवैज्ञानिकता भी है, कदाचित् इसीलिए इस विषय में पण्डित महेन्द्रकुमारजी भी मान रहे हैं। यदि प्राचीन प्रतियों में छान-बीन की जाय तो मेरा यह अनुमान पुष्ट हो सक्ता है कि लिपिकार ने किसी पाण्डुलिपि में, परिच्छेद के समाप्तिसूचक पद्यों और पुष्पिकावाक्यों को तितर-बितर कर दिया हो और उनी प्रति या उनी की परम्परागत प्रतियों पर में प्रमेयकमलमार्तण्ड के मुद्रित नमस्करण निकाले गये हों। यदि हम पञ्चम परिच्छेद की समाप्ति-सूचक पद्यों को

१ परीक्षामुखम् (सेक्रेड बुक्स ऑफ दि जैनस, जिल्द ११) की प्रस्तावना।

२ आभास गदित प्रमाणमखिल सत्याफलस्वार्थत,

सुव्यक्तं सकलार्थसार्यविषयं स्वल्पं प्रसन्नं पदं।

येनासौ निखिलप्रबोधजननो जीयाद गुणाम्भोनिधि,

वाक्कीर्त्योः परमानयोत्र सततं साणिक्यनन्दिप्रभु ॥ प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ० ६७५।

पठ परिच्छेद का समाप्ति सूचक मान लें और पठ परिच्छेद व आरम्भ म सूचक पद को पञ्चम परिच्छेद का समाप्ति सूचक मान लें और फिर यह विभाजा प्रयत्नरत्नमाता नामि व अनुसार कर दें यथा चतुर्थ परिच्छेद म सम्मिलित क्रिय गय पञ्चम परिच्छेद के ताना सूत्रा वों पञ्चम परिच्छेद का मान लें और पठ परिच्छेद के सूत्रा वा आगमगत वर्तमाना पञ्चम परिच्छेद तथा एकसूत्रीय पठ परिच्छेद का विनाकर पठ परिच्छेद ही मान लें ता यन् समस्या सुरत हल हा जानी है । ऐसा करने म प्रयत्नरत्न मा एव भी था बाधा वनता नही गिनता वलिक लिपिराज को ही यदि और भी स्पष्टतर हा उठती है । परन्तु आश्चर्य है कि प्रयत्नरत्नमाता व किसी भी सस्वरण म इन अन्त म अक्षरगुण विषय पर विचार नही किया गया ।

पञ्चिनाचार्यजी म प्रयत्नरत्नमाताकर वी ही भाति परिच्छेद को नाम गि हैं प्रथम वा प्रमाणस्वरूप परिच्छेद गिनीय को प्रत्यक्षप्रमाणपरिच्छेद सूत्रीय वा वर्णाप्रमाणपरिच्छेद चतुर्थ वा प्रमाणविषयपरिच्छेद पञ्चम को प्रमाणकपरिच्छेद और षष्ठ को प्रमाणागमपरिच्छेद ।

परिच्छेद व अनन्तर सूत्रा वा विभाजन उत्पन्ननीय है । सूत्रीयपरिच्छेद वा पाँचवाँ सूत्र है अन्तर्मरण कारणक सत्तन प्रयत्निमान ज्ञेय सत्तन सत्तिवण उत्प्रतियागोत्यानि । और छठा सूत्र यथा स एवाय देवस्त पास्तृणा गद्यया गविनक्षणा सन्धि वम् अम्माद् दूर येनोऽयमित्यानि । प्रयत्नरत्नमाता और प्रयत्नरत्नमाता व प्राय मभी सस्वरणा म वम् छद् भूत्र वा एव न मान कर पाव माना गया है अत जहा मरे मत म छटा ही जमान आना चाहिए वही उक्त सस्वरणा म दगवाँ जमान आ जाता है । इन तथाकथित पाच सूत्रा वा एक ही माना जाना चाहिए क्योंकि य मनी (१) एक ही सूत्र न उद्धारण है (२) एक ही निष्ठावक सवनाम यथा और एक ही विवण ह्यानि स सबद्ध है (३) यदि पाँच ही मान जाय म जिसक व उद्धारण है वह पाचवाँ सूत्र भी एक न माना जाकर पाँच ही माना जाना चाहिए । (४) एक ही उद्धानिवाक्य के द्वारा निष्पि क्रिय गय हैं और उस वाक्य म भा तीना दीकारा आचार्य प्रभाव आचार्य अनन्तराव और आचार्य काशीनि द्वारा एक यचन वा ही प्रयोग किया गया है यदि उनका पाँच वा पद्यनयक आने के भाव रहा हाना ता यहवचन वा ही प्रयोग किया जाना चाहिए वा (५) तीना दीकारा द्वारा आश्रयित छो दिया गय हैं इसलिए नग कि व अयव भी ऐसा करत है यदि

१ आचार्य आचार्यमत्ततन्त्रिपूरकदूरकपाल

आचार्यमत्त नवदुर्बलमो नूतनीधुवते ये ।

तेऽयस्कादा सुभृमुकुटोपाटिपाणिद्वयमाज

भिरश शङ्ख विदधति नव वय कुण्ड कुठारम ॥ प्रयेवकमनमातृष्ट व ६७६ ॥

२ प्रयेवकमलमातृष्ट म पठ परिच्छेद क प्रतिरिक्त किसी भी परिच्छेद म आरम्भसूचक पद नहीं है यह उल्लेखनीय है ।

३ उपरिर्लिखित दोनों पद्यों की गद्यावली इष्टव्य है ।

४ यथा स एवाय देवस्त ॥६॥

गोसहृणो गद्यय ॥७॥

गोविनक्षणा महिय ॥८॥

इवम आरमाद दूरम ॥९॥

यसोऽयमित्यादि ॥१॥

५ (१) त्रयोत्तरात्र प्रयत्निमानमुदाहरणारेणाविलज्जावबोधाय स्पष्टयनि । प्रयत्नरत्न मा प २४० ।

(२) एषां त्रयोत्तरात्र द्वापरात् । प्रयेवकमनमाता प ० ८३ ।

(३) उक्तप्रयत्निमानमविलज्जावबोधायमुदाहरणारेण स्पष्टयनि । —प्रयेवकमनमाता

६ इतम पहलेवाले टिप्पण में रेखांकित गद्य इष्टव्य है ।





इसलिए कि वे इन्हे पृथक्-पृथक् मानने ही नहीं थे अतः उनकी पृथक्-पृथक् व्याख्या करने का प्रयत्न ही उनके सामने नहीं था । पण्ड परिच्छेद में भी दो स्थल ऐसे हैं जिन पर विचार होना चाहिए । दसवें और ग्यारहवें सूत्रों को प्रमेयकमलमातण्ड और प्रमेयगन्तमाणा के अधिकांश सम्मेलन में एका ही सूत्र माना गया है, कदाचित् इसीलिए कि दसवें सूत्र के पञ्चान्, दोनों ग्रन्थों में कोई व्याख्या नहीं है । दो या दो में अधिक सूत्रों के बीच व्याख्या न होने में ही उनमें एकता स्थापित नहीं हो जाती और फिर दो टीकाओं में नहीं नहीं, एक टीका प्रमेयगन्तान्तद्वारा में तो दसवें सूत्र के पञ्चात् भी व्याख्या है । अतः उसे पृथक् सूत्र माना जाना चाहिए । ठीक यही स्थिति इसी परिच्छेद के तीसवें और इकतीसवें सूत्रों के साथ भी है ।

महत्व

परीक्षामुपेक्षा द्वारा तात्कालिक न्यायसम्प्रदायी मान्यताओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । उदाहरणार्थ इस ग्रन्थ का हम 'अपूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाणम्' सूत्र लें । इसमें प्रमाण की परिभाषा दी गई है । परिभाषा में स्व, अपूर्व, अर्थ, व्यवसायात्मक और ज्ञान, ये पाँच शब्द हैं । स्व शब्द में भीमासकसम्मत ज्ञान के परोक्षवाद, माँग्यो के अस्वमवेदनवाद तथा नैयायिकों के ज्ञानान्तर वेद्यज्ञानवाद के गण्डन की दृष्टि मिलती है । अपूर्व शब्द में प्रकट होता है कि गृहीतग्राही या धारावाही ज्ञान की भी प्रमाण रूप में मान्यता रही है । अर्थ शब्द में मुख्यतः तीन मान्यताएँ प्रकाश में आती हैं, बौद्धों का चिद्यज्ञानाद्वैतवाद और यूनानाद्वैतवाद तथा वेदान्तियों का ब्रह्माद्वैतवाद । व्यवसायात्मक शब्द में बौद्धों की वह मान्यता प्रकाशित होती है जिनके अन्तर्गत वे प्रत्यक्ष प्रमाण को निर्विकल्परूप या अनिश्चयात्मक सिद्ध करते हैं । ज्ञान शब्द में प्रधान रूप में चार मान्यताएँ गण्डित होनी हैं, युवर्त्तन्यायिक का भक्तिरूपवाद, जगन्नीययिकों का कारकमाकल्यवाद सात्त्विक का इन्द्रियव्यापारवाद और प्रभाकर का ज्ञानव्यापारवाद ।

और भी ऐसे अनेक सूत्र हैं जिनका शब्दविन्यास तात्कालीन मान्यताओं और न्यायकारों की दृष्टिगत करके ही किया गया है । हम दो सूत्र और लें — 'भाव्यतीनयो मरणजाग्रद्वोधयोरपि तारिष्टीद्वोषौ प्रति हेतुत्वं ।' और 'तद्व्यापाराश्रित हि तदभावभावित्वम्' इन सूत्रों द्वारा भाविकारणवाद एवं भूतकारणवाद के समयक प्रज्ञाकर गुण की समालोचना की गयी है ।

१ असम्बद्धे तज्ज्ञान तर्काभासम् ॥१०॥

यावास्तत्पुत्र स श्यामो यथा ॥११॥

२ विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्ध ॥३०॥

अपरिणामी शब्द कृतकत्वात् ॥३१॥

३ समुद्देश १, सूत्र १

४. अ० ३, सू० ५७, ५८ ।

५ अविद्यमानस्य करणमिति कोऽर्थः ? तदनन्तरभाविनी तस्य सत्ता, तदेतदानन्तर्यमुभयापेक्षयाऽपि समान-तथैव भूतापेक्षया तथा भाव्यपेक्षयाऽपि । न चानन्तर्यमेव तत्त्वे निवन्धन, व्यवहितस्य करणत्वात् ।

गाढसुप्तस्य विज्ञानं प्रबोधे पूर्ववेदनात् ।

जायते व्यवधानेन कालेनेति विनिश्चितम् ॥

तस्मादन्वयस्यतिरेकानुविद्यापित्वं निवन्धनम् ।

कार्यकारणभावस्य तद् भाविन्यापि विद्यते ॥

भावेन च भावो भाविनाऽपि लक्ष्यत एव । मृत्युप्रयुक्तमरिष्टमिति लोके व्यवहारः,

यदि मृत्युर्न भविष्यन् भवेदेवमृतमरिष्टमिति । — प्रज्ञाकरगुप्त. प्रमाणवार्तिकालङ्कार, पृ १७६ ।

परीक्षामुख का महत्व इसलिये भी है कि वह अपने समय तक की जन-याय की अनेक विचित्र मायनामा का मुख्यवर्तित्व एवं वर्गीकृत रूप देता है। एक उदाहरण नीजिए। प्रमाण के लक्षण में आचार्य मिदमन श्रीर स्वाामी समन्तम् एवं विगण वपरावमासक समान रूप में देने के श्रीर आचार्य अत्राङ्क कहा घनधिगतायक बना अधिमनामि और कहा स्वपरावमासक विगणना का प्रयोग करते हैं नमिने परीक्षामुख में आचार्य मिदमन श्रीर स्वाामी समन्तम् डागा स्थापित एवं आचार्य अत्राङ्क द्वारा विकसित परम्परा का स्व एवं अनुसंधान पत्र के समावेश द्वारा गुप्तर मयह दलन का मिलना है।

अतएव भी परीक्षामुख का महत्व बहुत अधिक है कि वह अपने समय तक के प्राय सम्पूर्ण जन-यायप्रवा का नवनीन हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देता है। अत्राङ्क-याय का प्रतिनिधित्व करनेवाला तो परीक्षामुख की भांति कोई ग्रन्थ ही नहीं।

अन्यान्य ग्रन्थों का न परीक्षामुख की परम्परा और पद्धति का अनुसरण किया जाता भी उसका महत्व कम नहीं बढ़ता।

जिसी भी ग्रन्थ पर अनेक विज्ञानज्ञान एवं गम्भीर टीकाभा का लिखा जाया भी उसके महत्व का घटनक है। परीक्षामुख पर तीन टीकाएँ उपलब्ध हैं। इनका अनिलित एवं टीका उतारे बबल प्रथम सूत्र पर ही है जो स्वयं एवं स्वतन्त्र पुस्तिका बन गयी है।

टीकाएँ

प्रमेयकमलमातङ्ग—परीक्षामुख की प्रथम बृहत्तम और सर्वप्रथम टीका है प्रमेयकमलमातङ्ग जिसे परीक्षामालाङ्कार भी कहते हैं। यह आचार्य प्रभाषाङ्क की वृत्ति है। इसके का सम्पूर्ण प्रकाशित हो चुका है प्रथम एवं पृथगीधरजी गारुडी मोलापुर द्वारा सन १६१२ में और नित्य स्व. प० महेंद्रगुमारजी वाराणसी द्वारा सन १६४१ में। इनका आकार १२ × ० अनुष्टुप क्लोरा के बराबर है।

जन-याय का वर्णनित ही कोई माला विषय होगा जो इस ग्रन्थ में समाविष्ट न हो। यह जन-याय के प्रति निरूपित प्रथा में से एक है। अनेक प्रणता आचार्य अत्राङ्क व परवर्ती आचार्य हैं और उन्होंने उन्हीं लघोपस्थाय पर भी एक टीका लिखी है जिसका नाम अनुसूचक वृत्ति है। अत्राङ्क-याय की भूमिका पर परीक्षामुख की रचना हुई है और अत्राङ्क-याय के समान ही प्रमाणिक एवं परीक्षामुख पर टीका लिख तब उसका अत्यन्त उच्चकाटि का बन पड़ना स्वाभाविक ही है।

यायिनुमुचरद के प्रथम भाग की प्रस्तावना में पृथगीधरजी ने गारुडी ने और उसके नित्य भाग की एवं प्रमेयकमलमातङ्ग की प्रस्तावनाओं में स्व. पृथगीधरजी यायाचार्य ने आचार्य प्रभाषाङ्क और प्रमेयकमलमातङ्ग पर विस्तार से विचार किया है अतः यहाँ उनका हो बर्णित है।

प्रमेयकमलमातङ्ग—प्रमेयकमलमातङ्ग याय का एक बृहत्प्रचलित ग्रन्थ है। आचार्य तब अनन्तवाय की यन्त्रमाय उपलब्ध वृत्ति है। आचार्य भाषिण्यन की परीक्षामुख पर यह टीका न रूप में लिखी गयी है। अनेक विषय

- १ तत्त्वोपरोधवर्गो विगदोशकोट
- भाषिण्यनदिष्टतत्त्वमात्रमाधोधम ।
- स्वष्टीकृत कतिपयवचनस्यार
- धालप्रबोधकरमेतदनतवोर्ध ॥



प्रतिपादन की गयी और गण्डन-मण्डन की प्रवृत्त व्युत्पत्ति को देखकर नत्तायन्त्र पर लिखी गयी आचार्य पुस्तक की टीका गवीरमिडि का ही स्मरण हो आता है।

अनन्तकृत्याय एक महान्मुद्र है जिसमें जनता शरण की गयी नहीं। परीक्षामुद्र उनमें से मथकर निगला गया अमृत है जो नरमाधारण के साथ नहीं लग सकता। और प्रमेयस्तमाना, परीक्षामुद्र की मुद्रा भूमिका पर प्रतिष्ठापित महाप्रामाद है जिसमें प्रत्येक का प्रवेश सम्भव नहीं। आचार्य यह आन्तरीय की वह एक जटिल समस्या प्रतीत हुई। उसीके समाधान के लिए उन्होंने प्रमेयस्तमाना का गृहण कर लिया। उनका प्रमाण लगभग एक हजार शान की अनुप्रास्य श्लोकों के बराबर है। इनके चार नाम प्रचलित हैं—प्रमेयस्तमाना, परीक्षामुद्रावृत्ति, परीक्षामुद्रावृत्ति और परीक्षामुद्रावृत्ति।

प्रमेयस्तमाना की भाषा गमय गमृत है। व्याख्यान की स्थानांतरि नीरमता और सूत्रों के द्वारा उपस्थापित विच्छिन्नता के रहते हुए भी उनमें भाषा की रम्यता और प्रवाह कायम रखा गया है। विषय का गम्भीर एवं सूक्ष्म विवेचन किया गया है, गण्डन-मण्डन के गहन मन में प्रवेश किया गया है, फिर भी भाषा नहीं दुर्लभ नहीं होने पायी है।

उन ग्रन्थ की तर्कशैली परम्परागत होकर भी नए और आदर्य है। तर्कों की शैली अदृश्य परम्परागत है लेकिन जो तर्क दिये गये हैं उनमें से अनेक मौलिक भी हैं। कुछ परम्परागत तर्कों का त्याग भी किया गया है क्योंकि या तो ये अत्यन्त अनिवार्य न होने से त्याग का अन्य-ग्रन्थों के ही कारण महसूस हुए या उनका उनका अधिक परिष्कार कर दिया गया कि उन्हें परम्परागत नहीं कहा जा सकता।

प्रमेयस्तमाना की दो संगृह्य टीकाएँ हैं, प्रथम आचार्य अनिरुद्ध की व्याख्यानटीका और द्वितीय पण्डिताचार्य चारुकीर्ति की अथप्रसाधिता, और ये दोनों ही प्रस्तावित हैं। पं० जयचन्द्रजी छाबड़ा, तदनु निराली ने इनकी हिन्दी वचनिका भी लिखी थी जो प्रस्तावित हो चुकी है। अन्य प्रमेयस्तमाना का प्रस्तावित निम्नलिखित मन्थाओं से लगभग पाँच बार हो चुका है।

प्रमेयस्तमालंकार

प्रमेयस्तमालंकार संगृह्य गद्य और नव्य शैली में लिखा गया जैन न्याय का एक महत्त्वपूर्ण व्याख्याग्रन्थ है। परीक्षामुद्र इसका व्याख्येय है।

इसके पूर्व प्रमेयस्तमालंकार का नाम प्रमेयस्तमालानंकार प्रचलित रहा। जिसका कारण है उस पाण्डुलिपि

१ अकलङ्कवचोऽम्भोवेहद्भ्यो येन धीमता ।

न्यायविद्यामृत तस्मै नमो मार्गिजयनन्दिने ॥ —प्रमेयस्तमाला आदि श्लोक नं० २ ।

२ प्रकाशक मन्त्री, मुनि अनन्तकीर्ति गन्धमाता, कान्वादेवी रोड, बम्बई ।

३ 'जैनदर्शन' (प्रथम संस्करण) के पृ० ६२८ पर पं० महेशकुमारजी ने और आप्त-परीक्षा की प्रस्तावना के पृ० २७ पर पं० दरबारीलालजी कोठिया ने उक्त नाम का ही उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त, डा० आदिनाथ नेमिनाथ-उपाध्ये और पं० के० भुजवली शास्त्री आदि ने भी मुझे लिखे गये अपने पत्रों में इसी नाम की ओर संकेत किया था।

४ यह पाण्डुलिपि जैन मिहान्तभवन आश्रम में सुरक्षित है। इसके विस्तृत परिचय के लिए देखिए, जैन संदेश, शोधार्थ १६, पृ० १६२ ।

व निविहार का प्रति जा मुझे प्रमयस्तमाता का सम्मान करने समर्थ प्राप्ति हुई था। यह पाण्डित्य व आचरण पूछ पर गोपक व स्थान पर और निरीश प्रतिदेन व पुण्डिकाबाय व प्रमेयस्तमाताद्वार न तिया जाकर पुण्डिका प्रमयस्त मानातद्वार तिर तिया गया है। दूनु पुण्डिका तथा दुनु वन वन है कि विनाता वानम ग्रय न स्वरूप गमनन म भान्ति हुन तिया न गयी।

वास्तव म यह ग्रय परी तामुव न गन प्रमयस्तमाताद्वार और प्रमयस्तमाता की मोति स्वनन टाता है। इगव विपरीत स्वन तवावविन नाम व आचार पर यह मान तिया गता था कि यह प्रमयस्तमाता की टीका (प्रमयस्तमाता + प्रमयस्तमाता) है।

पद्मिनाबाय चाम्पानि न न अ एव ग्रय व वस्तु ३ इनक नामकरण की प्रथा आचार्य धनन्वीय की प्रमयस्तमाता म नो लिखता है। यद्यपि पद्मिनाबाय का प्रमयस्तमाता व पद्मिनाबाय का प्रमयस्तमाता और पद्मिनाबाय का पद्मिनाबाय भी नम प्रथा व वस्तु व जा गत है। उहाने एवक प्रमय और एवक वान। का उमीर व और वम म न तिया है। एव नाम व तामर न को स्वीकार करने म पद्मिनाबायजी न एक वरम्परा का प्राथम तिया है। यह परम्परा है व्याख्या प्रथा म प्रमयस्तमाता वाने की। तत्वावगमनातिगतद्वार तत्वावगमनातिगत वानद्वार और पुन्यपुन्यमाताद्वार आदि एवक उपाहरण हैं।

प्रमयस्तमाताद्वार वकि परायामुख की व्याख्या है अत जो उद्भय प्रथा को प्रमाण और प्रमाणामाम व स्वरूप म परिचित करता उभय है वही इमका भी है। दूयग उद्भय है परी तामुव वान सम्मानरण। पद्मिनाबायजी ने पाया कि श्रीनामुख व सम्मानामाम व प्रथा पान व तिर न गोपान हैं। प्रथम मागन प्रमयस्तमाता है वस्तु बहु वनता मय है कि एवक आचार पर निरीश सापान नव पद्वनता अस्तित्व वानि है। एवक जब कि नीय सापान नव पद्वनता का बोध मायम न न हा तस उभयो वयसितता पर विमता ध्यान जाता ? पद्मिनाबाय महोदय न प्रमयस्तमाताद्वार व रूप म एव एके सम्मानामाम सापान का निमाण वग तिया जो प्रथम सापान ग उभय ही वस्तु है जितना तिया मापान म वस्तुनर। प्रमयस्तमाताकार न तिर वग हा अतनी अज्ञान प्रतिमा म प्रमेयस्तमाता वान वस्तुनर गोप तिया है वस्तु तथा वान म उह उभय वान म वस्तुनर अग वी स्वाग लेता ग है। तिर भी पद्मिनाबाय महोदय न प्रमेय वमवमनम व तिया भा मग का अज्ञान ता महा ही छाया है उभय गोप वान नम वान न तिया है कि वस्तु वान वान वान भा महा वान पाया है और मयेवार की छाया भी उभ पर वान उभरी है।

- ॥ समुची पाण्डित्यि मे और भी वीर्य प्रतिपाद हैं जिनके तिर स्वच्छ निविहार हो उत्तरदायी है ग्रयकार नहीं।
- २ इत नाम तामर को धर्मनिवारण व ए देमिए जनसदेग गोपाद्व १९ वृ १६२ और माग।
- ३ इन्ने परित्य व तिर देमिए जनसदेग गोपाद्व २२ वृ ५० और गोपाद्व २३ वृ ६६।
- ४ प्रमेयस्तमाता व तामरण की प्रथा प्रायाय धनन्वीय ने बहुत दूनु सम्भव है कि पापमुक्तावली से ती हो वर्गीक प्रमेय और ग्याय वान और मुस्त का तथा माना वार अत्यव को वम सम्मान एव वम इसी सम्मान का को पुनिर करता है। प्रमेयस्तमाता व ती भी तिर अन्ति मे वर प्रथा न गोपी हानी वारिए वम से वम प्राप्ति म प्रमेय वान हो इत बात का छोटाक है ही।
- ५ वानपर प्राप्ति म इमहा उत्तर है।
- ६ इसकी एक वारिएति जन सिद्धात भवन वारत म विद्यमान है।
- ७ इसकी पाण्डित्यि भी जन सिद्धात भवन वारत म विद्यमान है।
- ८ इति वाने तवीवम सिद्धमन् वपीयत। — श्रीनामुख प्रतिज्ञावोव।





पण्डिताचार्यजी के समय तक जैन न्याय में नव्य शैली लोकप्रिय हो चुकी थी, पर उसे अप्रतिभाधिक प्रतिष्ठा देने का उद्देश्य भी प्रमेयग्नानाद्वार की रचना का एक कारण हो सकता है। उसके अतिरिक्त, ऐसा कोई उद्देश्य प्रत्यक्ष ने व्यक्त नहीं किया है जैसा अमुक व्यक्ति को पढ़ने आदि के लिए प्रमेयग्नानालाकार आदि ने किया है।^१

यदि हम पण्डिताचार्य चारुकीर्ति को उच्चतम कोटि का शब्दशिल्पी कहे तो प्रमेयग्नानालाकार की भाषा उसके लिए ज्वलन्त उदाहरण होगी। न्याय में भी काव्य शैली रमणीयता पण्डिताचार्य जैसे विद्वान् ग्रन्थकारों का ही कार्य है। न्यायशास्त्रों में प्रायः सब पद्यों जाने वाली सुष्ठुता, दुस्तता और प्रवाहमयता प्रमेयग्नानालाकार में कदाचित् कहीं भी नहीं मिलेगी। न्याय की नव्य शैली की मुदीर्ष पदावली भी उन दुस्तता में प्रस्तुत की गयी है कि भाषा में उद्देश्यकारी विच्छिन्नता के बदले एक आपस प्रवाहमयता प्रस्तुत हो गयी है, ये देखिए दो श्लोकियाँ

‘नतूक्तगीत्यापूर्वाग्रव्यवनायस्यैव प्रमात्ये भगवद्ज्ञाने केवनात्ये ऊक्तनक्षत्राव्याप्तिन्य निश्चितार्थ विषय-
स्त्वेनापूर्वाविषयसम्भावात् । न चात्रैषु प्रतिक्षण विविधा पर्याया उच्यन्ते । ननुक्तम्,

‘श्रुतादिनिघने द्वये स्वपर्याया प्रतिक्षणम् ।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलफलोत्पलवज्जले ॥’

इति । तथा च तत्तत्पर्यायविशिष्टनया पूर्वमाहान्ताव्याप्तिरिति वाच्य, तथा नति केवनाज्ञानस्य सदा कतिपर्यायग्राहित्वेन कदापि सर्वविषयत्वानुपपत्तेरिति चेन्न अपूर्वाविषयविषयस्य च सर्वविषयसत्ताभावगृहीतग्राहित्वोभयाभाववत्त्व धागावाहिक-
द्वितीयादिज्ञानेपूर्वभयमन्नाद् व्यावृत्तिः ।’

“नैयायिकान्नु ‘पदानां बोधजनकतावच्छेदकशक्तिमत्स्वरूपयोग्यत्वमप्रामाणिकमेव, शक्तिरूपपदार्थान्तरग्यैवाप्रामा-
णिकत्वेन बह्व्यादावपि दाहानुकूलवक्तव्यभावात् । किन्तु अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरमवेत एव शक्तिज्ञानेनोच्यते
स एव पदपदार्थयो मन्वन्व, इति वदन्ति ।”

अप्रचलित, स्थित या कटु शब्दों का प्रयोग कहीं नहीं मिलता। स्पष्टन-मग्न के चक्र में पड़कर भी भाषा कहीं अनयन नहीं होने पायी है।

मलेप में हम कहेंगे कि प्रमेयग्नानालाकार मूल, सग्न और प्रवाहमय मन्वृत गद्यों में निजा गया है।

न्याय की नव्य शैली को स्थापना विन्म की तरहवी शनी में गङ्गा उपाध्याय ने की थी। अक्छेदवावच्छिन्न की भाषा में जकड़ी हुई भी यह शैली उत्तरोत्तर लोकप्रिय होती गयी। मरुहवी शनी तक आते आते यह आने विग्न की चरम सीमा पर पहुँच गयी। उपाध्याय यगोविजय के पण्डनग्नानाद्य आदि ग्रन्थ इसी युग की देन हैं। इसी परम्परा और शनी में प्रमेयग्नानालाकार की रचना हुई। मेल धानो में शैली की दृष्टि में प्रमेयग्नानालाकार में पूर्वाचार्यों की परम्परा का ही अनुकरण किया गया है।

ग्रन्थ का प्रारम्भ श्रीवर्धमान के भजन में होता है। फिर आचार्य अकनङ्ग, माणिक्यनन्दी और प्रभावन्द की वन्दना की जाती है। उसके पश्चात् ग्रन्थ-रचना की प्रतिज्ञा लेकर ग्रन्थकार ने अपनी लघुता प्रकट की है। प्रारम्भिक

१ ‘दंजयप्रियपुत्रस्य हीरपस्योपरोधत ।

शान्तिपेणार्थमारब्धा परीक्षामुलपञ्जिका ॥’ —परीक्षामुल, आदि पद्य सत्या ५ ।

२ प्रमेयग्नानालाकार की मेरी पाण्डुलिपि ।

पत्नियां म सम्बन्धित्व की सत्ता और स्वयं साथ साथ की समान प्रशक्ति की गयी है। परित्रा का प्रारम्भ 'अथ गन्ध' म और अन्त एक एक उपसंहारात्मक द्वाक और पुष्पिकावाच्य म होता है। अन्त म एक द्वाक म सामान्य ग्रन्थ का उपसंहार और दूसरे 'नोक' म गोमतेवर यादवरी का उपासना की गयी है।

प्रारम्भ के छः, अन्त म दो और परिच्छेदाल्न के पाँच अथवा त्रय द्वाक स्वयं ग्रन्थ का के हैं और बाया द्वाक उद्धृत हैं जो सम्पूर्ण ग्रन्थ गद्य म है। परीक्षामुख म सूत्रा को यथार्थ्यता सज्जया गया है छो। नयी गया है जमा कि प्रमथममनातव म किया गया है।^१

सूत्रो का प्रारम्भ प्राय उपाधिकावाच्य गारा हो किया गया है और उनका व्याख्याए एक गन्ध स लहर ताम जानीय वृष्ट तक की हैं। अन्त सूत्र सुप्रमम आदि कहकर या बिना कुछ कहे ही अव्याख्या छो न्यि गय है। उनकी व्याख्या बन्तुन अनिवाय नहीं है।

व्याख्या इतोवा की हो या सूत्रा की लक्षणवय म आधार पर की गयी है। अधिकांश व्याख्यामा म लक्षण लक्षण धा गय हैं। विषय का प्रतिपादन स्वयं स्व से कम और लक्षण-मन्त्रा के माध्यम म अधिकांश हुआ है। विषय का भाग्य बढ़ने या कोई नवीन युक्ति प्रस्तुत करने के लिए विन्व यन्व न के और तथापि आदि का प्रयोग किया गया है।

लक्षण-मन्त्र म पणितावाच्यो की प्रीक विन्ता दानीय वन पड़ी है। पूर्वपणा का देखकर लगता है मानो म अन्त मत म 'सायकार' द्वारा ही प्रस्तुत किया जा रहे हैं। उत्तरपणा पूर्वपणा की युक्तिया का 'यदुक्तम्' 'यन्मयादि यन्त्रोक्तम्' आदि क द्वारा जमा किया वत है। उत्तरपणा म सम्बन्धम का पूरा ध्यान रखा गया है प्रमथरत्नमाला आदि की भांति व्यङ्ग्ययूग गया भस्तरामक गङ्गावती एव-दो स्थला पर हो मिली।

सकाली परम्परागत होकर भी अत्यन्त मदन और अवाग्य है। तक सभी परम्परागत नहा हैं कुछ मोनिक और मन्दवपूण भी हैं। कुछ परम्परागत तक त्याग भी किया गये हैं वार्ता या सा के अत्यन्त अनिवाय न होने म ग्रन्थ का म ग्रन्थ विन्तार के कारण प्रतीत हुए या उनका इतना परिवार कर लिया गया है कि उह परम्परागत नहीं कहा जा सकता।

परिभाषिक भाग का भाग म किमी भी प्रयुक्त म प्रयुक्त ववा न हुए हा परिभाषा न्यि बिना नहीं छोडा गया है। परिभाषा भी जतनी छो म कि उनम प्रयुक्त हुए किन्ति जमा की वृषक-गृषक सायकता भी बनानी पड़ी है। हम प्रसार एक परिभाषा का गन्ध का एक ही सायक तक मामित म रहकर पाठ-साम सायकता म विस्तृत हा जानी है। हम प्रसार जिग गन्ध क भेद सभव है उनक भेद भी परिभाषायो अवयव दन गये हैं और अवयवतानुसार उा भेद की परिभाषाए भी दी गयी हैं। जतन पाठन जिग विषय म भी प्रवण करना है उसी की प्राय समूची सामग्री उम वही प्राप्त हा जानी है।

कथित विषय का सपुष्टि सायकार, सम्बद्ध अथा के उद्धरण दवर वतत वतते हैं। उद्धरण क सायकता उमर सायक का उत्तरण वतत हैं और सभी उमके प्रयुक्त का और सभी जिमा का भी नहा। उद्धरण म सप्रवृत्त भाषा का कोई नहीं है। उह उमर क यदुक्तम् यदुक्तम् आदि भाग म प्रारम्भ और इति दाय म समाप्त किया गया है।



पण्डिताचार्यजी मे तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की एक बड़ी ही अच्छी प्रवृत्ति पानी जाती है। वे अपने मत के नाय प्रभावन्दाचार्य, अनन्तवीर्य और अजितनेन (न्यायमणिदीपिकाकार) आदि के मत भी उद्धृत करने हैं और उनसे अपने मतभेद या मतान्य का निर्देश करने चलते हैं।

इनमें मन्देह नहीं कि परीक्षामुख को पण्डिताचार्यजी ने नयी शैली और नये दृष्टिकोण से हमारे समक्ष रखा है। परीक्षामुख-साहित्य में प्रमेयस्तान्द्वारा अपनी शैली और शानी में बेजोड़ है।

प्रमेयकणिका

यह शान्तिवर्णों की एक लघुकाव्य रचना है और परीक्षामुख के प्रथम सूत्र 'स्वापूर्वार्थव्यवनायात्मक ज्ञान प्रमाणम्' पर लिखी गयी वैसी ही न्वनत कृति है जैसी मोक्षशान्त के सूत्र 'प्रमाणनयैरधिगम' पर लिखी गयी 'धर्म-भूषणयनि की न्यायदीपिका'। न्यायदीपिका की ही भाँति यह भी सम्पूर्ण गद्य में लिखी गई है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ पाँच स्तवकों में विभाजित है। प्रथम स्तवक में प्रमाण और धर्म का परस्पर सम्बन्ध तथा उनके क्याचिन् भेदाभेद का समर्थन है। द्वितीय में सात्य, प्राभाकर, भाट्ट, मीनत एवं युवर्त्तयामिक आदि द्वारा सम्मत प्रमाणस्वरूप का खण्डन किया है। तृतीय स्तवक में प्रामाण्य की जप्ति और उत्पत्ति की व्यवस्था के अन्तर्गत सीमाश्रय प्राभाकर, मुगारिमिश्र और नैयायिक के मतों का खण्डन है। चतुर्थ में निश्चय किया गया है कि प्रमाण का विषय नष्टभङ्गीरूप है। और अन्तिम स्तवक में, विस्तार के नाय जगत्कर्तृत्वाद का खण्डन करते हुए सर्वज्ञत्व की निश्चि की गयी है।

इसकी एक पाण्डुलिपि मुझे ५० दग्वारीलालजी कोठिया के मौजन्त्य से प्राप्त हुई थी। इसमें ८ $\frac{1}{2}$ " + ६ $\frac{1}{2}$ " आकार में ४६ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में दोनों ओर २० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में २० अक्षर हैं। ३८ वें पत्र के प्रथम पार्श्व पर ग्रन्थ का समाप्त कर दिया गया है और द्वितीय पार्श्व पर कुछ अक्षर पुन लिखा गया है। यह अक्षर निपिकर द्वारा ग्रन्थ के मध्य में कहीं छूट गया प्रतीत होता है जिसे अन्त में लिख दिया गया है। इन अक्षरों का भी अन्तिम अक्षर अपूर्ण है जिसके लिए ही कदाचित् अन्त में दो अनिश्चित पत्र रख लिए गये हैं। ग्रन्थ का मङ्गलाचरण देखिए—

‘ओं जिनाय नम ॥ श्री रस्तु ॥ श्रीवाण्यं नम ॥
श्रीवर्धमानमानम्य विष्णु विश्वसृजं हरम् ॥
परीक्षामुखसूत्रस्याद्यस्यायं विवृण्महे ॥’

पुष्पिकावाक्य भी देखिए—

‘श्री शान्तिवर्णविरचिताया प्रमेयकणिकाया • • स्तवक ।’

और देखिए अन्तिम अक्षर—

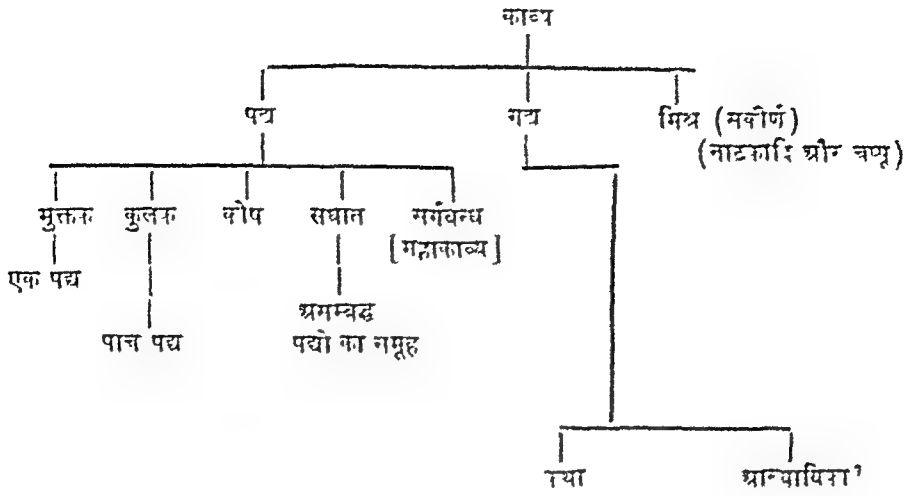
‘प्रमेयकणिका जीयात् प्रतिद्वानेकसद्गुणा ।
तस्मात्तण्डसाभ्राज्ययीवराज्यस्य कणिका ॥
सतिष्कलङ्घं (?) जनयतु - तर्कं
वाचावितर्कं मम तर्करत्ने ।
केनानिशं ब्रह्मकृत कलङ्घ-
श्चन्द्रस्य किं भूषणकारण न ॥’

१ यह पाण्डुलिपि श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा की सम्पत्ति है।

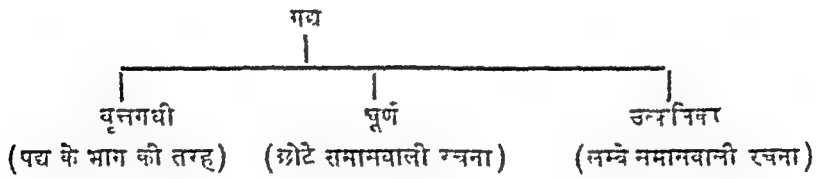
वाहिए जितने निमित्त ने आचार्य अमलवीर ने प्रमेयल्लमाता विधी थी।' ये शान्तिपेन ही पट निष्का और कदाचित् दीक्षा लेजर शान्तिपेन हो गये हैं। उर अस्वाभाविक नहीं है। प्रमेयल्लमाता ने मज्जम में परीक्षामुख का मनं समझकर उस पर, उतरे द्वारा दीक्षा लिखी जाना भी स्वाभाविक ही है।

उपसंहार

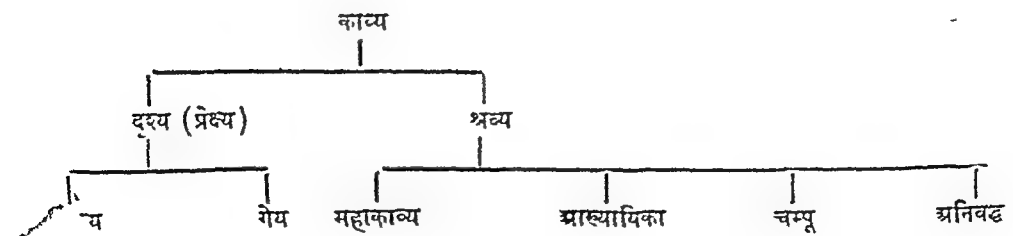
इस विवेचन में, हमने मन्देह नहीं वह जाना कि परीक्षामुख का महत्त्व जैन ग्यास में ही नहीं बल्कि मुसलमान्तीय ग्यास में भी उल्लेखनीय है। उनके सम्पूर्ण हिन्दी और अंग्रेजी टीकाओं के बाद अनेक सम्पूर्ण प्रकाशित हो चुके हैं कि भी उनके लक्ष में सम्पूर्ण की विद्यालय आदर्शता है जिन्हे उल्लेखित ग्यास का विशेषण मन्त्र भागतीय ग्यास के प्रकाश में किन्हीं गुरुओं और जिन्हे बाद भोजपुर प्रकाशना मन्त्र अष्टुनिह ईश्वरी के परिनिष्ठ सम्पूर्ण हो। उनी प्रकाशना टीकाओं ने भी, जिनमें में कुछ अभी अप्रकाशित ही है आयुनिह ईश्वरी के सम्पादित सम्पूर्ण प्रकाशित होना चाहिये। किन्हीं गुरुओं का प्रकाशन तक सम्पन्न होना है। उनके गुरु गुरु हैं। प्रथम यह है कि हमने अभी भी उक्त गुरुओं का पटन की प्रवृत्ति नहीं है। दूसरे, यदि हमें का अज्ञात माहिन्द्र-उपकरण की योग पर्याप्त रूप में नहीं गुरु है। तीसरा कारण यह है कि प्रकाशना सम्पूर्ण और सम्पूर्ण का चारु किन्हीं का माहिन्द्र प्राथमिकता में प्रकाशित करनी है। और चौथा, अत्यन्त मोलनीय कारण यह है कि विद्वान् गुरु भी अभी अप्रकाशित बन्धि या तो व्यापक यदि में सम्पूर्ण रूप देने हैं, या सम्पूर्ण या चारु माहिन्द्र के मन्त्र में मन्त्र देने हैं। इस सम्पूर्ण परिणाम यह होना है कि परीक्षामुख जैन सर्वोच्च श्रेणी के ग्रन्थ भी उदकल्लमाता प्रकाशनों में बन्धि रह जाते हैं। आशा है, शीघ्र ही परीक्षामुख की ओर हमारा प्रयोजित आन पड़ेगा।



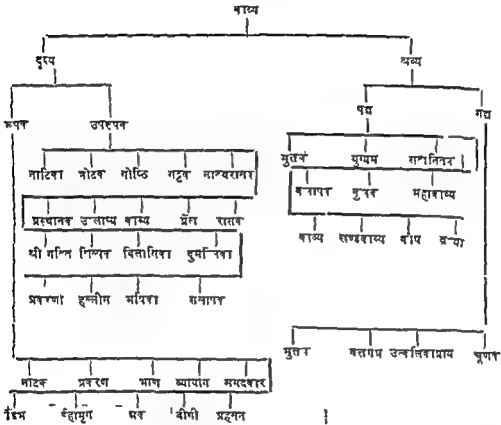
आचार्य वामन ने 'ताव्यालकार सूत्र' में काव्य के पद्य और गद्य दो रूप मानने हुए गद्य के तीन रूप बताये हैं —



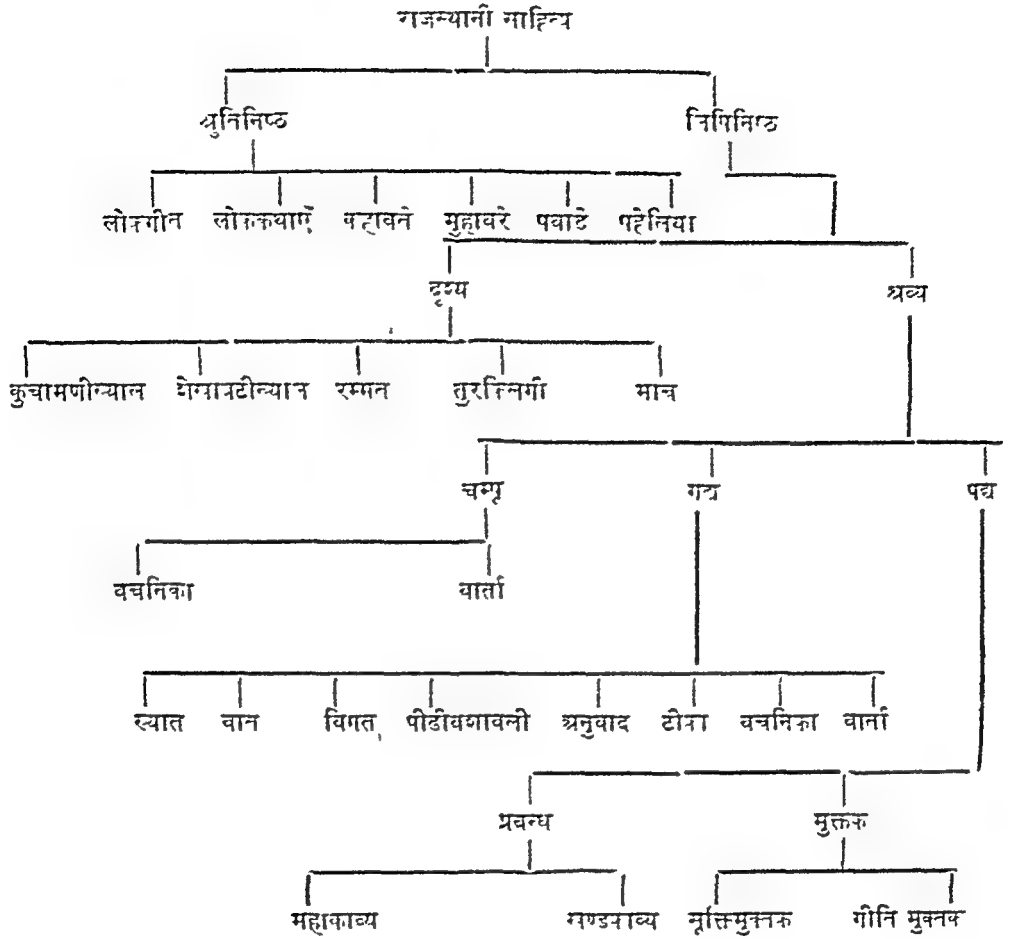
आचार्य हेमचन्द्र ने मरुहूत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्यापभ्रंश भाषाओं को काव्य-भाषा हुए काव्यमानने का वर्गीकरण इस प्रकार किया—



साधारण विधानाथ ने 'साहित्यरूपण के अन्तर्गत काव्य के रूप और अर्थ नामक' दो भाग मानते हुए काव्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया है—



लिपिनिष्ठ और श्रुतिनिष्ठ राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में करना उचित होगा—



प नरोत्तमगण जी स्वामी न राजस्थानी साहित्य की तीन गलियाँ मानी हैं—(१) जय गली (२) चारणी गली और (३) लोकिक गली ।^१

उक्त गलियाँ व अनिर्दिष्ट राजस्थानी साहित्य की विषय भक्ति एवं सन वाक्य और आधुनिक साहित्यिक गलियाँ भी हैं जिनका समावेश उक्त वर्गीकरण में नहीं हुआ है। चारणी गली से चारणा द्वारा ध्वन्याई गई गली का ही बाप होता है। राधा राजपूतों मोनीमरा डाढ़ियाँ और बाह्याणा धानि न भी चारण कवियों की भाँति अनेक द्विगत रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। अनन्व चारणी गद्य उक्त अर्थ का प्रवट नहान करता है। साथ ही चारणी धान 'चारण' पुर्णन धान के स्त्रीनिग रूप का भी बापन है।

श्री अमरचन्द जी नाट्य न ११५ प्रकार व काय रूप बताय हैं —

(१) रास (२) सधि (३) चौगाई (४) फागु (५) घमाल (६) विवाहचौ (७) घवन (८) मगत (९) बलि (१०) गनोरा (११) सवाद (१२) बाग (१३) भगदो (१४) मत्तुवा (१५) बावनी (१६) बवरा (१७) बारहमासा (१८) चौमाना (१९) पवाडा (२०) चबरी (बाँचरी) (२१) जमाभिषय (२२) वनग (२३) तीवमाना (२४) बल्यपरिपाटी (२५) सय वणन (२६) डान (२७) दाहिया (२८) चौडाहिया (२९) छडाहिया (३०) प्रबय (३१) बलित (३२) सम्बय (३३) आस्थानक (३४) कया (३५) सतन (३६) यहीतरी (३७) छत्तीसी (३८) सतरी (३९) बत्तीसी (४०) हवकीसी (४१) हवनीगी (४२) चौवीसी (४३) बीसी (४४) घण्टन (४५) स्तुति (४६) स्तवन (४७) स्तोत्र (४८) गीत (४९) सनाय (५०) बल्यबलन (५१) देवयलन (५२) बीनती (५३) नमस्कार (५४) प्रमानी (५५) साक (५६) घषाया (५७) गहूनी (५८) हीयानी (५९) गूडा (६०) गजन (६१) गायणी (६२) छड (६३) बीसाणी (६४) नवरत्ती (६५) प्रबहय (६६) पारणी (६७) बाहण (६८) पगवनी (६९) मुवावनी (७०) हवषी (७१) हीव (७२) मानामालिका (७३) नामामाना (७४) रागमाना (७५) कुनक (७६) पूजा (७७) गीता (७८) गट्टाभिषय (७९) निर्धाम (८०) मान (८१) पग (८२) मजरी (८३) रसावली (८४) रसायन (८५) रसलहरी (८६) चगावला (८७) दोषक (८८) प्र पिक्का (८९) फुलडा (९०) जोडा (९१) परिपम (९२) कल्पनता (९३) पैसा (९४) विरह (९५) मून्डी (९६) मन (९७) प्रगान (९८) होगी (९९) तरंग (१००) तरनिनी (१०१) चीर (१०२) हुडी (१०३) हरण (१०४) बिनाम (१०५) गरवा (१०६) बोनी (१०७) अमरचवनि (१०८) हानरिया (१०९) रगोई (११०) बडा (१११) भूगगा (११२) जगनी, (११३) दोहा (११४) कु डनिया और (११५) छण्य ।

श्री नाट्यज्ञों न वाक्य रूपा की सग्रा ११७ दी है। किन्तु भयन रूप मात्रा ८ और १५ से बार धा गया है और सग्रा ८१ पर भवमभी विवाह वणन विवाह-भरव रचना है। ऐसी रचनाओं का गमावण विवाह विवाहता रूप में हो हो जाता है।

श्री नाट्यज्ञों की उक्त ११४ वाक्य-मन्त्राओं की सूची में द्विगत और विगन वाक्य रूप नहान ^२ तथा भारी रावण परिचयों और सतमान जस वाक्य-रूप भी छू गये हैं। आधुनिक राजस्थानी वाक्य-मन्त्रा का भी उक्त सूची में समावेश नहीं है। अनन्व श्री नाट्यज्ञों द्वारा प्रस्तुत वाक्य रूपों की उक्त सूची एकमात्र प्रवोट हाना है।

भाषा गली की दुर्दिग म राजस्थानी वाक्य व निम्न निम्नित भेन निय जाने चाहिय—

१ राजस्थानी साहित्य एक परिचय

भवभुग पय कुटीर बीकानेर पृ २३

२ प्राचीन भाषाओं की रूप-भरम्भर भारतीय विद्या मन्दिर गोप प्रतिष्ठान बीकानेर पृ २ ।





(क) जैन काव्य, (ख) टिगल काव्य, (ग) पिगल काव्य, (घ) भक्ति एवं मन्त्र काव्य, (ङ) लोच काव्य और (च) आधुनिक काव्य ।

जैनकाव्य का वर्गीकरण (अ) कथाकाव्य अथवा चरित्रकाव्य, (आ) ऋतु काव्य, (इ) उत्सव काव्य (ई) नीतिनाट्य, (उ) स्तवन, (ऊ) दान, (ए) टट्टा एवं बालाबोध और (ऐ) ज्योतिष वास्तुशास्त्र आयुर्वेद, नीति ग्रन्थ आदि शास्त्रीय विषयों पर आधारित काव्य के रूप में किया जा सकता है ।

(अ) कथाकाव्य अथवा चरित्रकाव्य जैनकाव्य के अन्तर्गत आदर्श व्यक्तियों के चरित्रों में सम्बन्धित अनेक कथाकाव्य उपलब्ध होने हैं । इन काव्यों के माध्यम में दानशील, तप और भावना नामक ब्राह्म गुणों और शोध मान माया और लोभ नामक त्याज्य पर अवगुणों पर विशेष दृष्टि दिया गया है । इन विषय में कहा गया है—

दान नील तप भावना, चाग चरित बहेन ।

शोध मान माया वनी, लोभारि पनपेन ॥^१

कथा अथवा चरित्रकाव्यों के रूप निम्नलिखित हैं—

(१) राम, रामो, (२) चौपाई, (३) नवि, (४) चरचरी, (५) प्रबोध, चरित, आचानक कथा ।

(१) राम; रासो

राम पण्य काव्यों की परम्परा हमारे साहित्य में प्राचीन है । राम अथवा रामो-काव्यों की रामर, रामो, राइमो, राइनी, रायमो, रायनड, रामु, रायना और रासा आदि भी लिखा गया है । राम शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं—

१ वीमलदेव राम में रामायन शब्द प्रयुक्त हुआ है । इसी “रामायन” शब्द में रामो की उत्पत्ति हुई है—
आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ।”^२

२ रामी शब्द की उत्पत्ति “राजमूय” से है—मानिद तानी ।^३

३ रामो शब्द की उत्पत्ति “रहस्य” से है—ध्याममुन्दर दाम ।^४

४ रामो शब्द की उत्पत्ति “राजयम” से है ।^५

५ “रामो के मायने कथा के है । यह रडि शब्द है । एकवचन रासो, बहुवचन रामा ।”—मुंशी देवीप्रसाद ।^६

६ “राजदेव” से रामो की उत्पत्ति हुई है ।”—डॉ० जार्ज ग्रियर्सन ।^७

१ हेमरत्न कृत “अमरकृमार चौपाई” से, हस्त प्रति श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशीनागरी, प्रचारिणी सभा (सं० २००३), पृ० ३२.

३ हिन्दुई साहित्य का इतिहास ।

४ हिन्दी शब्द-सागर ।

५ भारतीय विद्या, वर्ष ३, अंक १, पृ० ६६.

६ सरस्वती, भाग ३, पृ० ६८

७ वही, पृ० ६७.

७ राधा गान की उत्पत्ति सम्बन्ध गान व रास न है ।^१ डा० गोशंगकर हीराचन्द शोभा ।

८ रागो गान की उत्पत्ति रास प्रथवा रासक से है ।^२ व माटुलाल विष्णुनाथ पन्ना ।

९ रास गान वस्तुतः सस्त्री भाषा का नहीं है प्रत्युत दली भाषा का है जो सम्पुट बन गया है । डा० दामय शोभा ।^३

१० चरित्र नाट्या में रासी-ग्रन्थ मुख्य हैं । विषय चाप प्रथम में विद्या राजा की कीर्ति विजय मुद्ध वारता आदि का विलुप्त वर्णन हो उन रासी कहते हैं । प मोरीचानजी मनादिया ।^४

११ विवनाथप्रमाण मिथ व मन्नानुसार रागन गान को रागो की उत्पत्ति व निष ग्रहण किया जा सकता है ।^५

१२ रास या रासक भूतन मलय के गाँव गाई जाने वाली रचना विषय है ।—ने व गाम्भी ।^६

१३ उद्यम या पञ्चद आदि भी रासो व प्रथम नियम हैं ।^७

१४ रास मुख्यतः रास छन्द में लिखा जाता था मरवा की रास का उत्पत्तिवादी भी बताता गया है ।^८

१५ व० हजारादिनामजी बिबनी नमसो मिय गय म्पर मानने हुए रासो और रासक का पयस माना है । उनमें मन में हंसक व काव्य के आधार पर यह मिथ गय है ।^९

१६ विविध प्रकार व रास रासकतय रास और रासक छन्द रासक और नाट्य रासक उपनामका रासक रास तथा रासो नृत्य और नृत्यो व भी रास प्रथम परम्परा का निरुद्ध व सम्बन्ध रहा है । डॉ० मानाप्रमाण गुज ।^{१०}

१७ वस्तुतः रासाभा का धर्मोपगम मुख्य है नृ या । किन्तु उक्त व क्या-किस और चरित्र-नकीर्तन आदि तबों का समावेश हुआ । साहित्य-स्वरूप की दृष्टि में रासक एक नव-नाथ प्रथम गय रूपक है ।^{११}

१ सम्मेलन परिषद् भाग ३ सन् १९७७ पृ० ६७

२ रासी की प्रथम सरला उदयपुर ।

३ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृ० ७ (नितोय सरस्वती)

४ राजस्थान का विगत साहित्य पृ० २४ सन् १९३२

५ सम्मेलन-परिषद् भाग ३ सन् १९७७ पृ० २३

६ आपणा कविषो भाग एक पृ० १४ १४२ और ४३६ ४३७

७ साहित्य-सन्देश मई १९४१

८ दो केटलाग आप की गुजराती एण्ड राजस्थानी इन दो इण्डिया ओरिजिनल सायबरी भाषाकोष्ठ पुनर्वसिद्धि प्रस १९४४

९ हिन्दी साहित्य का आधिकारिक पृ० ३६ सन् १९३२

१० हिन्दी अनुगीमन पृ० ४ पृ० ४

११ मनुलाल २० मन्मदरार गुजराती साहित्यना रचयि पृ० ६६ तथा ७३



१८ डॉ० ओमप्रकाश के अनुसार तीन विशेषताएँ रामों में पाई जानी हैं—(अ) वस्तु-वर्णन, (आ) रौनी, (इ) सक्रिय चित्र ।^१

१९ राम शब्द का प्रयोग श्रीमद्भागवत में गीत-नृत्य के लिये हुआ है—

“रामोत्सव सम्प्रवृत्तो गोपी मण्डल मण्डित”^२

इसमें ध्रुपद आदि रागों का भी प्रयोग मिलता है—

“तदेव ध्रुवमुन्नित्ये तस्मै मान च बहूदात्”^३

२० विजयराय कल्याणराय चैद्य के अनुसार रास छन्द धार्मिक कथाओं के तत्वों से युक्त है ।^४

२१ ‘राम’ के नृत्य, अभिनय और गेय वस्तु-इन्हीं तीनों अंगों में ममय पाकर परस्पर मिलते-जुलते विन्तु साहित्य की दृष्टि में विभिन्न तीन प्रकार के रासों की उत्पत्ति हुई । कुछ नृत्य-विशेष राम कहलाए । उसी प्रकार ध्वय रास और रामक उत्पत्तिक बने ।^५

२२ विरहाक के वृत्तजातिमम्मुच्चय के ‘रामग्र और न्वयभू छन्द के रामा’ को बताते हुये डा० हरिवल्लभ भायाणी ने सदेम रामक में प्रयुक्त ‘रामा’ नामक छन्द की भी चर्चा की है ।^६

२३ पृथ्वीराज रामों में पांच न्वयों पर रामों छन्द होने की सूचना डा० विपिन विहारी त्रिवेदी ने दी और बताया—

“इतना तो कहा जा सकता है कि एक ममय रामा या रासों काव्य में अनेक विशिष्ट छन्दों का व्यवहार इष्ट होकर शास्त्रोक्त हो गया था ।”^७

२४ रामक या राम को छन्द-प्रभाकर^८ और हिन्दी छन्द-प्रकाश^९ में एक छन्द विशेष बताया है ।

२५ अनेक विद्वानों के मतानुसार सम्पूर्ण होने से यह रचना रास कहलाई । शालिभद्र सूरिकृत ‘पंच पांडव चरित रासु’ (संवत् १४१०) में लिखा है—“रासि रमात्तु चुणीज्जई”^{१०}

२६ जिनदत्त सूरि के “उपदेश रमायन रास” से लगुड-रास और ताला-रास का पता चलता है । ये रास खेले भी जाते थे । कवि के अनुसार दिन में लगुड-रास और रात्रि में ताला-राम के खेल वर्जित हैं—

“ताला रासु विदिति न रयणिहि,
दिवसि वि लउडारसु सह पुरिसिहि ॥”

१ हिन्दी काव्य और उसका सौंदर्य, पृ० १८-२०

२ स्कन्ध १०, अध्याय ३३, श्लोक ३,

३. १०।३३।१०.

४ गुजराती साहित्यनी रूपरेखा, पृ० १६-२० (आवृत्ति पहली)

५ डा० दशरथ शर्मा, साहित्य-सदेश अंक १, जुलाई १९५१

६ सदेश-रासक मुनि श्री जिनविजयजी, भारतीय विद्याभवन बम्बई, प्रस्तावना

७ रेवातट-समय, भूमिका पृ० १३४-१३५,

८ श्री जगन्नाथप्रसाद ‘मानु’ कृत, पृ० ५६

९ श्री रघुनन्दन शास्त्री कृत, पृ० २४५

१० गुर्जर रासावली जी. ओ एस अठारह

इसकी पुष्टि इन उद्धरणों से हो जाती है—

ताला रासु रमणि यहि देख लउडा रसु भूयह चारेइ ।^१

और—

पीछे तासा रस पडन बहु भार पन्ता ।

अनइ लहुट रास जोई मेला नाचना ॥^२

और—रेवतगिरि रास (स १२८८)

रगिहि अ रमई जो रासु मिरि बिजयगेण मूरि निम्मबिउए ।

जिनोय मूरि षट्ठामियक रास (स १४१५)

नाचई अ नयण बिगान चदवयणि मन रस भर ।

नवरणि अ रासु रमणि मेला भेनिय मुप परिवरे ॥

बाहूदे रास (स १५१०)

करुया मनोरथ पूगी भास ठामि ठामि दिक्काई रास ।^३

२७ भाव प्रकाश में गारदासनय में तीन प्रकार के रासक का वर्णन किया है—

सतारामक नाम स्वयत्तरनया रासन भवेत् ।

दण्डरामकमेतु तथा मण्डरामकम् ॥

और 'रासक' नामक गय-नाट्य का उल्लेख उपरुपकों में किया गया है—

गाय अ प्रेक्षण नाट्य रासक रासक तथा उत्सोप्यकव हल्लीममथ दुमरलीवडपि च ॥

हेमच—

गेय डाम्बिका भाग प्रस्थान गायक-मणिका प्ररण रायश्रीह हल्लीसक रासक-ओप्टी-श्रीगदित रास काव्यानि ।^४

वाग्मट्ट^५ (द्वितीय) और कवि विवनाथ—

'नाटिका ओपक' नाटिक सट्टक नाट्यरासकम्

प्रधानोत्सावकाव्यनि प्रेसन रासक तथा ।^६

रासक में अनेक तान और लग ६४ तब के युगल और बीसत उद्धत-योग रूपक तथा अनेक नतकियाँ भी होती हैं—

अनेक नतकी गाय चित तान सयाविनय ।

भावतु पटि युगनाडासक मृगशोदवम् ॥

१ अगडू रचित सम्यक-वर्षाई । ८१०५५

२ सत्रक्षभी रास (प्रा गु का० स० पृ ५२)

३ पृ ५६ सड १ २३६

४ काव्यानुशासनम् ।

५ वही ।

६ साहित्य दण्ड ५ परि ६ ।



टा० व्यामनुन्दन्दाम^१, श्री बालेन्दु^२ श्री ब्रजरत्नदान^३, आदि ने हिन्दी साहित्य में उपन्यास के १८ भेदों में से नाट्यगम्य को भी एक भेद माना है।

२८ हिन्दी साहित्य कोष के अनुसार रामों नाम से अभिहित कृतियाँ दो प्रकार की हैं—एक तो गीत-नृत्य परक जो राजस्थान तथा गुजरात में विशेष रूप में मशहूर हुई और दूसरी छन्द-वैविध्य परक जो पूर्वी राजस्थान तथा शेष हिन्दी प्रदेश में अधिक विद्यमान हुई।^४

श्रीमद्भागवत के रामलीला प्रसंग में ज्ञात होता है कि राम का सम्बन्ध मूलतः शृगारिण नृत्य-गीत में है। निम्नलिखित ग्रन्थों में भी राम का सम्बन्ध शृगारिक नृत्यगीत में प्रष्ट होता है—पाटग्रलन्ठो नाममाला^५ के गानों हल्लीमन्त्रो, देवी नाममाला के हल्लीमो रामक।^६ मण्डनेन स्त्रीणानृत्यम् तथा कुट्टणो रामा^७ और पाटग्रलन्ठ-महर्गवो के राम गमन^८ और रिपुदमण राम।^९

राम मूलतः लौकिक और शृगारिक गीत रहे हैं जिनके आधार पर जैन कविदों ने धार्मिक राम लिखे। धीरे-धीरे इन राम-गीतों में परिवर्तित होते-हुये काव्य-शैली का रूप धारण कर लिया।

(२) चउपई—

चउपड अर्थात् चौपाई छन्दों में रचित होने में इन रचनाओं को “चउपट” नाम से अभिहित किया गया।

(३) संधि

अनेक महाकाव्यों में सर्ग से तात्पर्य संधि लिया गया है। हेमचन्द्राचार्य ने महाकाव्य के लक्षण बताने हेतु लिखा है—

“पद्य प्रायः मञ्चन प्राकृतापञ्चन ग्राम्य भाषानिष्ठ भित्तवृत्तनर्गाग्रानमन्त्रवेन्कथ दन्धमन्मयिगन्दाय वैचित्र्योपित महाकाव्यम्” कुछ संधि-विषयक शब्द निम्न हैं—

(१) आनन्द संधि,—विनयचन्द, (२) गोतम संधि (१४वीं शताब्दी) ह० प्रति श्री अमरजैन प्रत्यालय वीकानेर, तथा जै० गु० क० भाग १, ६, (३) मृगापुत्र संधि (१५५०) कल्याणनिक (४) नन्दन मणिहार संधि (१५८३)—चार चन्द्र (५) उदाह राजपि संधि (१५६०) तथा गजमुकुमाल संधि (१५६०) नयममूर्ति (६) जिन-पालित जिन रचित संधि (१६२१) कुयनलान, (७) गजमुकुमाल-संधि (१५५३) मूलप्रभु (८) सुवाह संधि (१६०८) पुष्पनागर (९) हरिकेशी संधि (१६४०)—ननमक मोम (१०) चउमण प्रकीर्ण संधि (१६३१) चरित मिह (११) भावना संधि (१६४६) जयमोम (१२) अनाथी संधि (१६४७) विमल विनय (१३) वयवना संधि (१६५१) गुण विनय आदि।

१ रूपक रहस्य।

२ हिन्दी नाट्य-साहित्य।

३ हिन्दी काव्य-शास्त्र।

४ पृष्ठ ६५६

५ धनपाल कृत ॥६७॥

६ हेमचन्द्र कृत ॥६१॥ (कलकत्ता)

७ वही, २।३८

८ पण्डित हरगोविन्द दास, श्रीकचन्द्र सेठ (कलकत्ता १६८५)

९ मरुभारती, वर्ष ४, अंक २, जुलाई १९५६, डा० दशरथ शर्मा रिपुदमण रास।

(४) चचरी

संगीतमय रचना राग रागनियों में बाँध कर नृत्य के साथ में गाई जाती है वह चचरी कहलाती है। जिनमें सूरि की रचना जिनका नभसूरि की स्तुति अथवा वाक्यप्रयोग है।^१ जिन्हीं और प्राकृत पद्यनम में समाया गया है।^२ य रचनाएँ चौखी गाना भी मिलना आरम्भ हुई हैं।^३

(५) अ—प्रबंध चरित, आन्यानक और कथा

जन कविया में अनेक रचनाएँ प्रबंध चरित आन्यानक और कथा का नामों से अलग-अलग लिखी हैं। सम्बन्धित चरित्र अथवा मुख्य घटना का उल्लेख इन नामों में पहले चरन की परम्परा रही है।

आ—श्रुत काव्य

श्रुत काव्यों के अन्तर्गत (१) पागु (२) घमाल और (३) बाहूमासा-परक रचनाओं का समावेश होता है।

(१) पागुकाव्य

बसंत श्रुत में गेय हैं। होरी व अक्षर पर पागु के साथ इन रचनाओं का सम्बन्ध होने से इन्हें पागु कहा गया। पागु श्रुत की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं—

१ डॉ। भागीलाल साहसरा—सम्बुत पत्रा—आ काव्यु—पागु।

२ शृंगारिक विषयों के आधार पर के का गान्धी ने इसे पागुवाक कहा है।^४

३ श्री बालकृष्ण शर्मा—अनन्तर—य काव्यु—य पागु पु० प रा० पागु। पागुन में घगन अथवा पूजा की परंपरा है। इस समय से आदरता से अनेक रूपों में पागु कहने हैं।^५

४ जिस प्रकार मरुत में समकबल अनुप्रासमय वाक्य होते हैं। वही रचना की भाषा में पागुवाक कहा जा सकता है।—डॉक्टर अग्रवाल—अनन्तर—गाह।^६

५ श्री नानकजी गौधी व अनन्तर पागु गानों विषय के आधार पर विविध तत्वा से युक्त है।^७

६ अणयक नामों व अनुप्रासमय मधुमदोक्त की गेय रूप है।^८

७ पागु भूत में जो साहित्य का गीत स्वरूप है।—डॉ. स० २० अनुप्रास।^९

८ डॉ। भागीलाल साहसरा ने अनेकों मतों का उल्लेख है—पागु अनुप्रासमय। अनेक पागु में भी अनेकी उत्पत्ति की आधार पर लिखा गया है।^{१०}

- १ गायकवाड औरियटल सिरोज से प्रकाशित।
- २ हिंदी साहित्य प्रकाशक १३१ तथा हिंदी काव्य गारत्र पु० २४।
- ३ जन साहित्य प्रकाशक १२ अंक ६ में श्री होरासास काव्यविद्या का चचरी नामक लेख।
- ४ आनंद कविता प २३४।
- ५ अन्तर्गत विज्ञान भूमिका प ८।
- ६ जन साहित्य प्रकाशक १२ अंक ५६ प १६५।
- ७ वही प ११ अंक ७ प २१२।
- ८ नागरी प्रचारिणी-संस्था प ३६ अंक १ सवर् २०११ प २५।
- ९ गुजराती साहित्यनामिका प २०१।
- १० पत्र प १२१ प २४३ (कलकत्ता)।
- ११ गुजराती साहित्यनामिका प १६६ टिप्पणी।





म० फल्गु > प्रा० फागु (अथवा देश्य फागु) > जू० गु० फागु > फाग ।

६ डिगल कोप में भी फालगुण और फागण, फाटगुण के पर्याय दर्शाये गये हैं ।^१

फागु काव्य गेय होने के साथ ही नृत्य के साथ अभिनेय भी होने से । धूनिभट्ट फागु [१४वीं शताब्दी] में लिखा है—

सरतर गच्छि जिण पदम नूरि विय फागु रमेवड ।

सेला नाचइ चैत्र मामि रगिहि गावेवड ॥^२

जैन कवियों द्वारा लिखित फागु काव्यों में शृंगार का अभाव होता है । शृंगार रस परक फागु काव्य जनता में लोकप्रिय थे । 'वसन्त-विलास' नामक फागुकाव्य शृंगाररस का उत्तम उदाहरण है ।^३ जैन कवियों ने लोक प्रचलित शृंगाररस पर फागुण काव्य-परम्परा का अनुसरण करते हुये शान्तरस परक काव्यों की रचनाएँ की ।^४

(२) धमाल

राजस्थान में होली के अवसर पर गेय गीतों को धमाल कहा जाता है । होली के अवसर पर गाई जाने वाली एक राग का नाम भी धमाल है । जैन कवियों ने धमाल-परम्परा में अनेक आध्यात्मिक धमालें लिखी हैं । यथा आप्याढ भूति धमाल, आर्द्रकुमार धमाल (-कनक सोम) नेमिनाथ धमाल (-माल देव) आदि ।

(३) वारहमासा

वारहमासा-काव्यों में मुख्यतः विप्रलभ शृंगार का समावेश होता है । कवि वर्ष के प्रत्येक मास की परिस्थितियों का चित्रण करते हुए नायिका का विरह-वर्णन करते हैं । वारहमासा का वर्णन आप्याढ ने प्रारम्भ होता है । जैन कवियों ने वारहमासा-परम्परा के अन्तर्गत अनेक कृतियाँ लिखी हैं । जैसे—नेमिनाथ वारमास चतुष्पदिका (१३४३) —विनय चन्द्र सूरि^५, नेमिनाथ राजिमणि वारमास चरित्र कलश^६ नेमिनाथ वारमास वेणु प्रबन्ध (१६४०) गुण सोभाग्य ।^७ श्री अग्ररचन्दजी नाहटा ने अपने एक निबन्ध में "वारहमासा की प्राचीन परम्परा" पर विस्तृत प्रकाश डाला है ।^८

(४) उत्सव-काव्य

उत्सव काव्यों के अन्तर्गत विवाह-दीक्षा आदि उत्सवों का वर्णन रहता है । जिस काव्य में विवाह का वर्णन रहता है उसको विवाहलज, विवाहलो, विवाहला आदि तथा विवाह के अन्तर्गत गाये जाने वाले गीतों को धवल और भगल कहा गया है । विवाहला परक रचनाओं में जिनेश्वर सूरिकृत "सयम श्री विवाह वर्णन राम" और "जैनोदय सूरि विवाहला" अब तक प्राप्त हुई रचनाओं में प्राचीनतम हैं । तेहरवीं सदी में रचित जिनपति सूरि "धवलगीत" धवल परक रचनाओं में प्राचीनतम मानी गई है ।^९ विवाहोत्सव सम्बन्धी कतिपय रचनाएँ इस प्रकार हैं —

१ परम्परा डिगल कोप—कविराज मुरारीदान, पद १७२ पृ० १८४ ।

२ श्री सी० डी० दलाल, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, पृ० ४१ ।

३ प्रकाशित, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

४ "राजस्थान फागु काव्य की परम्परा और विशिष्टता" सम्मेलन पत्रिका में अग्ररचन्द जी नाहटा का निबन्ध ।

५ प्राचीन गु० का० सा० ।

६ गुजराती साहित्यना स्वस्वपो, पृ० २७६ ।

७ वही, पृ० २८२-८३ ।

८ हिन्दी अनुशोलन वर्ष ६, अंक ४, स० २०१० ।

९ जैन सत्यप्रकाश वर्ष ११ अंक १०-११ ।

- (क) धाद्रु कुमार विवाहलउ (१६६३)
- (ख) महावीर विवाहलउ (१५ वीं शताब्दी) बीनिरल मूरि
- (ग) नेमि विवाहलउ (१५ ५) जय सागर
- (घ) दांति विवाहलउ (१६ वीं शताब्दी)
- (ङ) दांतिम विवाहलउ (१५६८) सप्तम
- (च) जम्बू अरव राग विवाह लो (१५७८) सहज सुन्दर
- (छ) पायनाथ विवाह लो (१५८१) स पहर—वेधा
- (ज) गानिनाथ विवाहलो धवन प्रवच (१५६१) आनंद प्रमोद
- (झ) मुपासवजिन विवाह लो (१६८०) ब्रह्मविनयदल
- (ई) नीति काव्य

जन कविया ने प्रायः प्रत्येक कृति में उपर्युक्त जान एवं नीति का विशाल विस्तर रूप में समावेश किया है। जन कविया का मुख्य दृष्टिकोण धार्मिक प्रचार करता रहा है। नीति विषयक जन रचनाओं को सदा विस्तृत है। नीति काव्य के अत्यन्त अनेक सवाँ कवक भाषिका बावनी चुन और टियानी पर रचनाओं का समावेश होता है। सवाँ-परक रचनाओं में दो विशेषीयताएँ हैं—सवाँ मिल पर यथाय गय हैं। अन्य जन कविया ने अपने पदों को अन्त में विज्ञापन दिया है। सवाँ-परक रचनाओं के द्वारा जन कविया ने अपने सिद्धांतों का प्रचार की दृष्टि से सरल रूप में प्रस्तुत किया है। सवाँ-अम्बधी कविपद रचनाएँ इस प्रकार हैं —

- (क) सहज सुन्दर भाँव जान सवाँ यौवन जग सवाँ
- (ख) सावणममय कर-मवाँ (१५७५) रावण मन्त्रोत्तरी सवाँ गोरी-सावनी रीत।
- (ग) हरि कवाँ जीमन्तल मवाद (१६४३) मोनी कृपासिया सवाँ (१६२६)
- (घ) जीरापलो पारवनाथ रास
- (ङ) नरपति त्रिह्यान्त सवाँ मुल कवक सवाद (१६वीं शताब्दी)
- (च) धीधर रावण-गान्दारी-सवाँ (१५६५)
- (ज) कवका

कवका जन रचनाओं को कहते हैं जिनमें वणमाला व गान्धर्वों में से प्रत्येक वण स रचना का प्रारम्भ किया जाता है। कवका सम्बन्धी रचनाओं को बारहवनी भी कहा जाता है। कवका शरद्विही पर रचनाएँ तरह-बी सगी में उपर्युक्त होती हैं।^१

(ऊ) स्तवन

स्तुति परक काव्य को स्तवन कहा जाता है। ऐसे काव्यों को स्तुति स्तोत्र सामाज्य बीननी और नमस्कार भी कहते हैं। इनका सम्बन्ध तीर्थनरा महापुरुषों तायों साधुओं और महासत्तिया आदि से होता है।

(ए) छाल

अनेक जन काव्य लीनिक शलिया में गय हैं। इन गलिया को दनी धधवा डाल कहा जाता है। रचना के प्रारम्भ में लीनिक गीत की पक्ति भी वही २ वीं जानी है। इस प्रकार अनेक लीनिकों की प्राचीनता पता हुई है। नी मोनमवात म्नीक देसाई न डाई हजार डाला की सूची भी प्रकाशित की है।^२

१ प्राचीन गुजर काव्य-संग्रह।

राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा. माहेश्वरी पृ. २४५

२ जन गुजर कविओं पृ. ३।



(ऐ) टव्वा और वालावबोध

मूल रचना के स्पष्टीकरण हेतु पत्र के किनारे पर टिप्पणियाँ लिगी जाती हैं, इन्हें टव्वा कहते हैं और विस्तृत स्पष्टीकरण को वालावबोध कहा जाता है।

(ओ) ज्योतिष, वास्तु शास्त्र, आयुर्वेदादि शास्त्रीय विषयो पर आधारित काव्य

जैन कवियों ने धार्मिक विषयो के साथ ही ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, आयुर्वेद आदि शास्त्रीय विषयो पर भी काव्य की रचना की है। हरीकलशकृत 'जोडमहीर' 'यकुन मोलही' आदि अनेक ग्रंथ शास्त्रीय विषयो पर लिखित उपलब्ध होते हैं।

१ भास्कर-किरण, दो भाग ४

२ अमयजैन ग्रंथालय, बीकानेर।

राउलवेल के दो नखशिख और उनकी शब्दावली

डा० हरीश
राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर



राउलवेल हिन्दी साहित्य में आन्तरिक का प्राचीनतम और स्पष्ट वाक्य है। राउलवेल के सम्बन्ध में सबसे बड़ी भाँति यह प्रचलित कर दी गई है कि यह काव्य दक्षिण कोसली का है। इस धारणा से हमारा मतभेद है। हमारी मान्यता है कि राउलवेल मानवा का वाक्य है जो उस समय दक्षिण पश्चिमी राजस्थान का प्रदेश था। राउलवेल की इस भाषा का उद्गमन पर हम राउलवेल की भाषा नाम के म विस्तार से प्रमाण पत्र रहे हैं ताकि उसके वैज्ञानिक अध्ययन में भाषाशास्त्र के अध्यापकों को रुचि हो।

प्रस्तुत लेख में हम राउलवेल के नखशिख में प्रयुक्त शब्दावली का परिचय प्रस्तुत करेंगे। ताकि विद्वानों को उसकी शब्दावली की सम्पूर्ण जानकारी हो सके। इन शब्दों का उस समय की उपरान्त राजस्थानी कृतियों में आना से तुलनात्मक अध्ययन भी उपेक्षित है। हमने ऐसा प्रयास किया है। राउलवेल में वर्णित सात नखशिख में डा माताप्रसाद गुप्त ने सात विभिन्न भाषाओं के उद्गम किए हैं और हमारा मत यह है कि इन पूरी कृतियों में एक ही प्रधान भाषा है, और कुछ शब्दावली इतर प्रांता की आ गई है जिसका आना भाषा वैज्ञानिक विषय में आधार पर भी सहज सम्भव है।

यहाँ प्रस्तुत लेख में हम राउलवेल के आन्तरिक भाग तथा प्रारम्भ के दो नखशिखों की शब्दावली का विश्लेषणात्मक परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं जो इस प्रकार है।

राउलवेल की भाषा पर एक अन्य लेख में हमने विभिन्न विद्वानों के मतों का साथ अपनी मान्यता भी प्रस्तुत की है कि यह गिलावित वाक्य दक्षिण-पश्चिमी राजस्थान मुजरात और मानवा प्रदेशों की भाषा के तत्वों को प्रयुक्त करता है तथा उत्तर भूप्रदेश या पुरानी हिन्दी में लिखा गया है जिसमें उक्त प्रदेशों की कोनी की घड़ी वाली शब्दावली प्रयुक्त हुई है। यदि वे राउलवेल में इस शब्दावली का प्रयोग रचना को सुगुह एवं सरस बनाने के लिए ही किया है। रचना प्रधानता पश्चिमी भूप्रदेशों की शब्दावली राजस्थानी में मिली गई है। इस विशिष्ट आँकड़ों में मानवी एवं प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का विनिष्ट सम्मिश्रण विद्यमान है।



यहाँ हम रचना के आदि अन्त एव प्रथम दो नम्यगियों की शब्दावली को लेते हैं और उनका इस आधार पर परीक्षण करना चाहते हैं कि उनमें राजस्थानी या मालवी श्रौक्तिक भाषा की कितनी शब्दावली है। जिन महत्वपूर्ण शब्दों को हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं, प्रमन्नता की बात है कि उन शब्दों में से अनेक शब्द राजस्थानी और उनकी विभिन्न बोली मालवी में बोलचाल में आज भी व्यवहृत होते हैं। साथ ही इन शब्दों के लिए हम प्राचीन राजस्थानी की आदि-कालीन काव्यकृतियों के उद्धरण भी प्रस्तुत करेंगे, जिन काव्यों में राजलवेल में प्रयुक्त भाषा की शब्दावली के अनेक शब्द यथावत मिल जाते हैं। ये शब्द वहाँ के जनपदीय भाषाकाव्यों में आदिवाल में लेकर आज तक प्रयुक्त होते रहे हैं। हमारा यह नारा प्रथम वहाँ के प्रदेशों के लोकभाषा-तत्त्व एव बोल-चाल के शब्दों पर ही आधारित है। हमारा मत है कि हमारा यह प्रयास कदाचित् राजलवेल में प्रयुक्त एक ही श्रौक्तिक भाषा के गिरावट में कुछ योग दे सके। कृति के आदि अन्त की शब्दावली प्रस्तुत है—

आदि

“रोडे राजल वेल वस्राणी”

(१) राजल शब्द राजस्थानी में राजपुरुष के लिए प्रयुक्त होता है। राजल नामक को एव राजभवन को राजला या रावना कहते हैं। राजल शब्द का उत्तर अपभ्रंश के प्राचीन राजस्थानी काव्यों में प्रयोग अनेक बार किया गया है। राजल शब्द के साथ राजत शब्द भी मिल जाता है, जो आजकल “राघत” रूप में वहाँ की बोलियों में बोला जाता है। इसका अर्थ भी राजपुरुष ही होता है। यही नहीं स्त्रीलिंग में राजल नाम राजस्थान एव गुजरात में नायिकाओं के लिए प्रयुक्त होता था। राजल राज, राव एव राजत सभी शब्द पुलिंग में केवल मात्र राजपुरुष के लिए ही आए हैं, देखिए

आदि अन्त

राजल—(स्त्री०)—१ राजल भणी गई पावरी,
ऊभी रही विनीत करी—(२०६-१)

राजल—(पु०)—२ राजल भण्ड इस्तूँ का कीवड—(२२७-१)
(कान्हड दे प्रबन्ध)^१

राजत—१ राजत राजत वर रहीय,
मनि मू भइ मतिवंत तु (३८) (भरतेश्वर बाहुबलि राम)^२

२ मयणराय पह राजत राजत
किर अति घोर—(१६) (जम्बूस्वामी फाग)^३

१ देखिए-कान्हड दे प्रबन्ध में राजल शब्द के लिए-स्यल-खड ४ पद्य २६१, २३२, १४८, १०७, १४४, ३०७ २१३ २२७, २२२, १७८, ३-३७, १-१३०, ४-२६१, २०६, १०६, १४३ आदि।

२ भरतेश्वर बाहुबलि रास, पद्य ३८ शालिमद्र सूरि कृति स० १२४१

३ प्राचीन फाग काव्यसंग्रह, पृष्ठ २७, प्राचीन गुर्जरग्रन्थमाला ग्रन्थ ३, बडोदा।

रावन रावन^१ रावनुहा (प्रचलन चरित)^२ म राउन (पचपाचन चरित रासु)^३ तथा बीमनदव रास म 'राउ' रूप म मिलता है।

वन गद राजस्थान म वन के अथ म वर्णित प्रचलित है। नोनवाल वा अयाधुनिक रूप वन या बेलही है।

राजह राण—राजा राणी के अथ म बोली म सामान्य जनता म गान हैं। इसी तरह आपणु कथाणी भाषि बोली म प्रयुक्त होने हैं।

हाथेनाये—हस और सलुट हा के अथ म आते हैं।

इसी तरह रचना के भाषि अन्त म प्रयुक्त जा मो (सब०) अइनी अइनी (वि०) राजस्थान और मालवा म प्रयुक्त आते हैं।

क्रियाया म आजह ववाणह जाणो मुद्ध राजस्थानी बोली की क्रियायें हैं। तथा जेम्ब तेम्ब जूनी गुजरानी तथा आपुनिक गुजरानी के अन्वय हैं। इसी तरह पूरे वृत्ति के सन्तो के जन प्रचलित रूपों के प्रमग मिले जा सकते हैं। रचना के भाषि अन्त म प्रयुक्त यह सारी गानावली प्राचीन राजस्थानी की बोधवान की छायावली है। डा गुप्त म गिरानेय के भाषि अन्त की भाषा की दृष्टिणी कोमली भाषा कहा है जो हमारे मत से उचित नहीं है। रचना के भाषि अन्त बोली म केवल द ९० राजस्थान मालवा और मगरान की जनप्रचलित बोली की साम्यवली है। अतः इनकी भाषा की बलिष कोमली मानना मध्या अनुपयुक्त होगा।

अथ नवनिष्ठ की शाखावली की नीति—

प्रथम नवनिष्ठ

(१) कथुषा—कांचनी के रूप म कछडा काछनडा या काछना प्राचीन द० ५ राजस्थानी (पुरानी हिंदी) म बोला जाता है इसी तरह इन गानों की देखिए—

(२) राजसबेल

बटिया

माचणु

पहिरणु

कवि

काठी

मना

अहू

(राउलपल)

प्रचलित रूप (वर्तमान म)

बटूरी

माउण माणण

पेरणा

कवी

कठी

वरणा

अहू

(नोनवाल की भाषा की राजस्थानी)

१ प्रचलनचरित पृष्ठ ४२४ ४२६ ६५ ३२८ अतिशय वाचक जेटी जयपुर प्रकाशन।

२ लेखक की कृति आदिकाल के अन्तर्गत राजस्थानी—मध्यप्रदेशचरित रासु पृष्ठ १४५ पृष्ठ ७५ मंगल प्रकाशन जयपुर।

३ बीसलदेव रास। पृष्ठ ६५ पृष्ठ ४७ सम्पादन डा आताप्रसाद गुप्त एच अग्ररव नाल्टा।



(३) गोह और कोह प्रमथ प्राचीन राजस्थानी उतर अथवा न के है ।

(४) राजन-गान, तबोले-तबोली (राजस्थानी)

मोहि—महने तथा गो, तोऊ, तामु, जगु, जा, जो, (मर्ग) एव भाव (जूनी एव आधुनिक गुजराती) तथा विशेषणो मे ।

आछड-आच्छो, गाडड-गाडो, गाट, गनड-गाडो, नागड-नगो राजस्थान की बोली के शब्द है ।

(५) प्रियाओं मे—भावड—भावे, भावछ, म्च—म्चे, म्चछ, मारीज—मारीजे, माटिजे, माटिजे, पावड मुहावरा, दीज—दीजे, म्च—म्चजे, तथा अन्तरा मे तोड, मगु मगु, मिगु आदि राजस्थानी की बोलियों मे आज भी छाने मे प्रयुक्त होते हैं ।

डॉ० गुन ने प्रथम मगधिय की भाषा पश्चिमी हिन्दी बिली है, उनमे हमे कोई आपनि नहीं । वस्तुतः पश्चिमी हिन्दी की उक्त शब्दावली हमारे मन मे एकदम राजस्थानी की ही शब्दावली है । उस तरह उन मगधिय मे—तगड, तह, मोहवि, एहड, वाड, आनु, तुछड, नागि, मोह तूनीम्ब, आहरे—आदि प्रथम मगधिय के गुन ११ शब्द ऐसे हैं जो बोलचाल की राजस्थानी मे प्रायः प्रयुक्त नहीं होते । पर यह निश्चय है कि ये शब्द उस समय अत्यन्त ही अस्मिन् के रहे होंगे । शेष उस मगधिय के अधिराज शब्द राजस्थान मे बोलने जाने हैं ।

द्वितीय मखशिख

इसमे राजस्थानी और जूनी गुजराती के जनपदीय शब्दों की स्थिति इस प्रकार है—

(१) ओर शब्द वारण के अर्थ मे गीगन्ध (यय) नेतर टोड देने या गिनी वान के लिए प्रवृत्ति द्वारा नेत दिए जाने के अर्थ मे, वोड-ओड (आटणा) के अर्थ मे, नाडड-नाछटो-नाछटो, मेडो-मीडो, वाधू-वाधो (वच्चा) तथा वाधुनी (बनुनी पाहमिया-पगहान, काठी-मठ रूप मे बोलचाल मे प्रयुक्त होते हैं ।

(२) जोवगु-जोवन, वेमु-वेम, वेग, मेम, मयण-मदन रूप मे, लाठा-लाट्यो (तगला) लट्ठा (कपडा विशेष), आदि, गोह (गोहली गोहरा—जहरीले जनु), एव गोयगे, गोयली रूपो मे, दीछि-दीछ, दीछा, दीछो (दृष्टि सूचक अर्थ), रेग (यथावत्) तागो-पागो, (तागो टोरे एव नून टूटने के लिए), गोले-गोलो (दगेगा अर्थात् दाम के अर्थ मे), रीठ-रीठो, भण (यथावत् वाच बचन) वाच, माच, लोणवि-लून (नमन) नवृणो अत्रणो, गम्हारिस्व-गवार गमार-नवार-नवारचो (एक मेवाड़ी जाति) रूपो मे, पडिह-पट, पटा, पटो, डुपटो (वस्त्र), दट-(मुगठि) दट दडो, आनि-आण, लान्ह-नान्ह न्यान, नानो (छोटा) तथा गाडी (यथावत्), अइनी (यथावत्) पातली, पातली (पतली-थी) पातलिया (पनि), बाढा-ठाढो (बूढो ठाढो रूप मे) बोले-बोल, आटी-आटी, माढो-माडी ऊजल-ऊज (ऊज घो) आदि रूपो मे मिलते है ।

इस मखशिख मे उक्त शब्दों के जो शब्द राजस्थान की बोलियों मे प्रयुक्त नहीं होते वे निम्नांकित हैं—

सान्ह, आनिक्, आविल, आपुनी, आनु, आदि

- (३) त्रियाद्या म इन नवगणित की गणना सभी त्रियाद्या राजस्थानी म बोलचान की भाषा म प्रयुक्त की जाती है जम—

बाप माड भण तथा विविध वृत्तान्त छउ छउ त्रै छ विगमान हैं ।

- (४) अव्यय म ना नहा मित्त ३ व य हैं—एव ताउ अब निरु

उक्त नवगणित की भाषा की डा गुप्त न प्राचीन मराठी ना कोई दा कहा है जिनकी अधिकांश गणना की प्राचीन एवं अद्वितीय रूप हमने ऊपर स्पष्ट किया है ।

मराठी व चा व च प्रत्यय व कारण ही समझ व उसकी मराठी भाषा कहा गए हैं परन्तु मराठी के इन प्रत्यय का प्रयोग स्थिति की प्रसिद्ध कृति त्रिगुण समझी की वचन म मिल जाते ह ।

राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध विद्वान अचार्य बन्नीप्रसाद साकरिया ये भी हमने चा की व प्रत्यय ना प्राचीन राजस्थानी म सम्भव पूछा । उनका निश्चय मन है कि चा की ये प्रत्यय समग्र रूप से भूतन प्राचीन राजस्थानी के हैं । व प्रत्यय मराठी म भी राजस्थानी से ही गए हैं । इन नवीन मूलत मराठी मान जना प्राचीन राजस्थानी की गणना की शुक्ती बना है ।

कृति व क्षाति इन तथा गत। नवगणित की गणना की हमने ऊपर परीक्षा की है तथा हमसे स्पष्ट होता है कि राजस्थान व सात नवगणित म से दो तो विपुल रूप से प्राचीन राजस्थानी के ही हैं । हमें दक्षिण कोणल की कहा छाया गही । सब पाँच नवगणित की गणना की सभी प्रकार परीक्षा हम श्रवण प्रस्तुत करण ।



कवि जिनहर्षकृत मलयसुन्दरी चरित्र : एक पर्यवेक्षणा

श्री ईश्वरानन्द शर्मा एम० ए०,
प्रणयता बूगर महाविद्यालय, बोकानेर



भारतीय सस्कृति में दर्शन और धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । यहाँ की विचारधाराएँ धर्म-भावना में संचलित रही हैं । यही कारण है कि यहाँ का नाहित्य भी उनमें प्रभावित दृष्टिगोचर होता है । यहाँ नवधा विचार-स्वातन्त्र्य पनपता रहा, और समन्वय की प्रजन्यधारा प्रवाहित होती रही । चाहे वह ब्राह्मणसंस्कृति हो या श्रमण-संस्कृति, अविच्छिन्नरूपता समान ही रही है । उन दोनों धाराओं ने जन-जीवन को नाशना-पय की ओर अग्रसर किया है । मरम सहृदयमनेह होने में वाक्यकला विनोद परिरूहीन हुई । उसी श्रमृतमयी भावधारा में मानवता अनिषिञ्चित होकर अमर बन गई । अन्य कवियों के भाग जैन कवियों ने जो उत्तुग्दायिन्व निभाया है वह स्पृहणीय है । ज्यों-ज्यों जैन कवियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व सम्मुख आता जा रहा है त्यों-त्यों मान्य मान्यताओं की परिपुष्टि एवं नवीन मान्यताओं की पुनः सन्धापनायें सम्भव हो रही हैं । हमारे चरित्रनायक जिनहर्ष अद्वितीय विनिष्ट कृतिार हैं जिनकी बृहत्समाप रचनाओं में से "मलयसुन्दरी चरित्र" का पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है । सर्वप्रथम उनकी परम्परा प्रस्तुत की जा रही है ।

मलयसुन्दरी और महाबल की कथा अत्यन्त लोकप्रिय कथा रही है । अनेक कवियों ने इस पावन कथा से अपनी वाणी का शृंगार किया है । प्राकृत और संस्कृत कवियों ने भी इसे अपनी पद्धति में अपनाया है । जर्मन भाषा में इसका अनुवाद भी किया गया है । इस प्रकार उन कथा की एक परम्परा उपनद्ध होती है जो निम्नांकित है —

- १ मलयसुन्दरी चरित्र—भाषा प्राकृत (कवि अज्ञात) ।
- २ महाबलमलयसुन्दरी चरित्र—शान्तिमूरि स० १४५६ के लगभग ।
- ३ महाबलमलयसुन्दरी चरित्र—भाषा संस्कृत (माणिक्यसुन्दर) स० १८८० के लगभग ।
- ४, मलयसुन्दरी रास—उदयवर्म स० १४४३ ।
- ५ महाबलमलयसुन्दरी रास—चारुचन्द्र स० १४८० के लगभग ।
- ६ महाबलरास—स० १६४० से पूर्व ।
- ७ मलयसुन्दरी चौपाई—लम्प्योदय स० १७४३ [गोषूदा में रचित] ।
- ८ मलयसुन्दरी महाबलरास—उदयरतन स० १७६६ ।
- ९ महाबलमलयसुन्दरी रास—शान्तिविजय स० १७७५ ।
- १० महाबल मलयसुन्दरी रास—विनयचन्द्र स० १८६० के लगभग ।
- ११ मलयसुन्दरी कथा—धर्मचन्द्र [जर्मन भाषा में अनूदित] ।

अठारहवीं शताब्दी के महान् कवि जिनहर्ष ने मलयसुन्दरी चरित्र की रचना पाटन में स० १७५१ में की थी । इसमें चार प्रस्ताव (खंड) हैं । प्रथम में मलयसुन्दरी का जन्म, द्वितीय में महाबल के साथ उसका परिणय, तृतीय

म उसका स्वमुखुलागमन तथा बन्दित होकर बहा स उसका निष्वासन चतुष म उसका अवगतगीत एवं पुनभव वा वणन है। प्रथम प्रस्ताव म १२५ पद्य द्वितीय म ११६५ तृतीय म ७३७ तथा चतुष म ११४ पद्य है। इस प्रकार यह ग्रन्थ ३८७५ पद्यात्मक है। या प्रमाणविषय ने स्वतन्त्र त्रिपि स १८२१ म की थी जो अथय जनप्रधान्य बीतानर म सुगठित है।

इसम भारत के दक्षिण म स्थित चण्वावनी नगरी की राजकुमारी मलयामुन्दरी और पम्बोत्थानकपुरक राज कुमार महावत की कथा गुप्यित है। चण्वावनी व्यन्तर मण्वावका मन्वावक यामी साहसुरा चोर प्राप्ति की कथाए गीत हैं। कवि ने गुणवमा की कथा स मन्वा धारम्भ किया है जो प्रस्तावना-कथा प्रतीत होती है। अन्वीक तत्वा स परिपूर्ण प्रस्तावना कथा का घटनावक तथा अन्वातर कथाया का बाहुल्य पाठक की जिज्ञासावर्तित की अधिक उभार देता है। मूलरथा तब पहुचन स पहिच पाठक-आता न्न कथाया के अथय स अधिक सहानुभूतिगीत तथा एकाग्रता हो जाना है। प्रस्तावना कथा के अभाव म भी मूलकथा म कोई मूलता नही जाती।

मन्वा कथानक अत्यन्त विपुल और व्यापक है। मायक महावत और नायिका मलया क समस्त जीवनवत्त क माय कीरवदन तथा कल्पकमाना के समस्त जीवन की कथा भी आ गई है। महावत क माना पिता मूलपान और पयावनी की कथा भी इसम समाहृत है। वर्तमान जीवन के साथ पुनभव की कथाया का भी रूप दिया गया है। प्रागणिक पताका और प्रवरी कथाया की भरमार है। जीवन के विविध व्यापार के उदाहरण स कथा म अविव्य आ गया है। अनन्त महाकाव्या क कथानक का परिष्ठाह "सम त्तित नही होता है। आधिरारित कथा का महक सुगठित रसत हुए अन्वातर कथाया का गपान किया गया है। महान बान्तर म दसो कक चरी का अन्वातर कथानक के सपन्न म भाववर्धित का निष्पन्न है जिसम अन्तर द का उदय हुआ है। कवि अपने कर्मकील स कथाविकास और धीमनुष्यवर्द्धि के लिए उचित अवसर प्राप्ति कर अन्वातर कथाया का बीजारीपण करता चलाता है। य बाज अथ कथाया की सगति विगमन म वल्लविन हाकर ज्या ही पतिन होने की होत है ह्या ही कवि जिनी न जिनी अथ अन्वातर कथा का बीजारीपण कर देता है। मन्वा अन्वातर कथाया के समुपन म कवि का गीत परिगठित होता है। कथामुद्र म अनुसूति बनाय रचन के लिए समानतर और अन्वातर कथाया का आश्रय लिया गया है। मन्वा कारण कथामुद्र विच्छिन्न होन स बच गया है। इस चरित म अनेक कथा और आना हैं जिनके आधार पर कथावर्ति विनमित हुई है। कथाए प्राय पात्रा के परित भ्रमणगीत दृष्टिगोचर होगी हैं। प्रत्येक मित्रा हुआ पात्र अपने अनुभव अथय गुनाता है। अधिराग कथाए यावरी की क रूप म पात्रा के गुण म कहवर्वाई गई हैं जो अधिक विस्वसनीय और प्रभावक हैं। कथानक सीधी गरप गक पर न होकर त्रिज्जराज पद्धति पर है। अन्वातर कथाया के तन्तुजान म मूलकथामुद्र की बार बार सही गिता म ग समानन क लिए अन्वा पाठक को मजबूत करना पडता है।

इसका कथानक बर्तानर दृष्टिओं और अन्वीक तत्वा का आधार है। छोटी म छोटी और बारी स मोने घटना म जिना न जिनी अन्वीक तत्वा का प्रत्यय या प्रच्छन हाथ रहता है। कथानक का आतावण प्रतिमानवी क्रियाकलापा स समिभूत है। अतिप्राकृत गतिवया मानवी दक्षिण पर हाथी हैं। उनक वर्तमान म कथानक समिभाग म अन्वायाग निश्चित है। चमत्कारी वस्तु धरोहर क रूप म प्राप्ति कर उभे पुन न गीतना और गतिन होना रतमन गारी की हूँ हूँ इतने गुणवर्मा का उदाहरण म प्राप्ति बहो एर गुल्पर पुनक का नगर झाग पर मितना विजया का दक्षिणी क रूप म उदाहरण म पहुचता बहा उभरा निवास रागम का अतिधरत रागम का कथावर्तक पुरष झाग उभर तत्र म समपन्न म रहता कालपमक का तत्त आता सन्ना कल्पकमाना का मितना कन्तावन स जिना ह्या क मन्वा मर का साथ कर कल्पिमुद्र गिणीय म अथ पन्ना अधि भाग म एव सम्यवी यामी गे मितना रचन पुन क। मापना योगी का उत्तननन कथानक निदान मणिधरमर के योगी अथय गुलाकर बँडना गिरगुल उभूतन क लिए उनम पुरष की भग्म प्राप्ति करन का छत्र विग गतिन क लिए छिल्लरक पवन से आश्रय मणाना प्राप्ति कथानक मिति



का प्रयोग पुनः किया गया है। जादू की योगी, लिंगप्रतिष्ठा, तथा पश्चिमे भी अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं। जना का अधिकांश भाग अलौकिक शक्तियों का सम्बन्ध प्रतीत होता है। गुणधर्मा की कथा में गिद्धन के दुम्मे का वर्णन आया है जिसके पयमान से लोहा मोला बन जाता है। विजयचक्र प्रतिमा की तपस्वी की सेवाकर सम्मन्तगामी, धर्मरक्षण विद्याएँ प्राप्त करना है। गुटिका को मूँह में रखकर मन्त्रों का सम्पदमाला बन जाता, आराधनागामी हस्त के रूप में व्यक्तियों का महावन का वस्त्र चुनना, महावन का उस हाथ की परस्पर भूमि जाना और लटारने हुए मूँहों की आराधना द्वारा विष्णुसोपान है। मित्र गुटिका को आचमन में रमि कर लगाने से स्त्री का पुत्र बन जाता, वटवृक्ष पर व्यक्तियों का परस्पर वार्तालाप, महावन के द्वारा उनको मुनता और समझना, वटवृक्ष का आराधना में उठ जाता और गन्तव्य स्थान पर कम जाना, 'हूँ' की आवाज के साथ ही उगी वृक्षवट का पत्रें लिये स्थान पर उठकर कम जाना, भीमकाय हृष्टा रूप या लक्ष्मीपुत्र हाथ उगलना, मलया का शिव पनीला में पवित्र एवं निरुपराध मित्र होना, मृतक का उठना, उठ-उठ कर गिरना, उठना रोमांचक भी है और विष्णुधारी भी। ये घटनाएँ अलौकिक स्वरूप में प्रसृत हैं। इनमें पाठक एक काल्पनिक दुनिया में पहुँच जाता है। जिसमें उसकी विज्ञानावृत्ति मनुष्य होती रहती है और अधिना-धिका नदीय भी। यहाँ पर कवि उन अलौकिक लोचकितानों में अधिका प्रभावित जान पड़ता है जो मानवमन्यता के आरम्भ में लेकर अब तक किसी न किसी रूप में कम या अधिका मात्रा में समाज में प्रसिद्ध होते रहे हैं।

इसमें मलयमुन्दरी और महावन के उद्घाटन चरित्रों में अधिका विद्या गया है। लक्ष्य होने हुए भी क्या, आध्या-यिका, धर्मरक्षा के लक्ष्य में भी प्रभावित है। चरित्रावधियों में गार्हस्थि तारों का निदर्शन कराया जाता है। महावन और मलया विष्ट में विष्ट पश्चिमेयों में जुम्मे है। मणानित यानता प्राप्त करने है। जीवन में जितनी कष्ट परम्परा हो सकती है इन दोनों में नहीं है। उनका माहम और शीत नदा उल्लस रहा है। चरित्रावधियों की शरीर जीवन कति की शरीर होती है जिसमें माना-पिता एवं दया का वर्णन रहता है। भवान्तर का वर्णन भी किया जाता है। इनमें कवि का ध्यान नायक-नायिका के अलौकिक अद्भुत शक्तित्व को प्रभावित रूप में प्रस्तुत करने की ओर प्रिय रहता है और वस्तुवर्णन एवं कृतवर्णन की विद्या में कम। यहाँ प्रेम, वीर्यता, वैराग्य भावना का समन्वय हुआ है। वह क्या सात्विक प्रेम की उत्कृष्ट व्यञ्जना है। आदि में अन्त तक वह प्रेमपात्र अधिच्छिन्न रूप में प्रकाशित हुई है। बीच-बीच में प्रसंगवश वीरभावता का अभिव्यक्त होने का अवसर प्राप्त हो गया है। अवमान शाल रूप में होता है। महावाज वीरवदन, चम्पक माना, महावन, मलया आदि सभी वैराग्य धारण कर देने हैं। इनमें कर्म-रूप की प्रदानता दिखाई गई है। जीवन का शाश्वत सत्य प्रती है। कथानक स्थानवृत्त और अनुत्पाद्य है। वह चिन्तित और परस्पर भी है प्रत्येक नग्न का नाम घटना के आधार पर है। इनके नग्नों में विपुल और व्यापक कथानक समाहित हुआ है। प्रासंगिक कथाओं का प्रवाह मूल तथा की ओर है, जिनमें उसे सम्युष्टि प्राप्त होती है।

महाकाव्य का इसका प्रधानतत्त्व नायक होना है। वह नद्वैतान्तर, मयमी, धर्मावान्, सम्मी, हटनिष्करी, विनयी और धीमेदान है। वह धार्मिक मनोवृत्ति का मत्प्रिय प्रतापी राजकुमार है। नयम, मद्राचार, एषपन्नीवन, निरुभक्ति का वह साक्षात् स्वरूप है। उनका शीर्ष अर्पितहृत्तति है। भय, कायरता निष्कियता उसके जीवन में नहीं है। वडे में वडे मन्त्र को भेजने के लिए गहनतम विष्ट परिस्थिति की दुर्दन्तियों में माहम साथ वह प्रवेगोन्त रहता है। वह अयगजेय पोद्धा है। वह स्वकीया में अनुक्त अनुपम पति है। अलौकिक शक्तियों का शाप-वर्दान उसे उपलब्ध है। वह कर्मज्ञ के मद्रावहार कर्मव्यस्तित्व के रूप में अवतर्गित हुआ है। उनका महान् व्यक्तित्व जन्मजीवन की भाव-नाओं का आश्रयस्थल है। वह देव और मन्त्रुति का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। उनका मदन स्वरूप समाज के लिए शिक्षाकर है। उनका उत्तरावस्था का जीवन महान् त्यागी, तपस्वी का जीवन है। जो अपने उदीयन वर्चस्व में गुणगति-सामर्थ्य बन गया है।

मलयामुन्दरी इन रान की नायिका है जो पतिप्राणा, मयमी और पतिव्रता है। अपना सर्वस्व गँवा कर भी वह अपने शीत की रक्षा करती है। उन जैसा कष्टमत्तप जीवन अव्यक्त दुर्लभ है। ज्यों-ज्यों वह अग्निपरीक्षा में तपाई

गई उसका चरित्र स्वर्ण व मयान अधिराधिव नित्य बनना गया। विवाह से पूर उम धपन पिता का काप भाजा बनना पया। भाग्य की निम्बना म विवाह हया वसुधैव कुटुम्बकम् म उम बननिनी समझ गया। बौद्धावस्था म गहनित्पासन हुया। न म उमने गीत व धनेर गन जग गय। गीतरसाय उस धपनी एनोता सतान स भी विमुक्त हुना पया। गरीर स रत्ननिष्पासा स्वीकार करना पया। मादिक केन्नाए सन्तोषी। वन्धु राजा के अद्याचार से बचने के लिए वह कप भया भी कर गयो है। मयया म भारतीय मनी की चन्चल गुनरित है। मन बचन वम स भयमवान्तरा म उसे धपने एक ही पनि का ध्यान इष्ट है। परिस्थितिया की ह गतमकता ने उमक चरित को भूतमय पर प्रनिष्ठित कर दिया है। उमका मत्तरा साधवी का चारित्र्य ता और भी निमन ह। व मया स भी पवित्र और परोपकारिणी है। उमका चरित्र गीतमहर्षि का प्ररक है — मविषय गीतवशा वन जाय।

वीरधवन प्रजापालक महान राजा है। उसकी सम्पकमाला अविद्यमुदरी गुणवनीपटरानी है। वनवनी का चरित्र मल मनावनि का प्रतीक है। मयया को बष्ट पढ़ना का उसका मन्त्र था कि मणिमाला के मून व समान प्रज्ज और अभिनयन है। वह महाबाय का स्थिर पाव है जो भिट सतता है व स्वभाव को गही छोड सक्ता। स्वभावो दुरतिक्रम। गुरवाय महावन का रिता वीर राजा है। उमकी स्त्री वन्मावती मदाव वी माता है। न मीपुज हार व गुम हो जाने पर वह गोवमल्लत इन्दी है वीर हार न मिनन पर ध्वे नि मरण प्रण कर गयो है। उमके वन बन्नि प्रण ने मन्मथन को लो सकट म गन हा लिया पर क्यावक का पनिसर स दया लिया। गौहपुरा भयन साह निह वीर वन्धु रूपिगामु सायबाह वनसार सन्ताने दुन पर साय हो परलामिनापी है। य सभी जायन व विमित्र पाया का प्रतिमिषिष करते वान हैं। वनीचित्र पाया म उपकारिणी वनवरी धयकारिणी स्थली और सदाविता पर सहृया विद्याधरी देवी है। वन्धु वनलो परमवीतराम भव भवानरा के पाता वन्मानी के रूप म चित्रित हुन हैं।

रस का बटि से यह राम अत्यन्त समृद्ध है। भावा की रसधम परिणति हूय वीर सहृयसवेच वन पडी है। इमका प्रधानरस गृहार वीर गौरवता म हास्य अदभुत वीर भवानक वीमस री कर्ण सया वगन का उनेव निया जा सक्ता है। यह गानरमयवनापी महाराज है। ववानक की विविधता वीर व्यापकता के कारण प्राय सम्भू म्यावी भाव रमना तक पहुच गये हैं। गृहार रस की व्यापकता महत्वपूर्ण हैं। गृहार व दाता वनी मयोग सया विप्रलम्भ के साथ-साथ वसुधैव कुटुम्बकम् विषय रति भाव का वनप्रमथ भी जाया है। नादवारणक गृहारत्नाभास का प्रकरण भा प्रमथ हो गया है। यहाँ सयोगगृहारी की सपना विप्रलम्भगृहार को सयिक धवका प्राप्त हुया है। उमने मादिक स्थली की जिन कीर्ण म अनुभूतिगम्य बनाया गया है वह प्रगमनीय है। मयया व हृय म महावन के लिए अङ्कुरित प्रथम प्रम का प्रसंग कहा ही सुन्दर वन पडा है।

व्यामोहित कुमरी म देखो वच भनव।

पधवाए वाएँ करो बीषाणो सवध॥

राजकुमारी का मुख मन सदेव आओलन पर पग मारने लगता ह। यहाँ सदेहासका व प्रवार अभिव्यक्त हुया है —

कुमरी मनमाँ जितवे ए करण देवकमार।

के विद्याधर राजवी के रसिपति धनदार॥

कुमारी का चुपमन मन्त्रन व अनुभम गीत्य का प्रगा साक्षात्कार करती है। धरण धनोवपन व ममान वनाम धरण दणगा वन नल वजरन जपायुग मुष्टिग्राह कटिप्रण मन्मीर नाधि सुन्दर जिननी मुख विगान मन्मथ दीध रमान मन्त्र का धारा से पान वरनी है स्त्री इवभावोचिन आनन्धोपार प्रक करती ह —

धय ज रद्री क्षालि स वनस्थल सुविशाल रे॥

केरुने बन्दे आगले मुजबब दीध रताल रे॥





मलया का अनुरक्त मन महावल के रूप-रत्नाकर में गहरा पैठ जाता है। वह प्रेम की शृंगला में आवद्ध है — 'चित्रपटे जोई रही सजडि प्रेम-जजीर रे।'

कुमार महावल भी वातायनम्बा कुमारी को देवता है। लावण्य की अनुपम राशि कुमारी उस रूपावाम स्वर्ग-अम्बरा सी प्रतीत होती है। वह सर्वप्रथम यही मोचता है कि यह राजपुत्री अविवाहित है अथवा नहीं? राजकुमारी भी उसी क्षण यही मोचती है कि यह गुणनिधान कुमार किसका पुत्र है? दोनों के विचार तत्कालीन सामाजिक प्रथा में प्रभावित हैं। राजकुमार को विवाहित राजकुमारी अभीष्ट नहीं थी जबकि मलया को विवाहित राजकुमार स्वीकृत था। स्नेहमयित नयनों से निरन्तर निरन्तर कुमार मलया ने महावल का चित्त चुरा ही लिया। कुमार उसने मिलने के लिए व्यग्र हो उठता है। समागम में पूर्ण प्रत्यक्षदर्शन से हृदय में उत्पन्न यह मनोविकार पूर्वानुगम की कोटि में आता है। विष्वक्ताय के मतानुसार इसका मजिष्ठाराग है यह घोषित भी है और स्थायी भी। मलया महावल से प्रथम ही प्रेमपाश में बद्ध हो चुकी थी। इसलिये कवि ने उसे प्रेमानुर बनाकर उसकी प्रियमिलन-आतुंग्ना को इस प्रकार अभिव्यक्ति किया है—

“चतुरंगी चन्द्रानना प्रेमातुर सुकुमाल रे ॥

सुखमुग्धा मलया भोजपत्र पर दो पत्र लिखकर वह भोजपत्र तथा स्वकीय प्रेमप्रवण मन दोनों एक साथ ही महावल को समर्पित कर देती है। प्रेमपानी पाते ही महावल के नास्तिक अनुभाव अत्यन्त रजक बन पड़े हैं। पत्र पाकर वह रोमांचित हो उठता है, हर्ष की नीमा नहीं रहती। राजकुमारी ऊपर वातायन में और राजकुमार ठीक उनके नीचे। प्रेम पत्र पढ़ने ही राजकुमार ने रसपूरित, प्रेमविह्वल आकुल नेत्र ऊपर उठाये राजकुमारी के पिपासु नेत्र पहले से ही तडप रहे थे। परस्पर नेत्र सयोग में आनन्द लहर उठा। एकरस युगल नेत्र अब अनग हो ही नहीं रहे थे। इस प्रसंग में कविने अग्रस्तुत वर्णन के बजाय से जो कौशल उपस्थापित किया है वह अत्यन्त मनोहारी है —

“मलयमुन्दरी गुणदरी, जोधे कुंवर नरेन्द्र।

कुमारी पण जोई रही जिम ध्यानमग्न योगीन्द्र।

विह्वला नयन मिली गया ** पहली नयन करन्त ॥

अपरिचितों को परस्पर ऐसे 'मिला देने वाले जहाँ नयन भी नहीं दीप्त होती, नेत्रों को दुर्लभ मयोजन कहना अधिक उपयुक्त होगा। उसी समय राजकुमार को बुलाने के लिए दूत आता है। उसके साथ जाता हुआ महावल वातायनम्बा सुग्रीवा मलया को पुन पुन देवता है। उसका मन मलया के पाम ही रह जाता है। पूर्वराग विप्रलम्भ का यह आह्लादक प्रसंग देखने ही बनता है। प्रस्तुत प्रसंग में शृंगार का स्यागिभाव, विभाव, अनुभाव, सचारिभाव के संयोग से सचेतनों के लिए शृंगार रस रूप में निष्पन्न हो गया है। यहाँ नायक-नायिका दोनों के परस्पर आश्रय और उद्दीपन होने से प्रेम की एकांगिता समाप्त हो गई है और उभयतः प्रेमात्सुक्य के कारण पाठक का रसिक हृदय आनन्दाम्बुध में अवगाहन करने लगता है। यहाँ महावल के प्रति मलया का आर्कषण मोहान्दान्वित नही अपितु 'गुणा पूजास्थानम्' की चरितार्थता है। कवि ने परस्परित नायिका का नखशिप वर्णन भी प्रस्तुत किया है। महावल महादवी में भयकर अजगर के मुख से मलया की रक्षा करता है। उस समय सोनादासी के माध्यम से कवि ने इस प्रकार का वर्णन प्रस्तुत किया है—

“चन्द्रमुखी मृगलोपणी पिकवयणी रतिरूप।

हसगमणि कृश हरिकटी लावण्य सुगुण अनूप ॥

गागर में नागर भरने वाला अतिसक्षिप्त नायिकारूप वर्णन परम्परित नायिकानवशित वर्णन का नफल निदर्शन है।

कवि ने वियोगावसानिक संयोग शृंगार के भर्म को भी पहिचाना है। यह मन की वह स्थितिविशेष होती है जिसमें वियोग की दारुण ज्वाला की ऊष्मा सर्वथा शान्त नहीं हो जाती और प्रियमिलन का अपार आत्सुक्य भी विना

नाचे नहीं मानता । विपान के अस्तगत्य। मूढविषय को बलाघर की प्रथम विरणा के हास का आभास देने का या भाव इस मन्त्र में होता है । फलस्वरूप प्रिय का देवत्व ही श्रौमू की भनी नग जानी है । मना रुध जाता है । वाणी स्तनित होने लगती है । भावा का मागर उमड़न लगता है और पात्र की मोन अनुभूति धतन मुग्ध अभिव्यक्तिया का वाणी माग सती है । प्रस्तुत गम में उस अनेक स्थान हैं जहाँ विधोपावसानि सयोग का वणन मिलता है ।

सयोग शृंगार की अपेक्षा विप्रलम्भ में प्रभावापावना अधिक रहती है । हृदय को घनेरानेव दगाद्या का उन्धान इसी में सम्भव होता है । अधिक से अधिक सचारी यावो का स्फुरणस्थल भी यही है । यहाँ विप्रलम्भ का माँगपाग परिपात्र उपनय होता है । विप्रलम्भ के चार अंगों में से प्रतापुसग प्रवास और वरण विप्रलम्भ आलोच्य प्रथम में मिलते हैं । कथन मानविप्रलम्भ का अभाव = । सयोग का उणन भी मगन बन पता है ।

महाजन मनवा के सहज में गप्रयाम पञ्चता = । प्रथमी से भितर वह गमनोचन होता है । मय्या के श्रौमू उग रोत गन है । प्रियतम के बिना उमक प्राण नहीं रह सकेते । यति व जाना ही चाहता है । मय्या को जानाजनि हवर जा सक्ता है । माया नितान्त विवग तथा निरुपाय है । वह गन के बिना मठनी की ही जावगी । गहने हैं मान को चने नहीं रहना । मय्या भी पुन पुन प्रियतम को गमन में रोवती है । प्रम विद्वज मय्याहार के ध्याज स कुमार के गले में जयमान डान देती है । इस प्रकार उमक अपना निरव सम्बध स्थापित कर लेती है । वह अपनी दाम्पत्यप्रीति बनाकर बिर सत्चरी का पान की अभिरुचिणी = । वह सग श्रुत गन सरती है वैचन प्रियविरह नहा मग मक्ती ।

कुमार के चल जाने पर वह उम भूत बन पानी = । क्या अभी तभी धन को विस्मृत कर गवता है ? गम प्रमग में सत्राग शृंगार का मरन वगन उपनय होता है । मरी श्रुति से यह राम एक रागन रचना है । मम सम्बध में यहा निरुपाय प्रिय विद्या गया है । तेने प्रय रनों का इसम मूण परिपात्र = मा है ।

प्रमृत राम में वरणादर का मूण परिपात्र इमा है । मम राग में गोर रवायी भाव इष्टाग में उन्मुद होता है अनित्य प्राप्ति से मदा । वीरधवलकावमना प्रमग और मय्यावधालेप्रमग ही प्रमुव स्थान हैं जहाँ गोर भाव अत्यत परिपुष्टता की प्राप्ति हुमा है । तेने मन्त्र में मह्यय सामाजिक की धावा में अथ स्वत छनछना उठते हैं । अमरनाचा की मृदुता से तेने गदर जाने वाली गली के अनुभावा की गयनता और स्वरा दानीय है—

बह धु सिर ताड़ती फेटी वैपवती आधो नपतटी ।
श्रीमू पाराई मुख धोसो नयने बधए बहे इस रती ॥

दासी के मुख में प्राणप्रिया चम्पकमला की मृदुता का दृश्य सभावार मुतवर राजा वीरधवल का गोक गग प्रसार फूट पड़ता है—

हा हा प्राणपियारी नारी बहिय बने किय पापी मारी ।
मुख पावे किय भाहर सरस तम बिल कए मम मू हित धरते ॥

यही दृश्य हमराग आशान गवजिता धानि गवारी भावा की अहमहमिका रन अथवात धानि आभावा की मगन उपस्थिति अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है ।

गोरागन राजा वीरधवल मुच्छित हो सिर पड़ता है । बनि में हमरा वगन मम प्रसार दिया है—

मच्छीगत राजा मली सामसि बासो बात
बदा जेम देखो पडति भूषति मग पात ।

राजा का गोर और भी पनीभूत हो जाता है । रोता है विलसता है उपरी धानि प्रिया को ढूँढने है । उमक न मिलने पर रोती है । वह बनी मस्तक पीटता है वो बनी छाती कूटता है । उसके दीप निरन्तर हृदय में दुःख





न समाने का सकेत करने है । पृथ्वी पर लोट रहा है । बिगरे बाल उठ रहे हैं । नाक आँगों का पानी मुँह के ऊपर से बह रहा है । वह कभी भाग्य को दोष देना है तो कभी निर्मोही पत्नी पर दोषारोपण करता है—

“नयणो बरसे नीर, मस्तक फूटे, फीटे हिमडू रे हाथि बिलूरे शरीर’

वह अनेक बार मुच्छिन्न होता है, प्रकृतिमय होता है, विलाप की झी लगा देना है । अलकृन् महावाक्य में इतना विस्मृत करुणकदन किमी नायक का नहीं मिलता है ।

करण का दूसरा प्रसंग मलया के बधादेश में सम्पन्न है । निर्दोष मलया स्वयं भी रोती है । उसमें मर्यान्तक-वेदना है । माना चम्पकमाला का शोक भी कम प्रभावक नहीं है । उस निर्दोष बधादेश ने प्रजा के नेत्र मज्जन कर दिए । हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का करुण रस वदाचित् प्रथम प्रसंग ही है । बध्यस्थान की ओर ने जानी हुई का विलाप हृदयद्रावक है ।

“राजनरी घेटी थकी रे, चालन्तो पद चारि ।

पउती पउती उठती रे चलती राजकुमारि ।

माता चम्पकमाला का विलाप नग्नमोमा को पहुँचा हुआ है । वह एक बार पुत्री को हृदय में लगाना चाहती है । मातृस्नेह स्वकरपालित पुत्री को कैसे विस्मृत कर सकता है । माना का विज्ञान हृदय शोचनागर-तट की अभिभूत कर देता है । माना का अनुभाव छानी छूटना-गिरना-विलगना, स्पष्ट परिलक्षित होता है । इसमें कही ऊहापोह का चक्कर नहीं है । जो कुछ है वह हादिक कसा है । भावों का उनाग-चडाव, अनुभावों के वैविध्य और संचारियों के अत्यन्त मन्त्रिय होने के कारण इस प्रकार का करुणरस हिन्दी साहित्य में अभावधि उपपन्न नहीं है । अलकागे की लड़ी की लड़ी स्वतः प्रतिष्ठित हो गई है ।

भयानक रस का परिपाक दो प्रसंगों में सम्पन्न हुआ है । प्रथम प्रसंग कुशवर्धनपुर पर राक्षस के आक्रमण से सम्बद्ध है । यहाँ भय नामक स्थायी भाव का आश्रय प्रजावर्ग है, राक्षस आलम्बन, उनकी विकट चेष्टाएँ उद्दीपन हैं । घास, शका, ग्लानि, मोह संचारी भाव हैं । अनुभावों की छटा भी द्रष्टव्य है—

जीव लेइ आप आपणा मारण नय सह ना ठारे ।

ऋद्धि सिद्धि सह मूक गया हरि हिरणा जिनि नाठा रे ।

यहाँ अलकार का भी छटातिशय है । शून्याटवी में संप्राप्त रानी चम्पकमाला की आपबीती कहानी किन्ती मार्मिक है । भयावह वातावरण की सर्जना अनूठी है । डरना, वापना, इधर-उधर बचाव के लिये देखना अनुभावों के साथ घास मोह आदि संचारियों का स्फुरण भी आकर्षक है ।

सुनो अटवी माँहि डरहूँ एकली ।

जूय भ्रष्ट चलचित हुवे जिम हिरणली ॥

यूयभ्रष्ट हरिणी में रानी का मृगाक्षी होना व्यंग्य है । हिरणली से अवस्थामौकुमार्य । पात्र की कोमलता ने कोमलकान्त पदावली को भयानकरस-प्रसंग में दोष होने में बचा लिया है ।

इसमें अलौकिक तत्वों की भरमार होने से अद्भुत रस का परिवेश प्राप्त हो गया है । कही हाथ उडते हैं, शव उठते हैं, वन्तर बोलता है, वृक्ष के वृक्ष हवाई यात्रा करते हैं, दिव्यपरीक्षण, सर्प के द्वारा हार उगलना, भारड पक्षी के द्वारा मलया को उठाकर आकाश में उड़ा ले जाना, मकरपृष्ठ पर बैठकर समुद्रक्षरण अद्भुत रस से सम्बद्ध है । वीरव्रत और चम्पा के प्रसंग में एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

दाँत सूँ दात घणी पीसन्ती दीठो सबमन खम्योरे
इक कहते उम्यो आकाशे डूउ लोक तमासो रे

मनया क स्वयम्बर प्रसंग म महावन वीरधवन गुरगान व मुद्रावगर धर वीर रम वा परिपाव प्राप्त होता है। वीरा का उल्गाह ग्गनीय है। वरवार घमासान भिडल हाथा धो। पगनिया की टकरा वूलि म गूय का आवत हो जाना उपवर्णित है।

धौधपूण वचनोच्चारण न्यायि म गौ रम का ग्गान होता है। विषयानुरूप भाषा न अपनी परिधान स्वन ने दिया है।

वार रम क साथ ही साथ गौ रम का छटा अणुव है—

मड सहु मडम उठिया कडकड मारिया हाथ हथियार भाले
एना आसरो किसो भय मत करो एते बाँधास्या एक भाते।

आदि प्रसंग ग्गनीय हैं।

वीरम या ध्रुवम यथाम्मान प्राप्त हुआ है। रक्त वी मरी का वट्ठा योगिनिया का सप्पर भर भर कर रक्तपान आतन्धिया का विचारण न्यायि प्रसंगो म वीरम का परिपाव निपन्न हुआ है—

सोल गोला पड चक्रदिसि घडहड बहे रगत परनाल बरमानू।
जिमा घला नहिया सरण नूर चाला

कवि न मनया क गगन का चित्रण करने म यत्नर रम वा पुरस्कृत दिया है। आश्रय वीरधवन भीर सम्पन्नमाना है। आलम्बन मनया उद्दीपन उसकी वानमुनम चेटाण हैं। इय सचारा भाव स वातावरण मयुरतम बन पग है।

पग आले पूजतारे रजिवाता वे बाल।
तिम तिम हुरसे सहना रे माता पिता मन साहि
रमक भमक पाय सोवती रे घुम्परिया धमकाय।
मानावरण बिराजिया रे जने देवकमार।

मनयास्वयम्बरप्रसंग म एक म्भन पर हास्य की उपस्थिति भा प्राप्त होती है। गोइराय वज्रमार पनुय की उठान का अगवध प्रयास करता है। वह उगव साथ ही जमीन पर गिर पडता है। ग्गारा क हाथ स वातावरण मुजि हो जाता है। यह बाध्य आलम्बनपवमायी है। घमगुरमा की ग्गारा म गान्त रम का प्रसंग आया है। गहो जग नववन्ता की गहो म उस भक्तिरम वा स्वय वटा जा करता है। वम रम इसकी दृष्टि से पूण समुद्र है।

महान्याय म कवि यत्नप्राधान्य को मन्त्र रेतार है। कवि वचना तथा विचार का विचारायसर वणन रमकना म गौ प्राप्त होता है। वणन जिनना है गगत घोर मनोहर हाथा काय उनना ही मुन्तर घोर रोबर होगा। वणन की सीमा अत्यन्त 'यापर' हाना है। मानव घोर मानवतर समस्त विशा—व्यापार ममरा धार होता है। मान वाग्नि न नगरमाना मुद्रा भागैट धन धन धन वंध्या गूयचन्द्रमा धाति वणन का महावाध्य का धन माता है। महानवि जिनहूष वणनपग हैं। पानो की प्राणप्रतिष्ठा घोर व्यक्तिव धवन म उना वणन वमन अत्यन्त सूक्ष्म है। राना सम्पन्नता वा वणन उमर गति प्रम म्भय गोत्र्य धीन उपात तत्र को उचिति करता है।

सम्पन्नमाला रागणी रे अमिनव सम्पन्नमाल।
सीठीवाणी बीबिसीरे चडबदन मुकमाल॥

वननवनी क निण म प्रसार वणन आया है—

बलि बीजी नपरासनी रे वनवचती आभयान।
रमा से य हारवी रे सीहे सोवनधान—





दोनों ही गनियों के आपल सम्प जो कवि ने इस प्रसंग में स्पष्ट कर दिया है। राज की नायिका मन्वा-मुन्दरी के जीवन का वर्णन अत्यन्त मनोहारी है। परम्परागत उपमान धाराप्रवाह में आते हैं। भावों के उन्नाम में भाषा का लाम्ब्य बिरक्तों लगता है। जड़ों की ध्वनि नायिका के हाव, हेला की व्यञ्जित कम्पी जाती है। नये उपमानों का संयोजन भी कलापूर्ण है। वर्णन में स्वयमागत अन्तर्गत चार चाद लगा देते हैं।

हिवे ऊमरी यौवन बढ़ी उत्तस्यो अग अनग ।

स्निग्ध चपल हरिणी हृशी मुखराका पतिसंग ॥

उहेनेए धरती हुस्ये लोक बहे ते धन्य ।

शृंगार का प्रसंग हो या शृंगारोत्तर, कवि का वर्णन सर्वत्र प्रभावशाली और आश्चर्यजनक है। उसमें बिम्ब उपस्थित करने की अद्भुत शक्ति है। दिव्य परीक्षा के लिए मगाये गये नरों का वर्णन उस प्रकार किया गया है—

“मोरी काया विपनरूपो जो कज्जन भाभा जात ।

फू फूकार करे घला जो घमेली परे ते साँत ॥

इसी प्रसंग में रूपपरिवर्तन का वर्णन भी द्रष्टव्य है—

इसी प्रकार राजा की निरकुशता, निर्दोष कन्या पर अत्याचारजनित शोक, युद्धवर्णन, नगर, पुत्रमहत्त्व, धीन उपकार, उपवन, कालर, नदी, वर्षा अत्युत्कर्षण भी समृद्ध बन पड़ा है। कवि के व्यापारवर्णन में जड़जगत् की स्वाभाविकता और चेतनजगत् की मनोवैज्ञानिकता कही भी बिम्बु नहीं हुई है।

भारतीय समाजव्यवस्था में नीति और धर्म का अभिन्न महत्त्व है। इसका उत्तम वैदिक वाङ्मय है। अनेकानेक धाराएँ वहीं ने विविध रूपों में अज्ञातपि प्रवृत्तमान दृष्टिगोचर हो रही हैं। विधि और निषेध ने धूल्य जीवन की कल्पना जैसे भारतीय प्रजा में है ही नहीं। वहाँ वर्णीय का ग्रहण और अवर्णीय का त्याग प्रतिपादित किया गया है। विचारगुणमय माहित्य के समान भावगुणमय माहित्य भी विद्येयोग्य ही रहा है। जितहर्ष मन्त्रोक्ति भाषु थे। उनकी नरन्वनी समाज की मगनाया में निग्न थी। उन्होंने समष्टि को स्वस्थ एवं मनुलिन पथ पर अग्रसर करने तथा व्यष्टि को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की उचित रीति में शांति करने के लिए मामाजिक, व्यावहारिक, आचारिक, धार्मिक, राजनीतिक विधिनियम का प्रदान किया। कवि का वाक्य जनता व्यापक और विविध है कि उनमें धर्म, आचार, ईश्वर, दया, परोपकार, अहिंसा, व्यवहार, कुल, प्रतिवेशी, मूर्खता, जिवा आदि विषयों पर प्रसंग प्राप्त उपयुक्त चर्चाएँ हुई हैं।

कवि के नीतिप्रसंग नवानुभूति तथा परम्परागुणानुभूति के दृढ़ आधार पर आधारित होने के कारण न काव्यनिक हैं और न अव्यवहार्य। इनके नीतिकार्य में उपदेश, मुक्ति और अन्योक्ति समीचीन मिलती हैं। उपदेश-शैली ने कवि ने उपदेश की बातें नीची भाषा में बिना वाग्वैदग्ध्य के कही हैं। नूतिनशैली ने वह अपने श्रेष्ठतम स्वरूप में प्रकट हुआ है। अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, उदाहरण, विशेषोक्ति, कारणमाला आदि के कारण अभिव्यक्ति मनोहर और प्रभावशाली हो गई है। अन्योक्तिशैली में अप्रसन्न के द्वारा सदृश प्रसन्न की प्रतीति कराई गई है। उपदेशशैली में लोभी की निन्दा इस प्रकार की गई है—

“लोभी प्रीति गणें नहीं रे न गिणें सगण नैह रे

मात पिता ने लोभियो रे लाल तुरत दिखावे छेह रे ।

नूतिनशैली में कवि का मन विशेष रमा है। वाग्वैदग्ध्य, अलंकारिता स्वतः उभर आये हैं। भाव कल्पनावुद्धि और अलंकारों का कटापकर्षण प्रायः नहीं है। एक धर्म-श्रुतना के साथ प्रकृति मूर्त अप्रकृति मूल मजीठ का वर्णन करते हुए कवि निम्नता है।

“कूट्या विन रस न विदिये मूरख मूल मजीठ”

यहाँ धर्म का उपादान प्रकृत वस्तु के लिए हुआ है। प्रसंगवश उसने अप्रकृत पदार्थ भी प्रकाशित हो गये हैं। यहाँ दोषक अलंकार की दोषिता स्पष्टणीय है। कपाम कदर्थना, तरवर ताप, और ईश्वर, उत्पीडन सहकर भी परोपकारवृत्ति

नहो त्यागन ॥ कवि व गंगा म—

सदक वाते मोटे रे सोड पीजे जाते

कात सहे बदधना रे ढाँके अय कपात ।

कवि पुण्य को ऋद्धि मिद्ध वा दाता समभना है । मान गुन या भी पुण्य के फल हैं । सगहिणी तथा पुन भा पुण्यप्रभाव से ही प्राप्त होते हैं—

पुण्यवी ऋद्धिसिद्धि सहि ई पुण्यवी बहुमान रे

पुण्यवी गुणवत नारी पुण्यवी सतान रे ॥

कवि का नीतिपक्ष अथवा आपक और समृद्ध है । वह समाज को समाज वा अनुकरण कराने के लिए अपनी कथा का वाचक विस्तार करता है । उसकी नीति में स्पष्टता सगति और मायापायता है । वह वहीं पर प्रान्त तथा अनु भवनपु प्रतीत नहीं होता ।

कवि जिनहृदय ममस्वभाव का बहुत पारंगत था । जीवन के व्यापक आयाम में उसे इन्होंने अन्तर्ज्ञान के सवर्णनीय प्रसंग चुन लिए जिनसे सद्बुद्ध सामाजिकता का पूरा स्वरूपान्न प्राप्त होता है । कतिपय ममस्वभाव निम्ननिमित्त हैं—निर्दोष मनसा को मृत्युमण्डल विधान मनसा के निम्नचम्पनगता तथा मागगिरि का करण विनाश निवृत्तानप्रसंग परियन्त मनसा के पुनर्जन पर भाग्य की विद्वम्बता । कवि ने अपने कथ्य का अर्थ उक्त में प्रस्तुत किया है । वही तत्परिवर्तिन परमपराधुद्ध सामाज्य उपमाना की उपरिष्ठत राखकता बताने वाला है ।

प्रहृति राम की भाषा गुजराला से प्रभावित राजस्थानी है । उसमें प्रवाह प्राचुर्यता तथा अभिव्यक्ति की पूरा क्षमता है । स्थान स्थान पर तादात्म्य और मुग्धता का सकल प्रयोग किया गया है—

साहसिया सिर ध्वज । अग साय नह लाओ ।

जाए बिस्वा बीस । आग तला दाया भली रे

आए तलो उपचार । उतावला सो थावला ।

राजा कहे सो याव । भह माया दासा दलौ इत्यादि ।

मनयमुन्दरी विक्रमनीय मन्त्राचार्य न हार साहित्यिक महाचार्य की बोली में छाता है । यह निमित्त कवि शरा प्रणीत है । इसका रचनानिधि और पाठनिधि उपर्युक्त हैं । इसमें कला और साना तो अनेक हैं लेकिन उनमें से परम्परा दृष्टिगोचर नहीं होती । मन्त्राचार्य की मनसा का भाव का स्थायत्व भी इसमें है पर उनका बड़ा विवरण नहीं है । प्रतिपाद्य की परम्परा का भाव अभाव है । यत्र-तत्र उपर्यात्मक बर्णन उपर्युक्त होता है पर वह प्रकरणप्राप्त और अनित्य है । उसमें कथा के विकास में गतिरापन नहीं आता । कथ में वहीं पर स्तोत्र महात्म्य प्रगल्भी नहीं मिलती । मन्त्राचार्य की बात अनेक मित्र है । काव स्थान और मन्त्राचार्य का अतिगोचरित स वाक्य नहीं किया गया है । जो कुछ वर्णन है वह पद्यार्थ और सगल प्रभाव होता है । उस अर्थ की क्षमता योग्यिक क्षमता नहीं है । अतीविक्रम अतिप्राप्त गतिवाया पर विचारता साहित्यिक वाच्यपरम्परा सिद्ध गुटिकाप्रभाव बढवना का धारणा में उड़ता मन्त्रमिद्धि से घबरा उठता उड़ता गायकान्तिन होता भुवप्रन व्यन्ता का अद्भुत क्रियाकलाप कथात्मकता आति तथा का कारण अनेक क्षमता राखक क्षमता ही है जिसकी एक सम्बन्ध साहित्यिक परम्परा हम उपर्युक्त होती है ।

यह एक महत्त्वपूर्ण चरित्रकथा है । धर्मनिरपेक्ष आचरित जीवन में धर्म काय मांग की प्राप्ति हमारी है । सामाजिक साम धारण और भाषा का भभासना में अडिग रहने वाला मध्यमधायक मानव ही जीवन का परम सत्य मान प्राप्त कर सकता है । नीचे मानविक परिवर्तन का जोषा की अपूर्व निधि है । वर्गाधिकारिता का भाव में भावम न रहकर एक अन्तर गगार का जोषा है । सत्यता शरा मन्त्राचार्य मुन बनाया जीवन का माधवता है । कथाना की व्यापकता महत्त्वपूर्ण की अनानुप गतिनीता महत्त्वपूर्ण अन्तर्भाव की मन्त्रना करते हैं । स्थानीय पुरातनवायन प्रस्तुत राग का निम्नमात्र ही पद्य में प्रस्तुत किया गया है ।



धर्मशमभ्युदय : एक अध्ययन

श्री पन्नालाल जी

साहित्याचार्य, नागर



धर्मशमभ्युदय, महाकाव्य के नवनों में पुनः एक उच्चमोडि का काव्य है। तीनललात पदावली और नवीन-नवीन अर्थ उस महाकाव्य की सुषमा बढ़ा रहे हैं। इस काव्य का रसि, उन्पत्ता के अन्तर्गत में उन्नत करने में सिद्धहस्त है तो रस के अभाव नागर में दुबड़ी लगाने में भी प्रसिद्ध निपुण है। उनके प्रत्येक श्लोक में भाव का वह अनुपम माधुर्य प्रकट हो रहा है कि जिसे देव वाक्य-मर्मज्ञ का हृदय बाँगी उछलने लगता है। इस्वीन ना के इस महाकाव्य में नगर नमुद्र पर्यंत अतु पुष्पावनय जलगीडा चन्द्रोदय तथा मनुमान के मनोहर वान के माधुर्य जैनधर्म के पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का जन्म से लेकर निर्वाण पर्यन्त का पावन चरित्र वर्णित है।

संक्षिप्त कथासार

नवगनमुद्र के मध्य में कमल के समान गोभावमान जम्बूद्वीप है। उनके बीच में सुवर्णमय सुमेरु पवन है। दक्षिण की ओर भरत क्षेत्र है, उसके आर्यवर्ष में उत्तर कोण नगर नामक देश है और उस देश में सुवर्णमय है रत्नपुर नाम का नगर। रत्नपुर के राजा महामेन थे। महामेन अपनी गद्दी सेना के कारण नवमुद्र ही महामेन थे। उनकी रानी का नाम मुद्रना था। मुद्रना जहाँ तीन नयम आदि गुणों के द्वारा अपने नाम को नारंग कागती थी वहाँ मोन्दर्य सागर की एक बेला भी थी वह। अस्मत्ता टन गई फिर मुद्रना के पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, इस कारण राजा महामेन का मन चन्द्रहीन गगन के समान ध्यामल रहने लगा।

पुत्र के बिना राजा चिन्ता निमग्न थे। उसी समय वनमाली ने वन में जराण नामक मुनिराज के आगमन की सूचना दी। मुनि आगमन का सुखद समाचार पाकर राजा का नारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। वह रानी मुद्रना के साथ गजेन्द्र पर आदृत हो मुनिदर्शन के लिये चल पड़े। राय में नगरवासियों की बड़ी भीड़ भी व्यवस्थित रूप से चल रही थी। वन के निकट पहुँचते ही राजा ने राजकीय वैभव—छत्र चमर आदि का त्याग कर दिया और पैदल ही चल कर मुनिराज के पास पहुँचे। प्रदक्षिणा गौर नमस्कार की प्रक्रिया को पूरा कर राजा ने उनके मुखारविन्द में धर्म का उपदेश सुना और अन्त में मनुष्याते हुए मुद्रना के पुत्र न होने का कारण पूछा। मुनिराज ने कहा कि तुम्हारी इन रानी के गर्भ से तीर्थंकर पुत्र होने वाला है, चिन्ता क्यों करने हो? उनका कह कर उन्होंने तीर्थंकर के पूर्वभावों का भी निम्न प्रकार वर्णन सुनाया।

धातकी खण्ड द्वीप के वन देश में मुनीमा नाम का नगर था, जिनमें राजा दशरथ राज्य करते थे। एकदिन रात्रि में चन्द्रग्रहण देख कर उनका भवभीत मन समार, शरीर और भोगों में विरक्त हो गया। राज्य वैभव को छोड़कर

मनिं ता ननं विचार जय उहानि सभा म रसं तव चावाक मन का पदापानो गुमन् मन्त्री परताज का सण्डन करता हुआ राजा ने प्रथम का मृततापूष बनवाने उगा। परन्तु राजा ने मारमभि यक्षिमा से गुमन् का कुमन्ना का निरगन कर विमन वाहन मनिराज का पाग दीक्षा धारण कर सा। धार तपचर्मा के पसस्दाप उहानि तीक्ष्ण कर प्रहति का बच दिया। धातु के धन म गर्वादिनिष्ठ विमान म प्रहमिन् हुआ। हे राजन। उह माह का वा उगी प्रहमिन् का जीव तुम्हारी राना गुमना का मन म प्रवतीण होगा और पन्ह्वे नि धमनाय तीक्ष्ण कर के रूप म प्रसिद्ध होगा।

मुनिराज के इन वचना से राजा महाधन और रानी मुद्रता की प्रमत्तता का पार नहा र्ण। धन म मुनि राज को समस्तार कर इधर राजदम्पती पर आय उयर द्वा की आता म श्री ह्रीं आदि दक्षिण का समूह निमन्ता की सना का निव गता माग स पम्पित पर धमनाय हुआ और राजा की आता तेजर भन्पुर म प्रविष्ट हा रानी मुद्रता की सवा करत लगा। रानी व नियोगानुसार उत्तम स्पन्द श्वे और राजा महाधन। उनका पत्र मुद्रा कर उस सन्पुष्ट दिया। रानी गमवनी हुई। नो माह यतीत हान पर माघ युवना प्रयोगी का नि धुप्य नाथ म उसने धमनाय तीक्ष्ण कर का जम दिया। तीक्ष्ण कर का जम हति हो समस्त नाथ म मान्य छा गया। सर्वो न जन्माभिवक् का उन्मव दिया।

विजिया ऋद्धि स बाल बध की धारण करत बाने दवा के माय भववान धमनाय बाल व्रीडा करते लग। धन म धमनाय ने योवन द्रवस्था म पन्डित किया। उनका शरीर की सुपमा यक्षि जम स ही धनुषम धी स्यापि योवन की मयुर बैना म वह पट्टन मे सहस्र गुणी हा गई। विदम दग म राजा प्रनारराज ने अपनी पुत्री शृगारवनी के स्वयवर म कुमार धमनाय को बुतान का निव दिगप दून भजा। पिता की आता पाकर कुमार धमनाय सेना सहित विमान का धोर चल पड़े। बीच म गया नगी को पार करने हुए व विध्यावन पर पहुच। विध्यावन का प्राङ्गित मीन्य म मुप्य हो उठान वगी निवास दिया। उनसे पुप्यो य से विद्यावन पर उह ऋणु प्रवन् हो गई। वनश्रीडा का निग साव का स्त्री पुप्य विध्यावन का वना मे विनय गय। वन पर नमन के नीर म सब ने जनश्रीडा की। सायकाल आया मगार का। अनियता का पाठ पढ़ता हुआ मूय सत हो गया। रात्रि का सधन द्रव्यार सवजन गया। पारी देर बाग प्राची पुच्छी का उता पर गकद चन्न रिदु की मोभा को प्रवट करता हुआ चन्मा उन्म हुआ। पन्थि की रजन छाया मे दम्पतिया ने गुमपूषक रात्रि बिना। धीरे धीरे प्राची म उपा की तातो छा गई प्रात काल हुआ और कुमार धमनाय ने आग के लिए प्रस्थान दिया। नमन नगी को पार कर दे विमान म पहुचे। यहाँ कुण्डन पु के राजा प्रनारराज ने उनका भाव भीता स्वागत दिया।

स्वयवर मण्डप म अनेक राजकुमार पन् स व प कुमार धमनाय का पहुचने पर सब की दृष्टि इनकी धार पाहुं हुई। अपनी सविशेष के साव राजकुत्री शृगारवनी भी वडी पाई। म की ने धनुषक म सब का परिवय दिया परन्तु शृगारवनी की दृष्टि किसी पर स्थिर नहा हु। धन म धमनाय की रू पातुरी पर धुप्य हो उनने उनके मन म बरमाना जान गी। धमनाय न कुण्डनरु की मण्डप पर जब प्रवेश किया तो व की नाटिका कुण्डन म प्रगति हो धाने धान बाप छाड भगाव म आ द्यो। धमनाय का विविपूषक विवाह हुआ। उभी समय पिता का वन पार पर धमनाय कुण्डनविन विमान द्वारा अपनी मा माय धीर सना का सब भार मुपन सेनापति का धापीन कर आय। रत्नपुर म कुमार धमनाय का वन गहरा हुआ। इभी बीच उनके पिता महाधन महाराज मगार मे विरक्त हो गय। उठान मुगम धमनाय का पिता गीति का उपा दवर उनका गन्धामिवन किया और स्वय वन म जात्र दी ता धारण कर सा। धमनाय ने राज का धरती तरह पालन दिया।

मुपग मनापति अपनी सना का माय कुण्डन सापि धा गया। पन् दून त अने राजाओं का साय मुपग के हा मुद्र का वन धमनाय को मुता। विन मुनकर उहने मुपग की वन प्रमा की। दीपराज तक साय करत का उपापाज देनार मन्वान धमनाय का मन मगार म विरक्त हो गया विन समस्त साय का दून के समान



त्याग कर उन्होंने निर्यन्त्र दीक्षा धारण कर ली। केवल-ज्ञान प्राप्त होने पर उन्द्र भी याज्ञा में समन्वय की रचना हुई। उनके मध्य में मित्रात्मन पर विराजमान हो उन्होंने दिव्य ज्वनि के द्वारा जित-विद्वान्त का वर्णन किया। अन्त में सम्मोदाचरा से मोक्ष प्राप्त किया।

इस सक्षिप्त कथा का वर्णन करने के लिए कवि ने धर्मशर्माभ्युदय के उत्तरीय संग्रह पूर्ण किये हैं। ऐसा लगता है कि कवि का हृदय एक विशाल रत्नाकर है और उसमें ध्वज तथा श्रवण रत्न अगणित रत्न भरे हुए हैं। कवि उन्हें सुगुण द्वारा निकाल निकाल कर बाहर फेंकना जाना है। वे ध्वज और श्रवण रत्न अपनी अधिक दीप्ति को लिये हुए हैं कि उन्हें अलङ्कृत करने के लिये अन्य अलङ्कारों की आवश्यकता नहीं। वे स्वयं ही अलङ्कार रूप हो उठते हैं।

कथा का आधार

धर्मशर्माभ्युदय की कथा का आधार गुणभद्राचार्य का उत्तर पुराण जान पड़ता है। उसके ६१ वें पर्व में धर्मनाथ के पंच कल्याणात्मक वृत्त का वर्णन है परन्तु उनमें उसके माता-पिता के नाम दूसरे दिये हैं। स्वयंवर का वर्णन नहीं है। धर्मशर्माभ्युदय के कवि ने काव्य की शोभा या गजावट के लिए उसे रत्नानाशित्व-निमित्त किया है। स्वयंवर याज्ञा के कारण काव्य के कितने ही श्रवणों का अन्धा वर्णन घन पड़ा है। अन्त में समन्वय में मुनियों की जो मन्त्रादी है उसमें भी जहाँ कहीं भेद मान्य पड़ता है।

धर्मशर्माभ्युदय के कर्त्ता महाकवि हरिचन्द्र

धर्मशर्माभ्युदय के प्रत्येक सर्ग के अन्त में दिये हुए पुष्पिका वाक्यों तथा उन्नीसवें सर्ग के ६८-६९ श्लोकों के द्वारा रचित पोटग दल कमल बन्ध से सूचित 'हरिचन्द्रकृतधर्मजिनपतिचरितम्' पद में एव उन्नीसवें सर्ग के १०१-१०२ श्लोकों से निर्मित चन्द्रबन्ध से निर्गत—

‘आर्द्रदेवमुतेनेव काव्य धर्मजिनोदितम् ।

रचित हरिचन्द्रेण परम रसमन्दिरम् ॥

इस उक्ति से और उसी सर्ग के १०३-१०४ श्लोकों में विनिर्मित चन्द्रबन्ध में निर्गत ‘श्री धर्मशर्माभ्युदय हरिचन्द्रकाव्यम्’ इस उल्लेख से सिद्ध होता है कि इसके रचयिता महाकवि हरिचन्द्र हैं। ये हरिचन्द्र कौन हैं? किसके पुत्र हैं? इसका पता धर्मशर्माभ्युदय के अन्त में प्रदत्त प्रशस्ति से चलता है। यद्यपि यह प्रशस्ति कुछ प्रतियोग में नहीं है, अतः सशय हो सकती है कि किसी ने पीछे में जोड़ दी हो, परन्तु भाण्डारकर रिमचं इन्स्टीट्यूट पूना में विद्यमान १५३५ विक्रम सम्वत् की लिखित प्रति में यह प्रशस्ति विद्यमान है। इसमें इतना तो फलित होता है कि यदि किसी ने पीछे से जोड़ी है तो १५३५ वि० स० के पूर्व ही जोड़ी है। इसके मित्रा अपने पिता ‘आर्द्रदेव’ का उल्लेख ग्रन्थकर्त्ता ने स्वयं ग्रन्थ में किया ही है। प्रशस्ति के श्लोकों की भाषा महाकवि की भाषा से मिलती-जुलती है अतः बहुत कुछ संभव यही है कि यह ग्रन्थकर्त्ता की ही रचना है।

प्रशस्ति से विदित होता है कि नोमक वंश के कायस्थ कुल में आर्द्रदेव नामक श्रेष्ठ पुरुष रत्न थे। उनकी पत्नी का नाम रथ्या था। महाकवि हरिचन्द्र इन्हीं के पुत्र थे। इनके छोटे भाई का नाम लक्ष्मण था। कवि ने यह तो लिखा है कि गुरु के प्रसाद से उनकी वाणी निर्मल हो गई पर वे कौन थे, यह नहीं लिखा। ये दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुगामी थे।

हरिचन्द्र नाम के अनेक विद्वान्

बुद्धरज्जारी नाटिका में महानवि राजनेर न प्रथम भवनिता के अनन्तर एक जगह विद्वपक वारा हरिचन्द्र नवि का उल्लेख किया है।^१ यन्त्रिय हरिचन्द्र धम्मपदस्य ही भवता है। तो इह राजापरम वन्द्ये जा— वि. सं० ६६ स पहल का मानना चाहिये। इसी प्रकार श्रीहृषिकेश म वाणभट्ट न वन्द्यो—वरा हारी हृन् वणक्रमभ्यनि भट्टाहरिचन्द्रस्य गद्यबोधो नृपायत।^२ इन गान्गा द्वारा हरिचन्द्र का स्मरण किया है। यन्त्रिय हरिचन्द्र धम्मपदस्य व ही कर्ता मान जावे ता एतका मय वाणभट्ट से भी पूछ का मिट जाना है। परन्तु हरिचन्द्र का गद्य काव्य बौद्ध-भा है? एतका अभी तक पता नहीं चला। यद्यपि जीवधरचम्पू नामक गद्यपद्यत्मक काव्य हरिचन्द्र का रचित उपलब्ध है और उससे गद्य भी उच्चकोटि के हैं तथापि अय प्रमाणा से व वाणभट्ट से पूर्ववर्ती मिट नहा हान। धम्मपदस्य व ०१वें सर्ग स धम्मत्व का जो वर्णन है वह चन्द्रप्रभसरित से प्रभावित है अन उसका कता धोरमदी से महाकवि हरिचन्द्र परवर्ती हैं पूर्ववर्ती नहीं। एह हरिचन्द्र विस्वप्रवाग बोध क कर्ता महेस्वर के पूजन परबसहिता के टीकाकार साहसाङ्क नपनि क प्रधान वज भी य पर धम्मपदस्य के कर्ता हरिचन्द्र उत्तम भिन्न ही जान पड़ते हैं।

महाकवि हरिचन्द्र का समय

जीवधर चम्पू की प्रस्तावना स धम्मपदस्य तथा जीवधर चम्पू के तुल्यदात्मक अनेक उद्धरण देकर मैंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि धम्मपदस्य के कर्ता हरिचन्द्र ही जीवधर चम्पू के कर्ता हैं। जीवधर चम्पू का कथानक जहाँ बागीर्भासहसुरि की क्षत्रचूषामणि और गद्यविन्तामणि से किया गया है वहाँ गुणमन्त्राचार्य के उभयपुराण स भी व प्रभावित है। अन हरिचन्द्र गुणमन्त्र से परवर्ती हैं। साथ ही एतम भावक के जो छोट भूतगुणा का वर्णन है वह यगलितर चम्पू क रचयिता सोमदेव के मतानुसार है इस कारण सोमदेव स परवर्ती हैं। सोमदेव ने यगलितर चम्पू की रचना ११६ वि. सं० स पूरा की है। पारण क सप्तवी पादा व पुस्तक धम्मपद स धम्मपदस्य की १२७ वि. सं. की त्रिको एक हस्तलिखित प्रति विद्यमान है उससे यह विषय अवश्य हा जाना है कि महाकवि हरिचन्द्र उक्त समय में पूर्ववर्ती ही हैं। एत तरह पूव और पर धवधिया पर विचार करने से जान पड़ता है कि य १११२ साता की क विगन् हैं। धम्मपदस्य पर कालिदास क रचयिता भारवि के किराताजु नीय और माध क गिण्पातवध की गली का प्रभाव है इसका धाने विचार किया जावेगा।

महाकवि हरिचन्द्र के श्रय

महानवि हरिचन्द्र द्वारा रचित कवियों स धम्मपदस्य उनको निर्भरित रचना है। जीवधर चम्पू के विषय में धारणाप्र प्रभीजा का म्याद था कि वह किसी दूसरे कवि की रचना है पर दोनों क तुल्यदात्मक अध्ययन ने मिट जाना है कि दोनों कवियों के रचयिता एक ही हरिचन्द्र हैं।^३ धम्मपद विगन् डॉ. बोध ने भी हरिचन्द्र की ही जीवधर चम्पू का कर्ता माना है। एत तरह धम्मपदस्य और जीवधरचम्पू य दो श्रय महाकवि हरिचन्द्र क उपनाम हैं। दोनों ही श्रय प्रभावित हो चुके हैं तथा साथ उगत म अच्छी प्रतिष्ठा को प्राप्त हैं।

१ विद्वपक (राक्षस) उज्जुप्र एथ ता किण भण्डा अट्ठाण चट्ठिमा हरिचन्द्र चट्ठिमा हसत्पट्ठोण पि पुरयो मुकति (आयड तरिक म मय्यते धरमाह चोटिका हरिचन्द्र चट्ठिमा कोटिण हसत् प्रमत्तोत्तममवि पुरत्त मुकधिरिनि।

२ देखो जीवधर चम्पू की प्रस्तावना पृ० ३७-४०



धर्मगर्भान्बुदय का काव्य वैभव

पवित्रगङ्गा जगन्नाथ ने नाथ ने प्राचीन—प्राचीनतर सजातों का सम्भव करने हुए अपने गङ्गागङ्गा में गाव्य का वक्ष्य किया है—‘गर्भाग्र्यप्रतिपादनं गव्यं वाच्यम्’ गम्भीर अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्दसमूह गव्य है। वह गम्भीरता चाहे अन्तरात् से प्रकट हो, चाहे श्रुति, स्मृति या अनुमान से। मात्र सुन्दर शब्दों से या मात्र सुन्दर अर्थ से गव्य, वाच्य नहीं। गृह्यणां गन्तुं दोनो के मन्त्रों में ही गव्य, वाच्य गृह्यता है। महाकवि हस्तिना ने धर्मगर्भान्बुदय में शब्द और अर्थ दोनों को बड़ी सुन्दरता के साथ मिलाया है। वे लिखते हैं कि ऐसे ही सुन्दर अर्थ यदि के हृदय में विद्यमान रहे पण्डित योग्य मन्त्रों में लिखे जा सकें तो अच्छा नहीं होता। यथा स्वात जो गहरे-गहरे पानी में भी गड़ा कर दिया तो भी जब वह पानी पीयेगा तो जीभ से चाट-चाट कर ही पीयेगा, अन्य प्रकार से उसे पानी पीना जाता ही नहीं है।^१ (१११) उन्नी प्रत्येक सुन्दर अर्थ में रहित शब्दावली विद्वानों के मन को आनन्दित नहीं कर सकती जैसे कि बूढ़ में भगनी हट्ट दूध को ‘गा गन्नाभि’ कहने पर भी मनुष्यों के चित्त स्थिर नहीं होती।^२ (११२) गन्ध और अन्न के मन्त्रों में पूर्ण वाणी ही वाच्य में वाणी है और बड़े पुण्य में गिनी बिन्दु के बिन्दु को प्राप्ति होती है। देवा न, यन्त्रमा जो छोटी अन्य गिनी की गिण अन्तरात् की तट करने वाली और सुगन्धा-विणी नहीं है। मृग की गिण में अन्तरात् की तट करने की गिण है पर वह भीषण आताप या भीषण काण है। मत्त की गिरी यद्यपि आताप या काण नहीं है तथापि गर्भ आताप अन्तरात् की दूर करने की क्षमता उनमें कहां है? यह उभयविध क्षमता तो यन्त्रगिण में ही उत्पन्न होती है।^३ (११६) उन्नी मन्त्रों का वाच्य नहीं है कि धर्मगर्भान्बुदय में शब्द और अर्थ दोनों का उच्च सुन्दर मन्त्र बन पड़ा है।

उपमानगर की अनेकाने उन्नेक्षणगर गति की प्रविभा को अन्तरात् विवर्धित करता है। हम देखते हैं कि धर्मगर्भान्बुदय में उन्नेक्षणगर की वाणी महानदी के प्रवाह की तरह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अन्तर्गत से प्रवाहित हुई है। उसका स्वर विराजमान स्वर परम्परा अर्थात् गान और दीप्य आदि अन्तरात् भी पद-पद पर उनकी घोषा बटा रहे हैं। उदाहरण के लिये देखें—

श्लोक (११०)

तन्नामसत्तामा बहुगान्यपुद्गलं निर्मूलयन्ती घननीरमत्त्वम् ।
सा मेघमघातमपेतपङ्क्या शरत्सनां संमदापि क्षिणोतु ॥

उन्नेला (११६) (२३६)

मन्दातविम्ब खवदिन्दुकाले नृपान्तये प्राहरिकं परीते ।
हृतानन्धो सुदृशा चक्रामि पारायतो यत्र स्वन्निर्वन्दु ॥
प्रमाणनीलाजिनराजसक विमुटपाणि विजिगीषुदन्तिवन्तम्
तद्वह्निमानोष्य न कोपदण्डनाम् निषेध पचं उत्तुङ्गमन्वजत् ॥

१. अत्र हृदिभ्योऽपि क्वचित् कश्चिन्निर्गन्धिगीर्णस्फुरिचक्षणं न्यात् ।
जिह्वाञ्चनस्पर्शमपास्य पातुं क्षमा नान्ययाम्भो घनमप्यपति ॥
२. हृत्पार्श्वगत्या पदचक्रुरापि वाणी वृधाना न मनो विनोति ।
न रोचते लोचनवस्त्रभावि न्युही क्षरत्क्षीरमस्तिरेभ्य ॥
३. वाणी भवेत्कम्यचिदेव पुष्पं शब्दार्थसंदर्भप्रतिपत्तिर्ना ।
इन्दुं विनान्यम्य न दृश्यते द्युत्तमो धुनाना च मुवा धुनो च ॥

रूपक और उपमा वा समीक्षण (२।५६)

अविद्यं तद्व तिकेनिलापरप्रवातगातिमुदयोचोत्था ।
तदास्य सावधमुदयो बभस्तस्यम इवभग्नुरालका ॥

लेपोपमा (५।२५)

स्वस्थो घटाद्व्यधुष्टपदेन श्रीमानवारातिविराजमान ।
घस्यां करोत्तासितवज्रमु घोरा जलो जिष्णुरिवावभाति ॥

प्रपातर नाम (७।४३)

म वारितो मत्तमद्विधधोव प्रसह्य कामप्रमणातिमोदन ।
रजस्तला अयमजस्तवतीरहो महान्वस्य कुतो विवर्ध ॥

परिमर्या (२।३)

निपातुनून मतिनाम्बरस्थिति प्रवत्प्रकातामुदये णिजति ।
यि शिखर सप्तविनागरस्तव प्रमाणपात्रे परमोहसम्भव ॥

विराधामास (२।३५) (१।४१)

विप्रमत्तजगन्निग्र मेप्रमर्त्री यते स्वयि ।
यने जगन्निग्रमपि पञ्जात निमोति ॥

महानदीरोज्यजङ्गायो जगत्पल्लवतिदि परमेश्वरो वि सन ।
बभूव राजापि निकारकारण विनाशरीणमयममुदयोदय ॥

दीप्त (२।३३)

मनो विनेनेन नयेन निजमो वन [पुनरेव विनीषयिषुना ।
प्रतापमनो बलवर्तितासिना विना म पुत्रय च भाति ॥ कुलम् ॥

धम्ममार्गमुदय के कौतुकावट स्थल

महावायु १ उगम म विद्या है कि कहा कही प्रारम्भ म राजनप्रणामा और दुजननिष्ठा की जाती है ।
जगत्पल्लव १। दुष्टिगत स्वने टुण प्राय सभी मज्ज पथ बाव्या म राजनप्रणामा और दुजननिष्ठा का प्रवर्णन स्वना गया
है परन्तु धम्ममार्गमुदय वर यत् प्रवर्णन (१०५ म १) मरुत्त साहिय म अपनी उपमा देना रखता । धम्म
दम्पती वं ह्म म पुत्र की स्वाभाविक इच्छा रहती है । उन्म विना स्वती का साहचर्य कौण रहता है । रपुत्रा म
वातिना १ राजा जिन १ पुत्रभाय सप्रां दुष्ट ना वणन दिया है । वाग्मन् १ वाग्म्वरी म स्वका विद्वान् और
मानिक उक्त दिया है और चन्द्रमचरित म महानि चोरल । ने भी स्वती उचा की है पर धम्ममार्गमुदय म
जिन सग म म १ (१-३४) महानि न मुज्जा रानी व पुत्र न होने व कारण राजा महापत व मुन स १
दुम प्रष्ट दिया है वट फलाय मानिक है और पड़ने टा ह्म म घर वर कहा है । उन्महारा १ विग उग प्रवर्णन म
दो उग स्थित—

सहस्रपा सावधि धोत्रमे जने सुत विना वरय मन प्रतीदति ।
प्रदीप्ततारायहमन्त भयवते विषोध्यमस्तमेव हिमुवम् ॥ ७ ॥
म च्चदने दीवहारपरपटयो न चन्द्रोचीयि म चापतच्छटा ।
मुतांग तस्मात्पुत्राय निरुत्ता कतामयते सपु योदोयमि ॥ ३१ ॥



तृतीय सर्ग का वनवर्णन कवि के वैदुष्य को प्रकट करने में अपनी शानी नहीं रखता। उस प्रकरण के निम्नाङ्कित श्लोक देखिए और कवि की श्रेयस्त्रिपयक वैदुष्य की श्लाघा कीजिए—

कान्तारतरयो नने कामोन्मादकृत. परम् ।
 अभवन्न प्रीतये सोऽप्युद्यन्मधुपराशय ॥२३॥
 घनेक चिटपस्पृष्टपयोधरतटा स्वयम् ।
 घटपुद्यानमातेय मकुलीनत्वमात्मन. ॥२४॥
 उत्तसत्केसरो रसतपलाया कुञ्जरान्जित ।
 कण्ठोरय इधाराम क न व्याकुलमयमो ॥२५॥
 एता प्रवासहारिणो मुदा भ्रमरसगता ।
 मरुन्नतंकतालेन नृत्यन्तीय वने सता ॥२६॥

चतुर्थसर्ग (४१-४४) में चन्द्रग्रहण का जो कीर्तुकावह वर्णन महाकवि हरिचन्द्र ने किया है वह अन्यत्र नहीं मिलता। स्वर्गीय पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज को यह वर्णन उड़ा प्रिय था, वे जब तब बड़े हर्ष में निम्नाङ्कित श्लोक सुनाया करते थे—

अयैकदा व्योम्नि निरभ्रगभंक्षण क्षणपायां क्षणवाधिनयम् ।
 अनायनारीव्ययननेतेय स राहुणा प्रेक्षत गृह्यमाणम् ॥४१॥
 किं सोधुना स्फाटिकपानपात्रमिदं रजन्वा परिपूर्णमाणम् ।
 चलद्विरेकोच्चयचुम्ब्यमानमाकाशगगास्फुटकोरय वा ॥४२॥
 एरावणस्याय करात्कयचिच्च्युत सपको विसकन्द एषा ;
 किं व्योम्नि नीलोपलदपण्णभे सश्मश्रु वक्त्रं प्रतिचिम्बित मे ॥४३॥
 क्षण चितवर्षेति स निश्चिकाय चन्द्रोपरागोऽपमिति क्षितीश ।
 हृद्मोलनाविष्कृतचित्तलेदमचिन्तयच्चैवमुदारचेता ॥४४॥

चन्द्रग्रहण का निमित्त पाकर राजा का चित्त समस्त शरीर और भोगों में निर्विण हो जाता है। उसी दशा में वह वृद्धावस्था का चिन्तन करता है। वृद्धावस्था में मनुष्य के दात झड़ जाते हैं, बाल सफेद हो जाते हैं, शरीर में बल पड़ जाती और कमर झुक जाती है। इन सबका वर्णन महाकवि हरिचन्द्र के शब्दों में देखिये कितना सुन्दर बन पड़ा है—

अन्याङ्गनासङ्गमलालसाना जरा कृतेष्वेव कुतोऽप्युपेत्य ।
 आकण्य केक्षीषु करिष्यते न पदप्रहारैरिवदन्तभङ्गम् ॥४५॥
 क्रांते तवागे वलिनि समन्तान्शयत्यनङ्ग. किमसावितीव ।
 वृद्धस्य कर्णान्तगता जरयं हसत्पुदञ्चत्पलितच्छलेन ॥४६॥
 आकर्णपूर्ण कुटिलालकोमि रराज लावण्यसरो यदगे ।
 बलिच्छलात्सारणि धोरणीभि प्रवाह्यते तज्जरसा नरस्य ॥४७॥
 असभृत मण्डनमगयण्डेर्नष्ट क्व मे यौवनरत्नमेतत् ।
 इतीव वृद्धो नतपूर्वकाय पश्यन्नघोऽघो भुवि बभ्रमीति ॥४८॥

चन्द्रग्रह चरित्र के द्वितीय सर्ग का विस्तृत न्याय वर्णन काव्य के अनुरूप न होकर एक स्वतन्त्र दर्शन शास्त्र-

सा हा गया है पर धम्माम्मुत्थं कं धनुषस्य य (६२ ७६) चासाकं विट्ठलं वा सुपन्नं मत्तां वं द्वारां मण्डनं धीरं राजा दयास्यं वं गारां सण्डनं त्रियां गया है वह वाय्यं की अनुष्णता वा नहा छात्र गया है ।

सप्तमं गगं वा (२ ८) सुपन्नं वा न वविं वं अनुपमं पाणिप्यं की सुविनं करता है । इस प्रकरण कं निम्न दोनो गौर से देखिये—

महवप्पेनङ्गमनेहतात् रतासत्तमावितममथत्तम् ।
यत्तदमरात्तद्धुमिवाधयत्तं यत्तं च यानं च सुत्तमनामानम् ॥३०॥
विगातवत्तं धनदानपारिं प्रसारितोद्दामकपाप्रदण्डम् ।
उपेयुयो विगजपुगवस्य पुरो हयानं प्रतिपत्तसोत्तमम् ॥३१॥
अपिनिर्णं मोरहमाधयत्तं मवानुत्तमोमतिनिष्ठसामानम् ।
स्वमभुजगाजिगित्तो हयानं प्रगमभेय्यामिव चवानोमम् ॥३२॥

मही दवा वं वाहृत वं रूप में आगम हादिया घोडो तथा बला भागिं वाहृतमागमिमय वणा माप की गली वा रमाण करता है । अष्टमसग व्यापी धीरसमुद्र एव जमानिप वं वयन माग्निं उ ८ म यहन ही सुत्तर वन पडा है । नवम सग वा पुनस्पागवयन कातिगम वं वयन से वहीं अपिच सुत्तर जान पडता है—

पुत्रस्य तत्पागत्तमागमज्जणे निमोत्तमनेत्रज्जं गवो बभौ ।
अत्तं विचइगाडनिपोडनां गु प्रविष्टमस्येति निरुपयनिव ॥१॥
उत्तमगमरोत्तं तमगजं मय परिरुक्कमोत्तित्तोत्तमो बभौ ।
अत्तविनिशित्यं सुत्तं वयुग हे कपाटयो सघटयमिव ह्वयम् ॥११॥

—धम्मपदसुद्ध

तमज्जुमारोत्तं धारोत्तमगं सुत्तविचिञ्चत्तमिवात्तं रवयं ।
उत्तमत्तमोत्तित्तोत्तमो मयविचरारपुनस्पागदत्तसत्तं ययो ॥२॥

—एवमगं ततोय सग

मुवराज धमनाय शुमारवो वं स्वययं में ममिनिज हने ने त्रिये दक्षिणिया की धोर प्रयाग कर रहे हैं । उग समय वा दनवमय वान वेगिये—(१ ५१)

तां नेत्रवेयां विनिगम्य सुत्तं सुपायत्तकाययमानं उत्तुगं ।
जामनवाचो हस्तेनवा वतो बभौ स वावरस्य इवात्तपुण ॥१॥

तेजा जान पडता है कि सुपायत्तकाययमान की मनोश्च सुगम मयय वं वतो नय वामयने मनीयमं तक वा वजुही है ।

नवम गगं वा (६८ ७) गगं वात्त माग्निं च हस्तिं च वत्तं ही उच्चं वात्तं वा है । दशमं गगं वा मानां छात्रो म रवा हृषा विष्मगिरि वा वत्तं माप के धनुषं सग म व्याज नाना वयमय वयवगिरि के वत्तं वा रमाण करता है । गीता ही उगत्त ममहावन की धनुषय छात्र छिन्की हुई है । माप में छात्र के गारा धोर इमम प्रसार व हाग वरा वा वत्तं करता गया है । वात्तगम न वयुव वं नवम गगं म वयुवरा मन्दपां दमक व माप त्रिदिग् विच उ वा वत्तगं कर वात्तगुत्तं वा गी मन्त्रिणी प्रवाग्नि की है उगत्त आत्तर माप व वत्तं गगं गगं धर्मोत्तं व वत्तगं गगं गगं । अनुत्तं म भी विग गया है । इम प्रसार मा पर वत्तं ह्वा मोरी मतिने पुत्रवत्ता का सुगमन्दन निज उगा है उगी प्रसार इम छात्र व वा गी वत्तं व दमक म वत्तं विचिञ्च उग गी है ।





वाग्धर्वे सर्ग की वनश्रीड़ा छन्द और अलंकार की अनुकूलता के कारण माध की वनश्रीड़ा से वही अधिक सुन्दर बन पड़ी है। समग्र त्रयोद सर्ग में व्याप्त जलश्रीड़ा ने भारवि की किरातार्जुनीय के अष्टम सर्ग में व्याप्त जलश्रीड़ा को अत्यन्त निष्प्रभ बना दिया है। चतुर्दश सर्ग का नायकाल रात्रि तथा चन्द्रोदय का वर्णन पाठक को आनन्दविभोर कर देता है। चन्द्रोदय होने पर कमलों की लक्ष्मी चन्द्रमा के पाग चली गई इसका वर्णन देखिये कितना मनोरम है।

सावत्सती स्त्री ध्रुवमन्यपु सो हस्ताग्रसस्पर्शसहा न यावत् ।
स्पृष्टा करारं फमला तथाहि त्यतारविन्दानितनार चन्द्रम् ॥५२॥

पञ्चदश सर्ग का मधुपानवाच्य की दृष्टि से बहुत ही उच्चकोटि का है। मदिग के नक्षे में जिमकी आवाज लड़खड़ा रही है ऐसी एक स्त्री का वर्णन देखिये कितना हृदयहारी बन गया है—

त्यज्यतां पिपिपिप्रिय पात्र दयितां मुमु मुलासव एव ।
इत्यमन्यरपदस्सलितोक्ति प्रयसी मुदमद्यदादयितस्य ॥५३॥

षोडश सर्ग का प्रातःकाल का वर्णन माध के एकादश सर्ग का स्मरण कराता है। माध के प्रातःकाल के वर्णन में मालिनी छन्द ने यद्यपि अधिक शोभा ला दी है पर धर्मशर्माम्बुदय की बल्बनाए उनकी अपेक्षा वही अधिक सुन्दर हैं। देखिये, चन्द्रमा अस्तोन्मुख है, पूर्वदिशा में अरुण की लानी छा रही है और दुन्दुभि का शब्द हो रहा है। इसका वर्णन धर्मशर्माम्बुदय में कितना हृदयहारी हुआ है—

राजान जगति निरस्य सूरसूतेनाक्रान्ते प्रसरति दुन्दुभेरिदानीम् ।
यामिन्या प्रियतमविप्रयोगदु सैर्हृत्सन्धे स्फुटत इवोद्भूटः प्रणाद ॥५४॥

इसी सोलहवें सर्ग का मेना प्रन्थान माध के द्वादश सर्ग में वर्णित श्रीकृष्ण की मेना प्रयाण का स्मरण कराता है। सप्तदश सर्ग में शृगारवती के स्वयंवर का जो वर्णन है वह कालिदास के द्रुमुन्ती के स्वयंवर वर्णन को पीछे छोड़ देता है। स्वयंवर मभा में आने ही शृगारवती राजाओं के मनोमानन में प्रविष्ट हो गई इसका श्लेषात्मक वर्णन देखिये कितना अद्भुत हुआ है—(१६-१७)

पयोधरश्रीसमये प्रसर्पद्वारावली शालिनि सप्रवृत्ते ।
सा राजहंसीव विशुद्धपक्षा महीभृता मानसमाविवेश ॥

स्वयंवर के बाद शृगारवती के साथ राजपथ में जाते हुए धर्मनाथ को देखने के लिये स्त्रियों का कौतूहल यथार्थ में कौतूहल की वस्तु बन गई है। धर्मशर्माम्बुदय के इस वर्णन ने कुमारमभव और रघुवश के इस वर्णन को पीछे छोड़ दिया है। विवाह दीक्षा के बाद धर्मनाथ अपनी दुलहिन शृगारवती के साथ चौक के बीच मुवर्ण सिंहासन को अलंकृत कर रहे थे। उसी समय उन्हें पिता का एक पत्र मिला, जिसे पढ़कर वे एकदम कुबेरनिर्मित विमान पर आरुढ़ होकर दुलहिन के साथ राजपुर की ओर चल देते हैं। यहाँ ऐसा लगना है जैसे कवि ने रस का अकाण्डछेद कर दिया हो। पाठक के हृदय में बहती हुई रस की धारा असमय में ही शुष्क होती जान पड़ती है। स्वयंवर के बाद होने वाले युद्ध में अट्टना रखने के लिये ही मालूम होता है कवि ने धर्मनाथ को सीधा विमान द्वारा राजपुर भेजा है और युद्ध का दायित्व सेनापति के ऊपर निर्भर किया है।

अष्टादश सर्ग में समार की माया ममता ने विरक्त हो राजा महामेन दीक्षा लेने के लिये कृतसंकल्प हैं। युवराज धर्मनाथ को राज्याभिषेक के पूर्व जो उपदेश देते हैं वह वादम्बरी के शुक्रनामोपदेश और गद्य चिन्तामणि के आर्पणन्युपदेश का संक्षिप्त संस्करण-सा जान पड़ता है। उन्होंने युवराज धर्मनाथ के लिये गुणार्जन का जो उपदेश दिया है उसे देखिये, कवि ने श्लेषोपमा के द्वारा कितना आकर्षक बना दिया है—(१८-१९)

अथा गुणानन्द सखगुणो जन क्रियामु कोरुह इव प्रगतमते ।

गुणधुतो बाण इवातिवीथय प्रपाति वलवयमिह क्षणारवि ॥

अन्तामें संग म सुद्धवर्णन व लिय वधि न जा छल् छोड विचाररार चुना है व रम व धनुर्वत नहा है । यमन छोड विन्न धनराज वधि व वीरान को परखने व लिये कछीने का काम दन है । महराजि हरिष का वीरता उन पर मरा उनरा है । पर वीररम की धारा उमठे घुलिन हो गई है । अंतमें संग म वधि ने धमनाथ के राज धाम्य तादवरण छोड समवमण का जा वजन किया है वह बघनि अपने आप म परिपूष है तपानि मेगा लगता है कि वनि काय के इय प्रयुग बघान व जल्गे निपगता पाहता है । इकतीमें संग का उगम निवृत्त और धनुर्वत छ म युक्त है ।

इम प्रसार धम्मपम्मसुत्त बाध व धम्म से युक्त उचरोति का महाकाय है ।

धम्मपम्मसुत्त पर महराजाय तविजोति के निष्य व माग्गानि व आरा रविन महेष्टान्नीपिता नामक मरुत की टाका ह ।



राजस्थान के संस्कृत महाकवि एवं विचक्षणा प्रतिभासम्पन्न ग्रन्थकार

विजयसागर

साहित्यमहोपाध्याय, साहित्याचार्य, दर्शनशास्त्री,
साहित्यरत्न, शाम्भुविशारद



महोपाध्याय मेघविजय

महोपाध्याय मेघविजय १८ वीं शताब्दी के बहुमुखीपतिभानुसम्पन्न विशिष्टतम विद्वान् हैं। उनका जन्मसंवत्, जन्ममन्थान और गृहस्थावस्था का ऐतिहासिक पश्चिम अष्टावधिक श्रावण है। श्रीवल्लभोपाध्यायगर्भित, 'विजयदेवमाहात्म्य' पर मेघविजयजी द्वारा रचित विवरण की म० १७०६ की त्रिनिश' प्रति प्राप्त होने से यह निश्चित है कि इस विवरण की रचना १७०६ के पूर्व ही हो चुकी थी। अतः यह अनुमान महज भाव में लाया जा सकता है कि इस रचना के समय उनकी अवस्था कम से कम २०-२५ वर्ष की अवश्य होगी। अतः अनुमान १६८५ और १६६० के मध्य इनका जन्मनमय माना जा सकता है। म० १७२७ में रचित 'देवानन्दमहाकाव्य' में विजयप्रभमूरि द्वारा प्रदत्त 'उपाध्याय' पद का उल्लेख होने से निश्चित है कि म० १७१० और १७२७ के मध्य में उनको उपाध्याय पद प्राप्त हो चुका था, क्योंकि विजयप्रभमूरि का शासनकाल म० १७१० से १७३२ का है।

मेघविजयजी श्वेताम्बर जैन-परम्परा में तपागच्छीय अक्षरप्रतिबोधक जगद्गुरु हीरविजयमूरि की गिष्प-परम्परा में कृपाविजयजी के गिष्प हैं, जैसा कि उनकी ग्रन्थ-प्रशस्त्रियों में प्रकट है —

श्रीमत्तपागणपतियनिमागंधीर, श्रीहीरहीरविजयो जयवान् बभूव ।

य प्रत्यवृद्धदक्षधरराजगज्य चाक्यं मुधातिमधुरैर्यवनाधिराजम् ॥१३॥

श्रीवाचक कनकतो विजया बभूवु—विद्यानवद्ययामो भुवि तद्विनेया ।

तेषां मुनीलविजया कवयो विनेया, गिष्पी बभूवतुरतुल्यमती तदीयो ॥१४॥

१. लिखितोऽयं ग्रन्थः पण्डितश्री ५ श्रीरगतोमगणिशिष्य-मुनिसोमगणिना सं० १७०६ वर्ष चंद्रमाने कृष्णपक्षे एकादशी तिथी द्युधे लिखित राजनगरे श्रीतपागच्छाधिराज—म० श्रीविजयदेवसूरीश्वरविजयराज्ये ।

(विजयदेवमाहात्म्य, प्रान्तपुष्पिका ।)

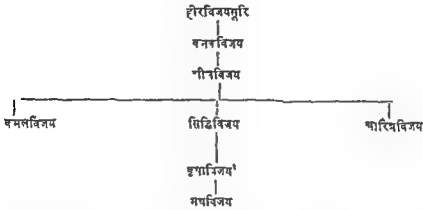
२. देवानन्दमहाकाव्य, सर्ग ७, पद्य ८०

आद्य श्रीमन्मन्त्रिण विजयस्तस्यानुजमा युध
श्रीमिदं विजयोन्म तो मम गुराणीगानुगिगागुरु।
श्रीममानवाम्नि धाम्नि मह्यो ऽये विजित्य क्षणा
रुम्पावेन्वपान् जयन्मिममू सम्प्राप्तुविमुनाम् ॥१५॥

य पटतविविनववामनि साहित्यसिद्धातवित
प्राणग्रक्षिनिप कृपाविजय आनो विनेयस्तयो।
नत्यान्म्युजम गदेयविजयोपाध्यायनपात्मना
प्रयो मरुमहोषरावपिरय सिद्धिद्वय नन्दनात् ॥१६॥

(युतित्रयापप्रगति)

इम प्राम्नि क अनुगार एतदा जगवक्ष म प्रकार वनता है—



मघविजयजोविन प्रया की श्रेष्ठ पर यह साधिकाद बड़ा जा सक्ता है कि य एकश्रेणीय विज्ञान न होकर सावर्णीय विज्ञान है। काव्य साहित्य धाम्पूति व्याकरण छन्द धनेकाय यायगास्त्र दानगास्त्र मोनिय सामुक्ति रमल मन्त्रज्ञान यत्र अध्यात्मगास्त्र आदि प्रयत्न विषया क य प्रगा पठित थ और कहने प्रत्येक विषय पर साधिकाद धधम्बपूज विनिनी कसाई है। इनका साहित्य-सज्जनतावा वि स १७ ए स १७६ तक का तो निश्चिन हो है। साथ ही अज्ञवसागर गणि नारा स १७६१ म रचिन स्तुति स स्पष्ट है कि उस समय तक आध विद्यमान थे। वतमान समय में प्राप्त इनकी रचिन साहित्यसामग्री का विषयानुक्रम स संक्षिप्त परिचय इन प्रकार है—

महाकाव्य

१ सप्तसप्तान महाकाव्य—एकी रचना वि० स १७६^१ म हुद है। इसका ६ सग हैं। मगजम से

१ कृपाविजयी रचित विजयप्रभसूरि निर्वाणरास प्राप्त है।

२ विजयसमुत्तीकृता (१७६०) प्रभापात परिक्रसरे।

कृतोप्यमुद्यम पूर्वोच्चायचर्याप्रतिष्ठित ॥

—(सप्तसप्तानप्रतिप्रगति)



पद्यमत्या इस प्रकार है—८२, ८४, ८८, ८९, ९८, ९९, १०२, १०३, प्रगन्ति के ३, कुल ४२३। इस काव्य के प्रत्येक पद्य में मान महापुरुषों का ज्ञानरत्न समवद्र चरना है। ऋतुमंदर, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पाशनाथ, महागौर-न्यामी, गुरुवगी रामचन्द्र श्री यदुवगी दृष्ट के जीवन-चरित्रमय यह महाकाव्य है। न केवल महाकाव्य की दृष्टि में अपितु अनेकगुणी साहित्य की दृष्टि में भी यह सर्वोत्तम दृष्टि है। पहले सूत्राग्र प्रकाशित दृष्टा या फिर श्रीविजयप्रभु नरि गचिन् 'मरुणि' टीका यह ग्रन्थ जैन साहित्यवर्षा नना मूला में प्रकाशित हो चुका है।

२ दिग्विजय महाकाव्य—यदि न इस ग्रन्थ में रचना समय नहीं दिया है। इस काव्य में तत्रागच्छीय जैनाचार्य विजयदेव मूर्ति के प्रसिद्ध विजयगङ्गा मूर्ति के सिद्ध गणार्थीय विजयप्रभुमूर्ति का जीवनचरित्र ग्रन्थ है। तत्कालीन राजनैतिक, भौगोलिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि में यह महत्त्वपूर्ण है। महाकाव्य के लक्षणों में परिष्कृत १३ सर्गों का यह काव्य है। मार्गक्रम में पद्यमत्या इस प्रकार है—८१, ४६, ६८, ७४, ७५, ७८, ७९, १४२, १४१, १४१, १३८, ११३, १०२, कुल १०३८। यह ग्रन्थ निधी जैन ग्रन्थमाला (भारतीय विद्या भवन) बम्बई में प्रकाशित हो चुका है।

पादपूर्ति-काव्यसाहित्य

३ शान्तिनाथचरित्र—श्रीहर्षगचिन् नैपथ महाकाव्य की समस्तमय पादपूर्ति में इसका दूसरा नाम 'नैपथीय ममत्या' भी है। नैपथकाव्य के प्रथम सर्ग की पादपूर्ति रूप यह काव्य है। नैपथ की तरह अन्तिम चरण या एक चरण लेकर उसकी रचना नहीं हुई है, अपितु प्रत्येक चरण की चरणानुसृत पूर्ति करते हुए ६ सर्गों में उसकी रचना पूर्ण हुई है। वही-वही तो एक ही चरण की दो, तीन द्वार अनुवृत्ति भी की गई है। इस काव्य में मोनहर्व तीर्कर शान्तिनाथ का जीवन-चरित्र वर्णित है। मार्गक्रम में पद्य मत्या इस प्रकार है—१२६, १३०, ११८, ७८, ७१ ६३, प्रगन्ति ५, कुल ४६०। ग्रन्थकार ने ग्रन्थ में इसका समय नहीं दिया किन्तु आचार्य विजयप्रभुमूर्ति का उल्लेख होने से स्पष्ट है कि इसकी रचना वि० स० १७१० के पश्चात् और स० १७३२ के बीच हुई है। यह ग्रन्थ जैन विविध साहित्य ग्रन्थमाला, काजी में प्रकाशित है।

४ देवानन्दमहाकाव्य—महाशिव भाष गचिन् शिशुपालवध (माघ) महाकाव्य के प्रारम्भ के ७ सर्गों तक के प्रत्येक पद्य के चतुर्थ चरण की पादपूर्ति रूप यह महाकाव्य है। इस काव्य में भी मान नर्ग है। इसमें तत्रागणार्थीय जैनाचार्य विजयदेवमूर्ति और विजयप्रभुमूर्ति के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का समवद्र वर्णन है। पादपूर्ति के वर्णन में रहते हुए भी कवि ने इस काव्य की रचना उसकी मकनना के साथ की है जिन्म-परिपूर्ण तवीन स्वतन्त्र काव्य का समास्वादन होता है। इसकी रचना वि० स० १८०७ आश्विनशुक्ल विजयादशमी को 'सादडी नगर' में हुई है। सर्गों की पद्यमत्या इस प्रकार है—७८, १३०, १७६, ८४, ७२, ६०, ८४ कुल ७१६। यह ग्रन्थ निधी जैन ज्ञानपीठ में प्रकाशित हो चुका है।

५ किरातममत्यापूर्ति—इसके सम्बन्ध में दिग्विजयमहाकाव्य की प्रस्तावना (पृ० ४) में प० अम्बालान प्रेमचन्द शाह ने लिखा है—'आ काव्यनु नाम शु छे ते जागी यवायु नयी, पण तेमा विगनार्जनीय काव्यनी ममत्यापूर्ति

१ इति श्रीनैपथीयवहाकाव्यममत्याया महोपाध्यायमेघविजयगणिपूर्तिताया पद्य सर्ग सम्पूर्ण।

२ मुनिनयनाश्वेदुमिते वर्ण हर्षेण सादडीनगरे। ग्रन्थ पूर्ण समजनि विजयदशान्यामिति श्रेय। ८५

(देवानन्दमहाकाव्यप्रस्तावित)।

तो छत्र पनी एक प्रति आचाय श्रीविजयमूर्ति परत हवी जेनी प्रसन्नफी म बटराये दपो अगाऊ तमन वरी आगनी ते स्मरण ऊपरधी अणावु त प्रति मन मनी गवी न बी । ते वे एन सगलकज हवी समवन ब्याई था मनी पूरी प्रति पण मनी आव ।

६ मेघदूतसमस्यालेख—जसा नि नाम स ही रूपट है यह उपवाक्य मन्त्रवि वाणीमप्रणीत मधून सगलवाक्य व अनुप चरण वी प्रण्य वर पात्रपूति रूप म निमा गया है । वस्तुतः विनि विरच स्वरा स्वगु को निमा गया यह एक पण है जा कि नवरत्नपुराणोरपावा से ववि ने देवपाटण्य विराजमान आचाय विजयप्रभमूर्ति को निमा है । इसम ववि ने रचना समय नहीं किया है किन्तु प्रान्त म निमा है कि विजयदेव मूर्ति की भक्ति म माधवाक्य वागमस्यापूति और विजयप्रभमूर्ति व गुणोत्पादन म मेघदूत समस्या जिली है । जसा नि ऊपर निम आव हैं देवान् महावाक्य की रचना १७२७ म हुई है । अन सगल है वि इसरी रचना वि स० १७२७ व वा न हई है । मधून व १३० पद्य वनि न स्वीकार विच हैं । यह वाक्य जन आरमान्य गभा भावनगर म रचन पुनिवा रूप म और विनिविनपसग्रह प्रथम भाग म सिधो जा प्रथमाभा म प्रकाशित है ।

७ त्रिप्रयतिगतापुण्यचरित्र—त्रिप्रयतिगतापुण्यचरित्र का यह मीत सङ्ग्रह है । कोठरी कदरा की धर्मयता से कवि न रागमग पाव हार पदा म इसकी रचना की है । हेमचन्द्र की तरह ही सम्य १ पवी वी पुताड और उत्तराड म विमानिन रिया है । इसम ववि न रचना-नामय नहीं किया है । य प्रय अत्राकवि अत्राकवि है किन्तु समान भावानुवा गुजरभावा म प मफनदाल सवरत्न न रिया है जा छोटाना माहवता माह उनामा (गुजरान) की तरह से प्रकाशित है ।

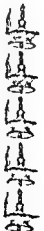
कथा साहित्य

८ भविष्यदत्त चरित्र—मान (धुन) पचमी माहाराय पर इस चरित्र की पद्यमय २१ अधिका म रचना हुई है । ववि न रचना-नामय वा उ नन नहीं किया है किन्तु विजयरत्नमूर्ति वा उ नन होने से यह स्पष्ट है कि यह रचना वि स १७३२ व पञ्चान का है क्योंकि विजयरत्नमूर्ति १७२२ म आचाय बन थे । यह चरित्र दान्या मूनिहिनप्रथमाना धमनावा म प्रकाशित हा चुका है ।

- १ श्वस्तिश्रीमदभवन्दिनहृत्प्रीतोर्याभिनेतु प्राप्यदेग सपगणपतेष्वेधनाभा विनेय ।
य स्त्विष्यां दुरमनुगन नय्यरम ससज स्निग्ध आयातय वरति रामविर्वाथनेषु ॥२॥
- २ गम्भा चार चरित्रगरी देवकापत्तनादवा याह्योदानस्थितहृत्प्रीतर्वाधिकाधीतर्वा ॥७॥
- ३ माघनाय देवपुरोमेघदूत प्रभप्रभो । सगरवाप समस्याय निममे मेघवर्णिता ॥१॥
- ४ श्रीमेघविजयनामा विनयविनामे त्रिप्रयतिगतापुण्यचरित्र ॥२६६॥

सत्रिप्रयतिगतापुण्यचरित्र आत्राप्रगति

- ५ तवापनाम्भोजसहस्रानु मूर्तिजयी श्रीविजयप्रभाद्र ।
सम्पददीप धमनावनीय प्रभासने श्रीविजयचरित्र ॥७६॥
- भविष्यदत्तचरित्र प्रभासप्रगति
- ६ विजयप्रभमूर्तिराणां पठे ६३ विजयरत्नमूर्ति तया विना हीराजधारा च हीरादे पात्रपुरे १७१ वर्षे जम १७२२ वर्षे बीसा १७३२ वर्षे नागोरपुरे मूर्तिप सधाय ६३ वर्षाणिप्रपाय सं० १७७३ आहूतना नितायाय उदयपुरे रक्षय गत । भविष्यदत्तचरित्र प्रस्तावना पृ० ४



६ पचास्यान—न० १७१९ में नवरंगपुर^१ में इसकी रचना हुई है। तब के ज्योतानुसार पूर्व में ४६०० श्लोकों परिमाण का जो 'पचास्यान' नामक ग्रन्थ था उसी का यह मक्षित सम्पन्न है। सम्भवतः यह पचास्यान पूर्णमन्त्र रचित पचास्यान ही हो। उसकी भाषा मूल और प्रादुर्गुण युक्त है। यह ग्रन्थ प्रत्यक्ष अप्रकाशित है। इसकी एक प्रति न० १७५१ की लिखित अनुपममृत नयद्वेरी बीकानेर में प्राप्त है।

विज्ञप्ति पत्रकाव्य

पत्र-प्रेषक स्वयं आचार्य या गुरु को आन्तरिक भाषा में गत, पत्र या गतपत्रमित्र में जो विज्ञप्ति रूप पत्र लिखता है वह विज्ञप्ति-पत्र कहलाता है। जिस स्थान पर आचार्य विराजमान हो उस नगरी का, तत्सम मन्दिरो का और आचार्य का प्रभावशाली आन्तरिक वर्णन तथा स्वयं प्रवास, नीर्ययाया धर्मव्याप्त, पटन-भाउन, धर्मप्रचार के साथ स्वस्थित नगरी का वर्णन, इन विज्ञप्ति-पत्रों का प्रतिपाद्य विषय होता है। उन प्रकार के विज्ञप्ति-पत्र ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक और साहित्यिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के होते हैं। ऐसे विज्ञप्ति-पत्रों में हम सर्वप्रथम वि० न० १४४१ में जिनोदयमूर्ति द्वारा 'विज्ञप्ति-पत्र' की प्रेषित 'विज्ञप्ति-महादेव' और वि० न० १४४८ में जयसंगराज्याय द्वारा विजयमन्त्रमूर्ति की प्रेषित 'विज्ञप्ति-त्रिवेणी', प्राप्त होते हैं। उनके पश्चात् तो मन्त्रों की रचना में विज्ञप्ति-पत्र प्राप्त होते हैं जिनमें से २५ विज्ञप्ति-पत्र पुनर्नवाचार्य मुनि जिनप्रियजी ने विज्ञप्ति-चन्द्रमण्डल प्रथम भाग में प्रकाशित किये हैं।

मेघविनयजी लिखित विज्ञप्ति-पत्र जो वर्तमान में प्राप्त होते हैं उनमें से मेघदूतमस्यादेव का विवरण दिया जा चुका है, अवशेष का क्रमशः पश्चात् उस प्रकार है —

१० पाणिनिद्वयाश्रयविज्ञप्ति-नेत्र—मित्रनगरी^२ में यह पत्र गणनायक विजयप्रभमूर्ति की रचित है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह द्वयाश्रय काव्य है। एक ओर जहाँ पाणिनि के अष्टाध्यायी मंत्रों का क्रम चलता है तो दूसरी ओर वही पद्य श्लेषयुक्त होकर विज्ञप्ति-पत्र के प्रतिपाद्य अर्थ को प्रकट करता है। इसमें चार विश्राम हैं। प्रथम विश्राम में सजानन्त्रि के साथ भावान्त्रि-भवेदेव का, द्वितीय विश्राम में अक्षन्त्रि के साथ कुर्वन्त्रि नगरी का, तृतीय विश्राम में अक्षन्त्रि के साथ मित्रनगरी और चतुर्थ विश्राम में अक्षन्त्रि के साथ चतुर्थ विश्राम में अक्षन्त्रि के साथ आचार्य विजय-प्रभमूर्ति का ज्ञेयान्त्रि-युक्त वर्णन है। चारों विश्रामों की पद्य सन्ख्या इस प्रकार है — २५, ३८, ३९, ३९। यह पद्य अभी तक अप्रकाशित है। इसकी एक मात्र प्रति भाण्डारकर ओम्प्रियन्त्रि-मन्त्रि-उन्नीद्वय पूना में न० ए-२६६।१८८२-८३ पर है। इसी की प्रतिनिधि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में है। इसका आद्यन्त इस प्रकार है —

आदि—स्वन्त्रि-द्विया मन्त्रद्वित्वभाजा, य प्रत्यया मापग्योग्यान्ती।

सयुज्य नानाविधिरूपमिद्वयं, भवेन्मुदे द म भारदेव ॥१॥

वैमाररपेजि कनाविधेपात, सजान्त्रिद्वयविधिलाघवाच्च।

य पाणिनीय नयमादिदेव, सदाऽऽनन्दव्यूहना शिवात्मा ॥२॥

१. तच्छिबुर्मेवविजयो स्मेन्दुतगन्तुमिमे वर्षे व्यधाजिम ग्रन्थ नवरंगपुरे वरे ॥ ६

२. चतु नहसी वनपडकयुक्ता श्रीनीतिगाल्कप्रयित पुराऽनृत्त।

सक्षिप्य तत्वात्तनुवावमुर्व्य, व्यन्त मेघाद्विजयो ननीपी ॥३॥ (पचास्यानप्रारम्भ)

३. एव च यस्मिन्गरेऽन्विद्विद्वान्, दारो युवा वा प्रथया जनोस्ति।

शिवाभिनापी सुरमार्थसक्तन्त शिवाख्यान्गरादमुष्मान् ॥ तृतीय विश्राम

विनिष्ठा नृजगता एव गामान्वि श्रीगुप्तोन्माण ।
गिप्यागुमधाद्विजय स्वनाम भाव पर विनयय मुनिम् ॥१२॥
(द्वितीय विधाम)

यन्—एव जगन्भावनवारि यस्यानुगासन गामपवागवम् ।
जययवया विजयप्रभाह्म मूरि यमूरिप्रभुनाम्नो ॥१३॥

नि श्रीपाणिनीयद्वयमि विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥

११ पाणिनीय द्वयमि विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥
विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥
विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥
विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥

इति श्रीपाणिनीयद्वयमि विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥

यत् नृजगता एव गामपवागवम् ॥
यत् नृजगता एव गामपवागवम् ॥

यानि—स्वविनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥
यानि—स्वविनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥

यन्—यन्विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥
यन्—यन्विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥

एव गामपवागवम् ॥
त गामपवागवम् ॥

इति श्रीपाणिनीयद्वयमि विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥

१२ विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥
विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥
विनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥

- १ यद् हस्वदीर्घाद्विद्वत्ते स्वरेणोपदेशित कुचटान्दलपम् ।
तयोपर कुचटान्दलपम् ॥२२॥ (नित्यविधाम)
- २ इत्याद्यमो ह्यविधो प्रवीण मन्त्रो वि स्तोत्र राममूनवानोम् ।
निविनयय नृजगता एव गामपवागवम् ॥२३॥ (द्वितीय विधाम)





स्वन्नि श्रीमदमन्दमोदविनमददेवेन्द्रमीनिष्फुन्,
मागन्वागयवाकुराकपगिगानाअप्रानायाता ।
यस्य श्रीजगदीश्वरस्य चरणाम्भोजन्मचिह्नच्छान्त,
तन्मो पीनननूगूननुभाग् गोकर्णजन्मर्णक ॥१॥

× × ×

तत्र श्रीमत्सरनिरमिकंगानिकं ध्येनवदी,
पूर्णं पूज्यनमजलरूहेतीतपद्माकर्त्तवे ।
मेवाप्रोदमनमि हनित कर्मणा नमंवाद,
वृत्त्वा तत्त्वाश्रयगविधये प्रेषयन्नेष मेघ ॥२॥

× × ×

पश्चाद् गुणेष्टिमुधाप्रवाहैराप्ताव्यमान दलमेव देयम् ।
स्मायंश्च वार्येष्टु जिनायनामे (?), भुजिप्यमुन्वोऽम्ब्विनि मगन्ध्री ॥३॥

१३. गुणविज्ञप्तिलेखनस्य चित्रकोशकाव्य—मेघविजयजी ने नादटी से यह लेख श्रीपुरन्वित तत्त्वानीन गण-
नायक श्री विजयप्रभमूरि को लिखा है। इनमें तीन अतिशय हैं। प्रथम अधिगन् प्राप्ति नहीं है और तृतीय अधिगन् भी
अपूर्ण रूप में प्राप्त है। यह लेख चित्रवन्त काव्यो में लिखा गया है। निहामन, श्रीवन्त, मन्व्ययुगल, स्वस्तिग, वीजगुण
नन्दावर्ण, भद्रानन, नरादनम्पुट, दर्पण, गोमूत्रिका ज्मल, अष्टाङ्गचक्र, नागसगम, मालनी, मूर्ध्मुखी पुष्प, चतुर्दन्तवट्टुमुम
आदि चित्र एवं प्रस्तोत्तरजानि श्लिष्ट काव्यो में यह लेख गुम्फित है। द्वितीय अधिगन् में ४७ पद्य हैं और तृतीयानिकार
के ६ पद्य प्राप्त हैं। इनकी एकमात्र प्रति श्रीअग्रचन्द्रजी नाहटा, बीकानेर के मन्त्र में है। इनका आद्यन्त इन प्रकार
है —

आदि—यत्र चित्रभग्नचिद्विचैत्य-व्रेगिगन्तनग मनुजानाम् ।
नृत्यगुञ्जदुग्मज्जुमृदगनिम्बनैर्घनमिहाह्वनीव ॥

अन्त—शिवगजो लघ्वरजांगवानि, द्युभागाय शन्तशय ममानु ।
वभार शान्त श्रुतमारभाव, नदानमानन्ममा न दान ॥६॥

१४. विज्ञप्तिपत्रम् — मेघविजयजी ने नाहुलाई में यह पत्र वगंवटी (वगडी) नगर में विराजमान गणाविप
श्री विजयप्रभमूरि को लिखा है। पद्यनख्या १०१ है। प्रारम्भ में पद्य १ में २२ तक युगादिनाय का वर्णन, पद्य २३-४७
तक वगडी का वर्णन, पद्य ४८ में ७६ तक नाहुलाई का चानुर्मासिक वार्षिक वृत्तों का समाचार है और अन्त में १ में २२
तक गच्छाविप विजयप्रभमूरि का वर्णन है। इसकी एकमात्र प्रति राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर में २० न०
२०४१५ है। इनका आद्यन्त इन प्रकार है

स्वन्तिश्रियामाश्रयणीयभूति, सुरदुवन्तिमितकामपूर्ति ।
स्फूर्तिर्यदीया महमस्त्रिलोन्था, सर्वापि निर्वापितशत्रुकीर्ति ॥२॥

× × ×

तत्रामिरामप्रभुपादरेणो, पावित्र्यत पञ्चवटीकृतायाम् ।
स्फुटीमवेद् देवनटीस्तुताया, पुर्वा पर वगंवटीतिनाम्नयाम् ॥४॥

वरोति विनतिमिदमयय मेधाणिना विजयस्त्रिधायम् ॥७८॥

ययामि विजयन वरपाणिपद्म-भाहात्म्यमीहितसमुद्रिक जनानाम् ।

तविश्वपूयचरणरवधारणीया स्वीयानु प्रणमनप्रहृतिस्त्रिधायम् ॥१०१॥

१५ विजयप्रथम—यद्यदिजयजी ने यह पत्र उज्जपुर से रामपुर में विराजमान श्रीविजयप्रथमसूरि का लिखा है । पद्यमस्या १६ ३८ और ३६ अर्थात् ६ पद्य हैं । मम रामपुर का वणन उज्जपुर का वणन समाचार एवं आचार्य विजयप्रथम के कीर्ति-सौरभ का वणन है । अन्तिम भाग श्रुण है । इसकी मात्रा प्रति रा प्रा णाया कार्यालय बीकानेर मानीव खजाची सग्रह १ २८६ पर है जिसकी पत्रमस्या ४६ है और नवन १८वा गनी है । इसका आद्यन्त इस प्रकार है —

जयति जगति सीमा यस्य रामस्य नीने

सतनविजयि राय नववर्णेन वण्यम् ।

पुनर्मिदमिदमीयान्वाविधात्प्रतात

गुणगणगणनाया तस्य व गीतव स्यात् ॥१॥

मनसि हरिपाय स्वीयविनातिमेता

रक्षयति शुचिवृत्त्या भयनाया मुत्रिय ॥१६॥

सन्नातपात्र प्रसरत्प्रमाणोभिरा प्लिहिमाशुपाद ।

नर्यस्त्रिधाय निशुना मियने सा मानसाध्य ॥२६॥

१६ विजयप्रथम—यह पत्र भी मेधविजयजी ने उज्जपुर से मल्लिनापुर (मिठना) में स्थित आचार्य श्री को लिखा है । यह पत्र श्रुण है, पद्य म ३१ ३२४ कुन ६७ है । हरिणी और वसन्ततिवरा छन्द में गुम्फित है । इसकी एक मात्र प्रति रा प्रा० वि प्र णाया कार्यालय बीकानेर खजाची में १ २८४ पर है जिसकी पत्र स ४६ है और नवन १८वी गनी है, आद्यन्त इस प्रकार है —

जयति नगरे यस्मिन्हरिप्रवचन

निविधननुभूतापस्यापव्यपादुनचतनम् ।

धनुगुणगुणमोनेधानात तातवचन

समहिमहिम अयायायाप्रभान्तिवचनम् ॥१॥

यस्यामेनमविवेकमहेम्यनाक

निर्मापिताहृत महाभयनानि भूतम् ।

उच्च प्रमृत्वरमुपातरावरेण

व्याधामपारि वरषाम हनन्ति कामम् ॥१॥

निय्यो भजिय्यो रक्षितप्रनुविनिय्य

नाम्नाय मेधजय विन त तनीनि ।

विनविनितवनपवन रमन

नगान विधाजननिगन्तवन विधाय ॥४॥





१७ विज्ञप्तिपत्रम्—पत्र ग्रपूर्ण होने में यह ग्रम्पष्ट है कि कवि ने यह पत्र कहा में कहा को और निम्नको लिखा है ? 'तपगणभृत् पञ्चाग्न्यस्य पात्रे' में अनुमान कर सकते हैं कि विजयसिंहद्वारि को यह पत्र लिखा हो। पद्य २८ और २१ है। उसमें पर्युषणा के धार्मिक कृत्यों के नमाचार है। उसकी भी एकमात्र प्रति रा० प्रा० वि० प्र० शाखा कार्यालय, बीकानेर, राजाजी संग्रह 'ज' २८८ पर है। पा सग्या ८-९ है। आयन्त निम्न है —

अथ गगनरमायाश्चित्रमायानुसारी,
निजकर्मनिकरेण ध्वान्तधारापहारी ।
समयरमित्रयोगी स्वान्तपद्मप्रचारी
धृततनुरिव बोध नूर्य आसीत्प्रकाशी ॥२॥
श्रीमान् सूरैर्जयति विजयी लक्षणं पञ्चशास-
श्चञ्चललक्ष्मी भरविनर्णनन्दित श्राद्धास ।
मेव नश्वद्विविधनिवहैरगवान्पारिजात,
प्रातर्भास्वानिव हृतनमस्तेजसाऽपारिजात ॥२॥
वामोल्लामप्रवटकपटादुद्गिरन् पोष्यराग,
लक्ष्मीलीलाभवनविभया सूरिराजस्य पाणि ।
अम्भोयोनेरपि च लभता मौरभेणोपमान,
व्यामाभाना यदिह रमते भृगमालाक्षमाला ॥२॥

१४, १५, १६ सत्याक तीनो विज्ञप्तिपत्र अनुमानत स्वयं कवि द्वारा लिखित हैं, अक्षरो शब्दो और चरणो को स्थान-स्थान पर काट कर या हस्ताल फेरकर पुन नव्य शब्द या चरण लिखे हैं।

व्याकरण

१८ चन्द्रप्रभाव्याकरण—जिस प्रकार पाणिनीय अष्टाध्यायी को भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी का रूप प्रदान किया है उसी प्रकार मेघविजयजी ने अपने निर्य भातुविजय के लिये हेमचन्द्राचार्यप्रणीत सिद्धहेमचन्द्रव्याकरण को कौमुदी का स्वरूप प्रदान किया है, इसीलिए इसे 'हेमकौमुदी' भी कहते हैं। इसकी रचना म० १७५७^१ दीपमालिका के दिन आगरा^२ में हुई है। इस ग्रन्थ का संशोधन श्रीभाग्यविजय और मेरविजय^३ ने किया है। इसका श्लोकपरिमाण आठ

१ श्री मेघविजयनाम्नोपाध्यायोऽध्यायतत्पर परम् ।

चन्द्रचन्द्रप्रभा चक्रे भानूदयद्विविद्विकरी ॥११॥

भट्टोजिनामा भवदीक्षितेन, सिद्धान्तयुक्ता वरकौमुदीया ।

श्रीसिद्धहेमानुगता व्यघायि, सेवाश्रिया भानुविभोदयाय ॥१२॥

२ विजयन्ते ते गुरव शैलशरर्षीन्दु (१७५७) वत्सरे तेषाम् ।

आदेशाद् देशपते स्थिति कृता राजधान्यन्त ॥७॥

३ चातुर्मास्यामस्या नाम्ना श्रीआगरा वराऽऽख्यायाम् ।

नानायोगैरचितं रचिता चन्द्रप्रभा सुधिया ॥८॥

४ हेमचन्द्रसुपुरो विनयत्य सिद्धे, शास्त्रार्णवोऽलभत पूर्णदशा रसेन ।

वीपोत्सवस्य दिवसे कुशलेन योऽसौ, श्रीभाग्य-मेरुविजयादिभिरीक्ष्यमाण ॥१५॥

हजार' है। ध्यानरत्न की दृष्टि से यह नया संपन्नतम रचना बड़ी ही समृद्धि है। यह ग्रन्थ अथर्वर मन्त्र-श्रुति की तरफ से प्रभावित हो चुका है।

१६ हेमचन्द्रप्रिया—यह ग्रन्थ नवीयुगीन का संगीत यह सिद्धहस्त-गान-गान-गान का प्रतिपाद है। 'नारायणप्रिया' ३५० है। 'नवीयुगीन' प्रणि-भाष्यकार श्रीरघुपति रचित 'नवीयुगीन' पुनः म है जो कि प्रमाण-योग्य है।

२ हेमचन्द्रप्रिया—लघुवीयुगीन के संग ६ ० 'नारायणप्रिया' की यह रचना है। विनयप्रभूति' के भाष्यकार म 'नारायण' रचना हुई है। 'गह' चापला सीमा बौद्धा (ब'छ) की तरफ से यह प्रमाणित हो चुकी है।

व्याप

२१ मणिपरोक्ष—यह ग्रन्थ म नव्य-यायप्रवक्तव्य नव्यानिवृत्तस्य गयेश्वरभाष्याय रचित 'तत्त्वचिन्तामणि' का मणिपरोक्ष की तरह मणि का परोक्ष विषय है। 'उत्थावायव्य' निरुणावनी वाचस्पतिवृत्त 'यायवातिनभाष्यपदीका' महामहाभाष्याय 'नवीयुगीन' तत्त्वचिन्तामणिप्राग्य मणिपरोक्षमिश्रित 'यायवत्य' ग्रन्थि प्राचीन 'याय' व 'ग्रन्थ' के आधार से कई रचना का जोहरी व 'हमा' परीक्षण कर प्राचीन धनी स मुक्तिपुनः सम्पन्न किया है। 'गम' चार विषय हैं। 'नवीयुगीन' विनयप्रभूति' का ज्ञान म 'व्यपि' भानुविषय' व 'पटमाय' हुई है। भाषा प्रौढ एवं प्राञ्जल है। इसका स्वयं भाष्यकार द्वारा निम्न पत्राप्रति भुवनमति भण्डार (वरा भण्डार) बीमार व न० २१ म है। पत्र सत्या है।

२२ मुक्तिप्रबोध सिद्धांत—यह ग्रन्थ म भाग्य निवामी समयसार नाटक के अनुवाक्यार्त्ता प्रसिद्ध कवि बनारसीनाथ की जन मित्रात प्रतियुक्त मायनाभा का श्रीर गिरधर मायनाभा का सङ्का ग्रन्थ के आधार से सम्पन्न

१ स्वामी साष्टसहस्रलक्षणपर बन्धुभाष्यक पुर
सेत्र साष्टसहस्रमानसहित कुम्भच बध स्तुत।
प्रयेज्यस्तस्यसम्पत्तितया सरलक्षणानि
कुर्वात सोऽपुदय दिया समुदय वीरहित्रीकी जुह ॥१४॥

(चन्द्रप्रभाष्यारण पूर्वाप प्राप्तप्रशस्ति)

२ द्वितीय मध्य-याकरण पञ्चविंशत-श्लोकमितम्।

(हेमचन्द्रचन्द्रिका प्रस्तावना पृष्ठ १)

३ श्रीविजयप्रभूति प्रथम गिष्य कृपादिविजयकये। शीमेधविजयवाचकधर कृता चन्द्रिका चक्र ॥१॥

४ भले परीत मणिपरोक्षधर दुर्गा रस स्वारसिद्धदेव।
गोत्रर धीगृहसन्निधाना ध्यानेश्वपायां निवृत्तनुषा ॥१॥

५ श्रीविजयप्रभूतिस्तपामणोरस्य सेवकी मेघ।
सम्पत्तवमुद्रिसिद्ध कृतयानेना मणिपरीक्षाम ॥३॥

६ भानुदयसम्पत्तय बद्धम यशस्यल मृजेत।
अस्यामस्यामधीरहस्तुष्टरयेह मुद्रिये ॥२॥

७ हेले मोहनालन द देगा जन साहित्यनी सक्षिप्त इतिहास पृ ५७६ ५७८

८ हेले सागरानन्दमुरि लिखित मुक्तिप्रबोध का उपक्रम—पत्र ११



क्रिया है। मृत ग्रन्थ के कुल २५ पत्र हैं जो प्रायःतमसा में हैं और उन पर स्वयं ग्रन्थकार ने सम्मृतभाषा में ८३००^१ श्लोक पंक्तिों की विचार-विवेचना एवं टीका की रचना की है। ग्रन्थ में रचनामय का निर्देश नहीं है किन्तु विजयलक्ष्मी के नामाग्रह का उल्लेख होने से इसकी रचना म० १७३२ के पश्चात् ही हुई है। यह ग्रन्थ शृंगभदेव केसरीन पेट्टी रत्नाम में प्रकाशित हुआ है।

२३. धर्ममञ्जूषा—अदि ने उपध्यायपद प्राप्ति के पश्चात् इसकी रचना मेडना^२ में की है। इस ग्रन्थ में नेल्लु ने तुल्य मन्त्रदाय के शिष्य अविनाश के ५८ प्रश्नों के उत्तर अनेक शान्तों के आधार में दिये हैं। मुख्य ५८ प्रश्न हैं और १३ गीत ग्रन्थ हैं। ये प्रश्न जिम्मे किये हैं या शिष्य ने उन प्रश्नों का कोई ग्रन्थ बनाया है जिसके उत्तर में इसकी रचना हुई है, स्पष्ट नहीं है। ग्रन्थ प्रश्नोत्तररूप गद्य समुच्चय में है। भाषा सरल और युक्तिपूर्ण है। नेल्लु ने अन्त में लिखा है कि विनोय समाधान हानपिट्ट हृष्टिका^३ में देवना चाहिये। हानपिट्ट हृष्टिका ग्रन्थ अज्ञात है। यह ग्रन्थ अत्राजित है और इसकी प्रतियाँ अनेकाने वननागर भटार, बटांदा एवं आगरा के भटारों में प्राप्त हैं।

ज्योतिष

२४. मेघमहोदय-वर्षप्रदोष—उन ग्रन्थ में रचना मयत् का निर्देश नहीं है किन्तु ग्रन्थि में गच्छतायक विजयलक्ष्मी और आचार्य विजयलक्ष्मी का उल्लेख होने से यह निश्चित है कि इसकी रचना म० १७३२ के पश्चात् ही हुई है क्योंकि विजयलक्ष्मी को आचार्यपद म० १७३२ में प्राप्त हुआ था। ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ का सम्बन्ध और विषय 'स्यानागमुद्र' (जैनागम) में बताया है। प्राचीन एवं आर्वाचीन ग्रन्थ तथा भङ्गनी आदि शोधप्रचलित अनेक ग्रन्थों के आधार से इसकी रचना हुई है।^४ उद्धृत ग्रन्थों में मुख्य-मुख्य ग्रन्थ निम्न हैं—

१. चतुःसहस्री श्लोकानां शतत्रयसप्तमन्विता ।
प्रमाणमन्य ग्रन्थस्य निमित्तं तन्मृता न्वयम् ॥८॥
२. तत्पट्टनूपा महानिपूपा, सुवर्णनर्मत्यविधाननूपा ।
विराजते श्रीविजयादिरत्न, प्रभु प्रभाप्यापितदेवरत्न ॥२१॥
तेषां राज्ये मुदाङ्कारि, वाट्मय युक्तिरोधनम् ।
मेधाद्विजयमजेन, वाचनेन तपन्विता ॥१२॥
३. प्राप्नोषाध्यायपदान्ते चतुर्थमर्ममञ्जूषाम् ॥२॥
४. श्रीमेघपूर्वविजयाह्ववाचनोऽग्नौ, श्रीमेघनीपुरवरे न्वदृश प्रमत्यं ॥४॥
५. तेषां श्रीहीरविजयमूरीश्वरवच प्रबुद्धश्रीनुमाधपाक्षिकय्रीमेघजोनामाचार्यसहचारवदश्रीतिपागच्छतामाचार्यगीतारक-
संहान्तिकमुख्यनीहानपिट्टहृष्टिकान प्रतिपन्नव्यम् ।
६. श्रीमत्तपागणविभु. प्रभारत्प्रभाव, प्रद्योतते विजयत प्रभनाममूरि ।
तत्पट्टपदमन्तराणि विजयादिरत्न, स्वामी गणस्य महमा विजितछुरत्न ॥६६॥
७. स्यानागमुद्रविष्णोहृतवर्षदोष-ज्ञानाय उत्पन्नकरण विहितं वितत्य ।
भवत्वा व्यदोषि जिनवर्गममेव नेन, लोसु नुद्धी भवतु दादवतवोधलक्ष्म्या ॥६८॥
८. स्वचित्प्राश्नार्चवार्चपरिशायरमात् श्लोककथनं,
स्वचित्प्राश्नार्च. अर्थं प्रकरत्तमभूदेतदतिरत्नम् ।
मता प्राप्ताप्याय स्वचिदुचिन लोकोक्तिरचिनं,
जितयद्वाजाजामपि चतुरराज नमुचितम् ॥१०१॥

२८ उदयदीपिका—इसमें प्रथम निकालने की पद्धति का विस्तृत वर्णन है। स० १७१० में याचन मदनमिह्र के निम्न प्रश्नोत्तररूप में ग्रन्थकार ने इसकी रचना की है। यह ग्रन्थ अद्यावधि अप्रकाशित है।

२९ प्रश्नमुन्दरी—इस ग्रन्थ में प्रश्न-विधि का संक्षेप पद्धति में वर्णन है। इसकी रचना भी श्रीविजयप्रभमूर्ति के शासनकाल में हुई है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। दिग्विजय महाशाय की प्रस्तावना (पृ० ८) के अनुसार इसकी एक प्रति आचार्य क्षमाभद्रमूर्ति के पास है।

३० बीना यन्त्र कल्प—यन्त्र-ज्ञान में अर्जुनपताका और विजयग्रन्थ भी कहते हैं। इस ग्रन्थ की रचना विजयप्रभमूर्ति के साम्राज्य में हुई है। इस ग्रन्थ में १५ का यन्त्र, १६-१७ का यन्त्र, का यन्त्र, १८ का यन्त्र, २० का यन्त्र, पञ्चाक्षर बीना यन्त्र, अर्ध एव २० विहरमान के आधारे में २० का यन्त्र, विजय यन्त्र आदि की रचना विभिन्न रूप में किन् प्रकाश होती है, इसका विस्तार के साथ वर्णन दिया है। अन्त में पञ्चाक्षरी स्तोत्रान्तर्गत 'भूविन्द' पद्य की व्याख्या करने हुये पञ्चमावली बीना यन्त्र का विस्तार में आलेखन दिया है।

बीना यन्त्र का विचार करते हुये निम्न है कि बाहुबली आदि मुनिगण इस बीना यन्त्र को गतिभेद में स्वीकारने हैं। तो ये बाहुबली मुनि कौन हैं और इसका यन्त्र नम्यन्त्री कौन-सा ग्रन्थ है? यह शोधमन्त्रियों के निम्न विचारणीय है।

यह ग्रन्थ अनुवाद नहीं महावीर ग्रन्थमाना धूलिया में प्रकाशित है।

अध्यात्म

३१ आर्हद्गीता—भगवद्गीता के अनुकरण पर ३६ अध्यायों में ग्रन्थकार ने इसकी रचना की है। भगवान् कृष्ण एवं अर्जुन की तरह इसमें गणपति गौतमस्वामी द्वारा प्रथम और श्रमण भगवान् महावीर द्वारा उत्तर शैली में सरल शब्द रचना द्वारा जैन-दर्शन का सुन्दर दिग्दर्शन है। प्रत्येक अध्याय में २१ पद्य हैं। इसका दूसरा नाम तत्त्वगीता है। रचना सवत् का निर्देश नहीं है। यह ग्रन्थ महावीर ग्रन्थमाना, धूलिया में प्रकाशित है।

३२ मातृका प्रसाद—मातृका वर्ण, 'ओम् नम मिद्धम्' वर्णान्ताय पर विवेचन करते हुये, 'ओम्' के

१ नत्वाहन्त पादवर्णान्स्वरूप शिखरस्थितम् ।

श्रीयाद्वमदनात्सिंहे धर्मलाभ प्रतन्यते ॥१॥

(उदयदीपिका मंगलाचरण)

२. अथ केचिद्विद यन्त्र विशतेर्गतिभेदत ।

प्राहु श्रीबाहुबल्याद्या मुनयो नयकोविदा ॥ (पृ० ३४)

३. इतोऽधिरु किञ्चन मातृकाय, व्याख्यानमादेशि मया वित्तय ।

श्रीतत्त्वगीताहितसत्प्रतीक्षाध्यायेषु सद्ध्येयधियोत्तरेषु ॥ (मातृकाप्रसाद)

—(देवानन्दमहाकाव्य-प्रस्तावना पृ० ६ की टिप्पणी)

गृह्य वा विलेपन करते हुये आध्यात्मदान का प्रतिपादन किया है। स० १७६७ धननगर म 'सक्ती रचना' हुई है। यह प्रति कहाँ प्राप्त है? इन सम्बन्ध म प० वचरणासजी ने 'देवानल्लमहाकाव्य' की प्रस्तावना म कोई उल्लेख नहीं किया है।

३३ ब्रह्मबोध—यह ग्रन्थ अद्यावधि अज्ञात है। सम्मानान् अमरचल गाढ़े प वचरणास जीवरान् दोगा प० भगवानदास जन आदि ने इनको मेषविजयजी की आध्यात्मिक रचना मानी है परन्तु किस आधार से? यह स्पष्ट नहीं है। सम्भव है ब्रह्मगीता की पूर्व पीठिका म ब्रह्म वा निरूपण होन म इसी आधार पर यह परम्परा चल पड़ी हो।

ऐतिहासिक

३४ तपगच्छपट्टावलीसूत्रवत्युत्पत्तयान—जसा नि नाम स ही स्पष्ट है नि मेषविजयजी स पूर्व प्रणीत तपगच्छ पट्टावली जिसम जगद्गुरुहरीरविजयसूरि तब का वणन था उसकी पूर्ति के रूप म मेषविजयजी ने 'सक्ती रचना' की है। 'सक्त भूल चार पद्य प्राकृत भाषा म हैं और उनकी व्याख्या संस्कृत पद्य म है। आचार्य विजयसेनसूरि विजयसूरि विजयसिंहसूरि और विजयप्रसन्नसूरि का स० १६३२ स १७३३ तक अनुक्रम में ऐतिहासिक गुरुपरम्परा का वणन है। यह विजय महाकाव्य के परिशिष्ट म प्रकाशित है।

टीका ग्रन्थ

३५ विजयदेवमाहात्म्यविवरण—वरतरंग छीय आनविमतोपाध्याय के निम्न श्रवणभाषाध्याय ने स १९८७ के आसपास तपगच्छीय विजयसूरि के योगवणन रूप इस महाकाव्य की रचना की है। इस काव्य पर विवरण अर्थात् दुगम गान एवं रचना का मेषविजयजी ने स्पष्टीकरण किया है। रचना सबत् का रित्तन नहीं है किन्तु १७०६ की लिखित हस्तलिखित प्रति प्राप्त होने से यह स्पष्ट है कि इसकी रचना 'सक्ती' के आन-गान हुई होगी। यह ग्रन्थ जन साहित्य सगोष्व समिति की तरफ म प्रकाशित हो चुका है।

३६ वृत्तमौक्तिक दुगमबोध—छन्दमय भट्ट चल्पाखर प्रणीत वृत्तमौक्तिक नामक छन्दोषध के प्रथम खण्ड के प्रथम भाषा प्रकरण के पद्य ५१ से ८६ तक अर्थात् ३६ पद्या की टीका है। इन ३६ पद्या म प्रस्ताव का निरूपण हुआ है। प्रस्ताव जन दुगम विषय को मेषविजयजी ने रोचक एवं सरल बना दिया है। 'सक्त टीका' की रचना १७५५ म भागुविजय के पटनाय हुई है। इसकी एकमात्र प्रति रविव मेषविजयजी द्वारा लिखित भेर सभ्रम म है। यह टीका मरे द्वारा संपादित वृत्तमौक्तिक म राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान जोधपुर द्वारा प्रकाशित हो चुकी है।

- ॥ धौ नम सिद्धिमादेवर्णाम्नायस्व वणनम्
वक्त्रे श्रीमेषविजयोपाध्यायो धमसाधनम् ॥
सप्तसरेऽबलाप्यवमूर्मिते पीप उज्ज्वले ।
श्रीधमनगरे ग्रन्थ पूजाग्रिमनिधिया ॥ (मातृकाप्रसाद प्रगति)
- १ विजय महाकाव्य प्रस्तावना
 - २ देवानल्लमहाकाव्य प्रस्तावना
 - ३ मेषमहोदय-यद्य प्रबोध प्रस्तावना
 - ४ ब्रह्मगीता पूर्वपीठिका पद्य ७-१४
 - ५ श्रीरामोपाध्याय के परिचय के लिए देखें अरिजनस्तव
 - ६ तमिषर्वावभूवर्षे श्रीद्विरेयाभवर्तधिये ।
भावादिविजयाध्यायेतुत सिद्धिमांस्ता ॥ (टीका प्रगति)





३७ भक्तामरस्तोत्र टीका—आचार्य माननुगसूत्रिणीत भक्तामरस्तोत्र पर यह टीका है। इस टीका की प्रति मेरे देखने में नहीं आई है।

३८ पञ्चतीर्थस्तुति सटीक—इसका उल्लेख दिग्विजयमहाकाव्य की प्रस्तावना में अवालाल प्रेमचंद शाह ने किया है। स्तोत्र के प्रत्येक पद्य के ५ अर्थ हैं जिनमें ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर की स्तुति की गई है और इसकी टीका की भी रचना स्वयं ने ही की है।

३९ देवा प्रभो स्तवावचूचि—जयानन्दसूरिरचित स्तोत्र पर यह अवचूचि है। इसकी रचना स० १७२४ में हुई है। इसकी प्रति बड़वाण के ज्ञानभंडार में प्राप्त है।

स्तोत्र

४० चतुर्विंशतिजिनस्तव —कवि ने एक-एक पद्य के द्वारा चौबीस तीर्थंकरों की क्रमशः स्तुति की है। रचना यमकालकारप्रधान है। इसकी एक मात्र प्रति मेरे संग्रह में है। इसका आद्यन्त इस प्रकार है —

देवाधिदेवाधिकभाग्यलक्ष्मी, नाभेयनाभेयरुचस्तनो स्ते ।

भावेन भावे न विभावयेत, केनाधिकेनाधिजगत् मतानो ॥१॥

अन्त —एव श्रीजिननायका स्तुतिपथ नीताश्चतुर्विंशति
श्रीनाभेयमुखा मुखाय सुमुखा देवायदेवान्तिमा ।

सूरिश्रीविजयप्रभप्रभुपदप्राप्नोदये नन्वमी,

मेघारख्ये सङ्गुपा कृपादिविजयप्राज्ञेन्द्रशिष्ये मयि ॥२॥

४१ आदिजिनस्तोत्र—यह स्तोत्र अपूर्ण रूप में ही राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर अ० न० २०४१५ में प्राप्त है। आद्यन्त इस प्रकार है —

स्वस्तिश्रियाभ प्रतिरुपस्था, सर्वेऽपि देवासुरमर्त्यभूषा ।

तासां विवाहस्थितिहेतवेय, प्रादुश्चकाराऽऽदिजिन विधाता ॥१॥

नय किमेन हृदये निधाय, मदोद्धुर दुर्द्धरतेजस तम् ।

आद्य प्रभुर्वाहुवलिं निनाय, पद पद रवेन मम समगलम् ॥२॥

४२ रावणपार्श्वनाथ स्तोत्र—शार्दूलविक्रीडित छन्द में ६ पद्यों में रावणपुर स्थित पार्श्वनाथ की स्तवना है। रावणपुर-संभवतः अलवर का ही दूसरा नाम है क्योंकि कवि ने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के निकट स्वीकार किया है —

जाने तज्जनकात्मजाव्यतिकर प्रोद्भूयमानानया—

न्मत्वात्वं ननु मगमेव भगवन्नैतस्थले तस्थिवान् ।

सेवार्थं भुवि रावणाख्यनगर तत्तेन सवासित

पार्श्वे चेन्द्रपथ सुतेन विहित तेनेन्द्रजिच्छर्मणा ॥५॥

यह स्तोत्र 'महाचमत्कारिक वीशायन्यकल्प' नामक पुस्तक में प्रकाशित हो चुका है।

गुजर भाषा की कृतियां

४३ कुमति निराकरण कृष्णी स्तवन—७६ गाथा व ११५ स्तवन भ शिवेश्वर समाज की मायनामा का चरण है। श्रीमहात्मनान् ८ द्वादश लिखित जन गुजर कविभा भाग ३ के अनुसार इसकी प्रथि मटोपाध्याय रामलालजी मयह बीनानेर म है।

४४ पावननाममाला स्तवन—दीव म इसका रचना हुई है। पद्य संख्या ३५ है। स १७२१ की लिखित प्रथि स प्राचीन तीर्थमाता भाग १ म प्रकाशित हुई है धन स १७२१ म इसकी रचना हुई है।

४५ विजयदेवमूर्ति निर्माण स्वाध्याय—इसम कवि न विजयदेवमूर्ति का सतिष्ठ जीवनचरित्र प्रभाव धादि का उल्लेख करते हुए स १७१० छायाड रात्रि १ का दिवाण का विस्तार म आनखन किया है। इसम ४ ठानें हैं दोहा सहित कुल गाथाय ५२ हैं। जन ऐतिहासिक राममाता भाग २ म प १ २१ ७ म प्रकाशित हा चुका है।

४६ विजयदेवमूर्ति स्वाध्याय—११ स्वाध्याय म तत्कालीन गणनायक विजयदेवमूर्ति क गुणा का कीनन किया गया है। गाथा ४० है। ऐतिहासिक सभाष्यमाता भाग १ प २१ २२ पर मुद्रित हो चुकी है।

४७ कृपाविजयनिर्वाण रास—महा उत्तम सम्बालान प्रेमचन्द दाह ने निम्निय महाकाव्य की प्रस्तावना म किया है। समथन इसम कवि न अपन गुरु का जीवन दिग्दर्शन करात हुए निर्वाण का वणन किया होगा।

४८ ५२ ४८ जनधर्मदीपक स्वाध्याय ४६ जन गामनीपक स्वाध्याय ५ आहारगवेषणा स्वाध्याय ५१ श्रीबीन जिनस्तवन तथा १२ गामन स्तवन आदि क भी उत्तम प्राप्त हात हैं।

५ मंगनी पावननामस्तवन—११ स्तवन का ५ गाथायें हैं। ११वीं प्रथि मर सग्रह म है।

६ बचरदाम जावरान दागी ने दवान् महाकाव्य की प्रस्तावना पृ ६ म लिखा है कि ग्रन्थकार का एक स्वहस्तलिखित पत्र भी विद्यमान है और वह पत्र ग्रन्थकार न स १७५६ भाग मुद्रि ७ का स्वातिपर से अपने निष्प मुद्रि मुद्रविजय जा जिहानामा (निना) गम म चानुमर्ग म उन पर लिखा हुआ है। यह पत्र गुजर भाषा म है।

गाय करन पर कवि प्रणीत और भी अन्याय य म नया विनक्तिपत्र प्राप्त हा सचते है कदाकि कवि प्रनियप चानुमर्ग म मध्य म तत्कालीन गणनायक का क्रीड एवं प्रीतिन सम्बन्ध भाषा म कवित्व तथा वक्ष्यपूर्ण विनक्ति-पत्र प्रपित किया करना था। वनमान म कवन ७ ८ ही पत्र प्राप्त हुए है तथा श्रीमयस्वर जी माहान की सूचनानुसार धायमप्रभाकर मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी को कुछ नय विनक्ति-पत्र और प्राप्त हात है।

ग्रन्थ क सतिष्ठ पत्रिचय म सप्रष्ट है कि मत्पाध्याय मधविजयजी का प्राहुन सम्बन्ध और मर गुजर भाषा पर लया वाग्मय क प्रत्येक क्षण पर गूण समिहार था। रवि की प्रथिमा तथा मत्रि क प्रयत्न ग्रन्थ पर बनापन और भावपन की शक्ति स विचार विमय एवं सूत्रावन किया जाय ता स्वतन्त्र ग्रन्थ तयार हो सनता है जो कि इस निबन्ध क निय उपयुक्त महा गमा धन इस निबन्ध का सवक १७६१ म अत्रयमाण गणि प्रणीत मधविजयपाध्यायमुद्रि द्वारा प्रकाशनी देता अन्धा पूष करता हुआ—

मधविजय उवःमाय गिरोमणि पूरण पुण्य निधान क भारा

ग्यान क पूरने दूर जियो सब जीवन क मति को अविधारा।





जा दिन लागि उडुगण मे रवि चद अनारत तेज है मारा,
ता दिन लो प्रतपो मुनिराज कहे कवि आज भवोदधि तारा ॥१॥

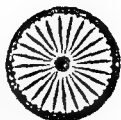
भानु भयो जिन के तप-नेज तै मद उद्योन मदा जगती मे ।
दूर गयो मरुदेश ते नीकरि मूढपणो घरकी घरती मे ।
जा दिन तें कुनि मुह क्यौं इत को तुम सुन्दर पूरव ही मे,
ता दिनते दुख रोरव देय के दूर गये तजि के किन ही मै ॥२॥

नाम जपै जिनके मुख होय वने अति नीको जगति मे मारे,
भूरितगे मन्त्रो इतमाम अमाम वधे सुविधि दिन मीरे ।
बानी मै जाकै मिली नव आय मुघाई मुघाई नजी नुर मारे ।
मेघविजय उवभाय जयो तुम जा दिन लो दवि लोक मे तारे ॥३॥

धर्मशर्माभ्युदय-रचयिता महाकवि हरिचन्द्र

डा० स्वप्ना बनर्जी

एम० ए० डी० विम० इमाहाबाद विश्वविद्यालय

[illegible]

नमोऽस्य न इतिवत् द्विवचनं आभातिर नाम्न माय म त्वा इतिवत् भिन्न वा ताम दाय है ।
आभातिर ईत्य वा प्रथम वचनात् म क्त्वा ग्या है—यद् मिद है । यद् इतिवत् न ताव भिन्न वि-या वा

- ୧ ଘଟାମୁହଁ (୨୧ ବା) ବ୍ୟବସାୟ ଓ ନିବାସ ।
- ୨ ଗାହ୍ୟାଳୁ ନିବାସ ଘର ଗାହ୍ୟାଳୁ ନିବାସ ବିଭାଗ ।
- ୩ ଗାହ୍ୟାଳୁ ନିବାସ ଘର ଗାହ୍ୟାଳୁ ନିବାସ ବିଭାଗ ।

—विष्णुसहस्रनाम—३।

१. (क) अथ कविन हरिदत्ता । मिथ्यात्वादं वाच्यं नृपि ।

—मापकक मापकनित ५ ७ ५० १ ।

(१) ५०७ बरह — गृहस्था तथा व्यापारिणां लभ्यते शुभा २५ ।

॥ १ ॥

[illegible]

- [illegible]

प्रयोग किया हुआ है। कोप के अनुसार भिषक् का अर्थ वैद्य होता है।^१ ऐसा प्रतीत होता है कि सभी हरिचन्द्र नाम एक ही वैद्य हरिचन्द्र के हैं और ये ईसा की प्रथम शताब्दी में हुए हैं। ये विद्वन्मूर्खन्य जैन रहे अथवा अजैन इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता।

श्री एस० के० दीक्षित ने वैद्य हरिचन्द्र और प्रयाग स्तम्भ के हरिपेण में अभेद स्थापित किया है।^२ इन्होंने कतिपय पदों को उद्धृत करके यह कहा है कि दो बार उत्पन्न हुए गवरस्वामी के छ पुत्र हुए। ब्राह्मणपत्नी ने ज्योतिर्विद वराहमिहिर, क्षत्रिय पत्नी से राजा विक्रम और भर्तृहरि, वैश्य पत्नी से वैद्य हरिचन्द्र और शकु तथा शूद्र पत्नी से अमर उत्पन्न हुए।^३ साथ ही दीक्षित का यह भी विश्वास है कि इन पदों से किसी ऐतिहासिक तत्त्व का तो पता नहीं चलता केवल हरिचन्द्र के साथ प्रयुक्त 'वैद्यतिलक' शब्द ही ध्यान आकर्षित करता है। प्रयाग स्तम्भ के लेखक हरिपेण के साथ 'खाद्यपटाकिकस्य' विशेषण प्रयुक्त है।^४ व्यूलर ने खाद्यपटाकिक का अर्थ 'राजकीय भोजनालय का निरीक्षक' किया है। किन्तु दीक्षितजी का कहना है कि 'खाद्यपटाकिक' के साथ प्रयुक्त अन्य विशेषणों का अर्थ देखते हुए इसका यह अर्थ निरर्थक सिद्ध होता है। अतः उन्होंने इसका अर्थ 'वैद्यतिलक' अथवा 'धन्वन्तरि' माना है और इस प्रकार वैद्य हरिचन्द्र और प्रयाग स्तम्भ के लेखक हरिपेण को आपने एक सिद्ध करने की चेष्टा की है।

वस्तुतः प्रयोग का यह स्तम्भ-लेख समुद्रगुप्त की विजयों का वर्णन करता है। इस अभिलेख में इसके लिखे जाने का समय यद्यपि नहीं दिया है तथापि यह समुद्रगुप्त की विजयों का वर्णन करता है अतः यह अवश्य ही उनके राज्य काल के अन्तिमांश में लिखा गया होगा। समुद्रगुप्त का राज्य चौथी शताब्दी के मध्य में था अतः यह शिलालेख उसी शताब्दी के अन्तिम पाद में लिखा गया होगा। इस प्रकार तो इसके लेखक हरिपेण का समय भी चौथी शताब्दी का अन्तिम पाद सिद्ध होता है। अब यदि श्री दीक्षितजी के (हरिपेण को वैद्य हरिचन्द्र मानना) मत को मान लिया जाय तो वैद्य हरिचन्द्र का समय भी चतुर्थ शताब्दी का अन्तिमांश ही मानना पड़ता है। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पादताडितक तथा वैद्यक ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि वैद्य हरिचन्द्र का समय ईसा की प्रथम शताब्दी है, अतः हरिपेण निश्चित रूप से कोई पृथक् ही व्यक्ति है, वैद्य हरिचन्द्र नहीं।

यहाँ एक मत और भी विचारणीय है—वाणभट्ट ने हर्षचरित में अपने पूर्ववर्ती कवियों की प्रगति में एक भट्टार हरिचन्द्र का उल्लेख किया है।^५ भट्टार विशेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि ये या तो स्वयं राजा रहे या किसी राजा के निकट सम्बन्धियों में से रहे। इतना निश्चित है कि ये वाण के पूर्ववर्ती कवियों में से रहे। इन्होंने 'भालती'

१ "भिषग्वैद्यो चिकित्सके।"—अमरकोप, २।६। ५७

२ इण्डियन कल्चर, भाग ६, जुलाई १९३६, अप्रैल १९४०, पृ० २०८

३ "ब्राह्मण्यमभवद्वराहमिहिरो ज्योतिर्विदामग्रणी।

राजा भर्तृहरिश्च विक्रमनृप क्षत्रात्मजायामभूत् ॥

वैश्याया हरिचन्द्रवैद्यतिलको जातश्च शकु कृती।

शूद्रायाममर पडैव गवरस्वामीद्विजात्मज ॥"

—इण्डियन कल्चर भाग ६, पृ० २०८ में श्री एस० के० दीक्षित द्वारा उद्धृत।

४ एतच्च काव्यमेवामेव भट्टारकपादाज्ञा दामस्य समीपपरिसर्पणानुगहोन्मीलितमते खाद्यपटाकिकस्य भट्टादण्डनायक-धृवभूतिपुत्रस्य सन्धिविग्रहिकुमारामात्यमहादण्डनायकहरिपेणस्य सर्वभूतहितसुखायास्तु।"

—समुद्रगुप्तकालीन प्रयागस्तम्भलेख, कॉरपस इन्सक्रिप्शन्स इण्डिकेरम्, भाग ३. जे० वी० फ्लीट।

५ भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यवन्वो नृपायते ॥ १। १३ हर्षचरित।

नाम की जोई प्रेम-नया पित्त मया श्री कृष्णमाधारी का मत है।^१ किन्तु ये वैष्णवाय समा इनके लिए मधुप्रय का नाम साहाय्य-चरित्त यत्नत हैं।^२ ऐसा प्रतीत होता है कि ये वैष्णवाय श्री माया-मन्त्र नयनि राजवध हरिच-
धोर भट्टार हरिच- को एक मानते हैं और इसी आधार पर उन्होंने बागोन्निखित्त हरिच- के मधुप्रय का नाम साहाय्य
उक्तचित्त साक्षा है। जा कुछ भी हो भट्टार हरिच- का मधुप्रय पर उपनय रहा। सम्भवत बाण के समय म यह
उपनय रहा हो और बाण ने इसी व आधार पर काश्मीरी की रचना की है। बाण का समय निर्दिष्ट है। य ह्यवयन
के समय म यह और ह्यवयन ६३० ६४० के मध्य रहा पर धरे। धन बाण भी इसी समय म रह हयि। भट्टार हरिच-
बाण से एक ठेक गाना-नी पूव के अवयव हयि।

राजोपर ने अपनी काव्यमीमासा तथा कपूरमञ्जरी दोनों में हरिच- का उल्लेख किया है। दोनों म ही
हरिच- को कविया की श्रेणी में गिनाया गया है।

इसके पट्ट कालपरिचय न गवह्यहो में भात कावित्तम और सुव-पु के साथ हरिच- का उल्लेख किया
है।^३ राजावर का समय आठवा गाना-नी है। राजोपर और कावित्तम द्वारा उल्लिखित हरिच- एक ही
हरिच- हैं।

श्री भट्टनलानजी सास्त्री ने बाण द्वारा उल्लिखित भट्टार हरिच- को और धन हरिच- को एक ही व्यक्ति
माना है। दूसरा और राजावर द्वारा उल्लिखित काव्यमीमासा तथा कपूरमञ्जरी व हरिच- को उन्होंने दो भेदक व्यक्ति
माना है।^४ सास्त्रीजी का यह मत कुछ चित्त प्रज्ञात होता है। क्या हरिच- बाण से पूर्ववर्ती रह प्रयात सम्भवत उनम
एक गाना-नी पूव के रहे ह। एनी अवस्था म दोनों हरिच- भन्ना एक बने ह। सवत है? दूसरी आपत्ति यह है कि वैद्य
हरिच- और भट्टार हरिच- एक ही व्यक्ति हैं तो जितने स्थानों पर वेद्य हरिच- का उल्लेख है उनम से कभी एक
स्थान पर भी वेद्य के साथ-साथ मधुप्रय या कवि विावय प्रयुक्त होना चाहिए था। एक ही व्यक्ति यदि वेद्य है वेद्य
पर टीका लिखता है और कवि भी है तो उस व्यक्ति का उल्लेख करते समय सबन उसका एक ही व्यक्ति का प्रहण—
कुछ उचित न। प्रज्ञात होता। बाण ने भी केवल मधुप्रय हरिच- का नाम लिया है उसका साथ किसी विावय का
प्रयोग नही किया ह। धन अवश्य ही वेद्य हरिच- और भट्टार (मधुप्रय) हरिच- गृधक-गृधक दो व्यक्ति रह हय।
दूसरी और काव्यमीमासा तथा कपूरमञ्जरी व हरिच- का जो गृधक व्यक्ति मानता भी टीका नही प्रतीत होता। दोनों
प्रस्था म ही हरिच- को कवि कहा गया है यही नही उनकी स्थना उच्च श्यानिप्राण कवियों व मध्य की गई है।

१ कृष्णमाधारी—हिन्दू धार्मिक कवि गङ्गाधर प १४६

२ उनका लिखा मधुप्रय भी प्रब-पगात्र कहा गया है। यह मधुप्रय श्रेणी तक उपनय नही है। कहा जाना
है कि इसका नाम साहाय्य-चरित्त था। ये वैष्णवाय श्रेणी—काव्यमीमासा टाका पृ० २७८

३ सुपर कावित्तम काव्यमीमासा परीक्षा

इ कावित्तम काव्यमीमासा परीक्षा

हरिच- का-गुली परीक्षा कावित्तम काव्यमीमासा पृ० १४ ।

४ उक्त मधुप्रय कावित्तम काव्यमीमासा हरिच-—यन्मि दरीष्टिमाहात्म्य-चरित्तम-पि पत्ता मुक्तं ति ।
कपूरमञ्जरी पृ० २१ काव्यमीमासा निराक १६ ० ।

५ भातमि जनमिमि कला उ प्रत्यय रह्यारे ।

सौम्य-धनमिमि हरिच- ध कावित्तम ॥—उक्तवहो ८ ० ।

६ महाकवि हरिच- (सप्त—प० भट्टनलानजी सास्त्री जन काव्य (कविता कोषाद् पृ ७)





अतः काव्यमीमाना तथा कर्पूरमजरी दोनों के हरिचन्द्र अवश्य ही एक ही व्यक्ति रहे होंगे। वाक्पतिराज के उल्लेख से भी प्रतीत होता है कि ये हरिचन्द्र साहित्यकार थे। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने वाणोल्लिखित हरिचन्द्र की पहचान राजशेखरोल्लिखित हरिचन्द्र से करायी है।^१ उनका यह मत उचित प्रतीत होता है।

किन्तु संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध इन दो वैद्य और भट्टार हरिचन्द्रों को धर्मशर्माभ्युदय के कर्ता हरिचन्द्र के साथ नहीं मिलाया जा सकता। कुछ विद्वानों का कहना है कि वाण ने गद्यकार हरिचन्द्र कहा है अतः ये उन हरिचन्द्र से पृथक् है जिन्होंने धर्मशर्माभ्युदय की रचना की है। किन्तु साहित्यकार हरिचन्द्र गद्यकार और कवि दोनों ही हो सकते हैं। केवल गद्यकार कहने से कवि हरिचन्द्र का निराकरण नहीं हो जाता। इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हरिचन्द्र ने धर्मशर्माभ्युदय के प्रगतिपद्यो में स्वयं को 'रसध्वनेरध्वनिसार्यवाह'^२ कहा है। रसध्वनि सम्प्रदाय आनन्दवर्धन के द्वारा नवी शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। इस आधार पर धर्मशर्माभ्युदयकार हरिचन्द्र अवश्य ही नवी शताब्दी के बाद रहे होंगे। कीय^३ और विटरनित्स^४ ने भी धर्मशर्माभ्युदयकार हरिचन्द्र को नवी शताब्दी के बाद का ही बताया है।

इनके अतिरिक्त भी अन्य कई हरिचन्द्रों का नाम संस्कृत साहित्य में मिलता है। ऊपर गिनाये गये हरिचन्द्रों की तरह वे प्रसिद्ध तो नहीं हैं परन्तु उन सभी ने जैन संस्कृत साहित्य में अपना किञ्चित् योगदान दिया है। सर्वप्रथम हरिचन्द्र नाम के कुछ जैनाचार्य हैं जिनका नाम विभिन्न भण्डारों के गुटकों में मिला है। आचार्य नेमिचन्द्रजी शास्त्री को पूज्याचार्य श्री महावीरकीर्तिजी के एक गुटके में छियासी जैनाचार्यों के नाम मिले हैं जिनमें से बयालिसवें का नाम हरिचन्द्र है।^५ जैन मिहान्त भास्कर के इसी प्रति में अगरचन्द्रजी नाहटा ने नागीर के भट्टारकजी के भण्डार में कई गुटकों में मूलगण के नन्दी शाखा के बलात्कार गण की गुरु परम्परा की नामावली को देखने का विवरण दिया है। इस नामावली में एक हरिचन्द्र गुरु भी हैं।^६

किन्तु ये दोनों आचार्य-परम्परा वाले हरिचन्द्र धर्मशर्माभ्युदय के कर्ता नहीं हो सकते। धर्मशर्माभ्युदय के कर्ता किसी आचार्य-परम्परा के न होकर किसी राजवंश या राजवण में निकट सम्बन्ध रखने वाले नीमक (?) वंश के हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य-परम्परा वाले दोनों हरिचन्द्र जैन ही हैं किन्तु उनके वंश और धर्मशर्माभ्युदय के कर्ता हरिचन्द्र के वंश में कोई समानता नहीं। अतः इन दोनों को धर्मशर्माभ्युदय के कर्ता रूप में नहीं माना जा सकता।

श्री जे० बी० प्लीट ने सन् १८८८ में अहमदनगर के कलसवदख्त नामक ग्राम से एक ताम्रपत्र लेख खोज निकाला। इसका समय १०२५ (शक ?) बताया जाता है।^७ इस लेख को पढ़ने से यह पता चलता है कि देवगिरि

१ हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ६।

२ धर्मशर्माभ्युदय प्रगति पद्य—७।

३ कीय—हिस्ट्री आफ मस्कृत लिटरेचर, पृ० ३३६।

४ विटरनित्स—दि जैन्स इन दी हिस्ट्री आफ मस्कृत लिटरेचर, पृ० १६।

५ "न० ४२ भवत ६४८ तिथि अपाढ वदी ८ आचार्य हरिचन्द्र जाति वषेरकल हरवीस गृहस्यवर्ष ८-४-० दीक्षा वर्ष १४-८-० पट्ट वर्ष २६-१-८ अन्तरदिन ८ सर्ववर्षाणि ४६-१-२६।"—जैनसिद्धान्त भास्कर (भाग २२, क्रि. १, १६५५), पृ० ४४

६ "नयनन्दि हरिचन्द्रो महीचन्द्रो मलोक्षित।

माधवदुर्लभमीचन्द्रो गुणकीर्तिगुणाश्रया ॥ वही, पृ० ५५

७ "प्रजालयिष्यन्ति नृप सग्रामकृताजलि सादरम् अममि तेषा वचनाद् विल्हणनृपते स नमिति रुद्रपण्डित-मुनेन। हरिचन्द्रनामाविदुषा ब्राह्मणहितहेतवे रचितम्।" ८१-६२ ताम्रपत्रलेख (पत्र तृतीय) इण्डियन एन्टिक्वेरी, XVII पृ० ११७।

ब राजा बिन्हा नृवीय की समा म ह^१ पणिव ब पुत्र बवि हरिच^२ रहने थ। न्हा^३ कवि हरिचन्द्र न अपन साययणा राजा बिन्हा नृवीय की भाग्य से उनक। बगवनी निघी थी।^४ निन्हु धम्मार्म्मसुन्दर हरिच^५ ब पिता का नाम धम्मार्म्मसुन्दर प्रगित म भाग्य मिलता है। पुन इस साधपत्र ब हरिचन्द्र ब्राह्मण हैं ब्राह्मण राजा के भागित हैं और और ब्राह्मण न हिन ब निग ही सय लिखत है। अत्र धम्मार्म्मसुन्दर हरिच^६ इनसे भी भिन को^७ अय ही व्यति हैं।

यही एर बात स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कुछ लोग हरिच^८ की हर्दिच^९ भी कहत हैं। सप्ताध्यायी ब साधार पर हरिच^{१०} को हरिच^{११} भी कहत जा सकत है उसम कोई अशुद्धि नही होती।^{१२} निन्हु वास्तव म कवि का नाम हरिच^{१३} है न कि हरिच^{१४} क्योंकि प्राचीन हस्तलिखित प्रति म हरिच^{१५} नाम ही उपलब्ध है।^{१६}

धम्मार्म्मसुन्दर के अन्तिम प्रगित यत्ता म महाकवि हरिचन्द्र ने अपना परिचय दिया है। इन प्रगतिमें म पता चलता है कि य किमी नोमक (?) बग ब थ। इनके पिता का नाम ब्राह्मदेव तथा माता का रत्ना था। सप्तम नाम का एक छात्र भाई भी उनको था। इनके बग की विधेयतामा से प्रवीत होना है कि ये किमी राजबग से निच^{१७} सम्बन्ध रखत बाने थ। नी नायूगमजी प्रभी का कहना है कि नामक (?) नाम का कोई राजबग था उसम उनका को^{१८} सीधा सम्बन्ध नही जान पडता।^{१९} इनके पिता वायस्य थ। वायस्य म जनपद की उपागता साधारणत नही गिवाई पडती। कोय से पता चलता है कि वायस्य कोई जाति न^{२०} अपिनु नगर का व्यवसाय है।^{२१} धम्मार्म्मसुन्दर म स्वय कवि न भी वायस्य ग^{२२} का प्रयोग सल^{२३} भव म हो किया है। अपने वाय^{२४} म हरिच^{२५} ने गुरुभा^{२६} क प्रसा^{२७} से अपने बान^{२८} ब निमन होने की तथा समय विज्ञान का द्वारा वाय^{२९} ब परीक्षित होने की बात कही है। निन्हु य समय विज्ञान कीन से एव इनके गुण ही कीन थ इसका कोई उत्पत्त कवि न कहा किया। यदि इन विज्ञान का नाम भिनला तो स्पष्टि कुछ स्पष्ट हो सकती थी। धम्मार्म्मसुन्दर म लिख ग^{३०} इन सविज्ज परिचय ब साधार पर हरिच^{३१} का समय नही निराता जा सकत। अत इससे लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता है।

वायस्य ब समयी पाठा^{३२} ब पुरतक अण्ण^{३३} से धम्मार्म्मसुन्दर की २६ न० (१८६ न —नवीन कट्टन के अनुसार) की एक हस्तलिखित प्रति है क्षम १२॥ × १ साइन के १६५ पत्र हैं और इसका सलनकाय वि १० १२८० (१२ ई) है।^{३४} इससे यह स्पष्ट हो जाना है कि वि १० १२८० के पहले धम्मार्म्मसुन्दर की रचना हो चुकी थी। बितन पहले हुई थी यह पुन अय प्रमाणों की अपेक्षा रहता है।

१ इतिथय एणिकरी XVII प० १२८ XXII प० १२६।

२ कानि राज ब मागीपरवति की सप्तमपरचित टीका की भूमिका म एव भी नायूराम प्रभी ने भी इह^३ हरिच^४ कहा है।

प्रसम्भहरिच^५ ग^६ रायि—६। १। १५५ पाठ

४ यी हरिच^७ कविबिरचित लेमा पाठ हन्तुमिस्ति प्रति की प्रगति म है।

५ जैन साहित्य और इतिहास—यी नायूराम प्रभी प ५६६।

६ वायस्यमाल्लिखित^७। २५ भूमिकापत्र गुणध्याय बजयती कोय।

७ वायस्य एव स्मर एव कुरवा दम्भरत्नी बजयती बजयती थ।

गुणारामाध्यायविमालपत्र सादम्भरत्नीया सु^८ को लिखस ॥५४॥ ५८ धम

८ मवन १२८० ब^९ नी हरिच^{१०} कविबिरचित धम्मार्म्मसुन्दरवायस्यविज्ञान धीरत्नाकरपुरिमा^{११} धन कीन^{१२} बगमिना नितामिनि अम् ॥ मयवी पाठा^{१३} अण्ण^{१४} पाठन की धम्मार्म्मसुन्दर की १८६ न^{१५} की हन्त^{१६} निमित्त प्रति।



प० अमृतनालजी शास्त्री ने वाग्भट कृत नेमिनिर्वाण के साथ धर्मगर्मान्मुदय का तुलनात्मक अध्ययन करके यह निद्व करने की चेष्टा की है कि वाग्भट महाकवि हरिचन्द्र के पूर्ववर्ती थे।^१ उनका कहना है कि नेमिनिर्वाणकाव्य और धर्मगर्मान्मुदय की लेखन शैली विन्तुन मिलती है। धर्मगर्मान्मुदय नेमिनिर्वाण से काफी बड़ा है। नेमिनिर्वाण ने पन्द्रह मंग हैं और धर्मगर्मान्मुदय में इक्कीस। नेमिनिर्वाण की श्लोक संख्या २५२ है और धर्मगर्मान्मुदय की १९४५। अतः हरिचन्द्र ने नेमिनिर्वाण का अध्ययन अवश्य किया होगा। किन्तु श्री अमृतनालजी शास्त्री द्वारा दिये इन तथ्यों के आधार पर किसी कवि को किसी अन्य कवि से पूर्ववर्ती या परवर्ती निद्व करना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता।

इसी प्रकार श्री कैलाशचन्द्र शान्त्री ने वीरनन्दि के चन्द्रप्रभाचरित और धर्मगर्मान्मुदय का तुलनात्मक अध्ययन करके यह वक्तव्य की चेष्टा की है कि हरिचन्द्र ने चन्द्रप्रभाचरित का अध्ययन किया था। इसके लिए उनकी दो उपपत्तियाँ हैं। उनका कहना है, “हरिचन्द्र माघ आदि के टक्कर के कवि हैं किन्तु एक तो उनका काव्यस्य कृत में जन्म लेता तथा दूसरे अपने को अर्हत्पादाम्मोहचञ्चरीक’ बनाना यह सूचित करता है कि वे जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ नहीं थे। ज्ञाता अवश्य होंगे, किन्तु श्रद्धावग आगम की विरासत में भयभीत थे। इसलिए उन्होंने उक्त विषय में चन्द्रप्रभाचरित का अनुसरण किया।”^२ कैलाशचन्द्रजी का यह कथन ठीक है कि काव्यस्य कुलोत्पन्न व्यक्ति जैनधर्म का ज्ञाता होने पर भी श्रद्धावग आगम की विरासत से भयभीत होता है। किन्तु, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आर्द्रदेव काव्यस्य अपने व्यवसाय के कारण कहलाए। दूसरी बात यह है कि प्रत्येक कवि स्वयं को अपने इष्टदेव के चरा कमलों का भ्रमर कहता है। अतः “अर्हत्पादाम्मोहचञ्चरीक” कहने में कवि दार्शनिक सिद्धान्त का मर्मज्ञ नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता।

श्री अमृतनालजी ने और श्री कैलाशचन्द्रजी ने केवल शब्दों और भावों के मेल के कारण वाग्भट और वीरनन्दि को हरिचन्द्र से पूर्ववर्ती निद्व किया है। किन्तु इन प्रकार की तुलनाएँ भ्रमपूर्ण भी हो सकती हैं। भ्रम होता स्वभाविक भी है क्योंकि धर्मगर्मान्मुदय में हरिचन्द्र ने जब कि वीरनन्दि और वाग्भट का नाम नहीं लिया है तब केवल शब्दों और भावों के दोनों में सामान्य होने के कारण हरिचन्द्र को भी वीरनन्दि और वाग्भट का पूर्ववर्ती कहा जा सकता है। श्री नायूराम प्रेमी ने प० राजकुमार शान्त्री के २२-११-४१ के पत्र का उल्लेख करते हुए लिखा है—“नेमिनिर्वाण काव्य और धर्मगर्मान्मुदय का तुलनात्मक अध्ययन करने में ऐसा मान्य होता है कि वाग्भट ने धर्मगर्मान्मुदय का अच्छी तरह परिशीलन किया था। कई पद्यों को थोड़े से ही हेर-फेर के साथ उन्होंने अपना बना लिया है। उदाहरण के लिए दोनों का प्रथम पद देखिए। इसी प्रकार धर्मगर्मान्मुदय के पञ्चम मंग का और नेमिनिर्वाण के द्वितीय मंग का प्रारम्भिक अंग भी मिलता-जुलता है जिसमें कि एक सुरासना आकाश में उतरनी हुई राजा को दिखलाई देती है और इसने धर्मगर्मान्मुदय नेमिनिर्वाण के पहले का ज्ञान पड़ता है।”^३ इस प्रकार श्री बलदेव उपाध्याय का भी कहना है कि नेमिनिर्वाण की रचना धर्मगर्मान्मुदय के बाद हुई।^४ किन्तु इन प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन पूर्णतः निष्प्रामाण्य नहीं कहे जा सकते।

“धर्मगर्मान्मुदय” “नेमिनिर्वाण” तथा “चन्द्रप्रभाचरित” से पहले चित्रा गया त्रयवा वाद में इन विषय में श्री नायूराम प्रेमी का अवोलिखित मत मान्य प्रतीत होता है। उनका कहना है कि “नेमिनिर्वाण” के कई श्लोक वाग्भटानका में उद्धृत हैं। वाग्भटालङ्कार (अन्य वाग्भटकृत) का समय वि० सं० ११७८ के लगभग है। यदि

१ जैन सन्देश (शोधद्व) ८ जुलाई १९६०, पृ० २६२।

२ अनेकाल, वर्ष ८, अंक १०-११ “महाकवि हरिचन्द्र का समय” श्री कैलाशचन्द्र जैन।

३ जैन साहित्य और इतिहास, श्री नायूरामजी प्रेमी, पृ० २०७।

४ सन्देश साहित्य का इतिहास—श्री बलदेव उपाध्याय, पृ० २७५।



१७६ न० की धर्मशर्माम्युदय की हस्तलिखित प्रति जिसे विद्यालकीति के शिष्य ने वितरित किया था, भी भ्रमज्ञ द्वारा अवश्य ही इसी नाम लिखी गई होगी अतः निश्चय है कि धर्मशर्माम्युदय की रचना हरिचन्द्र ने १०वीं शताब्दी के अन्तिम पाद में की थी। अस्तु।

हरिचन्द्र का गोत्र

प्रश्न है कि हरिचन्द्र का गोत्र क्या है? धर्मशर्माम्युदय की प्रकाशित प्रति से उनका गोत्र 'नोनरु' या ऐसा जान होता है।^१ किन्तु वास्तव में यह अनुचित है। पाटण की सधवी पाड़ा भण्डार में धर्मशर्माम्युदय की जो १८६ न० की हस्तलिखित प्रति है उसमें कवि का गोत्र नेमक लिखा गया है।^२ वास्तव में नेमक नाम का कोई गोत्र ही नहीं। नेमक ही गोत्र है। इस कथन की पुष्टि कालजर के एक शिलालेख से भी होती है जिसमें नेमक नाम का वग आया है।^३

संदाय

हरिचन्द्र ने धर्मशर्माम्युदय की प्रगति में अपना जो सक्षिप्त परिचय दिया है कि वे जैनधर्म के अनुयायी और अनुरागी थे। "उन दोनों के अर्हेत् भगवान के चरण-कमलों का भ्रमण हरिचन्द्र नाम का वह पुत्र हुआ जिसके कि वचन गुणों के प्रभाव से शास्त्रों में अत्यन्त निर्मल थे।"^४ किन्तु जैनो के किम सम्प्रदाय को वे लोग मानते थे इनका पता नहीं चलता। धर्मशर्माम्युदय के अध्ययन से इस पर और थोड़ा प्रकाश पड़ता है। अलकार शान्ध के अनुसार महाकाव्य में कहीं-न-कहीं साधु-नामागम का वर्णन अवश्य होना चाहिए—चाहे वह किसी सम्प्रदाय के साधु-नामागम का वर्णन हो। धर्मशर्माम्युदय में भी कवि ने कुछ बार अपने सम्प्रदाय का नाम लिया है। प्रथम तो वनपाल राजा महामेन मुनि अवतरण की सूचना देते हुए कहता है—हे "राजन! पूर्णचन्द्र की तरह दिगम्बर पथ के अनकरण भूत कोई चारण ऋद्धिधारी मुनि अभी-अभी आकाश से वाह्य उपवन में अवतीर्ण हुए हैं।"^५ मुनि अवतरण की सूचना पाकर राजा उनके दर्शनो को चले—"जिन प्रकार सूर्य प्रभा के साथ गमन करता है उसी प्रकार वह राजा भी अपनी प्रिया के साथ रथ पर आरुढ़ होकर दिगम्बर मुनिराज के चरणों के समीप चला।"^६

पुत्र जन्म के पूर्व मुत्रता द्वारा देखे गए षोडश स्वप्नों का विस्तृत वर्णन है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में चौदह स्वप्न ही बताये गये हैं, किन्तु दिगम्बर में सोलह स्वप्न बताते हैं। इसके अतिरिक्त वीनवे सर्ग में कवि धर्मनाथ के ध्यान मुद्रा का वर्णन करते हुए उन्हें "स्वीकृतान्तवासा" कहा है।^७ आकाश को जिमने वस्त्ररूप में स्वीकार किया है अर्थात् नग्न। "दिगम्बर" पद का भी यही तात्पर्य होता है। इसमें सिद्ध होता है कि हरिचन्द्र दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

- १ "श्री मानमेयमहिमान्ति स नेमकाना वग —धर्मशर्मा० प्रकाशित पुस्तक प्रगति से।
- २ "श्री मानमेयमहिमान्ति स नेमकाना वग —धर्म० की हस्तलिखित प्रति की प्रगति से।
- ३ नेमकान्वयजेन्द्रकमुतदेष्टुकेन भगवत्या कारितमण्डपिका प्रनक्षेन तदभार्यया लक्ष्म्या । एपि० ६० ए पृष्ठ २१०।
- ४ अर्हेत्पादाम्मोऽहचञ्चरीकस्तयो मुत श्री हरिचन्द्र आसीत् ॥
गुह्यप्रसादादमला बभूवु मारस्वने ज्ञोतमि यस्य वाच ॥ धर्म०, प्रगति—८।
- ५ राकाकामुकवदिगम्बरपथालङ्कारभूतोऽदुघना ।
वाहोऽनमवतराद्ग्रहपथात्कश्चिन्मुनिशचारण । २।७७ धर्म०
- ६, दिगम्बरपदप्रान्त राजापि सह कान्तया ।
प्रतम्ये रथमास्थाय प्रमया भानुमानिव ॥ ३।८ धर्म०
- ७ मुक्ताहार सर्वदोषत्यकान्तारव्यप्रीति स्वीकृतान्तवासा । २०। ३७ धर्म०

विद्वानों का मत है कि जीवन्-चम्पू किसी अज्ञातनामा कवि की कृति है। श्री प्रेमीजी ने लिखा है—“यद्यपि जीवन्-चरचम्पू में धर्मशर्मान्युदय के भावों तथा शब्दों तक में बहुत कुछ समानता है, इसमें दोनों को ही एक कर्ता की सृष्टि कहा जा सकता है, परन्तु नाथ ही यह भी तो कह सकते हैं कि किसी अन्य ने ही धर्मशर्मान्युदय के भावादिते लिए हो।”^१

प्रेमीजी की सम्भावना ठीक ही है। किन्तु यह कैसे संभव है कि किसी अज्ञातनामा कवि ने धर्मशर्मान्युदय के शब्द और भाव दोनों को ही ग्रहण कर उसे हरिचन्द्र के नाम पर चला दिया हो? दोनों के कर्ता महाकवि हरिचन्द्र हैं जैसा कि दोनों वाक्यों की समाप्ति पर लिखा है।^२ जीवन्चरचम्पू की पुष्पिका में भी इनके कर्ता हरिचन्द्र वा ही उल्लेख किया गया है—“महाकवि हरिचन्द्र कहते हैं नि चिरकाल बाद मेरी वाणी कृतकृत्य हो सकी क्योंकि उसने भाव जितेन्द्र श्री जितेन्द्र स्वामी को स्वयं ही वरण किया है।”^३ जीवन्चरचम्पू का सर्वप्रथम प्रकाशन टी०एन० कुप्पू स्वामी शास्त्री द्वारा सन १९०५ में किया गया। कुप्पूस्वामी ने उनमें जीवन्चरचपू और धर्मशर्मान्युदय के श्लोकों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर सिद्ध करने की चेष्टा की है कि धर्मशर्मान्युदयकार हरिचन्द्र ने ही जीवन्चरचपू की रचना की थी।^४ इस तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर दोनों रचनाएँ हरिचन्द्र की है यह बात बहुत कुछ सिद्ध हो जाती है। वास्तव में नकल-नकल ही है। कुप्पूस्वामी जैसे मर्मज्ञ विद्वान की दृष्टि में यह बात अवश्य आ जाती है कि कौन सी रचना असली है और कौनसी नकली। जिस प्रकार सोमदेव के यमस्तिलकचपू के नीति भाग और नीति वाक्यामृत के एक कृत्ता होने के कारण अनेकों समानताएँ हैं उसी प्रकार धर्मशर्मान्युदय तथा जीवन्चरचपू के भी एक कर्ता होने के कारण अनेकों समानताएँ हैं। श्री पन्नालाल जैन ने जीवन्चरचपू के हिन्दी अनुवाद की प्रस्तावना में दोनों रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है तथा लिखा है कि दोनों में ही क्रमशः वृषभदेव, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, महावीर, रत्नत्रय और जिनवाणी को नमस्कार किया गया है।^५

दोनों ग्रन्थों के ही कर्ता—हरिचन्द्र जैन हैं। किन्तु दोनों रचनाओं के दार्शनिक पक्ष के प्रतिपादन में कुछ नियमों का अन्तर है। यह बात विचारणीय है। धर्मशर्मान्युदय में तीन प्रकार का त्याग और पाच उदुम्बर फल का त्याग ये आठ श्रावक के मूल गुण दत्ताये गये हैं किन्तु जीवन्चरचपू में उदुम्बर फलों के स्थान पर पाच अणुव्रतों का वारण-करना बनाया गया है।^६ इसी प्रकार जिज्ञा-श्रुतों के वर्णन में भी दोनों में कुछ वैशिष्ट्य है।^७ दार्शनिक मत के प्रतिपादन में इस अन्तर का कारण यह है कि जैनो में मूलगुण—शिखाव्रतों और गुण व्रतों का स्वीकारने में मतभेद है।

१ जैन साहित्य और इतिहास—प्रेमी, पृ० ३०३

२. (ज) इति महाकवि श्री हरिचन्द्र विरचिते धर्मशर्मान्युदयमहाकाव्ये ।

(ख) इति महाकवि श्री हरिचन्द्रविरचिते श्री मनिजीवचरचम्पूकाव्ये***।

३ भदीशवाणी रमणी चरितार्था चिरादभूत् ।

वक्त्रे जीवन्चर देव वा भावैर्जितनायकम् ॥ ११११ जीवन्चरचम्पू

४ जीवन्चरचम्पू,—हरिचन्द्र पृ० १८३-१९०, प्रकाशक, टी० एन० कुप्पूस्वामी शास्त्री, सन १९०५ ई० ।

५ जीवन्चरचम्पू, हरिचन्द्र पृ० ३७-४०, अनुवादक श्री पन्नालाल जैन, सन १९४८

६ मनुमानमवतराग पञ्चोदुम्बरवर्जम् ।

(न) अमी मूलगुणा नन्द्यदृष्टो प्रकीर्तिता ॥ २११३२ धर्म०

(न) हिमनूतन्येयवधूव्यव्यापपरिहेन्यो विरति क्यञ्चित् ।

भयन्त्य नान्त्य च माक्षिकस्य त्यागस्तोयामूलगुणाडमेऽष्टो ॥७॥१६ जीव०

७ २१। १४६—१४२ धर्म० ॥७१८ जीवन्च

हरिचन्द्र न समवन दातों २ दो प्रकार की मायना को स्वीकार किया है । १. पनासात जन न भा बड़ा है—मृतपुत्र पुत्रप्रदों और शिक्षात्रा के नामासत्व म जाचायों म सामन भन है । इतना भनय है कि माचायों न एतन्विपर से अन्य धपनी मायना रा निरावरण किया हा बहु दमन म नही छाया । समर है किनी न एक प्रय म एर मायना का उल्लेख किया हा धोर दूसरी म दूसरी मायना का । धर्मार्थसंग्रह म शिक्षात्रा का बान वरते समय धनिवि सविभाग के विवलय म सा रखना का भी उल्लेख करते हुए कवि न धपनी तत्त्वना सूचिन की है ।^१ भरतु

इन दोन म ग विस प्रय की रचना हरिचन्द्र ने पढ़ने की २२ विषय म भी भनये हैं । धी धमृतमानत्री शास्त्री का रहना है कि हरिचन्द्र ने जीवपरचम्पू की रचना पढ़न की थी । कयाकि धर्मार्थसंग्रह ४ धात म प्राप्ति पद्य दिया हुआ है । व दोन के रचयिता हैं सन बाद के प्रय म प्राप्ति दिया है । धरा मन की पुष्टि व लिए उहनि धीवपरचम्पू का ही एक श्लोक उद्धृत किया है— मेरी बाणी बिरपान वा कृतरुप हा सरी कयाकि उसन भाव जिनेद्र तदा जिने— स्वामी को स्वय ही वर्ण किया है । बाणीचरितायांविगन्धूत के आधार पर धमृतमानत्री ने जीव परचम्पू को प्रथम रचना स्वीकार किया है । किन्तु उहोने सम्भव नवने पूव के एक पद्य की धोर ध्यान नहीं दिया जिगम हरिचन्द्र न बड़ा है कि गद्य धोर पद्य धूयक धूयव दोनों धान्द दते हैं किन्तु दोन का मेर यहन अधिक धान्द दासी हाता है । गद्यावनी धोर पद्य परम्परा ये दोन धूयक-धूयव भी बहून अधिक धान्द उत्पन्न करती ३ किन्तु पन दोन मिन जाती हैं बड़ा की तो धान ही निराली हो जानी है बड़ा ये दोन गद्य धोर कयावन्पा व धीव विवरने वाली बालता व समान धरुन अधिक धान्द उत्पन्न करती हैं ।^२ जीवपरचम्पू के २२ श्लोक से स्पष्ट होता है कि हरिचन्द्र धर्मार्थसंग्रह की रचना पढ़न ही कर चुके थ । धान म उहनि जीवपरचम्पू की रचना की । इनके अनिविगत कोई आधारक नहीं कि धान के प्रय म हा प्राप्ति पद्य किया जाय पढ़न म नहा । धर्मार्थसंग्रह की रचना महाश्वि हरिचन्द्र न धरन ही पन्न की हाती । ही कारण उधने प्राप्ति पद्य म जायपरचम्पू का नाम नहा है ।

हरिचन्द्र लिखित एक जीवपर नाटक का भी नाम विनता है किन्तु इसकी का हस्तलिखित प्रति धारावी उपनयन म हान के कारण समर धरितव म सन्देह है । रिया हरिचन्द्र लिखित पुण्यचम्पू का भी उल्लेख है । पुण्यचम्पू धर्मग्रन्थ धिन् पद्य है । य प्रय प्रकाशिन की हो करा है । हरिचन्द्र रविन पुण्यचम्पू की भा जावपरनाटक की हो तह काई हस्तलिखित प्रति नहीं उपलब्ध है । सन हरिचन्द्र रविन इन दोन प्रयो व विषय म सन्देह है ।

हरिचन्द्र का व्यक्तित्व

कवि सन पान का रचयिता हुआ है । सन उमरा हृष्य काव्य म नवतना है । निग प्रकार शास्त्रिय गंगा का दमन माना जाता है उनी प्रकार काव्य कवि के हृष्य का भी दाख है । काव्य म १४ कवि का सज्जा व्यक्तित्व प्राप्त होता है । प्रथमदूषक मरि स्वभाव रिख्ड रचना की भी जायता व निम्न श्रेणी का कवि हागे । एरी कवि क हृष्य व सज्ज भावा से रहित हाती ३ । जिन हृष्य की अनुमतिना स्पष्ट निगम है वही सज्जा काव्य है । गज प्राप्तिवा इती कारण धरित लोहादिम मल हो मरी कयाकि उहें कविम धन की रायना ये निम्न थ । दूसरा का

१ जीवपरचम्पू का प्रस्तावना श्री पनासात पन पृ० ४ १६४८

२ मनीषबालाशेणी धरिताया बिरामून ।

यधे जायपरचम्पू का नावजिननाम ॥१११ जीव

गदावति पनागमरा व प्रथममप्यावति प्रनोम् ।

हयप्रर मनुज गिरिग रायगानागमराय कान्ता ॥११६ जीव

४ गिरिग मणिदेरा भाग ६ टी २२ पुण्यबामी धारनी पृ० २५५

५ पनासात पनाती एम प्रथम भाग पृ० ७६१ १६६२



प्रसन्न करने के लिए, स्वार्जवग लिखे ऐसे काव्य में कवि स्वयं को चाहकर भी व्यक्त नहीं कर सकता। धर्मगर्मान्मुदय वैसे तो जैनों के पन्द्रहवें तीर्थंकर की कथा है किन्तु काव्य की सूक्ष्म समीक्षा के समय विचारक को हरिचन्द्र के निजी व्यक्तित्व की कथा भी मिल जाती है।

हरिचन्द्र का विचार है कि किमी थोड़ा वस्तु का महत्व जानने के लिए उसके विपरीत किसी दोषयुक्त वस्तु का रहना आवश्यक है क्योंकि काच के बिना मणि और अश्वकार के बिना मूर्य अपना गुण नहीं प्रकट कर सकते।^१ सगक-दोष व्यक्ति को नष्ट कर देता है।^२ विनय को वे लक्ष्मी का ही नहीं सर्वकल्याणों का ही मूल मानते हैं।^३

पुरुषों के स्वभाव के विषय में उनका मत देखिए—अत्यन्त कठोर प्रकृति धारण करने वाले जड़ पुरुष मध्यस्थ पुरुष का भी अन्वय नहीं सह सकते।^४ मनुष्य को कामुक नहीं होना चाहिए क्योंकि स्त्री-लम्पटी पुरुषों की कभी उन्नति नहीं हो सकती^५ और विषय-वामना के फेर में पड़ा मनुष्य बुद्धिहीन हो जाता है^६ और जो बुद्धिहीन नहीं होता है वह जड़ता के भय में आगत नीरस व्यक्ति का साथ स्वयं छोड़ देता है।^७ पुरुष का प्रेम स्त्री के प्रेम के अनुसार ही व्यक्त होता है।^८

स्त्री-स्वभाव के विषय में भी उनका अपना मत है। स्त्री को वे बहुत निकृष्ट चरित्र का समझते हैं। स्पष्ट उत्तम-पुरुष-वाचक शब्द के साथ उन्होंने एक स्थान पर कहा है—“हम स्त्रियों के अत्यन्त दुर्गुण मायापूर्ण चरित्र को दूर से नमस्कार करते हैं।^९ इसी प्रकार स्त्रियों के गहन चरित्र को कौन जानता है।^{१०} काम के प्रबल आवेग में मनुष्य को दिग्विदिग्गु ज्ञान नहीं रहता है। नागरण अवस्था में जो कार्य वह किसी कारणवश नहीं कर सकता कामावस्थामें वह उस कार्य को कर लेता है। इसी कारण हरिचन्द्र कहते हैं—“काम के पौरुष से स्त्रियों को असाध्य है ही क्या ?”^{११} मतीत्व बहुत बड़ी वस्तु है। थोड़ी से आच से भी वह नष्ट हो सकती है। अतः स्त्री को इस विषय में चेतन्य रहना चाहिए क्योंकि स्त्री तभी तक मनी मानी जाती है जब तक कि वह अन्य पुरुष के हाथ का स्पर्श नहीं करती।^{१२}

हरिचन्द्र भाग्यवादी हैं। उनका विचार है—“जो स्वप्न-विज्ञान का अविषय है, जहाँ कवियों के भी वचन नहीं पहुँच पाते और मन की प्रवृत्ति भी जिनके साथ सम्बन्ध नहीं रख सकती वह पदार्थ भी भाग्य द्वारा अनायास सिद्ध हो जाता है।”^{१३}

- १ ऋते तमार्सि द्युमणिमणिर्वा विना न काचै स्वगुण व्यनक्ति ॥१२२ धर्म०
- २ २।४० धर्म०
- ३ न पर विनयश्रीणामाश्रय श्रेयसामपि ॥३४६ धर्म०
- ४ यदा नितान्तकविना प्रकृति भजन्ते ।
मध्यस्थमप्युदयिन न जडा सहन्ते ॥३५१ धर्म०
- ५ कुतोऽयवा स्यान्महोदय स्त्रीव्यसनालसानाम् ॥७१५ धर्म०
- ६ नहि विषयान्धमति किमप्यनेति ॥१३१८ धर्म०
- ७ ध्रुवभगवन्ति जाड्यभीत्या स्वयमपि नीरसमागत विदग्धा ॥—१३।६१ धर्म० ।
- ८ गुणान्पुरुषी प्रेमानुरूप पुरुषो व्यनक्ति ॥१४।३७ धर्म०
- ९ ततोऽतिगहन स्त्रियश्चरित्रमत्र वन्दामहे ॥१०।३२ धर्म०
- १० क स्त्रीणा गहनमवैति तच्चरित्तम् ॥१६।३३ धर्म०
- ११ आरूढ चेतोभवपोरपाणा किमस्त्यनाध्य हरिणैक्षणानाम् ॥—१७।६३ धर्म०
- १२ तावत्मेती स्त्री ध्रुवमन्यपु सो हस्ताग्रसस्पर्शसहा न यावत् ॥१४।२२६ धर्म०
- १३ य स्वप्नविज्ञानगतेरगोचरश्चन्ति नो यत्र गिर कवेरपि ।
य नानुवचन्ति मन प्रवृत्त्य स हेत्यर्थो विधिनैव साध्यते ॥—६।३७ धर्म०

हरिवंश धर्म के प्रबल अनुयायी है। वह अपने श्रम द्वारा तैरवान् प्रबलित सभी दानों का धर्मों का निराकरण करने है। वे स्वयं समय को धारण करने हैं। उनका जीवन दान उ व हान के कारण हा काय के श्रम पात्र का उहान उ व विचार करने वाला बनाया। अहंत्व की अस्ति के प्रभावका दुष्ट मुक्त रूप में प्राप्त जाना है। 'पूवहृत्त धर्मों के उपाय में प्राप्त हुआ दुष्ट भी धर्म के अस्ति के प्रभावका पीछे ही धर्मों धर्मिता का विषय कर संता है। मृत्यु की तीक्ष्ण विरणा में भयका बीज अतु बना जब के समीपस्थ का की छाया में बड़े हुए निगिर अतु महा बन जाना ? १

हरिवंश का मन है कि मनुष्य का गुणज्ञान जाना चाहिए। क्योंकि उत्तम गुणों में युक्त मनुष्य ही बायो में धनुष के समान प्रगतिशील होता है गुणों में रहित मनुष्य बाण के समान अल्पजल नयकर हान कर भी क्षण भर में वनस्पति दुष्ट का प्रायः हो जाता है। १

हुत्त और उत्तमता हैं जिसमें हरिवंश के व्यक्तिगत पर योग्य और प्रमाण पड़ता है। उनका मन है कि बाय प्रारम्भ करने के पहले धर्मिता का धर्मो तत्त्व विचार कर लेना चाहिए— विना विचार बाय करने बाय मनुष्य का निष्पाद उस प्रकार नाग होना है जिस प्रकार कि तान मय से मणि बहने करने के द्वारा मनुष्य का होना है। १ दुर्जन का शालन करना बड़ा कठिन है— जिस प्रकार समुद्र के भाग जल में विलीन जाना नहीं होता। उगी प्रकार धनुषधर्मों धर्मों से दुर्जन शालन नहीं होता। १ उन साथ प्रयत्न करने पर भी नाच नाच ही रहता है क्योंकि बाय मनुष्य परवा और ह्व के समान हो सकता है ? अथवा बीजा मयूर जमा हो सकता है ? २

- १ दूरस्थित धर्मो धानुसहृत्तमना अस्ति धर्मधर्मक स्वस्तिविषयम् ।
उत्तमताच्छायाच्छने जने जलामवहृत्तमणिधर्मधर्मो धानो न हि निर्गिरायते ॥

—॥१६६ धर्म०

- २ धर्म गुणान्नय धानुगो जने विनाम कोच्छ नव प्रत्युत्त ।
गुणधर्मो बाण धर्मिताधर्मः प्रकाश धर्मधर्मिणाधि ॥१६१५ धर्म०
- ३ धर्मधर्म धानुधर्मिणाधि धर्मि धर्मिणाधि धर्मधर्मिणाधि ॥१६१६ धर्म०
- ४ धर्मधर्मधर्म धर्मधर्मि धर्म न दुर्जन ।
धर्मधर्मधर्मधर्मि धर्मि धर्मि ॥१६१६ धर्म०
- ५ धर्म धर्मि धर्मि धर्मि धर्म धर्मि ॥१६१६ धर्म०
- ६ धर्म धर्मि धर्मि धर्मि धर्म धर्मि ॥१६१६ धर्म०



सीयाचरित : एक अध्ययन श्री परमानन्द शास्त्री



भारतीय साहित्य में राम, सीता, कृष्ण, पाण्डव, कौरवादि के विषय में प्रचुर साहित्य लिखा गया है। यदि उस साहित्य को साहित्य-सूची से पृथक् कर दिया जाय तो भारतीय साहित्य निम्नप्रभ हो जायगा। केवल राम और सीता पर विविध भाषाओं में जो विपुल साहित्य रचा गया है उससे उसकी लोकप्रियता का स्पष्ट भान हो जाता है। सीता के सम्बन्ध में लिखे गये कुछ ग्रन्थों का संक्षिप्त उल्लेख करते हुए अब तक अप्रकाशित एवं अज्ञात ग्रन्थ प्राकृत के 'नीयाचरित' का परिचय प्रस्तुत करना ही इस लेख का प्रमुख उद्देश्य है।

भारतीय नारियों में सीता का चरित्र अत्यन्त पावन और समुज्ज्वल रहा है। वह नारी जीवन के आदर्श के साथ धैर्य और विवेक की गरिमा को भी उद्भासित करता है। इतना ही नहीं, अनेक विषम एवं दुःख प्रसंगों पर सीता अपने विवेक के सन्तुलन को कायम रखती हुई किसी को अपराधी नहीं ठहराती, प्रत्युत अपने पुराकृत अशुभ कर्म को ही दोषी मानती है। उस अवस्था में भी सीता का वह विवेक उसे सुदृष्टि प्रदान करता है। इस कारण वह समागत आपदाओं से रचमात्र नहीं घबराती, धैर्य और समभाव से उन्हें सहती है। यही सब घटनाएँ उसकी लोक में प्रतिद्धि एवं प्रतिष्ठा की द्योतक हैं।

रावण सीता का अपहरण करके ले जाता है, और उसे देव-रमण उद्यान में रखता है, उसे प्रसन्न करने के लिये विविध उपाय किये जाते हैं। वैभव का नजारा दिखाया जाता है, समझाया, डराया-धमकाया भी जाता है। किन्तु इन सब का उसके अन्तर्मानस पर कोई प्रभाव अथवा कित नहीं हुआ। उसकी आत्मनिर्भयता, महान् शक्तिशाली शत्रु के यहाँ अलुपण बनी रही। यही उसके सतीत्व की गरिमा का प्रतीक है। इससे पाठक सीता के सतीत्व की महत्ता का अंदाज लगा सकते हैं।

गर्भवती सीता को रामचन्द्र लोकापवाद के भय से कृतन्तव्यवत्त सेनापति द्वारा भीषण एवं हिंसक जन्तुओं से व्याप्त कानन में छुड़वा देते हैं। उस वन की भयानकता सीता की कोमलता और गर्भ-भार की विषमता को देखकर सेनापति का मानस भी रो देता है। जब सीता को सेनापति में ज्ञात होता है कि रामचन्द्र ने लोकापवाद के भय से मेरा परित्याग किया है, तब वह सेनापति से कहती है—“हे भाई, तुम स्वामी से मेरा यह नन्देश कह देना कि जिस प्रकार लोकापवादभय से मेरा परित्याग किया है, उसी तरह अपने धर्म का परित्याग न कर देना। पाठक देखें सीता के इस सद्विवेक को, जिसकी वजह से वह लोकपूजित हुई है। इसी कारण सीता की पावन जीवन-गाथा पर विविध भाषाओं में जो साहित्य रचा गया है वह उसकी आदर्श जीवनी का दिग्दर्शन मात्र है, इसी से हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी सीता की लोकप्रियता कम नहीं हुई।

जन साहित्य में मोता व सम्बन्ध में जो साहित्य रचा गया है उसमें मेटा कुछ श्रम का दिग्गमनाम
कराया जाता है—

१ सीताचरित —आचार्य भुवणनुग की कृति है जिस उन्होंने प्राकृत भाषाभाषा में निबद्ध किया है। कृति
में उमका रचनाकाल दिया गया है। अतः उसके रचनाकाल का निर्णय करना कठिन है। ग्रन्थ का आदि अन्त भाग निम्न
प्रकार है—

आदि—अस्स पय-पउम मत्तं जुहुमसजालिमातिपमलोह ।

ति जयति सुईजाय त भुणिमुत्तमजिण ममिउ ॥

अन्त—सीतगुणसदण सभूयवर परमाणदकारणारइय ।

चरिय गिरि भुवणनुग पपमाहुण होउ ॥ ४२ ॥

२ 'सीताचरित'—महाकाव्य रूप ४ भाषा ६४ ६६ १५३ और २ ६ हैं। कता का नाम पाठ महा
हृमा। यह कृति स० १३५६ ई. में लिखी गई थी। यह मूल गुच्छा में मौजूद है जो पाठन के सम्पन्न में सुरक्षित है।

३ 'रामलक्ष्मण सीताचरित'—नाम की है, यह भी अज्ञात कता की है। इसमें २०० भाषाओं में उक्त
चरित दिया हुआ है। ग्रन्थ का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि—मणिय सीताचरिय पु इमवविवाहमपूयन विवि ।

ग्रह रामलक्ष्मण त सवामित पक्कित वि ॥

अन्त—रामो वि केवली बिहरिऊग महिमन्नि सवामि ।

पडिबोहिपमवज्जणी पत्तो विषसपय विठन ॥ २०० ॥

हिन्दी भाषा में भी सीता व चरित का अज्ञात विवरण हुआ है। कुछ कृतियों का उल्लेख नीचे दिया
जाता है—

कविवर भगवन्गीत सप्रधान न सक् १६८७ में चक्र गुप्ता चतुर्थी चम्पार के भरणी मन्त्र में निहरादि
मगर में सप्तसीता सत्तु का रचना की है। रचना सुन्दर और भावपूर्ण है। ग्रन्थ में बारहमासा के मन्त्रोत्तरी-सीता
प्रश्नोत्तर के रूप में कवि ने रावण और मन्त्रोत्तरी की विसृष्टि का चित्रण करते हुए सीता के सतीत्व का बयान किया
है। बहुत ही सुन्दर और मनमोहक है। अतः ग्रन्थ सवमाधारण कथित बहुत उपयोगी और शिक्षाप्रद है। पाठकों
की जानकारी के लिए आषाढ मास का प्रश्नोत्तर नीचे दिया जाता है—

सत्र बान मन्त्रोत्तरी रानी रति अषाढ धन धन धरानी ।

पीय भव ते फिर घर आवा पामरनर नित मन्त्र छाया ।

सबहि एपीहे दाण्ड मोटा हियरा उमन घरत नहि मोटा ।

बाबर उमहि रह पीपाया तिय गिय बिनु तिहि उवन उमसा ।

मन्हीं शून्ध करत करवावा पावत नम आगुम दरसा ।

रामनि दमवत निगि अविषारी बिरहनि काम बान उरि मारी ।

भुगवहि भोगु मुनिहि निव मोरी जानन काहे भई यनि मोरी ।

मन्त्र रसायनु हृद जगसाक्ष सजमु नेमु बचन विशहा ।

दोहा—जब सगु हव घरीरमहि तब सग बोझ भोगु ।

राज तजहि भिन्ना भमहि हउ आना सब भोगु ।





सोरठा—मुख बिलसहि परवीन दुख देगहि ते बावरे ।
जिउ जन छाडे मीन, तउफि मरहि बलि रेत कइ ।
यहु जग जीवन लाहु न मन तरनाइए ।
तिय पिय नम मजोगि पगम मुहु पाइए ॥
जो हु ममज्झणहारु तिमहि सिख दीजिये ।
जाणत होइ अयाणु तिसहि क्या कीजिये ॥

शुक-नामिक मृग-दृग पिक्क-वडनी, जानुकि वनन नवइ गुम्भिरइनी ।
अपना पिउ पय अमृत जानी, अवर पुरिय रवि—दुग्ध-समानी ॥
पिय चितवनि चितु रहइ अनन्दा, पिप गुन सरत बढत जसकन्दा ।
प्रीतम प्रेम रहइ मनपूरी, तिनि बानिस मगु नाहीं द्वरी ।
जिनि पर पुरिय तियारति मानी, नयेनि सो आदि विकानी ? ॥
करत बुझील बढत बडु पापू, तरकि जाद तिउ हइ सतापू ।
जिउ मधु बिन्दु तनू सुख लहिये, शील बिना दुरगतिदुख महिये ।
कुशल न हुइ पर पिय रमयेनी, जिउ निनु मरइ उरग-मिउ बेली ।

दोहा—मुख चाहइ ते बावरी पर पति मगे रति मानि ।
जिउ कपि शीत विद्या मरइ तापत गु जा आनि ॥

सोरठा—तृष्णा तो न बुझाइ जलु जब खारी पीजिये ।
मिरगु मरइ घपि घाइ जल धोखइ बलि रेतकइ ॥
पर पिय मिउ करि नेहु सुजनमु ग बावना ।
दीपनि जरइ पतग सु पेनि गुहावना ।
पर रमणी रस रग कवणु नरु सुहु लहइ ।
जब कब पूरी हानि महति जिह अहि रहइ ॥

दूसरी रचना “सीताचरित” है जो हिन्दी का एक महत्वपूर्ण काव्य है जिसे कवि रामचन्द्र ने स० १७१३ में बना कर समाप्त किया है। रचना पद्यबद्ध और मध्यम दर्जे की है। परन्तु रचना में गतिशीलता (प्रवाह) है। पद्यों की संख्या अर्द्ध हजार से ऊपर है। ग्रन्थ में सीता के जीवन पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

तीसरी रचना “सीताचउपई” है, जो ३२७ पद्यों की सघन वृत्ति है। इसके कर्ता खरतरगच्छ शास्त्री के समयव्यज हैं।

चौथी रचना “सीताप्रबन्ध” है, जो ३४६ पद्यों में रचा गया है, रचनाकाल स० १६२८ है।

पाचवी रचना “सीताचिरहलेख” है जिसमें ८१ पद्यों द्वारा कवि अमरचन्द ने सीता के विरह पर अच्छा प्रकाश डाला है। रचना मवत् १६७१ के द्वितीय आपाठ पूर्णिमा के दिन पूर्ण हुई है।

छठी रचना “नीतारामचौपई” है, जिसे कवि समयसुन्दर ने स० १६७३ में अपने जन्म स्थान साचौर में बना कर समाप्त की है।

सातवी रचना “नीताचउपई” है, जिसे तपागच्छीय कवि चेतनविजय ने मवत् १८५१ के वैशाख सुदी १३ को बगाल के अजीमगंज में रचा है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक रचनाएँ शास्त्रभट्टारों में हैं, जिन पर फिर कभी प्रकाश डाला जावेगा।

‘सीमाचरित्र’ श्रावित भाषा का गद्य पद्यमय एवं चम्पू काव्य है। भाषा सरल और सुहावनेदार है। अनुमानत इसमें ३००० शायद और कुछ गद्य जाग हैं। प्रथम की प्रवेष्ट प्रनिया स्वताम्बरीय गात्रमन्त्रा में उपास्य होती है। प्रथम भी तब प्रवर्तित है। इसकी प्रति थी अग्ररथ दजी गाहटा के सीमय स ननकता के साहर भन्पर मे प्राज हुई है जिसकी मैं नानी की है और बाप में दूसरी प्रति मे मित्रान भी किया है। इनने यन् प्रथम बही सधि गय या प्रकरण वगैरह नहीं है मलिए कथानक का मय भी सन्धा और दुःख हो गया है। पात्र को उसक ज्ञानन म बड़ी कठिनाई होती है। प्रथम म विजनी हो शायद विमलमूरी के पउमचरित्र से समानता रखती है। रिती हो विषया में समानता दृष्टिगोचर होती है वही कुछ पाठ मे मिलता है। प्रथम म काव्य का विशेष धाटम्बर नहीं है नगर देन मनी ग्राम वन आदि का सामान्य वर्णन या नामोल्लेख मात्र किया है। युद्ध का वर्णन भी पूर्व यथपरम्परानुसार ही है। हां वही विगी बघाव म विजयता जाने का उपनय अवश्य किया है। उपाहरणस्वरूप वयनप्रधानता में बढ़ा गया है कि वह समरदिन और गिरी या। एक वि बह वन म निवार तेजने गसा और बहा उगने समवती द्विरी को बाण म मार दिया। बाण गते ही रिणी जमीन पर घसमा से गिरी और गिरते ही उगने पैर से तन्कटाता हुआ एक बघा निरता। वयनग म भ्रमणमा के मन्त्राव प्रत्या व्यक्त हुआ और विचारो जगति इस महापार से वम वय गतता है। गता विचार कर बहु ह्यर उपर पुन ही रहा था कि उमकी दृष्टि गहवा एक गिरी परबड़े ह्वा ध्यानस्य मुनि पर पड़ी। वयनग म उन्हें समझा करते पूछा—अगर प्राइ इन जगन मे क्या करते हैं ? मुनि ने बहा में आरहित करता है। वयनग ने बहा—भूत प्याग मरीं गर्मी की परीपह सत्ने हुए वन में खैने के आरहित होना है ? तब मुनि ने उस गहव्य और सुनिपम का स्वप्न समझाया जिसने राजा को अनिबोध हुआ। उनने सय मायादि के त्याग के साथ सन्धा वगन और आवायम को ग्रन्थ किया और यन् प्रतिभा की वि में जिने प्रदेन और जिनगुव का छोटाए आय विमी को नम स्कार नहीं करता ।^१

प्रस्तुत काव्य म सीमा का चरित्र पूर परम्परानुसार ही चित्रित किया है। यद्यपि कवि ने उस विस्तृत रूप म विगत का प्रमन किया है किन्तु यहां कम छाने के परिचय लेम म उतावर सधिया मार ही किया जाता है। प्रथम म काव्यमय वर्णन का प्रभाव भाषा मरस है। बह-बहा कुछ सुभावित एवं नातिपरक पद्य उपनय होते हैं जिसम पात्र उबला रहा। मना मनी सनी मनीता और मिष्टमाणि है वहां कष्टमहति पवित्रत दिखवती रत्नचरराया भागवतारिणी और स्व योगिनी है।

यह विपला के राजा जनक और बिन्हा की पुत्री है। वह युवतन म उतरा हुई की रिन्तु मारी के पय

- १ ज तस्य विवा चरित्र पारदो वस्तुबुद्धि दृष्टिपत्तम् ।
- वचनदत्तेन प्रारणे मयाह घाटय प्रनु वपह ॥
- घनमि नि पदमा हरिणी जलेष तेष्म म मधई ।
- पश्चिमो मीष्ट मरस इरीय कच्छीय लहमति ॥
- वटदूग तदकहत मयहाव (तो) बिगायमावन्तो ।
- बिन्हा महाराय मय कय भूषण ॥

—सीमाचरित्र भा ७ ८





हृत हो जाने के कारण उनका अकेले ही तालन-पालन और शिक्षा हुई थी। अयोध्या के राजा के पुत्र रामचन्द्र के साथ उनका विवाह हुआ। केकई के वर के कारण जब राम-लक्ष्मण वन को जाने लगे तब सीता भी साथ में गई। सीता अपने पति राम और लक्ष्मण के साथ वन-वन घूमती हुई क्रमशः दण्डक वन में पहुँची। वहाँ कुछ समय सुख में निवास करती है। वन में होने वाले कष्टों से वह न कभी खेद-गिन्न हुई और न समागत आपदाओं में घबराई। उसे स्वकीय कर्म का विपाक ममक कर सन्तुष्ट रहती थी।

कुछ समय बाद रावण कपट में उसे हरण कर ले जाता है। वहाँ पुष्पक विमान में गौरी-चिन्तनी, श्राम्बु वहाती तथा आभूषणों को यत्र तत्र बिखेरती हुई जाती है। रावण लका में पहुँचकर उसे किसी उद्यान में ठहरा कर और रक्षकों की व्यवस्था कर अन्तःपुर में चला जाता है। सीता राम का अनुचिन्तन करती हुई अपने अशुभोदय का विचार करती है और प्रतिज्ञा करती है कि जब तक राम और लक्ष्मण का कुशल समाचार नहीं मिलेगा तब तक मैं अन्न-जल, स्नान और गन्धमाल्यादि का ग्रहण नहीं करूँगी। वह कभी मन में पच परमेष्ठी का स्मरण करती है, कभी राम लक्ष्मण का चिन्तन करती है और कभी अपने अशुभोदय की निन्दा करती है। सीता रावण के वैभव को वृष के समान तुच्छ गिनती है। यद्यपि रावण ने सीता को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न किये किन्तु उसे किंचित भी मफलता नहीं मिली रावण की परिचारिकाएँ रावण ने कहनी हैं कि सीता जब भोजन की भी इच्छा नहीं करती, तब वह आपकी कैसे इच्छा कर सकती है ? यह सुन रावण का बड़ा दुःख हुआ। उसका शरीर मन्दानन में झुलस जा रहा था। यह देख मन्दोदरी रावण से कहती है—‘तुम उसका बलात् सेवन क्यों नहीं करते ?’ तब रावण कहता है—‘मैंने मुनिपुत्र गव अनन्त-वीर्य के सम्मुख यह नियम लिया था कि जो स्त्री मुझे न चाहेगी मैं उसकी इच्छा न करूँगा।’^३

रोती हुई सीता को देखकर विभीषण ने पूछा—‘यह किमकी पुत्री और किमकी भार्या है ?’ सुनकर सीता ने कहा—‘मैं जनक की पुत्री, भामडल की वहिन तथा राम देव की प्रथम पत्नी हूँ, यह पापी (रावण) मुझे अपहरण कर ले आया है—

१—तह वि न इच्छइ सिनाण न भोयण गधमल्लाइ ।

अच्छइ एगगमणा भापती राहव णिच्च ॥

भणइ भोग्गणविसए न जाव दइयस्स धंघुसहिस्स ।

लद्धा कसलपउत्ती नु जामि न भोयण ताव ॥

—सीयाचरित पृ० ३८

२—सीयावइयरमावेइऊण रमणीह रावणो भणइ ।

जा भुत्त पि न इच्छइ सा इत्थि इच्छइ कहे णु तुमए ॥

सोऊण इम वयणो मयणानलेण वंदइमानसव्वगो ।

पडियो वसणसमुदे दहवयणो दुविसयो अहिय ॥

—सीयाचरित पृ० ३८

३—किं पुण बला वि अवला तीए आत्तिगण विहेऊण ।

पूरेसि तुम नियए मणोरहे नाह नाहेहि ।

एव पुच्छिओ पमणिओ दहवयणो—

अत्थि मए पडिवन्तो अग्निगहो अणतविरियपयमूले ।

जह भोत्तव्वा जुवई अणिच्छमाणा न कहयावि ॥

—सीयाचरित पृ० ६६

पुच्छ विभीषणो तं न्यमानि सुपुणु वस्स तं नृहिया ।

वस्स वि यथा मा वि न साहेद जुहटिठय सव्व ॥

प्रविद्य—जणयस्स ग्रह तणया भविणी ममहनस्स गुणनिहिणो ।

रामस्स पम्म धरिणी भवहरियाणेण पावण ॥

—सीवाचित पृष्ठ ६७ ६८

विभीषण सीता का आश्रयन लेकर चला गया वह मगधराज्य से रावण से कहता है— तुम पर रमणी का क्या लाए ? परनारी अनि पाया के समान है विपत्तना नागिन और दुष्टि पात्री का समान सताप विनाश और दुःख का कारण है तुल का वक्ता है या का धातक है अन्यथा तुम परनारी को छोड़ो दुष्टि म मन पणो । तब रावण ने कहा— मरुण पक्षी मरा है । इतम विचिन् भी वस्तु परकीय गही है तब उमक परिपाण का प्रान ही नही उटना ।

आगामिउण सीय महरमिगानि विमिसणो भण्ण ।

एहवयण बीम तुमां पररमणी धाणिपा च्हय ? ॥

हयवह्मिहिवि विसवन्ति य भुयमिच कुवियवमिपव्व परनारी हाइ राताव विनाम-नृहृज्ज । मा धाणैणु वक्क कुत्तम्मानेमु । मा जस नियय मा पव्वु दागए मुच्चुण्य पर पुराणि ।

—सीवाचित पृष्ठ ६८

इधर राम जब अपने निवान स्थान पर आया और सीता को वहा न देता तब वन्त मेखिलन और दुली हुए । वन्त म नमण भी खरूपण को भाग कर छा गया । दोनों माइयों ने सीता को इधर उधर खान की परन्तु कहा पना न चता ।

सीता हा पना नगान के तिय बाग और नोग दोहाए और सुवीय स्वय भी पना लगाव न लिय गया । तय पना चता कि रावण सीता को हर कर न गया है इस सुनकर विवाधर भय से कायन गये । किन्तु राम लगमण न समझा कर उनका भय दर किया । राम ने हनुमान का अपनी मुक्ति और सज सदाचार दकर कहा—तम जाणा सीता ते मित्रर उमहा वृणमणि नै भाना तया वहा का गव समाचार भी जाना जिसस मुम मात्रा का भक्षण म प्रयय हो मने ।

हनुमान न जना म पहुच कर प्रच्छन हा राम की मुद्रिवा सीता के धक के वस्त्र पर छोणे उम देख सीता वन्त नगी— राम की यह मुक्ति यहा मने आई ? जा वार्द इस मुक्ति को यहा लाया हा वह प्रवन् हो जाय । तब हनुमान ने प्रवन् होकर आन नाम स्थान एज कुत्राणि वा वरिवय देन दूज राम का सब समाचार गुनाया । सीता का विवाग हो गया कि राम और लगमण मरुगन हैं । न जलो ही यहा धाएये । इमने सीता को प्रमनता हुई । हनुमान न सीता ने कहा—भव आपका प्रतिता पूरी हा मर्द भोजन-गान ग्रहण करो । तब सीता न स्वाग्द्व निन पवनमस्कार मय का स्मरण कर भाजन किया । तत्पश्चात् हनुमान ने सीता ने कहा—मेरे कथ पर व जाण म राम क पाम पट्टवा दू । सीता बोली—पति की लगी आना नहा और न इस प्रकार जाना उपपन्न ही है । सीता ने अपना वृद्धमणि उतार कर हनुमान को गीवा और अपनी उन जीवन पटनाभा ना उत्सात भी कहा जिस सुनकर राम को विवाग हा गया कि सीता जीवन है और वह मर वियोग स बीडा है ।

राम ने रावण का पाटू नेत्र और कहनाया कि तम सीता को धारिम पट्टापो छपया मुद न तिय पवार हो जायो । रावण अभिमाना या उमन सीता को धारिम न कर मुद किया जिसका नवीजा उम भोगना पहा । राम रावण का मुद प्रमिद ही है । उनका भोगना का वजन परम्परानुसार चरितकार न किया है । अन्त म लगमण का हाप से रावण मारा गया । राम लगमण ने नका स प्रविष्ट हाकर सीता की भाण किया । जना म कुछ समय रावण कर



श्रीर विभीषण को लका का राज्य देकर राम सीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या को चले । अयोध्या में राम सीता और लक्ष्मण का भव्य स्वागत हुआ । भरत ने जिनदीक्षा ले ली । और राम लक्ष्मण का राज्याभिषेक हुआ । दोनों भाई वहां सुख से राज्य करने लगे ।

अशुभोदय में विवेक

कुछ समय के बाद अयोध्या में गीता के मन्त्रध में लोकोपवाद की चर्चा सामने आई, राम ने उस कलक से बचने के लिये सीता के परित्याग का निश्चय किया । यद्यपि लक्ष्मण ने बहुत समझाया पर राम अपने निश्चय पर दृढ़ रहे और कृतान्तवनन सेनापति को बुला कर यह आदेश दिया कि सीता को वियात्रान जंगल में छोड़ आओ । सेनापति सीता को रथ में बैठाकर ले चला और अयोध्या में बहुत दूर एक भयानक वनमें रथ को रोक कर सीता में बोला—आप उतर जाए ।

जब सीता हिंसक जन्तुओं से भरे उस विकट वन में उतरी तो भय से घांपने लगी । सेनापति ने रोते हुए सीता से कहा—मुझे आप क्षमा करें, मैंने तो केवल स्वामी के आदेश का पालन किया है । सेनापति सीता की विन्नमुद्रा, वन की भीषणता, नीरवता तथा गर्भ के भार की पीड़ा को देख कर अत्यन्त द्रवित हो गया । उसने जंगल में छोड़ने का कारण लोकोपवाद बतलाया । तब सीता ने जो कहा उसका उत्प्रेष हम पहले ही कर चुके हैं । सेनापति सीता के विवेक और धैर्य से अत्यन्त प्रभावित होता है, अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करता है और कहता है—यह सब कार्य मुझे पराधीनता-वश करना पड़ा है । देवी, मेरा यह अपराध धमा करो । कवि के ये वाक्य इस प्रकार हैं —

सेवावित्ती पुरिसो पहुवयणा विसड जलणमि ॥

जणणीए की स जाओ सो पुरिसो जो करेड परमेव ।

सेच्छाए जेण कओ न लहुइ सो किंचि करणिज्ज ॥

तो समियव्वो सामिणि मह अवराहो इमो अहन्नस्म ॥

एगागिणी अरण्णे ज परिचत्ता मए तमिह ।

तओ वाहुल्लोयणाए सुदीणवयणाए भणिय सीयाए, कहेहि केण पुण कारणेण एसो अम्ह अयडे चेक चडो दडो काराविओ राहवेण ? तेण भणिय—देवि, गम्म न जानामि । किन्तु मए वि सुओ जगण्णवाओ, जहा लकाह्वित्तिणा अवहरिय जीए सीलवररयण सा सीया णियभवेण कह आणिया राहवेणेव ।

इयय सकल काउमन्ने भीएण पडभनाहेण ।

सुयणु तुम परिचत्ता णो अण्णो कोड अवराहो ॥

अह वा न तुज्झ दोसो दोसा महचेव पुव्व पावस्म ।

जह नाह अह तुमए परिचत्ता आणड अभावेड ।

तह मा मु चसु सामिण जिणवयण पिमुणवयणेहि ॥

मुक्कस्स मए पच्छा अवगणत्तस्म विगयविलियस्स ।

इह चेव भवे निक्ख होही पिअयम महादुक्ख ॥

चित्तामणिसारिच्छो जिणवरधम्मे मए विमुक्क ।

नाणाविहदुक्खाण भवे भवे भायण होसि ॥

—सियाचरिड का० पृष्ठ १३५

सेनापति के जाते ही सीता रोती और विलखती है और अपनी निन्दा करती है, परन्तु वहा उसका कौन है, जो उसे उस दुःख में सान्त्वना दे, ढाढस बधावे । वह कभी जिनदेव का स्मरण करती है, कभी अपने माता-पिता और लक्ष्मण को याद करती है, कभी अपने भाई भामटल को याद करती है । और कभी अत्यन्त करुण विलाप करती है ।

वि 'ज' एवं 'यूप' वा अन्य वा भविष्यद् वा ज जाया अजीवा भविष्यति अजाया जोया भविष्यति अर्थात् न यह वभी हुआ न होता है और न होगा कि जाय वभी अजीव रूप धारण करन और अजीव वभा जाय रूप धारण करन । इस प्रकार जनधर्म में आत्मा न ता वभी अजीव रूप धारण कर सकती है और न अजीव वभा आत्मा का रूप धारण कर सकती है । आत्मा का ता स्वयं सम्मित्व = वह अजर अमर है । आचार्य पूज्यपाद व अनुसार उगरी मान अवस्थाएँ * —

बहिरन्त परचेति त्रिषामा तथेदेहिषु ।
उपेयास्तत्र परम सध्योपायाद् बहिरचेति ॥४॥
बहिरात्मा परीरां १ जातारमभ्रातिरान्तर
चित्तदीपात्मविभ्राति परमात्मातिनिमित्त ॥४॥^१

अर्थात् बहिरात्मा उग अवस्था का नाम है जिनमें आत्मा अपने स्वरूप का नही पन्थान पानी तथा घरीर और इन्धिया को ही अपना स्वरूप समझती है अन्तरात्मा वह है जो बिन सत्रपा दाया का अपना स्वरूप समझती है । बहिरात्मा की अपना स्वकी समझ (इति स्वप्नपुरुष मनी है तथा वह घरीर का अपने में प्रवेश मानता है किन्तु पूरा नहीं बन पानी । परमात्मा वह विनिष्ट अवस्था = तत्र आत्मा पूरा विश्राम पर पहुँच जाती है और उगरी जम भरपूर नहीं होता वह अनि निमित्त रूप धारण कर सकती है । कुतूहलपाय १ अपने मातापिताद म भी मी वा वधन किया है ।^१ रहस्यवाद में आत्मा का दो स्वरूप । वा हा स्वोराग किया गया है एक तो वह जियम वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकती और दूसरी वह जियम वह परमात्मा में मिता हो जाती है । जनधर्म की पूज्यपाद व अनुसार उगरीक सीता अवस्थाया में प्रथम १ अवस्थाएँ रहस्यवाद की पन्थी आत्मा की तांति वा है और तासरी उगरी दूसरी व ममान ।

एक प्रकार जनधर्म में आत्मा की तीसरी अवस्था (परम आत्मा) आत्मा वा हो एक अर्थ है परम आत्मा और आत्मा वा अपने सम्मित्व पन्थी = अर्थात् आत्मा १ परम आत्मा है । आत्मा पन्थी गतिपाया है कि वह स्वयं परम आत्मा वा रूप धारण कर तत्रा = उगरी रूप विनिष्ट है जता = वह परीरा जिन पन्थि जिन मद रहित बिगुड परमात्मा में स्थित रहनमाना मय वभी की जिदना क्यापकारी गावरा एवं मिष्ट हो जानी है क्या —

भतरहिमो कलवली धलिहिमो कलसो बिगुडपाद ।
परमेष्ठो परमजलो तिथकरो तातप्रो तिदो ॥^२

यस आर उग गरी और एगद का मान ता रहता उगह त्रिप य पन्थि है जता है कि त्रिपवा समाधि कर ? त्रिपरी अर्थात् ग ? इत्यादि वा त्रिपार कर त्रिपवा पन्थिपाय कर ? त्रिपवा मित्रता आर त्रिपरी पत्रता कर ? जहा का तातता है आत्मा हा त्रिपरी पत्रता है -

१) ? मुममाहि करउ को वषउ
दोय सरीय करिषि को वषउ ।

१ आचार्य पूज्यपाद तात पत्रता मोह मय मन्दर हिन्सा ।

२ कन्दर्पाचार्य मोहपादु कोया और पन्थिया मनी ।

३ (क) का वगापाय मोहपादुह एग मनी

(ख) मातापार जय मय स्वा रवा अग्रम ६२ थी कापुदेबीह व लेख में उदघृत-याद १३४



पञ्चमचरित मे उपलब्ध होते हैं। कुछ पद्य “अन्न च”, ‘भणिय’ तथा ‘ओट्ठ’ कह कर दिए गए हैं। वे उससे उद्धृत किए गए जान पड़ते हैं। उदाहरणार्थ—

अन्न च—महिला सहावचवला अदीहपेही सहाइ माइल्ला ।
त मे खमाहि पुत्तय ज पडिक्कल कय तुम्ह ॥ १६६ ॥
तो भणइ पठमणाहो अम्मो कि खत्तिया अलियवाई ।
हुत्ति महाकुलजाया तम्हा भरहो कुणउ रज्ज ॥
—सीताचरित १६७

महिला महाव चवला अदीहपेही महावमाइल्ला ।
त मे खमाहि पुत्तय ज पडिक्कलकय तम्ह ॥ ३२-५१ ॥
तो भणइ पठमणाहो अम्मो कि खत्तिया अलियवाई ।
होन्ति महाकुलजाया, तम्हा भरहो कुणउ रज्ज ॥
—पञ्चमचरित ३२-५२

भणिय च—समणो गावो विप्पा इत्थीओ आलवुड्ढरोगत्ता ।
एए न हु हन्तव्वा कयावराहा वि धीरेहि ॥
—सीताचरित कापी पृ० ३८

समणा य वम्भणा वि य, गोपसु इत्थीय वालया वुड्ढा ।
जइ वि हु कुणन्ति दोत्त, तह वि य एए न हन्तव्वा ॥
—पञ्चमचरित ३५-१५

रच नाकाल

इस ग्रंथ का रचयिता कौन है और ग्रंथ कहा रचा गया, इसके जानने का कोई पुष्ट साधन अभी तक उपलब्ध नहीं है। ग्रन्थ में रचनाकाल और गुप्तपरंपरा का भी कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु ग्रंथ के अंत में एक गाथा निम्न प्रकार से उपलब्ध है।

एय सीयाचरिय वज्जरिम सेणियस्स नरवड्ढणो ।
जह गोयमतह महसूरिहि निवेइय किंचि ॥

इसमें बतलाया है कि सीताचरित को गौतम ने जैसा राजा स्त्रेणिक से कहा वैसा ही महसूरि ने कुछ निवेदन किया। इस गाथा में “मह” शब्द अपूर्ण जान पड़ता है और वह अन्य शब्द ‘सेन’ की अपेक्षा रखता है। पूरा नाम महसेन सूरि होना चाहिए। इतिहास में महमेन और महासेन नाम के विद्वानों का उल्लेख मिलता है। बहुत संभव है कि इस ग्रंथ के रचयिता कोई महसेन नामक विद्वान हो।

वघेरा के निम्न मूर्तिलेख में आचार्य महसेन का उल्लेख स्पष्ट है, यह लेख सफेद पाषाण की खड्गासन मूर्ति के नाचे अंकित है।

स० १२१५ वैशाख सुदी ७ श्री मरयुरसघे आचार्य श्री महसेने तद्दीक्षिता आर्यिका ब्रह्मदेवी श्री चन्द्रप्रभु प्रणमिति ।”

कुछ विद्वान् “मह” का अर्थ मुक्त बतलाते हैं पर यह सगत नहीं जान पड़ता।

इस ग्रंथ की अनेक प्रतिया उपलब्ध हैं, संभव है उनमें से किसी पुरातन प्रति में कर्ता का उल्लेख मिल जाय।



ते गुरु मेरे नन बसो, जे नव जलधि जिहाज ।

आप तिरं पर तारहीं, ऐमे ही ऋषिराज ॥^१

मनगुरु का उपदेश आन्धवों के लिए दीवार, कर्म के कपाटों को गोलने वाला और मोक्ष के लिए पैड़ी का काम करता है —

यह सतगुरु दी देशना, कर आश्रय दीवाड़ि ।

नदी पंडि मोलदी, करम कपाट उघाड़ि ॥^२

गुरु की कृपा से ही परम-आत्मा की प्राप्ति होती है । मुन्दन्दान की आत्मा को गुरु की दयानुता ने ही परम-आत्मा तक पहुँचा दिया था ।^३

उसी तरह ब्रह्मजिनदाम ने प्रथम नीर्भर्य ऋषभदेव को मनगुरु की कृपा में ही प्राप्त किया है —

तेह गुरु मे जाखी या ए, सदगुरु तखी पनावतो ।

भवि भवि स्वामी सेवमु, ए लागु सदगुरु पाव तो ॥^४

उन प्रकार जैन धर्म में भी गुरु के श्रभाव में रहस्यमय तत्त्व का पाता अनुभव है क्योंकि वही नार्मागिक मिथ्यात्व के आवरण को दूर कर परममत्ता से साक्षात्कार के लिए उन्मुक्त करता है । उसीलिए मुनि नयमन के गुन, जो 'मुझ तक पहुँच जाने में समर्थ हैं पूजनीय हैं' —

‘मेरे पूजनीय !

मैं तुम्हारी पूजा इसलिए नहीं करता —

कि तुम बड़े हो,

किन्तु इसलिए करता हूँ कि —

तुम मुझ तक पहुँच जाते हो ।’^५

रागात्मक सम्बन्ध

रहस्यवाद में आत्मा और परम-आत्मा में एकता और उन एकता की रागात्मक अनुभूति का प्राप्त होना आवश्यक है । परम-आत्मा या ब्रह्म इन्द्रयातीत अगम्य होते हुए भी वह गम्य है, वह अनौकिक प्रेम द्वारा ही प्राप्य है । प्रेम या अनुराग या रागात्मक सम्बन्ध भक्ति के स्थायी भाव हैं । परम आत्मा के रहस्य में साक्षात्कार करने के लिए भक्ति के उसी रागात्मक सम्बन्ध को माध्यम बनाया जाता है । यह रागात्मक सम्बन्ध मानवेतन या स्वयं ब्रह्म में होता है, अतः लौकिक नहीं हो कर अलौकिक है ।

हिन्दी साहित्य में कबीर और जायसी ने परम-आत्मा की प्राप्ति के प्रयत्न में प्रेम की प्यास को खूब बुझाई है किन्तु कबीरदाम ने ब्रह्म के अपार मोदय को घट के भीतर ही रखा है, उनके विपरीत जायसी एवं जैन कवियों ने परम-तत्व के मोदय को प्रकृति के कण-कण में उड़ेल दिया है, उनमें मवेदनात्मक अनुभूति की अधिकता है । सतगुरु के द्वारा

१ भूधरदास, 'आध्यात्म पदावली', ज्ञानपीठ, पृष्ठ ८४

२ बनारसीदास, 'बनारसी विलास', जयपुर (१९५४) दोहा २३, पृष्ठ १३६

३ परमात्मसो आत्मा जुदे रहे बहुकाल ।

सुन्दर मना करि दिया सद्गुरु मिले दयाल ॥

४ ब्रह्मजिनदास, 'आदिपुराण', प्रशस्तिसंग्रह, जयपुर २०४

५ मुनि नयमल, 'मेरे पूजनीय', जैन भारती, १० सित० १९६७, पृष्ठ ६५७

उसके स कहन बिना क सुनकर ब्रजजय की सता रुक गई । ब्रजजय ने सीता के गले सुने । उमन पास आकर जब सीता में उसका परिचय पूछा तब सीता ने अपना परिचय लिया और बनवास का कारण बतलाया ।

ब्रजजय ने अपना परिचय दन हुए कहा—धर्मविधि से तुम मरी बड़ी बहिन हो । सीता उसे अपना भाई मान कर उससे साथ नगर में चली गई । ब्रजजय सीता का सम्मान व साथ पान्थी में लाया और कहा उससे साथ भगिनी व योग्य व्यवहार किया । सीता ने कहा सुगल पुत्रा का जन्म लिया ब्रिजका नाम लव और भुवुग रखा गया । दाना पुत्रा का बड़ा सालन पालन पिण्डन और विवाह हुआ । उन्होंने विव्रज की । परचान भगोष्ठा आकर रामचन्द्र से मुद्र कर अपनी योगता का परिचय लिया और आकर वे साथ भगोष्ठा में प्रवेश किया ।

अग्निपरीक्षा और आश्रिका की दीक्षा

कुछ दिना के पदचान राम की स्वीकृति पाकर विभीषण हनुमान सुभीष और भामिनी राजा गण सीता का सन के निय पु डरीबनी नगरी गए और सीता को ल साथ । किन्तु जब सीता राम के सम्मुख आई तब राम ने उस कहा—देवि मैं तुम्हारे गीत को जानता हू किन्तु किनी बर्षों-यका जा जनापना रूप बन्द हुआ उस घीने के निने अग्नि में प्रवेश कर आत्म मुक्ति करा ।

ता राहवण पगनम सुमलितन तपिय दहए ।
ज मणसि तुम सख सख पि हू नयिय सहर ।
जाणामि तुम सोल अणनमरिय कुनीणय तज ।
न कितिम न पम्प ज नुर तह बरस भुवणमि ।
तहविद्ध जगाववाधा वेण नम्मण उच्छिन्धो ।

पाकिहिंजि जम धरत लहिनि पमिडी जममि सयतमि ।
ता जलपपवसेण बरेमु त सतणा सुदि ॥
हेमस व वेण मलो अवसकलरो समुत्तरद ।
एनो मिये बिय तह सुत्तरि जाण मणनिव्वइ अम्ह ॥

—सीयाचरित का पृष्ठ १६०

सीता ने भी वस्तुस्थिति का निगमन करात हुए अपनी स्वीकृति दी ।

अग्निपुण्ड तयार कराया गया और जब वह प्रवर्जित हो उठा सीता ने धवनमस्वामिन् का स्मरण कर सभा में वक्त बोला स कहा—यदि मैं इस जीवन में अपने पति रामचन्द्र को छोड़कर धन्य पुरव का स्वप्न में भी स्मरण किया हा तो मग यह गरीर इस अग्नि में जल जाये और न बिया होता न जब तत्पश्चात् सीता ने अग्नि में प्रवेश किया । सोच हाय-हाय करने लग किन्तु जब सीता अपने धीनवत-महाम्य से न जली तब सबने उससे सील की प्रशंसा की । कुण्ड से निकलने पर सीता ने ससार का अग्नि-यता और अगारणता का अनुभव कर आत्मवत्प्राण करने का निश्चय किया । रामचन्द्र ने घर करने का आग्रह किया और यह भी कहा कि मैं तुम्हें मोलह हजार रानियों की पटरानी बनाऊंगा किन्तु सीता ने अपने बग का लुचन कर मवप्रप्य मुनि के निबन्ध आश्रिका की दीक्षा ल ली और विधिपूर्वक तपस्वरण द्वारा आत्ममुक्ति की ।

स याचरित में सीता के पवित्र जीवन की जो आँकी दी गई है उनका यह सविन्य सार है अरिज धन्य सुन्दर व प्रतापन योग्य है ।

य व का कथान लिखर परंपरा की निय हूण है । उसमें कोई एसी बात नहीं है जिसमें उसने विषय में सग्य की अवस्था मिल । अरन य व का तलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट जान होता है कि कर्ता न विमदयुक्ति पदमचरित की अवग्य देगा है क्याकि उनका प्रभाव उन पर प्रवृत्ति है । य व के अन्तर्गत ही पद गया के लो मायाग पात्र के साथ





हल सहि कलहु केण समाणउ,
जहि कहि जीवउ तहि उप्पाणउ ॥^१

आत्मा का यही शुद्ध रूप परम-आत्मा है, जैनधर्म में यही ब्रह्म का पर्याय है। ब्रह्म की व्युत्पत्ति 'वृह' (वढना) धातु में हुई है। जो वृहत्तम है जो सबसे बड़ा चडा हो, जिसमें बचना क्रिया के सभी अर्थ शामिल हो, उसे ब्रह्म कहा जाता है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि ब्रह्मवादियों ने अपने भाष्यों में ब्रह्म शब्द की यही व्याख्या की है।^२ परम-आत्मा, जैनधर्म में आत्मा का यही बड़ा चडा या वृहत्तम रूप है। आचार्य योगीन्दु के अनुसार^३—

“मूढ वियखणु वमु परु अप्पा ति विहु हवेइ”

अर्थात् मुढ़ आत्मा ही ब्रह्म है, उसका कोई अलग स्वरूप या अस्तित्व नहीं है। इसका कारण यह है कि निद्रा और ब्रह्म एक ही है —

जेहुड सिम्मलु णाणमउ सिद्धिहि णिवमइ देउ ।
तेहुड णिवसइ वमु परु देहुड म करि नेउ ॥^४

और निद्रा, आत्मा का ही विकसित रूप है, जो आठ कर्मों से मुक्त हो जाते हैं तथा उनके बाद जो निद्रा प्राप्त करते हैं वे ही निद्रा हैं।^५ इस प्रकार के निद्रा अमूर्तिक, अव्यक्त, ज्ञानयुक्त और शाश्वत भुक्त के धारणकर्ता होते हैं।^६ श्री कुन्कुन्दाचार्य ने उनमें नम्यकत्व, दर्शन ज्ञान, वीर्य, मूढमत्ता, अगुरुनधु और अव्याघात नामक आठ गुण बताये हैं —

सम्मत्त णाण वनण वोरिय, सुद्धम, तहेव, अवगहण ।
अगुरुलहुमग्वावाह अट्ठगुणा होति निद्राण ॥^७

कबीर का निर्गुण ब्रह्म भी अमूर्तिक और अश्रव्य है।^८ अतः वह जैनधर्म के निद्रा या परम-आत्मा के समान ही है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि जैनधर्म में आत्मा और परम-आत्मा एक ही है। हिन्दू धर्म भी यही मानता

१ योगीन्दु मुनि, योगसार, बोहा-४०

२ साहित्यकोश, ज्ञान मण्डल, पृष्ठ ५२०

३ परमात्मप्रकाश, १।१३, पृष्ठ २२

४ वही १।२६, पृष्ठ ३३

५ आठ कर्म निम्न है — ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय मोहनीय आयु, नाम, शोत्र और अन्तराय ।

६ आचार्य पूज्यपाद, सिद्ध भक्ति, पहला श्लोक (दश भक्ति) शोलापुर, पृष्ठ २७

७ डा० प्रेमसागर जैन, हिन्दी भक्ति काव्य और कवि, ज्ञानपीठ पृष्ठ ४५६

८ कुन्कुन्दाचार्य सिद्धभक्ति (दशभक्ति), शोलापुर, पृष्ठ ६६

९ मतो घोला कासु कहिये ।

गुण मे निरगुण, निरगुण मे गुण, वाट छाडि द्यूं वहिये ॥

अजरा अमरा कर्ये सब कोई, अलख न कथणा जाई ।

नाति स्वरूप वरण नहि जाकै, घटि-घटि रह्यो खमाई ॥

प्यड ब्रह्मण्ड कर्ये सब कोई, चाकै आदि अरु अन्त न होई ।

प्यड ब्रह्मण्ड छांडि जे कथिए, कहै कबीर हरि सोई ॥



सत्यधम्मं च्युतात् पुनः कुट्टादाशोचिपादिव ।

अनास्तिकोऽप्युद्विजते जन किं पुनरास्तिक ॥^१

वेदों की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के आधार पर ही आग्नि-नास्तिक निर्णय करना एकांगी दृष्टिकोण है, हिन्दुओं के प्रमुख ग्रन्थ 'महाभारत' के श्लोक के अनुसार भी जैनधर्म को नास्तिक कहना युद्धिगम्य नहीं है। वह आस्तिक दर्शन है और उगमे रहस्यवाद प्रारम्भ काल में ही पाया जाता है। यजुर्वेद तक में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभ-नाथजी तथा दूसरे तीर्थंकर अजितनाथजी को गूढवादी (रहस्यवादी), बताया गया है।^२ "परमात्मप्रज्ञा" की भूमिका में भी डा० ए० एन० उपाध्ये ने क्रमशः प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथजी, चौदहवें तीर्थंकर नेमिनाथजी तथा तेरहवें तीर्थंकर पार्श्वनाथजी को गूढवादी (रहस्यवादी) कहा है।^३ भगवान् महावीर की वाणी के मगधीन ग्रन्थ रूप आम साहित्य के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ "आचारंग सूत्र" में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है —

जे एग जाणइ से सव्व जाणइ ।

जे सव्व जाणइ से एग जाणइ ॥^४

अर्थात् जो एक को जान लेता है, वह सबको जान लेता है और जो सब को जान लेता है वह एक को जान लेता है। विक्रम की पहली शताब्दी में कुन्दकुन्दाचार्य के "भावपाट्ट" में रहस्यवाद की भावानुक्रम अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी गई है। इसके बाद अपभ्रंश की छनियों में योगात्मक रहस्यवाद का स्वर पाया जाता है। मध्यकाल तक आते-आते भावात्मक अभिव्यक्ति एवं योगात्मक रहस्यवाद की दोनों धाराएँ, नमान रूप में पाई जाती हैं। तन्त्रवादियों का प्रभाव भी इस पर पड़े बिना नहीं रहा है फिर उनमें विकृति नहीं आ पाई है। यहाँ हम विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत जैनधर्म और उसके साहित्य में रहस्यवाद की स्थिति का क्रमशः अवलोकन करेंगे।

१ आत्मा, परम-आत्मा और ब्रह्म

आत्मा द्वारा परमात्मा या ब्रह्म में साक्षात्कार करने की स्थिति रहस्यवाद की आधारशिला है। याम्ने ने अपने "निखत्त" में आत्मा शब्द की निरुक्ति यों बनाई है —

"आत्मा तते वप्ति वापि वाप्त इव न्याद् यावद् व्याप्तिभूत उति"^५

अर्थात् आत्मा शब्द अर्त् घातु या अर् घातु से बना है। आत्मा को आत्मा इनलिये कहा जाता है कि वह सदा चलती रहती है या वह सदा जीवधारियों में व्याप्त रहती है। नमन्त हिन्दूदर्शन आत्मा के इसी स्वस्व को स्वीकार करता है और रहस्यवाद भी इसी से प्रभावित है किन्तु जैनधर्म का उसने थोड़ा मनभेद है। न्यानाग सूत्र के अनुसार^६ "दुविहे नच्चे पन्नत्ते, तजहा जीवे चेव अजीवे चेव" अर्थात् दो प्रकार के तत्व हैं—जीव और अजीव। आगे कहा गया है

१ (क) महाभारत, आदि पर्व—

(ख) शब्दकल्पद्रुम मोतीलाल बनारसीदास सस्करण, पृष्ठ १६८ पर उद्धृत

२ डा० प्रेमसागर जैन, हिन्दी, जैन भवित काव्य और कवि, ज्ञान मण्डल, पृष्ठ ८७६

३ डा० ए० एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित "परमात्मप्रकाश एण्ड योगसार" (अग्रजी) इन्ट्रोडक्शन, पृष्ठ ३६

४ आचारंग सूत्र, ३।४

५ याम्ने, निखत्त, ३।१३।२

६ मुनि श्री राकेश कुमारजी, भगवान् महावीर का तत्त्वदर्शन, जैन भारती, १६ अप्रैल ६७, पृष्ठ ३८० पर उद्धृत

कहा दिखावू और कू, कहा समझाऊँ मोर ।
तीर अच्छू है प्रेम का, लागे सो रहे ठोर ॥^१

और इस प्रकार जब उसे प्रभु की प्राप्ति हो जाती है तो वह उनमें मग्न हो जाता है, तन-मन की दुविधा विमरनी है, दीनता दूर हो जाती है, अनुभव रस की प्राप्ति हो जाती है और विद्यानन्द की मौज मच जाती है —

हम मग्न भये प्रभु ध्यान में ।
बिसर गई दुविधा तन-मन की, अचिरासुत गुन गान में ॥
हरि-हर ब्रह्म-पुरन्दर की निधि, आव नहीं कोउ मान में ।
चिदानन्द की मौज मची है, ममता रस के पान में ॥
इतने दिन तू नाड़ि पिछान्यो, जन्म गंवायो अज्ञान में ।
अब तो अधिकारी तू बैठे, प्रभु गुन अखय खजान में ॥
गई दीनता सभी हमारी, प्रभु तुम्ह समक्षित दान में ।
प्रभु सुन अनुभव इसके आगे, आवत नहिँ कोउ ध्यान में ॥^२

उपरोक्त प्रकार से परम-आत्मा के प्रति रागात्मक सम्बन्ध के नाय-नाय उठने, बैठने, खाते, पीते, मोते, जागते, नभी में उसी परम-आत्मा (ब्रह्म) को देखते रहता चाहिए । इन तरह की जागतावन्या की स्थिति में ही उस अनन्त की ओर लगन स्थिर रहती है ।

परम-आत्मा (ब्रह्म)

प्राप्ति के मार्ग में बाधाएँ

परम रहस्य से साक्षात्कार करने का मार्ग बड़ा कठकाकीर्ण है, उसमें अनेक बाधाएँ आती हैं, चूँकि मानव सांसारिक जीव है अतः समार ने सम्बन्ध-विच्छेद करने के उपरान्त भी नाना प्रकार के अवरोध परम-आत्मा की प्राप्ति के समय आते रहते हैं । माया उन्हीं में से एक है । कबीरदास ने माया का मनमोहक रूप बताया है । जो अपने रूप में सबको आकर्षित करती है ।^३ पाषिणी, मयणी, ठगिनि, डाकगी, विश्वामघातिनी आदि कबीर के अनुसार माया के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं तथा मान, आशा, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्ता, मद, ममता, मिथ्यात्व आदि सब माया के ही परिवारी हैं । इन्हीं के फेर में फसकर सत्तागी जीव परम-आत्मा (ब्रह्म) से विमुक्त हो जाता है । जैनधर्म भी माया को ठीक इसी रूप में देखता है । उसे विजली की आभा के समान माना गया है जो अज्ञानियों को ठीक उसी प्रकार ललचाती है जिस प्रकार क्षणभंगुर विजली की चमक—

लुनि ठगनी माया, ते सब जग ठग लाया ।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो भूरस पछताया ॥
आभा तनक दिखाय विजजु, ज्यो मूढमती ललचाया ।
करि मद अघ घर्म हर लीनो, अन्त नरक पहुँचाया ॥
केते कय किये तं कुलटा, तो भी मन न अघाया ।
किसहीसो नहिँ प्रीति निभाई, वह तजि और लुनाया ॥

१. आनन्दघन पद मग्रह, वम्बई, पद सं० ४

२. ७० प्रेमसागर जैन, हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, ज्ञान मण्डल, पृष्ठ २०२ पर उद्धृत ।

३. कबीर गया मोहनी, मोहे जाणं सुजाण ।

भागा ही छटे नहीं, भरि-भरि मारे वाण ॥

भूपर द्रवत फिरत यह सबको भौंड़ करि जग पाया ।

जो इस ठगनी को दग धडे में तिनको गिर नशाया ॥^१

इस भाषा से दुखारो पाना ही परमात्मा का प्रथम साधन है । भाषा में निहित मनुष्य का ब्रह्म के सन्निवृत्त पशुत्व मरना है । भाषा का सर्वाधिक प्रमाण मन पर पड़ा है अतः ध्यान करण का गुड कर मन की चंचलता पर विजय पाना आवश्यक है —

जग के भाषा बंधन छोड़
पर मन के यदि बन्धन तोड़
तो क्या क्योंकि चित्त से बाहर
जगत और सन्यास नहीं है ।
ध्यास सगो अब मोर नहीं था
मोर भरा अब ध्यास नहीं है ।^२

साधनता का नाम एक ज्ञान का प्रमाण होने पर भाषा हार मान जानी है । अतः रहस्यमार्गी को प्रभावान होता चाहिए ।

भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति

रहस्य की अनुभूति या अनुभव हमेशा रात्रि भातर या नाचकर विविध प्रकार से किया जा सकता है इस तरह का अनुभूति साधन तब तब ही जब जनतर साधक ने प्राप्त वा है किन्तु हम सबका रहस्यवाणी नही वह करने । जहां कि प्रारम्भ में रात्रि किया जा चुका है परम आत्मा में साक्षात्कार का प्रमाण में सहज प्राप्त अनुभूतिभाषा का भाषा के माध्यम में अभिव्यक्ति कर जन एक भाव गूँह के रूप में उनका एकीकरण होता है तब ही उम एकत्र रूप का रहस्यवाद कहा जाता है और ऐसा करने ध्यान रहस्यवाणी कहा जाता है । जबकि आपकी प्रमाण पत्र और महात्मा के साहित्य के समान ही हिन्दी जन भाषा में अनुभूतिभाषा पूर्यमान को भी उन्मत्तमोक्त भूपरदाग ब्रह्मजिनाम ध्यान रात्रि ध्यान ध्यान पाण्ड रूप में मुनि नयमन मुनि रूप में मुनि हजारीमन्त्रा के योगनामों की ध्याति ऐसे ही प्रमुख रहस्यवाणी बकि है । इनका अभिव्यक्ति साहित्य रहस्यवाद में परिपूर्ण है । इनके साहित्य में आत्म-वस्तु के प्रेम की अभिव्यक्ति द्वारा के द्वारा की गई है ।^३ यह सब भी यह गरम है किन्तु जनम समय की मात्रा अधिक है । एवम् मात्रा के बाद पानी की तरह बह नहीं है । साहित्यिक भाषा की रक्षा के साथ-साथ परम आत्मा की प्राप्ति में सहज प्राप्त अनुभूतिभाषा का भी संपादन करने हुआ है । विज्ञान मात्रा में उपर्युक्त एक साहित्य पर सटम्य अनुभवान की सामाजिक आवश्यकता है ।

●

१ (क) हिन्दी पद सप्तह (दि जन ध० सत्र की महावीर जी) में सज्जित भूपरदाग का पद पृष्ठ १५४

(ख) इस पद की बहीरे के भाषा महा दमिनी हम जानी

निरगुन जग निय कर डीते बोने मधुरी पानी बाल पद से विताये

२ मनि धी नयन-वती बला प्रकृता आदग साहित्य सप्त प्रमाणन पृष्ठ २१

३ डा० प्रमत्तगर जन हिन्दी जन अभिव्यक्ति भाषा और बकि ज्ञान मन्त्राल पृष्ठ ६



संत कवि रायचन्द्रजी और उनकी रचनाएँ

मुनिश्री लक्ष्मीचन्द्रजी म०
(स्व० गुरुदेव श्री मुजानमलजी म० के शिष्य)



म्यानश्रवणी परम्परा में कई प्रभावशाली मनरवि हो गये हैं। उनकी आचार्य जयमल्लजी म० की परम्परा ने हिन्दी साहित्यशास्त्र को बड़े उज्ज्वल नक्षत्र प्रदान किया जिन्में आचार्य रायचन्द्रजी, अन्तरङ्गजी, नवदानजी, मुनि पीरचन्द्रजी, नाराचन्द्रजी, भगवानदासजी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्वयं आचार्य जयमल्लजी प्रभावशाली मन एव कुशल कवि थे। उनके व्यक्तित्व को मूर्त में उपमित किया जा सकता है। उन्हीं में प्रेरणा पाकर उक्त कवियों का प्रकाश अधिकाधिक विकीर्ण होता रहा। आलोच्य कवि रायचन्द्रजी इसी मौरमटल के कीर्तिमान ज्योतिष्पट थे।

जीवन-वृत्त

आचार्य श्री रायचन्द्रजी का जन्म म० १८६६ आश्विन शुक्ल एकादशी को जोधपुर में हुआ। उनके पिता का नाम विजयचन्द्रजी घाईवाल तथा माता का नाम सन्दादेवी था। माता-पिता के धार्मिक मन्त्रों से दानव रायचन्द्र का हृदय अव्यात्म-चिन्तन की ओर उन्मुख हुआ। जब आचार्य जयमल्लजी म० जोधपुर पधारे तो रायचन्द्रजी अपने माता-पिता के साथ उनके व्याख्यातादि मुनियों के लिए वर्म-स्थान में गये। जयमल्लजी प्रभावशाली वक्ता थे। उनमें तप, त्याग का ओज और गान्धीयज्ञान का अनुल वल था। साथ ही थे वे एक कुशल सहृदय कवि। उनके प्रवचन का रायचन्द्रजी पर उसी प्रकार प्रभाव पड़ा जैसा उपजाऊ भूमि में डाले गये किसी बीज पर पड़ता है। इनका परिवार भग-पूरा और सम्पन्न था। इनके दादाजी व नानाजी नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में थे। इनके दो बहिर्न, एक भाई तथा माता-पिता जीवित थे। ऐसे चहूँने हुए मात्सरिक दाग को छोड़कर ये जयमल्लजी म० के चरणों में जा पहुँचे और मयम-मार्ग के पथिक बनने की भावना व्यक्त करने लगे। लोगों ने दीक्षा के दुर्गम मार्ग से इन्हें त्रुव परिचित कराया पर ये अपने निश्चय पर दृढ़ बने रहे। अन्ततोगत्वा इन्होंने म० १८९४ में आपाट युक्ता एकादशी को पीपाड शहर में आचार्यजी जयमल्लजी से श्रमण दीक्षा अंगीकृत की।

पुत्र को दीक्षित होने देकर पिता का मन भी विरक्त हो गया। कुछ समय बाद विजयचन्द्रजी भी दीक्षित हो गये। पिता-मुत्र दोनों साधनामय जीवन व्यतीत करते हुए ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।

श्री रायचन्द्रजी आचार्य जयमल्लजी के प्रिय, विनीत शिष्यों में से थे। गुरु से प्रेरणा पाकर ये भी काव्य-साधना में प्रवृत्त हुए और इन्होंने काव्य क्षेत्र में कई नवीन काव्य-रूपों का उद्घाटन किया। इनकी मज्जम रचनाएँ विभिन्न

भयानक म हस्तनिमित्त प्रतियोग के रूप में प्रियता पड़ी है। उनके सबह-गणान्त की मरुती आवाज-रचना है।

कवि हान के माय-माय रायबन्ना की चचावा की मरुती। अपने मरुती के हेतु-दृष्टान्त एक भागम प्रमाणा के आधार पर प्रचलित मिथ्या धारणाओं का मरुती के अन्तर्गत को सही रूप में प्रस्तुत कर के अन्तिम जिन भागों का बन्ना प्रचार प्रसार किया। इनकी विद्वत्ता इनकी तर्किक और मार्गिक होती थी कि जो भी मुनता प्रभावित हुए गिता न रचना। भव दीप्ति मायु-गोपित्या व प्रति ज्ञान भाता पिता की तरह ध्यान रहना था और य उन्हे बड़े प्रेम ग आधार पर की गिता दत्त थे। अपने दिना एक आचाय की वा अन्तिम समय तक ज्ञान अन्तर्गत भाव ग मरुती की व गमा-मरुती म सत्यक रत्न। इनकी यावन्ता एक विद्वत्ता। स प्रभावित होकर जयमन्तकी ने अपनी उपस्थिति में हृदय अन्तर्गत उक्त राधिका का बन्ना किया।

आचाय की व स्वगवाय व पन्नात य पट्टपर आचाय बने। इनके ४४ वष तक सिंह की रत्न यामानुशाम विवरण कर घम प्रचार किया। यान् म गौरविक दृष्टवता के कारण जाधपुर म स्थिरताय विगत गय। यान् स १८६१ म जन्म मुनि १ वा गौरविक स्थिति को क्षाणम दत्तक आवाजना प्रतिवमनपूर्वक गुरुवीरता व साध तयारा भगी नार किया और जन्म मुनि २ को रोजि नाम म स्वगवाय बने।

आचाय रायबन्ना कवि हान व साध गाय गुन्तर विविचार भी थे। इनके द्वारा जिन हृदय कुछ पत्र जयन व पान मरुती हैं। इनकी जिति गुन्तर मुनाय और स्पष्ट है। इनके अन्तर्गत प्रत्येक रचना व अन्त म प्रभावित रूप से प्राप्त रचना मरुती रचना हृदय गुन्तर-मरुती अन्तिम वा उत्सव किया है। इनके अन्तिम हृदय है कि जो-युद्ध पात्री गीतन धीरानर जयपुर मरुती अन्तिम विगत विद्वत्-रत्न रह है।^१

रचनाएँ

विभिन्न नवारा म दत्त-रत्न विगरी हुई अन्तर्गत प्राप्त आचाय रायबन्ना की रचनाओं की सूची-नाम रचना नाम रचना-रत्न व छन्द-रत्न के मान्य व साध—यही प्रस्तुत की जा रहा है।

| क्र | रचना नाम | रचना रत्न | रचना-रत्न | छन्द-रत्न |
|-----|--|--------------------|-----------|-----------|
| १ | भविष्य की कथा पर दत्त ताय कथा पर चौपाई | १८६६ अन्तर्गत | नागौर | |
| २ | उपदेशी कथा | १८६७ अन्तर्गत मु ६ | निबरी | |
| ३ | उपदेशी कथा | १८६७ अन्तर्गत मु ६ | निबरी | |
| ४ | उपदेशी कथा (विगत सन्तान म) | १८६७ | निबरी | |
| ५ | उपदेशी की तन्माय | १८६७ अन्तर्गत मु ६ | निबरी | |
| ६ | कथावा | १८६७ अन्तर्गत मु ६ | निबरी | |
| ७ | गम अन्तर्गत | १८६७ | | |
| ८ | दशगो-रत्न की तन्माय | १८६७ | पञ्चोनी | |
| ९ | पान मरुती पर चौपाई | १८६१ वास्तविक व ८ | नागौर | |

१ यह परिचय इनके निम्न छात्र-रत्नो द्वारा दत्त एक सन्तोषिका के आधार पर लिखा गया है। इनकी रचना स १८६१ अन्तर्गत मुनाय अन्तर्गत की वास्तविक व की गई। इनमें २२ भाग हैं।



| | | | | | |
|----|---|------|-----------------|-------|----|
| १० | सम्पन्न स्वामी की सम्पन्न,
सम्पन्न मन्त्रिहार की चांगई | १=२१ | कान्ति मुद्रि = | नागौर | १० |
| ११ | आठ कर्मों पर टाढ़ | १=२१ | | | १३ |
| १२ | बाबोम पण्डित की टाढ़ | १=२२ | | निवरी | २२ |
| १३ | महावती की टाढ़ | १=२२ | | | |
| १४ | सम्पन्न स्वामी की चांगई | १=२१ | कान्ति मु० १४ | सोहन | |
| १५ | सम्पन्न मन्त्रिहार व प्रसन्न मन की चांगई | १=२२ | | सोहन | १० |
| १६ | वृद्धमणि देवी की चरित्र | १=२३ | आमोद मुद्रि ३ | मेढरा | |
| १७ | सम्पन्न स्वामी की सम्पन्न | १=२३ | | नागौर | |
| १८ | १६ तीर्थस्थलों का स्तवन | १=२३ | | | |
| १९ | केतन पञ्चमी | १=२४ | सोहन मुद्रि ६ | निवरी | |
| २० | सुवर्ण चरित्र | १=२४ | सोहन मुद्रि ६ | | |
| २१ | हस्तिनी चरित्र | १=२४ | | विजय | १० |
| २२ | महावती की चांगई | १=२५ | कान्ति व० | | |
| २३ | मेढरा की चांगई | १=२६ | आमोद मु० ५ | मेढरा | १६ |
| २४ | सम्पन्न स्वामी की टाढ़ | १=२६ | आमोद | मेढरा | |
| २५ | सम्पन्न स्वामी की टाढ़ | १=२७ | | पानी | ४ |
| २६ | गुरु की चेत की सोहन | १=२७ | | पानी | |
| २७ | निवृत्त बावती | १=२७ | | पानी | |
| २८ | विनीत की गुरु की सोहन | १=२८ | | पानी | |
| २९ | सम्पन्न मन्त्रिहार की चांगई | १=२९ | केत व० = | पानी | |
| ३० | आठ पञ्चमी | १=२९ | आमोद मु० ३ | | |
| ३१ | सम्पन्न स्वामी की सम्पन्न | १=२९ | कान्ति व० १४ | मेढरा | |
| ३२ | उज्ज्वली टाढ़ (विशेष सन्धि मे) | १=३० | | मेढरा | |
| ३३ | सम्पन्न पञ्चमी | १=३० | | मेढरा | |
| ३४ | सम्पन्न स्वामी की सम्पन्न (स० महावती
मे वेदमन्त्र होने मे रहित के) | १=३० | | मेढरा | |
| ३५ | सोहन स्वामी की सम्पन्न | १=३४ | | विजय | |
| ३६ | सम्पन्न मेढरा की चांगई | १=३४ | | सोहन | |
| ३७ | आमोद मुद्रि की पंच टाढ़ों | १=३६ | | नागौर | ५ |
| ३८ | गुरु केट की सम्पन्न पुत्रियों के गुण | १=३६ | | मेढरा | |
| ३९ | निवृत्त पञ्चमी | १=३६ | | पानी | |
| ४० | केतन गनी चांगई | १=३७ | | सोहन | |
| ४१ | सोहन केट की चांगई | १=३८ | | सोहन | ३० |
| ४२ | विनीत की चांगई | १=३८ | | नागौर | |
| ४३ | सोहन केट की चांगई | १=३९ | | नागौर | २० |
| ४४ | सम्पन्न की टाढ़ | १=३९ | पानी व० १३ | सोहन | |
| ४५ | सोहन केट की टाढ़ | १=३९ | | नागौर | |

८२ श्रेयागकुवर की टान

८३ श्री नदनप्राला मती की वगान^१

‘पच्चीसी’ सज्ञक रचनाएँ

जैन कवियों ने काव्य-रूपी के क्षेत्र में कई नये प्रयोग किये। प्रचलित राव्यों के कई भेद कर गम, फागु, चर्चरी, टान, वारहमासा, वेनि, तज्माय, मगल ग्रादि लिये। मजा मजा रचनाओं में भी श्रष्टक, इक्कीमी, चौत्रीमी, पच्चीमी, बत्तीमी, उत्तीमी, नावनी, बहोत्तरी, यतक, मजमई, ठमारा आदि नामों में अनेक प्रय लिये। आनोच्य कवि रायचन्द्रजी ने जहाँ कई तथा-ताव्य लिगे, रनवन लिगे वहाँ ‘पच्चीमी’ सज्ञक भी कई रचनाएँ लिगी। उन रचनाओं में सम्प्रन्धित विषय के गुणावगुणों की चर्चा करते हुए आत्मा को उज्जवन बनाने की देखाती है। अतः तब ‘पच्चीमी’ सज्ञक जो रचनाएँ इस दृष्टि में प्राप्न हुई हैं उनका विवरण इस प्रकार है—

| क्रम | रचना-नाम | रचना सवत् | रचना-स्थल, | छंद सख्या |
|------|--------------------|-----------|------------|-----------|
| १ | वय पच्चीमी | १८०६ | डीज्वाना | २८ |
| २ | जोवन पच्चीमी | १८३० | मेठना | २५ |
| ३ | चित्त ममाय पच्चीमी | १८३३ | मेठना | २६ |
| ४ | ज्ञान पच्चीमी | १८३७ | जोधपुर | २५ |
| ५ | चेतन पच्चीमी | " | जोधपुर | २४ |
| ६ | दीक्षा पच्चीसी | १७३६ | नागीर | २५ |
| ७ | क्रोध पच्चीसी | " | " | २५ |
| ८ | माया पच्चीमी | " | वीरानेर | २७ |
| ९ | लोभ पच्चीमी | " | " | २५ |
| १० | निन्दक पच्चीमी | " | " | २७ |

इनमें से ‘जोवन पच्चीमी’, ‘दीक्षा पच्चीमी’ और ‘चेतन पच्चीमी’ का मूल पाठ यहाँ दिया जा रहा है। ‘जोवन पच्चीसी’ में कवि ने नर-भाव एवं जवानी को व्यर्थ नष्ट करने वाले लोगो को उद्बोधित कर, जीवन के उत्साह उमग का सही उपयोग करने की प्रेरणा दी है। ‘दीक्षा देने वाले गुरुओं को दीक्षार्थी की पात्रता-अपात्रता पर विचार कर दीक्षा देने की बात कही गई है। ‘चेतन पच्चीमी’ में मजून को अपने धन को लोभोपकारी प्रवृत्तियों में लगाने की प्रेरणा दी गई है।

जोवन-पच्चीसी

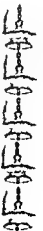
पुन्य जोग नर भव लियो टाणो, थै तो करो रे धर्म, पाप लोटो जाणो

सीर खबरे विना गोत्या राखै, पण गयो रे जोवन पाछो नहीं आवै ॥१॥

१ इनमें से अधिकांश रचनाएँ आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भंडार, शोध प्रतिष्ठान, जयपुर में संगृहीत हैं।

२ ये सभी ‘पच्चीसी’ सज्ञक रचनाएँ आचार्यश्री विनयचन्द्रजी ज्ञान भंडार जयपुर में संगृहीत हैं।

जानन यमाई उहा होय बगो वन पुरी रे मियाठ माइ पगो ।
 पाछ पर गाय म चना पछनाव ॥२॥ पण ॥
 हाती र कडा व जाना म माला पगनी धुमान पाताम्बर धोका ।
 दान त्या न भय बनाव ॥३॥ पण० ॥
 वन भवर गारा हाता जाना गता भारी पहरतो माव्यागे माता ।
 मुन नागर ये रा बोहा चार ॥४॥ पण०
 धन धन मिल सोना राचना एते कर पुण्यना मरगारा ।
 सदा रा जाय पन्थिया सात पाव ॥५॥ पण
 घणा घना पहरतो दाग उपर उपरणी रा वध नागा ।
 मूढ मूढ कता कडाव ॥६॥ पण
 धन धन र दा गाय पन्थिया दा तो छ न्दारी चार ।
 सुरत भनी जने मुखाव ॥७॥ पण
 बांध ना पाव लगरा चार फिर पर माई जडिया हीरा ।
 छणा छान जो सेवारा जावना ॥८॥ पण
 ऊता भाजन सुरत हारा बामी घषाणा घन तरवारी ।
 दानु भोवन लवट मगान ॥९॥ पण०
 मगारी माी न तडिया ए तो लागा माणन बडा कडिया ।
 बर जागे जात गोता न माव ॥१०॥ पण
 माव बह पभिन र भावा मगार ना सवना री माया ।
 बांध म माया वगनाव ॥११॥ पण
 ह परना धिगणी लुणा माता गहार बडा बटुताली गोनी ।
 गटना पहरन वन बघाव ॥१२॥ पण
 नर ना गारा र वन पडिया निवड मर नज आता रडिया ।
 नागी बागे धा मुखाव ॥१३॥
 नारा हाता कडा बरगा भागा पुरमा रा मन हण्णी ।
 घरना वज दगा रा गावा गाव ॥१४॥ पण
 बाळ म डेरा परी बागी बाग धीनध धीन नहा पावी ।
 मुन मुमाई दूयरी माव ॥१५॥ पण
 घाग बरहा गहा नारा तने घरम गे वान भणी नही मूढ ।
 तराया जाव नरक रा दुख पाव ॥१६॥ पण०
 गापु बह साभय रे भाई मोन भनि मने बह मममाई ।
 तें बला गेबरो गारा ॥१७॥ पण
 गापी रे जगा तान माऊ दान मु ना नान लावा रे नरन जाव ।
 पाछ पर भव म रानि विगनाव ॥१८॥ पण





नीन तमाना भरना मेला, जठै नोग लुगाई घना होवै मेन ।
 नैनी लुगाई नोनज गावै ॥१६॥ प०
 नैलना नेग्य अने होनी ये नो आगत नीर पयो होनी ।
 होना ने अरुन नह की जावै ॥१७॥ प०
 कुती आइने जो वन जावै, दिने दिन कुटावो नेटो आवै ।
 नयू नो नोने न्नावै ॥१८॥ प०
 जाची जाया नै जाची जाया, नाय कहै नानन रे भाग ।
 जमागे दोँ खाड गमावै ॥१९॥ प०
 कुगुन कुदेव नानो रमिगे हिमा धमं मे गाटो दमिगे ।
 दया धमं दिन मे नही भावै ॥२०॥ प०
 अने धन लट्ठी धनी होनी, नर भावनी पय नहिं धानी ।
 गरबी बिना आगे मुं जावै ॥२१॥ प०
 समन अरुन मो नीर कीरो, मेदने चोलाय जम नीरो ।
 रिख राजचन्द अनाग गावै ॥२२॥ प०

॥ जैन मन्त्रां ॥

दिण्या (दीक्षा) पञ्चीसी

टाप—नादन नो देमी । दीक्षा मनि बीजो अयोग्य नै ॥१॥ देर ॥
 नीजा अरु नै ठाँ नीमरे, अरु मे इतरा कोन । मुनिवर०
 वेतल्य मे वज्रिया, अग्निह्न नी अल्यो कोन ॥२॥ मुनिवर०
 दिण्या म बीजो अजोग नै, दावी निया विन हीन । मुनि०
 पछै हो पिछताव नी, तिरा मे मीन नै मेव ॥३॥ मुनि०
 अतही बूढो विद्या नहीं बने, निबले नानो वान । मुनि०
 तपूँक नै रोगियो, कोर ने बनेह चदान ॥४॥ मुनि०
 कोई राय नो अपगामी हवै, नैनी जैरी गुनाम । मुनि०
 आँखो ने बने अतमनि, कुष्टी दुष्ट पणिाम ॥५॥ मुनि०
 मोन दिरो नै दिवानियो, हीरो हवै हुलजान । मुनि०
 मुगागै नुव ब्राह्मणे, लयै दिन नै रात ॥६॥ मुनि०
 चूच बिना हंसने नै, गरुडनी बने नाग । मुनि०
 किगि रै चुंगै छीङ्गे, निप नै नजनिनै निरधार ॥७॥ मुनि०
 जान नाक नै होठ हुटा, हवै चल्नु हीण मुव मूँड । मुनि०
 दोष धनो नै मोह धनो, नान हीण नै बागो मूँड ॥८॥ मुनि०

वन कुछ हीना हुब दन अपछना भविनांत । मुनि०
 वपटी न वपटी कनाग्रही किणरा पूरी नही प्रवीन ॥८॥ मुनि
 प्रापी न वन वनसिपी नान पीर सन काज । मुनि
 वपन वान बाकी बाहरा नाच नणा म नाज ॥९॥ मुनि
 सजम म समम नही दोनी पाग सोव । मुनि
 मूनचित नमक नना महि मुमत गुपन रो ठीर ॥१॥ मुनि
 पहा बा बाज पारस्या जिनम (न) सीजे जीय । मुनि
 शरीर न उतावना वनियन हुन्ना काय ॥११॥ मुनि
 मुरली म मून जो मनी अठ मून जडग । मुनि०
 मुलटी कहेयां उतटी पन वन नागो भूयो भवग ॥१२॥ मुनि
 गधा कूनियो घोणे ना हुब ओ कर नय प्रकार । मुनि०
 राज न्दमु हान नना हावी हन मार ॥१३॥ मुनि दीव्या
 कानी उन कुमाणसा वदे दुजो न बाव रम । मुनि
 बाग न हाव ऊनरी जो नय नदी गग ॥१४॥ मुनि
 सोग मृदु कपाय वहे वने वन बासा सण । मुनि
 नना नवत छाता दोनुइ वाना दण ॥१५॥ मुनि
 छीन्दी पछ ही लिप्त कन जन्मा न रहे रीन । मुनि
 तिण मूं पत्ती पीजे पारस्या सिम पीजे मृविनीन ॥१६॥ मुनि
 विवना न भना बाया पछ नजाव भेप । मुनि
 उपन घोमुना तिणम राय जा विमप विवन ॥१७॥ मुनि
 बाई सवन सयामी जालो जतीवल वनाटा भेप । मुनि
 निण न मुग्न न मुड जो परय जो मान विचार ॥१८॥ मुनि
 जे वान घण सया भाविना निजरी टोन न बाव । मुनि
 जिणरा भगेमा मत रावजा नून जनन पोपो रा बाप ॥१९॥ मुनि
 निहा निगा न मून पूर बैगारी बाय । मुनि
 गतिहार गछ सारस्या भामुण वान जाय ॥२॥ मुनि०
 गुठ शानि बरज वनि निगम नही भविना । मुनि
 वन सावरा शत्रवल लोजिय वनुर पीडा चित म विचार ॥२१॥ मुनि
 पन वी रूप म भाविना घान म धनो है समात । मुनि
 दीगा दीज दली न मन मन भागे विवास ॥२२॥ मुनि
 शिमि मन्मा हुब जिनधम वी नव धर्मा जगा मोभाग्य । मुनि
 मल वनवाव चित श्रापणा । लोगा रे बध बराय ॥२३॥ मुनि
 दीव्या पत्तीसो परलदा रिब रायवन् वना विवास । मुनि
 समत घटारह छनीम म नागो सहर चौपास ॥२४॥ मुनि
 पला रो मिय वो त मणा वन बाधि पनारी पण पात । मुनि
 पूय जमनजी प्रमाद वी जुगत मु जादी दाल ॥२५॥ मुनि



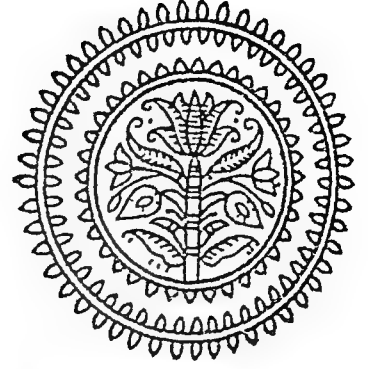
चैतन पच्चीसी

नीठ नीठ नर मूठ मूठ, उन जग मे तर-नार । चैतन ॥१॥ चे०
 जेठ कम नोने हुगा हुगा, मरा नानी मेन नार ॥१॥ चे०
 गिरगा नै दान दो हली, ने मन होन नर मूठ चि०
 दोने छनो छुटन जेग हल्ला ओथा नून ॥२॥ चे०
 मुगा केनी नपवा, चोर हुपनर मार चि०
 के गीने मेरे गवने, नि दान दिगे नही नार ॥३॥ चे०
 मुन नातु ने देखने, ले मंडरे छुट चि० ।
 के छिदा देवे छन दद बनी, के कोटि बीने मंड ॥४॥ चे०
 गर मे छन नि ददही, जिगे न देवे दान चि०
 मुनिग, ननिग, दानिग गिरा नही जगे दान ॥५॥ चे०
 जीव जडे वने माझियो, जने देना छुट हाय चि०
 मन माटे बाढो पागे, जिपदा बागी दान ॥६॥ छे०
 नाथा नै आता देन नै, गिरदा देवे मिवाट चि०
 आदमान आरे नही, जने उतर तुन नैदार ॥७॥ चे०
 गिरगा बाता जिमन रो, जह जे न बीने दान चि०
 जे छगने देना देव नै, नो नीटे म मूगन ॥८॥ चे०
 गिरगा छुटछी मट बै, बन्ने जग्गे जेह चि०
 उपजवे आमानना हू बने न आने गेह ॥९॥ चे०
 दान रा ने देखने, जने चदन दिन नै नार चि०
 गज दिग्गा वेन वदाही, के गान मेनी नार ॥१०॥ चे०
 देना जिग्गा देखने, मूठ मंडे हुम्लार चि०
 पान्ने हुवे हुवने, बने जठ नार जग ॥११॥ चे०
 जिग्गा रो बस बागो, बग्गी गेह छुट नै मार चि०
 देवे जही गने नही, पानी रो पन नै नै नार ॥१२॥ चे०
 मांड मार मान वेजग तारी, निग मना मिमन नही नार चि०
 निग बिछमी पुन्य होन नी, पार रे वडे नार ॥१३॥ चे०
 बीडी मूठ के लोच मे, नेहनी नीनर नार चि०
 जिग्गा बीडी मान्ना, केह लोच दुनि नै मार ॥१४॥ चे०
 आगे नो जानी जिगे, मावुजी गिरगा नर नै देव चि०
 हे दलनावर आवक हली, हे देवे अटनि दान विनेव ॥१५॥ चे०
 छानी पाटे मूगनी, जे देना देवे दान चि०
 बाई वन्नु जांचे जेहने कने, नो मुन माई दान ॥१६॥ चे०

त्रिदो उपपन्नं दानं रो विरपणं न विरपणं । ५ ।
 राक्ष पर भीज नहो जिम कोरदमुरी दान ॥१७॥ ५ ।
 मुनर्व दान मान नहा काई विरपणं करा वात । ६ ।
 दीठा पिण तिलनो ठर जिम अभावस रो रान ॥१८॥ ५ ।
 जाल यात अने लार म घष कम रे माहि । ७ ।
 जस भट्टिमा घले जहना वार जो वन लाम न । १११॥ ५ ।
 दाहा धन निठमी लणो विरपणं न नीना कोप । ८ ।
 भरिष घर म लानी भयो वृषण कनर नोय ॥ ११२॥ ५ ।
 पुण्य त्रिना पर नाच म लण घटाव धीम । ९ ।
 एव ताहो दुव भागव तनी न्याय नीर ॥११३॥ ५ ।
 पाप जोग पून भव त्रीध दीना अन्तराय । १० ।
 दिव मू हुभा वृषण मूमन जा मु दान त्रियो विम आय ॥११४॥ ५ ।
 रिम रायच कहै भव जावन थ वरवी नीलो लार । ११ ।
 भाग भागे भावसी उत्तम करा विचार ॥११५॥ ५ ।
 वेतन पच्छोसो वेतवा समझ जीन तावस । १२ ।
 पून जमाजी रे प्रसाधो गहर जोषपुर बीमास ॥११६॥ ५ ।



प्राकृतभाषा का एक मात्र अलंकार-शास्त्र : अलंकार-दृप्पण अनुवादक- भंवरलाल नाहटा



[प्राकृतभाषा का विपुल और विविध विपन्न साहित्य प्रकाश में आया है किन्तु कोई अलंकार ग्रन्थ अब तक प्रकाशित नहीं हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ के अनिर्वन किमी ग्रन्थ ग्रन्थ का अस्तित्व भी विदित नहीं है।

इस ग्रन्थ में अलंकार सम्बन्धी जो विवरण दिया गया है उसमें इसका निर्माण-काल ८ वीं से ११ वीं शताब्दी का माना जा सकता है। रचना में कर्ता का पता नहीं चलता। प्राकृत भाषा की अलंकार सम्बन्धी यह एक ही रचना जैसलमेर के बड़े ज्ञानभण्डार में ताडपत्रीय प्रति में प्राप्त हुई है।

कवि ने प्रारम्भ में श्रुतदेवता को नमस्कार करके, काव्य में अलंकारों का औचित्य और उद्देश्य का वर्णन कर अलंकार-शास्त्र रचने की प्रतिज्ञा की है। पश्चात् पद्य ५ में १० तक में वर्णित ४० अलंकारों के नाम कहे हैं। अनन्तर प्रत्येक अलंकार के लक्षण एवं उदाहरण दिये हैं। इसमें कतिपय अलंकारों के लक्षण मान हैं तो कतिपय के उदाहरण मात्र ही हैं। प्रस्तुत अलंकारों की संख्या ४५ होती है जबकि ग्रन्थकार ने पद्य १० में ४० संख्या का उल्लेख किया है, अतः प्रेमातिशय में गुणोत्तर पर्यन्त ६ अलंकारों को एक प्रेमातिशय के अन्तर्गत स्वीकार कर लेने में ४० की संख्या का औचित्य ठहरता है।

इस ग्रन्थ में निरूपित रसिक, प्रेमातिशय, द्रव्योत्तर, क्रियोत्तर, गुणोत्तर, उपमात्पक, उत्प्रेक्षायमक अलंकार अन्य लक्षण-ग्रन्थों में प्राप्त नहीं हैं। ये अलंकार नवीन निर्मित हैं या किमी प्राचीन अलंकारशास्त्र का अनुसरण हैं, निश्चित नहीं कहा जा सकता।

१३४ गद्यांशों की यह रचना जैसलमेर भण्डार की ताडपत्रीय प्रति न० ३२६ में १३ पत्रों में लिखी हुई है। प्रति १३ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखी गई जान पड़ती है। इसके साथ काव्यादर्श भी लिखा हुआ है।

आगमप्रभाकर मुनि श्रीपुण्यविजयजी जब जैसलमेरभण्डार का उद्धार एवं सुव्यवस्था कर रहे थे तब मैं अपने विद्वान् मित्र नरोत्तमदासजी स्वामी के साथ वहाँ पहुँचा और स्वामीजी ने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की प्रतिलिपि की। जिसे मुनि पुण्यविजयजी ने मूल प्रति से मिला कर सशोधित कर दिया। तदनन्तर मेरे भ्रातृपुत्र भवरलाल ने इसकी संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद का कठिन कार्य यथामति सम्पन्न किया। अनुवाद में भूलों और कमी रह सकती हैं। केवल एक मात्र प्राकृत के अलंकारशास्त्र का सभी विद्वानों को परिचय हो जाय इसलिये श्रम किया गया है।

—अगरचन्द्र नाहटा]

मंगल और अभिषेक

सुन्दर-पञ्च-विण्णास विमलाल कार-रेहिअ-सरीर

सुडदेविअ च कव्व च पणविअ पवर-वण्णड्ड ११।

सुन्दर एवं विद्यमान विमलानुवाक्यात्मक (गोभित) गरीरम् ।

अतदेवतां च काव्यं च प्रणम्य प्रवरवर्णद्वयम् ॥१॥

१-सम्पूर्ण पदविन्यास (अनुवाक्यात्मक चरण और काव्य के पद) और विमल अनुवाक्यात्मक से गोभित गरीर वात अष्ट वर्णों से सम्पूर्ण (प्रधान वर्णनाय) अनुवाक्यात्मक काव्य को अनुवाक्यात्मक करने सम्पूर्ण पद विन्यास (परा का रचना समान गति) वागी और निम्न चरणद्वारा (जामयणों) से गोभित गरीर वात और अष्ट वर्ण वागी अतः वी (पान की शक्ति सरस्वती) की और से रचना की विन्यासवाले तथा निम्न चरणद्वारा से सम्पूर्ण गरीर वात और अष्ट वर्णों वात काव्य को प्रणाम करने

मृदादि कव्यात् सन्नाद जेण हाति मृदादि

तमल वार अणिमान वार कुववि कवाण ॥२॥

सर्वाणि काव्यानि अस्याणि येन भवति भव्यानि

तमलवृक्षार वनमोऽनार कुववि काव्यानाम् ॥२॥

२-निम्न सभी का पद और पद (सम्पूर्ण) हो जाते हैं उस अनुवाक्यात्मक वर्णन करते हैं जो कुरवि के काव्या को भी अष्टवर्ण (गोभित) करने वाला है ।

अच्छन्मुत्तर पि हु निरत वार जणमि वीरत

कामिणि-मुहु न वव हाइ पसण पि विच्छाज ॥३॥

अस्यत सुन्दरमपि छलु निरतवार जने क्रियमाणम्

कामिनी मुखमिव काव्य भवति प्रसन्नमपि विद्यायाम् ॥३॥

३-तत्समाप्त म रत्ना (प १) जाता ह्या वाय अनुवाक्यात्मक रहित होते से अत्यन्त सम्पूर्ण और प्रमाण गुण युक्त ज्ञान पर भी निम्न वी गोभा रहित हुआ है तत्सम्पूर्ण सभी का पद अनुवाक्यात्मक होते से अत्यन्त सम्पूर्ण और विमल होने पर भी गोभा रहित होता है ।

ता जाणिऊण णिउण तन्निज्जइ बहुविहे अल वार

जेहि अल वग्निआइ बहु मणिज्जति कव्वाड ॥४॥

तत मात्वा निपुण सस्यते बहुविधा अलवार

परतद्वैतानि बहु भवन्ते काव्यानि ॥४॥

४-उद्धे अने तरह जान कर सना सम्पूर्ण के अनुवाक्यात्मक के पद यही पद जाते हैं निम्न अत्यन्त गुण वाय वन्त प्रमाण होना है ।

अलवाराम

उवमा-अवज नोवज रोहाणुप्पाम अन्सज विसम

अवमेव-जाल-वन्त रमिज-पग्जाज अणिआजा ॥५॥

उवमा हवज रोपक रोधानुप्राप्त अतिगप विनेय

आमेव-जाति व्यतिरेक रसिज पर्याया भगिता ॥५॥

५-उद्धे अने तरह राध अनुप्राप्त अनिमित्त निम्न जाते जाति रहित रमिज पर्याय पद पद हैं ।





जहासख (ख) समाहिअ-विरोह-समअ-विभावणाभावा
अत्यन्तरणासो-अण्णपरिअरो तह महोत्ती अ ।६।

यथासङ्ग-समाहित विरोध-मनाय-विभावना-भावा
अर्थान्तरन्यासोऽन्यपरिकरस्तथा नहोषितश्च ।६।

६—यथा-सङ्ग, समाहित, विरोध, मनाय, विभावना, भावा, अर्थान्तरन्यास, परिकर तथा सहोक्ति ।

उज्जा अवण्हवडओ पेम्माडसओ उदत्त-परिअत्ता
दब्बुत्तर-किरिउत्तर-गुणुत्तरा बहुसिलेसा अ ।७।

ऊर्जा अप हृति प्रेमातिशय उदात्त परिश्रुता
द्रव्योत्तर क्रियोत्तर-गुणोत्तरा बहुश्लेषाश्च ।७।

७—ऊर्जा, आहनुति, प्रेमातिशय, उद्वृत्त परिश्रुत, द्रव्योत्तर, क्रियोत्तर, गुणोत्तर बहुश्लेष (अलंकार) है ।

ववअस-धुई (ड) नमजोडआडअ-अपट्ठुअपसमा अ
अणुमाण आअरिसो उपेवसा तह अ ससिद्धी ।८।

व्यपदेश स्तुति समज्योतितादिका प्रस्तुत-प्रशमाश्च
अनुमानमादर्श उत्प्रेक्षा तथा च ससिद्धि ।८।

८—व्यपदेश, स्तुति, समज्योति, अप्रस्तुत प्रशमा, अनुमान, आदर्श एवं उत्प्रेक्षा तथा ससिद्धि ।

आसीसा उवमा-त्त्वअ च जाणइ णिअरिमिण तह अ
उपेवसा च अ (ओ) भेअ वलिअ जमअहि सजुत्ता ।९।

आशीरूपमात्रक च जानीत निदर्शन तथा च
उपेक्षा (वयव) उद्भिद वलित च अभेद वलित-यमकं सयुक्ता ।९।

९—आशीर, उपमा रूपक तथा निदर्शना एवं उत्प्रेक्षा अभेद उपेक्षा (वयव) (उद्भिद) वलित तथा यमक सहित (अलंकार) जानो ।

अतिअ-मित्ता एए कव्वेसु पडिट्ठआ अल कारा
अहिआ उवक्कमेण वीसाओ दोण्णि सखाओ ।१०।

एतावन्मात्रा एते काव्येषु प्रतिष्ठिता अलंकारा
आख्याता उपरुमेण द्वाविंशत्सत्याता ।१०।

१०—काव्यो मे इतने ये अलंकार प्रसिद्ध हैं, जो उपरुम से द्वाविंश अलंकार कहे गये हैं ।

उपमा अलंकार

उवमाणेण जा देसकालकिरिआवरोहपडिएण
उवमेअस्स सरिसअ लहइ गुणेण खु सा उवमा ।११।

उपमानेन या देश-कालक्रियावरोध प्रतीकेन
उपमेयस्य सदृशता लभते गुणेन खलु सा उपमा ।११।

११—जहाँ देश, काल, क्रिया और अवरोध के प्रतीक रूप उपमान के साथ उपमेय की गुण से सदृशता प्राप्त होती हो, वहाँ उपमा अलंकार होता है ।

पञ्चव्यू गणकलिञ्जा अममा भाला अ विठण्वा अ
सपुण्णा गूढा, मखला सिलेसा, अ दरविञ्जला । १२।

प्रतिवस्तु गुणकलिञ्जा अममा भाला विगुणरूपा च
सम्पूर्ण गूढा शृङ्खला च लेगा च दरविञ्जला । १२।

१२—प्रतिवस्तु गुणकलिञ्जा अममा भाला विगुणरूपा सम्पूर्ण गूढा शृङ्खला लेगा और दरविञ्जला ।

अपवद्वमा पससा तन्नि छा निदिआ अइसआ अ
मुडमिनिआ तट् (अ) वि अण्णिआ अ सत्तरह उवमाआ । १३।
एकजमा प्रगमा तत्तिप्पा निदिता अतिशया च ।
अतिमिलिता तथा (च) विवस्तिपा च सत्तरह उवमा । १३।

१३—एकजमा प्रगमा तत्तिप्पा निदिता अतिशया अतिमिलिता तथा विवस्तिपा या १७ प्रकार की उपमाएँ हैं ।

उपमा के भवों का वर्णन

पञ्चव्यू असा उअमा जा हाट् समान-वत्तु असा अ
इव मिव पिवाट्तरिआ मिसरिम गुणपचच्च् (च) आहिती । १४।
प्रतिवस्तु एया उपमा या भवति समानवस्तुत्वा च ।
इवमिवापि आदिरहिता विमदण गुणप्रत्येय्य । १४।

१४—प्रतिवस्तु उपमा वह है जो समान वस्तु रूप होती है । य इव मिव (प्राइम म) अपि वा आदि सादृश्यवाचक शब्दों के रचित होने हैं तथा विमदण (असमान) गुण वाले शब्दों के आश्रित (समुच्चय) होती हैं ।

पञ्चव्यूवमा जहा — (प्रतिवस्तुवमा यथा)

सपत्तिवग्गमुहा थोवा पुहवीअ हाति णरणाहा
मत्तर फना (य) मकुमुमा मिणिट्ठपत्ता तत्त विरला । १५।
सप्राप्तप्रियममुला स्तोका धविण्या च अवनि वरनाचा
मधुरफलाइव सकमुमा स्निग्धप्रास्तरयो विरला । १५।

१५—य पृथ्वी पर म र पुष्प और मधुर फलों म युवा चित्रने पत्तों वाद दृष्ट विरल हो होते हैं (वस है) प्रिय (प्रम अथ वाम) व सख वी प्राप्त नरे (राजा) भी पृथ्वी म मोह हो होते हैं ।

गुणकलिञ्जा सा अण्णत्त गुणहि दाहि पि सारमथा जत्थ
उवमआ विर जीअ उवमाण होत्त सा अममा । १६।
गुणकलिञ्जा सा अण्णत्त गुण इवमारपि सखत्ता यत्थ
उपमेय वित्त अथमुपमान भवति सादसया । १६।

१६—गुणकलिञ्जा उपमा वह है जो (उपमेय और उपमान) दोनों व गुणा म सम्मिलित हो । और जो उपमेय उपमान वी निष्पद्य भी जीव जाता है (व !) व यममा उपमा होने है ।





लेसोवमा जहा—श्लेषोपमा यथा—

मो मसारो असमो चलपेम्मो जो जणो मुहओ सो कि
भासड ससाराओ णव जो (व्वणवड) ण गिओवी ॥२७॥

म. ससारोऽ समश्चलत्प्रेमा यो जन मुग्ध न कि ?
नामते सनारे नवयौवनवतीनामावनिता ॥२७॥

२७—वह सनार (मम्यकू सार वाला भी) जगम है (विषम है या विषम-गान्ति रहित है) जो मनुष्य
चलित प्रेम वाला है, (जिसका प्रेम अस्थिर) है वह कैसे (मुग्ध) भाग्यवादी है ? (उमे) सनार में नवयौवना स्त्रियों
का झुण्ड ही (चारों ओर) दिखाई देता है ।

सु (र) मरिममा पगेव विअलड मच्चेव होड दरविअला
अेक्कक्कमोवमाणेहि होड अेक्कक्कमा णाम ॥२८॥

सुरसग्तिममा प्रक्षेप विगगति मा चेव भवति दरविगला
अेक्कमोपमानैभवति एकक्रमा नाम ॥२८॥

२८—(जो) गगा के समान डाली हुई चीज निगल जाती है (अपने अन्दर समा लेती है) वह दग्गविला
उपमा होती है । और जहाँ एक नम में उपमान हो, वहाँ एकक्रमा नामक उपमा होती है ।

दर विअला जहा—दर विकला यथा—

पीणत्थणी मरुआ पट्पेनिअलोअणा सह-कठा (मउक्कठा)
निहियव्व दारलग्गा ण चलड तुह् दमणामाए ॥२९॥

पीनस्तनी न्वरुपा पयप्रेपितलोचना तोत्कण्ठा
लिखितेव द्वारलग्ना न चलति तव दर्शनागार्ये ॥२९॥

२९—तुम्हारे दर्शन की आशा में पीनस्तनी, रूपवती, मार्ग में आँखें बिछाई हुई, उन्कण्ठित (और) चिप
लिखित की तरह द्वार पर लग्न (स्थिर खड़ी हुई) नायिका विचलित नहीं हो रही है ।

अेक्कक्कमा जहा—एकक्रमा यथा—

पअड विमलाओ दोधिण वि विवुहजणे (हि) णिव्वुड-कराओ अ
अेक्कक्कम मरिममाओ तुह् कित्ती तिअममरिआ अ ॥३०॥

प्रकृति विमलाद्वयोरपि विबुधजने निर्व्यक्ति-कराश्च
अेक्कम सदृशास्तव कीर्तिस्त्रिदशमदृशाश्च ॥३०॥

३०—प्रकृति में निर्मल तथा दोनों लोच के विबुध (विद्वान् या देव) जनों द्वारा प्रकट की जाने वाली एक-
क्रम के सदृश तुम्हारी कीर्तियाँ देवताओं सरीखी हैं ।

णिदाओ मलहिज्जड उवमेओ जत्थ मा पसमत्ति
अणुहरड अडसअेण जा मव्वि (च्चि) अ होड तल्लिच्छा ॥३१॥

निन्दया श्लिष्यते उपमेयो यत्र सा प्रशमेति
अनुहरत्यतिगयेन या सा चेत् भवति तल्लिप्सा ॥३१॥

३१—जहाँ उपमेय निन्दा के साथ श्लिष्ट होता है, वहाँ निन्दा-प्रशमोपमा होती है । यदि वह अनिगम हो
तो तल्लिप्सा उपमा होती है ।

णिदापससा जहा—निदाप्रगता यथा—

तद्ग सङ्गम्य व णरवम् । भुञ्जइ भिक्खेहि पाअन्ग सच्छी
हिअअण् वाअङ्गम् व वअण्णिअज्जमज ण आमरइ । ३२।
तव यथेय्येव नरउर । भुण्णे अय्य प्रावता णरुमी
हूययेन वातररप इव वचनीय मयेन अपपरणि । ३१।

—“ वृत्ति । हूय म कायर नरंगर की तरह निन्ना व भय म माना भागन पर तद्दारा प्राकृत (नमगिर) नामी का उपासक अनुचरा द्वारा किया जा रहा है ।

तल्लि छोउमा जहा—(तल्लिस्सोपमा यथा—

पाअनणिमासु माहइ जनण्यहाणहि पूरिआ पुहई
अनविअज्जुवलय-दाअण्णिअवन्नि राणत्त (णवत्त) मरिसिहि । ३० ।
प्राववणिमासु गोमत्त जलप्रशरै पुअता वृष्वी
सत्तवविद्यतवत्तवधान्निजितितनसत्तगट्टण । ३३ ।

३ —उपा ५। रात्रयो म चयन विजयो लगी वचना व दूजेन ग गिरन दृष्ट वचना व समान जन प्रधान (क्षेपा) मे गरिभूति वृष्वी मत्ता भल माना है ।

उवमेअ ण (णि) ण्जिअइ दुव-यवअ मंग जय सा गिण
अइमअ भणिआ म चिअ अदम (इ) आ भण्णअ उवमा । ३४।
उवमेयो निअने हनुअवपयेनेन यथ सा निअ
अत्तिअअ भणिआ सा वय अ तापिता भण्यते उवमा । ३५।

४—“ ३। हानि व य १। म उपासक की निन्ना की जाता है वही निम्नपमा जाती है । और जनी धनि गयानि ल । उपा १। जागी १। व । आनयविषा उवमा कहा गई है ।

मुअ णिदावमा गहा—अनवि उवमा यथा—

तवाअ राज मिअिअ जणण इररण मोहमि पओस
दरपरि(णि)णअ अवूत्तवत्तिमरिसण पि हू अथि । २५।
ताम्भूअरामित्ताअनेन अथरेण गोमये प्रशये
दरपरिणत्तअम्भुअवत्तिमरिसण लत्तस्ति । ३३।

५—३१। गारव (गान) व (मान) उद व सार अङ्गन (वाअन वि) मित हूण मान पर आभवा (अम्भूअ) की वान्ति व मान हूण म अधरान्ति से (वा तरण) आभाषमान ३। २५। ३।

अइतइवउवमा गहा—अनिगविउपमा यथा—

जाण अभअमरणाअनिमिअमू हि गिअिअमिअव
मिअिअ अअण माग मय-मुअहि भगनेहि । ६।
उओम्भामपणागामातिविरत्तमैनिअिअमयामू
मेअने वरन द्वाअमण्णमुअअय । ३६।

६—(अपग) वृत्ता ५। गान वान्ति मुअ वान्ति व २। अथवाअमम व वरन ५। हूण द्वाअ ५। मय म मुअ ३। ३। ३। मय विया जा रहा है ।





जा सरिसअहि वज्झइ सदेहिं सा हु होइ मुइमिलिआ
अेवकाणिवकविअप्पणभेअेण विअप्पिआ दुविहा ।३७।

या सदृशं वध्यते शब्दै सा हि भवति श्रुतिमिलिता
एकानेरुविकल्पनभेदेन विकल्पिका द्विविधा ।३७।

३७—जो उपमा सपान शब्दों द्वारा वद्ध होती है वह श्रुतिमिलिता होती है । एक अनेक आदि विकल्पो के भेद से विकल्पिका उपमा दो प्रकार की है ।

सुइमिलिउवमा जहा— श्रुतिमिलितोपमा यथा—

दट्ठूण पर-क नत्त छदो वडिअ मणोहर कव्व
खिज्जइ खलो विअ भइ दूसइ दोस अपेच्छन्तो ।३८।

दृष्ट्वा परकालत्र छन्द पतित मनोहर काव्यम्
छिद्यते रालो विजृम्भते दूषयति दोषमप्रेक्षमाण ।३८।

३८—दूसरे की स्वच्छन्द पतित मनोहर मंत्री को देखकर दुष्ट पुरुष (उसी प्रकार) खिन्न होता है, (जिस प्रकार) छन्दोवद्ध मनोहर काव्य को देख कर दुजन खेद पाता है । वह (किसी प्रकार का) दोष न देखते हुए भी दोष निकालता है और गर्जता (रहता) है ।

अेवकत्यविअप्पिआवमा जहा— एकत्र विकल्पकोपमा यथा—

परिभमण वइ णिवुच्चिअ सपीडिअ वहलरेणुणिच्छ (? च) अ (आ)वा
णहमु अणड वसा 'अ (ए) व' वाआवत्ता मुणिज्जत्ति ।३९।

परिभ्रमण वती (?वायु) निर्वातित सम्पीडितवहलरेणुनिचया वा
नभसि अनतवशा एव वातावर्त्ता न्यन्ते ।३९।

३९—चक्कर मारती हुई वायु द्वारा निष्पादित और बहुत सी वालू के ढेर को सम्पीडित करते हुए अनन्त वाम ही आकाश में (गगनचुम्बी) वानावर्त्ता (अन्वड) माने जा रहे हैं ।

बहुहा विअपिउवमा जहा— बहुधा विकल्पकोपमा यथा—

सूरम्मि दाव जल इव्व वोलिउ णहअर वअरस व
पच्छिम (?-दि) णिसिअरेण व तमेण कसिणीकअ सअस (ल) ।४०।

सूर्यो दाव जलधिरिव ब्रूडितो नभश्चर वज्जरसमिव
पश्चिमनिशाकरेणैव तमसा कृष्णीकृत सकलम् ।४०।

उपमा लक्षण समत्त— उपमा लक्षण समाप्तम्

४०—पिछली रात्रि के निशाकर के अन्धकार ने मानो सबको काला कर दिया है, ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य में दावाग्नि वाले समुद्र को अथवा आकाशचारी बादल को डुबो दिया हो ।

रूपक अलंकार

उवमाणेणुवमेअम्स ज च रुविज्जअे वि रुविअ सु
दव्व-गुण-सम्मअ त भणति इह रुवअ कइणो ।४१।

उपमानेन उपमेषस्य यत्तु च रूप्यते विरचितं तत्
द्वयं गुणसम्भूतं तत् भवति हह रूपक एवम् ।४१।

४१-जगत्प्रधान के द्वारा उत्पद्य वा २ गुण सम्पत् स्वरूप निम्न विधा गता ३ उभय विधा
वस्तु है।

तच्चिद्विह जात्रइ समत्थपअत्थविरअणाजणिअ
पढम गीअ अववैवण दसपरिसठिअ होइ । ४२।
तन्नेअ द्वि विथ जायने समस्तपदाथविरअणाजणिअ
प्रथम जित्थो अकण देअ पारसस्यित भवति । ४३।

४२-व० (स्पर्श) का प्रसार वा होना ^३ एवं समस्त प त्व रचना से जनित्र होता है और दूसरा प त्व देन (अग) रचित होता ^३।

मेमा एमेहि चिज हरिअच्छाएहि स्व आपनया
जया लमिजइ च्विअ सजले अर एअ जाहिता । ४५ ।
मेन्नामसिचव हरितदाय स्वकाणा कता
जयो उच्यते धव सक्ने तर एचए रत । ४६ ।

४३—हरित-डीयावान (सन्ध प्रयावान) नामा व द्वारा कृत्रिम अन्ध भन् क्रिये हे । इसनिग मन्त्र (सन्ध) और विरन (पन्ध) एका व गरा अथ पाया जाता है ।

सालिगत्यु रुभ १ ७हा—सकनरुत्तरुपम यथा—

गङ्गा सराय पे ढह पाउमग्नि तनुकिरणकमग्निनाह
तागकुमुम मिववण बहुभरणमउत समक्षमद ॥४॥

गङ्गा सराय प्रभरव प्राप्रवि तनुकिरणकसरसनायव
तारा कुमुमव वन नष्टभरण मुकुत सवाकमति ॥४॥

४४—वशाश्रुत म मू म (पतल) विरण म्पा बसर १ धुवन गवन म्पी मरोच का म्पा जो म्पाभूषण ह्य
मुकुट (वरा) वे समान तारा म्पी कुना व्द व्द आश्रित वर रत्न ३ ।

श्रीशिवकदम्बरप्रभञ्जना जहा—अककदेशरूपक मया—

अविरज असरिय धाराणि वा अणित्ठविज पवित्र-समुत्ता
मसिंह्द भ सन्दइ पि णिविक्को पाउम चिनाओ १८१।
अविरतमुत्तथायां निपात निष्पायित पवित्रमभूत
माराप्पयति मां सत्तवित्तपि जियप्प प्रायप करात १८२।

४५ - निरन्तर फटना हुई (अरबी) जनधारामा व निषान मे पहिला व झड को राख मन बाधा न प
पात्रम रुना कि न यो प्रियतम सहित (माध जोन हूण भी) मार नयेगा ।

दीपक जलहार

દાખલાતિ પઝાઈ અપાઝ વય જય નિગિજાઝ
મુઝ મન્સતગ (જા) ણા મળગહ દાવિ (૨૫) જ વિ ત્રિહ ૧૪૨૧





दीप्यन्ते पदानि एकया चैव यत्र क्रिया
मुखमध्यान्तगतेन भण्यते दीपक त्रिविधम् ।४६।

४६—जहाँ एक ही क्रिया में अनेक पद दीपित (गोभिन) किये जाते हैं, वहाँ दीपक जलका होता है।
मुख, मध्य और अन्त के भेद में दीपक तीन प्रकार का कहा गया है।

मुह-दीवअं जहा—मुखदीपकम् यथा—

भूसिज्जति गअदा मअेण मुहडा उ अमिपहारेण
गडतुरअेण तुरआ सोहग्गमुणेण महिलाओ ।४७।
भूपयन्ति गजेन्द्रा मदेन मुभटास्तु अतिप्रहारेण
गतिवग्गितेन तुरगा सीभाग्यमुणेन महिला ।४७।

४७—हाथी मरु के कारण मुगोभिन होते हैं, मुभट तन्वार के प्रहार में विभूषित होते हैं, घोड़े तेज गति के कारण और महिलाएँ सीभाग्य गुण के कारण मुगोभिन होती हैं।

मज्झदीवअं जहा—मध्यदीपक यथा—

सु-कवीण जसो मूराण वी (वी) रिमा, ईह्विण णरिदाण
केण खलिज्जड पिमुणाण दुम्मई भीरयाण भअ ।४८।
सुकवीणां यश मूराणा वीरता (वीरता) ईहित नरेन्द्राणाम्
केन खल्यते पिमुणाना दुर्मति भीरुजाना भय ।४८।

४८—सुकवियों का यश, सुकवीरों की वीरता (वीरता) नरेन्द्रों की चेष्टा, चुगलखोरों की दुर्वृद्धि और दुर्मियों का डर कौन मिटा सकता है ?

अन्तदीवि(व)अ जहा—अन्तदीपकम् यथा—

सत्थेण वुहा दाणेण पत्थिवा गुरु-तवेण जड-एिवहा
रण-साहसेण मुहडा मही-अले पावडा होति ।४९।
शास्त्रेण वुधा दानेन पार्थिवा गुरुतपसा यतिनिवहा
रणसाहसेन मुभटा महीतले प्रावृता भवन्ति

४९—शास्त्र के द्वारा विद्वान्, दान में राजा, उग्र तप में मयमी पुरुष, युद्ध में माहम में मुभट भूतल पर छा जाने हैं (व्यापक बनते हैं)।

रोघ अलकार

अद्ध-भण्णिअ एिहभड जस्स जुत्तीअ होड सो रोहो
पअ-वण्णभेअभिण्णो जाअड दु-विहो अणुप्पासो ।५०।
अद्धंभणित निरुध्यति यस्मिन् युवितश्च भवति स रोघ
पद-वर्णभेदभिन्तो जायते द्विविधोऽनुप्रास ।५०।

५०—जहाँ आधा कह कर रूक जाना है, और जिसमें यृक्ति होती है, वहाँ रोघ अलंकार होता है, पद और वर्ण के भेद में अनुप्रास दो प्रकार का होता है।

रोहो जहा—रोहो यथा—

वा ण बलइ तण विणा मा भणुभु ज पुलइअहि पासेहि
जइ रत्तम जपिआइ हवति पच्छा अपत्थाइ ।११।
को न बलवति तेन विना मा भणत अपुत्तवित पाव (स)
अति रहस्य जलिवतानि भवन्ति पदवा अपम्यानि ।११।

११—उपर मिश्रय को न । बोना ? जयानु सभा बोने हैं अप्रसन्न पत्नीसिया के पास म रहने वाना
ए साथ मत्त वाना । मतनव प्रमन पटोमिया व साथ जहर बाल । अत्यन्त रहस्य यवन वचन वा म अवल्याणकारी
होते हैं ।

पा(प) जाणप्पासो जहा—पदानुप्रासो यथा—

समिमुहि मुहरस नच्छी यणसालिणि थण्डर पि पच्छती
तणुआअइ तणुओअरि हलिसु ओ वहुम ज जुत्त ।१२।
गणिमुत्ता मुत्तस्य सद्यो स्तनगालिनी स्तनवधमपि प्रलमाणी
तनुनातितनुतोअरि हलीमु ओ कथय यन युवतम् ।१२।

१२—हे व द्रमुखि पुत्र की गामा वा स्तनगालिनि स्तावर (बाल) वा देखती हूँ अत्य त वृत्त उअर
वाणी लू गच्छियो वा जा उचित । व—

वण्णणप्पासो जहा—वर्णानुप्रासो यथा—

वाअति सज्जज जवहरा न लव सवण्ण सोअलप्फसा
पुत्ता पुअ पुअ वुअमच्छलत मधुदुरा पवणा ।१३।
वाति सज्जल जलअर जल लव सवचन गोसल स्वर्णा
पुल्लितापुक कुलुमच्छलत मधुदुरा पवणा ।१३।

१३—जन म परिपूज मया व जवणा व मिना म गामल रवण जाती एव विल हूए अशुक् के पुत्री से
निजन्ता हूँ मगध स परिपूज हवाए यह रही हैं ।

जत्थ निमित्ताहिना लाजा अवक् न गोअर वज्ज
विरडज्ज मो तस्स अ अइसअ नामो अल वारो ।१४।
यय निमित्तसोअ अवात गोअर वचनय
विरवयति स तस्य च अतिगय नाम अलवार ।१४।

१४—जहाँ निमित्त नाम नाम एकात्मकोपर गों की रचना करत है उसका नाम अतिगया
स्वर ममसा ।

अतिगयालवारो जहा—अतिगयालवारो यथा—

जइ गय मिलिअ (अ) भमगाण हाइ अवअम (स) चपअअपूअ
ता वण विभाविअ वउहव मिनिअ प निम्मा ।१५।



यदि गन्ध मिलित भ्रमराणा अवतन भवति चम्पक प्रमूनम्
तस्मात् केन विभाव्यते कुकूहल मिलित पथा तस्य १५५।

५५—यदि मुगन्ध मिला हुआ चम्पा का फूल भ्रमरो का आमृषण हो जाता है, तो कीन जानता है, उसका (भी) मार्ग कुकूहल मिश्रित हो ।

विगद्ये विपक्ष्य देसे गुणतरेण तु सवु (यु) ई जत्थ
कीरड विसेसपअडण कज्जेण सो विसेमोत्ति १५६।

विगते विपक्षदेशे गुणान्तरेण तु सन्तुतिर्यत्र
क्रियते विशेष प्रकटन कारणेण सो विशेष इति १५६।

५६—जहा विगत और विपक्षदेश में गुणान्तर में, स्तुति की जाती एवं कार्य के द्वारा जहाँ विशेषता प्रकट की जाती है वह विशेषालंकार होता है ।

विसेसालंकारो जहा— विशेषालंकारो यथा—

णवि तह णिसामु सोट्ट पियाण तवोलराकपव्वडओ
जह पियअमपीओ पडुरो वि अहरो पहाअम्मि १५७।
नापि तया निशामु शोभते प्रियाणा ताम्बूलगगप्रवजित
यथा प्रियतमपीतो पण्डुरोऽपि अघर प्रभाते १५७।

५७—प्रियाओं के ताम्बूल (पान) के (लाल) रङ्ग में युक्त अघर (झोंठ) रात्रि में बँने सुशोभित नहीं होते, जैसे प्रभातकाल में प्रियतम द्वारा पान किये हुए पाण्डु (हल्के पीले) रङ्ग के अघर मुशोभित होते हैं ।

जत्थ एिसेहो व्व स (स) सी हिअ कीरड विसेस तण्हाये
सो अक्खेवो दुविहो होन्ता अेवक्त भेयेण १५८।
यत्र निषेध इव सतिद्वय क्रियते विशेष तृणया
स आक्षेपो द्विविधो भवन्त-एकान्त भेदेन १५८।

५८—जहा विशेष (वान प्रकट करने) की तालना में निषेध करने निषेध-मा किया जाता है, वहा आक्षेप-लंकार होता है, जो भवन्त और एकान्त के भेद से दो प्रकार का है ।

होतक्खेओ जहा— भवन्ताक्षेपो यथा—

जड वच्चसि ता वच्चसु महु गरुअ-दा (दी) ह-विरहग्गि-ताविअ तणूअे
वच्चड तइ समअ चिअ अहवा कह जपियं असा ? १५९।
यदि व्रजनि तदा व्रजतु नघु गुरु दीर्घ विरहाग्नि तापित तनुक ।
व्रजति ते ममय चेत् अथवा कथ जल्पितमेतत् १५९।

५९—मधुमाम (चैत्र) की भारी दीर्घ विरहाग्नि के ताप में वगीर को तपन करने वाले, यदि तुम्हारा समय बीत रहा है और जाना चाहते हो तो चले जाओ अथवा यह वक्तव्य क्यों ?

अेवक्तन्तक्खेओ जहा— अेकान्ताक्षेपो यथा—

खग्ग-प्पहार-दढ-दलिअरिड दलिअ-कु भ-वीडरय
तुअ णत्थि अन्त को महिहराण मचालणो होज्ज १६०।

राजमन्त्रार इहवतितरिपुदस च बुध-पीठस्य
तत्र नास्ति अतएव गृहपरिणीतं सत्वात्तनां भवतु ॥६०॥

६० - तत्रवार न प्रयोग ये मृगयुजः प्रमत्त वा योग प्राविश वा पाठा वा मन्त्र वरने वान ह रावन
सम्प्राप्त जन कये वावा यो न है । (अ) तम राजाओं क सत्वात्तना वना ।

होइ मन्त्रा जा वरम्मा (बहुरा) उण विसुमवरण
उअण मणही सत्ता अन्नाण बुद्धन्द वईहि ॥६१॥
भवति स्वमायो नाति वराम्य व्यतिरेज पुा विगेय करणेन
बुद्धनेन मयत हवायेन बुद्धते वविभि ॥६१॥

६१ - स्वमाय जा न वराम्य मना है उमम बुद्ध विगयना पण वरन म व्यतिरेकाकार हा जाता है
उम वरन म जनमापारण मयता मानन है और बुद्ध म वरि म (मनावा) ममयन है ।

जाई जहा जातिवया—

मिर यस्मिन्मन्त्रम ताति (मि) गवाहा जुअनाइ गामतएणीअ
मण्णु विलागमिन्टा भइमिठअ (आ) पामरा पुहवि ॥६२॥
मिरो वत वल्लभ-मृगार बाहुपुगलवा प्रामतएया
मयत विलासदुप्यो भव्य पाथर बुद्धोम ॥६२॥

६२ - मिर पर मन्त्र गारण की हई मना गवा भजाआ म मणीर ग हई प्राम तरणा मानती है वि
विलाग (गाम्ता) के मयन वाग पाथर बुद्धा म मिर वया ।

वन्नामी (बहुरेयो) गहा— व्यतिरेको मया—

दूसए पया (भा) व पमरा मामा म (ज) इ अरयलिअपहो तामि
निअ जहाउण दाण वि रवि वज (ह) व अह अन्नाहा ॥६३॥
दुग्गह प्रभाव प्रार सोमो यत्तएलिनववस्तवाम
सोव पाठान्ताइमोरव रविरेय रको हवन्नाया ॥६३॥

६३ - वन्नामी मन्त्र म प्रमार पत्राग वाग और अन्नालिन पयवाता यता है ता (उत्ताग वारण) उा
सात्रगामो जगावमा म दाग (मुव मन्त्र) म म मुअ व रव की उअन वाता रव वा दाया हा है ।

पुडगिगाराग वमा रमिओ अन्ना पण्णअ जन्ना गारा
अण वयअस भणिअ विणिमिमा ठा पन्नाया ॥६४॥
गुण शृगारादि रण रतिअ अय मण्णाअन्ना
अण्य व्यतिरेज भणिने विनिमिमा भवति परयाय ॥६४॥

६४ - जिगी शृगारादि म मण्ण (प्रमन्त्र) रं वह रमिवात्राव गन्नाग है और उमम विमो बुद्ध व
मन्त्र ग मन्त्रा ॥६४॥ (अ व क वि व म क जा पर) पयावात्राव वाता है ।

रतिमा गहा— रतिहा वता—

द्वि विमन्त्रवन्नामु वपाअ वि निअ पया
पन्ना सउणाम उर मन्त्र मन्ना वन्ना ॥६५॥





दूती विदग्ध वचनानुवद्धा इतर विस्मयितु स्तब्धा
पतति सपुण्यस्य उरसि रसन्त रसना कुरङ्गाक्षी ।६५।

६५—दूती के चतुर वचनों से बड़ी हुई और दूसरे को रोकने में स्तब्ध (पमण्डी) रसाली जवान वाली मृगनयनी (नायिका) (किसी) पुण्यजाली के वक्षस्थल पर गिर जानी है।

पञ्जाओ भणइ जहा—पर्यायो भणति यथा—

गरुआण गगो (? थो) रिआए रमन्ति (ति) पथडे रयरस कत्तो
मा कुणसु तस्स दोस नुन्दरि ? विममट्ठिअे कउजे ।६६।

गुरुजाना गौर्याम् रमन्ति प्राञ्चन रतिरम् कृत
मा कुरु तस्य दोष, नुन्दरि । विपमरिथते कार्यो ।६६।

६६—गुरुजनो की (बड़ आदमियों की) सुन्दरी में गवार आदमी ही रतिरम (का नेवन) करता है। इन्में हे सुन्दरी (ऐसे) विपम परिस्थितिवाले कार्य में उसको दोष मत दे।

जह्णिअ भणणइ बहुआ परिवाडी पळण जहा सव
कि पुण विउण तिगुण चउग्गुण होइ कव्वम्मि ।६७।

यथानीत भण्यते बहुधा परिपाटी प्रकटन यथासत्य
कि पुन द्विगुण-त्रिगुण-चतुर्गुण भवति काव्ये ।६७।

६७—यथासत्य अलङ्कार वह कहलाता है, जहाँ यथा क्रम से बहुधा (प्रायः) परिपाटी (श्रेणी) पूर्वक (गद्य) प्रकट किये जाते हैं और तो क्या कहे ? काव्य में यथासत्य अलङ्कार द्विगुण, त्रिगुण और चतुर्गुण (यों तीन प्रकार का) होता है।

विगुणो जहा—द्विगुणो यथा—

ह स-ससि कमल-कुवलय-भसल-मुणालाण निज्जिअ लच्छी
तिस्सा गड मुह-करअल-जोअण-धरमेत्तल-वाहाहि ।६८।

हस-शशि कमल कुवलय भ्रमर मृणालाना निज्जिता लक्ष्मी
तस्या गतिमुखकरतललोचनवभिमल्लबाहुभि ।६८।

६८—उसकी गति, मुख, करतल, नेत्र, केशपाज तथा भुजाओं ने क्रमशः हस, चन्द्रमा कमल, कुवलय, भ्रमर और मृणाल (कमलदण्ड) की लक्ष्मी (गोमा) को जीत लिया।

तउणो जहा—त्रिगुणो यथा—

जो वहइ विमल वेल्लहल कसण सिअ सरिसिआ विसमिअको
मुद्धर रयणीकर मउलिससिअे त सिअं णवह ।६९।

यो बहति विमल विल्वदत्ता कृष्ण सित सरीसृपान विपमिश्राङ्ग
मूर्द्धा रजनीकर मौलि सधित त शिव नमत ।६९।

६९—जो निर्मल चित्रपत्र, काले और मफेद सापो तथा कालकूट त्रिप और चन्द्रमा को धारण करता है, जिनके मस्तक के अर्द्धभाग पर चन्द्र रूपी मुकुट आवार पाए हुए हैं, उस महादेव को नमन करो।

प्रत्युपगो जहा—चतुर्गो यथा—

ती १ सम मउज-गहर्णि गिम्मला ऊअउ घउउ साहर्हि
उसणा हउ णउणणि जिउअ मणि अवय वमना ॥७०॥
तथा सम धुवुउ दोर्घे निमयातास धवल गोम
दगतायउ नयउ जितानि कणियावउ वमना ॥७१॥

७०—उम (नायिका) ने अपन सम (पत मराय) कामउ और नीय निमउ ताउ और उवत गोभा वान
नाउ हउ और नया ग (वमना) यवन नाम वा मणि (वार वहुना वा चिन्ता) तथा वमला वा जात जिया ।

अन (णव) विमल पन (वन ? पत ?) सहाअउपआअ समाहिओ हो
गुण किरिआग विराट्ण अम भणिओ विरोहानि ॥७१॥
अनपेउत प्राप्त सहाय सपदा समाहिओ भवति
गुण कियणा विराधेन नय भणितो विरोध इति ॥७१॥

७१—जहाँ अनपदिन स यवना लोभी सम्पत्ति प्राप्त होना है। वहाँ समान्ति अङ्कार होता है। तथा पन
और विराट्ण व विरोध व कारण यह विराट्णकार कहलाता है।

समाहिओ जहा—समाहिओ यथा—

अचत्त मविज पिअ अय (म) पसावणय पउउमाणीअ
उइआ चदो वि तता अपसरिओ मपअमधवहो ॥७२॥
अत्यत कुपित प्रियतम प्रसादनाय प्रवसमानाय
उदितवणीवि तत अपयुओ मलममय ॥७३॥

७२—अत्यत कुपित प्रियतम का प्रसाद वरा म प्र त ह मायिरा व भा व स चम्मा वा भा उय हा
मवा और सम्मानना वा या भी चली गई ।

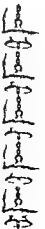
विरोहो जहा—विरोधो यथा—

तु भ जसा हउमहउ समुज्जलो सजल (य) व(य ') गिउ जिह मवि
मल (इ) ण (ह) य व वरि वार वहु वअण वमलाह ॥७३॥
तथा यथा हउ गणयउ समुज्जल सक्त प्रवणित वृद्धमवि
मलिन म भवत (?) वर वरिओर वय वमन वमला ॥७४॥

७३—गुरुगारा श्रम विधिया हो वीरगनात्रा व मय वमन व सवान या मयादेव व (गणय वर मयन)
चम्मा व समान उउउउ है व ममम अना वो विराट्ण म हउ हाउ वर भी मलिन न होना ।

उवमाणण मउअ भणिऊण भउअ जहि भेओ
गु वरणण मउअमजिओ मा हु मउआ ॥७४॥
उपनामेन हृदय भणित्वा भाष्येन यत्र देव
रगु त वरणेन सौख्य सजितममम त सदेव ॥७५॥

७४—उपमान व द्वारा वरम वरावर जौ व (वृषभारव व) कहा जाना हो मति वरा म जौ
मउअ वा यो मय गिगा मया १ व १ यउ मउअ अङ्कार कहलाता है ।



सदेहो जहा— सन्देहो यथा—

किं कमलमिण (णो) त सकेसर किं ससी ण तत्थ मओ
दिट्ठ सहि ? तुज्झ मुह सससअ अज्ज तरुणेहि । ७५।
किं कमलमिद ? तत्सकेसर ? किं शशी ? न तत्र मृग
वृष्ट सखि । तव मुल ससशय आर्य तरुणै । ७५।

७५—क्या यह कमल है ? (पर) वह पराग के महित हाता है । तो क्या वह चन्द्रमा है ? (पर वहाँ मृग तो नहीं है, हे सखि, (इस प्रकार) तुम्हारे मुख को आर्य तरुणों ने सदेह के साथ देखा ।

णत्थि विहेओ किरिआ रसिअस्स वि होइ जच्च फल रिद्धी
भण्णइ विभावणा सा कव्वल कार इत्ते हि । ७६।
नास्ति विभेद किया रसिकस्याऽपि भवति यत्र फल ऋद्धि
मण्यते विभावना सा काव्यालकारवित्तै । ७६।

७६—जहाँ विभेद (पृथक्करण) न हा विचारसिक की भी जहा फल ऋद्धि होती हो, उसे काव्यालकारविज्ञ विभावना (अलंकार) कहते हैं ।

विभावणा जहा— विभावना यथा—

वड्डड असित्तमूलो अणुप (? ओ) अर ताड पसरइ एहम्मि
सगग गओ (अस्स) वि अकण्हो अधो अ विमलो जसो तुज्झ । ७७।
वड्डेतैऽसित्तमूलमनुपरान्तमपि प्रसरति नभसि
(स्वर्गं) गतस्यापि अकृष्ण अधश्च विमल यशस्तव । ७७।

७७—तुम्हारे स्वर्ग जाने पर भी, तुम्हाग अश्वेतमूलक और असीम यश आकाश में बट रहा है, (ऊपर) फैल रहा है, और नीचे (मर्त्यलोक में) भी पवित्र और श्वेत है ।

अनो चिअउ तरत्तिअ आज अ सा वाइ त स सजण्णिउ
डि (ड) विहो होइ जह तहा साहिअ त णिसामेह । ७८।
अन्य त्यजतु तरङ्गि तता च आश्रवादि त स सजनयितु
द्विविधे भवति यथा तथा साधित त निशामय । ७८।

७८—दूसरे चाहे चाचत्य को छोड़े, आशावादी उमे करने के लिए तैयार रहता है । (वह) जैसे दो प्रकार का होता है उमे उस प्रकार सिद्ध किया गया, उमे सुनो ।

कतड वअणाड जहि अभुओहि उत्तरेहि णज्जति
सोउहि तरम्मि उहि अगूढ भावो सथा उत्तो । ७९।
कति वचनानि यत्र अश्रुतैरुत्तरै ज्ञायन्ते
सोऽभ्यन्तरं ऊहै अगूढ भाव सदा उचत । ७९।

७९—जहाँ कुछ वचन बिना उत्तर सुने हुए ही अभ्यन्तर तर्कों द्वारा ज्ञात हो जाते हो, वहा वह सदा अगूढभाव कहलाता है ।

जस्य हृण्दीहि अध्याप्तो ण ५ णा पअडिअ जअ जहिअ या
अण्णावअम मासा (मा) सिद्धो अत्य आरहि ॥८०॥
यस्य इति ह्यथो माय प्रकटित जगति यथाय
अथात्यपदेण मासा स सिद्धो अथकार ॥ ८१ ॥

८ — जहाँ जिसका अथ अथ जगत् में प्रकटित (प्रसिद्ध) अथ या हवन तथा वस्तुता (होना न. १) यद्
अथकारों का दृष्टि में अथ यथार्थ अथकार नाम में प्रसिद्ध है ।

आतुर अलकारों जहाँ— आतुरालकारों यथा—

हा हा विद्वज्ज वरअलालहिअ सुअ डअ
पडिअ मात्तुरेण भरसे ७ मिमेण हनिअ मा हा ॥८१॥
हा ! हा ! विपुल वरतला सन्ध गुन वधम
पतिता नद्यापतरेण सद्येन मिमेण हतिवस्तुना ॥८१॥

८१—हा ! (जय) विमान की पुष्पवधू न पुष्प या जना हुआ पाया तो हाय ! जाना हुआ गमान आतुर
(राग) का अर्थ नहीं है गिर पड़ो ।

अष्टावक्र गो जहाँ— अथ वयपदेणो यथा —

जण मअध भाणि जयवद्धअमे जअ वअस्म
आगेअ वत्त (? मेत्त) मुह्या ण वअजअणवगमो जतो ॥८२॥
अथे सम्मवमोपिनि नव वत्ता इतरेण वयोवद्धय
आथोका माय मुद्ध न वयववद्धणम एय ॥८२॥

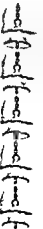
८ — अथ व मध्यम का उपाधि करने वाला ! अथ का व अर्थमा जहाँ वत्ता सिद्ध दान में मध्यम
है वाय करने में मध्यम है ।

उअ भणिअमरिसम्मि वत्तुणि भणय सट् अण ७ परिअरो
ण म परिअरिआ अथ (न) व (र) णात्ता जत्ता
पुअ भणिअ सत्तुणे वत्तनि भणनं त्वा व परिअर
७ म परिअरित्ता अर्थात्तर म्पात्तो यथा ॥

८ — अथ की हुई मध्यम वत्तु का वत्ता हा वत्तन करना अथ व वत्ताकार वत्तना है । अथ वत्त
परिअरि (उगा अथ या वत्तन) नहीं है तो उग अर्थात् वत्त वत्तन वत्तना या ७ ॥

यिपुअरद रवो उअअ अतम्मि णअ अथ मट्ठिर मग्गया
त अमिपो वि तेअ अह नि ठाण अउअ ॥८३॥
यिपुअरद रव उअयावत्ते मट्ठि अतम वरीपरिअरि
तत्तन्निरोप्य तेअ तत्तन्ने स्थान सत्तया ॥ ८४ ॥

८३—यूरा उ माय पर हा वत्तनना है अर्थात्तन के अर्थमा पर वत्त वत्तना नहीं । वत्तना पु ७ वत्त
वत्ता वत्तन ही मध्य वत्तन है ।



अण्णपरिअरो जहा—अन्यपरिकरो यथा—

तुरियाड (तु) रियगमणो णिवभरमन्थराड खल्लिअपओ

मग्गेण तीअ वच्चड पेत्तावल्लीअ तरुणिजणो ।८४।

त्वरितात्तिव्वरितपमनो नितम्बभरमथरात्तिस्सलितपद

माणेण म्त्री व्रजति पीडयन तरुणि(ण) जन ।८४।

८४—शीघ्रातिशीघ्र गमन करने वाला, और नितम्ब के भाग में मन्द और अतिम्बवन्त चरणवाला तन्म जन मार्ग में स्त्रियों को धक्का मुक्की करने हुए जा रहा है । ?

बहु वट्ठु च्चिअ किरिआ समकालपयासण स होउत्ति

गुत्वीर जाड रडओ जाअड उज्जा अलकारो ।८५।

बहु वस्तूचित्थिआ समकालप्रकाशनं सहोवित

गुत्वीरजातिरचितो जायते ऊज्जलिकार ।८५।

८५—अनेक वस्तुओं के योग्य क्रियाओं को एक ही समय में प्रकट करना सहोवित कथन होता है । जहाँ महान् वीरों के स्वभाव का कथन होता है, वहाँ ऊज्जलिकार होता है ।

उज्जा (? द्वा) लंकारो जहा—ऊज्जलिकारो यथा—

वीसत्थ च्चिअ गेण्हमु वड वि (रि) अणा वेग णिविडिअ खग्ग

पहरत्त पडिअ पहरण मुण्ड करेमु णासममत्थ ।८६।

विश्वस्त चैव गृह्णातु वैरिजनावेग-निपीडित खड्ग

प्रहरान्त पतित प्रहरण मन्यते करोतु नाशसमर्थम् ।८६।

८६—वैरीजनों के हीमलों को पराम्त करने वाली तलवार विश्वस्त होकर पकड़ो । एक पहर तक गिरे हुए पर प्रहार करो, (वह) नाश करने में समर्थ माना जाता है ।

सहोत्ती जहा—सहोदित यथा—

णिट्ठाइ समा लज्जा सरीर सो (स्मा) न्ता (भा) इ सह गआ कित्ती

समये तुह अणुरअणी तीअे वड्ढन्ति णीसासा ।८७।

निद्रया सम लज्जा शरीरस्यान्तेन शोभया (?) सह गता कीर्त्ति

समये तव अनुरजनी अतीते वड्ढन्ते निश्चामा ।८७।

८७—निद्रा के साथ लज्जा चली गई, शरीर के अन्त के (शरीर शोभा के) साथ कीर्त्ति चली गई । प्रत्येक रात्रि को समय के बीत जाने पर तुम्हारे निश्वास बटते जाते हैं ।

उअमा इत्थ णिव्विअ णिअडासा अवण्डुई होइ

पीई अईसअेण पेमाइसओ भणेअव्वो ।८८।

१० उपमा अत्र (यत्र) निवृत्ति निकटा सा अपह्नुतिर्भवति

प्रीत्यतिशयेन प्रेमातिशयो मणितव्य ।८८।

८८—जहाँ निकट की उपमा छिपा दी गई हो, वहाँ अपह्नुति होती है । जहाँ प्रीति की अतिशयिकता का वर्णन हो, उसे प्रेमातिशयालकार कहना चाहिए ।

अवष्टुई तहा—अपह्न ति यथा—

णट्ट उच्च विलअ सठिअ पहिटठवल्अठि वररवप्पसरो
 सुव्वइ वणविलमिअ पुप्पचावमहुरो रवो जेवो । ८१।
 न तु उच्च विलअ सस्थित प्रपद्य कतरुणि कतरप्रसतर
 भयते वावित्तित्त पुप्पचाप मधुरो रवो एव । ८२।

८६—यह ऊँचे पठ पर बनी हुई दीन (पछ) वायन व कलरव का प्रसार भी है किंतु वन में विलास करने वाला वायन का यह मधुर रस (गान) सदा ही होता है ।

પેનાદ્વસઓ જહા—પ્રમાતિશયો યયા—

महमा तुयाम्मि दिट्ठं जो जाओ तीअ प (२) हरिसाइसओ
सो जइ पुणोवि हासइ सुदर तुअ दसणु च्यैअ । ६०।

सहसा त्वमि दणु था जात हियव प्रहोतिगय
स ग्रहि पवरपि भविष्यति सुदर तव दगन वष । ६०।

६ --मदमा तुम्ह देखने पर स्त्री का आ हर्षानिगम हुआ है वह यदि पुन हाग तो तम्हारा दान मुन्दर हो है ।

गिद्धी महाणुभावत्तणहिं दुविहो वि जाअइ उदत्तो
सो पणित्ता चेणइ जत्थ विसिटठ णिअ दाउ ।६१।
अद्धिमहाणुभावत्ताण्या द्विविधो णि जायते उ०स
स पत्तिवत्तो गह्णो यत्त वणिट्ठय निअ दाउम् ।६२।

२१—श्रद्धा और मन्त्रानुमायता के भेद में उत्तम प्रकार से प्रकार का हाता है। और परिवर्तलिकार वह कहलाता है जहाँ अपनी विद्या देकर (वतानर) जादूगिरी किया जाता है।

રિદ્ધી ઝડત્તો જહા—શ્રદ્ધિ સદ્ગતો યથા—

तुहृ णर-सङ्ग । विष्णुरिअरअणवग्णि (विरण) णिरणामिअत्तमाह
मिच्चाणवि दीव सिहामइलाइ ण हाति भवणाइ । ६२।
तव नरगेष्वर । विरफरितत्ताविरणमिक्करणाणितत्तामांसि
भयानामि दीव गिला मकिनानि न भवति भवतानि । ६३।

६२—हे नरगण ! तुम्हारे भवन चमकती हैं रत्न विरण राशि से अ घनर वा जल करने मान हाने से अनवरों (व घर) का शाय पिशाचों से मलिन नहीं होते ।

महाणुभाय जाइउदत्तो जहा— (महाणुभाय जाति उन्तों—

यत्कालं रमण (णि) घणहर पडिपेटिअज विजड वच्छ पीगवि
ण चलनि महुअ-सत्ता मणसम मिर पज काउ ॥३॥

वि-घणहरमणिस्तनघरप्रप्ततेडोडतियडवसपीठ जपि
म चरनि मत्ता तावा घटनघण गिरिनि पव कत्तप ॥ ३ ॥





६३—विल्वफल, रमणी तथा वादलो द्वारा विरुट वृक्षपीठ प्रनिर्णीत होने पर भी महामत्त्व (महापुरुष) कामदेव के सिर पर पैर करन के लिए (कामदेव को दवाने के लिए) चिन्तन नहीं होते ।

परिभक्तो जहा— परिवर्त्तो यथा—

ससिमुहि । मुह्यकअकन्तिपसरकरणवकम-विलासेण
दिट्ठि दाऊण तयो गहिआड जुआण हिआड ॥६४॥
अविमुखि । मुखपकजकातिप्रसरकरणक्रमविलासेन
द्विट्ठि दत्त्वा ततो गृहीतानि युवाना हृदयानि ॥६५॥

६४—हे चन्द्रमुखी, तुमने उधर नजर दीक्षाकर अपने मुख कमल की कान्ति फैला कर तथा (अन्य) इन्द्रियों के क्रमशः विलास से युवकों के हृदय आकर्षित कर लिए ।

द्व्व किरिआ-गुणाण पहाणआ जेमु कीरड कईहि
द्व्वुत्तर किरिउत्तर गुणुत्तरा ते अलकारा ॥६५॥
द्रव्य-क्रिया-गुणाना प्रधानता येषु क्रियते कविभि
द्रव्योत्तर-क्रियोत्तर-गुणोत्तरास्ते अलकारा ॥६५॥

६५—जहा (जिम काव्य में) कवियों द्वारा द्रव्य, क्रिया या गुणों को प्रधानता दी जाती है, वहा क्रमशः वे द्रव्योत्तर, और गुणोत्तर अलकार कहलाते हैं ।

द्व्वुत्तरो जहा— द्रव्योत्तरो यथा—

वरकरितुर ग मदिरआणा अर सेवअ ? कणअ रअणाड
चित्तिअमेत्ताइ चिअ हवन्ति देवे पसणम्मि ॥६६॥
वरकरितुरगमन्दिर-आज्ञाकरसेवककनकरत्तानि
चित्तितमात्राणि चैव भवन्ति देवे प्रसन्ने ॥६६॥

६६—देवता के प्रमन्न होने पर श्रेष्ठ हाथी, घोड़े, महल, आज्ञाकारी सेवक, सोना और रत्न चिन्तितमान से हो जाते हैं ।

किरिउत्तरो जहा— क्रियोत्तरो यथा—

मा रुअउ मा किसाअउ मा खिज्जउ मा विहि उआलहउ
जा णिक्किवा तुह वहु वल्लहस्स व (वि) रई पडे (?) पडिआ ॥६७॥
मा एदत्तु मा विल्लनात्तु मा खिद्यत मा विधि उपालमता
या निष्कूप तव वहु वल्लभस्य विरति पदे पतिता ॥६७॥

६७—मत रोओ, क्लेश मत करो, खिन्न मत होओ और न विधि (दैव) को ही उपालम्भ दो । तुम तो बहुवल्लभ (बहुजनप्रिय) हो, इसलिए जो निर्दया वन गई है, वह विरत होकर (तुम्हारे) चरण में पड़ेगी ।

गुणुत्तरो जहा— गुणोत्तरो यथा—

ससिसोमम । सरल । सज्जण । सच्चवअ । रुहअ । सुवरिअ । सलज्ज ।
दिट्ठो सि जहि रुअ ते ताड (तुह) कह णु ण परिद ? ॥६८॥

गतिहीन्य ! सरल ! सज्जन ! सचवञ्च ! सुहृद ! सुवरिञ्च ! सत्तज्ज !
वट्ठोसि यन्न रूप ते तावत्तव वय नु न वरेद्व ॥६८॥

६८—हे चन्द्रमा के समान गौम्य सरज्जन सत्यजन भाग्यशाली अच्छा बात स्वीकार करने वाला सलज्ज नरोत्तर रूप देख लिया है वहा व तुम्हारे (अपने) कम नही हूँ।

उवमाञ्ज उवमेञ्ज रुद्धज्ज जेणु सो सिलेस त्ति
सा णण सहोत्ति-उअमा हुअहिता मुणअवो ॥६९॥

उवमया उवेय वृष्ये येन स इवेय इति
स पुन सहोत्तरमया हेतुभ्यो मतस्य ॥६९॥

६९—जहाँ अपना व द्वारा उपमय का जिस नाम (कारण) न निरूपण किया जाता है वहाँ वह क्षेया स्वरूप होता है। व सजाविन उपमा और हेतु को लेकर तीन प्रकार का समतना चाहिए।

सहोत्ति सिलेसो जहा— सहोक्तिइलेपो यथा—

पीणा घणा अ दूर समुष्णया णहविअत्ति अच्छाया
मेहा (हा) घणआइ तुह णिद्धवत्ति सण्हाउरो लाओ ॥१००॥

पीना घनाइव दूर समुन्ता नओ (मल) विवत्ति-आया
मेया घनतया तव निद्धवत्ति तण्हाउरो लोक ॥ १ ॥

१ —हे मां (पुत्र) दूर तव उन्त (ऊँच) आयाग म (नख पर) आनी छाया कलाए हुए पयोधरो ! (स्तनी) समता के कारण तण्हाउर (कामातर) ओग तुम्हारी ओर दीखते हैं (आकषित होते हैं)। (नोत्र—यहाँ मेघ और स्नान दोनों का नाम द्वारा सहोक्ति लप बताया गया है)।

उवमासिलेसो जहा— उपमाइलेपो यथा—

दूराहि चिअ णज्जइ रवखा सद्दस्स (स) सूइअ गमण
लद्धइअमहिअरसत्ताणु यत्तहत्थीण व पट्ठण ॥१०१॥

दूराच्च आपने रक्षा शब्दस्य समुचित समनम
समुचित महीधर सत्तोयतहत्तीनामिव प्रभुनाम ॥ १ ॥

१ १—छाट से उदीयमान महीधर (पंचत और राजा) का सत्ता व समस्त हाथिया की तरह प्रभआ (राजाओ) का दूर से हा रणा (घणा व और रक्षका के) नाम व सम्बन्धतया (मलीमाँति) सूचिन गमन मालम होता है। (नोत्र—यहाँ हाथिया और राजा का उपमाइलेप सूचिन किया गया है) (हाथिया की सत्ता पंचत पर और राजाओ की वृष्ठी पर)।

हजसिलसो जहा— हेतु इनेपो यथा—

हजाविमविअमअण (य) गणण समपच्छआ इअ जणस्स
अलिअपरम्मुअ आज म १ णअणप्पहा त सि ॥१०२॥

हजा विरहितमदनपणेन सम्पन्नकारिअ जनस्य
अलोक पराङ्मुखतया अह ! नयनपथ स्वपति ॥१०२॥





१०२—हे मद्र, (तुमने) अनायास (लीला पूर्वक) ही कामदेव के गण को दूर हटा दिया है। इसलिए भूट ने पराङ्मुखता के कारण प्रेयकाविजनों के लिए तुम ही नयनपथगामी हो।

(अच्युम्भड) गुण सधुड वच्चसे (ववए) न वसेण सविमया जत्थ
कीरड णिहा (?) णिहा इत्थिआ सा ववअसत्थुई णाम १०३।

अत्थुद्भट गुण मत्तुनि-व्यपदेशवशेन सविपया यत्र
क्रियते निन्दादि म्यिता (?) सा व्यपदेशस्तुति नाम १०३।

१०३—जहाँ अत्यन्त उद्भट गुण की स्तुति व्यपदेशवश (बहाने को लेकर) विपय महिन निन्दादिम्यित विपयो के सहित की जाती है, उसका नाम व्यपदेश स्तुति है।

ववएसत्थुई जहा—व्यपदेशस्तुति यथा—

अकुलीणे पयत (ड) जडे अकज्जवके जीअे समकम्मि
तुज्झ जसो णर-सेहर किज्ज नुअणाविअणामाड १०४।
अकुलीने प्रकृतिजडे अकार्यवने जीवे सगके
तव यश नरसेखर ! कुर्यात् श्रुतज्ञापितनामादि १०४।

१०४—अकुलीन, प्रकृतिजड और अकार्य करने में वक्र जीव के मयक होने पर हे नरसेखर, तुम्हारा यश मुनने पर तुम्हारे नामादि का ज्ञापन करे।

गुणसरिसत्तण तण्हाड जत्थ हीणम्म गुरअयेण सम
होड समकाल किरिआ जा सा सम जोडिआ साहु १०५।
गुणसदृशत्व तृप्यया यत्र हीनस्य गुरुजनेन समं
भवति समकाल क्रिया या मा समज्योतिता साधु १०५।

१०५—जहा गुरु (महान्) के साथ हीन (लघु) का गुण की समानता की तृप्णा में जो सम (एक) कालिक्रिया होती है, वह समज्योतितालकार कहलाता है।

समजोइअं जहा—समज्योतितां यथा—

सअणस्स पर रज्ज कीरड रइ तरल तरणि णिवहस्स
ममआलच्चलिअमणिवल्लयमेहला णेउररवेण १०६।
खजनस्य पर राज्य करोति रतिस्तरलतरणिनिवहस्य
समकालचलितमणिदलयमेखलानुपूररवेण १०६।

१०६—रतिचचल तरणी ममूह के एक काल (साथ) में चलित मणिजटित वलय करघनी एवं पुपर (नेकर) की आवाज में स्वजन पर राज्य करती है।

अप्पत्थुअ-प्पसगो अहिआर-विमुक्क वत्थुणो भणण
अणुमाण लिगेण लिगी साहिज्जअे जत्थ १०७-१०८।
अप्रस्तुतप्रसंगो अधिकार-विमुक्त वस्तुत भणनम्
अनुमान लिङ्गेन लिगी साध्यते यत्र १०७-१०८।

१०७—जहाँ अधिकार भुक्त (अधिकार में बाहर की) वस्तु का बचन किया जाता था वहाँ अप्रत्यक्ष प्रयोगात्कार कहलाता है। जहाँ लिंग (साधन) के द्वारा निगमा (साध्य) सिद्ध किया जाता था वहाँ अनुमानात्कार आता है।

अपत्युत्पत्तिसंगी जहाँ—अप्रस्तुत प्रसंगी यथा—

सांख्ये वक्रोत्थ गता उज्जर बहुआदि सुष्ण देवउत्त
पत्ता दत्तह लभो वि अ ण-कज्जागजा जारो । १०८ १०९।
सा आशु कोपेन गता उदरय बहुकादिशू-यदेवकुलम
प्राप्त दुल्लभाभोपि अयं कार्यसिद्धो जार । ११० १११।

१०८—वह गीघ्र काप के कारण ऊपर भाग पर अने बहुतजन-य देवासय में पत्नी। किन्तु ऊपर काप में आय हुए जार का दुल्लभ नाम प्राप्त हुआ।

अशुभाश आह—अनुमान यथा—

पूण तीअ वि नूअनि तण सह विलसिअ वज्जामे (अस्से) ण
णत्त अपरलव लग्गा (इ) स अणिज्ज दलाइ जगाइ । १०९ ११०।
नून हिमयोप इवत्त तेन सत्त विलसित अवकापेन (वदयेन)
तल्लवत्त वत्तवत्तमानि गवनीयदलानि अयानि । १११ ११२।

१०९ १११—निश्चय ही स्त्रियाँ साँ रहीं हैं। उमने मोरा पात्र उमर (सदा) के साथ विनाम किया है। (उत्सव) जग गवनीय (विहीन आदि पर) से युक्त और मन्त्र के पत्ता से नग हुए (मन्त्र हुए) हैं।

आजग्सिम्मि व जासि वित्थररोयणाण तु अकुञ्चयाया ?
दीसति पञ्चवाहिअ जहारिणो सो न आयरिसो । १११ ११२।
आवर्जं इय पेया वित्थररोयणाणा त अकुट्टयाया
दश्यते पञ्चवाहिता धारी स एतु आवज्ज । ११३ ११४।

११३—जिन विस्तार खिचवाता की अस्पष्ट छाया आत्मा में मियाँ दती है वहाँ पञ्चम मन्त्र जाने वाल आधार वाता अलंकार आत्मा कहलाता है।

आयरिसो जहाँ—आदर्शो यथा—

केनिपरा मामरमाण तुअ फलूमन अपाजत्ता
हत्था से (ते) णह्विरण-अनेन धाराहि वुवत्ति । ११३ ११४।
वसिपरा मोप्यमान तव स्वर्गोत्सवप्रानुवत्त
हत्ता तव्य (ते ?) मय निरण छलेन धाराधिप ! स्तवत्ति । ११५ ११६।

११५—धाराधिप श्रीहारायण मुख जान वाले आवक स्वर्गों मय को नदी प्राप्त करने हुए हाथ अपने मय की निरणा के बहुत आरक्षी स्तुति करते हैं।

धोरानमादि सहिआ मतनिरणा गुणाणजोण
अवि वि (य ?) निवय सामम्म (त्य ?) आ पत्तया हाइ साइमया । ११६ ११७।



स्तोकोपमादि सहिता शान्तकिरणा गुणानुयोगेन
अधिवक्षितमामर्ष्य उत्प्रेक्षा भवति मातिशया १११३।

११३—गुण के योग ने शान्त किरणवाली, थोड़े उपमादि मेमहिन एव कहने की उच्छा (विशदा) का मामर्ष्य न होने पर जहाँ अतिशयिता हानी हो, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

ओपेक्षा जहा—उत्प्रेक्षा यथा—

दीमद् पूरित सखो व्यव मलय-मानव-णरे द सचलणे
दरदलितमल्लिकामुत्तलगमुहगु जिरो भमरो १११४।
दृश्यते पूरित सख इव मलय-भारत-नरेन्द्र सञ्चलने
दरदलितमल्लिकामुत्तलगमुहगुञ्जारवो भ्रमरो १११५।

११४—मलयाचल के पवन स्पी राजा के चने पर खिली हुई मोगने की नली में लगा हुआ मुखवाला भ्रमर का गुंजारव मा मालूम होता है, मानो गगन ध्वनि हो रही है।

विविहेहि अलकारेहि अेक-मल्लिकेहि होड मसिद्धी
आसीसालकार आनिव्वाअ चिअ भणनि १११५।
विविधैरलकारै एरुमलितैर्भवति ससिद्धिः
आशीपालकार आशीर्वाद चैव भणन्ति १११५।

११५—जहाँ विविध अलंकार एकर मिलने हो, वहाँ समिद्धि अलंकार होता है। जहाँ आशीर्वाद कहा जाता है—दिया जाना है, वहाँ आशीपालकार होना है।

समिद्धि जहा—संसिद्धिर्यथा—

तुज्झ मुह ससिमुहि । तुह मुह व णअ पल्लव (पा) करी चल (र) णा
थणअ नुहजलकलसोव्व सुन्दरा क ति (?ण) मोहत्ति (न्ति) १११६।
तव मुअ शशिमुसि । तव मुख इव नवपल्लवकरचरणा (पादचलना)
स्तना शुभजलकलमिव सुन्दरा क न मोहयन्ति १११६।

११६—हे चन्द्रमुखि, तुम्हारा मुख तुम्हारे मुख के समान ही है। नये पल्लव (कोमल पत्तों) के समान हाथ और चरण हैं, तुम्हारे दोनों स्तन शुभजलकलश के समान सुन्दर हैं वे किसे नहीं मोहित करते ?

आसीसा जहा—अशीपा यथा—

आसीस तातस्मड (वि) सअलकलुसाड तुम्ह णासतु
दिअ गुरु-तवसि कुआर -सडअण मुअणेहि दिण्णाइ १११७।
आशीपस्तातस्यापि सकलकलुषानि तव नाशयतु
द्विजगुरुतपस्विकुमारस्वजनं सुजनैः दत्ता १११७।

११७—देव, गुरु, तपस्वीकुमार, स्वजन और सज्जनों द्वारा दिए हुए, पिताजी के भी आशीर्वाद तुम्हारे समस्त पापों का नाश करे।

उवगा हवअमेअ विरडज्जइ जत्थ हयअे उवमा
णिअ रिमणा हु विसिट्ठा चदा चिअ उवभारहिआओ १११८।

उपमा रूपमेतत् विरच्यते यत्र रूपं उपमा
निर्दिष्टा सन्तु विनिष्टा चद्राचितो उपमारहिता ११८।

११८—अत्र रूपं म उपमा सन्तु वी जाना ह। यहाँ वह उपमारूपक अन्कार होता है। जहाँ च विनिष्ट (वर्णान्वित) उपमा स रति विनिष्ट उचित है। वर्ण निष्पन्नानुसार जाना है।

उपमाएवम् नहा—उपमारूपक यथा—

सपसिञ्ज णञ्जसरा रमणा एव तरल मिमिक्ष धर (?) ध) ह सा
खलिञ्ज जुजाणा पसरङ्ग मम्मह घाडिञ्ज धवलच्छी ११९।
मप्रयित्त जयन् गरा रसना एव तरल मित्तिता धर हसा
स्खलित्त मुबाना प्रसरति ममय घाटीव धवलक्षी ११९।

११९—कामरेव यी नूनी की तरल घबला ती (मन्दर नै वागी) युवती अपन नयनधाणा को प्रपिन करती हुई जिह्वा के गच्छ से चञ्चल हाठ लगी हमा का मिलानों हुई अतएव यथवा का म्प्रयित्त करती हुई जा ही है।

विप्रसरित्त जहा—निर्दिष्ट यथा—

दार्वात्त जजहुरा सञ्जल दसणवह समान्ता
पणविहन्ततण ममुल (?) ण) ई न्ह अ वालकीदाओ १२०।
प्रवति तलधरा सकलदणनव हसमाएडा
क्षण विघटत धन समुन्तो रहस्य काल कीडात १२०।

१२०—मङ्गल दृश्य (आकाश) रूपी नवहम पर आकाश हाकर जजहुरा द्रवित हो रहे हैं (वरम रहे है)। क्षण भर में बिखर जान जाने वालों की समन्तति (ऊब उठ जाना) उचित गति सम्बन्धने जाने कान की कीडात म होना है।

होड सिंस छनेण मज सा (ती ?) रञ्जण अकुडण
उपक्वमा असा गुआ उपेक्कामञ्जव णामा हु १२१।
भवति श्लेष छलेन माजयती रूपवेनास्फुरन्
उपेसा एषा अथा उत्प्लावययान्मो लन्तु १२१।

१२१—उपेय के छल (वागे) से उत्पन्न रूपक का गरा जना परिमाञ्ज (गोधन) होना है। व उपेसा अन्कार होता है। रूपका नाम उपमावयव भी मना गया है।

उपेक्कामञ्जवो जहा—उपमावयवो यथा—

समवि असण मपुण्ण वणण कुमुमाण ग्गाणि विरञ्जित
उज्जोवन् हञ्जदु दाक्कमेण प पट्टठा १२२।
समवित्तमसम्पूण वनेन कमुनानि रत्तानि विरचित्त
उद्योतते हत चन्द्रोदयेअण उप प्रतिष्ठ १२२।

१२२—समानरूप म विरचित्त सम्पूण उद्यान व द्वारा पुता व परगम च जा रहे हैं। जा अपन स्थान पर स्थित रह च का देवन (कामा की किरणा) म प्राप्ति म रहे हैं।





सा ओ भेउ व अत्थू जत्थ वत्थूहि होइ ओहेऊ
अभणिअ किप्पय ? अग्गभो पीओ तण (ह) णूण सहेण ।१२३।

सा उद्भिद वस्तू यत्र वस्तुमि भवति उद्भेद
अभणत् 'किपद गभो' प्रियो तनु (तथा) 'न्यून' शब्देन ।१२३।

१२३—वह उद्भिद् अलंकार है, जहाँ वस्तु का दूसरी वस्तुओं द्वारा उद्भेद होता है, वह 'किपदगभ' 'प्रिय' तथा 'नून' से शब्द तीन प्रकार का कहा है ।

उद्भिओ भणिओ किपदगभो जहा—(उद्भिद्भणितो किपदगभो यथा—

आली विअच्छण साल (लेणा) णीअ हलिअस्स अमुणिअरसस्स
णिव्वासिअ सिर वीर मिच्छूण मुह विअट्ठेण ।१२४।

आली ! विचक्षण श्यालेनानीत हुलिकस्याज्ञातरसस्य
निर्वासितशिरोवीर इक्षूणा मुख विवर्त्तेन ।१२४।

१२४—अरी सखि, जिसे रम ज्ञात नहीं, ऐसे हालिक (हल चलाने वाले) के साले के द्वारा लाए हुए गन्नों का मुख विवर्त्त (फाड़ने) के कारण निर्वासित सिर वाले वीर की तरह विचक्षण लगता है ।

णूण सहे जहा—

दर णिग्गअ ण पेच्छइ णूण सहआरम जरी अज्ज
तेण तुह वच्छ लोअण अहिओ (अ) वह (इ) मुहअद ।१२५।

दर निर्गत न प्रेक्षते नून सहकारमञ्जरी अद्य
तेन तव वत्स लोचन अधिक वह मुखचन्द्रम् ।१२५।

१२५—निश्चय ही आम्नजरी आज थोड़े में बाहर निकले हुए मुखचन्द्र को नहीं देखती, इसके कारण हे वत्स ! तुम्हारे नेत्र अधिक (भार) वहन करते हैं ।

यमक अलंकार

वर (र) वअण पालण किपअेण सहि (ह) रिसण खवलअ त्ति
जमअ सुइ सम भिणद्ध (? त्थ) वअणे पुणुस्तथा भणिअ ।१२६।

वरं वचन-पालन, कि पदेन, सहर्षण खवलय इति
यमक श्रुति सम भिन्नार्थ वचने पुनरुक्तता भणित ।१२६।

१२६—वचन पालन करना श्रेष्ठ है, पद से क्या मतलब ? (यह) सहर्ष आकाशवलय है, श्रवण के साथ ही भिन्न अर्थ के कहने में पुनरुक्ति करना 'यमक' कहलाता है ।

वलिआलकारो जहा - वलितालकारो यथा —

कि तु रूअेण हला, रूअस्स स साम (मि ?) णिव्व सत्तीअे
अस्सा (स्स) ओच्छ अ ध इ ओ तस्स अ पाअेसु पडिआओ ।१२७।

कि नु रूअेण हले, रूअस्स स्व स्वामिनीव सति
आत्थ उत्सव धृता तम्य च पादेसु पतिना ।१२७।